श्रीमद्बाणभट्टप्रणीता

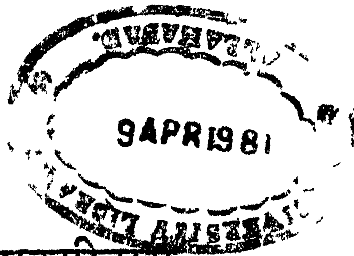
कादम्बरी

(पूर्वार्द्धम्)

श्रीभानुचन्द्र-सिद्धचन्द्रगणिविरचितया
संस्कृतटीकया सवलिता
हिन्दीभाषानुवादेन चालङ्कृता

अनुवादक
श्रीहरिश्चन्द्रविद्यालङ्कार

सम्पादक
आचार्यमोहनदेवपन्त



मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना

©मोतीलाल बनारसीदास
भारतीय सस्कृति ग्रन्थमाला के प्रमुख प्रकाशक एव पुस्तक-विक्रेता
प्रधान कार्यालय अ उल्लाह मार्ग, जवाहर नगर, दिल्ली-७
शाखाएँ १ चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)
२ अशोक राजपथ, पटना-४ (बिहार)

प्रथम सस्करण वाराणसी १९७१
पुनर्मुद्रण दिल्ली, १९७६

मूल्य · रु० २० ०० (अजिल्द)
रु० ३० ०० (सजिल्द)

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये
रियायती मूल्य के कागज पर मुद्रित।

सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, अ उल्लाह मार्ग, जवाहर नगर
दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित तथा शान्तिलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५,
फेस-१, इडस्ट्रियल एरिया, नारायणा, नई दिल्ली-२८ द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

सस्कृत से परिचित विरला ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने बाणभट्ट का नाम न सुना हो। काव्यनाटक-क्षेत्र मे जिस तरह कालिदास सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं, वैसे ही गद्यकाव्य-क्षेत्र मे बाण भी अद्वितीय कलाकार हैं। उनकी सर्वोत्तम रचना कादम्बरी है, जो एक उच्चकोटि का उपन्यास है। ऐसा कोई भी विश्वविद्यालय, विद्यापीठ अथवा शिक्षा-सस्था न होगी, जहाँ बाण की कादम्बरी पाठ्य-पुस्तक के रूप मे नियत न हो। कहीं सारी कादम्बरी है, कही उसका पूर्वार्ध है, कही शुकनासोपदेश तक है, तो कहीं कथामुख तक अथवा कही इसके चुने हुए स्थल हैं—अभिप्राय यह कि किसी न किसी रूप मे कादम्बरी पाठ्यक्रम मे नियत होती अवश्य है।

कहना न होगा कि कादम्बरी एक शैली-प्रधान उपन्यास है, जिसमे वर्णनों को अधिक महत्त्व दिया जाता है, घटनों को कम। यही कारण है कि बाण की कादम्बरी अपने वर्णनों के लिए प्रसिद्ध है। कई स्थलो मे ऐसे लम्बे-लम्बे समास-बहुल, पौराणिक सकेतों से भरे और अलकारों का ताँता लिये हुए वाक्य चल पडते हैं कि साधारण सस्कृतज्ञ को अर्थ समझने में कठिनाई आ जाती है। प्रसिद्ध टीकाकार श्रीकाले महोदय ने कादम्बरी के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है —

बोधैक-गम्या रसभाव-पूर्णा जीर्णापि नित्यं धृतचारुवर्णा।
अचिन्तनीय-प्रभवापि निर्जरैर्दुरावबोधा किमु बोधविक्लवैः ॥

पाठकों की इस कठिनाई को दूर करने के लिए विद्वानों ने कादम्बरी पर कितनी ही टीकायें कर रखी हैं। कुछ टीकाओं के नाम हैं—कादम्बरीपदार्थदर्पण, विषमपदविवृति, आमोद, चषक इत्यादि। वे अधिकतर पूर्वार्ध तक हैं। हरिदास, शिवराम और घनश्याम ने भी कादम्बरी पर टीकायें कर रखी हैं, पर इनमें अधिकतर इतनी सक्षिप्त हैं कि उनसे साधारण पाठकों—विशेषत छात्रों को अच्छी तरह अर्थ समझने मे अपेक्षित सहायता नहीं मिल सकती। कादम्बरी के सर्व प्रसिद्ध टीकाकार जैन-पण्डित श्रीभानुचन्द्र हैं, परन्तु उन्होंने पूर्वार्द्ध तक ही टीका की है। उत्तरार्ध भाग की टीका उनके शिष्य सिद्धचन्द्र ने की है। इन्हीं भानुचन्द्र की टीका हमने इस सस्करण में अपनायी है। प्रस्तुत सस्करण हमने अभी पूर्वार्ध तक ही निकाला

है। थोड़े ही समय में उत्तरार्ध को भी प्रकाशित करके इसके साथ जोड़ दिया जाएगा। प० भानुचन्द्र ही ऐसे व्याख्याकार हैं, जो मूल की कोई बात नहीं छोड़ते हैं, समासों का अच्छी तरह विश्लेषण कर देते हैं और प्रत्येक शब्द का पर्याय भी दे देते हैं। अत हमारे विचार में इनकी टीका ही एक ऐसी टीका है, जो साधारणत कादम्बरी के सभी पाठकों—विशेषत छात्रों की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर देती है।

अपने प्रस्तुत सस्करण को और भी उपयोगी बनाने के लिए हमने पाद-टिप्पण मे सभी पाठ-भेद भी दे दिए हैं और साथ ही सस्कृत मूल का हिन्दी अनुवाद भी इसके साथ जोड़ दिया है जिससे पाठकों को मूल समझने में और भी सहायता मिल जाय। इसके हिन्दी रूपान्तरकार हैं गुरुकुल के सेवा-निवृत्त प्राध्यापक श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, जो हिन्दी के अच्छे विद्वान हैं। सस्कृत काव्य-ग्रन्थों के प्रसिद्ध अग्रेजी-टीकाकार काले महोदय के अंग्रेजी-अनुवाद के आधार पर ही विद्यालकारजी ने हिन्दी की है। इनकी हिन्दी बड़ी सरल एव व्यावहारिक है, 'पण्डिताऊपन' कहीं नहीं आने पाया है जैसा कि प्राय अन्य हिन्दी-टीकाओं में देखने को मिलता है।

हम काले आदि उन सभी सस्कृत विद्वानों के बड़े कृतज्ञ हैं, जिनकी पुस्तकों से इस ग्रन्थ को उपयोगी बनाने में हमें सहायता मिली है। हम श्रीहरिश्चन्द्र विद्यालंकार जी के भी बड़े आभारी हैं, जिन्होंने हिन्दी अनुवाद करने का भार उठाया। मैं अपने मित्र श्री जगदीशलाल शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० का भी धन्यवाद कर देना चाहता हूँ जिन्होंने इस ग्रथ के अन्तिम प्रूफ देखे हैं। अन्त में मैं सस्कृत-ग्रन्थों के प्रसिद्ध प्रकाशक श्रीमोतीलाल बनारसी-दासवालों का भी आभार प्रकट कर देना चाहता हूँ, जो इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार उठाते हुए कभी से संस्कृत-जगत् की निरन्तर सेवा करते चले आ रहे हैं।

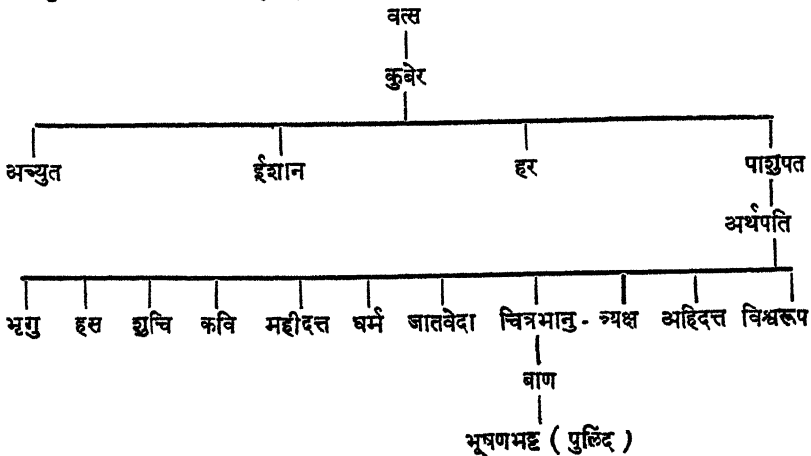
दिल्ली
१९ १०-७१

मोहनदेव पन्त

भूमिका

बाण का वंश

बाण का सस्कृत गद्य साहित्य के इतिहास मे सर्व मूर्धन्य स्थान है—इसपर सस्कृत-मनोषियों मे दो मत नहीं। इन्हे हम गद्य काव्य का सम्राट् भी कह सकते हैं। वैसे तो हम देखते है कि सस्कृत के कवि एव साहित्यकार इतने निरभिमान और सकोची रहे कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन तथा स्थानादि के सम्बन्ध मे पाठकों को प्राय अन्धकार में ही रखा है। जो कुछ भी उनके विषय मे हम जान पाए हैं, उसका आधार बनता है या तो बाह्य साक्ष्य या कोई शिलालेख या अनुमान या कोई दन्त कथा या फिर केवल कल्पना। परन्तु सौभाग्यवश, बाण के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वे इसके अपवाद हैं। उन्होंने अपनी कृतियो मे अपने कुल, जन्मस्थान, काल एव व्यक्तिगत जीवन आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाल रखा है। बाण के 'हर्षचरित' एव 'कादम्बरी' में हम उनके कुल का पूरा पूरा विवरण पाते हैं। कादम्बरी के आरम्भिक १०, १३, १६ और १९ श्लोकों मे बाण ने अपने वशधरों का प्रारम्भ कुबेर से किया है, जो समस्त वेदादि शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे और जिनके चरणों मे गुप्तवशीय राजा सिर झुकाया करते थे। कुबेर का पुत्र अर्थपति और अर्थपति का पुत्र चित्रभानु हुआ। बाण चित्रभानु के पुत्र हैं। किन्तु 'हर्ष-चरित' में हम कुल का कुछ विस्तृत विवरण पाते हैं। वहाँ कुल प्रवर्तक मूल पुरुष वत्स कहा गया है, जो सरस्वती के पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई थे। इन्हीं वत्स से वात्सायन गोत्र चला है। कुबेर इसी वात्सायन गोत्र मे बाण के एक वशधर हैं। कुबेर के पाशुपत, पाशुपत के अर्थ-पति और अर्थपति के चित्रभानु पुत्र हुए हैं। बाण की इस वशावली को हम यहाँ निम्नलिखित वश वृक्ष से स्पष्ट कर देना चाहते है :—



उक्त वशावली को देखकर पाठकों को आश्चर्य होगा कि बाण ने कादम्बरी के वशवर्णन में अपने प्रपितामह (पड़दादे) पाशुपत का कोई नामोल्लेख नहीं कर रखा है। ऐसा कदापि

नहीं हो सकता कि बाण अपने इस पूर्वज को भूल जायँ। हो सकता है कि बाण ने पाशुपत-सम्बन्धी श्लोक भी लिखा हो, किन्तु वह मूल लिपिकार की भूल से रह गया हो और वह भूल बाद की प्रतियों मे भी बराबर चलती आ रही हो। यह भी सम्भव है कि बाण ने कादम्बरी म क्रम निरपेक्ष होकर विशिष्ट वशधरों का वर्णन करना ही उचित समझा हो, हर्षचरित की तरह सभी वशधरों का क्रम सापेक्ष वर्णन न किया हो।

बाण का देश-काल

हम देखते हैं कि हर्षचरित के प्रथम, द्वितीय और तृतीय उच्छ्वास के आधे तक बाण की आत्म कथा ही चलती है। उसमे बाण ने अपना जन्म स्थान 'प्रीतिकूट' बता रखा है, जो शोण नद के तीर-प्रदेश पर स्थित था। ब्राह्मणों की बस्ती होने के कारण बाण ने उसे 'ब्राह्मणाधिवास' भी कहा है।

जहाँ तक बाण के स्थिति काल का प्रश्न है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपना प्रथम गद्य-ग्रन्थ 'हर्षचरित' लिखकर उसमे अपने आश्रय दाता सम्राट् हर्षवर्धन का जीवन वृत्तान्त दिया है। श्रीहर्ष एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, जो गुप्त राजवश के पतन के बाद भारत के शासन क्षेत्र मे आए। यह स्थाण्वीश्वर (थानेसर) के नरपति थे, किन्तु अपने बहनोई—बहिन राज्यश्री के पति कान्यकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा—की हत्या की जाने पर उनका राज्य भी सँभालने के लिए कान्यकुब्ज देश चले गये थे और बाद को स्वय समस्त उत्तर भारत के 'महाराजाधिराज' पद पर आसीन हो गये थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूँ सौंग (HIUEN TSANG) ६२९ ई० में भारत आया और ६४५ ई० तक देश का भ्रमण करता रहा। उसने अपनी भ्रमण यात्राओ के विवरणो में जिन हर्षवर्धन का उल्लेख कर रखा है, वह बाण के आश्रयदाता और उनके 'हर्षचरित' के कथा नायक श्रीहर्ष ही हैं। इतिहासानुसार श्रीहर्ष ने ६०६ से ६४८ ई० तक शासन किया। इस तरह बाण का स्थिति काल भी छठी शताब्दी का उत्तरार्ध और सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ठहरता है।

इसके अतिरिक्त बाण के इस स्थिति काल के सम्बन्ध मे हमारे पास पर्याप्त बाह्य साक्ष्य भी है। वामनाचार्य (७५०–८०० ई०) ने अपनी काव्यालकार सूत्र वृत्ति म कादम्बरी से उद्धरण लिये हैं। आनन्दवर्धनाचार्य (८५० ई०) अपने ध्वन्यालोक ग्रन्थ मे बाण की कादम्बरी का उल्लेख किये हुए हैं। इसी तरह 'दशरूपक'कार धनञ्जय (१००० ई०) और 'सरस्वती कण्ठाभरण कार' भोज (१०२५ ई०) आदि की भी कृतियों मे बाण का नामोल्लेख होने के कारण बाण इन सभी साहित्यकारों से पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं। अत बाण का पूर्वोक्त स्थिति काल, निश्चित एव सदेहातीत है।

बाण का जन्म एक धनी एव विद्या-सम्पन्न ब्राह्मण कुल मे हुआ। कालिदास की तरह वे भी शैव थे, परन्तु कट्टर सम्प्रदायवादी नहीं। इनकी माता का नाम राजदेवी था, परन्तु

बाण का व्यक्तित्व

जब यह बहुत छोटे थे, तभी दुर्भाग्यवश काल इनसे इनकी माता को छीन ले गया और इनके भरण पोषण का भार इनके पिता के ऊपर आ पड़ा। बाण जब चौदह वर्ष के हुए, तो इनके शिर पर से पिता की छत्र-छाया भी उठ गई और अभागा बालक बिलकुल अनाथ हो गया। उसके

हृदय के शोक का कोई पारावार न रहा। हमे ऐसा लगता है कि कादम्बरी मे माता और कुछ समय बाद पिता की भी मृत्यु हो जाने से शोकविह्वल शुकशावक के करुण चित्र मे बाण ने मानो अपनी व्यक्तिगत मनोव्यथा ही मुखरित की हो। शोक शान्त होने पर बाण को अपने भविष्य की चिन्ता हुई, शैशव चचल हुआ ही करता है और जब यौवन भी जीवन की देहली पर से झॉक रहा हो, तो मनमे नयी नयी उमगें, नयी-नयी आकाक्षायें और नयी नयी चचलतायें स्वभावत. उठा ही करती हैं। यही हाल बाण का भी हुआ। विद्या तो उन्हें घुट्टी के रस मे मिली हुई थी ही, पिता के सरक्षण मे शिक्षा भी अपने गुरु भर्गु से पर्याप्त पा ली थी। प्रखर प्रतिभा एव वाक्पटुता का पैतृक दाय साथ लेकर बाण अपने कुछ मित्रों को फोड़ उन्हे साथ लेते हुए देश भ्रमण के लिए निकल पड़े। कभी इस नगर अथवा जनपद मे, तो कभी उस नगर अथवा जनपद मे गए, कभी वन के क्रोड़ मे स्थित आश्रमों को देखा, तो कभी राज दरबारो की सैर की, कभी कहीं पुराण बॉचा, तो कहीं नाटक मण्डली बनाकर नाटक खेला, कहीं शास्त्रों का प्रवचन सुना, तो कहीं शास्त्रार्थ किए—अभिप्राय यह है कि अपनी इन भ्रमण यात्राओं मे बाण ने कोई काम नहीं छोड़ा। अत: लोग इन्हें 'भुजङ्ग' (लोफर) कहने लगे यद्यपि वास्तव मे यह वैसे नहीं थे। अपने इस भ्रमण मे इन्हे ससार और समाज के जिन विविध पहलुओं का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उससे इनके मन के भीतर छिपा कलाकार खूब पुष्ट और समृद्ध हुआ और बाद को अपनी विविध अभिव्यक्तियो मे स्वय वाणी का अवतार सिद्ध हो बैठा।

कुछ वर्ष बाद बाण यात्रा समाप्त करके अपने घर प्रीतिकूट वापस आ गए और आनन्द पूर्वक रहने लगे। स्वभाव में अब कुछ गम्भीरता और सूझ-बूझ आ गई थी। एक दिन ग्रीष्म ऋतु मे श्रीहर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्णवर्धन ने अपना एक सन्देशवाहक इनके पास भेजकर इन्हे समझाया—'मैं तुम्हारे गुणों पर मुग्ध हूँ, किन्तु कुछ दुष्ट लोगो ने तुम्हारे विरुद्ध सम्राट् के कान भर रखे हैं किन्तु तुम्हारी तरफ से मैने उन्हे समझा दिया है कि यौवनावस्था हरेक की उच्छृखल एव चपल हुआ ही करती है। सम्राट् मेरी बात मान गए हैं कि ठीक है। इसलिए किसी बात का सकोच और शका न करके तुम्हें शीघ्र ही राजदरबार मे आ जाना चाहिये। तुम जैसे गुणी और योग्य विद्वान का घर मे ही बैठा रहना ठीक नहीं लगता।'

सोच विचार कर बाण ने सम्राट के पास जाने का निश्चय कर लिया और एक शुभ मुहूर्त पर दो दिन की यात्रा करके महाराज के पास जा पहुँचे। प्रारम्भ मे महाराज ने इन्हे 'भुजङ्ग' शब्द से सम्बोधित करके इन पर व्यङ्ग्य तो कसा, लेकिन जब बाण ने उनके आगे तरुणाई की स्वाभाविक चपलताओ का यथार्थ चित्रण किया और उनपर अपना पश्चात्ताप भी प्रकट किया, तो महाराज इनकी विद्वत्ता से बड़े प्रभावित हुए और प्रसन्न होकर इन्हें अपना कृपा भाजन तथा बाद मे अपना प्रधान सभा पण्डित भी बना दिया।

बाण म विलक्षण प्रतिभा और पाण्डित्य का व्यक्तित्व था। क्या वेद, क्या वेदाङ्ग, क्या पुराण, क्या दर्शन, क्या अन्य शास्त्र और कला—सभी मे बाण की गति अप्रतिहत थी। साहित्य और मानव मनोविज्ञान के तो वे मानो आचार्य ही थे। वे लेखनी के बड़े धनी थे।

उनकी लेखनी की नोक पर वाणी जिस विलास के साथ नाचा करता थी वह देखते ही बनता है। यही कारण है कि गुण कला-पारखी श्रीहर्षवर्धन ने उन्हें 'वश्य वाणी कविचक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया और ठीक ही किया। ऐसे रस-सिद्ध कवीश्वर सम्मान के पात्र हुआ ही करते हैं। आर्यासप्तशतीकार आचार्य गोवर्धन ने बाण के सम्बन्ध मे यह उचित ही कहा है—

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी बाणो बभूवेति ॥

यहाँ बाण के नाम के सम्बन्ध मे कुछ चर्चा करना अप्रासङ्गिक न होगा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार बाण का असली नाम पहले दक्ष था। जब ये घर से निकल भागे, तो गाँव के और छोकरो को भी फोड़ ले गये। ये गाँव मे बदनाम हो गये। इस कारण लोगो ने इन्हे 'बण्ड' कहना शुरू कर दिया। 'बण्ड' पूछ कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत है कि 'बण्ड आप गये, साथ मे नौ हाथ का पगहा भी लेते गये'। बाण ने 'बण्ड' शब्द को ही बाद मे सस्कृत शब्द 'बाण' द्वारा सस्कार करके इस नाम की कुछ इज्जत बढ़ा ली। 'भट्ट' तो लोगो ने बाद मे जोड़ा।[1]

बाण के नाम से दो गद्य-काव्य तो सर्वप्रसिद्ध ही हैं—एक है 'हर्षचरित' और दूसरा है 'कादम्बरी'। बाण की तीसरी कृति 'चण्डीशतक' है, जो एक गीति काव्य है।

बाण की कृतियाँ

प० कृष्णमाचार्य–जैसे विद्वानों का कहना है कि 'चण्डीशतक' की तरह बाण ने 'शिव शतक' भी लिखा है, जिसके विकीर्ण श्लोक स्तोत्र ग्रन्थों में मिलते हैं। परन्तु यह कृति अविकल रूप मे अभी उपलब्ध नहीं हुई है। बाण ने दो दृश्य काव्य—नाटक—भी लिखे हैं, जिनमे एक का नाम है 'पार्वती परिणय' और दूसरे का नाम है 'मुकुटताडितक'।

बाण के प्रसिद्ध गद्य-काव्यों पर विवेचन करने से पूर्व हम उनकी अन्य रचनाओं पर यहाँ थोड़ा-सा प्रकाश डाल देना अनुचित नहीं समझेंगे।

चण्डीशतक

चडीशतक का कथानक मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य पर आधारित है। यह स्रग्धरा वृत्त में भगवती चण्डी (दुर्गा, पार्वती) की स्तुति और चरित्रवर्णन-परक है। इसमे भगवती का किस तरह महिषासुर के साथ युद्ध हुआ और किस तरह उसने इस राक्षसराज का वध किया—इसका ओजपूर्ण भाषा म वर्णन है। इसमें भी कादम्बरी की तरह समास बहुल, श्रम साध्य अलकृत शैली के दर्शन होते हैं।

ऐसी किंवदन्ती है कि बाण का सम-सामयिक मयूर कवि, जो बाण का साला (अथवा श्वसुर) लगता था, किसी कारणवश कुष्ठरोग ग्रस्त हो गया था। उसने अपने रोग-निवारण के लिये भगवान सूर्य की स्तुति में 'सूर्यशतक' लिखा और वह रोग-मुक्त हो गया था। बाण की उससे खार हो गई, इसलिये उन्होंने भी अपने हाथ काट लिये और अपने 'चण्डी शतक' द्वारा भगवती को प्रसन्न करके उसके प्रसाद-स्वरूप फिर हाथ प्राप्त कर लिये थे।

---

१ बाणभट्ट की आत्मकथा पृ० १४

'पार्वती परिणय' की प्रस्तावना मे ही हमे प्रमाण मिल जाता है यह बाण-रचित है, जैसे—

पार्वती-परिणय "अस्ति कवि-सार्वभौमो वत्सान्वयजलधिसम्भवो बाणः।
नृत्यति यद् रसनाया वेधोमुखलासिका वाणी॥"

यह पॉच अकों का नाटक है। महादेव पार्वती का विवाह इसकी कथा वस्तु है। इसके लिये बाण कालिदास के ऋणी हैं, जिनके 'कुमार सम्भव' महाकाव्य से इन्हे पर्याप्त प्रेरणा एव सामग्री उपलब्ध हुई। हम मानते हैं कि इसमे नाटककार की कला सभी दृष्टि कोणो से परिपक्व रूप मे नहीं उभर पाई और यही कारण है कि बहुत से समालोचक इसके बाण की कृति होने मे सन्देह करते हैं। परन्तु यथार्थ मे बात यह है कि बाण ही क्या, सभी कवियों और कलाकारों का प्रारम्भिक कविकर्म कुछ टेकनीक की दृष्टि से, कुछ भाषा की दृष्टि से और कुछ भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से शिथिल सा, उखड़ा पुखड़ा सा परिलक्षित होता है। हम पूछते हैं कि स्वय कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' और 'ऋतुसहार' एव बाण का 'हर्षचरित' ही इस कोटि मे नहीं आते ? इसलिये 'पार्वती परिणय' पर ही बाण की रचना होने का सन्देह क्यों किया जाय ?

मुकुटताडितक 'मुकुटताडितक' नाटक बाण की रचना होने का प्रमाण हमारे पास यह है कि त्रिविक्रम भट्ट के 'नलचम्पू' काव्य के टीकाकार चण्डपाल और गुणविजयगणि ने अपनी टीकाओं मे 'मुकुटताडितक' का उद्धरण दे रखा है—

"यदाह मुकुटताडितक नाटके बाण —

आशा प्रोषित दिग्गजा इव गुहा प्रध्वस्त-सिंहा इव
द्रोण्य कृत्त महाद्रुमा इव भुव प्रोत्खात शैला इव।
बिभ्राणा क्षयकाल रिक्त सकल त्रैलोक्य कष्टा दशा
जाता॰ क्षीण महारथा कुरुपतेर्देवस्य शून्या सभा॰॥

भोज ने भी अपने 'शृङ्गार प्रकाश' ग्रन्थ मे बाण के नाम से इस नाटक के उद्धरण दे रखे हैं। इस नाटक का कथानक महाभारत से लिया हुआ है, जिसमे भीमसेन अपने तीव्र गदा प्रहार से दुर्योधन का काम-तमाम कर देते हैं। इस नाटक के सम्बन्ध में इससे अधिक जानने के लिये अन्य स्रोत हमे उपलब्ध नहीं हो रहे है।

बाण के नाटकों के सम्बन्ध मे एक उल्लेख्य बात यह भी है कि कुछ विद्वान् श्रीहर्ष के लिखे 'रत्नावली' नाटक को भी बाण की कृति मानते हैं। इसके लिये वे यह प्रमाण देते हैं कि मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रन्थ में धन प्राप्ति को भी काव्य का प्रयोजन बताते हुए उसका यह उदाहरण दे रखा है—"श्रीहर्षादेर्बाणा(धावका)दीनामिव धनम्।" इससे वे लोग यह सिद्ध करते हैं कि बाण ने 'रत्नावली' लिखकर उसे श्रीहर्ष को समर्पित किया और पुरस्कार-स्वरूप बहुत-सा धन प्राप्त किया। हम नहीं समझ पाये कि श्रीहर्ष द्वारा बाण को विपुल धन दिये जाने से ही यह अर्थ कैसे निकला कि बाण को उन्होंने 'रत्नावली' के मूल्य-रूप मे धन दिया। श्रीहर्ष

ने 'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' और 'नागानन्द—तीन नाटक लिखे। ये तीनों की तीन कृतियाँ अपने संविधान, भाषा शैली और भाव-व्यञ्जना मे परस्पर बड़ी समानता रखे हुए हैं, इसलिए अकेली 'रत्नावली' ही को क्यो—तीनों को ही बाण की कृतियाँ क्यों नहीं मान लेते ? हम देखते हैं कि बाण ने अपने आश्रयदाता श्रीहर्ष को एक बड़े विद्वान् शास्त्र ज्ञाता और कलाविद् के रूप मे उल्लिखित कर रखा है ('अस्य कवित्वस्य वाचो न पर्याप्तो विषय.' हर्ष०)। अत 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' की तरह 'रत्नावली' भी श्रीहर्षकृत ही है, बाण कृत नहीं। इसके अतिरिक्त परवर्ती सभी साहित्यशास्त्रियो ने 'रत्नावली' को हर्ष कृत ही स्वीकार कर रखा है। श्रीहर्ष की तरह शूद्रक, भर्तृहरि, यशोवर्मा और भोजराज आदि भी तो ऐसे राजा हुए, जिनपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनो समान रूप से मुस्कराती रहती थीं।

हम बता आए हैं कि बाण के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' दो गद्य काव्य है। इनमे 'हर्षचरित' कवि की पहली रचना है और 'कादम्बरी' अन्तिम। साहित्यशास्त्रियों ने गद्य-काव्य के दो भेद मान रखे हैं—एक आख्यायिका और दूसरी कथा। इन दोनों भेदों के संविधान और परिभाषा को लेकर आलोचकों मे बड़ा विवाद चलता रहा, किन्तु अन्त मे यही निष्कर्ष निकला कि आख्यायिका की कथावस्तु इतिहास पर आधारित होती है और कथा की कथावस्तु कल्पना प्रसूत होती है। आख्यायिका का प्रकरण विभाग उच्छ्वासों मे होता है और उसमे कहीं कहीं वक्त्र, अपरवक्त्र छन्द भी प्रयुक्त होते हैं जबकि कथा मे इस तरह का विभाग नहीं रहता है और न वक्त्र अपरवक्त्र ही रहते हैं। शब्दान्तर मे हम यह कहेंगे कि आख्यायिका कवि भाषा मे लिखा एक ऐतिहासिक जीवन वृत्त होता है, जिसे अंग्रेजी-भाषा मे हम नैरेटिव (Narrative) कहेंगे जबकि कथा एक निरी कवि कल्पित रचना होती है, जिसे हम नॉवल(Novel) अर्थात् उपन्यास कहेंगे। 'अलकार-सर्वस्व'कार ने यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी है —

हर्षचरित

गद्य तु कथित द्वेधा कथेत्याख्यायिकेति च।
कथा कल्पित वृत्तान्ता सत्यार्थाख्यायिका मता॥

बाण ने भी अपने श्रीमुख से हर्षचरित को आख्यायिका[1] और कादम्बरी को कथा[2] कह रखा है।

हर्षचरित एक आख्यायिका है, जिसमे बाणभट्ट ने काव्यमयी, अलकृत एव ओजपूर्ण भाषा मे अपने आश्रयदाता श्रीहर्ष की जीवनी लिख रखी है यद्यपि काव्य का पुट आ जाने से इसके कल्पना-तत्त्व ने उसकी ऐतिहासिकता को अवश्य कुछ तिरोहित सा कर रखा है। इसके आठ उच्छ्वास हैं। प्रारम्भिक दो ढाई उच्छ्वासों में बाण ने आत्म-कथ्य दे रखा है और शेष उच्छ्वास श्रीहर्षपरक हैं। श्रीहर्ष के पूर्वज श्रीकण्ठ जनपद के स्थाण्वीश्वर प्रदेश में राज्य किया करते थे, जिनके मूल पुरुष कोई पुष्पभूति थे। इसी राजपरिवार में प्रभाकरवर्धन नाम के राजा हुए। इनके दो पुत्र—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक कन्या राज्यश्री हुई। दोनों राज-

१ हर्षचरित श्लो० १९। २ काद० श्लोक ८–९

कुमार बड़े वीर थे। युवा होने पर राजकुमारी राज्यश्री का विवाह मौखरी राजकुल के कान्यकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा के साथ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। कुछ समय बाद महाराज प्रभाकरवर्धन का स्वर्गवास हो गया। पितृ मरण के शोक से राज्यवर्धन को विरक्ति सी हो रही थी कि इसी बीच राज्यश्री का सवादक दूत यह दु खद समाचार लाया कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या कर दी और महारानी राज्यश्री को बन्दी बना लिया गया था, परन्तु वह बेचारी किसी तरह बचकर विन्ध्याटवी में जा छिपी है। सुनते ही राज्यवर्धन का शोक क्रोध में और वैराग्य उत्साह मे बदल गया। कुछ अश्वारोही सैनिक साथ लिये और मालवराज पर चढाई कर दी। शत्रु को बुरी तरह परास्त तो कर बैठे थे, किन्तु इसी बीच धोखे से घर बुलाकर गौड़ेन्द्र के हाथों वे मार डाले गये। फिर तो हर्षवर्धन के क्रोध की कोई सीमा ही न रही। उसी क्षण उन्होंने गौड़ेन्द्र को समाप्त कर देने की सौगन्ध तो खाई ही, लेकिन वे समस्त राजाओं को भी युद्धार्थ ललकार बैठे। थोड़े समय में समस्त राज गण को परास्त करके उन्होंने अपने अधीन कर लिया और अन्त मे विन्ध्य वनों में भटकती हुई अपनी बहिन राज्यश्री को भी खोज पाने मे सफल हो गये। यहाँ बाण का हर्षचरित समाप्त हो जाता है। आगे का चरित्र बाण ने क्यों नहीं लिखा— यह विद्वानों के लिये अटकल की चीज है। हाँ, इस सम्बन्ध मे बाण ने इतना सकेत तो अवश्य दे रखा है —

"क. खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरित वर्णयितुम्।"

(उच्छ्वा० ३)

प्रारम्भिक कृति होने पर भी हर्षचरित ने अपनी उदात्त, ओजस्विनी, अद्भुत वर्णनाशैली द्वारा सम सामयिक समस्त सस्कृत जगत् पर बाण के परम वैदुष्य और निशित कवित्वशक्ति का जो पूरा सिक्का जमा दिया था, उसे सोड्ढल ने इस तरह व्यक्त कर रखा है :—

"बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य
शक्तिं न केऽत्र कविता सुमुद त्यजन्ति ॥"

कादम्बरी

कादम्बरी सरस्वती के वरदपुत्र बाणभट्ट की अन्तिम अमर रचना है, जिसमे उनकी कला अपने ऐसे समृद्ध, सशक्त, प्रौढ़, परिपक्व और उर्वर रूप मे निखरी है कि क्या कहा जाय! यह सस्कृत साहित्य के गद्य काव्य की ऐसी चूडान्त रचना—मास्टरपीस (Master-piece) है, जो बाण के ही शब्दों मे 'अतिद्वयी' है। यह रोमानी प्रेम-भावना से ओतप्रोत एक कथा—उपन्यास—है, जिसके विषय म सस्कृत का आभाणक ही चल पड़ा है—'कादम्बरी रसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते।" कादम्बरी वास्तव में एक ऐसी कादम्बरी (सुरा) है, जिसके मद मे मत्त होकर बाण पुत्र भूषणभट्ट को भी विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ा :—

"कादम्बरी रसभरेण समस्त एव
मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।"

हर्षचरित के आख्यायिका—ऐतिहासिक वृत्तान्त—होने के कारण बाण को अधिकतर पृथिवी के धरातल से ही चिपका रहना पड़ा है, परन्तु कादम्बरी में ऐसी बात नहीं। यहाँ कला-

कार स्वतन्त्र होकर, पार्थिव बन्धनों से उन्मुक्ति पाकर कल्पना की ऐसी उड़ानें भरता है कि पृथिवी-लोक से परे दिव्य लोकों तक जा पहुँचता है, द्यो भू को एकाकार करके मानव को अति-मानव से मिला देता है और आत्मा के शारीरिक आवरण हटाकर दो दो, तीन तीन जन्मों के जगतों का हाल हमारे मानस टेलीविजन पर प्रतिबिम्बित कर देता है। ऐसी अद्भुत है बाण-रचित कादम्बरी की रोमानी प्रेम की कहानी--ऐसा रोमानी प्रेम, जो जन्म जन्मान्तरों तक चलता हुआ तप, त्याग और तितिक्षा से परिपूत होता हुआ भौतिक धरातल से आध्यात्मिक ऊँचाई पर जा पहुँचता है। भारतीय प्रेम का यही आध्यात्मिक रूप है।

पूर्वार्ध कादम्बरी का सारांश

विदिशा नगरी मे शूद्रक नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन प्रातः एक चाडाल-कन्या पिंजरे मे बँधे वैशम्पायन नाम के एक शुक को राजदरबार मे लाई और उसे राजा को भेंट करते हुए बोली—"महाराज, यह शुक सभी शास्त्रों का ज्ञाता है। इस रत्न को आप अपने पास रखियेगा।" शुक ने भी अपना एक पाँव उठाकर राजा का पद्य बद्ध अभिनन्दन किया। सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। खिला पिला कर सायकाल राजा ने शुक को अपना सारा वृत्तान्त सुनाने को कहा।

वैशम्पायन बोला—"महाराज, विन्ध्याचल के वन मे पपा सरोवर के पास एक बड़ा पुराना शाल्मली (सेमर) का वृक्ष था। उसमे हजारों तोते रहा करते थे। मेरे माता पिता का भी उसी मे वास था। दुर्भाग्यवश मेरे जन्म लेते ही मेरी माता स्वर्ग सिधार गई थी। तब से मेरे भरण-पोषण का भार मेरे पिता के ऊपर ही पड़ा हुआ था। एक दिन प्रात मैं क्या देखता हूँ कि शबरों (भीलों) का एक बड़ा भारी दल शिकार खेलते हुए हमारे पेड़ के नीचे से गुजर रहा है। उनमे से एक बूढ़ा शबर पीछे रह जाता है। बाद मे वह पेड़ पर चढ़ कर घोंसलों मे बैठे हुए सभी तोतों को मार मार कर नीचे पटकता जाता है। मेरे देखो तो भय के मारे प्राण सूख रहे थे। मैं अपने पिता के पखों के भीतर छिप गया। शबर मुझे न देख सका। उसने मेरे पिता की भी गर्दन मरोड़ी और नीचे फेंक दिया। मैं भाग्यवश मृत पिता सहित नीचे सूखे पत्तों के ढेर पर जा गिरा, इसलिये मरा नहीं। भील के नीचे उतरने से पूर्व ही मैं किसी तरह खिसकता खिसकता पास के एक तमाल वृक्ष की जड़ पर जा छिपा। भील उतरा और सभी मृत तोतों को झोले में रखकर चलता बना। मैं देखो तो मध्याह्न की गर्मी के कारण प्यास से मरा जा रहा था। इतने में पपा सरोवर से स्नान करके लौटते हुए जाबालि ऋषि के पुत्र हारीत की मुझपर दृष्टि पड़ गई। दयावश वह मुझे वहाँ से उठा कर सरोवर पर ले गया, जहाँ उसने मुझपर पानी की छींटे डाले और मुँह खोल कर कुछ बूँदें भी पिलाई। फिर वह मुझे आश्रम में ले गया। सभी आश्रमवासी मुझे देखने को एकत्रित हो गये। जाबालि मुझे देख कर कुछ मुस्कराये और बोले—"यह तोते का बच्चा पूर्वजन्म की अपनी ही करणी का फल भोग रहा है।" यह सुन कर सभी आश्रमवासी बड़े चकित और उत्सुक हो बैठे। उन्होंने जाबालि से मेरे पूर्वजन्म की कथा सुनाने के लिये प्रार्थना की।"

जाबालि बोले—"अच्छा तो सुनो, मैं इस तोते की पूर्वजन्म की कहानी कहता हूँ—

शिप्रा नदी के किनारे उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वहाँ तारापीड़ नामक एक प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनका शुकनास नाम का एक बड़ा बुद्धिमान ब्राह्मण मन्त्री था। तारापीड़ सारा राज्य भार अपने मन्त्री के सशक्त कन्धों पर छोड़ स्वय सासारिक भोग-विलास मे लग गये। बहुत समय तक घर मे पुत्र उत्पन्न न होने से राजा ने एक दिन अपनी रानी विलासवती को बड़ा उद्विग्न पाया, तो उन्हें भी इस बात का बड़ा दु:ख हुआ। राजा के समझाने बुझाने पर जब रानी शान्त हुई, तो वह पुत्रहेतु सभी तरह के व्रत पूजा-पाठ आदि मे लग गई। एक दिन प्रात. स्वप्न मे राजा तारापीड क्या देखते हैं कि चन्द्रमा आकाश से उतर कर रानी विलासवती के मुँह मे प्रवेश कर रहा है। सयोग की बात है कि ठीक उसी दिन मन्त्री शुकनास को भी स्वप्न आया और वह क्या देखता है कि एक ब्राह्मण उसकी पत्नी मनोरमा की गोद मे एक पुण्डरीक (श्वेतकमल) रख रहा है। दोनों के स्वप्न शुभ लक्षण थे, जिनका फल यह हुआ कि विलासवती और मनोरमा के एक-एक पुत्र हुआ। सारी नगरी आनन्दोल्लास मे मस्त हो उठी। राजकुमार का नाम चन्द्रापीड़ और मन्त्री कुमार का नाम वैशम्पायन रखा गया। बड़े होने पर दोनों बालकों के लिये एक विद्या मन्दिर बनाया गया, जहाँ उन्हें बड़े बड़े विद्वानों द्वारा सभी शास्त्रों, विद्याओं और कलाओं की शिक्षा दिलाई गई। शिक्षा समाप्ति पर राजकुमार को घर लिवा लाने के लिये राजा ने इन्द्रायुध नाम के एक उच्च-जातीय अरबी घोड़े के साथ कुछ सामन्तों को भेज दिया। विद्यामन्दिर से घर आते हुए राजकुमार को देखने के लिये अपार जन समूह उमड़ पड़ा। चन्द्रापीड़ अब युवा हो चुका था, अत पिता ने उसका यौवराज्याभिषेक करना चाहा। युवराज बनने से पहले मन्त्री शुकनास ने उसे बड़े-बड़े उपदेश दिये। युवराज बनने पर रानी ने अपने पुत्र की सेवा के लिये उसे पत्रलेखा नाम की एक सेविका दे दी। अब राजकुमार दिग्विजय-यात्रा पर चल पड़ा। अपने अतुल पराक्रम से एक एक करके सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ चन्द्रापीड़ एक दिन उत्तर में कैलास के पास किरातों की भूमि मे सुवर्णपुर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपनी थकी हुई सेना को कुछ समय विश्राम लेने को कह दिया। उसी भूमि में एक दिन राजकुमार को किसी निर्जन वन में एक किन्नरों का युगल दिखाई पड़ा। फिर तो क्या था, कुतूहलवश उन्हें पकड़ने लिये उसने अपना इन्द्रायुध घोड़ा उनके पीछे पीछे छोड़ दिया। दौड़ते-दौड़ते चन्द्रापीड़ किन्नर युगल को पकड़ने से तो रहा, स्वय और उसका घोड़ा—दोनों थक कर चूर-चूर हो गये। निदान विश्राम लेने के लिये वहाँ किसी जलाशय को राजकुमार ढूँढ़ ही रहा था कि उसे एक सुन्दर अच्छोद नाम का सरोवर दिखाई दिया। उसके तीर पर वह विश्राम ले ही रहा था कि एकाएक उसके कानों में कहीं से मधुर गीत-ध्वनि सुनाई पड़ी। पता लगाया, तो क्या देखता है कि पास ही एक शिव मन्दिर है, जहाँ अतिश्वेतवर्ण की कोई दिव्य सुन्दरी भक्ति-मग्न होकर शिव-स्तुति गा रही है। स्तुति-गान समाप्त होते ही राजकुमार उस तरुणी के पास पहुँचा और उसका परिचय पूछने लगा। पहले तो वह चुप रही, केवल आँसू ही बहाती रही। बाद में स्वय को सँभाल कर उसने अपनी करुण-कहानी कहना स्वीकार कर लिया।

तरुणी (महाश्वेता) बोली—सुनो, यहाँ गन्धर्व लोग रहा करते हैं। मेरे पिता गन्धर्व-राज हैं, जिनका नाम हस है। अप्सराओं के परिवार में उत्पन्न मेरी माँ का नाम गौरी है और मेरा नाम महाश्वेता है। अपने माँ-बाप की मैं इकलौती लड़की हूँ। युवा होने पर एक दिन मैं अपनी माँ के साथ इस अच्छोद सर में स्नान करने आई हुई थी कि मुझे चारों ओर फैली हुई एक परम दिव्य सुगन्धि सूँघने को मिली। मैं इधर उधर सुगन्धि का कारण ढूँढने लगी, तो वहाँ एक साथी को साथ लिये स्नान करने आया हुआ एक परम सुन्दर ऋषि बालक दिखाई दिया, जिसने अपने कान में एक कुसुममंजरी पहन रखी थी। सयम रखते हुए भी मैं अपने को न रोक सकी और तत्काल उस पर मोहित हो गई। ऋषिकुमार के साथी से जब मैंने उसका परिचय एव कुसुम-मजरी के बारे में पूछा, तो उसने उत्तर दिया—"श्वेतकेतु नाम के एक महर्षि हैं। एक दिन वे पूजार्थ गगा से पुण्डरीक तोड़ रहे थे कि लक्ष्मी ने उन्हें देख लिया। वह उन पर अनुरक्त हो गई। उनके साथ उसका मानसिक सभोग हो गया जिससे उसके एक पुत्र हुआ। लक्ष्मी पुत्र को महर्षि के पास छोड़कर चल दी। पिता ने पुत्र का नाम पुण्डरीक रखा। वही यह नवयुवक है। इसके कान में पहनी कुसुम मजरी पारिजात वृक्ष की है, जो इसे नन्दन वन की वनदेवी ने भेट की है। मैं इसका सखा कपिञ्जल हूँ।" ऋषि-बालक ने मजरी उतार कर मेरे कान में पहना दी। काम जनित प्रमादवश उसके हाथ की रुद्राक्षमाला गिर पड़ी, जिसे उठाकर मैंने अपने गले में डाल दिया। इतने में मुझे ढूँढती हुई मेरी माँ आ पहुँची और मुझे साथ घर ले गई, परन्तु मुझे चैन क्यों हो। दूसरे ही दिन अपनी सखी तरलिका को साथ लिया और स्वय प्रियतम को मिलने चली, तो वहाँ मै अभागिन क्या देखती हूँ कि उनका सखा कपिञ्जल बिलख-बिलख कर रो रहा है। पूछा तो पता चला कि पुण्डरीक काम-वेदना न सह सकने के कारण दम तोड़ बैठा है। सुनते ही मैं वज्राहत-सी हो गई। मैं खूब रोई-पीटी। अन्त में चिता बनाने के लिये तरलिका को कह ही रही थी कि इतने मे क्या हुआ कि सहसा चन्द्र-मण्डल से एक विशाल दिव्य पुरुष नीचे उतरा और पुण्डरीक का मृत देह ऊपर ले जाते हुए मुझे सम्बोधित करके बोला—"महाश्वेता, तुम प्राण मत त्यागो। तुम्हारा अपने प्रियतम से पुनर्मिलन हो जायगा।" कपिञ्जल भी अपने सखा के मृत देह के पीछे-पीछे उस महापुरुष के साथ आकाश में उड़ गया। तब से मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर प्रिय मिलन की आशा में यहाँ तापसी का जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी करुण कहानी है।"

चन्द्रापीड़ ने जब तरलिका के सम्बन्ध मे पूछा कि वह कहाँ गई है, तो महाश्वेता बोली—"उसे मैंने अपनी अभिन्नहृदय सखी कादम्बरी के पास उसे समझाने-बुझाने भेज रखा है। वह गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है। मेरी करुण दशा देखकर उसने भी तब तक अपना विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर रखी है जब तक कि मेरा अपने प्रियतम से पुनर्मिलन नहीं हो जाता।"

इतने मे रात हो चुकी थी। महाश्वेता को नींद ने अपनी गोद की शरण दे दी। चन्द्रापीड़ भी वहीं पत्तों की शय्या पर सो गया। प्रात-काल हुआ, तो तरलिका और कादम्बरी

का गन्धर्वसेवक केयूरक यह कहने को आ गया कि कादम्बरी नहीं मान रही है। महाश्वेता ने अब स्वय जाना ठीक समझा। वह चित्ररथ का राज्य दिखाने चन्द्रापीड़ को भी साथ में हेमकूट ले गई। उसने वहाँ कादम्बरी से भी उसका परिचय करा दिया। परस्पर देखते ही आँखें चार हो गईं। चन्द्रापीड़ को कादम्बरी के क्रीडा पर्वत स्थित प्रासाद में ठहराया गया, जहाँ वह दो तीन दिन रहा। इस बीच कादम्बरी ने उसे एक अमूल्य हार का उपहार भेजा। दोनों एक दूसरे को अपना अपना हृदय दे चुके थे। बाद में चन्द्रापीड़ महाश्वेता के कुटीर मे लौटा, तो वहाँ उसने अपनी खोज में आये हुए अपने सैनिकों को पाया। दूसरे दिन केयूरक आया और कादम्बरी की तरफ से भेजा हुआ पान का बीड़ा और हार भी लाया, जिसे चन्द्रापीड़ वहीं भूल गया था। उसने कादम्बरी की मदन व्यथा से राजकुमार को अवगत कराया, तो वह अपनी सेविका पत्रलेखा को साथ लेकर फिर हेमकूट चला गया और कादम्बरी के आग्रह पर पत्रलेखा को वहीं छोड़कर शीघ्र अपने शिविर में वापस आ गया। वहाँ उसे सन्देश मिला कि राजा तारापीड़ उसे और वैशम्पायन को शीघ्र घर लौटा हुआ देखना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें घर से निकले बड़ा समय बीत गया है। तदनुसार दोनों कुमार घर के लिये प्रस्थित हुए, किन्तु अपने सेनापति के लड़के मेघनाद को वहीं छोड़ गये कि वह हेमकूट से वापस आने पर पत्रलेखा को सकुशल घर लिवा लाये। चन्द्रापीड़ ने कादम्बरी और महाश्वेता को अपना भाव-भीना विदाई सन्देश भी भेजा और उनसे फिर भेंट होने की आशा भी व्यक्त की। स्वंय तो राजकुमार चन्द्रापीड़ कुछ चुने हुए अश्वारोहियों के साथ बड़ी द्रुतगति से आगे आगे चल पड़ा और वैशम्पायन को कह गया कि वह धीरे-धीरे सेना के साथ आता रहे। मार्ग में चन्द्रापीड़ ने रात एक चण्डिकायतन मे काटी और दूसरे दिन शीघ्र उज्जयिनी जा पहुँचा।

दिग्विजय से चिरकाल बाद घर आए पुत्र का माता पिता ने हार्दिक स्वागत किया और उसका सिर चूमा। बाद में चन्द्रापीड़ शुकनास और मनोरमा के यहाँ भी गया और उनका अभिवादन किया। अब चन्द्रापीड़ पत्रलेखा के आने की प्रतीक्षा करने लगा। जब वह आ गई, तो उसने राजकुमार को कादम्बरी की उत्कट मदन व्यथा का समाचार सुनाया और यह भी कहा कि उसने कादम्बरी को वचन दे दिया है कि वह उसके प्रियतम को शीघ्र उसके पास ले आयगी।

[पूर्वार्ध समाप्त]

बाण की उक्त कादम्बरी-कथा इस तरह चल ही रही थी कि इसी बीच कलाकार को मृत्यु का क्रूर हाथ अपनी ओर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ने लगा। किंवदन्ती है कि अपनी कथा को अधूरी देखकर बाण को बड़ा दु:ख हो रहा था। शान्ति से प्राण नहीं निकल रहे थे। पुत्र पिता की अन्तर्व्यथा को भाँप गए। आश्वासन दिलाया कि उनकी कृति अधूरी नहीं रहने दी जायगी, किन्तु मुमूर्षु को विश्वास नहीं आ रहा था। उसने एतदर्थ पुत्रों[1] की योग्यता देखनी चाही। घर के

बाण मृत्यु-शय्या पर

1. बाण के अन्य पुत्रों का अभी पता नहीं चला है।

आँगन मे एक सूखा वृक्ष खड़ा था। पिता ने बड़े पुत्र से उसका वर्णन करने को कहा, तो वह झट वर्णन कर बैठा—"शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे"। शुष्क वृक्ष की तरह पुत्र की भाषा को भी शुष्क देखकर बाण के प्राण भी निराशा में शुष्क होने लगे। इतने में झट छोटा पुत्र भूषणभट्ट वर्णन कर बैठा—"नीरसतरुरिह विलसति पुरत."। सुनते ही मरणासन्न पिता के प्राणों में आशा की सरसता आ गई। उन्होंने इस आशा के साथ कि 'इसके हाथों मेरी अधूरी कथा अवश्य पूरी हो जायगी' शान्ति से प्राण त्याग दिए।

उत्तरार्धकार भूषणभट्ट पिता की अधूरी लिखी कहानी को देखकर उनके पुत्र भूषणभट्ट ही क्या—समस्त सस्कृत जगत् को बड़ा दुख हो रहा था। योग्य पिता के योग्य पुत्र ने कथा-प्रबन्ध को पूरा करने का निश्चय किया—

"याते दिव पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्ध.।
दु.ख सता तदसमाप्तिकृत विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥"

आश्चर्य तो यह कि कथा की टूटी हुई शृखला को भूषण भट्ट ने ऐसी निपुणता से जोड़ा कि दोनों भाग बिलकुल एकाकार और सन्तुलित हो गए हैं। पाठकों को कठिनता से पता चलेगा कि उत्तरार्ध बाण का नहीं, किसी और का ही है। दोनों भागों मे हमें एक-जैसा सविधान, एक-जैसी शैली और एक-जैसी अभिव्यक्ति मिलती है। उत्तरार्ध में केवल भाषा ही भूषण भट्ट की है, शेष सारा कलेवर बाण का ही है, जिसे उत्तरार्धकार ने स्वय स्वीकार किया है :—

"बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोष तान्येव तस्य तनयेन तु सह्वृतानि ॥"

साहित्यक्षेत्र में पिता-पुत्र का ऐसा सम्मिलित व्यक्तित्व बहुत कम देखने में आता है। इसकी सस्कृत जगत् पर जो धाक जमी, वह धनपाल ने [१००० ई०] अपनी 'तिलकमञ्जरी' में इस तरह अभिव्यक्त कर रखी है—

"केवलोऽपि स्फुरन् बाण· करोति विमदान् कवीन्।
किं पुन· क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः ॥"

कुछ पाश्चात्त्य आलोचकों का कथन है कि भूषण भट्ट कथा को अपने पिता के कला स्तर तक नहीं पहुँचा पाया है। वह न बाण-जैसी कल्पना की उड़ानें भर सका है, न बाण-जैसा प्रकृति के चराचर तत्त्वों का सूक्ष्म वीक्षण तथा बिम्बग्राही चित्रण कर सका है और नही शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिया हुआ अथवा कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक को दिया हुआ उदात्त प्रबोधन उद्भावित कर सका है। हम मानते हैं कि उनके कथन में कुछ सच्चाई है, किन्तु वे यह क्यों भूल जाते हैं कि पिता पिता ही होता है, और पुत्र पुत्र ही। पिता में कला का पूरा निखार और परिपक्वता आ जाने के बाद ही उसने कादम्बरी लिखी है, प्रारम्भ में नहीं। बाण की प्रारम्भिक रचना हर्षचरित में ही कला का कौन-सा निखार आ पाया है? सभी कलाकार

अपनी प्रारम्भिक अवस्था की रचनाओं में कुछ न कुछ त्रुटि रखे हुए होते ही हैं। भूषण भट्ट ही उसका अपवाद क्यों ? वह स्वय स्वीकार करता है :—

'दुःख सता तदसमाप्तिकृत विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्व दर्पात् ।'

अर्थात् उसने पिता के प्रति कर्तव्य निभाने की भावना से कथा को पूरा किया है, कवित्व के दर्प से नहीं। इसलिए—जैसा हम पीछे कह आए हैं, भूषण ने जो कुछ लिखा है, अच्छा लिखा है। वह सर्वथा स्तुत्य है।

कादम्बरी के उत्तरार्ध का साराश

कादम्बरी विरह-वेदना से मरी जा रही थी। पत्रलेखा ने लौटकर और बाद मे केयूरक ने भी आकर चन्द्रापीड को उसकी दुरवस्था का सारा हाल कह सुनाया। बेचारा चन्द्रापीड बड़ा दुःखी हुआ और असमंजस में पड़ गया कि किस तरह वह फिर हेमकूट अपनी प्रियतमा के पास जावे। अपने जिस एकमात्र अभिन्न हृदय वैशम्पायन से वह परामर्श किया करता था, वह भी अभी वापस नहीं पहुँचा था। इधर देखो तो घर मे राजा तारापीड और रानी विलासवती अपने युवराज के विवाह की बात कहीं अन्यत्र छेड़े हुए थे। अन्त में चन्द्रापीड को एक उपाय सूझा। उसने माता-पिता से पीछे छूटे हुए वैशम्पायन को लिवा लाने की आज्ञा माँग ली और चल पड़ा। जब वह शिविर में पहुँचा, तो सेना के साथ वैशम्पायन को न देखकर बड़ा चिन्तित हुआ। मेघनाद को पूछने पर पता लगा कि अच्छोद सरोवर के पास पहुँचकर वैशम्पायन का मन ऐसा बदला कि उसने वहाँ से हिलने तक का नाम नहीं लिया और वहीं रम गया।

अब चन्द्रापीड के लिए स्वय अच्छोद सर जाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न रहा। वह जब सरोवर पहुँचा, तो क्या देखता है कि वैशम्पायन वहाँ कहीं नहीं, महाश्वेता फूट फूट कर रो रही है। पूछा तो वह बोली—'यहाँ एक नव युवक आया था। वह मुझ पर प्रेमासक्त हो रहा था। मेरे बार-बार रोकने पर भी जब नहीं माना, तो मैंने क्रोध मे आकर उसे शाप दे दिया—'जा, तोता बन जा', परन्तु ज्यों ही मुझे मालूम हुआ कि वह तुम्हारा अन्तरङ्ग सखा वैशम्पायन था, तब से मुझे बड़ा दुःख हो रहा है कि मुझ पापिन ने यह क्या कर दिया। अपने सखा का इस तरह अन्त सुनते ही चन्द्रापीड का हृदय फट गया और वह वहीं मिट्टी का ढेर बन गया। इतने मे कादम्बरी पत्रलेखा को साथ लेकर अपने प्रियतम (चन्द्रापीड) से मिलने वहाँ आई, तो उसे मृत देखकर वज्राहत-सी मूर्छित हो गिर पड़ी। चेतना आने पर वह प्रियतम के देह के साथ भस्म होने जा रही थी कि चन्द्रापीड के देह से चन्द्रमा के समान एक ज्योति निकली और यह आकाश-वाणी हुई। "गन्धर्वराज पुत्री, तुम चन्द्रापीड के शरीर को सुरक्षित रखो। पुण्डरीक का शरीर भी चन्द्रलोक में सुरक्षित है। तुम दोनों बालाओं का अपने अपने प्रियतमों से पुनर्मिलन होगा।" यह देखकर और सुनकर सब चकित रह गए। थोड़े ही समय बाद दूसरा आश्चर्य यह हुआ कि पत्रलेखा इन्द्रायुध को साथ ले अच्छोद सर में छलाग मार बैठी और बाद को सरोवर में से कपिञ्जल निकल उठा।

कपिञ्जल बोला—"महाश्वेता, जब पुण्डरीक के शव को लेकर जाने वाले उस दिव्य महापुरुष के पीछे पीछे मैं चलता गया, तो चन्द्रलोक पहुँच गया। वहाँ उस पुरुष ने मुझे बताया—'कपिञ्जल, मैं चन्द्रमा हूँ। विरह व्यथित पुण्डरीक को मेरी किरणों से जब और अधिक वेदना पहुँची, तो उसने मुझे शाप दे दिया—"तू भी मर्त्यलोक में जायेगा और मेरी तरह प्रेम में फँसकर अपनी प्रियतमा के साथ मिलन होने से पूर्व ही मर जाएगा।" यह शाप सुनकर मुझे भी क्रोध आ गया कि इसने बिना अपराध मुझे शाप दिया है, इसलिए मैंने भी उसे प्रतिशाप दे दिया—'पुण्डरीक, तुझे भी मेरे साथ ही मर्त्यलोक मे सुख दु ख भोगना पड़ेगा।' महाश्वेता के शोक को देखकर मैं पुण्डरीक का शरीर यहाँ ले आया हूँ। यह रहस्य खोलकर तब चन्द्रमा ने मुझे कहा—'तुम जाओ और शीघ्र ही पुण्डरीक के पिता श्वेतकेतु को इस बात से अवगत करा दो।" इस तरह चन्द्रमा के निर्देश पर जब मैं आकाश-मार्ग से श्वेत-केतु के पास जा रहा था, तो प्रमाद-वश रास्ते में एक ऋषि से टकरा गया। उसने क्रोध मे आकर मुझे शाप दे दिया—'जा, अश्व-योनि को प्राप्त हो जा।' अनुनय-विनय करने पर उसने कहा—"शाप तो व्यर्थ नहीं जा सकता, पर हाँ, तेरा जन्म उच्च अश्वजाति मे होगा। राजा तारापीड़ के घर मे उसके पुत्र चन्द्रापीड़ के रूप में चन्द्रमा जन्म लेगा, तुम्हारा मित्र पुण्डरीक मत्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन होगा, तू राजकुमार चन्द्रापीड़ का वाहन (अश्व) बनेगा और उसकी मृत्यु के बाद सरोवर में स्नान करके तू अपने रूप मे आ जाएगा।" शाप के बाद आकाश से मै समुद्र मे गिर गया और इन्द्रायुध बनकर राजकुमार के साथ रहा और उन्हे यहाँ तक लाया। महाश्वेता! तुम से प्रेम याचना करनेवाला वैशम्पायन वास्तव में पुण्डरीक ही था।"

यह सुनकर महाश्वेता को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। कपिञ्जल ने उसे समझाया और सुझाव दिया कि वह अपनी प्रेम साधना जारी रखे। भविष्यवाणी अवश्य सत्य होगी। इतने मे कादम्बरी ने कपिञ्जल से पत्रलेखा के बारे मे भी कुछ जानना चाहा, तो वह कुछ न बता सका और श्वेतकेतु के पास चल दिया।

उधर उज्जयिनी मे जब राजा तारापीड़ और शुकनास को अपने पुत्रों का यह समाचार मिला तो वे सबके सब रोते-पीटते अच्छोद सर पर आ पहुँचे, जहाँ चन्द्रापीड़ का मृत शरीर पड़ा हुआ था। प्रतीक्षा करने के लिए कादम्बरी और महाश्वेता के साथ वे भी वहीं आश्रम में डेरा डाले पड़े हुए हैं।"

इतना वृत्तान्त कह चुकने के बाद अन्त में महर्षि जाबालि ने तोते के बच्चे के सम्बन्ध में उत्सुक आश्रमवासियों को कहा—'यह पिछले जन्म में वैशम्पायन था, जिसे महाश्वेता ने शुक योनि मे जाने का शाप दे रखा है।

जाबालि से अपने पूर्व जन्म का हाल सुनते ही तोते को सब कुछ याद आ गया। उसने महर्षि से चन्द्रापीड़ के विषय मे जानना चाहा, तो वे बोले—"धीरज रखो। जब तुम्हारे पख पूरी तरह मजबूत हो जाएँगे, तब पूछना।" इतना कहकर जाबालि चुप हो गए।

जाबालि द्वारा कहा अपना वृत्तान्त सुनाकर तोता शूद्रक को बोला—"महाराज, हारीत के संरक्षण मे मेरा पालन-पोषण आश्रम में चलता रहा। इस बीच श्वेतकेतु के आश्रम से मेरी

खोज करते करते कपिञ्जल वहाँ आ पहुँचा। वह श्वेतकेतु का यह सन्देश लाया—'मुझे योग बल से सब कुछ पता चल गया है कि तुम सबने क्या क्या किया है और किस तरह तुम शुक योनि में आए हो। तुम तब तक जाबालि आश्रम मे ही रहो। मैं तुम्हारी शापोन्मुक्ति के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ।' इतना कहकर कपिञ्जल तो वापस चला गया, परन्तु मुझे चैन क्यो होता। पख मजबूत हुए कि महाश्वेता आदि को देखने के लिए उत्कट अभिलाषा से उत्तर दिशा की ओर उड़ गया। मार्ग मे एक चाण्डाल कन्या के कहने पर किसी व्याध ने थककर सोए हुए मुझे पकड़ लिया और उसके हाथ पकड़ा दिया। लड़की ने मुझे पिंजरे मे रखा और आज आपकी सेवा मे उपहार-स्वरूप भेंट कर दिया है। मुझे पता नहीं कि चाण्डाल कन्या कौन है और क्यो वह मुझे यहाँ लाई है।"

अपना वृत्तान्त सुनाकर शुक चुप हो गया। राजा शूद्रक इन सब बातों को जानने के लिए उत्सुक हो उठे। उन्होने चाण्डाल कन्या को बुलाया और पूछा कि यह सब मामला क्या है। वह बोली—'महाराज, आप चन्द्रापीड़ हैं। यह तोता आपका मित्र पुण्डरीक है। मैं स्वय लक्ष्मी हूँ। मेरा काम था तुम दोनों मित्रों को मिलाना, सो मैंने मिला दिया। तुम अब अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लोगे।' इतना कहकर लक्ष्मी आकाश मे उड़ गई। बाद मे शूद्रक और वैशम्पायन दोनों अपने अपने पूर्व रूप में आ गए और अपनी-अपनी प्रियतमाओं से मिल गए। दिशायें प्रसन्न हो गई। चारों तरफ आनन्दोल्लास छा गया। चन्द्रापीड़ उज्जयिनी के राजा बने और पुण्डरीक उनके मत्री। जीवन आनन्दमय हो गया।

प्रसग वश एक दिन कादम्बरी अपने चन्द्रावतार प्रियतम को पूछ बैठी—'चन्द्रदेव! सब कुछ ठीक हो गया है, परन्तु पत्रलेखा का क्या हुआ? वह गुत्थी अब तक नहीं खुली है।' चन्द्रापीड़ बोला—"शाप के कारण मैं भू पर अवतरित हुआ, तो रोहिणी को बड़ा दु ख हो रहा था, इसलिए मेरी सेवा करने के लिए वह पत्रलेखा के रूप मे अवतरित हुई। अब मैंने उसे अपने लोक मे भेज दिया है।"

चन्द्रापीड़ और पुण्डरीक अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ कभी उज्जयिनी का आनन्द लूटते, कभी हेमकूट का, कभी अच्छोद सर जाते, तो कभी चन्द्रलोक। इस तरह वे आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगे।

कादम्बरी में आध्यात्मिक सकेत

सूफी हिन्दी कवियो की रामानी प्रेम कहानियाँ जिस तरह रहस्यवाद का पुट लिये हुए रहती हैं, उसी तरह जायसी के 'पद्मावत' अथवा प्रसाद की 'कामायनी' के समान बाण की कादम्बरी भी अपने मानवी धरातल पर खड़ी होती हुई अध्यात्म-वाद की कहानी भी हो सकती है। जायसी की पद्मावती की तरह बाण की कादम्बरी परम सौन्दर्यमयी परा ज्योति है। इसकी प्राप्ति में लगा हुआ चन्द्रापीड जीव है। वहाँ तक पहुँचाने वाला इन्द्रायुध मन का प्रतीक है। महाश्वेता शुद्ध प्रज्ञा है और पुण्डरीक प्रज्ञा को साथ रखने वाला विज्ञान तत्त्व है। गीताकार के अनुसार चन्द्रापीड़ की तरह कोई भी जीव—'अनेकजन्म

ससिद्ध. ततो याति परा गतिम् ।' श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल ने कादम्बरी के सभी पात्रों के पीछे आध्यात्मिक प्रतीकों का विस्तार के साथ स्पष्टीकरण कर रखा है ।[1]

जब कोई कवि, कलाकार या शिल्पी अपना कला-भवन निर्माण करने जाता है, तो वह उसके लिए कुछ प्रारम्भिक आधार और सामग्री अवश्य एकत्रित कर लेता है । कालिदास, भवभूति आदि ने यह किया । बाण ने भी यह किया है । उन्होंने अपनी इस कृति के लिए 'बृहत्कथा' को अपना आधार चुना है । गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' पैशाची भाषा मे लिखा हुआ अनेक कथाओं का आकर-ग्रन्थ है । बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक श्लोकों मे इसकी प्रशसा कर रखी है । पर यह ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं होता । बाण के काल में उपलब्ध था । आजकल उसके तीन सार-ग्रन्थ अवश्य मिलते हैं । एक है सोमदेव लिखित 'कथा-सरित्सागर', दूसरा है क्षेमेन्द्र लिखित 'बृहत्कथामजरी' और तीसरा है बुधस्वामी कृत 'बृहत्कथा-श्लोकसग्रह' । बाणने अपनी कादम्बरीके लिए 'बृहत्कथा'—स्थित जिस सुमना राजा की कथा को अपना आधार बनाया, वह 'कथा-सरित्सागर' के लम्बक १०, तरग १३ और श्लोक २२-१७९ मे सगृहीत है । उसका साराश यह है—

कादम्बरी का मूल-स्रोत

एक काञ्चनपुरी नगरी थी । वहाँ सुमना राजा राज्य करता था । एक दिन सभा में बैठे हुए उसके समक्ष निषादराज कन्या मुक्तालता एक तोता लाई । पूछने पर तोना राजा को अपनी कहानी सुनाने लगा—"महाराज, हिमालय में एक रोहिणी वृक्ष था, जहाँ मै और मेरे माँ बाप रहा करते थे । एक दिन कोई शबर वृक्ष वासी सभी तोतों को मार ले गया । मैं किसी तरह बचकर किसी दूसरे पेड़ के नीचे जाकर छिप गया था । दूसरे दिन मारीच नामक ऋषि मुझे अपने आश्रम में ले गये । कुलपति पुलस्त्य मुस्कराकर मेरे विषय में आश्रम-वासियों को सुनाने लगे कि यह तोता किस तरह पिछले जन्म में ऋषि था और बाद मे शाप वश शुकयोनि में जा पड़ा—

'रत्नाकर नगर मे ज्योतिष्प्रभ नाम का राजा राज्य करता था । उसके पुत्र का नाम सोमप्रभ था । युवा होने पर राजा ने उसको युवराज बना दिया और मत्री प्रभाकर के पुत्र प्रियकर को उसका मत्री । इसी बीच एक दिन स्वर्ग से मातलि इन्द्र की तरफ से उच्चश्रवा के पुत्र आशुश्रवा घोड़ेको युवराज सोमप्रभ के लिये भेट ले आया । सोमप्रभ आशुश्रवा पर चढ़कर सेना के साथ दिग्विजय के लिये चल पड़ा । विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ वह जब अन्त में हिमालय पहुँचा, तो वहाँ उसने एक किन्नर देखा और उसका पीछा करते करते एक सरोवर के तट पर जा पहुँचा । वहाँ उसे शिवलिंग के सामने स्तुति-गान करती हुई एक सुन्दरी दिखाई दी । उसका परिचय पूछा, तो उसने अपना नाम मनोरथप्रभा और पिता का विद्याधर-राज पद्मकूट बताया । उस लड़की ने आगे अपना वृत्तान्त भी कह सुनाया कि किस तरह उसने एक दिन वहाँ अपने एक मित्र सहित श्री के मानसपुत्र रश्मिमान् 'नामक ऋषि-

१ कादम्बरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन) पृ० ३५०-३८० ।

कुमार को देखा और किस तरह उनका परस्पर प्रेम हो गया। जब घर चली गई, तो बाद में उसका मित्र उसके पास यह समाचार लाया कि मदनव्यथित रश्मिमान् उसके विना तड़प रहा है। सुनते ही मनोरथप्रभा जब तक वहाँ पहुँच सकी तब तक देखो तो उसके प्राण निकल चुके थे। शोक पीड़ित वह भस्म होने जा रही थी कि आकाश-वाणी हुई कि तुम ऐसा मत करो। तुम्हारा प्रियतम तुम्हें मिल जायगा। पुनर्मिलन की आशा में वह अपनी सखी के साथ सरोवर के तीर पर शिवोपासना में समय बिता रही है।

मनोरथप्रभा जब अपना वृत्तान्त सुना चुकी, तो सोमप्रभ ने उसको पूछा—"तुम्हारी सखी कहाँ चली गई है?" वह बोली—"मैने उसे अपनी दूसरी सखी विद्याधराधिप सिंह विक्रम की कन्या मकरन्दिका के पास यह समझाने भेज रखा है कि वह मेरे दु ख मे अपना भी विवाह न करने का हठ छोड़ दे और अपना विवाह करा ले। बाद को मनोरथप्रभा विद्याधरो का देश देखने को उत्सुक हुए सोमप्रभ को भी साथ लेकर स्वय मकरन्दिका के पास चल पड़ी। जाते ही मकरन्दिका और सोमप्रभ का परस्पर प्रेम हो गया। गन्धर्वाधिप को उनके प्रेम का पता चल गया। वह उनका विवाह-दिवस ठहरा रहा था, किन्तु सोमप्रभ ने विवाह से पूर्व अपनी सेना से मिलने की इच्छा प्रकट की और मनोरथप्रभा के साथ वह सरोवर पर लौट आया। वहाँ उनके पिता का सन्देश आया हुआ था कि वह वापस चला आवे। वह घर चला गया। मकरन्दिका उसके विरह मे पागल हो उठी। माता पिता के समझाने पर भी जब वह नहीं मानी, तो उन्होंने उसे शाप दे दिया—'जा, निषादकन्या बन जा।' दु ख के मारे माता-पिता भी मर गये। पिता तोता बना और माता सूकरी।

इतना वृत्तान्त सुनाकर पुलस्त्य फिर बोले—'इस तोते को पूर्व जन्म मे किये हुए तप के प्रभाव से पूर्व जन्म का प्राप्त सारा ज्ञान याद है और राजा के समक्ष कह डालने के बाद यह मुक्त हो जायेगा। सोमप्रभ उसकी पुत्री मकरन्दिका को प्राप्त कर लेगा, जो निषाद कन्या बनी हुई है। सोमप्रभ भी अपने माता पिता से मिलकर अब सरोवर पर अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये शिव की उपासना कर रहा है।'

इतना सुनाकर महर्षि पुलस्त्य चुप हो गये और तोते को अपने पूर्व जन्म की सभी बातें याद आ गई। कुछ समय बाद जब तोता पलकर आश्रम में बड़ा हो गया, तो एक दिन इधर-उधर उड़ता हुआ एक निषाद के हाथ पकड़ा गया और राजा के समक्ष लाया गया।

इस तरह ज्यों ही तोते ने अपनी कहानी समाप्त की, राजा सुमना का हृदय प्रेम से उद्वेलित हो उठा। इस बीच भक्ति से प्रसन्न होकर शिव ने सोमप्रभ और मनोरथप्रभा को पृथक्-पृथक् स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा दी कि वे राजा सुमना के यहाँ चले जायँ, साथ ही उन्हें यह भी आश्वासन दिया कि उन्हें अपना अपना प्रेम पात्र मिल जायगा, जो इस समय मुक्तालता और राजा सुमना के रूप मे हैं और उन्हें देखते ही वे अपने पूर्व जन्म को याद कर लेंगे। अत॰ मनोरथप्रभा एव सोमप्रभ दोनों तत्काल सुमना के राजदरबार में चले गये। ज्यों ही मकरन्दिका ने सोमप्रभ को देखा, वह शापोन्मुक्त होकर अपना दिव्य विद्याधरी रूप

ग्रहण कर बैठी और तत्काल सोमप्रभ के हृदय से चिपट गई। मनोरथप्रभा को देखते ही राजा सुमना भी अपना पूर्व जन्म याद कर बैठा और रश्मिमान् के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। इस तरह दोनो प्रेमी युगलों का पुनर्मिलन हो गया। रश्मिमान् मनोरथप्रभा के साथ अपने आश्रम मे चला गया और सोमप्रभ ने मकरन्दिका के साथ अपनी नगरी का मार्ग पकड़ा। शुक भी अपना पक्षि देह छोड़ कर तपस्या के फलस्वरूप दिव्य धाम को चला गया।

बाण-द्वारा कथा-ककाल की प्राण-प्रतिष्ठा

इसमें सन्देह नहीं कि बाण ने अपनी कादम्बरी के लिये गुणाढ्य की बृहत्कथा से उपर्युक्त मूल लिया है। थोड़ा-सा कथानक इधर उधर करके पात्र भी अन्य नामों मे प्राय· वही रखे हैं। लेकिन अपने मौलिक रूप में वे सभी पात्र निरे निर्जीव-निष्प्राण ककाल थे। उनकी कहानी का महत्त्व दादी-नानी द्वारा अपने नाती-पोतो का मन बहलाव करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उसमे विद्वानो के लिये कुछ चीज नहीं थी। परन्तु बाण ने अपनी कला तूलिका से उनमें ऐसा अनोखा रग चढ़ाया कि वे कुछ के कुछ हो गये, अपनी कल्पनाशक्ति से उनमे रुधिर-मास भरकर ऐसी प्राणवत्ता फूँकी कि सारी की सारी नयी ही सृष्टि बन गई। क्या प्रधान पात्र चन्द्रापीड, कादम्बरी, पुण्डरीक और महाश्वेता तथा क्या गौण पात्र तारापीड, शुकनास, वैशम्पायन, विलासवती आदि— सभी मे बाण ने ऐसा व्यक्तित्व उभारा है कि सब सजीव हो उठे। निर्जीव को प्राणोच्छ्वसित करना ही तो कला कहलाती है। बाण ने भी यही किया और कादम्बरी को वे हमेशा के लिये अमर बना गए।

बाण का कला-वैशिष्ट्य

बाण के कला वैशिष्ट्य पर कुछ भी लिखने से पूर्व हम पाठकों को यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि बाण की 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी'—दोनों शैली-प्रधान कृतियाँ हैं, घटना प्रधान नहीं। शैली प्रधान कृति म घटना को उतनी महत्त्व नहीं दिया जाता जितना वर्णना को। इस वर्णनाशैली की उद्भावना बाण से बहुत समय पहले हो चुकी थी। इसी को अलकृत शैली भी कहते हैं। 'इसमे प्रतिपाद्य विषय की अपेक्षा प्रतिपादन-प्रकार को महत्त्व दिया जाता था और कथा का प्रधान अवलम्बन आत्मा नहीं, प्रत्युत श्रोत्रेन्द्रियाँ ही बन गई थीं।' इस शैली में काव्य का कला पक्ष भाव पक्ष पर छाया हुआ रहता है। इसके प्रमाण हमारे पास महाक्षत्रप रुद्रदामन् (१५० ई०) आदि के शिला लेख हैं, जो काव्यमयी अलकृत शैली मे लिखे हुए हैं। उदाहरण के लिये समुद्रगुप्त—(३६० ई०) सम्बन्धी शिलालेख के गद्य का यह छोटा सा नमूना देखिये—

'तस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।'

गद्यकारों के बाद यही अलकृत शैली माघ हर्ष आदि कवियों ने अपने महाकाव्यों और भवभूति आदि नाट्यकारों ने अपने नाट्यक्षेत्र म भी अपना ली।

बाण ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक श्लोकों मे से एक में विभिन्न देशों की शैली के सम्बन्ध में स्वय लिख रखा है—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम् ॥

अर्थात् उत्तर भारत में श्लेष मुखेन प्रतिपादन होता है, पश्चिम में केवल अर्थमात्र का अभिधान रहता है, दक्षिण मे उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग होता है और पूर्व मे शब्दाडम्बर ही रहता है। बाण ने इन चार विभिन्न प्रतिपादन प्रकारों का समन्वय करना चाहा और वे अपनी एक समन्वित शैली बना बैठे। इस समन्वित शैली को साहित्य शास्त्री पाञ्चाली रीति कहा करते हैं—

"शब्दार्थयो॰ समो गुम्फ॰ पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥"

शीलाभट्टारिका के गद्य के सम्बन्ध मे ता अभी कुछ पता नहीं चल रहा है, पर 'बाणोक्तियाँ' हमारे पास 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' के रूप में मौजूद हैं। भाषा की पाञ्चाली रीति मे शब्द और अर्थ का समान गुम्फ—शब्दार्थों का परस्पर सन्तुलन—रहता है। अर्थ अथवा वर्ण्य विषय यदि उदात्त, कठोर और ओजस्वी हो, तो भाषा में भी ओज और कठोरता लाना अनिवार्य हो जाता है। ओज का स्वरूप है—"ओज. समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम् ।" फिर तो भाषा में दीर्घ दीर्घ समास चलने लगते हैं, उसमें शब्दाडम्बर आ जाता है, अलकारों का ताँता लग जाता है और अप्रसिद्ध एव कठिन कठिनतर शब्द प्रयोग में आने लग जाते हैं। ऐसी ओजस्विनी, शब्दाडम्बरी भाषा गौडी रीति के अन्तर्गत होती है। स्वभावत यह अलकृत शैली प्रयास-साध्य तथा कठिन होती है। बाण ने अपनी चाण्डाल-कन्या, उज्जयिनी, विन्ध्याटवी, पम्पासर, जाबालि आश्रम, इन्द्रायुध, राजद्वार और अच्छोद सरोवर आदि के वर्णन में यही विकटाक्षर बन्ध शैली अपनाई है। यहाँ श्लेष, श्लिष्टोपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसख्या आदि अलकार पंक्ति-बद्ध खड़े हुए मिलते हैं। बहिर्जगत् के वे सभी वर्णन इतने विस्तृत, इतने सूक्ष्म और इतने बिम्बग्राही बने हुए हैं कि उनके सम्बन्ध मे ज्ञातव्य कुछ भी शेष नहीं रह जाता। क्या वन और क्या वनसम्पदा, क्या राजदरबार और क्या राजसी ठाट बाट, क्या नगर और क्या नागरिक जीवन, क्या मुनि आश्रम और क्या मुनि लोगों की तपोमय वृत्ति, क्या सन्ध्या और क्या रात—साराश यह कि सभी कुछ बाह्य जगत् चित्र-पट की तरह हमारे मानस-चक्षु के आगे 'प्रत्यक्षायमाण' हो जाता है। बाण जैसा इतना वैविध्यपूर्ण, सूक्ष्म विश्लेषण और चित्रण कोई अन्य कलाकार क्या कर सकेगा!

कुछ लोग, विशेषत पाश्चात्य आलोचक बाण के इन लम्बे-लम्बे, समास बहुल कठिन वर्णनों को भाषा का एक ऐसा जगल कहते हैं, जहाँ दुरूह क्लिष्ट समस्त शब्दों के रूप में भयकर हिंस्र जन्तु घूमते रहते हैं जिनसे पाठक बटोही बेचारा बहुत डर जाता है और घबराकर, ऊबकर बाहर निकलने को आतुर हो जाता है। वे इसे बाण का दोष बताते हैं। उनके इस कथन में कुछ सच्चाई भले ही हो, पर वे यह भूल जाते हैं कि कादम्बरी शैली-प्रधान रचना है और जैसा

कि हम पीछे सकेत कर आए हैं—उस समय गद्य काव्य की उत्कृष्टता मापने का यही एकमात्र मान दण्ड था। इसमे बाण का कोई दोष नहीं। वैसे हम देखते हैं कि बाण को अपने पाठकों की इस शिकायत का पहले ही से कुछ आभास था और इसीलिए वे सुबन्धु की तरह उन्हें जगलों मे ही भटकते रहने देना पसन्द नहीं करते थे। थोड़ी ही देर बाद वे अपने भीत-श्रान्त पाठक को जगल से बाहर निकालकर विश्राम के लिए सरस, हरित शाद्वल का निर्माण कर देते थे। वह शाद्वल होता है अन्तर्जगत्—मानव हृदय के कोमल मधुर भावों का सरस धरातल। वर्ण्य विषय कोमल मधुर होते ही फिर भाषा शैली भी बाण की कोमल मधुर हो जाती है। इसी को 'शब्दार्थयो. समो गुम्फ.' कहते हैं। समास सब समाप्त हो जाते हैं, होते भी हैं तो छोटे छोटे नितान्त सुबोध। भावों की तरह चित्रण भी स्वाभाविक, सरल सुबोध हो जाता है। यह वैदर्भी शैली होती है। बाण ने हृदय की मार्मिक भूमि—ज्ञान, प्रेम आदि मनोभावों—का विश्लेषण और चित्रण इसी सरल शैली मे किया है। उनका शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को और कपिञ्जल द्वारा श्वेतकेतु को दिया हुआ ज्ञानोपदेश, महाश्वेता का आत्ममनोव्यथा निवेदन आदि स्थल कितने सुन्दर, सरल, स्वाभाविक हैं। वास्तव में बाण की कादम्बरी का असली नवनीत इन्हीं मे छिपा मिलता है। नपे तुले शब्दों में उनके वाक्यों की सरल बनावट देखिए—

'[राजलक्ष्मी] न परिचय रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुलक्रममनुवर्तते, न शील पश्यति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते' [शुकनासोपदेश.]

"का वा सुखाशा साधुजन निन्दितेषु प्राकृतजन-बहुमतेषु विषयेषु भवत ? स खलु धर्म बुद्धया विषलता वन सिञ्चति, कुवलय मालेति निस्त्रिंशमालिङ्गति, कृष्णागुरु धूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति' मूढो य विषय भोगेषु सुख बुद्धिमारोपयति।"

[कपिञ्जल]

"प्रसीद, सकृदप्यालप, दर्शय भक्त वत्सलताम्, ईषदपि विलोकय, पूरय मे मनोरथम्। आर्ताऽस्मि, भक्ताऽस्मि, अनुरक्ताऽस्मि, अनाथाऽस्मि, बालाऽस्मि, अगतिकाऽस्मि, दु खिताऽस्मि।"

[महाश्वेता]

इस तरह बाण का अन्तर्जगत्—काव्य के भाव-पक्ष—का चित्रण भी उतना ही सूक्ष्म विविध और मार्मिक है जितना बहिर्जगत् का। प्रधान भाव कवि ने कादम्बरी में प्रेम—शृङ्गार—रखा है, जो अधिकतर अपने विप्रलम्भ रूप में है। प्रेम की जितनी भी दशायें—अन्तर्दशायें हुआ करती हैं, कोई भी अपनी अभिव्यक्ति से अछूती नहीं रही है। बाण का प्रेम बड़ा मर्यादित और शिष्ट है। जब कभी वह भौतिक वासना के रूप मे प्रकट होने लगा, कवि ने झट उसे शापादि द्वारा कुचल दिया। जैसे हम पीछे संकेत कर आए है, बाण का प्रेम तप, त्याग और वियोग की अपेक्षा रखता है और अपने भोग के लिए जन्म-जन्मान्तर तक की प्रतीक्षा माँगता है। यही प्रेम का आध्यात्मिक रूप कहलाता है। प्रेम के अतिरिक्त बाण की कृतियों में हम यथास्थान करुण, वीर, बीभत्स और अद्भुत आदि रसों की अभिव्यक्ति भी पाते हैं, जो बड़ी सशक्त एव हृदयस्पर्शी है। इस तरह बाण भाव जगत् के भी सिद्ध-हस्त चितेरे हैं, केवल बहिर्जगत् के ही नहीं।

हम देखते हैं कि कला क्षेत्र में जब कोई विभूति (जीनिअस) अवतरित होती है, तो वह अपने पूर्ववर्ती कला का फूल होती है और परवर्ती का बीज। बाण के सम्बन्ध मे यह बात पूरी घटती है। बाण की कृतियाँ काव्य की अलंकृतशैली मे पूर्ण विकसित, परिनिष्ठित—चरम प्रकर्ष मे पहुँची हुई—हैं, साथ ही भावी कलाकारों के लिए बीज—सृजन के साधन—देने वाली भी बनी हुई हैं। परवर्ती कला क्षेत्र मे पड़े हुए बाण के इस व्यापक प्रभाव को देखकर सस्कृत-जगत् में 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम्' यह लोकोक्ति ही चल पड़ी है। बाण के बाद समस्त काव्य बाण की जूठन है। बाण के बाद ऐसा कोई भी गद्यकार या पद्यकार नहीं निकला, जिसने कोई ऐसी नयी चीज लिखी हो, जिस पर बाण ने अपनी लेखनी न चला रखी हो। सब से पहले कादम्बरी के उत्तरार्ध को लिखनेवाले बाणपुत्र भूषणभट्ट को ले लें, जिसने स्वय स्वीकार कर रखा है—'गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाक्षराणि मन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभाव ।' बाण और सुबन्धुकी कृतियों मे कितनी ही जगह परस्पर शब्दतः और अर्थत. बड़ी समानता मिलती है। इसे देख लोगो का कहना है कि क्योंकि बाण ने अपने हर्षचरित मे 'वासवदत्ता' की प्रशसा कर रखी है, इसलिए वासवदत्ता कार सुबन्धु बाण का पूर्ववर्ती है, जिसको अपना आदर्श बनाकर बाण ने अपनी रचनाये की हैं। पर हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं। यह कभी नहीं हो सकता है कि बाण जैसा सिद्धहस्त कलाकार सुबन्धु को अपना आदर्श बनाकर चले और उसका अनुकरण करे। बाण ने स्वय इस तरह की साहित्यिक चोरी की बड़ी निन्दा कर रखी है—

बाण का परवर्ती प्रभाव

अन्य वर्ण परावृत्या बन्ध चिह्न निगूहनै ।
अनाख्यात सता मध्ये कविश्चोरो विभाव्यते ॥ हर्ष० ॥

इसलिए बाण द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' सुबन्धु की 'वासवदत्ता' नहीं है, प्रत्युत महाभाष्यकारादि द्वारा उल्लिखित दूसरी ही 'वासवदत्ता' है, जो 'हर्षचरित' की तरह आख्यायिका रही होगी न कि सुबन्धु-लिखित 'वासवदत्ता' की तरह कथा। अत स्पष्ट है कि सुबन्धु ने ही बाण की नकल की है। सुबन्धु के बाद दण्डी, त्रिविक्रम भट्ट, सोमदेव, सोड्ढल, अम्बिकादत्त व्यास आदि गद्यकारों ने बाण को अपना आदर्श बना रखा है, इसीलिए उनकी रचनाओं में बाण की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। हम विस्तार के भय से यहाँ उक्त सभी कलाकारों के तुलनात्मक अध्ययन मे नहीं जाना चाहते हैं। वस्तुत. गद्य-काव्य ही नहीं, परवर्ती पद्य-काव्य भी बाण की प्रेरणा से अनुप्राणित हैं। श्रीहर्ष के नैषध चरित' में नल के घोड़े पर बाण के इन्द्रायुध का, क्रीडा सर पर बाण के पम्पासर अथवा अच्छोद सर का, कुण्डनपुर पर बाण की उज्जयिनी का कितना प्रभाव है—यह सस्कृत-मनीषियों से छिपा नहीं है। इसलिए 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम्'—यह ठीक है।

सस्कृत-जगत् द्वारा बाण का मूल्यांकन

सस्कृत-जगत् ने अपने 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' और उसकी कला का क्या क्या मूल्याकन किया है—इस सम्बन्ध मे हम नीचे कुछ प्रसिद्ध कवियों एव आलोचकों की उक्तियों को दे देने का लोभ सवरण नहीं कर सकते—

वागीश्वर हन्त भजेऽभिनन्दमर्थेश्वर वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वर स्तौमि च कालिदास, बाण तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥

(सोड्ढल)

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी बाणो बभूवेति ॥

(धर्मदास)

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पद-क्रम. ।
भवेत् कवि-कुरङ्गाणा चापल तत्र कारणम् ॥

(त्रिलोचन भट्ट)

'रुचिर स्वर-वर्ण-पदा रस-भाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥'

(धर्मदास)

'सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी कथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥'

(राजशेखर)

'प्रतिकविभेदनबाण. कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीबाणभट्टकविराजः ॥' (वीरनारायणचरित)

'युक्त कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिता. ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यत. ॥' (सोमेश्वरदेव)

'बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य
शक्तिं न केऽत्र कविताश्रमद त्यजन्ति ।
मान्द्य न कस्य च कवेरिह कालिदास
वाचा रसेन रसितस्य भवत्यधृष्यम् ॥' (सोड्ढल)

'दण्डीत्युपस्थिते सद्य कवीना कम्पता मन ।
प्रविष्टे त्वन्तर बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते ॥' (अज्ञात)

'परिशीलितैव सरस कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी ।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥' (अज्ञात)

'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम् ।' (अज्ञात)

कोई भी कवि या कलाकार जब कोई रचना करता है, तो उसका अपने सम सामयिक समाज से प्रभावित होना स्वाभाविक है। वह अपने प्रभावों, समसामयिक सामाजिक गति-विधियों एव राजनीतिक स्थितियों को अपनी कृति में यत्र-तत्र बिखेरे रहता है। यदि हम उन्हें एक सूत्र में पिरोने का यत्न करें, तो सम सामयिक समाज के विषय मे हमे पर्याप्त जानकारी मिल सकती है।

बाण-कालीन भारत

बाण के काल में समाज का गठन वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था के रूप में मिलता है। ब्राह्मणों का काम साधारणत अध्ययनाध्यापन और पौरोहित्य रहता था, पर वे मन्त्री का काम भी कर लिया करते थे। ब्राह्मणों के ब्राह्मणेतर भी मित्र हुआ करते थे। बाण की मित्र मण्डली में सभी वर्णों के लोग थे। छूताछूत का प्रचार था। शूद्रो मे भील आदि आदि जातियाँ आती थीं। वे खेती बाड़ी एव निम्न स्तर का काम किया करते थे। देश में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध था। शहर से बाहर आश्रम अथवा विद्या मन्दिर हुआ करते थे, लड़कियों को भी पर्याप्त शिक्षा मिला करती थी, परन्तु उनका शिक्षाविषय अधिकतर साहित्य न होकर कला सम्बन्धी और गृह सम्बन्धी हुआ करता था। नृत्य एव सगीत कला का विशेष प्रचार था। कभी कभी नाटक भी खेले जाते थे। चित्र कला और मूर्ति निर्माण कला भी लोकप्रिय थीं। लड़कियों को इधर उधर घूमने की स्वतन्त्रता थी, जो उनके गन्धर्व विवाहों से प्रमाणित होती है। श्रीहर्ष ने अपने 'नागानन्द' नाटक में लिख ही रखा है कि—'निर्दोष दर्शना खलु कन्यका.' अर्थात् लड़कियो को देखने मे कोई बुराई नहीं। लड़कियों का विवाह युवा होने पर ही हुआ करता था। समझदार लड़कियाँ—जैसे सरस्वती, महाश्वेता, कादम्बरी इत्यादि सोच समझकर योग्य वर को ही चुनती थीं, कामान्ध होकर ऐरे गैरे को नहीं। बाल विवाह और विधवा-विवाह नहीं हुआ करते थे, लेकिन बहु-विवाह आम थे। महिलाओं के साथ भद्र व्यवहार हुआ करता था। वे कभी कभी घूँघट भी निकाल लिया करती थीं। अपने श्रेष्ठ पुरुष आदर के पात्र हुआ करते थे। चन्द्रापीड आदरभाव के कारण ही शुकनास के आगे उच्चासन पर न बैठ कर 'क्षिति-तल' पर ही बैठा था। गृहस्थ जीवन साधारणतः सौहार्दपूर्ण रहा करता था। बाण ने यशोमती, विलासवती आदि माताओं का अपने पुत्रों के प्रति कितना गहरा प्रेम वर्णन कर रखा है। परन्तु स्त्रियाँ बच्चों से अधिक प्रेम पतियों को करती थीं। पति यद्यपि घर का सर्वेसर्वा होता था, तो भी घरेलू मामलों में वह अपनी पत्नी की राय ले लिया करता था। प्रभाकरवर्धन ने राज्यश्री का विवाह यशोमती से पूरी सहमति लेकर ही किया था। स्त्रियाँ कभी-कभी सती हो जाया करती थीं। महाराज प्रभाकरवर्धन के गम्भीर रूप से बीमार होने का समाचार पाते ही महारानी यशोमती उनकी मृत्यु से पहले ही भस्म हो गयी थी, क्योंकि उसकी इच्छा थी कि वह 'अविधवा' ही मरे। परन्तु कुछ स्त्रियाँ विधवा ही रहा करती थीं। सती-प्रथा का विरोध समाज में उठ खड़ा हो गया था। महाश्वेता और कादम्बरी के 'अनुमरण' (सती होने) के प्रयत्न को बाण ने आत्म हत्या, मूर्खता और महापाप बताकर इसके विरुद्ध प्रबल तर्क दे रखा है। विधवायें धार्मिक जीवन व्यतीत किया करती थीं, जो कष्टमय हुआ करता था। बाण द्वारा उल्लिखित शूद्रक की दिनचर्या से यह भी पता चलता है कि उस समय समाज में तैलाभ्यङ्गपूर्वक व्यायाम को भी महत्त्व दिया जाता था। धूम पान (परिपीत-धूमवर्ति) भी लोग किया करते थे।

धार्मिक क्षेत्र में लोगों का पुनर्जन्म में पूरा विश्वास था। भारतीय षोडश संस्कारों का पूरा-पूरा पालन हुआ करता था। उपनयन-संस्कार के बाद बालकों को अध्ययनार्थ आश्रमों में भेजा जाता था। आश्रम के एक कुलपति के नीचे दस हजार छात्रों के अध्ययन और

भोजनावास का प्रबन्ध रहता था। विवाहादि संस्कार खूब धूमधाम से किये जाते थे। जनता का मुख्य धर्म श्रौत स्मार्त था, परन्तु साथ ही बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी चलते रहते थे। बौद्ध गेरुआ और जैन पीला वसन पहना करते थे, लेकिन धार्मिक सहिष्णुता देश में पूरी थी। आजकल की जैसी कट्टर साम्प्रदायिकता नहीं थी। खुशी खुशी से कोई धर्म-परिवर्तन कर सकता था। स्वय सम्राट् हर्षवर्धन अपने जीवन के उत्तरार्ध मे बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हो गये थे और बौद्ध-धर्म के प्रभाव में ही आकर उन्होंने उसके प्रचार के उद्देश्य से अपना अन्तिम नाटक 'नागानन्द' लिखा था। हाँ, दिगम्बर (नग्नक्षपणक) सम्प्रदाय के जैनी अच्छी निगाह से नहीं देखे जाते थे। उनका दिखाई देना अपशकुन में गिना जाता था ('अभिमुखमाजगाम शिखि-पिच्छललाञ्छनो नग्नाटक '—हर्षच०)। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ धर्म के नाम पर प्रेम व्यापारों में बिचौली का काम भी कर लिया करते थे। धर्म के नाम से ठगी भी चला करती थी। बाण ने कादम्बरी में बता रखा है कि किस प्रकार तापसों ने एक द्रविड़ ब्राह्मण को धन और पत्नी दिलाने का झूठा प्रलोभन देकर ठग लिया था। निम्न जातियों मे चण्डिका के आगे बलि देने की भी प्रथा थी। जगह जगह अन्नक्षेत्र, धर्मशाला और प्रपा (प्याऊ) भी खुले रहते थे। योग्य व्यक्तियों को दान भी दिया जाता था। न्यायाधिकरण में बहुत कम मुकदमें आया करते थे। कभी आते भी थे, तो वे धर्म-विरुद्धाचरण के, चोरी-डकैती के हुआ करते थे।

राजनैतिक क्षेत्र में देश में साम्राज्यवाद अथवा राज्यवाद था। राजा मन्त्रियों की सहायता से राजकार्य चलाता था। मन्त्रियों में एक मुख्य मन्त्री (जैसे शुकनास) होता था। मन्त्री भी 'अनेक कुलक्रमागत' हुआ करते थे, आजकल की तरह निर्वाचित नहीं। सेना में एक प्रधान सेनापति होता था। ह्यूँ साग के अनुसार सेना के चार अग—वाजिसेना, गजसेना, रथसेना और पदातिसेना होते थे। जहाँतक देश की सीमा का प्रश्न है, वह आजकल की अपेक्षा काफी विस्तृत थी। बाण का शूद्रक—'चतुरुदधि-माला मेखलाया भुवो भर्ता' था। पश्चिम की सीमा परसिया तक पहुँची हुई थी और यही कारण था कि परसिया के राजा ने महाराज तारापीड को इन्द्रायुध नाम का पारसी घोड़ा उपहार में भेजा था। देश छोटे-छोटे राज्यों मे विभक्त था। हर्षवर्धन के पूर्वजों का राज्य भी स्थाण्वीश्वर (थानेसर) में एक छोटा ही राज्य था। राजों में परस्पर राग-द्वेष और सघर्ष चलता रहता था। राज्यवर्धन की हत्या राजनैतिक षड्यन्त्र था। हर्षवर्धन जब स्थाण्वीश्वर को छोड़ कर कान्यकुब्ज पहुँचे, तो अपने बहनोई और भाई के मारे जाने तथा बहिन के लापता होने के दु:ख से आगबबूले थे ही, अत उन्होंने छः वर्ष के भीतर सभी राजाओं को पददलित कर दिया और चक्रवर्ती बन गये। उनकी राज्य-सीमा हिमालय से नर्मदा तक और बगाल की खाड़ी से सिन्ध तक पहुँच गयी थी।

मोहनदेव पंत

कादम्बरी ।

पूर्वभागः ।

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ १ ॥

श्रेय श्रीललनाविलासकुशल पायादपायात्स व
श्रीमन्नाभिनरेन्द्रसूनुरमरै ससेव्यमानान्तिकः ।
रेजे यस्य कचावली भुजशिरोदेशे लुठन्ती प्रभो-
र्लग्ना शैवलमञ्जरी भवसरित्पार प्रयातु किमु ॥
सर्वेऽन्ये जनतानिषेविततया मानाभिभूता भृश
मन्यन्ते तृणवत्त्रिलोकमखिल दुर्बुद्धिबद्धाशया ।
कृत्स्नैश्वर्यजुषापि येन सुधिया देवेन्द्रसेव्याङ्घ्रिणा
नैवाकारि कदापि गर्वमलिन चेत स शान्ति श्रिये ॥
यत्कीर्तिर्धवलीचकार सहसा ब्रह्माण्डभाण्डोदर
दाशार्होऽपि तदन्तरा निपतित सद्यो न सलक्षित ।
तेनाद्यापि निरीश्वर जगदिद जल्पन्ति साङ्ख्यादय-
स श्रीनेमिजिनेश्वरो भवभृता देयादमन्दां मुदम् ॥
मूर्ध्नि न्यस्तद्विजिह्वाधिपतिफणगणस्पष्टसरम्भदम्भा-
द्धत्ते यः सप्तविश्वाद्भुतपरममनोहारिसाम्राज्यलक्ष्मीम् ।
नम्रालुस्वर्गिमौलिप्रकरमणिलसत्कान्तिभिश्चित्रिताङ्घ्रि-
स श्रीपार्श्वाधिराजो भवतु भवभिदे पार्श्वसंसेव्यमान ॥
यद्वाचामधिका विलासपदवीमीहेद् भृशं भारती
यत्सत्त्वैकपरम्परा कलयितु सिंहोऽङ्कदम्भादियाव् ।
यत्सौन्दर्यदिदृक्षयेव समभूदक्ष्णा सहस्र हरे
स श्रीवीरविभुर्ददातु भविनां शश्वन्मनोवाञ्छितम् ॥
श्रीमत्तप पद्मसहस्रदीधिति श्रीहीरसूरि. समभून्महोदय. ।
यद्वक्त्रसौन्दर्यगुण विलोकयन्ययौ सुरौघ किमु निर्निमेषताम् ॥
अनन्यसौजन्यगुणैर्गरीयान्विशिष्टशिष्टाचरणैर्वरीयान् ।
तत्पट्टपाथोनिधिपूर्णचन्द्रो विराजते श्रीविजयादिसेन. ॥

तत्पट्टोदयचूलावलम्बिपूर्णेन्दुसन्निभ श्रीमान् ।
श्रीविजयतिलकसूरिर्भूरिगुणैर्भूषितो जयति ॥
तत्सम्प्रदाये प्रथितप्रभावो बभूव दानर्षिरतिप्रसिद्ध ।
यदीयवैराग्यकथा प्रवक्तु प्राप्तो गुरु किं हरिसन्निधानम् ॥
तद्दीक्षितानेकविनेयवर्गमुक्तालतामध्यमणिप्रकार ।
श्रीवाचकेन्द्र सकलादिचन्द्रो बभूव विश्वाद्भुतवाग्विलास ॥
श्रीसूरचन्द्र समभूत्तदीयशिष्याग्रणीर्न्यायविदा वरेण्य ।
यत्तर्कयुक्त्या त्रिदिव निषेवे तिरस्कृतश्चित्रशिखण्डिजोऽपि ॥
तदीयपादाम्बुजचञ्चरीको विराजतेऽद्धा हरिधीसखाभ ।
श्रीवाचक सम्प्रति भानुचन्द्रो ह्यकब्बरक्ष्मापतिदत्तमानः ॥
श्रीशाहिचेतोऽब्जषडङ्घ्रितुल्य श्रीसिद्धचन्द्रोऽस्ति मदीयशिष्यः ।
कादम्बरीवृत्तिरियं तदीयमनोमुदे तेन मया प्रतन्यते ॥

इह हि विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताक प्रारिप्सितविघ्नविघातफलकं हिरण्यगर्भनमस्कारात्मक मङ्गलमाचरति—रजोजुष इति । अजाय स्वयभुवे नम इत्यन्वय । किंभूताय । प्रजानां जन्मनि सृष्टिकाले रजोजुषे रजोगुणयुक्ताय । पुन किंविशिष्टाय । प्रजाना स्थितौ स्थितिकाले सत्त्ववृत्तये सत्त्वस्य वृत्तिर्यस्मिन् । सत्त्वगुणयुतायेत्यर्थ । पुन किंलक्षणाय । प्रजानां प्रलये विनाशकाले तम स्पृशे तमोगुणयुक्ताय । अमीषा च गुणाना लक्षण 'सत्त्वं लघु प्रकाशक च, चलमवष्टम्भक च रज । गुर्वावरण च तम.' इति द्रष्टव्यम् । जन्मनि स्थितौ प्रलये चेति निमित्तसप्तमी वा । पुन किंविशिष्टाय । सर्गस्थितिनाशहेतवे प्रजानामित्यस्य सर्वत्रानुषङ्ग । तेन प्रजाना सर्ग. स्थितिश्च नाशश्च तेषा हेतवे कारणीभूताय । पुन किंलक्षणाय । त्रयीमयाय । त्रयी ब्रह्मविष्णुमहेशानाम् । वेदाना वा त्रयी । तन्मयाय तत्स्वरूपाय । पुन किंविशिष्टाय । त्रिगुणात्मने ब्रह्मविष्णुमहेशात्मकत्वेन तत्तद्गुणयोगात्त्रिगुणात्मकाय । सत्त्वरजस्तमोगुणस्वरूपायेत्यर्थ । तादृशाय पितामहाय नम इति प्राचीनव्याख्या ॥ अत्र च व्याख्याने विधे सृष्टिमात्रकर्तृत्वेन केवल रजोगुणस्यैव सबन्धात्त्रिगुणात्मकत्वमतिविरुद्धम् । किंच विधेस्तमोगुणवत्त्वे सत्त्वगुणवत्त्वे वा शिवत्व विष्णुत्व च व्यपदिश्येत । एतेषा त्रयाणा गुणभेदादेव मूर्तिभेद इति पौराणिका । अपिच पूर्वार्धे जन्मस्थितिप्रलयकर्तृत्वस्य रजोजुषे सत्त्ववृत्तये तम स्पृश इत्यनेन त्रिगुणात्मकत्वस्यापि चोक्तत्वेन पुनरुत्तरार्धे सर्गस्थितिनाशहेतव इति त्रिगुणात्मन इति च पुनरुक्तत्वादिति प्रकारान्तरेण व्याख्यास्याम —अजाय कूटस्थनित्याय परब्रह्मणे नम इत्यन्वय । किंभूताय । प्रजाना सर्गस्थितिनाशहेतवे । प्रजानामित्यनित्यमात्रपदार्थोपलक्षकम् । तेनानित्यपदार्थाना सर्गस्थितिनाशकारणायेत्यर्थ· । अनित्यपदार्थाना सृष्टिस्थितिनाशहेतुत्व च श्रुतिसिद्धम् । 'जगत्कारण ब्रह्म' इति श्रुते । पुन. किंभूताय । त्रयीमयाय । त्रयी वेदाना त्रयी तत्स्वरूपाय । 'वेद एव परं ब्रह्म' इत्युक्तत्वात् । यद्वा । त्रयी ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्रयी तत्स्वरूपाय । यथा मृद उत्पन्नेऽपि घटे मृन्मय इति व्यवहारस्तथा ब्रह्मणस्त्रयाणामुत्पादकत्वेऽपि त्रयीमयत्वव्यवहार. समुचित. । ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यो जीवा एवेति वेदान्तिन । अतएव त्रिगुणात्मकाय । भेदाभेद-

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥ २ ॥
जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया ।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥ ३ ॥

विवक्षयेत्यर्थः । तस्मै परब्रह्मणे' कथं ब्रह्मविष्णुमहेशात्मकत्वमत आह—प्रजानां जन्मनि सृष्टौ रजोजुट् प्रजापतिस्तत्स्वरूपायेत्यर्थः । पुनः प्रजानां स्थितौ सत्त्ववृत्तिर्विष्णुस्तत्स्वरूपाय । पुनः प्रजानां प्रलये तमःस्पृक् शिवस्तत्स्वरूपाय । यथैकस्यैव स्फटिकस्य नीलपीतादिगुणसम्बन्धान्नील पीत इति व्यवहारस्तथैकस्यैव परब्रह्मणः सृष्टिकाले रजोगुणसम्बन्धात् ब्रह्मेति, स्थितिकाले सत्त्वसम्बन्धाद्विष्णुरिति, प्रलये तमःसम्बन्धादीश्वर इति व्यवहारः । तेन परब्रह्मण एवायं नमस्कार इति किं बहुना ॥ १ ॥

जयन्तीति । त्र्यम्बकस्य शिवस्य पादपांसवश्चरणरेणवो जयन्ति । सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्यर्थः । कथंभूताः । बाणासुरेति । बाणो बाणनामासुरस्तस्य मौलिना मुकुटेन वा लालिता परिचिताः । पुनः किंविशिष्टाः । दशास्येति । दशास्यो रावणस्तस्य चूडामणयः शिरोमणयस्तेषां चक्रं समूहं चुम्बन्ति स्पृशन्तीत्येवंशीलाः । पुनः किंविशिष्टाः । सुरेति । सुराश्चासुराश्च तेषामधीशाः स्वामिनस्तेषां शिखाश्चूडास्तासामन्तः प्रान्तस्तत्र शेरत इत्येवंशीलाः' । पुनः किंविशिष्टाः । भवच्छिदः । संसारविच्छेदिन इत्यर्थः । अत्र पूर्वविशेषणत्रयेण परमेश्वरचरणरजसः परमैश्वर्यं भवच्छिद इत्यनेन च संसारिणां संसारदुःखनिवारकत्वमुक्तमिति ॥ २ ॥

जयतीति । स उपेन्द्रो विष्णुर्नृसिंहावतारी जयति सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्तते । स कः । यो नृसिंहो बिभित्सया भेत्तुमिच्छया दूरतो दूरादेव क्षणं लब्धं लक्ष्यमवलोकनैकाग्रत्वं यया अत एव कोपेन रोषेण अरुणया आरक्तया दृशैव दृष्ट्यैव रिपोः शत्रोर्हिरण्यकशिपोः उरो वक्षःस्थलमस्ररुधिरं तद्वत्पाटलमारक्तं चकार । भयाद्विदारणभीत्या स्वयमेव भिन्नमिवेति कवेरुत्प्रेक्षा ॥ ३ ॥

उस अजन्मा (परब्रह्म) को नमस्कार है जिसमें (उसके ज्ञानाकार होने के कारण) तीनों वेद सम्मिलित हैं, तीन गुण (सत्त्व, रज और तम) जिसका सारतत्त्व है, जो सृष्टि के सर्जन, पालन और विघटन का कारण है, जो सृष्ट पदार्थों के जन्म के समय रजोगुण से युक्त हो जाता है, उनके पालन के समय सत्त्वगुणप्रधान होता है और उनके विनाश के समय तमोगुण को धारण कर लेता है ॥ १ ॥

शिवजी के पाँवों की वे धूलियाँ विजयी (सर्वोत्कृष्ट) हैं जो जन्ममरण (के चक्र) को काट देती हैं, जिनको बाणासुर ने अपने मुकुट (अथवा) मस्तक पर उठाया था, जो रावण के मुकुट (में लगीं) मणियों के समूह पर पड़ी थीं, और जो सुरों एवं असुरों, दोनों के अधिपतियों के केशों (सिरों) के अग्रभागों पर विश्राम करती हैं—वहाँ पड़ी रहती हैं ॥ २ ॥

वह उपेन्द्र (विष्णु) विजयी है जिसने अपने क्रोध के कारण लाल हुई तथा इसके (शत्रु रूप लक्ष्य को) बींधने की इच्छा[1] से केवल एक क्षणभर के लिये ही उधर फिरायी हुई दृष्टि से अपने शत्रु की छाती को रक्त सदृश लाल कर दिया था, मानो कि वह भय से स्वयं ही फट गयी हो ॥ ३ ॥

१. बिभित्सा, भिदिर् + सन् + टाप् ।

नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वय सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम् ।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥ ४ ॥
अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते ।
विष महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसह सन्निहितं सदा मुखे ॥ ५ ॥
कटु कणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यल बन्धनश्रृङ्खला इव ।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥ ६ ॥

शश्वद्गुरोर्नमस्कार कुर्वन्नाह—**नमामीति**। भत्सुरिति गुरोर्नाम । क्वचित्तु 'भर्त्सु' इति पाठ । तस्य चरणाम्बुजद्वय पादकमलयुगल नमामि नमस्करोमि । किंभूतम् । सशेखरै समुकुटैर्मौखरिभि क्षत्रियविशेषै कृत विहितमर्चन पूजन यस्य तत्तथा । पुन किंविशिष्टम् । **समस्तेति**। समस्ता समग्रा ये सामन्ता विषयान्तरराजास्तेषा किरीटानि कोटीराण्येव वेदिका परिष्कृता भूमि । विस्तीर्णत्वात्तत्साम्यम् । तस्या विटङ्को मध्य उन्नतप्रदेश । विटङ्क-शब्दस्य कपोताद्याधारभूतकाष्ठवाचित्वेऽप्यत्र लक्षणयोन्नतत्वमात्रवाचित्वम् । विटङ्क एव पीठ स्थल तत्रोल्लुठिता घृष्टा अत एवारुणा रक्ता । तत्रत्यरक्तादिसम्बन्धात्स्वभावेन चारुणा अङ्गुलय करशाखा यस्येति तत्तथा ॥ ४ ॥

अकारणेति। असज्जनात्खलात्कस्य साधोर्भय साध्वस न जायते न भवति । अपितु सर्वस्यापि भवतीत्यर्थः । कथभूतादसज्जनात् । **अकारणेत्यादि**। अकारणमनिमित्तमेवाविष्कृत प्रकटीकृतं यद्वैर विरोध' तेन दारुणात् क्रूरान्निष्ठुरात् । यस्य खलस्य सदा निरन्तर मुख आनने सन्निहित निकटस्थं दुर्वचो दुष्टवचन सुदु सहमत्यन्तोद्वेगजनक भवति । यथा महाहेर्महोरगस्य विष गरलं मुखे सन्निहित परमसन्तापकत्वाद् दु सहमित्युपमा ॥ ५ ॥

कट्विति। खला दुर्जना. साधून्सज्जनानलमत्यर्थं तुदन्ति पीडयन्ति । किं कुर्वन्त । कणन्तो रटन्त । किम् । कटु । अर्थाद् दुर्वचनमित्यर्थ । पुन किंविशिष्टा. । मलदायका मलो मिथ्याकलङ्कस्तस्य दायका । आरोपका इत्यर्थ । क इव । बन्धनश्रृङ्खला इव । बन्धन मनुष्या-दैस्तदर्थं श्रृङ्खला लोहनिगडा इव । तेऽपि कटु कुत्सित शब्दायमाना मल स्वसम्पर्कात्स्वमालिन्य

मैं 'भत्सु' के कमल-सदृश उस चरणयुगल को प्रणाम करता हूँ जिसको मौखरि वंश के क्षत्रिय अथवा राजा (अपने) मुकुट पहन कर पूजते हैं और जिसकी लाल अंगुलियाँ सभी सामन्तों (करद राजाओं) के मुकुटों से बनी वेदी रूप आसन पर लोटती हैं (उसपर रगड़ खाती हैं) ॥ ४ ॥

उस दुष्ट व्यक्ति से कौन नहीं डरता जो बिना कारण ही शत्रुता दिखाने के कारण भयानक है और जिसके मुख में (अत्यन्त दुस्सह) दुर्वचन सदा इस भाँति विद्यमान रहते हैं जैसे किसी बड़े साँप के मुख में उग्रविष सदा विद्यमान रहता है ॥ ५ ॥

कटु वचन बोलते हुए तथा अपवाद (मल-निन्दा) करनेवाले दुष्ट जन कर्कश ध्वनि करनेवाली तथा जंग (का मैल) लगा देनेवाली बेड़ियों की भाँति अत्यन्त दुःख पहुँचाते हैं। परन्तु सज्जनगण सुष्ठु वचनों द्वारा मनको सदा हर्षित करते हैं—जैसे कि मणियों से बड़े नूपुर प्रत्येक कदम पर अपनी मधुर झणझणाहट से मन को हर्षाते हैं ॥ ६ ॥

सुभाषित हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम् ।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ॥ ७ ॥
स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति राग हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्या स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ ८ ॥

तस्यारोपका स्वाच्छन्द्येन गतागतावरोधका भवन्तीति । उत्तरार्धेन साधून्स्तौति–सन्त सुजनास्तु साधुध्वनिभिर्मनोहारिशब्दैर्वचनै पदे पदे शब्दे शब्दे प्रतिक्षण वा मनश्चित्तं हरन्ति गृह्णन्ति । क इव । यथा मणिखचिता नूपुरा मञ्जीराणि पदे पदे अर्थात्कामिनीना चरणप्रक्षेपे प्रक्षेपे साधुध्वनिभिर्मञ्जुलसिञ्जितैर्हृदयहारिणो भवन्तीत्युपमा ॥ ६ ॥

सुभाषितमिति । सुभाषित सुकाव्यादि हारि मनोहार्यपि दुर्जनस्य खलस्य गलात् कण्ठाग्निगरणादधो न विशति न गच्छति । हृदयशून्यत्वादिति भाव: । कस्येव । अर्करिपो॰ पीयमानममृत यथा न हृदय विशति पूर्वोक्तहेतोरेव । तदेव सुभाषित सज्जनो गुणग्राहको हृदयेन स्वान्तेन धत्ते धारयति । सहृदयत्वान्न कदाचिद्विस्मरतीति भाव । यथा हरि विष्णुर्नारायणो हृदयेन वक्ष स्थलेनातिनिर्मल स्वच्छ महारत्न कौस्तुभ दधाति ॥ ७ ॥

स्फुरदिति । अभिनवा कथा गद्यपद्यमयी रसेन शृङ्गारादिना कृत्वा जनस्य सहृदय-जनस्य हृद्यन्त करणे कौतुक कुतूहलमधिक यस्मिंस्तत्कौतुकाधिकम् । कौतुकपूर्णमित्यर्थं । तादृश राग प्रीतिं करोति जनयति । किंभूता । स्फुरदिति । स्फुरश्चञ्चन्कलो मधुरो य आलाप शब्दरचना तस्य विलासो माधुर्यं तेन कोमला मृद्वी । अन्यत्रापि कथायामालापादिक भवत्येवेति ध्वनि । पुन किंविशिष्टा । शय्यामभ्युपागता प्राप्ता । 'शय्या तल्पे शब्दगुम्फे' इत्यनेकार्थं । यथाभिनवा नवोढा वधू रसेन प्रेम्णा स्वयमेव अर्थाद्भर्तृजनस्य शय्यां पल्यङ्कमागता कौतुकम-नुराग च करोति । किंभूता वधू । स्फुरन् प्रसर्पन् य कलो मन्द्र आलापविलासो वचनव्यापारस्तेन कोमला सुन्दरा । 'कोमल मृदु सुन्दरे' इति विश्व ॥ ८ ॥

सुभाषित, (यदि) मनोहारी हो (तो भी) दुर्जन के गले नहीं उतरता (अर्थात् दुर्जन उसका मूल्याकन नहीं कर सकता), जैसे कि अमृत राहु के गले म नहीं उतरता, परन्तु उसी (सुभाषित) को सज्जन अपने हृदय मे सजो कर रखता[1] है—जैसे कि विष्णु मूल्यवान तथा अत्यन्त निर्मल मणि (कौस्तुभ मणि) को (अपने वक्ष पर) पहनता है ॥ ७ ॥

जैसे मधुर वाणी तथा (अपने द्वारा) प्रदर्शित कामक्रीडाओं के कारण आक-र्षक बनी हुई तथा स्वयमेव अपने प्रेमी की शय्या पर आयी हुई नववधू प्रेमी के हृदय मे उत्सुकताबहुल अनुराग को उत्पन्न कर देती है वैसे ही रोचक सलापों तथा (उसमें वर्णित) कामक्रीडाओं से ललित हुई कथा (काव्यरचना) उसमे व्याप्त कोमल भावनाओं के कारण स्वयमेव (शय्या अर्थात्) समुचित रचना रूप में गुम्फित हुई व्यक्ति के हृदय मे उत्सुकता से जगाये हर्ष को उत्पन्न कर देती है ॥ ८ ॥

१ धृ, वह् अथवा धारणार्थक धातुओं के योग में जिस स्थान पर रख कर वस्तु उठायी जाती है वह 'करण' होता है । करण में तृतीया विभक्ति है ।

हरन्ति क नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ ९ ॥
बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम् ।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः ॥ १० ॥

हरन्तीति । नवै स्वबुद्ध्यैव रचितै पदार्थै पदाना शब्दानामर्थैरभिधेयै उपपादिता निर्मिता रचिता. कथा गद्यपद्यादिप्रबन्धा क सहृदय जन न हरन्ति न वशीकुर्वन्ति । सर्वस्यापि मनोहारिण्यो भवन्तीति भाव । कीदृशै पदार्थैः । उज्ज्वलदीपकोपमैरुज्ज्वल प्रकटो दीपकोऽलङ्कारविशेष उपमा च येषु ते तथा तै । 'शृङ्गार शुचिरुज्ज्वल' इत्यमर. । कीदृश्य. कथा. । निरन्तरेति । निरन्तरमव्यवधान प्रतिपद वा । उपमानोपमेययोरर्थसाम्यरूपः शब्दसाम्यरूपो वा यः श्लेषस्तेन घना बहुलतरा । पुन किंभूता । सुजातय इति । सुष्ठु जातिश्छन्दोविशेषो यासु । यद्वा । सुष्ठु जाति स्वरूप यासा ता इव । यथा नवैरम्लानैश्चम्पककुड्मलैर्हेमपुष्पकमुकुलैरुपपादिता महास्रजो महामाला मनो हरन्ति । अत्र यद्यपि कुड्मलैर्मालानिर्माणे नातीव रम्यत्व तथाप्यग्रिमक्षणे विकासोन्मुखकुड्मलैर्मालानिर्माणे त्वौचित्यमेव । कीदृशैश्चम्पककुड्मलै. । उज्ज्वलो यो दीपक. प्रदीपक. प्रदीपस्तदुपमैस्तत्तुल्यै । किंभूता स्रज । निरन्तर सान्द्रतर य श्लेषो ग्रथना तेन घना निबिडा । पुनः किंभूता । सुष्ठु जातयो जातीपुष्पाणि यासु ता. ॥९॥

कीर्त्यनुवृत्त्यर्थं स्ववंश्यानाह—बभूवेति । कुबेरनामा द्विजो ब्राह्मणो बभूवासीत् । कथंभूत । वात्स्यायन इति । वात्स्यायननामा ऋषिस्तस्याय वात्स्यायनो वंशोऽन्वयस्तस्मिन्सभव समुत्पन्न । वत्सगोत्रीय इत्यर्थ. । द्विज इति च द्विजोत्कृष्टत्वसूचनार्थम् । यथा गजमात्रस्य दन्तवत्त्वेऽप्युत्कृष्टदन्ते दन्तीति प्रयोग । पुन. कीदृश । जगदिति । जगति विश्वस्मिन्नुद्गीता उत्प्राबल्येन गानविषयीकृता गुणा शौर्यादयो यस्य स तथा । पुन' कीदृश । सताम् अग्रणी साधूनामग्रेसर । किंभूत. । अनेकेति । अनेकेऽसंख्या ये गुप्ता गुप्तनामाङ्किता वैश्यशूद्रादय. । तदुक्तम्—'शर्मान्त ब्राह्मणस्योक्त वर्मान्त क्षत्रियस्य तु । गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्त वैश्यशूद्रयो ॥' इति । तैरर्चित पादपङ्कज चरणसरोज यस्य स तथा । पुन कीदृश इव । स्वयंभुवो ब्रह्मणोंऽशोऽवतार एकदेशरूप इव । अतिवैदिकत्वादिति भाव ॥ १० ॥

नये नये[1] तथा भड़कीले 'दीपक' तथा 'उपमा' अलकारो से भरे पदो से भरी वे रचनायें जो निरन्तर (पदपद पर) आये श्लेषो के कारण सुश्लिष्ट हैं और जिनमे जाति अलकार प्रचुर है, चम्पककलियो से बनायी गयीं उन बड़ी मालाओ के समान किसको आनन्दित नहीं करतीं जो (फूलो को) विना अन्तर लगाने से सुग्रथित है और जिनमे सुन्दर जाति-पुष्प भरे पड़े है ॥ ९ ॥

वात्स्यायन कुल में उत्पन्न हुआ, ससार भर द्वारा गाये गये गुणो वाला, सज्जनो में अग्रणी, अनेक गुप्तों (गुप्त राजाओ) द्वारा पूजित चरण कमलों वाला, स्वयभू ब्रह्मा का अशावतार सदृश प्रतीत होता हुआ कुबेर नाम का एक ब्राह्मण था ॥ १० ॥

१ 'नवै. पदार्थै' का अर्थ स्वय अपनी बुद्धि से रचे हुए पदों के अर्थों अर्थात् अभिधेयों से रचित (उपपादित) भी है ।

उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे ।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥ ११ ॥
जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥ १२ ॥

उवासेति । यस्य कुबेरद्विजस्य मुख आनने सरस्वती वाग्देव्युवास । वसति स्मेत्यर्थः । किंभूते मुखे । **श्रुतीति** । श्रुतिभिर्वेदाध्ययनै शान्तमुपशमित कल्मष पाप यस्य तत्तथा । परमपवित्र इत्यर्थं । पुन कथभूते । **सदेति** । सदा सर्वकाले पुरोडाशेनाग्निहोत्रे देवेभ्यो दत्तहवि शेषेण पवित्रित पावनीकृतोऽधर ओष्ठो यस्य तत्तथा तस्मिन् । पुन किंविशिष्टे । **सोमेति** । सोमेन सोमयागे सोमसञ्ज्ञकलतारसेन कषायित किञ्चित्कटुकीभूतमुदर मध्यभागो यस्य तत्तथा तस्मिन् । सोमस्य किञ्चित्कटुत्वादिति भाव । पुनः कीदृशे । **समस्तेति** । समस्तानि समग्राणि यानि शास्त्राणि व्यासादिप्रणीतसूत्ररूपाणि स्मृतयश्च मन्वादिप्रणीता धर्मनिबन्धास्ताभिर्बन्धुरम् । मनोहरमित्यर्थः । तस्मिन् ॥ ११ ॥

जगुरिति—यस्य कुबेरविप्रस्य गृहे बटव शिष्यभूता ब्रह्मचारिण शङ्किता सत्रासा सन्तो [यजूषि] यजुर्वेदान् सामानि सामवेदाश्च जगु । पठन्ति स्मेत्यर्थ । शङ्कितत्वे बीजमाह–किंभूता बटव । निगृह्यमाणा निग्रहो निर्भर्त्सनं तेन त्रास्यमाना । कस्मिन् । पदे पदे शुद्धपाठकै शुकै कीरै । कथभूतैस्तै । ससारिकै सारिकाभि सह वर्तमानै । अनेन सारिकाणामपि विद्यावत्त्व सूचितम् । पुन कथभूतै । **पञ्जरवर्तिभिरिति** । पञ्जरो लोहशलाकानिर्मित पक्षिगृह तत्र वर्तिभि । तस्थितैरित्यर्थ । पुन कीदृशै । **अभ्यस्तेति** । अभ्यस्त जिह्वाग्रवर्ति समस्त समग्र वाङ्मय चतुर्दशविद्यात्मक येषा ते तथा तै । समस्तविद्यापारगतैरित्यर्थ । 'भवद्भिरशुद्ध पठ्यते । वय गुरुनिकटे कथयित्वा ताडन कारयिष्याम ।' ईदृश शुकवचनमाकर्ण्य ते भीता सन्त पठन्ति बटव । यद्गृहे शुकानामप्येतादृशज्ञानमिति तन्महिमोपवर्णनम् ॥ १२ ॥

उसके उस मुख मे वाणी की देवी सरस्वती सदा रहती थी—उस मुख में जिसके पाप वेद (के पाठ) से नष्ट हो गये थे, जिसके अधर सदा पुरोडाश (यज्ञशेष) से पवित्र किये रहते थे, जिसका भीतरी भाग (उदर) सोमरस (के पान करने) से कसैला हो गया था और जो (उसमें उपस्थित) श्रुतियों तथा शास्त्रों के (पाठ-) स्मरण के कारण आकर्षक था ॥ ११ ॥

उस ब्राह्मण के घर में सारे साहित्य (वाङ्मय) को कण्ठाग्र किये हुए पिञ्जरों में बन्द, मैनाओं समेत, तोतों द्वारा प्रत्येक शब्द पर टोके जाते ब्रह्मचारी (शिष्य) बड़ी हिचक के साथ यजुर्वेद तथा सामवेद का पाठ करते थे ॥ १२ ॥

हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत्सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥ १३ ॥
विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मय दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।
उषःसु लग्नाः श्रवणेऽधिका श्रिय प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥ १४ ॥
विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः ।
मखैरसंख्यैरजयत्सुरालय सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥ १५ ॥

हिरण्येति । तत कुबेरादर्थपतिनामा पुत्रोऽभूत् । किंभूत । द्विजन्मना ब्राह्मणाना पति श्रेष्ठ । क कस्मादिव । यथा भुवनस्याण्डक ब्रह्माण्ड तस्माद्धिरण्यगर्भ स्वयभू । हिरण्यगर्भोपमया वेदपारगत्व सूचितम् । पुन क कस्मादिव । क्षीरमहार्णवाद् दुग्धोदधे क्षपाकर शशाङ्क । क्षीरसमुद्रोत्थचन्द्रोपमया च समस्तजनाह्लादकत्व सूचितम् । पुन क कस्मादिव । विनता पक्षिणी तस्या उदरात्कुक्षे सुपर्णो गरुड इव । अनेन नारायणपरायणत्व सूचितम् । गरुडपक्षे द्विजन्मना पक्षिणाम् । ब्रह्मपक्षे चन्द्रपक्षे च द्विजन्मना ब्राह्मणाना पतिरित्यपि योज्यम् ॥ १३ ॥

विवृण्वत इति । नवा नवा नूतना । उत्तरोत्तर बुद्धिशालिन इति यावत् । एतादृशा शिष्यगणाश्छात्रचया यस्य अर्थपतेर्गुरोरधिका श्रिय शोभा प्रचक्रिरे वितेनिरे । पुन किंभूतस्य यस्य । दिने दिन उष सु प्रात समयेषु विसारि विसरणशील वाङ्मय चतुर्दशविद्यात्मक विवृण्वत । अध्यापयत इत्यर्थ । किंभूता शिष्या । श्रवणे गुरोर्वचनाकर्णने लग्ना सावधाना । यद्वा । श्रवणे कर्णे लग्ना । जगद्विदिता इत्यर्थ. । क इव । यथा चन्दनवृक्षस्य मलयजतरो पल्लवा किसलयानि नवा नवा प्रतिदिनमम्लाना श्रवणे कर्णे लग्ना सन्त शोभा कुर्वन्ति । रमण्या इति शेष ॥ १४ ॥

विधानेति । योऽर्थपतिरसख्यैरगण्यैर्मखैर्यज्ञै सुखेनाप्रयासेन सुरालय स्वर्गमजयत् । आचक्रामेत्यर्थ । किंभूतैर्मखै । विधानेति । विधानेन विध्युक्तमार्गेण सम्पादित विहित यद्दान

उस द्विज से ब्राह्मणो का मुखिया अर्थपति इस प्रकार उत्पन्न[१] हुआ जिस प्रकार कि ब्रह्माण्ड से हिरण्यगर्भ अथवा क्षीरसागर से चन्द्रमा अथवा (अपनी माता) विनता के गर्भ से गरुड उत्पन्न हुआ था ॥ १३ ॥

जिस प्रकार प्रात काल (स्त्रियो के) कानों पर रखे हुए ताजे चन्दन पल्लव शोभा को बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रतिदिन प्रात.काल विस्तृत साहित्य की व्याख्या करते हुए उस अर्थपति के सदा नये बनते हुए वचनों को सुनने में दत्तचित्त शिष्यों ने उसके यश को बढ़ाया था ॥ १४ ॥

१५ उस अर्थपति ने विहित नियमों के अनुसार दिये गये दानों से सुशोभित, देदीप्यमान महावीरअग्नियों (श्रौताग्नियों) से सयुक्त स्वरूप वाले तथा यज्ञस्तम्भरूप हाथों

---

१ 'भुवः प्रभव' इस सूत्र द्वारा उत्पत्ति के स्रोत की अपादान-सज्ञा होने के कारण पंचमी विभक्ति हुई है ।

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपम क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम् ॥ १६ ॥
महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा इव ॥ १७ ॥

ब्राह्मणेभ्य स्वर्णादिप्रतिपादन तेन शोभितै । विशिष्टदक्षिणैरित्यर्थ । पुन किंभूतै । स्फुरदिति । स्फुरन्त उज्ज्वलन्तो ये महावीरा श्रौताग्नयस्तै सनाथा सहिता मूर्ति स्वरूप येषा ते तथा तै । अग्नित्रयसहितैरित्यर्थ । 'होमाग्निस्तु महाज्वालो महावीर प्रवर्गवत्' इति कोश । पुन किंभूतै । यूपकरैरिति । यूपा यज्ञे पशुबन्धनार्थं स्तम्भविशेषास्त एव करा हस्ता येषा ते तथा तै । कैरिव गजैरिवेति यज्ञगजयो शब्दसाम्येनोपमा । किंभूतैर्गजै । विधानेन मदोद्रेकार्थं गजादीना दीयमानभक्ष्यविशेषेण । अत एव ' विधानपिण्डस्नेहप्लुति-स्नपितबाहुरिभाधिराजम्' इति माघे । तेन सम्पादित निष्पन्न यद्दान मदजल तेन शोभितै । पुन पक्षे स्फुरन्त शूरा ये महावीरा योद्धारस्तै सनाथमूर्तिभि । अधिष्ठितैरित्यर्थ । पुन पक्षे यूपवद्यज्ञस्तम्भवत्कर शुण्डादण्डो येषा ते तथा तै ॥ १५ ॥

स इति । सोऽर्थपति क्रमेण । वशक्रमेणेत्यर्थ । महात्मना जितेन्द्रियाणा श्रुतिशास्त्र-शालिना श्रुतिशास्त्राध्यापकाना सुतोत्तमाना पुत्राणा मध्ये चित्रभानुसज्ञक पुत्रमवाप लेभे । किंभूतम् । स्फटिकमिति । स्फटिकोपल क्षीरतैलस्फटिकाभ्यामन्य स्वच्छस्फटिकस्तद्वदुपमा यस्य स तथा तम् । निष्कलङ्कमित्यर्थ । किंभूताना सुतोत्तमानाम् । क्षमाभृतां क्षान्तिमताम् । भूधराणा मध्ये वरमित्यर्थ । 'क्षितिक्षान्त्यो क्षमा' इत्यमर । पक्षे स्फटिकाश्मभिर्निर्मित स्फटिकमयत्वात्कैलासस्येति ॥ १६ ॥

महेति । महात्मनो यस्य चित्रभानोर्गुणा । अपिशब्दाध्याहारेण पितु समाना अपि द्विषन्मन शत्रूणामप्यन्त करण प्राविविशु प्रवेश चक्रु । किं पुन सज्जनानामिति । किंभूता गुणा । सुदूरनिर्गता । दिगन्त गता इत्यर्थ । पुन कीदृशा । कलङ्केति । कलङ्केन लक्षणेन

वाले असख्य यज्ञों द्वारा स्वर्ग को इस प्रकार सरलता से जीत लिया था कि मानो यह विजय उसने विधान[1] (भोजन) द्वारा उत्पादित मदजल से सुशोभित, उन हाथियो द्वारा प्राप्त की हो जिन पर अत्यन्त साहसी महायोद्धा सवार हैं और जिनकी सूँड यज्ञस्तम्भ के समान हो ।१५।

उसने उचित समय पर अपने सभी वेदशास्त्र पढ़े हुए तथा उत्कृष्ट एव उच्चात्मा पुत्रों मे चित्रभानु नाम के पुत्र को प्राप्त किया, वह चित्रभानु क्षमाशीलों के मध्य स्फटिक-मणि-सा स्वच्छ-पवित्र था अतएव मानो पर्वतों के मध्य स्फटिक प्रस्तरों द्वारा श्वेत हुआ कैलास पर्वत ही था ॥ १६ ॥

उस महात्मा के दूर-दूरतक पहुँचे (दिगन्तव्यापी) तथा कलङ्करहित चन्द्रकला के समान निर्मल कान्तिवाले गुण, (बलात्) प्रवेश-मार्ग बनाकर उसके शत्रुओं के मन में

---

१. विधान हस्तिकवलम् इति वैजयन्ती । मदोद्रेक के हेतु दिया जानेवाला भक्ष्यविशेष ।

दिशामलीकालकभङ्गतां गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः ॥ १८ ॥
सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः ।
यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ॥ १९ ॥

मुक्तो वर्जितो य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य कला षोडशोंऽशस्तद्वदमला विशदा त्विट् कान्तिर्येषां ते तथा । पुन कीदृशा' । कृतेति । कृत निष्पादितमन्तरमवकाश । प्रवेशपद्धतिरिति यावत् । यैस्ते तथा । कस्य क इव । नृसिंहस्य विष्णोर्नखाङ्कुरा पुनर्भवाग्रभागा इव । यथा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा द्विषद्धृदय प्रविष्टास्तथैतेऽपीति भाव ॥ १७ ॥

दिशामिति । यस्य चित्रभानोर्मलीमसोऽप्यध्वरधूमसञ्चयो यज्ञधूमसमूहो निज स्वकीयं यश शुक्लतरमतिशयेनोज्ज्वल चकार विदध इति विशेषोक्ति । किंविशिष्टोऽध्वरधूमसञ्चय । दिशामिति । दिग्वधूनामलीके ललाटदेशेऽलकभङ्गतामलकाश्चूर्णकुन्तलास्तेषा भङ्गो रचना-विशेषस्तस्य भावस्तत्ता ता गत प्राप्त । एतेनाजस्र क्रतुसमूहविधानेन धूमस्य दिगन्तव्यापित्व सूचितमिति । पुन किंविशिष्ट । त्रयीति । त्रयी वेदत्रयी सैव वधूस्तस्या कर्णे श्रोत्रे तमाल पल्लव इव तमालपल्लव । श्यामत्वसाधर्म्यात्तमालकिसलयेनोपमानम् ॥ १८ ॥

सरस्वतीति । ततश्चित्रभानोर्बाण इति बाणाभिधान सुत पुत्रो व्यजायताभवत् । किंविशिष्टात्तत । सरस्वतीति । सरस्वत्या भारत्या पाणिसरोजसम्पुटेन हस्तकमलयुग्मेन स्वयमेव प्रमृष्ट प्रोञ्छित होमादिकर्मसम्बन्धि श्रमस्य खेदस्य शीकराम्भ प्रस्वेदजल यस्य स तथा तस्मात् । पुन कथभूतात् । यश इति । यशस कीर्तेरंशवो दीप्तयस्तै शुक्लीकृतानि शुभ्रीकृतानि सप्त रवितुरगप्रमितानि विष्टपानि भुवनानि येन स तथा तस्मात् । 'विष्टप भुवन जगत्' इत्यमर ॥ १९ ॥

इस प्रकार प्रविष्ट हो गये (अर्थात् उनके मन मे भय उत्पन्न कर गये) जैसे कि नृसिंह भगवान के चन्द्रमा की कला के समान श्वेत तथा लम्बे बढ़े हुए नख हिरण्यकशिपु के हृदय में घुस गये थे ॥ १७ ॥

उसके यज्ञो के घने धुँए ने, स्वय काला होते हुए भी, उसके अपने यश को और अधिक चमका दिया था, वह धूम दिशा (रूप महिलाओं) के सिरों पर की घुघराली केश लटाओ के सदृश था तथा वेदत्रयी (ऋक्, यजु', साम) रूपा वधू के कान मे सुशोभित तमाल-पत्र के सदृश था ॥ १८ ॥

अपनी (निज की) कीर्ति की किरणों से सातों लोकों को श्वेत (प्रकाशित) किये हुए तथा जिसके हवन करने की थकावट से उत्पन्न हुए पसीने को सरस्वती स्वय अपने करकमलों की हथेलियों से पोंछ दिया करती थी, उस (चित्रभानु) से बाण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा॥ २०॥

आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः,

---

द्विजेनेति। इदानीं बाण कथा चिकीर्षुरतितीक्ष्णबुद्धिरप्यहङ्कार निराकुर्वन्नाह—तेनेति। तेन बाणेन द्विजेनेय कादम्बरीरूपा कथा धिया बुद्ध्यैव निबद्धा ग्रथिता। पूर्वं बुद्ध्यारूढीकृत्य पश्चाल्लिखितेति भाव। समुद्रसमकादम्बरीकथोपबन्धने धिय सामर्थ्यं ज्ञात्वापि 'मन्द कवियश प्रार्थी' इत्यादिवद्धियो मान्द्यमेवारोपयति—अक्षतेति। अक्षतमच्छिन्न कण्ठे गळे कौण्ठ्य कुण्ठता यस्या सा तथा तया। कण्ठेऽपि कुण्ठिता किमुत सभायामपीति भाव। पुन कथंभूतया। महेति। महानुत्कृष्टो यो मनोमोहश्चित्तविकलता तेन मलीमसा मलिना चासावन्धा चेति तया। पुन कथंभूतया। अलब्धेति। अलब्धोऽप्राप्तो यो वैदग्ध्यविलासश्चातुर्यलीला तेन मुग्धाप्रगल्भा तया। एतादृश्यापि बुद्ध्या रचिता कथा। अतिद्वयीति विशेषणबलाद् बुद्धेरतितीक्ष्णत्वं फलितम्। द्वयीं बृहत्कथा वासवदत्तां चातिक्रान्तेत्यर्थं॥ २०॥

'प्रसिद्धो वापि वर्ण्यं स्यान्महीपालोऽथवा दशरूपकेऽपि—'प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधापि तत्त्रिधा। प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्य कविकल्पितम्। मिश्र च सङ्करात्' इत्यादेरुक्तभेदाना काव्यनाटकचम्पूना मध्ये 'गद्यपद्यमयी चम्पूर्द्विधा श्लेषवती च या। राजवर्णनमादौ स्यान्नगरीवर्णनं तत। तथा चामुकमन्यस्मिन्न तु तन्नृषु कुत्रचित्॥' यथा—'शूलसम्बन्धो देवतायतनेषु न नृषु' इति नलचम्प्वाम्। तथात्रैवाग्रे 'चित्रकर्मसु वर्णसङ्करो न मनुष्येषु' इत्यादिचम्पूलक्षणयुक्ता कादम्बरीसञ्ज्ञिका कथामारचयति—आसीदिति। शूद्रको नाम राजासीदिति दूरेणान्वय। अथ राजान विशेषयन्नाह—अशेषेति। अशेषा समग्रा ये नरपतयो राजानस्तेषा शिरांस्युत्तमाङ्गानि तै समभ्यर्चित सादरतया गृहीत शासनमाज्ञा यस्य स तथा। सर्वेषामाज्ञापको न त्वाज्ञाकर। अत एवापरो भिन्न पाकशासन इव। इन्द्रसाम्यम्। चतुरिति। चत्वारश्च त उदधयश्च चतुरुदधयस्तेषा माला पङ्क्ति सैव मेखलावधिर्यस्यास्तादृश्या भुव पृथिव्या भर्ता नायक। प्रताप इति। प्रताप कोशदण्डज तेज, अनुराग स्नेह ताभ्यामवनत नम्रीभूत समग्र सामन्तचक्र सामन्तमण्डल स्वदेशपर्यन्तवर्ति राजचक्र यस्य तथा। अन्यदपि लोहचक्रमग्निप्रतापादवनत भवतीति ध्वन्यते। चक्रेति। चक्रवर्ती सार्वभौमस्तस्य यानि

उस ब्राह्मण ने अपनी उस बुद्धि से यह अनुपम कथा रची है जिसकी कण्ठस्थ-कुण्ठता अर्थात् (अभिव्यक्ति शक्ति की) निर्बलता अभी दूर नहीं हुई है, जो (उसके) मन की मदान्धतारूपी कालिमा से अभी तक काली-मन्द (अथवा अन्धी) ही बनी हुई है तथा चातुर्य से प्राप्त होने योग्य लालित्य को न प्राप्त करने के कारण जो अभी तक अपरिपक्व ही है॥ २०॥

(पहले कभी), (दूसरे) सभी राजाओं द्वारा (झुकाये) सिरों द्वारा पूजी गयीं (मानी गयीं) आज्ञाओं वाला, और दूसरा इन्द्र सरीखा, शूद्रक नाम का राजा था। वह चारों समुद्रों की माला रूप परिधि वाली (चारों समुद्रों तक की सारी) भूमि का स्वामी

चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः, मेरुरिव

लक्षणानि सामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादितानि तैरुपेत सहित । पुनस्तमेव विशेषयन्नाह—चक्रधरेति । करकमले हस्तपद्म उपलक्ष्यमाण दृश्यमान शङ्खचक्राकार च रेखोपरेखास्वरूप लाञ्छन चिह्न यस्य स तथा । क इव । चक्रधर इव विष्णुरिव । सोऽपि शङ्खचक्रायुधलाञ्छितकर स्यादित्युपमानोपमेयभाव । हर इवेति । जितो निर्जितो मन्मथजनकत्वान्मन्मथानीन्द्रियाणि येन स तथा । क इव । हर इव शम्भुरिव । सोऽपि जितमन्मथ स्यादित्युभयो साम्यम् । गुह इवेति । अप्रतिहताकुण्ठिता शक्ति· सामर्थ्यं यस्येति स तथा । क इव । गुह इव कार्तिकेय इव । सोऽप्यप्रतिहतशक्ति स्यादित्युभयो साम्यम् । एतत्पक्षे शक्तिरस्त्रविशेष । अत एव 'षाण्मातुर शक्तिधर' इत्यमर । विगतेति । विगतो मानो दर्पो यस्य तद्विमान तथा कृत राजहंसाना श्रेष्ठनृपाणा मण्डल वृन्द येन स तथा । क इव । कमलयोनिरिव विधातेव । एतत्पक्षे विमान देवयान तत्स्वरूपीकृत राजहंसाना पक्षिविशेषाणा मण्डल येन स तथा । हंसाधिरूढत्वादिति भाव· । 'देवयान विमान स्यात्' इत्यमर· । 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैरतिलोहितै' इत्यमर । जलधीति । लक्ष्मी सम्पत्ति शोभा वा । 'लक्ष्मीश्छाया च शोभायाम्' इति हैम । तस्या प्रसूतिरुत्पत्तिस्थान शोभाया वा । क इव । जलधिरिव समुद्र इव । सोऽपि लक्ष्म्या रमाया शोभाया वोत्पत्तिस्थान समुद्रमथनादेव तन्निर्गमात् । तथा च जगद्विभूषितमिति शोभाजनकत्वमिति भाव । गङ्गेति । भगीरथस्य राज्ञ पन्था पितॄणामुद्धारस्तत्र प्रवृत्तो लग्न । क इव । गङ्गाप्रवाह इव स्वर्धुनीरय इव । सोऽपि भगीरथपथप्रवृत्त स्यात्तदनुयायित्वादित्युभयो· साम्यम् । रविरिति । प्रतिदिवस प्रत्यहम् उपजायमान उत्पद्यमान उदय· सम्पत्तेरुद्रेको यस्य स तथा । क इव । रविरिव भानुरिव । सोऽपि निरन्तरमुदयाचलाज्जायमानोद्गम स्यादित्युपमा । मेरुरिति । सकलै समग्रैरर्थिलोकैरुपजीव्यमाना सेव्या पादच्छाया कान्तिर्यस्य स तथा । क इव । मेरुरिव स्वर्णाद्रिरिव ।

था, (उसके) शौर्य के प्रति प्रेम के कारण सारे करद राजा उसको नमस्कार करते थे, वह (अपने शरीर पर) चक्रवर्ती (राजा) के चिन्हों से युक्त था, जिसके कमल सदृश हाथों मे शङ्ख तथा चक्र (आयुध) के विशेष लक्षण स्पष्टतया दिखायी देते हैं उस ('चक्र' धारी) विष्णु की भाँति उस राजा के कमल सदृश हाथो पर शङ्ख तथा चक्र के चिन्ह दिखाई दे रहे थे, कामदेव को जीतने वाले शिव की भाँति उसने अपने प्रणयोन्माद को जीता हुआ था, दबा रखा था, जैसे गुह (कार्तिकेय) की 'शक्ति' (अस्त्रविशेष) अबाधित है वैसे ही उसकी शक्ति (सामर्थ्य) अप्रतिकार्य थी, कमलजन्मा ब्रह्मा ने राजहंसो के सारे मण्डल (परिवार) को अपना विमान बना रखा है—उसने राजहंसो—श्रेष्ठ राजाओं के सारे मण्डल को, (उनके) स्वाभिमान को दबाकर स्वाभिमान से रहित (वि + मानी कृत) किया हुआ था—इस कारण वह ब्रह्मा के सदृश प्रतीत होता था, लक्ष्मी के जन्मस्थान, समुद्र, की भाँति वह सम्पत्ति का स्रोत था, गङ्गा नदी का प्रवाह भगीरथ द्वारा चले गये मार्ग पर चलता है वैसे ही वह भी

सकलोपजीव्यमानपादच्छायः, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः, कर्ता महाश्चर्याणाम्, आहर्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य, प्रवर्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो रसिकानाम्, प्रत्यादेशो

स कथभूत । सकलैरर्थाहृदैवै । अन्येषा तत्र प्रवेशाभावात् । उपजीव्या पादा प्रत्यन्तपर्वतास्तेषा छायातपाभावो यस्य स तथा । 'छाया सूर्यप्रिया कान्ति प्रतिबिम्बमनातप' इत्यमर । दिग्गज इति । अनवरत निरन्तर प्रवृत्त कृत यद्दान जलसहित देयद्रव्य तेनार्द्रीकृत स्तिमित करो हस्तो यस्य स तथा । क इव । दिग्गज इव दिङ्नाग इव । एतत्पक्षे निरन्तरप्रवृत्त प्रचलित यद्दान मद । 'मदो दान प्रवृत्तिश्च' इति कोश । तेन स्तिमित कर शुण्डादण्डो यस्य स तथेत्युपमा । कर्तेति । महाश्चर्याण्यनन्यकृतयुद्धादीनि तेषा कर्ता निष्पादक । आहर्तेति । क्रतूना यज्ञानामाहर्ता कारक । आदर्श इति । सर्वशास्त्राणा समग्रवाङ्मयानामादर्शो मुकुर । तत्र तेषा प्रतिबिम्बितत्वादिति भाव । उत्पत्तिरिति । कलानामिति द्विसप्ततिप्रमिता या कला शिल्पादिरूपास्तासामुत्पत्तिर्जन्मभू । गुणानामिति । गुणा गाम्भीर्यादयस्तेषा कुलभवन परम्परास्थानम् । आगम इति । काव्यामृतेति काव्य कविकर्म तत्सम्बन्धिनो येऽमृतरसास्तेषामागम उद्गमरूप । उदयेति । मित्राणि सुहृदस्तेषा मण्डल समुदायस्तस्योदयशैलोऽभ्युन्नते स्थानम् । पक्षे मित्रमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्योदयशैल उदयाचल । उत्पातेति । अहितजनस्य शत्रुलोकस्योत्पातकेतुर्धूमकेतु । प्रवर्तयितेति । गोष्ठीबन्धाना मधुरकथानां प्रवर्तयिता प्रवर्तक । आश्रय इति । रसिकाना रसवेत्तॄणामाश्रय. आश्रयस्थानम् । प्रत्यादेश इति । धनुष्मता धनुर्धारिणा प्रत्यादेशो निराकर्ता । 'प्रत्यादेशो निरा-

भगीरथ के समान धीर था—मानो भगीरथ के पथ का ही अनुगामी था, प्रतिदिन उदित होने वाले सूर्य की भाँति उसकी उन्नति (उदय) भी प्रतिदिन हो रही थी, सारे (चौदहों) लोक (अपनी स्थिरता के लिये) जिस प्रकार मेरु के समीपस्थ पहाड़ियों की छाया पर निर्भर रहते है उस मेरु की भाँति वह राजा भी ऐसा था कि सारे लोक अपनी रक्षा के लिये उसके पाँवो की छाया पर निर्भर थे, जैसे दिग्गज की सूड (कर) निरन्तर बहते मदजल से गीली रहती है, वैसे ही उसका भी हाथ (कर) निरन्तर दिये जाते दान से सना रहता था, वह बड़े आश्चर्यजनक कार्यों को किया करता था, यज्ञ किया करता था, सारे शास्त्रों का दर्पण (आदर्श) था, सारे शास्त्र उसमे प्रतिबिम्बित थे, वह कलाओ का उत्पत्तिस्थान (उत्साहवर्धक तथा उनका सुधार-कर्ता) था, गुणों का (एक प्रकार से) कुलक्रमागत निवासस्थान ही था, वह काव्य के अमृत सरीखे आनन्दों का स्रोत (आगम) था, वह अपनी मित्रमण्डली का उदयगिरि (उनकी उन्नति का स्रोत) था, जैसे कि उदयपर्वत सूर्यमण्डल के उदय का स्थान होता है । वह अपने शत्रुओं के लिये धूमकेतु, उनके अनिष्ट का सूचक, था,

१. "पादा प्रत्यन्तपर्वता" ।

धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजनन, वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितारातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनारसिंहरूपाडम्बरम्, एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रय च हसति स्मेव वासुदेवम्। अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसपर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य कृपाण-

---

कृति' इति कोश। सर्वधनुर्धरोत्कृष्ट इत्यर्थ। **धौरेय इति**। साहसिकाना सत्ववतां मध्ये धोरेयो धुर्य। **अग्रणीरिति**। विदग्धाना पण्डिताना मध्येऽग्रणीर्मुख्य.। **वैनतेय इति**। विनतेभ्य कृतनतिभ्य आनन्दस्य प्रमोदस्य जनन कर्ता। क इव। वैनतेय इव सुपर्ण इव। सोऽपि विनताया स्वमातु प्रमोदकृत्स्यादित्युभयो साम्यम्। **वैन्य इवेति**। चापो धनुस्तस्य कोटिरग्रभागस्तेन समुत्सारिता निराकृता अरातय एव शत्रव एव कुलाचला कुलपर्वता क्षेत्रसीमावर्तिपर्वता येन स तथा। क इव। वैन्य इव पृथुराज इव। एतत्पक्षेऽरातय कुलाचलाश्चेति द्वन्द्व। शेष पूर्ववत्। पृथुना पूर्वं पर्वताकीर्णां धरित्री विलोक्य धनु कोट्या पर्वतानुत्सार्य भू समीकृतेति पुराणम्।

नाम्नेति। य शूद्रको वासुदेव श्रीकृष्ण हसति स्मेव हास्य चकारेव। कथभूत। नाम्नैवाभिधानश्रवणमात्रेणैव निर्भिन्नानि द्वैधीकृतान्यरातीनां शत्रूणा हृदयानि वक्षासि येन स तथा। कीदृश वासुदेवम्। **विरचितेति**। विरचितो विहितो नारसिहरूपलक्षण एवाडम्बर आटोपो येन स तथा तम्। **एकेति**। एकेनाद्वितीयेन विक्रमेण पराक्रमेणाक्रान्त व्याप्त सकल समग्र भुवनतल विष्टपतल येन स तथा। कथभूत वासुदेवम्। **विक्रमेति**। विक्रम पादविक्षेपस्तस्य त्रय त्रितय तेनायासित सप्राप्तखेदम्। 'आसितम्' इति पाठ आसित स्थितम्। अत्राय भाव—अस्य राज्ञो नामश्रवणादेव वक्षोविदारण भवति। वासुदेवेन तु शत्रुवक्षोविदारणे नृसिंहावताराडम्बरं कृतम्। राज्ञा चैकेनैव विक्रमेण पराक्रमेण सर्व जगदाक्रान्तम्। वासुदेवेन तु भुवनाक्रमणाय विक्रमत्रय कृतमिति हास्ये हेतु.। **अतीति**। यस्य कृपाणधाराजले खड्गधारा-

---

वह साहित्यिक सस्था (गोष्ठीबन्ध) का प्रवर्तक था, रसिको का आश्रयदाता था, उसने (सभी प्रमुख) धनुर्धारियो (की कीर्ति) को धूमिल किया हुआ था—ग्रहण लगा रखा था,[1] वह साहसिको का नेता था, वह पण्डितो—सुसस्कृत व्यक्तियो का—अग्रणी था, गरुड़ जैसे विनता (अपनी माता) को आनन्द देता है वैसे ही वह भी अपने वशवदो को आनन्द देता था, वेनपुत्र (वैन्य) पृथु ने जैसे अपने शत्रुभूत पर्वतो को धनुष के अग्रभाग से उखाड़ फेका था वैसे ही उसने भी अपने धनुष की नोक से पर्वत सरीखे (सुदृढ) शत्रुकुल को नष्ट कर दिया था।

उसने केवल अपने नाम से ही शत्रुओ के हृदयों को चीर कर रख दिया था और अपने एकमात्र (विक्रम) शौर्य द्वारा ही (मानो एक ही पग में) सम्पूर्ण भूमण्डल को जीत कर मानो उस विष्णु का मजाक उड़ाया था कि जिसको (अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के हृदय को

---

१. प्रत्यादेश.—निराकृति —Obscuring.

धाराजले चिरमुवास लक्ष्मीः। यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। यस्य च मदकलकरिकुम्भपीठपाटनं विदधतो

रूपे जले चिर बहुकाल यावल्लक्ष्मी पद्मोवास वसति चक्रे। खड्गबलाल्लक्ष्मी स्ववशीकृतेति भाव । कि कुर्वतीव क्षालयन्तीव प्रमार्जयन्तीव। कम्। अतीति। अतिचिरकालो भूयानतीत काल समयस्तेन लग्न जातम्। पुन कीदृशम्। अतीति। अतिक्रान्ता व्यतीता ये कुनृपतय कदर्थनरपतयस्तेषा सहस्रं तेन सम्पर्क सम्बन्धस्तेन य कलङ्कोऽभिज्ञानम्। अन्योऽपि पङ्कादिकं जलादिना क्षालयतीति ध्वनि । यश्चेति। य शूद्रको भगवतो नारायणस्यानुकरोति। 'कृञ प्रतियत्ने' इत्यनेन कृञ कर्मणि षष्ठी। भगवन्त नारायण सर्वदेवमयत्वेन विश्वात्मकतया चानुकरोति। तत्तुल्यता भजतीत्यर्थं । तदेव दर्शयति—मनसि धर्मेणेत्यादि । अत्र वसतेति वसतापदस्य सर्वत्रान्वयो यथालिङ्गम्। मनसि स्वान्ते धर्मेण वृषेण वसता वास कुर्वता। सदैव धर्मचिन्तनात् कोपे क्रोधे यमेन कृतान्तेन। तत्कालमेव सापराधिना प्राणहरणात्। तथा प्रसादे प्रसन्नतायां धनदेन श्रीदेन। सेवाकृत्समीहिताधिकप्रदानात्। प्रतापे पूर्वोक्तलक्षणे वह्निनाग्निना। समग्रशत्रुदाहकत्वात्। भुजे बाहौ भुवा पृथिव्या। राज्यभारक्षमत्वात्। दृशि चक्षुषि श्रिया लक्ष्म्या। सप्रीतिनिरीक्षणमात्रेणैव तत्सभवात्। वाचि वचने सरस्वत्या भारत्या। अनवरतगद्यपद्याद्यनेकप्रबन्धविधानात्। मुखे वदने शशिना चन्द्रेण। तदनुकारित्वाज्जनाह्लादकत्वाच्च। बले सामर्थ्ये मरुता वायुना। अनिबलत्वात्। तथा प्रज्ञाया प्रतिभाया सुरगुरुणा बृहस्पतिना। नि प्रतिमप्रतिभावत्वात्। एवरूपे सौन्दर्ये मनसिजेन कामेन। मानिनीमानहरणात्। तेजसि प्रतापलक्षणे सवित्रा सूर्येण। शत्रूणा दुर्निरीक्ष्यत्वात्। किविशिष्टस्य नारायणस्य। सर्वेति। सर्वे च ते देवाश्च सर्वदेवास्तत्स्वरूप सर्वदेवमय । अत्र 'प्राचुर्यविकारप्राधान्यादिषु' इति सूत्र आदिशब्दात्स्वरूपार्थेऽपि मयड्ग्रहस्तस्य। प्रकटितेति। प्रकटिता प्रकाशिता विश्वरूपा त्रिजगत्स्वरूपाकृतिराकारो येन स तथा तस्य। अनेन राज्ञस्तत्साम्य सूचित भवतीति भाव । यस्य चेति। यस्य राज्ञ समरनिशासु सङ्ग्रामरात्रिषु राजलक्ष्मीर्वैरिनृपश्रीरभिसारिकेव ध्वान्ते दत्तसंकेतेव समीप सन्निधिमगादागतवती। सकृदित्येकवारम्। पुनर्न गतेति भाव । यस्य कि कुर्वत.। विदधत आचरत.। किम्। मदेति। मदेन दानवारिणा कल मनोज्ञ यत्करिकुम्भपीठ हस्तिशिर पिण्ड-

चीरने के लिये) नृसिंह का बाह्य (दिखाऊ) रूप धारण करना पड़ा था और (सारे ससार को व्याप्त करने के लिये) तीन डग भर कर ससार को कष्ट देना पड़ा था। राजलक्ष्मी उसकी तलवार की धार के विशुद्ध जल में बहुत देर तक रही थी, मानो कि वह (उस जल में) (अपने ऊपर) बहुत देर से लगे हुए, बीते हुए सहस्रों दुष्ट शासकों के सम्पर्क से (आये) कलङ्क को धोती रही थी। इसके अतिरिक्त जो (अपने) मन में धर्म, क्रोध में यम (मृत्यु), कृपा मे कुबेर, शौर्य मे अग्नि, भुजा मे पृथ्वी, दृष्टि में लक्ष्मी, वाणी मे सरस्वती, मुख में चन्द्रमा, बल मे वायु, बुद्धिमत्ता मे बृहस्पति, सौन्दर्य में कामदेव, और अपने तेज में सूर्य के

लग्नस्थूलमुक्ताफलेन दृढमुष्टिनिपीडनान्निष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा, सुभटोरःकपाटविघटितकवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनी करिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपं सकृदगाद्राजलक्ष्मीः। यस्य च हृदिस्थितानपि भर्तॄन्दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाघो दिवानिशं जज्वाल। यस्मिंश्च राजनि जितजगतिपालयति मही चित्रकर्मसु

फलक तस्य पाटन विदारणम्। अर्थाद्वैरिणामित्यर्थ। पुना राजलक्ष्मीं विशेषयन्नाह—आकृष्येति। आकृष्यमाणा समन्तादृगृह्यमाणा। केन। कृपाणेन खड्गेन। इत खड्ग विशिनष्टि—लग्नेति। लग्नानि सम्बद्धानि स्थूलानि स्थविष्ठानि गजसम्बन्धीनि मुक्ताफलानि रसोद्भवानि यस्य स तथा तेन। दृढेति। दृढमुष्ट्या यन्निपीडनम्। अत्र दार्ढ्यमात्रविवक्षया न पुवद्भावनिषेध॥ तस्मान्निष्ठ्यूत निर्गत धारैव जलमिति रूपक तस्य ये बिन्दव पृषत तैरेव दन्तुरेणोदग्रदशनेनेत्युपमा। 'उदग्रदो दन्तुर स्यात्' इति कोश। सुभटोर इति। परस्य ये सुभटा योद्धारस्तेषामुरास्येव कपाटानि तेभ्यो विघटितानि विभिन्नानि यानि कवचानि तनुत्राणि तेषा यत्सहस्र तदेव नैल्यसादृश्यादन्धकारस्तमिस्रं तन्मध्यवर्तिनी तदन्त पातिनी। अथ समरनिशां विशेषयन्नाह—करीति। करिणां गजाना करटानि कपोलानि तेभ्यो गलित च्युत यन्मदजल दानवारि तस्यासारो वेगवान्वर्षस्तेन दुर्दिन मेघज तमो यासु तास्तथा तासु। यस्य चेति। यस्य पूर्वोक्तस्य राज्ञ प्रताप कोशदण्डज तेजस्तदेवानलो वह्निर्दिवानिशमहोरात्र जज्वाल प्रदीप्तो बभूव। कि कर्तुमिच्छुरिव। भर्तॄन् दिधक्षुरिव दग्धुमिच्छुरिव। किंविशिष्टान्भर्तॄन्। हृदिस्थितानपि हृदयवर्तिनोऽपीत्यनेन दाहायोग्यत्व सूचितम्। अथ पूर्वोक्त प्रतापानल विशिनष्टि—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये जनित उत्पादितो दाघो दग्धिर्येन स तथा। कासाम्। रिपुसुन्दरीणा शत्रुवनितानाम्।

बसने के कारण सभी देवताओं से युक्त तथा विविध रूपों (अथवा सम्पूर्ण विश्व) को अपनी आकृति में प्रदर्शित करने वाले भगवान् विष्णु के समान[1] था। और जिसके समीप हाथियों के कपोलों से गिरे मदजल की वर्षा से अन्धकार युक्त हुई (दूसरे राजाओं की) राजलक्ष्मी (अन्धेरे मे आने का संकेत देने वाली) अभिसारिका-सी युद्ध समय की रात्रियोंमे कितनी ही बार, श्रेष्ठ योद्धाओं के (कपाट सदृश) चौडे वक्ष स्थलो से खसोट कर लिये हुए सहस्रों (काले) कवचो रूप अन्धकार मे लिपटी हुई जिसकी उस तल्वारसे खिंची हुई-सी प्राय आयी थी-कि जिस पर राजा द्वारा कामोन्माद से क्रोधाविष्ट हस्तियो के मस्तको को विदीर्ण करते समय (हस्तियों के मस्तकों पर लगे हुए मोतियो मे से) मोटे-मोटे मोती लग गये थे तथा जो दृढ (मुष्टि) से कसी पकड़ से दबाने पर निकली हुई अपनी धार रूप जल के बिन्दुओं से (जड़ी जाने के कारण) दन्तुर सी प्रतीत हो रही थी। और उसका शौर्य रूप अग्नि, उसके शत्रुओं की विधवा स्त्रियों तक को भीतर ही भीतर झुलसाता हुआ दिन रात प्रज्वलित रहता था मानो कि वह उनके हृदयों मे भी स्थित (अर्थात् सजो कर रखी हुई पतियों की मूर्तियों) तक को जला देना चाहता था। और जगत् को जीतनेवाले जिस राजा के पृथ्वी का पालन करते

1. नारायणस्य अनुकरोति, 'कृञ प्रतियत्ने' इत्यनेन कर्मणि षष्ठी।

वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः,

---

कीदृशीनाम् । वियोगिनीनामपि वियुक्तानामपि पूर्वमेव भर्तृव्यापादनात् । एतेन हृदयान्तर्गत शत्रुगण यत्प्रतापो न सहत इति तत्प्रतापाधिक्यवर्णनेन राज्ञ आधिक्यवर्णनम् । पुनस्तदाधिक्य वर्णयन्नाह—**यस्मिन्श्चेति** । यस्मिन्राजनि जितजगति निर्जितविष्टपे मही पृथ्वीं पालयति शासति सत्येतानि वस्तून्येतेषु स्थलेष्वासन्बभूवु । न प्रजानामित्यन्वय । तान्येवाह—**चित्रेत्यादि** । चित्रकर्मस्वालेख्यक्रियासु वर्णा रक्तपीतादयस्तेषां सङ्करा परस्परसम्बन्धा । चित्रकर्मणि सुवर्णसङ्करा इति वा । सुवर्णमिश्रालेख्यानीत्यर्थ । द्वितीयपक्षे वर्णा ब्राह्मणादयस्तेषा सङ्करा । अन्यतोऽन्योत्पत्तिरित्यर्थ । **रतेष्विति** । रतेषु मैथुनेषु केशग्रहा । नान्यत्र कलहेषु । तदभावात् । **काव्येष्विति** । काव्येषु कविकर्मसु दृढबन्धा कठिनबन्धा । नान्यत्र । अपराधाभावात् । **शास्त्रेष्विति** । शास्त्रेषु सिद्धान्तेषु चिन्ता चिन्तनम् । नान्यत्र । समग्रवस्तुन सद्भावात् । **स्वप्नेष्विति** । स्वप्नदशाया विप्रलम्भा वियोगा । नान्यत्र । पुरुषायुषजीवित्वाज्जनस्येति भाव । **छत्रेष्विति** । छत्रेष्वातपत्रेषु कनकदण्डा सुवर्णयष्टय । नान्यत्र । कनकदण्डा' दण्डेन सुवर्णग्रहणम् । स्वस्वमार्गानतिक्रमेण तासा प्रवर्तनात् । **ध्वजेष्विति** । ध्वजेषु पताकासु प्रकम्पा

हुए[1] प्रजाओं मे वर्णों अर्थात् रगों का मिश्रण केवल चित्रकारियों में था (जातियो का परस्पर मिश्रण अथवा वर्णसकर नहीं था), बालों को पकड़ने की घटनाएँ (केशग्रह) (केवल) कामुक क्रीड़ाओ मे होती थीं (लड़ाई झगडों मे नहीं, क्योकि वे तो होते ही नहीं थे), कठोर अर्थात् अशिथिल (पदबन्ध) पदव्यवस्थापन (केवल) काव्यों मे होता था (अपराधो के अभाव से कठोर कारावास होते ही नहीं थे), चिन्ता अर्थात् विचार विमर्श (केवल) शास्त्र-सम्बन्ध से ही होता था (दूसरी किसी प्रकार की चिन्ता तो प्रजाओं को होती ही नहीं थी), विप्रलम्भ अर्थात् पति पत्नी के वियोग (केवल) स्वप्नों में ही होते थे (अन्यत्र कहीं प्रजाओ मे परस्पर विप्रलम्भ अर्थात् धोखे नहीं होते थे), सोने के दण्ड (केवल) छतरियों में लगाये जाते थे (अपराधियो के न रहने से अन्यत्र जुर्माने के रूप में सोना—सुवर्णदण्ड—नहीं देना पड़ता था), (केवल) पताकाएँ ही काँपती थीं (दुष्कर्म करने वाले नहीं थे—फिर अन्यत्र कम्प अथवा भय कहाँ होता ?), राग अर्थात् मधुर स्वर की अभिव्यक्तियाँ केवल गीतों में ही होती थीं (अन्यत्र कहीं भी क्रोध आदि दुष्ट आवेगों की अभिव्यक्ति नहीं होती थी), मद अर्थात् कामोन्माद के विकार अथवा प्रभाव केवल हाथियों मे ही थे (अन्यत्र कहीं भी मदविकार अहकार के परिणाम नहा थे, क्योंकि अहकार किसी में था ही नहीं), गुण (अर्थात् उसकी रस्सी) की (छेद) टूटफूट केवल धनुषों में ही थी (अन्यत्र

---

१ यस्मिन् राजनि महीं पालयति चित्रकर्मसु वर्णसङ्करा आसन् 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इस सूत्र से 'राजन्' शब्द में सप्तमी ।

रतिकलहेषु दूतप्रेषणानि, सार्यक्षेषु शून्यगृहाः न प्रजानामासन्। यस्य च परलोकाद्भयम्, आन्तःपुरिकाकुन्तलेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्, अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरङ्गेषु कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।

प्रकर्षेण वेल्लनम्। नान्यत्र। भीतेरभावात्। **गीतेष्विति**। गीतेषु गानेषु रागा वसन्तादय शास्त्रीया देशीया धनाश्रीप्रभृतयस्तेषा विलसितानि चेष्टितानि। नान्यत्र रागा क्रोधादयस्तेषां विलसितानि हननादिरूपाणि। तादृग्रागद्वेषाभावात्। **करिष्विति**। करिषु हस्तिषु मदो दान तस्य विकारा विकृतय। नान्यत्र मदोऽहङ्कारस्तस्य विकारास्तत्तद्विचेष्टितानि। मदो रागस्तस्य विकारा इति वा। सर्वदा गुरुवचनामृतास्वादमेदुरितमानसत्वात्। **चापेष्विति**। चापेषु धनुःषु गुणस्य ज्यारूपस्य छेद त्रुटनम्। नान्यत्र गुणस्य शौर्यादेर्विच्छेद। सर्वदा सदाचारित्वात्। **गवाक्षेष्विति**। गवाक्षेषु वातायनेषु जालमार्गा वातागमहेतवो जालिका। नान्यत्र कुवेणीस्थापनपथा। सर्वदाभयदानप्रवृत्तत्वात्। **शशीति**। शशी चन्द्र, कृपाण खड्ग, कवच सनाह, एतेषा द्वन्द्व। एषु कलङ्काश्चिह्नानि। नान्यत्र कुलमालिन्यादिहेतवो व्यभिचारादिदोषा। **रतिकलहेष्विति**। रतिकलहेषु कामकेलिषु विग्रहेषु दूतप्रेषणानि सञ्चारकगमनानि। नान्यत्र। सर्वदा प्रबलविरोधिनोऽभावात्। **सार्यक्षेष्विति**। सारय खेलिन्य, अक्षा पाशका,

---

कहीं भी गुणो का भग—उनकी विहीनता नहीं थी), (वायु के आवागमन के लिये) जालीयुक्त मार्ग (केवल) झरोखो मे ही थे (अन्यत्र प्रजाओं मे जालमार्ग अर्थात् कपटपूर्ण व्यवहार थे ही नहीं), कलङ्क अर्थात् धब्बे (केवल) चन्द्रमा पर, तलवारों पर तथा कवचों पर ही लगते थे (प्रजा मे चरित्रों पर अथवा कुलों के नामों पर कलङ्क लगते ही नहीं थे), दूतों का सम्प्रेषण—दूत भेजना—(केवल) प्रेम कलहों मे ही होता था (युद्ध आदि के लिये दूत भेजना नहीं पड़ता था, क्योंकि राजा का कोई शत्रु ही नहीं था), खाली घर (वर्ग) केवल शतरञ्ज के खिलाड़ियों की बिसातों में ही दिखायी देते थे (प्रजाओं के घर सन्तानविहीनता अथवा छोड़कर भाग जाने से खाली नहीं होते थे) और जिस राजा को भय (केवल) परलोक का ही था, भग (घुँघरालापन) (केवल) उसके अन्तःपुर की स्त्रियों के बालों मे ही था, (अन्यत्र कहीं भी भङ्ग अर्थात् नियम का विपर्यय नहीं था), मुखरता—टनटनाहट—केवल नूपुरों में थी (अन्यत्र कहीं भी मुखरता अर्थात् वाचालता नहीं थी), हस्तग्रहण (केवल) विवाह (सस्कारों) मे ही होता था (प्रजाओं से कर नहीं लिया जाता था), आँसुओं का गिरना (केवल) निरन्तर होनेवाले यज्ञों की अग्नि के धुँए से होता था (शोकादि के कारण आँसू नहीं बहते थे), कोड़ों की मार (केवल) घोड़ों पर ही होती थी (अपराधियों के न होने के कारण अन्यत्र कोड़े नहीं मारने पड़ते थे), धनुष की टकारध्वनि केवल कामदेव में होती थी (योद्धाओं के बाणों का शब्द होता ही नहीं था, क्योंकि प्रजा को कोई भय ही नहीं था)।

तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी, त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया जलावगाहनागतजयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसन्ध्यायमानसलिलयोन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरीकृत - कूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत् ।

तेषु शून्यगृहा शून्यस्थानानि । नान्यत्रोद्वसगृहाणि । राजदेयद्रव्यजनितपीडाभावात् । यस्य चेति । यस्य राज्ञ । अभूदिति क्रिययान्वितम् । कर्मीभूतमाह—भयमिति । परलोकादेव जन्मान्तरादेव तत् । न तु शत्रुलोकात् । तथा यस्य राज्ञ । अन्त पुरे भवा आन्त पुरिका । भवार्थे ठक् । तासा नायिकाना कुन्तलेषु केशेषु भङ्गो वक्रता । नान्यत्र । तथा नूपुरेषु हसकेषु मुखरतानुरणनरूपा । न तु प्रजासु मौखर्यं वाचालत्वम् । विवाहेष्विति । विवाहेषूपयामेषु करग्रहण हस्तग्रहणम् । न तु प्रजासु करो राजदेयद्रव्य तद्ग्रह । अनवरतेति । अनवरत निरन्तर मखाग्निधूमेन यज्ञाग्निधूमेनाश्रुपातो नेत्रजलच्युति । न तु शोकादिना । तुरङ्गेति । तुरङ्गेष्वश्वेषु कशा चर्मदण्डस्तस्या अभिघात प्रहार । नान्यत्र । मकर इति । मकरध्वजे कन्दर्पे चापस्य धनुषो ध्वनि । अन्यत्र न भयाभावात्तदारोपणमिति भाव ।

तस्येति । तस्य च राज्ञो राजधान्यासीदित्यन्वय । ता विशेषयन्नाह—कलीति । कलिकालाद्यद्भय त्रासस्तस्मात्पुञ्जीभूत समुदायीभूत यत्कृतयुग तदनुकरोतीत्येवशीला या सा । विस्तीर्णेति । विस्तीर्णा विपुला । केव । त्रिभुवनेति । त्रयाणां भुवनाना समाहारस्त्रिभुवन तस्य प्रसवभूमिरुत्पत्तिस्थल धरित्री तद्वदिव । परीति । परिगता सङ्गता । कया । वेत्रवत्या नद्या । अथ नदीं विशिनष्टि—मज्जन्निति । मज्जन्त्य स्नान्त्यो या मालवविलासिन्योऽवन्तिकामिन्यस्तासा यानि कुचतटानि पयोधरस्थलानि तेषामास्फालनेनाघातेन जर्जरिता क्षीणा ऊर्मिमाला कल्लोलपङ्क्तयो यस्या सा तथा तया । अत्र कुचानामतिकाठिन्य व्यङ्ग्यम् । जलेति । जल पानीय तस्यावगाहनमवलोडन तदर्थमागता. समायाता जयकुञ्जरा परदलदलनसमर्था हस्तिनस्तेषा कुम्भा शिर पिण्डा तेषु शोभाकृद्यत्सिन्दूर नागज तेन सन्ध्यायमान सन्ध्यावदारक्त सलिल जल यस्या सा तथा तया । उन्मदेति । उन्मदानां प्रबलमदाना कलहसाना कादम्बाना यानि कुलानि तेषा य कोलाहलोऽनभिव्यक्तध्वनिस्तेन मुखरीकृत प्रतिध्वन्युक्त कूल सैकत यस्या सा तथा तया । अत्र विस्तृतकमलस्वच्छपानीयादि व्यङ्ग्यम् । किमभिधाना राजधानीत्याशयेनाह–विदिशेति । विदिशेत्यभिधान यस्या सा तथा ।

उस राजा की राजधानी विदिशा नाम की नगरी थी। वह नगरी कलियुग के भय से (एक स्थान पर) एकत्रित हुए सत्ययुग-के समान थी (क्योंकि उसके निवासी धर्म का पालन करते थे), वह (दूर-दूर तक) फैली हुई थी, मानो तीनों लोकों की जन्मभूमि ही हो, और उस वेत्रवती नदी से घिरी हुई थी कि जिसकी लहरें (उसमें) स्नान करती मालव महिलाओं के स्तनों पर टकराकर मन्द पड़ जाती थीं, जिसका जल स्नान के लिये आये (राजा के) विजयी हाथियों के मस्तकों के सिन्दूर से सन्ध्या-सा लाल-लाल दिखायी देता था और जिसका तट मदमस्त कलहंसों के कोलाहल से गूँजता था।

स तस्यामवर्जिताशेषभुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेकभूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलो वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः समानवयोविद्यालङ्कारैरनेक-

स तस्यामिति। तस्या नगर्यां स राजातिचिर बहुकाल प्रथम आद्ये वयस्यवस्थायां सुख सात यथा स्यात्तथोवास वास चक्र इत्यन्वय । अथ राजान विशेषयन्नाह—**विगतेति**। विगतो दूरीभूतो यो राज्यचिन्ताभारस्तेन निर्वृतो निष्पन्नप्रयोजन । तत्र हेतुमाह—**अवर्जितेति**। अवर्जितानि स्वायत्तीकृतान्यशेषाणि समग्राणि भुवनमण्डलानि येन तस्य भावस्तत्ता तया। **द्वीपेति**। एकस्माद् द्वीपादन्ये द्वीपा द्वीपान्तराणि तेभ्य आगता समायाता येऽनेके बहवो भूमिपाला राजानस्तेषा मौलय किरीटानि शिरासि वा तेषा माला स्रज पङ्क्तयो वा ताभिर्लालित क्रीडित चरणयुगल पादयुग्म यस्य स तथा। किं कुर्वन्। उद्वहन्नुत्पाटयन्। (बिभ्रत् ?) किम्। भुवनभार जगद्धीवधम्। केन। भुजेन बाहुना। किमिव। वलयमिव बाहुभूषणमिव। कया। लीलया क्रीडया। स्वल्पप्रयासेनेत्यर्थ। किंविशिष्ट स। **परीति**। परिवृत परिवेष्टित। कै। अमात्यैर्मन्त्रिभि। 'अमात्य सचिवो मन्त्री धीसख' इति कोश। किं कुर्वद्भिस्तैर्मन्त्रिभि। उपहसद्भिरुपहास कुर्वद्भि। कम्। अमरगुरुमपि बृहस्पतिमपि। कया। प्रज्ञया बुद्ध्या। अथ मन्त्रिणो विशिनष्टि—**अनेकेति**। अनेके च ते कुलक्रमागताश्चानेककुलक्रमागता। कुलपारम्पर्यागतैर्न त्वाधुनिकैरित्यर्थ। **असकृदिति**। असकृन्निरन्तरमालोचित निदिध्यासित यन्नीतिशास्त्र नृपोचिताचारबोधको ग्रन्थस्तेन निर्मलानि स्वच्छानि मनासि येषां ते तथा तै। **अलुब्धैरिति**। अलुब्धै अलोलुपै। स्निग्धैर्वत्सलै। 'स्निग्धस्तु वत्सल' इति

वह राजा अपनी युवावस्था मे उस नगरी म बहुत दिनो तक सुखपूर्वक रहा। सारे ससार को (पहले ही) जीत लेने के कारण अपने राज्य की चिन्ता के भार से मुक्त हुआ वह प्रसन्न था, (उसको श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये उसके समीप) दूसरे देशों से आये अनेक राजाओं के मुकुटों की पक्तियों[1] से उसके दोनो पॉव चूमे जाते थे[2], वह अपनी भुजा पर ससार के भार (अर्थात् उत्तरदायित्व) को इतनी सरलता से धारण किये हुए था जैसे कि वह अपनी भुजा पर (किसी हल्के) ककण को पहने हुए हो, वह ऐसे मन्त्रियों से घिरा रहता था कि जो अपनी (अधिक) बुद्धिमत्ता से देवताओं के उपदेष्टा गुरु बृहस्पति का भी उपहास करते थे। वे अनेक थे और कुल परम्परा से नियुक्त थे, एक से अधिक बार[3] अर्थात् सम्यक्तया अधीत राजनीति शास्त्रों से उनके मन परिष्कृत हो गये थे, वे लोभी नहीं थे, अनुरागी तथा बुद्धिमान् थे, वह राजा ऐसे राजकुमारो के साथ सुखी था[4] कि जो आयु, (विद्या) गुणा और आभूषणों मे उसके समान थे, राज्याभिषिक्त राजकुलो में उत्पन्न हुए

१ मौलिमाला। २ अर्थात् द्वीप द्वीपान्तरों के राजा उसके वशवद थे। ३. असकृत्। ४ रममाण अर्थात् विविध प्रकार के आमोद प्रमोद मे व्यस्त रहता था।

मूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैरखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रभावानुरक्तहृदयैरग्राम्योपहासकुशलैरिङ्गिताकारवेदिभिः काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैरतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभिरसकृद्दलितसमदरिपुगजघटापीठबन्धैः केसरिकिशोरकैरिव विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास। तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकल-

---

कोश । प्रबुद्धै पण्डितै । पुन कि कुर्वाणो नृपति । राजपुत्रैर्नृपतनयै सह रममाण क्रीडा कुर्वाण । इतो राजपुत्रान्विशेषयन्नाह—**आत्मन इति** । आत्मन स्वकीयस्य प्रतिबिम्बैरिव प्रतिच्छायैरिव । सर्वदा तदनुयायित्वात् । **समानैरिति** । समाना सदृशा, वयोवस्थाविशेषा, विद्याश्चतुर्दश प्रतीता, अलङ्कारा विभूषणानि येषा ते तथा ते । **अनेकेति** । अनेके सहस्रशो ये मूर्धाभिषिक्ता कृताभिषेका पार्थिवा राजानस्तेषा कुलानि वंशास्तेभ्य उद्गते प्रभवै । **अखिलेति** । अखिला समग्रा या कला विज्ञानानि तासा कलापा समुदायास्तेषां यदालोचन विमर्शन तेन कठोरा शास्त्रे दृढा मतिर्बुद्धिर्येषा ते तथा तै । एतेन मन्त्रदाढ्यं सूचितम् । **अतीति** । अतिप्रगल्भै प्रतिभान्वितै । 'प्रगल्भ प्रतिभान्विते' इति कोश । **कालेति** । कालविद्भि समयज्ञै । अवसरज्ञैरिति यावत् । **प्रभावेति** । प्रभावो माहात्म्य तेनानुरक्तान्यासक्तानि हृदयानि चेतासि येषा ते तथा । **अग्राम्येति** । अग्राम्यो नागरिको य उपहासो नर्मवचो विलासस्तत्र कुशलैश्चतुरै । 'कुशलश्चतुरोऽभिज्ञ –' इति कोश । **इङ्गितेति** । इङ्गित चेष्टाविशेष आकार आकृति तौ विदन्तीत्येवशीलास्ते तथा ते । **काव्येति** । काव्य निपुणकविकर्म,

---

थे, सभी विविध कलाओ के विवेचन से—अध्ययन से—जिनकी बुद्धियाँ पूर्णतया परिपक्व[1] हो चुकी थीं, जो अत्यन्त प्रतिभाशाली थे, (किसी काम को करने के लिये) उचित काल अर्थात् अवसर को पहचानते थे, अपने हृदयो से शौर्य[2] के अनुरागी थे, अशिष्टतारहित विनोद (करने) मे कुशल थे, विचारों[3] अर्थात् भावनाओं और बाह्य आकार प्रकारों को समझते थे, काव्य नाटक कथा उपन्यास चित्रकारी (मूल की) व्याख्या आदि की रचना करने में विशेष योग्य थे, जिनके कधे, जघाएँ और भुजाएँ—(आदि अग) बहुत कठोर और मासल थे, जिन्होने अनेक बार क्रुद्ध, (अपने) शत्रुहस्तियों की टुकड़ियों के चौड़े मस्तकों को[4] विदीर्ण किया था, जो (शौर्य मे) सिंह शावको सरीखे थे, यद्यपि एकमात्र शौर्य (के कर्म) मे ही प्रसन्न रहते थे तोभी वे (उचित मात्रा में) विनय को भी निभाते थे, (सक्षेप यह है कि) जो मानो उसके अपने ही (इतने सारे) प्रतिबिम्ब थे। और वह चूंकि अतिमात्रा मे विजयो का इच्छुक था, असाधारण शूरवीर था इस कारण स्त्री जाति[5]

---

१ कठोर। २. प्रभाव। ३ इंगित। ४. पीठबन्ध का अर्थ मांसपेशियों को बांधनेवाली शिरायें होना चाहिये। (अनु) ५. स्त्रैणम् स्त्रीसमूहम्' 'स्त्रीपुंसाभ्याम्' इति तद्धितार्थेषु नञ् ।

यतः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवाऽऽसीत्सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्यन्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने। स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्न-

अवस्थानुकृतिर्नाटकम्, आख्यानकानि चूर्णकानि, आख्यायिका वासवदत्तादि, आलेख्यानि चित्रकर्माणि, व्याख्यानान्यर्थनिर्वचनानि, इत्यादिका या क्रिया कार्याणि तासु निपुणैर्दक्षैः। 'निष्णातो निपुणो दक्षः' इति कोशः। अतीति। अतिकठिना अतिकठोरा पीवरा पुष्टा स्कन्धा बाहुशिरास्युरवो विस्तीर्णा बाहवश्च येषां ते तथा तैः। असकृदिति। असकृन्निरन्तरमवदलिता मर्दिता समदा मदयुक्ता या रिपुगजघटा शत्रुद्विपपङ्क्तयस्ता एव पीठबन्धा स्थलविशेषा यैस्ते तथा तैः। केसरीति। केसरिणां सिंहानां किशोरकैरिव बालैरिव। अत्र किशोरशब्दोऽल्पवयसि सामान्येन प्रयुक्तः। 'किशोरोऽल्पवया हयः' इति तु विशेषो ग्रन्थकृता नाश्रितः। विक्रमैरिति। विक्रम एव पराक्रम एवैकोऽद्वितीयो रसो येषां ते तथैवविधैरपि। विनयेन प्रश्रयेण व्यवहारो व्यवहरणं विद्यते येषां ते तथा तैः। एतेन शक्तौ सत्यामपि विनयाधिक्यं सूचितम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तस्य चेति। तस्य राज्ञः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि। अत्र वृद्धत्वापेक्षया वयसः प्राथम्यं ज्ञेयम्। अन्यथाग्रेतनेनान्वयानुपपत्तिः। एवंविधेऽवरोधजने सत्यपि सुरतसुखस्योपरि निधुवनमात्रस्योपरि द्वेष इव मत्सर इवासीद् बभूव। किं कुर्वतो राज्ञः। आकलयतः सम्भावयतः। किम्। स्त्रैणं स्त्रीसमूहम्। तदेव विशिनष्टि—लघ्विति। लघु तुच्छा वृत्तिर्वर्तनं यस्य तत्। किमिव। तृणमिव यवसमिव। एतेन तासामकिञ्चित्करत्वं सूचितम्। कया हेतुभूतया। अतीति। अतिशयेन विजेतुमिच्छुर्विजिगीषुस्तस्य भावस्तत्ता तया। तद्रसाक्षिप्तचेतस्कत्वेन कामोत्पत्तेरसम्भवात्। पुनर्हेत्वन्तरं प्रतिपादयन्नाह—महेति। महासत्त्वमतिशायि धैर्यं (यस्य सः) ? तस्य भावस्तत्ता तया। प्रायशो महासत्त्वस्य सिंहवत्स्वल्प एव कामः स्यात्। किंविशिष्टस्य राज्ञः। रूपवतोऽपि सौन्दर्यवतोऽपि। एतेन युवतीमनउन्मादकत्वेऽपि तदभिलाषाभाव इति विभावनोक्तिः। अत्रापिशब्दो विरोधालङ्कारद्योतनार्थः। एतादृशोऽपि विषयसुखोपरत इति विरोधः। पुनरेव राजानं विशेषयन्नाह—सन्तानार्थिभिरिति। सन्तानमपत्यं तदेवार्थः प्रयोजनं विद्यते येषां ते तथा तैरमात्यैः सचिवैरपेक्षितस्यापि वाञ्छितस्यापि। एतेन सचिवानुकूल्यं दर्शितम्। अथावरोधजनं विशेषयन्नाह—रूपेति। रूपं सौन्दर्यम्, विलासा विलसनानि तैरुपहसिता हास्यास्पदीकृता रतेः कामस्त्रियो विभ्रमा भ्रूसमुत्क्षेपा येन स तथा तस्मिन्। लावण्येति। लावण्यं लवणिमा तद्वति।

(अथवा स्त्रीत्व) को तिनके के समान अति तुच्छ (सर्वथा महत्त्वहीन) समझता था (और इसीलिये) युवा होते हुए भी, अत्यन्त सुन्दर होते हुए भी उसको सन्तान चाहने वाले मन्त्रियों द्वारा अभीष्ट भी काम-क्रीडाओं (से उपलब्ध सुख) से मानो घृणा ही थी—यद्यपि उसके रनिवास की स्त्रियाँ (अपने) रूप तथा हाव-भाव से रति की काम-क्रीडाओं[1] तक को लजाती थीं, सुन्दर थीं, विनम्र थीं, कुलीन थीं और आकर्षक थीं और वह अपने मित्रों से घिरा रह कर (विविध कार्यों में व्यस्त रहकर) अपना दिन व्यतीत कर देता था—कभी तो वह स्वयं

1. रतिविभ्रमा।

वलयो घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागतमुनिजनचरणशुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतकबिन्दुमतीगूढ-

विनयेति। विनयोऽभ्युत्थानादिरूपस्तद्युक्ते। एतेन तदानुकूल्य सूचितम्। अन्वयेति। अन्वयो वश स विद्यते यस्य स तथा तस्मिन्। अत्रास्त्यर्थे (प्राशस्त्यार्थे ?) वतु। सुवशज इत्यर्थ। अत्र प्रौढकुलोत्पन्नत्वेन रूपलावण्यातिशयत्व व्यङ्ग्यम्। हृदयेति। हृदयस्य चित्तस्य हारिण्याक्षेपके। अनेन सर्वजनस्पृहणीयत्व व्यङ्ग्य सूचितम्। स कदाचिदिति। स राजा दिवसमनैषीदिति-नायेति सर्वत्र सम्बध्यते। केन। कदेति। कदाचित्कस्मिंश्चित्प्रस्तावे। गीतनृत्यवाद्यत्रय प्रेक्षणार्थे कृत सगीतकमुच्यते तत्प्रसङ्गेन। तत्सम्बन्धेनेत्यर्थ। इतो राजान विशेषयन्नाह—अनवरतेति। अनवरत निरन्तर दोलायमान कम्पमान रत्नवलय कङ्कण यस्य स तथा। घर्घरिकेति। घर्घरिका वाद्यविशेषस्तस्या आस्फालन वादन तेन य प्रकम्पश्चलन तेन झणझणायमानो झणझणेति शब्द कुर्वाणो मणिकर्णपूरो मणिखचित कर्णालङ्कारो यस्य स तथा। स्वयमिति। स्वयमात्मनैवारब्ध विहित मृदङ्गवद्वाद्य वादित्र येन स तथा। उभयहस्ताभ्या तद्वादनादिति भाव। पुन कदाचित्। मृगयेति। मृगयाखेटकस्तस्या व्यापारेण व्याहृत्या। अविरलेति। अविरलमविच्छिन्न विमुक्ता क्षिप्ता ये शरा बाणास्तेषामासारो वेगेन वर्षस्तेन शून्यीकृत कानन वन येन स तथा। अत्र समग्रवनचारिव्यापादन व्यङ्ग्यम्। आबद्धेति। आबद्धमारचित विदग्धाना प्रेक्षावता मण्डल येन स तथा। कदेति। काव्य पूर्वव्यावर्णितस्वरूपं, प्रबन्धा कथास्तेषां रचनेन ग्रथनेन। एतेन राज्ञोऽपि पण्डितजनानुरागित्व प्रेक्षावत्त्व च सूचितम्। पुन केन। शास्त्रेति। शास्त्राणा न्यायादीनामालापेनापृच्छनेन। 'आपृच्छालाप सम्भाष' इति कोश। पुन केन। आख्यानकेति। आख्यानक व्यक्तकथा, आख्यायिका वासवदत्तादिका, इतिहास पुरावृत्तम्, पुराण मत्स्यादि, तेषामाकर्णनेन श्रवणेन। कदाचिदिति। आलेख्य चित्रकर्म तस्य विनोदेन क्रीडयेत्यर्थ। पुन केन। वीणयेति। वीणा विपञ्ची तद्वादनेन तच्छ्रवणेन चेत्यर्थ।

मृदङ्ग बजाता हुआ सगीत में व्यस्त रहता था,—इस समय उसके रत्न (खचित) कगन निरन्तर हिलते रहते थे तथा (उसके द्वारा बजायी गयी) घर्घरिका (एक प्रकार का बाजा) के बजाने से हुए कम्पन से (उसके) रत्नजटित कुडल (कर्णाभूषण) झणझणाते रहते थे—, कभी वह शिकार खेलने में व्यस्त रहता था और (इस समय) वह निरन्तर छोड़े जाते बाणों की वर्षा से जगल को (हिरण आदि शिकार के पशुओं से) शून्य कर देता था, कभी वह पण्डितमण्डली को जोड़कर काव्यरचना में व्यस्त रहता था, कभी शास्त्रचर्चा में व्यस्त रहता था, कभी कथाओं, उपन्यासों, इतिहासों और पुराणों को सुनता रहता था, कभी चित्रकारी से मन बहलाता रहता था, कभी बीणा बजाने लगता था, कभी (अपने से) भेंट करने आये मुनियों की चरणसेवा में लगा रहता था, और कभी अक्षरच्युतक, मात्रा—

चतुर्थपादप्रहेलिकाप्रदानादिभिर्वनितासम्भोगसुखपराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत् । यथैव च दिवसमेवमारब्धविविधक्रीडापरिहासचतुरैः सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत् ।

एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसम्पुटभिदि किञ्चिन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वावलम्बिना

पुन केन। दर्शनेति। दर्शनार्थं विलोकनार्थमागता प्राप्ता ये मुनिजना साधुलोकास्तेषा चरणशुश्रूषा पादसपर्या तया। पुन केन। अक्षरेति। अक्षरस्य वर्णस्य च्युतिर्यत्र तदक्षरच्युतकम्। यथा—‘कुर्वन्दिवाकराश्लेष दधच्चरणडम्बरम्। देव यौष्माकसेनाया करेणु प्रसरत्यसौ ॥’ इति। अत्र करेणुपदात्ककारच्युतौ द्वितीयार्थप्रतीति। मात्रायाश्च्युतिर्यत्र तन्मात्राच्युतकम्। यथा—‘मूलस्थितिमध कुर्वन्पात्रैर्जुष्टो गताक्षरे। विट सेव्य कुलीनस्य तिष्ठत पथिकस्य स ॥’ इति। विटपदादिकारमात्राच्युतौ वटस्यार्थस्य प्रतीति। पद्यवर्णसख्यया बिन्दुमात्रव्यवस्थापनेन तद्वर्णोपलब्धि ‘बिन्दुमती यथा—‘◌ि◌◌◌◌ू◌ा◌◌ ◌ि◌ ि◌◌ो ◌ु-◌ु◌ी◌ु । ◌◌ु◌◌◌ि ◌ु◌ू◌ा◌ु◌◌◌◌ी◌◌◌ो◌◌◌◌ू ॥’ इति। एतत्पद्य यथा—‘त्रिनयनचूडारत्न मित्र सिन्धो कुमुद्वतीबन्धु। अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्र ॥’ गूढो गुम्फश्चतुर्थ पादो यस्य तद् गूढचतुर्थपादं चित्रम्। एतदुदाहरण विदग्धमुखमण्डनादवसेयम्। प्रहेलिका प्रवह्लिका। सा शाब्दी, आर्थी च। आद्योदाहरणं यथा—‘पयस्विनीना धेनूना ब्राह्मण प्राप्य विशतिम्। ताभ्योऽष्टादश विक्रीय गृहीत्वैका गृह गत ॥’ अत्र धेन्वा ऊना धेनूना ता धेनूनामिति विशतेर्विशेषणनार्थावगम सुगम। आर्थी यथा—‘जइ सासुआइ भणिआ पियवासघरमि दीवय देसु। ता कीस मुद्धमुही हिययमि निवेसए दिट्ठिम् ॥’ एतेन सर्वदा मम हृदयान्तर्वर्तित्वेन मम हृदयमेव भर्तुर्वासगृहम्। तेन तत्र दीपकरणानर्हत्वमिति ज्ञापितम्। एतासा प्रदान समर्पणम्। आदिशब्दात्स्वात्मना तन्निर्माणं च तै। अथ नृप विशेषयन्नाह—वनितेति। वनिताना योषितां य सम्भोग उपभोगस्तज्जनितं यत्सुखं सातं तस्मात्पराङ्मुखोऽनभिमुख। सुहृद्भि सज्जनैर्मित्रैर्वा परिवृत. परिवेष्टित। यथैवेति। यथा येन प्रकारेण दिवस वासरमनैषीत्। एव तथैव निशा त्रियामामपि। सुहृद्भिर्मित्रैरुपेत सयुत। कीदृशै। आरब्धेति। आरब्धा प्रारब्धा ये विविधक्रीडासु परिहासास्तेषु चतुरैर्दक्षै। अनैषीद्गमयदिति सम्बन्ध।

च्युतक, बिन्दुमती, गूढचतुर्थपाद, प्रहेलिका आदि (बूझने के लिये) देता था और (इस प्रकार) स्त्रीसंभोग सुख से पराङ्मुख हुआ—उससे मुह मोड़े हुआ—दिन बिता देता था। और वह जैसे दिन बिताता था वैसे ही नाना प्रकार के खेलों और हँसी-मजाक करने में चतुर अपने मित्रो से घिरा रह कर रात्रियों को भी बिता देता था।

किन्तु एक बार जब नये कमलों की (बन्द) कलियों को खोलने वाले, सहस्रों किरणों की पक्ति से सुशोभित—भगवान् सूर्यदेव—अभी बहुत दूर तक आकाश में चढ़े भी

कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलमलयजानुलेपनधवलितस्तनतटोन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी, चूडामणिप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत्—देव, द्वारस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुंकार-

एकदेति। एकस्मिन्समये प्रतिहारी द्वारदेशे नियुक्ता स्त्री समुपसृत्य निकटदेशमागत्य राजानं सविनयमब्रवीदित्यन्वयः। विनयेन सह वर्तमानमवोचदित्यर्थः। सूर्यवर्णनाव्याज उक्त्यवसरमाह—भगवतीति। श्रीसूर्ये सतीत्यर्थः। इत सूर्यं विशेषयन्नाह—सहस्रेति। सहस्रसंख्या ये मरीचयः किरणास्तैर्मालते शोभते तान्धारयतीति वा यः स तथा तस्मिन्। नेति। नातिदूरं स्वल्पकालीनमुदितमुद्गमनं यस्य स तथा तस्मिन्। नवेति। नवानि प्रत्यग्राणि यानि नलिनानि तेषां दलानि पत्राणि तेषां यः सम्पुटो मुकुलस्तं भिनत्तीति स तथा तस्मिन्। किञ्चिदिति। किञ्चिदीषन्मुक्तः परित्यक्तः पाटलिमा श्वेतरक्तत्वं येन स तथा तस्मिन्। दूरोदितेत्यारभ्य त्रिभिर्विशेषणैः प्रत्यूषसमयो व्यज्यते। कीदृशं राजानम्। आस्थानेति। आस्थानमण्डपः उपवेशनस्थलं तत्र गतं प्राप्तम्। प्रतीहारीं विशेषयन्नाह—भीषणेति। भीषणा भयानका रमणीया मनोज्ञाकृतिराकारो यस्याः सा तथा। रमणीयत्वे दृष्टान्तमाह—चन्दनलतेवेति। यथा चन्दनलता वस्तुस्वभावादेव रमणीया तथेयमपीत्यर्थः। लताया भीषणत्वे हेतुमाह—सन्निहितेति। सन्निहिता पार्श्ववर्तिनो विषधराः सर्पा यस्याः सा तथेत्यर्थः। भीषणत्व

नहीं थे—अर्थात् अभी उदय ही हुए थे और (उसके बिम्ब की) लालिमा अब भी थोड़ी सी ही कम हुई थी कि सभामण्डप में बैठे राजा के समीप (साक्षात् शरीर धारण किये हुए राज्य (की रक्षिका) अधिष्ठात्री देवी सी (भव्य) प्रतिहारी ने पहुँच कर अपने घुटनों तथा कमल सरीखे हाथों को भूमि पर टिका कर राजा से विनयपूर्वक निवेदन किया। यह प्रतिहारी स्त्रियों (के सामान्य व्यवहार) के विरुद्ध बायीं ओर लटकती तलवार के कारण उस चन्दनलता-सी भयानक तथा आकर्षक दोनों प्रतीत हो रही थी कि जिस पर साँप बैठा हुआ हो, गाढे चन्दन को लेप करने से श्वेत हुए स्तन प्रदेश वाली होने के कारण उस मन्दाकिनी नदी जैसी थी कि (जिसकी धारा में से) ऐरावत हस्ती निकल रहा हो, (राजाओं के) मुकुटों में (जड़ी हुई) मणियों में (पड़े अपने) प्रतिबिम्ब के बहाने वह राजाओं के सिरों से उठायी गयी शरीरधारिणी राजाज्ञा-सरीखी दिखायी दे रही थी, (उड़ते हुए) हंसों के कारण श्वेत आकाश वाली शरत् ऋतु के समान वह कलहंसों जैसे श्वेत वस्त्र पहने हुए थी, सारे क्षत्रियों को अपने वश में किये हुए, परशुराम के फरसे की धारा के सदृश उसने भी (वहाँ उपस्थित) सभी राजाओं (के मनों) को अपने आधीन कर रखा था, (हाथ में) बेंत लिये हुए वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो बेंत के पौधों से भरी हुई विन्ध्यवन (के समीप) की भूमि ही हो। वह बोली "स्वामिन्! क्रुद्ध इन्द्र के हुंकार द्वारा

निपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चाण्डालकन्यका पञ्जरस्थ शुकमादाय

आगन्तुकहेतुमाह—वामेति । वामपार्श्वे मध्यप्रदेशेऽवलम्बतेऽवतिष्ठत इत्येवशीलेन कौक्षेयकेण खड्गेन 'तरवारिर्मण्डलाग्र खड्गकौक्षेयकौ' इति कोश । खड्ग विशिनष्टि—अङ्गनेति । अङ्गनाजन प्रमदावर्गस्तस्य विरुद्धेन । भयोत्पादकेनेत्यर्थ । यथा चन्दनलताया निसर्गतो रमणीयत्वेऽपि सन्निहितविषधरत्वेन भीषणत्व तथैतस्या अपि स्वभावतो बन्धुरत्वेऽपि वामपार्श्ववर्तिनिस्त्रिशत्वेन भीषणत्वमित्यभिप्राय । अथ प्रतीहारीं विशिनष्टि—अविरलेति । अविरल घनतर यन्मलयजस्य चन्दनस्यानुलेपनमुद्वर्तन तेन धवलित शुभ्रीकृत स्तनतट कुचतट यस्या सा तथा । तत्र दृष्टान्तमाह—मन्दाकिनीव स्वर्धुनीव । इतो गङ्गा विशेषयन्नाह—उन्मज्जदिति । उन्मज्जन्स्नान कुर्वंश्च ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य कुम्भमण्डल शिर पिण्डचक्रवाल यस्यां सा तथा । चन्दनशुभ्र कुम्भोपमानेन कुचतटस्य काठिन्य व्यज्यते । केव । मूर्तीति । मूर्तिमती विग्रहवती राजाज्ञेव नृपशिष्टिरिव । ननु राजाज्ञा सन्निहितराजशिरोभिरुह्यमाना भवेत् । इय तु तथा न भवतीत्यत आह—चूडेति । अर्थात्सन्निहितराजमस्तकेषु चूडामणय शिरोमणयस्तेषु य प्रतिबिम्ब प्रतिच्छायस्तस्य छल मिष तेन । राजभिर्नृपै शिरोभिरुत्तमाङ्गैरुह्यमाना । पुन केव । शरदिव घनात्यय इव । उभयत्र विशेषणसाम्यमाह—कलहसेति । कलहस एव कलहस इव वा धवल शुभ्रमम्बर वस्त्र यस्या सा तथा । पुन केव । जामदग्न्येति । जमदग्नेर्गोत्रापत्य जामदग्न्य परशुरामस्तस्य परशु कुठारस्तस्य धारा प्रान्तप्रदेशस्तद्वदिव । उभयविशेषणसाम्यमाह—वशीति । वशीकृत स्वायत्तीकृत क्रूरत्वेन व्यामोहेन वा सकलराजाना समग्रभूपतीना मण्डल चक्र यया सा तथा । पुन केव । विन्ध्यस्येति । विन्ध्यस्य जलबालकस्य वनमरण्य तस्य भूमि पृथिवीव तत्सदृशीव । उभयत्र साम्यमाह—वेत्रेति । वेत्राणा वेतसानां लता सरलवृक्षा यत्र । पक्षे वेत्रस्य लता यष्टि । हस्त इति शेष । यस्या सा तथा । पुन केव । राज्येति । राज्यस्याधिदैवताधिष्ठात्री सान्निध्यकारिणी देवतेव सू(सु)रीवेत्युत्प्रेक्षा । अपूर्वेति शेष । अत एव विग्रहिणी शरीरिणी । पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—क्षितीति । क्षितितले भूमितले निहिता जानू तलकीलौ, अथ च करौ तावेव कमले यया सा तादृशी । सविनय विनयेन सह वर्तमानम् । किमब्रवीत्तत्राह—देवेति । हे देव हे स्वामिन्, द्वारे स्थिता चाण्डालाना दिवाकीर्तीना कन्यका कुमारी पञ्जरे पक्षिणामाश्रये स्थितं शुक कीरमादाय गृहीत्वा देव स्वामिन विज्ञापयति । स्वरहस्यं निवेदयतीत्यर्थं । केव । सुरेति । सुराणा देवानां लोक स्वर्गमारोहत आरोहण कुर्वतत्रिशङ्कोरयाज्यस्य राजलक्ष्मीरिव । तामेव विशेषयन्नाह—कुपितेति । त्रिशङ्कोरयाज्यस्य देवयागात्स्वर्गे वासो न भवतीत्यत कुपितः क्रुद्धो य. शतमख इन्द्रस्तस्य हुङ्कार कोपध्वनिस्तेन निपाति

(भूमि पर) गिरायी गयी स्वर्ग में चढ़ते त्रिशङ्कु की राजलक्ष्मी-सी दक्षिण देश से आयी एक चाण्डालकन्या पिंजरे में बन्द एक तोते को लिए हुई, द्वार पर खड़ी आप से इन

देवं विज्ञापयति—'सकलभुवनतलरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः। विहङ्गमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमादायागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्' इति। एतदाकर्ण्य 'देवः प्रमाणम्' इत्युक्त्वा विरराम। उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्तिनां राज्ञामालोक्य मुखानि 'को दोषः ? प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश।

अथ प्रतीहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनक-

---

ताध क्षिप्ता। कीदृशी चाण्डालकन्यका। दक्षिणेति। दक्षिणापथाद्दक्षिणमार्गादागता प्राप्ता। प्रतीहारी चाण्डालकन्यकाया सामान्यतो विज्ञापनाविषयमाह— सकलेति। चाण्डालकन्यकायास्त्वियं विज्ञापना। देवेति। हे देव, इति कृत्वा तं शुकमादाय देवस्य राज्ञः पादमूलं चरणमूलमहमागता देवदर्शनसुखं महाराजस्यावलोकनसातमनुभवितुमनुभवविषयीकर्तुमिच्छामि समीहे। इतिशब्दवाच्यमाह—सकलेति। सकलानि समग्राणि यानि भुवनतलानि तेषु यानि रत्नानि तेषामेकं भाजनमुत्कर्षस्थानम्। क इव। उदधिरिव समुद्र इव। यथोदधिः सर्वरत्नानां भाजनं तथा देवो भवानपीत्यर्थः। अयं विहगमः पक्षी शुक आश्चर्यभूत इत्यद्भुतप्रेक्षणविषयः, अतस्तादृग्लोकविशेषत्वादेव निखिलानि यानि भुवनतलानि तेषां रत्नमुत्कृष्टम्। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते' इति। आदाय गृहीत्वा। देवः प्रमाणमिति। यदेवास्य राज्ञोऽनुशासनं तदेव मया विधेयमित्युक्त्वा विरराम तूष्णीं बभूवेत्यन्वयः। प्रतीहार्युक्तं चाण्डालकन्यकाविज्ञापनावाक्यं सर्वं नृपेणाकर्ण्य राजमन्त्रिवर्गैरमन्त्र्य निराकुर्वन्प्रतीहारीं प्रतीत्यादिदेश। को दोषः प्रवेश्यतामिति। स्पष्टम्। कीदृशो राजा। उपेति। उपजातमुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य स तथा। किं कृत्वा। समीपवर्तिनां निकटस्थानां राज्ञां मन्त्रिणां च मुखानि वदनान्यालोक्य निरीक्ष्येत्यर्थः। तेषामपि तदिच्छेति ज्ञात्वेत्यर्थः।

अथेति। अथ नरपतिकथनानन्तरमुत्थायोत्थानं कृत्वा मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्प्रवेशमकारयत। प्रविश्य चेति। प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा सा चाण्डालकुमारी राजानमद्राक्षीत् अपश्य-

---

शब्दों में निवेदन करती है—"महाराज, आप महासागर की भाँति सम्पूर्ण भूमण्डल के रत्नों (अर्थात् सर्वोत्कृष्ट पदार्थों) के एकमात्र संग्रहालय (निक्षेपागार) हैं, और यह पक्षी सारे भूमण्डल का एक आश्चर्यजनक रत्न है—यह सोचकर इसको लेकर आप के चरणों में आयी मैं महाराज के दर्शनों से उत्पन्न सुख को अनुभव करना चाहती हूँ।'—यह सुनकर आप जैसा भी निर्णय करें।" प्रतिहारी इतना कह कर रुक गयी। अब उस राजा ने, जिसके मन में उत्सुकता उत्पन्न हो गयी थी, अपने समीपवर्ती राजाओं के मुखों को देखकर (उनकी ओर देखकर)—"क्या हानि है! उसको आने दो।" यह कह कर (उसको) भीतर लाने की आज्ञा दी।

तब राजा के यह कह चुकने पर वह प्रतिहारी उठ कर उस चाण्डालकन्या को भीतर लिवा लायी और उसने प्रविष्ट होकर राजा को देखा। उस समय राजा (दूसरे) सहस्रों

शिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्रसञ्छादिताष्टदिग्भागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तपर्यङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमानसुवर्णदण्डचामरकलापम्, उन्मयूखमुखकान्तिविजयपराभवप्रणते शशिनीव स्फटिकपादपीठे विन्यस्तवाम-

---

दित्यर्थः। 'दृशिर् प्रेक्षणे' इत्यस्य लुङि रूपम्। राजानं विशेषयन्नाह—नरपतीति। नरपतीनां राज्ञां यत्सहस्रं तन्मध्यवर्तिनम्। तदन्तरालस्थितमित्यर्थः। कमिव। कनकशिखरिणमिव मेरुमिव। कीदृशं मेरुम्। अशनीति। अशनेरिन्द्रायुधाद्वज्राद्यद्भयमातङ्कस्तेन पुञ्जिता एकत्रीभूता एकत्र समवेता ये कुलशैलाः क्षेत्रसीमाकारिपर्वतास्तेषु मध्यगतं तदन्तःस्थितम्। पुनर्नृपं विशिनष्टि—अनेकेति। अनेकानि विविधानि यानि रत्नाभरणानि मणिखचितभूषणानि तेषां यानि किरणजालकानि। जालान्येव जालकानि। स्वार्थे कप्। मरीचिमण्डलानि तैरन्तरिता आच्छादिता अवयवा अपघना यस्य स तम्। नीलपीतादिवर्णयोगात्। तत्रोपमानमाह—इन्द्रेति। इन्द्रायुधानां हरिकार्मुकाणां यत्सहस्रं तेन सञ्छादितास्तिरोहिता अष्टौ दिग्भागाः ककुभां प्रदेशा यस्मिंस्तथाभूतं जलधरदिवसमिव प्रावृड्दिनमिव। पुनस्तमेव नृपं विशिनष्टि—नातीति। नातिमहतः स्थानोचितप्रमाणस्य दुकूलं क्षौमं तस्य वितानमुल्लोचः। 'उल्लोचो वितानः कदकोऽपि' इत्यभिधानचिन्तामणिः। तस्याधस्तात्तदधःप्रदेशे इन्दुकान्तानां चन्द्रकान्तमणीनां या पर्यङ्किका मञ्चिका तस्यां निषण्णमुपविष्टम्। अथ वितानं विशेषयन्नाह—अवेति। अवलम्बितः आश्रितः स्थूलानां स्थविष्ठानां मुक्तानां रसोद्भवानां कलापो जालं येन स तथा। कस्य तस्य। कनकेति। कनकं सुवर्णं तस्य या शृङ्खला बन्धनरश्मयस्तैर्नियमिता निबद्धा मणिदण्डिका रत्नखचिता यष्टयस्तासां चतुष्टयं यस्मिन्स तथा तस्य। गगनेति। गगनसिन्धोः स्वर्णद्या फेनो डिण्डीरः। 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यभिधानचिन्तामणिः। तस्य पटलं समूहस्तद्वत्पाण्डुरः शुभ्रः तस्य। पुनर्नृपं

राजाओं के मध्य बैठा ऐसा दिखायी दे रहा था कि मानो (अपने शत्रु इन्द्र के) वज्र के डर से एकत्रित कुलशैलों के मध्य में स्थित—चारों ओर उनसे घिरा हुआ सुमेरु-पर्वत हो, (पहने हुए) अनेक रत्नमय आभूषणों की किरणों के पुञ्ज से ढके हुए अगों वाला ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह सहस्रों इन्द्रधनुषों से ढकी आठों दिशाओं के प्रदेशवाला वर्षाऋतु का दिवस हो। राजा चन्द्रकान्त मणियों के पलंग पर, एक ऐसे रेशमी शामियाने के नीचे बैठा था जो बहुत बड़ा नहीं था, (उस शामियाने पर) मोटे मोटे मोती (हार बने) लटक रहे थे, (उसके) सोने की साकलों से कसे (नियमित) चार मणिमय स्तम्भ थे, और वह आकाशगंगा के फेन पटल-सा श्वेत था, (राजा पर) सोने की मूठ लगे चँवर डुलाये जा रहे थे। उसने अपने बाँये पैर को संगमरमर के बने एक पीढ़े पर रखा हुआ था जो उस चन्द्रमा सरीखा दिखायी देता था कि जो ऊपर को उठती हुई किरणोंवाले (राजा के) मुख की शोभा की विजय के कारण हुए निरादर से मानो अपना सिर झुकाए हुए हो,

पादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासंपर्कश्यामायमानैः प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैरिव चरणनखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेनाचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्तितान्तदेशे दुकूले वसानम्, अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकमन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपरशशिशङ्कया नक्षत्र-

विशिनष्टि—उद्धूयेति। उद्धूयमानो व्यज्यमान सुवर्णस्य काञ्चनस्य दण्डोऽवलम्बनयष्टिर्येष्वेतादृशानि चामराणि प्रकीर्णकानि तेषा कलाप समूहो यस्य स तम्। स्फटिकेति। स्फटिकाना स्वच्छमणीना यत्पादपीठं चरणस्थापनस्थल तत्र विन्यस्त स्थापितो वामपाद सव्यचरणो येन स तथा तम्। पादपीठ विशेषयन्नाह—शशिनीति। शशिनीव चन्द्रमसीव। अथ शशिन विशेषयन्नाह—उन्मयूखेति। उदूर्ध्वं मयूखा किरणा यस्मिन्नेतादृश यन्मुख तस्य या कान्तिर्दीप्तिस्तया यो विजयो जयस्तेन य पराभवस्तिरस्कारस्तेन प्रणते पादसंलग्ने। पुनर्नृपं विशेषयन्नाह—चरणेति। चरणाना पादाना ये नखा पुनर्भवास्तेषा मयूखा किरणास्तेषां जालानि समूहास्तैरुपशोभमान भासमानम्। मयूखजाल विशेषयन्नाह—इन्द्रेति। इन्द्रनीलमणीनामिन्द्रमणीना या कुट्टिमप्रभा बद्धभूमिकान्तिस्तस्या सपर्को मिश्रभावस्तेन श्यामायमानै श्यामवदाचरमाणै। कीदृशैरिव। प्रणतेति। प्रणता नता ये रिपव शत्रवस्तेषा ये निश्वासाश्चेतना. (नि.श्वासपवनाः?) तैर्मलिनीकृतैर्मालिन्य प्राप्तैरिव। पुनर्नृपं विशेषयन्नाह—ऊरू इति। ऊरू सक्थी तयोर्युगल तेन विराजमान शोभमानम्। ऊरुयुगल विशिनष्टि—आसनेति। आसन उपवेशनस्थल उल्लसिता देदीप्यमाना ये पद्मरागा लोहितमणयस्तेषा ये किरणा मयूखास्तै

वह (अपने) पाँवों के नाखूनों की उन किरणों के ताने बाने से सुशोभित था जो इन्द्रनील मणियों से मँढे फर्श की चमक से काली-काली हो रही थीं और ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो (उसके पाँवों पर) झुके शत्रुओं की आहों से मैली हो गयी हों, (अपने) आसन से निकली पद्मरागमणि (लालमणि-) यों की किरणों से लाल हुई जांघों से ऐसा शोभायमान था कि मानो अभी अभी मारे हुए 'मधु' तथा 'कैटभ' (नाम के राक्षसों) के रक्त से लाल हुई जंघाओंवाला 'विष्णु' (भगवान्) हो, वह अमृतफेन से श्वेत, गोरोचना से चित्रित हंस-युगल सहित किनारियों वाले (राजा के समीप डुलाये जा रहे) सुन्दर चँवरों की वायु से डुलाये गये आंचलों वाले 'रेशमी दुकूल' ओढे हुए था, उसका वक्ष स्थल अत्यन्त सुगन्धित चन्दन लेप से श्वेत हुआ हुआ था, (वक्ष स्थल के) ऊपर केसर के थापे[1] (शोभाधायक चिह्न) लगे हुए थे तथा इस प्रकार वह कैलाशपर्वत के उस शिखर जैसा प्रतीत होता था कि जिस पर बीच-बीच मे (जहाँ-तहाँ) नयी धूप (लाल लाल) के धब्बे पड़े हों, (मोतियों के) हार की परिधि—[2](मेखला) बनाये हुए (हार से घिरा) उसका मुँह ऐसा लग रहा था कि मानो उस (मुख) को दूसरा चन्द्रमा समझकर नक्षत्रमाला ही ने

१. 'स्थासकस्तु हस्त-बिम्बम्' इति कोश। । २ 'परिधि परिवेषश्च'।

मालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्, अतिचपलराज्यलक्ष्मीबन्धनिगडकटकशङ्कामुपजनयतेन्द्रमणिकेयूरयुग्मेन मलयजरसगन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्, ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्, उन्नतघोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीकनेत्रम्, अमलकल-

---

पाटलीकृतेन। श्वेतरक्तीकृतेनेत्यर्थ। 'श्वेतरक्तस्तु पाटल' इति कोश। कमिव। अचिरेति। अचिर त्वरित मृदितो मर्दितो यो मधुकैटभो दैत्यविशेषस्तस्य यद्रुधिर रक्त तेनारुणेन रक्तेनोरुयुगलेन विराजमानं हरिमिव कृष्णमिव। पुन किं कुर्वाण नृपम्। वसान दधानम्। किम्। दुकूले क्षीरोदवस्त्रे (कौशेये?)। अथैते विशिनष्टि—अमृतेति। अमृतस्य सुधाया फेनस्तद्वद्धवले शुभ्रे। गोरोचनेति। गोरोचना गोपित्त तेन लिखितानि यानि हंसमिथुनानि सितच्छदयुग्मानि तै सनाथ सहित पर्यन्त प्रान्तदेशो ययोस्ते। चार्विति। चारुणी च ते चामरे च चारुचामरे तयोर्वायुना समीरणेन प्रनर्तिता आन्दोलिता अन्तदेशा प्रान्तदेशा ययोस्ते। पुनर्नृप विशेषयन्नाह—अतीति। अतिसुरभि अतिसुगन्धि यच्चन्दन मलयज तस्यानुलेपनमङ्गरागस्तेन धवलित शुभ्रीकृतमुर स्थल वक्ष स्थल यस्य स तथा तम्। उपरीति। उपरि। अर्थाद्वक्षस। विन्यस्ता विहिता कुङ्कुमस्य केसरस्य स्थासका हस्तबिम्बा यस्य स तम्। 'स्थासकस्तु हस्तबिम्बम्' इति कोश। कमिव। अन्तरेति। अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये निपतिता पर्यस्ता बालातपस्य नवीनालोकस्य छेदा खण्डा यस्मिन्नेतादृश कैलासशिखरिणमिव रजताद्रिमिव। पुन प्रकारान्तरेण तमेव नृपं विशेषयन्नाह—अपरेति। अपरोऽन्यो य शशी चन्द्रस्तस्य या शङ्का भ्रान्तिस्तया नक्षत्राणि तारास्तासामाली (सा माला) श्रेणी तद्रूपयैव हारलतया। 'हारो मुक्तान्त प्रालम्बस्रक्कलापावली लता' इति कोश। तेन कृतो विहितो मुखस्याननस्य परिवेष, परिधिर्यस्य स तम्। अनेन हारलताया अत्यन्तनैर्मल्य मुखस्य च चन्द्रसाम्य सूचितम्। 'परिधि परिवेषश्च' इति कोश। अतीति। अतिचपलातिचञ्चला या राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्रीस्तस्या बन्धो नियमनं तत्र निगडोऽन्दुकस्तस्य यत्कटक वलय तस्य शङ्कामारेकामुपजनयता कुर्वता। एवभूतेनेन्द्रमणियुक्तमिन्द्रनीलमणिखचित यत्केयूरयुग्ममङ्गदद्वन्द्व तेन वेष्टित परिक्षिप्त बाहुयुगल भुजद्वितय यस्य स तथा तम्। यद्यपि समस्तवेष्टितपदस्य बाहुपदान्वितस्य विभक्त्यन्तरबद्धेनान्वयस्तथापि विशेषे क्वचित् 'मानेन जितेन्द्रिय' इत्यादौ तथा दृष्टत्वाददोषो द्रष्टव्य। केनेव। मलयेति। मलयजश्चन्दन तस्य यो रसो द्रवस्तस्य गन्धे परिमले लुब्धेनासक्तेन भुजङ्गद्वयेनेव सर्पयुग्मेनेव। ईषदिति। ईषत्किंचिदालम्बि लम्बमान कर्णोत्पल श्रवणपङ्कज यस्य स तथा तम्। उन्नतेति। उन्नतोच्चा घोणा नासिका यस्य स तम्। उत्फुल्लेति। उत्फुल्ल विकसित यत्पुण्डरीक सिताम्भोज तद्वन्नेत्रे लोचने यस्य स तम्। किं कुर्वन्त नृपम्। ललाटदेशमलिकप्रदेशमुद्वहन्त धारयन्तम्।

घेर रखा हो, अत्यन्त चञ्चल राज्यलक्ष्मी को बाधने की साकल के वलयों का भ्रम उत्पन्न करते, नीलम के बने, दो केयूरों से घिरी उसकी भुजाएँ, चन्दनलेप की गन्ध के लोभी-दो साँपों से घिरी प्रतीत हो रही थीं, उसके कान (मे लगे हुए) के कमल कुछ-कुछ लटके हुए थे, उसकी नाक उठी हुई थी तथा आँखें पूर्ण विकसित कमल सी थीं, उसका माथा शुद्ध

धौतपट्टायतमष्टमीचन्द्रशकलाकारमशेषभुवनराज्याभिषेकपूतमूर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदिमालतीकुसुमशेखरमुषसि शिखरपर्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरणप्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसक्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया पतिप्रेम्णा वसुधरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहम्,

अथालिक विशेषयन्नाह—अमलेति। अमल निर्मल यत्कलधौत सुवर्णं तस्य य पट्टस्तद्वदायत विस्तीर्णम्। 'अयनम्' इति पाठे सुवर्णतिलकस्थानम्। 'अयन सरणिर्मार्गे' इति कोश.। अष्टमीति। अष्टम्या यच्चन्द्रशकल तदर्धभागस्तद्वदाकार आकृतिर्यस्य तत्तथा। उभयो पक्षयोरष्टम्यामष्टावेव कला इत्यर्धचन्द्र। अतोऽष्टमीग्रहण युक्तमेवेति भाव'। अशेषेति। अशेषाणि समग्राणि यानि भुवनानि तेषा राज्यमाधिपत्य तस्याभिषेको मङ्गलस्नान तेन पूत पवित्रम्। ऊर्णेति। ऊर्णा भ्रुवोरन्तरावर्तस्तेन सनाथ सहितम्। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्तस्त्व (र्ते चा)न्तरा भ्रुवो' इत्यमर। स च चक्रवर्तिप्रभृतीनामेव नान्यजनस्य। तदुक्तम्—'भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मं शुभ्रायतमेक प्रशस्तावर्तं महापुरुषलक्षणम्' इति। पुनरेव नृप विशेषयन्नाह—आमोदीति। आमोदीनि सुगन्धीनि यानि मालतीकुसुमानि जातीपुष्पाणि तेषा शेखरश्चूडाभूषण यस्य स तथा तम्। कमिव। पश्चिमाचलमिवास्ताद्रिमिव। कीदृशम्। उषसीति। उषसि प्रभाते शिखरे सानुनि पर्यस्ता पतितास्तारकाणा नक्षत्राणा पुञ्जा समूहा यस्मिन्स तम्। अत्र शैलशिखरनृपोत्तमाङ्गयो पुष्पपुञ्जतारकयोश्चोपमानोपमेयभाव।

(अथवा चमकाये गये) सोने के कमर बन्द—सा चौड़ा, अष्टमी के चन्द्रखण्ड के आकार का, सम्पूर्ण भुवनों के आधिपत्य (राज्य) के लिये (किये गये) अभिषेक (सस्कार के जल) से पवित्र किया गया था और (उसके मस्तक को दोनों भौहों के बीच) रुएँदार बालों की (मगलसूचक) पक्ति थी, सुगन्धित मालती-पुष्पों की माला को अपना शिरोभूषण (शेखर) बनाये हुए—सिर पर पहने हुए—वह राजा, उषाकाल मे चोटियों (शिखरों) पर फैले हुए (दिखायी देते) नक्षत्र समूहों—वाला अस्ताचल पर्वत जैसा दिखायी देता था, (पहने हुए) आभूषणों की चमक से लाल पीले अङ्ग हो जाने के कारण वह उस कामदेव सरीखा लग रहा था जिस (के शरीर को) शिवजी की (उनके तीसरे नेत्र से निकली) आग लग गयी थी, अपने आस पास रहनेवाली वाराङ्गनाओं से घिरा वह राजा मानों सब ओर से सेवा के लिये आयी हुई दिशाओं रूप बधुओं से घिरा हुआ था, उसके सम्पूर्ण शरीर का प्रतिबिम्ब निर्मल—सर्वथा चमकती[1]—मणियों के फर्श में प्रविष्ट हो जाने के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो उसको पृथ्वी ने (अपने) पति के प्रति स्नेह के कारण अपने हृदय में धारण किया हुआ हो, उसका शरीर उस राज्यश्री से आलिंगित था—

१. अमल का अर्थ 'transparent' पारदर्शक उचित नहीं प्रतीत होता—पारदर्शक वस्तु में स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता।

अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादितद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि

मकरेति । मकरस्य जलजन्तुविशेषस्य ध्वजोऽङ्को यस्य तमिव । मदनसादृश्य प्रदर्शयन्नाह—**आभरणेति** । आभरणाना भूषणाना या प्रभा कान्तिस्तया पिशङ्गित पीतरक्तीकृतमङ्ग यस्य तस्य भावस्तत्ता तया कृत्वा लग्न आसक्तो हरस्येश्वरस्य हुताशोऽग्निर्यस्य स तम् । अत्राभरणदीप्तिहरनेत्रोद्भववह्न्यो राजमकरध्वजयोश्चोपमानोपमेयभावो दर्शित । **आसन्नेति** । आसन्नवर्तिनीभिर्निकटस्थायिनीभि सर्वतो विश्वत सेवार्थं सपर्यार्थमागताभि प्राप्ताभिर्वारविलासिनीभिर्वाराङ्गनाभि । काभिरिव । व्यापकत्वाद्दिश एव वध्व स्त्रियो दिग्वध्वस्ताभिरिव । अत्र दिग्वधूवारविलासिन्यो साम्य सूचितम् । ताभि परिवृत परिवेष्टितम् । **अमलेति** । अमला स्वच्छा ये मणयश्चन्द्रकान्ताद्यास्तेषा कुट्टिम बद्धभूस्तस्मिन्सक्रान्त यत्सकलदेहप्रतिबिम्ब समग्रशरीरप्रतिच्छायस्तस्य भावस्तत्ता तया । हेत्वर्थे तृतीया । पति स्वामी तस्य प्रेम प्रीतिस्तेन च वसुन्धरया पृथिव्या हृदयेनेव स्वान्तेनेवोह्यमान वहमानम् (धार्यमाणम् ?) । **अशेषेति** । अशेषा समग्रा ये जना लोकास्तेषा भोग्यता भोगयोग्यतामुपनीतया प्राप्तयापि । सर्वसाधारणयेत्यर्थ । असाधारणया च तथा चान्येषामेतादृशी राजलक्ष्मीर्नास्तीत्यपकर्षोत्कर्षाभ्या साधारणासाधारणया च राजलक्ष्म्या समालिङ्गित उपगूहितो देह शरीर यस्य स तथा तम् । अत्र विरोधाभासोऽलकार । साधारणासाधारणयो (स्त्वयो ?) विरुद्धधर्मत्वात् । तत्परिहारपक्षेऽसाधारणया । सर्वोत्कृष्टयेत्यर्थ । **अपरिमितेति** । अपरिमितोऽसख्येय परिवारजन परिच्छदजनो यस्य स तम् । एव बहुजनत्वेऽप्यद्वितीय न द्वितीयो जनो यस्येति विरोध । तत्परिहारपक्षेऽद्वितीय इत्यस्य सर्वोत्कृष्ट इत्यर्थ । **अनन्तेति** । अनन्तान्यसख्यानि गजा हस्तिनस्तुरगा अश्वास्तेषा साधनान्युपकरणानि सहाया यस्य । 'निर्वर्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्' इत्यमर । एव च बहुसहायत्वेऽपि केवल खड्ग खड्गमात्र सहायो यस्येति विरोध । तत्परिहारपक्षे खड्गमात्रसहायमित्यस्य युद्धे तदन्यानपेक्षत्वमित्यर्थ. । **एकदेशस्थितमिति** । एकदेश सभामण्डपादि,

---

अर्थात् राजकीय यश से व्याप्त दिखायी देता था—जो कि समस्तजनों के उपभोग के लिये प्राप्त होते हुए भी—सामान्यतया अनुपलब्ध (वस्तुत अनुपम) थी, (उसकी सेवा में उपस्थित) अनगिनत सेवकों के रहते भी वह किसी दूसरे व्यक्ति के बिना ही (वस्तुत अनुपम) था, हाथी-घोड़े आदि अनन्त साधनों वाला होते हुए भी (युद्धों मे) उसकी सहायिका एकमात्र तलवार ही थी—हाथी-घोड़े उसके लिये अनावश्यक ही रहते थे, एक स्थान पर बैठा हुआ भी वह (अपने सर्वव्यापक यश अथवा सर्वोपरि शक्ति के द्वारा) सारे लोकों को व्याप्त किये हुए था, अपने (सिंह) आसन पर बैठा हुआ भी वह धनुष पर निषण्ण बैठा-अर्थात् धनुष पर निर्भर था, शत्रुरूप ईंधन को नष्ट किया हुआ होने पर भी उसकी प्रताप रूप अग्नि जाज्वल्यमान थी—उसकी प्रतापाग्नि नहीं बुझी थी । बड़ी बड़ी आँखों वाला तो था, परन्तु उसकी दृष्टि सूक्ष्म (पैनी) थी, बड़े-बड़े दोषों वाला (वस्तुतः

सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थितभुवनतल राजानमद्राक्षीत्।

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागा वेणुलतामादाय नरपतिप्रतिबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिम-

---

जनपदो वा। तत्र स्थितमपि निषण्णमपि व्याप्त समाक्रान्त भुवनमण्डल जगन्मण्डल येनेति विरोध। परिहारपक्षे व्याप्त ख्यात भुवनमण्डले यशो यस्येति विग्रह। विशेषेणाप्त व्याप्तमिति वार्थ 'व्याप्तं ख्याते समाक्रान्ते' इति विश्व। आसने स्थितमिति। आसने भद्रासने स्थितमप्युपविष्टमपि धनुषि कार्मुके निषण्णं स्थितमिति विरोध। परिहारपक्षे धनु सज्ञा तस्मिन्स्थितमित्यर्थं। नामश्रवणेन विपक्षाणा साक्षादागत इव इति भयोत्पत्ते'। 'धनु सज्ञा प्रियालद्रौ' इति विश्व। उत्सादितेति। उत्सादितं व्यापादित द्विषन्त एवेन्धनमेधो येन। एवंभूतमपि ज्वलत्प्रतापानलमिति विरोध। परिहारपक्षे ज्वलदित्यस्य दीप्यदित्यर्थं। आयतेति। आयते विस्तीर्णे लोचने यस्यैवभूतमपि सूक्ष्ममविपुल दर्शन लोचनं यस्येति विरोध। परिहारपक्षे सूक्ष्ममध्यात्मविषय दर्शन ज्ञान यस्येत्यर्थं। 'सूक्ष्म स्यात्कैतवेऽध्यात्मेऽप्यणौ' इति विश्व। 'दर्शन नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु' इति विश्व। महादोषमिति। महान्दोषो यस्मिन्नेवभूतमपि सकलगुणाधिष्ठान समग्रगुणस्थानमिति विरोधः। परिहारपक्षे महती दोषा बाहुर्यस्येत्यर्थं। 'दोषा रात्रौ भुजेऽपि च' इति विश्वलोचन। कुपतिमिति। कुत्सितश्चासौ पतिश्च कुपतिरेवभूतमपि कलत्रवल्लभ स्त्रीजनप्रियमिति विरोध। तत्परिहारपक्षे कु पृथिवी तस्या. पति। स्वामीत्यर्थं। एतादृशस्तत्प्रिय' स्यादिति न विरोध। अविरतमिति। अविरत सतत प्रवृत्त दान यस्यैवभूतमप्यमद दानरहितमिति विरोध। तत्परिहारस्त्वेवम्—अविरत प्रवृत्त दान त्यागो यस्यैवभूतमप्यमदम् गर्वरहितमित्यर्थं। 'दान गजमदे त्यागे पालनच्छेदशुद्धिषु' इति विश्व। अत्यन्तेति। अत्यन्तमतिशयेन शुद्धो निर्मल स्वभाव प्रकृतिर्यस्यैवंभूतमपि कृष्ण श्याम चरितमाचारो यस्येति विरोध। परिहारपक्षे कृष्ण केशवोऽर्जुनो वा तद्वच्चरितं यस्येत्यर्थं। 'कृष्णस्तु केशवे। व्यासेऽर्जुने कोकिले च' इति विश्व।

महाबाहु-लम्बी भुजाओं वाला) भी वह सारे गुणों का निवासस्थान था, कुपति—अर्थात् बुरा पति? (नहीं, नहीं, कु—पृथ्वी का पति) होते हुए भी वह पत्नियों का प्यारा था, यद्यपि उसका दान अर्थात् मदरस (वस्तुत दान) निरन्तर चलता रहता था तथापि वह (अमद) अभिमान-रहित था, यद्यपि उसका स्वभाव सर्वथा पवित्र था तो भी उसके कार्य (कारनामे) काले थे? नहीं नहीं, वस्तुत कृष्ण अर्थात् विष्णु के कार्यों के समान (स्तुति-योग्य) थे, यद्यपि वह करों-हाथों से रहित था (वस्तुत 'कर' नहीं लेता था) तो भी सारे लोक उसके हाथ पर स्थित थे—उसके वशवर्त्ती थे।

और राजा को देखकर उसने दूर ही खड़े रहकर, अपने टनटनाते मणिमय कंकणों वाले तथा लाल कमल की पखुडी सदृश कोमल हाथ में, सिरे पर स जर्जर हुई एक बाँस की छड़ी लेकर (उससे) राजा (के ध्यान) को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, एक बार

माजघान, येन सकलमेव तद्राजकमेकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत्।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्या निर्दिश्यमाना ता वयःपरिणामशुभ्रशिरसा रक्तराजीवनेत्रापाङ्गेनानवरतकृतव्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीरसंधिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिनानुगृहीतार्यवेषेण शुभ्रवाससा

अकरमिति। न विद्यते करो हस्तो यस्यैवंभूतमपि हस्ते करे स्थित भुवनतल यस्येति विरोध । तत्परिहारपक्षे न विद्यते करो दण्डो यस्येति विग्रह । 'बलि करो भागधेय' इति कोश ।

आलोक्य चेति। राजानमालोक्य वीक्ष्य सा चाण्डालकन्यका सहसैव नृपसंनिधौ गमनमनभिज्ञलक्षणमिति दूरस्थितैव दविष्ठप्रदेशस्थैव वेणुलता वंशयष्टिमादाय गृहीत्वा। नरेति। नरपते राज्ञ प्रतिबोधन संमुखीकरण तदर्थं सभाकुट्टिम परिषद्बद्धभूमिं सकृदेकवार पाणिना हस्तेनाजघान ताडयामास। अथ पाणि विशेषयन्नाह—प्रचलितमिति। प्रचलित प्रकम्पित रत्नवलय मणिखचितकङ्कण यस्मात्स तथा तेन। रक्तमिति। रक्त यत्कुवलय कुवेल तस्य दलानि पत्राणि तद्वत्कोमलेन सुकुमारेण। अनेन लक्षणोपेतत्व हस्तस्य सूचितम्। वेणुयष्टिं विशेषयन्नाह—जर्जरितेति। जर्जरिता जर्जरीभूतो मुखभागोऽग्रभागो यस्या सा तथा ताम्। अग्रभागदलनाच्छब्दविशेषो जायत इति प्रसिद्धं। येनेति। येन ध्वनिना सकलमेव तद्राजक राजसमूह । युगपदिति। युगपत्समकालमावलित परावर्तित वदन मुख येनैवंभूत तदभिमुख तस्या संमुखमासीदभवत्। किं कृत्वा। आकृष्याकर्षण कृत्वा। कस्मात्। अवनिपालमुखाद्राजवदनात्। किम्। चक्षुर्नेत्रम्। तत्रोपमानम्। किमिव। वनकरिणामरण्यहस्तिना यूथमिव समूहमिव। केन। तालशब्देन तालो वाद्यविशेषस्तस्य शब्देन तदुत्थध्वनिना एकपद एककालम्। एकश्रेणीभूतत्वमात्रे दृष्टान्त ।

अवनीति। अवनिपती राजा तु तामनिमिषे निमेषोन्मेषवर्जिते लोचने यस्यैवंभूतो ददर्श-

रत्नजटित फर्श पर आघात किया। जैसे तालवृक्षो के शब्द से जंगली हाथियों का सारा झुण्ड एक साथ अपने मुँह मोड़ लेता है वैसे ही उस (शब्द) को सुनकर उस सारे ही राजसमूह[1] ने एक ही साथ अपने मुँह मोड़ लिये और राजा के मुख पर से अपनी आँखें हटाकर उस चाण्डाल कन्या की ओर अपने मुँह कर लिये।

प्रतिहारी द्वारा 'दूर से देख' यह कही गयी तथा (राजा को) संकेत से बतायी गयी उस चाण्डाल कन्या को राजा ने आँखे झपकाये बिना ही (अर्थात् देरतक स्थिरता से) देखा।

उसके अगले भाग मे (आगे आगे) एक नर (सहचर) था जिसका सिर बुढ़ापे से श्वेत हो गया था, जिसकी आँखों की कोरे (अपाग) लाल कमल सदृश (लाल) थीं, और निरन्तर व्यायाम करते रहने के कारण (युवावस्था के बीत जाने पर भी) उसके शरीर के जोड़ अभी तक ढीले नहीं हुए थे, चाण्डालपना होते हुए भी उसकी आकृति अत्यन्त क्रूर नहीं थी, उसने सज्जनोचित पहरावा पहना हुआ था और उसके वस्त्र श्वेत थे। (चाण्डाल

१. राजकम् = राजसमूह, राजन् + वुञ् 'गोत्रोक्षो'-इत्यादि से समूहार्थ में वुञ्।

पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुलकाकपक्षधारिणा कनकशलाकानिर्मितमप्यन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमान मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्, असुरगृहीतामृतापहरणकृतकपटपटुविलासिनीवेषस्य श्यामतया भगवतो

त्यन्वय.। कथभूता ताम् । निर्दिश्यमाना लोचनविषयीक्रियमाणाम्। कया । प्रतीहार्या द्वाररक्षानियुक्तया। किं कृत्वा। अभिधाय कथयित्वा। किम्। दूरादालोकयेति दूरादेव प्रेक्षस्वेति। राज्ञ इति शेष.। इतश्चाण्डालकन्यका विशेषयन्नाह—अधीति। अधिष्ठित आश्रित पुरोभागोऽग्रभागो यस्या सा तथा ताम्। केन। पुरुषेण पुसा। तमेव पुरुष विशेषयन्नाह—वय इति। वयस' परिणामेन वार्धक्येन शुभ्र श्वेतम्। आधाराधेययोरभेदोपचारात्। शिरो मौलिर्यस्य स तथा तेन। रक्तेति। रक्त लोहित यद्राजीव कमल तद्वन्नेत्रापाङ्गौ लोचनप्रान्तौ यस्य स तथा तेन। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर कृतो विहितो व्यायाम परिश्रमस्तस्य भावस्तत्ता तया यौवनापगमेऽपि तारुण्यनिवृत्तावपि न शिथिला श्लथा शरीरस्य सधयो धातूनामस्थ्यादीना च बन्धा यस्य स तथा तेन। सत्यपीति। सत्यपि विद्यमानेऽपि मातङ्गत्वे चाण्डालत्वे नातिनृशसातिक्रूराकृतिराकारो यस्य स तथा तेन। अन्विति। अनुगृहीत स्वीकृत आर्यस्य सभ्यस्य वेषो नेपथ्य येन स तथा तेन। शुभ्रमिति। शुभ्र श्वेत वासो वस्त्र यस्य स तथा तेन। पुनस्ता विशेषयति। किं क्रियमाणाम् अनुगम्यमानामनुव्रज्यमानाम्। केन। चाण्डालदारकेणान्त्यजसूनुना। तमेव विशिनष्टि—आकुलेति। आकुलाकुल इतस्तत सलग्नो य काकपक्ष शिखा ता धत्त इत्येवंशीलस्तथा तेन। 'सा बालाना काकपक्ष शिखण्डकशिखाण्डकौ' इति कोशः। किं कुर्वता तेन। उद्वहता धारयता। किम्। पञ्जर पक्षिरक्षणस्थलम्। अथ पञ्जर विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य या शलाका इषिकास्ताभिर्निर्मित रचितम्। कनकस्य पीतत्वाद्बहि पीतमपि तदन्तर्गतः शुक कीरस्तस्य प्रभा कान्तिस्तया श्यामायमान श्याममिव दृश्यमानम्। किमिव। मरकतमयमिव मरकतमश्मगर्भ तन्निष्पन्नमिव। किं कुर्वतीम्। अनुकुर्वती सादृश्यमनुभवन्तीम्। कस्य। भगवत ऐश्वर्यवतो हरेरिव कृष्णस्येव। कया श्यामतया। कृष्णत्वेनेत्यर्थं। कीदृशस्य हरे। असुरेति। असुरैर्दैत्यैर्गृहीत यदमृत तस्य यदपहरणमपहृतिस्तत्र कृतो विहितो य कपटेन कैतवेन पटु प्रकटो विलासिनी मोहिनी तस्या वेष आकृतिर्येन स तथा तस्य। तदुक्तम्—'हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं

कन्या के) पीछे पीछे एक चाण्डाल बालक चल रहा था—वह इधर-उधर बिखरे बाल धारण किये हुए था, उसने एक पिंजरा उठाया हुआ था, जो सोने की शलाकाओं से बना होने पर भी अपने भीतर स्थित तोते के रग[1] से गहरे रग का होकर मरकतमणि (पन्ना) से बना-सा प्रतीत हो रहा था। वह कन्या काली होने के कारण, राक्षसों द्वारा (बलात्) अधिकृत अमृत को छीन लाने के लिये बनाये गये, छलने में चतुर सुन्दरी स्त्री (विलासिनी) का वेष बनाये हुए भगवान् विष्णु के सदृश प्रतीत हो रही थी मानों वह कोई चलती-फिरती इन्द्रनीलमणि

1 प्रभा=चमक।

हरेरिवानुकुर्वतीम्, [1]सचारिणीमिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्, गुल्फावलम्बिनीलकञ्चुकेनावच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशुकरचितावगुण्ठनाम्, नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसंध्यातपाम्, एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभाधवलितकपोलमण्डलाम्, उद्यदिन्दुकिरणच्छुरितमुखीमिव विभावरीम्, आकपिलगोरोचनारचिततिलकतृतीयलोचनामीशानरचितानुरचितकिरातवेषामिव भवानीम्, उरःस्थलनिवाससक्रान्तनारायणदेहप्रभा-

पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्' इति। पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—**संचारेति**। सचारिणीं सचरणशीला जङ्गमप्राणिरूपामिन्द्रनीलमणिपुत्रिकामिवेन्द्रमणिपाञ्चालिकामिव। **गुल्फेति**। गुल्फावलम्बी घुटिकावलम्बी यो नीलकञ्चुको हरितकूर्पासकस्तेनावच्छन्नमाच्छादित शरीर देहो यस्या सा तथा ताम्। **उपरीति**। उपर्यूर्ध्वप्रदेशे रक्ताशुकस्य लोहितवाससो रचित कृतमवगुण्ठन मुखाच्छादन यया सा तथा ताम्। पुन प्रकारान्तरेण तामेव विशिनष्टि—**नीलोत्पलेति**। निपतित उपरिप्राप्त सध्यासबन्धी सायकालसक्त आतपो घर्मो यस्यामेतादृशीं नीलानामुत्पलाना कुवलयाना स्थल्यकृत्रिमा तामिव। 'जानपद–' इति ङीष्। **एकेति**। एकस्मिन्कर्णपर्यन्तेऽवसक्त लग्न यद्दन्तपत्रं कर्णाभरणविशेषस्तस्य या प्रभा कान्तिस्तया धवलित शुभ्रीकृत कपोलमण्डल गल्लात्परप्रदेशो यस्या सा तथा ताम्। अनेनावलोकनचातुरीविशेष सूचित। **उद्यदिन्द्विति**। उद्यदुदयमासादयन्य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य किरणैर्दीधितिभिश्छुरितं ध्वान्तनिवृत्त्या सप्रकाश मुख यस्यास्तादृशीं विभावरी रात्रिमिव। एतेन रात्रिनायकयोर्दन्तपत्रचन्द्रयोश्च साम्य सूचितम्। **आकपिलेति**। आ ईषत्कपिलं पीतरक्त यद्गोरोचन गोपित्तं तेन रचित निर्मित यत्तिलक पुण्ड्र तदेव तृतीय लोचन यस्या सा तथा ताम्। कामिव। ईशानेन महादेवेन रचितो विहितस्तदनु यो रचित किरात्या भिल्ल्या वेषो नेपथ्य यया सैवभूता भवानी पार्वती तामिव। **श्रियमिति**। श्रिय लक्ष्मीमिव। अथ लक्ष्मीं विशिनष्टि—**उरःस्थलेति**। उर स्थले वक्षसि यो निवासो निवसन तेन सक्रान्त प्रतिबिम्बितो यो नारायणस्य श्रीकृष्णस्य देहः शरीर तस्य या प्रभा तया श्यामलिता श्यामता प्राप्ताम्। एतेन

से बनी हुई पुतली ही थी। टखनो तक लटके गहरे काले रग के चोगे से शरीर को ढकी हुई तथा ऊपर (अर्थात् सिर पर) लाल रग के वस्त्र को ओढनी बनाये वह ऐसी नील-कमलों से भरी स्थली सी प्रतीत हो रही थी कि जिस पर सायकालीन धूप पड़ी हुई हो। एक कान में लगे[1] (टॉगे हुए) दन्तपत्र (दन्ताभरण विशेष) की झलक से उसके गोल गाल श्वेत हो रहे थे, इस कारण वह उस रात्रि-सरीखी दिखायी दे रही थी कि जिसका मुख (अर्थात् पूर्वभाग) उदय होते चॉद की किरणों से प्रकाशित हो। पीली सी[2] गोरोचना से बनाया गया तिलक ही जिसका तीसरा नेत्र हो ऐसी वह, शिवजी (द्वारा किरात का वेष बना लेने) के पश्चात् वैसा ही किरात का वेष बनाये हुई पार्वती प्रतीत हो रही थी। वक्ष:स्थल पर रहने से (अपने शरीर मे) प्रतिबिम्बित विष्णु-देह की चमक (श्यामता) से मानो काली हुई

१ अवसक्त। २. आकपिलम् = ईषत् कपिलम्।

श्यामलितामिव श्रियम्, कुपितहरहुताशनदह्यमानमदनधूममलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मदहलिहलाकर्षणभयपलायितामिव कालिन्दीम्, अतिबहलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपादपङ्कजामचिरमृदितमहिषासुररुधिररक्तचरणामिव कात्यायनीम्, आलोहिताङ्गुलिप्रभापाटलितनखमयूखाम्, अतिकठिनमणिकुट्टिमस्पर्शमसहमानाम्, क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय सचरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीना प्रभा-

लक्ष्मीचाण्डालकन्यकयो साम्य ध्वनितम्। **रतिमिति**। रति कामस्त्री तामिव। कीदृशीम्। **कुपित इति**। कुपित क्रोध प्राप्तो यो हर ईश्वरस्तस्य हुताशनस्तृतीयलोचनोद्भूतो वह्निस्तेन दह्यमानो ज्वाल्यमानो यो मदनो जराभीरुस्तस्य धूमो दहनकेतुस्तेन मलिनीकृता मालिन्य प्राप्ताम्। पुन कामिव। **कालिन्दीमिति**। कालिन्दी यमुना तामिव। यमुना विशेषयन्नाह—**उन्मदेति**। उन्मदस्य प्रबलगर्वस्य हलिनो बलभद्रस्य यद्धल लाङ्गल तेन यदाकर्षणमाकृष्टिस्तस्माद्भय साध्वस तस्मात्पलायिता नष्टाम्। **अतीति**। अतिबहलोऽतिप्रचुरो य पिण्डालक्तक पिण्डीकृतो यावकस्तस्य रसो द्रवस्तस्य रागो रक्तिमा तेन पल्लवित सजातकिसलय पादपङ्कज यस्या सा तथा ताम्। कामिव। **अचिरेति**। अचिर तत्काल मृदितो मर्दितो यो महिषासुरो दैत्यस्तस्य यद्रुधिरमाग्नेय तेनारक्तौ लोहितौ चरणौ पादौ यस्या एवविधा कात्यायनीं दुर्गामिव। **आलोहितेति**। आलोहिता आरक्ता या अङ्गुलय करशाखास्तासा प्रभा दीप्तिस्तया पाटलिता श्वेतरक्तीकृता नखमयूखा पुनर्भवदीप्तयो यस्या सा तथा ताम्। यद्यपि नखाना स्वत एवारुण्यात्पाटलत्वमस्त्येव, तथापि मिथोमिश्रीभाव एव पाटलत्व बोध्यम्। चरणयो पल्लववर्णनप्रयोजनमाह—**अतीति**। अतिकठिनमतिकर्कश यन्मणिकुट्टिम मणिबद्धभूस्तस्य स्पर्श सश्लेषमसहमानामक्षममानाम्। **क्षितीति**। क्षितितले धरणीतले पल्लवभङ्गानिव किसलय खण्डानिव निधाय स्थापयित्वा सचरन्तीं चलन कुर्वतीमित्युत्प्रेक्षा। **आलिङ्गित इति**। आलिङ्गित आश्लिष्टो देह शरीरं यस्या सा तथा ताम्। केन। भगवता माहात्म्यवता पावकेन वह्निना। अथ पावक विशेषयन्नाह—रूपे सौन्दर्ये एव पक्षपातिनानुरक्तचित्तेन प्रजापतिं ब्रह्माणमप्रमाणीकुर्वता। तदङ्गीकारादिति भाव। कया। **आपिञ्जरेति**। आपिञ्जरेण पीतरक्तेन। 'पीतरक्तस्तु पिञ्जर' इत्यभिधानचिन्तामणि.। उत्सर्पिणा सर्वत. प्रसारिणा नूपुरस्य हसकस्य मणयो रत्नानि तेषा प्रभा त्विषस्तासा जालेन समूहेन रञ्जित यच्छरीर तस्य

लक्ष्मी ही थी। क्रुद्ध महादेव की (उसके तीसरे नेत्र से निकली) आग से जलाये गये काम के (शरीर से निकले) धुएँ से काली हुई सी काम की पत्नी थी। नशे मे धुत बलराम के हल से खिंच जाने की आशङ्का से भागी हुई मानो यमुना-नदी थी। अत्यन्त गाढ़े महावर के लाल रग (पत्र-सदृश रेखाओं) से रगे[1] चरण कमलों वाली वह चाण्डालकन्या, कुछ ही समय पूर्व मारे हुए महिषासुर के रक्त से लाल हुए पाँवो वाली दुर्गा (पार्वती) सरीखी थी। उसके नखों की चमक कुछ-कुछ गहरे लाल रग की पादाँगुलियों की चमक से पीली सी लाल हो गयी थी, मानो वह अत्यन्त कठोर फर्श के स्पर्श को न सहन करती हुई पृथ्वी पर

१ पल्लवितम्, अलक्तकेन रञ्जितम्।

जालेन रञ्जितशरीरतया पावकेनेव भगवता रूप एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिङ्गितदेहाम्, अनङ्गवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन रोमराजिलतालवालकेन रसनादाम्ना परिगतजघनाम्, अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन शुचिना हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसितपुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्,

---

भावस्तत्ता तया हेतुभूतया। एतेन नूपुरमणिप्रभावह्न्योः परस्परमुपमानोपमेयभाव सूचित। तदालिङ्गनप्रयोजनमाह—जातीति। विधात्रा चाण्डालजात्याक्रान्ता सा निर्मिता। सा च सर्वथास्पृश्यैवाशुचित्वात्। अशुचिर्वह्निना शुचि स्यादिति तदालिङ्गने प्रयोजनमिति भाव। रसनेति। रसना कटिमेखला सैव दाम बन्धनरज्जुस्तेन परिगत समन्ताद्व्याप्त जघन कट्या पुरोभागो यस्या सा ताम्। 'कट्या क्लीबे तु जघन पुर' इत्यमर। मेखलादाम विशेषयन्नाह—अनङ्गेति। अनङ्ग एव वारणो गजस्तस्य शिरसि शोभार्थं नक्षत्रमालावदाचरमाणेन। रोमेति। रोमराजिरेव लता वल्ली तस्या आलवालकेनावापेनेति रूपकम्। अतीति। अतिस्थूलानि यानि मुक्ताफलानि तैर्घटितो निष्पादितस्तेन शुचिना विशदेन हारेण चतु षष्टिलतेन। 'चतु षष्टिलतो हार' इत्यमरः। अत एव विशदत्वात्। गङ्गास्रोतसेव गङ्गाप्रवाहेणेव। चाण्डालकन्यकाया श्यामत्वात् कालिन्दीशङ्कया यमुनाभ्रान्त्या कृत कण्ठग्रहो गलसश्लेषो यस्या सा तथा ताम्। पुन कामिव। शरदमिव घनात्ययमिव। उभयो शब्दसाम्य प्रदर्शयन्नाह—विकसितेति। विकसितानि पुण्डरीकाण्येव लोचनानि यस्या सा तथेति विग्रह। शरदि सर्वत्रापि कमलानामुन्निद्रत्वेन तथा सभवात्। पक्षे विकसितपुण्डरीकवल्लोचने यस्या सा तथेति विग्रह। पुन कामिव। प्रावृषमिव वर्षाकालमिव। उभयोर्विशेषणसाम्यमाह—घनेति। घना निबिडा ये केशास्तेषा जालानि यस्याम्। पक्षे घना एव केशजालानि यस्यामिति विग्रह। मलयेति। मलयस्य पर्वतस्य मेखला मध्यभागस्तामिव। उभयो सादृश्यमाह—

किसलयों—कोमल पत्तियों के टुकड़ों को बिछाकर चल रही थी। उसका शरीर (उसके) नूपुरों की ऊपर को आती कुछ कुछ लाल चमक से रगा होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो केवल रूप की चिन्ता करने वाले, ब्रह्मा अथवा सृष्टिकर्ता (की व्यवस्था) की अवहेलना करते हुए भगवान् अग्निदेव ने (उसकी) जाति मे सशोधन करने के लिये ही उसके शरीर का आलिङ्गन किया हुआ हो। उसका जघनस्थल (कटिप्रदेश), कामदेवरूपी हस्ती की 'नक्षत्रमाला' (चन्द्रहार)-सी बनी हुई, (उसकी नाभि से ऊपर को उठती) रोमराजिरूपा लता के आलवाल-सी प्रतीत होती, वृत्ताकार मेखला से घिरा हुआ था। बहुत बड़े मोतियों से बने एक स्वच्छ हार ने उसके गले को ऐसे पकड़ रखा था (हार उसके गले में ऐसा पड़ा था) कि मानो गगा की (श्वेत) धारा ने ही उसको यमुना समझते हुए उसके गले का आलिंगन कर रखा हो। पूर्णतया विकसित कमल सदृश आँखों वाली वह, पूर्ण विकसित कमल ही जिसकी आँखें हैं ऐसी शरद् ऋतु के समान प्रतीत हो रही थी। घने

नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थितकमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिव रूपसपन्नाम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातङ्गकुलदूषिताम्, अमूर्ता-

चन्दनेति। चन्दनस्य पल्लवा किसला(लया)नि तेषामवतसा यस्या सा ताम्। पक्षे चन्दनपल्लवास्त एवावतस शेखरो यस्यामिति विग्रह। नक्षत्रेति। नक्षत्राणामुडूना माला पङ्क्तिस्तामिव। उभयो सादृश्यमाह—चित्रेति। चित्राणि विविधप्रकाराणि श्रवणे कर्णे आभरणानि भूषणानि यस्या सा ताम्। पक्षे चित्राश्रवणावेव आभरणे ताभ्या भूषितेति विग्रह। श्रियमिति। श्रीर्लक्ष्मीस्तामिव। उभयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—हस्तेति। हस्ते पाणौ स्थिता कमलस्य पद्मस्य शोभा श्रीर्यस्या सा ताम्। पक्षे हस्ते स्थित यत्कमल तेन शोभा यस्या इति विग्रह। मूर्च्छेति। मूर्च्छा मोहस्तामिव। एतयो साम्यमाह—मनोहारिणीमिति। सुन्दराकृतित्वेन मनोहरामित्यर्थ। पक्षे नष्टचेतनात्मकत्वेन मनोहारिणीमिति भाव। अरण्येति। अरण्यमटवी तस्य भूमि क्षितिस्तामिव। उभयो सादृश्यमाह—रूपेति। रूपमाकृतिविशेषस्तेन सपन्ना सहिताम्। पक्षे रूपा पशवस्तै सपन्ना सगताम्। 'रूप तु श्लोकशब्दयो। पशावाकारे सौन्दर्ये' इत्यनेकार्थ। दिव्येति। दिव्या देवसबन्धिनी योषित्स्त्री तामिव। उभयो सादृश्यमाह—अकुलीनामिति। अकुलीनामकुलोत्पन्नाम्। 'कुलात्ख'। खस्येनादेश। पक्षे कौ पृथिव्या लीना स्थिताम्। निद्रेति। निद्रा प्रमीला तामिव। उभयो सादृश्य प्रदर्शयन्नाह—लोचनेति। अत्यद्भुतरूपवशात्कामिजनाना लोचनग्राहिणी नेत्राकर्षणीम्। पक्षे निमेषोन्मेषसहिते लोचने ग्रहीतु शीलमस्या इति शीले णिनि। नान्तत्वान्ङीप्। अरण्येति। अरण्य वन तस्य या कमलिनी तामिव। उभयो सादृश्यमाह—मातङ्गेति। मातङ्गश्चाण्डालस्तस्य कुलमन्वयस्तेन

बालों के समूह वाली वह मेघरूप केशो वाली वर्षा ऋतु सरीखी दिखायी देती थी। चन्दन के किसलय (नये पत्ते) ही जिसके आभूषण हो ऐसी मलयपर्वत के मध्य भाग[1] के सदृश चन्दन की कोंपले ही उसके आभूषण थे। (सत्ताईस) नक्षत्रो की माला चित्रा, श्रवण तथा भरणी नाम के नक्षत्रो से युक्त होती है वह भी अद्भुत (चित्र) कर्णालकारों से अलकृत होने के कारण 'चित्रश्रवणाभरणभूषिता' थी। हाथ मे स्थित कमल से शोभा वाली लक्ष्मी देवी के समान वह भी, अपने हाथों (की सुकुमारता) मे कमलों की शोभा धारण किये हुई 'हस्तस्थित-कमल-शोभा' थी। अचेतनता (मूर्छना) मन को अर्थात् चेतना को नष्ट कर देने से जैसे (मन + हारिणी) है—वह भी हृदय को आकर्षित करने वाली—मनोहारिणी थी। जगल की भूमि अक्षवृक्षों से युक्त होने से 'अक्ष—तरु—उपसम्पन्ना' होती है ऐसे वह भी निर्दोष सौंदर्य से युक्त—अक्षत रूपसम्पन्ना-थी। दिव्यकन्या पृथ्वी पर स्थित न होने से अ-कु लीना कहलाती है ऐसे ही वह भी नीच कुल में उत्पन्न हुई होने के कारण 'अ-कुलीना' थी। आँखों को पकड़ लेने वाली लोचनग्राहिणी-नींद की भाँति वह भी (देखने वाले की) आँखों (दृष्टि) को पकड़ लेने—आकर्षित कर लेने के कारण, लोचन ग्राहिणी, थी। कमलिनी हस्तियों के समूह से मलिन (अपहृत) होने के कारण मातङ्ग कुल दूषिता कहलाती है वैसे

१, मेखला मध्यभाग The slope of a mountain (नितम्ब)

मिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमासकुसुमसमृद्धिमिवा-जातिम्, अनङ्गकुसुमचापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीम्, अचिरोपारूढयौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिमनिमिषलोचनो ददर्श।

जातविस्मयस्याभून्मनसि महीपतेः—'अहो विधातुरस्थाने सौन्दर्यनिष्पादन-

---

दूषिता मलिनीकृताम्। पक्षे मातङ्गकुलेन हस्तिसमुदायेन दूषिताम्। मर्दितामित्यर्थः। अमूर्तेति। अमूर्तैर्यत्तावच्छिन्नपरिमाणशून्या बुद्धिस्तामिव। उभयोस्तुल्यत्वमाह—स्पर्श इति। स्पर्शः सश्लेष शिष्टाना तेन वर्जिता रहिताम्। अकुलीनत्वादेव। पक्षे स्पर्शो गुणस्तद्वर्जिता रहिताम्। अमूर्तत्वादेव। आलेख्येति। आलेख्य चित्र तत्र गतां प्राप्ता पुत्रिकामिव। उभयो साम्यमाह—दर्शनेति। चाण्डालत्वादेव न भोगफलकत्वमस्या। अत एव दर्शनमालोकनमात्रमेव फलं प्रयोजन यस्या सा तथा ताम्। पक्षेऽपि तथैव बोध्यम्। मध्विति। मधुमासे वसन्तसमये या कुसुमसमृद्धिस्तामिव। उभयोस्तुल्यतां प्रदर्शयन्नाह—अजातिमिति। न विद्यते जातिर्ब्राह्मणत्वादिर्यस्यां सा ताम्। पक्षे न विद्यते जातिर्मालती यस्यां सा तथा ताम्। 'वसन्ते मालतीपुष्प फलपुष्प च चन्दनेन वर्णनीयम्' इति कविप्रसिद्धिरपि। अनङ्गेति। अनङ्गस्य मदनस्य कुसुमचापस्य पुष्पधनुषो या लेखा तामिव। उभयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—मुष्टीति। मुष्टिना ग्राह्यो ग्रहीतु शक्यो मध्यो मध्यप्रदेशो यस्या सा ताम्। यक्षाधिपलक्ष्मीमिति। यक्षाधिपाना गुह्यकेश्वराणां लक्ष्मीर्हरिप्रिया तामिव। उभयो सादृश्यमाह—अलकेति। अलकै केशैरुद्भासत इत्येवंशीला सा तथा ताम्। पक्षे अलकाभिर्नगरीभिरुद्भासिनीति विग्रह। अचिरेति। अचिर त्वरितमुपारूढ प्राप्त यौवन तारुण्य यया सा तथा ताम्। सम्प्राप्तयौवनामित्यर्थः। अतीति। अतिशयरूपोत्कृष्टाकृतिराकारो यस्या सा तथा ताम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

मनसीति। मनसि जातो विस्मय आश्चर्यं यस्यैवभूतस्य महीपते राज्ञ। एवमित्यध्याहार्यम्। अभूदित्यन्वय। एवमित्यस्य विषयमाह—अहो इति। अहो इति वितर्के। विधातुर्ब्रह्मणोऽस्थानेऽपदे सौन्दर्यस्यानुत्तरूपस्य निष्पादन निर्माणं तत्र प्रयत्न परिश्रम। तदेव

ही वह भी (अपने) चाण्डाल वश से दूषित होने के कारण मातङ्ग कुलदूषिता थी। मूर्तिरहित वस्तु छुआ नहीं जा सकने के कारण स्पर्शवर्जिता होती है, अस्पृश्य होने के कारण वह भी 'स्पर्शवर्जिता' थी। चित्र में अंकित की गयी आकृति का एकमात्र प्रयोजन दर्शन कर लेना ही होता है ऐसे ही उसका भी एक मात्र फल उसका दर्शन कर लेना ही था। चैत्र महीने की पुष्प बहुलता, उसमें 'जाति'-नाम के पुष्पों के अभाव के कारण 'अजाति' होती है—उसकी कोई ब्राह्मण आदि जाति नहीं थी इस कारण वह भी 'अजाति' थी। कामदेव के पुष्पधनुष की पक्ति के समान अर्थात् पतले पुष्प धनुष के समान उसका भी मध्य भाग (पतला होने के कारण) मुट्ठी से पकड़ा जा सकता था। यक्षाधिप कुबेर की राज्य लक्ष्मी, 'अलका' नाम की नगरी से शोभित होने के कारण अलका+उद्भासिनी है वैसे वह भी अपने केशों से उज्ज्वल होने के कारण अलकोद्भासिनी थी। वह अभी-अभी युवती हुई थी तथा उसकी आकृति अत्यन्त रूपवती थी।

प्रयत्नः। तथा हि यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता, किमर्थमपगत-स्पर्शसंभोगसुखे कृतं कुले जन्म। मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः। सर्वथा धिग्धिग्विधातारमसदृशसयोगकारिणम्, मनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाप्युद्वेजयति' इति। एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलितकर्णपल्लवावतसा

दर्शयति—तथाहीति। नामेति कोमलामन्त्रणे। यदीय चाण्डालकन्यकात्मन स्वकीयस्य रूपेण सौन्दर्येणोपहसितोपहास्यास्पदीकृताशेषरूपसपत्समग्रसौन्दर्यसमृद्धिर्यया सैवविधोत्पादिता निर्मिता। किमर्थं किंप्रयोजनम्। अपगते दूरीभूते स्पर्श सश्लेष सभोगसुख सुरतसात ते च यस्मिन्नेवभूते कुले जन्मोत्पत्ति कृत विहितम्। किमर्थमिति विमर्शे निश्चयमाह—मन्ये चेति। मन्ये जाने। अहमिति शेष। प्रजापतिना ब्रह्मणाऽस्पृशता स्पर्शमकुर्वतेयम्। उत्पादिता निष्पादिता। अत्रार्थे हेतुमाह—मातङ्गेति। मातङ्गस्य जाति यातिस्तस्या स्पर्श सश्लेषस्तज्ज नितो यो दोषस्तस्माद्भय भीतिस्तस्मादित्यर्थं। विपर्यये बाधकमाह—अन्यथेति। अन्यथा पूर्वोक्तविपर्यये। लावण्यस्य लवणिम्न। कथमिति प्रश्ने। इय प्रत्यक्षोपलक्ष्यमाणाऽक्लिष्टता कोमलत्व स्यात्। अत्रार्थे हेतुमाह—नहीति। करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवाना कुचादीनाम्। ईदृशी एतादृशी कान्ति सौकुमार्य नहि भवति न स्यात्। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेण। धिग्धिगिति खेदातिशय आम्रेडितम्। विधातार ब्रह्माणमसदृशोऽनुचितो य सयोग सबन्ध स्तत्कारिणम्। येनासदृशसयोगेनेय चाण्डालकन्यका मनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया चाण्डाल-जातितयासुराणा दैत्याना श्रीर्लक्ष्मीस्तद्वदिव। सततमिति। सतत निरन्तर निन्दित गर्हित सुरत मैथुन यस्या सैवविधा रमणीयापि सभोगयोग्याप्युद्वेजयति। वैचित्र्यमुत्पादयतीत्यर्थं।

और आश्चर्य से अभिभूत राजा के मन मे निम्नलिखित विचार उठे—"अरे! विधाता का यह तो अनुपयुक्त स्थान मे (अपात्र मे) सौन्दर्य उत्पन्न करने का यत्न है। क्योंकि, यदि उसने इसको अपने सौन्दर्य से अन्य सभी वस्तुओं के रूप सौन्दर्य को मात देने वाली बनाया ही था तो फिर इसका जन्म ऐसे वश में क्यों किया जिससे आलिङ्गन तथा सम्भोग का सुख छीना हुआ है [अर्थात् जो (भोग के लिये) निषिद्ध है]। मैं समझता हूँ कि (स्वय दैव ने भी) मातङ्गजाति को छू लेने के पाप से डरते हुए इसे (वस्तुतः) न छूते हुए ही उत्पन्न किया होगा, नहीं तो (इसमे) सौन्दर्य की यह (प्रत्यक्ष दिखायी दे रही) पूर्णता (शब्दार्थ—अक्षीण स्थिति अथवा कोमलता) कहाँ से आती, क्योंकि हथेलियों के स्पर्श द्वारा क्लेश दिये गये अगों की तो ऐसी शोभा होती ही नहीं! असदृश सयोग करने वाले विधाता को धिक्कार है! इस असदृश सयोग के कारण ही यह अत्यन्त आकर्षक देहवाली भी क्रूर जाति वाली होने के कारण निरन्तर गर्हित मैथुन वाली (सतत गर्हित सुरता) है, और इसीलिये असुरों की उस राज्यश्री की भाँति दुःख देती है जो सुन्दर होते हुए भी देवता पन (देवत्व) की निरन्तर निन्दा करती है—'सतत-निन्दित-सुर-ता है।' इसी प्रकार की बातें

प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम। कृतप्रणामाया च तस्या मणिकुट्टिमोपविष्टाया स पुरुषस्तं विहङ्गमं शुकमादाय पञ्जरगतमेव किंचिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयत। अब्रवीच्च—'देव, विदितसकलशास्त्रार्थः, राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनां, काव्यनाटकाख्यायिकाख्यानकप्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता स्वयं च कर्ता, परिहासालापपेशलः, वीणावेणुमुरजादीनामसमः श्रोता, नृत्तप्रयोगदर्शननिपुणः, चित्रकर्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलह-

पक्षे सततं निन्दिता सुरता सुरसमूहो ययेति दैत्यलक्ष्म्या विशेषणम्। एवमिति। एवमादि पूर्वोक्तप्रकारेण। चिन्तयन्तं विमर्शं कुर्वाणमेव राजानं नृपं कन्यका चाण्डालकुमारी प्रणनाम प्रणाममकरोत्। केव। प्रगल्भवनितेव सम्प्रत्यारूढयौवनत्वादप्रगल्भापि प्रगल्भवनितेव नमश्चकारेत्यर्थं। अत्र वीतशङ्कत्वं व्यङ्ग्यम्। प्रणेति प्राद्युपसर्गयोगाण्णत्वम्। पुनः कीदृशी। ईषदिति। ईषदल्पमवगलितोऽधः प्रसृतः कर्णे पल्लवस्यावतंसः शेखरो यस्या सा तथा। अत्र कर्णपदं कटिमेखलादिवज्ज्ञेयम्। तदुक्तम्—'कर्णावतंसादिपदे कर्णादिध्वनिनिर्मितिः' इति। 'सर्वदा तत्सान्निध्यबोधनार्थम्' इति काव्यप्रकाशेऽपि। कृतेति। कृतो विहितः प्रणामो नतिर्यया सा तथा तस्याम्। मणीति। मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूमिस्तत्रोपविष्टाया स्थितायाम्। स इति पूर्वोक्तो धवलवासा पुरुषस्तं विहङ्गमं पक्षिणं शुकं कीरमादाय गृहीत्वा पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थलं तत्र गतमेव प्राप्तमेव। न ततः पृथक्कृत्वेत्यर्थं। किंचिद्विनयेन पुरः उपसृत्यागत्य राज्ञे नृपाय न्यवेदयत्प्रदर्शितवान्। अब्रवीच्च। उवाचेत्यर्थं। देवेति संबोधनपदम्। 'राजा भट्टारको देवः' इति कोशः। हे राजन्, अयं वैशम्पायनो नाम वैशम्पायन इति नाम्ना प्रसिद्धः। नामेति कोमलामन्त्रणे। शुको वर्तते। कीदृक्। विदितो ज्ञातः सकलशास्त्राणां धर्माध्यात्मयुक्तिशास्त्राणामर्थोऽभिधेयं येन स तथा। तेन वक्ष्यमाणेन न पौनरुक्त्यम्। इतः शुकं विशेषयन्नाह—राजेति। राजनीतेः कामन्दकीप्रतिपादितायाः प्रयोगः शिक्षा तत्र कुशलश्चतुरः। पुराणेति। पुराणं पञ्चलक्षणम्, इतिहासः पुरावृत्तम्, तेषां या कथा वार्ता तत्र य आलापस्तदर्थबोधकवाक्यरचना तत्र निपुणश्चतुरः। वेदितेति। गीतं गानम्, श्रुतयो द्वाविंशतिः। तदुक्तम्—'सप्त

सोचते हुए ही राजा को उस कन्या ने एक प्रौढ़ महिला की भाँति (अर्थात् प्रौढ़ महिला की सी शिष्टता तथा निःशङ्कता से) प्रणाम किया, (उस समय) उसका कर्णाभूषण कुछ खिसक गया था। और प्रणाम कर चुकने पर जब वह मणिजटित फर्श पर बैठ गयी तो उस पुरुष ने उस पिंजरे मे बन्द हुए तोते को हाथ में लेकर कुछ आगे बढ़कर राजा को अर्पित कर दिया और कहा—"राजन्! सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों से परिचित राजनीति (के नियमों) के प्रयोग में निपुण, पुराण तथा इतिहास की कथाओं (को सुनाने) का अभ्यासी, संगीत की (वाद्य) श्रुतियों का पूर्णज्ञाता, काव्य नाटक उपन्यास-कथा आदि अनगिनत उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं का पाठक तथा स्वयं भी उनका रचयिता, विनोदपूर्ण भाषण करने में दक्ष; वीणा-वंशी-ढोल (मुरज) आदि विविध वाद्ययन्त्रों का पारखी; नृत्य के प्रदर्शन (प्रयोग) तथा उसके (समीक्षात्मक) मूल्यांकन में दक्ष, चित्रकला में अभ्यस्त जुआ खेलने

कुपितकामिनीप्रसादनोपायचतुरः, गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः, सकलभूतलरत्नभूतोऽयं वैशंपायनो नाम शुकः सर्वरत्नानामुदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता। तदयमात्मीयः क्रियताम्' इत्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।

स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छाश्चैकोनविंशति। ताना एकोनपञ्चाशद्द्व्यधिका विंशति श्रुति' इति। तासा वेदिता ज्ञाता। काव्येति। दोषाभावे सति गुणालंकारवत्कविकर्म काव्यम्, नाटकमभिनयात्मकम्, आख्यायिका वासवदत्तादि, आख्यानकमिदानीन्तनराजवृत्तम्, एतत्प्रभृतीना सामुद्रिकादीना तथापरिमितानामसख्याना, सुभाषितानां शृङ्गारनीतिवैराग्यप्रतिपादकानां चाध्येता पाठक। स्वयमात्मनैव कर्ता निष्पादकश्च। अनेन तस्य सर्वकलासु नैपुण्य सूचितम्। परीति। परिहासोऽन्येषा नर्मवचनैर्हसन तस्य य आलापा रसव्यञ्जकशब्दप्रयोगास्तत्र पेशल कुशल। वीणेति। वीणाशब्दसमभिव्याहारात्ततम्। तथैव वेणुशब्देन सुषिरम्, मुरजशब्देनानद्ध, आदिशब्दाद्घन कांस्यतालादि गृह्यते। एतेषामसमोऽद्वितीय श्रोताऽऽकर्णयिता। नृत्तमिति। नृत्तं ताललयाश्रित तस्य प्रयोग प्रारम्भो दर्शनमवलोकन तत्र निपुणोऽभिज्ञ। चित्रेति। चित्रकर्मण्यालेख्यकलायां प्रवीण। कृतपरिश्रम इत्यर्थ। द्यूतेति। द्यूत दुरोदर तस्य व्यापारो व्याहृतिस्तत्र प्रगल्भ प्रतिभान्वित। प्रणयेति। प्रणयेन स्नेहेन य कलह कलिस्तेन कुपिता कोप प्राप्ता या कामिनी स्त्री तस्या प्रसादन सान्त्वन तत्र य उपाय प्रपञ्चस्तत्र चतुरोऽभिज्ञ। गजेति। गजा भद्रजातीया, तुरगा शालिहोत्रोक्तदेवमणिप्रभृतय, पुरुषा धीरोदात्तप्रभृतय, स्त्रिय पद्मिनीप्रभृतय, तासा लक्षणानि सामुद्रिकोक्तानि तत्राभिज्ञ कुशल। सकलेति। सकल समग्र यद्भूतल अर्थाद् भरतक्षेत्र तत्र रत्नभूत। स्वजातावत्युत्कृष्ट इत्यर्थ। अय च प्रत्यक्षेण दृश्यमान सनिहित। रत्न च मुक्तारत्नाश्रयत्वात्। राज्ञो रत्नाकरत्वमाह—सर्वेति। सर्वरत्नानां सर्वोत्कृष्टवस्तूनां भाजनमाश्रय। क इव। उदधिरिव समुद्र इव। यथोदधि सर्वरत्नाना कौस्तुभप्रभृतीनामाश्रयस्तथा भवानपीत्यर्थं। एतत्प्रयोजनमाह—इतीति। इति कृत्वा इति हेतोरस्मत्स्वामिनो वक्ष्यमाणस्य दुहिता कन्यकैन शुकमादाय गृहीत्वा देवस्य राज्ञ पादमूल चरणमूलमायातागता। तदिति। तस्माद्धेतोरय शुक आत्मीय स्वकीय क्रियता विधीयतामिति पूर्वप्रतिपादितमुक्त्वा प्रतिपाद्य। 'पूर्वकालत्वस्य क्त्वाप्रत्ययवाच्यत्वेऽपि विवक्षितविवेकेनानन्तर्यमेव वाच्यम्' इति। नरपते राज्ञ पुरो निधायाग्रे स्थापयित्वा पञ्जर पक्षिरक्षणस्थलमसौ पुरुषोऽपससारापसृतवान्। 'सृज् अपसरणे' इत्यस्य लिटि रूपम्।

की कला का पडित, प्रेमकलहों मे क्रुद्ध स्त्रियों को प्रसन्न करने के उपायो का ज्ञाता, हाथियो, घोड़ों, पुरुषों तथा स्त्रियों के (सामुद्रिक) लक्षणों का व्याख्याकार, (सक्षेपत) सम्पूर्ण भूमण्डल का (एक) रत्नभूत, यह वैशम्पायन नाम का तोता है। और यह समझते हुए कि समुद्र की भाँति महाराज भी सब रत्नों के पात्र हैं, हमारे स्वामी की कन्या इसको लेकर आपके (वन्दनीय) चरणो मे उपस्थित हुई है। इसलिये इसे (स्वीकार कर) आप अपनाइये। यह कहकर उसने पिंजरे को राजा के सन्मुख रख दिया और वह हट गया।

अपसृते च तस्मिन्स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वोन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥ २१ ॥

राजा तु तामार्यां श्रुत्वा संजातविस्मयः सहर्षमासन्नवर्तिनम्, अतिमहार्घे हेमासनोपविष्टम्, अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम्, अतिवयसम्, अग्रजन्मानम्, अखिले मन्त्रिमण्डले प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत्—'श्रुता भव

अपेति। तस्मिन्पुरुषेऽपसृते दूरीभूते सति स पूर्वोक्तो विहङ्गानां पक्षिणां राजा विहङ्गराजः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'। राजाभिमुखो नृपसंमुखो भूत्वा दक्षिणमपसव्यं चरणं पादमुन्नमय्योर्ध्वीकृत्य। शुकादीनां शब्दोच्चारणे तादृशोऽयं जातिस्वभावः। अतीति। अतिस्पष्टा अतिव्यक्ता वर्णा अक्षराणि स्वरा उदात्तादयस्तेषां संस्कारः परिपाको यस्याः सा तथा तया। यद्यप्यन्यत्र शुकादीनामस्पष्टो वर्णस्तथाप्येतस्य स्पष्टो वर्ण इति विशेषः। एवंविधया गिरा वाण्या राजानमुद्दिश्य कृतो विहितो जयशब्दो येन स एवंविधः इमामग्रे वक्ष्यमाणामार्यां पपाठापाठीत्। स्तनेति। भवतस्तव रिपुस्त्रीणां दस्युवनितानां स्तनयुगं कुचयुग्मं व्रतमिव नियममिव चरत्यासेवते। तदेव विशिनष्टि—अश्विति। अश्रुभिर्नयनसलिलैः स्नातं कृतस्नानम्। समीपेति। समीपतरवर्ति संनिहितवर्ति। कस्य। हृदयशोकः स्वभर्तृवियोगजनितं दुःखं तदेवाग्निर्वह्निस्तस्य। विमुक्तस्त्यक्त आ समन्ताद्धारो येन तत्तथा। अन्योऽपि यो व्रतं चरति सोऽपि विमुक्ताहारः कृतस्नानोऽग्निसमीपस्थायी च स्यात् ॥ २१ ॥

राजा तु नृपोऽपि तामार्यां गाथां श्रुत्वाकर्ण्य संजातविस्मयः समुत्पन्नाश्चर्यः सहर्षं सप्रमोदं यथा स्यात्तथासन्नवर्तिनं समीपवर्तिनम्। कुमारेति। कुमारपालित इति नाम यस्यैव-

और उसके हट जाने पर इस पक्षिराज अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट पक्षी ने राजा की ओर मुँह करके अर्थात् राजा के सन्मुख होकर, दायाँ पैर उठाकर, अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों, स्वर (ऊँची नीची आवाज) तथा संस्कार (व्याकरण शुद्धि) से युक्त वाणी में 'जय जय' कार करके राजा को लक्ष्य करके निम्नलिखित 'आर्या' पढ़ी—"आपके शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन आँसुओं से भीगे हुए हैं और वे हृदय की (हृदय स्थित) शोक रूप अग्नि के अत्यन्त समीप स्थित हैं—उन्होंने (मुक्ता-हार) मोतियों का हार (पहनना[1]) भी छोड़ रखा है ऐसा प्रतीत होता है कि वे मौनव्रत धारण किये हुए हैं—क्योंकि व्रती व्यक्ति भी आहार छोड़कर 'विमुक्त + आहार' हो जाता है, स्नान किये हुए होता है तथा अग्नि के समीप बैठता है।"

उस आर्या को सुनकर राजा के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ—उसने प्रसन्नतापूर्वक (अपने समीप) वर्तमान, अत्यन्त मूल्यवान् (मँहगे) सोने के आसन पर बैठे हुए देवगुरु बृहस्पति सरीखे सारे नीति शास्त्रों के पंडित, अत्यन्त वृद्ध, ब्राह्मण, सारे मन्त्रिमण्डल के प्रधान मन्त्री कुमार पालित से कहा—"आपने इस पक्षी की वर्णों के उच्चारण में स्पष्टता और

1. वि + मुक्ता-हार स्तनयुगम्। अर्थात् मोतियों के हार से रहित है।

द्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता। प्रथमं तावदिदमेव महदाश्चर्यम्, यदयमसंकीर्णवर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वारसंस्कारयोगां विशेषसंयुक्तां गिरमुदीरयति। तत्र पुनरपरमभिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवतो बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः। तथा हि, अनेन समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य जयशब्दमियमार्या मामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च

भूतममात्यं सचिवमब्रवीदवोचत्। अथामात्यं विशेषयन्नाह—अतीति। अतिमहार्घमतिबहुमूल्यं यद्धेमासनं सुवर्णासनं तत्रोपविष्टं स्थितम्। अशेषेति। अशेषाणि समग्राणि यानि नीतिशास्त्राणि लोककृत्यविवेकाविवेकप्रतिपादकानि तन्त्राणि तेषां पारगं रहस्यवेत्तारम्। कमिव। अमरगुरुमिव बृहस्पतिमिव। अतीति। अत्यधिकं वयो दिवसबाहुल्यं यस्य स तथा तम्। अग्रेति। अग्रे प्रथमवर्णे जन्म यस्य स तम्। ब्राह्मणमित्यर्थः। अखिलेति। अखिले समग्रे मन्त्रिमण्डले धीसचिवसमुदाये प्रधानं मुख्यम्। श्रुतेति। भवद्भिर्युष्माभिरस्य विहङ्गमस्य शुकस्य वर्णा कादयस्तेषामुच्चारणे वक्तव्यतायां स्पष्टताऽश्लिष्टता श्रुताकर्णिता। स्वरे स्वरविषये मधुरता माधुर्यम्। चकारः पुनरर्थकः। प्रथममिति। प्रथममादौ तावदित्यन्यव्यवच्छेदार्थः। इदमेव प्रत्यक्षगतमेव महदाश्चर्यम्। अतिकौतूहलमित्यर्थः। तदेव दर्शयति—यदिति। यदयं गिरं वाणीमुदीरयत्युच्चरति। इतो वाणीं विशेषयन्नाह—असंकीर्णेति। असंकीर्णः परस्परवैलक्षण्येन प्रतीयमानो वर्णानामक्षराणां प्रविभागो भिन्नता यस्यां सा तथा ताम्। अभीति। मात्रा एकारादयः, अनुस्वारः अनुनासिकाः, संस्कारो व्याकरणशुद्धिः, अभिव्यक्ताः प्रकटाः, एतेषां योगाः संबन्धा यस्यां सा तथा ताम्। विशेषेति। विशेषः शब्दश्लेषादिस्तेन संयुक्तां सहिताम्। तत्रेति। पुनरपरमधिकमभिमतविषय उपादेयेऽर्थे तिरश्चोऽपि पक्षिणोऽपि मनुजस्येव मनुष्यस्येव संस्कारवत इति तत्तदर्थविषयानुभवजन्यः संस्कारस्तद्वतो बुद्धिपूर्वा प्रतिभाहेतुका प्रवृत्तिः प्रवर्तनं भवति। किमाश्चर्यमित्यर्थः। तदेवाद्भुतं दर्शयति—तथा हीति। अनेन शुकेन समुत्क्षिप्त ऊर्ध्वीकृतो दक्षिणचरणोऽपसव्यपादो येन स तथा तेन जयशब्दं जयजयारवमुच्चार्यो-

वाणी में मधुरता सुन ली है। पहले तो यही बात बड़े आश्चर्य की है कि यह ऐसी वाणी बोलता है कि जिसमे अक्षरों के पृथक् विभाग (परस्पर) संयुक्त नहीं हैं—एक एक अक्षर पृथक् पृथक् सुनायी देता है, मात्रा, अनुसार और संस्कार (व्याकरण-शुद्धि) के योग (सम्बन्ध) सर्वथा स्पष्ट हैं और जो (दूसरी) विशेषताओं से भी युक्त है। फिर इसमे यह दूसरा आश्चर्य भी है कि अभीष्ट विषय मे (इस) पक्षी की प्रवृत्ति भी संस्कारी मनुष्य की प्रवृत्ति सरीखी विचार-पूर्विका प्रवृत्ति है। उदाहरणतः इसने अपना दाँया पैर उठाकर, जय-जयकार करके मुझे लक्ष्य करके सुस्पष्ट अक्षरो मे आर्या का पाठ किया। सामान्यतः तो, पक्षी और पशु केवलमात्र भय, भोजन, मैथुन, निद्रा तथा संकेतों को ही समझ सकते हैं। (इसलिये) यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"—जब राजा ने यह बात कही तो कुमारपालित कुछ मुस्कराते हुए बोला—"राजन्! इसमें आश्चर्य की क्या बात है। आप यह तो जानते ही हैं कि तोते, मैना आदि ये पक्षीविशेष शब्दों को जैसे सुनते है, उसके अनुसार बोल देते

भयाहारमैथुननिद्रासञ्ज्ञामात्रवेदिनो भवन्ति। इदं तु महच्चित्रम्' इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किंचित्स्मितवदनोऽवादीत्—'किमत्र चित्रम्। एते हि शुकसारिकाप्रभृतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुता वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्तसंस्कारानुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नातिचित्रम्। अन्यदेतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटाभिधाना वागासीत्। अग्निशापात्त्वस्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणां च जिह्वापरिवृत्तिः' इति। एवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमध्यारूढमावेदयन्नाडिकाच्छेदप्रहतपटुपटहनादानुसारी मध्याह्नशङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ।

दीर्येयमार्या पूर्वोक्ता मामुद्दिश्य परिस्फुटानि व्यक्तान्यक्षराणि यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। गीता गानविषयीकृता। किमित्यत आह—प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन पक्षिण पतत्रिण, पशवो मृगाद्या। भयेति। भयमनिष्टहेतुज्ञानम्, आहार क्षुधानिवृत्त्युपाय, मैथुनं व्यवाय, निद्रा बाह्येन्द्रियोपरम, सञ्ज्ञा लोकव्यवहारजनकशब्द, एतन्मात्रवेदिनो भवन्ति एतन्मात्रमेव जानन्ति नाधिकम्। इदं तु महच्चित्र महदाश्चर्यम्। इत्युक्तवतीति भाषितवति भूभुजि राज्ञि सति कुमारपालित किंचित्स्मितवदन किंचिदीषत्स्मितं हास्य तेन युक्त वदन यस्य स तथावादीदब्रवीत्। सर्वथाऽसभाव्यमानाद्भुतदर्शनेनानर्थशङ्का निराकुर्वन्नाह—किमत्रेति। किमत्र चित्रमाश्चर्यम्। तत्रार्थे हेतुमाह—एते हीति। एते शुका प्रसिद्धा सारिका पीतपादा एतत्प्रभृतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुतामर्थबोधशून्या वाच गिरमुच्चारयन्ति ब्रुवन्ति। देवेन स्वामिनेति पूर्वोक्तमधिगतमेव ज्ञातमेव। एतेन स्वानुभवोऽपि सूचित। अत्रापि कारणान्तरसाचिव्य दर्शयन्नाह—तत्रापीति। तत्रापि पूर्ववक्तव्यतायामन्यजन्मनि पूर्वजन्मन्युपात्तो गृहीतो य. संस्कार पूर्वोक्तलक्षणस्तस्यानुबन्धोऽविच्छित्तिस्तेन वा। पुरुषाणाम् अर्थात्प्रेक्षावता प्रयत्नेनोद्योगेन वा। संस्कारेऽतिशयो दार्ढ्यमुपजायत उत्पद्यते। ताभ्या हेतुभ्या वाग्व्यापारयुक्ता भवन्तीति भाव। इति अतो नातिचित्रम्। अत्रान्यदपि कारणमस्तीत्याशयेनाह—अन्यदिति। अन्यदपि कार-

---

है। इस पर भी किसी पूर्वजन्म मे पड़े संस्कार के वश अथवा किसी व्यक्ति के प्रयत्न से (किसी पक्षी विशेष मे) संस्कार की अधिकता (दृढ़ता) उत्पन्न हो जाती है—यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। एक बात और (भी) है—पहले इन पक्षियों की वाणी भी पुरुषों की वाणी सरीखी अत्यन्त स्पष्ट अक्षर बोलने वाली थी। अग्नि के शाप से तोतों के बोल तो अस्पष्ट हो गये और हाथियों की जीभ पलट गयी।" उस (कुमारपाल) के इतना कहते ही 'तप्तकिरण सूर्य आकाश के मध्य मे पहुँच गया है' इस बात की सूचना देती हुई, एक घड़ी (नाडिका = २४ मिनट) की समाप्ति पर ताडित दुन्दुभि के महान् शब्द के पश्चात् होने वाली मध्याह्न (कालीन) शङ्खध्वनि गूँज उठी, और उसको सुनकर राजा, जिसके कि स्नान का समय समीप आ गया था, सब राजाओं को बिदा करके सभाभवन से उठ गया।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभससंचलनचालिताङ्गदपत्रभङ्गमकरकोटिपाटिताशुकपटानाम्, आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम्, अंसस्थलोल्लासितकुङ्कुमपटवासधूलिपटलपिञ्जरीकृतदिशाम्, आलोलमालतीपुष्पशेखरोत्पतदलिकदम्बका-

---

णान्तरमस्ति। तदेव दर्शयति—**एतेषामिति**। एतेषा शुकादीना पुरा पूर्वं प्राचीनपुरुषाणामिवातिपरिस्फुटमतिविशदमभिधान नाम यस्यामेव विधा वागासीत्। तु पुनरर्थे। अग्निशापादस्फुटालापता शुकादीनामुपजातेति स्पष्टम्। अत्राय प्रवाद। छद्मना गृहीतरूपस्य वह्नेर्यादृश रवाद् श्रुतवाञ्छुकस्तथैवोक्तवानिति त प्रति क्रुद्धेन वह्निना शप्त। करिणा हस्तिना च जिह्वापरिवृत्ति, स्वभावजनिता ता दूरीकृत्य तत्स्थले तदितररसनाया प्रक्षेप. । स च गजानामेव नान्येषामित्यन्यत्र विस्तर। शुक इत्यविशदाक्षरत्वमिति। **तस्मिन्निति**। तस्मिन् कुमारपालित एव पूर्वोक्तप्रकारेणोच्चारयत्येवोक्तवत्येव मध्याह्नशङ्खध्वनिर्जलजनिनाद उदतिष्ठदुत्पन्नोऽभूदित्यन्वय। किं कुर्वन्। आवेदयञ्ज्ञापयन्। कम्। अम्बरतलस्य गगनतलस्य मध्य मध्यप्रदेशमशिशिर किरण श्रीसूर्यमध्यारूढं प्राप्तम्। अथ ध्वनि विशेषयन्नाह—**नाडिकेति**। नाडिका घटिका तस्याश्छेद परिसमाप्तिस्तस्या प्रहतस्ताडितो य पटुर्महान्पटहो दुन्दुभिस्तस्य नादो निनादस्तमनुसर्तुं शीलमस्येति स तथा। **तमिति**। त ध्वनिमाकर्ण्य श्रुत्वा क्षितिपती राजास्थानमण्डपादुत्तस्थावुत्थितो बभूव। राजान विशिनष्टि—**समासन्नेति**। समासन्नो निकटवर्ती स्नानसमय आप्लवनसमयो यस्य स तथा। **विसर्जित इति**। विसर्जितो निवर्तितो राजलोक सेवकजनो येन स तथा।

अथेति। उत्थानानन्तर महीपतौ राज्ञि चलति सत्युत्तिष्ठतामुत्थान कुर्वता महीपतीना सभ्रम समर्द आसीदित्यन्वय। अथ महीपतीन्विशेषयन्नाह—**अन्योन्येति**। अन्योन्य परस्परमतिरभसेनातिवेगेन सचलन गमनं तेन चालितानि यान्यङ्गदपत्राणि तेषा भङ्गस्त्रुटनं तस्य या मकरकोटिर्वक्रप्रदेशस्तेन पाटितानि छिन्नान्यशुकानि गर्भसूत्रनिर्मितानि पटा सूत्रनिर्मिता येषु ते तथा तेषाम्। **आक्षेपेति**। आक्षेप परस्परसलग्नता तेन दोलायमानानि चञ्चलानि कण्ठदामानि निगरणबन्धनस्रजो येषा ते तथा तेषाम्। **असेति**। असस्थलेभ्यो भुजशिरस्थलेभ्य उल्लासितान्युच्छ्रसितानि यानि कुङ्कुमानि केसराणि पटवास पिष्टातश्च तयोर्धूलिपटलं

राजा के (उठकर) चल पड़ने पर उठते हुए राजाओं में बड़ी हल्चल मच गयी। ये राजा 'पहले मैं, पहले मैं' इस स्पर्धा से बिदाकालीन प्रणाम करना चाहते थे, (इस हड़-बड़ी मे) अतिशीघ्रता से चलने से अपने स्थान से च्युत भुजालकारों (अगदो) की पत्र-सरीखी (खोद कर बनायी गयी 'जड़ाई') मत्स्याकृति, रचनाओं के धारदार किनारोंसे एक दूसरे के रेशमी वस्त्र फट गये, झटकों से[1] उनकी गलमालायें झूलने लगीं, (रगड़ खाकर) उनके कन्धों पर से उड़ी केसर-मिश्रित सुगन्धित बुकनी की धूल ने दिशाएँ पीले से धूसर रग की

---

१. आक्षेप. Tossing

नाम्, अर्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमनप्रणामलालसानामहमहमिकया, वक्षःस्थलप्रेङ्खोलितहारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीत्संभ्रमो महीपतीनाम्। इतश्चेतश्च निःपतन्तीनां स्कन्धावसक्तचामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधुपानमत्तजरत्कलहंसनादजर्जरितेन पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनीजनस्य सचरतो जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानां मणिमेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण, नूपुररवाकृष्टानां च धवलितास्थानमण्डपसो-

---

परागसमूहस्तेन पिञ्जरीकृता पीतरक्तीकृता दिशः ककुभो यैस्ते तथा तेषाम्। आलोलेति। आलोलाश्चञ्चला ये मालतीपुष्पाणां जातीकुसुमानां शेखरा अवतंसास्तदुपरिष्टादुत्पतन्तो भ्रमन्तोऽलयो भ्रमरास्तेषां कदम्बकानि समूहा येषां ते तथा तेषाम्। अर्धेति। अर्धावलम्बिभिरर्धभागलग्नैः। एवंविधैः कर्णोत्पलैः श्रवणन्यस्तनलिनैश्चुम्ब्यमानमाश्लिष्यमाणं गण्डस्थलं कपोलात्परो भागो येषां ते तथा तेषाम्। गमन इति। गमने व्रजने यो राज्ञः प्रणामो नमस्कारस्तत्र लालसानां कृतस्पृहाणाम्। कया। अहं शक्तोऽहं शक्त इत्यस्यामहमहमिका। मयूरव्यंसकादित्वात्साधु। तया। वक्ष इति। वक्षःस्थले भुजान्तरे प्रेङ्खोलितास्तरलिता हारलता मुक्ताफलस्रजो येषां ते तथा तेषाम्। ततश्चेति। तदा तस्मिन्समये आस्थानभवनं नृपोपवेशनस्थलं सर्वतः परितः क्षुभितमिव क्षोभं प्राप्तमिवाभवदभूदित्यन्वयः। केन। इतश्चेतश्च समर्दवशादितस्ततो भिन्नभिन्नप्रदेशे निःपतन्तीनां स्खलन्तीनां स्कन्धो भुजशिरस्तत्रावसक्तं न्यस्तं चामरं वालव्यजनं याभिरेतादृशीनां चामरग्राहिणीनां स्त्रीणाम्। सबन्धे षष्ठी। तासां मणिखचितानि नूपुराणि पादकटकानि तेषाम्। अथ नूपुराणि विशेषयन्नाह—पदे पदे इति। पदे पदे प्रतिपदं रणिताः शब्दायमाना मणयो वैडूर्यादयो येषु तानि तेषां निनादेन तदुद्भवशब्देन। तमेव विशेषयन्नाह—कमलेति। कमलस्य नलिनस्य यन्मधु रसस्तस्य पानमास्वादस्तेन मत्ताः क्षीबा ये

कर दी थीं, चञ्चल हुए (हिलते हुए) मालतीपुष्पों के गजरों के ऊपर भौरे मँडरा रहे थे, अधर में लटके, (उनके) कानों में लगे कमल अब उनकी गालों को चूम रहे थे—छू रहे थे और उनके उर प्रदेशों पर पड़े हार नाच रहे थे। इधर उधर गिरती पड़ती, चँवरों को कन्धों पर लगाये हुई चँवर पकड़ने वालियों के पग पग पर बजती मणियों वाले, कमल रस के पान से मस्त वृद्ध पालतू हंसों की कुड़कुड़ाहट से मिश्रित[1] मणिजटित नूपुरों की टनटनाहट से, (इधर-उधर) चलतीं फिरतीं वेश्याओं की, उनके चौड़े जघन स्थलों पर टकराकर बजी रत्नमालाओं वाली मणि-जटित मेखलाओं की आकर्षक झङ्कार से, नूपुरों की ध्वनि से आकृष्ट और श्वेत कर दिया है सभाभवन की (सभाभवन में पहुँचाने वाली) सीढियों के तख्तों

१, जर्जरित, पराभूत अथवा दबा हुआ।

पानफलकाना भवनदीर्घिकाकलहसकाना कोलाहलेन, रसनारसितोत्सुकिताना च तारतरविराविणामुल्लिख्यमानकास्यक्रेङ्कारदीर्घेण गृहसारसाना कूजितेन, सरभसप्रचलितसामन्तशतचरणतलाभिहतस्य चास्थानमण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमती ध्वनिना, प्रतीहारिणा च पुरः ससभ्रमसमुत्सारितजनाना दण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरुच्चरतामालोकयन्त्विति तारतरदीर्घेण भवनप्रासादकुञ्जेपूच्चरितप्रतिच्छन्दतया दीर्घतामुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञा च ससभ्रमावर्जि-

जरत्कलहसाः कादम्बास्तेषां नाद शब्दस्तेन जर्जरितेन सभिन्नेन। पुन केन। वारेति। वारविलासिनीना वाराङ्गनानां सचरतो गच्छतो जनस्य लोकस्य जघनस्थलस्य कटिपुरोभागस्थलस्यास्फालन ताडन तेन रसिता शब्द कुर्वाणा रत्नमालिका मणिस्रजो यास्वेवविधानां मणिमेखलाना रत्नखचितकाञ्चीपादाना मनोहारिणा सुन्दरेण झङ्कारेण झणितिशब्देन, पुन केन। नूपुरेति। नूपुराणा पूर्वोक्तानां रव शब्दस्तेनाकृष्टानामाकर्षितानाम्। पुन कीदृशानाम्। धवलितेति। धवलितानि शुभ्रीकृतान्यास्थानमण्डपस्य राज्ञ उपवेशनस्थलस्य सोपानमारोहण तस्य फलकानि प्रसिद्धानि यैरेवविधाना भवनदीर्घिका गृहवाप्यस्तासा कलहसा एव कलहसका। स्वार्थे क। तेषा कोलाहलेन कलकलेन। पुन केन। रसनेति। रसना कटिमेखला तस्या रसित शब्दित तस्मोत्सुकिता उत्कण्ठितास्तेषाम्। च समुच्चये। तारतरोऽत्यन्तोच्चैस्तरो विराव• शब्दो विद्यते येषामेवविधाना गृहसारसाना भवनलक्ष्मणाना कूजितेन शब्दितेन। कीदृशेन। उल्लिख्यमान घृष्यमाण यत्कास्य विद्युत्प्रिय तस्य क्रेङ्कारोऽव्यक्तध्व निस्तद्वद्दीर्घेणायतेन। 'कूजित स्याद्विहङ्गानाम्' इति कोश। पुन केन। सरभसेति। सरभस ससभ्रम प्रचलिता गन्तु प्रवृत्ता ये सामन्ता स्वदेशपर्यन्तवर्तिराजास्तेषा शत तस्य चरणतलै पादतलैरभिहतस्य ताडितस्यास्थानमण्डपस्य नृपोपवेशनस्थलस्य निर्घोषोऽव्यक्तध्वनिस्तेन गम्भीरेण पुष्टध्वनिना। तदुत्थशब्देनेत्यर्थ। किं कुर्वता। वसुमतीं पृथ्वीं कम्पयतेव क्षोभयतेव पुन केन। आलोकशब्देनालोक्यतामालोक्यतामित्येवरूपेण। केषाम्। प्रतीहारिणा द्वारपालकानाम्। अथ प्रतीहारिणो विशेषयन्नाह—पुर इति। पुरोऽग्रे ससभ्रममनुपलक्षितस्वरूप

को जिन्होंने ऐसे भवन के (अर्थात् भवन से सलग्न बावड़ियों के) हसों के शोर से, मेखलाओं के बजने से उत्कठित हुए और (इसीलिये) और अधिक ऊँचे स्वर से शोर करने लगे पालतू सारसों की, खरोंचे तथा रगड़े जा रहे कासे से निकली कर्णवेधी ध्वनि से और अधिक लम्बी (देर तक सुनायी देती) हुई चिल्लाहट से, उतावली मे चले सैकड़ों करद राजकुमारों के पॉवों से आहत पृथ्वी को कँपाते सभाभवन के फर्श से उठे, बिजली के गर्जन सरीखे गम्भीर शब्द से, और अपने सामने के लोगों को शीघ्र शीघ्र हटाते दण्डधारी द्वारपालों के, शिष्टाचार पूर्वक[1] 'देखिये, देखिये' इस प्रकार ऊँची आवाज में कहे गये तीखे-लम्बे तथा घरों एव महलों की तोरणदार छतों (कुञ्जों) में गूँजने के कारण और अधिक लम्बे हुए प्रशस्ति शब्द[2] से,

१ समारब्धहेलम्।

२ आलोकशब्देन 'जय जय' 'देखो देखो' आदि नारों द्वारा उच्चारित प्रशस्तिवाक्य से।

तमौलिलोलचूडामणीना प्रणमताममलमणिशलाकादन्तुराभिः, किरीटकोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्यस्तानामतिकठिनमणिकुट्टिमनिपतितरणरणायिताना च मणिकर्णपूराणा निनादेन, मङ्गलपाठकाना च पुरोयायिना जयजीवेति मधुरवचनानुयातेन पठता दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलितजनचरणशतसक्षोभाद्विहाय कुसुमप्रकरमुत्पतता च मधुलिहा हुकृतेन सक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडिताना क्वणितमुखररत्नदाम्ना च मणिस्तम्भाना रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्।

समुत्सारिता दूरीकृता जना लोका यैस्ते तथा तेषाम्। दण्डो विद्यते येषा ते दण्डिनस्तेषाम्। किं कुर्वताम्। समारब्धहेल प्रारब्धक्रीड यथा स्यात्तथा। उच्चैरित्यर्थ। उच्चरता ब्रुवताम्। किम् आलोकयन्तु पश्यन्त्विति य तारतार शिर समुद्भव शब्दस्तेन दीर्घेणायतेन। पुन कीदृशेन। दीर्घता बहुलतामुपगतेन प्राप्तेन। कथा। उच्चरितेति। उच्चरित उक्तो य शब्दस्तस्य प्रतिच्छन्दस्तस्य भावस्तत्ता तया। केषु। भवनानि सामान्यगृहा प्रासादा देवभूपसद्मानि तेषा कुञ्जेषु लतान्तरितप्रदेशेषु। पुन केन। मणीति। मणिकुट्टिम रत्नबद्धभूस्तस्य नि स्वनेन। किं क्रियमाणस्य। उल्लिख्यमानस्य घृष्यमाणस्य। काभि। किरीटकोटिभिर्मुकुटाग्रै। कीदृशीभि। अमलेति। अमला निर्मला मणिशलाका रत्नेषीकास्ताभिर्दन्तुराभिर्विषमाभि। केषाम्। राज्ञा नृपाणाम्। कि कुर्वताम्। प्रणमता नमस्कार कुर्वताम्। कीदृशानाम्। ससंभ्रमेति। सम्भ्रमेण सहसावर्जिता नमिता मौलौ शिरसि लोलाश्चञ्चलाश्चूडामणय शिरोमणयो येषा तथा तेषाम्। पुन केन। मणीति। मणिकर्णपूराणां रत्नकर्णाभरणाना निनादेन शब्देन। कर्णपूर विशेषयन्नाह—प्रणामेति। प्रणामेन नमस्कारेण शिरोनमनात्पर्यस्ताना पतितानाम्। अतीति। अतिकठिन यन्मणिकुट्टिम तत्र निपतितेन पातेन रणरणायिताना सजातरणरणितिशब्दानाम्। पुन केन। दिशां ककुभामन्ता दिगन्तास्तान्व्याप्नुवन्तीत्येवशीलेन कलकलेन कोलाहलेन।

और शीघ्रता में झुकाये मस्तको पर झूलतीं मुकुट-मणियों वाले, (सम्राट को) प्रणाम करते हुए राजाओं की विशुद्ध मणियों की आगे को निकलीं नोकों (अथवा शलाकाओं) से दान्तेदार बनी, मुकुटों की पैनी नोकों से खरोंचे जाते, मणिजटित फर्श के शब्द से, और नमस्कार से उछाले गये तथा अत्यन्त कठोर, मणिजटित फर्श पर लुढ़क कर रण रणाते, मणिजटित कर्णाभूषणों के शब्द से, और (राजा के) आगे-आगे चल रहे स्तुतिपाठक चारणों के 'जय, दीर्घजीवी हो' आदि मधुरवचनों के पीछे पीछे हो रहे, सभी दिशाओं में व्याप्त स्तुतिपाठकों के कोलाहल से, और चलती भीड़ के सैकड़ों पाँवों की हलचल से (डरकर) फूल के गुच्छों को छोड़कर ऊपर उड़े भौंरों की हुकार से, और हबड़-दबड़ में अत्यन्त द्रुत डगों से चले राजाओं द्वारा अपने केयूरों (अगदों) की नोकों से आहत अत एव शब्दायमान रत्नजटित मालाओं वाले मणि जटित स्तम्भों की झणझणाहट से वह सभाभवन क्षुब्ध हो गया।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यताम्' इति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डालकन्यकां, 'वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य, कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत्। अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः, चन्द्रतारकासमूहशून्य इव गगनाभोगः समुपाहृतसमुचितव्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत्। स तस्यां च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवदलितसिन्दुवारकुसुममञ्जरी-

केषाम्। पठताम्। कीर्तिपाठकानामित्यर्थः। कीदृशानाम्। पुरोयायिनामग्रगामिनां मङ्गलपाठकानां बन्दिनां जयजीव-जयजीवेति यन्मधुरं वचनं तदनुलक्षीकृत्य यातेन प्रवृत्तेन। पुनः केन। मधुलिहां भ्रमराणां हुंकृतेन हुंकारशब्देन। किं कुर्वताम्। उत्पततामुड्डीनं कुर्वताम्। किं कृत्वा। विहाय त्यक्त्वा। किम्। कुसुमप्रकरं पुष्पसमूहम्। कस्मात्। प्रचलितेति। प्रचलिता ये जनास्तेषां चरणाः पादास्तेषां शतं तस्माद्यः संक्षोभः सम्भ्रमस्तस्मात्। पुनः केन। मणिस्तम्भानां रत्नस्थूणानां रणितेन रणत्कारेण। कीदृशेन। क्वणितेन शब्दितेन मुखराणि वाचालानि रत्नदामानि येषु ते तथा तेषाम्। केयूरेति। केयूराणामङ्गदानां कोटयोऽग्रभागास्तैस्ताडितानामाहतानामिति स्तम्भविशेषणम्। कैः। अवनिपतिभिः नृपतिभिः। कीदृशैः। सक्षोभश्चित्तवैक्लव्यं तस्मादतित्वरितपदमतिवेगवत्तरचरणं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तैः प्रचलितैः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

अथेति। अथेत्यानन्तर्ये। नरपती राजा कतिपयैः कियद्भिराप्तैः शिष्टैः राजपुत्रैर्नृपसूनुभिः परिवृतः सहितो विसर्जितो विसृष्टो राजलोकः परिच्छदलोको येन स तथा। राज्ञो विशेषणम्। विश्रम्यतां विश्रामो गृह्यतामिति स्वयमेवात्मनैवाभिधायोक्त्वा तां चाण्डालकन्यकां, वैशम्पायनः शुकोऽभ्यन्तरं मध्यं प्रवेश्यतां प्रवेशं कार्यतामिति ताम्बूलस्य नागवल्ल्याः करङ्कं स्थगिकां वहतीत्येवशीला सा तथा तामादिश्याज्ञां दत्त्वाभ्यन्तरम्। अर्थाद् गृहस्य। प्राविशत्प्रवेशं चकार। तदनन्तरं स राजा व्यायामः श्रमस्तत्करणयोग्यां भूमिं वसुन्धरामयासीदगच्छत्। इतो राजानं विशेषयन्नाह—अपेति। अपनीतानि दूरीकृतान्याभरणानि भूषणानि येन स तथा। क इव। दिवसकर इव सूर्य इव। कीदृशः। विगलितानि स्रस्तानि किरणजालकानि दीधितिवृन्दानि यस्य स तथा। तत एवैतयोः साम्यम्। पुनः क इव। गगनाभोग इव घनाश्रयविस्तार इव। कीदृशः। चन्द्रः शशी, तारका नक्षत्राणि, तासां समूहः सघातस्तेन शून्यः। अथ

इसके पश्चात् सब राजाओं को विदा करके, उस चाण्डाल कन्या को 'विश्राम करो' ये शब्द स्वयं कह कर, पानदान उठाने वाली कन्या को 'वैशम्पायन को भीतर (कमरे में) ले आओ' यह आदेश देकर, राजा (शूद्रक) कुछ अन्तरंग राजकुमारों से घिरा भीतर प्रविष्ट हो गया। और अपने सब आभूषणों को उतार लेने पर, किरण समूह से रहित सूर्य-सरीखा, अथवा चन्द्रमा तथा तारों से रहित गगनतल के समान प्रतीत होता हुआ राजा उस व्यायाम भूमि की ओर चला गया जहाँ व्यायाम के लिये उचित उपकरण जुटाये हुए थे। वहाँ उसने अपने समवयस्क राजपुत्रों के साथ हलका सा व्यायाम किया। व्यायाम के प्रभाव से

विश्रमाभिरुरसि निर्दयश्रमच्छिन्नहारविगलितमुक्ताफलप्रकरानुकारिणीभिर्ललाटपट्टकेऽष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसदमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः स्वेदजलकणिकासंततिभिरलङ्क्रियमाणमूर्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसंपादनसत्वरेण पुरः प्रधावता परिजनेन तत्काल विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सारणाधिकारमुचित समाचरद्भिर्दण्डिभिरुपदिश्यमानमार्गः, विततसितवितानाम्, अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदकपूर्ण-

---

व्यायामभूमिं विशिनष्टि—समुपाहृतेति। समुपाहृतान्येकत्र सकलितानि समुचितानि योग्यानि व्यायामे श्रम उपकरणानि साधनानि यस्या सा तथा ताम्। स राजा तस्या भूमौ समान तुल्य वय कौमारादि येषामेवंविधै राजपुत्रैर्नृपसुतै सह सार्ध कृतो विहितो मधुरो लक्षणया शरीरपीडाजनको व्यायामो येन स तथा। अलक्रियमाणा भूष्यमाणा मूर्ति शरीर यस्य स तथा। राज्ञो विशेषणद्वयम्। काभि। स्वेदेति। कपोलयोर्गल्लात्परभागयो स्वेदजलस्य कणिका सूक्ष्मबिन्दवस्तासा सतत्य परम्परास्ताभि। इत स्वेदजलकणिकासन्तति विशेषयन्नाह—श्रमेति। श्रमवशाद् व्यायामवशादुन्मिषन्तीभि प्रकाश प्राप्नुवतीभि। कपोलयो। ईषदिति। ईषत्किंचिद्वदलित मर्दित सिन्दुवारस्य निर्गुण्ड्या कुसुम पुष्प तस्या मञ्जरी वल्लरी तस्या विभ्रमो भ्रान्तिर्यासु तास्तथा ताभि। उरसीति। उरसि वक्षस्थले निर्दयश्रमेण कठिनप्रयासेनान्यै कर्तुमशक्यव्यायामेनेति यावत्। तेन छिन्नश्छेद प्राप्तो यो हारो मुक्तास्रक्तस्माद्विगलितश्च्युतो यो मुक्ताफलाना मौक्तिकाना प्रकर समूहस्तमनुकारिण्यस्तमनुकुर्वन्त्यस्ताभि। ललाटेति। ललाटपट्टके भालस्थलेऽष्टमीचन्द्र एव शकल तस्य तलमुत्तानस्थल तत्रोल्लसन्तो दीप्यमाना येऽमृतबिन्दव सुधापृषतास्तान्विडम्बयन्ति तिरस्कुर्वन्तीत्येवशीलास्तास्तथा ताभि। कीदृशो राजा। परिजनेन सेवकजनेन। कीदृशेन। पुरतोऽग्रे प्रधावता त्वरित गच्छता। पुन किंविशिष्टेन। इतस्तत समन्तात्स्नानमाप्लवस्तस्योपकरणानि जलादीनि तेषा संपादन निष्पादन तत्र सत्वरेण शीघ्रेण। तत्काल तत्समयावच्छेदेन विरलजनेऽपि स्वल्पजनेऽपि राजलोके राजगृहे सत्युचित योग्य समुत्सारण निवारण तत्र योऽधिकारो नियोगस्त समाचरद्भि कुर्वद्भिर्दण्डिभिर्वेत्रिभिश्चोपदिश्यमान प्रदर्श्यमानो मार्गो यस्य स तथा। इत परं स्नानभूमेर्विशेषणानि। विततेति। विततो विस्तीर्णं सित शुभ्रो वितान उल्लोचो यस्या सा तथा ताम्। अनेकेति।

फूटकर निकलती हुई, गालों पर कुछ-कुछ खिले 'सिन्दुवार' पुष्पों के गुच्छों सी शोभायमान, वक्षस्थल पर कठोर परिश्रम के कारण टूटे हार से गिरे मोतियों के गुच्छों सी प्रतीयमान, और चौड़े मस्तक पर अष्टमी के अर्धचन्द्र (चन्द्रखण्ट) के पृष्ठतल से पसीज कर निकलते हुए अमृत बिन्दुओं के बहुत अधिक सदृश प्रतीत होती पसीने के बिन्दुओ की पक्तियों से सुशोभित शरीर वाला, उस समय स्नानसामग्री को ले आने मे शीघ्रकारी, जहाँ-तहाँ से (महल के विभिन्न भागों से) उसके आगे आगे दौड़ते सेवकों द्वारा और उस समय राजभवन में (चलने फिरने वाले) थोड़े ही व्यक्तियो के होते हुए भी, (मार्ग से लोगों को) हटाने का अपना (उचित) अभ्यासानुसार रूढ कर्तव्य पालन करते हुए दण्डधारियों द्वारा मार्ग दिखाया गया, वह राजा स्नानभूमि में पहुँचा। उस स्नानभूमि में एक श्वेत शामियाना ताना हुआ था, बहुत से भाग इसके चारों ओर एक गोल घेरे में (विद्यमान) थे, इस

कनकमयजलद्रोणीसनाथमध्याम्, उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैः, अतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णैः परिमलावकृष्टमधुकरकुलान्धकारितमुखैः आतपभयान्नील-कर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभिता स्नानभूमिमगच्छत्। अवतीर्णस्य जलद्रोणीं, वारविलासिनीकरमृदितसुगन्धामलकलिप्तशिरसो राज्ञः परितः समुपत-स्थुरंशुकनिबिडनिबद्धस्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः, समुत्क्षिप्तकर्णा-भरणाः, कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजलकलशाः, स्नानार्थमभिषेकदेवता इव

अनेकेऽसख्या ये चारणगणा कुशीलवसमुदायास्तेनिबध्यमान विरच्यमान मण्डल परिवृतिर्यस्यां सा तथा ताम्। गन्धोदकेति। गन्धोदकेन सुरभिपानीयेन पूर्णा भृता या कनकमयी सुवर्ण-मयी। अत्र विकारार्थे मयट्। एतादृशी जलद्रोणी जलकुण्डिका तया सनाथ सहितो मध्यो मध्यभागो यस्या सा तथा ताम्। उपेति। उपस्थापित न्यस्त स्फाटिक स्फटिकमणिनिर्मित स्नानपीठमाप्लवनचतुष्किका यस्या सा तथा ताम्। स्नानेति। स्नानार्थं ये कलशा कुम्भास्ते-रुपशोभिता विराजिताम्। अथ कलशान्विशेषयन्नाह—एकान्तेति। एकान्ते निर्जनस्थले निहितै स्थापितै। अतीति। अतिशयेन सुरभिर्गन्धो यस्मिन्नेवविध यत्सलिलं जल तेन पूर्णैर्भृतै। परीति। परिमलेन गन्धेनावकृष्टा ये मधुकरा भ्रमरास्तेषा कुलानि समुदायास्तैरन्ध-कारित सजातान्धकार मुखमानन येषा ते तथा तै। कीदृशैरिव। आतपभयान्नीलकर्पटाव-गुण्ठितानि मुखानि येषा ते तथा तैरिव। जलद्रोणीमवतीर्णस्य तन्मध्ये प्रविष्टस्य राज्ञो नृपस्य परित सर्वत स्नानार्थमभिषेकदेवता इवाभिषेकाधिष्ठात्र्य इव वारयोषितो वाराङ्गना समुपतस्थु सम्यक्प्रकारेणातिष्ठन्। कीदृशस्य। राज्ञ। वारविलासिन्या करेण मृदित यत्सुगन्धामलक सुरभिधात्रीफलं तेन लिप्त शिरो यस्य स तथा तस्य। ता विशेषयन्नाह—अंशुकेति। अंशुकैर्वस्त्रैर्निबिड दृढ निबद्ध सयत स्तनपरिकर कुचाभोगो याभिस्तास्तथा। दूरेति। दूर समुत्सारितानि निराकृतानि वलयानि कङ्कणानि यास्वेवभूता बाहुलता भुजवल्लयो यासां

बीचोबीच सुगन्धित जल से भरा जलपात्र[1] (रखा हुआ) था, (बैठकर स्नान करने के लिये) वहाँ मर्मर पत्थर की बनी एक पीढ़ी रखी हुई थी, और इसके एक कोने मे स्नान कलश रखे थे जो अत्यन्त रोचक सुगन्ध से युक्त जल से भरे थे, सुगन्ध से आकृष्ट भौरों के झुडो से काले हुए उनके मुँह ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो धूप (गर्मी) के डर से उनको काले कपड़ो से ढका हुआ हो। वेश्याओं के हाथों से कूटे गये सुगन्धित आँवलों का सिर पर लेप किये हुए और जल से भरी नाँद में[1] उतर गये हुए राजा के चारों ओर वस्त्र से कस कर बाँधे हुए स्तनों तथा कटिभागों[2] वाली, अपनी लता रूप बाहुओं (पर) के कगनों को दूर तक (बहुत ऊपर तक) सरकाये हुई, कानों के आभूषणों को (कानों के पीछे) किये हुई, कानों के समीप से (कर्ण प्रदेश से) बालों को (एक ओर) हटाये हुई, हाथों मे पानी से भरे घड़े लिये हुई वेश्याओ ने स्नान कराने के लिये ऐसे घेर लिया कि मानों

१ द्रोणी' = नाँद अथवा टब

२ 'परिकर' का अर्थ कटिभाग किया गया है।

वारयोषितः । ताभिश्च समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा । द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिकधवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह । ततस्ताः काश्चिन्मरकतकलशप्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलशहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित्कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलशैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन,

---

ता । **सक्षिप्तेति** । समुत्क्षिप्तमुपरि गृहीत कर्णानामाभरणं भूषण याभिस्तास्तथा । **कर्णेति** । कर्णोत्सङ्गाच्छ्रवणसमीपादुत्सारिता उपरिन्यस्ता अलका कुन्तला याभिस्तास्तथा । अत्र त्रिपदैस्तासा शोभातिशयो व्यज्यते । **गृहीतेति** । गृहीता आत्ता जलकलशा वारिभृतघटा याभिस्ता. । च पुनरर्थे । ताभिस्तत्क्षण तस्मिन्क्षणे परिवृत आवृतो राजा नृपो रराज शुशुभे । कथंभूताभिस्ताभि । समुन्नत कुचकुम्भमण्डल यासा ताभि । कीदृशश्च राजा । वारिमध्यप्रविष्ट । क इव । करिणीभिर्हस्तिनीभि परिवृतो वनकरीव । यथा धेनुकाभि सम मज्जन कुर्वन्वनकरी शोभते तद्वदयमित्यर्थं । ततो द्रोणीसलिलात् । द्रोणीजलादुत्थाय बहिर्निर्गत्य स्नानपीठमारुरोहेत्यन्वय । कीदृशम् । **अमलेति** । अमलो मलवर्जितो य स्फटिको मणिविशेषस्तद्वदुज्ज्वल शुभ्रम् । क इव । वरुण इव । यथा वरुण प्रचेता राजहस कलहसमारोहति । **तत इति** । आरोहणानन्तर ता वारयोषितो यथायथ यथायोग्य राजानमभिषिषिचुरभिषेक चक्रु । इतो वारयोषितो विशेषयन्नाह—**काश्चिदिति** । काश्चित् काश्चन मरकतमणिनिर्मितो य कलश कुम्भस्तस्य प्रभा कान्तिस्तया श्यामायमाना श्यामवदाचरिता नलिन्य इव पद्मिन्य इव मूर्तिमत्यो नीलत्वसाम्यात्तद्रूपधारिण्य पत्रपुटै पर्णसपुटै राजानमभिषिषिचुरिति सर्वत्र । अन्या काश्चन रजतस्य रूप्यस्य कलश कुम्भो हस्ते पाणौ यासा तास्तथा । का इव ।

राज्याभिषेक कराने के लिये आई इतनी स्त्री देवताओ ने घेर लिया हो । और उस समय जल के भीतर प्रविष्ट हुआ राजा, उन हाथी की गोल कनपटियों सरीखे उभरे स्तनों वाली, वारवनिताओं से घिरा ऐसा सुन्दर दिखायी दिया जैसा कि हथिनियों से घिरा जगली हाथी होता है । और नॉद के पानी मे से उठकर (निकलकर) राजा स्वच्छ स्फटिक-सी श्वेत (स्फटिक प्रस्तर की बनी होने के कारण) स्नान शिला पर चढ़ गया—ठीक ऐसे ही जैसे कि वरुण देवता (जल से निकलकर) स्वच्छ स्फटिक-से श्वेत हस पर सवार हो जाता है । तब उन वाराङ्गनाओं ने उसको क्रम से एक-एक करके (पृथक् पृथक्)' स्नान कराया, उनमे से कई तो मरकतमणि (निर्मित) घड़ो की चमक से श्याम रग की हुई देह धारिणी नलिनियों सी दिखायी दे रही थीं—उन्होंने दोनो से उसको स्नान कराया, कई हाथों में चॉदी के बने घड़े लिये हुए थीं—उन्होंने ऐसे स्नान कराया कि मानो रात्रियॉ पूर्ण चन्द्रमण्डल से निकलते (तरल) ज्योत्स्ना प्रवाह से स्नान करा रही हों, कुछ घड़ा उठाने (मे हुई) थकावट के कारण निकले पसीने से भींगे शरीरवाली थीं, उन्होंने परियों के सदृश स्फटिक के बने घड़ों द्वारा तीर्थजलों से स्नान कराया, कुछ ने मलयपर्वत की नदियों के समान चन्दन रस मिश्रित जल से

काश्चिदुदिक्षप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः प्रत्यङ्गुलिविवरविनिर्गतजलधाराः सलिलयन्त्रदेवता इव, काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्तबालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलशहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गना यथायथं राजानमभिषिषिचुः। अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरीमृदङ्गवेणुवीणागीतनिनादानुगम्यमानो बन्दिवृन्दकोलाहलाकुलो भुवनविवरव्यापी स्नानशङ्खानामापूर्यमाणानामतिमुखरो ध्वनिः।

पूर्णचन्द्रमण्डलात्समग्रशशिबिम्बाद्विनिर्गतेन नि सृतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण कौमुदीरयेण शोभमाना रजन्य इव त्रियामा इव। अन्या काश्चन कलशस्य कुम्भस्य चोत्क्षेप उत्थापन तस्माद्य श्रमस्तेन य स्वेदो घर्मजल तेनार्द्र स्विन्न शरीर देहो यासा ता स्फाटिकै स्फटिकसबन्धिभि कलशैस्तीर्थजलेन तीर्थाम्भसा च सहिता जलदेवता जलाधिष्ठात्र्य इव। काश्चिदिति। अन्या काश्चन चन्दनस्य मलयजस्य रसो द्रवस्तेन मिश्रेण सयुक्तेन सलिलेन स्नान चक्रु। का इव। मलयसरित इव मलयाचलनद्य इव। ता अपि चन्दनरसमिश्रसलिला स्यु। काश्चिदिति। अन्या काश्चनोत्क्षिप्त उत्पाटितो य कलशस्तस्य पार्श्वयोर्वामदक्षिणयोर्विन्यस्ता स्थापिता हस्तपल्लवा करकिसलयानि याभिस्ता। प्रकीर्यमाणानीतस्ततो विक्षिप्यमाणानि नखमयूखजालकानि पुनर्भवदीप्तिचया याभिस्ता। प्रत्यङ्गुलि प्रतिकरशाख यानि विवराणि छिद्राणि तेभ्यो विनिर्गता जलधारा पानीयसततिर्यासा ता। का इव। सलिलयन्त्रदेवता इव। ता अप्येवविधा स्युरित्यर्थ.। काश्चिदिति। अन्या काश्चन कनकस्य सुवर्णस्य कलशो हस्ते यासा ता। का इव दिवसश्रिय इव वासरलक्ष्मीरिव। केनेव। जाड्य शीतमपनेतु दूरीकर्तुमाक्षिप्त आकर्षितो यो बालातपो नव्यालोकस्तेनेव कुङ्कुमजलेन केसरवारिणा। अत्र कुङ्कुमजलबालातपयोरुपमानोपमेयभाव। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। अनन्तरमिति। अभिषेकानन्तर स्नानशङ्खाना ध्वनि शब्द उदपाद्युत्पन्नोऽभूत्। 'पद गतौ' इत्यस्य लुङि रूपम्। किं कुर्वन्निव। श्रुतिपथं

स्नान कराया, कुछ, उठाये हुए घड़े के दायें बायें अपने पत्र-सदृश (कोमल तथा लाल लाल) हाथो को रखे हुई, नाखूनो की किरणों के समूह को (घड़ो पर) बिखेरती हुई, अगुलियो के प्रत्येक अन्तराल (बीच के खाली स्थान) से जलधारा को छोड़तीं, जल (चुवाने के लिये बनायी गई) यन्त्र (यान्त्रिक) देवियों अर्थात् पुतलियों सरीखे थीं, और कइयों ने सुवर्णघट हाथ में लिये हुए उसको केसर जल से स्नान कराया, वे ठढक को दूर करने के लिए (वहाँ) लायी गयी प्रात कालीन धूप से स्नान कराती हुई दिन की अधिष्ठात्री देवियाँ सी प्रतीत हो रही थीं। और तब वहाँ, मानो कर्णमार्ग को फोड़ता हुआ सा, बहुत से उस समय (साथ साथ) बजाये गये तीखी[1] आवाजवाले नगाड़ो, झाँझ, तबला, बाँसुरी, वीणा और गीतों के शब्दों से अनुगम्यमान और चारणों के दलो (की उक्तियों) के कोलाहल से मिश्रित, (अत एव) ससार मे सभी रिक्त स्थानों मे व्याप्त, (राजा के) स्नान (के समय) बजाये जा रहे शखों की अत्यन्त मुखर ध्वनि होने लगी।

१ पटु = तीव्र।

एवं च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेको विषधरनिर्मोकपरिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालननिर्मलतनुः, अतिधवलजलधरच्छेदशुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः, संपादितपितृजलक्रियो मन्त्रपूतेन तोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत्। उपरचितपशुपतिपूजश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारि-

---

कर्णमार्गे स्फोटयन्निव द्विधा कुर्वन्निव। पुनः कीदृक्। अतिशयेन मुखरस्तारतरः। किंविशिष्टानां शङ्खानाम्। आपूर्यमाणानां वाद्यमानानाम्। पुनः कीदृशः। अनेकेति। अनेकप्रकारेण प्रहता वादिताः पटवः समर्था ये पटहा दुन्दुभयो, झल्लरी प्रसिद्धा, मृदङ्गो मर्दलो, वेणुर्वंशो, वीणा वल्लकी, गीतानि गानानि चैतेषां यो निनादो ध्वनितः तमनुलक्षीकृत्य गम्यमानः प्रवर्तमानः। पुनः कीदृक्। बन्दिनां वैतालिकानां वृन्दं समुदायस्तस्य कोलाहलः कलकलस्तेनाकुलो मिश्रितः। पुनः कीदृक्। भुवनेति। भुवनानां विष्टपानां विवराणि छिद्राणि व्याप्नोतीत्येवंशीलः स तथा।

एवं च पूर्वोक्तप्रकारेण क्रमेण परिपाट्या निर्वर्तितो विहितोऽभिषेको यस्यैवंभूतो नृपो देवगृहं चैत्यमगमदित्यन्वयः। किं कृत्वा। विषेति। विषधराः सर्पास्तेषां निर्मोकः कञ्चुकस्तद्वत्परिलघुनी अतिहस्वे अत एव धवले शुभ्रे धौतवाससी प्रक्षालितवस्त्रे परिधाय परिधानं कृत्वा। अथ राजानं विशिनष्टि—जलेति। जलेन पानीयेन यत्क्षालनं तेन निर्मलापगतमला तनुः शरीरं यस्य स तथा। किमिव। शरदिति। शरदि घनात्यये यदम्बरं गगनं तस्यैकदेशो भागस्तद्वदिव। शरद्यम्बरं वृष्टेरभावान्निर्मलमेवेति भावः। अतीति। अतिधवलो यो जलधरो मेघस्तस्य यश्छेदः खण्डस्तद्वच्छुचिना निर्मलेन दुकूलपटः क्षीरोदपट्टस्तस्य पल्लवेन प्रान्तेन कृतं विहितं शिरोवेष्टनमुत्तमाङ्गवेष्टनं येन स तथा। कमिव। तुहिनगिरिरिव हिमाचल इव। गिरिं विशिनष्टि—गगनेति। गगनसरित्स्वर्धुनी तस्याः यत्स्रोतः प्रवाहस्तेन कृतशिरोवेष्टनः। सम्पादित इति। सम्पादिता निष्पादिता पितॄणां जलक्रिया येन सः। मन्त्रेति। मन्त्रैर्वेदोक्तैः पूतं पवित्रं यत्तोयं पानीयं तस्याञ्जलिः प्रसृतिस्तेन दिवसकरं सूर्यमभि सम्मुखं प्रणम्य

इस प्रकार यथारीति अपना स्नान समाप्त करके साँप की केंचुली से हल्के[1], धुले हुए (स्वच्छ) दो श्वेत वस्त्र पहन कर, वह राजा जल में स्नान करने से निर्मल शरीरवाला होने के कारण शरद् ऋतु में आकाश के एक भाग-सा श्वेत प्रतीत हुआ (शरद् ऋतु में पानी बरस जाने पर उसका एक भाग श्वेत प्रतीत होता है), अत्यन्त श्वेत मेघखण्ड के सदृश (बर्फ से) श्वेत हल्के रेशमी वस्त्रखण्ड को सिर पर (पगड़ी की भाँति) लपेटे हुए वह आकाश-गंगा की धारा से घिरी चोटी वाला हिमालय पर्वत-सरीखा प्रतीत हुआ, (फिर) पितरों को जल (अर्पित करने) की क्रिया को करके, (उस समय पढ़े गये) मन्त्रों द्वारा पवित्र हुए जल की अञ्जलि द्वारा सूर्य को नमस्कार करके (सूर्य को अर्घ्य देकर) वह राजा देवगृह (प्रतिमा गृह) में चला गया। और शिव की पूजा करके देवगृह से निकल कर उसने अग्नि-

---

1 परिलघुनी = बहुत बारीक

भिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमदकर्पूरकुङ्कुमवाससुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो विरचितामोदिमालतीकुसुमशेखरः कृतवस्त्रपरिवर्तो रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमतरसास्वादजातप्रीतिरवनिपो निर्वर्तयामास ।

परिपीतधूमवर्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात्प्रमृष्टमणिकुट्टिमप्रदेशादुत्थाय नातिदूरवर्तिन्या ससम्भ्रमप्रधावितया प्रतीहार्या प्रसारितबाहुमवलम्ब्य

नमस्कृत्य । उपेति । उपरचिता निष्पादिता पशुपतेरीश्वरस्य पूजार्चा येनैवभूत सन् तस्माद्देवगृहान्निष्क्रम्य बहिरागत्यावनिपो राजाहारमशनादिक निर्वर्तयामास कृतवानित्यन्वय । निर्वर्तितेति । निर्वर्तित कृतमग्निकार्य होमादि येन स । विलेपनभूमावङ्गरागनिष्पादनस्थले झङ्कारिभिर्झङ्कारशब्द कुर्वाणैरलिकदम्बकैर्भ्रमरसमूहैरनुबध्यमानो नियम्यमान परिमल आमोदो यस्य स तथा तेन । मृगमदेति । मृगमद कस्तूरी, कर्पूरो हिमवालुका, कुङ्कुम केसरमेतेषा यो वास परिमलस्तेन सुरभिणा सुगन्धिनैवभूतेन चन्दनेन मलयजेनानुलिप्त लेपित सर्वाङ्ग समग्रशरीरावयवा येन स तथा । इतो राज्ञो विशेषणानि—विरचितेति । विरचितो रचनाविशेषेण, निर्मित आमोदिमालतीकुसुमानि सुगन्धिजातिपुष्पाणि तेषा शेखर शिरोभूषण येन स तथा । कृतेति । कृतो विहित पूर्वपरिहितवस्त्रस्य परिवर्त परावर्तो येन स तथा । कृत वस्त्रस्य क्षीरोदवस्त्रस्य परिवर्त उपरिवस्त्र येनेति वा । रत्नेति । रत्नखचित कर्णपूर कर्णाभरण तन्मात्रमाभरण यस्य स तथा । ननु नीचजनप्रदर्शनार्थं बहुतरभूषणधारणमिति मात्रपदव्यङ्ग्यम् । एकपक्तौ समुचित योग्य भोजन येषामेवभूतर्भूपतिभिर्नृपतिभि सहेति भिन्नक्रम । अभीति । अभिमता श्रेष्ठा ये रसा मधुरादयस्तेषामास्वादो ग्रहण तेन जातोत्पन्ना प्रीति सतुष्टिर्यस्य स तथा ।

परीति । मुखसौगन्ध्यप्रतिपादनार्थं परि सामस्त्येन पीता गृहीता धूमवर्तिर्द्रव्यविशेषो येन स तथा । किं कृत्वा । उपस्पृश्याचम्य । 'उपस्पर्शस्त्वाचमनम्' इति कोशः । पुन किं कृत्वा । भुक्त्वा भोजन विधाय । आस्थानमण्डप परिषन्मण्डलमयासीज्जगामेत्यन्वय ।

पूजा की, (फिर) प्रसाधन कक्ष में[1] उसके सारे शरीर पर, कस्तूरी, कपूर और केसर की गन्ध से (और अधिक) सुगन्धित हुए तथा गुञ्जन करते भौरों द्वारा अनुगम्यमान सुगन्ध से युक्त चन्दन का लेप किया गया, फिर उसने सुगन्धित मालती के पुष्पों की माला (सिरपर)[2] धारण की, वस्त्र बदले, और केवल मात्र रत्न-जटित कर्ण-भूषण पहने हुए उसने (अपने साथ) भोजन करने के अभ्यासी (समुचित) अर्थात् (उसके साथ भोजन करने वाले) राजाओं के साथ साथ भोजन किया और अभीष्ट रसवाले भोजन पदार्थों के आस्वाद से प्रसन्न होकर भोजन समाप्त किया।

भोजन करके उसने सुगन्धित औषधियों की बनी चुरुटें[3] पी, आचमन किया, पान

---

१ विलेपनभूमौ । २ शेखर का अर्थ सिर पर पहननेवाली माला है । ३ धूमवर्ति ।

वेत्रलताग्रहणप्रसङ्गादतिजरठकिसलयानुकारिकरतलकरेणाभ्यन्तरसचारसमुचितेन परिजनेनानुगम्यमानो, धवलांशुकपरिगतपर्यन्ततया स्फटिकमणिमयभित्तिनिबद्धमिवोपलक्ष्यमाणम् , अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिगतेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम् , अविरलविप्रकीर्णेन विमलमणिकुट्टिमगगनतलतारागणेनेव कुसु-

गृहीतमात्त ताम्बूल नागवल्लीदल येन स तथा। तस्मात्माङ्निर्दिष्टात्। प्रमृष्टेति। प्रमृष्ट सातिशय मृष्ट मणिकुट्टिम यस्मिन्नेवभूतात्प्रदेशात्स्थलात् उत्थाय उत्थान कृत्वेत्यर्थ। नातिदूर वर्तते या सा तथा। पुन कीदृश्या। ससम्भ्रम सभय प्रधावितया त्वरित गच्छन्त्या। एवभूतया प्रतीहार्या। 'पुवत्प्रगल्भा या नारी वक्तु या च विचक्षणा। सा प्रतीहारी' इति। तया प्रसारित सनिहित कृतो बाहुर्भुजस्तमवलम्ब्य। तदाश्रयमास्थायेत्यर्थ। परीति। परिजनेन सेवकजनेनानुगम्यमान इति राज्ञो विशेषणम्। अथ सेवकजन विशेषयन्नाह—वेत्रेति। वेत्रस्य वेतसस्य या लता सरलयष्टिस्तस्या ग्रहण धारण तस्य प्रसङ्गोऽभ्यासस्तस्मादतिजरठमतिकठिन यत्किसलयं तदनुकरोति तादृश करतल पाण्यधोभागो यस्यैवविध करो हस्तो यस्य स तथा तेन। अभ्यन्तरेति। अभ्यन्तर बाह्यजनागम्यो यो गृहप्रदेशस्तत्र य सचार. सचरण तत्र समुचितो योग्य स तथा तेन। अथास्थानमण्डप विशिनष्टि—धवलेति। धवल शुभ्र यत् अशुक वस्त्र तेन परिगत सहितो य पर्यन्तः प्रान्तस्तस्य भावस्तत्ता तया। स्फटिकमणिमयी या भित्ति. कुड्य तया निबद्ध निर्मितमिवोपलक्ष्यमाण दृश्यमानम्। अनेनांशुकाना श्वेतत्वसौक्ष्म्यातिशयो व्यज्यते। अतीति। अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिगतेनामोदिना चन्दनवारिणा मलयजपानीयेन सिक्ता सिञ्चितात एव शिशिरा शीतला मणिभूमी रत्नबद्धा भूर्यस्मिंस्तत्तथा। अवीति। अविरल घनतर विप्रकीर्णेन पर्यस्तेन। विमलेति। विमलमणीना निर्मलरत्नानां

लिया (चबाया) और उस चमकाये हुए (चमकते) मणि निर्मित फर्श से उठकर खड़ा हो गया, फिर वह बहुत दूर नहीं खड़ी हुई (समीपवर्तिनी) हड़बड़ाकर दौड़ी प्रतिहारी द्वारा फैलायी गयी बाँह का सहारा लिए हुए, बेंत पकड़े रहने की सतत आवश्यकता के कारण[1] अत्यन्त जरठ अर्थात् पूरे बढ़े हुए नए पत्ते सरीखी हथेलीवाले हाथोंवाले[2] भीतरी भागों में आने जाने का विशेष अधिकार प्राप्त, सेवकों द्वारा अनुगम्यमान (दर्शन देने के लिये नियत) सभाभवन में पहुँचा। वह कक्ष शुभ्र वस्त्रों से ढके किनारोंवाला होने के कारण श्वेत सगमर्मर की बनी दीवारों से घिरा प्रतीत होता था, अत्यन्त सुगन्धित कस्तूरी मिश्रित चन्दन जल से सिंचित (अतएव) शीतल मणिमय फर्शवाला था, इसके स्वच्छ मणि (जटित) फर्शरूपी

१ प्रसगात् के अर्थ हैं—व्यस्तता अथवा अभ्यास के कारण।

२ 'वेत्रलता ·· करतलम्'—यह विशेषण दूसरे सेवकों के हाथ में बेंत न रहने के कारण प्रतिहारी के बाहु का ही होना चाहिये। इस अवस्था में इसका अर्थ इस प्रकार होगा—"प्रतिहारी द्वारा फैलायी गयी, बेंत पकड़े रहने के कारण अत्यन्त परिपक्व अत एव कठोर कोमल पत्ते-सरीखी हथेलीवाली भुजा को कम्बे हाथ से पकड़े हुए · "

मोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन संनिहितगृहदेवतेनेव गन्धसलिलक्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्, अखिलविगलितजलनिवहधवलजलधरशकलानुकारिणा कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन पट्टोपधानाध्यासितशिरोधाम्ना मणिमयप्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन तुहिनशिलातलसदृशशयनेन सनाथीकृतवेदिक भुक्त्वास्थानमण्डपमयासीत्। तत्र च शयने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्गनिहिता-

यत्कुट्टिम तत्र गगनतलतारागणेनेवाकाशस्थितनक्षत्रसमूहेनेव कुसुमोपहारेण पुष्पप्रकरेण निरन्तर सर्वकाल निचित व्याप्तम्। स्तम्भेति। स्तम्भा स्थूणास्तेषा सचयेन समुदायेन विराजमान शोभमानम्। स्तम्भसचय विशेषयन्नाह—गन्धेति। गन्धसलिलै सुगन्धिवारिभि क्षालितेन धौतेन। कलधौत सुवर्ण तन्मयेन। अत्र विकारार्थे मयट्। उत्कीर्णेति। उत्कीर्य कृता शालभञ्जिका पुत्रिकास्तासा निवह. समूहो यस्मिन्स तथा। केनेव। सनिहिता समीपस्था गृहदेवता गृहाधिष्ठाय्यो यस्मिन्नेवभूतेनेव। 'गोस्त्रियो —'इति पुवद्भाव। अतीति। अतिबहलोऽतिप्रचुरो योऽगुरु कृष्णागुरुस्तस्य धूपस्य परिमल सौगन्ध्य यस्मिंस्तत्तथा। तुहिनेति। तुहिन हिम तस्य शिलातल तत्सदृश यच्छयन शय्या तेन सनाथीकृता सहिता वेदिका सस्कृतभूमिर्यस्मिंस्तत्तथा। इत शयन विशेषयन्नाह—अखिलेति। अखिल समग्रो विगलितो जलनिवहो नीरसमूहो यस्मिन्नेवभूतो धवल शुभ्रो जलधरो मेघस्तस्य शकलं खण्डस्तमनुकारिणा तत्सादृश्यकरणशीलेन। कुसुमेति। कुसुमाना पुष्पाणामामोद परिमलस्तेन वासितो भावित प्रच्छदपट उत्तरच्छदो यस्मिंस्तत्तथा तेन। पट्टेति। पट्टस्य पट्टदुकूलस्योपधानमुच्छीर्षक तेनाध्यासितमधिष्ठित शिरोधाम शिर स्थल यस्मिंस्तत्तथा तेन। मणीति। मणिमया मणिप्रचुरा प्रतिपादुका अध.पीठानि तेषु प्रतिष्ठिता स्थिता पादा यस्य तत्तथा तेन। पार्श्वेति। पार्श्वस्थ समीपस्थ रत्नपादपीठं मणिपादासन यस्मिंस्तत्तथा तेन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तत्रेति। तत्र शयने निषण्ण उपविष्टो राजा मुहूर्तमिव घटिकाद्वयमात्रमिवासाचक्रे सुष्वाप। इतो राजान विशेषयन्नाह—क्षितीति। क्षितितले भूमितल उपविष्टया स्थितया तथोत्सङ्गे क्रोडे

आकाश पर नक्षत्रो सरीखे बिना अन्तर छोडे (पास-पास) बिखरे हुए पुष्पों के उपहार सर्वत्र बिखरे हुए थे, यह कक्ष खोदकर बनायी गयी बहुत-सी पुतलियो के कारण समीपस्थ गृहदेवताओ वाले से प्रतीत होते सुगन्धित जल से धोये गये सोने के बने थम्भों से सुशोभित था, वहाँ अगर के धुएँ की अटल[1] गन्ध विद्यमान थी, और वहाँ, जिसका सारा जल समूह बह गया हो ऐसे श्वेत मेघखण्ड से मिलते जुलते (अर्थात् श्वेत), फूलो की सुगन्ध से सुगन्धित चादरवाले, सिर (रखने) के स्थान पर रेशमी तकिया लगाये हुए, मणिमय चौकियों[2] (प्रतिपादुकाओं) पर रखे हुए पायोवाले, तथा एक ओर (समीप ही) रखे हुए रत्न जटित पीढ़ेवाले, हिमालय पर्वत पर रखी हुई शिला के सदृश (श्वेत तथा बड़े) पलग से युक्त एक मच बना हुआ था। और वहाँ उस पलग पर बैठ गया—उस समय उसके पाँव भूमि पर बैठी हुई, (उस समय) गोदी

१ बहल–दृढ, अटल, प्रबल अधिक उपयुक्त है। २ आधारों पर।

सिलतया खड्गवाहिन्या नवनलिनदलकोमलेन करसपुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरवनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन्मुहूर्तमिवासाचक्रे। ततो नातिदूरवर्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश। सा क्षितितलनिहितजानुकरतला 'यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञा यथादिष्टमकरोत्।

अथ मुहूर्तादिव वैशम्पायनः प्रतिहार्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना

निहिता स्थापितासिलता खड्गलता ययैवभूतया खड्गवाहिन्या। नव नूतन यन्नलिन कमल यस्य दलानि पत्राणि तद्वत्कोमलेन मृदुना करसपुटेन हस्तसपुटेन शनै शनै संवाह्यमानौ सचाल्यमानौ चरणौ पादौ यस्य स तथा तेन। तत्काल इति। तत्काले शयनकाले उचित योग्यं दर्शनमालोकन येषामेतादृशैरवनिपतिभिर्नृपैरमात्यै सचिवैर्मित्रै सुहृद्भिस्तास्ता प्रस्तावोचिता कथा वार्ता कुर्वन्विदधत्। तत कथासमाप्त्यनन्तर पूर्वोक्ता प्रतीहारीमित्यादिदेशाज्ञापयामास। कीदृशीम्। नातिदूर नातिव्यवधानेन वर्तते या सा ताम्। आज्ञाविषयमाह—अन्त इति। अन्तपुरादवरोधात्त वैशम्पायन शुकमादायागच्छेति। समुपेति। समुपजात समुत्पन्न तस्य शुकस्य वृत्तान्तप्रश्ने प्रवृत्तिपृच्छाया कुतूहलमाश्चर्यं यस्य स तथेति राज्ञो विशेषणम्। सा प्रतीहारी क्षितितले निहितौ स्थापितौ जानू नलकीलकौ करतले हस्ततले च यया सा। आसनविशेषेण विनयविशेषो व्यज्जित। आज्ञोत्तर तस्या कर्तव्यमाह—यथेति। येन प्रकारेणाज्ञापयत्याज्ञां धत्ते देवो भवानित्यनूद्य शिरसि मस्तक आज्ञा पूर्वोक्ता कृत्वा स्वशिरसि करतल निधायेति भाव। यथेति। येन प्रकारेण राज्ञादिष्टमाज्ञापित तथाकरोच्चकार।

अथेति। अन्त पुरप्रवेशानन्तर मुहूर्तादिव तावन्मात्रविलम्बादिव वैशम्पायन शुको राजान्तिक नृपसमीपमाजगामाययौ। शुक विशिनष्टि—प्रतीति। प्रतीहार्या पूर्वोक्तया

में तलवार को रखे हुई, तलवार उठानेवाली सेविका (अपने) अभिनव कमल पत्र सदृश कोमल दोनो हाथों से धीरे धीरे दबा रही थी, उस पलंग पर वह उस समय प्राय: दर्शन प्राप्त करनेवाले राजाओं, मन्त्रियों तथा मित्रों के साथ विविध बातें करता हुआ लगभग एक मुहूर्त (=४८ मिनट तक) बैठा। फिर उस (वैशम्पायन) के इतिहास को पूछने के उत्सुक उस राजा ने बहुत दूर न विद्यमान (समीप ही स्थित) प्रतिहारी को आदेश दिया—'वैशम्पायन को ले आ।' उसने, पृथ्वी पर अपने घुटनो तथा हथेलियों को रखकर 'आपकी जैसी आज्ञा'—कहते हुए (उसकी आज्ञा को) सिर झुकाये हुए स्वीकार किया और जो कुछ उससे कहा गया था वही उसने किया।

तब क्षण भर म ही प्रतिहारी द्वारा लिये हुए पिंजरे वाला वैशम्पायन, राजा के समीप आ गया। (अर्थात् लाया गया) उसके पीछे पीछे सोने की बेत का सहारा लिये

किञ्चिदवनतपूर्वकायेन सितकञ्चुकावच्छन्नवपुषा जराधवलितमौलिना गद्गदस्वरेण मन्दमन्दसचारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम। क्षितितलनिहितकरतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्यज्ञापयत्—'देव, देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देवपादमूल प्रतीहार्यानीतः' इत्यभिधाय गते च तस्मिन्राजा वैशम्पायनमपृच्छत्—'कच्चिदभिमतमास्वादितमभ्यन्तः भवता किञ्चिदशनजातम्' ? इति। स प्रत्युवाच—'देव, किं वा नास्वादितम्। आमत्तकोकिललोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरिनख-

---

गृहीतमात्त पञ्जर यस्य स तथा। कञ्चुकिनेति। कञ्चुकिना सौविदल्लकेनानुगम्यमानोऽनुव्रज्यमान। केन। विहङ्गजातिप्रीत्या पक्षित्वजातिस्नेहेन जरत्कलहसेनेव वृद्धराजहसेनेव। अथ कञ्चुकिन विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य या वेत्रलता वेतसयष्टिस्तामवलम्बत इत्येवशील स तथा तेन। किञ्चिदिति। किञ्चिदीषदवनत आनम्र पूर्वकायो यस्य स तथा तेन। सितेति। सित श्वेतो य कञ्चुक कूर्पासस्तेनावच्छन्नमाच्छादित वपु शरीर यस्य स तथा तेन। जरेति। जरा विस्रसा तया धवलित शुभ्रीकृतो मौलिर्यस्य स तथा तेन। गदिति। गद्गद शब्दविशेष स्वरो यस्य स तथा तेन। मन्देति। मन्दमन्द शनै शनै. सचरतीत्येवशील स तथा तेन। क्षितीति। क्षितितले निहित स्थापित करतल येनैवविध कञ्चुकी पूर्वोक्तो राजान नृपं व्यज्ञापयद्विज्ञापनामकरोत्। हे देव हे स्वामिन्, देव्यो राजपत्न्यो विज्ञापयन्ति विज्ञप्ति मन्मुखेन कारयन्ति। किं तदाह—देवेति। देवादेशात्स्वामिनो नियोगादेष दृश्यमानो वैशम्पायन शुक पूर्व स्नात कृतस्नान पश्चात्कृताहारो विहिताशन। अथ च देवस्य राज्ञ पादमूल समीप प्रतिहार्यानयानीत। इत्यभिधायेत्युक्त्वा तस्मिन्कञ्चुकिनि गते निवृत्ते सति राजा वैशम्पायनमपृच्छत्। कच्चिदिष्टप्रश्ने। भवता त्वयाभ्यन्तरेऽभिमतमिष्ट किंचिदशनजात भक्ष्यसमूहमास्वादित जग्धम्। स इति। स शुक प्रत्युवाच प्रत्यब्रवीत्। देवेति। हे नाथ, किंवेत्यत्र नञि काकु। तेन सर्वमास्वादितमित्यर्थं। तदेवोत्कर्षतया निरूपयति—प्रकामेति। प्रकाममतिशयेनातृप्तिमर्यादं पीत' पानविषयीकृतो जम्बू सुरभिपत्रा यस्या फलानि सस्यानि तेषा रसोऽन्तर्भूतद्रव। कीदृश। नीलः सन्पाटलः श्वेतरक्त। अतएव आमत्तेति। आमत्तो

हुए अपने शरीर के पूर्वभाग को कुछ झुकाए हुआ, श्वेत बडी से अपने को ढके हुआ, बुढापे के कारण श्वेत हुए सिर वाला, लड़खड़ाती आवाज वाला, धीरे-धीरे चल रहा, पक्षी-जाति से (अपने) प्रेम के कारण बूढे कलहस सा प्रतीत होता कञ्चुकी चला आ रहा था। पृथ्वी पर अपनी हथेलियों को रखे हुए कञ्चुकी ने राजा को बतलाया—'देव ! रानियाँ कहती है—स्नान तथा भोजन किये हुआ वैशम्पायन आपकी आज्ञा से प्रतीहारी ने आपके चरणों मे पहुँचा दिया है।' और यह कहकर उसके चले जाने पर राजा ने वैशम्पायन से पूछा—"क्या तुमने अन्त.पुर मे अपना कोई अभीष्ट भोजन कर लिया ?" उसने उत्तर दिया—"महाराज ! मैंने क्या कुछ नहीं खाया ! मैंने कुछ कुछ मस्त कोकिल की आँखों के रग का, नील-सा लाल लाल, कसैला मीठा जामुन का रस मन भर पी लिया है, सिंह के

रभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्विषि खण्डितानि दाडिमबीजानि, नलिनी-दलहरिन्ति द्राक्षाफलस्वादूनि च चूर्णितानि स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना। सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते, इति। एवं-वादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—'आस्तां तावत्सर्वम्। अपनयतु नः कुतूहलम्। आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कात्स्न्र्येनात्मनो जन्म, कस्मिन्देशे, भवान्कथं जातः, केन वा नाम कृतम्, का ते माता, कस्ते पिता, कथं वेदानामागमः, कथं शास्त्राणां परि-

मदोन्मत्तो यः कोकिलः पिकस्तस्य लोचनच्छविरिव छविर्यस्य स तथा। पुनः कीदृक्। कषायो-ऽम्लो मधुरो मिष्टश्चेति कर्मधारयः। अथ च खण्डितानि शकलीकृतानि। मयेति शेषः। कानि दाडिमबीजानि। अथैतानि विशेषयन्नाह—हरीति। हरिः सिंहस्तस्य नखरा नखास्तैर्भिन्ना ये मत्तानां मातङ्गानां कुम्भा मांसपिण्डास्तेभ्यो मुक्तान्यपगतानि यानि रक्तानि रुधिराणि तैरार्द्राणि क्लिन्नानि यानि मुक्ताफलानि तद्वत्त्विट् कान्तिर्येषु तानि। नलिनीति। नलिनी कमलिनी तस्या दलानि पत्राणि तद्वद्धरिन्ति नीलानि। द्राक्षेति। द्राक्षा गोस्तनी तस्याः फलानि तद्वत्स्वादूनि मिष्टान्येवंविधानि प्राचीनामलकी क्षीरधात्री तस्याः फलानि स्वेच्छया स्वाधीनतया चूर्णितानि मर्दितानि। किंवा नास्वादितानीति पूर्वानुषङ्गः। प्रीत्यतिशयस्यावक्तव्यत्वमाह—किं वेति। बहुना प्रलपितेन कथितेन किं वा न किमपीत्यर्थः। सर्वमेवेति। जम्बूरसादिकं देवीभी राजपत्नीभिः स्वयं न परतः करतलोपनीयमानं हस्ततलेनोपनीयमानं मदर्थमानीयमानममृतायते अमृतवदा-चरति। 'उपमानादाचारे' इति क्यच्प्रत्ययेनात्मनेपदम्। इति वाक्यसमाप्तौ। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वादिनो ब्रुवतः कीरस्य वचनं वाक्यमाक्षिप्य तिरस्कृत्यान्यदेव जिज्ञासितुं प्रष्टुं नरपती राजा-ब्रवीत्। पूर्ववक्तव्यतायामनादरमाह—आस्तां तावदिति। सर्वं पूर्वोक्तं तावदादावास्तां तिष्ठतु। नोऽस्माकं कुतूहलमाश्चर्यं पक्षिणः सर्वशास्त्रविषयकं ज्ञानं स्यादित्येवं रूपमपनयतु दूरीकरोतु। तदेव दर्शयति—आवेदयत्विति। कात्स्न्र्येन समग्रत्वेनादितः प्रभृत्युत्पत्तिसमया-दारभ्यावेदयतु कथयतु भवान्। तदेव दर्शयति—आत्मन इत्यादि। कस्मिन्देशे कुत्र जनपदे आत्मनः स्वकीयस्य जन्मोत्पत्तिः। कथं केन प्रकारेण भवांस्त्वं जात उत्पन्नः। केन वा वैशम्पायन इति नामाभिधानं कृतं विहितम्। ते तव का माता जननी। ते कः पिता जनकः। कथं केन

नखों से विदीर्ण मदमस्त हाथी के मस्तक पर से गिरे खून से गीले मोतियों-से दिखायी देते अनार के बीजों को कुतर लिया है, और कमलपत्र सरीखे हरे, अंगूरों सरीखे स्वादवाले (मीठे) 'प्राचीनामल्की' फलों का इच्छानुसार चूरा बनाया है (अर्थात् उनको खूब खा लिया है)। अथवा (इस प्रकार) बहुत सा प्रलाप (व्यर्थ ही) मैं क्यों करूँ? रानियाँ स्वयं अपने हाथों से जो दे देती हैं, वह सभी कुछ अमृत बन जाता है।"—इस प्रकार (इस लहजे में) बोलते हुए वैशम्पायन की बात को बीच में ही काटकर राजा ने कहा—"यह सब तो अभी रहने दो। (पहले) हमारी उत्सुकता को शांत करो। तुम आरंभ से पूरा पूरा बताओ कि तुम्हारा जन्म किस देश में हुआ, कैसे तुम उत्पन्न हुए, किसने तुम्हारा नाम रखा, तुम्हारी मा कौन है, पिता कौन है, वेदों का ज्ञान तुम्हें कैसे हुआ, शास्त्रों को

१. आक्षिप्य = आ + क्षिप् + ल्यप्, क्षिप् = hit

चयः, कुतः कला आसादिताः, किंहेतुक जन्मान्तरानुस्मरणम्, उत वरप्रदानम्, अथवा विहङ्गवेषधारी कश्चिच्छन्न निवससि, क्व वा पूर्वमुषितम्, कियद्वा वयः, कथ पञ्जरबन्धन, कथ चाण्डालहस्तगमनम्, इह वा कथमागमनम्' इति। वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजात-कुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—'देव, महतीय कथा। यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्—

अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना मध्यदेशालकारभूता मेखलेव भुवः,

प्रकारेण वेदानामाम्नायानामागम उपलब्धि। कथ शास्त्राणा न्यायमीमासादीना परिचयोऽव-बोध। कुत कस्मात्कला विज्ञानैकदेशा द्वासप्ततिभेदभिन्ना आसादिता अभ्यस्ता। किंहेतुक किंनिमित्तक जन्मान्तरस्य पूर्वजन्मनोऽनुस्मरणमनुभूतार्थज्ञानम्। उताहोस्विद्वरप्रदानम्। यद्वा। केनचिद्वर प्रदत्तो येन जन्मान्तर जानासीति भाव। अथवेति पक्षान्तरे। सिद्ध एव वा कश्चित् कश्चन त्व विहङ्गाना पक्षिणा वेषधारी छन्न गूढ निवससि निवास करोषि। क्व वा कस्मिन्स्थले ऽत्रागमनात्पूर्वमुषित स्थितम्। ते कियद्वार्षिक वय कौमारादि। कथ तेन प्रकारेण पञ्जर पक्षिणा गृह तत्र बन्धनमवस्थानम्। कथ वा चाण्डालहस्तगमनम्। इहास्मिन्प्रदेशे कथ वागमनमिति। तदनन्तर वैशम्पायन। तु पुनरर्थे। उपजात समुत्पन्न कुतूहल यस्यैवभूतेन अवनिपतिना पृथ्वीपतिना सबहुमान सह बहुमानेनादरेण वर्तमान यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेष णम्। स्वय नान्तरा पृष्ट आक्षिप्त सन्प्रश्नानन्तर मुहूर्तमिव घटिकाद्वयमिव ध्यात्वा ध्यान कृत्वा सादर आदरेण सह यथा स्यात्तथाब्रवीदुवाच। तत्किम्। हे देव, यत्पृष्ट तद्विषयिणी महती कथेयम्। यदि च किं तदिति तच्छ्रवणे कौतुक तदाकर्ण्यता श्रूयताम्।

अस्तीति। नामेति प्रसिद्धम्। विन्ध्याटव्यस्तीत्यन्वय। इतोऽटवी विशेष-यन्नाह—पूर्वेति। पूर्वश्चापरश्च पूर्वापरौ यौ जलनिधी समुद्रौ तयोर्यद्वेलावन तटकानन तावत्पर्यन्त लग्ना सबद्धा। मध्येति। सह्यहिमालययोर्मध्य मध्यदेशस्तस्यालकारभूता। भूषणरूपेत्यर्थ। अतएव मध्यभूषणरूपत्वाद्भुव पृथिव्या मेखलेव काञ्चीव। पादपैर्वृक्षै-

तुमने कैसे जाना, कलाएँ किससे सीखी, क्या (इन सबका) स्मरण तुम्हें पूर्वजन्म के स्मरण के कारण है[1] अथवा यह (किसी) वर प्रदान के कारण है, अथवा तुम पक्षी का वेश धारण किये हुए कोई छुपे हुए रहते हो, अबतक तुम कहाँ रहे, तुम्हारी आयु कितने वर्ष की है, पिंजरे में बन्धन क्यों हुआ, फिर चाण्डाल के हाथ में क्यो पड़ गये? और यहाँ कैसे आना हुआ? आदि"—तब स्वय उत्सुक हुए राजा द्वारा बहुत आदर पूर्वक पूछा गया वैशम्पायन कुछ देर तक कुछ सोचता सा प्रतीत हुआ और फिर आदरपूर्वक बोला—महाराज यह कथा तो बहुत लम्बी है। यदि आपको उत्सुकता है तो, सुनिए—

विन्ध्याटवी नाम का (एक जगल) है। वह पूर्वी तथा पश्चिमी, दोनों महासागरों के, तटों के जगलो तक फैला हुआ है। मध्यप्रदेश को सुशोभित करता हुआ वह जगल पृथ्वी

१ अन्य जन्म का स्मरण किस कारण से है? अथवा (यह सब—पूर्व जन्म स्मरण) वर-प्रदान ही है?

वनकरिकुलमदजलसेकसवर्धितैरतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारकागणमिव शिखरप्रदेशसलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकलकुररकुलदृश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलच्छविना सचरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवचयेन सच्छादिता, शुककुलदलित-दाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैरतिचपलकपिकम्पितकक्कोलच्युतपल्लवफलशबलैरनवरतनिप-

रुपशोभिता द्योतमाना । अथ पादपान्विशेषयन्नाह—वनेति । वने कानने करिणो गजास्तेषा कुलानि यूथानि तेषा मदजलस्य दानवारिण सेक सिञ्चन तेन सम्यग्वर्धिता वृद्धिं प्राप्तास्तै । अतीति । अतिविकचान्यत्यन्त विकसितानि यानि धवलानि शुभ्राणि कुसुमानि पुष्पाणि तेषा निकर समूहस्तम् । कीदृशम् । अत्यन्तमुच्चतया शिखरप्रदेश प्रान्तदेशस्तत्र सलग्नमत एवोच्चत्वाच्छुभ्रत्वाच्च तारकाणा गणमिव नक्षत्राणा समूहमिवो द्वहद्भिर्धारयद्भि । पुनरटवी विशिनष्टि—मदेति । मदेन कला मनोज्ञा ये कुररा मत्स्याशनास्तेषा कुलानि तैर्दृश्यमाना आस्वाद्यमाना मरिचवृक्षस्य पल्लवा यस्या सा । करीति । करिणा गजाना कलभास्त्रिशदब्दकास्तेषा करा शुण्डादण्डास्तैर्मृदितानि मर्दितानि यानि तमालवृक्षस्य किसलयानि तेषामामोद परिमलो विद्यते यस्यां सा । मध्विति । मधु कापिशायन तस्य यो मद आवेशस्तेनोपरक्ता लोहितैवभूता या केरली केरलदेशोद्भवा स्त्री तस्या कपोलौ गल्लापरप्रदेशौ तयोश्छविरिव छविर्यस्य स तेन । केरलदेशोद्भवा स्त्री स्वभावतो रक्तवर्णा कोमलाङ्गी । मधुमदात्तु विशेषतो रक्तेति भाव । केनेव । सचरन्त्य इतस्ततो गच्छन्त्यो या वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यस्तासां चरणानां योऽलक्त-करसो यावकद्रवस्तेन रञ्जितेनेव रक्तीकृतेनेव पल्लवाना किसलयानां चयेन समूहेन सछादिताच्छादिता । विराजितेति । लता वल्लयस्तासा मण्डपैर्जनाश्रयैर्विराजितोपशोभ-माना । अथ मण्डपान्विशेषयन्नाह—शुकेति । शुककुलैर्दलितानि विदारितानि यानि

की मेखला ही प्रतीत होता है। वह जगली हाथियों के तरल मद से सिंचित होकर परिपुष्ट तथा वृक्षों की बहुत अधिक ऊँचाई के कारण (उनकी) चोटियों पर लगे हुए तारापुञ्ज से प्रतीत होते, पूर्णतया विकसित श्वेत पुष्पों के समूह को (चोटियों पर) धारण किये हुए वृक्षों से सुशोभित है। उसमें लगे मिर्च के पौधों के पत्तों को प्रसन्नता से चह चहाते कुरर पक्षी कुतरते हैं। वह गज शिशुओं की सूडों से कुचले गये तमाखू के कोमल पत्तों की गन्ध से युक्त है। वह मद्य के नशे (के प्रभाव) से लाल हुए केरलस्त्रियों के गालों के समान रमणीय वर्ण की, उसमे चलती-फिरती परियों के पाँवों मे लगाए हुए अलक्तकरस से रगी-सी प्रतीत होती घनी पत्रावली से ढका हुआ है। वह वनश्री के वासभवनों सरीखे प्रतीत होते लताकुञ्जों से सुशोभित है, उन लताकुञ्जों की तल भूमि अनेक तोतों द्वारा कुतरे अनारों के रस से गीली है, अत्यन्त चञ्चल वानरों द्वारा हिलाये गये कक्कोल वृक्षों से गिरे पत्ते

१ मदकल ।

तितकुसुमरेणुपांसुलैः पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवस्रस्तरैरतिकठोरनालिकेरकेतकीकरीर-बकुलपरिगतप्रान्तैस्ताम्बूलीलतावनद्धपूगखण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मीवासभुवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः, उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेवानवरतमेलालतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, सिंहनखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः शबरसेनापतिभिरभि-हन्यमानकेसरिशता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च

दाडिमीफलानि तेषां द्रवो रसस्तेनार्द्रीकृतमार्द्रतामुपनीतं तलं मध्यभागो येषां ते तथा ते । अतीति । अतिचपला अत्यन्तं चञ्चला ये कपयो गोलाङ्गूलास्ते कम्पिता धूनिता ये कक्कोला कोशफलवृक्षास्तेभ्यश्च्युतं पतितं पल्लवफलं शबलाः कर्बुरास्ते । अनवर-तेति । अनवरतं निरन्तरं निपतितानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रेणवः परागधूल-यस्ते पांसुलाः सरजस्कास्तैः । पथिकेति । पथिकजनैः पान्थलोकैः रचितो निर्मितो लवङ्गपल्लवानां लवङ्गवृक्षविशेषकिसलयानां स्रस्तरः प्रस्तरो येषु तैः । अतीति । अतिकठोरा अत्यन्तकठिना नालिकेरा लाङ्गलीवृक्षाः केतक्यः क्रकचच्छदाः करीराः केसराः बकुलाश्च तैः परिगतो व्याप्तः प्रान्तोऽन्त्यप्रदेशो येषां ते तथा तैः । ताम्बूलीति । ताम्बूली नागवल्ली सा चासौ लता चेति कर्मधारयः । तयावनद्धं बद्धं यत्पूगखण्डं क्रमुकवनं तेन मण्डितैः शोभितैः । कैरिव । वनेति । वनलक्ष्मीररण्यश्रीस्तस्या वासस्य वसतेर्भुवनानि गृहास्तैरिव । उन्मदेति । उन्मदा मत्ता ये मातङ्गा गजास्तेषां कपोलस्थलानि करटप्रदेशास्तेषां गलितं च्युतं यत् सलिलं मदजलं तेन सिक्तेनेव सिञ्चितेनेव । अतएव मदगन्धिना मदस्य गन्ध इव गन्धो यस्मिंस्तेतादृशेन । अनवरतं निरन्तरमेलानां चन्द्रवालानां लता वल्लयस्तासां वनं काननं तेनान्धकारिता श्यामीकृता । एलारजःसम्बधाच्छ्यामता प्रापितेत्यर्थः । नखेति । नखानां मुखान्यग्राणि तेषु लग्नान्यासक्तानि यानीभकुम्भमुक्ताफलानि गजमांस-पिण्डरसोद्भवानि तेषु लुब्धैर्लोलुपैः शबराणां भिल्लानां सेनापतिभिः सैन्यनायकैरभिहन्य-मानं व्यापाद्यमानं केसरिणां नखरायुधानां शतं यस्यां सा तथा । प्रेतेति । प्रेताधिपो यमस्तस्य नगरीव संयमिनीव सदा निरन्तरं सर्वदा सन्निहितो निकटवर्ती मृत्युर्यमस्तेन भीषणा भयकारिणी । पक्षे सदा निकटस्थो यो मृत्युरजगरस्तेन भीषणा भयावहा । यद्वा । कारणे कार्योपचारान्मृत्युर्व्याघ्रादयस्तैर्भीषणेत्यर्थः । महिषेति । महिषैर्गवलैर-

तथा फल उनमें बिखरे हुए हैं[1] । वे कुंज लगातार नीचे गिर रहे पुष्पों के पराग से धूलिभरे हैं (अर्थात् इनके नीचे भी भूमि पुष्पों के पराग से ढकी हुई है, (उनके भीतर) यात्रियों द्वारा (सोने के लिये बना लिये गये) लौंग के पत्तों के बिस्तर लगे हुए हैं, उनके प्रान्त भाग–किनारे–सर्वथा प्रौढ नारियल (नालिकेर) के पेड़, केतकी तथा करीर के पौधे और केसर के वृक्षों से घिरे हुए हैं और वे ताम्बूली लताओं से घिरे सुपारी के वृक्षों से सुशोभित हैं । वह जंगल मदमस्त हाथियों के गण्डस्थलों से गिरे मदरस से ही मानो सींचे गये बिना अन्तर छोड़े (उगे हुए), मद की गन्धवाले इलायची के पौधों से अन्धेरा बना रहता है ।

१ शबल —रंगबिरंगे पत्तों और फलों के बिखरे होने के कारण ही लताकुंज रंग बिरंगे थे ।

समरोद्यतपताकिनीव बाणसमारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव

धिष्ठिता व्याप्ता च । अथ च यमपुरीपक्षे यमस्य वाहन महिषस्तेनाधिष्ठिता सहिता । समरेति । समरे सग्राम उद्यता या पताकिनी सेना तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—बाणेति । बाणाख्ये वृक्षविशेषे समारोपिता स्थापिता शिलीमुखा भ्रमरा यया सा तथा । पक्षे बाणे शरे सम्यक्प्रकारेणारोपिता शिलीमुखा लोहखण्डा यस्यामिति विग्रह । विमुक्तेति । विमुक्तस्त्यक्त अर्थात्केसरिभि सिंहनाद केसरिध्वनिर्यस्या सा तथा । पक्षे सुभटैर्विहित सिंहनाद इव नादो यस्यामिति विग्रह । पुन कीदृशी । कात्यायनी । सिंहयाना तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—प्रचलितेति । सेनाप्रकर्षेण प्रचलितो य खड्गो गण्डकस्तेन भीषणा भयावहा । रक्तचन्दन रक्ताङ्ग वृक्षविशेषस्तेनालङ्कृता च भूषिता च । पक्षे प्रचलितो य खड्ग कौक्षेयकस्तेन भीषणा भयजनिका, रक्तमेव चन्दन तेनालङ्कृता च । चर्चितेत्यर्थ । कर्णीसुत कश्चित्क्षत्रियविशेष तस्य कथा वृत्तान्तस्तद्वदिव । उभयोस्तुल्यतामाह—सन्निहितेति । सन्निहितौ समीपवर्तिनौ विपुलाचलौ विपुलाचलसज्ञकौ सखायौ यस्या सा तथा । शशस्तस्य मन्त्रिमुख्यस्ते-नोपगता सहिता च । अतएव कर्णीसुत करटक स्तेयशास्त्रप्रवर्तक । ख्यातो तस्य सखायौ द्वौ विपुलाचलसज्ञकौ । शशो मन्त्रिवरस्तस्य' इति बृहत्कथाया कथा निबद्धा । पक्षे सन्निहिता समीपवर्तिनो विपुला पृथुला अचला पर्वता यस्या सा तथा । शशो मृदुलोमको लोध्रवृक्षो वा । तेनोपगता सहिता च । 'शशो लोध्रे नृभेदे च पशौ' इत्यनेकार्थ । कल्पान्तेति । कल्पान्तस्य

उस जगल मे (शेरों के) नाखूनों तथा मुखों मे लगे हस्ति मस्तकों पर के मोतियों के लोभी शबर सेनापतियो द्वारा सैकड़ों शेर मारे जाते है । सदा समीपस्थ मृत्यु के कारण भयङ्कर तथा (जगली) भैंसो के वहाँ रहने से वह जगल सदा समीपस्थ (मृत्यु) यमराज से भीषण बनी हुई तथा यमराज के वाहन, भैंसे, से युक्त प्रेत राजा यमराज की नगरी सा प्रतीत होता है । धनुषों पर बाणों को चढाये हुए एव युद्ध घोष करती हुई युद्ध के लिए तय्यार सेना की भाँति वह जगल बाण (नील झिण्टी) तथा असन नाम के वृक्षो के फूलो की गन्ध से आकृष्ट भौंरो वाला तथा सिंहो की गर्जनाओ से भरा हुआ है । विचरते गैंड़ों से भयानक हुआ तथा लालवृक्षों से सुशोभित वह जगल, चमकती तलवार से भयङ्कर और लालचन्दन से चर्चित पार्वती सा बना हुआ था । (कथा मे वर्णित) 'विपुल' तथा 'अचल' (उसके दो मित्रो के नाम) तथा (उसके मुख्य मत्री) 'शश' के नामो से युक्त 'कर्णीसुत' (एक क्षत्रिय) की कथा की भाँति उस जगल के समीप बडे-बड़े पर्वत होने से तथा खरगोशो से युक्त होने के कारण सनिहित विपुल अचल तथा 'शशोपगत' है । वह जगल नाचते मोरों वाला तथा (लाल) पत्तो से लाल हुआ होने के कारण नाचते महादेव से युक्त तथा (व्यापक अग्निदाह की चमक के कारण लाल हुई) पत्रावली से लाल हुए प्रलयकालीन सन्ध्या के सदृश है । अमृत जिससे मथकर निकाला गया वह अमृत मथन—क्षीर समुद्र—का तट जैसे श्री अर्थात् लक्ष्मी से

श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणपरिगता च, प्रावृडिव घनश्यामलानेकशतह्रदालङ्कृता च, चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृग-बालव्यजनोपशोभिता समदगजघटापरिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसङ्गता मृग-

युगान्तस्य प्रदोषो रजनीमुख तस्य या सन्ध्या सायकालस्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—प्रनृत्ता नीलकण्ठा मयूरा यस्या सा तथा । सस्तै पल्लवै किसलयैररुणा चेति । पक्षे प्रनृत्तो नीलकण्ठो महादेवो यस्याम् । पल्लववदरुणा रक्ता चेत्यर्थ । अमृतेति । अमृताय सुधायै यन्मथन विलोडनम् । क्षीरसमुद्रस्येति शेष । तत्र वेलाम्भसो वृद्धि समयो वा । तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—श्रीति । श्रीद्रुमा श्रीवृक्षास्तैरुपशोभिता वरणाना वृक्षविशेषाणा समूहो वारण तेन परि सामस्त्येन गता प्राप्ता चेत्यर्थ । पक्षे श्रीद्रुमौ लक्ष्मीकल्पद्रुमो ताभ्यामुपशोभिता, वरणस्येद वारण मद्य तेन परिगता सहिता च । समुद्रप्रभवत्वात्तस्येति भाव । प्रावृड्वर्षास्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—घनेति । घन निबिड श्यामला । अत्यन्तकृष्णेत्यर्थ । अनेक सख्याका ये ह्रदा ग्रहा (?) तैरलङ्कृता च । पक्षे घनैर्मेघै श्यामला अनेका भिन्नाभिन्नस्वरूपा शतह्रदा जलबालिकास्ताभिरलङ्कृता चेति विग्रह । चन्द्रस्य कुमुदबान्धवस्य मूर्तिरिव । शरीरमिव उभयो साम्यमाह—सततेति । ऋक्षा भल्लूकास्तेषा सार्थ समुदायस्तेनानुगता तथा हरिणैर्मृगैरध्यासिताश्रिता च । पक्षे सतत निरन्तरमृक्षाणि नक्षत्राणि तेषा सार्थ समुदायस्तेनानु गता सहानुयाता हरिणेन मृगेणाध्यासिता च राज्यस्थिती राज्यमर्यादा सेव । उभयो साम्यमाह-चमरेति । चमराश्चमर्य, मृगा हरिणा, बालव्यजनानि चामराणि, तैरुपशोभिता सह मदेन वर्तमाना समदा ये गजा हस्तिनस्तेषा घटा समुदायास्ते परिपालिता यया सा । अथ च तादृशी राज्यस्थितिरित्युभयो साम्यम् । गिरीति । गिरेर्हिमाचलस्य तनया पार्वती तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—स्थाण्विति । स्थाणव कीलका सङ्गता प्राप्ता यया सा, मृगपतय सिहास्ते

तथा (पारिजात) वृक्ष से सुशोभित और वारुणी अर्थात् शराब से युक्त होता है वह जगल भी पत्ती अर्थात् बिल्व तथा अश्वत्थ वृक्षों से और वारुणी[1] अर्थात् दूब से घिरा हुआ है। बादलों से अन्धकारयुक्त बनी हुई तथा बहुत सी विद्युत् दीप्तियों (काधो) से सुशोभित वर्षाऋतु की भाति वह जगल भी अत्यन्त काला (अथवा बादलों से अन्धकारयुक्त) तथा कई सौ गहरे तालाबों से युक्त है। निरन्तर नक्षत्रो के पुजों (ऋक्षसार्थ) से अनुपम तथा हरिण से बसे हुए (हरिण के चिन्ह से युक्त) चन्द्रमडल की भाति वह जगल भी निरन्तर ऋक्ष अर्थात् भालुओं की टोलिया मे अनुगम्यमान तथा हरिणो से बसा हुआ है। चमर हरिण के बालो से निर्मित पखे से युक्त अर्थात् चॅवर जिसके एक अग होते हैं ऐसे तथा मदयुक्त हाथियों के समूह से परिरक्षित राजसी ठाटबाट की भाति वह जगल भी चमर हरिण की पखे जैसी बालों वाली पूछो से सुशोभित तथा मदमस्त हाथियो के खेड़ो से भरा हुआ है। स्थाणु अर्थात् महादेव से सयुक्त तथा सिंह द्वारा सेवित पार्वती की भाति वह जगल

१ वारुणी का अर्थ पश्चिम दिशा भी है—जंगल भारत की पश्चिम दिशा तक फैला हुआ था इस कारण पश्चिम दिशा से परिगत था।

पतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दन-मृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरागुरुतिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिल-वीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता गण्डकाभरणा च,

---

सेविता आश्रिता यया सेति। विग्रहपक्षे स्थाणुर्महादेवस्तेन सङ्गता मिलिता तथा मूर्तिमान्सिहो मृगपतिस्तेन सेविता। सिंहवाहनत्वादिति भाव। **जानकीति**। जानकी सीता तद्वदिव। उभयो साम्यमाह—**प्रसूतेति**। प्रसूता कुशाना दर्भाणा लवा यया सा निशाचरैरुलूकादिभि परिगृहीता स्वीकृता। पक्षे प्रसूतौ जनितौ कुशलवाभिधानौ सुतौ यया सा, निशाचरेण रावणेन परिगृहीता। स्वस्थानं नीतेत्यर्थं। **कामिनीति**। कामिनी श्रृङ्गारनायिका सेव। उभयो सादृश्यमाह—**चन्दनमिति**। चन्दन वृक्षो, मृगमदो गन्धधूली तयो ससर्गाद्य परिमलस्त वहतीति सा तथा रुचिरो योऽगुरुवृक्षस्तथा तिलकवृक्षश्च ताभ्या भूषिता शोभिता चेति। पक्षे चन्दन च मृगमदश्च तयोरनुलेपनवशात्परिमलस्त वहतीत्येवशीला। रुचिरस्य शोभनस्यागुरो काकतुण्डस्य तिलकेन पुड्रेण भूषिता शोभिता चेति विग्रह। **सेति**। प्रियोत्कण्ठया व्रजति या नारी सोत्कण्ठिता तद्वदिव। उभयो सादृश्यमाह—**विविधेति**। विविधा अनेकप्रकारा ये पल्लवास्तेषामनिलो वायुस्तेन वीजिता तथा मदनेन मदनद्रुमेण सह वर्तमाना। सयुक्तेत्यर्थं। पक्षे सह मदनेन कन्दर्पेण वर्तमाना समदना सा। उत्कण्ठिता स्त्र्यपि तथा। **बालेति**। बाला स्तनन्धयास्तेषा ग्रीवा कन्धरा तद्वदिव। उभयोरेकधर्मतामाह—**व्याघ्रेति**। व्याघ्रा शार्दूला नखा सुरभिनख-प्राणिनस्तेषा पङ्क्ति श्रेणी तया मण्डिता शोभिता तथा गण्डका वार्ध्रीणसास्त एवाभरणं यस्या सेति। पक्षे व्याघ्रनखपङ्क्तया मण्डिता। अतएव 'शार्दूलदिव्यनखभूषणभूषिताय नन्दात्मजाय' इति। बालरक्षार्थं व्याघ्रनखा बध्यन्त इति प्रसिद्धि। गण्डस्थलपर्यन्तवर्ति यत्तादृश ग्रीवास्थ भूषण

भी वृक्षों के ठूठों (स्थाणुओ) से युक्त और सिंहों से भरा हुआ है। जिसने कुश तथा लव (नाम के अपने दो पुत्रो) को जन्म दिया था तथा जो राक्षस (रावण) द्वारा पकड़ी गयी थी, उस सीता की भाति उस जगल ने भी कुशा काश की मात्राओं को उत्पन्न किया हुआ है तथा रात्रि में विचरण करने वाले पशुओं द्वारा पद दलित रहता है। चन्दन तथा कस्तूरी की सुगन्ध को धारण किये हुई और (मस्तक पर लगाये हुए) आकर्षक अगरू के तिलक से अलकृत सुन्दर स्त्री की भाति वह जगल भी चन्दन तथा केसर की सुगन्ध से सुगन्धित तथा उत्तम अगरू और चन्दन के वृक्षों से शोभायमान रहता है। (असन्तुष्ट) लालसा से परिपूर्ण नारी पर विविध प्रकार के (परो की भाति प्रयुक्त) पत्तों से पखा झल जाता है और वह प्रेम से युक्त होती है—उसी नारी की भाति उस जगल मे भी विविध प्रकार के पत्तों से बहती वायु द्वारा पखा झला जाता है। और वह 'मदन' नाम के वृक्षों से युक्त है। व्याघ्र के नखो के (बने) आभूषणों की पक्ति से सुशोभित और 'गण्डक' आभूषण से युक्त बालक की गर्दन के समान वह जगल भी व्याघ्र क पजो की छाप से मडित और

पानभूमिरिव प्रकटितमधुकोशकशता प्रकीर्णविविधकुसुमा च, क्वचित्प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्तविवाहभूमिरिव हरितकुशसमित्कुसुमशमीपलाशशोभिता, क्वचिदुद्वृत्तमृगपतिनादभीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुलकल-

---

देशविशेषे गण्डकमिति प्रसिद्धं तदाभरणं यस्यां सा। पानेति। मद्यपानार्थं या भूमि सा पानभूमिस्तद्वदिव। उभयत्र साम्यमाह—प्रकटितेति। प्रकटितमाविष्कृत यन्मधु माक्षिक कोशा एव कोशका पट्टसूत्रस्थानानि तेषा शत यस्या सा। पक्षे प्रकटित मधु मद्य तस्य कोशकानि पानपात्राणि तेषां शत ययेति विग्रह। प्रकीर्णानि पर्यस्तानि विविधानि विचित्राणि कुसुमानि यस्यामित्युभयत्र समानम्। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशे यदा सर्वं जलमय तदा प्रलयस्तस्य वेलावसरस्तद्वदिव। 'वेला वारादवसर' इति कोश। उभयो सादृश्यमाह—महेति। महावराहा क्रोडास्तेषा दंष्ट्रा दाढास्ताभि समुत्खात सम्यक्प्रकारेण खनित धरणिमण्डल पृथ्वीप्रदेशो यस्या सा तथा। पक्षे महावराहस्य परमेश्वरतृतीयावताररूपस्य दंष्ट्रया समुत्खातमूर्ध्वमानीत धरणिमण्डल यस्यामिति विग्रह। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशे दशमुखस्य रावणस्य नगरी लङ्का तद्वदिव। उभयत्र साम्यमाह—चटुलेति। चटुलाश्चञ्चला ये वानरा कपयस्तेषा वृन्द समूहस्तेन भज्यमानास्त्रोट्यमानास्तुङ्गा उच्चा शाला शालवृक्षास्तैराकुला व्याकुला। पक्षे कपिवृन्देन भज्यमानास्तुङ्गा या शाला गृहैकदेशास्ताभिराकुला व्यग्रेति विग्रह। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशेऽचिर तत्काल निर्वृत्तो निष्पन्नो विवाह पाणिपीडन यस्यामेवविधा भूमिस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—हरितेति। यथायोग्यमन्वय। हरिता नीला ये कुशा

गेड़ों से आभूषित है सैकड़ों मधुपान पात्र जिसमें प्रदर्शित रहते हैं तथा विविध प्रकार के फूल जिससे फैले रहते हैं उस मधुशाला की भाति उस जगल में भी सैकड़ों मधु छत्ते प्रदर्शित रहते हैं तथा नाना प्रकार के फूल बिखरे रहते हैं। कहीं तो वह जगल बड़े बड़े सूअरो द्वारा अपनी दाढ़ों से खोदी हुई भूमि वाला होने से उस प्रलयकाल सा प्रतीत होता है जिसमे (अवतारी) महावराह अपनी दाढ से भूमण्डल को ऊपर उठा लेता है। कहीं-कहीं चञ्चल बन्दरों की भीड़ द्वारा तोड़ी जाती हुई शाखाओं वाले ऊँचे शाल वृक्षों से युक्त वह जगल दसमुँहे रावण की लका नगरी सरीखा दिखायी देता है, लका नगरी भी चञ्चल बन्दरों द्वारा नष्ट किये जाते ऊँचे भवनों के कारण आपत्तिग्रस्त हो गयी थी। उस जगल का कोई-कोई भाग हरी दूब, (होमार्थ) समिधाओं, फूलों और शमीपत्रोसे सुशोभित रहा है—कारण अभी-अभी सम्पन्न हुए विवाह की ऐसी ही वेदी-सा प्रतीत होता है। वह जगल कहीं-कहीं काटों से युक्त होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि उद्धत सिंह की गर्जना से डर कर उसके रोंगटे खड़े हो गये हों। कहीं कहीं वह कोयलो की झुडों की कूकू ध्वनि से कोलाहलयुक्त है। अथवा कोयलों की सी मधुर ध्वनि से युक्त हुआ मदमस्त सा प्रतीत

प्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा, क्वचिद्विधवेवोन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित्समरभूमिरिव शरशतनिचिता, क्वचिदमरपतितनुरिव नेत्रसहस्रसङ्कुला, क्वचिन्नारायणमूर्तिरिव तमालनीला, क्वचित्पार्थरथपताकेव कप्याक्रान्ता, क्वचिदवनिपतिद्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुःप्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव कीचकशताकुला, क्वचिदम्बर-

---

दर्भा, समिध एधासि, कुसुमानि पुष्पाणि, शमी शिवा, पलाशा ब्रह्मपादपास्तै शोभिता विराजमाना। उद्वाहभूमिरप्येतादृशी स्यादित्युभयो साम्यम्। क्वचिदिति। उद्वृत्तो निर्मर्यादो यो मृगपति सिहस्तस्य नादो गर्जित तेन भीतेव। कण्टको रोमाञ्च सञ्जातोऽस्या इति कण्टकिता। द्वितीयपक्षे कण्टकिता कण्टकयुक्ता। क्वचिदिति। क्वेति पूर्ववत्। मधुना मत्तेव कोकिलाना परभृताना कुलानि तेषा कलशब्दरूप प्रलापो यस्याम्। अथ च 'प्रलापोऽनर्थक वच' क्वचिदिति। उन्मत्तेवोन्मादवातयुक्तेव वायुवेगेन पवनाधिक्येन कृतो विहितस्तालवृक्षै शब्दो यस्या सा। उन्मादवातवानपि ताल शब्द करोतीति लोकप्रसिद्धम्। क्वचिदिति। विधवेव मृतभर्तृकेव। उभयो शब्दसाम्यमाह—उन्मुक्तेति। उन्मुक्तानि त्यक्तानि तालपत्राणि तालदलानि यस्या सा। पक्ष उन्मुक्तानि तालपत्राणि ताडङ्का ययेति विग्रह। क्वचिदिति। समर सङ्ग्रामस्तस्य भूमिरिव। उभयोस्तुल्यतामाह—शरेति। शरा मुञ्जदण्डास्तेषा शत तेन निचिता व्याप्ता पक्षे शरा बाणास्तेषा शतैर्निचितेति विग्रह। क्वचिदिति। अमराणा देवाना पति प्रभुरिन्द्रस्तस्य तनुरिव शरीरमिव। उभयो साम्यमाह—नेत्रेति। नेत्राणा वृक्षविशेषाणा सहस्र तेन सङ्कुला। यद्वा। नेत्राणा जटाना सहस्र तेन सङ्कुला। 'जटाशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमर। पक्षे नेत्राणा चक्षुषा सहस्र तेन सङ्कुलेति विग्रह। क्वचिदिति। नारायणस्य कृष्णस्य मूर्तिरिव शरीरमिव। उभयो साम्यमाह—तमालेति। तमालैर्वृक्षविशेषैर्नीला। पक्षे तमालवन्नीला। क्वचिदिति। पार्थोऽर्जुनस्तस्य रथ स्यन्दनस्तस्य पताका

होता है। कहीं कहीं इसमें वायु के वेग द्वारा तालवृक्षों का शब्द होता रहता है, इस कारण वह उस पागल सरीखा प्रतीत होता है कि जो वायुवेग अर्थात् उन्माद के वशीभूत होकर (हाथों द्वारा) ताल (दे-देकर) शब्द कर रहा हो। कहीं कहीं वह जगल बिखरे हुए ताल के पत्तोंवाला हुआ उस विधवा सा लगता है जिसने 'तालपत्र' नाम के आभूषण को छोड़ रखा हो। कहीं वह जगल सैकड़ों बाणो से पटी युद्धभूमि है कहीं कहीं वह जगल हजारो 'नेत्र' नाम के वृक्षों से भरा ऐसा प्रतीत होता था कि मानो सहस्रो नेत्रों से युक्त इन्द्र का शरीर हो। कहीं कहीं वह जगल तमालवृक्षों से काला हुआ तमाल वृक्ष सरीखे दरसने मे श्याम रग विष्णु-शरीर के समान दिखायी देता है। वह जगल कहीं कहीं बन्दरों से भरा रहने के कारण कपि (हनुमान) से अधिष्ठित अर्जुनरथ के ध्वज सा प्रतीत होता है। कहीं कहीं (वहाँ उगी हुई) बेंत की सैकड़ों लताओं द्वारा अगम्य बना हुआ वह जगल (अवाछित व्यक्तियों के प्रवेश को रोकने के लिये द्वारपालो द्वारा उठायी हुई) सैकड़ों बेतों द्वारा अगम्य बने हुए राजभवन के आगन के सदृश है। कहीं सैकड़ों बाँसो से भरा वह जगल, सैकड़ों

श्रीरिव व्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा, क्वचिद् गृहीतव्रतेव दर्भचीरजटावल्कलधारिणी, अपरिमितबहलपत्रसञ्चयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम ।

वैजयन्ती सेव । उभयोस्तुल्यतामाह—कपीति । कपिभिर्गोलाङ्गूलैराक्रान्ता । पक्षे कपिचिह्नोपयुक्तेत्यर्थं । क्वचिदिति । अवनिपती राजा तस्य द्वारभूमिरिव । उभयो सादृश्यमाह—वेत्रेति । वेत्राणि वृक्षविशेषा लता वल्लयश्च तासा शत तेन दु प्रवेशा दु खेन प्रवेष्टु शक्या । पक्षे वेत्रलता वेत्रयष्टि सरलत्वाल्लतोपमानम् । ताभिर्दु प्रवेशेत्यर्थं । क्वचिदिति । क्वचित्प्रदेशे विराटराजनगरी तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—कीचकेति । कीचका सच्छिद्रवेणवस्तैराकुला । पक्षे कीचकाना स्वप्रियाबान्धवाना शत तेनाकुला व्यग्रा । क्वचिदिति । अम्बरमाकाश तस्य श्रीरिव । उभयसादृश्यमाह—व्याधेति । व्याधैरनुगम्यमानास्तरला भयविह्वलास्तारकमृगा विचित्रमृगा यस्या सा । पक्षे व्याधेनानुगम्यमानस्तरलतारकामृगश्चन्द्रनक्षत्र यस्यामिति विग्रह । महादेवेन व्याघ्ररूपधारिणा हत तस्यार्ध मृगनक्षत्रमिति प्रसिद्धम् । क्वचिदिति । गृहीतेति । गृहीतमात्त व्रत नियमो यया सैरंध्रीव । उभयतुल्यतामाह—दर्भेति । दर्भा कुशा , चीराणि तृणविशेषाणि, जटा शिफा, वल्कलानि चोचानि, एतानि धर्तु शीलमस्या सा तथा । पक्षे दर्भचीराणि पूर्वोक्तानि, जटा सहता कचा । 'शिफाजटे सहतै कचौ' इत्यनेकार्थं । वल्कलानि प्रतीतानि तेषा धारण विद्यते यस्या इति विग्रह । अपरीति । अपरिमितान्यगणितानि बहलानि निबिडानि पत्राणि पर्णानि धारण तेषा सञ्चय समूहो यस्यामेवभूतापि सप्तपर्णोपशोभितेति विरोध । तत्परिहारपक्षे सप्तपर्णोऽयुक्छदस्तेन शोभायमानेत्यर्थं । क्रूरेति । क्रूर सत्त्व मनो यस्या सैवविधापि मुनिजनसेवितेति विरोध । 'सत्त्व द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयो ' इत्यनेकार्थ. । तत्परिहारपक्षे क्रूरा हिस्रा सत्त्वा प्राणिनो यस्यामिति विग्रह । मुनिजनतपोमाहात्म्यात्क्रूरा अक्रूरता गता इत्यत्र व्यङ्ग्यम् । पुष्पवतीति । पुष्पवत्यार्तववत्यपि पवित्रेति विरोध । तत्परिहारपक्षे पुष्प सून विद्यते यस्यामिति विग्रह ।

कीचको (अर्थात् योद्धाओ) से भरी विराट नगरी सा प्रतीत होता है। कहीं कहीं वह जगल आकाश की शोभा अथवा सुन्दर आकाश सरीखा है, आकाश मे व्याध नाम के नक्षत्र से अनुगम्यमान टिमटिमाते तारों से युक्त मृगशिरा नाम का नक्षत्र मडल रहता है तो इस जगल मे व्याधों अर्थात् शिकारियों द्वारा पीछे किये गये, तथा इसीलिये (भय से) कापती पुतलियों वाले हिरण रहते है। उस जगल में कहीं कहीं कुशा, चीर, रेशेदार जडे तथा छाले हैं—इस कारण वह कुशा घास के बुने हुए चिथड़ो जटाओ तथा छाल के वस्त्रों को पहने हुई तपस्विनी स्त्री सा प्रतीत होता है। वहाँ उस जगल मे यद्यपि अपरिमित घने पत्ते एकत्रित थे, तथा वह सातपत्तो से ही, नहीं नहीं सप्तपद नाम के वृक्षों से सुशोभित था। वह अटवी पुष्पवती-ऋतुमती (?) नहीं नहीं, फूलों से युक्त—थी तो भी पवित्र थी।

तस्यां च दण्डकारण्यान्तःपाति, सकलभुवनविख्यातम्, उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्मस्य सुरपतिप्रार्थनापीतसकलसागरजलस्य, मेरुमत्सराद्गगनतलप्रसारितविकटशिरःसहस्रेण दिवसकररथगमनपथमपनेतुमभ्युद्यतेनावगणितसकलसुरवचसा विन्ध्यगिरिणाप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य, जठरानलजीर्णवातापिदानवस्य, सुरासुरमुकुटमकरपत्रकोटिचुम्बितचरणरजसो दक्षिणामुखविशेषकस्य, सुरलोकादेकहुंकारनिपातितनहुषप्रकटप्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य भार्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः

तस्यां चेति। तस्यां विन्ध्याटव्यामगस्त्यस्य मुनेर्वातापिद्विष आश्रमपदं मुनिस्थानमासीदित्यन्वयः। इत आश्रमविशेषणानि। दण्डकेति। दण्डकारण्यं सह्याद्रिसम्बन्धि काननं तदन्तःपाति। तदन्तर्वर्तीत्यर्थः। सकलेति। सकलानि समग्राणि यानि भुवनानि विष्टपानि तेषु विख्यातं प्रसिद्धम्। उदिति। भगवतो माहात्म्यवतो धर्मस्य श्रेयस उत्पत्तिक्षेत्रमिव प्रभवस्थानमिव। इतो मुनिं विशिनष्टि—सुरेति। सुरपतिरिन्द्रस्तस्य प्रार्थना याचना तया पीतं चुलुकीकृतं सकलसागरस्य समग्रसमुद्रस्य जलं पानीयं येन स तथा तस्य। विन्ध्येति। विन्ध्यगिरिणापि जलबालकाद्रिणाप्यनुल्लङ्घिता नातिक्रान्ताज्ञा शिष्टिर्यस्य स तथा तस्य। अथ विन्ध्यगिरिं विशिनष्टि—मेरुमत्सरादिति। मेरोः सुवर्णाद्रेर्मत्सरान्मात्सर्याद्गगनतलं आकाशतले प्रसारितानि विस्तारितानि विकटानि विपुलानि यानि शिरांसि तेषां सहस्रं येन स तथा तेन। दिवसेति। दिवसकरः सूर्यस्तस्य रथः स्यन्दनस्तस्य या गतिर्गमनं तस्याः पन्थाः। 'ऋक्पूरब्धूः—' इत्यच्। तमपनेतुं दूरीकर्तुमभ्युद्यतेन प्रयतमानेन। अवेति। अवगणितान्यनादृतानि सकलानि समग्राणि सुराणां देवानां वचांसि वाक्यानि येन स तथा तेन। अथ मुनिं विशेषयन्नाह—जठरेति। जठरानलेनोदराग्निना जीर्णोऽन्तस्तिरोहितो वातापिदानवो तेन स तथा तस्य। सुराः देवा असुरा दानवास्तेषां मुकुटाः किरीटानि तेषु मकरपत्रं मकराकारः पक्षः। 'पत्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः। तस्य कोटिरग्रं तया चुम्बितं गृहीतं चरणरजोऽङ्घ्रिरेणुर्यस्य स तथा तस्य। दक्षिणेति। दक्षिणा अवाची तस्या मुखमाननं तस्मिन्विशेषकस्तिलकं तस्य। 'चित्रपुण्ड्रविशेषकाः'

इस विन्ध्य नाम के जंगल में, दण्डक नामक वन की सीमाओं के भीतर विद्यमान, महर्षि अगस्त्य का आश्रम था। वह आश्रम सारे संसार में प्रसिद्ध था, भगवान् धर्म का तो मानो जन्मस्थान ही था, देवताधिपति इन्द्र की प्रार्थना से समुद्र के सारे जल को पी जाने वाले, मेरु की ईर्ष्या से सारे आकाश में अपनी सहस्रों चोटियों को फैलाये हुए और इस प्रकार सूर्य के रथ के मार्ग को रोक खड़े हुए-से, (ऐसा न करने के) देवताओं के अनुरोध को भी टाल देने वाले विन्ध्य पर्वत द्वारा भी जिसके आदेश का उल्लंघन नहीं किया था, जिसने अपने उदर में स्थित अग्निद्वारा वातापि नाम के राक्षस को पचा लिया था, देवताओं तथा राक्षसों के मुकुटों पर खुदी मत्स्याकृतियों के धातुपत्रों के किनारों द्वारा जिसके पाँवों की धूलि छूई जाती थी, जो दक्षिण प्रदेश (की किसी महिला के) चेहरे का तिलक ही था; और (उसद्वारा) देवलोक से (केवल) एक ही हुंकार में गिराये गये नहुषद्वारा जिसका प्रताप प्रकट हो गया था उस भगवान् महामुनि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने अपने आप

करपुटसलिलसेकसंवर्धितैः सुतनिर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्रभस्मविरचितत्रिपुण्ड्रकाभरणेन कुशचीवरवाससा मौञ्जमेखलाकलितमध्येन गृहीतहरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृतपरिसर, सरिता च कलशयोनिपरिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत् ।

इति कोश । सुरेति । सुरलोकादेकहुकारेणैकहुकृतिमात्रेण निपातितो भ्रंशितो यो नहुषो राजा तेन प्रकट स्पष्ट प्रभावो यस्य स तथा तस्य भगवतो माहात्म्यवत । महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिस्तस्योत्कृष्टमननशीलस्य । पुन कीदृशम् । पादपैर्वृक्षैरुपशोभितम् । अथ पादपान्विशिनष्टि—अगस्त्येति । अगस्त्यस्य भार्यया पत्न्या लोपामुद्रया स्वयमात्मनोपरचितमालवालकमावापो येषा ते तथा तै । करेति । करा एव पुटानि तैर्यं सलिलस्य जलस्य सेक सिञ्चनं तेन संवर्धितैर्वृद्धि प्रापितैरत एव सुतेभ्य सूनुभ्यो निर्गतो विशेषो येभ्यस्ते तथा ते । तत्पुत्रेण दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम् । अथ तत्पुत्र विशिनष्टि—पालाशो दण्ड आषाढ । स विद्यते यस्यासा स तेन । पवित्र यद्भस्म तेन विरचित निर्मितम् त्रयाणा पुण्ड्रकाणा समाहारस्त्रिपुण्ड्रक तिलकविशेषस्तदेवाभरणमलकारो येन स तथा तेन । कुशेति । कुशा एव चीवर वासो यस्य स तेन । मौञ्जेति । मुञ्ज शरस्तन्मयबन्धिनी या मेखला तया कलितो व्याप्तो मध्यो मध्यप्रदेशो यस्य स तथा तेन । गृहीतेति । गृहीतमात्त हरित नील पर्णपुट पत्रपुट येन स तथा तेन । कि कुर्वता उटजमुटज प्रति प्रत्युजट भिक्षार्थमटता पर्यटन कुर्वता । 'पर्णशालोटज' इति कोश । 'अकथितम्' इत्यनेन भिक्षामिति द्वितीया । च पुनरर्थे । यस्य दृढदस्युनाम्न पितागस्त्य इध्मवाह इत्यन्वर्थ द्वितीय नाम चकार निर्ममे । कस्मात् । अतीति । अतिप्रभूता य इध्मान-

---

ही जिनके आल्वाल बनाये थे और (जिनको) स्वय अजलियो से पानी दे देकर बढाया था, तथा जो उसके लिये अपने पुत्रो से भिन्न नहीं थे (अर्थात् उसके अपने पुत्र ही थे)—ऐसे वृक्षों से सुशोभित था, और वह आश्रम अगस्त्य ऋषि के, (ब्रह्मचर्य) व्रतधारी, पलाशदण्डधारी, पवित्र भस्म से बनाये गये त्रिपुण्ड्रक से सुशोभित कुशाओं से निर्मित वस्त्रों के पहने हुए मूज की मेखला से सुशोभित कटिभाग वाले, हरे पत्तों का दोना लिये हुए प्रत्येक कुटिया (के द्वार) पर भिक्षा के लिये फिरते तथा बहुत अधिक समिधाएँ लाने के कारण पिता ने जिसका दूसरा नाम इध्मवाह रख दिया था उस दृढदस्यु नाम के पुत्र से पवित्र किया हुआ था, उसके प्रान्तभाग प्रत्येक दिशा मे शुकों सरीखे हरे केले के वृक्षों से अन्धकार युक्त थे और उस आश्रम को एक चोटी बाधे हुई[१] उस कलशोत्पन्न ऋषि (अगस्त्य) द्वारा पिये गये जलवाले (अपने स्वामी) सागर का अनुगमन करती हुई सी प्रतीत होती एक सतत प्रवाह में बहती गोदावरी नदी ने चारों ओर से घेरा हुआ था।

---

१ वियोगिनी स्त्री एक ही चोटी करती है—ऐसा प्रसिद्ध है ।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्सह सीतया लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशालः पञ्चवट्या कंचित्कालं सुखमुवास। चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीननिभृतपाण्डुकपोत-पंक्तयोऽमललग्नतापसाग्निहोत्रधूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः। बलिकर्मकुसुमान्युद्ध-रन्त्याः सीतायाः करतलादिव सङ्क्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधिजलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु।

स्तेषामाहरणादानयनात्। दिशीति। दिशि दिशि प्रत्येकदिशि शुकवद्धरितैर्नीलै कदलीवनै रम्भाकाननै श्यामलीकृत कृष्णीकृत परिसर पर्यन्तभूर्यस्य तत्तथा तम्। गोदावर्येति। गोदावर्या सरिता परिगत परिप्राप्तम्। अथ गोदावरी विशेषयन्नाह—कलशेति। कलश-योनिरगस्त्यस्तेन परिपीतश्चुलुकीकृतो य सागर समुद्रस्तस्य मार्गं पन्थास्तमनुगतयेवानु-सृतयेव। वेणीति। वेण्येव वेणिका। बद्धा वेणिका यया सा तथा। 'वेणी धारारयश्च' इति कोश।

यत्र चेति। यत्र यस्मिन्नाश्रमपदे दशरथनन्दनो नाम रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्ननु-गच्छन्कंचित्काल पञ्चवट्या जनस्थाने सीतया जानक्या सह सुख यथा स्यात्तथोवास वसति चक्रे। किं कुर्वन्। दशरथस्य राज्ञो वचनमाज्ञामनुपालयन्यथा निर्दिष्ट तथैव समाचरन्। इतो राम विशेषयन्नाह—उत्सृष्टेति। उत्सृष्ट त्यक्त राज्य येन स तथा। दशेति। दशवदनस्य दशाननस्य या लक्ष्मी' श्रीस्तस्या विभ्रमो विलासस्तस्य विरामोऽवसान यस्मात्स तथा। लक्ष्मण इति। लक्ष्मणेन सौमित्रिणोपरचिता कृता रुचिरा मनोहरा पर्णशालोटजो यस्मै स तथा। अथ च यत्र यस्मिन्नाश्रमपदे चिरकालशून्येऽद्याप्येतत्कालपर्यन्त तरवो लक्ष्यन्ते दृश्यन्त इत्यन्वय। इत. पादपान्विशेषयन्नाह—शाखेति। शाखासु शालासु निलीना संलग्ना निभृत-मत्यर्थं पाण्डव श्वेता ये कपोता रक्तलोचनास्तेषा पङ्क्तय. श्रेणयो येषु ते तथा। कीदृशा इव।

और जहाँ, पञ्चवटी प्रदेश मे, (अपने पिता) दशरथ की प्रतिज्ञा का अनुयायी रहता हुआ (अथवा उसके आदेश का पालन करता हुआ) राज्य को छोड़े हुआ, (आगे चल कर) रावण की राज्यलक्ष्मी की क्रीड़ाओं को रोक देने वाला राम, महामुनि अगस्त्य की सेवा करता हुआ लक्ष्मण द्वारा बनायी गयी पर्णकुटी वाला सीतासहित कुछ समय तक रहा था। देर से (निर्जन) खाली हुए भी जिस आश्रम में आज भी वृक्ष, (उनकी) शाखाओं मे छिपे निश्चल श्वेत कबूतरों की पक्तियों वाले ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो उनमें तपस्वियों के किये हुए अग्निहोत्रों के धूएँ की निर्मल पक्तियाँ लगी हुई हों। जहाँ बेलों की कोमल पत्तियों में लालिमा चमकती है मानो कि वह पूजा के लिये फूलों को चुनती हुई सीता की हथेली से ही स्थानान्तरित हो गयी हो। और जहाँ (अगस्त्य) मुनि ने, पीकर उगले हुए समुद्रजल को ही, मानो सारे के सारे ही को, आश्रम के समीपवर्ती बड़े तालाबों मे बाँट दिया था। और जहाँ दशरथपुत्र राम के पैने बाण समूह के गिरने से मरे राक्षसों

यत्र च दशरथसुतनिशितशरनिकरनिपातनिहतरजनीचरबलबहलरुधिरसिक्तमूल-मद्यापि तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम्। अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवन-विवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्पकवलमजस्रमश्रुजललुलितदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो, जराजर्जरितविषाणकोटयो जानकीसवर्धिता जीर्णमृगाः।

अमला निर्मला लग्नास्तापसाना तपस्विना यदग्निहोत्रं तस्य धूमाना राजियेष्वेवभूता इव लक्ष्यन्ते। यत्र चेत्यस्य सर्वत्रानुषङ्ग। वलीति। बलिकर्मार्थं कुसुमान्युद्धरन्त्या पुष्पावचय कुर्वत्या सीताया जानक्या करतलादिव विनिर्गत सन्। लताकिसलयेषु सक्रान्तो राग स्फुरति स्फूर्तिमान्भवति। यत्र चेति। मुनिनागस्त्येन पूर्वं पीत पश्चादुद्गीर्णं च तन्निखिल जलनिधिजलमिवाश्रमोपान्तवर्तिषु महाह्रदेषु विभक्त दृश्यते। यत्र चेति। नवानि प्रत्यग्राणि किसलयानि यस्मिन्नेवभूतमरण्यमद्यापि आभाति शोभत इत्यन्वयः। तदेव विशिनष्टि—दशरथेति। दशरथस्य सुतो रामस्तस्य निशिता तीक्ष्णा ये शरास्तेषा य निकर समूहस्तस्य निपातेन निहता ये रजनीचरा राक्षसा पुण्यजनास्तेषा यद्बल सैन्य तत्सम्बन्धि यद्बहल विस्तृत रुधिर रक्त तेन सिक्त मूल यस्य। अतएवाद्यापि तद्रागेणाविद्धानि युक्तानि निर्गतानि पलाशपुष्पाणि यस्मिन्नेवंभूतमिव। अधुनापीति। साम्प्रतमपि यत्र यस्मिञ्जलधरसमये वर्षाकाले जीर्णमृगा वृद्धहरिणा शष्पं बालतृण तस्य कवल ग्रास न गृह्णन्ति नाददते। कीदृशा। अभीति। अभिनवा नूतना ये जलधरा मेघास्तेषा निवह समूहस्तस्य निनाद शब्दमाकर्ण्य श्रुत्वा रामस्य भगवत पूज्यस्य चापो धनुस्तस्य घोष शब्द स्मरन्त स्मृतिविषयी-कुर्वन्त। घोषस्येति स्मृतियोगे मातु स्मरतीतिवत्कर्मणि षष्ठी। अथ घोष विशेषयन्नाह—त्रिभुवनेति। त्रिभुवन विष्टप तस्य विवराणि छिद्राणि तानि व्याप्नोतीत्येवशील स तथा तस्य। कीदृशा मृगा। अजस्र निरन्तरमश्रुजलेन नेत्रजलेन लुलिता व्याकुलीभूता दृष्टयो नेत्राणि येषा ते तथा। किं कृत्वा। दश दिशो दश ककुभो वीक्ष्यावलोक्य। कीदृश्यो दिश। शून्या सजातीयप्राणिरहिता। मृगान्विशेषयन्नाह—जरेति। जरया वार्धक्येन जर्जरिता

की सेना के बहुत अधिक रक्त से सींची गयी जड़ों वाला नये पत्तों वाला वनप्रदेश आज भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें नये पत्ते उस लालरंग से ससिक्त होकर पूरे पूरे सतृप्त होकर ही आ रहे हो। और जिसमें अब भी बूढ़े हरिण—जिनको (पहले) सीता ने पाला था तथा जिनके सींगो की नोके अब बुढ़ापे से खुरदरी[1] हो चुकी है,—वर्षाऋतु में नये बादलों के गर्जन को सुनकर, भगवान् राम के जगद्भर में व्याप्त होने वाले धनुष शब्द को याद करते हुए तथा दसों दिशाओं को रिक्त (निर्जन देखकर), निरन्तर (बहते हुए) आसुओ से व्याकुल हुई ऑखों वाले, घास के ग्रास को नहीं निगलते हैं। यहाँ ही, सुवर्णमृग मानो

---

१. जर्जरित=टूटे-फूटे हुए।

यस्मिन्ननवरतमृगयानिहतशेषवनहरिणप्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र च मैथिलीवियोगदुःखदुःखितौ रावणविनाशसूचकौ चन्द्रसूर्याविव कबन्धग्रस्तौ सम रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः। अत्यायतश्च यस्मिन्दशरथसुतबाणनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्यप्रसादेनागतनाहुषाजगरकायशङ्का चकार ऋषिगणस्य। जनकतनया च भर्त्रा विरहविनोदनार्थमुटजाभ्यन्तरलिखिता यत्र रामनिवासदर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीतलादुल्लसन्ती वनचरैरद्याप्यालोक्यते।

विशीर्णा विषाणकोटि शृङ्गाग्रप्रभागो येषा ते तथा। जानकीति। जानक्या सीतया सवर्धिता वृद्धि प्रापिता। यस्मिन्निति। यस्मिन्वने अनवरतं निरन्तर या मृगयाखेटस्तया निहता व्यापादितास्तेभ्य शेषा उद्वरिता एव ये वनहरिणास्तै प्रोत्साहित इवोत्साह प्रापित इव। कृतेति। कृतः सीताया विप्रलम्भो वियोगो विप्रतारणं वा येनैवंभूतोऽसौ कनकमृग सुवर्णमृगो रघोरपत्य राघवमतिदूर जहार हृतवान्। 'हृञ् हरणे' धातु। लिटि रूपम्। यत्र सममिति सहचरितौ रामलक्ष्मणौ महदुत्कृष्ट त्रिभुवनस्य विष्टपस्य भयमातङ्क चक्रतुर्विदधतु। कीदृशौ। मैथिलीति। मथिली जानकी तस्या वियोगेन विरहेण यद्दु ख तेन दु खितौ। पुनस्तावेव विशेषयन्नाह—कबन्ध इति। कबन्ध राहू राक्षसाधिपतिस्तेन ग्रस्तौ गृहीतौ। काविव। चन्द्रसूर्याविव पुष्पवन्ताविव। रावण इति। रावणस्य दशाननस्य यो विनाशस्तस्य सूचकौ ज्ञापकौ। अत्यायतश्चेति। अथ च यस्मिन्दशरथसुतो रामस्तस्य बाणैर्विशिखै. निपातित छिन्नो योजनबाहुनाम्नो दैत्यस्य बाहुर्भुजोऽत्यन्तमायतो विस्तृत सोऽगस्तिमुनेःप्रसादेन कोपेन आगत प्राप्तो नहुषस्य राज्ञोऽजगरस्य कायस्तस्य शङ्कामृषिगणस्य मुनिसमुदायस्य चकार विदधे। यत्र चेति। यस्मिञ्जनकतनया सीता भर्त्रा रामेण विरहस्य वियोगस्य विनोदन परिहारस्तदर्थमुटजस्य पर्णशालाया अभ्यन्तरे लिखिता लिपीकृता सा

लगातार शिकार द्वारा मारने से बचे जगली हरिणो द्वारा उकसाया हुआ ही, सीता को धोखा देकर अथवा सीता से वियुक्त करके राम को बहुत दूर भगा ले गया था। और यहाँ ही जब सीता—वियोग के दु:ख से दु खी राम तथा लक्ष्मण को कबन्ध राक्षस ने, तथा सूर्य को जैसे राहु ने ग्रस लिया था वैसे ही ग्रस लिया था तब उन्होंने तीनों भुवनों में महान् आतङ्क फैला दिया था और रावण के विनाश की भविष्यवाणी कर दी थी। और यहाँ ही रामचन्द्र द्वारा गिरायी गयी बहुत लम्बी-चौड़ी कबन्ध की बाहु ने ऋषियों के मन में यह भ्रम उत्पन्न कर दिया था कि कहीं अगस्त्य ऋषि को प्रसन्न करने के लिये अजगराकृति नहुष का शरीर ही तो वहाँ नहीं आ गया है। और जहाँ वनवासी लोग आज तक भी विरह (के दु ख) को परे रखने के लिये कुटिया के भीतर चित्रित सीता को ऐसे देख रहे हैं कि मानो वह राम के निवास स्थान को देखने के लिये उत्सुक हुई, फिर से पृथ्वी तल से, ऊपर आ रही है।

तस्य च संप्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाणपूर्ववृत्तान्तस्यागस्त्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधिपानप्रकुपितवरुणप्रोत्साहितेनागस्त्यमत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपर इव वेधसा जलनिधिरुत्पादितः प्रलयकालविघट्टिताष्टदिग्विभागसंधिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्, आदिवराहसमुद्धृतधरामण्डलस्थानमिव जलपूरितम्, अनवरतमज्जदुन्मदशबरकामिनीकुचकलशलुलितजलम्, उत्फुल्लकुमुदकुवलयकह्लारम्, उन्निद्रा-

---

रामस्य निवासो वसतिस्तस्य यद्दर्शनं तत्र उत्सुका उत्कण्ठिता। यथा पूर्वं धरणितलादुत्थिता तथैव पुनर्भूमितलादुल्लसन्ती वनचरभिल्लैरद्यापि साम्प्रतमप्यालोक्यते दृश्यते।

तस्य चेति। तस्य चागस्त्याश्रमस्य सम्प्रत्यपि इदानीमपि प्रकटोपलक्ष्यमाण स्पष्ट ज्ञायमान पूर्ववृत्तान्तो यस्य तस्य नातिदूरेऽगस्त्यमत्सरात्पीताब्धिमात्सर्याद्वेधसा तस्यागस्त्यस्याश्रमस्तस्य समीपवर्ती निकटवर्त्यपरोऽन्यो जलनिधिरिव जलाशय इव इत्यादित। कीदृशेन वेधसा। जलेति। जलनिधि समुद्रस्तस्य पान तेन प्रकुपित क्रोध प्राप्तो यो वरुण प्रचेतास्तेन प्रोत्साहितेन प्रगुणितेन। अथ चेति। यस्य पद्मसर पम्पेत्यभिधानमित्यनेनान्वय। इत सरो विशेषयन्नाह—प्रलयेति। प्रलयकाले कल्पान्ते विघट्टिता नष्टाग्रेऽष्टदिशामष्टककुभा विभागा प्रदेशास्तत्तत्पर्वतावधिकास्तेषा सधय सयोगास्तेषा बन्धा मर्यादा यस्मिन्नेवभूत भुवि भूमौ निपतित गगनतलमिव नभस्तलमिव। जलनेर्मल्यसादृश्यात्तदुपमानम्। जलेनेति। जलेन पानीयेन पूरित पूर्णमादिवराहेण तृतीयावतारेण वराहरूपेण सम्यक्प्रकारेणोद्धृत जलाद्बहिरानीत यद्धरामण्डल भूमिमण्डल तस्य स्थानमिव। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर मज्जन्त्य स्नान कुर्वन्त्यो या उन्मदा गर्वाधिष्ठिता शबराणा भिल्लाना कामिन्यस्तासा कुचौ तावेव कलशौ ताभ्या लुलितमालोडित जल पानीय यस्य तत्तथा। उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि विकसितानि कुमुदानि कैरवाणि कुवलयानि कुवेलानि कह्लाराणि सौगन्धिकानि यस्मिस्तथा। उन्निद्रेति। उन्निद्राणि विकसितानि यान्यरविन्दानि कमलानि तेषा

और जिसका पूर्व इतिहास आज तक भी (दिखने वाले को) स्पष्ट दिखायी दे रहा है उस अगस्त्याश्रम से थोड़ी ही दूर पर कमलो से भरा अज्ञात गहराई तथा विस्तार वाला, अनुपम तथा (अत्यन्त उत्कृष्ट प्रकार के) जल का भण्डार पम्पा नाम का कमलवन है। वह सरोवर, (अगस्त्य ऋषि द्वारा) जल पी जाने से कुछ वरुण द्वारा उकसाये हुए, अगस्त्य के प्रति ईर्ष्यालु हुए ब्रह्मा द्वारा उस आश्रमका समीपवर्ता दूसरा बनाया गया समुद्र सरीखा ही है। प्रल्यकालमें टूट गये है दिशाओंसे बॉधने वाले जोड़ जिसके ऐसा आकाश ही मानो वहाँ भूमिपर (उस सरोवरके रूपमें) गिर पड़ा था। आदि वराह अर्थात् वराह भगवान् द्वारा उठाये गये (खोद कर निकाले गये) भूमण्डल का स्थान ही मानो जल से भर गया था। (उसमें) निरन्तर डुबकियॉ लगातीं (फिर) ऊपर आतीं—निरन्तर स्नान करतीं—हर्षित शबर स्त्रियोंके स्तनरूपी घटों से—मासल स्तनों से उसका जल क्षुब्ध हो गया था। उसमें कुमुद, कुवल्य, कल्हार आदि (विविध प्रकार के कमल) खिलते थे। पूर्ण विकसित कमलों के चू रहे

रविन्दमधुद्रवबद्धचन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसितसमदसारसम्, अम्बुरुहमधुपानमत्तकलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्, अनेकजलचरपतङ्गशतसंचलनचलितवाचालवीचिमालम्, अनिलोल्लासितकल्लोलशिखरसीकरारब्धदुर्दिनम्, अशङ्किताक्तीर्णाभिरम्भःक्रीडारागिणीभिः स्नानसमये वनदेवताभि· केशपाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्णमुनिजनापूर्यमाणकमण्डलुकलजलध्वनिमनोहरम्, उन्मिषदुत्पलवनमध्यचारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः कादम्बैरासेवितम्,

---

मधुरसस्तस्य यो द्रव कल्कस्तस्य बद्धा मयूरपिच्छचन्द्राकारिण चन्द्रका यस्मिंस्तत्तथा। अलीति। अलीना भ्रमराणा यानि कुलानि तेषा पटल समूहस्तेनान्धकारितानि सजातान्धकाराणि सौगन्धिकानि कह्लाराणि यस्मिंस्तत्तथा। 'सौगन्धिक तु कह्लारम्' इति कोश। सारसितेति। सहारसितेन शब्दितेन वर्तमाना अतएव समदा मदोत्कटा सारसा पक्षिविशेषा यस्मिन्। अम्बुरुहेति। अम्बुरुहाणि कमलानि तेषा यन्मधु तस्य पान तेन मत्ता कलहसकामिन्यो वरटास्ताभि कृत कोलाहलो यस्मिन्। अनेकेति। अनेके सहस्रशो ये जलचरा नक्रचक्रादय पतङ्गा पक्षिणस्तेषा यच्छत तस्य सचलन गमन तेन चलिता क्षोभ प्राप्ता वाचाला मुखरा वीचयो लहर्यस्तासा माला श्रेण्यो यस्मिन्। अनिलेति। अनिलेन वायुनोल्लासिता उल्लास प्रापिता ये कल्लोला लहर्यस्त एवोन्नत्वाच्छिखराणि तेषा सीकरैरम्बुकणैरारब्ध विहित दुर्दिन मेघज तमो यस्मिन्। स्नानेति। स्नानसमय आप्लवक्षणे वनदेवताभिर्वनाधिष्ठात्रीभिः केशपाश केशकलापस्तस्य कुसुमानि प्रसवानि तै सुरभीकृत सौगन्ध्यमापादितम्। कुसुमैरित्यत्र क्रियासिद्ध्युपकारकत्वेन करणे तृतीया। इतो वनदेवता विशेषयन्नाह—अशङ्कितेति। शङ्कारहित यथा स्यात्तथावतीर्णाभिरन्त प्रविष्टाभि। शङ्काराहित्य च प्रेक्षकजनाभावात्। अम्भ क्रीडाया जलक्रीडाया रागो यासा ताभि। पुनस्तदेव विशेषयन्नाह—एकदेशेति। एकदेश एकभागस्तत्रावतीर्णोऽन्त प्रविष्टो यो मुनिजनस्तेनापूर्यमाणानि जलेन भ्रियमाणानि यानि कमण्डलूनि

मधु की बिन्दुओंसे उसमें मोर के पखों पर की सी चन्द्रिकाएँ बनी हुई थीं। उसमें सौगन्धिक कमल (उन पर बैठे हुए) भौंरों के झुडोंसे काले दिखायी दे रहे थे। वहाँ मत्त सारस शब्दायमान थे। कमलो के रस को पी लेने के कारण मदमत्त हुई हसनियाँ वहाँ शोर कर रही थीं। सैकड़ो प्रकार के अनेक जलचर पक्षियो के इधर-उधर फिरने से उसकी बड़ी बड़ी लहरों की पंक्तियाँ शोर करती उढक रही थीं। वायु द्वारा उछाली गयीं बड़ी लहरों की चोटियों से बिखरे जल कणोने वहाँ वर्षा प्रारम्भ कर रखी थी। जल क्रीडा से अनुराग रखनेवाली और उस (सरोवर) में निर्भय होकर उतरी हुई वन देवताओं ने स्नान करते हुए अपने भारी जूड़ों में से (गिरते हुए) फूलो से वह सरोवर सुगन्धित किया हुआ था। उसके एक भाग में उतरे मुनियो द्वारा भरे जाते हुए कमण्डलुओ के (सागीतिक) बल्बल शब्द से वह आकर्षक बना हुआ था। खिले हुए अथवा खिलते हुए कमलों के रग के साथ मिलते रग वाले कमलों के वन मे विचरण करते और इसीलिये केवल अपनी बोल से पहचान मे आने योग्य कादम्ब नाम के

अभिषेकावतीर्णपुलिन्दराजशबरीकुचचन्दनधूलिधवलिततरम् , उपान्तकेतकीरजःपटलबद्धकूलपुलिनम् , आसन्नाश्रमागततापसक्षालितार्द्रवल्कलकषायपाटलतटजलम् , उपतटवृक्षपल्लवानिलवीजितम् , अविरलतमालवीथ्यन्धकारिताभिर्वालिनिर्वासितेन संचरता प्रतिदिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणावलुप्तफललघुलताभिरुदवासितापसाना देवतार्चनोपयुक्तकुसुमाभिरुत्पतजलचरपक्षपुटविगलितजलबिन्दुसेकसुकुमारकिसलया-

---

पात्रविशेषाणि तेषा कलो मधुरो यो जलध्वनि पानीयशब्दस्तेन मनोहरमभिरामम् । कादम्बेति । कादम्बा कलहसास्तैरासमन्तात्सेवित पर्युपासितम् । अथ कादम्बान्विशिनष्टि—उन्मिषदिति । उन्मिषन्ति विकसन्ति यान्युत्पलानि कुवलयानि तेषा वन खण्डस्तन्मध्यचारिभिस्तदन्तर्गामिभि । सवर्णेति । सवर्णतया सादृश्यतया रसित स्वनित तेनानुमेयैरनुमातु योग्यै । पुन प्रकारान्तरेण सरो विशिनष्टि—अभीति । अभिषेकार्थं स्नानार्थमवतीर्णा जलान्त प्रविष्टा पुलिन्दराजस्य भिल्लस्वामिनो या शबर्य स्त्रियस्तासा कुचा स्तनास्तेषा चन्दन मलयज तस्य धूलिभि पासुभि धवलिततरमतिशयेन शुभ्रीकृतम् । उपान्तेति । उपान्ते समीपे या केतक्यो मालत्यस्तासा रज परागस्तस्य पटल समूहस्तेन बद्धमानद्ध कूल जलयुक्त पुलिन तट च जलोद्भित (?) यस्मिंस्तत्तथा । आसन्नेति । आसन्ना निकटवर्तिनो ये आश्रमा मुनिस्थानानि तेभ्य आगता प्राप्ता ये तापसा ऋषयस्ते क्षालितानि धौतान्यार्द्राणि जलाविलानि वल्कलानि । 'वल्कलमस्त्रियाम्' इत्यमर । तै कषाय तुवरम् । 'तुवरस्तु कषायोऽस्त्री' इत्यमर । पाटल च तटजल यस्मिन् । 'श्वेतरक्तस्तु पाटल' इत्यमर । उपेति । तटस्य समीपमुपतट तत्र ये वृक्षा पादपास्तेषा पल्लवा किसलयानि तैर्य अनिल वायुस्तेन वीजित व्यजनवात इवाचरित यस्मिन् । वनेति । वनराजिभि काननश्रेणिभिरुपरुद्धमावद्ध तीर तट यस्य तत्तथा । अथ वनराजि विशिनष्टि—अविरलेति । अविरला निबिडा या तमालाना कालस्कधाना वीथी

पक्षियों से भरा हुआ था । स्नान के लिये उसमे उतरी शबरराज की पत्नियों के (स्तनों पर प्रयुक्त) चन्दन चूर्ण द्वारा और अधिक श्वेत हुई लहरों वाला था । इसके किनारों पर उगे केतकी पौधों के पुष्पों के पराग की मोटी तह के कारण ही मानो उसका रेतीला बाँध सा बँधा हुआ था । समीपस्थ आश्रमों से आये तपस्वियों द्वारा (इसके जल में) डुबो कर धोये गये गेरुए वल्कल वस्त्रों से उसके तट (के समीप) का जल लाल हो गया था । उसके तट के समीप उगे वृक्षों द्वारा (अथवा उनमे से होकर) चली वायु उसको मानो पखा कर रही थी । उसके तटो पर एक-दूसरे से सटाकर लगे तमाल वृक्षों की पक्तियों से अन्धेरी हुई वन श्रेणियाँ विद्यमान थीं, उन वन श्रेणियों की लताएँ (अपने भाई) वालि द्वारा निकाले गये, ऋष्यमूक पर्वत पर रह रहे और प्रतिदिन (वहाँ) आते सुग्रीव द्वारा तोड़े गये फलों के कारण हल्की हो गयी थी, उन पर जल मे खड़े होकर तपस्या करने वालों की देवपूजा के लिये उपयुक्त फूल लगते थे, उड़ कर (जल से ऊपर) जाते समय जलचर पक्षियों के पखो से गिरे जल की बिन्दुओं द्वारा सिञ्चन होने के कारण उन वन श्रेणियो की कोंपले नाज़ुक हो गयी थीं, वहाँ (ऊपर लटकती)

भिर्लतामण्डपतलशिखण्डिमण्डलारब्धताण्डवाभिरनेककुसुमपरिमलवाहिनीभिर्वनदेव - ताभिः स्वश्वासवासिताभिरिव वनराजिभिरुपरुद्धतीरम्, अपरसागरशङ्किभिः सलिलमादातुमवतीर्णैर्जलधरैरिव बहलपङ्कमलिनैर्वनकरिभिरनवरतमापीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तमप्रतिममपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः। यत्र च विकचकुवलयप्रभाश्यामायमानपक्षपुटान्यद्यापि मूर्तिमद्रामशापग्रस्तानीव मध्यचारिणालोक्यन्ते चक्रवाकनाम्ना मिथुनानि।

पक्तिस्तयान्धकारिताभि सजातान्धकाराभि । वालीति । सुग्रीवेण वानराधिपतिनावलुसानि दूरीकृतानि थानि फलानि तैर्लघुलता यासु ताभि । कीदृशेन सुग्रीवेण । वालिनेन्द्रसुतेन निर्वासितेन स्थानाद् भ्रंशितेन । किं कुर्वता । प्रतिदिनं प्रत्यहं सचरता व्रजता । तत्रेति शेष. । ऋष्येति । ऋष्यमूकाभिधानो गिरिस्तत्र वासिना वसनशीलेन । उद्वासिनामिति । उद्वासिनां तत्र स्थितिजुषां तापसाना देवतार्चने देवपूजायामुपयुक्तानि सोपयोगानि कुसुमानि पुष्पाणि यासु ताभि । उत्पतदिति । उत्पतन्तो ये जलचरा नक्रचक्राद्यास्तेषां पक्षपुटानि तेभ्यो विगलिता स्रस्ता ये जलबिन्दवः पानीयपृषतास्तेषा सेकेन सिञ्चनेन सुकुमाराणि सुकोमलानि किसलयानि यासु ताभि । लतेति । लताना वल्लीना ये मण्डपा आच्छादितप्रदेशास्तेषा तलेऽध प्रदेशे शिखण्डिमण्डलैर्मयूरसमूहैरारब्धमुत्पादितं ताण्डवं नृत्यं यासु ताभि । अनेकेति । अनेकानि विभिन्नजातीयानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां परिमलो गन्धस्तं वहन्तीत्येवंशीलास्तास्तथा ताभि । वनेति । वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यस्ताभि स्वश्वासेन स्वकीयवातेन वासिताभिरिव भावितामिरिव । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । पुन सरो विशेषयन्नाह— वनेति । वनकरिभिररण्यगजैरनवरत निरन्तरमा समन्तात्पीयमान सलिल यस्य तत्तथा । अथ करिणो विशिनष्टि—बहलेति । बहलो निबिडो य पङ्क कर्दमस्तेन मलिन श्याम । कैरिव । जलधरैरिव मेघैरिव । तान्विशिनष्टि—अपरेति । अपरो भिन्नो य सागर समुद्रस्तदाशङ्किभिस्तद्भ्रान्तिकारिभि सलिलमम्भ आदातुं ग्रहीतुमवतीर्णैराकाशादुत्तरितै । अगाधमलब्धतलमनन्तमपरिमितपारमप्रतिम स्वप्रतिनिधिरहितमपां पानीयानां निधानं शेवधिभूतम् । अक्षयजलत्वात्तदुपमानम् । अभिधान तु प्राक् प्रतिपादितमेव न पुन प्रोच्यते । यत्र चेति । यस्मिन्सरसि चक्रवाकनाम्ना रथाङ्गाह्वाना मिथुनानि द्वन्द्वानि मध्यचारिणा वनान्तभ्रमणकारिणा । 'पथि चारिणा' इति पाठे पथिकेनेत्यर्थ. । आलोक्यन्त इत्यन्वय । चक्रवाक-

---

लताओं द्वारा बने कुञ्जों के नीचे बहुत से मयूर गोल बाँध कर नाचते थे, उनमे विविध (प्रकार के) फूलों की गन्ध बसी हुई थी (इसी कारण) वे दिव्यागनाओं के प्रश्वास से सुगन्धित प्रतीत होते थे। कीचड़ की मोटी परत से काले हुए, उसको दूसरा महासागर समझ कर उसमें उतरे बादलों के समान प्रतीत होते जगली हाथी उसका जल निरन्तर पीते रहते थे और जहाँ खिले हुए नील कमलों की कान्ति से काले से दिखायी देते पखों वाले (इसी कारण) आज तक भी मूर्तिमान् (वास्तविक काले रूप वाले) राम के शाप द्वारा ग्रस्त से प्रतीत होते, (तालाब के) मध्य में विचरते, चकवा चकवियों के जोड़े दिखायी देते हैं।

तस्यैवंविधस्य सरसः पश्चिमे तीरे राघवशरप्रहारजर्जरितबालतरुखण्डस्य च समीपे दिग्गजकरदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव तुङ्गस्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितैरहिनिर्मोकैर्धृतोत्तरीय इव, दिक्चक्रवालपरिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकालताण्डवप्रसारितभुजसहस्रमुडुपतिशेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः, पुराणतया पतनभयादिव वायुस्कन्ध-

---

मिथुनानि विशेषयन्नाह—विकचेति। विकचानि विकस्वराणि यानि कुवलयानि नीलाम्बुजन्मानि तेषां या प्रभा कान्तिस्तद्वच्छ्यामायमानानि श्यामवदाचरमाणानि पक्षपुटानि येषां तानि। पुनः कीदृशानीव। अद्याप्येतावत्कालपर्यन्तमपि मूर्तिमान्स्फुरद्रूपो यो रामस्य शापः शपनं तेन ग्रस्तानीव गृहीतानीव।

तस्येति। तस्य सरसः एवंविधस्य पूर्वोक्तप्रकारेण वर्णितस्य पम्पासर इत्यभिधानस्य पश्चिमे पश्चिमदिग्वर्तिनि तीरे तटे महान्महीयाञ्जीर्णश्चिरकालीनः शाल्मलीवृक्षः रोचनो द्रुमोऽस्तीत्यन्वयः। तस्य स्थानमभिव्यक्त्या आह—राघवेति। राघवस्य रामस्य ये शरा बाणास्तेषां प्रहार उपघातस्तेन जर्जरिता विसंस्थुला ये बालास्तृणराजास्तरवो वृक्षास्तेषां यत्खण्डं वनं तस्य समीपे निकटे दिशां गजा हस्तिनस्तेषां ये करदण्डाः शुण्डादण्डास्ताननुकुर्वन्तीत्येवंशीलास्तदनुकारिणस्तेन जरञ्जरीयान्योऽजगरश्चक्रमण्डलस्तेन सततं निरन्तरमावेष्टितं यन्मूलं स्थलं तस्य भावस्तत्ता तया बद्धं नद्धं महन्महीयः आलवालमावालं यस्मिन्स तथा। पुनः कीदृश एव। धृतमुत्तरीयमुपसंव्यानं येन स तथा। कैः। अहीनां सर्पाणां निर्मोकैः सर्पकञ्चुकैः। निर्मोकं विशिनष्टि—अनिलेति। अनिलो वायुस्तेन वेल्लितैः कम्पितैः। 'वेल्लितं कम्पिताधूत—' इति कोशः। तुङ्ग इति। तुङ्ग उच्चो यः स्कन्धः प्रकाण्डस्तत्रावलम्बिभिरवलम्बमानैः। अतएवोत्तरीयस्योपमानता। पुनः किं कुर्वन्निव। दिगिति। दिशां चक्रवालं मण्डलं तस्य परिमाणमायामस्तदिव गृह्णता ग्रहणं कुर्वता। केन। भुवनानामन्तरालं मध्यभागस्तत्र विप्रकीर्णेनेतस्ततः पर्यस्तेन शाखानां लतानां संचयेन संदोहेन। 'शिखा शाखालता समा' इत्यमरः। प्रलय इति। प्रलयकाले संहारसमये ताण्डवे नृत्ये प्रसारितमूर्ध्वीकृतं भुजसहस्रं बाहुसहस्रं येन स तथा तम्। अथ चोडुपतिश्चन्द्र

और उस उपरिवर्णित कमल-सर के पश्चिमी तट पर तथा (पूर्व समय में) राम का तीर लग कर कटे हुए, (सात) प्राचीन वृक्षों के समूह के समीप एक बड़ा और पुराना शमीवृक्ष है। वृक्ष के जड़ वाला भाग (तना) के दिग्गजों की सूँडों-सरीखे (विशाल तथा लम्बे) बूढ़े अजगर द्वारा घिरे होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उसके नीचे आलवाल बना हुआ हो, उसकी ऊँची टहनियों से लटकती हुई, वायु से डुलायी जा रहीं, साँपों की केंचुलियों से वह उत्तरीय धारण किया हुआ प्रतीत होता है, दिङ्मण्डल को नापती सी प्रतीत होतीं, विश्व के सभी स्थानों में फैली शाखाओं के समूह से वह प्रलय-कालीन नृत्य के समय (अपनी) सहस्र भुजाओं को फैलाये हुए, मस्तक पर चन्द्रकला को धारण करने वाले शिव जी की नकल करता प्रतीत होता है, पुराना (जीर्ण शीर्ण) होने के कारण, वह मानो गिर पड़ने की आशङ्का से ही

लग्नः, निखिलशरीरव्यापिनीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः, जरातिलकबिन्दुभिरिव कण्टकैराचिततनुः, इतस्ततः परिपीतसागरसलिलैर्गगनागतैः, पत्ररथैरिव शाखान्तरेषु निलीयमानैः, क्षणमम्बुभारालसैरार्द्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशिखरः, तुङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवावलोकयितुमभ्युद्यतः स्वसमीपवर्तिनामुपरि संचरतां गगनतलगमनखेदायासितानां रविरथतुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः

शेखरे यस्यैवंविधं महादेवं विडम्बयितुमुद्यत इव कृतप्रयत्न इव बहुशाखावत्त्वेनात्युच्चत्वेन शशिनोऽपि तच्छिरोवर्तित्वेन च तद्विडम्बकत्वमिति भावः। पुराणेति। पुराणतया जीर्णतया पतनभयादिव प्रपातशङ्कयेव वायुः स्कन्धे लग्नो यस्यैवंभूत इव। अनेन शाखासु महावायुप्रवेगेण प्रकम्पः सूचितः। तिरस्कर्तुं च वायोः स्कन्धे लग्न इत्यपि केचिद् व्याख्यानयन्ति। निखिलेति। व्रततिभिर्लताभिः। 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इति कोशः। परिगतः परिवेष्टितः। अथ व्रततीर्विशेषयन्नाह—निखिलेति। निखिलं समग्रं यच्छरीरं तद्व्याप्तुं शीलं यासां ताभिः। अतीति। अतिदूरमतिविप्रकृष्टमुन्नताभिः। काभिरिव जीर्णतया वार्धक्येन शिराभिरिवास्थिबन्धनैरिव। जरेति। कण्टकैराचिता व्याप्ता तनुर्यस्य स तथा। कैरिव। जराया विस्रसाया ये तिलकबिन्दवस्तैरिव। अतिवार्धक्ये शरीरे कृष्णबिन्दवो जायन्त इति लोकप्रसिद्धिः। जलेति। जलधरपटलैर्मेघसमूहैरप्यदृष्टमनवलोकितं शिखरं प्रान्तप्रदेशो यस्य स तथा। मेघपटलं विशेषयन्नाह—इत इति। इतस्ततः समन्तात्परिपीतं सागरसलिलं समुद्रपानीयं यैस्ते तथा तैः। अथ च गगनागतैः कैरिव। शाखान्तरेषु शालान्तरेषु निलीयमानैर्गुप्ततया तिष्ठद्भिः पत्ररथैरिव पक्षिभिरिव। क्षणमिति। क्षणं क्षणमात्रं यावदम्बुभारालसैर्जलभारेण मन्दगामिभिः। आर्द्रीति। आर्द्रीकृता जलेन क्लिन्ना पल्लवा यैस्ते तथा ते। तुङ्गेति। तुङ्गतयोन्नततया नन्दनवनमिन्द्रोद्यानं तस्य या श्रीस्तामिव अवलोकयितुं द्रष्टुमभ्युद्यत उद्यतः। स्वसमीपेति। धवलीकृताः शुभ्रीकृता शिखरस्याग्रस्य शाखा यस्य स तथा। कैः। फेनपटलैः कफसमूहैः कीदृशैः सन्देहित

आकाश के कन्धों का आश्रय लिये हुआ है (अर्थात् बहुत ऊँचा है), (अपने) सारे शरीर पर फैली हुई (अर्थात् शरीर पर लिपटी हुई) तथा बहुत ऊँचाई तक (ऊपर) पहुँची हुई लताओं से घिरा हुआ है—इस कारण ऐसा लगता है कि वे लताएँ उसकी शिरायें हैं, जो उसके बहुत अधिक जीर्ण (वृद्ध) हो जाने के कारण उसके शरीर पर उभर आयी हैं, उसका तना (अर्थात् शरीर) बुढ़ापे में (उसको) दागी करते तिल-चिह्नों सरीखे प्रतीत होते, काँटों से भरा हुआ था, सागर का जल पीकर, पक्षियों की भाँति आकाश में पहुँचने वाले तथा जल के भार से अलसाये हुए (अथवा जल से लदे हुए), इसी कारण क्षण भर उसकी शाखाओंमें विलीन होते (विश्राम करते) और पत्तों को गीला किये हुए बादलोंके समूह भी उसके शिखर प्रदेश को नहीं देख पाये हैं, बहुत ऊँचा होने के कारण वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो (स्वर्ग के) नन्दन वन को देखने का उद्यम कर रहा हो, (उसके) समीप ही ऊपर चलते आकाश पर चलने के श्रम से थके हुए, सूर्य रथ के अश्वों के होठों से गिरे, (देखने वालों) को

फेनपटलैः संदेहिततूलराशिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगजकपोलकण्डूयनलग्नमद-निलीनमत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः, कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव इव मधुकरपटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षितशकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव दण्डकारण्यस्य,

---

सदेहविषयीकृतस्तूलराशिरबीजकार्पासकपिण्डो यैस्ते तथा तै । **स्वेति** । स्वस्य समीपवर्तिना निजनिकटवर्तिनामुपर्यूर्ध्वं सचरता गच्छताम् । अथ च गगनतलमाकाशतल तत्र यद्गमनं संचरण तेन य खेद प्रयासस्तेनायासिताना खिन्नाना रविरथतुरङ्गमाणां सूर्यरथाश्वाना सृक्कमोष्ठप्रान्तस्तत परिस्रुतै पतितै फेनपटलै । **वनेति** । वनगजा अरण्यकरिणस्तेषा कपोलयो कण्डूयनेन खर्जूयनेन लग्नो यो मदो दान तत्र निलीना लग्ना ये मत्ता मधुकरा भ्रमरास्तेषां माला यस्यैवभूतेन । 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्व । अतो नैल्यसाम्याल्लोहस्य या शृङ्खलान्दुकस्तेन बन्धन नियन्त्रण तेन निश्चलेनेव स्थिरेणेवातएव कल्पस्थायिना कल्पान्त तिष्ठता । एतेन स्वस्यातिवृद्धत्वेन शैथिल्यनिवृत्त्यै भ्रमरवेष्टनस्य कटिबन्धनत्व प्रदर्शितमिति भाव । एतादृशेन मूलेन बुध्नेन समुपेत सयुक्त । **कोटरेति** । कोटरो निष्कुहस्तस्याभ्यन्तर मध्यभागस्तत्र निविष्टै प्रविष्टै स्फुरद्भिर्दीप्यमानैर्मधुकरपटलैर्भ्रमरसमूहै सजीव इव श्वासादिप्राणयुक्त इव । भ्रमराणामन्तश्चारित्वेन तदुपमानम् । **दुर्योधनेति** । दुर्योधनो गान्धारीतनयस्तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—**उपेति** । उपलक्षितो दृग्विषयीकृत शकुनीना पक्षिणा पक्षाणा छदाना पातो यस्मिन्स तथा । पक्षे शकुनौ मातुले पक्षपातोऽङ्गीकारो यस्येति विग्रह । **नलिनेति** । नलिननाभ कृष्णस्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—**वनेति** । वनमालया वनश्रेण्योपगूढ आच्छादित । पक्षे वनमाला भूषणविशेषस्तेनोपगूढ आलिङ्गित । **नवेति** । नवा नूतना ये जलधरा मेघास्तेषा व्यूह समूहस्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—**नभसीति** । नभस्याकाशे दर्शितोन्नतिर्येन स तथा । उभयो साम्यत्वादभङ्गश्लेष । **अखिलेति** । अखिलानि समग्राणि यानि भुवनतलानि तेषामवलोकन निरीक्षण

कपास के ढेर-सरीखे प्रतीत होते झागों के ढेरों से उसकी चोटी की शाखायें श्वेत हो गयी हैं, जगली हाथियों के मस्तकों की रगड़ से (तने मे) लगे मद में चिपके भौरो वाले मानो लोहे की साकल से बँधा हुआ होने के कारण अचल बने हुए सृष्टि की समाप्ति तक बने रहने वाले मूल भाग से युक्त है, (उसकी) खोह मे घुसी तथा वहाँ झूमती मधुमक्खियों के कारण वह सजीव-सा प्रतीत होता है, (शाखाओं पर) पक्षियों के परों की फड़-फड़ाहट को दिखलाये हुए, वह वृक्ष, (अपने मामा) 'शकुनि' के प्रति पक्षपात दिखलाने वाले दुर्योधन सरीखा प्रतीत होता है, झाड़ियों से घिरा वह वृक्ष हार रूप आभूषण को पहने हुए विष्णु के समान दिखायी देता है, (आकाश में) बहुत ऊँचाई तक पहुँचा हुआ वह वृक्ष श्रावण-महीने मे दिखायी देने वाला अभिनव मेघो का समूह-सरीखा दिखायी देता है, यह उस महल-सरीखा है जो वनदेवताओं का सारे भवनों के पृष्ठों को देखने का महल हो, दण्डकारण्य का यह सर्वसम्राट् ही है, सारे वृक्षों का

नायक इव सर्ववनस्पतीना, सखेव विन्ध्यस्य, शाखाबाहुभिरुपगुह्येव विन्ध्याटवीं स्थितो महाजीर्णः शाल्मली।

तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसंधिषु जीर्णवल्कलविवरेषु, महावकाशतया विश्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि, दुरारोहतया विगतभयानि, नानादेशसमागतानि शुकशकुनिकुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदलमहतिरपि स वनस्पतिरविरलदलनिचयश्यामल इवोपलक्ष्यते दिवानिश निलीनैः। ते च तस्मिन्नतिवाह्यातिवाह्य निशामात्मनीडेषु प्रतिदिनमुत्थायोत्थायाहारान्वेषणाय नभसि विरचित-

---

तदर्थ प्रासादो देवगृह स इव। कासाम्। वनदेवतानामरण्याधिष्ठात्रीणा सुरीणाम्। दण्डक इति। दण्डकनाम्नोऽरण्यस्य वनस्याधिपतिरिव स्वामीव। नायक इति। नायक इवाध्यक्ष इव। कासाम्। सर्वेति। पुष्प विना फल येषा ते वनस्पतयस्तेषा सर्वेषाम्। सखेति। सखेव मित्रमिव। कस्येत्यपेक्षायामाह—विन्ध्यस्येति। विन्ध्यस्य जलबालकस्य। शाखेति। शाखा एव बाहवो भुजास्तै. विन्ध्याटवीं विन्ध्यभूमिमुपगुह्येवालिङ्ग्येव स्थित आश्रित।

तत्र चेति। तस्मिन्वृक्षे शुका कीरा शकुनयोऽन्ये पतत्रिणस्तेषा कुलानि सन्तानानि प्रतिवसन्ति स्मेत्यन्वय। अथ निवासस्थानान्याह—शाखाग्रेष्विति। शाखाना शालानामग्राणि प्रान्तानि तेषु कोटराणा निष्कुहाणामुदरेषु मध्येषु पल्लवा किसलयानि तेषामन्तरेषु मध्येषु स्कन्ध प्रकाण्डस्तस्य ये संधयो बन्धास्तेषु जीर्णानि पुरातनानि यानि वल्कानि चोचानि तेषा विवराणि छिद्राणि तेषु। अथ शकुनिकुलानि विशेषयन्नाह—महेति। महान्महीयोऽवकाशोऽन्तर्विस्तारस्तस्य भावस्तत्ता तया विश्रब्ध नि शङ्क विरचितानि निर्मितानि कुलायसहस्राणि यैस्तानि। दुरेति। दु खेनारोहो दुरारोहस्तस्य भावस्तत्ता तया विगत भय येभ्यस्तानि। नानेति। नानादेशेभ्यो भिन्नभिन्नप्रदेशेभ्य. समागतान्येकीभूतानि। यैरिति। यै शकुनिकुलैर्दिवानिशमहर्निशं निलीनै स्थित परिणामेन वार्धक्येन विरलानि तुच्छानि दलानि पत्राणि तेषा सहति समूहो यस्मिन्नेवविधोऽपि स वनस्पतिरविरलानि निबिडानि यानि दलानि पत्राणि तेषा निचय

मुखिया सरीखा है, विन्ध्य पर्वत का अभिन्न मित्र सरीखा है और मानो अपनी शाखारूपी भुजाओं से विन्ध्याटवी (विन्ध्य वन) को आलिङ्गन करके स्थित हो।

इस शमी वृक्ष पर देश के विभिन्न भागों से आये शुक परिवार रहते थे, उस वृक्ष पर चढ़ना कठिन होने के कारण (उन्हें) अपने घोसलों के नष्ट होने का डर नहीं था, इस कारण नि.शङ्क होकर उन तोतों ने उसकी शाखाओं के सिरों पर, उसकी खोहों में, पत्तों की सन्धियों पर, डालियों के जोड़ों पर, इसकी पुरानी छाल के खाली स्थान पर (अर्थात् सभी स्थानों पर) हजारों घोसले बनाये हुए थे, कारण कि वृक्ष पर स्थान पर्याप्त था, इसके (मूलत.) घने पत्ते (अब) बुढ़ापे के कारण विरल हो गये थे, तथापि पक्षियों के द्वारा उस पर विश्राम करने के कारण वह वृक्ष दिन रात ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह (वस्तुत) पत्तों के उग आने से ही काला हो गया हो। और वे शुक पक्षी उसपर अपने घोसलों में रात्रि बिता बिताकर प्रतिदिन (प्रात) जाग-जागकर पंक्तियाँ बाँधकर भोजन ढूँढने के लिये आकाश में घूमा करते थे,

पंक्तयः, मदकलबलभद्रहलमुखाक्षेपविकीर्णबहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनीशङ्कामुत्पादयन्तः, दिवसकररथतुरगप्रभानुलिप्तमिव गगनतलं प्रदर्शयन्तः, सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः, शैवलपल्लवावलीमिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, गगनावततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिनकरखरकरनिकरपरिखेदितान्याशामुखानि वीजयन्तः, वियति विसारिणीं शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्षमादधाना विचरन्ति स्म। कृताहाराश्च

सन्दोहस्तेन श्यामल इव कृष्ण इवोपलक्ष्यते दृश्यते। ते चेति। अग्रे विचरन्ति स्मेत्यग्रेतनेनान्वय.। तस्मिन्शाल्मलीवृक्ष आत्मनीडेषु स्वस्वकुलायेषु निशा रात्रिमतिवाह्यातिवाह्यातिक्रम्य प्रतिदिन प्रत्यहमुत्थायोत्थाय। वीप्सया भूयान्कालो द्योत्यते। आहारस्य भक्षणस्यान्वेषण विलोकन तस्मै नभस्याकाशे विरचिता विहिता पङ्क्ति श्रेणी यैस्ते। मदेति। मदेन कलो मनोज्ञो यो बलभद्रो हली तस्य यद्धल सीर तस्य यन्मुखमग्रप्रदेशस्तेन य आक्षेप आकर्षण तेन विकीर्णानि पर्यस्तानि बहूनि स्रोतांसि यस्या एवभूतामम्बरतल आकाशतले कलिन्दकन्यामिव यमुनामिव दर्शयन्त आलोकनीयता प्रापयन्त। सुरेति। सुराणा देवाना गजो हस्ती तेनोन्मूलितोत्पाटिता विगलन्त्यध पतन्ती याऽऽकाशगङ्गा स्वर्धुनी तस्या कमलिनी नलिनी तस्या शङ्का भ्रान्तिमुत्पादयन्त परेषा जनयन्त। दिवसेति। दिवसकर सूर्यस्तस्य यो रथ स्यन्दनस्तस्य ये तुरगा अश्वास्तेषा या प्रभा सैव नीला। हरितहयरथवत्त्वात्सूर्यस्य। तयानुलिप्तमिव लेपन विषयीकृतमिव गगनतल नभस्तलं प्रदर्शयन्तो ज्ञापयन्त। संचारीति। सञ्चारिणी भ्रमणशीला मरकतस्याश्मगर्भस्य या स्थली तामिव विडम्बयन्तस्तिरस्कुर्वन्त। शैवल इति। शैवलस्य शेवालस्य या पल्लवावली किसलयश्रेणी तामिवाम्बरसरसि व्योमतटाके प्रसारयन्तो विस्तारयन्त। पुन किं कुर्वन्त। गगनेति। गगनेऽवततैर्विस्तृतै पक्षपुटै पक्षच्छदै कदलीनां रम्भाणा दलैरिव। नीलत्वसाम्यात्तदुपमानम्। दिनकरस्य सूर्यस्य खरास्तीक्ष्णा ये करा किरणास्तेषां निकर समूहस्तेन परिखेदितानि सञ्जामितानि यान्याशामुखानि दिग्वदनानि वीजयन्तो व्यजनवातकर्म कुर्वन्त। पुन कि कुर्वन्त। वियतीति। वियत्याकाशे विसारिणीं विस्तारिणी

जिस समय (इस प्रकार) उड़ा करते थे तब वे सुरा के नशे में धुत्त बलराम द्वारा (अपने) हल की नोक पर उडा लेने पर कई धाराओ में बहती कलिन्दकन्या यमुना को आकाश में दिखलाते-से प्रतीत होते थे, (वे पक्षी उस समय दर्शक के मन पर) ऐसा प्रभाव डालते थे कि मानो वे ऐरावत हाथी द्वारा उखाड़ कर फैंकी जाती हुई आकाश गगाकी कमलिनियाँ हों, वे उस समय आकाश को, सूर्य के रथ के घोड़ों की आभा (हरितिमा) से लिपा हुआ सा दर्शाते थे, वे चलते फिरते मरकत मणि निर्मित फर्श की प्रतिलिपि सी प्रतीत होते थे, आकाश में फैलाये हुए (अपने) केलों के पत्तों सरीखे पखों से मानों वे तेज सूर्य किरणों की ऊष्मा से दुःखी दिगङ्गनाओं के मुखों पर पखे झल रहे होते थे, वे आकाश मे नरम नरम हरी घास की लम्बी दूर तक फैली सड़क सी बिछाये होते थे, वे मानो आकाश को इन्द्रधनुषों से भरे हुए होते थे।

पुनः प्रतिनिवृत्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान्फलरसान्कलममञ्जरीविकारांश्च प्रहतहरिणरुधिरानुरक्तशार्दूलनखकोटिपाटलेन चञ्चुपुटेन दत्त्वा दत्त्वाधरीकृतसर्वस्नेहेनासाधारणेन गुरुणापत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव क्रोडान्तर्निहिततनयाः क्षपाः क्षपयन्ति स्म।

एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेको विधिवशात्सूनुरभवम्। अतिप्रबलया चाभिभूता ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे परलोकमगमत्। अभिमतजायाविनाशशोकदुःखि-

---

शष्पवीथीं बालतृणोपयुक्तपद्धतिमिवारचयन्तो विरचयन्त । सेन्द्रायुधमिति। इन्द्रायुधं शक्रधनुस्तेन सह वर्तमानमिवान्तरिक्ष गगनमादधाना. कुर्वाणाः । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । कृतेति। कृतो विहित आहारो भोजन यैस्ते क्षपास्त्रियामा क्षपयन्ति स्मेत्यनेनान्वय । 'क्षिप प्रेरणे' णिजन्तस्य रूपम्। किं कृत्वा। पुनरिति। स्वतृप्त्यनन्तर प्रतिनिवृत्य परावृत्य। आत्मेति। आत्मीयाः स्वकीया ये कुलाया नीडानि तत्रावस्थितेभ्य उषितेभ्य शावकेभ्य पोतेभ्यो विविधान्नानाप्रकारान्फलरसान्सस्यनिर्यासान् । कलमेति । कलम कलामकस्तस्य मञ्जर्यो वल्लर्यस्तासा विकारा' परिपाकविशेषेण परिणता कणास्तांस्तथापत्येषु सतानेषु यत्प्रेम स्नेहस्तेन। कीदृशेन। अधरीति। अधरीकृतो न्यूनत्वमापादित सर्ववस्तुसबन्धी स्नेहो येन स तथा तेन। पुन कीदृशेन। असाधारणेन तन्मात्रवृत्तिना गुरुणा परावृत्तेन तथा प्रहतो व्यापादितो यो हरिणो मृगस्तस्य रुधिर रक्त तेनानुरक्तारुणीकृता या शार्दूलस्य सिंहस्य नखकोटिर्नखराग्र तद्वत्पाटलेन श्वेतरक्तेन चञ्चुपुटेन त्रोटीसपुटेन दत्त्वा दत्त्वा। वारवार तेभ्यो भक्ष्यदान वितीर्येत्यर्थः। ततो दिवसकार्यानन्तरम्। तस्मिन्निति। तस्मिन्वृक्षकुहरे क्रोड उत्सङ्गस्तदन्तर्निहिता स्तन्मध्यस्थापितास्तनया अपत्यानि यैस्ते तथा। अन्वयस्तु पूर्वमुक्त ।

एकस्मिंश्चेति। एकस्मिञ्जीर्णकोटरे चिरकालीननिष्कुहे जायया पत्न्या सह निवसत आसेदुष पश्चिमे प्रान्त्ये वयसि दशाया वर्तमानस्य स्थितवत कथमपि महता कष्टेन पितुर्जनकस्य

(बाहर) भोजन करके फिर लौट आया करते थे, और (स्वय) मारे हुए हरिणों के रक्त से लाल शेर के पजों के सिरों सरीखे लाल चोंचों द्वारा अपने घोंसलो मे स्थित अपने बच्चों को विविध प्रकार के फलो के रस, गुच्छे अथवा 'कलम'-चावल के भुट्टों के टुकड़े प्रतिदिन दे देकर उसी वृक्ष पर अपने परों के भीतर अपने शिशुओं को रखे हुए (और इस प्रकार) शेष सभी प्रकार के स्नेहों को मात करने वाले अद्वितीय सुत स्नेह को प्रदर्शित करते हुए, रातें बिता दिया करते थे।

और (उस वृक्ष की) एक पुरानी खोह में अपनी पत्नी के साथ रहते हुए अपनी अतिम आयु मे विद्यमान (वृद्ध) पिता का भाग्य से किसी प्रकार मैं एक ही पुत्र उत्पन्न हो गया था। मेरी माता मेरे जन्म पर हुई प्रसवपीड़ा के वशीभूत हुई, परलोक को चली गयी थी। अपने प्यारे साथी को खो देने के दु ख से दुःखी भी मेरा पिता मुझ अपने पुत्र के प्रति

तोऽपि खलु तातः सुतस्नेहादभ्यन्तरे निरुध्य पटुप्रसरमपि शोकमेकाकी मत्सवर्धनपर एवाभवत्। अतिपरिणतवयाश्च कुशचीरानुकारिणीमल्पावशिष्टजीर्णपिच्छजालजर्जरामवस्रस्तासदेशशिथिलामपगतोत्पतनसस्कारा पक्षसंततिमुद्वहन्, उपारूढकम्पतया सतापकारिणीमङ्गलग्ना जरामिव विधुन्वन्नकठोरशेफालिकाकुसुमनालपिञ्जरेण कलममञ्जरीदलनमसृणितक्षीणोपान्त्यलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन परनीड-

विधिवशाद्दैववशात्। अहमित्यात्मनिर्देश। एको नापर सूनुः सुतोऽभवमजनिषम्। अतिप्रबलेति। मम जायमानस्यैवोत्पद्यमानस्यैव अतिप्रबलया अत्यन्तया प्रसववेदनया प्रसूतिव्यथयाभिभूता पीडिता सती मे मम जननी परलोक भवान्तरमगमद्यासीत्। अभिमतेति। अभीष्टजायाया विनाशेन मरणेन रोदनादिरूप शोकस्तेन दु खितोऽपि। अपि स्नेहदार्ढ्यसूचक। खलु निश्चित तात. पिता पटु स्पष्ट प्रसरो विस्तारो यस्यैवभूतमपि शोकं दु ख मम सुतस्य पुत्रस्य स्नेहादभ्यन्तर एव मध्य एव निरुध्यावरुध्यैकाकी पत्नीवियुक्तो ममैव यत्सवर्धन वृद्धिस्तस्यामेव पर तत्परोऽभवत्। अतीति। अतिपरिणतमत्यन्त पक्व वयो यस्य स तथा। अतिजरीयानित्यर्थं। किं कुर्वन्। एतादृशीं पक्षसततिं वाजसमूहमुद्वहन्दधत्। इत पक्षसतति विशेषयन्नाह—कुशेति। कुशो दर्भश्चीर जीर्णवस्त्रखण्डं तदनुकरोति तत्सादृश्य भजति या सा ताम्। वार्धक्यवशादल्पानि स्तोकान्यवशिष्टान्युर्वरितानि जीर्णानि पुरातनानि पिच्छानि बर्हाणि तेषा जाल तेन जर्जरा विशीर्णाम्। अवेति। अवस्रस्तो गलितोंऽसदेशो यस्या सा ताम्। अथवा स्कन्धदेशादवस्रस्तामसदेशाद् गलितामत एव शिथिला श्लथामदृढावयवसयोगाम्। अपेति। अपगतो दूरीभूत उत्पतने वियद्गमने सस्कार शक्तिविशेषो यस्या सा ताम्। उपेति। उपारूढ प्राप्तो य कम्पश्चलन तस्य भावस्तत्ता तया। चः समुच्चये। सतापकारिणीं दु खदायिनीमङ्गलग्नां जरा वृद्धावस्थामिव विधुन्वन्परित्यजन्निवाकठोर यच्छेफालिका निर्गुण्डी तस्या कुसुम पुष्प तस्य यन्नाल तद्वत्पिञ्जरेण। कलमेति। कलमस्य या मञ्जरी तस्या दलनं विदारण तेन मसृणिता सजातचिक्कणता एव क्षीणा घृष्टोपान्त्यलेखा प्रान्तसमीपवर्तिनी राजिर्यस्यैवभूतेन चञ्चुपुटेन त्रोटीसपुटेन श्रमवशात्स्फुटिता स्फोट प्राप्ता अग्रकोटिरग्रिमतीक्ष्णतरभागो यस्य स तेन। परेति।

स्नेह के कारण, भयकरता से फैलते हुए[1] शोक को भी भीतर दबाकर अकेला ही मेरा पालन करने मे ही दत्तचित्त हो गया। और वह अत्यन्त वृद्ध हो चुका था, उसके पख चौड़े[2] थे, वे (पख) कुश के चिथड़ों सरीखे प्रतीत होते थे, बहुत थोड़े से बचे हुए पुराने डैनों के कारण जर्जर थे, झुके कन्धों पर ढीले ढीले लटके हुए थे और उड़ने की शक्ति से हीन थे, शरीर में कम्पन के होते रहने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह (अपने) अङ्गों से चिपटे तथा दु ख देनेवाले बुढ़ापे को झिटक कर दूर कर रहा हो, स्वय इधर उधर घूमने में असमर्थ हुआ वह नये शैफालिका-पुष्प की डडी सरीखी लाल-लाल, चिरकाल तक 'कलम' के

१. भयकर फैलाव वाले शोक को भी।

२. पक्ष सततिं समुद्वहन्। सतति का अर्थ समूह प्रसिद्ध है, श्री काले ने 'संतति—फैलाव' लेकर यह अप्रत्यक्ष अर्थ किया प्रतीत होता है।

पतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय वृक्षमूलनिपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्यमदात्। प्रतिदिवसमात्मना च मदुपभुक्तशेषमकरोदशनम्।

एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते गगनतले कमलिनीमध्वनुरक्तपक्षपुटे वृद्धहस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले, गजरुधिररक्तहरिसटालोमलोहिनीभिः प्रतप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभिरायामिनीभिरशिशिरकिरणदीधितिभिः पद्मरागशलाका-

भङ्गक्रियशाल्यरेषा नीडानि तेभ्य पतिता स्रस्ता या शालिवल्लर्यस्ताभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय गृहीत्वा गृहीत्वा। वृक्षेति। वृक्षमूलनिपतितानि शुकाना कुलानि तरवदलितानि खण्डितानि फलशकलानि तानि समाहृत्य एकीकृत्य परिभ्रमितुमशक्तो दूरे परिभ्रमणाशक्तो मह्यमदाद्दौ। घुसंज्ञकदाधातोर्लुङि रूपम्। एव प्रतिदिवसं प्रत्यहमनेन प्रकारेणानीत भक्ष्य मह्य दत्वा मयोप भुक्त तत शेषमुद्धरितमात्मनाशनमकरोत्। घ्यप्रत्ययानुशासनवशाच्चतुर्थ्यर्थे तृतीया।

एकदा त्विति। एकदैकस्मिन्समये कोलाहलमशृणवमिति दूरेणान्वय। प्रभेति। प्रभातस्य प्रात कालस्य या सध्या तत्सम्बन्धी यो रागस्तेन लोहिते रक्ते। गगनेति। गगनतलमेव कमलिनी त्रियङ्गा। कमलिनी वा। तस्या मधु रसस्तेनानुरक्त पक्षपुट छदसपुट यस्य तस्मिन्वृद्धहस इव जरत्कलहस इव मन्दाकिनी गङ्गा तस्या पुलिन सकत तस्माच्चन्द्रमसि निशानाथेऽपरो यो जलनिधि पश्चिमसमुद्रस्तस्य तट तीर प्रत्यवतरत्युत्तीर्णे सति। परेति। परिणत पक्वो यो रङ्कुर्मृगविशेषस्तस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वत्पाण्डुनि शुभ्रे विशालता विस्तीर्णतामाशाचक्रवाले दिक्समूहे व्रजति गच्छति सति। गजेति। गजाना हस्तिना यद्रुधिर तेन रक्ता शोणिता या हरिसटा सिहस्कन्धकेसरास्तत्सबन्धि यल्लोम तद्वत् लोहिनीभि आरक्ताभि प्रतप्ता ये लाक्षिका जतुविकारोद्भवास्तन्तवस्तद्वत्पाटलाभि श्वेतरक्ताभिरायामिनीभिर्विस्तार-

भुट्टों को तोड़ने (तोड़कर खोलने) से चिकने तथा खुण्टे हुए बाहरी किनारे वाली और टूटी नोकवाली अपनी चोंच द्वारा दूसरे घोसलों से (पृथ्वी पर) गिरे शाली के भुट्टों में से चावल के दानों को ला-ला कर और तोतों द्वारा कुतरे हुए तथा वृक्षों की जड़ मे गिरे हुए फलों के टुकड़ों को एकत्रित कर कर के मुझको देता था और स्वय प्रतिदिन मेरे (पेट भर) खाने से बचे खुचे को खा लेता था।

एक बार जब प्रात कालीन सध्या अर्थात् उषा की आभा से लाल हुआ चन्द्रमा आकाशगङ्गा के रेतीले तट से पश्चिमी समुद्र के तट की ओर इस प्रकार उतर रहा था मानो कि आकाशरूपी नलिनी के मधु से लाल हुए पखों वाला कोई बूढ़ा हस हो, जब पूर्णतया तरुण हुए मृग के रोओं के सदृश धूसर वर्ण की हुई दिशाएँ (अर्थात् सारा क्षितिज) अधिकाधिक विस्तृत होने लगीं, जब आकाशरूपी फर्श (अथवा वेदिका) पर (पूजार्थ अर्पित) फूलों सरीखे नक्षत्र समूहो को, हाथी के रुधिर से लाल हुई शेर सटाओं के बालों सरीखी लाल, तपायी गयी लाख के तन्तुओं जैसी लाल तथा लाल मणियों की सीकों से बनी हुई झाड़ुओं

संमार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, सध्यामुपासितु-मुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, तटगतविघट्टित-शुक्तिसपुटविप्रकीर्णमरुणकरप्रेरणाधोगलितमुडुगणमिव मुक्ताफलनिकरमुद्वहति धवलितपुलिनमुदन्वति पूर्वेतरे, तुषारबिन्दुवर्षिणि विबुद्धशिखिकुले विजृम्भमाणके-सरिणि करिणीकदम्बकप्रबोध्यमानसमदकरिणि क्षपाजलजडकेसर कुसुमनिकर-मुदयगिरिशिखरस्थित सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः समुत्सृजति कानने,

---

वतीभिरशिशिरा उष्णा. किरणा यस्यैवभूत सूर्यस्तस्य दीधितिभिर्दीप्तिभि । काभिरिव । पद्मरागा लोहितकमणयस्तेषां शलाका इषीकास्तासा समार्जनीभिरिव बहुकरीभिरिव समुत्सार्य-माणे दूरीक्रियमाणे गगनमेव कुट्टिम बद्धिर्द्वार तत्र य कुसुमप्रकर' पुष्पसमूहस्तस्मिन्निव तारागणे नक्षत्रसमूहे। उत्तरेति। उत्तराशोदीचीदिक्तामवलम्बत इत्येवशील स तथा तस्मिन्सप्तर्षिमण्डले सप्तर्षिसमुदाये मानससरस्तीर प्रति सध्यामुपासितुमिव सायतनविधिं कर्तुमिवावतरति सति। अत्र रूपकम्। अत्र सतीति प्रत्येकमन्वये योजनीयम्। पुन कस्मिन्सति। तटेति। तटगतानि तीरप्राप्तानि विघट्टितानि स्फुटितानि यानि शुक्तिसपुटान्यब्धिमण्डूकीपुटानि तेभ्यो विप्रकीर्णं पर्यस्तम्। कीदृशमिव। अरुणस्य सूर्यस्य ये करा किरणास्तेषा प्रेरणा नोदना तस्मादधो गलितमध पतित उडुगणमिव धवलित शुभ्रीकृत पुलिन जलोज्झित तट येनैवभूत मुक्ताफलाना निकर समूहमुद्वहति धारयत्युदन्वति समुद्रे सति। पूर्व इतरो यस्मादिति बहुव्रीहि। तस्मान्न सर्वादित्वम्। पश्चिमसमुद्रे सतीत्यर्थ। यद्वा पूर्वस्मान्नीच पूर्वेतर। 'इतरस्त्वन्यनीचयो' इत्यमर। तस्मिन्। अतो नीचार्थवाचित्वान्न सर्वादित्वम्। पुन कस्मिन्सति। कानने सति। अथ कानन विशेषयन्नाह—तुषारेति। तुषारस्य तुहिनस्य बिन्दूना पृषता वर्षो यस्मिंस्तथा तस्मिन्। विबुद्धेति। विबुद्ध शिखिकुल मयूरकुल यस्मिंस्तथा विजृम्भमाणा जृम्भायुक्ता केसरिण सिंहा यस्मिंस्तथा। करिणीति। करिणीना हस्तिनीना कदम्बक समूहस्तेन प्रबोध्यमाना जागरावस्था प्राप्यमाणा समदा मदेन सहवर्तमाना। करिणो हस्तिनो यस्मिन्। क्षपेति। क्षपाजलेन रात्रिसबन्धितुषारेण जडानि स्तम्भितानि केसराणि किञ्जल्कानि यस्यैतादृश कुसुमनिकर पुष्पसमूहम्। उदयेति। उदयगिरिरुदयाद्रिस्तस्य शिखर शृङ्ग तत्र स्थित सवितार

सरीखी सूर्य किरणें बुहारने लग गयी थीं, जब उत्तर दिशा स्थित सप्तर्षिमण्डल मानो सन्ध्यो-पासन करने के लिये ही मान सरोवर पर उतरने लगा, जब पूर्व से भिन्न अर्थात् पश्चिमी महा-सागर ने (उसके) तट को श्वेत बनाये हुए, तट पर पड़ी हुई (मुँह) खुली सीपियों की खोखलो में बिखरे हुए, मानो सूर्य की किरणों द्वारा बुहारे लाकर नीचे गिरे, तारापुञ्ज-सरीखे प्रतीत होते मोतियों के समूह को धारण कर लिया, जब वह जगल, जो ओस की बूंदे गिरा रहा था, जिसमें मोरों के झुड जाग चुके थे, शेर (जागकर) जम्भाइयाँ ले रहे थे, और मदमस्त हाथियो को उनकी हथिनियों के समूह जगा रहे थे अञ्जलि का काम देते पत्तों द्वारा मानो उदय पर्वत की चोटी पर स्थित (अब उदय हुए) सूर्य को ही रात की ओर से भारी

रासभरोमधूसरासु वनदेवताप्रासादानां तरूणां च शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्मपताकास्विव समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायसीकरिणि लुलितकमलवने रतखिन्नशबरसीमन्तिनीस्वेदजलकणापहारिणि, वनमहिषरोमन्थ-फेनबिन्दुवाहिनि चलितपल्लवलतालास्योपदेशव्यसनिनि विघटमानकमलखण्ड-मधुसीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजातजडिम्नि मन्दमन्द-सञ्चारिणि प्रवाति प्राभातिके मातरिश्वनि, कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानामिभ-

श्रीसूर्यमिवोद्दिश्याञ्जिल्य। पल्लवेति। पल्लवा एव किसलयान्येवाञ्जलयस्तैः समुत्सृजति प्रयच्छति सति। पुन. कासु सत्सु। रासभेति। रासभस्य बालेयस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वद्धूसरासु धूम्रवर्णासु। वनेति। वनदेवता काननाधिष्ठात्र्यस्तासां प्रासादाश्चैत्यानि तेषां तरूणां च शिखरेषु प्रान्तेषु पारावतानां कपोतानां माला श्रेणिस्तद्वदाचरन्तीति क्यन्तस्वाच्छानच्। तासु। धर्मेति। धर्मे यज्ञादौ पताका वैजयन्त्यस्तास्विव समुन्मिषन्तीषु समुत्सर्पन्तीषु। तप इति। तपोवने यदग्निहोत्रमग्न्याधानं तस्य धूमलेखा धूमस्तोमपङ्क्तयस्तासु। पुन कस्मिन्सति। प्राभातिकेति। प्राभातिके प्रत्यूषसंबन्धिनि मातरिश्वनि वायौ। 'मातरिश्वा जगत्प्राण पृषदश्वो महाबल' इति कोश। प्रवाति प्रवहमाने सति। कीदृशे। अवेति। अवश्यायो हिमं तस्य सीकरा यस्मिन्। 'वातास्त वारि सीकर' इति कोष। वायु विशेष-यन्नाह—लुलितेति। लुलितं कम्पितं कमलानां नलिनानां वनं खण्डं येन स तस्मिन्। रतेति। रतं मैथुनं तत्र खिन्ना खेदं प्राप्ता या शबरसीमन्तिन्यो भिल्लवध्वस्तासां यः स्वेदजलं प्रस्वेदवारि तस्य कणा बिन्दवस्तेषामपहारिणि हरणशीले। वनेति। वनमहिषा सैरिभास्तेषां रोमन्थश्चर्वितचर्वणं तस्य फेनं कफस्तस्य बिन्दव पृषन्ति तान्वहती त्येवंशील स तस्मिन्। चलितेति। चलिताः कम्पिता पल्लवा. किसलयानि यासामेवंविधा या लता वल्ल्यस्तासां लास्यं नृत्यं तस्योपदेशः शिक्षणं तस्य व्यसनं विद्यते यस्य स तस्मिन्। विघटेति। विघटमानानि विकाशं प्राप्यमाणानि यानि कमलखण्डानि नलिनवनानि तेषां मधु रसस्तस्य सीकरा वाता-

हुए (पुष्प) केशरों वाले फूल अर्पित कर रहा था, जब वहाँ गधों की बालों के समान भूरी-सी, वन देवताओं के महलों के समान प्रतीत होते वृक्षों के शिखरों पर (बैठे) कबूतरों की पङ्क्तियाँ सी प्रतीत होतीं और (ऊँची फहराती) धर्मपताका सी लहरातीं, तापस कुञ्जों में सम्पन्न किये जाते अग्निहोत्रों के धुए की पङ्क्तियाँ दिखायी देने लगीं, जब वहाँ ओस कणों से युक्त, (अपने मार्ग में पड़े) कमलवनों को आन्दोलित करती हुई काम क्रीडाओं से थकी शबर ललनाओं के स्वेद कणों को सुखाती हुई, जगली भैंसों द्वारा की गयी जुगालियों से उत्पन्न साग की बून्दों से युक्त, फड़फड़ाते पत्तों वाली लताओं को नृत्य की शिक्षा देने में आसक्त, खिलते कमलों की क्यारियों[1] से मधु की घनी फुहार की वर्षा करती हुई, (उड़ा कर लायी हुई) फूलों की अत्यन्त मीठी सुगन्ध से भौरों को तृप्त करती हुई रात्रि के अन्त समय में

१. कमल खण्ड = कमल समूह।

गण्डडिण्डिमाना मधुलिहा कुमुदोदरेषु विघटमानदलपुटनिरुद्धपक्षसहतीनामुच्चरत्सु हुंकारेषु, प्रभातशिशिरवाय्वाहतमुत्तप्तजतुरसाश्लिष्टपक्ष्ममालमिव सशेषनिद्राजिह्मतार चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैःशनैरूषरशय्याधूसरक्रोडरोमराजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरःकलहसकोलाहले, समुल्लसति नर्तितशिखण्डिनि, मनोहरे वनगजकर्णतालशब्दे, क्रमेण च गगनतलमवतरतो दिवस-

---

क्षिप्तकणास्तेषामासारो वेगवान्वर्षो विद्यते यस्मिन्स तथा तस्मिन्। कुसुमामोदेति। कुसुमानामामोद परागस्तेन तर्पित प्रीणितमलिजाल भ्रमरसमूहो येन स तस्मिन्। निशेति। निशाया रात्रेर्यदवसान प्रान्तस्तेन जाता जडिमा जडत्व यस्मिन्स तथा तस्मिन्। अतएव मन्द मन्द सचरत इत्येवशील स तथा तस्मिन्। पुन केषु। कुमुदोदरेषु कैरवान्तरेषु मधुलिहा हुकारेष्वव्यक्तशब्देषूच्चरत्सु भ्रुवत्सु सत्सु। इतो मधुलिहो विशेषयन्नाह—कमलेति। कमलवनाना प्रबोधपाठका मङ्गलपाठकास्तेषाम्। तथेभगण्ड एव हस्तिकरट एव डिण्डिम पटहो येषा ते तथा तेषा मधुलिहा भ्रमराणा विघटमानानि सकोच प्राप्यमाणानि यानि दलानि पत्राणि तेषा पुटानि कोशानि तेषु निरुद्धावरुद्धा पक्षसहतिश्छदसमूहो येषा ते तथा तेषाम्। पुन केषु सत्सु। वनमृगेति। वनमृगेष्वरण्यहरिणेषु शनै शनैश्चक्षुर्नेत्रमुन्मीलयत्सु विकासयत्सु। अथ चक्षुर्विशेषयन्नाह—प्रभातेति। प्रभात प्रत्यूषस्तस्य य शिशिर शीतलो वायु समीरस्तेनाहत पीडितम्। उत्तप्तेति। उत्तप्त उष्णीकृतो यो जतुरसो लाक्षारसस्तेनाश्लिष्टालिङ्गिता पक्ष्ममाला नेत्ररोमपङ्क्तिर्यस्य तदिव। सशेषेति। सशेषोर्वरिता या निद्रा तया जिह्मा कुटिला तारा कनीनिका यस्य तत्। कीदृशेषु वनमृगेषु। ऊषरेति। ऊषरा तृणरहिता या शय्या शयनस्थल तेन धूसरा धूम्रवर्णा क्रोडरोमराजिर्हृदयलोमपङ्क्तिर्येषा तेषु। पुन. कीदृशेषु। इतस्तत समन्ततो वनचरेष्वरण्यचारिषु सचरत्सु गच्छत्सु। पुन केषु सत्सु।

शीतलतावाली प्रात कालीन वायु धीरे धीरे चलने लगी, जब वहाँ कमल क्यारियों को जगाने (अर्थात् विकसित करने) में व्यस्त मगलपाठको अर्थात् भाट सरीखे, हस्तियों के मस्तको पर ढोल सरीखे (शब्द करते), (इस समय) दृढ़ता से बन्द हुई (कमल की) पंखुड़ियों के भीतर बन्दी बने पखों वाले, भ्रमरों की हुकार ध्वनि कमलों के भीतर से निकलने लगीं, जब वहाँ ऊसर (भूमिरूप) शय्या (पर सोने) से धूसर हुई उदर पर के बालो की पक्तियो वाले जगली हिरण, प्रात कालीन अतिशीतल वायु द्वारा आहत, मानो तपायी गयी लाख के द्रव से आपस मे जुड़ी हुई प्रतीत होतीं भौहोंवाली और उनमें नींद शेष रह जाने के कारण तिरछी कनीनिकाओं वाली अपनी आँखो को धीरे धीरे खोलने लगे, जब वहाँ वनचर इधर उधर चलने फिरने लगे, जब वहाँ पम्पासर (स्थित) हसों का कर्णप्रिय शोर होने लगा, मयूरों को नचाने वाला, हस्तियों के कानों की फड़फड़ाहट का मनोहारी शब्द फैलने लगा, जब, मजीठ रग के समान लाल (सूर्य की) किरणों का समूह ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो

करवारणस्यावचूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः-शनैरुदिते भगवति सवितरि पम्पासरःपर्यन्ततरुशिखरसचारिण्यध्यासितगिरिशिखरे दिवसकरजन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे, स्पष्टे जाते प्रत्यूषसि नचिरादिव दिवसाष्टमभागभाजि स्पष्टभासि भास्वति भूते, प्रयातेषु च यथाभिमतानि दिगन्तराणि शुककुलेषु, कुलायनिलीननिभृतशुकशावकसनाथेऽपि

विजृम्भेति। श्रोत्रहारिणि कर्णमनोहरे पम्पानाम्न सरस. कलहंसकोलाहले कादम्बकलकले विजृम्भमाणे प्रसृते सति। पुन केषु सत्सु। **समुल्लसतीति**। नर्तिता शिखण्डिनो मयूरा येन तस्मिन्मनोहरे रुचिरे वनगजानामरण्यकरिणा कर्णा एव ताला वाद्यविशेषास्तेषा शब्दो ध्वनिस्तस्मिन्समुल्लसति सति सम्यक्प्रकारेण प्रसरति सति। **क्रमेणेति**। क्रमेण परिपाट्या गगनतलमाकाशमार्गमवतरतोऽधिरोहतो दिवसकरवारणस्य सूर्यगजस्य। **अवचूलेति**। अव-चूलोऽधोमुखकूर्चको यश्चामरकलापस्तस्मिन्निवोपलक्ष्यमाणे दृश्यमाने मञ्जिष्ठस्य वस्तुविशेषस्य रागो रक्तिमा तेन लोहिते रक्तीभूते किरणजाले रश्मिसमूहे सति शनै शनैर्नातिशीघ्रं भगवति माहात्म्यवति सवितरि श्रीसूर्ये उदिते उदय प्राप्ते सति। कीदृशे। **पम्पेति**। पम्पासर पर्यन्तानि यानि तरुशिखराणि तेषु सचारो विद्यते यस्य स तथा तस्मिन्। **अध्येति**। अध्यासितान्या-श्रितानि गिरिशिखराणि पर्वतशृङ्गाणि येन स तस्मिन्। अथ बालातपं विशेषयन्नाह—**दिवसेति**। दिवसकरात्सूर्याज्जन्म यस्य स तथा तस्मिन्। हृता दूरीकृता तारा येन स तथा तस्मिन्। पुनस्तद-नन्तर कपीश्वरे सुग्रीव इव। तरुशिखरचारित्वात्तद्धृततारत्वाच्च तदुपमानम्। त वृक्ष पूर्वोक्तम-भिपतति व्याप्नुवति बालातपे नवीनालोके सति। तथा प्रत्यूषसि प्रभाते स्पष्टे व्यक्ते जाते सति नचिरादिव स्तोककालेनेव दिवसस्याष्टमो भागश्चतुर्घटिकात्मकस्त भजतीति भाक्। ण्विप्रत्ययान्त। तस्मिन्स्पष्टा भा कान्तिर्यस्य स तथा तस्मिन्भास्वति श्रीसूर्ये भूते जाते सति। पुन केषु। शुककुलेषु कीरव्रजेषु यथाभिमतानि यथेप्सितानि दिगन्तराणि दिग्विभागानि प्रयातेषु गतेषु सत्सु। **कुलायेति**। कुलाया नीडानि तेषु निलीना सुप्ता निभृतमत्यन्त शुकशावका.

वह क्रमश आकाशस्थ अपने मार्ग पर आगे बढ़ते सूर्यरूपी हस्ती की (अवचूल अर्थात्) झूल[1] के काम में आने वाला चँवरियों का समूह हो, जब सूर्य भगवान् धीरे धीरे उदित हो गये, जब पम्पासर के तटवर्ती वृक्षों के शिखरों पर फैली हुई, पर्वतों की चोटियों पर अधिकार जमाये हुई, सूर्य से उत्पन्न तथा नक्षत्रों को अदृश्य किये हुई, प्रातःकालीन धूप वन में आती हुई फिर ऐसी प्रतीत होने लगी कि वृक्षों की चोटियों पर रहने वाला, पर्वत की चोटियों पर बैठा, सूर्य का पुत्र (बालिद्वारा) अपहृत तारा (वधू) वाला, वानरपति (सुग्रीव) ही फिर से वन में आ रहा हो, जब प्रभात और अधिक स्पष्ट हो गया, जब मानों शीघ्र ही दिन के आठवें भाग को पार करके सूर्य चमक उठा, जब तोतों के झुण्ड अपनी अभीष्ट दिशाओं में चले गये, जब घोंसलों में छिपे मौन शुक शावकों वाला भी वह वृक्ष

---

१ अवचूल, (अवचूड), सजाने के लिए उठाया हुआ लटकता ढीला कपड़ा।

निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन्वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते मयि च शैशवाद-सजातबलसमुद्भिद्यमानपक्षपुटे पितुः समीपवर्तिनि कोटरगते, सहसैव तस्मिन्महावने सन्त्रासितसकलवनचरः सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुटशब्दसततः भीतकरिपोतचीत्कार-पीवरः प्रचलितलताकुलमत्तालिकुलक्वणितमासलः परिभ्रमदुद्घोणवनवराहरवघर्घरो गिरिगुहासुप्तप्रबुद्धसिंहनिनादोपबृंहितः कम्पयन्निव तरून्भगीरथावतार्यमाणगङ्गाप्रवाह-कलकलबहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत् । आकर्ण्य च

कीरशिशवस्ते सनाथेऽपि सयुक्तेऽपि बालकानामेकाकित्वेन भयवशान्नि शब्दतया तस्मिन्वनस्पतौ शाल्मलीवृक्षे शून्य इव सति । स्वेति । स्वस्य नीड कुलायस्तत्रावस्थित एव ताते पितरि मयि चेति । च पुनरर्थे । मयि पितुर्जनकस्य समीपवर्तिनि निकटवर्तिनि सति । अथ शिशु विशेष-यन्नाह—कोटरेति । कोटरगते निष्कुहस्थिते । शैशवादिति । शैशवाद्बाल्यादसजातमनुत्पन्न यद्बल तेन समुद्भिद्यमान विलीयमान पक्षपुट यस्य स तथा तस्मिन् । विधेयमाह—सह-सैवेति । तस्मिन्पूर्वोक्ते महावने सहसैवाकस्मादेव मृगयाखेटकस्तस्या कोलाहलध्वनि कल-कललक्षण शब्द उदचरदुदतिष्ठत् । अथ ध्वनिं विशेषयन्नाह—संत्रासितेति । सत्रासिता भय प्रापिता सकलवनचरा समग्रारण्यचारिणो येन स तथा । सरभसेति । सरभसेन वेगेन समुत्पतन्तो ये पतत्रिण पक्षिणस्तेषा पक्षपुटानि छदपुटानि तेषा शब्दो निनादस्तेन सम्यक्प्रकारेण ततो विस्तीर्ण । भीतेति । भीतास्त्रस्ता ये करिपोता कलभास्तेषा चीत्कारा शब्दविशेषास्तै पीवर पुष्ट । प्रचलितेति । प्रचलिता कम्पिता या लता वल्लयस्ताभ्याकुला व्याकुला ये मत्तालयो मत्तभ्रमरास्तेषा कुलानि तेषा क्वणितेन शब्दितेन मांसल पुष्ट । परीति । परिभ्रमन्त इतस्तत सचरन्त उद्घोणा उन्नतनासा ये वनवराहा अरण्यशूकरास्तेषा रव शब्दस्तेन घर्घर कठोर । गिरीति । गिरिगुहासु शैलकन्दरासु पूर्वं सुप्ता पश्चात्प्रबुद्धा उत्थिता ये सिंहाः केसरिणस्तेषा यो निनाद शब्दस्तेनोपबृंहितो वृद्धि प्राप्त । पुन किं कुर्वन्निव । तरून्वृक्षान्कम्प-

---

स्तब्धता छा जाने के कारण रिक्त सा ही हो गया, और जब मेरा पिता तो अपने घोसले में ही स्थित था और मैं, जिसमे अत्यन्त शैशव के कारण अभी बल उत्पन्न नहीं हुआ था तथा जिसके पख अभी आ ही रहे थे, अपने पिता के समीप ही, खोह में पड़ा था, तब वहाँ उस बडे जगल मे अचानक ही पशुओं के शिकार का शोर मच गया,—इस शोर ने सभी जगल निवासी जीवों को डरा दिया, शीघ्रता मे उड़े पक्षियों के पखों की फड़फड़ाहट से वह अधिक लम्बा हो गया, डरे हुए हस्ति शावकों की चिंघाड़ों से भारी (अक्षरार्थ मोटा) हो गया, हिली हुई बेलों से क्षुब्ध भौरों की गुजार से बढ गया (अक्षरार्थ मासयुक्त), चक्कर काटते, थूथनियों को ऊपर उठाये जगली सूअरों की घुर घुराहट से कर्णकटु हो गया, पर्वतों की गुफाओं में सोकर जागे हुए शेरों की दहाड़ों से घना हो गया, वृक्षों को मानो हिला ही दिया, वह भगीरथ द्वारा नीचे उतारी जाती हुई गगा की धारा की कलकल ध्वनि के समान शक्तिशाली था और उसको डरी हुई वन देवताओं ने सुना । और उस पहले कभी न सुने—अश्रुतपूर्व—शब्द

तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्जरितकर्णविवरो भयविह्वलः समीपवर्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्धया जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम् ।

अनन्तरं च सरभसमितो गजयूथपतिलुलितकमलिनीपरिमलः, इतः क्रोडकुलदश्यमानभद्रमुस्तारसामोदः, इतः करिकलभभज्यमानसल्लकीकषायगन्धः, इतो निपतितशुष्कपत्रमर्मरध्वनिः, इतो वनमहिषविषाणकोटिकुलिशभिद्यमानवल्मीकधूलिः,

यन्निव चालयन्निव । भगीति । भगीरथेन राज्ञावतार्यमाणोऽधस्तादानीयमानो यो गङ्गाप्रवाह स्वर्धुनीस्रोतस्तस्य य कलकलस्तद्वद्बहल. प्रभूतः । भीतेति । भीता भय प्राप्ता या वनदेवतास्ताभिराकर्णित श्रवणविषयीकृत । आकर्ण्य चेति । अहमश्रुतपूर्वं त शब्दमाकर्ण्य प्रतीकारबुद्ध्या भयनिवृत्त्युपायधिया समीपवर्तिनो निकटस्थस्य पितुर्जनकस्य जरया विस्रसया यच्छिथिल श्लथ पक्षपुटं तस्यान्तर मध्यमविश प्रविष्टोऽभवम् । कीदृशोऽहम् । उपेति । उपजातवेपथु सजातकम्पोऽर्भकतया बालतया तादृशशब्दश्रवणादेव जर्जरित प्रतिरुद्ध कर्णयो श्रवणयोर्विवरं छिद्र यस्य स तथा ।

अनन्तर चेति । पितु पक्षपुटान्तरप्रवेशानन्तरम् । चकार पूर्वसमुच्चये । कोलाहलमश्रृणवमित्यग्रेतनेन सबन्ध । तदेव दर्शयति—सरभसमित्यादि । इतोऽस्मिन्प्रदेशे सरभस वेगवत्तर गजयूथपतिना लुलिता मर्दिता या कमलिनी तस्या परिमल आमोद. । इत इति पूर्ववत् । क्रोडकुलैररण्यशूकरसमुदायैर्दश्यमाना भक्ष्यमाणा या भद्रमुस्ता गुन्द्रास्तासा रसो द्रवस्तस्यामोद परिमल । इत इति प्राग्वत् । करिणा कलभास्त्रिंशदब्दकास्तैर्भज्यमाना आमर्द्यमाना या सल्लक्यो गजप्रियास्तासा कषाय तुवरो गन्ध । इत इति प्राग्वत् । इत प्रदेशे निपतितानि पर्यस्तानि यानि शुष्कपत्राणि तेषा मर्मरध्वनिर्मर्मर इति शब्द । 'मर्मरी वस्त्रपत्रादे' इति कोश । इत इति । वनमहिषा गवलास्तेषा विषाणानि शृङ्गाणि तेषा कोटिरग्र तदेव कुलिश वज्रम् । अभेद्यत्वात्तदुपमानम् । तेन भिद्यमान छिद्यमान यद्वल्मीक शक्रशिरस्तस्य धूलिः पांसु । इत इति ।

को सुन कर मैं काप गया, अत्यन्त शिशु होने के कारण मेरे कान बहरे हो गये, डर से दु खी हुआ मैं, उस शब्द से अपना बचाव करने के विचार से, अपने समीपस्थ पिता के, बुढापे के कारण ढीले, पखों के भीतर घुस गया।

और इसके पश्चात् वृक्ष-कुञ्जों से अन्तरित शरीर वाले शिकार मे आसक्त हुए मनुष्यों की एक भारी भीड़ द्वारा किया गया वन को कम्पाता हुआ शोर सुना—वे आपस में चिल्लाकर नीचे लिखे शब्द कह रहे थे—"यह देखो, यहाँ[1] किसी गजयूथ के नेता द्वारा रौदे गये कमलों की गन्ध है । यहाँ शूकर यूथों द्वारा चबायी जाती हुई मुस्ता घास के रस की मधुर गन्ध है। यहाँ गज शिशुओं द्वारा तोड़े जाते हुए सल्लकी पौधों के रस की गन्ध आ रही है, यहाँ (पृथ्वी पर) गिरे सूखे पत्तों की सरसराहट (सुनायी देती) है। यहाँ जगली भैंसों के सींगों के अग्रभाग रूपी वज्र (वज्र के समान कठोर विषाण कोटियों) से तोड़ी जा रही

1 इत, 'अस्मिन् प्रदेशे'—इस अर्थ में अव्यय ।

इतो मृगकदम्बकम्, इतो वनगजकुलम्, इतो वनवराहयूथम्, इतो वनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डिमण्डलविरुतम्, इतः कपिञ्जलकुलकलकूजितम्, इतः कुररकुलक्वणितम्, इतो मृगपतिनखभिद्यमानकुम्भकुञ्जररसितम्, इयमार्द्रपङ्कमलिना वराहपद्धतिः, इयमभिनवशष्पकवलरसश्यामला हरिणरोमन्थफेनसहतिः, इयमुन्मदगन्धगजगण्ड-कण्डूयनपरिमलनिलीनमुखरमधुकरविरुतिः, एषा निपतितरुधिरबिन्दुसिक्तशुष्कपत्र-पाटला रुरुपदवी, एतद्द्विरदचरणमृदितविटपपल्लवपटलम्, एतत्खड्गिकुलक्रीडितम्,

मृगाणा हरिणाना कदम्बक समुदाय । इत इति । वनगजानामरण्यहस्तिना कुल समुदाय । इत इति । वनवराहा वनक्रोडास्तेषा यूथ वृन्दम् । इत इति । वनमहिषाणा वृन्द कुलम् । इत इति । शिखण्डिना मयूराणा मण्डल समूहस्तस्य विरुत कूजितम् । इत इति । कपिञ्जलाना गौरतित्तिराणां कुल समुदायस्तस्य कल मधुर कूजित शब्दितम् । इत इति । कुररो मत्स्यनाशनस्तस्य कुल पुत्रपौत्रादि तस्य क्वणित शब्दितम् । इत इति । मृगपति सिंहस्तस्य नखा पुनर्भवास्तैर्भिद्यमानो विदार्यमाण कुम्भ शिर पिण्डो येषामेवभूता कुञ्जरा हस्तिनस्तेषा रसितमाक्रन्दितम् । इयमिति । इय प्रत्यक्षाद्रोऽशुष्को य पङ्क कर्दमस्तेन मलिना मलीमसा वराहपद्धतिर्वनक्रोडमार्गः । इयमिति । इयमिति पूर्ववत् । अभिनवान्यचिरोत्पन्नानि यानि शष्पाणि बालतृणानि तेषा कवलो गुडस्तस्य रसस्तेन श्यामला मलिनैवविधा हरिणाना मृगाणा यो रोमन्थश्चर्वितचर्वण तस्य फेन कफस्तस्य सहति समूह । इयमिति । उन्मदा मदोन्मत्ता ये गन्धगजा गन्धेभा । सुरभिमदयुक्ता इत्यर्थ । तेषा गण्ड करटस्तस्य कण्डूयनेन कण्डूत्या य परिमल आमोदस्तस्मिन्निलीना आसक्ता मुखरा वाचाला ये मधुकरा भ्रमरास्तेषा विरुति-झंकार । एषा दृश्यमानेत्यर्थ । निपतितेति । निपतिता भूमौ स्रस्ता ये रुधिरबिन्दवो रक्तपृषतास्तै सिक्तानि सिञ्चितानि यानि शुष्कपत्राणि तै पाटला श्वेतरक्ता रुरुपदवी मृगविशेषमार्ग ।

बाम्भियों की धूल (उड़ रही) है। यहाँ हिरणों का एक झुण्ड है। यहाँ जगली हाथियों का खेड़ (परिवार ?) हैं, यहाँ जगली सूअरों का झुड है। यहाँ जगली भैंसों का समूह है। यहाँ मयूरों के झु ड की केकाध्वनि (सुन पड़ती) है। यहाँ कबूतरों के एक झुण्ड की मधुर ध्वनि (सुन पड़ती) है। यहाँ कुररीपरिवार की चीत्कार (सुन पड़ती) है। यहाँ सिंह के पजे से विदीर्यमाण मस्तक वाले (किसी) हाथी की चिंघाड़ (सुनायी देती) है। यह गीले कीचड़ से सनी सूअरों की पगडडी है। यह नई नई तथा हरी हरी[1] घास के कौर के रस से काली हुई, हरिणों की जुगाली की झाग का ढेर है। यहाँ यह मदोन्मत्त गन्धगज[2] के कपोलों को खुजाने से उठी गन्ध में ससक्त तथा गु जारते भौरों की 'हुम् हुम्' ध्वनि (सुनायी देती) है। यह (घायल मृग से) गिरे रक्त की बिन्दुओं से सिंचे (सने) सूखे पत्तों के कारण लाल हुई मृगविशेष—रुरु-की पगडंडी है। यह हाथी के पाँवों से रौंदे गये वृक्ष तथा उसके पत्तों का ढेर (पड़ा) है। यह वह स्थान है कि जहाँ

१ अभिनव।

२ एक विशेष जाति का गज, जिसकी गन्ध से दूसरे गज भागते हैं।

एष नखकोटिविकटविलिखितपत्रलेखो रुधिरपाटलः करिमौक्तिकदलदन्तुरो मृगपतिमार्गः, एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भरुधिरलोहिनी भूमिः, इयमटवीवेणिकानुकारिणी पक्षचरस्य यूथपतेर्मदजलमलिना, सचारवीथीचमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्, उच्छुष्कमृगकरीषपांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली, तरुशिखरमारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्यतामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः, अवहितैः स्थीयताम्, विमुच्यन्तां श्वान इत्यन्योन्यमभिवदतो मृगयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरितविग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमश्रृणवम्।

एतदिति। एतत्समीपतरवर्ति द्विरदा हस्तिनस्तेषां चरणा पादास्तैर्मृदितं मर्दितं विटपानां वृक्षाणां पल्लवपटलं किसलयसमूहो यस्मिन्नेतादृशं स्थलमित्यर्थः। एतदिति। एतद्दृश्यमानं खड्गिनां वार्ध्रीणसानां कुलं पौत्रादि तस्य क्रीडितं चेष्टितम्। एष इति। एष प्रत्यक्षोपलक्ष्यमाणो मृगपतिमार्गो नखरायुधपन्था। कीदृक्। नखकोटिभिर्नखराग्रैर्विकटा विपुला विलिखिता निर्मिता पत्रलेखा पर्णपङ्क्तिर्यस्मिन्स तथा रुधिरै रक्तैः पाटलः श्वेतरक्तः करिणां गजानां मौक्तिकानि मुक्ताफलानि तेषां दलानि खण्डानि तेन दन्तुरः स्थपुटः। एषेति। प्रत्यग्रप्रसूता नवप्रसविनी या नवमृग्यरण्यहरिणी तस्या गर्भो भ्रूणस्तस्य रुधिरं रक्तं तेन लोहिनी रक्तैषा भूमिः पृथ्वी। इयमिति। इयमटव्यरण्यभूमिर्वेणिकामलकपङ्क्तिमनुकरोतीत्येवंशीला सा तथा। कीदृशी। पक्षचरस्य समुदायचारिणो यूथपतेर्यूथनाथस्य मदजलेन दानवारिणा मलिना श्यामा। अनेन वेण्या साम्यमरण्यस्य सूचितम्। सचारेति। सचारवीथ्या गोचरमार्गे चमर्या गोविशेषस्य पङ्क्तिः परंपरा सा अनुगम्यतामनुव्रज्यताम्। युष्माभिरिति शेषः। उच्छुष्केति। इयं वनस्थली त्वरिततरं वेगवत्तरमध्यास्यतामधिश्रियताम्। कीदृशी। उत्प्राबल्येन शुष्कं वानं यन्मृगकरीषं हरिणच्छगणं तेन पांसुला निन्दिता। तर्विति। तरुशिखरं वृक्षाग्रमारुह्यतामारोहविषयीक्रियताम्। इयमभिमुखा दिगालोक्यतामालोकविषयीक्रियताम्। अयं शब्द आकर्ण्यतां श्रूयताम्। धनुश्चापो गृह्यतां स्वीक्रियताम्। अवहितैः सावधानैः स्थीयतामुपविश्यताम्। श्वानः कौलेयका विमुच्यन्तां प्रस्थाप्यन्तामित्यन्योन्यमिति पूर्वोक्तप्रकारेणान्योन्यं परस्परमभिवदतो

गैंडों का कोई दल खेलता रहा था। यह पैने नखाग्र से खिंची पत्रमयी रेखाओं वाला, रक्त से लाल, हाथियों के मोतियों के समूह से ऊँचा नीचा बना[1] शेर का रास्ता है। यह किसी अभी-अभी प्रसूता जगली हरिणी के गर्भ से लाल हुई भूमि है। यह किसी अपने झुंड से भटके (पक्षचरस्य) यूथाधिप हाथी के (बहते) मद रस से काला हुआ उसका वह मार्ग है जो अरण्यानी (रूपा महिला) की वेणी के सदृश है। चमरियों के झुंड का पीछा करो। हरिणों के सूखे गोबर से धूसरित हुए इस वन प्रदेश पर शीघ्र ही अधिकार कर लो, वृक्षों की चोटियों पर चढ जाओ। इस दिशा में देखो। यह शब्द सुनो। अपने धनुष पकड़ लो। सावधान हो जाओ। कुत्तों को खोल दो।"

---

१. जिस पर मोती बिखरे पड़े हैं ऐसा।

अथ नातिचिरादेवानुलेपनार्द्रमृदङ्गध्वनिधीरेण, गिरिविवरविजृम्भितप्रतिनाद-गम्भीरेण शबरशरताडितानां केसरिणां निनादेन सत्रस्तयूथमुक्तानामेकाकिनां च सचरतामनवरतकरास्फोटमिश्रेण जलधररसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठगर्जितेन, सरभससारमेयविलुप्यमानावयवानामालोलतरलतारकाणामेणकानां च करुणकूजितेन, निहतयूथपतीनां वियोगिनीनामनुगतकलभानां च स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकल-मुत्कर्णपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्रपतिविनाशशोकदीर्घेण करिणीनां

जल्पतो मृगयासक्तस्याखेटकासक्तस्य महतो महीयसो जनसमूहस्य जनवृन्दस्य तरूणां वृक्षाणां गहन निकुञ्जस्तेनान्तरितो व्यवधानीकृतो विग्रह शरीर यस्य स तथा तस्य क्षोभितकाननमा-न्दोलितारण्य यथा स्यात्तथा कोलाहलं कलकलमश्रृणवमश्रौषम् ।

अथेति । अथेत्यानन्तर्ये । नातिचिरादेव स्वल्पकालेनैव सर्वतोऽभित प्रचलितमिव कम्पितमिव तदरण्यमभवत् । केन । अन्विति । अनुलेपन द्रवद्रव्य तेनार्द्र क्लिन्नो यो मृदङ्गो मुरजस्तस्य ध्वनि शब्दस्तद्वद्धीरेण गम्भीरेण । गिरीति । गिरिविवरेषु पर्वतच्छिद्रेषु विजृम्भित प्रसृतो य प्रतिनाद प्रतिच्छन्दस्तेन गम्भीरेण मन्द्रेण । पुन केन । शबरेति । शबरा भिल्लास्तेषा शरा बाणास्तैस्ताडिताना व्यथिताना केसरिणा सिहाना निनादेन शब्देन । पुन केन । सत्रस्तेति । सत्रस्त चकित यद्यूथ तेन मुक्तानामेकाकिना च सचरता गच्छतामनवरत निरन्तर य करास्फोट. शुण्डाघातस्तेन मिश्र सवलितो जलधरो मेघस्तस्य रसित गर्जित तदनुकारिणा गजयूथपतीना हस्तिसमुदायनाथाना कण्ठगर्जितेन निगरणरसितेन । पुन केन । सरभसेति । सरभस वेगवत्तर सारमेयै श्वभिर्विलुप्यमाना दूरीक्रियमाणा अवयवा अपघना येषा ते तथा तेषामालोलाश्चञ्चला अत एव तरला स्फुटिता तारका कनीनिका येषामेवविधाना-मेणकाणा हरिणाना करुण करुणरसोत्पादक यत्कूजित शब्दित तेन । पुन केन । करिणीना हस्तिनीना चीत्कृतेन चीत्कारशब्देन । कीदृशेन । प्रत्यग्रेति । प्रत्यग्रस्तत्कालीनो य पति विनाशशोकस्तेन दीर्घेणायतेन । हस्तिनी विशेषयन्नाह—इतस्तत इति । इतस्तत समन्तत परिभ्रमन्तीना परिभ्रमण कुर्वन्तीनाम् । उत्कर्णेति । उदूर्ध्वं कर्णपल्लवा यासा तास्तासाम् ।

और फिर कुछ ही समय मे वह सारा जगल,—(खाल पर किये गये आटे के) लेप से गीले तबले की ध्वनि के सदृश गम्भीर, तथा पर्वतों की कन्दराओं में से बढकर आयी प्रतिध्वनि द्वारा और अधिक गम्भीर हुई शबरों के बाणों से बिन्धे शेरों की गर्जना से, डरे हुए (अपने) झुण्ड से पृथक् हुए और अकेले भटकते गजयूथो के नेताओं की निरन्तर सूड़ों को फटकारने से मिली मेघगर्जन के समान प्रतीत होती चिंघाड़ से और—बलपूर्वक शिकारी कुत्तों द्वारा काटे जाते अगोंवाले तथा (परिणामत) चचल एव सहमी हुई पुत लियों वाले हरिणों के करुण क्रन्दन से, मारे गये अपने स्वामियों वाली वियोगिनी, तथा (अपने) किशोर शिशुओं द्वारा अनुगम्यमान, ठहर ठहर कर और शब्द सुनकर (अपने) फड़फड़ाते कानो को ऊपर उठातीं, इधर-उधर भटकती हुई हथनियों की ताजे पति विनाश

चीत्कृतेन, कतिपयदिवसप्रसूताना च खड्गिधेनुकाना त्रासपरिभ्रष्टपोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखरसमुत्पतितानामाकुलाकुलचारिणा च पत्ररथाना कोलाहलेन, रूपानुसारप्रधाविताना च मृगयूथाना युगपदतिरभसपादपाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन, कर्णान्ताकृष्टज्याना च मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजितकलशबलितेन शरनिकरवर्षिणा धनुषा निनादेन, पवनाहतिक्वणितधाराणामसीना च कठिनमहिषस्कन्धपीठपातिना

किं कृत्वा। स्थित्वा स्थित्वा पूर्वोक्त कलकल समाकर्ण्य श्रुत्वा। **अन्विति**। अनुगताः पश्चाल्लग्ना कलभा यासा तास्तथा तासा वियोगिनीना विप्रलम्भयुक्तानाम्। **निहतेति**। निहता व्यापादिता यूथपतयो यासा तास्तथा तासाम्। पुन केन। आक्रन्दितेन रुदितेन। कासाम्। खड्गिधेनुकाना गण्डकस्त्रीणाम्। किं कुर्वतीनाम्। उन्मुक्तकण्ठ यथा स्यात्तथातिकरुणशब्दमारसन्तीनामारटन्तीनाम्। पुन कीदृशीनाम्। **त्रासेति**। त्रासेन भयेन परिभ्रष्टो नष्टो य पोतक स्तनन्धयस्तदन्वेषिणीना तद्विलोकनशीलानाम्। कतिपयेति। कतिपये कियन्तो ये दिवसा वासरास्तत्र प्रसूत याभिस्तासाम्। पुन केन। पत्रेति। पत्ररथाना पक्षिणा कोलाहलेन कलकलशब्देन। पक्षिणो विशेषयन्नाह—तर्विति। तरुशिखराणि वृक्षप्रान्तानि तेभ्य समुत्पतितानामुड्डीनानाम्। आकुलेति। आकुलाकुल यथा स्यात्तथा चारिणा गामिनाम्। पुन केन। **मृगेति**। मृगा हरिणास्तेषा यूथानि वृन्दानि तेषा चरणशब्देन क्रमणोत्थरवेण। कीदृशानाम्। रूपेति। रूप शक्तिस्तदनुसारेण प्रधाविताना प्रचलितानाम्। कीदृशेन चरणशब्देन। **युगपदिति**। युगपत् एकदैवातिरभस वेगवत्तर पादाना चरणाना पात पतन तेनाभिहताया भुव पृथिव्या। बलवद्द्रव्याघाताभावेन

के कारण हुए शोक के कारण लम्बी निकली चीत्कार से, और कुछ ही दिन (पूर्व) प्रसूता, आतक के कारण खोये गये अपने शिशुओ को खोजती फिरती, तथा ऊँचे ऊँचे[1] विलाप करतीं मादा गेंडाओं की करुण पुकार से, वृक्षों की चोटियों पर से उड़े, भारी व्याकुलता में इधर-उधर उड़ते फिरते पक्षियों की चीं चीं से, और पशुओं[2] के पीछे पीछे दौडे शिकारियों के, अत्यन्त वेग (युक्त) पॉवों से ताडित पृथ्वी को कम्पाते हुए शब्द से, कानों तक खींची गयी डोरियों वाले, बाणो की वर्षा करने वाले, नशे में चूर कुररियों के गलों से निकली मधुर ध्वनि से मिश्रित धनुषों की टङ्कार से और भैसे के कठोर कन्धे पर गिरने वाली और वायु की

---

१ उन्मुक्तकण्ठम् अर्थात् गला फाड़-फाडकर।

२ 'रूप मृगेऽपि ज्ञेयम्' इति हलायुध। रूप का अधिक कोई दृश्य आकृति अथवा वस्तु तथा शब्द भी है। ये सभी अर्थ यहाँ लग सकते हैं।

रणितेन, शुनां च सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीना वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्। अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन्मृगयाकलकले निर्वृष्टमूकजलधरवृन्दानुकारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमिततामुपगते कानने मन्दीभूतभयोऽहमुपजातकुतूहलः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरा प्रसार्य सत्रासतरलतारकः शैशवात्किमिदमित्युपजातदिदृक्षस्तामेव दिश चक्षुः प्राहिणवम्।

कम्पाभावेऽपि कम्पभ्रम इत्याह—**कम्पमिवेति**। जनयतोत्पादयता। पुन केन। धनुषा निनादेन चापशब्देन। धनूषि विशेषयन्नाह—**कर्णेति**। कर्णान्त श्रोत्रपर्यन्तमाकृष्टाकर्षिता ज्या गुणो येषा तानि तथा तेषाम्। **शरेति**। शराणा बाणाना निकर समूहस्त वर्षन्तीत्येवशीलानि यानि धनूषि तेषाम्। चापध्वनि विशेषयन्नाह—**मदेति**। मदेन कला मनोज्ञा या कुररस्य मत्स्यनाशस्य कामिनी स्त्री तस्या कण्ठकूजित तस्य कलो मधुरो ध्वनिस्तेन शबलितेन मिश्रितेन। पुन केन। **असीति**। असीना खड्गाना रणितेन शब्दितेन। असीन्विशेषयन्नाह—**पवनेति**। पवनस्य समीरणस्याहत्याहननेन क्वणिता. शब्दिता धारा येषा ते तथा तेषाम्। **कठिनेति**। कठिन कठोरो यो महिषस्कन्धो लुलायभुजशिर स एव पीठ स्थल तत्र पातिना पतनशीलानाम्। पुन केन। शुना सारमेयाणा वनान्तरव्यापिनारण्यमध्यप्रसरणशीलेन ध्वानेन शब्देन। शुनो विशिनष्टि—**सरभसेति**। सरभस सवेग विमुक्ता घर्घरध्वनयो येस्ते तथा तेषाम्। **अचिराच्चेति**। अचिरात् बहुकालेन प्रशान्ते शान्तिमुपगते मृगयाकलकलशब्दे सागर इव समुद्र इव स्तिमितता निश्चलतामुपगते प्राप्ते काननेऽरण्ये सति। सागर विशेषयन्नाह—**मथनेति**। मथनस्य विलोडनस्यावसान पर्यन्तस्तेनोपशान्त स्वस्वरूपेणावस्थित वारि जल यस्मिन्। **निर्वृष्टेति**। निर्वृष्टा कृतवर्षा मूका स्तनितशून्या ये जलधरा मेघास्तेषा वृन्द तदनुकर्तुं शील यस्य स तस्मिन्। **मन्दीति**। मन्दीभूत मन्दता प्राप्त भय भीतिर्यस्य स तथा। **उपेति**। उपजातमुत्पन्न कुतूहलमाश्चर्यं यस्य सोऽह पितुर्जनकस्योत्सङ्गात्क्रोडादीषदिव निष्क्रम्य किंचिदिवोन्नतो भूत्वा कोटरस्थ एव शिरोधरा ग्रीवा प्रसार्य विस्तार्य सत्रासेन भयेन तरला चञ्चला तारका कनीनिका यस्य स तथा शैशवाद्बाल्यात्किमिदमिति हेतो। तामेव दिश ककुभ प्रति चक्षुर्नेत्र प्राहिणवमप्रैषम्। किमिदमदृष्टपूर्वमित्युपजाता समुत्पन्ना दिदृक्षा द्रष्टु-

---

टकर से बजती धार वाली तलवारो की झणझणाहट से और जोर से घुरघुराते शिकारी कुत्तों के वन के भीतर सभी स्थानो मे व्याप्त शब्द से, वह जगल चारो ओर से मानो हिल ही गया था। शीघ्र ही जब शिकार की वह कल्कल समाप्त हो गयी, और वह जगल, जल बरसाये हुए तथा मौन हुए बादलो के समूह सा तथा मन्थन की समाप्ति पर शान्तजल वाले समुद्र की भाँति प्रशान्त—स्थिर हो गया तब मैंने, जिसका भय तो कम हो गया था और उत्सुकता उत्पन्न हो गयी थी, पिता की गोद से कुछ ही निकल कर, खोह मे बैठे ही बैठे (अपनी) गर्दन को फैलाकर, भय से कापती (अपनी) ऑखों की पुतलियों वाले तथा बचपन के कारण—यह सब क्या है, यह देखना चाहते हुए उस ही ओर दृष्टि पहुँचा दी।

अभिमुखमापतच्च तस्माद्वनान्तरादर्जुनभुजदण्डसहस्रविप्रकीर्णमिव नर्मदाप्रवाहम्, अनिलचलितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव कालरात्रीणा यामसघातम्, अञ्जनशिलास्तम्भसंभारमिव क्षितिकम्पविघूर्णितम, अन्धकारपुञ्जमिव रविकिरणाकुलितम्, अन्तकपरिवारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारितरसातलोद्भूतमिव दानवलोकम्, अशुभकर्मसमूहमिवैकत्र समागतम्, अनेकदण्डकारण्यवासिमुनिजनशापसार्थमिव सचरन्तम्, अनवरतशरनिकरवर्षिरामनिहतखरदूषणबलनिवहमिव

मिच्छा यस्य स ।

अभीति। तस्माद्वनान्तरान्ममाभिमुख समुखमापतदागच्छच्छबरसैन्य भिल्लानीकम्। तदहमद्राक्षमित्यग्रिमेणान्वय । तत्सैन्यं विशेषयन्नाह—अर्जुनेति। सहस्रार्जुनस्य राज्ञो भुजदण्डसहस्र बाहुसहस्र तेन विप्रकीर्णमितस्तत पर्यस्त नर्मदाप्रवाहमिव मेकलाद्रिजास्रोत इव। अनिलवशाद्वायुवशाच्चलितमितस्तत पर्यस्त तमालाना तापिच्छाना कानन वनमिव। एकीभूत मिश्रीभूत कालरात्रीणा तमस्विनीना यामसघातमिव। अञ्जनशिलाना श्यामशिलाना ये स्तम्भा स्थूणास्तेषा सभारमिव व्रातमिव। क्षितीति। क्षितिकम्पेन पृथ्वीप्रचलितेन विघूर्णित मूर्च्छितम्। अन्धकारपुञ्जमिव ध्वान्तपटलमिव। रवीति। रविकिरण सूर्यरश्मिभिराकुलित व्याकुलीभूतम्। अन्तकस्य यमस्य परिवारमिव परिच्छदमिव। किं कुर्वन्तम्। परिभ्रमन्तमितस्तत पर्यटन्तम्। अवेति। अवदारिताद्विदीर्णाद्रसातलादुद्भूतलादुद्भूत प्रकटीभूत दानवलोकमिव दैत्यलोकमिव। अशुभेति। एकत्र समागत मिलितमशुभकर्मण पापप्रकृते समूहमिव सघातमिव। अनेकेति। अनेके च ये दण्डकारण्यवासिमुनिजनास्तेषा शापाना सार्थं समूहमिव। कि कुर्वन्तम्। सचरन्त व्रजन्तम्। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर शरनिकर बाणसमूहं वर्षतात्येवशीलो यो रामो दशरथात्मजस्तेन निहतो व्यापादित खरदूषणस्य

और मैंने उस वन प्रदेश से अपनी ओर आते हुए एक शबर सैन्य को देखा। यह शबर सैन्य (कृतवीर्य के पुत्र) अर्जुन की सहस्र भुजाओं द्वारा (सहस्रों छोटी छोटी नदियों में) प्रवाहित नर्मदानदी की धारा सरीखा था मानो वायु के बल से हिलाया हुआ तमाल (वृक्षों) का जगल था, मानो प्रलय कालीन रात्रियों का एक स्थान पर ढेर किया हुआ प्रहरों का समूह था, मानो भूकम्प से चक्कर दिलाया हुआ अञ्जन की ईंटों के (बने) थम्भों का एक ढेर था[1] मानो सूर्य की किरणो से सक्षुब्ध (सारे) अन्धकार का पुञ्ज था। वह घूमता फिरता यम (मृत्यु) का परिवार था। मानो पाताल लोक को फोड़कर निकला हुआ दानव ससार था। मानो सारे अशुभ कर्मों का समूह एक स्थान पर आ गया था। मानो दण्डकवन के निवासी अनेक मुनियों के शापों का समूह था जो इधर-उधर घूम रहा था। या रामद्वारा मारी गयी खर एव दूषण की सेना का समूह ही मानो (राम के प्रति)

---

१ 'सम्भार' का अर्थ 'एकत्रित समूह' होना चाहिए। अथवा (पक्तिबद्ध) समूह था।

तदपध्यानात्पिशाचतामुपगतम्, कलिकालबन्धुवर्गमिवैकत्र सगतम्, अवगाहप्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचलशिखरस्थितकेसरिकराकृष्टिपतनविशीर्णमिव कालाभ्रपटलम्, अखिलरूपविनाशाय धूमकेतुजालमिव समुद्गतम्, अन्धकारितकाननम्, अनेकसहस्रसख्यम्, अतिभयजनकमुत्पातवेतालव्रातमिव शबरसैन्यमद्राक्षम्।

मध्ये च तस्य महतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्तमानम्, अतिकर्कशत्वादायसमयमिव निर्मितम्, एकलव्यमिव जन्मान्तरगतम्, उद्भिद्यमानश्मश्रुराजितया

षाताऽलङ्काधिपतेर्बलनिवह सैन्यसमूहस्तमिव। कीदृशम्। तस्मिन्रामचन्द्रेऽपध्यान दुश्चिन्तन तस्मात्पिशाचता भूततामुपगत प्राप्तम्। कलीति। कलिकाल कलियुगस्तस्य बन्धुवर्ग सहचरसमुदायमिव। एकत्रेति। एकत्र एकस्मिन्नेव स्थले सगत मिलितम्। अवेति। अवगाहो मज्जन तदर्थं प्रस्थित वनमहिषयूथमिव गवलवृन्दमिव। अचलेति। अचल पर्वतस्तस्य शिखर शृङ्ग तत्र स्थितो य केसरी महानागस्तस्य करौ हस्तौ ताभ्यामाकृष्टिराकर्षण तस्माद् यत्पतन अधःस्तेन विशीर्ण विशरारुता प्राप्त कालाभ्रपटलमिव मेघमालामिव। अखिलेति। अखिलानां समग्राणा यद्रूप तस्य विनाशाय नाशनाय समुद्गतमुदय प्राप्त धूमकेतुजालमिव केतुसमूहमिव। अन्धेति। अन्धकारित सजातान्धकार कानन येन तादृशम्। अनेकेति। अनेकानि सहस्राणि सख्या यस्य तत्तथा। अतीति। अतिभयमुत्कृष्टभीतिस्तस्य जनकमुत्पादकम्। किमिव। उत्पातोऽजन्यं तस्य वेतालव्रात देवविशेषसमूहमिव। भयोत्पादकमित्यर्थं। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

मध्ये चेति। तस्य पूर्वव्यावर्णितस्य महत शबरसैन्यस्य भिल्लबलस्य मध्ये मातङ्गनामान शबरसेनापतिमपश्यमद्राक्षमित्यन्वय। तमेव विशेषयन्नाह—प्रथमे इति। अत्र प्राथम्यमापेक्षि

दुर्भावना के कारण अब पिशाचों का समूह बनकर वहाँ आ गया था मानो कलियुग के सारे सम्बन्धी ही वहाँ एक स्थान पर इकट्ठे हो गये थे। मानो किसी पर्वत की चोटी पर बैठे हुए सिंह के हाथ की खींच द्वारा गिरने से छिन्न भिन्न हुए काले[1] बादलों का ढेर था। मानो सभी (वन्य) पशुओं के विनाश (की भविष्यवाणी करने) के लिये धूमकेतुओं का समूह प्रकट (उदित) हो गया था। उसने जगल को अन्धेरे से ढक दिया था। उसमें अनेक सहस्र सेनिक थे। वह अत्यन्त भयानक था। और यह अमगल की सूचना देने के लिये आए हुए वेताल समूह के सदृश था।

और उस बहुत बड़ी शबरसेना के बीच में मैंने शबर सेनापति को देखा। वह नवयुवक[2] ही था। उसका शरीर अत्यन्त कठोर होने के कारण मानो फौलाद का बना हुआ था, मानो नये (दूसरे) जन्म मे आया एकलव्य था, उसकी मूछों की रोम पक्ति अभी निकल

---

१ 'काल' शब्द का अर्थ 'काला' किया गया है। प्रलयकालीन अर्थ भी समुचित है।

२ 'प्रथमे वयसि' यहाँ प्राथमिकता वृद्धावस्था की अपेक्षा है अथवा प्रथम का अर्थ प्रमुख भी किया जा सकता है। मनुष्य की प्रथम अवस्था उसकी युवावस्था ही है।

प्रथममदलेखामण्ड्यमानगण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकुमारकम्, असितकुवलयश्यामलेन देहप्रभाप्रवाहेण कालिन्दीजलेनेव पूरितारण्यम्, आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केसरिणमिव गजमदमलिनीकृतेन केसरकलापेनोपेतम्, आयतललाटम्, अतितुङ्गघोरघोणम्, उपनीतस्यैककर्णाभरणता भुजगफणमणेरापाटलैरंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासाल्लग्नपल्लवरागेणेव, वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिरप्रहतगजकपोलगृहीतेन सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृष्णागरुपङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्ग-

---

कम्। तेन वार्धकापेक्षया प्रथम वयस्तत्र वर्तमानम्। अतिकर्कशत्वादतिकठिनत्वादायसमयमिव लोहमयमिव निर्मित रचितम्। कमिव। **एकेति**। एकलव्यो द्रोणाचार्यशिष्य शबरस्तमिव। कीदृशम्। **जन्मेति**। एकस्माज्जन्मनोऽन्यजन्मान्तर तत्र गत प्राप्तम्। **उद्भिति**। उद्भिद्यमानान्युत्पद्यमानानि यानि श्मश्रूणि तेषा राजि पङ्क्तिस्तस्या भावस्तत्ता तया प्रथमाद्या या मदलेखा तया मण्ड्यमानालक्रियमाणा गण्डभित्ति कपोलभित्तिर्यस्यैवभूतो यो गजयूथपतिर्गजनायकस्तस्य कुमारक कलभस्तमिव। **असितेति**। पूरित भृतमरण्य कानन येन स तथा तम्। केन। देहस्य शरीरस्य या प्रभा कान्तिस्तस्य प्रवाहेणौघेन। तमेव विशेषयन्नाह— **असितेति**। असित कृष्ण यत्कुवलय कुवेल तद्वत् श्यामलेन श्यामेन। केनेव। कालिन्दीजलेनेव यमुनाम्भसेव। यमुनाजल नीलम्, शबरदेहप्रभापि तादृशी, अतस्तयो साम्यम्। कमिव। **आकुटिलेति**। आ ईषत्कुटिलमग्र यस्यैवभूतेन स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केशकलापेनोपेत सहित गजाना व्यापादनलक्षणेन तन्मदेन दानवारिणा मलिनीकृतेन केसराणा कलापेन सटाना कलापेनोपेत सहित केसरिणमिव सिंहमिव। **आयतेति**। आयत विस्तीर्ण ललाटमलिकं यस्य स तम्। **अतीति**। अतितुङ्गात्युच्चा घोरा रौद्रा घोणा नासिका यस्य स तम्। **वामेति**। वामपार्श्वेन सव्यपार्श्वेन विराजमान शोभमानम्। तदेव विशेषयन्नाह— **पर्णेष्विति**। पर्णेषु पत्रेषु यच्छयन स्वापस्तत्र योऽभ्यास परिचयस्तेन लग्न पल्लवाना राग आरुण्य यस्मिंस्तथा तेन। अत्रोत्प्रेक्षा—नाय पल्लवैररुण किंस्वेकस्मिन्कर्णे आभरणता

ही रही थी, इस कारण वह उस हस्तिराज कुमार सरीखा प्रतीत हो रहा था जिसके (भित्तिसदृश) अर्थात् चौड़े कपोल प्रथम बार ही मदरेखाओं से भूषित किये जा रहे हों नीलकमल के सदृश—श्यामल शरीर काति के प्रभाव से वह मानो जगल को यमुना के जल से भर रहा था। कुछ कुछ टेढ़ हुए सिरो (अग्रभागों) वाले, कन्धे पर लटकते बालो के भार के कारण वह उस सिंह के सदृश प्रतीत होता था जो हाथी के मद से मैली हुई जटाओं के समूह से युक्त हो, उसका मस्तक चौड़ा था, उसकी बहुत ऊँची (उठी हुई) तथा भयानक नाक थी, एक कान का आभूषण बनाये हुई, एक कान पर आभूषण रूप मे पहनी हुई, साँप के फण से ली गयी मणि की लाल लाल सी किरणो से कुछ कुछ लाल रग के हुए अपने वामपार्श्व से सुशोभित वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो पत्तों पर सोने के अभ्यास के कारण ही उस पर (उसके वाम पार्श्व पर) पत्तों का रग लग गया था अभी-अभी मारे गये हाथी के कपोल से लिये गये गेंदे की सुगन्धवाले काले अगरु लेप की भाति सुगन्धित, मद का वह अपने अगों

रागम्, उपरि तत्परिमलान्धेन भ्रमता मायूरातपत्रानुकारिणा मधुकरकुलेन तमालपल्लवेनेव निवारितातपम्, आलोलपल्लवव्याजेन भुजबलनिर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनापमृज्यमानगण्डस्थलस्वेदलेखमापाटलया मृगकुलक्षयरात्रिसंध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या रञ्जयन्तमिवाशाविभागानाम्, जानुलम्बेन, कुञ्जरकरप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्मितेन चण्डिकारुधिरबलिप्रदानायासकृन्निशितश-

---

भूषणता उपनीतस्य प्रासस्य भुजगफणमणेरापाटलै श्वेतरक्तै अंशुभि किरणै आलोहितीकृतेन अरुणीकृतेनेव। इव भिन्नक्रम । **अचिरेति**। अचिर तत्काल प्रहतो यो गजस्तस्य कपोलाभ्या गृहीतेन सप्तच्छदानामयुक्छदाना य परिमलो गन्धस्त वहतीत्येवशील स तथा तेन। केनेव। कृष्णागरु काकतुण्डस्तस्य पङ्केनेव कर्दमेनेव सुरभिणा सुगन्धिना मदेन कृतोऽङ्गरागो विलेपन येन स तथा तेन। **उपरीति**। तस्य मदस्य य परिमलो गन्धस्तेनान्धेन विह्वलेनेति हेतु । उपर्युपरिष्टाद्भ्रमता भ्रमण कुर्वता। **मायूरेति**। मायूर मयूरसबन्धि यदातपत्र तदनुकारिणा मधुकरकुलेन भ्रमरसमुदायेन। केनेव। तमालपल्लवेनेव तापिच्छकिसलयेनेव निवारितो दूरीकृत आतप सूर्यालोको यस्य स तथा तम्। **आलोलेति**। आपाटलयेषच्छ्वेतरक्तया दृष्ट्या विन्ध्याटव्या विन्ध्यवनस्थल्या लोलाश्चञ्चला ये पल्लवा किसलयानि तेषा व्याजेन छलेन करतलेन हस्तेनेवापमृज्यमाना गण्डस्थलस्वेदलेखा यस्य तम्। विन्ध्याटवीं विशिनष्टि—**भुजेति**। भुजयोर्यद्बल वीर्यं तेन निर्जितया पराजितया। **भयेति**। भयमातङ्कस्तेन प्रयुक्तारब्धा सेवा यया। दृष्ट्या चक्षुषा। कीदृश्या। **मृगेति**। मृगकुलाना हरिणव्रजाना या क्षयरात्रिर्विनाशयामिनी तस्या सध्यायमानया सायकालवदाचरितया शोणितार्द्रयेव रक्तलिप्तयेव रञ्जयन्त शोभयन्तम्। केषाम्। आशाविभागाना दिग्विभागानाम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। **जान्विति**। भुजयोर्युगल बाहुद्वन्द्व तेनोपशोभित विराजमानम्। भुजयुग्म विशेषयन्नाह—**जान्विति**। जानुर्नलकीलस्तत्पर्यन्त यावल्लम्बेनायतेन। महापुरुषलक्षणम्। **कुञ्जरेति**। कुञ्जरो गजस्तस्य करप्रमाण शुण्डापरिमाण गृहीत्वेव निर्मितेन कृतेन। **चण्डिकेति**। चण्डिका काली तस्या रुधिरबलिप्रदानायासकृन्निरन्तर निशितानि तेजितानि यानि शस्त्राणि तेषामुल्लेखो घर्षण तेन

पर लेप किये था, कारण कि उसके (मदलिप्त शरीर के) ऊपर, उसकी गन्धसे पागल हुआ मोर पखों की छतरी-सरीखा बना काले भौंरों का समूह मडरा रहा था, इसलिये वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो तमाल के (काले) छतरी बनाये हुए पत्ते से (अपने ऊपर पड़ने वाली) धूप को हटा रहा हो। कान पर लगाये हुए पत्ते के बहाने बाहुबल द्वारा विजित, डर कर सेवा कर रही विन्ध्याटवी ही मानो अपनी हथेली से उसके कपोलों पर की स्वेद पक्ति को पोंछ रही थी। हरिणों के लिये कालरात्रि के सन्ध्या काल-सी बनी, कुछ कुछ लाल (अपनी) दृष्टि से वह मानो रक्त से ही लाल रग में रगी हुई दृष्टि से ही दिशाओं के प्रदेशो को रग रहा था। घुटनों तक लटकतीं, मानो हाथी के सूँड के माप से बनायी गयीं तथा चण्डी देवी को बलि देने के लिये तेज किये गये शस्त्रो द्वारा प्राय पड़ती खरोचों से

स्त्रोल्लेखविषमितशिखरेण भुजयुगलेनोपशोभितम्, अन्तरालग्नाश्यानहरिणरुधिर-विन्दुना स्वेदजलकणिकाचितेन गुञ्जाफलमिश्रैः करिकुम्भमुक्ताफलैरिव रचिताभरणेन विन्ध्यशिलाविशालेन चक्षुःस्थलेनोद्भासमानम्, अविरतश्रमाभ्यासादुल्लिखितोदरम्, इभमदमलिनमालानस्तम्भयुगलमुपहसन्तमिवोरुदण्डद्वयेन, लाक्षालोहितकौशेय-परिधानम्, अकारणेऽपि क्रूरतया बद्धत्रिपताकाभ्रुकुटिकराले ललाटफलके प्रबल-

विषमित स्थपुट शिखर भुजाग्र यस्य स तथा तेन। चक्षुरिति। चक्षु स्थलेन नेत्रस्थानेनोत्प्रा-बल्येन भासमान शोभमानम्। चक्षु स्थल विशिनष्टि—लग्नेति। अन्तरा मध्ये लग्नाश्याना शुष्का हरिणस्य मृगस्य यद्रुधिर रक्त तस्य बिन्दवो यस्मिन् तेन। स्वेदेति। स्वेदजल प्रस्वेद-वारि तस्य कणिका क्षुद्ररज कणिकास्ताभिराचितेन व्याप्तेन। रक्तश्वेतद्वयोपमानमाह—गुञ्जेति। रचित विरचितमाभरण भूषण यस्य तत्तथा तेन। कै। करिकुम्भमुक्ताफलैरिव हस्तिशिर पिण्डरसोद्भवैरिव। कीदृशै। गुञ्जाफलानि प्रसिद्धानि तैर्मिश्रै. सयुक्तै। विन्ध्येति। विन्ध्यपर्वतस्य जलबालकाद्रेर्वा शिला तद्वद्विशालेन विस्तीर्णेन। अविरतेति। अविरत निरन्तर शक्त्यतिशयार्थं श्रमस्तत्राभ्यास पुन पुन करण तस्मादुल्लिखित चिह्नितमुदर यस्य स तम्। इभेति। ऊर्वोर्यद्दण्डद्वयं तेनेभो गजस्तस्य मदो दानवारि तेन मलिन श्याममालान गजबन्धन स्तम्भस्तयोर्युगल द्वन्द्वमुपहसन्तमिव तिरस्कुर्वन्तमिव। लाक्षेति। लाक्षया जतुना लोहित रक्तीकृत यत्कौशेय कृमिकोशोत्थ तदेव परिधानमधोंशुक यस्य स तथा तम्। अकारणेति। अकारणेऽपि क्रोधाभावेऽपि क्रूरतया दुष्टतया बद्धा त्रिपताका त्रिवलिर्ययवभूता या भ्रुकुटि भ्रूकुटिस्तया कृत्वा कराले विकराले ललाटफलकेऽलिकपट्टे प्रबलभक्त्याराधितयोत्कृष्टभक्तिवशी-कृतया कात्यायन्या भवान्या मत्परिग्रहोऽयमिति मदीयोऽमिति त्रिशूलेन शस्त्रविशेषेणाङ्कितमिव चिह्नितमिव। श्वभिरिति। श्वभि. श्वानैरनुगम्यमानमनुव्रज्यमानम्। शुनो विशेषयन्नाह—

खुरदरे हुए अग्रभागों वाली दो बाहुओं से वह भव्य प्रतीत हो रहा था। विंध्य पर्वत शिला के तल के समान सुविस्तृत, जहाँ-तहाँ[1] (अर्थात् स्थान स्थान पर) लगे (और अब) थक्का बने हुए हरिणरक्त की बिन्दुओं से युक्त तथा पसीने की बूंदों से ढके (अपने) वक्षस्थल द्वारा वह ऐसा आकर्षक लग रहा था कि मानो उसने (बीच बीच में) रत्तियाँ मिले हुए, हस्तिमस्तक पर के मोतियों को अपना आभूषण बनाया हुआ था। निरन्तर किये गये (शारीरिक) श्रम द्वारा उसका मध्यभाग पतला हो गया था। वह अपनी दो लम्बी जघाओं से, मद से मलिन स्तम्भों का मानो उपहास कर रहा था, लाख से रंगी लाल पोशाक पहने हुआ था। किसी विशेष कारण के न होने पर भी, केवल अपने स्वभाव की क्रूरता ही के कारण, एक त्रिशाखी (पताका-जैसी) आकृति को धारण किये हुई ऊपर की चढ़ी हुई भौहों की कुटिलतासे भयङ्कर दिखायी देते उस के विशाल मस्तक पर मानो दुर्गा ने यह दिखाने के लिये कि यह मेरी सम्पत्ति है, त्रिशूल का चिन्ह बना दिया था। विविधरंगों के, उससे

१. बीच बीच में।

भक्त्याराधितया मत्परिग्रहोऽयमिति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः, श्रमवशाद्दूरविनिर्गताभिः स्वभावपाटलतया शुष्काभिरपि हरिणशोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैर्विवृतमुखतया स्पष्टदृष्टदन्तांशुन्दंष्ट्रान्तरालल्नकेसरिसटानिव सृक्कभागानुद्वहद्भिः स्थूलवराटकमालिकापरिगतकण्ठैर्महावराहदंष्ट्राप्रहारजर्जरैरल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजातकेसरैरिव केसरिकिशोरकैर्मृगवधूवैधव्यदीक्षादानदक्षैरनेकवर्णैः अभिरतिप्रमाणाभिश्च केसरिणामभयप्रदान-

---

उपेति। उपजात समुत्पन्न परिचय सागत्य यैस्ते तथा तै। अन्विति। अनु पश्चात् गच्छद्भि गामिभि। आवेद्येति। आवेद्यमानोऽन्येभ्यो ज्ञाप्यमान खेदो विषण्णता यै। काभि जिह्वाभी रसनाभि। एता विशिनष्टि—श्रमेति। श्रमवशात्खेदमाहात्म्यान्मुखाद्दूर विनिर्गताभिर्नि सृताभि। स्वभावेति। स्वभावो जातिस्वभावस्तेन पाटलतया श्वेतरक्ततया शुष्काभिरपि निर्लेपाभिरपि हरिणशोणित मृगरुधिर क्षरन्तीभिरिव स्रवन्तीभिरिव। किं कुर्वद्भिस्तै। विवृतेति। विवृत विदीर्णं यन्मुख तस्य भावस्तत्ता तया सृक्कभागानोष्ठप्रान्तदेशान्। 'दन्तवस्त्र च तत्प्रान्तौ सृक्कणी' इति कोश.। उद्वहद्भिरुत्प्राबल्येन वहमानै। तान्विशेषयन्नाह—स्पष्टमिति। स्पष्ट प्रकट दृष्टा अवलोकिता दन्तांशवो दशनत्विषो येषु ते तथा तान्। कामिव। दंष्ट्रान्तराले दाढामध्ये लग्ना या केसरिसटा सिंहस्कन्धकेसरा तामिव। स्थूलेति। स्थूला स्थविष्ठा ये वराटका कपर्दकास्तेषा मालिका मालास्ताभि परिगत सहित कण्ठो येषा ते तथा तै। महेति। महावराहा वनक्रोडास्तेषा दंष्ट्रा दाढास्तासा प्रहारा अभिघातास्तर्जर्जरै शिथिलाङ्गै। अल्पेति। अल्पकायैः स्वल्पशरीरैरपि महाशक्तित्वात्प्रौढपराक्रमत्वादनुपजात केसरैरनुत्पन्नसटै केसरिकिशोरकैरिव सिंहशावकैरिव। मृगेति। मृगवधूना हरिणपत्नीना यद्वैधव्यदीक्षादान विगतभर्तृकात्वव्रतदान तत्र दक्षैर्निपुणै। अनेकेति। अनेके बहवो वर्णा रक्तपीतादयो येषु ते तथा तै। पुन काभि। अतीति। अतिप्रमाणाभि प्रचण्डाभि केसरिणा सिंहानामभयप्रदान जीवरक्षण तस्य याचना प्रार्थना तदर्थमागताभि प्राप्ताभि

सर्वथा परिचित (हिले हुए), और उसके ठीक पीछे-पीछे लगे हुए कुत्ते उसके पीछे चले आ रहे थे, उन कुत्तों की थकावट के कारण दूर तक (लम्बी) निकली हुई तथा सूखी परन्तु (अपनी) प्राकृतिक लालिमा के कारण हरिण रक्त को चुवाती सी प्रतीत होतीं उनकी जिह्वाओं से खेद प्रकट हो रहा था, उन कुत्तों के मुख पूरे खुले हुए होने के कारण उनके दान्तों की किरणें उनके होठों के कानों पर पड़ी स्पष्ट दिखायी देतीं ऐसी लग रही थीं कि मानो वे दाढ़ो की दरारों मे फँसे सिंह के अयालो के बाल हों, उन कुत्तों की गर्दनें मोटी मोटी कौड़ियों की मालाओं से घिरी हुई थीं, वे बड़े सूअरों के दान्तों की मार से जर्जर हो गये थे, वे अल्प काय थे तो भी अपने भारी बल के कारण अनुत्पन्न जटाओं वाले सिंह-शावकों-सरीखे लग रहे थे, वे हरिणों की वधुओं को वैधव्य प्रदान करने मे चतुर थे, उस शबर सेनापति के पीछे, बहुत अधिक बड़ी बड़ी और (इस कारण अपने पतियों) सिंहों के लिये अभय

याचनार्थमागताभि' सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम्, कैश्चिद् गृहीतचमरबालगजदन्तभारैः कैश्चिदच्छिद्रपर्णबद्धमधुपुटैः कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गजकुम्भमुक्ताफलनिकरसनाथपाणिभिः कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः कैश्चित्प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः कैश्चित्क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः कैश्चित्कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः समुत्खातविधृतगजदन्तैः

सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभि श्वानपत्नीभिश्च सहेति भाव'। शबरेति। शबरवृन्दैभिल्लसमूहै परिवृतमावेष्टितम्। कीदृशै। कैश्चिदिति। गृहीता स्वीकृताश्चमराणा गवयानां बाला केशा गजाना दन्ताश्च तेषा भार समूहो यैस्ते तथा तै। कैश्चिदिति। अच्छिद्रपर्णैर्निबिडपत्रैर्बद्धानि मधुन पुटानि यैस्ते तथा तै.। कैश्चिदिति। मृगपतिभिरिव सिंहैरिव गजाना हस्तिना कुम्भा शिर'पिण्डा तेषा मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषा निकर समूहस्तेन सनाथ सहित पाणिर्येषा ते तथा तैरित्यभङ्गश्लेष। कैश्चिदिति। यातुधानैरिव राक्षसैरिव गृहीत पिशितस्य मासस्य भारो यैस्ते तथा तै। अत्राप्यभङ्गश्लेष। कैश्चिदिति। प्रमथैरिव पार्षदैरिव केसरिणा सिंहाना कृत्तयश्चर्माणि धरन्तीत्येवशीलैस्तद्धारिभि। कैश्चिदिति। क्षपणकैरिव दिगम्बरैरिव मयूराणा बर्हिणा पिच्छानि छदानि धरन्तीत्येवशीला धारिणस्तै। भिल्ला अपि हतमयूरपिच्छधारिणो भवन्तीति श्लेष। कैश्चिदिति। शिशुभिरिव बालकैरिव काकपक्ष शिखण्डकस्तद्धारिभि। भिल्लपक्षे काकाना नक्तप्रजाना पक्षाश्छदास्तद्धारिभि। कैश्चिदिति। कृष्णचरित विष्णुविजृम्भित दर्शयद्भि प्रकाशयद्भिरिव पूर्वं समुत्खाता सम्यक्प्रकारेणोत्पाटिता पश्चाद्विशेषेण धृता गजदन्ता यैस्ते तथा ते। कृष्णेनापि बाल्ये गजहननक्षण इत्थमेवाचरितमिति साम्यम्। कैश्चिदिति। जलदस्य मेघस्यागमो येष्वेत्वंविधैर्दिवसैर्वासरैरिव जलधरो मेघस्तस्य छायातपाभावस्तद्वन्मलिनानि कश्मलान्यम्बराणि वस्त्राणि येषा ते तथा तै। पक्षे जलधरच्छायया मलिनमम्बर व्योम येष्विति विग्रह। अनेकेति। अनेके बहवो वृत्तान्ता

अर्थात् दया की प्रार्थना करने आयीं सिंहनियाँ सरीखी प्रतीत होती कुतियाँ, आ रही थीं। वह शबर समूहों (शबर सैनिकों) से घिरा हुआ था—जो विविध कार्यों मे व्यस्त थे, किन्हीं ने चमर (हरिण) के बालों और हाथियों के दान्तों के भार उठाये हुए थे; कुछ ने छिद्र रहित पत्तों मे मधु के छत्ते बाधे हुए थे, कुछ के हाथ हस्तियों के मस्तक पर के मोतियों के गुच्छों से युक्त थे—इस कारण वे मानो सिंह ही थे, कुछ ने राक्षसो की भाँति मास के भारी बोझ उठाये हुए थे, कुछ ने शेरों की खालें धारण की हुई थीं, मानो कि वे शिवजी के गण ही हों, कुछ मोर पख धारण किये हुए थे—मानो कि वे क्षपणक सन्यासी ही हों, कुछ कौओं के पख उठाये हुए थे—मानो कि वे कौओं के परों की आकृति के बाल बनाये बालक थे, कुछ (हाथियों के) दान्त उखाड़ कर धारण किये हुए थे और इस प्रकार वे मानो कृष्णजी के व्यवहार को प्रदर्शित कर रहे थे—(कृष्ण जी ने अपने शत्रु कस द्वारा बन्धनमुक्त कुवलयपीड नाम के हस्ती का दाँत उखाड़ कर एक शस्त्र की भाँति उसको

कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैरनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्, अरण्यमिव सखड्गधेनुकम्, अभिनवजलधरमिव मयूरपिच्छचित्रचापधारिणम्, बकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेकमहानागदशनम्, भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, निदाघदिवसमिव सततार्विर्भूतमृगतृष्णम्, विद्याधरमिव मानसवेगम्, पाराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव

अरित्राणि येषा ते तथा तै । अरण्येति । अरण्य वन तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—सखड्गेति । खड्ग कौक्षेयको धेनुका कृपाणिका ताभ्या सह वर्तमानम् । पक्षे खड्गो वार्ध्रीणसो धेनुका वशा ताभ्या युक्तमित्यर्थं । अभीति । अभिनव प्रत्यग्रो यो जलधरो मेघस्तमिव मयूराणा पिच्छानि तद्वच्चित्र विविधवर्णधारि यच्चाप धनुस्तद्धत्त इत्येवशील स तथा तम् । पक्षे मयूरपिच्छवच्चित्र चापमिन्द्रधनुस्तद्धारिणम् । बकेति । बकाभिधानो राक्षसो यातुधानस्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—गृहीतेति । गृहीत धृतमेकमद्वितीय चक्र येन स तम् । पक्षे गृहीता स्वायत्तीकृतैकचक्राभिधाना पुरी येनेति विग्रह । अरुणेति । अरुणानुजो गरुडस्तद्वदिव । उभयोरैक्य प्रदर्शयन्नाह—उद्धृतेति । उद्धृता उत्पाटिता अनेकेषा महानागाना बहुमहाहस्तिना दशना दन्ता येन स तथा तम् । पक्ष उद्धृता मुखान्निष्कासिता अनेकमहानागानां दशना दन्ता येनेति विग्रह । भीष्मेति । भीष्मो गाङ्गेयस्तमिव । उभयो सादृश्यमाह—शिखण्डीति । शिखण्डिनो बर्हिणस्तेषा शत्रुम् । तद्वधकारित्वात् । पक्षे शिखण्डी पाण्डवपक्षीयो वर्षवरस्तस्य शत्रु विपक्षम् । निदाघेति । निदाघो ग्रीष्मकालस्तस्य दिवसमिव

धारण किया था), कुछ ने बादलों के रग-सरीखी काली पोशाकें पहनी हुई थी और उसमे वे वर्षा ऋतु के उन दिवसों की भाँति लग रहे थे कि जिनमे आकाश बादलों के रग से काला हो जाता है। खड्गधेनुका—एक छोटी तलवार सहित वह शबर सेनापति, खड्गधेनुका अर्थात् मादा गैडों से भरे अरण्य के समान था, मयूर की पूँछसे युक्त धनुष को धारण किये हुए वह मयूरपिच्छ की भाँति बहुरगी तथा इन्द्रधनुष को धारण (प्रदर्शित) करते नये बादल सरीखा था। (शस्त्ररूप मे) एक चक्र को लिये हुआ वह, एकचक्र नाम के नगर के विजेता बकराक्षस सरीखा था। अनेक बड़े-बड़े हाथियों के दाँतों को उखाड़े हुआ वह, बहुत से बड़े सर्पों के (विष) दन्तों को उखाड़ने वाले अरुण के कनिष्ठ भ्राता गरुड़-सरीखा था। 'शिखण्डी' के शत्रु भीष्म की भाँति वह भी मोरों (शिखण्डियों) का शत्रु था। निरन्तर आविष्कृत की हुई मृगों (के शिकार) की प्यास वाला वह सेनापति उस ग्रीष्म ऋतु के दिन-सरीखा था जिसमे 'मृगतृष्णा' की घटना सदा दिखायी देती है। मानसवेग—मानस झील की ओर उत्सुकता से जाने वाले—विद्याधर की भाँति वह भी मानसवेग था अर्थात् उसकी चाल मन जितनी द्रुत थी (अथवा वह अभिमान सहित सक्रिय था)। योजनगन्धा अर्थात् सत्यवती का अनुगमन करने वाले, उससे प्रेम करने वाले, पाराशर की भाँति वह एक योजन दूर से भी गन्ध का पीछा कर सकता था। भीम का पुत्र होने के कारण घटोत्कच ने जैसे भीम का रूप धारण किया था—

भीमरूपधारिणम्, अचलराजकन्यकाकेशपाशमिव नीलकण्ठचन्द्रकाभरणम्, हिरण्याख्यदानवमिव महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षःस्थलम्, अतिरागिणमिव कृतबहुबन्दीपरिग्रहम्, पिशिताशनमिव रक्तलुब्धकम्, गीतकलाविन्यासमिव निषादानुगतम्,

दिनमिव। उभयो साम्यमाह—सततेति। सतत निरन्तर वनादाविर्भूता प्रकटीभूता ये मृगा हरिणास्तेषु तृष्णा हननेच्छा यस्य स तम्। पक्ष आविर्भूता प्रकटिता मृगतृष्णा मरीचिका येष्विति विग्रह। विद्येति। विद्याधरो व्योमगस्तद्वदिव। उभयो साम्यार्थमाह—मानसेति। मानेनाहकारेण सवेग सर्वदा तीव्रगति। पक्षे मानसे मानसाभिधाने सरसि गतिर्गमन यस्येति विग्रह। पारेति। पाराशरो व्यासस्तमिव। उभयो सादृश्यमाह—योजनेति। योजन गन्धो विद्यते यस्मिन्नित्यर्शआदित्वादच्प्रत्यय। योजनगन्ध कस्तूरीमृगस्तमनुसरतीत्येवशील, स तम्। योजनगन्धा शीत तमनुसारिणमिति वा। पक्षे 'व्यासमातरि। कस्तूरीशीतयोश्च' इति कोश। घटेति। घटोत्कचो हिडिम्बासुतस्तमिव। उभयो सादृश्यमाह—भीमेति। भीम भयकारि यद्रूप तद्धारिणम्। पक्षे भीमस्य वृकोदरस्य रूपमाकृतिस्तद्धारिणम्। तत्पुत्रत्वात्। अचलेति। अचलराजो हिमाचलस्तस्य कन्यका पार्वती तस्या केशपाश केशकलापस्तमिव। उभयोस्तुल्यतामाह—नीलेति। नीलकण्ठो मयूरस्तस्य चन्द्रका मेचकास्तेषामा समन्ताद्भरण धारण यस्मिन्स तथा तम्। पक्षे नीलकण्ठो महादेवस्तस्य यश्चन्द्र एव चन्द्रकस्तदेवाभरण यस्मिन्। अर्धनारीत्वादिति भाव। हिरण्येति। हिरण्याख्यो हिरण्यकशिपु दानव, दैत्यस्तमिव। उभयो साम्य दर्शयन्नाह—महेति। महावराहा वनसूकरास्तेषा दंष्ट्रा दाढास्ताभिर्विभिन्न विहितक्षत वक्ष स्थल भुजान्तर यस्य स तथा तम्। द्वितीयपक्षे भगवता कृष्णेन महावराहरूपमाधाय हिरण्याक्षस्य वक्ष स्थल विदारितमिति प्रसिद्धि। अतीति। अतिरागिणमतिरागाभिभूतमतियशोभिलाषुकं तमिव। उभयोस्तुल्यतामाह—कृतेति। कृतो विहितो बहुवन्दीना प्रहाणा परि सामस्त्येन ग्रहो येन स तम्। पक्षे कृतो बहुवन्दिना वैतालिकाना परिग्रह, स्वीकारो येनेति विग्रह। 'श्लेषे स्वरो

उसने एक भयानक रूप धारण किया हुआ था। अचलराज अर्थात् हिमालय की कन्या पार्वती के सुप्रचुर (घने) बाल, नीलकण्ठ शिवजी के चन्द्र से आभूषित रहने के कारण 'नीलकण्ठ चन्द्रकाभरण' हैं वैसे वह भी मयूरो की पुच्छों पर के चन्द्राकार शिखण्डकों से आभूषित था, अतएव 'नीलकण्ठचन्द्रकाभरण' था। हिरण्याक्ष दानव के वक्षस्थल को महावराह—वाराहावताररूपी विष्णु ने फाड़ा था इस कारण वह 'महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षःस्थल' था। इसी प्रकार वह शबर सेनापति भी बड़े सुअरों के दाँतों से (बनाये गये घावों से) दाग लगे विशाल वक्षःस्थल वाला था। अत्यन्त विषयासक्त व्यक्ति बन्दी बनायी गयीं—बलात् छीनकर बन्दी बनाई गयीं स्त्रियो का परिग्रह कर लेता है, उन्हें अपनी पत्नी बना लेता है, उसने भी बहुत-से दासों को अपनी सेवा में रखा हुआ था अथवा बाह्य दिखावा करनेवाले प्रेमी व्यक्ति की भाँति उसने भी अपनी सेवा मे बहुत से भाट रखे हुए थे। मांसभोजी राक्षस रक्तपायी होता है उसके साथ शिकारी सम्बद्ध थे। संगीत कला में (स्वरों की) व्यवस्था के अन्त मे निषाद स्वर आता है। वह 'निषादों' से अनुगत

अम्बिकात्रिशूलमिव महिषरुधिरार्द्रकायम्, अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम्, कृतसारमेयसग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्, अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य,

---

न गण्यते' इति ह्रस्वदीर्घार्थं श्लेष । **पिशितेति** । पिशिताशनो मासभक्षकस्तद्वदिव । उभयोस्तुल्यत्वमाह—**रक्तेति** । रक्ता अनुरक्ता लुब्धका व्याधा यस्मिन्स तथा तम् । पक्षे रक्ते रुधिरे लुब्ध एव लुब्धक । सस्पृह इत्यर्थ । **गीतेति** । गीतकला गेयविज्ञान तस्या विन्यासो रचना तमिव । उभयो साम्यमाह—**निषादेति** । निषादा भिल्लास्तैरनुगत पश्चाद्गतम् । पक्षे निषादस्तन्त्रीकण्ठोद्भव स्वर । 'निषादर्षभगान्धार—'इति कोश । तेनानुगत सहितम् । **अम्बिकेति** । अम्बिका भवानी तस्यास्त्रिशूल शस्त्रविशेषस्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—**महिषेति** । महिषो रक्ताक्षस्तस्य रुधिर रक्त तेनार्द्र स्विन्न कायो देहो यस्य स तम् । तदपि तादृशमित्यभङ्गश्लेष । **अभिनवेति** । अभिनव मनोहारि प्रत्यग्र वा यौवन तारुण्य यस्यैवभूत मपि क्षपितानि बहूनि वयासि येनेति विरोध । परिहारपक्षे क्षपिता बहवो वयस पक्षिणो येनेति विग्रह । **कृतेति** । कृतो विहित सारस्य धनस्य मेयस्य मातु योग्यस्यान्नादे सग्रह स्वीकारो येनैवभूतमपि फलमूलान्येवाशन भक्षण यस्येति विरोध । परिहारपक्षे कृत सारमेयाणा कुक्कुराणा सग्रहो येनैवभूतम् । **कृष्णेति** । कृष्ण विष्णुमपि सुदर्शनेन रहितमिति विरोध । परिहारपक्षे कृष्ण श्यामवर्णमत एवासुदर्शन भीमदर्शनम् । भयोत्पादकत्वादिति भाव । **स्वच्छन्देति** । स्वच्छन्देन स्वेच्छतया चारश्चरण यस्यैवभूतमपि दुर्गकोट्टमेकमद्वितीय शरणमाश्रयो यस्येति विरोध । परिहारपक्षे दुर्गा भवान्येक शरण यस्येति विग्रह । **क्षितिभृदिति** । क्षितिभृद्राजा तस्य पादाश्चरणास्तदनुवर्तिनमपि तत्समीपस्थायिनमपि राजसेवा नृपसपर्या तस्या अनभिज्ञमकुशलमिति विरोध । तत्परिहारपक्षे क्षितिभृत्पर्वतस्तस्य पादा पर्यन्तपर्वतास्तदनुवर्तिन तत्र स्थायिनमिति विग्रह । **अपत्येति** । विन्ध्याचलस्य जलबालकाद्रेरपत्यमिव प्रसूतिमिव ।

था । दुर्गा का त्रिशूल महिषासुर के रुधिर से गीले तल वाला है—उसने अपने शरीर को भैसो के रक्त से गीला कर रखा था । वह नवयुवक था तो भी उसने अपने जीवन का बहुत सा भाग व्यतीत कर लिया था (अर्थात् वृद्ध था) ? नहीं नहीं, वह बहुत से पक्षियों को मार चुका था । कृष्ण था फिर भी सुदर्शन चक्र रहित था ? नहीं नहीं उसकी चमड़ी काली थी और दखने मे आकर्षक नहीं था । यद्यपि उसने धन (सार) और अन्न (मेय) का सग्रह किया हुआ था तो भी फलमूल ही उसका भोजन था ? नहीं नहीं, उसने बहुत से कुत्ते एकत्रित कर रखे थे । यद्यपि वह अपनी इच्छानुसार जिधर चाहता उधर फिरता था तो भी वह (रक्षा के लिये) एक दुर्ग का ही आश्रय लिये हुआ था ? नहीं नहीं, अकेली दुर्गादेवी ही उसका आश्रय थीं । यद्यपि वह राजा के चरणों का अनुगामी (राजा पर निर्भर) था, तो भी उसको किसी राजा की सेवा का ज्ञान नहीं था ? नहीं नहीं, वह किसी पर्वत के समीपस्थ किसी पहाड़ी पर रहता था । (उत्पन्न होने तथा उसीमे पलने के कारण) वह मानो विन्ध्य पर्वत का

अंशकावतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, ³सारमिव कलिकालस्य, भीषणमपि महासत्त्वतया गम्भीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, अभिभवनीयाकृतिं मातङ्गनामान शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधान तु पश्चात्तस्याहमश्रौषम्।

आसीच्च मे मनसि—'अहो, मोहप्रायमेतेषा जीवित साधुजनगर्हित च चरितम्। तथा हि। पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजनगर्हितो मधुमासादिः, श्रमो मृगया, शास्त्र शिवारुतम्, समुपदेष्टारः सदसता कौशिकाः, प्रज्ञा

अंशेति। कृतान्तस्य यमस्याशकावतारमिवैकदेशावतारमिव। सहोदरेति। पापस्यैनस सहोदरमिव सोदर्यमिव। सारेति। कलिकालस्य कलियुगस्य सारमिव सर्वस्वमिव। भीषणेति। भीषणमपि भयजनकमपि महच्च तत्सत्त्व च महासत्त्व तस्य भावस्तत्ता तया गम्भीरमिव गाम्भीर्यगुणयुक्तमिवोपलक्ष्यमाण परिदृश्यमानम्। परैरिति शेष। अभीति। अभिभवनीया तिरस्करणीयाकृतिराकारो यस्येति स तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। अभिधान तु पश्चात्तस्याहमश्रौष तस्य सेनापतेरभिधान नामाहं पश्चात्तद्दर्शनानन्तरमश्रौषमाकर्णयम्। अनुचरमुखादिति शेष।

आसीच्चेति। मे मम मनसि चित्त आसीद् बभूव। खेद इति शेष। तदेव दर्शयति—अहो इत्यादिना। अहो इत्याश्चर्ये। एतेषा भिल्लाना जीवित प्राणित मोहोऽज्ञान प्राय प्रचुर यत्र तादृशम्। च पुनरर्थे। चरितमाचरण साधुजनै सज्जनजनैर्गर्हित निन्दितम्। तदेव विशेषतो दर्शयति—तथा हीति। पुरुषेति। पुरुषस्य पुसो यत्पिशित मास तस्य य उपहारो भगवत्यै नैवेद्यदर्शन तस्मिन्धर्मबुद्धि. श्रेयोधी। आहार इति। आहार प्रत्यवसान साधुजनैर्गर्हितो निन्दितो मधुमासादिर्मधु मद्य माक्षिक वा। मास प्रतीतम्। ते आदौ यस्येति बहुव्रीहि। आदिशब्दात्कन्दादिपरिग्रह। श्रम इति। श्रम शक्तिसाधनायास मृगयाखेटक। शास्त्रमिति। शिवा शृगाली तस्या रुत शब्दित शास्त्रमुच्चस्वरवेदपाठ। प्रबोधजनकत्वसाम्यात्तदुपमानम्। सदिति। सदसता शुभाशुभाना समुपदेष्टारो बोधका कौशिका उलूका।

पुत्र था, मानो वह यमदेवता का आंशिक अवतार था, मानो पाप का सगा भाई था, मानो कलियुग का निचोड़ था। यद्यपि वह भयानक था तो भी अपने अत्यन्त बल के कारण वह गम्भीर सा दिखायी देता था। उसका शरीर अनादृत नहीं किया जा सकता था (अनादर करनेवाला चैन से नहीं रह सकता था।) उसका नाम मातङ्ग था। किन्तु उसका यह नाम मुझे पीछे से ज्ञात हुआ था।

और मेरे मन में हुआ (मैंने मन ही मन सोचा)—"आश्चर्य है कि कितना मूर्खता-भरा (अज्ञानपूर्ण) जीवन है इनका! और उनके कार्य सज्जनों द्वारा कितने निन्दित हैं। उदाहरण के लिये, नरमास की बलि देना वे अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। भोजन इनका सज्जनों द्वारा निन्दित शराब मास आदि है। इनका शारीरिक व्यायाम शिकार खेलना है। इनका शास्त्र (निर्देशक सिद्धान्तों का विधान) शृगालों की 'हुवा हुवा' है। इनको अच्छे-बुरे (कर्मों) का उपदेश देने वाले उल्लू हैं। इनकी बुद्धि (मुख्यतया) पक्षियों (की रीतियों)

शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्यास्वटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्मसाधनानि धनूंषि, सहाया विषदिग्धमुखा भुजगा इव सायकाः, गीतमुत्साहकारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि बन्दीगृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह सवासः पशुरुधिरेण, देवतार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्येण जीवनम्, भूषणानि भुजंगमणयः, वनकरिमदैरङ्गरागः, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वते' इति चिन्तयत्येव मयि शबरसेनापतिरटवीभ्रमणसमुद्भव श्रममपनिनीषुरागत्य

प्रज्ञेति। शकुनय पतत्रिणस्तेषा स्थूलमहत्त्वादिना ज्ञान तदेव प्रज्ञा विवेकबुद्धि । परीति। श्वान सारमेया॰ परिचिता विश्वासपात्राणि। राज्यमिति। शून्यासु जनरहितासु अटवीषु विन्ध्याटवीषु राज्य स्वामित्वम्। आपानकेति। उत्सव॰ सतुष्टिकार्यं तदेवापानमेवापानकम्। स्वार्थे क । पानगोष्ठिका। मित्राणीति। क्रूर यत्कर्म तत्साधनानि तद्धेतुभूतानि धनूष्येव चापान्येव मित्राणि सुहृद । हितचिन्तकानीति यावत्। सहाया इति। विषेण दिग्ध निन्दित मुखमानन येषामेवविधा सायका बाणास्त एव सहाया इष्टकार्यकर्तृत्वात्साहाय्यकारिण। क इव। भुजगा सर्पा इव। एतेषा विषदिग्धमुखत्व स्वाभाविकम्। तेषामौपाधिकमिति भाव । गीतमिति। मुग्धा अनभिज्ञा ये मृगा हरिणास्तेषामुत्साहकारि स्तब्धताविधायि गीत गानम्। कलत्रेति। परयोषितोऽन्यस्त्रिय एव बन्दी प्रहस्तद्रूपत्वेन गृहीता स्वीकृता कलत्राणि स्वपत्न्य । क्रूरेति। क्रूरात्मभिर्दुष्टात्मभि॰ शार्दूलैश्चित्रके सम सवास सहावस्थानम्। पश्विति। पशवो महिषास्तेषा रुधिरेण रक्तेन देवतार्चन देवपूजनम्। मांसेनेति। मासेन पिशितेन बलिर्हन्तकारस्तत्कर्म तत्कृत्यम्। चौर्येणेति। चौर्येण परद्रव्यापहारेण जीवन प्राणधारणम्। भूषणानीति। भूषणान्याभरणानि भुजगमणय सर्परत्नानि। पर्वतवासित्वात्तेषा ते सुलभा इति भाव । वनेति। वनकरिणामरण्यहस्तिना मदैर्दानवारिभिरङ्गरागो विलेपनम्। यस्मिन्निति। यस्मिन् अनिर्दिष्टनामनि कानने वने निवसन्ति निवास कुर्वन्ति तदेव काननमशेषत समग्रत उत्खातमुत्पाटित मूल मध्यभागो यस्यैवभूत कुर्वते विदधत इति पूर्वोक्तप्रकारेण

को जान लेने मे चलती है। इनके परिचित कुत्ते हैं। इनका शासन (राज्य) निर्जन जगलों पर है। पानगोष्ठी अथवा मदिरा पान का दौर ही इनका (मुख्य) उत्सव है। क्रूर कर्मों के साधनभूत धनुष ही इनके मित्र हैं। इनके सहायक विष लिप्त सिरों वाले तथा (विष भरे दाँतों वाले) सर्पों के सदृश बाण हैं। इनका सगीत सीधे सादे हरिणों का उत्सादकारी—विनाश करने वाला है। इनकी पत्नियाँ (इनके द्वारा) बन्दी बनायी गयी दूसरों की स्त्रियाँ हैं। क्रूर प्रकृति चीतों के साथ इनका निवास है। इनकी देवपूजा पशुओं के रक्त से (की जाती) है। (देवताओं को) बलि देने का कर्म वे मास से करते हैं। उनका निर्वाह लूट खसोट से (होता) है। उनके आभूषण सर्पों की मणियाँ हैं। उनके शरीर का उबटन जगली हाथियों के मदरस से (किया जाता) है। वे जिस किसी भी वन मे जा बसते हैं उसको पूर्णतया जड़ें उखाड़ कर नष्ट कर डालते हैं।"—जब मैं इस प्रकार सोच ही रहा था तो वह शबर सेनापति जगल में घूमने-

तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामवतारितकोदण्डस्त्वरितपरिजनोपनीतपल्लवासने समुपाविशत्। अन्यतरस्तु शबरयुवा ससम्भ्रममवतीर्य तस्मात्करयुगलपरिक्षोभिताम्भसः सरसो वैडूर्यद्रवानुकारि प्रलयदिवसकरकिरणोपतापादम्बरैकदेशमिव विलीनम्, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम्, द्रुतमिव मुक्ताफलनिकरम्, अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडम्, अरविन्दकोशरजःकषायमम्भः कमलिनीपत्रपुटेन प्रत्यग्रोद्धृतांश्च

मयि चिन्तयति ध्यायति सत्येव स शबरसेनापतिस्तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामागत्य। त्वरितेति। त्वरित शीघ्र परिजनेन परिच्छदेनोपनीतमानीत यत्पल्लवासन किसलयासन तस्मिन्समुपाविशत्तस्थिवान्। किं कर्तुमिच्छु। अपनिनीषु अपनेतु दूरीकर्तुमिच्छु। कम्। श्रम खेदम्। एतदेव विशेषयन्नाह—अटवीति। अटव्या भ्रमणमितस्तत पर्यटन तस्मात्समुद्भव समुत्पन्नम्। सेनापतिं विशेषयन्नाह—अवेति। अवतारितम् अनधिज्य कृत कोदण्ड धनुर्येन स तथा। तु पुनरर्थे। अन्यतर कश्चिदनिर्दिष्टनामा। शबरश्चासौ युवा चेति कर्मधारयः। न तु शबराणां युवेति निर्धारणे षष्ठ्या समास। 'न निर्धारणे' इति षष्ठ्या सह समासनिषेधात्। ससम्भ्रम सवेगमवतीर्य तदन्त प्रविश्य तस्मात्पम्पाभिधानात्सरस कासारात्कमलिनी नलिनी तस्या पत्रपुटेनाम्भ पानीय तथा धौत क्षालित पङ्कः कर्दमो यासा ता अतएव निर्मला विशदा या मृणालिका कमलिन्यस्ताश्च समुपाहरदानीतवानित्यन्वय। सरो विशिनष्टि—करेति। करयुगलेन हस्तद्वयेन परिक्षोभित विलोडितमम्भ पानीय यस्य तत्तथा तस्मात्। अथाम्भो विशेषयन्नाह—वैडूर्येति। वैडूर्यं बालवायज तस्य द्रव कल्कस्तदनुकारि तत्सदृशम्। अत्युज्ज्वलवर्णत्वात्तदुपमानम्। प्रलयेति। प्रलयस्य कल्पान्तस्य यो दिवसकर सूर्यस्तस्य किरणा दीधितयस्तेषामुपतापादुष्णाद्विलीन क्षरितमम्बरस्याकाशस्यैकदेशमिवैकप्रविभागमिव। इन्दुमण्डलाच्चन्द्रबिम्बात्प्रस्यन्दितं क्षरितमिव। तथा मुक्ताफलस्य रसोद्भवस्य निकर समूह द्रुतमिव द्रवोपयुक्तमिव। अत्यच्छतया अतिस्वच्छतया तादृशभ्रमेऽपि शीतस्पर्शेनानुमेयमनुमातुं योग्य हिमेन

फिरने से हुई थकावट को मिटाने के लिये आकर उस ही शाल्मली वृक्ष के नीचे, छाया में धनुष उतार जल्दी जल्दी सेवकों द्वारा लाये गये पत्तों के आसन पर बैठ गया। उनमें से कोई दूसरा शबर युवा जल्दी-जल्दी (उस झील मे) उतर कर, (काई आदि हटाने के लिये) दोनों हाथों से हिलाये जलों वाली उस झील मे से कमलिनी के पत्ते से बनाये दोनो मे जल और ताजे तोड़े हुए (उनपर लगे हुए) कीचड़ को धोकर साफ किये हुए बिसतन्तु भी ले आया। वह (चमकीला) जल वैडूर्यमणि के द्रव (द्रवीकृत वैडूर्यमणि) के सदृश था, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह जल प्रलयकालीन सूर्य की किरणों की ऊष्मा से पिघला आकाश का एक भाग ही हो, मानो कि वह जल चन्द्रमण्डल से चूकर (रिस कर) आया हो, मानो कि वह द्रव हुआ मोतियों का समूह हो, वह इतना अधिक (पूर्णतया) स्वच्छ था कि उस (उसकी उपस्थिति) का ज्ञान (अनुमान) केवल स्पर्श से ही किया जा सकता था, बर्फ जितना ठंढा था, उसमे कमल-कलिकाओं का पराग मिला हुआ था। पराग की गन्ध अथवा

धौतपङ्कनिर्मला मृणालिकाः समुपाहरत्। आपीतसलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैःशनैरभिमत दिगन्तरमयासीत्।

एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात्पुलिन्दवृन्दादनासादितहरिणपिशितः पिशिताशन इव विकृतदर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव तरुतले मुहूर्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च शबरसेनापतौ स जीर्णशबरः पिबन्निवास्माकमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रूल-

---

तुहिनेन जड स्तब्धता प्रापितम्। अरविन्दस्य कमलस्य य कोश कर्णिकाधारस्तस्य रज परागस्तेन कषाय तुवरम्। कमलिनीर्विशेषयन्नाह—प्रत्यग्रेति। प्रत्यग्र तत्कालमुद्धृता उत्खाता। आपीतेति। आपीत पानविषयीकृत सलिल येनैवंभूत सेनापति सैन्यनायक। क्रमेण जल पानानन्तर ता मृणालिका अदशदभक्षयत्। क कामिव? सैंहिकेयो राहु स यथा शशिकला श्चन्द्रकला अश्नाति। अपेति। अपगतो दूरीभूत श्रम खेदो यस्य स उत्थायोत्थान कृत्वा परि पीताम्भसा कृतजलपानेन सकलेन समग्रेण तेन पूर्वोक्तेन शबरसैन्येन भिल्लबलेनानुगम्यमान शनै शनै कृताखेटकवृत्तित्वेन त्वराभावादभिमत समीहितम्। एकस्या दिशः सकाशादन्या दिशो दिगन्तरमयासीदगमद्। 'या प्रापणे' इत्यस्य लुङि रूपम्।

एकतमस्त्विवति। तु पुनरर्थे। एकतम कश्चिज्जरच्छबर स्थविरभिल्लस्तस्मात्पुलिन्द वृन्दाच्छबरसमुदायादनासादितमप्राप्त हरिणपिशित मृगमास येनैवभूत पिशितार्थी मासार्थी। पिशितेति। पिशितमश्नातीति पिशिताशनो व्याघ्रस्तद्वदिव विकृत दर्शन यस्य स तस्मिन्नेव तरुतले पूर्वोक्तवृक्षाध एकमुहूर्तमिव घटिकाद्वयमिव व्यलम्बत तद्गमनानन्तर विलम्ब चकार। तथा शबरसेनापतौ भिल्लनायकेऽन्तरिते वृक्षादिना व्यवहिते सति स पूर्वोक्तो जीर्णशबरोऽस्माकं पक्षिणामायूंषि जीवितानि पिबन्निव पान कुर्वन्निव शुकाना कीराणा यानि कुलानि तेषा कुलाया नीडानि तेषा स्थानानि स्थलविशेषाणि गणयन्निव तत्सख्या कुर्वन्निव। कया दृष्ट्या। इतो दृष्टिं विशेषयन्नाह—रुधिरेति। रुधिरस्य रक्तस्य यो बिन्दु पृषत्तद्वत्पाटलया श्वेतरक्तया। कपिलेति। कपिला पिङ्गला या भ्रूलता तस्या परिवेष परिधिस्तेन भीषणया भयकारिण्या।

उसके कसैले स्वाद से मुक्त था। सेनापति ने पानी पीकर उन बिष तन्तुओं को एक एक करके इस प्रकार निगला जैसे कि राहु चन्द्रमा की कलाओं को निगलता है। जब उसकी थकान मिट गयी तो वह उठा और जल पिये हुई उस सारी शबर सेना द्वारा अनुगम्यमान वह शबरसेनापति धीरे-धीरे अपने अभीष्ट प्रदेश की दिशा में चला गया।

किन्तु, उस शबर सेना में से एक बूढा शबर, जिसको मृग का मास नहीं मिला था और जो मासभक्षी (असुर) जैसा अत्यन्त भयङ्कर दिखायी देता था, (खाने के लिये) मास की इच्छा वाला, उस बृक्ष के नीचे कुछ समय रुक गया। और जब शबर सेनापति आँखों से ओझल हो गया तो उस वृद्ध शबर ने उस वृक्ष पर चढना चाहते हुए उस (वृक्ष) का जड़ से चोटी तक निरीक्षण किया। उस समय वह ऐसा दिखायी दिया कि मानो वह अपनी रक्त

तापरिवेषभीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शुककुलकुलायस्थानानि श्येन इव विहगामिषस्वादलालसः सुचिरमारुरुक्षुस्त वनस्पतिमा मूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन्क्षणे तदालोकनभीताना शुककुलानामसुभिः। किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्। यतः स तमनेकतालतुङ्गमभ्रंकषशाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्य ताननुपजातोत्पतनशक्तीन्काश्चिदल्पदिवसजातान्गर्भच्छविपाटलाञ्छाल्मलीकुसुमशङ्कामुपजनयतः, काश्चिदुद्भिद्यमानपक्षतया नलिनसवर्तिकानुकारिणः, काश्चिदर्कफलसदृशान्, काश्चि-

पुन प्रकारान्तरेण तमेव विशेषयन्नाह—श्येनेति। श्येन इव शशादन इव विहगाना पतत्रिणा यदामिष मास तस्यास्वादो भक्षण तत्र लालसो लम्पटस्त वनस्पति शाल्मलीवृक्षमारुरुक्षुरारोढुमिच्छु सुचिर चिरकाल यावत्। आ मूलान्मूल मर्यादीकृत्यामूल तस्मात्प्रान्तपर्यन्तमपश्यदव्यलोकयत्। उत्क्रान्तमिवेति। तस्मिन्क्षणे तस्मिन्प्रस्तावे तस्य यदालोकन वीक्षण तेन भीताना भयप्राप्ताना शुककुलानामसुभि प्राणैरुत्क्रान्तमिव निर्गतमिव। हीति। हि यस्मात्कारणादकरुणाना निर्दयाना किमिव दुष्करम्। न किमपीत्यर्थ। सर्वमेवाकृत्य कुर्वन्तीति भाव। यत स भिल्लस्त पादपमनेके ताला वृक्षविशेषास्तद्वत्तुङ्गमुच्चम्। अभ्रमिति। अभ्रंकषमभ्रलिह शाखाना शिखरं प्रान्तो यस्यैवभूतमप्ययत्नेनैव प्रयासव्यतिरेकेणैव सोपानैरिवारोहणैरिवारुह्यारोहण कृत्वा तस्य वनस्पते शाखान्तरेभ्यश्च शुकशावकानेकैक प्रत्येकं तस्य भावस्तत्ता तया फलानीव सस्यानीव तानग्रहीदादत्तेत्यन्वय। इत शुकशिशून्विशेषयन्नाह—अन्विति। अनुपजातानुत्पन्नोत्पतनशक्तिर्नभोगमनसामर्थ्यं येषा ते तथा तान्। काश्चिदिति। अल्पदिवसजातान्स्वल्पदिनप्रभवान्। गर्भेति। प्रत्यग्रोत्पन्नस्य गर्भस्य या छवि कान्तिस्तस्या पाटलाञ्श्वेतरक्तान्। किं कुर्वत। उपजनयत उत्पादयत। काम्। शाल्मलीवृक्षस्य यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषा

बिन्दुओं सरीखी लाल, भूरी-भूरी लताओं सरीखी भौंहों के घेरे के कारण भयानक दिखायी देती दृष्टि से हमारे जीवन को पी रहा हो, मानो तोतो के घोंसले के स्थानों को गिन रहा था, मानो पक्षियों के मास को चखने का लोभी कोई बाज था। उस समय उसको देख कर डरे हुए तोतों के प्राण तो मानों (उनके शरीरों से) विदा हो गये थे। करुणाविहीनों के लिये भला कौन सा काम कठिन होता है। क्योंकि वह उस (एक पर एक रखे) अनेक ताल ऊँचे गगनचुम्बी शाखाओं वाले वृक्ष पर भी, सरलता से, मानो सीढ़ी ही लगाकर चढ़ गया—और चढ़कर उस वृक्ष की शाखाओं के बीच मे से और उसकी खोहों से विरोध करने मे असमर्थ, तोतों के शिशुओं को उसने एक एक करके ऐसे ले लिया कि मानो फलों को ले लिया हो। वे शिशु (इतने छोटे थे कि) उड़ नहीं सकते थे, कुछ तो कुछ दिन के ही हुए थे और गर्भ के रग से (अभी तक) लाल ही थे—इस कारण उनको देखकर 'शाल्मली वृक्ष के फूल हैं—यह गलत प्रभाव[1] उत्पन्न हो रहा था। कुछ ऐसे थे कि उनके पख अभी निकल ही रहे थे, इस कारण वे कमल की नयी पत्तियों[2] सरीखे प्रतीत होते थे। कुछ अर्क के

१. शका—(wrong impression)

२ 'सवर्त्तिका नवदलम्'—इति कोश

ल्लोहितायमानचञ्चुकोटीनीषद्विघटितदलपुटपाटलमुखाना कमलमुकुलाना श्रिय-मुद्वहतः, काश्चिदनवरतशिरःकम्पव्याजेन निवारयत इव प्रतीकारासमर्थानेकैकतया फलानीव, तस्य वनस्पतेः शाखान्तरेभ्यश्च शुकशावकानग्रहीत्। अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत्।

तातस्तु त महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमुपनतमालोक्य द्विगुणतरोपजातवेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्ततरलतारको विषादशून्यामश्रुजलप्लुता दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमस्त्रासस्रस्तसधिशिथिलेन

शङ्कामारेकाम्। तत्कुसुमानामपि श्वेतरक्तत्वादेतेषा च तथात्वादुपमानोपमेयभाव। काश्चि-दिति। उद्भिद्यमाना प्रादुर्भूयमाना ये पक्षास्तेषा भावस्तत्ता तया नलिनाना कमलाना सवर्तिका नवदलम्। 'सवर्तिका नवदलम्' इति कोश। अनेनातिनैर्मल्य द्योत्यते। तदनुकारिणस्तत्सा-दृश्यभाज। काश्चिदिति। अर्को मन्दारस्तस्य फलानि तै सदृशास्तत्तुल्यान्। काश्चिदिति। लोहितायमाना रक्तायमानाश्चञ्चूना त्रोटीना कोट्य अग्रभागा येषा ते तथा तान्। काश्चित्किं कुर्वत.। श्रिय शोभामुद्वहत उत्प्राबल्येन धारयत। केषाम्। कमलमुकुलाना नलिनकुड्मला नाम्। कीदृशानाम्। ईषत्किंचिद्विघटित विकसित यद्दलपुट तेन पाटल श्वेतरक्त मुख येषां तानि तथा तेषाम्। पुन शिशून्विशिनष्टि—अनेति। अनवरत निरन्तर य शिर कम्पस्तस्य व्याजो मिष तेन निवारयत इव 'वय बालका, अस्मासु दया कर्तव्या, मास्मान्जहि' इति निवारणा कुर्वत इव। कीदृशान्। प्रतीकारो वधनिवृत्त्युपायस्तत्रासमर्थान्सामर्थ्यवर्जितान्। अपेति। अपगता असव प्राणा येषामेवविधास्तान्कृत्वा विधाय क्षितौ भूमावपातयदचिक्षिपत्।

तातस्तु मत्पिता तु मा क्रोडविभागेनोत्सङ्गप्रदेशेनावष्टभ्यालम्बनीकृत्य तस्थौ तस्थिवा नित्यन्वय। तथा महान्त महीयासमकाण्ड एवाप्रस्ताव एव प्राणहर जीवितनाशकृतमप्रतीकार-मचिकित्स्यमुपप्लवमुपद्रवमुपनत प्राप्तमालोक्य निरीक्ष्य। अथ तत्पितर विशेषयन्नाह—द्विगुणतरेति। द्विगुणतर पूर्वस्माद्द्विगुणित उपजात समुत्पन्नो वेपथु कम्पो यस्य स तथा। मरणेति। मरणभयान्मृत्युत्रासादुद्भ्रान्ता अतिशयेन भ्रमितास्तरलाश्चञ्चलास्तारका कनीनिका

वृक्ष के फलो सरीखे थे। कुछ जिनकी चोंचो के अग्रभाग लाल लाल थे, वे, कुछ ही विकसित हुई, (अपने) पत्तो की तहो के कारण लाल हुए सिरो वाली कमल कलिकाओं की (भाँति) सुन्दर थे। कुछ मानो लगातार हुए अपने शिर कप के बहाने ही उसको वैसा न करने को कह रहे थे। और उन सबको उनके प्राणो से वियुक्त कर उसने पृथ्वी पर फैंक दिया।

अब जब मेरे पिता ने उस प्राणघातक असाध्य महाविपद् को, अचानक ही आते हुए देखा, तो उसका कम्प दुगुना हो गया, मृत्यु के भय के कारण उसकी पुतलियाँ घूम गयीं और अस्थिर हो गयीं, शोक के कारण अपनी सूनी तथा आँसुओं से धुँधली दृष्टि उसने चारों ओर फैंकी, उसका तालु सूख गया, (अपने लिये विरोध करने मे असमर्थ अर्थात्) अपना बचाव करने में असमर्थ उसने भय से ढीले पड़े जोड़ो के कारण खुले (ढीले) हुए पखों के

पक्षसपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितं प्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः किंकर्तव्यताविमूढः क्रोडविभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ। असावपि पापः शाखान्तरैः सञ्चरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासितभुजगभोगभीषणं प्रसार्य विविधवनवराह-वसाविस्रगन्धि करतलं कोदण्डगुणाकर्षणव्रणाङ्कितप्रकोष्ठमन्तकदण्डानुकारिणं वामबाहु-मतिनृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चुप्रहारमुत्कूजन्तमाकृष्य तातं गतासुमकरोत्। मां तु

यस्य स । किं कुर्वन् ? दृशं दृष्टिमितस्ततः समन्ततो दिक्षु ककुप्सु विक्षिपन्विस्तारयन् । दृशं विशिनष्टि—विषादेति । विषादेन शोकेन शून्या निस्तेजसम् । अश्रुवेति । अश्रुजलेन नेत्राम्बुना प्लुता प्लाविताम् । उदिति । उत्प्राबल्येन शुष्कमनार्द्रं तालु काकुदं यस्य स तथा । आत्मनः स्वस्य च प्रतीकारो दुःखनिवृत्त्युपायस्तत्राक्षमोऽसमर्थः । किं ? कृत्वा । पक्षसपुटेन छदपुटेन मामाच्छाद्य तिरोधाय । किं कुर्वाणः । मन्यमानो जानानः । किं ? तत्कालोचितं तत्समययोग्यम् । इममेव प्रतीकारमुपायम् । पक्षसपुटं विशेषयन्नाह—त्रासेति । त्रासेन भयेन स्रस्ता विदीर्णा ये सन्धयोऽस्थिबन्धास्तैः शिथिलेन श्लथेन स्नेहेन प्रीत्या परवशः परायत्तो मम यद्रक्षणं गुप्तिस्तत्राकुलः सम्भ्रान्तः । किमिदानीं कर्तव्यं विधेयमित्यस्य भावः किंकर्तव्यता तत्र विमूढो भ्रष्टमतिः । असावपीति । असौ जरच्छबरोऽपि पापः पापिष्ठः शाखान्तरैः शाखान्तरैः सञ्चरमाणः प्रवर्तमानः कोटरद्वारं निष्कुहद्वारमागत्यैत्य तातं मत्पितरं गतासुं विगतप्राणम-करोदसृजदित्यन्वयः । किं कृत्वा । प्रसार्य विस्तार्य । कम् । वामबाहुं सव्यभुजम् । अथैनं विशेषयन्नाह—जीर्णेति । जीर्णो जरीयानसितः कृष्णो यो भुजंगः सर्पस्तस्य भोगः कायस्तद्व-द्भीषणं भयजनकम् । विविधेति । विविधा अनेके ये वनवराहा अरण्यक्रोडास्तेषां वसा स्नायुस्तया विस्रगन्ध्यामगन्धि करतलं हस्ततलं यस्य स तथा तम् । कोदण्डेति । कोदण्डस्य धनुषो ये गुणाः प्रत्यञ्चास्तेषामाकर्षणमाक्षेपस्तेन व्रणं किणं तेनाङ्कितश्चिह्नितः प्रकोष्ठः कलाचिका यस्य स तम् । अन्तकेति । अन्तकस्य यमस्य यो दण्डो लगुडस्तदनुकारिणम् । तत्सादृश्यधारिण-मित्यर्थः । कीदृक्सः । अतिनृशंसोऽतिक्रूरः । कीदृशं तातम् । मुहुरिति । मुहुर्मुहुर्वारं वारं दत्त-

---

भीतर उस समय के लिये उचित विरोध की रीति यही थी—यह समझते हुए मुझको ढक लिया और (मेरे लिये अपने) स्नेह के वशीभूत होकर मुझे बचाने में व्यस्त हो गया, इसके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है इस बात को न बूझकर वह अपने वक्ष स्थल द्वारा मुझे सहारा दिये हुए बैठा रहा। वह पापी भी क्रमशः एक शाखा से दूसरी शाखा[1] पर चलता हुआ (हमारी) खोह के द्वार तक पहुँच गया। और उसने अपनी काले बूढ़े नाग शरीर-सरीखी (उस द्वारा मारे गये) विविध प्रकार के जंगली सूअरों की चर्बी तथा कच्चे मांस की गन्ध से युक्त हथेली वाली और धनुष की ज्या को खींचने से हुई खुरैंचों से अंकित प्रबाहु[2] वाली, मृत्यु के डंडे सरीखे बायीं भुजा फैला दी, और उस अत्यन्त क्रूर व्यक्ति ने बार-बार चोंच मारते हुए तथा क्रन्दन करते मेरे पिता को खींच लिया और मार दिया। किन्तु बहुतः

---

१. शाखान्तरैः , २. कलाई तथा कोहनी के बीच का भाग।

स्वल्पत्वाद्भयसंपिण्डिताङ्गत्वात्सावशेषत्वाच्चायुषः कथमपि पक्षसंपुटान्तरगत नालक्षयत्। उपरत च तमवनितले शिथिलशिरोधरमधोमुखममुञ्चत्। अहमपि तच्चरणान्तरे निवेशितशिरोधरो निभृतमङ्कनिलीनस्तेनैव सहापतम्। अवशिष्टपुण्यतया तु पवनवश्येन पुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्रराशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम्। अङ्गानि येन मे नाशीर्यन्त। यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्णपत्रसवर्णत्वादस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बाल-

---

श्चञ्चुप्रहारस्त्रोटीप्रघातो येन स तथा तम्। किं कुर्वन्तम्। उच्चाबल्येन कूजन्त शब्द कुर्वन्तम्। किं कृत्वा। आकृष्य कोटराद्बहिरानीयेति शेष। मा तु वैशम्पायन कथमपि महता कष्टेन पक्षसपुटान्तरगत नालक्षयन्न ज्ञातवान्। अत्र हेतुमाह—स्वल्पत्वादित्यादि। स्वल्पत्वादल्पत्वाद्भयसपिण्डिताङ्गत्वात्त्राससकुचिताङ्गत्वादायुषो जीवितव्यस्यावशेषेणोद्धरितभागेन सहवर्तमानत्वात्। उपेति। उपरत मृत त पितरमवनितले पृथ्वीतले शिथिला श्लथा शिरोधरा कन्धरा यस्य स तमधोमुखमवाङ्मुखममुञ्चदचिक्षिपत्। अहमपि तस्य पितुश्चरणान्तरे क्रमणमध्ये निवेशिता स्थापिता शिरोधरा ग्रीवा येन स। निभृतमत्यर्थमङ्क उत्सङ्गे निलीनो लग्न। यथा पितुर्देहाच्छिन्नतया नोपलभ्यते तथा स्थित इत्यर्थ। तेनैव जनकेनैव सहापतम्। अत्र सयोगफलिकां क्रियामकरवम्। 'पत्लृ पतने' इत्यस्य लुङि रूपम्। अवेति। अवशिष्टमुर्वरित यत्पुण्य श्रेयस्तस्य भावस्तत्ता तया। पवनेति। पवन समीरणस्तस्य वश्यस्तदायत्तता तेन पुञ्जितस्य पिण्डितस्य महतो महीयस शुष्कपत्रराशे शुष्काणि वानानि यानि पर्णानि पत्राणि तेषा राशि समुदायस्तस्योपरि पतित स्वस्तमात्मान स्वमपश्यमद्राक्षम्। येनेति। येन पुण्येन शुष्कपत्रराश्युपरिपातेन वा मे ममाङ्गानि नाशीर्यन्त न विगलितानि। यावच्चासौ शबरो यावता कालेन तस्मात् तरुशिखराद्वृक्षाग्रान्नावतरति नोत्तरति तावदहमवशीर्णानि विगलितानि यानि पत्राणि तै सवर्णः सदृशस्तस्य भावस्तत्त्व तस्मादस्फुटमप्रकटमुपलक्ष्यमाणा दृश्यमाना मूर्तिराकृतिर्यस्यैवभूतोऽहमति महतोऽस्युच्चस्य तमालविटपिनस्तापिच्छस्य मूलदेश बुध्नप्रदेशमविश प्रविष्टवानित्यन्वय। उपेति।

छोटे शरीर का होने के कारण, (भय से) अगों को समेट कर गेंद से बन जाने के कारण और अभी भाग्य मे और अधिक देर तक जीना लिखा रहने के कारण (अक्षरार्थ—मेरे लिये जीवन अभी बाकी था) (अपने पिता के) (तह किये हुए) पखों की पोल मे घुसे मुझको उसने नहीं देखा। जब मेरा पिता मर गया तो उसको शबर ने नीचे पृथ्वीपर फैंक दिया—(उस समय) उसकी गर्दन लटक गयी थी और सिर नीचे की ओर था। उसकी टागो के बीच के स्थान म अपनी गर्दन को रखे हुआ, तथा चुपचाप उसकी गोद मे छिपा हुआ मै भी उसके साथ ही गिरा। परन्तु सौभाग्य से (अक्षरार्थ—पुण्य शेष रह जाने के कारण) मैने अपने आप को वायु द्वारा वहाँ एकत्रित हुए एक भारी, सूखे पत्तों के ढेर पर गिरा पाया। इसी कारण मेरे अग चकना चूर नहीं हुए थे। और उसके, वृक्ष से नीचे उतरने से पहिले ही, बिखरे पत्तों के रग का होने के कारण स्पष्ट पहचान में न आते हुए शरीर वाले मैंने अपने मृत पिता को छोड़ दिया। वह समय यद्यपि प्राणों को छोड़ देने के लिये उचित था

तया कालान्तरभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञो जन्मसहभुवा भयेनैव केवलमभिभूयमानः किंचिदुपजाताभ्या पक्षाभ्यामीषत्कृतावष्टम्भो लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुखकुहरादिव विनिर्गतमात्मान मन्यमानो नातिदूरवर्तिनः शबरसुन्दरीकर्णपूररचनोपयुक्तपल्लवस्य सकर्षणपटनीलच्छाययोपहसत इव गदाधरदेहच्छविम्, अच्छैः कालिन्दीजलच्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिमदोपसिक्तकिसलयस्य, विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः,

उपरत व्यापन्न पितरमुत्सृज्य त्यक्त्वा। क इव नृशस इव। क्रूर इव प्राणपरित्यागे योग्य उचितस्तस्मिन्वृद्धपितुर्मरणे मरणमेवोचितमिति योग्यता तस्मिन्नपि काले समये सति बालतयार्भकत्वेन कालान्तरेऽप्रबुद्धवयोवस्थाविशेषे शयनासनभोजनादिषु य स्नेहस्तद्विषयको रसस्तस्यानभिज्ञस्तदज्ञाता। किं क्रियमाण। जन्मेति। जन्मसहभुवा उत्पत्तिसमयादारभ्य समुत्पन्नेन भयेनैव भियैव केवल सर्वतोभिभूयमान• पीड्यमान। पुन कीदृक्। किंचिदिति। किंचिदीषदुपजाताभ्या निष्पन्नाभ्या पक्षाभ्या छदाभ्यामीषत्कृतोऽवष्टम्भ आधार आश्रयो यस्य स तथा। कि कुर्वन्। लुठन्नितस्ततो भूमौ पतन्। कृतान्तेति। कृतान्तो यमस्तस्य मुखमिव मुख यस्यैव भूतात्कुहरात्सुषिराद्विनिर्गत नि सृतमात्मान स्व मन्यमानो ज्ञायमान। अथ तमाल विशेषआह—नातीति। न प्रतिषेधे। अतिदूरवर्ती नविष्टप्रदेशस्थायी तस्य। शबरेति। शबराणां भिल्लाना सुन्दर्य स्त्रियस्तासा कर्णपूराणि कर्णाभरणानि तेषा रचना विनिर्मितिस्तत्रोपयुक्ता सोपयोगिन पल्लवा यस्य स तथा तस्य। संकर्षणेति। सकर्षणो बलभद्र। 'सकर्षण प्रियमधुर्बलरौहिणेयौ' इति कोश। तस्य पटो वस्त्र तस्य नीला छाया कान्तिस्तया गदाधरो विष्णुस्तस्य देहच्छवि शरीरदीप्तिमुपहसत इवोपहास कुर्वत इव। अच्छैरिति। अच्छैर्निर्मले कालिन्दी यमुना तस्या जल पानीय तेषा छेदा खण्डानि तैरिव विरचितानि विनिर्मितानि छदानि पत्राणि यस्य स तथा तस्य। वनेति। वनकरिणामरण्यहस्तिना मदा दानानि तैरुपसिक्तानि सिञ्चितानि किसलयानि यस्य स तथा तस्य। विन्ध्येति। विन्ध्यावटी दण्डकारण्य तस्या केशपाश केश-

तो भी क्रूर व्यक्ति की भाँति (बचपन को छोड़कर) अन्य (यौवनादि मे) उत्पन्न होने वाली स्नेह भावना से अनभिज्ञ, जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले (अर्थात् प्राकृतिक) केवल मात्र भय के वशीभूत हुआ, कुछ कुछ निकले हुए (उत्पन्न हुए) पखों का जहाँ तक बन सका[1] सहारा लिये हुआ, इधर उधर लुढकता हुआ, अपने आप को मृत्यु मुख रूपी गुहा से (जम्भाई लेते हुए यम की दाढ़ों से) बच निकला समझता हुआ मैं, (मेरे सम्मुख) समीप ही स्थित एक बहुत बड़े तमाल वृक्ष के मूल प्रदेश मे घुस गया। वह स्थान ऐसा था कि उसमे सूर्य की किरणे प्रविष्ट ही नहीं हुई थीं, बहुत ही सघन था और मेरे लिये तो मानो दूसरे पिता की गोद ही था। उस तमाल वृक्ष के पत्तों से शबरियाँ अपने कर्ण भूषण बनाया करती थीं, उसकी छाया बलराम के वस्त्रों की सी नीली थी और उससे वह विष्णु भगवान् के शरीर के स्वाभाविक (काले) रूपरंग को मानो लजा रहा था, उसके पत्ते मानो स्वच्छ यमुना जल के अंशों में से

१ ईषत्—कुछ सीमा तक

दिवाप्यन्धकारितशाखान्तरस्य, अप्रविष्टसूर्यकिरणमतिगहनमपरस्येव पितुरुत्सङ्गमति-महतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम्।

अवतीर्य च स तेन समयेन क्षितितलविप्रकीर्णान्सहृत्य शुकशिशूनेकलतापाश-सयतानाबध्य पर्णपुटेऽतित्वरितगमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत्। मां तु लब्धजीविताश प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयमतिदूरपातादायासितशरीरं सत्रा-सजाता सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवशमकरोत्। अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा

कलापस्तस्य श्रिय शोभामुग्धाबल्येन वहतो दधत । दिवापीति। दिवापि दिवसेऽपि अन्धकारित जातान्धकार शाखान्तर शालान्तर यस्य स तथा तस्य। कीदृश मूलदेशम्। अप्रविष्टेति। अप्रविष्टा नान्तर्गता सूर्यस्य रवे किरणा यस्मिन्स तम्। अतीति। अतिशयेन गहनमपर्याप्तावकाशम्। कस्येव अपरस्येव भिन्नस्येव पितुरभयदानुत्सङ्ग क्रोडम्।

अवेति। अवतीर्योत्तीर्य स शबरस्तेन समयेनेति तत्कालेन क्षितितले पृथ्वीतले विप्रकीर्णानितस्तत पर्यस्तान्शुकशिशून्कीरपाकान्सहृत्यैकीकृत्य। कीदृशान्। एकाद्वितीया या लता वल्ली तल्लक्षणो य पाशो बन्धनरज्जुस्तेन सयतान्बद्धानेवभूतान्पर्णपुट आबध्य बन्धन कृत्वा तित्वरितमतिशीघ्र गमन यस्य स तथा। सेनेति। येन सेनापतिर्गतस्तेनैव वर्त्मना मार्गेण तामेव दिश सेनापतिगृहीतामेव ककुभमगच्छदगमत्। मा त्विति। तु पुनरर्थे। मा पिपासा तृट् परवश परायत्तमकरोदित्यन्वय। इतो मा विशेषयन्नाह—लब्धेति। तद्गमनादेव लब्धा प्राप्ता जीविताशा प्राणधारणसभावना येन स तम्। प्रत्यग्रेति। प्रत्यग्रो नवीनो य पितृमरण शोको जनकमृत्युविषादस्तेन शुष्कमनार्द्रं सकुचित वा हृदय चित्त यस्य स तम्। अतीति। अतिदूरापाताद्विप्रकृष्टतरप्रदेशपतनात्। तद्वृक्षादिति शेष। आयासित परिश्रमित शरीर यस्य स तम्। तृष विशेषयन्नाह—संत्रासेति। सन्त्रासेन भयेन जाता समुत्पन्ना। सर्वेति। सर्वाणि समग्राण्यङ्गानि हस्तप्रभृतीन्युपतापयति पीडयतीत्येवशीला बलवती बलोपयुक्ता। अनयेति। अनया कालकलया घटिकया स पापकृद्भिल्ल सुदूर दूरदेशमतिक्रान्तो गत इति परिकलय्य चेतसि परिकलना कृत्वा। किंचिदिति। किंचिदीषन्नमितोर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा येन स तथा।

काटकर बनाये गये थे, उसकी नई कोंपलों पर मानो जगली हाथियों के मद से छिड़काव किया हुआ था, विन्ध्याटवी (रूपी महिला) के केशपाश की भाँति सुशोभित था, और दिन में भी इसकी शाखाओं के अन्तराल में अन्धेरा रहता था।

इस बीच में वह वृद्ध शबर (वृक्ष पर से) उतर गया और पृथ्वी तल पर बिखरे पड़े शुक शिशु उसने एकत्रित कर लिये, अनेक लताओं से बनायी गयी रस्सी उनके चारों ओर लपेट कर उनको दोने मे बाँधकर शीघ्रता से चलता हुआ, सेनापति जिस मार्ग से गया था उसी मार्ग से ही वह उसी दिशामे चला गया। परन्तु मुझे जिसको कि अब (उस शबर के विदा हो जाने पर) जीने की आशा हो गयी थी, जिसका हृदय हाल ही में मरे पिता के शोक से सूख गया था और बहुत दूर से, बहुत ऊँचाई से गिरने के कारण जिसका शरीर बहुत

दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्त इति तमेव पदे पदे पापकारिण-मुत्प्रेक्षमाणो, निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरुतलमूलात्सलिलसमीपं सर्तुं प्रयत्नमकरवम्।

अजातपक्षतया नातिस्थिरतरचरणसचारस्य मुहुर्मुहुर्मुखेन पततो मुहुस्तिर्यङ्नि-पतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सधारयतः, क्षितितलससर्पणश्रमातुरस्यानभ्यासवशा-देकमपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य स्थूलस्थूलं श्वसतो धूलिधूसरस्य संसर्पतो मम

भयेति। भयेन भीत्या चकिता त्रस्ता या दृक् तया दिशोऽवलोक्य निरीक्ष्य तृणेऽपि यवसेऽपि चलति कम्पति सति पुन प्रतिनिवृत्त प्रत्यागत इति तमेव शबरमेव पदे पदे पापकारिण कल्मष-कारिणमुत्प्रेक्षमाण उत्पश्यमानो निष्क्रम्य बहिर्निर्गत्य। कस्मात्। तस्मात्तमालतरुतलमूलात्ता-पिच्छवृक्षादध स्थलात्सलिलसमीप जलोपान्त सर्तुं गन्तु प्रयत्न प्रयासमकरवमकार्षम्।

अथ च मम मनस्येवमभूदित्यन्वय । त विशेषयन्नाह—अजातेति। अजातावनुत्पन्नौ यौ पक्षौ छदौ तयोर्भावस्तत्ता तया न विद्यतेऽतिस्थिरतरश्चरणयो क्रमयो सचार स्थापनयोग्यता यस्य स तथा। तस्य किं कुर्वत । मुहुर्मुहुर्वारवार मुखेनाननेन पतत पतन कुर्वत । मुहुर्वारवार तिर्यक्शिरश्चीन निपतन्त भ्रश्यन्तमात्मानमेकया केवलया पक्षपाल्या छदग्रहत्या सधारयत पतनाद्रक्षा विदधत । क्षितीति। क्षितितले ससर्पण गमन तस्माद्यो श्रमो श्रान्तिस्तेनातुरस्य पीडितस्य। अभ्यासेति। अभ्यास पुन पुन करण तदभाववशादेकमपि पद चरण दत्त्वा निवेश्यानवरत बहुकालमुन्मुखस्योर्ध्वाननस्य स्थूलस्थूल यथा स्यात्तथा श्वसत श्वासमोक्षण कुर्वतः। एतेनैकपदस्थापनेऽपि श्रमबाहुल्य व्यज्यते। धूली रेणुस्तया धूसरस्य धूम्रवर्णस्य। किं कुर्वत । ससर्पत प्रचलत । चिन्ता विवृणोति—ममेति। मम मनस्येव समभूत्। तदेव दर्शयति—खल्विति। खलु निश्चयेन जगति लोकेऽतिकष्टमतिकृच्छ्रं यास्वेव विधास्ववस्थासु

दु खी था, सब अगों को तपाती अत्यधिक प्यास ने आ घेरा। और 'समय के इतने भाग में वह दुष्ट (पापी) बहुत दूर चला ही गया होगा' यह अनुमान करके मैंने अपनी गर्दन कुछ ऊपर उठायी और भयभीत दृष्टि से चारों ओर देखा और तिनके के हिलने पर भी, पग पग पर, 'वही पापी फिर लौट आया' है यह सोचते हुए मैंने उस तमाल तरु के मूल से निकल कर सरक कर जल के समीप जाने का यत्न किया।

पख (पूर्णतया) न बढ़े हुए होने के कारण मेरे पाँव बहुत स्थिरता से नहीं चलते थे, (अत) मैं बार-बार मुँह के बल गिर पड़ता था, और फिर तिरछा (एक ओर) गिरते अपने आप को किसी प्रकार (अपने) एक ओर के पखों में सँभाल लेता था, अभ्यास न होनेके कारण पृथ्वी पर रेंगने से चक्कर खाकर मैं थक गया, (अपने मार्ग पर) एक भी कदम बढ़ाकर ही मैं निरन्तर मुँह ऊपर को कर लेता था और हाँफ जाता था, धूल से सन कर धूसर रग का हुआ जब मैं रेंग रहा था तो मेरे मन मे नीचे लिखे विचार उठे—"निश्चय ही अत्यन्त कष्टदायक अवस्थाओं में भी इस ससार मे प्राणियों के आचरण (अपने) जीवन से उदास

समभून्मनसि—'अतिकष्टास्ववस्थास्वपि जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिना प्रवृत्तयः। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनामेव, उपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ्मामकरुण-मतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो सोढपितृमरणशोकदारुण येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते, खलं हि खलु मे हृदयम्। मया हि लोकान्तरगतायामम्बाया नियम्य शोकवेगमा प्रसवदिवसात्परिणतवयसापि सता तैस्तैरुपायैः सवर्धनक्लेशमतिमहान्त-मपि स्नेहवशादगणयता यत्तातेन परिपालितस्तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अतिकृपणाः

दशासु प्राणिना जीवाना प्रवृत्तय प्रवर्तनरूपा. क्रिया जीवित प्राणित तत्र निरपेक्षा गतस्पृहा न भवन्ति न स्यु। इह जगत्यस्मिँल्लोके सर्वजन्तूनामेव सर्वप्राणिनामेव जीवितादन्यत्किमप्य-भिमनतर वाञ्छिततर नास्ति। तत्रार्थे हेतुमाह—यदहमिति। यद्यस्मात्कारणात्सुगृहीत सर्वदा ग्रहणयोग्य नाम यस्यैवभूते ताते पितर्युपरतेऽपि मृतेऽप्यविकलानि विषयग्रहणासमर्थानीन्द्रि-याणि यस्यैवभूतोऽहं पुनरेव साप्रतमेव प्राणिमि जीवामि अतो मा धिगस्तु। अत्र धिग्योगे मामिति द्वितीया। मा विशेषयन्नाह—अकरुणेति। अकरुणम्। निर्घृणमित्यर्थ। अतिनिष्ठुर-मतिक्रूरम्। कृत जानातीति कृतज्ञ न कृतज्ञमकृतज्ञम्। अहो इति। अहो आश्चर्ये। सोढ क्षमितो य पितृमरणशोकस्तेन दारुण भीषण यथा स्यात्तथा मया जीव्यते तेन बहुकालमुपकृत तदपि नापेक्ष्यते। तस्याप्यपेक्षा न क्रियत इति भाव। खलिवति। खलु निश्चयेन। मे मम हृदय चित्त खल पिशुनम्। उपकारानभिज्ञत्वादिति भाव। मयेति। हि निश्चितम्। मया तत्पूर्वोक्त सर्वमखिलमेकपद एकदैव विस्मृतमित्यन्वय। तत्किमित्यत आह—लोकान्तरेति। लोकान्तरगताया परलोकप्राप्तायामम्बाया जनन्या शोकवेग शोचनप्रवाहं नियम्य निरुध्य प्रसवदिवसान्मजन्मदिनादारभ्य परिणत वयो यस्यैवभूतेनापि सता तैस्तैरुपायै क्षुधानिद्रा-पिपासोपशमार्थप्रतीकारै। सवर्धनक्लेशमिति। स्नेहवशात्पुत्रप्रीतिमाहात्म्यात् अतिमहान्त-मपि अत्यायतमपि मत्सवर्धनक्लेशमगणयता क्लेशेषु तद्गणनामकुर्वता। यदिति हेत्वर्थे। तातेन पित्रा परि सामस्त्येन पालितो वृद्धिं प्रापित। खलु निश्चयेन। अमी मे प्राणा अतिकृपणा

नहीं होते। ससार मे सभी जन्तुओ का (अपने निजी) जीवन से अधिक इष्ट कोई पदार्थ नहीं है। क्योंकि भली प्रकार ग्रहण करने योग्य नाम वाले (आदरपूर्वक स्मरणीय) पिता के इस प्रकार (मेरी आँखों के सन्मुख ही) मर जाने पर भी मै सब समर्थ इन्द्रियो वाला पुन जी ही रहा हूँ! मुझ निर्दय, क्रूर तथा कृतघ्न को धिक्कार है! आश्चर्य है कि पिता की मृत्यु के शोक को सहकर इतनी कठोरता से मै जी रहा हूँ, (अपने पिता द्वारा मुझ पर) किये गये उपकारों पर भी कोई ध्यान नहीं देता—उनकी भी कोई चिन्ता मुझे नहीं है। वस्तुत मेरा हृदय दुष्ट है। जब मेरी माता परलोक को चली गयी थी (अर्थात् मर गयी थी) तब अपने शोक के प्रवाह को कुचल कर मेरे जन्म के समय से ही मुझे वृद्ध हुए भी मेरे पिता ने, मेरे पालन म हुए कष्टो को (मेरे प्रति) स्नेह के कारण कुछ न समझ कर भिन्न भिन्न उपायो द्वारा जो मुझे पाला था वे सारी बातें मैंने एकदम ही भुला दीं! निस्सन्देह, मेरा यह जीवन अत्यन्त

खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातं क्वापि गच्छन्तमद्यापि नानुगच्छन्ति, सर्वथा न कश्चिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा, यदीदृगवस्थमपि मामयमायासयति जलाभिलाषः। मन्ये चागणितपितृमरणशोकस्य निर्घृणतैव केवलमियं मम सलिलपानबुद्धिः। अद्यापि दूर एव सरस्तीरम्। तथा हि। जलदेवतानूपुररवानुकारि दूरेऽद्यापि कलहंसविरुतमेतत्। अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि। विप्रकर्षाद्दाशामुखविसर्पणविरलः सञ्चरति नलिनीखण्डपरिमलः। दिवसस्येयं कष्टा दशा वर्तते। तथा हि। रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः। अधिकामुपजनयति तृषा

अतिशयेन जीविततोलुपा अतितुच्छा। यदिति हेतौ। उपकारिणमप्युपकृतिविधायकमपि तात पितर क्वाप्यनिर्दिष्टस्थले गच्छन्त व्रजन्तमद्यापि साम्प्रतमपि नानुगच्छन्ति नानु व्रजन्ति। सर्वथा जीविततृष्णा न कश्चिन्न खलीकरोति। द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयत इति। सर्वमेव खलीकरोतीत्यर्थः। यदीदृगवस्थमपि शोकाकुलमपि मामयं जलाभिलाष पानीयग्रहणाध्यवसाय आयासयति खेदं जनयति। च पुनरर्थे। अह मन्ये जाने। इय मम सलिलपानबुद्धिर्जलपानेच्छा केवल निर्घृणतैवाननुकम्पितेव। कीदृशस्य मम। अगणितेति। अगणितो न गणनविषयीकृत पितृमरणशोको येन स तथा तस्य। अद्यापीयतागतेनापि सरस्तीर कासारतट दूर एव। तदेव दर्शयति—तथा हीति। जलेति। जलदेवताना जलाधिष्ठात्रीणा नूपुराणा पादकटकाना यो रव शब्दस्तदनुकारि तत्सादृश्यभाग्यद्यापि कलहंसविरुत कादम्बकूजितमेतद्दूरे। तथा सारसरसितानि लक्ष्मणकूजितान्यस्फुटान्यव्यक्तानि श्रूयन्त आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षादिति। विप्रकर्षाद्दूराच्चाशामुखेषु दिग्वदनेषु विसर्पण प्रसरण तेन विरलो न्यूनो नलिनीखण्डपरिमल कमलवनामोद सञ्चरति इतस्तत प्रसरति कदाचिद्दारणधर्माभावे मार्गसौलभ्याद्दूरेऽपि गन्तुं शक्यत इत्यत आह—दिवसेति। दिवसस्य वासरस्येय प्रत्यक्षोपलभ्यमाना कष्टा दशा मध्यावस्था वर्तते। तदेव दर्शयति—तथा हीति। रवि सूर्योऽम्बरतलमध्यवर्ती व्योममध्यगामी।

तुच्छ है कि जो कहीं जाते उपकारी भी पिता का अनुगमन नहीं कर रहा है। निश्चय ही ऐसा कोई नहीं है जिसको जीवित रहने की अभिलाषा दुष्ट न बना देती हो! क्योंकि इस अवस्था वाले भी मुझको जल (पीने) की इच्छा सता रही है! और मैं मानता हूँ कि पिता के मरने के शोक की ओर ध्यान न देकर इस प्रकार जल पीने की इच्छा केवल क्रूरता ही है! अब तक भी झील का किनारा बहुत दूर है। क्योंकि जल परियों के घुंघरुओं की झनझनाहट से मिलता जुलता कलहंसों का शब्द अभी तक भी दूर ही है, सारसों की चिल्लाहट अभी तक अस्पष्ट ही सुनाई देती है और नलिनियों की क्यारियों से उठी सुगन्ध, दूरी से दिशाओं में फैल जाने के कारण पतली पड़ी हुई इधर-उधर फैल रही है। और दिन की (इस समय की) अवस्था भी अत्यन्त कष्टदायक हो गयी है—उदाहरणत, आकाश के मध्य भाग पर पहुँचा हुआ सूर्य निरन्तर अपनी लहरानी ऊष्मा को, चिल चिलाती धूप को अपनी किरणों से निरन्तर ऐसे बिखेर रहा है जैसे कि हाथों से अग्नि की धूल के

सन्तप्तपांसुपटलदुर्गमा भूः। अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमथापपादयेत्।

एवं चिन्तयत्येव मयि तस्मात्सरसोऽदूरवर्तिनि तपोवने जाबालिर्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, सवयोभिरपरैस्तपोधनकुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवा-

---

अनवरतेति। अनवरतमविच्छिन्नं स्फुरन्तं दीप्यमानमातपं प्रकाशमनलधूलिनिकरमिव वह्निकणिकासमूहमिव करैः किरणैर्विकिरति क्षिपति। अधिका तृषा पिपासामुपजनयति निष्पादयति। सततमुष्णं यत्पांसुपटलं धूलिसमूहस्तेन दुर्गमा दुःखेन गन्तुं शक्या भूः पृथ्वी। अतीति। अतिप्रबलात्यधिका या पिपासोदन्या तयावसन्नानि खिन्नानि मे ममाङ्गकानि शरीरावयवा अल्पमपि स्वल्पमपि गन्तुं नालं न समर्थानि। किं बहुनात्मनो देहेन्द्रियसंघातस्याप्यप्रभुरसमर्थोऽस्मि। 'अस भुवि' धातुः। लडुत्तमैकवचनम्। देहेन्द्रियादिकमपि स्वाधीनं मे नास्तीति भावः। मे मम हृदयं सीदत्यवशीर्यते। चक्षुरपि नेत्रमप्यन्धकारतां तिमिरतामुपयाति प्राप्नोति। अन्धकाराकुलं भवतीत्यर्थः। नामेति कोमलामन्त्रणे। अथेत्यानन्तर्ये। खलः अशुभकरणाद्दुर्जनो विधिर्विधातानिच्छतोऽप्यसमीहमानस्यापि मे मम मरणं मृत्युमुपपादयेत्कुर्यात्।

इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण मयि चिन्तयत्येव विचारयत्येव यद्भूत्तदाह—तस्मादिति। तस्मात्पूर्वोक्तात्सरसोऽदूरवर्तिनि निकटस्थायिनि तपोवने तापसाधिष्ठितकानने। नामेति कोमलामन्त्रणे। जाबालिनामा महदत्युग्रं तपो यस्यैवंभूतो मुनिरृषिः प्रतिवसति स्म। निवासं कृतवानित्यर्थः। तत्तनयश्चेति। तस्य तनयः सुतः। च पुनरर्थे। हारीत इति नाम यस्यैवंविधः मुनिकुमारकः। स्वल्पवया इत्यर्थः। तदेव पूर्वोक्तं पम्पाभिधानं कमलसरः सिस्नासुः स्नातुमिच्छुः। स्नान्तस्नाधातो रूपम्। तत्रोपागमदित्यन्वयः। तमेव विशेषयन्नाह—सनत्कुमारेति।

समूह को (जलते अंगारों को) बिखेर रहा हो। तपी हुई रेत की तह के कारण कठिनता से चलने योग्य भूमि अधिकाधिक प्यास लगा रही है। अत्यन्त प्रबल प्यास से हतोत्साह मेरे अंग थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं है। मैं अपने वश में नहीं हूँ। मेरा हृदय (निराशा से) बैठा जाता है। मेरी दृष्टि धुंधली पड़ रही है। शायद दुष्ट दैव मेरी मृत्यु आज ही सम्पन्न कर देगा, भले ही मैं उसे नहीं चाहता हूँ।

मैं इस प्रकार सोच ही रहा था कि उस सरोवर से बहुत दूर स्थित नहीं, (समीप ही विद्यमान) एक तपोवन में जाबालि नाम का एक महातपस्वी मुनि रहता था और उसका पुत्र हारीत नाम का एक युवा तपस्वी, अपने बराबर की अवस्था (वय) वाले दूसरे तपस्विकुमारों से अनुगम्यमान, उसी मार्ग से (जहाँ कि मैं लेटा हुआ था) उस सरोवर में स्नान करने की इच्छा से वहाँ आ गया) वह मुनिकुमार, सनत्कुमार की भाँति सब विद्याओं के पढ़ने से परिष्कृत हुए मन वाला था, अपनी अत्यन्त अधिक तेजस्विता के कारण उसकी आकृति

न्विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, उद्यतो दिवसकरमण्डलादिवोत्कीर्णः, तडिद्भिरिव रचितावयवः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः, पिशङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमपि दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्, उत्तप्तलोहलोहिनीनामनेकतीर्थाभिषेकपूतानामंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः, स्तम्भितशिखाकलापः खाण्डववनदिधक्षया कृतकपटपटुवेष इव भगवान्पावकः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासनकटकेनेव स्फटिकेनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवण

सनत्कुमारो वैधात्रस्तद्वदिव सर्वविद्यास्ववदातं शुद्धं चेतो मनो यस्य स । सवयोभिरिति । सवयोभिः सदृशवयोभिरपरैस्तपोधनकुमारकैस्तापसशावैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा तेनैव मार्गेण । उपागमदिति पूर्वेणान्वयः । द्वितीय इवेतद्भिन्न इव भगवाञ्ज्ञानवान्विभावसुरग्निरत्युत्कृष्टं तेजो विद्यते यस्यासाविति तेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया दुर्निरीक्ष्या दुःखेनावलोकयितुं शक्या मूर्तिर्यस्य स तथा । उद्यत इति । उद्यत उदयं कुर्वतो दिवसकरमण्डलात्सूर्यबिम्बादिव । उत्कीर्ण उल्लिख्य कर्षित इत्यर्थः । तडिद्भिरैरावतीभिरिव रचिता निर्मिता अवयवा यस्य स । तप्त इति । तप्त उष्णो यः कनकस्य सुवर्णस्य द्रवो रसस्तेन बहिरुपलिप्ता लिम्पिता मूर्तिः शरीरं यस्य स । पिशङ्गेति । पिशङ्गा पीतावदाता निर्मला एवंविधया स्फुरन्त्या दीप्यमानया देहप्रभया शरीरकान्त्या सहबालातपेन वर्तमानं दिवसं दिनमिव सहदावानलेन वर्तमानं वनं काननमिवोपदर्शयन्प्रकाशयन् । उत्तप्तेति । उत्तप्तमुष्णीकृतं यल्लोहं कालायसं तद्वल्लोहिनीनां रक्तानामनेकानि यानि तीर्थानि तेषामभिषेकः स्नानं तेन पूतानां पवित्राणाम् । अंसेति । अंसस्थलं भुजशिरःस्थानं तत्रावलम्बिनीनां वेल्लन्तीनां जटानां निकरेण समूहेनोपेतः सहितः । स्तम्भितेति । स्तम्भितो बद्धः शिखाकलापो येन स तथा । खाण्डवेति । वह्निना जलोदरग्रस्तेन ब्राह्मणरूपेण शय्यागतेन खाण्डववनं दग्धमिति प्रसिद्धिः । दग्धुमिच्छा दिधक्षा तया कृतो विहितः कपटेन पटुः स्पष्टो वेषो येनैवंभूत इव भगवान्पावको वह्निः । तपोवनेति ।

को देख सकना—(उसको ताकते रहना) कठिन था और इस प्रकार वह उठते हुए दूसरे सूर्य के समान प्रतीत होता था, वह ऐसा दिखायी देता था कि मानो उदीयमान सूर्यमण्डल म से ही काट कर बनाया गया हो (अथवा) बिजली में से गढ दिया गया हो। उसका शरीर मानो बाहर से पिघलाये हुए सुवर्ण के द्रव से लिपा हुआ था। अपनी कुछ कुछ पीली श्वेत जगमगाती देह कांति से वह दिन को ऐसा बना रहा था कि मानो वह प्रातःकालीन धूप से युक्त हो और वन को ऐसा दिखा रहा था कि मानो वह वनाग्नि से धधक रहा हो। वह तपाये हुए लोहे के समान लाल रंग की, विविध तीर्थों मे स्नान करके पवित्र हुई, कन्धे तक लटकतीं जटाओं के समूह से युक्त था। अपनी चोटी के बालों को बाँधे हुए वह अपनी ज्वालाओं को नियन्त्रित किये हुए (अथवा स्थिर किये हुए), खाण्डव वन को भस्म करने की इच्छा से बनावटी तपस्वी वेष धारी भगवान् अग्निदेव सरीखा प्रतीत हो रहा था। तपोवन की परियों के नूपुर सी प्रतीत होती, सभी धार्मिक आदेशों के चक्र (अर्थात् संग्रह) सरीखी

विलम्बिना विराजमानः सकलविषयोपभोगनिवृत्त्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः, गगनगमनोन्मुखबलाकानुकारिणा स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण स्फटिकमणिकमण्डलुनाध्यासितवामकरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णाजिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निपतता धूमपटलेनेव परीतमूर्तिः, अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्मांसविरलपार्श्वकपञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः देवतार्चनार्थमा-

---

स्फाटिकेन स्फटिकमणिनिर्मितेनाक्षवलयेनाक्षमालिकया विराजमानः शोभमान । अक्षवलय विशेषयन्नाह—दक्षिणेति । दक्षिणोऽपसव्यो य· श्रवण कर्णस्तत्रावलम्बिना । तपोवनेति । तपोवनदेवता तपोवनाधिष्ठात्री तस्य नूपुर पादकटकं तदनुकारिणा तत्सदृशेन । केनेव । धर्मो विधिनिषेधादिरूपस्तस्य शासनमाज्ञा तस्य कटकेनेव वलयेनेव । सकलविषयस्य समग्रपदार्थस्य य उपभोग परिभोगस्तस्मान्निवृत्तिरुपरमस्तदर्थं तन्निमित्तमुपपादितेन विहितेन । ललाटेति । ललाटपट्टकेऽलिकफलके मनोवाक्कायलक्षणेन त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेण विभूतित्रितिलकेनालङ्कृतो विभूषित । गगनेति । गगनगमने उन्मुखा ऊर्ध्वानना या बलाका बिसकण्ठिका तदनुकारिणा तत्सदृशेन स्वर्गमार्गमिव त्रिदिवपन्थानमिव दर्शयता प्रकाशयता सतत निरन्तरमुद्ग्रीवेणोर्ध्वकन्धरेणैवभूतेन स्फटिकमणिकमण्डलुना स्फाटिककुण्डिकयाध्यासितमाश्रित वामकरतल यस्य स । स्कन्धेति । कृष्णाजिनेन कृष्णचर्मणा परीता व्याप्ता मूर्तिर्यस्य स तथा । केनेव । धूमपटलेनेव दहनकेतनसमूहेनेव । कीदृशेन । तपो मे भवत्विति तपस्तृष्णा तया निपीतेनेव । कीदृशेन । अन्त शरीराभ्यन्तरे निपतता प्रवेश कुर्वता । कीदृशेन चर्मणा । स्कन्धदेशेऽवलम्बत इत्येवशील तत्तेन नीला पाण्डवी च भा यस्य तत्तेन । अभीति । यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेणोत्प्राबल्येन भासमानो दीप्यमान । केनेव । अभिनव प्रत्यग्र यद्बिससूत्रं

स्फटिकमणिनिर्मिता, दायें कान में लटकती अक्षमाला से सुशोभित था। सभी (प्रकार के) ऐन्द्रियिक सुखों के उपभोग से दूर रहने के लिये ही मानो तीन बार दुहरायी हुई प्रतिज्ञा-सदृश, मस्तक पर (पवित्र) भस्म से बनाये हुए पुण्ड्र (तीन रेखाओं वाले चिन्ह) से सुशोभित था। उसके बायें हाथ मे स्फटिकमणि निर्मित एक कमण्डलु था—वह निरन्तर इस प्रकार पकड़े रखा जाता था कि उसकी गर्दन ऊपर की ओर रहती थी—इसीलिये वह कमण्डलु आकाश में अभी अभी उड़ जाने वाले तथा स्वर्ग का मार्ग दिखला रहे सारस के समान लग रहा था। कन्धों पर लटकते कृष्ण मृग के चर्म से ढके शरीर वाला वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो तप करने की अपनी प्रबल लालसा से निगला गया नीला-सा श्वेत मेघ (अभ्र) उसके शरीर से निकल कर उसको घेर रहा हो। (अपने) बाँये कन्धे पर लटकते उस यज्ञोपवीत से वह उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था जो कि मानो ताजे बिस तन्तुओं का बना हुआ था और अत्यन्त हल्का होने के कारण वायु से हिल रहा था (इसीलिये) उसके (स्पष्टतया दिखायी दे रहे) मांस रहित पार्श्वस्थ अस्थिपंजर को गिन रहा सा प्रतीत

गृहीतवनलताकुसुमपरिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः, विषाणोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजातपरिचयेन नीवारमुष्टिसंवर्धितेन कुशकुसुमलतायास्यमानलोलदृष्टिना तपोवनमृगेणानुयातः, विटप इव कोमलवल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहुरिवासकृदास्वादितसोमः, पद्मनिकर इव दिवसकरमरीचिपः,

कमलनालतन्तुभ्तेन निर्मितेनेव रचितेनेव परिलघुतया परि सामस्त्येन स्वल्पतयाणुतया पवनेन समीरणेन लोलेन चपलेन। किं कुर्वता। निर्मांस पललरहित विरलमसकीर्णं यत्पार्श्वकपञ्जर पार्श्वगतास्थिसमुदायमिव गणयता तत्सख्या कुर्वता। यज्ञोपवीत विशिनष्टि—वाम इति। वाम सव्यो योऽस स्कन्धस्तदवलम्बिना तदवस्थानशीलेन। अथ मुनिं विशेषयन्नाह—देवतेति। देवतार्चनार्थं परमेश्वरपूजार्थमा समन्तादगृहीतान्यात्तानि वनलताकुसुमान्यरण्यव्रततिपुष्पाणि ते परिपूर्णं भृत यत्पर्णपुट तेन सनाथ सहितं शिखर प्रान्त यस्यैवभूतेनाषाढदण्डेन व्यापृतो व्यापारयुक्त सव्येतरो दक्षिण पाणिर्हस्तो यस्य स तथा। तपोवनेति। तपोवनसबन्धी यो मृगो हरिण। जात्येकवचनम्। तेनानुयातोऽनुगत। कि कुर्वता मृगेण। विषाण शृङ्ग तेनोत्खातामुत्खनिता स्नानमृदमाप्लवमृत्स्नामुद्वहता धारयता। मृग विशेषयन्नाह—उपेति। उपजात समुत्पन्न परिचय सबन्धविशेषो मुनिभि सार्धं यस्य स तथा तेन। नीवारेति। नीवारो वनव्रीहिस्तस्य मुष्टि प्रसिद्धा तया सवर्धितेन वृद्धिं प्रापितेन। कुशेति। कुशा दर्भा, कुसुमानि पुष्पाणि, लता व्रतत्य, ताभिरायास्यमाना खेद प्राप्यमाणात एव लोला चपला दृष्टिर्यस्य स तेन। प्रकारान्तरेण मुनिपुत्र विशिनष्टि--विटप इति। विटपो वृक्षस्तद्वदिव। सादृश्यमाह—कोमलेति। कोमलं सुकुमार यद्वल्कल चोच तेनावृतमाच्छादित शरीर यस्य स तथा। अस्यापि मुनित्वेन वल्कलधारित्वात्साम्यम्। गिरिरिवेति। गिरि पर्वतस्तद्वदिव। उभयो. साम्यमाह—समेखल इति। सह मेखलया मौञ्ज्या वर्तते य स तथा। पक्षे मेखलाद्रेर्मध्यभागस्तया सह वर्तमान इत्यर्थ। राहुरिवेति। राहु सैंहिकेयस्तद्वदिव। एतयो

होता था। वह दायें हाथ मे एक 'आषाढ' का दड लिया हुआ था। उस दड के सिरे पर देवता की पूजा के लिये, चुनकर लिये हुए वनलताओं के फूलों से भरा एक दोना था। उसके पीछे तपोवन का एक वह हरिण चल रहा था जिसने (अपने) सींगों से खोदी हुई (उसके) स्नानार्थ मिट्टी उठायी हुई थी, वह उससे खूब परिचित हो गया था, मुट्ठी भर 'नीवार' अन्न पर पाला गया था और (चारो ओर विद्यमान) कुशा घास के फूलो से तथा लताओं से आकृष्ट होने के कारण उसकी आँखें चञ्चल थीं। वैसे ही उसका शरीर कोमल वल्कल वस्त्रों से ढका हुआ था। ढालू पार्श्वों[1] से युक्त (समेखल), पर्वत की भाँति वह भी मेखला से युक्त था। राहु जैसे सोम-चन्द्रमा को प्राय निगल चुका है—उसको ग्रहण लगा हुआ है—इसी भाँति अनेक बार सोम रस का स्वाद लेने के कारण वह भी 'आस्वादित सोम' था (पूर्णतया खिलने के लिये) सूर्य की किरणो का पान (ग्रहण) करने वाले (दिवस कर मरीचिप) कमल समूह की भाँति वह भी (तपश्चर्या के नियमों का पालन करता हुआ ऊपर

१ मेखला, मध्यभाग।

नदीतटतरुरिव सततजलक्षालनविमलजटः, करिकलभ इव विकचकुमुददलशकल-सितदशनः, द्रौणिरिव कृपानुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, घर्मकालदिवस इव क्षपितबहुदोषः, जलधरसमय इव प्रशमितरजःप्रसरः, वरुण इव

साम्यमाह—असकृदिति। असकृन्निरन्तरमास्वादित सोमो ज्योतिष्टोमयागसाधनद्रव्य येन स तथा। एतेनात्यन्तसोमयज्ञकारित्व सूचितम्। पक्षेऽसकृद्बहुवारमास्वादितो ग्रस्त सोमश्चन्द्रो येनेति विग्रह। पद्मेति। पद्मानां कमलाना निकर समूहस्तद्वदिव। उभयो साम्यमाह—दिवसेति। दिवसकरस्य सूर्यस्यातपभयान्मरीचीन्पाति रक्षति स तथा। पक्षे सूर्यविकासित्वा-त्सूर्यमरीचीन्पाति पिबति य स तथेति विग्रह। नदीति। नद्यास्तटिन्यास्तट प्रतीर तस्मि-स्तरुर्वृक्षस्तद्वदिव। उभयो सादृश्यमाह—सततमिति। सतत निरन्तर त्रिसाथ जलेन पानीयेन क्षालन तेन विमला जटा सटा यस्य स। पक्षे सततजलक्षालनेन विमला जटा अवरोहा यस्येति विग्रह। करीति। करिणां हस्तिना कलभस्त्रिंशदब्दको गजस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्य-तामाह—विकचेति। विकचानि स्फुटानि कुमुदानि केरवाणि तेषा दलानि पर्णानि तेषा शकलानि खण्डास्तद्वत्सिता. शुभ्रा दशना दन्ता यस्येति स तथा। उभयसाम्यादभङ्गश्लेष। द्रौणिरिवेति। द्रौणिरश्वत्थामा तद्वदिव। उभयो शब्दसाम्यमाह—कृपेति। कृपा दु ख-हानेच्छा तयानुगत सहित। पक्षे कृप कृपाचार्यस्तेनोपगत इति विग्रह। नक्षत्रेति। नक्षत्राणां तारकाणा राशि समूहस्तद्वदिव। अनयो साम्यमाह—चित्रेति। चित्रमृगस्य कृत्तिका चर्म तेनाश्लेष सबन्धस्तेन उपशोभित शोभा प्राप्त। पक्षे चित्रा त्वाष्ट्री मृगो मृगशिर, कृत्तिका प्रसिद्धा, आश्लेषा सार्पी, ताभिरुपशोभित। घर्मेति। घर्मकाल उष्ण-कालस्तस्य दिवसो दिन तद्वदिव। उभयो साम्यमाह—क्षपित इति। क्षपिता क्षय प्रापिता

को मुँह करके) सूर्य की किरणो का पान करता था। निरन्तर जल से धोयी गयी (अर्थात् पक रहित) अतएव निर्मल जड़ों वाले वृक्ष की भाँति वह भी निरन्तर (स्नान के समय) जल से धोयी गयी अतएव स्वच्छ जटाओं वाला था। पूर्ण विकसित श्वेत कमल की पखुडियों के टुकडों के समान श्वेत गजदन्त वाले गजशिशु की भाँति वह भी पूर्ण विकसित श्वेत कमल की पखु डियों के टुकडों के समान श्वेत दान्तोंवाला था। योद्धा कृप द्वारा अनुगत (कृपानु-गत) अश्वत्थामा की भाँति वह भी अनुकम्पा से युक्त होने से कृपानुगत था। चित्ता, मृग-शिरा, कृत्तिका, आश्लेषा नक्षत्रों से शोभित नक्षत्रीयनभोमण्डल[1] की भाँति वह चितकबरे हरिण की खाल के सयोग से (अदृढता से पहनी हुई चितकबरी, हरिण की खाल से) सुशो-भित था। बहुत अधिक छोटी हुई (क्षयित) रात्रियों वाले ग्रीष्मऋतु के दिवस की भाँति वह भी अपने बहुत से दोषों से अपने को रहित किये हुए (क्षयित बहुदोष) था। धूल उड़ाने का निराकरण किये हुए वर्षाकाल की भाँति वह भी (अपने मे) रजोगुण के व्यापार कामादि को नियन्त्रित किये हुआ (प्रशमितरज प्रसर) था। (जल का स्वामी होने के कारण) जल को वासस्थान बनाये हुए वरुण की भाँति वह भी (तपस्या के लिये) जल में

१ नक्षत्र राशि (मेष, वृष आदि) की भाँति।

कृतोदवासः, हरिरिवापनीतनरकभयः, प्रदोषारम्भ इव सन्ध्यापिङ्गलतारकः, प्रभातकाल इव बालातपकपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः, जलनिधिरिव करालशङ्खमण्डलावर्तगर्तः, भगीरथ इवासकृद्दृष्टगङ्गा-

-बहवो दोषा रागादयो येन स । पक्षे क्षपिता बह्वी दोषा रात्रिर्येनेति विग्रह । जलेति । जलधरसमय प्रावृट्कालस्तद्वदिव । उभयोस्तुल्यतामाह—प्रशमितेति । प्रशमित शान्ति प्रापितो रज प्रसर प्रवर्तकगुणव्यापारो येन स । पक्षे प्रशमितो रज प्रसरो धूलिविस्तारो येनेति विग्रह । वरुण इति । वरुण प्रचेतास्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—कृतोदेति । कृतो विहित उदवासो व्रतविशेषो येन स । पक्षे कृत उदकेषु वासो निवासो येनेति विग्रह । उदकस्योदादेश । हरिरिति । हरिरिव कृष्ण इव । उभयोरैक्यमाह—अपनीतेति । अपनीतो दूरीकृतो नरको दुर्गति तद्भय येन स । पक्षे नरकनाम्नो दैत्यस्य भय येनेति विग्रह । प्रदोषेति । प्रदोषो यामिनीमुख तस्यारम्भ प्रारम्भस्तद्वदिव । उभयोरैक्यमाह—संध्येति । संध्या दिवसरजन्यो सधिस्तद्वत्पिङ्गला तारैव तारका कनीनिका यस्य स तथा । इद महापुरुषोपलक्षणम् । तदुक्तमन्यत्र—'क्षुद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात्पीततारकचक्षुषि' इति । पक्षे सध्याकृता पिङ्गला तारका यस्मिन्निति विग्रह । प्रभातेति । प्रभात प्रत्यूषस्तस्य काल समयस्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—बालेति । बालो य सूर्यस्तस्यातप । बालश्चासावातपो वा । प्रकाशस्तद्वत्कपिलः पिङ्गल । पक्षे बालातप उद्गमनसमयवर्त्यातपस्तेन कपिल पिङ्गल । पीतरक्त इत्यर्थ । रविरथ इति । रवेः सूर्यस्य यो रथ स्यन्दनस्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—अक्षेति । दृढ यथा स्यात्तथा नियमित निबद्धमक्षाणामिन्द्रियाणा चक्रं समूहो येन सः । पक्षे दृढे नियमिते

रह (खड़ा हो) चुका था । नरकासुर के भय को दूर किये हुए विष्णु की भाँति उसने भी नरक का भय उन्मूलित कर रखा था । सन्ध्या के धुधले प्रकाश में पीले से पड़े तारों वाले सन्ध्याकाल की भाँति वह भी सन्ध्या सरीखी पीली-पीली पुतलियों वाला होने से 'सन्ध्या-पिङ्गल तारक' था । (बाल) प्रातःकालीन (नई) धूप से पीले से रगवाले प्रात काल की भाँति वह भी प्रात कालीन धूप की भाँति पीत रग (के चेहरे वाला) था । दृढ़ता से बाधी गयी धुरी तथा पहियों वाले सूर्यरथ की भाँति वह अपने सम्पूर्ण (अक्ष चक्र) इन्द्रियमण्डल को दृढ़ता से नियन्त्रित किये हुआ था । अपनी मन्त्रणाओं को सर्वथा गुप्त रखने वाले तथा (सुसज्जित) (गजाश्वादि) सेना द्वारा युद्ध (की सम्भावना) को नष्ट किये हुए किसी अच्छे राजा की भाँति वह भी (अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिये) चुपचाप मन्त्र साधना द्वारा शरीर को दुबला किये हुआ (क्षपित-विग्रह) था । खुरदरे शङ्ख, मण्डल बनाती भँवरों और (गहरे) गर्तों वाले, (अथवा खुरदरे शखों तथा गहरी बल्खाती भँवरों वाले) समुद्र की भाँति वह भी ऊँचे उठे हुए किनारों वाली तथा गहरे गड्ढों वाली कपोलास्थि वाला 'करालशङ्खमण्डलावर्तगर्त' था (स्वर्ग से समुद्र[1] में उतरी गगा के (क्रमिक) अवतरण को बार-बार प्रत्यक्ष किये हुए भगीरथ की भाँति वह भी गगा (नदी) में ले

1. पृथ्वी-पर होती हुए समुद्र में ।

वतारः, भ्रमर इवासकृदनुभूतपुष्करवनवासः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सनिहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनस्तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत् ।

अवचक्रे यस्मिन्निति विग्रह । तत्राक्षो मध्यप्रदेश । चक्र प्रसिद्धम् । सुराजेवेति । सुष्ठु शोभनो यो राजा नृपतिस्तद्वदिव । तयो साम्यमाह—निगूढेति । निगूढ रहो यन्मन्त्रसाधन देवताराधन तेन क्षपित कृशतां नीतो विग्रह शरीरं येन स । पक्षे निगूढोऽतिगुप्तो मन्त्रो रहस्यालोचन साधन गजाश्वादि ताभ्या क्षपित क्षय नीतो विग्रह शत्रुजनितक्लेशो येनेति विग्रह । जलनिधिरिति । जलनिधि समुद्रस्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—करालेति । कराल यच्छङ्खमण्डल भालश्रवोन्तर तत्रावर्तेन गर्तो यस्य स तथा । तादृशावर्तश्च महातपस्वि-लक्षणम् । पक्षे करालानि जिह्मानि यानि शङ्खमण्डलानि षोडशावर्तवृन्दान्यावर्तं पयसां भ्रम एते गर्ते अगाधप्रदेशे यस्येति विग्रह । भगीति । भगीरथ सगरप्रपौत्रस्तद्वदिव । उभयो सादृश्यमाह—असकृदिति । असकृन्निरन्तर दृष्टोऽवलोकितो गङ्गाया अवतारो घट्टो येन स । 'घट्टस्तीर्थावतारे' इति कोश । पक्षे असकृत् दृष्टो गङ्गाया अवतार प्रभवो येनेति विग्रह । भ्रमर इति । भ्रमरो मधुकृत्तद्वदिव । उभयो साम्यमाह—असकृदिति । असकृद्वारवारमनु-भूतोऽनुभवविषयीकृत पुष्कर जल तेन सहित यद्वन तत्र वासो वसतिर्येन स । पक्षेऽनुभूत पुष्करवन कमलखण्डस्तत्र वासो येनेति विग्रह । वनेति । वने चरतीति वनचर । एवभूतोऽपि कृतो महालयेषूच्चैस्तरगृहेषु प्रवेशो येनेति विरोध । परिहारपक्षे महालयो ब्रह्मणि लय । तदुक्तम्—'अधोमुख्या कुण्डलिन्योर्ध्वं मुखे कृते सति ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त नीताया तस्यामेकान्तेनाव-स्थान ब्रह्मणि लय ' इति । यद्वा महालयो मोक्षस्तत्र कृतवसतिरित्यर्थ । असंयतेति । असयतो ऽसयमवानपि मोक्षार्थी मोक्षाभिलाषुक इति विरोध । परिहारपक्षेऽसंयतोऽबद्धोपीत्यर्थ । 'सदानित सयतश्च' इत्यभिधानचिन्तामणि । सामेति । साम सान्त्वन तत्प्रयोगपरोऽपि मैत्रीप्रयोगतत्परोऽपि सतत निरन्तरमवलम्बित आश्रितो दण्डो राजदेयद्रव्य येनेति विरोध । तत्परिहारपक्षे सामवेदप्रयोगपरोऽपि सततमवलम्बितो दण्डो यष्टिर्येनेति विग्रह । सुप्त इति ।

जाने वाली सीढियों का प्राय दर्शन किये हुआ (होने से असकृद् दृष्ट गगा अवतार) था । कमल वन में निवास का प्राय अनुभव किये हुए भौरे की भाँति वह भी पुष्कर (तीर्थ के समीप के) वनों मे निवास का अनुभव किये हुआ होने के कारण अनुभूत-पुष्करवन-वास था । यद्यपि वह वनों में विचरण करने वाला था तो भी महान् भवन में प्रवेश किये हुआ (बड़े महल मे रहने वाला) था ? नहीं, नहीं वह ब्रह्म मे (अपना) लय किये हुआ था । न बधा हुआ भी—अर्थात् सासारिक सत्ता के साथ न बन्धा हुआ भी छूटना चाहता था ? नहीं, नहीं, मोक्ष का इच्छुक था । यद्यपि वह शातिमय साधनों को प्रयुक्त करता था—(?) (नहीं, नहीं, साममन्त्रों का उच्चारण करता था) तो भी निरन्तर डडा पकड़े रहता था । नहीं, नहीं, ज्ञानी था । दो आँखें उसके समीप थीं तो भी वह बायीं आँख को छोड़े हुआ था ? नहीं, नहीं, उसने वामलोचनाओं अर्थात् स्त्रियों का छोड़ रखा था ।

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः समीपवर्तिनमृषिकुमारकमन्यतममब्रवीत्—'अयं कथमपि शुकशिशुरसंजातपक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात्परिच्युतः। श्येनमुखपरिभ्रष्टेन वानेन भवितव्यम्। तथा हि। अतिदवीयस्तया प्रपातस्याल्पशेषजीवितोऽयमामीलितलोचनो मुहुर्मुहुर्मुखेन पतति, मुहुर्मुहुरत्युल्बणं श्वसिति, मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि। यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते,

---

सुप्तोऽपि निद्रितोऽपि प्रबुद्धो जाग्रदवस्थ इति विरोध । परिहारपक्षे सुष्ठु शोभना सा जटा यस्येति विग्रह । लक्ष्य च—'राजा राजार्चिताङ्घ्रेरनुपचितकलो यस्य चूडामणित्व नागा नागात्मजार्धं न भसितधवलं यद्वपुर्भूषयन्ति। मा रामारागिणी भून्मतिरिति यमिना येन वोऽद्धाहि मार स सा सत्ताश्वनुस्मारणकिरणनिभा पातु बिभ्रत्त्रिनेत्र ॥' इति शृङ्गारतिलकटीकायाम्। तथा 'सन्नालिका सदासा परिकरमुदिता' इति शोभनस्तुतौ लक्ष्यान्तरमपि। सन्निहित इति। सम्यक्प्रकारेण निहित स्थापित नेत्रद्वय लोचनद्वय येनैवभूतोऽपि परित्यक्त दूरीकृत वामलोचन येनेति विरोध । परिहारपक्षे परित्यक्त वाम लोचनमालोकन येनेत्यर्थ । यद्वा ब्रह्मचारित्वात्परित्यक्त वामाया मनस्विन्या लोचन येनेत्यर्थं ।

प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येनाकारणमित्राणि निदानव्यतिरेकेण प्रियकारीण्यतिशयेन करुणा परदुःखप्रहाणेच्छा तयार्द्राणि स्विन्नानि खलु निश्चयेन सदा सर्वकाल सता सज्जनाना चेतासि मनासि भवन्ति। यत स मुनिसुतो हारीताख्यो मा तदवस्थ कष्टदशापन्नमालोक्य निरीक्ष्य समुपजाता सम्यक्प्रकारेणोत्पन्ना करुणा कृपा यस्यैवभूत समीपवर्तिन निकटस्थायिनमृषिकुमारकमन्यतम मुनिसुतमब्रवीदवोचत्। अय प्रत्यक्षगत कथमपि महता कष्टेन शुकशिशु कीरपोतोऽसजातपक्षपुट एवासमुत्पन्नच्छद एवास्मात्तरुशिखराद्वृक्षप्रान्तात्परिच्युत स्रस्त । वाथवानेन कीरेण श्येन सिञ्चानकस्तस्य मुखादाननात्परिभ्रष्टेन पतितेन भवितव्यम्। तदेव दर्शयति—तथा हीति। अतिदवीयो द्राघीयस्तस्य भावस्तत्ता तया प्रपातस्य प्रपतनस्याल्पशेषमुद्धरित यस्मिन्नेवविध जीवित यस्यैवभूतोऽयमामीलिते सकुचिते लोचने नेत्रे यस्य स तथा मुहुर्मुहुर्वारंवार मुखेन पतति। अयं पक्षिणां जातिस्वभाव । मुहुर्मुहुरत्युल्बणमुत्कट श्वसिति

सज्जनों के हृदय निश्चय ही साधारणतया, बिना किसी (प्रकट) कारण के ही (दूसरों के) मित्र तथा अत्यन्त कृपालु होते हैं। क्योंकि उसने जब मुझे उस दशा में देखा तो उसको दया आ गयी और उसने उन बहुत से तपस्विकुमारों में से अपने निकटस्थित से कहा—'यह शुक शिशु, जिसके पर अभी तक (पूरे) उत्पन्न भी नहीं हुए हैं, किसी प्रकार इस वृक्ष की चोटी पर से गिर पड़ा है। अथवा यह (सम्भवत) किसी बाज के मुख से गिर पड़ा होगा। क्योंकि गिरने के स्थान के बहुत दूरस्थ होने के कारण इसमें जीवन बहुत कम बच गया है और आँखें मीचे हुआ बार बार मुँह के बल गिरता है, बार-बार बहुत प्रबल साँस ले रहा है, बार बार अपनी चञ्चुगुहा को खोलता है, अपनी गर्दन को सम्भाल नहीं पाता है। तो आ, मरने से

तावदेव गृहाणेमम्। अवतारय सलिलसमीपम्' इत्यभिधाय तेन मा सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य च जलसमीपमेकदेशनिहितदण्डकमण्डलुरादाय स्वय मामामुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमङ्गुल्या कतिचित्सलिलबिन्दूनपाययत्। अम्भःक्षोदकृतसेक चोपजातनवीनप्राणमुपतटप्ररूढस्य नवनलिनीदलस्य जलशिशिराया छायाया निधाय स्वोचितमकरोत्स्नानविधिम्। अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतो जपन्पवित्राण्यघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरुन्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्रपुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्।

प्राणिति। मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुट त्रोटीपुट विवृणोति विकासयति। न शक्नोति न समर्थो भवति शिरोधरा ग्रीवा धारयितु स्थापयितुम्। तदिति। तत पूर्वोक्तहेतोरेह्यागच्छ। यावदेवाय यावत्कालमय शिशुरसुभि प्राणैर्न विमुच्यते न विश्लेषं प्राप्नोति तावदेव तावत्काल गृहाणेम शुकम्। अवतारय प्रापय सलिलसमीप पानीयसविधमिति पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधायोक्त्वा तेनर्षिपुत्रेण मा सरस्तीर कासारतटमनाययत्प्रापयत्। उपसृत्य प्राप्य च जलसमीपम्। एकेति। एकदेशेऽन्यतरस्मिन्प्रदेशे निहितौ स्थापितौ दण्डकमण्डलू येन स तथा तत आदाय गृहीत्वा माम्। कीदृशम्। आमुक्त परित्यक्त प्रयत्नोऽन्नपानाद्यनुकूलशरीरक्रियारूपो येन स तम्। उत्तानितमूर्ध्वीकृत मुखमास्य येन स तम्। स्वयमात्मनाङ्गुल्या करशाखया कतिचित्कियन्त. सलिलबिन्दून्पानीयपृषतोऽपाययज्जलपानमकारयत्। अम्भस पानीयस्य क्षोदेन हस्तच्युतेन कृतो विहित सेक सिञ्चन यस्य स तम्। शुकपोत विशेषयन्नाह—उपेति। उपजाता नवीना नवा प्राणा असवो यस्यैवविध मामुपतट तटसमीप प्ररूढस्य जातस्य नवनलिनीदलस्य प्रत्यग्रपद्मिनीपत्रस्य जलेन पानेन शिशिराया शीतलाया छायायाम्। वैशम्पायन इत्यभिधा नाम यस्यैवविधं शुक निधाय स्थापना कृत्वैतदभिधानोऽयमिति स्वोचित स्वस्योचितं योग्य स्नानविधिमकरोदसृजत्। अभिषेकस्य स्नानस्यावसाने प्रान्ते। च पुनरर्थे। उदतिष्ठदुत्थितो बभूवेत्यन्वय। हारीत विशिनष्टि—अनेकैरिति। अनेकैर्बहुभि प्राणायामै प्राणयमै पूत पवित्र। कि कुर्वन्। जपन्स्मरन्। कानि। अघमर्षणान्यब्देवतास्तुतिरूपाणि। 'सर्वैनसामपध्वसि जप्य

पहले ही (अक्षरार्थ—प्राणो से वियुक्त नहीं होता है) इसको ले ले और जल के निकट उतार दे।" यह कहकर उसने मुझे उस (तपस्विकुमार) द्वारा तालाब के किनारे पर पहुँचवाया। और जल के निकट पहुँच कर उसने अपने दड तथा कमण्डलु को एक ओर रखकर स्वय मुझ असहाय (जिसने अपनी ओर से सारे प्रयत्न छोड़ दिये थे) को लेकर मेरा मुँह खोला और अगुलि से जल की कुछ बूदे पिलायीं और जल की (चूर्णभूत अत्यन्त नन्हीं) बिन्दुओं से सींचे गये मुझ को जिसमे (मानो) नया ही जीवन उत्पन्न हो गया था तट के समीप उगी हुई नलिनी के पत्ते की जल से शीतल हुई छाया मे रखकर उसने अपनी प्रथानुसारी (उचित) स्नानविधि पूरी की। और स्नान की समाप्ति पर, अनेक प्राणायामों (करके) से पवित्र हुआ, पवित्र अघमर्षण मन्त्रों का जप करता हुआ, ऊपर को मुँह किये हुआ, नलिनी के पत्ते के दोनों मे (रखे हुए) अभी-अभी तोड़े हुए लाल कमलो से भगवान्

आगृहीतधौतधवलवल्कलश्च सहज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतलनिर्धूननविशदसटः प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेनानुगम्यमानो मा गृहीत्वा तपोवनाभिमुख शनैरगच्छत् ।

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदा सन्निहितकुसुमफलैस्तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैरेलालताकुलितनालिकेरीकलापैर्लोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैरुल्लसितचूतरेणुपटलैरलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैरुन्मदकोकिलकुलकलापकोलाहलिभिरुत्फुल्लकेत-

त्रिष्ववमर्षणम्' इति कोश । कीदृशानि । पवित्राणि स्वत एव विशदानि । कीदृक् । उन्मुख ऊर्ध्वमुख । नलिनीति । नलिन्या कमलिन्या पत्रपुटेनाधारभूतेन प्रत्यग्रभग्नैस्तत्कालगृहीत रक्तारविन्दै रक्तकमलैराधेयभूतैर्भगवते माहात्म्यवते सवित्रे श्रीसूर्यायार्घं पूजां दत्त्वा वितीर्य । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । कीदृक् । आगृहीतेति । स्नानानन्तरमागृहीत स्वीकृत धौत क्षालितमत एव धवल शुभ्र वल्कल चोचं येन स तथा । सहज्योत्स्न इति । सह ज्योत्स्नया कौमुद्या वर्तते य स एवभूत सध्यातप सायकालीनसूर्यातप इव । करतलेति । करतलेन हस्ततलेन यन्निर्धूननमाच्छोटन तेन विशदा निर्मला जटा सटा यस्य स । प्रत्यग्र तत्काल स्नानेनार्द्राऽर्द्रीभूता जटा सटा यस्य स तथा तेन । सकलेन समग्रेण मुनिकुमारकदम्बकेन तापसशिशुसमूहेनानुगम्यमान. । मामिति । मा वैशम्पायन गृहीत्वादाय तपोवनाभिमुख स्वाश्रमसमुख शनैर्नातिवेगेनागच्छदन्वतिष्ठत् ।

अनतिदूरमिव गत्वा । दविष्ठ पन्थानमतिक्रम्येत्यर्थ । अहमाश्रम मुनिस्थानमपश्यमिति दूरेणान्वय. । कीदृशम् । काननैर्वनैरुपगूढ व्याप्तम् । अथ वनविशेषणानि व्याख्यापयन्नाह— दिशीत्यादि । दिशिदिशि प्रतिदिश सदा सर्वकाल सनिहितानि हस्तग्राह्याणि कुसुमफलानि येषां ते । तालस्तृणराज , तिलक श्रीमान् , तमालस्तापिच्छ , हिन्ताल वृक्षविशेष , बकुल केसर , एतैर्बहुलैर्दृढै । 'नीरन्ध्र बहुल दृढम्' इति कोश । एलायाश्चन्द्रबालाया या लता

सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर उठ खड़ा हुआ। और धोये हुए श्वेत वल्कल-वस्त्र को धारण किये हुआ और (इस कारण) चादनी के साथ मिश्रित सन्ध्याकालीन (पीली) आभा से युक्त-सा प्रतीत होता, हथेलियों से फटकार कर (रगड़कर) स्वच्छ हुई जटाओं वाला, अभी अभी किये गये स्नान से गीली जटाओ वाले उस सारे ही मुनिकुमारसमूह द्वारा अनुगम्यमान वह धीरे धीरे तपोवन की ओर चल पड़ा।

बहुत अधिक दूर न चलकर ही मैंने आश्रम देखा। यह आश्रम प्रत्येक दिशा मे सटकर लगे हुए वृक्षों वाले जगलो से घिरा हुआ था[1]। इन जगलो मे फूल तथा फल सदा प्राप्त हो जाते थे, वे ताल, तिलक, तमाल, हिन्तल तथा बकुल वृक्षो से भरपूर थे, उनमें इलायची की बेलों से व्याप्त नारियल के वृक्षों के कुन्ज विद्यमान थे, लोध्र, लवली तथा लवङ्ग पौधों के पत्ते लहरा रहे थे, आम के पराग के बादल ऊपर उठ रहे थे, भौरों के समूह की गुंजार से गूजते 'सहकार'—(आम्र का एक प्रकार) थे, प्रणयोन्मत्त कोकिलों से वे कोलाहल

१. उपगूढं, परिवेष्टितम् ।

कीरजःपुञ्जपिञ्जरैः पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतैस्तारकावर्षमिवाधर्मविनाशपिशुन कुसुमनिकरमनिलचलितमनवरतमतिधवलमुत्सृजद्भिः संसक्तपादपैः काननैरुपगूढम्, अचकितप्रचलितकृष्णसारशतशबलाभिरुत्फुल्लकमलिनीभिर्मारीचमायामृगावलूनरूढ-वीरुद्लाभिर्दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दगर्तविषमिततलाभिर्दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशो-भितप्रान्तम्, आगृहीतसमित्कुशकुसुममृद्भिरध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भि-

---

वल्लयस्ताभिराकुलितो व्याप्तो नालिकेरीकलापो लाङ्गलीसमूहो येषु ते । लोलाश्चपला लोध्रो गालव, लवली लताविशेष, लवङ्ग श्रीसज्ञ, एतेषा पल्लवा येषु ते । उल्लसितानि बहिर्निर्गतानि चूतरेणुपटलान्याम्रपरागपुञ्जानि येषु ते । अलिकुलाना भ्रमरसमूहाणा झङ्कारेण झङ्कृतिशब्देन मुखरा वाचाला सहकारा येषु ते । आम्रेष्वतिसौरभो य स सहकार इति पूर्वस्मान्नेद । अतो न पौनरुक्त्यम् । 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभ' इत्यमर । उन्मदानि मदोन्मत्तानि यानि कोकिलकुलानि पिककुलानि तेषा कलाप समूहस्तस्य कोलाहल कलकलो येषु ते । उत्फुल्ला विकसिता या केतक्यो मालत्यस्तासां रज पुञ्ज परागसमूहस्तेन पिञ्जरै पीतरक्तै । पूगीलता क्रमुकलता एव दोला प्रेङ्खास्तास्वधिरूढा आश्रिता वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यो देवता येषु ते । पुन किं कुर्वद्भि । अनवरत निरत्ययमनिलचलित वायुधूतमतिधवलमतिपाण्डुर कुसुमनिकर पुष्पसमूहमुत्सृजद्भिर्विकिरद्भि । किमिव । तारकावर्षमिवोल्कापातमिव । तदपि किञ्चिदनिष्टस्य सूचक भवति । इदमपि तथेत्याह—अधर्मेति । अधर्मस्याशिष्टाचारस्य विनाशोऽभावस्तस्य पिशुन सूचकम् । एतेन सर्वथाधर्माभावोऽत्रेति ध्वनितम् । ससक्ता अन्योन्य मिलिता पादपा वृक्षा येषु ते । पुन कीदृशम् । दण्डकारण्य प्रसिद्ध तस्य या स्थल्य स्थूलभूमयस्ताभिरुपशोभित शोभा प्रापित प्रान्त पश्चाद्भागो यस्य स तम् । अत स्थल्या विशेषणानि—अचकितेत्यादि । अचकिता अत्रस्ता प्रचलिता गच्छन्तो ये कृष्णसारा कृष्णमृगास्तेषां शत दशशतगुणितास्तेन शबलाभि किर्मीराभि । उत्फुल्ला विकसिता या

पूर्ण थे, पूर्णतया विकसित केतकी (पुष्पों) के पराग पुञ्ज से वे वन श्वेत[1] हो गये थे, उसमे पूगी के पौधों के झूलों पर देवताएँ झूला करती थीं। वे वन प्रत्येक प्रकार के (अधर्म) पाप के विनाश के सूचक, उल्काओं की वर्षा की भाँति प्रतीत होते वायु द्वारा हिलाकर (शाखाओं से) बिखराये हुए अत्यन्त श्वेत फूलों को निरन्तर गिरा रहे थे। उस आश्रम के किनारे (वहाँ) निर्भय घूमते सैकड़ों (चित्रित) कृष्ण मृगों से रगबिरगी दिखायी देतीं, फूलों से पूर्णतया लदी हुई कमलनियों द्वारा लाल हुई, मायामृग के रूपमें 'मारीच' द्वारा कुतरे गये तथा (अब पुन) उग आये हुए लतापत्रों वाली, राम के धनुष की नोक द्वारा टूटे कन्दों (गाठदार जड़ो) (को खोद कर निकाल लेने के पश्चात् उन) से हुए गड्ढों से ऊँचे नीचे तलों वाली दण्डकारण्य की भूमियों से सुशोभित था। हाथों मे समिधायें, कुशायें, फूल और मिट्टी लिये हुए, उच्च स्वरसे अपने पाठ दुहराते हुए शिष्यों द्वारा अनु-

---

१ पिञ्जर' = लाल से पीले ।

मुनिभिरशून्योपकण्ठम्, उत्कण्ठिशिखण्डिमण्डलश्रूयमाणजलकलशपूरणध्वानम्, अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिरुद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबध्यमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुभिरिवोपलक्ष्यमाणम्, आसन्नवर्तिनीभिस्तपोधनसम्पर्कादिवापगतकालुष्याभिस्तरंगपरम्परासक्रान्तरविबिम्बपङ्क्तिभिस्तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिरिव विकचकुमुदवनमृषिजनमुपासितुमव-

---

कमलिन्यो नलिन्यस्ताभिर्लोहिनीभी रक्ताभिर्मारीचनामा यो मायामृगस्तेनावलूनानि छिन्नानि रूढवीरुधा सञ्जातवल्लीना दलानि पर्णानि यासु ताभि। दाशरथी रामचन्द्रस्तस्य चापकोट्या क्षता उत्खाता ये कन्दा मूलानि तेभ्यो ये गर्ता भुवोविवराणि तैर्विषमितमुच्चनीचता प्राप्त तल यासु ताभि। पुन कीदृशम्। मुनिभि करणभूतैरशून्यमुपकण्ठ समीप यस्य स तथा तम्। यथाक्रम मुनीना त्रीणि विशेषणानि व्याख्यापयन्नाह—आगृहीतेति। आगृहीता आत्ता समिध एधासि, कुशा दर्भा, कुसुमानि पुष्पाणि, मृदो मृत्तिका यैस्ते तथा तै। अध्ययनेन वेदपारायणेन मुखरा वाचाला ये शिष्या विनेयास्तैरनुगतै सहितै सर्वतोऽभित प्रविशद्भि प्रवेश कुर्वद्भि। तद्गतपदार्थप्रदर्शनपूर्वकं पुनर्विशिनष्टि—उत्कण्ठीति। उत्कण्ठिना हृल्लेखवता शिखण्डिमण्डलेन मयूरसमूहेन श्रूयमाण आकर्ण्यमानो जलेषु कलशपूरणध्वान. शब्दो यस्मिन्स तम्। अनवरत निरत्ययमाज्येन सर्पिषा याहुतिर्हवन तया प्रीतै सन्तुष्टैश्चित्रभानुभिर्वह्निभि सशरीरमेव सविग्रहमेव मुनिजनमृषिवर्गममरलोक स्वर्गलोक निनीषुभिर्नेतुमिच्छुभिरुद्धूयमाना कम्पमाना या धूमलेखा दहनकेतनवीथी तस्याश्छलेनाबध्यमानो विरच्यमान स्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुरिव स्वर्गस्य त्रिविष्टपस्य यो मार्ग पन्थास्तत्र गमन तदर्थं सोपानसेतुमिवोपलक्ष्यमाण व्यज्यमानम्। दीर्घिकाभिर्वापीभि परिवृतमावृतम्। अथ क्रमेण वाप्या विशेषणानि। आसन्नवर्तिनीभि समीपसस्थिताभिस्तपोधनैस्तापसै. सम्पर्क सबन्धस्तस्मादिवापगतकालुष्याभिर्दूरीभूतमालिन्याभिस्तरगपरपरासु कल्लोलवीथिषु सक्रान्ता प्रतिबिम्बिता रविबिम्बस्य सूर्यबिम्बस्य पङ्क्तयो यासु ताभि.। तरगपरपरासु प्रतिबिम्बपरपर-

---

गम्यमान, सब ओर से प्रविष्ट होते मुनियों द्वारा, कभी शून्य (खाली) नहीं रहता था। वहाँ (अपनी) गर्दनें ऊपर किये हुए मयूरों के झुण्ड जल से घटों को भरे जाने के शब्द सुनते रहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उस आश्रम मे निरन्तर घृताहुतियों से प्रसन्न हुई मुनियों को सशरीर ही स्वर्ग लोक म (मानो) ले जाना चाहती हुई अग्नियाँ, (एक क पश्चात् एक भेजी गयीं) धूम्र पंक्तियों के बहाने से स्वर्ग मे जाने के लिये सीढीरूप पुल का निर्माण कर रही थीं। फिर वह पड़ौस में स्थित बावडियों से घिरा हुआ था, इन बावड़ियों का पाप मानो तपस्वियो के साथ सम्बन्ध रहने से ही दूर हो गया था, इनकी लहरों में सूर्यमण्डल के अनेक प्रतिबिम्ब पड़े रहने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि तपस्वियों के दर्शनों के लिये आया सप्तर्षिमण्डल उनका अवगाहन कर रहा हो और रात्रियों म, वे बावड़ियाँ, (उस आश्रम में) ऋषियों की सेवा में उपस्थित होने के लिये आये ग्रहों (तारा

तीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिलावनमितशिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिरनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्धपल्लवाञ्जलिभिरुपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्यच्छ्यामाकम्, उपसगृहीतामलकलवलीकर्कन्धूकदलीलकुचचूतपनसतालीफलम्, अध्ययनमुखरबटुजनम्, अनवरतश्रवणगृहीतवषट्कारवाचालशुककुलम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेवबलिपिण्डम्, आसन्नवापीकलहंसपोतभुज्यमाननीवार-

---

त्यर्थ । तज्जनितशोभान्तर वर्णयन्नाह—तापसेति । तापसदर्शनार्थमागत प्राप्ता या सप्तर्षिमाला तया विगाह्यमानाभिरिव विलोड्यमानाभिरिव । एतेन सप्तर्षीणा सूर्यप्रतिबिम्बसादृश्य ध्वनितम् । कि कुर्वतीभि । निशासु रात्रिषु विकचकुमुदवन विनिद्रकैरववनमृषिजन मुनिजन मुपासितु सेवितुमवतीर्णमुपरिष्टादागत ग्रहगणमिव नक्षत्रवृन्दमिवोद्वहन्तीभिर्धारयन्तीभि । एतेन कुमुदवनग्रहणयो स्वच्छत्वसारूप्याद्रूपकमुक्तम् । पुन प्रकारान्तरेण तमेव विशेषतो विशिनष्टि—अनिलेति । अनिलेन वायुनावनमित शिखर प्रान्त यासा ताभिरेवभूताभिर्वनलताभिररण्यवल्लीभि प्रणम्यमानमिव नमस्क्रियमाणमिव । अनवरतेति । अनवरत मुक्तानि कुसुमानि यैरेवभूतै पादपैर्वृक्षैरभ्यर्च्यमानमिव पूज्यमानमिव । आबद्धेति । आबद्धा रचिता पल्लवा एवाञ्जलय एवभूतैर्विटपैर्वृक्षैरुपास्यमानमिव सेव्यमानमिव । उटजेति । उटजाजिरेषु पर्णशालाङ्गणेषु प्रकीर्णा विक्षिप्ता शुष्यन्त शोष प्राप्नुवन्त श्यामाका धान्यविशेषा यस्मिन्स तम् । उपसंगृहीतेति । उपसगृहीतान्यात्तान्यामलक धात्री, लवली लताविशेष, कर्कन्धूर्बदरी, कदली रम्भा, लकुचो वृक्षविशेष, चूत आम्र, पनस प्रसिद्ध, ताली तृणराज, एतेषां फलानि यस्मिन्स तम् । अध्ययनेति । अध्ययनेन वेदपठनेन मुखरा वाचाला बटुजना ब्रह्मचारिजना यस्मिन्स तम् । अनवरतेति । अनवरत निरन्तरं श्रवणगृहीता श्रुतिमात्रेण शिक्षिता ये वषट्कारशब्दास्तैर्वाचालं शुककुल यस्मिन्स तम् । अनेकेति । अनेकाभि सारिकाभि पीतपादाभिरुद्घुष्यमाणमुच्चै स्वरेण पठ्यमान सुब्रह्मण्य वेदो यस्मिन्स तम् । अरण्येति ।

समूहों) सरीखे प्रतीत होते पूर्णतया फूली कुमुदिनियों के समूहों को धारण किये रहती थीं। पवन द्वारा झुकाये सिरों वाली वनलताएँ मानो उस आश्रम को प्रणाम करती थीं। निरन्तर बिखरे फूलों वाले वृक्ष मानो उसकी पूजा कर रहे थे। पत्तों की अजलियाँ (बान्धे हुए) बनाये हुए (हाथ जोड़े हुए) पौधे मानो उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे। (उसकी) पर्णशालाओं के आँगनों में श्यामाक नामक धान्य बिखरा-सूखता रहता था। इसमें आमलक, लवली, कर्कन्धु, कदली, लकुच, पनस, आम्र और ताल (ताड़ खजूर) के फल एकत्रित थे अर्थात् इनका अचार डाला रहता था)। इसमें ब्रह्मचारी जोर-जोर से बोलकर पढते रहते थे और तोते निरन्तर सुनते रहने से याद किये हुए 'वषट्कार' शब्द को बोलते रहते थे। इसमें अनेक मैनाएँ 'सुब्रह्मण्य' (देवस्तुति) अथवा वेद को कण्ठस्थ करती रहती थीं। इसमें जगली मुर्गे वैश्वदेव विधि के लिये प्रदत्त बलिपिण्ड को खाते रहते थे। नीवार बलियों को समीप

बलिम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्, अग्निकार्यार्धदग्धमिसमिसायमानसमित्कुशकुसुमम्, उपलभग्ननालिकेररसस्निग्धशिलातलम्, अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डलकनिहितकरवीरकुसुमम्, इतस्ततो विक्षिप्तभस्मलेखाकृतमुनिजनभोजनभूमिपरिहारम्, परिचितशाखामृगकराकृष्टिनिष्कास्यमान-

---

तत्कुक्कुटैश्चरणायुधैः उपभुज्यमानो भक्ष्यमाणो वैश्वदेवस्य देवयज्ञस्य बलिपिण्डो हन्तकारो यस्मिन्स तम्। आसन्नेति। आसन्ना समीपस्था या वापी दीर्घिका तस्या कलहंसपोतैः कादम्बशिशुभिर्भुज्यमानो भक्ष्यमाणो नीवारबलिर्यस्मिन्स तम्। एणीति। एण्यो मृग्यस्तासां जिह्वा रसना एव पल्लवास्तैरुपलिह्यमाना आस्वाद्यमाना मुनिबालका यस्मिन्स तम्। अग्नीति। अग्निकार्ये होमेऽर्धदग्धान्यर्धभस्मीभूतान्यतएव मिसमिसायमानानि मिसमिसेतिशब्दमाचरमाणानि समित्कुशकुसुमानि यस्मिन्स तम्। उपेति। उपले दृषदि भग्नानि द्वैधीकृतानि नालिकेराणि लाङ्गलीफलानि तेषां यो रसो द्रवस्तेन स्निग्धं चिक्कणं शिलातलं यस्मिन्स तम्। अचिरेति। अचिरक्षुण्णानि तत्कालमर्दितानि यानि वल्कलानि तेषां रसस्तेन पाटलं श्वेतरक्तं भूतलं यस्मिन्स तम्। रक्तेति। रक्तचन्दनं पत्राङ्गं तेनोपलिप्तमालिप्तमालिखितं यदादित्यमण्डलमेव मण्डलकं तस्मिन्निहितानि स्थापितानि करवीरो हयमारस्तस्य कुसुमानि पुष्पाणि यस्मिन्स तम्। इतस्तत इति। इतस्ततो विक्षिप्तं यद्भस्म भूतिस्तस्य लेखा तया कृतो विहितो मुनिजनभोजनभूमेः परिहारो निषेधो यस्मिन्। भस्मलेखाङ्कितायां भूमौ केनापि नागन्तव्यमिति भावः। यद्वा भस्मनो या लेखा घर्षस्तेन कृतो मुनिजनभोजनभूमेरुच्छिष्टभूमेः परिहारो मार्जनं यस्मिन्। दृश्यते हि भोजनान्ते भस्मना मार्जनं पश्चाद्गोमयेनोपलेपनमिति। परिचितेति। परिचिताः सजातपरिचया ये शाखामृगास्ताम्रमुखाः श्याममुखा वा वानरास्तेषां कराकृष्ट्या हस्तावलम्बेन निष्कास्यमाना प्रवेश्यमाना जरन्तोऽन्धाश्च तापसा यस्मिन्।

की बावड़ियों के पालतू हंस खाते रहते थे। तपस्वियों के बालकों को वहाँ मृगियों की पत्तों सरीखी (लम्बी तथा कोमल) जिह्वायें चाटती रहती थीं। वहाँ होम में आधी जली समिधाएँ कुशा और फूल सिमसिम शब्द कर रहे थे अथवा सनसना रहे थे। वहाँ की शिलाओं के तल उनपर मारकर तोड़े हुए नारियलों के रस से चिकने हो गये थे। (वृक्षों पर से) अभी ही उतारी हुई वल्कलों के रस से वहाँ का पृथ्वीतल पाटल रंग का हो गया था। वहाँ लाल चन्दन के लेप से (पृथ्वी पर) चित्रित सूर्य भगवान् के मण्डल पर करवीर पुष्प (भेंट के रूप में) रखे हुए थे। उसमें वे स्थान जहाँ मुनियों ने भोजन करना था, इधर उधर पवित्र भस्म की रेखायें खींचकर (भ्रष्टता से बचाव के लिये) अंकित कर दिये गये थे[1]। इसमें पालतू बन्दर हाथों से खींचकर बूढ़े अन्धे तपस्वियों को भीतर प्रविष्ट करा रहे थे तथा बाहर निकाल रहे

---

१ इधर उधर फैलायी गई भस्म की रेखाओं से मुनिजनों के लिये उपयुक्त भूमिका औरों के लिये निषेध कर रखा था—परिहार का अर्थ मुख्य निषेध ही है। यहाँ भी काले ने 'परिहार' का यही अर्थ किया प्रतीत होता है।

प्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्, इभकलभार्धोपभुक्तपतितैः सरस्वतीभुजलताविगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्, अम्बुपूर्णपुष्करपुटैर्वनकरिभिरापूर्यमाणविटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराहदंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्, उपजातपरिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवनसधुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्, आरब्धामृतचरुचारगन्धम्, अर्धपक-

---

इभेति। मृणालशकलैर्बिसखण्डैः कल्माषित चित्रितम्। कीदृशैरिव। सरस्वती देवी तस्या भुजलते बाहुलते ताभ्या विगलितै स्रस्तै शङ्खवलयैरिव त्रिरेखकटकैरिव। बिसाना स्वतो भूमिपातो न स्यादित्याह—इभेति। इभकलभाना यदर्धोपभुक्त यदर्धचर्वित तस्मात्पतितै स्रस्तै। ऋषीति। ऋषिजनार्थं मुनिजनकृत एणकैर्हरिणैर्विषाणशिखरै शृङ्गप्रान्तैरुत्खन्यमानानि विविधानि विचित्राणि कन्दमूलानि यस्मिन्। अम्बुपूर्णेति। अम्बुभिर्जलै पूर्णानि भृतानि पुष्करपुटानि शुण्डाग्राणि। 'शुण्डाग्र त्वस्य पुष्करम्' इति कोश। येषा मेतादृशैर्वनकरिभिररण्यहस्तिभिरापूर्यमाणानि भ्रियमाणानि विटपाना वृक्षाणामालवालकान्यावापस्थानकानि यस्मिन्। एतेन शाखामृगहरिणगजानामपि बुद्धिपूर्वकयथोचितकार्यकर्तृत्व सूचितम्। ऋषीति। ऋषिकुमारकैर्मुनिशिशुभिराकृष्यमाणानि वनवराहदंष्ट्रान्तराललग्नानि शालूकान्युत्पलाना कन्दा यस्मिन्। 'उत्पलाना तु शालूकम्' इति कोश। उपजातेति। उपजातपरिचयै सजातसबन्धै कलापिभिर्मयूरै पक्षपुटपवनेन छदपुटानिलेन सधुक्ष्यमाण प्रज्वाल्यमानो मुनीना होमार्थं हुताशनो वह्निर्यस्मिन्स तम्। आरब्धेति। आरब्धो विहितो योऽमृतचरुर्यज्ञओदनस्तस्य चारु मनोहरो गन्धो यस्मिन्स तम्। अर्धेति। अर्धपक्वो य पुरोडाश पूर्वोक्तस्तस्य परिमलो गन्धस्तेनामोदित हर्षजननशीलम्।

थे—अर्थात् जाने आने में उनका नेतृत्व कर रहे थे। यह आश्रम हस्तिशिशुओं द्वारा आधे खाने के पश्चात् गिरे हुए तथा (श्वेत होने से) सरस्वती देवी की लता-सरीखी बाहुओं से खिसककर नीचे गिरे शङ्खों के वलय-समान प्रतीत होते मृणाल के टुकड़ों से रग-बिरगा हो गया था। वहाँ पर मुनियों के लिये मृग (अपने) सींगो की नोकों से विविध प्रकार के कन्दमूल उखाड़ रहे थे। वहाँ पर जगली हाथी अपनी जलभरी सूड़ों रूप दोनो से वृक्षों के आलवालों को (जल से) भर रहे थे। वहाँ मुनियों के बालक वन्य वराहों द्वारा अपनी दाढ़ों के बीच पकड़ी हुई कमलों की कन्दाकार जड़ों को खींच (कर निकाल) रहे थे।[1] अत्यन्त परिचित (अर्थात् पालतू) हुए जगली मोर, वहाँ पर, अपने विस्तृत पखों से की गयी वायु से मुनियों की होमाग्नि को प्रज्वलित कर रहे थे। यह आश्रम तैयार किये जा रहे चरु (घी तथा चावल की आहुति) की आकर्षक गन्ध से व्याप्त था। वह आश्रम आधे पके पुरोडाश (चावल की

---

१. शालूक' का अर्थ कमल की जड़ करना चिन्त्य है—सूअर कीचड़ में धँसी नागर मोथे की जड़ों को निकाल कर खाते हैं—कमल की जड़ों को नहीं खाते।

पुरोडाशपरिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुतभुग्झङ्कारमुखरितम्, उपचर्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृदैवतम्, अर्च्यमानहरिहरपितामहम्, उद्दिश्यमानश्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्, वाच्यमानविविधपुस्तकम्, विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्, आरभ्यमाणपर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमानमन्त्रम्, अभ्यस्यमानयोगम्, उपहूयमानवनदेवताबलिम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलम्, क्षाल्यमानवल्कलम्,

---

अवीति। अविच्छिन्नात्रुटिता आज्यधारा घृतधारा तया हुतिर्हवनं तया यो हुतभुग्झङ्कारोऽग्निशब्दस्तेन मुखरितं वाचालितम्। उपचर्येति। उपचर्यमाणः पर्युपास्यमानोऽतिथिवर्गो यस्मिन्। पूज्येति। पूज्यमानानि पितृदैवतानि पितरो यस्मिंस्तम्। अर्च्येति। अर्च्यमाना पूज्यमाना हरिः कृष्णः, हर ईश्वरः, पितामहः पितुः पिता ब्रह्मा, एते यस्मिन्। उद्दिश्येति। उद्दिश्यमान उद्देश्यपूर्वकं क्रियमाणः श्राद्धकल्पः श्राद्धाचारो यस्मिन्स तम्। व्याख्येति। व्याख्यायमानार्थद्वारा निरूप्यमाणा यज्ञविद्या यस्मिन् स तम्। आलोच्येति। आलोच्यमानं मनसि विचार्यमाणं धर्मशास्त्रं स्मृत्यादिकं यस्मिन्स तम्। वाच्येति। वाच्यमानानि परिभाष्यमाणानि विविधान्यनेकप्रकाराणि पुस्तकानि शास्त्राणि यस्मिन्स तम्। विचार्येति। विचार्यमाणो युक्त्या स्थाप्यमानः सकलशास्त्रार्थो यस्मिन्। आरभ्येति। आरभ्यमाणा नवीना क्रियमाणा पर्णशालोटजा यस्मिन्। उपलीति। उपलिप्यमानानि गोमयादिनाजिराणि प्राङ्गणानि यस्मिन्। उपेति। उपमृज्यमानानि प्रसार्यमाणानि उटजाभ्यन्तराणि पर्णशालामध्यानि यस्मिन्। आबध्येति। आबध्यमानं ध्यानमेकप्रत्ययसततिर्यस्मिन्। साध्येति। साध्यमानो होमादिना स्वायत्तीक्रियमाणो मन्त्रो देवाधिष्ठातृको यस्मिन्। अभ्यस्येति। अभ्यस्यमान उद्योगविषयीक्रियमाणो योगश्चित्तवृत्तिनिरोधो यस्मिन्। उपेति। उपहूयमान उपढौक्यमानो वनदेवतायै बलिर्यस्मिन्। निर्वर्त्येति। निर्वर्त्यमाना निष्पाद्यमाना मौञ्जमेखला यस्मिन्। क्षाल्येति।

आहुति) की गन्ध से सुरभित था। वह आश्रम सतत बहती हुई घृतधारा की आहुतियों से हुत अग्नि द्वारा की गयी झकार से गूंज रहा था। वहाँ अतिथियों का स्वागत किया जा रहा था, पितृदेवताओं की पूजा की जारही थी, विष्णु शिव और ब्रह्मा पूजे जारहे थे, श्राद्धव्यवहार बताया जा रहा था, यज्ञ विद्या की व्याख्या की जा रही थी, धर्मशास्त्र की मीमांसा की जा रही थी, विविध प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं और सकल (अथवा विविध) शास्त्रों के अभिप्राय पर विचार किया जा रहा था। पर्णशालायें बनायी जा रही थीं, आँगन (गोबर से) लिपे जा रहे थे, और कुटियों के भीतरी भाग लिपे जा रहे थे। वहाँ ऋषिजन अपना ध्यान परमात्मा में लगा रहे थे, मन्त्रों को बहुफलदायक (सिद्ध) किया जा रहा था (जिसमें कि उनका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सके), योग का अभ्यास किया जा रहा था और वनदेवताओं को बलियां (उपहूयमान) अर्पित की जा रही थीं। वहाँ मूंज की मेखलाएँ बनायी जा रही थीं, वल्कल (वस्त्र) धोये जा रहे थे, समिधायें एकत्रित की जारही

उपसंगृह्यमाणसमिधम्, उपसंस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, गृह्यमाणगवेधुकम्, शोष्यमाण-पुष्करबीजम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्, सत्क्रियमाणपरिव्राजकम्, आपूर्यमाणकमण्डलुम्, अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितनरहरिवराहरूपम्, साख्य-मिव कपिलाधिष्ठितम्, मधुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दित-

क्षाल्यमानानि वल्कलकानि यस्मिन्। उपेति। उपसगृह्यमाणा उपादीयमाना समिधो यस्मिन्। उपेति। उपसस्क्रियमाणं छगणादिना शुद्धीक्रियमाण कृष्णाजिन मृगचर्म यस्मिन्। गृह्येति। गृह्यमाणा गवेधुका धान्यविशेष कन्दो वा यस्मिन्। शोष्येति। शोष्यमाणानि शोष नीय मानानि पुष्करबीजानि कमलफलानि यस्मिन्। ग्रथ्येति। ग्रथ्यमाना अक्षमाला रुद्राक्षमाला यस्मिन्। न्यस्येति। न्यस्यमान स्थाप्यमानो वेत्रदण्डो यस्मिन्। सदिति। सत्क्रियमाणा परिव्राजका यस्मिन्। आपूर्येति। आपूर्यमाणानि जलेन ध्रियमाणानि कमण्डलूनि यस्मिन्। अदृष्टेति। कलिकालस्य कलियुगस्यादृष्टपूर्वमनवलोकितपूर्वम्। कलिप्रवेशायोग्यमित्यर्थ। एतेन सर्वथा पातकाभावो व्यज्यते। अपरीति। अनृतस्यासत्यस्यापरिचितमसनिहितम्। अश्रुतेति। अनङ्गस्य कामस्याश्रुतपूर्वमनाकर्णितपूर्वम्। मदनोद्दीपकत्वाभावात्। अब्जेति। अब्जयोनिमिव ब्रह्माणमिव। त्रिभुवनवन्दित अभिवादितम्। पक्षे वन्दित श्रेष्ठम्। असुरारीति। असुरारि-र्विष्णुस्तद्वदिव प्रकटितानि नरो नरनारायणो हरिश्च नृहरि। अथवा नरहरिर्नृसिंहो वराहश्च तेषा रूपाणि येन स तम्। पक्षे प्रकटितानि नरेभ्यो हरिवराहरूपाणि येन स तम्। सांख्येति। साख्य कापिलदर्शन तदिव कपिलमुनिनाधिष्ठितमाश्रितम्। तत्प्रणीतत्वात्। पक्षे कपिलाभिर्गो-

थीं, कृष्णमृग की खालें सवारी जा रही थीं, (धान्यविशेष) गवेधुक को एकत्रित किया जा रहा था, कमल बीज सुखाये जा रहे थे, अक्षमालायें गूथी जा रही थी, बेंत के दड रखे (इकट्ठे किये) जा रहे थे, मुनियों को सन्यास मे दीक्षित किया जा रहा था[1] और ऋषिजनों द्वारा कमण्डलु जल से भरे जा रहे थे। उस आश्रम मे अभी तक कलि-युग कभी नहीं आया था, असत्य से वह अपरिचित था, और कामदेव ने अभी तक कभी भी उसका नाम नहीं सुना था। कमलजन्मा ब्रह्मा की भाँति तीनों लोकों ने उसकी स्तुति की थी, (अपने तीसरे तथा चौथे अवतार के समय क्रमश) वराह तथा नृसिंह के रूप दिखाने वाले असुरों के शत्रु विष्णु की भाँति उस आश्रम के (अपने भीतर) वराहों, मनुष्यों और सिंहों की शारीरिक आकृतियाँ प्रदर्शित की हुई थी (ये उसमें रहते थे)। कपिल मुनि द्वारा प्रतिष्ठापित 'साख्य दर्शन' की भाति वह आश्रम कपिला गायों द्वारा अधिष्ठित 'कपिलाधिष्ठित' था। बलराम द्वारा चूर्णित दर्पवाले धेनुकराक्षस द्वारा अध्युषित 'बल + अवलीढ दर्पित धेनुक' मथुरानगर के निकटस्थ कुञ्जों की भाति वह आश्रम भी बलशाली मदमस्त हथनियों द्वारा अधिष्ठित, 'बलावलीढ दर्पित धेनुक' था। अपने वत्स कुल को आनन्दयुक्त किये हुए उदयन राजा की भाति वह आश्रम

१. 'संस्क्रियमाण' पाठ के अनुसार अर्थ है।

वत्सकुलम्, किंपुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्, निदाघसमयावसानमिव प्रत्यासन्नजलप्रपातम्, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्, हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसचूर्णिताक्षास्थिसंचयम्, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि सततविर्भूतहव्यधूमगन्धम्, मातङ्गकुला-

---

भिरधिष्ठितम्। मधुरेति। मधुरा मधूपघ्न तस्योपवनमिव द्वादशवनेषु गर्भित वन तद्वदिव बलावलीढो बलवान्दर्पितो दर्पयुक्तो धेनुको दैत्यो यस्मिन्। पक्षे बलावलीढा बलयुक्ता दर्पिता धेनवो गावो यस्मिन्। उदयनेति। उदयन राजानमिवानन्दित वत्सकुल येन। वत्सोऽत्र राजा पाण्डवकुलसमुत्पन्न। पक्षे वत्सस्तर्णकस्तस्य कुल समुदाय। किंपुरुषेति। किंपुरुष किंनरस्तस्याधिराज्य प्रभुत्व तद्दिव मुनिजनैर्गृहीता ये कलशास्तैरभिषिच्यमानो द्रुमो नाम राजा यस्मिन्। किंनराणां द्रुमो नाम राजाभूदिति प्रसिद्धि। पक्षे द्रुमा वृक्षा। निदाघेति। ग्रीष्मसमयावसानमिव शुक्रमासमिव प्रत्यासन्न समीपस्थो जलप्रपात प्रवर्ष यस्मिन्। पक्षे जलप्रपातो निर्झर। जलधरेति। जलधरसमयमिव पर्जन्यकालमिव वनस्य पानीयस्य यद्गहनं गम्भीर मध्यमभ्यन्तरप्रदेशस्तत्र सुखेन सुप्तो निद्रां प्राप्तो हरिर्विष्णुर्यस्मिन्। प्रावृषि विष्णु समुद्रे शेत इति प्रसिद्धम्। पक्षे वनस्यारण्यस्य गहनानि गह्वराणि तेषु सुप्ता हरय सिंहा यस्मिन्। हन्विति। हनूमन्तमिवाञ्जनीसुतमिव शिलाशकलप्रहारेण सचूर्णितोऽक्षनाम्नो रावणपुत्रस्यास्थिसचयो येन स तम्। पक्षे सचूर्णितो योऽक्षो बिभीतकस्तस्यास्थिसचयो मध्यप्रदेशसमूहो यस्मिन्। खाण्डवेति। खाण्डवनाम्नी वनस्य यो विनाशस्तत्रोद्यत उद्योगवान्योऽर्जुन फाल्गुनस्तमिव प्रारब्ध विहितमग्नि-

---

भी (इसमें रहने वाले) बहुत से बछड़ों को आनन्दित किये हुआ होनेसे 'आनन्दित-वत्सकुल' था। हाथों में कलश लेकर मुनियो द्वारा अभिषेक कराये जाते द्रुम राजावाले किन्नर राज्य की भाँति वह आश्रम भी उसमे स्थित वृक्षों के मुनियों द्वारा (हाथों मे) लिये हुए कलशों से सींचे जानेके कारण 'मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमान' था। समीपस्थ वर्षावाले ग्रीष्म ऋतु के अन्त समय की भाँति वह आश्रम भी अपने पड़ोस में जलप्रपातों के होने के कारण प्रत्यासन्न-जल-प्रपात था। गहरे (वन) जल के मध्य सुख से सोये विष्णु भगवान् से युक्त वर्षा ऋतु के सदृश वह आश्रम भी, इसके घने जगलों के बीच चैन से सोते सिंहों वाला होने से 'वनगहनमध्यसुखसुप्तहरि' था। शिला के टुकड़ों से (रावणपुत्र) अक्ष की सारी हड्डियों को चूरा करने वाले हनूमान् जी की भाति वह आश्रम भी (अपने प्रागण मे) पत्थरों के प्रहार से चूरा किये गये 'अक्षों' की गुठलियों के समूहवाला होने के कारण हनुमान्जी जैसा था। अग्निदेवका कार्य आरम्भ करनेवाले (स्वीकार करने वाले) अर्जुन की भाँति वह आश्रम (ऋषियों द्वारा) प्रारम्भ किये गये अग्निहोत्रों वाला होने के कारण, 'प्रारब्धाग्निकार्य' था। सुगन्धित उबटनधारी होते हुए भी? नहीं, नहीं, उसकी भूमि गाय के गोबर से लिपी रहने पर भी वह हव्य के धुंए की गन्ध को निरन्तर छोड़ता रहता था। मातङ्ग अर्थात् चाण्डाल? नहीं, नहीं,

ध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपति-मण्डलसनाथमपि सदासनिहिततरुगहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम् ।

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न पर-

---

कार्यं देवसतर्पण यस्मिन् । पक्षेऽग्निकार्यं होम । सुरभीति । सुरभि सुगन्धि यद्विलेपनमङ्गरागस्तद्वरमपि सतत निरन्तरमाविर्भूत प्रकटितो हव्य सुरेभ्यो दातव्य तस्य धूमगन्धो यस्मिन्निति विरोध । तत्परिहारपक्षे सुरभेर्गो । विलिप्यतेऽनेन भूरिति विलेपन गोमय यस्यामेतादृशी धरा भूर्यस्मिन्नित्यर्थ । मातङ्गेति । मातङ्गस्य यत्कुल तेनाध्यासितमपि तदाश्रितमपि पवित्र पावनमिति विरोध । तत्परिहारस्तु मातङ्गकुलानि हस्तियूथानीत्यर्थात् । उल्लसितेति । उल्लसितमुल्लास प्राप्त धूमकेतुशत यस्मिन्नेवभूतमपि प्रशान्तोपद्रवमिति विरोध । तत्परिहारस्तु धूमकेतवो वह्नय इत्यर्थात् । परीति । परिपूर्णो न न्यून एवविधो यो द्विजपतिश्चन्द्रस्तस्य मण्डल तेन सनाथमपि सहितमपि सदा संनिहितमासन्नवर्ति तरुगहनेष्वन्धकार यस्मिन्निति विरोध । तत्परिहारस्तु परिपूर्णा ज्ञानेन भृता ये द्विजपतयो ब्राह्मणास्तेषा मण्डल समूहमित्यर्थात् । अतिरमणीयमत्यन्तमनोहारि । अपरेति । अपर भिन्नमिव ब्रह्मलोक सुरलोकम् । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त ।

अथ पुनर्विरोधाभासप्रदर्शनपूर्वकमाश्रममाहात्म्य प्रदर्शयति—यत्र चेति । 'मूलानामधोगति' एतत्पर्यन्त प्रबन्धक । मलिनतेति । हवि साक्षाय्य तस्य धूमेषु मलिनता मालिन्यम् । चरितेष्वाचारेषु न, कौलीन्यलक्षण तदित्यर्थः । मुखराग इति । शुकेषु कीरेषु मुखरागो मुखारुण्यम् । कोपेष्विति निमित्तसप्तमी । कोपनैमित्तिक न मुखे वैरूप्यमित्यर्थ । तीक्ष्णतेति । कुशाग्रेषु दर्भप्रान्तेषु तीक्ष्णता चर्मास्थिभेदनसमर्थः शक्तिविशेषः । स्वभावेषु प्रकृतिषु न क्रूरत्वमित्यर्थ । चञ्चलतेति । कदलीदलेषु रम्भापत्रेषु चञ्चलता तरलता । न मन सु चेत सु

हस्तियों के परिवारो द्वारा अधिष्ठित हुआ रहने पर भी वह आश्रम पवित्र ही था । इसमे सैकड़ों पुच्छल तारे (?) नहीं, नहीं, सैकड़ों अग्निया जलते रहने पर भी वहा उपद्रव शात रहते थे । यद्यपि वह पूर्णचन्द्रमण्डल से युक्त था तथापि उसमें वृक्षों का घना अन्धकार सदा समीप विद्यमान रहता था—कारण कि वह तो वस्तुतः पूर्ण पडित ब्राह्मणमण्डल से सुशोभित था और अत्यन्त रमणीय दूसरे ब्रह्मलोकसरीखा था ।

और उस आश्रम मे मलिनता यज्ञों से उठते हुए धुओं में थी, (इसके निवासियों के) चरित्रों में (दुष्टता) नहीं थी । लालिमा तोतों के मुखों में थी, क्रोध (के कारण मुखों पर) कोई लालिमा नहीं थी । कुशा घास (की पत्तिया तो पैनी) थीं, पर (वहाँ के निवासियों के) स्वभाव उग्र नहीं थे । वहाँ के केलों के पत्ते तो हिलते रहते थे पर उनके (उसके निवासियों के) मन अस्थिर नहीं थे । कोयलों की आखों में लाली थी परन्तु परस्त्रियों की

कलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु, पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणासु न शास्त्रेषु, वसुसकीर्तन दिव्यकथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु, मुनिबालनाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन,

---

वृत्तिविशेष । चक्षुरिति । कोकिलेषु परभृत्सु चक्षूरागो नेत्रयोरारुण्यम् । परकलत्रेषु परस्त्रीषु नाभिलाष इत्यर्थ । कण्ठग्रह इति । कमण्डलुषु कुण्डिकासु कण्ठग्रह कण्ठे ग्रहणम् । सुरतेषु मैथुनेषु न कण्ठालिङ्गनम् । मुनीना तदभावादिति भाव । मेखलेति । व्रतेषु नियमेषु मेखलाबन्धो मौञ्जीबन्धनम् । ईर्ष्याकलहेष्वसूयाविग्रहेषु न शृङ्खलाबन्धनम् । स्तनेति । होमधेनुषु होमनैमित्तिकधेनुषु स्तनस्पर्शो दोहनम् । कामिनीषु ललनासु न कुचमर्दनम् । पक्षपात इति । कृकवाकुषु कुक्कुटेषु पक्षपात पक्षाणा पतनम् । न विद्याविवादेषु शास्त्रकथासु सोपाधिकोऽङ्गीकार । अन्यस्य पक्षिणस्तथा युद्धे पक्षपातो नास्तीति कुक्कुटग्रहणम् । भ्रान्तिरिति । अनलप्रदक्षिणासु भ्रान्ति परिवृत्ति. । शास्त्रेषु न भ्रान्तिर्मिथ्याज्ञानम् । वस्विति । दिव्यकथासु भारतकथासु वसवो गणदेवा पितृगणा वा तेषा सकीर्तन सम्यक्प्रकारेण कथनम् । न तृष्णासु लिप्सासु वसु द्रव्य तस्य संकीर्तन प्रशसनम् । गणनेति । रुद्राक्षवलयेषु रुद्राक्षसरण्या गणना सख्या । न शरीरेषु देहेषु गणनादर । अत्यन्तनिस्पृहत्वात्तत्र निरपेक्षेत्यर्थ । मुनीति । बवयोरैक्यान्मुनीना वाला केशास्तेषा नाशो ध्वंस क्रतुदीक्षया यज्ञदीक्षया । न मृत्युना बालनाश शिशुनाश । पुरुषायुषजीवित्वात्तेषाम् । रामेति । रामो दाशरथिस्तस्मिन्ननुराग आराध्यत्वेन ज्ञान रामायणेन रामचरित्रेण । तद्ग्रन्थश्रवणेन तदुपरि रागाधिक्यमित्यर्थ । न तु यौवनेन तारुण्येन रामानुरागो रामा स्त्रियस्तास्वनुरागो विषयेच्छा । मुखेति । मुखे भङ्गविकारस्त्रिवली-

---

ओर (अभिलाषायुक्तता) नहीं थी । कमण्डलुओं को गर्दनों से पकड़ा जाता था परन्तु मैथुन में होनेवाला (कण्ठाश्लेष) वहाँ नहीं दीख पड़ता था । धारण किये व्रतों में तो मेखलायें बाधी जाती थीं, परन्तु ईर्ष्या वश उत्पन्न लड़ाई झगड़े मे (प्रेमिका द्वारा प्रेमी को अपनी करधुनी द्वारा बाँधा जाने का दृश्य) नहीं था । पालतू गौओं के स्तनों का स्पर्श तो था किन्तु सुन्दरी स्त्रियों के स्तनों का स्पर्श नहीं दीखता था । मयूरों मे तो पखोंका गिरना (पक्षपात) होता था किन्तु विद्या सम्बन्धी वादविवादों में पक्षपात नहीं था । पवित्र अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय (भ्राति) घूमना दिखायी देता था, परन्तु शास्त्रों मे कोई (भ्राति) भ्रम नहीं था । दिव्य व्यक्ति सम्बधी कहानियों में वसु (नामक अर्धदेवों) का सकीर्तन होता था किन्तु लालचाओं के कारण धनों की स्तुति नहीं की जाती थी । अक्षमालाओं के फेरों की तो गिनती (की जाती) थी परन्तु शरीरो की कोई गिनती (चिन्ता) नहीं थी । मुनियों के बालों का विनाश (किसी) यज्ञ की दीक्षा के समय होता था परन्तु मुनियों के बालकों (बालों) का विनाश (अकाल) मृत्यु से कभी नहीं होता था । रामायण द्वारा राम के प्रति स्नेह तो था परन्तु यौवन के कारण (रामा + अनुराग) स्त्रियों के प्रति स्नेह किया जाना नहीं था ।

मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन। यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामेन द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीना भूतिमत्त्वम्, एणकाना गीतश्रवणव्यसनम्, शिखण्डिना नृत्यपक्षपातः, भुजंगमाना भोगः, कपीना श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

विकृतिर्जरया वार्धक्येन। धनाभिमानेन द्रव्यस्मयेन मुखभङ्ग आस्यमोटनादिविकृति। यत्र चेति। यस्मिन्स्थले महाभारते शास्त्रे शकुनिवधो दुर्योधनराज्ञो मातुलस्य विनाश श्रूयते। न तत्र शकुनिवध पक्षिवध। पुराणेति। पुराण इतिहासादौ वायोर्वायुदेवताया प्रलपित जल्पित, श्रूयत इति शेष। ननु वायुना वायुविकारेणोन्मादादिना प्रलपित यथाकथञ्चिज्जल्पित यत्र नाभूत्। वय इति। वय परिणामेन वार्धकेन द्विजाना दन्ताना पतन पात। न तु द्विजाना ब्राह्मणाना पतन स्वाचाराद्भ्रश। यत्र नेति सर्वत्रानुषङ्ग। उपेति। उपवन समीपवन तत्र चन्दनतरवस्तेषु जाड्य शैत्यम्। न त्वाश्रमवर्तिमुनिजनेषु जाड्य प्रज्ञाहीनत्वम्। अग्नीनामिति। अग्नीना वह्नीना भूतिमत्त्व भस्मवत्त्वम्। न तु मुनीना भूतिः सपत्तद्वत्त्वम्। एणकेति। एणकाना मृगाणा गीत गान तस्य श्रवण तत्र व्यसनमासक्ति। न मुनीना तच्छ्रवणाभिलाषातिरेक। शिखण्डीति। शिखण्डिना मयूराणा नृत्ये ताण्डवे पक्षपातश्छदपतनम्। न तु मुनीना नृत्यविषये पक्षपातोऽङ्गीकार। भुजङ्गमेति। भुजङ्गमाना सर्पाणा भोग शरीरम्। 'भोगोऽहिकाय' इति कोश। न तु मुनीना भोग स्त्र्यादिजनित सुखम्। कपीनामिति। कपीना वानराणा श्रीफलाभिलाष श्रीफलानि बिल्वीफलानि तेष्वभिलाषो वाञ्छाविशेष। न तु मुनीना श्रीर्लक्ष्मीस्तस्या फलानि गृहकारापणादीनि तत्राभिलाषस्तीव्राध्यवसाय। मूलानामिति। मूलाना जटानामधोगतिरध सयोग। न त्वाश्रमवर्तिमुनीनामधोगतिर्नरकपात।

वृद्धावस्था द्वारा मुखोपर झुर्रियों से विकार तो आ जाता था किन्तु धनके गर्व से उत्पन्न (मुँह बनाना आदि) मुख-विकार नहीं था। और वहाँ महाभारत ग्रन्थ मे तो शकुनि का बध था किन्तु पक्षियों की हत्या नहीं थी। (वायु) पुराण में ही वायुदेवता का प्रलाप था वैसे वायुजनित प्रलाप रोग नहीं था। द्विज अर्थात् दान्तों का पतन केवल वृद्धावस्था के कारण ही होता था, ब्राह्मणों में पतन नहीं था। बगियाओं के चन्दन वृक्षों को ही पाला लगजाता था किन्तु वैसे कोई जाडय-उदासी नहीं थी। भूतिमत्ता-राखयुक्तता केवल अग्नियों में ही थी, ऐश्वर्य युक्तता नहीं थी। सगीत सुनने का व्यसन केवल हरिणों मे ही था। नाचते समय पखो का छड़ना अथवा नल के प्रति कसन केवल मयूरों का ही था। भोग (फणोंका फैलाव) केवल साँपों का ही था, ऐन्द्रियिक विषय भोग नहीं था। बन्दरों में ही बिल्व फलों के प्रति इच्छा थी-वैसे ऐश्वर्य के फल की अभिलाष नहीं थी। (वृक्षों की) जड़ों ही का अधोगमन होता था, किसी की दुर्गति नहीं होती थी।

तस्य चैवंविधस्य मध्यभागमण्डलमलंकुर्वाणस्यालक्तलोहितपल्लवस्य मुनिजनालम्बितकृष्णाजिनजलकरकसनाथशाखस्य तापसकुमारिकाभिरालवालदत्तपीतपिष्टपञ्चाङ्गुलस्य हरिणशिशुभिः पीयमानालवालकसलिलस्य मुनिकुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नो हरितगोमयोपलेपनविविक्ततलस्य तत्क्षणकृतकुसुमोपहाररमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णावकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्, उग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः, कनकगिरिमिव कुलपर्वतैः, क्रतुमिव वैतानिकवह्निभिः, कल्पान्तदिव-

---

तस्येति। आश्रमस्यैवंविधस्य पूर्वोक्तप्रकारेण वर्णितस्य तस्य यो मध्यभागस्तस्य मण्डलं वर्तुलप्रदेशस्तदलंकुर्वाणस्य रक्ताशोकतरोः कङ्केलिवृक्षस्याधश्छायायामुपविष्टं निषण्णं भगवन्तं जाबालिं जाबालिमुनिमपश्यमिति दूरेणान्वयः। अथ जाबालिं वर्णयति—तत्र षष्ठ्यन्तानि तरोर्विशेषणानि द्वितीयान्तानि मुनिविशेषणानीति स्वयमूहनीयम्। अलक्तेति। अलक्तवद्यावकवल्लोहिता रक्ताः पल्लवा यस्य स तथा तस्य। मुनीति। मुनिजनैस्तापसजनैरालम्बिताः स्थापिताः कृष्णाजिनानि कृष्णमृगचर्माणि जलकरकाः पात्रविशेषास्तैः सनाथा सह कृता शाखा यस्य स तथा तस्य। तापसेति। तापसकुमारिकाभिर्मुनिकन्याभिरालवाले मूलप्रदेशे दत्ताः पीतपिष्टस्य हरिद्राचूर्णस्य पञ्चाङ्गुलयो हस्तबिम्बा यस्मिन्स तथा तस्य। हरिणेति। हरिणशिशुभिर्मृगबालकैः पीयमानमास्वाद्यमानमालवालकस्य सलिलं यस्य स तथा तस्य। मुनीति। मुनिकुमारकैराबद्धं कुशचीरदाम यस्य स तथा तस्य। हरितेति। हरितमशुष्कं यद्गोमयं छगणं तेनोपलेपनं तेन विविक्तं पूतं तलमधोभागो यस्य स तथा तस्य। तदिति। तत्क्षणे तदात्वे कृतो विहितो यः कुसुमोपहारः पुष्पढौकनं तेन रमणीयस्य मनोहरस्य। नातिमहतो नातिदीर्घस्य परिमण्डलं समन्तात्परिमाणं तस्य भावस्तत्ता तयात एव दीर्घस्य तालादेन(?) तथा परिमण्डलं विस्तीर्णोऽवकाशोऽभ्यन्तरप्रदेशो यस्य स तथा तस्य। उग्रेति। उग्रतपोभिस्तीक्ष्णतपोभिर्महर्षिभिः समन्तात्परिवृतं परिवेष्टितम्। किमिव। भुवनमिव विष्टपमिव सागरैः

और ऐसे उस आश्रम के मध्य प्रदेश को सुशोभित करते हुए लाल अशोक वृक्ष के नीचे उसकी छाया में बैठे हुए जाबालि मुनि को मैंने देखा। उस अशोक वृक्ष के पत्ते अलक्तक रस सरीखे लाल थे, उसकी शाखायें मुनियों द्वारा (उनपर) लटकाये हुए कृष्ण मृग की छालों तथा जलपात्रों से भरी हुई थीं, उसके आलवाल पर तपस्वियों की बालिकाओं ने पीत चूर्ण से रगी पाचों अगुलियों की छाप अकित कर रखी थीं, उसके आलवाल के जल को हरिण शिशु पी रहे थे, मुनि कुमारों ने उस पर अपने कुशतन्तुओंको एक सघन पक्ति में (रस्सी रूप में) बाध रखा था, वृक्ष के नीचे का भूमितल हरे गोबर की परत से लेपकर पवित्र किया हुआ था, उसी क्षण उस पर चढ़ाये फूलों से वह सुशोभित था, बहुत बड़ा नहीं था, किन्तु गोलाकृति होने से एक विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। जाबालि ऋषि अन्य कठोर जप वाले मुनियों द्वारा ऐसा घिरा हुआ था जैसा कि समुद्रों से घिरी पृथ्वी हो अथवा कुल पर्वतों से घिरा सुवर्णपर्वत (मेरु) हो, वैतानिक (यज्ञीय) अग्नियों से घिरा

समिव रविभिः, कालमिव कल्पैः समन्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, उग्रशापकम्पितदेहया प्रणयिन्येव विहितकेशग्रहया क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया प्रसाधितयेव प्रकटिततिलकया जरया गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृतविग्रहम्, आयामिनीभिः पलितपाण्डुराभिस्तपसा विजित्य मुनिजनमखिल धर्मपताकाभिरिवोच्छ्रिताभिरमर-लोकमारोढुं पुण्यरज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिरतिदूरप्रवृद्धस्य पुण्यतरोः कुसुममञ्जरीभि-

---

समुद्रैं । कनकगिरिमिव स्वर्णाद्रिमिव कुलपर्वतै कुलाचलै । क्रतुमिव यज्ञमिव वैतानिकवह्नयो दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयास्तै । कल्पान्तदिवसमिव युगान्तवासरमिव रविभि सूर्यैः कालमिव समयमिव कल्पैः कालावयवैः । धवलीकृतेति । जरया विस्रसया धवलीकृतः शुभ्रीकृतो विग्रह शरीर यस्य स तम् । अथ च जराया विशेषणानि—उग्रेति । उग्र कठिनो य शापस्तेन कम्पित-श्चालितो देहो यया सा तया । प्रणयिन्येवेति । प्रणयिन्येव मनस्विन्येव विहित केशग्रहो यया सा तया । वल्लभापि रतिकलहे केशग्रह करोति । इयमपि केशे लग्नेत्यर्थं । क्रुद्धयेवेति । क्रुद्धयेव कोपाविष्टयेव कृतो भ्रूभङ्गो यया सा तया । क्रुद्धापि भ्रूभङ्गं करोति तथेयं कृतवतीत्यर्थः । मत्तयेवेति । मत्तयेव शौण्डयेव आकुलित गमन गतिर्यस्या सा तया । मत्तापि स्खलद्गतिर्भवति तथेयमपि । प्रसाधितयेव भूषितयेव प्रकटितमाविष्कृत तिलक यया सा तया । भूषितापि स्त्री सतिलका भवति । अस्या अपि देहे तिलका प्रजायन्त इति प्रसिद्धि । गृहीतेति । गृहीत स्वीकृत व्रत यया सा तयेवात एव भस्मधवलया भस्म भूतिस्तद्वद्धवलया शुभ्रया । पुन किंवि-शिष्टम् । जटाभि सटाभिरुपशोभितमलङ्कृतम् । अथ जटा विशिनष्टि—आयामिनीभिर्विस्तार-वतीभि । पलितेति । पलित पाण्डुर कचस्तद्वत्पाण्डुराभि श्वेताभि । तपसेति । तपसाखिलं समग्र मुनिजनमृषिजनं विजित्य धर्मपताकाभिरिव धर्मस्य तपोमयस्य जयध्वजाभिरिवोच्छ्रिताभि-रूर्ध्वीकृताभिरिव । अमरेति । अमरलोकं स्वर्लोकमारोढुमारोहणं कर्तुं पुण्यरज्जुभिरिव

यज्ञ हो अथवा सूर्योंसे घिरा प्रलयकालीन दिन हो, अथवा कल्पोंसे घिरा स्वय समय ही हो। (कठोरशाप के भय से ही काम्पती-सी) उसके शरीर को कपवाती हुई, बालों तक पहुँची हुई (—बालों को पकड़े हुई—) प्रेमिका सी प्रतीत होती, उसकी भौंहों पर झुर्री डाले हुई (भौंहों पर बल डाले हुई—) क्रुद्धा नारी-सी प्रतीत होती, उसको लड़खड़ाता बनाये हुई (—स्वय लड़खड़ाकर चलती—) किसी प्रमत्ता-सी प्रतीत होती, उसके शरीर पर तिल उत्पन्न किये हुई (—उसके माथे पर तिलक लगाये हुई—) उसको आभूषित किये हुई और भस्म सरीखी श्वेत (—भस्म लगाये हुई श्वेत—) किसी व्रत धारिणी-सी प्रतीत होती वृद्धावस्था से उसका शरीर श्वेत होगया था। वह जाबालि मुनि अपनी उन जटाओं से सुशोभित था जो लम्बी तथा वृद्धावस्था के कारण श्वेत तथा भूरी हो जाने के कारण, सम्पूर्ण मुनियों को अपने तप से जीत कर ऊपर उठायी हुई (जीत की घोषणा करती हुई) (विजय—पताकाएँ हों और जो देवलोक में चढने के लिये उस द्वारा सगृहीत पुण्यों से बनायी हुई रस्सियाँ हों, और जो मानो बहुत दूर तक बढ़े हुए उसके पुष्प रूपी वृक्ष की पुष्पमजरियाँ हों,

रिवोद्गताभिर्जटाभिरुपशोभितम्, उपरचितभस्मत्रिपुण्ड्रकेण तिर्यक्प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण हिमगिरिशिलातलेनेव ललाटफलकेनोपेतम्, अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बितवलिशिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानदृष्टिम्, अनवरतमन्त्राक्षराभ्यासविवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव करुणारसप्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलितपुरोभागम्, उद्वमदमलगङ्गाप्रवाहमिव जह्नुम्,

---

पवित्ररश्मिभिरिवोपसगृहीताभि स्वीकृताभि । श्रतीति । अतिदूर प्रवृद्धस्यातिदूरं वृद्धिं गतस्य पुण्यतरो श्रेयस्तरोरुद्गताभि प्रादुर्भूताभि कुसुममञ्जरीभिरिव पुष्पवल्लरीभिरिव । ललाटेति । ललाटफलकेन भालपट्टकेनोपेत सहितम् । कीदृशेन । उपेति । उपरचितानि कृतानि भस्मना त्रीणि पुण्ड्रकाणि त्रिरेखामयतिलकानि यस्मिन् । केनेव । तिर्यगिति । त्रिपथगाया एकमुपर्येकं तिर्यगेकमधःस्रोत । इदमभिनवं तिर्यक्प्रवृत्त स्रोतस्त्रयमेव यस्मिन्नेवंभूत तेन हिमगिरिशिलातलेनेव । भ्रूलतेति । भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानावलम्ब्यमाना दृष्टिर्यस्य स तम् । कीदृशाभ्याम् । अधोमुखी या चन्द्रकलार्धचन्द्रस्तद्वदाकारो ययोस्ताभ्याम् । अवलम्बितेति । वार्धक्यादवलम्बिता आश्रिता या वलयस्त्रिवल्यस्ताभि शिथिलाभ्यां श्लथाभ्याम् । पुनस्तमेव विशिनष्टि— अनवरतेत्यादि । अनवरत यो मन्त्राक्षराभ्यासस्तेन विवृतो विदीर्णो योऽधरपुट ओष्ठपुटस्तस्य भावस्तत्ता तया निष्पतद्भि स्रवद्भिरतिशुचिभिरतिपवित्रै सत्यप्ररोहैरिव सत्याङ्कुरैरिव । स्वच्छेति । स्वच्छा निर्मला या इन्द्रियवृत्तयस्ताभिरिव । करुणेति । शृङ्गारवत्करुणारसोऽपि विशदस्तस्य प्रवाहै स्रोतोभिरिव । एवंविधैर्दशनमयूखै रदनदीप्तिभिर्धवलित शुभ्रीकृत पुरोभागो यस्य स तम् । श्वेतत्वसाधर्म्येण श्वेतप्रवाहप्रकटनसाधर्म्येण च मुनेरुपमानमाह— उद्वमदिति । उद्वमन्बहिरागच्छन्नमलो निर्मलो गङ्गाप्रवाहो जाह्नवीरयो यस्मात्तमेवम्भूत जह्नुमिव । कथा चात्र—भगीरथपथेन प्रवृत्ता गङ्गा कलकलशब्दं कुर्वती शब्दकण्टकानि ध्यानानि भवन्तीति रोषात् महर्षिणा जह्नुना पीता । भगीरथाराधनाच्च पुनर्जानुभ्यामुद्गीर्णा । ततो

वह मुनि ऐसे मस्तिष्क को धारण किये हुआ था जिस पर भस्म से त्रिपुण्ड्र का चिन्ह बनाया हुआ था और (इस कारण) जो हिमालय की उस चौड़ी शिला के तल सरीखा प्रतीत हो रहा था जिसको गगा की तिरछी बहने वाली तीन धारायें पार कर रही हों। उसकी आँखों पर उलटे मुँह वाली चन्द्रकला के आकार वाली, (उस भाग पर पड़ी) लटकती चमड़ी की परत से ढीली हुई भौंहें लटक रही थीं। वह ऋषि गगा की विशुद्ध धारा को उगलते जन्हु राजा सरीखा दिखायी दे रहा था। क्योंकि उस (के शरीर) का अग्रभाग, निरन्तर मन्त्र पाठ करते रहने के कारण होठ खुला रहने से उस (के मुँह) से निकली तथा सत्य की कोंपलें-सी प्रतीत होतीं अथवा उसकी इन्द्रियों की स्वच्छ भावनाओं सी प्रतीत होतीं अथवा (उसकी सहज) करुणा रूपी रस की धाराओं-सी प्रतीत होतीं दन्त-किरणों से श्वेत हो गया था। वह

अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिः शापाक्षरैरिव सदा मुखभाग-सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतरगण्डगर्तमुन्नततरहनु-घोणमाकरालतारकमवशीर्यमाणविरलनयनपक्ष्ममालमुद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरमाना-भिलम्बकूर्चकलापमाननमादधानम्, अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानामन्तःसयमन-रज्जुभिरिवाततामिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्धकन्धरं समुन्नतविरलास्थिपञ्जरमंसा-वलम्बियज्ञोपवीतं वायुवशजनिततनुतरङ्गभङ्गमुत्प्लवमानमृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाह-

---

जाह्नवीत्युच्यते। मुखनिश्वासस्य सौरभ्यातिशयप्रदर्शनद्वारा तमेव विशिनष्टि—अनवरतेत्यादि। अनवरत य सोमपानस्योद्गारस्तेन सुगन्धी यो निश्वास पवनस्तेनावकृष्टैराकर्षितैर्मूर्तिमद्भिर्देह वद्भि शापाक्षरैरिव शापवर्णैरिव। सदेति। सदा सर्वकाल मुखस्य यो भागोऽग्रिमप्रदेशस्तत्र सन्निहितै पार्श्वगै परिस्फुरद्भिर्दीप्यमानैरलिभिर्भ्रमरैरविरहितमवियुक्तमानन मुखमादधानं बिभ्राणम्। अथ मुखविशेषणानि—अतीति। अतिकृशतया निम्नतरो गम्भीरतरो गण्डगर्त कपोलत परो भागो यस्य तत्। उन्नतेति। उन्नततरेऽत्युच्चे हनु चिबुक घोणा नासा च यस्मिंस्तत्। अतिवृद्धलक्षणमेतत्। आकरालेति। आकरालेषद्भ्का तारका कनीनिका यस्य तत्। अवेति। अवशीर्यमाणा क्षीयमाणा विरलानिबिडा नयनयोर्नेत्रयो पक्ष्ममाला रोम-राजिर्यस्मिंस्तत्। उद्गतेति। उद्गतानि प्रादुर्भूतानि यानि दीर्घरोमाणि तेन रुद्धमावृतं श्रवण-योर्विवर रन्ध्र यस्मिंस्तत्। आनाभीति। आनाभि नाभिपर्यन्त लम्ब प्रलम्ब कूर्चकलाप आस्यलोमसमूहो यस्मिंस्तत्। अतीति। अतिचपलानामतिपारिप्लवानामिन्द्रियाश्वानां करण तुरगमानामन्तर्मध्ये संयमनरज्जुभिरिव नियन्त्रणरश्मिभिरिवातताभिर्विस्तीर्णाभि. कण्ठनाडीभिर्ग-लस्नायुभिरिव निरन्तरम् अवनद्धा सम्बद्धा कन्धरा ग्रीवा यस्मिंस्तवविधमकलुष निर्मलमङ्ग शरीर मुद्वहन्त धारयन्तम्। समुन्नतेति। समुन्नतमुच्चं विरल पेलवमस्थिपञ्जर कङ्कालं यस्मिंस्तथा।

ऋषि उन भौंरों से कभी विरहित नहीं रहता था जो निरन्तर आई सोमरस की डकारों (की सुगन्ध) से सुगन्धित निश्वासों से आकृष्ट थे और जो उसके मुख प्रदेश के समीप रहते हुए नाचते हुए साक्षात् शरीरधारी शापाक्षरों सरीखे प्रतीत होते थे। उसकी अत्यन्त कृशता के कारण उसका मुँह ऐसा था कि उसमें कपोलों के गड्ढे बहुत नीचे (गहरे) थे, उसमे ठोडी और नाक बहुत ऊँचे थे, उसमे आँखों की पुतलियाँ कुछ-कुछ भयानक प्रतीत होती थीं, उसमें आँखों की पलकों के बाल (एक-एक करके) बिखर रहे थे और इसीलिये बहुत विरले हो गये थे, उसमें कानों के भीतर उगे हुए लम्बे रोओं से कानों के छेद रुक गये थे और जिस पर नाभि तक लटकी घनी दाढ़ी थी। चपल इन्द्रिय रूपी घोड़ों को भीतर ही भीतर नियन्त्रित करने के लिये प्रयुक्त लगामों-सी प्रतीत होतीं दूर तक फैली हुई कण्ठशिरा उसकी गर्दन पर खूब घनी फैली हुई थीं। वह एक (श्वेत) शरीर धारण किये हुए था, जिसका ककाल इतना उभरा हुआ था कि एक-एक हड्डी अलग-अलग (विरल) (दिखायी देती) थी और उसमें कन्धे पर श्वेत यज्ञोपवीत लटका हुआ था, (इसलिये वह शरीर ऐसा लगता था कि वह वायु के बल से उत्पन्न छोटी-छोटी लहरियों वाला और तैरते हुए बिस तन्तुओं वाला गगा नदी का विशुद्ध

मकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमलस्फटिकशकलघटितमक्षवलयमत्युज्ज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलिविवरगतमावर्तयन्तम्, अनवरतभ्रमिततारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम्, उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासञ्चयेन निरन्तरनिचितम्, अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तानतन्तुभिरिव निर्मितेन मानससरोजलक्षालितशुचिना दुकूलवल्कलेनाद्वितीयेनेव जराजालकेन सञ्छादितम्,

---

अंसेति। अंसावलम्बि भुजान्तरावलम्बि यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्मिन्। वायुवशेति। वायुवशेनानिलमाहात्म्येन जनिता उत्पादितास्तनवः सूक्ष्मास्तरगभङ्गाः कल्लोलविघटनानि यस्मिन्। उत्प्लवेति। उत्प्लावल्येन प्लवमानानि वहमानानि मृणालानि बिसानि यस्मिन्नेवंभूतं मन्दाकिनीप्रवाहमिव गङ्गौघमिव। अत्र तरंगास्थ्नोः श्वेतकृशत्वं यज्ञोपवीतमृणालयोश्च श्वेतसूक्ष्मत्वं साधर्म्यमिति भावः। किं कुर्वन्तम्। अक्षवलयं रुद्राक्षमालामावर्तयन्तं परिवर्तयन्तम्। अथाक्षवलयस्य विशेषणे—अमलेति। अमलानि विशदानि यानि स्फटिकशकलानि तैर्घटितं निर्मितम्। अत्युज्ज्वलेति। अत्युज्ज्वलान्यतिविशदानि स्थूलानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैर्ग्रथितं गुम्फितं सरस्वतीहारमिव सरस्वत्या भारत्या हारमिव मुक्ताकलापमिव। अत्र स्फटिकाक्षवलयस्यातिनिर्मलत्वान्मुक्ताफलोपमानम्। चलदिति। चलन्त्यो या अङ्गुलयस्तासां विवरं रन्ध्रं तत्र गतं प्राप्तम्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं भ्रमितं पर्यटितं तारकाचक्रं नक्षत्रसमूहो यस्मिन्नेवंभूतमपरं द्वितीयं ध्रुवमिवोत्तानपादजमिव। अत्र स्फाटिकाक्षवलयतारकाणां शुचिवर्तुलत्वमेव साधर्म्यम्। उपविष्टस्य मुनेः स्थिरत्वाद्ध्रुवसाधर्म्यमिति। पुनर्विशिनष्टि—उन्नमतेति। उन्नमतोपरि स्फुरता शिराजालकेन शिरा धमनयस्तासां जालकेन समूहेन निरन्तरं निचितं व्याप्तम्। उच्छूनस्नायुसमूहेनात्यन्तव्याप्तविग्रहमित्यर्थः। केन कमिव। परिणता पाकं गता या लता वल्ल्यस्तासां संचयेन समूहेन। निचितमिति शेषः। जरत्कल्पतरुमिव वृद्धमन्दारमिवेत्युत्प्रेक्षा। अमलेनेति। अमलेन निर्मलेन दुकूलवल्कलेन। दुकूलेन सदृशं वल्कलमिति मध्यमपदलोपी समासः। तेन सञ्छादितमावृतम्। केनेव। अद्वितीयेनापूर्वेण जराजालकेनेव विस्रसासमूहेनेवेत्युत्प्रेक्षा। दुकूलवल्कलं विशिनष्टि—चन्द्रेति। चन्द्रांशुभिरिव शशिज्योत्स्नाभिरिवामृतफेनैरिव पीयूषडिण्डीरैरिव गुणानां विख्यातपश्चरणादीनां संताना समूहास्त

प्रवाह ही हो। स्वच्छस्फटिक के खण्डों से निर्मित एवं अत्यन्त चमकीले, बड़े बड़े गोल मोतियों से बने सरस्वती देवी के हार-सी प्रतीत होती हुई अक्षमाला को हिलती हुई अंगुलियों के अन्तराल में वह घुमा रहा था, और इस कारण वह उस दूसरे ध्रुव-सरीखा प्रतीत होता था जिसके चारों ओर तारकाओं का चक्र सदा घूमता रहता है। अत्यन्त उभरी हुई (अर्थात् स्पष्ट दिखायी देती) हुई शिराओं के समूह से वह एक ऐसे वृद्ध कल्पतरु-सरीखा बना हुआ था जो पूर्णतया प्रवृद्ध लताओं के जाल से खूब घना ढका हुआ हो। उसका शरीर रेशमी-से वल्कल वस्त्र से ढका हुआ था—जो वल्कल वस्त्र मानो चन्द्रमा की किरणों का अथवा अमृत की फेनों का अथवा उसके अनेक गुणरूपी तन्तुओं का बना हुआ था। तथा मान सरोवर के जल में धोया जाकर पवित्र हुआ था और (श्वेत होने के कारण) ऐसा प्रतीत होता था कि

आसन्नवर्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिककमण्डलुना विकच-पुण्डरीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्, स्थैर्येणाचलाना गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाम्बरतलस्य सविभागमिव कुर्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तद्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दन-तरुमिव भुजङ्गनिर्मोकधवलजटाकुलम्, प्रशस्तवारणपतिमिव प्रलम्बकर्णवालम्,

---

एव तन्तव सूत्राणि तैरिव निर्मितेन रचितेन। मानसेति। मानससरोजलवजलं तेन क्षालित धौतमत एव शुचिना निर्मलेन। पुनस्तमेव मुनिं विशिनष्टि—स्फाटिककमण्डलुनोपशोभमान विराजमानम्। अथ कमण्डलु विशिनष्टि—आसन्नेति। आसन्नवर्तिना समीपस्थेन। मन्दाकिनीति। मन्दाकिनी गङ्गा तस्या सलिल तेन पूर्णेन भृतेन। त्रिदण्डेति। त्रिदण्ड-त्रिपादिका तत्रोपविष्टेन स्थापितेन। मुनेर्धवलीकृतविग्रहवरवर्णनात्कमण्डलोश्च शुभ्रत्व-वर्णनात्तदुपमानमाह—विकचेति। राजहंसेन विकचपुण्डरीकराशिमिव सितसिताम्भोज-समूहमिवेत्युत्प्रेक्षा। पुनर्मुनिं प्रकारान्तरेण विशिनष्टि—स्थैर्येणेति। स्थैर्येण स्थिरतयाचलानां पर्वतानाम्, गाम्भीर्येण गाम्भीर्यगुणेन सागराणां समुद्राणाम्, तेजसा प्रतापेन सवितु सूर्यस्य, प्रशमेनोपशमेन तुषाररश्मेश्चन्द्रस्य, निर्मलतया स्वच्छतयाम्बरतलस्य सविभागमिव स्वकीय-वस्तुन परेभ्य किञ्चिद्विभज्य प्रदानमिव कुर्वाण विदधानम्। अचलादीनां स्थैर्यादयो गुणा अनेनैव सविभागीकृता सन्तीति भाव। अथान्यसादृश्यद्वारा तमेव विशेषयन्नाह—वैनतेय-मिति। वैनतेयो गरुडस्तद्वदिव स्वस्यात्मीयस्य य प्रभावो माहात्म्य तेनोपात्तमङ्गीकृत द्विजेषु ब्राह्मणेष्वाधिपत्य प्रभुत्व येन स तम्। पक्षे द्विजेषु पतत्रिष्वाधिपत्य मुख्यत्व येनेति विग्रह.। कमलेति। कमलासनो ब्रह्मा तमिवाश्रमो मुनिस्थान तत्र गुरु श्रेष्ठम्। पक्ष आश्रमा ब्रह्म-चारिप्रभृतयस्तेषा गुरु प्रवर्तकम्। वर्णाश्रमाश्च ब्रह्मणैव प्रवर्तिता। जरदिति। पुरातने परिमलविशेषाधिक्याज्जरद्विशिष्टचन्दनतरुग्रहणम्। तत्रैव भुजगबाहुल्यम्। अतएव भुजगस्य यो निर्मोक कञ्चुकस्तद्वद्धवला या जटा तयाकुल व्याप्तम्। पक्षे निर्मोक एव जटेति विग्रह।

मानो वह दूसरा ही जरा का आवरण हो। (अपने) समीपवर्ती, गगाजल से भरे, तिपाई पर रखे स्फटिक निर्मित कमण्डलु से वह ऐसा सुशोभित था जैसे कि (श्वेत) राजहंस से खिले कमलों की क्यारी हो। वह अपनी दृढ़ता से पर्वतों के साथ, गम्भीरता से समुद्रों के साथ, चमक से सूर्य के साथ, अपनी मृदुता से मृदुकिरण चन्द्रमा के साथ, स्वच्छता से आकाश के साथ मानो बँटवारा करता प्रतीत होता था। अपनी शक्ति से (द्विज) ब्राह्मणों का सम्राट् बना हुआ वह, (द्विजों) पक्षियों का स्वामी बना हुआ विनता पुत्र गरुडसरीखा था, चार आश्रमों—जीवन की चार अवस्थाओं के उपदेष्टा कमलासन (ब्रह्मा) की भाँति वह उस आश्रम का गुरु होने के कारण आश्रम-गुरु था, जैसे पुराना चन्दन का वृक्ष साँपों की केंचुलियो से श्वेत हुई जडों वाला होता है वैसे वह भी केंचुलियों जैसी श्वेत जटाओं से आवृत था। खूब लम्बे (अर्थात् सामान्य से अधिक लम्बे) कानों और पूँछ वाले अच्छी नसल के हाथी की

बृहस्पतिमिवाजन्मसंवर्धितकचम्, दिवसमिवोद्यदर्कबिम्बभास्वरमुखम्, शरत्काल-मिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिकाकरतलमिव रुद्राक्षवलय-ग्रहणनिपुणम्, शिशिरसमयसूर्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, बडवानलमिव सन्ततपयो-भक्षम्, शून्यनगरमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट-शरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम्।

शेष पूर्ववत्। प्रशस्तेति। प्रशस्त सर्वलक्षणोपेतो वारणपतिर्गजनायकस्तद्वदिव प्रलम्बा कर्णयोर्बाला केशा यस्येति विग्रह। पक्षे प्रलम्बौ लम्बमानौ कर्णौ श्रवणौ वालश्च वालधिर्यस्मिन्। बृहस्पतीति। बृहस्पति सुरगुरुस्तमिव आजन्म जन्ममर्यादीकृत्य संवर्धिता वृद्धिं प्रापिता कचा केशा येनेति स तम्। पक्षे कचनामा बृहस्पते पुत्र इति पुराणे प्रसिद्धम्। शेष पूर्ववत्। दिवसेति। दिवसो वसरस्तद्वदिवोद्यदुद्गच्छदर्कबिम्ब सूर्यमण्डल तद्वद्भास्वर दीप्त मुखमानन यस्य स तम्। पक्ष उद्यदर्कबिम्बेन भास्वरं मुखमादिर्यस्येति विग्रह। शरदिति। शरत्कालो घनात्ययसमयस्तद्वदिव क्षीणानि गतानि वर्षाणि हायनानि यस्य स तम्। पक्षे क्षीर्णं स्वल्पत्व प्राप्त वर्षं वृष्टिर्यस्मिन्। शान्तन्विति। शन्तनुर्भीष्मपिता तद्वदिव प्रियमिष्ट सत्यमेव व्रत यस्य स तम्। पक्षे प्रियो वल्लभ. सत्यव्रतो भीष्मो यस्येति विग्रह। कथा चात्र—महाभारतानुगतानुसन्धेया अम्बिकेति। अम्बिका पार्वती तस्या करतलं पाणितलं तद्वदिव रुद्राक्ष. फलविशेषस्तद्वलयस्य कटकस्य यद्ग्रहण तत्र निपुणम्। सर्वदा तदावर्तनेन कृताभ्यासमित्यर्थ। पक्षे रुद्र ईश्वरस्तस्याक्षमिन्द्रिय लोचनं वर्तुलत्वादेव यद्वलय तस्य ग्रहणं

भाँति उसके कानो पर के बाल लम्बे थे। जन्म से ही अपने पुत्र कच को पालने वाले बृहस्पति की भाँति वह भी अपने जन्म से ही लम्बे बालों वाला होने के कारण 'आजन्म सवर्धित कच' था उदय होते सूर्य बिम्ब से चमकते आदि भाग (मुख) वाले दिन की भाँति उदय होते सूर्य से तेजस्वी मुख वाला वह भी 'उद्यदर्कबिम्बभास्वरमुख' था। जैसे वर्षा बन्द होने के कारण शरद् काल 'क्षीणवर्ष' हो जाता है—वह (अपनी आयु के) वर्षों के क्षीण हो जाने से 'क्षीणवर्ष' हो गया था। शन्तनु को जैसे (अपना पुत्र) भीष्म प्रिय था और इस कारण वह प्रियसत्यव्रत था वैसे ही वह ऋषि सत्य वचन प्रिय होने से प्रियसत्यव्रत था। पार्वती की हथेली जैसे (रुद्राक्ष) शिवजी की गोल आँखों को पकड़ने में निपुण होने के कारण रुद्राक्ष-वलय-ग्रहण निपुण है वैसे ही वह अपनी रुद्राक्ष माला को पकड़ने में चतुर था। शिशिर ऋतु का सूर्य उत्तर दिशा का सग करता है—इसलिये कृतोत्तरासग होता है—उसने अपने शरीर पर उत्तरीय वस्त्र धारण किए हुए था। वडवानल सदा (समुद्री) जल को भक्षण करता रहता है—इसलिये सततपयोभक्ष कहलाता है, वह सदा दुग्ध का भक्षण करता था। (जनता से) शून्य नगर जैसे दीन, स्वामि रहित तथा टूटे-फूटे घरों वाला होता है, वह गरीबों, असहायों और दुखियों का आश्रय था। और शिवजी जैसे भस्म से श्वेत तथा उमा (पार्वती) से आलिङ्गित शरीर वाले रहते हैं वैसे ही उसका शरीर भस्म से (अथवा भस्म-सरीखे) पाण्डुर बालों वाला था।

अवलोक्य चाहमचिन्तयम्—'अहो प्रभावस्तपसाम्। इयमस्य शान्तापि मूर्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य। शुष्कनलकाश-

---

पिधान तत्र निपुण चतुरम्। रतै चन्द्रकलाप्रकाशस्यानिवार्यत्वेन लज्जावशात्पार्वत्या तृतीय लोचन करतलेन पिहितमिति भाव। शिशिरेति। शिशिरसमय शीतकालस्तस्य यः सूर्यो भगवांस्तद्वदिव कृतो विहित उत्तरासङ्गो बृहतिका येन स तम्। पक्ष उत्तरस्या दिश सङ्ग· सश्लेषो येनेति विग्रह। वडवेति। वडवानल और्वस्तमिव सतत निरन्तर पय एव क्षीरमेव भक्ष यस्य स तम्। पक्षे पय पानीय तदेव भक्ष यस्येति भाव। शून्येति। शून्यमुद्वसितं यन्नगर पुर तद्वदिव। शून्ये धनिनां निवासायोग्यत्वाद्दीनादिग्रहणम्। तत्र दीनान्यशोभावन्त्य-नाथान्यप्रभूणि विपन्नान्यविद्यमानभावानि शरणानि गृहाणि यत्र नगर इति। अन्यत्र दीना दु खाभिभूता अनाथा स्वामिरहिता विपन्ना इव विपन्ना मृतकल्पा व्याध्यादिपरिभूतास्तेषा शरण परित्राणहेतुम्। पशुपतिमिवेति। पशुपति शम्भुस्तमिव भस्मवत्पाण्डुराण्यतिवार्धक्यात्तानि रोमाणि तैराश्लिष्ट शरीर यस्य तम्। पक्षे भस्मवत्पाण्डुरोमा गौरी तया चाश्लिष्टमर्धाङ्गीकृत शरीर यस्येति विग्रह। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

जाबालि निरीक्ष्य किं कृतवानित्याह—अवलोक्येति। अवलोक्य निरीक्ष्य। च पुनरर्थे। अहमचिन्तयमेवं विचारितवान्। चिन्ता त्वेवं चिन्तयन्तमेव मामित्यवधिकम्। तामेवाह—अहो इत्याश्चर्ये। तपसा प्रभावो माहात्म्यम्। इयमस्य मुने शान्तापि मूर्ति· शरीरमुग्रप्राबल्येन तप्तमुष्णीकृत यत्कनक सुवर्ण तद्वदवदाता निर्मला परिस्फुरन्ती देदीप्यमाना सौदामिनीव विद्युदिव चक्षुषो नेत्रस्य तेजांसि महांसि प्रतिहन्ति प्रतिघात करोति। आभिमुख्येन गच्छन्तीनां नयनरश्मीनां बलवद्वेगसौदामिनीतेजसा प्रतिनिवृत्तिरनुभवसिद्धैवेति भाव। इत्र स्वभाववर्णनम्। विरोधोऽपि शान्तस्योत्तप्तकनकावदाततेति विरोध। सततेति। सतत निरन्तरमुदासीनापि मध्यस्थापि महाप्रभावतयात्युग्रप्रतापतया प्रथमोपगतस्या-पूर्वागतस्य भयमिव भीतिमिवोपजनयति। अन्येषां करोतीत्यर्थ। अत्रापि मध्यस्थस्य भयोत्पादकत्वमिति विरोध। उभयत्रोत्प्रेक्षा। शुष्केति। तनु स्वल्प तपो येषां तेषामपि तपस्विनां तेजो नित्य सर्वदा प्रकृत्या स्वभावेनासहिष्णवसहनशील भवति। कीदृशम्। शुष्काणि

और उस (जाबालि) को देखकर मैंने (मन-ही-मन) सोचा :—"तपस्या का प्रभाव निश्चय ही आश्चर्यजनक है। यह इसका शरीर यद्यपि सौम्य है तथापि तपाये हुए सोने की भाँति देदीप्यमान है और इसीलिये (आकाश में) दमकती बिजली की भाँति आँख की ज्योति पर प्रहार करता है, दृष्टि को चौंधियाता है। और यद्यपि यह (शरीर) सदा उदासीन निरपेक्ष रहता है, तथापि अपनी अत्यन्त शक्तिमत्ता से उसको देखने के लिये प्रथम बार आये हुए व्यक्ति में मानो भय उत्पन्न करता है। स्वल्प तप वाले तपस्वियों का तेज, सूखे सरकण्डों पर अथवा

कुसुमनिपतितानलचटुलवृत्ति नित्यमसहिष्णु तपस्विनां तनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या भवति। किमुत सकलभुवनतलवन्दितचरणानामनवरततपःक्षपितमलानां करतलामलकवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामघक्षयकारिणाम्। पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनाम्, किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र। अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितलकमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्य-

---

यानि नलकाशकुसुमानि यत्र निपतितो योऽनलो वह्निस्तद्वच्चटुला त्वरिता वृत्तिर्यस्य तत्। एतस्य पर्यवसितार्थमाह—किमुतेति। एवविधानामघक्षयकारिणां पापविनाशकर्तॄणां किमुत किमाश्चर्यम्। अथ तानेव विशिनष्टि—सकलेति। सकलभुवनतलैर्वन्दितानि नमस्कृतानि चरणानि येषां ते तथा तेषाम्। अनवरतेति। अनवरतं तपसा क्षपिता क्षयं प्रापिता मला पापानि यैस्ते तथा तेषाम्। करतलेति। करतलामलकवत्पाणिस्थधात्रीफलवद्दिव्येन चक्षुषा ज्ञानलोचनेनाखिलं समग्रं जगद्विष्टपमालोकयतां पश्यतां भगवतां माहात्म्यवतामेवंविधानां पूर्वोक्तगुणविशिष्टानाम्। हि निश्चितम्। अपक्षयकारिणां पापविनाशकानाम्। महामुनीनामिति। महातपस्विनां नामग्रहणान्यप्यभिधानोच्चारणमात्राण्यप्यायुष्ट्वं तत्कारणकार्योपचारात्पुण्यानि पुण्यजनकानि। दर्शनानीति। दर्शनानि तेषामवलोकनानि समग्रपापापहारकाणीत्यर्थे किं पुनर्भण्यते। अवश्यं तदपहारकाणीत्यर्थः। धन्यमिति। इदं प्रत्यक्षमाश्रमपदं मुनिस्थानं धन्यं कृतपुण्यम्। अत्रार्थे हेतुमाह—यत्रेति। यस्मिन्नाश्रमपदेऽयं महान्मुनिरधिपतिर्नेता। अथवेति पक्षान्तरे। अवनीति। अवनितलकमलयोनिना भुवनतलब्रह्मणानेन प्रत्यक्षोपलभ्यमानेन मुनिनाधिष्ठितमाश्रितं भुवनतलमेव जगतीतलमेव धन्यं कृतपुण्यम्। 'सुकृती पुण्यवान्धन्यः' इति हैमः। आश्रमस्य तदन्तःपातित्वादिति भावः। तच्छिष्याणां धन्यतां प्रतिपादयन्नाह—पुण्येति। खलु निश्चयेन। अमी मुनयः पुण्यभाजः सुकृतभाजः। यदिति हेत्वर्थे। अहर्निशं ब्रह्माणमपरमिवान्यमिव नलिनासनं कमलयोनिं समुपासते सेवां कुर्वते। तानेव शिष्यान्विशिनष्टि—अपेति। अपगतो दूरीभूतोऽन्यव्यापारस्तदितरकार्यं येभ्यस्ते तथा। मुखेति। मुखस्य वदनस्य

कास पर अथवा फूलों पर गिरी हुई आग की-सी क्रिया करने वाला होने से, (दूसरे तेजों को) कभी सहन नहीं करता, फिर भला सारे ससार भर में पूजित चरणों वाले, निरन्तर की गयी तपस्या द्वारा (अपने) पाप को नष्ट किये हुए, अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा सारे ससार को अपनी हथेली पर रखे आँवले-सा (छोटा) देखने वाले इस (जाबालि) के सदृश दिव्य पुरुषों के तेज का तो क्या कहना ! महामुनियों के नाम का (तो केवल) दुहराना ही पुण्य कार्य है। फिर उनके दर्शन करते रहना तो (और भी अधिक) पुण्य कार्य है। जहाँ का यह (जाबालि) अधिपति है, वह यह आश्रम धन्य है। अथवा पृथ्वी के इस कमलयोनि ब्रह्मा-से अधिष्ठित यह सारा भूमण्डल (संसार) ही धन्य है। निश्चय ही ये मुनिजन पुण्य के भागी हैं जो दिन-रात, दूसरे ब्रह्मा के सदृश इसकी संगति में पुण्य कथायें सुनते हुए और इसके मुख को देखने में

व्यापारा मुखावलोकननिश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या यास्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिस्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्ये रुचिरद्विज-परिवारा मुखकमलसम्पर्कमनुभवन्ती निवसति हंसीव मानसे। चतुर्मुखकमलवासिभिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिवेदमपरमुचितमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलिजलदसमयकलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः। नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण

मर्थान्मुनिरिति शेष। तस्य यदवलोकन निरीक्षण तेन निश्चला निमेषरहिता दृष्टिर्येषा ते तथा। किं कुर्वन्तः। पुण्या पवित्रा कथा किंवदन्ती शृण्वन्त आकर्णयन्त। तद्वदनागताया सरस्वत्या श्लाघा कुर्वन्नाह—सरस्वतीति। सरस्वत्यपि भारत्यपि धन्या श्लाघ्या। तु पुनरर्थे। या अस्य मुनेर्मुखमेव कमल नलिनं तस्य सपर्क सबन्धमनुभवन्ती साक्षात्कुर्वन्ती मानसे मनसि निवास करोति। उभयो साम्यमाह—हंसीति। यथा मानसे सरसि हसी मराली निवसति तथेयम-पीत्यर्थ। अत्र प्रसन्नेत्यादिविशेषणानि मानसे मनसि सरसि च स्वबुद्ध्या योजनीयानि। अतीति। अतिशयेन प्रसन्ने प्रसादगुणयुक्ते। करुणेति। करुणा परदु खप्रहाणेच्छा सैव जल तस्य तयोर्वा निस्यन्दिनि स्राविणि। अगाधेति। अगाधमतलस्पर्श गाम्भीर्यं गम्भीरता यस्मिन्। रुचिरेति। रुचिरा मनोज्ञा ये द्विजा दन्तास्त एव परिवार परिच्छदो यस्या सेति भारत्या विशेषणम्। चतुरिति। चत्वारि यानि मुखकमलानि तत्र वासिभि स्थायिभिश्चतुर्वेदैर्ऋग्यजु प्रभृतिभि सुचिरादिव चिरकालादिवेदमपर द्वितीयम्। कमलस्य कदाचित्सकोचसभवात्। उचित योग्य स्थानमासादित प्राप्तम्। एनमिति। एनं मुनिं शरत्कालमिव घनात्ययसमयमिवासाद्य प्राप्य जगति लोके पुनरपि द्वितीयवारमपि सर्वविद्याश्चतुर्दशविद्या प्रसाद नैर्मल्यमुपगता प्राप्ता। का इव। सरितो नद्य इव। यथा शरत्कालं प्राप्य ता एव नैर्मल्य भजन्ति। उभयोरेकविशेषण माह—कलीति। कलिरेव कलौ वा यो जलदसमयो मेघकालस्तेन कलुषिता मलिनीकृता।

स्थिर आँखें किये हुए, सारे दूसरे काम छोड़े हुए—उपस्थित रहते है। (वाग्देवी) सरस्वती भी धन्य है, क्योंकि वह इसके कमल सदृश मुख का सम्यक् अनुभव करती हुई और (बात करते समय उसके) सुन्दर दाँतों से घिरी हुई, उसके अत्यन्त प्रशान्त, करुणा-प्रवाह को बहाते हुए, अथाह गम्भीर मन मे रहती है—मानो वह वह हंसी हो जो सुन्दर पक्षियों से घिरी हुई, कमलों के सम्पर्क को अनुभव करती हुई, सदा पूर्णतया स्वच्छ जल वाले, जल से परिपूर्ण अथाह मान सरोवर में रहती है। ब्रह्मा के कमल-सदृश चार मुखों के निवासी चार वेदों ने निश्चय, बहुत देर मे ही, यह दूसरा उचित निवास-स्थान प्राप्त किया है। इसको प्राप्त करके ससार की सारी विद्याएँ, जो कलियुग रूपी वर्षा ऋतु से मलिन हो गयी थीं अब फिर वैसे ही स्वच्छ हो गयी हैं जैसे कि वर्षा ऋतु मे मैली हुई नदियाँ शरत् ऋतु में फिर स्वच्छ जल वाली हो जाती हैं। निश्चय ही भगवान् धर्म यहाँ पूरे रूप में रहता हुआ, कलियुग की चेष्टाओं को (जिनसे धर्म चौथाई रह जाता है) पराजित किये हुआ, सत्ययुग का स्मरण नहीं करता।

न स्मर्यते कृतयुगस्य। धरणितलमनेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमम्बरतलम्। अहो महासत्त्वेयं जरा यास्य प्रलयरविरश्मिनिकरदुर्निरीक्ष्ये रजनिकरकिरणपाण्डुशिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्जधवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता। बहलाज्यधूमपटलमलिनीकृताश्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीतमिव रविकिरणजालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम्। एते च पवनलोलपुञ्जीकृतशिखाकलापा रचिताञ्जलय इवात्र

नियतमिति। नियत निश्चितमिहास्मिन्नाश्रमे सर्वात्मना सर्वप्रकारेण कृतावस्थितिर्येन स तथा तेन भगवता माहात्म्यवता। परीति। परिभूत न्यक्कृत कलिकालस्य विलसित चेष्टित येनैवंभूतेन धर्मेण न स्मर्यते। कृतयुगस्येति कर्मणि षष्ठी 'मातु स्मरति' इतिवत्। धरणीति। नूनं निश्चितमनेन मुनिना धरणीतलमधिष्ठितमालोक्य निरीक्ष्याम्बरतलं व्योमतलमिदानीं साम्प्रत सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमिति सप्तर्षीणां कश्यपप्रभृतीना यन्मण्डल समूहस्तस्य यो निवासोऽवस्थान तेन योऽभिमानोऽहंकारस्त न वहति न धत्ते। अत्र बहूना ऋषीणां सत्त्वात्। अहो इत्याश्चर्ये। महासत्त्वा महाधैर्येय जरा विस्रसा यास्य मुनेर्जटाभारे सटासमूहोपरि निपतन्ती पतन कुर्वती न भीता न त्रस्ता। अत्रार्थे उपमानद्वयं प्रदर्शयति—पशुपतीति। पशुपतेरीश्वरस्य जटाभारे सटासमूहे गङ्गेव स्वर्णदीव। क्षीरेति। विभावसोर्वह्नेः शिखाकलापे ज्वालासमूहे क्षीराहुतिरिव क्षीरस्य दुग्धस्याहुति। वह्नौ प्रक्षेप इवेत्यर्थः। गङ्गां विशिनष्टि—फेनेति। फेनस्य डिण्डीरस्य य पुञ्ज समूहस्तेन धवलोज्ज्वला। इयमपि धवला भवति। जटां विशिनष्टि—प्रलयेति। प्रलय कल्पान्तस्तस्मिन्यो रवि सूर्यस्तस्य यो रश्मिनिकर. किरणसमूहस्तद्वत् दुर्निरीक्ष्ये विलोकयितुमशक्ये। रजनीति। रजनिकरश्चन्द्रस्तस्य किरणा मयूखास्तद्वत्पाण्डूनि श्वेतानि शिरोरुहाणि केशा यस्मिन्। बहलेति। बहल निबिडं यदाज्य सर्पिस्तस्य धूमपटल तेन मलिनीकृत श्यामतां प्रापित आश्रमो यस्यैवंविधस्य भगवतो मुने प्रभावान्माहात्म्याद्भीतमिव त्रस्तमिव रविकिरणजाल सूर्यरश्मिसमूहस्तपोवनं मुनिस्थानं दूरत परिहरति दूर एव त्यजति। मालिन्यस्य तमःप्रतिनिधीभूतस्य सूर्यरश्मिभिर्विरोधात्। मालिन्याश्रमाधिपतेर्मुने प्रभावाद्भीतिरुचितैवेति

निश्चय ही इस से अधिष्ठित भूमण्डल को देख कर आकाश सप्तर्षि नाम के नक्षत्र मण्डल के अपने में रहने के गर्व को अब अनुभव नहीं करता है। आश्चर्य है, यह फेन पुञ्ज-सरीखी श्वेत वृद्धावस्था तो बड़ी बलवती है जो इसके प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के सदृश कठिनता से देखे जाने योग्य, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत हुए, घने जटासमूह पर, शिवजी की जटाओं पर गंगा के समान अथवा अग्नि की शिखाओं पर दूध की आहुति के समान गिरती हुई नहीं डरती है। (आहुति दिये हुए) प्रभूत घृत के धुएँ से मैले किये हुए आश्रम वाले भगवान् (जाबालि) के प्रभाव से मानो भयभीत होकर सूर्य की किरणों का समूह इस तपोवन को दूर से ही छोड़ देता है। और ये वायु से प्रकम्पित होकर एकत्रीकृत बहुत-सी शिखाओं वाली (पवित्र) अग्नियाँ मानो हाथ जोड़ कर ही, इसके प्रति अपनी प्रीति के कारण, मन्त्रों से

मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्त्येतत्प्रीत्याशुशुक्षणयः। तरलितदुकूलवल्कलोऽयं चाश्रम-लताकुसुमसुरभिपरिमलो मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः। प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि। सर्वतेजस्विनामयं चाग्रणीः। द्विसूर्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पेव क्षितिरेतदवष्टम्भात्। एष प्रवाहः करुणारसस्य, सन्तरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः सन्तोषामृतरसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्त-गिरिरसद्ग्रहकस्य, मूलमुपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, स्थितिवंशो धर्मध्वजस्य,

---

भाव। एते चेति। एते समीपवर्तिन आशुशुक्षणयो वह्नय। पवनेति। पवनेन वायुना लोलश्चपल पुञ्जीकृत समूहीकृतः शिखाकलापो ज्वालासमूहो येषां ते तथा। तथा रचिताञ्जलय इव विहिताञ्जलय इव। एतत्प्रीत्यैतन्मुनिस्नेहेन मन्त्रपूतान्यृचापवित्राणि हवींषि होतव्यानि गृह्णन्ति स्वीकुर्वन्ति। 'अग्निर्वैश्वानरो वह्नि शिखावानाशुशुक्षणि' इत्यमर। गन्धेति। गन्धवाहो वायुरस्य मुने समीपं पार्श्वे सशङ्क इव भीताशय इवोपसर्पति गच्छति। अथ साशङ्कत्वे हेतुं प्रदर्शयन्नाह—तरलितेति। तरलितानि कम्पितानि दुकूलवल्कलानि येन स तथा। अयमिति सार्शनप्रत्यक्ष। आश्रमेति। आश्रमलताकुसुमानां सुरभि परिमलो यस्मिन्नत एव मन्दमन्दचारी शनै शनै सञ्चरमाण। प्राय इति। प्रायो बाहुल्यार्थेऽव्ययम्। महाभूतानामपि पृथिव्यादीनामपि तेजांसि महांसि दुरभिभवानि दु खेनाभिभवितु शक्यानि भवन्ति। अयं चेति। अयं च मुनि सर्वतेजस्विना समग्रधामवतामग्रणीर्मुख्य। अनेनेति। अनेन मुनिना महात्मना प्रकृष्टस्वरूपेणाधिष्ठितमाश्रित जगद्द्विसूर्यमिव द्वौ सूर्यौ यत्र तद्वदिव। निष्कम्पेति। एतस्य मुनेरवष्टम्भादालम्बात्क्षितिर्वसुधा निष्कम्पेव निर्वेपथुरिव। अथ च कियन्ति विशेषणानि रूपकालङ्कृतिद्वारा प्रदर्शयन्नाह—एषेत्यादि। एष मुनि करुणारसस्य प्रवाह ओघ। संसार-सिन्धोर्भवाम्भोधे संतरणे सेतु सेतुबन्ध। क्षमाम्भसा क्षान्तिसलिलानामाधारोऽम्भसा बन्ध। तृष्णैव लता तद्गहनस्य परशु कुठार। सन्तोष एवामृतरस. पीयूषद्रवस्तस्य सागर समुद्र।

पवित्र की गयी हवियों को ग्रहण करती हैं। और इसके रेशमी से वल्कल वस्त्रों को हिलाता, आश्रम (में उगी हुई) लताओं के पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुआ यह वायु धीरे धीरे चल रहा है और इसके समीप डरता सा ही पहुँचता है। साधारणतया तो, पाँच महाभूतों के तेज भी कठिनता से पराभव करने योग्य होते हैं और यह तो सभी तेजस्वियों का मुखिया है। इस महात्मा से अधिष्ठित यह ससार मानो दो सूर्यों वाला प्रतीत होता है। इसके द्वारा अधिष्ठित यह पृथ्वी मानो स्थिर ही प्रतीत होती है। यह तो (इससे बहती) करुणारस की नदी सरीखा प्रतीत होता है, ससाररूपी समुद्र को पार करने का पुल सरीखा प्रतीत होता है, क्षमारूपी जलों का भण्डार-सरीखा है, तृष्णारूपी लताओं (वृक्षों) के वन को काटने के लिये कुल्हाड़ी सरीखा है, सन्तोषरूपी अमृत का स्रोतभूत सागर ही है, सिद्धियों (आध्यात्मिक ससिद्धियों) के मार्ग को बतलाने वाला है; दुष्ट (भूल भरे) विचाररूपी ग्रहों का अस्ताचल-सरीखा—उनको नष्ट कर देनेवाला है, शांतिरूपी वृक्ष का मूल है, बुद्धिरूपी चक्र का केन्द्र है; धर्मरूपी पताका का

तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्, वडवानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, मन्त्रः क्रोधभुजङ्गस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलाबन्धो नरकद्वाराणाम्, कुलभुवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साहचक्रस्य, आश्रयः सत्त्वस्य, प्रतिपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः पुण्यसञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, आरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, अनभिमुखः सुखानाम्। अस्य भगवतः

सिद्धिमार्गस्य मोक्षपदव्या उपदेष्टोपदेशक । असद्ग्रहकस्याशुभग्रहस्यास्तगिरिरस्ताचल । उपशमतरोः शमताद्रुमस्य मूल बुध्नः। प्रज्ञाचक्रस्य प्रतिभाचक्रस्य नाभिर्मध्यप्रदेश । धर्मध्वजस्य सुकृतकेतो स्थितिवशोऽवस्थानवेणु । सर्वविद्यावताराणा समग्रविद्याप्रदेशाना तीर्थं घट्ट । लोभार्णवस्य लिप्सासमुद्रस्य वडवानल और्वं । शास्त्ररत्नाना सिद्धान्तमणीना निकषोपल कषणपट्ट । रागपल्लवस्येच्छाकिसलयस्य दावानलो वनवह्नि.। क्रोधभुजगस्य कोपसरीसृपस्य मन्त्र.। मोहान्धकारस्याज्ञानतिमिरस्य दिवसकर सूर्य । नरकद्वाराणा दुर्गतिद्वाराणामर्गलाबन्ध परिघबन्ध । आचाराणा चरिताना कुलभुवन मूलगृहम्। मङ्गलाना श्रेयसामायतनं गृहम्। मदविकाराणामहंकारवृत्तीनामभूमिरूषरक्षेत्रम्। सत्पथाना शोभनमार्गाणा दर्शक उपदेष्टा। साधुतायाः शुभावस्थोत्पत्ति । उत्साह. प्रगल्भता स एव चक्र तस्य नेमिर्धारा। सत्त्वस्य धैर्यस्याश्रय आधार । कलिकालस्य कलियुगस्य प्रतिपक्ष शत्रु । तपस प्रसिद्धस्य कोशो भाण्डागारम्। सत्यस्य सखा मित्रम्। आर्जवस्य मार्दवस्य क्षेत्र सस्योत्पत्तिस्थलम्। पुण्यसचयस्य धर्मसमूहस्य प्रभव उत्पत्तिस्थलम्। मत्सरस्येर्ष्याया अदत्तावकाश । विपत्तेरापदोऽरातिः शत्रु.। परिभूते पराभवस्यास्थानमपदम्। अभिमानस्याहकृतेरननुकूलोऽहितकारक । दैन्यस्यासमतो-

---

आधारभूत दण्ड है, समग्रज्ञानरूपी सीढ़ियो से युक्त तीर्थस्थान (घाट) है, लोभरूप समुद्र को पीनेवाला समुद्राग्नि है, शास्त्ररूपी रत्नों को परखने की कसौटी है, आसक्तिरूप पत्रावलि के लिये वनाग्नि है, क्रोधरूपी सर्प को वश मे करने के लिये मन्त्र है, मोहरूपी अन्धकार का विनाशक सूर्य है, नरकरूपी दरवाजों को रोकने की अर्गला है, शुद्ध आचार-व्यवहारों का निवासस्थान है, और सभी मागलिक वस्तुओं का (मानो) निवासस्थान ही है। इसमे आवेग तो पनपते ही नहीं हैं, सन्मार्गों का वह दर्शक है, भलाई का तो उत्पत्तिस्रोत ही है, उत्साह (शक्ति) रूपी चक्र की (आश्रयभूत) नेमि नाभि है, महत्ता का आश्रय (उत्पत्तिस्थान) है, कलियुग का शत्रु है, तप का कोषगृह है, सत्य का मित्र है, सीधेपन का उत्पत्ति स्थान-क्षेत्र है, पुण्य कर्मों का स्रोत है, ईर्ष्या को कभी (मन में) अवसर नहीं देता, अभाग्य का शत्रु है, अपमान को स्थान नहीं देता; अभिमान के अनुकूल कभी नहीं होता—कभी अभिमान नहीं करता, तुच्छता अथवा दीनता का मित्र नहीं है, क्रोध के वशीभूत नहीं होता और ऐन्द्रियिक सुखों की ओर कभी नहीं आकर्षित होता। इस महाराज की कृपा से ही इस तपोवन में कहीं

प्रसादादेवोपशान्तवैरमपगतमत्सरं तपोवनम्। अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवन्ति। तथा हि। एष विकचोत्पलवनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युति-शबलमभिनवशाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरमजातकेसरैः केसरिशिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्गशावकः सिंहीस्तनम्। एष मृणालकलापाशङ्किभिः शशिकरधवलं सटा-

---

ऽस्वीकृत। रोषस्थानायत्तोऽनधीन। सुखानामनभिमुख पराङ्मुख। अस्येति। अस्य भगवतो मुने प्रसादादेव माहात्म्यादेव उपशान्त शान्तिं प्राप्त वैर विरोधो यस्मिन्। अपेति। अपगतो दूरीभूतो मत्सर परगुणोत्कर्षासहन यस्मिन्नेवंभूत तपोवनम्। वर्तत इति क्रियाध्याहार। अत्रार्थे साधारण कारणमाह—अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये। महात्मना महानुभावानां प्रभावो माहात्म्यम्। एतदेव विशेषतो दर्शयन्नाह—अत्रेति। हि निश्चितम्। अत्र तपोवने शाश्वतिकं सदातनं विरोध वैरमपहाय दूरीकृत्योपशान्तात्मान प्रशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि पशवोऽपि तपोवनवसतिसुख मुनिस्थाननिवाससातमनुभवन्त्यनुभवविषयीकुर्वन्ति। तदेव दर्शयन्नाह—तथेति। तथा हि। एषोऽहि. सर्पो विकच विकसित यदुत्पलं नीलकमल तस्य वन तस्य या रचना निर्मितिस्तदनुकरोत्येवंशीलं तत्तथा। उत्पतदिति। उत्पतदूर्ध्वं गच्छच्चारु मनोहारि चन्द्रकशत मेचकशत यस्मिन्। हरिणेति। हरिणस्य मृगस्य या लोचनद्युतिर्नेत्रकान्तिस्तद्वच्छ-बल कर्बुरमेवंभूत शिखिनो मयूरस्य कलापं प्रचालकमातपेन सूर्यालोकेनाहत पीडितो निःशङ्क निर्भय विशति प्रविशति। कमिव। अभिनव प्रत्यग्र सादा शष्पाणि सन्त्यत्रेति शाद्वलो हरित-प्रदेशस्तमिव। अयमिति। अयं कुरङ्गशावको मातरमम्बामुत्सृज्य विहायाजातकेसरैरनुत्पन्नसटै केसरिशिशुभिरिभारिबालकै सह समुपजात समुत्पन्न परिचय संस्तवो यस्यैवंभूत सिंहीस्तन पिबति पानं करोति। क्षरन्तीति। क्षरन्ती स्रवन्ती क्षीरधारा यस्मिन्। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्व। एष इति। एष समीपवर्ती। मृणालेति। मृणालानां बिसानां कलापं समूहमा-

---

भी वैर और ईर्ष्या नहीं हैं। महात्माओं की शक्ति आश्चर्यजनक होती है। निश्चय ही यहाँ अपना सदातन विरोधभाव छोड़ कर, शान्तात्मा हुए, पशु भी तपोवन में रहने का सुख अनु-भव करते हैं। जैसे कि—यह साँप, सूर्य की (प्रखर) धूप से दुखी हुआ, निर्भय होकर मयूर की पूछ (की छाया) में, प्रविष्ट हो रहा है कि वह कोई ताजी हरी घास का वह भूभाग हो कि जो पूर्णतया विकसित कमल वन जैसा है, जिसमें सैकड़ों सुन्दर चक्राकार स्थान चमक रहे हैं और जो हरिण की आँखकी सी चमक से रंगबिरंगा बना हुआ है। यह एक हरिणशिशु माता को छोड़ कर, बिन अयालों के सिंह शिशुओं से परिचित हुआ दूध की धार बहाते, सिंही के स्तन को चूँष रहा है। यह एक सिंह चन्द्रकिरण से श्वेत अपने अयाल समूह

भारमामीलितलोचनो बहुमन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः । इदमिह कपिकुलमपगतचापलमुपनयति मुनिकुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि। एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलीभाञ्जि मदजलपाननिश्चलानि मधुकरकुलानि सञ्जातदयाः कर्णतालैः करिणः। किं बहुना तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिरुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादितकृष्णाजिनोत्तरासङ्गशोभाः फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः। किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः' इति।

शङ्कत इत्येवंशीलास्तै । द्विरदेति। द्विरदा गजास्तेषां कलभा बालकास्तैराकृष्यमाणमवकृष्यमाणं शशिकरश्चन्द्रस्तद्वद्धवल शुभ्र सटाभार केसरकलापम्। आमीलिते। आ ईषन्मीलिते लोचने येनैवभूतो बहुमन्यते। सुखत्वेन जानातीत्यर्थः। इदमिति। इहास्मिंस्तपोवन इदम्। अपेति। अपगत चापल चाञ्चल्यं यस्यैवंभूतं कपिकुलं वानरयूथम्। स्नातेभ्य कृताप्लवेभ्य। मुनीति। मुनीनां तपस्विनां कुमारका बालास्तेभ्यः फलानि सस्यान्युपनयति ढौकयति। एते चेति। एते करिणो हस्तिनो मदान्धा अपि मदोन्मत्ता अपि गण्डस्थलीभाञ्जि करटस्थलभाञ्जि। मदेति। मदजलस्य दानवारिण पान प्राशन तेन निश्चलानि स्थिराणि मधुकराणां भ्रमराणा कुलानि समूहान् सजातदया समुत्पन्नकरुणाः कर्णतालै श्रवणचपेटैर्न निवारयन्ति न दूरीकुर्वन्ति। किं बह्विति। किं बहुना किं बहु जल्पितेन। स्तोकेनैवोच्यत इति भाव। तापसेति। उत्सर्पन्तीभिरूर्ध्वं व्रजन्तीभिस्तापसानां यदग्निहोत्र तस्य या धूमलेखा दहनकेतनराजयस्ताभिरनिशं निरन्तरम्। उपेति। उपपादिता विहिता कृष्णं श्यामं यदजिन चर्म तस्योत्तरासङ्गो वैकक्ष्य तस्य शोभा येषां ते तथा फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतना ज्ञानरहिता अस्य भगवतस्तरवोऽपि वृक्षा अपि सनियमा इव व्रतिन इव लक्ष्यन्तेऽवलोक्यन्ते। सचेतना ये प्राणिनो मनुजादयस्तेषां किं पुन किं भण्यते किं कथ्यते। ते त्वेतादृशा भवन्त्येवेति भाव।

को बिसतन्तु का समूह समझते हस्तिशिशुओं द्वारा खींचे जाते हुए का आँखे मीचे हुए आनन्द ले रहा है। यह बन्दरों का झुण्ड यहाँ अपनी चञ्चलता को छोड़े हुआ, स्नान किये हुए मुनिबालकों को फल लाकर दे रहा है। और ये मद से मत्त हाथी भी अपनी कनपटियों पर बैठे हुए तथा मद पीकर निश्चल हुए भौरों को दयापूर्ण हुए अपने कानों की फड़फड़ाहटों से नहीं हटा रहे हैं। इससे अधिक और क्या कुछ कहा जाय? ऊपर की ओर उठती हुई तपस्वियों के (किये हुये) अग्निहोत्रों के धुएँ की पक्तियों से दिन रात कृष्णचर्म निर्मित उत्तरीय वस्त्रों की शोभा—वैसा रूप—प्रदर्शित करते इस भगवान् के वृक्ष भी ऐसे प्रतीत होते हैं कि उन्होंने कोई नियम व्रत-धारण कर रखा हो क्योंकि ये फलमूल उत्पन्न करते हैं और छालें धारण किये हुए हैं (व्रती मुनिजन फल-मूल खाकर रहते हैं वल्कलवस्त्र पहनते हैं)। चेतनावान् प्राणियों के विषय में (कि वे व्रत धारण करते हैं) तो कहने की कुछ आवश्यकता ही नहीं है।"

एवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादावुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनतिसमीपवर्तिनि कुशासने समुपाविशत्। आलोक्य तु मां सर्व एव मुनयः 'कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः' इति तमासीनमपृच्छन्। असौ तु तानब्रवीत् 'अयं मया स्नातुमितो गतेन कमलिनीसरस्तीरतरुनीडनिपतितः शुकशिशुरातपजनितक्लान्तिरुत्तप्तपांसुपटलमध्यगतो दूरनिपतनविह्वलतनुरल्पावशेषायुरासादितस्तपस्विदुरारोहतया च तस्य वनस्पतेर्न शक्यते स्वनीडमारोपयितुमिति जातदयेनानीतः। तद्यावदयमप्ररूढपक्षतिरक्षमोऽन्तरिक्षमुत्पतितुं तावदत्रैव

अथ हारीत किं कृतवानित्याह—एवमिति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयन्त मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे एकस्मिन्प्रदेशे स्थापयित्वा संस्थाप्य हारीत हारीतनामा मुनि। पादाविति। पादौ चरणावुपगृह्य पादयो पतित्वा। कृतेति। कृत विहितमभिवादन येनैवंभूत पितुर्जनकस्यानतिसमीपवर्तिनि कुशासने दर्भविष्टरे समुपाविशदुपविष्टवान्। आलोक्येति। आलोक्य निरीक्ष्य। तु पुनरर्थे। मां सर्व एव समग्रा एव मुनय· ऋषय· कुत कस्मात्प्रदेशादय शुकशिशुरासादित प्राप्त इति तमासीनमुपविष्ट हारीत मुनिमपृच्छन्प्राक्षु। असौ हारीत। तु पुनरर्थे। तान्मुनीनब्रवीदुवाचेत्यर्थ। किमुवाचेत्याह—अयमिति। अय शुकशिशुर्मया स्नातु स्नानार्थमितोऽस्मात्प्रदेशात् गतेन प्राप्तेन। कमलिनीति। कमलिनीसर पद्मसरस्तस्य तीरतरु प्रतीरवृक्षस्तस्मिन्यो नीड कुलायस्तस्मान्निपतित स्रस्त। आतपेति। आतपेनालोकेन जनितोदिता क्लान्ति श्रमाधिक्य यस्य स तथा। उत्तप्तेति। उत्तप्त उष्णीभूतो य पांसुपटलो धूलीसमूहस्तस्य मध्यगतोऽभ्यन्तरवर्ती। दूरेति। दूराद्विशालान्निपतनमध - स्संयोगफलिका क्रिया तेन विह्वल व्याकुल तनुर्देहो यस्य स तथा। अल्पेति। अल्प स्वल्पमवशेषमायुर्जीवित यस्यैवंभूत आसादितो लब्ध। तपस्वीति। तपस्विभिर्मुनिभिर्दुरारोहतया दु खेनारोढु शक्यतया तस्य वनस्पते शाल्मलीवृक्षस्य स्वनीड स्वकुलायमारोपयितु स्थापयितु न शक्यते न समर्थीभूयत इति हेतो। जातदयेनेति। जातोत्पन्ना दया करुणा यस्यैवंभूते-

---

जब मैं इस प्रकार सोच ही रहा था कि हारीत मुझे अशोक वृक्ष की उसी छाया में एक ओर रख कर, पावों को छूकर पिता का अभिवादन करके, उसके अत्यन्त समीप स्थापित कुशासन पर बैठ गया। मुझे देखकर तो सभी मुनियों ने बैठे हुए उस हारीत से पूछा "यह तोते का बच्चा कहाँ से मिला?'—उसने उनसे कहा—"जब मैं स्नान करने के लिये इस स्थान से गया तब मैंने इसको पाया। यह कमल-सरोवर के तटवर्ती वृक्ष पर स्थित (अपने) घोंसले से गिरा हुआ था। सूर्य की ऊष्मा से दुखी यह तपी हुई धूल के ढेर मे पड़ा था, दूर से (ऊँचाई से) गिरने के कारण इसके शरीर की शक्ति जाती रही थी और इसमें बहुत ही कम जीवन शेष था। मैंने इस पर दया की और इसको यहाँ ले आया, कारण कि हम तपस्वियों द्वारा उस वृक्ष पर चढ़ना कठिन था इसलिये इसको इसके अपने घोंसले में नहीं रखा जा सकता था। इसलिये जब तक यह अपने पख पूर्णतया नहीं बढ़ने के कारण आकाश में उड़ने

कस्मिंश्चिदाश्रमतरुकोटरे मुनिकुमारकैरस्माभिश्चोपनीतेन नीवारकणनिकरेण फलरसेन च संवर्ध्यमानो धारयतु जीवितम्। अनाथपरिपालनं हि धर्मोऽस्मद्विधानाम्। उद्भिन्नपक्षतिस्तु गगनतलसञ्चरणसमर्थो यास्यति यत्रास्मै रोचिष्यते। इहैव वोपजातपरिचयः स्थास्यति' इत्येवमादिकमस्मत्सम्बद्धालापमाकर्ण्य किञ्चिदुपजातकुतूहलो भगवाञ्जाबालिरीषदावलितकन्धरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृष्टया दृष्ट्वा सुचिरमुपजातप्रत्यभिज्ञान इव पुनःपुनर्विलोक्य 'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते'

नानीतोऽस्मानीत। मयेति पूर्वोक्तमेवेति न पुनरुच्यते। तद्यावदिति। तदिति हेत्वर्थे। यावत् यावत्कालम्। अयमिति पूर्वोक्त। अप्ररूढेति। अप्ररूढाऽनुत्पन्ना पक्षतिः पक्षमूलं यस्य स। अक्षमेति। अन्तरिक्षमाकाशमुत्पतितुमक्षमोऽसमर्थ। तावदिति। तावत्कालम्। अत्रैवेति। अत्रैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थं। कस्मिंश्चिदिति। कस्मिंश्चित् अनिर्दिष्टनामन्याश्रमतरुकोटरे मुनिवसतिवृक्षनिष्कुहे मुनिकुमारकैस्तापसशिशुभिरस्माभिश्चोपनीतेन आनीतेन। नीवारेति। नीवारो वनव्रीहिस्तस्य कणनिकरेण सस्यसमूहेन फलरसेन सस्यद्रवेण च संवर्ध्यमानो वृद्धिं प्राप्यमाणो धारयतु दधातु जीवितं प्राणितम्। अनाथेत्यादि। हि यस्माद्धेतोरस्मद्विधानां तपस्विनामनाथपरिपालनं दीनजनरक्षणं धर्म आचार। तु पुनरर्थे। उद्भिन्नेति। उद्भिन्ना प्रकटीभूता पक्षतिर्यस्यैवंभूत। गगनेति। गगनतलमाकाशतलं तत्र सञ्चरणं गमनं तत्र समर्थः क्षम। यत्रेति। यत्र यस्मिन्देशेऽस्मै शुकशिशवे रोचिष्यते रुचिरभिलाष उत्पत्स्यते तत्र यास्यति गमिष्यति। रुच्यर्थानां धातूनां योगे चतुर्थी। इहैवेत्यनास्थायाम्। उपजातपरिचय संजातसंस्तव स्थास्यत्यवस्थानं करिष्यति। इत्येवमादिकमस्मत्संबद्धमिति मद्विषयकमालापं प्रश्नोत्तररूपमाकर्ण्य श्रुत्वा। किंचिदिति। किंचिदीषदुपजातमुत्पन्नं कुतूहलमाश्चर्यं यस्य स तथा भगवान्माहात्म्यवान् जाबालि जाबालिनामा मुनि। ईषदिति। ईषत्किंचिदावलिता नमिता कन्धरा ग्रीवा यस्य स तथा। इदं तु सावधानलक्षणम्। पुण्येति। पुण्यजलैः पवित्रपानीयैः प्रक्षालयन्निव धावयन्निव मामतिप्रशान्तयातिप्रसन्नया दृष्ट्या दृशा सुचिरं चिरकालं दृष्ट्वा विलोक्य। उपेति। उपजातं समुत्पन्नं प्रत्यभिज्ञानम् 'सोऽयं देवदत्त' इत्याकारकं ज्ञानं यस्य स तथा तद्वदिव पुन-

---

में असमर्थ रहेगा तब तक यहाँ ही किसी वृक्ष की खोह में मुनिकुमारों तथा मेरे द्वारा लाये गये नीवार (धान्य) कणों के समूह से और फलोंके रस से पाला गया जीवन धारण करे। अनाथों की रक्षा करना हमारे-जैसों का धर्म है ही। जब इसके पंख बढ़ जायेंगे और आकाश में उड़ने के योग्य हो जायगा तब यह जहाँ चाहेगा वहाँ जा सकेगा। अथवा यदि यह हमारा (इतना) परिचित हो जायगा तो यहीं पर रहेगा। जब भगवान् जाबालि ने यह तथा मेरे सम्बन्ध में ऐसी ही दूसरी बातें सुनीं तो उसकी उत्सुकता कुछ कुछ जाग्रत हुई, और अपनी गर्दन कुछ झुका कर उसने मुझे देर तक अपनी प्रशान्त दृष्टि से देखा—मानो इस प्रकार उसने मुझे पुण्य जलसे स्नान करा दिया हो, और मानो मुझे उसने पहचान लिया हो इसलिये बार-बार मुझे देख कर कहा—"यह अपने ही दुष्कर्मों का फल भोग रहा है।" कारण कि

इत्यवोचत्। स हि भगवान्कालत्रयदर्शी तपःप्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति। वेत्ति जन्मान्तराण्यतीतानि। कथयत्यागामिनमप्यर्थम्। ईक्षणगोचरगतानां च प्राणिनामायुषः संख्यामावेदयति। सर्वैव सा तापसपरिषच्छ्रुत्वा विदिततत्प्रभावा 'कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः, किमर्थं वा कृतः, क वा कृतः, जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत्' इति कौतूहलिन्यभवत्। उपनाथितवती च तं भगवन्तम् 'आवेदय, प्रसीद भगवन्, कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते। कश्चायमासीज्जन्मान्तरे। विहगजातौ वा कथमस्य सम्भवः। किमभिधानो वायम्। अपनयतु नः कुतूहलम्। आश्चर्याणां हि सर्वेषां भगवान्प्रभवः'।

पुनर्वारंवार विलोक्य निरीक्ष्य स्वस्यैवात्मन एवाविनयस्याशिष्टाचारस्य फल भोगोऽनेन शुकशिशुनानुभूयते साक्षात्क्रियत इति तानवोचदब्रवीत्। कथ मुनिर्जानातीत्याशयेनाह—स हीति। यत। हि निश्चितम्। स भगवान्। कालेति। कालत्रयस्यातीतानागतवर्तमानलक्षणस्य दर्शी पश्यक। तप इति। तप प्रभावाद्दिव्येन ज्ञानात्मकेन चक्षुषा दृष्ट्या सर्वमेव समग्रमेव जगत्करतलगतमिव हस्तन्यस्तमिवावलोकयति पश्यति। वेत्तीति। अतीतानि गतानि जन्मान्तराणि भवान्तराणि वेत्ति जानाति। कथयतीति। आगामिनं भाविनमर्थमपि कथयति ब्रवीति। ईक्षणेति। ईक्षणगोचरगतानां नयनपथप्राप्तानां प्राणिना सत्त्वानामायुषो जीवितव्यस्य सख्यां परिमाणमावेदयति निवेदयति। सर्वैवेति। सर्वैव समग्रैव सा तापसपरिषन्मुनिसभा श्रुत्वाकर्ण्य। पूर्वोक्तमिति शेष। विदितेति। विदितो ज्ञातस्तस्य जाबालिमुने' प्रभावो माहात्म्य यया सा तथेति कौतूहलिनी कौतुकवत्यभवदित्यन्वय। इतिशब्दवाच्यमाह—कीदृश इति। कीदृश कीदृगविनयोऽपराधविशेषोऽनेन शुकशिशुना कृतो विहित। किमर्थं किंप्रयोजन वा कृत। क वा कस्मिन्प्रदेशे कृत। जन्मान्तरे भवान्तरेऽय क आसीदभवत्। सर्वत्र वाशब्दो विकल्पार्थः। उपेति। उपनाथितवती। 'नाथृ याचने' इत्यस्य धातो रूपम्। याचितवतीत्यर्थं। च पूर्वोक्तसमुच्चये। तं भगवन्त जाबालिमुनिम्। किं याचितवतीत्याशयेनाह—आवेदयेति। हे

वह भगवान् जाबालि अपने तप की शक्ति द्वारा तीनों कालों (भूत, वर्तमान, तथा भविष्यत्) को देख सकता है, अपनी दिव्य दृष्टि से सारे ही जगत् को ऐसे देखता है कि मानो वह (उसकी) हथेली पर ही रखा हुआ हो। वह (किसी भी व्यक्ति के) सभी बीते हुए (पहले) जन्मों को जान लेता है, भावी घटनाओं को भी बता देता है—और वह अपनी दृष्टि के क्षेत्र में आये प्राणियों की आयु की मात्रा की भी भविष्य वाणी कर देता है। इन कारणों से वे सभी एकत्रित तपस्वी जिन्होंने उसकी बात सुनी और उसकी शक्ति को जानते थे—यह जानने के लिये उत्सुक होगये कि 'इसने कैसे दुष्कर्म किये थे, क्यों किये थे और अपने जीवन में यह कौन था आदि। उस परिषत् ने उस दिव्य ऋषि से पूछा—"भगवन् कृपया बताइये, यह किस किस दुष्कर्म का फल भोग रहा है। अपने पूर्व जन्म मे यह कौन था। पक्षि जाति में इसका जन्म कैसे हुआ। इसका क्या नाम है। कृपया हमारी उत्सुकता को दूर कीजिये। आप तो सभी आश्चर्यों (अथवा आश्चर्यजनक वस्तुओं) के स्रोत हैं।"

इत्येवमुपयाच्यमानस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः प्रत्यवदत्—'अतिमहदिद-माश्चर्यमाख्यातव्यम् । अल्पशेषमहः । प्रत्यासीदति च नः स्नानसमयः । भवतामप्यति-क्रामति देवार्चनविधिवेला । तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः । सर्वं एवाचरन्तु यथोचित दिवसव्या-पारम् । अपराह्णसमये भवता पुनः कृतमूलफलाशनाना विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमावेदयिष्यामि योऽयम्, यच्चानेन कृतमपरस्मिञ्जन्मनि, इह च लोके यथास्य सम्भूतिः । अय च तावदपगतक्लमः क्रियतामाहारेण । नियतमयमप्यात्मनो

भगवन्, आवेद्य कथय । प्रसीद प्रसन्नो भव । पूर्वोक्ताभिप्रायस्थप्रश्नाननुवदन्नाह—कीदृशा-स्येति । कीदृशस्य किंरूपस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते । कश्चेति । जन्मान्तरेऽय क आसीत् । विहगेति । विहगजातौ पक्षिजातौ कथमिति केन प्रकारेण अस्य सभव उत्पत्ति । किमिति । अय किमभिधान किंनामा । अपनयत्विति । नोऽस्माकं कुतूहलमाश्चर्यमपनयतु दूरीकरोतु । आश्चर्याणामिति । हि भगवान्, सर्वेषां समग्राणामाश्चर्याणा कुतूहलानां प्रभव उत्पत्तिस्थानम् । अपूर्वार्थज्ञापक इति यावत् ।

इत्येवमिति । इत्येवम् अनेन प्रकारेण तपोधनपरिषदा मुनिसभयोपयाच्यमान प्रार्थ्य-मान स महामुनि प्रत्यवदत्प्रत्यवोचत् । अतीति । इदमाश्चर्यमतिमहदतिमहीयस्तयाख्यातव्य कथनीयम् । मयेति शेष । अल्पेति । अहर्दिनमल्पशेषमल्पावशिष्टम् । प्रत्येति । नोऽस्माकं स्नानसमय आप्लवकाल प्रत्यासीदति विलम्बितो भवति । भवतामिति । भवतामपि युष्माक मपि देवार्चनविधिवेला देवपूजाक्षणोऽतिक्रामत्युल्लङ्घिता भवति तदिति हेत्वर्थे । उत्तिष्ठन्तूत्थान कुर्वन्तु भवन्तो यूयम् । सर्व एवेति । यथोचित यथायोग्य दिवसव्यापार दिनकृत्यमाचरन्तु समाचरन्तु । अपराह्णेति । अपराह्णसमये द्विप्रहरानन्तरसमये भवता युष्माकम् । पुनरिति । पुन द्वितीयवार कृत विहित मूलफलयोरशन भक्षण यैस्ते तथा तेषाम् । विस्रब्धेति । विस्रब्ध सावधानं यथा स्यात्तथोपविष्टानां स्थितानाम् । आदित इति । आदित प्रारम्भतः प्रभृति सर्वं वृत्तान्तमावेदयिष्यामि निवेदयिष्यामि । योऽयमिति । यश्चाय पूर्वजन्मन्यासीत् । यच्चानेना-परस्मिञ्जन्मनि परभवे कृतम् । इह चेति । इह लोके यथा येन प्रकारेणास्य सम्भूतिरुत्पत्ति. । अयं चेति । तावदादावयं शुक आहारेणाशनेनापगतक्लमो व्यपगतपरिश्रम. क्रियतां विधीयताम् ।

उस तपस्वि-परिषद् द्वारा इस प्रकार प्रार्थित उस महामुनि ने उत्तर दिया—"यह आश्चर्यजनक कथा जिसको आप मुझसे वर्णन करने के लिये कह रहे हैं—बहुत लम्बी है और दिन थोड़ा रह गया है और हमारे स्नान का समय हो गया है और आपका देवपूजा के कृत्यों को करने का समय भी बीत रहा है । इसलिये आप लोग उठ जावें । अपने प्रथागत दैनिक कृत्य को पहले समाप्त करलें । मध्याह्न बीत जाने पर जब आप मूलों और फलों को खाये हुए आराम से बैठे हुए होंगे तब मै आरम्भ से सारी कथा सुनाऊँगा कि यह कौन है, पहले जन्म में इसने क्या किया, और इस लोक में इसका जन्म कैसे हुआ और इस बीच इसको खाना खिलाना चाहिये, जिससे इसकी थकावट दूर हो जाय । यह निश्चित है कि जब मैं इसकी कथा

जन्मान्तरोदन्तं स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधन्नेवोत्थाय सह मुनिभिः स्नानादिकमुचितदिवसव्यापारमकरोत्।

अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गराग रविरुद्वहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्बविनिहितदृष्टिभिरुष्मापैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपस्तानिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव संहृतपादः पारावतपादपाट-

---

नियतेति। नियत निश्चित मयि कथयत्यय शुक अपि आत्मन स्वकीयस्य जन्मान्तरोदन्त परभववृत्तान्त स्वप्नोपलब्धमिव स्वप्नदृश्यवत्सर्वं समग्रमशेषत आमूलचूलत स्मरिष्यति स्मरणविषयीकरिष्यति। इतीति। इति पूर्वोक्तमभिदधदेव कथयन्नेवोत्थायोत्थान कृत्वा। सहेति। सह सम मुनिभिस्तपस्विभिरुचित योग्य दिवसव्यापार स्नानादिकमकरोन्निर्ममे।

अनेन चेति। अनेन समयेन मध्याह्नसमयकर्तव्यकर्मणा परिणत. परिपाकं गतो दिवस। परिणते दिवसे सूर्यस्य रक्तत्वात्तद्वर्णनमाह—स्नानोत्थितेनेति। अम्बरतलगतो रविस्त रक्तचन्दनाङ्गराग साक्षादिव प्रत्यक्षसिद्धमुनिप्रत्यर्पितमूर्तिरूपेणैवोदवहदधारयत्। त कम्। य स्नानोत्थितेन मुनिजनेन तपस्विवर्गेणार्घविधिं रक्तचन्दनरक्तपुष्पादिना पूजाविधिमुपपादयता निष्पादयता क्षितितले दत्तोऽर्पित । सूर्यायेति शेष । सायकाले सूर्यस्य रक्तत्वान्मुनिप्रदत्तो राग. किमनेन साक्षादिव गृहीत इत्युत्प्रेक्षा। ऊर्ध्वमुखैरिति। ऊर्ध्वमुखैरूर्ध्वाननै। अर्केति। अर्कबिम्बे सूर्यबिम्बे विनिहिता स्थापिता दृष्टियैस्ते तथा तैरुष्मापैरुष्मा वह्निज्वाला तस्यानुकारिभिस्तपोधनै रिव परिपीयमान आस्वाद्यमानस्तेज प्रसर कान्तिप्रचारो यस्य स तथा। विरलेति। विरल स्वल्प आतप आलोको यस्य स तथा तनिमान तनोर्भावस्तनिमा तमभजत्। क्षीणत्व प्रापेत्यर्थं। उद्यदिति। उद्यदुदय प्राप्नुवन्य सप्तर्षिसार्थं सप्तर्षिसमूहस्तेन य स्पर्श

का वर्णन कर रहा होऊँगा—तब यह भी अपने सारे पूर्वजन्म के वृत्तान्त को पूर्णतया इस प्रकार स्मरण कर लेगा कि मानो (उसी को वह पुन) स्वप्नमे देख रहा हो।"—ज्यों ही उसने यह बात कही त्यो ही वह उठ खड़ा हुआ और मुनियों के साथ साथ स्नान समेत अपने सामान्य दैनिक कृत्य किए।

इतनी देर मे दिन ढल गया। स्नान करने के पश्चात् (सूर्यकी) पूजा करते हुए मुनियों ने यहाँ पृथ्वी पर जो लाल चन्दन का लेप अर्पित किया था ऐसा प्रतीत हुआ कि आकाश में पहुँचने पर उसी को सूर्य ने धारण कर लिया। दिन पतला पड़ गया (अर्थात् समाप्ति पर आ गया)। इसकी धूप कम हो गयी, मानो इसके सारे तेज का प्रसार अपने मुखों को ऊपर की ओर किये हुए तथा अपनी आँखो को सूर्य बिम्ब पर टिकाये हुए, (सूर्य की) ऊष्मा पी लेने का व्रत धारण किये हुए मुनियों द्वारा पी लिया गया हो। सूर्य, जिसने मानो उदय होते हुए सप्तर्षि समूह के स्पर्श से बचाना चाहते हुए अपने पाँवों अर्थात् किरणों को समेट लिया था, और जो अब कबूतर के पाँवों के रग का हो गया था, आकाश से नीचे की ओर

ष्टरागो रविरम्बरतलादवालम्बत । आलोहितांशुजालं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिन प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत । विहायाम्बरतलमुन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत । आलग्नलोहितातपच्छेदा मुनिभिरालम्बितलोहितवल्कला इव तरवः क्षणमदृश्यन्त। अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटला सन्ध्या समदृश्यत। यस्यामावध्यमानध्यानम्, एकदेशदुह्यमान-

सम्बन्धस्तस्य या परिजिहीर्षा परिहर्तुमिच्छा तया सहता सकोचिता पादा येन स तथा । पारावत इति । पारावत कलरवस्तस्य पादौ चरणौ तद्वत्पाटल· श्वेतरक्तो रागो यस्मिन्नेवंविधो रवि सूर्य । अम्बरतलादित्यवधौ पञ्चमी । अवालम्बतालम्बत । तदनन्तरमालोहितांशुजालमीषद्रक्तकिरणसमूह सूर्यमण्डलं रविबिम्बमलक्ष्यतैक्ष्यत । कमिव । अपरेति । अपरार्णवे पश्चिमसमुद्रे प्रतिमागत स्वमूर्तिरूपेणागत बहिर्निःसृत जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपो कृष्णस्य नाभिनलिनमिव नाभिपद्ममिव । तदेव विशिनष्टि—विगलदिति । विगलन्ती स्रवन्ती मधुधारा परागश्रेणिर्यस्मात्स तत् तथा । विहायेति । अम्बरतलमाकाशतलं विहाय त्यक्त्वा कमलिनीवनानि नलिनीखण्डान्युन्मुच्य च शकुनय इव पतत्रिण इव दिवसावसाने सायकाले तरुशिखरेषु वृक्षाग्रेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणा सूर्यरश्मय स्थितिमवस्थानमकुर्वत कृतवन्तः । तत्कालीनतरुशोभामाह—आलग्नेति । आलग्नेषत्सम्बन्ध प्राप्ता लोहितातपस्य रक्तालोकस्य मध्येमध्ये छेदा रचनाविशेषा येषा ते तथा । अतएव 'भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमङ्गे गजस्य' इति । मुनिभिस्तपस्विभिरालम्बिता आश्रिता अतएव लोहितवल्कला इव तरवो वृक्षा क्षण स्वल्पकालमदृश्यन्तावलोक्यन्त । सन्ध्यावस्थां प्रदर्शयन्नाह—अस्तेति । अस्तमुपगतेऽदृश्यता प्राप्ते भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलात्पश्चिमसमुद्रतलादुल्लसन्त्यूर्ध्वमागच्छन्ती विद्रुमलतेव रक्तकन्दवल्लीव पाटला श्वेतरक्ता सन्ध्या सायकाल समदृश्यत समालोक्यत । यस्यामिति । यस्या सन्ध्यायामेव-

लटक गया। लाल-लाल हुई किरणों वाला सूर्यमण्डल पश्चिमी महासागर में प्रतिबिम्बित हो गया और इसका प्रतिबिम्बित चित्र ऐसा दिखायी दिया कि मानो अपनी जलशय्या मे (आराम से) पड़े विष्णु की नाभि (से उत्पन्न) कमल (लाल-लाल) मधु की धारा बहा रहा हो। दिनकी समाप्ति पर सूर्य की किरणें आकाश को छोड़ कर वृक्षों के ऊपर तथा पर्वतों के अग्रभागों पर इस प्रकार स्थित हो गयीं जैसे कि दिन की समाप्ति पर पक्षी कमलिनियों के वनों को छोड़ कर वृक्षों तथा पर्वतों की चोटियों पर जा बैठते हैं। आश्रम के जिन वृक्षों पर धूप के लाल लाल धब्बे पड़े हुए थे वे क्षणभर के लिये ऐसे दिखायी पड़े कि उन पर मुनियों ने (अपने) लाल-वल्कल वस्त्र लटका दिये हों और जब सूर्य पूर्णतया अस्त हो गये तब लाल सन्ध्या पश्चिमी महासमुद्र तल से ऊपर आती हुई (लाल) मूँगे की लता-सरीखी दिखायी दी। उस सन्ध्याकाल मे आश्रम ऐसा हो गया कि जिसमे (मुनियों द्वारा) ध्यान लगाया जा रहा था, एक स्थान पर (एक ओर) दुही जाती यज्ञ धेनुओं के दूध की ध्वनि से अत्यन्त

होमधेनुदुग्धधाराध्वनितधन्यतरातिमनोहरम्, अग्निवेदिविकीर्यमाणहरित्कुशम्, ऋषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाणदिग्देवताबलिसिक्थमाश्रमपदमभवत्। कापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंससितदुकूलपरिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिवसकरे वेगोत्थित-

---

विषमाश्रमपदमभवत्। बभूवेत्यर्थः। कीदृशम्। आबध्येति। आबध्यमान क्रियमाण ध्यानमेकप्रत्ययसंततिर्यस्मिन्। अनस्त गत एव सूर्ये सध्यावन्दनार्थयोरुक्तत्वाद्ध्यानग्रहणम्। एकेति। एकदेश एकस्मिन्प्रदेशे दुह्यमाना या होमधेनवो होमार्थं गावस्तासां दुग्धधारा पय श्रेणी तत्र यद्ध्वनित शब्दित तेन धन्यतर सदतिमनोहरमतिरम्यम्। अग्नीति। अग्निवेद्या वह्निस्थापनचतुरस्रभूमिकायां विकीर्यमाणा विक्षिप्यमाणा हरित्कुशा नीलदर्भा यस्मिन्। ऋषीति। ऋषिकुमारिकाभिर्मुनिपुत्रीभिरितस्ततो विक्षिप्यमाणानि समन्ताद्विकीर्यमाणानि दिग्देवतानां बलिसिक्थानि बलिसबन्धिसिद्धान्नानि यस्मिंस्तत्तथा। पुनरवस्थान्तरमाह—कापीति। कापि कुत्रचित्प्रदेशे विहृत्य पर्यटनं कृत्वा दिवसावसाने दिनपर्यन्ते कपिला तपोवनधेनुरिव लोहिततारका परिवर्तमाना तपोधनै मुनिभि. सध्याद्दृश्यतालोक्यत। गौरपि कपिलत्वाल्लोहिततारका रक्तकनीनिका। संध्या तु लोहिततारका रक्तनक्षत्रा तत्कालीनोद्गतनक्षत्राणा रक्तत्वात्। अत सध्याधेन्वो सादृश्यादुपमानोमेयभाव। कमलिनीसूर्ययोर्नायिकानायकत्वेन तौ वर्णयन्नाह—अचिरेति। अचिरप्रोषिते तत्कालीनप्रोषिते गते सवितरि श्रीसूर्ये शोकेन विरहेण विधुरा विह्वला कमलिनी दिनपतिसमागमार्थं स्वकीयनायकस्यागमनहेतोर्व्रत नियमविशेषमाचरद्विवाकरोदिव। कमलेति। सकुचितमुखसाम्यात्कमलमुकुलान्येव कमण्डलूनि तान्येव दधातीत्येवशीला सा तथा। हंसेति। श्वेतसाम्याद्धसा एव सितदुकूलानि परिधानमधोंशुक यस्या . सा तथा। मृणालेति। श्वेततन्तुसारूप्यान्मृणालान्येव धवल शुभ्र यज्ञोपवीत यज्ञसूत्रं यस्याः सा तथा। मधुकरेति। नीलतीक्ष्णमुखसाम्यान्मधुकराणा भ्रमराणा यन्मण्डल तदेवाक्षवलयं रुद्राक्षजपमालिका तदुद्वहन्ती धार-

---

मनोहर हो गया, उसमे (यज्ञ) वेदियों पर हरी कुशाएँ फैलायी जाने लगीं, और उसमें ऋषि कुमारियों द्वारा दिग्देवताओं के समर्पित बलिपिंड विविध स्थानों पर बिखेरे जाने लगे। ऋषियों ने लालतारों वाली लौटती हुई सध्या को ऐसे देखा कि मानो वह कहीं घूमफिर कर दिन की समाप्ति पर लौटती हुई तपोवन की लाल पुतलियों वाली कपिला धेनु हो। सूर्य की अभी अभी हुई विदाई से हुए शोक से विह्वल कमलिनी ने तो मानो कमल की कली को (श्वेत) कमण्डलु के रूप मे धारण किये हुई हसरूप श्वेत वस्त्र पहिने हुई, कमल तन्तुरूप श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुई, भौंरों की गोलाकार पंक्तियो के रूप मे अक्षमाला पहिने हुई ने, सूर्य समागमार्थ व्रत करना ही आरम्भ कर दिया था। आकाश (तल) ने तारों के पुञ्ज को इस प्रकार धारण कर लिया कि मानो वह पश्चिमी महासागर में सूर्य के गिर (अर्थात्

मम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत् । अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्त सन्ध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकित वियदराजत । क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वंवि प्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः क्षाल्यमानइवागलदखिलः सन्ध्यारागः ।

क्षयमुपागताया सन्ध्याया तद्विनाशदुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गमम भिनवमवहत् । अवहाय मुनिहृदयानि सर्वमन्यदन्धकारता तिमिरमनयत् । क्रमेण च रविरस्त गत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः सतारान्तः

यन्ती । अपरामवस्था वर्णयन्नाह—अपरेति । अपरसागराम्भसि पश्चिमसमुद्रपानीये पतिते दिवसकरे सूर्ये वेगेन रभसोत्थित प्रादुर्भूतमम्भ सीकरनिकर पानीयपृषत्समूह तारागणमिव नक्षत्रवृन्दमिवाम्बरमाकाशमधारयद्दधार । अतिश्वेतरूपत्वसाम्यात्तारा जलबिन्द्वोरुपमानोपमेय भाव । अचिराच्चेति । अचिरात् स्वल्पकालेन सिद्धा विद्यासिद्धास्तेषा कन्यका पुत्र्यस्ताभि विक्षिप्तानि विकीर्णानि यानि सध्यार्चनकुसुमानि सायकालीनपूजार्थमानीतानि पुष्पाणि तै शबलमिव कर्बुरमिव तारकितम् । 'तारकादिभ्य इतच्' । संजाततारकोदय वियदकाशमराजत शोभत । अतीतसध्यावस्था प्रकटयन्नाह—क्षणेनेति । क्षणेन सपद्येव । च समुच्चये । उन्मुखेनोर्ध्वमुखेन मुनिजनेन तापसजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैरूर्ध्व विक्षिप्तै प्रणामाञ्जलिसलिलैर्नमस्कृतिसमयाञ्जलिपानीयै क्षाल्यमान इव प्रक्षाल्यमानोऽखिल समग्रोऽपि सध्यारागोऽगलत्तस्थानात्प्रच्युत ।

क्षयमिति । सध्याया क्षयमुपगताया विनाश प्राप्तायाम् । तदिति । तस्याः स्वसालिच्यास्सखीरूपाया. सध्याया विनाशो ध्वसस्तेन दु खिता कष्टं प्राप्ता विभावरी रजन्यभिनवं प्रत्यग्र तिमिरोद्गम ध्वान्तोदय कृष्णाजिनमिवासितचर्मेवदवहत् । नीलसाम्यात्तिमिरोद्गमस्य कृष्णाजिनसाधर्म्यम् । तिमिरोद्गमस्य कृत्य व्याख्यापयन्नाह—अवहेति । तिमिर ध्वान्तं मुनिहृदयानि तपस्विचेतासि स्वप्रकाशात्मकप्रकाशवन्तीत्यतस्तिमिरस्यावकाशाभावादन्यत्सर्वं प्रौढप्रकाशहीन वस्तुजातमन्धकारतामचाक्षुषतामनयत्प्रापयत् । तदुत्तरकाल चन्द्रेऽपि मित्रवियोगा-

---

उतर) जाने के कारण उत्पन्न हुए बल से उछल कर बिखरे बल के फुहारों का समूह हो। और शीघ्र ही नक्षत्रों से युक्त आकाश ऐसा शोभित प्रतीत हुआ कि मानो वह सिद्ध कन्याओं द्वारा (समर्पित) सन्ध्या के पूजार्थ फूलों से रंग बिरगा हो गया हो। और फिर क्षणभर मे ही सन्ध्या का वह सारा रग सर्वथा ऐसे विलुप्त हो गया कि वह ऊपर को मुह किये हुए मुनियों द्वारा ऊपर को फैंके हुए प्रणाम (पूजा) के समय के पानी से धो दिया गया हो ।

जब सन्ध्या नष्ट (अदृष्ट) हो गयी तो उसके नष्ट होने से दुखी रात्रि ने अन्धकार (के एक नये पर्दे) को ऐसे धारण कर लिया कि मानो वह कृष्ण मृग का चर्म ही हो । अन्धेरे ने मुनियों के हृदयों के अतिरिक्त शेष सभी को काला कर दिया । और क्रमश. यह वृत्तान्त सुनकर कि सूर्य अस्त हो चुका है, अमृतरूप किरणों वाले, बहुत लाल लाल दिखायी देते (तथा सूर्य की मृत्यु के कारण वैरागी हुआ भी), आकाश को धोये हुए (स्वच्छ), रेशमी वल्कल सा श्वेत बनाये हुए (तथा रेशमी-सरीखे स्वच्छ वल्कल वस्त्र को धारण किये हुए), चन्द्रमा ने

पुरपर्यन्तस्थिततनुस्तिमिरतमालवृक्षलेखं सप्तर्षिमण्डलाध्युषितमरुंधतीसंचरणपूतमुपहि-ताषाढमालक्ष्यमाणमूलमेकान्तस्थितचारुतारकामृगममरलोकाश्रममिव गगनतलममृत-

---

वस्थां वर्णयन्नाह—क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्या रवि सूर्योऽस्त गतोऽदृश्यता प्राप्त इत्युदन्त मिति वृत्तान्तमुपलभ्य प्राप्तोऽमृतदीधितिश्चन्द्र । अमरेति। अमरा वसिष्ठादयो मुनयस्तेषां लोक समुदायस्तस्याश्रमो मुनिस्थान तदिव गगनतलमम्बरतलमध्यतिष्ठदधितस्थौ। कीदृक्सूर्य जातेति। जात समुत्पन्न वैराग्य विरक्तता यस्मिन्स तथा तम्। पक्षे विशिष्टो रागस्तस्य भावस्तत्त्वम्। धौतेति। धौत क्षालित दुकूलवल्कलवत्सममेव धवल शुभ्रमम्बर यस्मिन्। पक्षे दुकूलवल्कलवत् धवल शुभ्रमम्बरमाकाशं यस्मिन्। सतारेति। तार शक्तिविशेष प्रणवो ब्रह्म च। तदुक्तमन्यत्र 'इदं तारत्रय प्रोक्तमगम्यागमनादृते'। एतद्वृत्तौ 'तारत्रय प्रणवशत त्रयम्'। इत्याह विज्ञानेश्वर । तथा सह्वर्तमान यदन्त पुरमिति पुरस्य शरीरस्यान्तर्मध्य कुण्डलिनी नाडीविशेष । 'क्वचिद्माद्यन्तस्य परत्वम्' इति पुरस्य परनिपात । तस्या पर्यन्त सहस्रार कमल तत्र योगसामर्थ्यात्स्थित लैङ्गिक तनुर्यस्य स तथा। पक्षे तारा अश्विन्यादयस्ताभि सह वर्तमान यदन्त पुरमवरोधस्तस्य पर्यन्त सन्निधिस्तत्र स्थिता तनु शरीर यस्य स तथा। अथाश्रमसाम्येन गगनतल विशेषयन्नाह—तिमिरेति । श्यामत्वसाम्यात्तिमिरवच्छयामा ये तमालवृक्षास्तेषा लेखा पङ्क्तिर्यस्मिन्। पक्षे तिमिराण्येव तमालवृक्षा इति विग्रह । शेष पूर्ववत्। सप्तर्षीति। सप्तर्षिसदृशा ये ऋषयो नारदाद्यास्तेषा मण्डल समूह । 'मण्डल श्वसमूहयो.' इति धरणि । तेनाध्युषितमाश्रितम्। पक्षे सप्तर्षय सप्ततारका । शेष प्राग्वत्। अरुंधतीति। अरुधती वसिष्ठपत्नी तस्या सचरण परिभ्रमण तेन पूत पवित्रम्। पक्षेऽरुधती ताराविशेष । शेष प्राग्वत्। उपहितेति । उपहित सनिहित आषाढ पालाशदण्डो यस्मिन्। 'पालाशो दण्ड आषाढ' इत्यभिधानचिन्तामणि । पक्ष आषाढा पूर्वाषाढानक्षत्रम्। आलक्ष्येति । आसमन्ताल्लक्ष्यमाणानि विलोक्यमानानि मूलानि वसुधान्तर्गतवृक्षप्रदेशा यस्मिन्। पक्षे मूल मूलनक्षत्रम्। शेष प्राग्वत्। एकान्तेति। एकान्ते विजने स्थिताश्चारवो

अपनी ताराओं सहित (अथवा पत्नियों समेत, जिनके मध्य तारा थी) आकाश पर ऐसे आसन जमाया कि मानो वह आकाशतल, जिसके दूरस्थ किनारों पर तमाम वृक्षो की (पतली) रेखा सी अन्धेरे की रेखा दिखायी दे रही थी, जो सप्तर्षि मण्डल द्वारा अधिष्ठित था, जो अरुन्धती नक्षत्र के चलने फिरने के कारण पवित्र हो गया था, जिसमें आषाढ नक्षत्र मडल उपस्थित था, जिसमे मूल नक्षत्र दिखायी दे रहा था और जिसके एक प्रदेश मे मृग नक्षत्र मण्डल अपने चमकते तारों के साथ उपस्थित था, मानो कोई ऐसा देवलोक का आश्रम हो कि जिसकी सीमाओं पर अन्धकार की रेखा सरीखी तमाल वृक्षों की पक्ति हो, जिसमें सात महर्षियों का मण्डल रहता हो, जो (वसिष्ठ की पत्नी) अरुन्धती के सचरण (अर्थात्) उसके वहाँ रहने से पवित्र हो गया हो, जिसमें पलाश वृक्ष के डडे रखे हों, जिसमें (वृक्षों की मध्य) जड़ें दिखायी दे सकती हों, और जिसके एक प्रदेश में सुन्दर कनीनिकाओं वाले हरिण

दीधितिरध्यतिष्ठत्। चन्द्राभरणभृतस्तारकाकपालशकलालंकृतादम्बरतलात्त्र्यम्बकोत्त-माङ्गादिव गङ्गा सागरानापूरयन्ती हंसधवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना। हिमकरसरसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो निश्चलमूर्तिरमृतपङ्कलग्न इवा दृश्यत हरिणः। तिमिरजलधरसमयापगमानन्तरमभिनवसितसिन्दुवारकुसुमपाण्डुरै-र्णवागतैरवगाह्यन्त हंसैरिव कुमुदसरांसि चन्द्रपादैः। विगलितसकलोदयराग रजनि-करबिम्बमम्बरापगावगाहधौतसिन्दूरमैरावतकुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत। शनै-

---

मनोहराकृतयस्तारकामृगा श्वेतमृगा यस्मिन्। पक्षे तारकारूप मृगो नक्षत्रम्। तस्यामेव विभावर्या चन्द्रे जातवैराग्योपमानमम्बरमण्डले चाश्रमरूपके मुक्त्वा ज्योत्स्नायां गङ्गारूपको पयोगिगगनतले त्र्यम्बकोत्तमाङ्गोपमानमाह। **चन्द्रेति**। चन्द्र एवाभरण बिभर्तीति चन्द्रा भरणभृत्तस्मात्। **तारकेति**। तारका एव कपालशकलानि कर्परखण्डानि तैरलंकृत भूषित यस्मात्। अम्बरतलादित्यवधौ पञ्चमी। त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिवेश्वरमौलेरिव गङ्गा जाह्नवी। **सागरानिति**। अगस्तिगण्डूषेण शुष्कान् सागरान् समुद्रानापूरयन्ती परिपूर्णीकुर्वती। चन्द्रोदयेन सागराणां पूरण प्रसिद्धम्। हंसवद्धवला शुभ्रा ज्योत्स्ना चन्द्रिका धरण्या पृथिव्याम पतत्पपातेत्यर्थः। अथ च चन्द्रमृगोऽप्येतादृशोऽभूदित्याह—**हिमकरेति**। हिमकरश्चन्द्र स एव सरस्तस्मिन्। तदेव विशिनष्टि—**विकचेति**। विकचानि विकस्वराणि यानि पुण्डरीकाणि तद्वत्सिते शुभ्रे। अन्यदपि सरो विकचपुण्डरीकैः सित भवति अतस्तदुपमानम्। **चन्द्रिकेति**। चन्द्रिका ज्योत्स्ना सैव जलं पानीय तस्य पानमास्वादन तस्य लोभो गर्धस्तस्मादवतीर्णो मध्य-प्रविष्ट। **निश्चलेति**। निश्चला निस्पन्दा मूर्तिर्यस्य स तथा। **अमृतेति**। कृष्णत्वसाम्यात्कलङ्क एवामृतपङ्कस्तत्र लग्न इवान्तर्निगीर्ण इव हरिणो मृगोऽदृश्यतालक्ष्यत। चन्द्रोदयजनित शोभातिशय वर्णयन्नाह—**तिमिरेति**। कृष्णत्वसाम्यात्तिमिरमेव जलधरसमयस्तस्यापगमानन्तर निवृत्त्यनन्तरम्। **अभीति**। अभिनवानि प्रत्यग्राणि सितानि शुभ्राणि यानि सिन्दुवारस्य

विद्यमान हों। चन्द्रमारूप अलकार को धारण किये हुए तथा तारों के सदृश (चमकते) कपाल खण्डों से सुशोभित शिवजी के सिर से गिरती, हंसों-से श्वेत हुई, समुद्रों को भरती हुई गगा सरीखी, हंसों जैसी श्वेत और समुद्रों में ज्वार भाटे उत्पन्न करती चान्दनी, चन्द्रमा को एक आभूषण की भाँति धारण किये हुए और तारों रूप ठीकरों से सुशोभित आकाश से पृथ्वी पर आ गिरी। उस समय हरिण (चन्द्रमा पर मृगाकृति चिह्न), स्थिर आकृति वाला दिखायी दिया मानो वह जब खिले हुए कमलों से श्वेत हुए चन्द्रमारूप सरोवर में चादनी रूप जल को पीने के लोभ से उतरा तो अमृत के कीचड़ में चिपक गया हो। अन्धकार रूपी वर्षाऋतु के बीत जाने पर समुद्र पर आये हुए हंसों सरीखी, सिन्धुवार के ताजे और श्वेत फूलों सी श्वेत चन्द्रमा की किरणें कुमुदों से भरे तालाबों मे प्रविष्ट हो गई। उस समय, इसके उदय समय की लालिमा के अदृश्य हो जाने पर चन्द्रबिम्ब ऐसा दिखायी दिया कि मानो वह ऐरावत का वह कपोल स्थल हो जिस पर से सिन्दूर आकाश गगा में स्नान करने से धुल गया

शनैश्च दूरोदिते भगवति हिमततिस्रुति सुधाधूलिपटलेनेव धवलीकृते चन्द्रातपेन जगति अवश्यायजलबिन्दुमन्दगतिषु विघटमानकुमुदवनकषायपरिमलेषु समुपोढनिद्राभरालसतारकैरन्योन्यग्रथितपक्ष्मपुटैरारब्धरोमन्थमन्थरमुखैः सुखासीनैराश्रममृगैरभिनन्दितागमनेषु प्रवहत्सु निशामुखसमीरणेष्वर्धयाममात्रावखण्डितायां विभावर्यां

निर्गुण्ड्या कुसुमानि पुष्पाणि तद्वत्पाण्डुरै शुभ्रैरर्णव समुद्रस्तस्मादागतैः प्राप्तैश्चन्द्रपादै शशिकिरणैर्हंसैरिव मरालैरिव कुमुदसरांसि कैरवोपलक्षितलटाकान्यवगाह्यन्तालोड्यन्त। अत श्वेतत्वसाधर्म्याद्धंसचन्द्रपादयोरुपमानोपमेयभाव। पुनरवस्थान्तर वर्णयन्नाह—विगलितेति। विगलितो विलय प्राप्तो य॰ सकल समग्र उदयसम्बन्ध्युद्गमनक्षणजन्मा रागो रक्तिमा यस्मिन्नेवंभूतं रजनिकरबिम्ब चन्द्रमण्डल तत्क्षणमिव तत्काल इवालक्ष्यत जनैरैक्ष्यत। किमिव। अम्बरेति। अम्बरस्य व्योम्नो यापगा नदी तस्या अवगाह आलोडनं तेन धौत क्षालित सिन्दूर नागज यस्यैवंविध यदैरावतस्य हस्तिमल्लस्य कुम्भस्थलं तदिव। अतिवर्तुलत्वसाम्याच्चन्द्रबिम्बस्य कुम्भस्थलोपमानम्। अथ मुनिवृत्तं निरूपयन्नाह—शनैरिति। हारीतो मुनि कृताहारं विहितभोजनं मा वैशम्पायनमादाय गृहीत्वा पितर जाबालिमुनिमित्यबोचदित्यन्वय। कस्मिन्सति। शनै शनै स्वल्पप्रयत्नेन दूरोदिते दूर गते भगवति चन्द्रे। हिमेति। हिमं प्रालेयं तस्य ततिर्वीथि तस्या स्रुति स्राविणि। चन्द्रस्य विशेषणम्। सुधेति। श्वेतत्वसाम्यात्सुधैव धूलिपटल पांसुसमूहस्तेनेव चन्द्रातपेन शशिन आलोकेन जगति लोके धवलीकृते सति शुभ्रीकृते सति। पुन केषु सत्सु। निशामुखसमीरणेषु प्रदोषकालीनवायुषु प्रवहत्सु वहमानेषु सत्सु। अथ वायूनां विशेषणानि—अवश्येति। अवश्यायो हिमं तस्य जलबिन्दव पानीयविप्रुषस्तैर्मन्दा मन्थरा गतिर्गमन येषां ते। विघटेति। विघटमानानि विकासं प्राप्यमाणानि यानि कुमुदवनानि तेषा कषायस्तुवरो गन्धो येषु ते। अभिनन्दितमिति। अभिनन्दित श्लाघितमागमनं येषां ते तथा। कै। आश्रममृगैर्मुनिस्थानस्थहरिणै। अथ च तेषां विशेषणानि—समुपोढेति। समुपोढा सम्यक् प्रकारेणोपोढा या निद्रा प्रमीला तस्या भर॰ समारस्तेनालसा मन्थरा तारका कनीनिका येषा ते तथा तै। अन्योन्येति। अन्योन्य परस्पर ग्रथितानि मिलितानि पक्ष्म नेत्ररोम तेषां पुटानि येषा ते तथा तै.। आरब्ध इति। आरब्धो यो रोमन्थश्चर्वण तेन मन्थराण्यलसानि मुखानि येषा ते तथा तै। सुखेति।

हो। और जब भगवान् चन्द्रमा (अक्षरार्थ हिम की धारा बहाने वाला) क्रमशः (आकाश में) पर्याप्त चढ़ गये, जब संसार मानो चूने के चूरे से पुतकर श्वेत हो गया, जब ओस जल के बिन्दुओं के (उसपर) गिरने के कारण धीमी हुई, खिलती हुई कुमुदिनियों के मधुगन्ध से भरी हुई, प्रायः रात्रि के आरम्भिक भाग में चलने वाली, और गहरी निद्रा के प्रभाव से भारी पुतलियों वाले, एक दूसरी में गुँथी पलकों वाले, (अभी-अभी) आरम्भ की हुई जुगाली से चलते मुखों वाले आराम से बैठे आश्रम मृगों द्वारा अभिनन्दित आगमन मन्द पवन चलने लगी, और जब रात्रि आधी याम मात्र बीत गयी, तब, भोजन किये हुए मुझको लाकर

हारीतः कृताहारं मामादाय सर्वैस्तैर्महामुनिभिरुपसृत्य चन्द्रातपोद्भासिनि तपोवनैकदेशे वेत्रासनोपविष्टमनतिदूरवर्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण दर्भपवित्रधवित्रपाणिना मन्दमुपवीज्यमान पितरमवोचत्—'हे तात, सकलेयमाश्चर्यश्रवणकुतूहलाकलितहृदया समुपस्थिता तापसपरिषदाबद्धमण्डला प्रतीक्षते। व्यपनीतश्रमश्च कृतोऽयं पतत्रिपोतः। तदावेद्यता यदनेन कृतम्। अपरस्मिञ्जन्मनि कोऽयमभूद्भविष्यति च' इति। एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थित मामवलोक्य ताश्च सर्वानेकाग्राञ्छ्रवणपरान्मुनीन्बुद्ध्वा शनैःशनैरब्रवीत्—'श्रूयता यदि कौतूहलम्—

सुखेन यदृच्छयासीनैरुपविष्टै। अर्धेति। त्रियामाशयेनार्धयाममात्रमर्धप्रहरमात्रमवखण्डितं खण्डना प्राप्त यस्या सा तथा। तस्यामर्धप्रहरन्यूनायामित्यर्थ। एवविधायां विभावर्या रजन्या सर्वैस्तैर्महामुनिभिर्महातपस्विभिरुपसृत्यागत्य। कस्मिन्। चन्द्रेति। चन्द्रातपेन निशापतिप्रकाशेनोद्भासत उत्प्राबल्येन शोभत इत्येवशील. स तथा तस्मिन्। तप इति। तपोवनस्य मुनिस्थानस्यैकदेशोऽन्यतरप्रदेशस्तस्मिन्नधिकरणीभूते। अथ जाबालिमुनि विशेषयन्नाह—वेत्रेति। वेत्रासनमासन्दी तत्रोपविष्टमासीनम्। अनतीति। अनतिदूरवर्तिना नातिसमीपवर्तिना। जालेति। जालपाद इति नाम यस्य स तथा तेन शिष्येण विनयेन। दर्भेति। दर्भ कुशस्तद्रूपपवित्र यद्धवित्र मृगचर्मनिर्मित तालवृन्तं पाणौ हस्ते यस्य स तथा तेन। 'धवित्रं मृगचर्मण' इति कोश। मन्द यथा स्यात्तथोपवीज्यमान दूरीक्रियमाणमक्षिकम्। अन्वयस्तु पूर्वमुक्त। तदनुसारेण किमुवाचेत्याह—हे तात हे पित, सकला समग्रेय प्रत्यक्षगता तापसपरिषत्तपस्विसदस्समुपस्थितागता। आश्चर्येति। आश्चर्यस्याद्भुतवस्तुनो यच्छ्रवणमाकर्णन तत्र यत्कुतूहलं चित्तवृत्तिविशेषस्तेनाकलित व्याप्त हृदय चेतो यस्या सा। परिषद्विशेषणम्। आबद्धेति। आबद्धमारचित मण्डलं यया सा। प्रतीक्षत इति। भवन्तमिति शेष। भवद्विलम्बेन विलम्ब इत्यर्थ। कदाचिच्छुकक्लतोऽपि स्यादित्यत आह—व्यपनीतेति। अय पतत्रिपोत शुकशिशुर्व्यपनीतो दूरीकृत श्रमो ग्लानिर्यस्यैवंभूत कृतो विहित। चेति पूर्वोक्तसमुच्चये। तदिति हेत्वर्थे। आवेद्यतामिति। यदनेन शुकेन कृत विहित तदावेद्यता निवेद्यताम्। अस्माक-

---

हारीत ने, उन सभी महामुनियों समेत समीप पहुँच कर, चादनी से चमकते तपोवन के एक स्थान पर, बेंत के आसन पर बैठे पिता से कहा–उस समय समीप ही बैठा जालपाद नाम वाला शिष्य हाथ मे दर्भकी पवित्रा लिये उसको धीरे धीरे पखा कर रहा था। हारीत ने कहा—"पिता जी! उस आश्चर्यपूर्ण कथा को सुनने की उत्सुक यह सारी तापस सभा, आप के चारो ओर घेरा बनाकर बैठी प्रतीक्षा कर रही है। इस लिये कृपया बतलाइये कि इसने पूर्वजन्म में क्या कुछ किया था और आगामी जीवन में यह क्या बनेगा!" जब उस मुनि को इस प्रकार कहा गया तो उसने, उसके सन्मुख बैठे मुझको देखा और यह जानकर कि वे सब एकत्रित मुनिलोग एकाग्र होकर सुनना चाहते हैं, धीरे धीरे कहा—"(अच्छा तो) यदि उत्सुकता है तो, सुनिये—

कथारम्भः

अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता, प्रसवभूमिरिव कृतयुगस्यात्मनिवासोचिता भगवता महाकालाभिधानेन भुवनत्रयसर्गस्थितिसंहारकारिणा प्रमथनाथेनेवापरेव पृथिवी समुत्पादिता द्वितीयपृथिवीशङ्कया जलनिधिनेव रसातलगभीरेण परिखावलयेन

मिति। शेष । अपरस्मिन्निति। एतद्भवापेक्षयापरजन्मनि भूते भविष्यति च कोऽयमभूत्को-ऽयमग्रे भविष्यति चेति। एवमिति। एव पूर्वोक्तप्रकारेणोक्त प्रश्नविषयीकृत । तु पुनरर्थे। स महामुनि जाबालिमुनिरग्रत पुरत स्थितमासीन मामवलोक्य निरीक्ष्य तान्सर्वान्समग्रानेका-ग्रानेकतानान् । श्रवणेति । श्रवणमाकर्णन तस्मिन्परान्मुनींस्तपस्विनो बुद्ध्वा ज्ञात्वा च अतिवृद्धत्वात्क्षीणत्वाच्च शनै शनैर्मन्दस्वरेणाब्रवीदुवाच। किमुवाचेत्याह—श्रूयतामिति। यदि चेत्कौतूहलमाश्चर्यं तर्हि श्रूयतामाकर्ण्यताम्। अनेनात्यादर सूचित ।

अस्तीति। उज्जयिनी नाम नाम्नी नगर्यस्तीति दूरेणान्वय । अग्रे प्रथमान्तानि सर्वाण्यपि नगरीविशेषणानि। अन्येषा त्वन्यविभक्तिकानीति बोध्यम्। सकलेति। सकल समग्र यस्त्रिभुवन त्रिविष्टप तस्य ललामभूता तिलकभूता । प्रसवेति। कृतयुगस्य सत्ययुगस्य प्रसवभूमिरिव जन्मभूरिव । आत्मेति । भगवतेश्वरेणात्मन स्वस्य यो निवासोऽवस्थान तत्रोचिता योग्यापरेवेतद्भूभिन्नेव पृथिवी वसुधा समुत्पादिता कृता। अथेश्वर विशेषयन्नाह—महेति। महाकाल इत्यभिधान नाम यस्य स तथा तेन। भुवनेति। भुवनत्रयस्य विष्टपत्रयस्य य सर्ग सर्जनम्, स्थितिरवस्थानम्, संहारो विनाश एतेषा कारिणा करणशीलेन। प्रमथेति। प्रमथा गणास्तेषा नाथेन स्वामिना। द्वितीयेति। द्वितीयैतद्व्यतिरिक्ता या पृथिवी तस्या शङ्का आरेका तया जलनिधिनेव समुद्रेणेव परिखावलयेन खातिकामण्डलेन परिवृता परिवेष्टिता।

कथा का आरम्भ

अवन्ती प्रदेश मे उज्जयिनी नाम की नगरी है।[१] यह नगरी तीनों भुवनों तथा उनके खण्डों[२] की भी तिलक है (शोभा बढ़ाती है), [इतनी पवित्र है कि] मानो कृत-युग (सत्ययुग) की जन्मभूमि ही हो, तीन भुवनों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने के स्वभाव वाले भगवान् महाकाल नामवाले[३] भूतनाथ ने मानो इसको अपने रहने के योग्य दूसरी पृथिवी ही रचा हो, [इसको चारों ओर से] पृथिवी के निचले प्रदेश (रसातल) तक की गहरी खाई ने घेर रखा है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसको दूसरी पृथिवी समझकर, मानो,

(१) 'अस्ति' पद का सम्बन्ध परिच्छेद के अन्त मे स्थित 'उज्जयिनी नाम नगरी' पद के साथ है। इस परिच्छेद में आये सभी प्रथमान्त पद 'नगरी' के विशेषण हैं।

(२) 'स-कल' कलाओ (खण्डों) समेत। 'All (सकल) the three (तीनों के तीनो)—'काले'।

(३) 'महाकाल नाम से (बड़ा) प्रसिद्ध'—'काले'।

परिवृता, पशुपतिनिवासप्रीत्या गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिवृता प्रकटशङ्खशुक्तिमुक्ताप्रवालमरकतमणिराशिभिश्चामीकरचूर्णसिकतानिकरनिचितैरायामिभिरगस्त्यपरिपीतसलिलैः सागरैरिव महाविपणिपथैरुपशोभिता, सुरासुरसिद्धगन्धर्वविद्याधरोरगाध्यासिताभिश्चित्रशालाभिर-

परिखावलय विशिनष्टि—रसेति। रसातल पृथ्व्या अधोभाग यावद्गभीरेणालब्धमध्येन। पुनर्विशेषतो नगरीं विशिनष्टि—प्राकारेति। प्राकारो वप्रस्तस्य मण्डलेन वलयेन परिवृता परिवेष्टिता। पशुपतिरिति। पशुपतिरीश्वरस्तस्य निवासोऽवस्थितिस्तेन या प्रीति स्नेहस्तया कैलासगिरिणेव रजताद्रिणेवेत्युपमानम्। वप्रकैलासौ युगपद्विशेषयन्नाह—गगनेति। गगनस्याकाशस्य य परिसर पर्यन्तभू। 'पर्यन्तभू परिसर' इत्यभिधानचिन्तामणि। तदुल्लेखिनी तत्सङ्घर्षकारिणी शिखरमाला सानुश्रेणिर्यस्य स तथा। पक्षे गगनोल्लेखिनी शिखरमालाग्रमाला अर्थात्कपिशीर्षाणि यस्मिन्। 'शिखर पुलकाग्रयो' इत्यनेकार्थ। सुधेति। सुधा गृहधवलीकरणद्रव्य तेन सितेन शुभ्रेण। पक्षे सुधावच्छुभ्रेणेत्यर्थ। प्रकटेति। प्रकटा स्पष्टा शङ्खा कम्बु, शुक्तिरब्धिमण्डूकी, मुक्ता मौक्तिकम्, प्रवाल हेमकन्दल, मरकतमणिरश्मगर्भ, एतेषा राशय समूहा येषु ते। चामीकरेति। चामीकरचूर्ण पर्वतादौ 'चूकी' इति प्रसिद्ध तदेव सितानिकरो वालुकासमूहस्तेन निचितैर्व्याप्तै। आयेति। आयामो विस्तारो विद्यते येषु ते। अगस्त्येति। अगस्त्यो घटोद्भवस्तेन परिपीत सलिल जल येषा ते सागरैरिव समुद्रैरिव। महेति। महत्यतिदीर्घा या विपणि पण्यवीथिका तस्या ये पन्थानो मार्गास्तैरुपशोभिता विराजमाना। 'ऋक्–' इति सूत्रेण पथोऽकारान्तत्वम्। सुरेति। सुरा देवा, असुरा दानवा, सिद्धा विद्यासिद्धा, गन्धर्वा देवगायना, विद्याधरा व्योमचारिण, उरगा नागा, एतैरध्या-

समुद्र ने ही घेर रखा हो, [फिर] यह नगरी आकाश के सीमान्त से टकरानेवाले (बहुत ऊँचे-ऊँचे) कगूरों वाले, 'सफेदी' से (पुते होने के कारण) श्वेत परकोटे से घिरी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शिवजी यहाँ रहते हैं (इस कारण इससे) प्रीति हो जाने से आकाश के सीमान्त से टकराने वाली (बहुत ऊची) चोटियोंवाले, अमृत के समान चमकते, कैलास पर्वत ने ही इसको घेर रखा हो। यह नगरी (बिक्री के लिये) प्रदर्शित शखों, सीपियों, मोतियों, मूगों तथा मरकतमणियों वाले तथा सोने के बुरादे के रूप में विद्यमान[1] बालूरेत से अँटे हुए लम्बे चौड़े, बड़े बाजार (को पहुँचाने वाले) मार्गों[2] से सुशोभित है, ऐसा प्रतीत होता है कि ये लम्बे चौड़े मार्ग—अगस्त्य द्वारा जिनका जल पी लिया गया है ऐसे सागर ही हों, जल न रहने के कारण उनमें शङ्ख, सीपिया, मोती, मूगे, तथा मरकत मणिया और बालुका के ढेर दिखायी देने लगे हों। यह नगरी सुरों, असुरों, सिद्धों, गन्धर्वों, विद्याधरों, तथा नागों के चित्रों से भरी चित्रशालाओं से सुशोभित है, यहा ये चित्रशालाएँ, (नगर मे) नित्य मनाये

(१) 'सोने के बुरादे और बालूरेत'—काले।

(२) 'बड़े-बड़े बाजारमार्गों'—'काले'। 'आयामिभि' विशेषण के रहते यह अर्थ पुनरुक्त प्रतीत होता है।

विरतोत्सवप्रमदावलोकनकुतूहलादम्बरतलादवतीर्णाभिर्दिव्यविमानपङ्क्तिभिरिवालंकृता, मथनोद्धतदुग्धधवलितमन्दरद्युतिभिः कनकमयामलकलशशिखरैरनिलदोलायितसितध्वजैरुपरिपतदभ्रगङ्गैरिव तुषारगिरिशिखरैरमरमन्दिरैर्विराजितशृङ्गाटका, सुधावेदिकोपशोभितोदपानैरनवरतचलितजलघटीयन्त्रसिच्यमानहरितोपवनान्धकारैः केतकीधूलिधूसरैरुपशल्यकैरुपशोभिता, मदमुखरमधुकरकुलान्धकारितनिष्कुटा, स्फुरदु-

---

सिताभिराश्रिताभिश्चिन्नोपलक्षितशालाभिरलङ्कृता भूषिता। काभिरिव। दिव्यविमानपङ्क्तिभिरिव देवयानश्रेणिभिरिव। तस्या कथमत्रागम इत्यारेकायामाह—अविरतेति। अविरत निरन्तर य उत्सवो महस्तस्मिन्या प्रमदा योषितस्तासा यदवलोकन निरीक्षण तदेव यत्कुतूहलमाश्चर्यं तस्मादिति हेत्वर्थे पञ्चमी। अम्बरतलादाकाशादवतीर्णाभिरुत्तीर्णाभि। आगताभिरिति यावत्। अमरेति। अमरमन्दिराणि देवप्रासादास्तैर्विराजितानि शोभमानानि शृङ्गाटकानि त्रिमार्गाश्लेषरूपाणि यस्या सा तथा। 'त्रिमार्गाश्लेष शृङ्गाट' इति कोश। कैरिव। तुषारगिरिर्हिमाद्रिस्तस्य शिखरै सानुभिरिव। देवगृहगिरिशिखरयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—मथनेति। मथन विलोडन तत्रोद्धत कृतप्रयत्नो दुग्धेन पयसा धवलितो धवलीकृतो यो मन्दरो मेरुस्तद्वद्द्युति कान्तिर्येषा तै। कनकेति। कनकमया स्वर्णमया अमला निर्मला ये कलशा लघुकुम्भास्त एव शिखराण्यग्राणि येषा ते तथा तै, पक्षे कलशवच्छिखराणि येषामिति विग्रह। अनिलेति। अनिलैर्वायुभिर्दोलायिता प्रेङ्खावदाचरिता सितध्वजा श्वेत वैजयन्त्यो येषु तै। कैरिव। उपरिपतदभ्रगङ्गैरिवोपरिष्टात्पतन्ती स्रवन्त्यभ्रगङ्गा स्वर्धुनी येषु तैरिव। सुधेति। सुधा प्रागेव व्याख्याता तयोपलक्षिता या वेदिका पीठबन्धस्तयोपशोभिता शोभा प्रापिता उदपाना कूपा येषु तै। 'कूप स्यादुदपानोऽन्धु' इति कोश। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तर चलित भ्रामित यज्जलघटीयन्त्रमरघट्टस्तेन। कारणेन कार्योपचारात्। सिच्यमानानि प्रोक्ष्यमाणानि यानि हरितानि नीलान्युपवनान्येवान्धकाराणि येषु तै। केतकीति।

जाने वाले आनन्दोत्सवो में व्यस्त सुन्दरियो को देखने की उत्कट इच्छा लेकर स्वर्ग से उतरी सुरासुरादि से अधिष्ठित विमानों की पक्तियाँ ही प्रतीत होती हैं। इस नगरी के चौराहे देव मन्दिरों से सुशोभित हैं—और देवमन्दिर हिमालय के शिखर प्रतीत होते हैं, (कारण यह है कि) ये (समुद्र) मन्थन के समय उछल उछल कर पडे दुग्ध से श्वेत हुए मेरु के समान चमकीले हैं, सुवर्ण निर्मित निर्मल घट इनके शिखरों पर चढ़े हुए हैं और हिमालय की चोटिया सुवर्णनिर्मित घटो के समान प्रतीत होती हैं कि मानो (हिमालय की चोटियो पर) ऊपर से आकाशगङ्गा गिर रही हो। यह नगरी ऐसे उपनगरों से सुशोभित है जिनमे चूने से पुती (अथवा बनायी गयी) वेदियों से उपशोभित (पीने योग्य जल से भरे) जलागार विद्यमान हैं, निरन्तर चलते रहटों से सिंचित, हरे-हरे उद्यानों से जहा अन्धकार बना रहता है और जो केतकी के परागकणों से धौले हो गये है। इस नगरी मे घरों के साथ लगे हुए उद्यानों (गृहोद्यानों) मे (पुष्पमधु के नशे से) वाचाल (काले) भौंरे अँधेरा किये रहते हैं। इस

पवनलताकुसुमपरिमलसुरभिसमीरणा, रणितसौभाग्यघण्टैरालोहिताशुकपताकैरावद्धरक्तचामरैर्विद्रुममयैः प्रतिगृहमुच्छ्रितैर्मकराङ्कैः सदनयष्टिकेतुभिः प्रकाशितमकरध्वजपूजा, सततप्रवृत्ताध्ययनध्वनिधौतकल्मषा, स्तिमितमुरजरवगम्भीरगर्जितेषु सलिलसीकरासारस्तबकरचितदुर्दिनेषु पर्यस्तरविकिरणरचितसुरचापचारुषु धारागृहेषु मत्तमयूरैर्मण्डलीकृतशिखण्डैस्ताण्डवव्यसनिभिराबध्यमानकेकाकोलाहला, विकचकु-

---

केतक्या मालत्या या धूलि परागस्तेन धूसरैर्मलिनैरेव भूतैरुपशल्यकैर्ग्रामसीमाभि· उपशोभिता विभूषिता। 'ग्रामसीमा तूपशल्यम्' इति कोश । मदेति। मदेन मधुपानेन मुखराणि वाचालानि यानि मधुकरकुलानि भ्रमरसमूहा तैरन्धकारिता जनितान्धकारा निष्कुटा गृहारामा यस्या सा। अनेनारामाणा शोभातिशय सूचित । स्फुरेति। स्फुरन्त्य उल्लसन्त्यो या उपवनलता उपवनव्रतत्यस्तासा कुसुमानि सुमनसस्तेषा परिमलेनामोदेन सुरभिर्घ्राणतर्पण समीरणो वायुर्यस्या सा। पुन· प्रकारान्तरेण नगरी विशिनष्टि—सदनेति। सदनस्य गृहस्य यष्टय प्रसिद्धास्तासु स्थिता केतवो वैजयन्त्यस्तै प्रकाशिता प्रकटीकृता मकरध्वजस्य कदर्पस्य पूजार्चा यस्या सा। अथ च सदनयष्टिमदनयष्ट्यो साम्य प्रदर्शयन्नाह—रणितेति। रणिता रणरणशब्द कुर्वाणा· सौभाग्यघण्टा सुभगताहेतोर्न्यस्ता घण्टा बृहत्किङ्किण्यो येषु ते । आलोहीति। आलोहित रक्तमशुक तस्य पताका वैजयन्त्यो येषु तै । आबद्धेति। आबद्धानि नद्धानि रक्तचामराणि लोहितबालव्यजनानि येषु तै । विद्रुमेति। विद्रुममये विद्रुम प्रवाल प्रचुर येषु तै । प्रतिगृह प्रतिसद्मोच्छ्रितैरूर्ध्वीकृते.। मकरो मत्स्यस्तस्याङ्कश्चिह्न येषु ते । एवप्रकारेणैव वसन्ते कामपूजा जनै क्रियत इति तदुत्प्रेक्षा। सततमिति। सतत निरन्तर प्रवृत्त प्रसृतोऽध्ययनस्य शास्त्रपाठस्य ध्वनि शब्दस्तेन धौत क्षालित कल्मषं पातक यस्या सा। पुन प्रकारान्तरेण ता विशिनष्टि—धारेति। धारागृहेषु यन्त्रगृहेषु मत्तमयूरैरुन्मदकलापिभिराबध्यमानोऽन्योन्याश्लिष्टतया क्रियमाण केका मयूरस्य वाण्यस्तासा कोलाहल कलकलो यस्याम्। यन्त्रगृहाणा जलधरसादृश्य विशेषणमुखेन दर्शयन्नाह—स्तिमितेति। स्तिमितो निश्चलो यो मुरजस्य मृदङ्गस्य रव शब्द स एव गम्भीरं घोर गर्जित स्तनित येषु। सलिलेति। सलिलस्य जलस्य सीकरा वातास्तवारिविप्रुषस्तेषामासारो वेगवान्वर्षो येष्वेवविधा स्तबका गुच्छकास्तै

नगरी मे (इसके उपवनों मे) उगतीं उपवनलताओ के पुष्पो की सुगन्ध से सुगन्धित मन्द पवन (विद्यमान) है। टनटनाती सौभाग्य घटियों वाली, लाल लाल रेशमी वस्त्र की बनी ध्वजाओं वाली, लाल चँवर-बन्धी, मूगों जड़ी, घर घर मै उपस्थापित, मत्स्याकृतियों से अकित, मदनवृक्ष के बनाये गये ध्वज दण्डो वाली, पताकाओ से स्पष्ट होता है कि (इस नगर मे) कामदेव की पूजा होती है। यहा सदा प्रचलित, (पवित्र) अध्ययन के शब्द से (लोगों के) सभी पाप धुल गये हैं। (इस नगर मैं बने हुए) फुवारे लगे स्नान-घरो (धारागृहेषु) मे (धारागृहों को मेघ समझ कर) मदमस्तमयूर (अपने) पिच्छो (पखों) को वृत्ताकार करके ताण्डव नृत्य मे व्यस्त हुए चीखों से शोर मचाये हुए हैं, धारागृह मेघसदृश इस कारण हैं कि

वलयकान्तैरुत्फुल्लकुमुदधवलोदरैरनिमिषदर्शनरमणीयैराखण्डललोचनैरिव सहस्रसंख्यैरुद्भासिता सरोभिः, अविरलकदलीवनकलिताभिरमृतफेनपुञ्जपाण्डुराभिर्दिशि दिशि दन्तवलभिकाभिर्धवलीकृता, यौवनमदमत्तमालवीकुचकलशलुलितसलिलया भगवतो महाकालस्य शिरसि सुरसरितमालोक्योपजातेर्ष्ययेव सततसमाबद्धतरगभ्रूकुटि-

रचित प्रारब्ध दुर्दिन येषु ते तथा तेषु। आसारस्य स्तबका इति समासो वा। पर्यस्तेति। पर्यस्ता निपतिता ये रविकिरणा सूर्यरश्मयस्ते रचितं विहित यत्सुरचापमिन्द्रधनुस्तेन चारुषु रविकिरणाना द्रव्यान्तरलयोगेन विविधवर्णत्वोपपत्तेरुत्प्रेक्षा। अथ मयूरान्विशिनष्टि—मण्डलेति। मण्डलीकृता वर्तुलीकृता शिखण्डा बर्हाणि यै। नृत्यप्रारम्भे मयूरकलापो मण्डलाकृति स्यादिति सर्वप्रसिद्धि। अतएव ताण्डवव्यसनिभिर्नृत्यरसिकै। पुन कीदृशी। सरोभिस्तटाकै उद्भासिता उपशोभिता। अथ च सरोविशेषणानि—विकचेति। विकचानि विकस्वराणि कुवलयान्युत्पलानि ते कान्तैर्मनोहरै। उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि विनिद्राणि यानि कुमुदानि कमलानि तद्वद्धवलं शुभ्रमुदर मध्यभागो येषा ते कैरिव। सहस्रसख्यैराखण्डलस्येन्द्रस्य लोचनैरिव। अथोभौ विशेषयन्नाह—अनिमिषेति। अनिमिषा मत्स्यास्तेषा दर्शन विलोकनं तेन रमणीयैर्मनोहरै। पक्षे निमिष पक्ष्मपातरहित यद्दर्शनमीक्षण तेन रमणीयै मनोहरै। गृहवर्णनद्वारा ता पुनर्विशिनष्टि—दिशीति। दिशि-दिशि प्रतिदिश दन्तवलभिकाभिर्गजदन्तनिमितच्छदिभिराधारभूताभिर्धवलीकृता। अथ वलभीविशेषणानि—अविरलेति। अविरलानि निबिडानि यानि कदलीवनानि रम्भावनानि तै कलिताभि। अमृतेति। अमृतस्य

इनमे (सगीताभ्यास के समय) बजाये गये तबलों का मन्दस्वर गम्भीर मेघ-गर्जन सा प्रतीत होता है, जलके फुहारो की वर्षा के गुच्छों से वहा वर्षाऋतु आयी हुई प्रतीत होती है और (जलफुहारों के) इधर-उधर चारों ओर पड़ती सूर्य किरणों से इन्द्रधनुष बने हुए हैं। इन्द्र की (एक) हजार ऑखों के समान हजारों तालों से यह नगरी सुशोभित है, इन्द्र की ऑखें खिले कमलों के समान प्यारी हैं तो ताल (उनमें उगे) पूर्णतया खिले कमलो से सुन्दर दिखाई देते है, ऑखें खिले कमलों जैसी धवल मध्य (केन्द्रीय) भाग वाली हैं तो तालों के मध्य भाग खिले कमलों के कारण श्वेत हैं, अपलक देखते रहने के कारण इन्द्र की ऑखें आकर्षक है तो ताल, उनमे मत्स्यों के दर्शन से रमणीक हैं। यह नगरी इसमे जहा तहा (दिशि दिशि) बनी हुई हाथीदॉत की अटारियो से श्वेत बनी हुई हैं—(ये अटारिया) इन पर पास पास (सतत) लगी हुई पताकाओं[1] (कदली वन) से सुन्दर हैं और अमृतफेन के ढेर के समान श्वेत हैं। इस नगरी को सिप्रा नदी ने चारों ओर से घेर रखा है—(इस नदी का जल) क्षुब्ध रहता है, मानो वह तरुणाई के अभिमान से उच्छृङ्खल, मालव देशोत्पन्न स्त्रियों के कुच रूपी कलशों से ही क्षुब्ध रहता है, इस नदी में निरन्तर लहरें बनी रहती (आबद्ध) हैं मानो कि भगवान् महाकाल के सिर पर देवनदी (गगा) को देख कर (इसके मन में) ईर्ष्या उत्पन्न हो गई हो और इस कारण ये तरगें उसकी निरन्तर चढी हुई त्योरियाँ हों और वह इस निरन्तर बनी

(१) 'कदली वैजयन्त्या च रम्भाया हरिणान्तरे' इति विश्व।

लेखया खमिव क्षालयन्त्या सिप्रया परिक्षिप्ता, सकलभुवनख्यातयशसा हरजटाचन्द्रेणेव कोटिसारेण मैनाकेनेवाविदितपक्षपातेन मन्दाकिनीप्रवाहेणेव प्रकटितकनकपद्म-

---

पीयूषस्य च फेनपुञ्जो डिण्डीरपिण्डस्तद्वत्पाण्डुराभि शुभ्राभि । सिप्रावर्णनद्वारा नगरीं वर्णयन्नाह—यौवनेति । यौवनमदेन तारुण्याभिमानेन मत्ता उच्छृङ्खला या माळव्यो मालवदेशोद्भवा स्त्रियस्तासा कुचा एव कलशास्तैर्लुलितमान्दोलित सलिल यस्या सा तया । भगवत इति । भगवतो महाकालस्य महाकालाभिधानस्येश्वरस्य शिरसि मस्तके सुरसरित गङ्गामालोक्य निरीक्ष्य सतत निरन्तरं समाबद्धा सम्यक्प्रकारेणाबद्धा बन्ध प्रापिता ये तरगा कल्लोलास्त एव भृकुटिलेखा भृकुटिपङ्क्तिर्यया सा तथोपजातेर्ष्ययेवोत्पन्नासूययेव । एतेन सपत्नीदर्शनेन भ्रुकुटिविकारो दर्शित । खमिति । खमाकाश क्षालयन्त्येव निर्मल कुर्वंत्येव विधया सिप्रानद्या परिक्षिप्ता परिवेष्टिता । इभ्यजनवर्णनद्वारा नगरीं विशेषयन्नाह—विलासिजनेनाधिष्ठितेति दूरेणान्वय । तत्र विलासिनीना जनो, विलासी यो जन इत्येव समासभेदेन द्वयोर्ग्रहणम् । अथ विलासिजनविशेषणानि—कीदृशेनेव विलासिजनेन । हरजटाचन्द्रेणेवेश्वरजटास्थनिशानाथेनेव । उभयं विशिनष्टि—सकलेति । सकल समग्र यद्भुवन विश्व तत्र ख्यात प्रसिद्ध यश' कीर्तिर्येषा ते तथा । पक्षे यश कान्तिर्यस्येति विग्रह.। कोटीति। कोटि संख्याविशेषस्तावत्प्रमाण सार द्रव्य येषा ते तथा । 'सारो द्रव्य बल सारम्' इत्यनेकार्थं । पक्षे कोटिरग्रभागस्तेन सार प्रधान । पुन केनेव । मैनाकेनेव हिमाचलात्मजेनेव । उभय विशिनष्टि—अविदितेति । अविदितोऽननुभूत पक्षयो पातश्छेदो येन स तथा तेन । इन्द्रेण सर्वेषा भूभृता पक्षच्छेदो विहित , परं मैनाकस्य न कृत इति प्रसिद्धि । पक्षेऽविदितोऽज्ञात पक्षपातोऽसदङ्गीकारो येन । मन्दाकिनीति । मन्दाकिनी गङ्गा तस्या प्रवाहो रयस्तेनेव । उभय विशेषयन्नाह—प्रकटितेति । प्रकटिता प्रकाशिता । कनकस्य सुवर्णस्य । पद्मेति । पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात्पद्मरागमणीनां राशय. समूहा येन स तथा तेन । पक्षे कनकपद्मानां राशय कमल-

---

हुई तरगों से ही मानो आकाश को ही धो रही हो । यह नगरी आमोदप्रिय लोगों से अधिष्ठित है ।[१] इनकी कीर्ति सारे विश्व मे प्रसिद्ध है, शिवजी की जटाओं (में स्थित) चन्द्रमा के सिरे (कोटिया) अत्यन्त प्रमुख अपना स्पष्ट (सार) होने के कारण वह 'कोटिसार' है तो इनके पास करोड़ों (राशि मे) धन होने से (इनके करोड़पति होने से) ये कोटिसार हैं । नहीं अनुभव किया है पखो का विनाश जिसने ऐसा होने से मैनाक पर्वत 'अविदित पक्षपात' है तो ये लोग भी (किसी व्यक्ति का अथवा वस्तु के) पक्ष मे होना (किसी के साथ अनुचित पक्षपात करना) नहीं जानते इसलिए 'अविदितपक्षपात' है । ये लोग गगा के जलप्रवाह के समान 'प्रकटित कनक पद्मराशि' हैं–(इनके पास सुवर्ण तथा पद्मराग मणियों के ढेर दिखायी देते हैं तो गगाप्रवाह मे

---

(१) यहा तृतीयान्त पद 'विलासिजनेन' के विशेषण हैं ।
'विलासिजनेन' में जन शब्द बहुवचन के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है ।

राशिना स्मृतिशास्त्रेणेव समावसथकूपप्रपारामसुरसदनसेतुयन्त्रप्रवर्तकेन मन्दरेणेवोद्धृतसमग्रसागररत्नसारेण संगृहीतगारुडेनापि भुजगभीरुणा खलोपजीविनापि प्रणयिजनोपजीव्यमानविभवेन वीरेणापि विनयवता प्रियंवदेनापि सत्यवादिनाभिरूपेणापि

समूहा । स्मृतीति । स्मृतिर्धर्मसहिता तल्लक्षणेन शास्त्रेणेव। उभय विशिनष्टि—सभेति । सभा संसदावसथं छात्रव्रतिनां वेश्म सामान्यतो गृह वा, कूप उदपान , प्रपा पानीयशाला, आराम कृत्रिम वनम् , सुरसदनं देवगृहम् , सेतु पालि. यन्त्रोऽरघट्टकादिगृहाद्याश्रमस्थत्वात् एतेषा प्रवर्तकेन प्रयोजकेन । पक्षे धर्मजनकत्वात्तद्विधायकेनेत्यर्थ. । मन्दरेति । मन्दरो मेरुस्तेनेव । तदुभय विशिनष्टि—उद्धृतेति । उदूर्ध्वं धृतानि समग्राण्यखिलानि सागरवत्समुद्रवद्रत्नेषु साराणि मुख्यरत्नानि येन । पक्ष उद्धृतानि बहिर्नीतानि समग्राणि सागरात्समुद्राद्रत्नसाराणि चतुर्दशरत्नानि येन । संगृहीतेनेति । सगृहीत गारुड रत्न गारुडशास्त्र वा येनैवभूतेनापि भुजगभीरुणेति विरोध । तत्परिहारस्तु भुजगो गणिकापतिर्धूर्तो वेत्यर्थात् । खलेति । खल दुर्जनमुपजीवतीत्येवंशीलेनापि प्रणयिजनेन सज्जनजनेनोपजीव्यमानो भोग्यमानो विभवो यस्येति विरोध. । तत्परिहारस्तु खल नवीनधान्यस्थापनस्थलमित्यर्थात्तदुपजीविना तदाश्रयेणाजीविका कुर्वाणेत्यर्थ । वीरेति । वीरेणापि सुभटेनापि विनयवता नमनशीलेनेति विरोध । तत्परिहारस्तु वीरेण विराजमानेनेत्यर्थात्। प्रियमिति। प्रियमेव वदतीति प्रियवदस्तेनैवभूतेनापि विरोधः तत्परिहारस्तु प्रियो वल्लभो वदो वक्ता यस्येत्यर्थात् । 'अनुस्वार श्लेषभङ्गकृन्न भवति' इति प्राञ्च । अभीति । अभिरूपेणाप्यतिसुन्दरेणापि स्वस्य दारा स्त्रियस्तेष्वेव (स्त्री तस्या) सतुष्टेन संतो-

---

सुनहले कमलपुष्पों की अनन्त सख्या (राशि) दिखायी देती है। ये लोग सभागृहों, विश्राम स्थलों (सराय आदि) कुओं, प्याउओं, उद्यानों, पुलों तथा (रहट आदि) यान्त्रिक साधनों का (दान-रूप मे) विधान करने वाले स्मृतिशास्त्र के, इस बात में समान हैं कि ये लोग भी सभाभवन आदि को बनवाते हैं। (समुद्र से) सारे प्रमुख रत्न (चौदह रत्न) निकाले हैं जिसने ऐसे मेरु के समान, ये भी, सभी प्रमुख रत्नों को (अपने शरीरों पर) धारण किये हुए होने से 'उद्धृत समग्र सागर रत्नसार' हैं। ये लोग क्या गारुड (शास्त्र अथवा सर्पवशीकरण विज्ञान) का सग्रह किये हुए (इस शास्त्र के पडित हैं) और तो भी सर्पों से डरते हैं ? [नहीं, नहीं,) इन्होंने गारुड रत्न का सग्रह किया हुआ है और साथ ही ये धूर्तों से डरते हैं। क्या दुष्ट पुरुषों से सेव्यमान होते हुए भी इनकी सम्पदा सज्जनों के काम आती है ? [नहीं, नहीं,] ये अपने 'खल' अर्थात् 'खलिहान' [पर एकत्रित उपज] अर्थात् [अपने खेतो की] उपज पर ही निर्वाह करते हैं और इनके वैभव का उपयोग सभी प्रेमी लोग करते हैं। वीर हैं फिर भी [दूसरो अथवा शत्रुओ के सम्मुख] झुकने वाले हैं ? [नहीं, नहीं] वीर होते हुए भी विनयी हैं ? [दूसरों को सुनने मे] अभीष्ट बात कहते हैं तो भी [मितभाषी होने के कारण] सत्य बात ही मुँह से

स्वदारसंतुष्टेनातिथिजनाभ्यागमार्थिनापि परप्रार्थनानभिज्ञेन कामार्थपरेणापि धर्मप्रधानेन महासत्त्वेनापि परलोकभीरुणा सकलविज्ञानविशेषविदा वदान्येन दक्षेण स्मितपूर्वाभिभाषिणा परिहासपेशलेनोज्ज्वलवेषेण शिक्षिताशेषदेशभाषेण वक्रोक्तिनिपुणेनाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण सर्वलिपिज्ञेन महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा बृहत्कथाकुशलेन द्यूतादिकलाकलापपारगेण श्रुतरागिणा सुभाषितव्यसनिना प्रशान्तेन

षिणेति विरोध । तत्परिहारस्त्वभिरूपेण दण्डितेनेत्यर्थात् । 'कृतिकृष्ट्यभिरूपधीराः' इति कोश । अतिथीति । अतिथिजनोऽभ्यागतजनस्तस्याभ्यागम आगमन तदर्थिनापि परेषु यत्प्रार्थन तत्रानभिज्ञेनाकुशलेनेति विरोध । तत्परिहारस्तु साधुजनाभ्यागमस्यार्थिना वाञ्छकेनेत्यर्थात्। कामेति । काम स्त्रीषु रति, अर्थो द्रव्यम् तत्परेण तदासक्तेनापि धर्मप्रधानेनेति विरोध । तत्परिहारस्तु कामो वाञ्छितो योऽर्थं पदार्थस्तत्परेण तत्साधकेनेत्यर्थात् । महेति । महासत्त्वेनापि महासत्त्ववतापि परे शत्रवस्तेषा लोक समूहस्तस्माद्भीरुणा साशङ्केनेति विरोध. । तत्परिहारस्तु परलोको भवान्तरमित्यर्थात् । सकलेति । सकल समग्र यद्विज्ञान शिल्पादि तस्य यो विशेषस्तारतम्य तद्विदा तद्वेत्त्रा वदान्येन दानतत्परेण प्रियवदेन च । 'प्रियवदो दानशील स वदान्य' इति कोश । दक्षेण चतुरेण । स्मितेति । अदष्टरद हास्य स्मित तत्पूर्व यथा स्यात्तथाभिभाषिणा जल्पकेन । परीति । परिहासो नर्मवचस्तेन पेशलेन सुन्दरेण । 'पेशल हृद्यसुन्दरम्' इति कोश । उज्ज्वलेति । उज्ज्वलो निर्मलो वेषो नेपथ्य यस्य स तेन । शिक्षितेति । शिक्षिताभ्यस्ताशेषाणा समग्राणा देशाना जनपदाना भाषा वाग्येन स तथा तेन । वक्रोक्तीति । वक्रोक्तिः कुटिला वचनपद्धतिस्तत्र निपुणेन दक्षेण । आख्यायीति । 'आख्यायिका पुरावृत्तमाख्यान साप्रत च तत्' इति कोश । तत्र यः परिचय सस्तवस्तत्र चतुरेणाभिज्ञेन । सर्वेति ।

निकालते हैं। सुन्दर हैं तो भी अपनी स्त्री से ही सन्तुष्ट रहते हैं [अर्थात् अनैतिक नहीं हैं]। अभ्यागत व्यक्तियों के [अपने घरों मे] आगमन को चाहते हुए भी दूसरों से [स्वार्थवश अर्थ आदि] मागना नहीं जानते। काम तथा अर्थ में आसक्त रहते हुए भी धर्म को [अर्थात् कर्त्तव्य को] प्रधानता देते हैं। प्रचुर सत्त्व अर्थात् ओज (प्राण शक्ति) वाले हैं तो भी शत्रुओं से (?) [नहीं, नहीं] परलोक से डरते हैं। ये समग्र [शिल्पादि] विज्ञान के विशेषों (उनके मुख्य-मुख्य विषयो) को जानते हैं। उदार हैं, चतुर हैं, मुस्कराकर बातचीत [आरम्भ] करते हैं। विनोद पूर्ण बातें करने मे चतुर हैं। इनका वेष उज्ज्वल है। समग्र देश की बोलियों [देश के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित भाषाओं] को सीखे हुए हैं। टेढी बात करने में अथवा वक्रोक्ति [अलकार वाली] बात करने मे चतुर हैं। रोमासवादी साहित्य (आख्यायिका) तथा कथा साहित्य के (परिचय) अध्ययन से चतुर बने हैं। सारी लिपियों को जानते हैं। महाभारत, पुराण, रामायण से उन्हें स्नेह है। बृहत्कथा (गुणाढ्यरचित ग्रन्थ) के विशेषज्ञ (कुशल) हैं। द्यूतक्रीड़ा आदि कलाओं में पारगत हैं। वेदाध्ययन (श्रुत) के प्रेमी हैं। सूक्तियों का उन्हें व्यसन है (सूक्तियों का प्रयोग एकनिष्ठता से करते हैं)। क्रोधरहित हैं।

सुरभिमासमारुतेनेव सततदक्षिणेन हिमगिरिकाननेनेवान्तःसरलेन लक्ष्मणेनेव रामाराधननिपुणेन शत्रुघ्नेनेवाविष्कृतभरतपरिचयेन दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना बौद्धेनेव सर्वास्तिवादशूरेण साङ्ख्यागमेनेव प्रधानपुरुषोपेतेन जिनधर्मेणेव जीवानुकम्पिना,

---

सर्वा समग्रा या लिपयोऽक्षरविन्यासास्तासां ज्ञ`ेन तज्ज्ञानवता । महेति । महाभारत प्रसिद्धम्, पुराण पञ्चलक्षणम्, रामायण रामचरित्रम्, तत्रानुरागिणा कृतस्नेहेन । बृहदिति । बृहत्कथा वासिष्ठादिकथा तत्र कुशलेन तद्रहस्यवेदिना । द्यूतादीति । द्यूतादयो दुरोदरप्रभृतयो या कला विज्ञानैकदेशास्तासां कलाप समूहस्तस्य पारगेण पारदृश्वना । श्रुत शास्त्रमात्र तत्र रागिणाभ्यन्तप्रीतिमता । सुभाषितेति । सुभाषितानि नाटकादीनि तत्र व्यसनिनासक्तचित्तेन प्रशान्तेन क्रोधनिर्मुक्तेन । केनेव । सुरभीति । सुरभिमासो वसन्तमासस्तस्य मारुतो वायुस्तेनेव । सततेति । सतत निरन्तरं दक्षिणा त्यागो यस्य स तथा तेन । पक्षे सतत दक्षिणेन दक्षिणदिग्गामिना । हिमेति । हिमगिरिस्तुहिनाचलस्तस्य कानन वन तेनेव । अन्तरिति । अन्तर्मध्ये सरलेनाकुटिलेन । पक्षे सरला वृक्षविशेषा । लक्ष्मणेति । लक्ष्मण सौमित्रिस्तेनेव । रामेति । रामस्य दाशरथेर्यदाराधन समुपासनं तत्र निपुणेन कुशलेन । पक्षे रामाणां स्त्रीणामाराधन सेवनम् । शत्रुघ्नेति । शत्रुघ्नो रामानुजस्तेनेवाविष्कृत प्रकटीकृतो भरते नाट्यशास्त्रे परिचयःपरिचितिर्येन स तथा । पक्षे भरत शत्रुघ्नभ्राता । दिवसेनेव वासरेणेव । मित्रमिति । मित्रं सुहृत्तदनुवर्तिना तच्चित्ताराधकेनेत्यर्थ । पक्षे मित्र सूर्यस्तदनुवर्तिना तदायत्तेनेत्यर्थ । बौद्धेति ।

चैत्र महीने की वायु जैसे 'सतत दक्षिण' (सदा दक्षिण दिशा से बहने वाला) होता है वैसे ये भी 'सततदक्षिण' (निरन्तर दानशील हैं) हिमालय के गहन वनों के भीतर 'सरल' वृक्ष (एक प्रकार के देवदारु वृक्ष) होने से वे अन्त सरल होते हैं, वैसे ये भी हृदय से सीधे (अकुटिल) होने से 'अन्त सरल' हैं। जैसे लक्ष्मण [अपने बड़े भाई] राम की सेवा मे निपुण होने के कारण ('राम + आराधन + निपुण) था वैसे ही ये भी स्त्रीसेवन मे निपुण होने से 'रामा आराधन-निपुण' हैं। शत्रुघ्न ने (अपने भाई) भरत के प्रति घनिष्टता प्रकट की थी इसलिए वह 'आविष्कृत-भरत परिचय' था वैसे इन्होंने नाट्यशास्त्र से अपनी परिचिति प्रकट की है इस कारण ये भी 'आविष्कृत भरत परिचय' हैं। दिन सूर्य (सूर्योदय) का अनुवर्ती होने के कारण मित्रानुवर्ती है, ये भी मित्रों की सलाह मानने के कारण 'मित्रानुवर्ती' है। जिस प्रकार बौद्ध (सिद्धान्त) सर्वास्तिवाद' में शूर है वैसे ही ये भी 'कभी किसी को नहीं नहीं कहते' इस कारण 'सर्वास्तिवाद शूर' हैं। जैसे साङ्ख्य शास्त्र मे 'प्रधान' (आरम्भिक द्रव्य) और 'पुरुष' (गौण उत्पादनो) का विधान होने से वह 'प्रधान पुरुषोपेत' है ये भी (प्रधान पुरुष) नेता से युक्त होने के कारण 'प्रधान पुरुषोपेत' हैं। जिन (प्रतिपादित) धर्म सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया (दिखाने का विधान करने) से 'जीवानुकम्पी' है ये भी सभी जीवित प्राणियों के

---

(१) बौद्ध सिद्धान्त में तीन प्रकार के वादी हैं, सर्वास्तित्ववादी, विज्ञानास्तिवादी और सर्वशून्यत्ववादी। यहा सर्वास्तित्ववादी के विषय मे कहा गया है।

विलासिजनेनाधिष्ठिता, सशैलेव प्रासादैः, सशाखानगरेव महाभवनैः, सकल्पवृक्षेव सत्पुरुषैः, दर्शितविश्वरूपेव चित्रभित्तिभिः, संध्येव पद्मरागानुरागिणी, अमराधिपमूर्तिरिव मखशतानलधूमपूता, पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा, वृद्धेव जातरूपक्षया,

---

बौद्ध सुगतस्तेनेव। सर्वेति। सर्वस्य वस्तुनो योऽस्तिवादो सर्वमस्तीति जल्पन तत्र शूरेण धीरेण। कदाचिदपि नास्तीति न ब्रुवतेति भाव। पक्षे सर्वास्तिवादो बौद्धानां निकायभेद स च शूरो यस्मिन्। अत पर सिद्धान्ताभावात्। यद्वा सर्वेषां पदार्थाना सर्ववादिना वा योऽस्तिवादोऽक्षणिकवादस्तत्र शूरेण तद्वक्षेपकेण। सांख्येति। साख्या कापिलास्तेषामागम सिद्धान्तस्तेनेव। प्रधानेति। प्रधाना मुख्या ये पुरुषा पुमासस्तैरुपेतेन सहितेन। पक्षे प्रधान सत्वादीना साम्यावस्था, पुरुषश्चेतनारूप आत्मा। यदुक्तम्—'अजामेका लोहितशुक्लकृष्णाम्' 'अजो ह्येक.' इत्यादि। प्रधानश्चासौ पुरुषश्च तेनोपेतेन। जिनेति। जिन सर्वज्ञस्तस्य धर्मो वृषस्तेनेव। जीवेति। जीवे प्राणिन्यनुकम्पा यस्येत्यभङ्गश्लेष। पुन प्रकारान्तरेण नगरीं वर्णयन्नाह—सशैलेति। सशैलेव सपर्वतेव। कै। प्रासादैर्देवभूपसदनै अतिमहत्त्वाच्छैलसाम्यम्। सशाखेति। शाखानगरमुपपुर तेन सह वर्तमानेव कैः। महाभवनैरुत्तुङ्गगृहै। सद्मनामतिदैर्घ्येण शाखापुरोपमानम्। सकल्पेति। सह कल्पवृक्षेण पारिजातेन वर्तमानेव। कै। सत्पुरुषैर्महापुरुषै दातृत्वातिशयसाम्यात्कल्पवृक्षसाम्यम्। दर्शितेति। दर्शितानि प्रकाशितानि विश्वरूपाणि यया सेव। काभि। चित्रभित्तिभिरालेख्यसहितकुड्यै। चित्रस्य सकलवस्तुप्रकटनसामर्थ्यात्तदुत्प्रेक्षा। संध्येव पितृप्रसूरिव। पद्मेति। पद्मरागो मणिस्तस्यानुरागो रक्तिमा यस्या सा। अनेन रत्नबाहुल्य दर्शितम्। पक्षे पद्मरागवदनुरागो यस्यामिति विग्रह। अमरेति। अमराधिप शतमखस्तस्य मूर्तिरिव मखाना शत तस्य योऽनलो वह्निस्तस्य यो धूमो दहनकेतनस्तेन पूता पवित्रा। एतेन याज्ञिकानां बाहुल्यमाविष्कृतम्।

प्रति दया (दिखाने के कारण) 'जीवानुकम्पी' हैं। फिर यह नगरी बड़े-बड़े महलो से [भरी होने के कारण] पर्वतों वाली प्रतीत होती है। बड़े भवनो से [ऐसी प्रतीत होती है] कि उपनगरो से युक्त हो [इसमे उपनगरो जितने बड़े बडे भवन विद्यमान हैं] यह नगरी [अपने दानशील] महापुरुषो से ऐसी प्रतीत होती है कि कल्पवृक्षों से ही युक्त हो। अपनी चित्रयुक्त भित्तियो से यह नगरी ऐसी प्रतीत होती है कि मानो इसने सारे ससार का रूप ही दिखा दिया हो। सन्ध्या मे जैसे पद्मरागमणि की लालिमा (अनुराग) होती है इस कारण सध्या पद्मरागानुरागिणी है—वैसे ही इस नगरी को पद्मराग मणियों से प्रेम होने के कारण यह पद्मरागानुरागिणी है। इन्द्र का देह (मूर्ति) जैसे शतयज्ञों की अग्नि के धूम से पवित्र रहता है वैसे ही यह नगरी भी (इसमे किये गये) सैकड़ों यज्ञों की अग्नि के धूम से पवित्र है। शिवजी की ताण्डव नृत्य क्रीडा [शिवजी के] अमृत तुल्य शुभ्र अट्टहास से युक्त है, यह नगरी चूने से पुती अटारियों के प्रकाश से युक्त होने के कारण सुधाधवल+अट्टहासा' है। वृद्धा का सौन्दर्य नष्ट हो जाने के कारण वह 'जात-रूपक्षया' है वैसे ही सोने के बने घरों (क्षय) वाली होने से यह

गरुडमूर्तिरिवाच्युतस्थितिरमणीया, प्रभातवेलेव प्रबुद्धसर्वलोका, शबरवसतिरिवावलम्बितचामरनागदन्तधवलगृहा, शेषतनुरिव सदासन्नवसुधाधरा, जलधिमथनवेलेव महाघोषपूरितदिगन्तरा, प्रस्तुताभिषेकभूमिरिव सन्निहितकनकघटकसहस्रा, गौरीव

पक्षे मखशत शताश्वमेधा । शेष पूर्ववत्। पश्चिति। पशुपतिरीश्वरस्तस्य लास्यक्रीडेव। नृत्यक्रीडेव। सुधेति। सुधा गृहधवलीकरणद्रव्य तेन धवला विपणय एव अट्टहासो हास्य यस्या सा। पक्षे सुधामृत तद्वद्धवल शुभ्रोऽट्टहासो महाहासो यस्यामिति विग्रह । वृद्धेव स्थविरेव। जातेति। जातरूपस्य सुवर्णस्य क्षया गृहाणि यस्यां सा। 'वसति शरण क्षय' इति कोश । पक्षे जातो रूपस्य क्षयो नाशो यस्यामिति विग्रह'। गरुडेति। गरुडो गरुत्मास्तस्य मूर्तिरिव। अच्युतेति। न च्युताच्युता सर्वदा स्थिरा या स्थितिर्मर्यादा तया रमणीया मनोहारिणी। पक्षेऽच्युतस्य कृष्णस्य या स्थितिरवस्थान तेन रमणीया। प्रभातेति। प्रभात प्रत्यूषस्तस्य वेलाम्भसो वृद्धि (?) सेव। प्रबुद्धेति। प्रबुद्धा विशेषाभिज्ञा सर्वलोला समग्रजना यस्या सा। पक्षे प्रबुद्धा सुप्तोत्थिता। शेष पूर्ववत्। शबरेति। शबरा भिल्लास्तेषा वसतिर्निवासस्थल सेव। अवलम्बितेति। अवलम्बितान्यालम्बितानि चामराणि वालव्यजनानि येष्वेवविधा नागदन्ता गजदन्तास्तैर्धवलीकृतानि गृहाणि यस्यामिति विग्रह। शेषतनुरिति। शेषो नागाधिपस्तस्य तनुरिव शरीरमिव। सदेति। सन्त शोभना आसन्ना समीपस्था वसुधाधरा पर्वता यस्या सा। पक्षे सदा सर्वकालमासन्ना समीपवर्तिनीं वसुधां पृथ्वीं धारयति सा तथा। जलधीति। जलधि समुद्रस्तस्य मथन आलोडने या वेला सेव। महेति। महाघोषा महत्य आभीरपल्लिकास्ताभि पूरितानि चितानि दिगन्तराणि यस्यां सा। 'घोषस्त्वाभीरपल्लिका' इति कोश । पक्षे महाघोषो महारव । शेष पूर्ववत्। प्रस्तुतेति। प्रस्तुत प्रारब्धो योऽभिषेकोऽभिषिञ्चन तस्य या भूमि

नगरी भी जातरूप-क्षया है। गरुड का देह [उसके ऊपर] विष्णु भगवान् की 'अवस्थिति' के कारण रमणीय है वैसे ही यह नगरी (स्थिति) धार्मिक मर्यादा के कभी भग न होने के कारण आकर्षक है। [इस वेला मे] सब लोगों के जाग जाने के कारण प्रभातवेला 'प्रबुद्धसर्वलोका' है, यह नगरी भी इसके सब लोगों के सुसस्कृत (प्रबुद्ध) होने के कारण 'प्रबुद्धसर्वलोका' है। शबर बस्ती, जैसे लटकाये हुए चवरों और हाथीदांतों से श्वेत घरों वाली होती है ऐसे ही यह नगरी भी चूने से पुते श्वेत घरों वाली है। शेषनाग का शरीर, जैसे सदा समीपवर्तिनी पृथ्वी को [अपने ऊपर] धारण करने से 'सदा-आसन्न-वसुधाधर' है वैसे ही नगरी भी शोभन और समीपस्थ हैं पर्वत जिसमें—ऐसी होने के कारण 'सत्-आसन्न-वसुधाधरा' है। जैसे समुद्रमथन के समय दिशाएँ-प्रदिशाएँ यहा कोलाहल से भर जाने के कारण वह वेला 'महा घोष पूरित दिगन्तरा' है वैसे ही यह नगरी बड़ी-बड़ी गडरियों की बस्तियों (घोष) से पूरित दिशाओं प्रदिशाओं वाली होने के कारण 'महाघोष पूरित दिगन्तरा' है। प्रारम्भ हो गया है [राज्य] अभिषेक जिसमे ऐसी अभिषेक भूमि जैसे 'हजारों' सुंवर्ण कलशों के आसन्नवर्ती होने के कारण 'सनिहित कनकघटसहस्रा' होती है वैसे ही यह नगरी भी समीपस्थ सहस्रों सुनारों के इसमे होने के कारण

महासिंहासनोचितमूर्तिः अदितिरिव देवकुलसहस्रसेव्या, महावराहलीलेव दर्शितहिरण्याक्षपाता, कद्रूरिवानन्दितभुजगलोका, हरिवंशकथेवानेकबालक्रीडारमणीया, प्रकटाङ्गनोपभोगाप्यखण्डितचरित्रा, रक्तवर्णापि सुधाधवला, अवलम्बितमुक्ताकलापापि

पृथ्वी सेव। **सन्निहितेति**। सन्निहिता समीपस्था कनकघटका सौवर्णिकास्तेषां सहस्रं यस्यां सा तथा। एतेन जनालंकारबाहुल्यं सूचितम्। पक्षे सन्निहिता आसन्नवर्तिनं कनकघटकसहस्रा सुवर्णकुम्भसहस्रा यस्यामिति विग्रहः। **गौरीवेति**। गौरी पार्वती सेव। **महेति**। महासिंहासनं महासुवर्णासनं तत्रोचिता योग्या मूर्तिर्यस्या इति विग्रहः। **अदितिरिति**। अदितिर्देवमाता सेव देवकुलानां देवगृहाणां सहस्रं सेव्यं यस्याः सा देवकुलसहस्रैः सेव्या सेवनीया। देवमातृत्वात्। **महावराहेति**। महावराह आदिवराहस्तस्य लीला क्रीडा सेव। **दर्शितेति**। दर्शितो दृग्विषयीकारितो हिरण्यस्य सुवर्णस्य येऽक्षाः पाशास्तेषां पातो यस्यां सा। पक्षे हिरण्यदैत्यस्याक्षाणामिन्द्रियाणां पातो नाशो यस्याम्। **कद्रूरिति**। कद्रूर्नागमाता सेव। **आनन्दितेति**। आनन्दितः प्रमोदं प्रापितो भुजगलोको गणिकापतिजनो यस्यां सा। पक्षे भुजगलोकः सर्पसमुदायः। **हरिवंशेति**। हरिवंशनाम्नो ग्रन्थस्य या कथाप्रबन्धः सेव। **अनेकेति**। अनेकेषां बालानां शिशूनां या क्रीडा खेलनं तया रमणीया मनोहरा। पक्षेऽनेका बह्वयो बालनाम्नो नृपस्य क्रीडोद्यानगमनादिरूपा तया मनोहरा चित्ताकर्षिणी। प्रकारान्तरेण

सन्निहित कनक सहस्रा' है। पार्वती जैसे महासिंह रूपी आसन के योग्य देह वाली होने से 'महासिंह आसन-उचित-मूर्ति' है वैसे ही यह नगरी भी इसमे बड़ी बड़ी चौकियों पर (महासिंहासनेषु) मूर्तियों के (उचित) संगृहीत होने के कारण 'महा सिंहासन-उचित मूर्ति' है। [देवमाता] अदिति जैसे सहस्रों देवकुलों द्वारा पूजनीय होने से 'देवकुल सहस्र सेव्या' है, इस नगरी मे पूजनीय हजारों देवमन्दिर होने के कारण यह 'देवकुल सहस्र सेव्या' है। जैसे वराहावतार (महावराह) की लीला हिरण्याक्ष नाम के दैत्य का विनाश दिखाने से 'दर्शितहिरण्याक्षपाता' है वैसे ही यह नगरी भी (जुआ घरों मे) सोने के पासों का फैंका जाना दिखने के कारण 'दर्शित—हिरण्य—अक्ष—पाता' है। (नागमाता) कद्रु नागलोक को आनन्दयुक्त करने के कारण 'आनन्दित-भुजग-लोका है, वैसे ही यह नगरी भी (अपने) रसिया लोगों को आनन्दित रखने के कारण 'आनन्दित भुजङ्गलोका' है। हरिवंश ग्रन्थ का कथानक जैसे (श्रीकृष्ण की) अनेक बाल्यकाल की लीलाओ से रमणीय बन गया है वैसे ही यह नगरी भी [यहाँ प्रदर्शित) नानाविध बालक्रीड़ाओं के कारण सुहावनी बनी हुई है। यह नगरी प्रकट-अगनाउपभोगा है तो भी अक्षुण्ण नैतिक चरित्र वाली है, क्योंकि वस्तुत तो (इसमे आमोद-प्रमोद के लिये) खुले आँगनों का सेवन किया जाता है इसलिये यह 'प्रकट-अगन उपभोगा' है। लाल रंग (रक्तवर्णा) की है तो भी 'सफेदी' से श्वेत है क्योंकि चारों वर्ण परस्पर स्नेह से युक्त होने के कारण यह 'रक्तवर्णा' है—लाल रंग की होने से रक्तवर्णा नहीं है यद्यपि (इसके निवासियों ने) मोतियों का अवलम्बन लिया हुआ है तो भी यह हार रूप (मोती माला रूप)

विहारभूषणा, बहुप्रकृतिरपि स्थिरा, विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।

यस्यामुत्तुङ्गसौधोत्सङ्गसगीतसङ्गिनीनामङ्गनानामतिमधुरेण गीतरवेणाकृष्य माणाधोमुखरथतुरगः पुरःपर्यस्तरथपताकापटः कृतमहाकालप्रणाम इव प्रतिदिन लक्ष्यते गच्छन्दिवसकरः। यस्या च संध्यारागारुणा इव सिन्दूरमणिकुट्टिमेषु प्रारब्धकमलि-

---

पुनस्तामेव वर्णयन्नाह—प्रकटेति। प्रकट स्पष्टमङ्गनाया स्त्रिय उपभोगो यस्यामेवभूताप्य-खण्डितचरित्रेति विरोध। तत्परिहारस्तु प्रकटाङ्गनानामुपभोगस्ताम्बूलादिरित्यर्थादखण्डित चरित्र लोकप्रशसारूपमस्यामित्यर्थाद्वा। रक्तेति। रक्तवर्णाप्यरुणवर्णापि सुधा पूर्व व्याख्याता तद्वद्धवलेति विरोध। तत्परिहारस्तु रक्ता अनुरक्ता वर्णा ब्राह्मणादयो यस्या-मित्यर्थात्। अवेति। अवलम्बित आलम्बनीकृतो मुक्ताकलापो मुक्ताप्रालम्बो ययैवभूतापि विगतस्त्रुटितो रतादौ यो हार स एव भूषणमलकृतिर्यस्यामिति विरोध। तत्परिहारस्तु विहारा जैनप्रासादा इत्यर्थात्। 'विहारो जिनसद्मनि' इति कोश। बह्विति। बह्वी प्रकृतिर्यस्या मेवंविधापि स्थिरेति विरोध। तत्परिहारस्तु बह्वय प्रकृतय पौरलोका.। विजितेति। विशेषेण जिता अमरलोकस्य देवलोकस्य द्युति कान्तिर्यया सा। अवन्तीषु मालवेषु। अन्व-यस्तु प्रागेवोक्त।

यस्यामिति। यस्याम्। उज्जयिन्याम्। उत्तुङ्गेति। उत्तुङ्गमुच्च सौध धवल गृह तस्योत्सङ्ग उपरिप्रदेशस्तस्मिन्यत्सगीत गीतनृत्यादि तत्र सङ्गिनीना व्यासक्तानामङ्गनाना स्त्रीणामतिमधुरेणातिमिष्टेन गीतरवेण गानस्वरेणाकृष्यमाणा अधोमुखा अवाङ्मुखा रथस्य स्यन्दनस्य तुरगा अश्वा यस्य सः। पुरोऽग्रे पर्यस्त क्षिप्तो रथस्य पताकापटो वैजयन्तीपटो येनैवभूतो गच्छन्व्रजन्दिवसकर सूर्यः। आकृष्यमाणाधोमुखरथतुरगव्याजेन कृतो विहितो महाकालस्य ज्योतिर्लिङ्गात्मकशकरस्य प्रमाणो येनैवभूत इव प्रतिदिनमहर्निश लक्ष्यते दृश्यते। जनैरिति शेष। यस्यां चेति। यस्यामुज्जयिन्या रविगभस्तय सूर्यकिरणा। सिन्दूरेति। सिन्दूरमणयो मणिविशेषास्तेषा कुट्टिमेषु तदारुण्यप्रतिबिम्बात्सध्यारागेणारुणा इव। सलक्ष्यन्त

भूषणों से रहित होने के कारण 'विहारभूषणा' है क्योंकि वस्तुत तो यह विहारों, प्रमोद स्थानों अथवा मठों से भूषित होने के कारण 'विहार भूषणा' है। बहुत से (परिवर्तनशील) स्वभावों की होने से 'बहुप्रकृति' है तो भी 'स्थिर' है क्योंकि वस्तुत तो यह बहुत से प्रजाजनों (के बसे होने के कारण) बहुप्रकृति है। (इस प्रकार) गुण विशिष्ट यह उज्जयिनी नगरी अमरपुरी से भी अधिक ठाठदार है।

और उस नगरी में उसके ऊँचे महलों की वेदिकाओं पर सगीत के अभ्यास में लगी हुई रमणियों के अत्यन्त मधुर गीतों के शब्द से खींचे गये, इसीलिये नीचे को मुँह किये हुए रथाश्वों वाला सूर्य, अपने सन्मुख ध्वज के कपड़े को नीचे झुकाये हुए प्रतिदिन महाकाल को प्रणाम किये हुआ-सा दिखायी देता है। और उस नगरी में सूर्य की किरणें, सिन्दूरमणि के बने फर्शों पर सन्ध्या के रग से लाल हुई-सी (चमकती) प्रतीत होती हैं, हरितमणि निर्मित

नीपरिमण्डला इव मरकतवेदिकासु, गगनपर्यस्ता इव वैडूर्यमणिभूमिषु, तिमिरपटल-विघटनोद्यता इव कृष्णागुरुधूममण्डलेषु, अभिभूततारकापङ्क्तय इव मुक्ताप्रालम्बेषु, विकचकमलचुम्बिन इव नितम्बिनीमुखेषु, प्रभातचन्द्रिकामध्यपतिता इव स्फटिक-भित्तिप्रभासु, गगनसिन्धुतरंगावलम्बिन इव सितपताकांशुकेषु, पल्लविता इव सूर्य-कान्तोपलेषु, राहुमुखकुहरप्रविष्टा इवेन्द्रनीलवातायनविवरेषु विराजन्ते रविगभस्तयः।

इति क्रियाया पूर्वंत परतो वा राजत इति क्रियाया सर्वत्रानुषङ्ग । किरणेषु मरकतहरित-प्रतिबिम्बादाह—प्रारब्धेति। प्रारब्धमाचरित कमलिनीषु परिमण्डल लुठन यैस्ते तादृशा इव। मरकतवेदिकास्वश्मगर्भघटितपीठिकासु। वैडूर्यमणिनैर्मल्यप्रतिबिम्बादाह—गगनेति। अध प्रसृता अपि नैल्यसाम्याद्गगन आकाशे पर्यस्ता विस्तीर्णा इव दृश्यन्ते। वैडूर्यमणयो बालवायजानि तेषा भूमिषु। तन्मणिबद्धस्थलीष्वित्यर्थं। किरणेषु धूमरूपप्रतिबिम्बादाह—तिमिरेति। तिमिरपटलस्य ध्वान्तसमूहस्य यद्विघटनं भेदनं तत्रोद्यता इव कृतप्रयत्ना इव। केषु। कृष्णागुरु. काककुण्डस्तस्य धूमास्तेषा मण्डलेषु पटलेषु। मुक्तानां स्वच्छताविशेष-सक्रमादाह—अभिभूतेति। अभिभूतास्तारकत्वेनानिर्धार्यमाणास्तारकाणां नक्षत्राणां पङ्क्तयो लेखा यैस्तादृशा इव मुक्ताप्रलम्बेषु मुक्ताकलापेषु। मुखस्य विकचकमलसाम्यादाह—विकचेति। विकचानि विकस्वराणि यानि कमलानि तच्चुम्बिन इव नितम्बिनीमुखेषु प्रमदा-वदनेषु। अत्र सिन्दूरमरकतवैडूर्यधूमेषु तद्रूपविशेषातिशयो व्यज्यते। मुखेऽभङ्गुरगुणत्व-कमलापेक्षया कमलस्य भङ्गुरगुणत्वात्स्फटिकरूपसंक्रमादाह—प्रभातेति। प्रभातस्य प्रत्यूषस्य या चन्द्रिका चन्द्रगोलिका तन्मध्यपतिता इव तदन्त पातिन इव स्फटिकस्य चान्द्रोपलस्य भित्तय कुड्यानि तासा प्रभासु कान्तिषु। उदये चन्द्रिकाया रक्तत्वात् मध्ये च पाण्डुरत्वात्, प्रातस्तु स्फटिकसाम्यात्प्रभातपदम्। अत्रातिशयो व्यज्यते। तरंगसादृश्यात्सितपताकानां तत्सबन्धवशादाह—गगनेति। गगनसिन्धु स्वर्धुनी तस्यास्तरगा कल्लोलास्तानवलम्बत

मर्चों पर पड़तीं ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानों उन्होंने कमलिनियों पर गोल घरों में लुढ़कना आरम्भ कर दिया हो, वैडूर्य मणियों के फर्शों पर पड़ती ऐसी प्रतीत होती हैं कि आकाशतल पर फैली रही हों, कृष्ण अगरु के धुएँ के बादलों मे वे अन्धकार समूह को दूर करने मे व्यस्त प्रतीत होती हैं, मोतियो के तोरणों पर वे नक्षत्रपुञ्जों के अभिभूत किये (अर्थात् अपनी चमक के सन्मुख उनकी चमक को मन्द किये हुई) प्रतीत होती हैं, सुन्दरी स्त्रियों के मुखों पर वे खिले कमल को चूमती (धीरे से छूती) प्रतीत होती हैं, स्फटिक निर्मित दिवारों से प्रतिबिम्बित चमक में वे प्रात कालीन-चाँदनी मे गिरी प्रतीत होती हैं, श्वेतपताकाओं की किरणों मे आकाश गगा की लहरो पर पड़ी प्रतीत होती है, सूर्यकान्त-मणियों पर वे उनसे (कोयल की भाँति) फूट कर निकलती (अर्थात् प्रकाश के अकुरों जैसी) प्रतीत होती हैं, और इन्द्रनीलमणि (निर्मित) चौखटों वाले झरोखों की दरारों मे वे ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानों राहु के मुखरूपी गुहा में घुस गयी हों।

यस्यां चानुपजाततिमिरत्वादविघटितचक्रवाकमिथुना व्यर्थीकृतसुरतप्रदीपाः सञ्जातमदनानलदिग्दाहा इव यान्ति कामिनीनां भूषणप्रभाभिर्बालातपपिञ्जरा इव रजन्यः। या च सनिहितविषमलोचनामनवरतमतिमधुरो रतिप्रलाप इव प्रसर्पन्मुखरीकरोति मकरकेतुदाहहेतुभूतो भवनकुलहंसकुलकोलाहलः। यस्या च निशि निशि

इत्येवशीला इव सितपताकांशुकेषूज्ज्वलवैजयन्तीपटेषु। पताकाया श्वेतातिशयो व्यज्यते। सूर्यकान्तेषु संक्रमवशादाह—सूर्येति। पल्लववदाचरन्तीति पल्लविता अङ्कुरितास्तादृशा इव सूर्यकान्ता एवोपला प्रस्तरास्तेषु। इन्द्रनीलसम्पर्कवशादाह—राह्विति। राहुः सैंहिकेयस्तस्य मुखमिव कुहर बिल तत्र प्रविष्टास्तदन्तर्गता इवेन्द्रनीलमणीना ये वातायना गवाक्षास्तेषा विवरेषु छिद्रेषु विराजन्ते। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

यस्यां चेति। यस्यामुज्जयिन्यां रजन्यो रात्रय एवभूता सत्यो यान्ति। न विघटित न विभिन्न चक्रवाकाना मिथुन द्वन्द्वं याभिस्ता। तत्र हेतुमाह—अनुपजातेति। अनुपजात तिमिर यस्यां तस्या भावस्तत्त्व तस्मात्। व्यर्थीकृतेति। व्यर्थीकृता निष्प्रयोजनीकृता सुरत प्रदीपा रतप्रयोजका ग्रहमणयो यस्यां सा। अनुपजाततिमिरत्वादेवेति भाव। तत्रापि हेतुमाह—कामिनीति। कामिनीनां योषितां भूषणान्याभरणानि तेषां प्रभाभि कान्तिभिः। अत्र भूषणप्रभालक्षणेन हेतुनानुपजाततिमिरत्वम्। तेन चाविघटितचक्रवाकमिथुनत्व व्यर्थीकृतदीपकत्वं चेति भावः। प्रभाभि कीदृशा इव। संजातेति। सजात समुत्पन्नो यो मदनानलो मदनवह्नि स एव दिग्दाहो यासु तादृशा इव। बालातपो नवीनसूर्यातपस्तेन पिञ्जरा श्वेत रक्तास्तादृशा इव। यां चेति। यां नगरीं भवन गृह तस्य कुल समुदायस्तत्र हंसकुलानि तेषा कोलाहलो मुखरीकरोति वाचालीकरोति। 'अभूततद्भावे च्वि'। कीदृश। अतिमधुरोऽतिमिष्ट अनवरत प्रसर्पन्प्रसरन्। कीदृश इव। रतीति। रतिर्मदनस्त्री तस्या प्रलाप इव विलाप इव। मकरेति। मकरकेतुना मदनेन दाहस्तस्य हेतुभूत। अन्यत्र मकरकेतोर्दाहो हेतुभूतोऽस्य रतिप्रलापस्येति विग्रह। रतिप्रलापसाम्य कोलाहले वक्तुमाह—संनिहितेति। सनिहित समीपस्थो विषमलोचन शम्भुर्यस्यां सा। यस्यां चेति। यस्या नगर्या प्रासादा आवासा

और जिसमे उस नगरी की अङ्गनाओं द्वारा पहने हुए आभूषणों की काति के कारण, रात्रियाँ, प्रात कालीन धूप से मानों लाल-पीली सी हुई ऐसी व्यतीत हो जाती हैं कि अन्धेरा न होने से उनमें चकवा चकवी वियुक्त नहीं होते हैं, सुरत क्रीडाओं के समय जलने वाले दीपक वहाँ व्यर्थ रहते हैं, और (इसके नागरिकों के हृदय में) उत्पन्न प्रेम की अग्नि के द्वारा मानो दिशायें प्रज्वलित हो उठती हैं। और त्रिनेत्रधारी शिवजी से अधिष्ठित जो नगरी, कामज्वर के कारणभूत (प्रेम-यातना उत्पन्न करने वाला) अत्यन्त मधुर पालतू सुन्दर हंसों के शोर से, जो फैलता हुआ कामदेव के जलने के कारण उत्पन्न (शिवजी के सान्निध्य में सुनायी पड़ते) रति के विलाप की भाँति प्रतीत होता है, गूँजती है। उस नगरी मे महल, प्रत्येक रात्रि में चमकते तथा वायु में फरफराते हुए, (पताका के) वस्त्रों के आँचलों के कारण ऐसे प्रतीत होते

पवनविलोलैर्दुकूलपल्लवैरुल्लसद्भिर्मालवीमुखकमलकान्तिलज्जितस्येन्दोः कलङ्कमिवापनयन्तो दूरप्रसारितध्वजभुजाः प्रासादा लक्ष्यन्ते। यस्यां च सौधशिखरशायिनीनां पश्यन्मुखानि पुरसुन्दरीणां मदनपरवश इव पतितः प्रतिमाच्छलेन लुठति बहलचन्दनजलसेकशिशिरेषु मणिकुट्टिमेषु मृगलाञ्छनः।

यस्यां च निशावसानप्रबुद्धस्य तारतारमपि पठतः पञ्जरभाजः शुकसारिकासमूहस्याभिभूतगृहसारसस्वरामृतेन विस्तारिणा विलासिनीभूषणरवेणाविभाव्यमाना

ईदृशा लक्ष्यन्त इत्यन्वय। तन्विशिनष्टि—दूरेति। दूरमूर्ध्वं प्रसारिता विसारिता ध्वजा वैजयन्त्य एव भुजा येषा ते तथा। किं कुर्वन्त इव। इन्दोश्चन्द्रस्य कलङ्क मालिन्यमपनयन्त इव दूरीकुर्वन्त इव। चन्द्र विशिनष्टि—मालवीति। मालव्य मालवदेशोद्भवा, तासां मुखकमलानि तेषां कान्तिस्तया लज्जितस्य त्रपितस्य। तत्करणे कारण दर्शयन्नाह—निशि निशीति। निशि निशि प्रतिनिशमुल्लसद्भि शोभमानै पवनेन वायुना विलोलैश्चपलैर्दुकूलपल्लवैर्वस्त्राञ्चलै। यस्यां चेति। यस्या नगर्यां मृगलाञ्छनश्चन्द्रो मणिकुट्टिमेषु प्रतिमाच्छलेन प्रतिबिम्बमिषेण लुठति प्रसरति। कीदृश। मदनेन कदर्पेण परवश पराय‍त्त इव। हेतुमाह—किं कुर्वन्। पश्यन्विलोकयन्। कानि। सौधशिखरशायिनीना पुरसुन्दरीणा नगरनारीणां मुखानि वदनानि। कीदृशेषु मणिकुट्टिमेषु। बहलेति। बहल यच्चन्दनजल मलयजद्रवमिश्रिताम्भस्तेन सेक सिञ्चन तेन शिशिरेषु शीतलेषु। अतएव पतित इति विशेषणं शिशिरवाञ्छकत्वात्कामार्तस्येति भाव।

यस्यां चेति। प्रभाते प्रत्यूषे मङ्गले नैमित्तिका गीतयो व्यर्थीभवन्ति। व्यर्थीभवने हेतुद्वय प्रदर्शयन्नाह—शुकेति। शुक कीर, सारिका पीतपादा, तयो समूह, संघातस्तस्य। अभिभूतानि तिरस्कृतानि गृहसारसानीत्यत्र लक्षणया सारसस्वरस्तादृशेन स्वरामृतेन। विलासिनीति। विलासिन्य स्त्रियस्तासा भूषणरवेणाभरणनिनादेन विस्तारिणा प्रसरणशीलेनाविभाव्य-

---

हैं कि मानो वे अपनी ऊपर को सकेत करनेवाली ध्वजारूप भुजाओं को खूब ऊँचाई तक उठाये हुए मालवी (रमणी) के मुखरूपी कमल की शोभा से लज्जित (मुख से कम शोभा वाले) चन्द्रमा के कलङ्क को मिटा रहे हों। और उस नगरी मे चन्द्रमा, अपने प्रतिबिम्बों के बहाने, गाढ़े चन्दन-जल के छिड़काव से शीतल हुए मणिजटित फर्शों पर इस प्रकार गिरता और लोटता है कि मानो वह महलों की छतों पर सोयी हुई अत्यन्त सुन्दरियों के मुखों को देखकर कामोन्माद के अधीन हुआ गिरता और लोटता हो।

और उस नगरी मे, रात्रि की समाप्ति पर जागे हुए, खूब ऊँचे ऊँचे भी पाठ करते पिंजरों में स्थित शुकों और मैनाओं के समूह के प्रात:कालीन मांगलिक गीत इस कारण व्यर्थ हो जाते हैं कि वे पालतू सारसों के स्वरामृत को भी पराभूत किये हुए और फैले हुए रमणियों

व्यर्थीभवन्ति प्रभातमङ्गलगीतयः। यस्यां चानिवृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, अन्तस्तरलता हाराणाम्, अस्थितिः सगीतमुरजध्वनीनाम्, द्वन्द्ववियोगश्चक्रनाम्नाम्, वर्णपरीक्षा कनकानाम्, अस्थिरत्व ध्वजानाम्, मित्रद्वेषः कुमुदानाम्, कोशगुप्तिरसीनाम्।

माना पराभूयमाना । अथ शुकसारिकासमूह विशिनष्टि—निशेति। निशाया रजन्या अवसाने प्रबुद्धस्य जागृतस्य । तारेति। तारतारमप्युच्चैस्तरमपि पठत पठन कुर्वत । पञ्जरेति। पञ्जर भजतीति तथा तस्य । पञ्जरस्थायिन इत्यर्थ । यस्यां चेति। पूर्ववत् । अनिवृत्तिरनिर्वाणता मणिप्रदीपानाम्। न तु लोकानामनिवृत्तिरनुपरम । 'निवृत्ति स्यादुपरमे' इति कोश.। कश्चित् 'अनिर्वृति' इति पाठ.। तत्र निर्वृति सुखम्। शेष पूर्ववत्। अन्तरिति। अन्तर्मध्ये तरलो मध्यमणिस्तस्य भावस्तत्ता। हाराणां मुक्ताप्रालम्बानाम्। 'नायकस्तरल' इति कोष । न तु लोकानामन्तश्चित्ते तरलता चाञ्चल्यम्। 'तरल कम्पन कम्प्रम्, इति कोश । अस्थितिरिति। अस्थितिस्तालल्यादिष्वनवस्थान सगीतमुरजध्वनीनां प्रेक्षणार्थप्रयुक्तगीतनृत्यवाद्यमृदङ्गशब्दानाम्। न तु लोकानामस्थितिरमर्यादा। द्वन्द्ववियोग इति। द्वन्द्वस्य स्त्रीपुरुषरूपस्य वियोगो विघटन चक्रनाम्ना द्वन्द्वचराणाम्। न तु लोकाना द्वन्द्वेन युद्धेन वियोग स्त्रीपुरुषविश्लेष । वर्ण इति। वर्णो वणिका तस्या परीक्षा परीक्षण कनकाना सुवर्णानाम्। न तु लोकाना वर्णा ब्राह्मणाद-यस्तेषां परीक्षा वर्णसाकर्याभावात् । अस्थिरत्वमिति। अस्थिरत्व चञ्चलत्वं ध्वजानां केतूनाम्। न तु लोकाना चाञ्चल्यम्। मित्रद्वेष इति। मित्र सूर्यस्तेन सह द्वेषोऽप्रीति कुमुदानां कैरवाणाम्। चन्द्रविकासित्वात्। न तु लोकाना मित्रेण सुहृदा द्वेष । कोश इति कोश प्रतीकार (?) स्तत्र गुप्तिर्गोपनमसीना खड्गानाम्। न तु लोकाना कोशस्य भाण्डारस्य

के आभूषणों के शोर के कारण स्पष्ट पहचाने नहीं जाते (सुनाई नहीं पड़ते)। और उस नगरी मे मणिरूप दीपको का ही (जलने से) उपराम नहीं होता वे सदा प्रज्वलित रहते हैं, (जहाँ तक मनुष्यों का सम्बन्ध है उनका तो बुरे कार्यों से उपराम है ही) वहाँ अन्तस्तरलता[1] (एक केन्द्रीय मणि रखना) है अवश्य, परन्तु वह केवल हारों की है (लोगों के मन तरल अर्थात् अस्थिर नहीं हैं), वहाँ स्थिरता का अभाव (अर्थात् परिवर्तन) केवल सगीत में बजाये गये ढोलो के शब्दो का है, (मनुष्यों में उचित आचरणों के नियमों की शिथिलता नहीं पायी जाती), जोड़ियों का वियोग केवल चक्रवाको का ही होता है (मानवों का नहीं), वर्ण अर्थात् रग की जाँच होती है परन्तु केवल सुवर्ण की ही, (लोगों के वर्णों की जाँच करने की आवश्यकता वर्णसकरता न होने के कारण, नहीं होती), अस्थिरता केवल पताकाओं की ही है, (मनुष्यों के हृदय चचल नहीं), मित्र अर्थात् सूर्य के प्रति घृणा केवल रात्रि कमलों की ही है (जनसाधारण में मित्रों का परस्पर द्वेष नहीं है) और कोश मे (म्यान मे) छिपाये जाने की अवस्था तलवारों के सम्बन्ध में ही है, (मनुष्यों मे चोर आदि के भय से धन को कहीं छिपाने की आवश्यकता नहीं होती)। (उस नगरी

१ 'तरल' का अर्थ यहाँ हार की केन्द्रीय मणि है।

किं बहुना। यस्यां सुरासुरचूडामणिमरीचिचुम्बितचरणनखमयूखः निशितशूलदारितान्धकमहासुरः, गौरीनूपुरकोटिघृष्टशेखरचन्द्रशकलः,त्रिपुरभस्मरजःकृताङ्गरागः, मकरध्वजध्वसविधुरया रत्या प्रसादयन्त्या प्रसारितकरयुगविगलितवलयनिकरार्चितचरणः प्रलयानलशिखाकलापकपिलजटाभारभ्रान्तसुरसिन्धुरन्धकारातिः भगवान्, उत्सृष्टकैलासवासप्रीतिर्महाकालाभिधानः स्वयं वसति।

गुप्ति । किं बहुनेति। किं बहुजल्पितेनेत्यर्थ । यस्या नगर्यां महाकाल इत्यभिधान यस्य स देव स्वय साक्षाद्वसति। त विशिनष्टि—सुरेति। सुरासुराणां यश्चूडामणि शिरोरत्न तस्य मरीचय किरणास्तैश्चुम्बिता स्पृष्टाश्चरणनखाना मयूखा यस्य स । निशितेति। निशित तीक्ष्णं यच्छूल शस्त्रविशेषस्तेन दारितो भिन्नोऽन्धकमहासुरो येन स तथा। गौरीति। गौरी मानवती तस्या सान्त्वनावसरे तन्नूपुरस्य या कोटिस्तस्य घृष्ट घर्षणा प्रापित शेखरेऽवतसे चन्द्रशकल यस्य स तथा। त्रिपुरेति। त्रिपुरस्य त्रिपुरदैत्यस्य यद्भस्मरजस्तेन कृतो विहितोऽङ्गरागो भस्मोद्धूलन येन स । तं स्वयमेव भस्मीकृत्य तेनाङ्गरागो विहित इति भाव । मकरेति। मकरध्वजस्य कदर्पस्य यो ध्वसो दाहस्तेन विधुरया दु खितया रत्या मदनस्त्रिया प्रसादयन्त्या ईश्वरमिति शेष । तया प्रसारित विस्तारित यत्करयुगं हस्तयुग तस्माद्विगलितानि निपतितानि यानि वलयानि कङ्कणानि तेषां निकर समूहस्तेनार्चितौ पूजितौ चरणौ पादौ यस्य स । प्रलयेति। प्रलयसबन्ध्यनलो वह्निस्तस्य शिखा ज्वालास्तासा कलाप समूहस्तेन कपिल पिङ्गलो यो जटाभार सटासमूहस्तेन भ्रान्ता भ्रस्ता सुरसिन्धुर्गङ्गा यस्मात्स तथा। अन्धकारातिरन्धकनाम्नो दैत्यस्याराति शत्रुर्भगवान्माहात्म्यवान्। उत्सृष्टेति। उत्सृष्टा त्यक्ता कैलासवासप्रीती रजताद्र्यवस्थानस्नेहो येन स ।

की स्तुति में) और अधिक क्या कहें, वहाँ तो 'महाकाल' नाम वाले अन्धक शत्रु भगवान् शिव अपनी कैलाशवास की प्रीति को छोड़कर स्वय विराजते हैं, वही महाकाल कि जिनके चरणों के नखों की किरणों को सुरों तथा असुरों (दोनों) के मुकुटों की मणियाँ (जब वे प्रणाम करते हैं तब) चूमती हैं (छूती हैं), जिसने अपने पैने त्रिशूल से अन्धक नाम के बड़े राक्षस को चीर डाला था (अर्थात् मारा था) जिसके सिर पर के चन्द्र का प्रकाश पार्वती के नूपुर के किनारों से खुरेंचा हुआ था,[1] (असुरों के तथा उस द्वारा जलाये गये) तीन नगरों की भस्म को जिसने अपने शरीर पर रमाया हुआ है, (उसके हाथों) कामदेव के विनाश से दुःखी तथा (शिवजी को) प्रसन्न करती हुई रति द्वारा फैलाये हुए दोनों हाथों से (उन पर गिरते) खिसकते कंकणों द्वारा जिसके पाँवों की पूजा की गयी है, और जिसकी प्रलय-कालीन अग्नि की शिखाओं-सरीखी, कपिल, घनी, जटाओं में देवनदी गगा प्रलय के समय घूमती फिरी थी।

---

१ जिसका शेखर (अर्थात् शिरोभूषण) रूपी चन्द्रखण्ड ' ' यह अर्थ अधिक स्पष्ट है।

तस्यां चैवंविधायां नगर्यां नलनहुषययातिधुन्धुमारभरतभगीरथदशरथप्रतिमः, भुजबलार्जितभूमण्डलः, फलितशक्तित्रयः, मतिमान्, उत्साहसंपन्नः नीतिशास्त्राखिन्नबुद्धिः, अधीतधर्मशास्त्रः, तृतीय इव तेजसा कान्त्या च सूर्याचन्द्रमसो, अनेकसप्ततन्तुपूतमूर्तिः उपशमितसकलजगदुपप्लवः, विहाय कमलवनान्यवगणय्य नारायणवक्षःस्थलवसतिसुखमुत्फुल्लारविन्दहस्तया शूरसमागमव्यसनिन्या निर्व्याजमालिङ्गितो

तस्यां चेति। तस्यां नगर्याम् उज्जयिन्याम्। एवमिति। एवंविधायां पूर्वोक्तप्रकारेण व्यावर्णितस्वरूपायां तारापीडो नाम राजाभूदिति दूरेणान्वयः। अथ च तमेव विशिनष्टि—तत्र प्रथमान्तानि सर्वाण्यपि राजविशेषणानि। नलो नैषधः, नहुषो नृपविशेषो योऽगस्तिशापादजगरो जातः, ययातिर्यदुपिता, धुन्धुमारः कुवलाश्वः, भरतो दौष्यन्तिः, भगीरथः सगरपौत्रः, दशरथो रामपिता, एतेषां प्रतिमः सदृशः। 'प्रख्यः प्रकारः प्रतिमः' इति कोशः। भुजेति। भुजबलेन बाहुबलेनार्जितमुपार्जितं भूमण्डलं पृथ्वीमण्डलं येन स तथा। फलितं संजातफलं शक्तित्रयं यस्य स तथा। प्रभुशक्तिर्मन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिश्चेति शक्तित्रयम्। मतिमान्बुद्धिमान्। उत्साहः प्रगल्भता तेन सम्पन्नः सहितः। नीतीति। नीतिशास्त्रे व्यवहारग्रन्थेऽखिन्ना अकुण्ठिता बुद्धिः प्रतिभा यस्य स तथा। धर्म इति। अधीतं पठितं धर्मशास्त्रं येन स तथा। सूर्येति। सूर्याचन्द्रमसो शशिभास्करयोस्तृतीय इव। 'देवताद्वन्द्वे पूर्वपदस्य दीर्घः' इति दीर्घः। केन तेजसा कान्त्या च। तत्र तेजः प्रकाशः कान्तिश्चन्द्रिका। राज्ञि तेजः प्रतापः, कान्तिः शोभा देहदीप्तिर्वा। अनेकेति। अनेके ये सप्ततन्तवो यज्ञास्तैः पूता पवित्रा मूर्तिः शरीरं यस्य स तथा। प्रयाजादीनि षडङ्गानि सप्तमं प्रधानमिति सप्ततन्तवः। उपशमितेति। उपशमितः शान्तिं प्रापितः सकलजगतः समग्रविष्टपस्योपप्लव उपद्रवो येन स तथा। प्रकारान्तरेण तमेव विशेषयन्नाह—विहायेति। कमलवनानि नलिनखण्डानि विहाय त्यक्त्वा। नारायणस्य कृष्णस्य यद्वक्षःस्थलं भुजान्तरस्थलं तत्र या वसतिर्निवासस्तस्माद्यत्सुखं सातं तदवगणय्यावगणनां कृत्वा। उदिति। उत्फुल्लं विकसितं यदरविन्दं कमलं तद्धस्तौ यस्याः स तथा। शूरेति। शूरेण सुभटेन यः समागमः संबन्धस्तस्मिन्व्यसनमासक्तिर्विद्यते यस्याः स तया लक्ष्म्या श्रिया निर्व्याज

उस ऐसी नगरी मे नल, नहुष, ययाति, धुन्धुमार, भरत, भगीरथ और दशरथ सरीखा तारापीड नाम का राजा था। उसने अपनी दो भुजाओं के बल से सारी पृथ्वी को जीत लिया था। वह अपनी तीनों शक्तियों (प्रभुशक्ति—वैयक्तिक महत्ता—उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति) का (पूरा) फल भोग रहा था। वह बुद्धिमान् और उत्साही था। उसकी बुद्धि नीतिशास्त्र मे कभी नहीं लड़खड़ायी थी, धर्मशास्त्र उसने पढ लिये थे। अपने तेज तथा सौन्दर्य के कारण वह सूर्य तथा चन्द्रमा की जोड़ी मे तीसरा था। अनेक यज्ञों से उसका शरीर पवित्र था। उसने (अपने शासनाधीन) सम्पूर्ण जगत् के कष्टों को शान्त कर दिया था। (अपने सामान्य निवासस्थान) कमलवनों को छोड़कर, और विष्णु के वक्ष स्थल मे निवास के सुख की अवहेलना करके, हाथ मे खिले कमल को धारण किये हुई, वीर पुरुष से मिलने की इच्छा रखती हुई

लक्ष्म्या, महामुनिजनसंसेवितस्य मधुसूदनचरण इव सुरसरित्प्रवाहस्य, प्रभवः सत्यस्य, शिशिरस्यापि रिपुजनसंतापकारिणः, स्थिरस्यापि नित्यं भ्रमतो, निर्मलस्यापि मलिनीकृतारातिवनितामुखकमलद्युतेरतिधवलस्यापि सर्वजनरागकारिणः, सुधासूतेरिव सागर उद्भवो यशसः, पाताल इवाश्रितो निजपक्षक्षतिभीतैः क्षितिभृत्कुटिलैः, ग्रहगण इव

निष्कपटमालिङ्गित उपगूहित । सत्यस्य प्रभव उत्पत्तिस्थानम् । तत्रोपमानमाह—महेति । महामुनिजना वसिष्ठादयस्तै ससेवितस्य पर्युपासितस्य सत्यस्य प्रभव । कस्य क इव । सुरसरित्प्रवाहस्य स्वर्धुनीरयस्य मधुसूदनचरण इव हरिपाद इव । यथा हरे पाद स्वर्धुन्या उत्पत्तिस्थान तथायमपि सत्यस्येति भाव । विरोधोक्त्या तमेव विशेषयन्नाह—यश इति । यशस श्लोकस्योद्भव उत्पत्तिस्थानम् । तत्रोपमानमाह—सुधासूतेरिति । सुधासूतेश्चन्द्रस्य सागर समुद्र इव । 'अब्धिजश्चन्द्र' इति कविरूढि । अथ च चन्द्रयशसो साम्यं प्रदर्शयस्तद्विशेषणान्याह—शिशिरेति । शिशिरस्यापि शीतलस्यापि रिपुजना वैरिजना विरहिजना वा तेषा सतापो दाहस्तत्कारिण इति विरोध । तत्परिहारस्तु सतापश्चित्तोद्वेग इत्यर्थात् । स्थिरेति । स्थिरस्यापि निश्चलस्यापि नित्य सर्वकाल भ्रमतो गच्छत । 'सर्वदिग्गामुक यश' इति कविरूढेर्विरोध । तत्परिहारस्त्वाकल्पान्तस्थायित्वात्स्थिरो नित्य इत्यर्थात् । निर्मलेति । निर्मलस्यापि गतमलस्यापि मलिनीकृता कश्मलीकृता आरातिवनितामुखान्येव कमलानि मुखवत्कमलानि वा तेषां द्युतिर्येनेति विरोध । तत्परिहारस्तु निर्मलस्य स्वच्छस्येत्यर्थात् । अत्र यश शब्दस्य नित्यनपुसकत्वात्तद्विशेषणे द्युतिपदे न नुमागम. । 'दधिदूर्वादौ मङ्गले' इतिवद् बहुव्रीहि. । अतीति ।

लक्ष्मी ने इसका स्पष्ट प्रेम से आलिंगन किया हुआ है । वह महामुनियों द्वारा अभ्यस्त सत्य का ऐसे ही स्रोत है, जैसे कि महामुनियों द्वारा (स्नानार्थ) सेवित सुरनदी (गगा) की धारा का स्रोत विष्णु भगवान् का चरण है । जैसे सागर चन्द्रमा का उत्पत्ति स्थान है वैसे ही यश का स्रोत है, उस यश का जो शीतल (हर्षदायक) होते हुए भी उसके शत्रुओं के सन्ताप का कारण है (चन्द्रमा अपने शत्रुभूत चोर सदृश व्यक्तियों का सन्तापकारी है), वह यश जो स्थिर (अर्थात् कभी कम न होता हुआ) रहता हुआ भी सदा भ्रमणशील (सर्वत्र फैलने वाला) है, (चन्द्रमा स्थिर अर्थात् सदा विद्यमान रहता हुआ भी प्रतिदिन आकाशमें भ्रमण करता है), यश विशुद्ध होता हुआ भी शत्रुललनाओं के मुखों रूपी कमलों की काति को (युद्ध में मारे हुए शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं से) मैला किये हुआ था, (चन्द्रमा स्वय स्वच्छ है तो भी यह कमलों की काति को अन्धकारमय कर देता है—रात्रि मे दिन कमल बन्द हो जाते हैं), और यश यद्यपि अत्यन्त श्वेत था तथापि उसने अपनी सारी प्रजाओं (के हृदयों में) लाली—अर्थात् अनुराग उत्पन्न कर लिया था, (चन्द्रमा सभी जनों के हृदय में लाली—अर्थात् उत्कट प्रेम उत्पन्न कर देता है) । अपने पक्ष (अर्थात् उद्देश्य) का विनाश हो जायगा, इस आशका से डरे राजाओं के कुल उसका आश्रय इसी प्रकार लिये हुए थे (उसके आधीन हो गये थे) जैसे कि अपने पखों के विनाश से डरे हुए पर्वत समूह पाताल का आश्रय लिये

बुधानुगतः, मकरध्वज इवोत्सन्नविग्रहः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, पशुपतिरिव महासेनानुयातः, भुजगराज इव क्षमाभरगुरुः, नर्मदाप्रवाह इव महावंशप्रभवः, अवतार इव धर्मस्य, प्रतिनिधिरिव पुरुषोत्तमस्य, परिहृतप्रजापीडो राजा तारापीडोऽभूत्।

अतिधवलस्याप्यतिशुक्लस्यापि सर्वजनाना समग्रलोकाना रागकारिण इति विरोध । तत्परिहारस्तु राग स्नेहस्तत्कारिण इत्यर्थात् । अत्र सर्वत्रापिशब्दो विरोधद्योतको विशेषोक्तिर्वा । **पातालेति** । पाताल रसातल तद्वदिव । उभयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—**आश्रित इति** । क्षितिभृतो राजान पर्वताश्च तेषु कुटिला वक्रास्तैराश्रित आसेवित । उभय विशिनष्टि—**निजेति** । निजा आत्मीया ये पक्षाः स्वजना वाजाश्च तेषा क्षिति क्षयस्तया भीतास्त्रस्तास्तै । नृपा स्वराज्यक्षयभीत्या तमाश्रिता । पर्वतास्तु पक्षक्षयभीता रसातलमिति भाव. । **ग्रह इति** । ग्रहा नक्षत्राणि तेषां गण समूहस्तद्वदिव । सर्वत्रैकविशेषणेन विशेषयन्नाह—**बुधेति** । बुधा पण्डितास्तैरनुगत सहित । तदुक्तम्—'व्यवहारान्नृप पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणै सह' इति । पक्षे बुध सौम्य । **मकरेति** । मकरध्वज कन्दर्पस्तद्वदिव । **उत्सन्नेति** । उत्सन्न उच्छेद प्राप्तो विग्रह शरीर यस्य स तथा । पक्षे विग्रहो युद्धादिकलह । दशरथ इव दशरथो रामपिता तद्वदिव । **सुमित्रेति** । सुष्ठु शोभन यन्मित्र सुहृत्तेनोपेत सहित । पक्षे सुमित्रा लक्ष्मणजननी । **पश्विति** । पशुपतिरीश्वरस्तद्वदिव । **महेति** । महती या सेना सैन्यं तयानुयातोऽनुगतः । पक्षे महासेन षण्मुख । **भुजगेति** । भुजगराजोऽनन्तस्तद्वदिव । **क्षमेति** । क्षमा क्षान्तिस्तस्या भरो भारस्तेन गुरुर्गरीयान् । पक्षे क्षमा पृथ्वी । शेषेण स्वपृष्ठे वसुधा धृतेति लोकरूढि । **नर्मदेति** । नर्मदा मेकलाद्रिजा तस्या प्रवाहो रयस्तद्वदिव । **महेति** । महावंशो महत्कुल तस्मात्प्रभव उत्पत्तिर्यस्य स तथा । पक्षे महावंशो महावेणु । वंशमूलान्नर्मदाप्रवाह प्रादुर्भूत इति लोकोक्ति । अवतार इव धर्मस्य श्रेयसोऽवतार इव जन्मान्तरमिव । **प्रतीति** । पुरुषोत्तमस्य विष्णो प्रतिनिधि प्रतिभास इव । **परीति** । परि सामस्त्येन हृता ध्वजा प्रजापीडा प्रकृतिपीडा येन स तथा । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त ।

है। ग्रह मण्डल के पीछे जैसे बुध ग्रह चलता है वैसे ही बुद्धिमान् उसका अनुगमन करते थे। वह युद्धों की सारी (सम्भावनाओं) को नष्ट किये हुआ था। वह राजा (शिवजी द्वारा विनष्ट देह, कामदेव के समान था। अपनी पत्नी सुमित्रा से युक्त दशरथ की भाँति वह सुमित्रोपेत अर्थात् विश्वस्त मित्रों से युक्त था। (अपने पुत्र) कार्तिकेय द्वारा अनुगत शिवजी की भाँति वह भी एक महती सेना द्वारा अनुगत होने से 'महासेनानुगत' था। पृथ्वी के भार से दबे नागराज शेष की भाँति वह भी क्षमाभारगुरु—अर्थात् अपनी अत्यन्त क्षमाशीलता के कारण गौरवान्वित था। ऊँचे बाँसों के झुण्ड से निकली नर्मदा नदी की भाँति वह अत्यन्त यशस्वी कुल से उत्पन्न होने के कारण महावंशप्रभव था। धर्म का मानो वह अवतार था, और विष्णु का मानो प्रतिनिधि था। उसने प्रजाओं के सारे कष्ट दूर कर दिये थे।

यस्तमःप्रसरमलिनवपुषा पापबहुलेन कलिकालेन चालितमामूलतो धर्मं दशाननेनेव कैलास पशुपतिरिवावष्टभ्य पुनरपि स्थिरीचक्रे। य च रतिप्रलापजनितदयार्द्रहृदयहरनिर्मितमपर मकरकेतुममस्त लोकः। य च जलनिधितरंगधौतमेखलात्पत्रान्तर्विचारितारागणद्विगुणिततटतरुकुसुमप्रकारादुद्यदिन्दुबिम्बविगलदमृतबिन्द्वासारार्द्र-

---

स य इति। य. तारापीड पशुपतिरिव कलिकालेन दशाननेनेव आ मूलत मूलं बुध्नम् आ मर्यादीकृत्य चालित कम्पित धर्ममवष्टभ्यावष्टम्भ दत्वा कैलासमिव पुनरपि स्थिरीचक्रे दृढीचकार। अथ कलिकालविशेषणानि—तम इति। तमोऽज्ञान तस्य प्रसर प्रसरण तेन मलिन कश्मलं वपु शरीर यस्य स तथा तेन। पापेति। पापेनैनसा बहुलेन दृढेन। 'बहुल दृढम्' इति कोश। यं चेति। य तारापीड लोको जनोऽपर भिन्न मकरकेतु मदनममस्ताभिमतवान्। तमेव विशिनष्टि—रतीति। रते प्रलापेन परिदेवनेन जनितोत्पादिता या दया करुणा तयार्द्रं स्विन्न हृदय चेतो यस्यैवभूतो यो हर शम्भुस्तेन निर्मित विहितम्। यं चेति। य राजानम्। आशैलेति। उदयनाम्न आ शैलात् उदयाचल शैलम् आ मर्यादीकृत्य। आ मन्दरादिति। मन्दर मेरुमा मर्यादीकृत्य। आगन्धमादनादिति। गन्धमादन पर्वतमा मर्यादीकृत्य। पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरमवधीकृत्येति भाव। अवनिपा राजान प्रणेमुर्नमश्चक्रुरित्यन्वय। अथोदयाद्रिं विशेषयन्नाह जलेति। जलनिधि समुद्रस्तस्य तरगा कल्लोलास्तैर्धौता क्षालिता मेखला मध्यभागो यस्य स तथा तस्मात्। पत्रमिति। पत्राणा पर्णानामन्तर्मध्ये विचारी गमनशीलो यस्तारागणो नक्षत्रसमूहस्तेन द्विगुणितोऽधिकीभूतस्तटतरूणा भृगुवृक्षाणा कुसुमप्रकर पुष्पसमूहो यस्मिन्स तथा तस्मात्। उद्यदिति। उद्यदुदय प्राप्नुवद्यदिन्दुबिम्ब तस्माद्विगलन्त स्रवन्तो येऽमृतबिन्दव पीयूषविप्रुषस्तल्लक्षणो य आसारो मेघज तमस्तेनार्द्रा अशुष्काश्चन्दना मलयजा

उसने अज्ञान के विस्तार से कलुषित शरीर वाले तथा पापभरे कलियुग से आमूलचूल हिलाये गये धर्म को पकड़ कर इस प्रकार पुन. स्थापित कर दिया था जैसे कि शिवजी ने अन्धेर के ढेर सरीखे काले' शरीर वाले तथा अनेक पाप-कर्मों के कर्ता रावण द्वारा नींव तक हिलाये गये कैलाश पर्वत को सहारा देकर स्थिर कर दिया था। (वह इतना सुन्दर था कि) लोगों ने उसको रति के विलाप से उत्पन्न दया से द्रवित हृदय शिव जी द्वारा बनाया गया दूसरा कामदेव समझा और (उसकी) अभ्यर्थना के समय जोड़े हुए कमल कलियों सरीखे हाथों द्वारा विषम बने हुए सिरों वाले, (उसके) पावो के नखो की किरणों द्वारा गुँथी हुई मुकुटस्थ आभूषणभूत पत्तो की सधियो वाले, भय से आक्रान्त होने के कारण चञ्चल कनीनिकाओं वाले अपने भुजबल से जीते हुए राजाओं ने उसको प्रणाम किया था। (उन राजाओं ने प्रणाम किया था) जो (पूर्वी) समुद्र की लहरों से धोयी गयी मेखला (मध्यभाग) वाले, उसके पत्तों के भीतर विचरणशील नक्षत्र-समूहो से दुगने हुए, किनारे पर स्थित वृक्षों के पुष्पसमूहो वाले, (इस पर) उदय होते, चन्द्रमण्डल से चूते हुए अमृत बिन्दुओं की बौछार से

चन्दनादशिशिरकररथतुरगखुरशिखरोल्लेखखण्डितोल्लसल्लवङ्गपल्लवादैरावतकरलू-
नसल्लकीकिसलयदलादाशैलादुदयनाम्नः, कपिबलविलुप्तविरललवलीलताफलादुदधिवि-
निर्गतजलदेवतावन्द्यमानराघवपादादचलपातदलितशङ्खकुलिशकलतारकितशिलातलान्न-
लकरतलाकलितशैलसहस्रसम्भूतादासेतुबन्धात्, अच्छनिर्झरजलधौततारकासार्थादमृत-
मथनोद्यतवैकुण्ठकेयूरपत्रमकरकोटिकषणमसृणितग्राव्णः सुरासुरहेलावलयितवासु-

---

यस्मिन्स तथा तस्मात्। अशिशिरेति। अशिशिरकर सूर्यस्तस्य ये रथतुरगा स्यन्दनहयास्तेषा खुरा शफास्तेषा शिखरेण प्रान्तेन य उल्लेख सबन्धस्तेन खण्डिता द्विधाकृता इव उल्लसन्तो लवङ्गपल्लवा यस्मिन्स तथा तस्मात्। ऐरावत इति। ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य य कर शुण्डा तेन लूनानि छिन्नानि सल्लकी गजप्रिया तस्या किसलयदलानि यस्मिन्नेवंविधादाशैलादुदयनाम्न इति प्रागेवोक्तम्। इत सेतुबन्धविशेषणानि। कपीति। कपिबलेन वानरसैन्येन विलुप्तानि लोप प्रापितानि विरला तुच्छा या लवलीनाम्नी लता वल्ली तस्या फलानि यस्मिन्स तथा तस्मात्। उदधीति। उदधे समुद्राद्विनिर्गता या जलदेवता जलाधिष्ठात्री तया वन्द्यमानौ नमस्क्रियमाणौ राघवस्य रामचन्द्रस्य पादौ चरणौ यस्मिन्स तथा तस्मात्। अचलाना पर्वताना य पातस्तेन दलितानि भिन्नानि यानि शङ्खकुलानि जलजसमूहानि तेषा शकलै तारकित सजाततारक शिला-तल यस्मिन्स तथा तस्मात्। नलेति। नलेत्युपलक्षण नीलजाम्बवत्प्रमुखानाम्। तेन नलादीना वानराणा यानि करतलानि तैराकलितं व्याप्त यच्छैलसहस्र पर्वतसहस्र तेन सभूतान्निष्पन्नात्सेतु-बन्धात्समुद्रबन्धादित्यर्थ। लङ्कायां गच्छता रामचन्द्रेण समुद्रबन्धनं विहितमिति लौकिका। अथ मन्दरविशेषणानि—अच्छमिति। अच्छ निर्मल यस्मिन्निर्झरजलमिति निर्झरो झरस्तस्य जल

गीले हुए चन्दन-वृक्षों वाले, उष्ण किरण सूर्य के रथ में जुते हुए घोड़ों के खुरों के किनारों से टकरा कर (टक्कर खाकर) टूटे हुए, चमकते लवग पौधों के पत्तों वाले और (उसपर प्रायः आने वाले) ऐरावत की सूँड द्वारा तोड़े गये सल्लकी-किसलयों वाले, उदय नाम के पर्वत तक (पूर्व में फैले) प्रदेश से आये थे। (वे राजा) (राम के आतिथेय) वानरों की सेना द्वारा (खाने के लिये) तोड़े गये (और इसी कारण) छीदे हुए, लवली लताओं के फलों वाले, (राम के चरणों को पूजने के लिये) समुद्र से निकले जल देवताओं द्वारा नमस्कृत राम चरणों वाले, पर्वतों के गिरने से छिन्न भिन्न शखों के (बिखरे) टुकड़ों के कारण नक्षत्रों से युक्त से प्रतीत होते शिलातलों वाले और (यथास्थान रखने के लिये) नल द्वारा अपने हाथों में पकड़े गये हजारों पर्वतों में से उत्पन्न (पर्वतों से निर्मित) (राम के सेतु) सेतुबन्ध के प्रदेश से (अर्थात् दक्षिण से) आये थे। वे (दक्षिणस्थ) उस मन्दार पर्वत से आये थे जिसने (समुद्र मथने के समय आकाश में ऊपर को उछाले गये (अपने) स्वच्छ, नदिका-जलों द्वारा नक्षत्र समूहों को धो दिया था, अमृत के लिये (समुद्र को) मथने मे व्यस्त विष्णुभगवान् के केयूरों पर खुदी हुई (अलङ्कारभूत) मकराकृतियों की नोकों से रगड़ खाकर जिसके पत्थर चिकने हो गये थे, देवताओं तथा राक्षसों द्वारा खेल ही खेल में (बिना किसी कष्ट के ही लपेटे हुए

किसमाकर्षणप्रारम्भचलितचरणभरदलितनितम्बकटकादमृतसीकरसिक्तसानोरामन्द्-रात्, नरनारायणचरणमुद्राङ्कितबदरिकाश्रमरमणीयात्कुबेरपुरसुन्दरीभूषणरवमुखरात्सप्तर्षिसंध्योपासनपूतप्रस्रवणाम्भसो वृकोदरोद्दलितसौगन्धिकखण्डसुगन्धिमण्डलादागन्धमादनात्, सेवाञ्जलिकमलमुकुलदन्तुरैः शिरोभिश्चरणनखमयूखग्रथितमुकुटपत्रलताग्रन्थयो भयचकिततरलतारदृशो भुजबलविजिताः प्रणेमुरवनिपाः।

पानीयं तेन धौता क्षालितास्तारकासार्था नक्षत्रसमूहा यस्मिन्स तथा तस्मात्। अमृतेति। अमृत पीयूषं तदर्थं यन्मथनम्। समुद्रस्येति शेष। तत्र उद्युक्तो यो वैकुण्ठ कृष्ण। स हि मथनवेलायां पुरः स्थितं मन्दरमालिङ्ग्य स्थित। तस्य यत्केयूरपत्रभङ्गदपत्र तस्य या मकरकोटिस्तस्या यत्कर्षणं घर्षणं तेन मसृणिता श्लक्ष्णीकृता ग्रावाण शिला यस्मिन्स तथा तस्मात्। सुरेति। सुरा देवा, असुरा दैत्या तैर्हेलया क्रीडया एकोत्साहेन वा वलयितो वलयाकारतां प्रापितो यो वासुकिर्नागराजस्तस्य यत्समाकर्षणं तस्य य प्रारम्भ उपक्रमस्तस्माच्चलित स्वस्थानाच्च्युतो यश्चरणभर पादसमूहस्तेन दलितश्चूर्णितो नितम्बकटको यस्मिन्स तथा तस्मात्। अमृतेति। अमृतस्य पीयूषस्य ये सीकरा पृषतास्तै सिक्तानि सिञ्चितानि सानूनि शिखराणि यस्य स तथा तस्मादामन्दराचलादिति प्रागेव व्याख्यातम्। अथ गन्धमादन विशेषयन्नाह— नरेति। नरनारायणौ नामार्जुनवासुदेवौ तयोर्या चरणमुद्रा पादन्यासस्तयाङ्कितश्चिह्नितो यो बदरिकाश्रमस्तेन रमणीयात्सुन्दरात्। कुबेरेति। कुबेरपुरमलकापुरी तस्या सुन्दर्यं स्त्रियस्तासां भूषणरवेणाभरणशब्देन मुखराणि वाचालानि शिखराणि यस्मिन्स तथा तस्मात्। सप्तर्षीति। सप्तर्षीणां सन्ध्योपासनेन सन्ध्यावन्दनेन पूत पवित्र प्रस्रवणाम्भो निर्झराम्भो यस्मिन्स तथा तस्मात्। वृकोदरेति। वृकोदरेण भीमेनोद्दलित छेदित सौगन्धिकखण्डं सौगन्धिकाभिध वनं तेन सुगन्धि सुरभि मण्डल भूमिभागो यस्य स तथा तस्मात्। अत्र कथा—पाण्डवा द्यूते जिता विन्ध्याटवीं प्रविष्टा। तत्र द्रौपद्या दोहद उत्पन्न सौगन्धिककुसुमेषु। ततो भीमसेनेन गत्वा सरस्तदध्यासीन नागराजं जित्वा तत्कन्यकां चोलूप्याख्या परिणीय सौगन्धिककुसुमानि गृहीत्वा स्वाश्रममेवाययौ। गन्धमादनादिति प्रागेव व्याख्यातम्। अथ नृपान्विशेषयन्नाह— शिरोभिरिति। शिरोभिर्मस्तकैरुपलक्षिता। कीदृशै। सेवेति। सेवार्थे योऽञ्जलि स एव

वासुकि को खींचना आरम्भ करने से (आगे और पीछे की ओर) सरके (वासुकि के) पाँवों के भार से जिसके मध्य प्रदेश कुचले गये थे और (उस समय) जिसकी चोटियाँ अमृत की बूँदों से सिंच गयी थीं। और वे राजा उस गन्धमादन पर्वत से (अर्थात् उत्तर प्रदेश से) आये थे जो गन्धमादन (वहाँ पर तपस्या करते) नर-नारायण के चरणों की मुद्रा से अंकित बदरिकाश्रम से शोभायमान था, जिसकी चोटियाँ कुबेरपुरी (अलका) की सुन्दर नारियों के आभूषणों की ध्वनि से गूँजती रहती थीं, उस पर (सन्ध्योपासना करते) सप्तर्षियों की सन्ध्योपासना से पवित्र नदिकाओं का जल बह रहा था और (एकबार) भीम द्वारा उखाड़े गये सौगन्धिक (नाम के कमल) की क्यारियों से जिसका प्रदेश सुगन्धित था।

येन चानेकरत्नांशुपल्लविते व्यालम्बिमुक्ताफलजालके दिग्गजेनेव कल्पतरावाक्रान्ते सिंहासने भरेण शिलीमुखव्यतिकरकम्पिता लता इव नेमुरायामिन्यः सर्वदिशः। यस्मै च मन्ये सुरपतिरपि स्पृहयांचकार। यस्माच्च धवलीकृतभुवनतलः सकललोकहृदयानन्दकारी क्रौञ्चादिव हंसनिवहो निर्जगाम गुणगणः। यस्य चामृतामोदसुरभि-

---

कमलमुकुल तेन दन्तुरैर्विषमै। चरणेति। तस्य राज्ञश्चरणौ पादौ तयो नखा नखरास्तेषां मयूखा किरणास्तैर्ग्रथिता मुकुटे या पत्रलता तस्या ग्रन्थयो येषा ते तथा। भयेति। भयेन साध्वसेन चकिता त्रस्ता तरला कम्पना तारा कनीनिका यासामेवंविधा दृशो येषा ते तथा। भुजेति। भुजबलेन बाहुबलेन विजिता निर्जिता। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

येन चेति। येन च राज्ञा दिग्गजेनेव कल्पतरौ सिंहासने नृपासन आक्रान्ते सति भरेण भारेणायामिन्यो विस्तारवत्यः सर्वदिशो नेमु प्रणता बभूवु। का इव। लता इव व्रतत्य इव। कीदृश्य। शिलीमुखा भ्रमरास्तेषां व्यतिकर सबन्धस्तेन कम्पिता धूता। दिक्पक्षे शिलीमुखा बाणा। अथ च सिंहासनविशेषणानि—अनेकेति। अनेकानि रत्नानि तेषामशव किरणास्तै पल्लविते किसलयिते। व्यालम्बीति। व्यालम्बीन्यालम्बमानानि मुक्ताफलाना रसोद्भवानां जालकानि समूहा यस्मिन्। यस्मै चेति। अहमिति मन्ये। यस्मै राज्ञे सुरपतिरिन्द्रोऽपि स्पृहयांचकार सस्पृहोऽभूत्। 'स्पृहेरीप्सित' इति सम्प्रदानसज्ञायां चतुर्थी। इन्द्रस्पृहणीयतामाह—यस्मादिति। यस्माद्राज्ञो गुणा शौर्यादयस्तेषां गण समूहो निर्जगाम बहिर्निर्ययौ। यस्मादित्यवधौ पञ्चमी। गुणान्विशिनष्टि—धवलीति। धवलीकृतं शुभ्रीकृत भुवनतल विष्टपतल येन स तथा। सकलेति। सकललोकानां समग्रजनाना यानि हृदयानि चेतांसि तेषामानन्दकारी प्रमोदकृत्। का कस्मादिव। क्रौञ्चात्क्रौञ्चनाम्न. पर्वतैकप्रदेशाद्धसनिवह सितच्छदसमूह इव। यस्येति। चः पूर्वोक्तसमुच्चये। यस्य राज्ञ कीर्त्याभिख्यया दशसु दिक्षु मुखरितभुवन यथा स्यात्तथाभ्रम्यताम्यत। भावे रूपम्। अथ कीर्तिविशेषणानि—अमृतेति। अमृतस्य पीयूषस्य य

जब वह (राजा तारापीड), अनेक (प्रकार के) रत्नों की कोंपलों-सरीखी किरणों से आच्छादित तथा लटकते हुए मोतियों के गुच्छों वाले सिंहासन पर आरूढ हुआ तो सारी विस्तृत दिशायें मानों उसके भार से (उस समय) झुक गयी (जब) कि उसके बाणों से सम्बद्ध होकर वे ऐसे काँप गयी थीं जैसे कि जब कोई दिग्गज, रत्नों की किरणों सरीखे चमकते पत्तोंवाले और मोतियों (के गुच्छों)-सरीखे लटकते फलों वाले कल्पवृक्ष पर आक्रमण करता है तो (इसके चारों ओर उगी) सारी लताएँ उसके भार से, (उस पर से अचानक उड़े) भौंरों से सम्बद्ध होकर काँप जाती हैं। मैं समझता हूँ उससे तो देवराज इन्द्र को भी ईर्ष्या हुई होगी। और उससे, पृथ्वीतल को श्वेत करता तथा सारे लोकों के (निवासियों के) हृदयों को आनन्द देता, गुण समूह ऐसे प्रादुर्भूत हुआ था जैसे कि क्रौंच पर्वत से ऐसा ही हंससमूह निकलता है। और उसका अमृत की सुगन्ध सरीखी मीठी सुगन्ध वाला, देवताओं

परिमलया मन्दरोद्धतबहुलदुग्धसिन्धुफेनलेखयेव धवलीकृतसुरासुरलोकया दशसु दिक्षु मुखरितभुवनमभ्रम्यत कीर्त्या। यस्य चातिदुःसहप्रतापसंतापखिद्यमानेव क्षणमपि न मुमोचातपत्रच्छायां राजलक्ष्मीः। तथा च यस्य दिष्टिवृद्धिमिव शुश्राव, उपदेशमिव जग्राह, मङ्गलमिव बहु मेने, मन्त्रमिव जजाप, आगममिव न विसस्मार चरितं जनः। यस्मिंश्च राजनि गिरीणां विपक्षता, प्रत्ययानां परत्वम्, दर्पणानामभिमुखावस्थानम्,

---

आमोदस्तद्वत्सुरभिः प्रकटितः प्रकटः सुगन्धिश्च परिमलो यस्याः सा तया। 'कीर्त्या सौगन्ध्यं वर्ण्यते' इति कविसमयः। धवलीति। धवलीकृतः शुभ्रीकृतः सुरासुरलोको देवदानवलोको यया सा तया। कयेव। मन्दरेति। मन्दरेण स्वर्णाद्रिणोद्धतो दुर्दान्तो यो बहुलो दृढो दुग्धसिन्धुः क्षीरसमुद्रस्तस्य फेनोऽब्धिकफस्तस्य लेखयेव वीथ्येव। मन्थनक्षणे तयापि सुरासुरलोकः शुभ्रीकृत इति तदुपमानमिति भावः। यस्य चेति। यस्य राज्ञो राजलक्ष्मी राज्यश्रीरातपत्रस्य छत्रस्य छायामातपाभावलक्षणं क्षणमपि निमेषमात्रमपि न मुमोच न तत्याज। तपश्चाक्रान्ताया एव शीतलस्थलाश्रयणं स्यादित्याशयेनाह—अतीति। अतिदुःखेन सोढुं शक्योऽतिदुःसहः एवंविधो यः प्रतापः कोशदण्डजनितं तेजस्तस्माद्यः संतापो घर्मस्तेन खिद्यमानेव पीड्यमानेव। अथ पञ्चक्रियाणामेकेनैव कर्त्रा संबन्धं दर्शयन्नाह—तथाचेति। यस्य राज्ञश्चरितं शौर्यविस्फूर्जितं दिष्टिवृद्धिमिव भाग्याभ्युदयमिव जनो लोकः शुश्रावाकर्णितवान्। उपदेशमिव गुरुनिदेशमिव जग्राह गृहीतवान्। मङ्गलमिव श्वोवसीयमिव बहु मेने सर्वाधिकत्वेन ज्ञातवान्। मन्त्रो देवताधिष्ठातृकस्तमिव जजाप जपितवान्। आगमः सिद्धान्तस्तमिव न विसस्मार न विस्मृतवान्। जन इत्यस्य सर्वत्र संबन्धः। यस्मिंश्चेति। यस्मिंस्तारापीडे राजनि। 'ङिश्योर्वा' इति वाकारलोपः। इदं पृथिव्यामासीत्। तदेव दर्शयति—गिरिरित्यादि। गिरीणां पर्वतानां विपक्षता पक्षराहित्यम्। इन्द्रेण पक्षारिछन्ना गिरीणामिति प्रागेवोक्तम्। न तु लोकानां विपक्षता दस्युता।

तथा राक्षसों के समूह को श्वेत बनाये हुए (और इसीलिये) मन्दर पर्वत द्वारा मथे गये दुग्ध समुद्र के फेन को स्थूल रेखा सदृश प्रतीत होता यश संसार को गुंजाता (लोगों में उसके गुणों की चर्चा करवाता) चारों दिशाओं में घूम रहा था। और उसकी राजश्री ने, मानो उसके अत्यन्त असह्य प्रताप की उष्मा से दुःख पाती हुई ने, उसके (राजकीय) छत्र की छाया को एक क्षणभर के लिये भी कभी नहीं छोड़ा था। और लोग उसके कृत्यों को ऐसे सुनते थे जैसे कोई बधाई के शब्दों को प्रसन्नता से सुनता है, (गुरु से मिले हुए) उपदेश की भाँति उनको ग्रहण करते थे, माङ्गलिक पदार्थों की भाँति उनका आदर करते थे, मन्त्रों की भाँति (आदर से) उनका जाप करते थे, (पवित्र) आगमों की भाँति उनको कभी नहीं भूलते थे। और जब वह राजा था तब पक्षविहीनता केवल पर्वतों की ही थी, (लोगों में परस्पर घृणा की भावना अथवा विरोधभाव नहीं था), केवल प्रत्यय ही ऐसे थे जिनमें 'परत्व'—शब्दों के पश्चात् आने का गुण—था (अन्यत्र कहीं भी 'परत्व'—द्वेषभाव नहीं था), केवल दर्पण ही सम्मुख रखे जाते थे—या होते थे—(और कोई भी किसी का विरोध करने के लिये

शूलपाणिप्रतिमाना दुर्गाश्लेषः, जलधराणा चापधारणम्, ध्वजानामुन्नतिः, धनुषामवनतिः, वंशानां शिलीमुखमुखक्षतिः, देवताना यात्रा, कुसुमाना बन्धनस्थितिः, इन्द्रियाणा निग्रहः, वनकरिणा वारिप्रवेशः, तैक्ष्ण्यमसिधाराणाम्, व्रतिनामग्निधारणम्,

---

प्रत्ययाना स्वादीना परत्व प्रकृत्युपरिवर्तमानत्वम्। न तु लोकाना परत्व भिन्नत्व शत्रुत्व वा। अभिमुख जनानामवस्थीयतेऽऽनेनेत्यभिमुखावस्थानम्। कर्मणि ल्युट्। दर्पणानां मुकुराणाम्। न तु लोकानां कस्यचित्पुरत कस्याप्यवस्थानम्। सर्वेषा लक्ष्मीवत्त्वादिति भाव । शूलपाणिरीश्वरस्तस्य प्रतिमाया मूर्तेर्दुर्गा पार्वती तयाश्लेषोऽभिष्वङ्ग । न तु लोकाना दुर्गं विषमस्थल तेन सश्लेष सबन्धः। राजग्रहाभावात्। जलधराणा मेघाना चापधारणमिन्द्रधनुर्धारणम्। न तु लोकानाम्। भयाभावाच्च धनुरादानम्। ध्वजाना वैजयन्तीनामुन्नतिरूर्ध्वमुखत्वेन। न तु लोकानाम्। अहङ्कृतेरभावात्। धनुषा चापानामवनतिरवनमनम्। न तु लोकाना बलात्कारेण नति । सर्वेषां स्वाधीनवृत्तित्वात्। वशाना वेणूना शिलीमुखा भ्रमरास्तेषा मुखैराननै क्षतिश्छेद । न तु लोकानां शिलीमुखा बाणास्तै क्षति पीडा। युद्धाभावात्। 'पत्रिष्वजिह्मगशिलीमुखककङ्कपत्र' इति कोश । देवताना यात्रा क्षणविशेष । न तु लोकाना यात्रा भयादन्यत्र गमनम्। 'यात्रा स्यापने गतौ' इत्यनेकार्थे । कुसुमाना पुष्पाणा बन्धनेन ग्रथनेन स्थिति । न तु लोकाना बद्धत्वेनावस्थानम्। सर्वेषा निरपराधित्वात्। इन्द्रियाणा करणाना निग्रहो निरोध ।

अथवा भीख माँगने के लिये किसी के सम्मुख नहीं होता था), दुर्गा का आश्लेष (अर्थात् उसके साथ निकट सम्पर्क) केवल त्रिशूलधारी, शिवजी की मूर्तियों का ही था (परन्तु जनता को दुर्गों का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं होती थी), धनुष (इन्द्र धनुष) का धारण बादल ही करते थे (लोगों को तो धनुष धारण करना ही नहीं पड़ता था—वे शत्रुओं से निर्भय थे), पताकायें ऊपर लहराती थीं (वहाँ पुरुष कोई उद्धत नहीं होता था), केवल धनुष ही नीचे को झुकाये जाते थे (अनादर से अथवा शत्रुओं के भय से किसी को सिर नहीं झुकाना पड़ता था), भौंरों के मुख से बींधा जाना बाँसों का ही था (लोगों को बाणों के मुखों से नहीं बींधा जाता था), यात्रा अथवा जुलूस केवल देवताओं (के मन्दिरों) को ही जाते थे (भय से नगर से निकलने के लिये अथवा शत्रु से लड़ने के लिये—यात्राएँ नहीं होती थीं), बन्धन की अवस्था (मालाओं मे गुँथने पर अथवा अपने पुष्पकोश में बँधने पर) फूलों की ही थी (लोगों को हिरासत मे नहीं रहना होता था), दमन इन्द्रियो का ही करना पड़ता था (अपराधी न होने से और किसी को पकड़ना नहीं पड़ता था), 'वारि' मे गजबन्धनभूमि मे प्रवेश केवल हाथियो का ही होता था (लोगों को अपराध परीक्षा के लिये बाधित जल प्रवेश नहीं करना पड़ता था), पैनापन तलवार की धाराओं मे ही था (लोगों के स्वभाव तीक्ष्ण नहीं थे), व्रतधारियो को ही यज्ञाग्नि धारण करनी होती थी (अग्निपरीक्षार्थ तपे लोहे आदि के रूप मे आग नहीं पकड़नी पड़ती थी), केवल ग्रह ही तुला राशि मे प्रविष्ट होते थे (अपराध परीक्षा के लिये तुला पर नहीं चढ़ना पड़ता था),

ग्रहाणां तुलारोहणम्, अगस्त्योदये विषशुद्धिः, केशनखानामायतिभङ्गः, जलददिवसानां मलिनाम्बरत्वम्, रत्नोपलानां भेदः, मुनीनां योगसाधनम्, कुमारस्तुतिषु तारकोद्धरणम्, उष्णरश्मेर्ग्रहणशङ्का, शशिनो ज्येष्ठातिक्रमः, महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम्,

---

न तु लोकानां निग्रहो दण्ड । वनकरिणामरण्यवासिगजानां वारिप्रवेश.। यया गजबन्धन क्रियते सा वारि । 'वारि स्याद्गजबन्धनी' इति कोश । न तु लोकानां दिव्यार्थं वारिप्रवेशः। तैक्ष्ण्य छेदशक्तिरसिधाराणां खड्गाग्रभागानाम्। न तु लोकानां तैक्ष्ण्य क्रौर्यम्। व्रतिनां योगिनामग्निधारणम्। न तु लोकानामग्नौ धारणम्। ग्रहाणा नक्षत्राणां तुलारोहणं तुला राशिस्तस्यामारोहण सक्रमः। न तु लोकानां दिव्यार्थे तुलारोहणम्। अगस्त्योदयेऽगस्त्यस्य मुनेरुदये विषशुद्धिर्विषं पानीय तस्य शुद्धिः स्वच्छता। न तु लोकानां विषेण शुद्धिः कलङ्कापहार। तदुक्तम्—'सहयवप्रमाण वत्सनाभविष तेन शुद्धिर्वैश्यानाम्' इति। केशनखानामायतिर्विस्तारस्तस्या भङ्गो विच्छेद। न तु लोकानामायतिरुत्तर कालस्तस्य भङ्गो लक्षणया दु खजनकत्वम्। नित्येन तद्विच्छेदायोगात्। 'आयतिस्तूत्तर काल' इति कोश। जलदो घनाघनस्तत्कालीना ये दिवसा वासरास्तेषां मलिन कश्मलमम्बरमाकाश येषु तेषा भावस्तत्त्वम्। न तु लोकाना मलिनाम्बरत्व मलोपयुक्तवसनत्वम्। रत्नोपलानां मण्यश्मना भेद स्फोटनम्। न तु लोकानां मन्त्रभेद। मुनीनां तपस्विनां योगश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तस्य साधन यमादि। न तु लोकानां योगो विषाग्निप्रयोग कार्मण वा तस्य साधनं दुष्टमन्त्रादि। कुमार षण्मुखस्तस्य स्तुतयो नुतयस्तासु तारकस्य दैत्यस्योत्प्राबल्येन हरण नाशम्। न तु लोकानां तारका कनीनिका तस्या उद्धरणमुत्कर्षणम्। उष्ण

विष अर्थात् जल की शुद्धि अगस्त्य तारे के उदय होने पर ही होती थी (परन्तु अपराध परीक्षा के रूप मे किसी व्यक्ति को विष खाकर अपनी शुद्धि नहीं दिखानी होती थी), आयति अर्थात् बढोतरी की काट केवल (बढ़े हुए) केशों और नखों की ही होती थी (लोगों के भविष्य नहीं बिगाड़े जाते थे), वहाँ अम्बर की मलिन अवस्था (आकाश में कालापन) केवल वर्षा ऋतु के दिनों मे ही होती थी, (किन्तु व्यक्तियों के अम्बर वस्त्र मैले नहीं थे), भेद (सच्छिद्रता अथवा कटाव) रत्नों का ही होता था, (किन्तु प्रजाओं के भीतर भेदभाव अथवा विश्वासघात नहीं थे), योग साधन—योगाभ्यास तपस्वी ही करते थे, (किन्तु प्रजाओं में अपने-अपने स्वार्थ साधन के लिये योग अर्थात् विष, अग्नि आदि हानिकारक वस्तुओं का प्रयोग नहीं था), वहाँ ताड़का नाम की राक्षसी का उन्मूलन केवल कार्तिकेय की स्तुतियों में ही विद्यमान था (दण्डरूप मे कनीनिकाएँ नहीं निकाली जाती थीं), वहाँ ग्रहण लगने का भय सूर्य को ही था, (प्रजाओं को पकड़े जाने-कैद हो जाने का डर नहीं था), वहाँ केवल चन्द्रमा ही ज्येष्ठा नक्षत्र को लाघता था, (परन्तु लोग अपने ज्येष्ठ भ्राता अथवा गुरुओं के प्रति कर्त्तव्य का उल्लघन नहीं करते थे), वहाँ (दुर्योधन के भाई) दु शासन के पाप कार्य केवल महाभारत मे ही सुन पड़ते थे (परन्तु कठोर शासन के योग्य दु शासनों) अर्थात् दु साहसी दुष्टों के अपराध नहीं सुन पड़ते थे), वहाँ (सहारे के लिये) डडे का

वयःपरिणामे दण्डग्रहणम्, असिपरिवारेष्वकुशलयोगः, कामिनीकुचभङ्गेषु वक्रता, करिणा दानविच्छित्तिः, अक्षक्रीडासु शून्यगृहदर्शनं पृथिव्यामासीत्।

तस्य च राज्ञो निखिलशास्त्रकलावगाहगम्भीरबुद्धिः आशैशवादुपारूढनिर्भर-

---

रश्मे सूर्यस्य ग्रहणशङ्कोपरागशङ्का। न तु लोकानां ग्रहण नियन्त्रण तस्य शङ्कारेका। शशिनक्ष-न्द्रस्य ज्येष्ठा नक्षत्रं तस्यातिक्रमस्तदुल्लङ्घनम्। न तु लोकानां ज्येष्ठो भ्रात्रादिस्तन्निदेशोल्लङ्घनम्। महाभारते शास्त्रे दु शासनो दुर्योधनलघुभ्राता तस्य योऽपराध दुर्योधनाज्ञया दु.शासनेन द्यूते जितेषु पाण्डवेषु द्रौपदी केशेषु गृहीत्वाकृष्टेत्यपराध भागस्तस्याकर्णन श्रवणम्। न तु लोकानां दुष्ट शासन येषा ते दु शासना दुष्टमनुजास्तेषामपराधश्रवणम्। वयोऽवस्था तस्य परिणाम पक्वता तस्मिन्दण्डो यष्टिस्तस्य ग्रहणम्। न तु लोकानां दण्ड करस्तदादानम्। असिपरिवारेषु खड्गपिधानेष्वकुशलयोगो न विद्यते कुशल यस्मात्सोऽकुशल खड्गस्तेन योग सबन्ध। न तु लोकाना परिवारेषु परिच्छदेष्वकुशलमपुण्य तस्य योग। 'पर्याप्तिक्षेमपुण्येषु कुशलम्' इत्यने-कार्थ। अकुत्सित शोभन चर्म तस्य योग। अन्यत्राकुशलमक्षेम जरा तेन योगो नास्तीति वा। केचित् 'असिपरिवारेषु कलङ्कयोग' इति पठन्ति। कलङ्क श्यामिका। अन्यत्र दोष इत्यर्थ। कामिनीनां स्त्रीणा कुचभङ्गेषु पयोधरपत्ररचनाया वक्रतारालता। करिणा हस्तिना दान मदः। 'मदो दानप्रवृत्तिश्च' इति कोशः। तस्य विच्छित्ती रचना। न तु लोकाना दान वितरण तस्य विच्छित्तिर्नाश। अक्षक्रीडासु द्यूतक्रीडासु शून्यगृहदर्शन शून्यगृहावलोकनम्। खेलिन्या शून्य मित्यर्थ। न तु लोकाना शून्यस्थलदर्शनम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त.

तस्य चेति। तस्य राज्ञोऽमात्य शुकनासो नाम ब्राह्मण आसीद्बभूव। अथ प्रथमान्तानि तस्य विशेषणानि। निखिलेति। निखिलानि यानि शास्त्राणि कलाश्च तासामवगाहस्तदभिप्राया-कलन तेन गम्भीरा लब्धमध्या बुद्धि प्रतिभा यस्य स तथा। आ शैशवादा बाल्यादुपारूढ

आश्रय केवल बुढापे मे ही होता था (परन्तु लोगों द्वारा जुर्माने का ग्रहण नहीं था), वहाँ अ-कुशल अर्थात् तलवार का सयोग केवल म्यानों में ही था (किन्तु लोगो मे अकुशल अर्थात् पाप का सयोग नहीं था, (उस राजा के शासन की अवधि मे) वक्रता केवल ललनाओं के वक्षस्थलों पर विद्यमान अगों की सजावटी रेखाकृतियों मे ही विद्यमान थी मनुष्यों के स्वभावों मे कुटिलता नहीं थी), विच्छित्ति—मदजल के प्रवाह की रुकावट, केवल, हस्तियों में ही थी (लोगों द्वारा दिया जाने वाला दान नहीं रुकता था), और (जन)-शून्य गृहों (बिसात पर के खाली घरों) का दर्शन केवल जुए के खेलों में होता था, (अन्यत्र नहीं होता था)।

और उस राजा का एक मत्री शुकनास नाम का था, जो (जाति का) ब्राह्मण था। सभी शास्त्रों तथा ललित कलाओं के अध्ययन से उसकी बुद्धि अत्यन्त परिष्कृत हो गयी थी) बचपन से ही उसमें (राजा के लिये) गहरी स्नेह भावना जड़ जमा चुकी थी। वह (राजा)

प्रेमरसः, नीतिशास्त्रप्रयोगकुशलः, भुवनराज्यभारनौकर्णधारः, महत्स्वपि कार्यसकटेष्वविषण्णधीः, धाम धैर्यस्य, स्थान स्थितेः, सेतुः सत्यस्य, गुरुर्गुणानाम्, आचार्य आचाराणाम्, धाता धर्मस्य, शेषाहिरिव महीभारधारणक्षमः, सलिलनिधिरिव महासत्त्वः जरासंध इव घटितसधिविग्रहः, त्र्यम्बक इव प्रसाधितदुर्गः, युधिष्ठिर इव धर्म-

---

श्रितो निर्भरो निबिडः प्रेमरस स्नेहरसो यस्मिन्स तथा। नीतीति। नीतिशास्त्र व्यवहार-ग्रन्थस्तस्य प्रयोगस्तदर्थपरीक्षीण तत्र कुशलो दक्ष । भुवनेति। भुवनाना राज्यमाधिपत्य तस्य भारो वीवधस्तल्लक्षणा या नौर्द्रोणी तस्या कर्णधारो नाविक । महत्स्वपीति। महत्स्वपि गुरुष्वपि कार्यसकटेषु कृत्यकष्टेष्वविषण्णाविषादवती धीर्बुद्धिर्यस्य स तथा। धामेति। धैर्यस्य धीरिमाया धाम गृहम्। स्थितेर्मर्यादाया स्थान स्थलम्। सत्यस्यावितथस्य सेतुः पालि । गुणानां शौर्यादीना गुरुर्हितोपदेष्टा। आचाराणा शिष्टजनाचीर्णमार्गाणामाचार्य उपदेष्टा। धर्मस्य वृषस्य धाता प्रजापति । शेषेति। शेषाहिरनन्तस्तद्वदिव मह्या पृथ्व्या भारो वीवधस्तस्य धारणमुद्वहन तत्र क्षम इत्यभङ्गश्लेष । सलिलेति। सलिलनिधि समुद्रस्तद्वदिव। सर्वत्रैकविशेषणेनोभयं विशेषयन्नाह—महेति। महत्सत्त्व साहस यस्मिन्। पक्षे महासत्त्वा जलचारिण । जरेति। जरा राक्षसी तया साक्षात्सधितत्वाज्जरासधस्तद्वदिव। कथा चात्र—राजगृहे जरासधपित्रा बृहद्रथेन राज्ञीपुत्रार्थमाराधितेन महर्षिणा चण्डकौशिकेनाम्रफल प्रदत्तम्। सोऽर्धार्ध कृत्वा राजमहिषीभ्या दत्तवान्। तयोश्चार्धार्धशरीर बालकद्वयं जातम्। तद्दृष्ट्वा तयो कुपितेन राज्ञा श्मशानभूमौ मुक्तम्। तत्र च जरया सधितमेकत्र योजितमिति जरासधनाम सवृत्तमस्येति वार्ता। उभय विशिनष्टि—घटितेति। घटितौ विहितौ सधिविग्रहौ येन। तत्र सधि साम, विग्रहो युद्धम्। पक्षे जरया पिशाच्या घटित सधि सघटन यस्य सधिविग्रहस्य शरीरस्येति घटितसधिविग्रह यस्य जरासधस्येति द्वितीयाबहुव्रीहि । त्र्यम्बकेति। त्र्यम्बक ईश्वरस्तद्वदिव प्रसाधितेति। प्रसाधित स्वायत्तीकृत दुर्ग विषमस्थलं येन। पक्षे प्रसाधिता प्रसन्नीकृता दुर्गा पार्वती

नीतिशास्त्र के (सभी नियमों के उचित) प्रयोग में निपुण था और इस प्रकार ससार के शासन के उत्तरदायित्व रूपी नौका का मानो खेवय्या बना हुआ था। राज्य की बड़ी-बड़ी समस्याओं में भी उसकी बुद्धि कभी नहीं मारी गयी थी। वह धीरज का निवासस्थान, स्थिरता (अथवा सुव्यवस्था) का घर और (लोगों को) सत्य (के मार्ग पर ले जाने) का पुल था। वह (मानो) सदाचार के नियमों का शिक्षक था। धर्म (कर्तव्यपरायणता) का सस्थापक था। जैसे शेष नाग पृथ्वी के भार को उठाने की सामर्थ्य रखता है, वैसे ही वह पृथ्वी के (शासन के) उत्तरदायित्व को सम्भाल सकता था। समुद्र उसमे भरे बड़े-बड़े प्राणियों से युक्त होता है, वह भी महान् नैतिक बल से युक्त होने से 'महासत्त्व' था। जरासन्ध जैसे जरा राक्षसी द्वारा जोड़ों को जोड़कर बनाये गये शरीर वाला था उसने (विभिन्न अवसरों पर) सन्धियाँ तथा युद्ध किये हुए थे। दुर्गा पार्वती को सजाये हुए शिवजी की भाँति उसने दुर्ग किले-अर्जित किये हुए थे। धर्म से उत्पन्न युधिष्ठिर की भाँति वह धर्म प्रभाव अर्थात् कर्तव्य कर्मों का स्रोत था।

प्रभवः, सकलवेदवेदाङ्गवित्, अशेषराज्यमङ्गलैकसारः, बृहस्पतिरिव सुनासीरस्य, कविरिव वृषपर्वणः, वसिष्ठ इव दशरथस्य, विश्वामित्र इव रामस्य, धौम्य इवाजातशत्रो, दमनक इव नलस्य, सर्वकार्येष्वाहितमतिरमात्यो ब्राह्मणः शुकनासो नामासीत्।

यो नरकासुरशस्त्रप्रहारभीषणे भ्रमन्मन्दरनितम्बनिर्दयनिष्पेषकठिनासपीठे नारायणवक्षःस्थलेऽपि स्थितामदुष्करलाभाममन्यत प्रज्ञाबलेन लक्ष्मीम्। य चासाद्य

येन स तथा। युधिष्ठिर इति। युधिष्ठिरो धर्मपुत्रस्तद्वदिव। धर्मस्य नीतिधर्मादे प्रभव उत्पत्तिर्यस्मात्। पक्षे धर्मात्प्रभवो यस्येति विग्रह । सकलेति। सकलानि समग्राणि यानि वेदवेदाङ्गानि शिक्षादीनि तेषा विज्ञाता। अशेषेति। अशेष समग्र यद्राज्य तत्र मङ्गलैकसार कल्याणैकरहस्यभूत प्रकारान्तरेण तमेव विशेषतो विशेषयन्नाह—सुनासीरस्येन्द्रस्य बृहस्पति सुरगुरुस्तद्वदिव। वृषपर्वणो दैत्यस्य कवि शुक्रस्तद्वदिव। दशरथस्य रामपितुर्वसिष्ठोऽरुन्धतीजानिस्तद्वदिव रामस्य दशरथात्मजस्य विश्वामित्र कौशिकस्तद्वदिव। अजातशत्रोर्धर्मपुत्रस्य धौम्य सचिवस्तद्वदिव। नलस्य नैषधस्य दमनकाभिधानोऽमात्यस्तद्वदिव। अथ तारापीडस्य राज्ञ इति भाव। सर्व इति। सर्वकार्येषु समग्रकृत्येष्वाहिता स्थापिता मतिर्बुद्धिर्येन स तथा। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

य इति। य शुकनास प्रज्ञाबलेन बुद्धिसामर्थ्येनादुष्करलाभां स्वल्पप्रयासलभ्यां लक्ष्मीं श्रियममन्यत ज्ञातवान्। कीदृशीम्। नारायणस्य कृष्णस्य यद्वक्ष स्थल भुजान्तर तत्र स्थितामासेदुषीमपि। एतेन तत्प्राप्तेरतिकाठिन्य सूचितम्। वक्ष स्थल विशिनष्टि—नरकेति। नरकासुरो दैत्यस्तस्य शस्त्राणि तेषा प्रहारोऽभिघातस्तेन भीषणे भयानके। भ्रमदिति। भ्रमच्चासौ मन्दरश्च भ्रमन्मन्दरस्तस्य यो नितम्ब कटकस्तस्य यो निर्दय निरनुकम्प निष्पेषश्चूर्णीभावस्तत्कर्तव्यताया कठिन कठोरमसपीठ स्कन्धपीठ यस्मिन्। अथवा निष्पेषेणावनतिविशेषणेति बोध्यम्। मथनावसरे हि मन्दरनितम्बा असयोर्लग्ना इति भाव। एतेन मन्दरादप्यंसयोरधिककाठिन्यमिति ध्वनितम्। यमिति। य शुकनासाख्यमासाद्य प्राप्य प्रज्ञा विस्तार विस्तीर्णतामुपययौ

वह सभी वेदों तथा वेदागों का ज्ञाता था। वह राज्य भर के सभी मागलिक पदार्थों का मानो घनीकृत सार था। जैसे इन्द्र का बृहस्पति था, (असुर राजा) वृषपर्व का शुक्र था, दशरथ का वशिष्ठ था, राम का विश्वामित्र था, युधिष्ठिर का धौम्य था और नल का दमनक था, वैसे ही वह तारापीड का सभी मामलों में बुद्धि को लगाये हुआ—व्यक्तिगत ध्यान देने वाला (विश्वस्त) मन्त्री था।

जो शुकनास नरकासुर के शस्त्रों की चोट से पड़े निशानों के कारण भयानक बने, (सागर मन्थन के समय) चक्कर खाते मन्दर के मध्यभाग की निर्दय रगड़ खाकर कठोर हुए विशाल कन्धर वाले, विष्णु भगवान के वक्ष:स्थल पर (सुरक्षित) ठहरी हुई लक्ष्मी को भी अपने बुद्धिबल से जीत लेना कठिन नहीं समझता था। और जिसके सम्पर्क में आकर, राज्य के

दर्शितानेकराज्यफला लतेव पादपमनेकप्रतानगहना विस्तारमुपययौ प्रज्ञा। यस्य चानेकचारपुरुषसहस्रसंचारनिचिते चतुरुदधिवलयपरिधिप्रमाणे धरणीतले भवन इवाविदितमहरहः समुच्छ्वसितमपि राज्ञां नासीत्।

स राजा बाल एव सुरकुञ्जरकरपीवरेण राज्यलक्ष्मीलीलोपधानेन सकलजगदभयदानयज्ञदीक्षायूपेन स्फुरदसिलतामरीचिजालजटिलेन निखिलारातिकुलप्रलयधूम-

---

प्राप्तवती। तां विशिनष्टि—दर्शितेति। दर्शितानि प्रकटितान्यनेकराज्यान्येव फलानि यया सा तथा। केवलमेव यथा लता पादप वृक्ष प्राप्य विस्तार याति। कीदृशी। अनेकेति। अनेकै प्रतानैर्लतागहनैर्गहना निबिडा। यस्येति। यस्य मन्त्रिणो धरणीतले जगतीतले राज्ञां समुच्छ्वसितमप्युच्छ्वसितमात्रमप्यहरह प्रतिदिनमविदितमज्ञात नासीत्। न बभूवेत्यर्थ। कस्मिन्निव। भवन इव गृह इव। यथा सद्मनि किमप्यज्ञात न स्यात्। भुवनतल विशेषयन्नाह—अनेकेति। अनेका ये चारपुरुषा प्रणिधिपुरुषास्तेषां सहस्रं तस्य सचार परिभ्रमणं तेन निचिते पूरिते। चतुरिति। चतुरुदधीना चतु समुद्राणां वलय कङ्कण तस्य या किंचिदधिका त्रिगुणिता परिधि परिक्षेप स एव प्रमाण यस्य स तस्मिन्।

स इति। स राजा तारापीडो बाल एव। सुरेति। सुरकुञ्जरो हस्तिमल्लस्तस्य कर शुण्डा तद्वत्पीवरेण पुष्टेन। राज्येति। राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्रीस्तस्या लीलोपधानेन लीलोपबर्हेण। सकलेति। सकलजगत समग्रविष्टपस्य यदभयदान तदेव यज्ञदीक्षा तत्र यूपेन यज्ञस्तम्भेन। स्फुरदिति। स्फुरन्ती देदीप्यमाना यासिलता खड्गलता तस्या मरीचिजालं कान्ति समूहस्तेन जटिलेन व्याप्तेन। निखिलेति। निखिला समग्रा येऽरातय शत्रवस्तेषा यानि कुलानि तेषा प्रलयो विनाशस्तत्र धूमकेतुर्ग्रहविशेषस्तस्य दण्डेन पुच्छेन। दण्डाकृतिरूपत्वात्पु-

---

बहुत से फलों (शुभ परिणामों) को प्राप्त करने का मार्ग दिखाने वाली तथा अनेक उपशाखाओं के कारण गहन जटिल बनी हुई बुद्धि इस प्रकार और अधिक विस्तृत हो गयी थी (अर्थात् और अधिक भव्य परिणाम दर्शाने वाली हो गयी थी) जैसे कि अनेक फलों को उत्पन्न करती तथा अनेक तन्तुओं को फैलाकर घनी हुई लता किसी बड़े वृक्ष के साथ बाँधी जाने पर बहुत अधिक बड़ी हो जाती है। और जिसके अनेक सहस्रगुप्तचरों की गतिविधि से भरे, तथा चार मेखलायमान समुद्रों की परिधि के बराबर विस्तार वाले भूमण्डल भर मे (दूसरे) राजाओं का प्रतिदिन छोड़ा हुआ श्वास तक भी उससे ऐसे अज्ञात नहीं रहता था— मानो कि वह उसके अपने घर में ही (छोड़ा गया श्वास) हो।

उस राजा ने बालपन में ही (अपनी) ऐरावत हस्ती की सूँड जितनी परिपुष्ट, राज्य लक्ष्मी के सजीले तकिया सरीखी, सारे ससार को अभय (सुरक्षा का वचन) दानरूप यज्ञ विधान की यज्ञस्तम्भ रूपा, अपनी पतली तथा लम्बी तलवार से (निकलती) किरणों के समूह से आच्छादित और (अपने) सभी शत्रुदलों के विनाश की सूचक, धूमकेतु की पूँछ सरीखी

केतुदण्डेन बाहुना विजित्य सप्तद्वीपवलयां वसुधरां तस्मिञ्छुकनासनाम्नि मन्त्रिणि सुहृदीव राज्यभारमारोप्य सुस्थिताः प्रजाः कृत्वा कर्तव्यशेषमपरमपश्यत् । प्रशमिताशेषविपक्षतया विगताशङ्कः शिथिलीकृतवसुधराव्यापारः प्रायो यौवनसुखान्यनुबभूव । तथा हि । कदाचिदुल्लसत्कठोरकपोलपुलकजर्जरितकर्णपल्लवानां प्रणयिनीनां चन्दनजलच्छटाभिरिव स्मितसुधाच्छविभिरभिषिच्यमानः, कर्णोत्पलैरिव लोचनांशुभिस्ताड्यमानः कुङ्कुमधूलिभिरिवाभरणप्रभाभिराकुलीक्रियमाणलोचनः, धवलांशुकैरिव कर-

च्छस्येति भावः । एवंविधेन बाहुना भुजेन । सप्तेति । जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्कराः सप्तद्वीपा एव वलयं कङ्कणं यस्या एवंभूतां वसुधरां विजित्य तस्मिञ्छुकनासनाम्नि मन्त्रिणि सुहृदीव मित्र इव राज्यभारमारोप्य निधाय सुस्थिताः सुखेन स्थायिन्यः प्रजाः प्रकृतीः कृत्वा निष्पाद्य कर्तव्यशेषमितः परं किं कर्तव्यमस्तीत्यपरं विचारविषयं कार्यमपश्यदित्यन्वयः । प्रशमितेति । प्रशमिताः शान्तिं प्रापिताः अशेषाः समग्रा विपक्षाः दस्यवो येन तस्य भावस्तत्ता तया । अतएव विगताशङ्को निर्भयः । शिथिलीति । शिथिलीकृतः श्लथीकृतो वसुंधरायाः क्षितेर्व्यापारो व्यापृतिर्येन स तथा । प्रायो बाहुल्येन यौवनस्य तारुण्यस्य सुखानि स्त्रीसंभोगादीन्यनुबभूवानुभवविषयीचक्रे । तदेव दर्शयति—तथा हीति । कदाचिदिति । कदाचित् कस्मिंश्चित्समयेऽनङ्गपरवशः कामपरायत्तः सुरतं मैथुनमाततान विस्तारयामासेत्यन्वयः । किं क्रियमाणः अभिषिच्यमानः सिच्यमानः । काभिः । स्मितं ईषद्धसितं तदेव सुधामृतं तस्याश्छविभिः कान्तिभिः । काभिरिव प्रणयिनीनां चन्दनजलच्छटाभिरिव । कीदृशीनाम् । उल्लसन्तो विकसन्तः कठोराः कठिनाः कपोलेषु पुलकाः रोमाञ्चास्तैर्जर्जरिताः श्लथीभूताः कर्णपल्लवाः श्रोत्रकिसलया यासाम् । पुनः किं क्रियमाणः । ताड्यमानः पीड्यमानः । कैः लोचनांशुभिः नेत्रकान्तिभिः । कैरिव कर्णोत्पलैरिव श्रवणकुवलयैरिव । कुङ्कुमेति । कुङ्कुमं केसरं तस्य धूलिभिश्चूर्णैरिवाभरणप्रभाभिर्भूषणरश्मिभिराकुलीक्रियमाणे लोचने यस्य स तथा । धवलेति । धवलांशुकैरिव शुभ्रवसनैरिव करयोर्हस्तयोर्नखाः पुनर्भवास्तेषां मयूखाः किरणास्तेषां जालकैः समूहैः

अपनी बाहु (के बल) से सात महाद्वीपों के मण्डलों की बनी सारी पृथ्वी को जीत लिया था और जीतकर तथा उस शुकनास नाम वाले मंत्री को मानो किसी मित्र को ही शासन का उत्तरदायित्व सौंपकर और अपनी प्रजाओं को सुखी बनाकर किसी दूसरे आवश्यक कर्तव्य को शेष न देखते हुए सम्पूर्ण शत्रुओं के नष्ट हो जाने के कारण निर्भय होकर और पृथ्वी के (शासन) कार्य को शिथिल करके अधिकतर युवावस्था के सुखों का ही उपभोग किया ।

उदाहरणतः—कभी तो वह कामोन्माद के वशीभूत हुआ, चमकते तथा विषम कपोलपुलकों द्वारा स्थानभ्रष्ट, कानों में आभूषणरूप लगाये हुए पत्तों वाली प्रेमिकाओं की हास्यामृत कांतियों से, मानो कि चन्दनजल की धाराओं से नहलाया जाता हुआ, उनकी आँखों से निकलती किरणों से मानो कि कानों के आभूषणभूत कमलों से ही, पीटा जाता हुआ, उनके आभूषणों की चमक से, मानो कि केसर-धूलियों से ही दुःखी की जाती आँखों वाला, श्वेत वस्त्रों

नखमयूखजालकैराहन्यमानः, चम्पककुसुमदलमालिकाभिरिव भुजलताभिराबध्यमानः, दष्टाधराधूतकरतलचलन्मणिवलयकलकलरमणीयम्, अतिरभसदलितदन्तपत्रदलदन्तुरशयनम्, उत्क्षिप्तचरणतलगलदलक्तकरक्तशेखरम्, सरभसकचग्रहचूर्णितमणिकर्णपूरम्, उल्लसितकुचकृष्णागुरुपङ्कपत्रलताङ्कितप्रच्छदपटम्, अच्छश्रमजलकणिकालुलितगोरोचनतिलकपत्रभङ्गम्, अनङ्गपरवशः सुरतमाततान। कदाचिन्मकरकेतुकनकनाराचपरम्पराभिरिव कामिनीकरपुटविनिर्गताभिः कुङ्कुमजलधाराभिः पिञ्जरीक्रिय-

---

राहन्यमान आघातविषयीक्रियमाण। चम्पकेति। चम्पको हेमपुष्पकस्तस्य कुसुमानां पुष्पाणा दलानि खण्डानि तेषां मालिका मालास्ताभिरिव भुजलताभिर्बाहुवल्लीभिराबध्यमान सयम्यमान। इत सुरतविशेषणानि—दष्टेति। दष्ट. खण्डितो योऽधरो रदनच्छदस्तेनाधूत कम्पित यत्करतल तेन चलन्ति यानि मणिवलयानि तेषा य· कलकलोऽव्यक्तध्वनिस्तेन रमणीयं मनोहरमत एवातिरभसमतित्वर दलितानि द्वैधीकृतानि यानि दन्तपत्राणि कर्णाभरणानि तेषा दलानि तैर्दन्तुर विषम शयनीय शय्या यस्मिन्। उत्क्षिप्तेति। उत्क्षिप्तावूर्ध्वीकृतौ यौ चरणौ पादौ ताभ्या गलत्स्रवद्योलक्तको यावकरसस्तेन रक्तो रञ्जित शेखरोऽवतसो यस्मिन्। सरेति। सरभस ससम्भ्रमं यः कचग्रह. केशग्रहस्तेन चूर्णित भग्न मणिकर्णपूरं रत्नोपेत श्रवणभूषण यस्मिन्। उल्लसितेति। सभोगावस्थायामुल्लसिता उल्लास प्राप्ता ये कुचा. पयोधरास्तेषु कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य य पङ्क कर्दमस्तस्य पत्रलता पत्रभङ्गयस्ताभिरङ्कितश्चिह्नित प्रच्छदपट उत्तरच्छदो यस्मिन्। अच्छेति। अच्छ निर्मल यच्छ्रमजल रतक्लान्तिपानीय तस्य कणिका पृषन्ति तैर्लुलितो विलुप्तो गोरोचनातिलकपत्राणा भङ्गो यस्मिन्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। कदाचिदिति। स राजा कनकशृङ्गकोशै सुवर्णघटितशृङ्गसघातै चिर चिरकाल यावच्चिक्रीड क्रीडा कृतवान्। 'क्रीड क्रीडने' धातु। लिटि रूपम्। कीदृश। कुङ्कुमस्य या जलधारास्ताभि

सरीखे, हाथ के नखों की किरणों के समूह से, पीटा जाता हुआ और चम्पक पुष्पों की पखुड़ियों की मालाओ सरीखी उनकी बाहुओं रूप लताओं द्वारा बाँधा जाता हुआ (अर्थात् आलिंगित किया जाता हुआ), (प्रेमिकाओं के) अधरो के काटे जाने पर, (उन द्वारा) हिलायी गयीं हथेलियों द्वारा चलायमान, मणिनिर्मित कंकणों की रणत्कार से रोचक बनीं, प्रबल आवेग के कारण टूटे हुए कर्णाभरणों के टुकड़ों से आच्छादित होकर विषम बनी शय्या वाली, ऊपर उठाये (रमणियो के) चरणों से बहते अलक्तक से लाल हुई (उनकी) सिर पर पहनी हुई माला वाला, (प्रेमियों द्वारा एक दूसरे के) बालोको प्रबल आवेग से पकड़ने पर छिन्न-भिन्न हुए मणिमय कर्णाभूषणों वाली, (रमणियों की) उठी हुई छातियो पर कृष्ण अगरु के लेप से बनी रेखाओं की चित्रकारी से अंकित चादरों वाली कामक्रीडा करता था। कभी वह सुवर्ण निर्मित सींग के आकार की पिचकारियों से देर तक खेलता था, इस समय उसका शरीर, कामिनियों द्वारा (अपने) हाथों की अञ्जलियों (में पकड़ी पिचकारियो) से निकलतीं कुंकुम जलधाराओं से, मानों कि कामदेव के सुवर्ण निर्मित बाणों की सतत वर्षाओं से ही, लाल पीला

माणकायो लाक्षाजलच्छटाप्रहारपाटलीकृतदुकूलो मृगमदजलबिन्दुशबलचन्दनस्थासकः कनकशृङ्गकोशैश्चिर चिक्रीड ।

कदाचित्कुचचन्दनचूर्णधवलितोर्मिमालम्, चटुलतुलाकोटिवाचालचरणालक्तकसिक्तहंसमिथुनम्, अलकनिपतितकुसुमसारम्, प्लवमानकर्णपूरकुवलयदलम्, उन्नतनितम्बक्षोभजर्जरिततरगम्, उद्दलितनालपर्यस्तनलिनिनिपतितधूलिपटलम्, अनवरतकराऽऽस्फालनस्फुरत्फेनबिन्दुचन्द्रकित सावरोधजनो जलक्रीडया गृहदीर्घिकाणामम्भश्चकार।

पिञ्जरीक्रियमाण कायो यस्य स तथा । कीदृशीभिरिव । मकरकेतुर्मदनस्तस्य कनकस्य स्वर्णस्य ये नाराचा बाणास्तेषा परम्पराभिरिव । कीदृशीभि । कामिन्य स्त्रियस्तासा करपुटा हस्तसपुटास्तेभ्यो विनिर्गताभिर्नि सृताभि । पुना राजान विशिनष्टि—लाक्षेति । लाक्षाजल यावकजल तस्य छटास्तासा प्रहारोऽभिघातस्तेन पाटलीकृत श्वेतरक्तीकृत दुकूल दुगूल यस्य स तथा । मृगमदेति । मृगमदो गन्धधूली तस्य जलमम्भस्तस्य बिन्दुना पृषतेन शबला कर्बुराश्चन्दनस्थासका मलयजहस्तका यस्य स तथा । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त ।

कदाचिदिति । सहावरोधजनैरन्त पुरलोकैर्वर्तमान स राजा जलक्रीडया गृहदीर्घिकाणा भवनवापीनामम्भ पानीयमेतादृश चकार निर्ममे । अथ चाम्भोविशेषणानि—कुचेति । कुचानां स्तनानां यानि चन्दनचूर्णानि मलयज इव क्षोदास्तैर्धवलिता शुभ्रीकृतोर्मिमाला कल्लोलपङ्क्तिर्यस्य तत् । चटुलेति । चटुला मनोहरा ये तुलाकोटयस्तैर्वाचाला मुखरा ये चरणा पादास्तेषा योऽलक्तकस्तेन सिक्तं सिञ्चित हसमिथुन सितच्छदद्वन्द्व यस्मिंस्तत्तथा । अलकेति । अलकाच्चूर्णकुन्तलान्निपतित स्रस्त कुसुमसार पुष्परहस्य यस्मिंस्तत्तथा । प्लवेति । प्लवमान निमज्जमान कर्णपूररूप कुवलयदल यस्मिन् । उन्नतेति । उन्नता उच्चा ये नितम्बा आरोहास्तै

किया जा रहा होता था, उसका रेशमी वस्त्र लाक्षाजल की धाराओ के प्रहार से लाल हो रहा होता था और (उसके शरीर पर किया हुआ) चन्दन का लेप (उस पर फैके गये) कस्तूरिका जल के बिन्दुओं से रग बिरगा हो जाता था ।

कभी वह अपने अन्त पुर की रमणियों समेत की गयी जलक्रीड़ा के द्वारा अपने महल की बावड़ी के जल को इस प्रकार का कर देता था कि उसमे तरङ्ग पक्ति (रमणियों के) स्तनो पर लगे चन्दन चूर्ण से श्वेत हो जाती थी, उसमे हसो की जोड़ियाँ, (रमणियों के) सुन्दर पायलों की ध्वनि से गूजते चरणो पर लगे अलक्तक से सिच जाती थी, (रमणियो के) केशो से गिरे (अनेक रगों के) पुष्पो से वह (जल) रगबिरगा हो जाता था, उसमे कर्णाभूषण के रूप मे (रमणियों द्वारा) पहने हुए कमलो की पखुड़ियाँ तैर रही होती थीं, उस जल की लहरे उन्नत नितम्बो के धक्के से बिखर जाती थीं, टूटे हुए नालो वाले इधर उधर बिखरे कमलों के पराग का ढेर उसमे गिर जाता था और वह जल निरन्तर (रमणियों के) हाथों के चलाने के कारण (तल पर) प्रकट हुए झाग के बुलबुलों से (चकत्तों वाला) रगबिरगा हो जाता था ।

कदाचित्सकेतवञ्चिताभिः प्रणयिनीभिराबद्धभङ्गुरभृकुटिभिराररणितपारिहार्यमुखरभुजलताभिर्बकुलकुसुमावलीभिः संयतचरणो नखकिरणविमिश्रैः कुसुमदामभिः कृतापराधो दिवसमताड्यत। कदाचिद्बकुलतरुरिव कामिनीगण्डूषसीधुधारास्वादमुदितो विकाशमभजत। कदाचिदशोकपादप इव युवतिचरणतलप्रहारसंक्रान्ता-

क्षोभ आस्फालन तेन जर्जरिता क्षीणास्तरगा कल्लोका यस्मिंस्तत्। उद्‌लितेति। उद्‌लितान्युच्छिन्नानि नालानि बिसानि येषामेवभूतानि पर्यस्तानि नलिनानि कमलानि तेभ्यो निपतित स्रस्त धूलिपटल परागसमूहो यस्मिन्। अनवरतेति। अनवरतकरास्फालनेन निरन्तरहस्तास्फोटनेन स्फुरन्तो देदीप्यमाना ये फेनबिन्दवोऽब्धिकफपृषतास्तैरेव सजाता चन्द्रका मेचका यस्मिन्। 'तारकादिभ्य इतच्'। इति चन्द्रकित मेचकितम्। अन्वयस्तु पूर्वोक्त ।

कदाचिदिति। स दिवस प्रतिदिवस प्रणयिनीभिर्मानिनीभिरताड्यत ताडितोऽभूदित्यन्वय । 'ताड व्यथने' इति धातु । यकन्तप्रयोग । अत्र यद्यपि प्रथमत कर्तृत्वेन निर्देशादितश्च कर्मत्वेनेति कारकप्रक्रमभङ्गस्तथापि वाक्यभेदाददोष । कीदृश । कृतेति। कृतो विहितोऽपराध आगो येन स तथा। पुन कीदृक्। सयतौ बद्धौ चरणौ पादौ यस्य स तथा। कै । कुसुमदामभि पुष्पमालाभि । किंविशिष्टाभि । बकुलेति। बकुल केसरस्तस्य कुसुमाना पुष्पाणामावलि श्रेणिर्येषु तै । नखेति। नखाना पुनर्भवाना किरणा मयूखास्तैर्विमिश्रै. सपृक्तै.। अथ च प्रणयिनीना विशेषणानि—संकेतेति। अमुकस्थले मयावश्यमागन्तव्यमिति सकेतस्तेन वञ्चिताभिर्निष्फलीभूताभि । सागता, स्वय तु नागत इति भाव.। अत एवाबद्धा विरचिता भङ्गुरा वक्रा भृकुटयो याभिस्ता । आरणितेतेति। आरणित शब्दायमान यत्पारिहार्यं कङ्कण तेन मुखरा वाचाला भुजलता यासा ताभि । कदाचिदिति। बकुलतरु केसरवृक्षस्तद्वदिव विकाश विकस्वरतामभजत प्राप्तवान्। तमेव विशिनष्टि—कामिनीति। कामिनीना स्त्रीणा यो गण्डूषश्चुलुकस्तस्य यत् सीधु मद्य तस्य धारा पङ्क्तिस्तस्या य स्वादस्तेन मुदितो हर्षित.। कदाचिदिति। अशोकपादप कङ्केल्लिवृक्षस्तद्वदिव। अशोकसाम्यं प्रदर्शयन्नाह—युवतीति। युवतीना स्त्रीणां यश्चरणतलप्रहारः पादतलाभिघातस्तेन

कभी, वचन भग के अपराधी उस राजा को, सकेत में ठगी गई प्रेमिकाएँ अपनी त्यौरियाँ चढ़ाये हुई, अपने रणरणाते, मणिमय (पारिहार्य) ककणों द्वारा शोर मचाती भुजलताओं द्वारा बकुल पुष्पमालाओं से बन्धे पैरो वाले को, नखों की किरणें जिनपर फैली होती थीं—वैसी पुष्पों की रस्सियों से दिन भर[1] पीटती थीं। कभी वह कामिनियों द्वारा दी गयी शराब के गस्सों की धारा के आस्वादन से इस प्रकार अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाता था कि जैसे कामोन्मत्त स्त्रियो द्वारा किये गये कुल्लों की धारा से तृप्त बकुल वृक्ष पुष्पित हो जाता है। कभी वह युवतियों द्वारा अपने चरणों के प्रहार (के समय) (उसके शरीर पर) हस्तातरित किये हुए अलक्तक से युक्त होकर प्रेम से ऐसा उद्दीप्त हो जाता था जैसा कि युवतियों के चरणों के

(१) 'दिवसम्' में 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति।

लक्तको रागमुवाह। कदाचिन्मुसलायुध इव चन्दनधवलः कण्ठावसक्तोल्लसल्लोल-कुसुममालः पानमसेवत। कदाचिद्गन्धगज इव मदरक्तकपोलदोलायमानकर्णपल्लवो मदकलः काननं विकचवनलताकुसुमसुरभिपरिमलं जगाहे। कदाचित्क्वणितमणिनूपुरनिनादानन्दितमानसो हंस इव कमलवनेषु रेमे। कदाचिन्मृगपतिरिव स्कन्धावलम्बिकेसरमालः क्रीडापर्वतेषु विचचार। कदाचिन्मधुकर इव विजृम्भमाणकुसुम-

---

सङ्क्रान्तो लग्नोऽलक्तको यस्य स तथा रागमनुरागमुवाहावहत्। 'वह प्रापणे' इति धातोरभ्याससम्प्रसारणे लिटि रूपम्। कदाचिदिति। पूर्ववत्। मुसलायुधो बलभद्रस्तद्वदिव। तत्साम्यमाह—चन्दनेति। चन्दनेन हरिचन्दनाङ्गरागेण धवल शुभ्र। पक्षे चन्दनवद्धवल। कण्ठेति। कण्ठावसक्तोल्लसन्ती लोला कुसुममाला यस्य स तथा पानं मद्यपानमसेवताभजत। कदाचिदिति। गन्धगजो गन्धहस्ती तद्वदिव कानन वनं जगाहे विलोडयामासेत्यन्वय। कीदृश। मदेति। मदेन रक्तो य. कपोलस्तस्मिन्दोलायमान कर्णपल्लवो यस्य स तथा। मदकलो मदेन कलो मनोहरो विकचानि वनलताकुसुमानि तेषा सुरभि. परिमलो यस्मिन्। कदाचिदिति। हस इव मराल इव कमलवनेषु नलिनकाननेषु रेमेऽरमत। कीदृश। क्वणितेति। क्वणितानि शब्दितानि यानि मणिनूपुराणि रत्नपादाङ्गदानि तेषां निनाद शब्दस्तेनानन्दित मुदित मानस यस्य तथा। पक्षे क्वणितमणिनूपुरवद्यो निनादस्तेनानन्दितं मानस सरो येनेति विग्रहः। कदाचिदिति। मृगपतिरिव महानाद इव क्रीडापर्वतेषु क्रीडाशैलेषु विचचार व्यहार्षीत्। तमेव विशिनष्टि—स्कन्धेति। स्कन्धावलम्बिनी केसरोपयुक्ता माला स्रग्यस्य स तथा। पक्षे स्कन्धावलम्बिनी केसरमाला सटापङ्क्तिर्यस्येति विग्रह। कदाचिदिति। मधुकर इव भ्रमर इव लतागृहेषु वल्लीगृहेषु बभ्राम भ्रमण चकार। कीदृशेषु।

प्रहार से उस पर लगे अलक्तक वाला अशोक वृक्ष लाल फूल देने को बाधित हो जाता है। कभी वह (अपने शरीर पर लगाये) चन्दन से श्वेत हुआ और कण्ठ से लिपटी लहराती पुष्पमाला वाला, चन्दन-सरीखे श्वेत चेहरे वाले और एक चमकीली, लहराती पुष्पमाला को अपने गले मे डाले मुसलायुध (बलराम) की भाँति मद्य पान करता था। कभी वह (मद्य के) नशे से लाल हुई गालों पर झूलते कर्णाभूषणरूप पत्तों वाला, नशे के कारण, रसिकवत् बोलता हुआ पूर्णतया खिले हुए वनलता पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित वन मे, अपने मद से रगे कपोलों पर फड़फड़ाते पत्तों सरीखे कानो वाले और नशे मे मधुर तथा धीमी आवाज करते (अथवा नशे में चूर) गन्धगज की भाँति घूमता था। कभी वह झनझनाते मणिमय नूपुरों के शब्द से प्रसन्नमन हुआ, मणिमय नूपुरों की झणत्कार से मिलते-जुलते अपने शब्द से मान सरोवर को प्रसन्न करते हस की भाँति कमलवन मे खिलवाड़ करता था। कभी कन्धों से लटकती बकुलमाला को पहने हुआ कन्धों पर लटकती सटाओं वाले मृगपति सिंह की भाँति क्रीड़ा पर्वतों में विचरता था। कभी वह खिलना आरम्भ करते फूलो की कलियो से विषम हुए—

मुकुलदन्तुरेषु लतागृहेषु बभ्राम। कदाचिन्नीलपटविरचितावगुण्ठनो बहुलपक्ष-प्रदोषदत्तसंकेताः सुन्दरीरभिससार। कदाचिच्च विघटितकनककपाट प्रकटवातायनेष्वनवरतदह्यमानकृष्णागुरुधूमरक्तैरिव पारावतैरधिष्ठितविटङ्केषु प्रासादकुक्षिषु कतिपयाप्तसुहृत्परिवृतो वीणावेणुमुरजमनोहरमवरोधसंगीतक ददर्श। किंबहुना यद्यदतिरमणीयमविरुद्धमायत्या तदात्वे च तत्तदनाक्षिप्तचेताः परिसमाप्तत्वादन्येषा

लतागृहेषु। विजृम्भेति। विजृम्भमाणानि यानि कुसुममुकुलानि तैर्दन्तुरेषु विषमेषु। कदाचिदिति। सुन्दरी प्रमदा अभिससार सेवितवान्। कीदृक्। नीलेति। नीलपटेन श्यामपटेन विरचित विहितमवगुण्ठन शिरोवेष्टन येन स तथा। सुन्दरीर्विशिनष्टि–बहुलेति। बहुलपक्षस्य कृष्णपक्षस्य य. प्रदोषो यामिनीमुख तत्र दत्त सकेतो याभिस्ता.। कदाचिच्चेति। अवरोधस्यान्त पुरस्य सगीतक नृत्यादि ददर्शाद्राक्षीदित्यन्वय। केषु। प्रासादा भूपगृहास्तेषा कुक्षयो मध्यभागास्तेषु। तानेव विशिनष्टि—विघटितेति। विघटितमुद्घाटित कनककपाट स्वर्णकपाट यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। प्रकटा वातायना स्पष्टगवाक्षा येषु। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर दह्यमानो य कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य धूमो दहनकेतनस्तेन रक्तैरिव रञ्जितैरिव। एवभूतै पारावतै कलरवैरधिष्ठिता आश्रिता विटङ्का कपोतपाल्यो येषु। कतीति। कतिपया कियन्तो य आप्ता प्रत्ययिता। 'आप्तप्रत्ययितौ समौ' इति कोश। एवविधा सुहृदो मित्राणि तै परिवृत सहित इति राज्ञो विशेषणम्। वीणा वल्लकी, वेणुर्वंश, मुरजो मृदङ्ग, तैर्मनोहरमतिरमणीयम्। सगीतविशेषणम्। कि बहुनेति। किं बहु वक्तव्येन। यद्यदनिर्दिष्टनामकं वस्त्वतिरमणीयमायत्यामुत्तरकाले। 'आयतिस्तूत्तर काल' इति कोश। तदात्वे चेति। 'तत्कालस्तु तदात्व स्यात्' इति कोश। अविरुद्ध नीतिशास्त्राप्रतिषिद्ध तत्तत्सिषेवे सेवितवान्। अतिसुन्दरेण वस्तुनाक्षिप्तश्चेत्तदा व्यसनमेवेत्याह—अनाक्षिप्तेति। अनाक्षिप्तमनाकुल चेतो यस्य स तथा। अत्रार्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—परीति। अन्येषा पृथिवीव्यापाराणा परिसमाप्त-

---

लताकुजों मे (उन लताकुजों मे जिनमे उक्त कलियाँ बिखरी हुई हैं) भौंरों की भाँति घूमता-फिरता था। कभी नीले वस्त्र का पर्दा बनाये हुआ, महीने के कृष्णपक्ष की रात्रियों के पूर्व भाग मे (उनसे भेंट करने का) सकेत दिये हुआ (उन सुन्दरियों) के मिलने के लिये बाहर निकलता था। और कभी वह सोने के किवाड़ों (अथवा झिलमिलियों) को खुला रखने के कारण सर्वथा खुले झरोखों वाले, निरन्तर जलाये जाते कृष्ण अगरु के धुएँ से ही मानो रगे गये (भूरे दिखायी देते) कबूतरों द्वारा अधिष्ठित छज्जों वाले महलों के मध्यवर्ती कमरों में कई घनिष्ठ मित्रों के सग (उनसे घिरा हुआ), वीणा, वेणु तथा मृदङ्ग (के बजाये जाने) के कारण अत्यन्त आकर्षक बने हुए अन्त पुर सुन्दरियों द्वारा गाये गये सगीत मे उपस्थित होता था। अधिक कहने की क्या आवश्यकता है? जो जो कार्य उसको हर्षदायक तथा रुचिकर प्रतीत होता था, और भविष्य में तथा उस समय उस (की भलाई के) विरुद्ध नहीं था उस उस को वह अनासक्त चित्त वाला रहता हुआ ही (चित्त को अधिक आसक्त किये बिना ही) ससार

पृथिवीव्यापाराणा सिषेवे, नत्वतिव्यसनितया। प्रमुदितप्रजस्य परिसमाप्तसकल-महीप्रयोजनस्य नरपतेर्विषयोपभोगलीला भूषणम्। इतरस्य तु विडम्बना। प्रजानुरा-गहेतोरन्तरान्तरा दर्शन ददौ। सिहासन च निमित्तेष्वारुरोह। शुकनासोऽपि महान्त राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। यथैव राजा कार्याण्यकार्षीत्तद्वद-सावपि द्विगुणीकृतप्रज्ञानुरागो राजकार्याणि चक्रे। तमपि चलितचूडामणिमरीचि-मञ्जरीजालिभिर्मौलिभिरावर्जितकुसुमशेखरच्युतमधुसीकरसिक्तनृपसभ दूरावन-

---

त्वात्परिपूर्णीभूतत्वात् न त्वतिव्यसनितया तदासक्ततयेत्यर्थ.। एतदेवार्थान्तरन्यासेन विवृणोति—प्रमुदितेति। प्रमुदिता मुद प्रापिता प्रजा प्रकृतयो येन स तथा तस्य। परीति। परिसमाप्त परिपूर्णीकृत सकल समग्र महीप्रयोजन वसुधाकृत्य यस्यैवभूतस्य नरपते.। विषयेति। विषया स्रक्चन्दनादयस्तेषामसकृदुपभुज्यन्त इत्युपभोगास्तेषा लीला क्रीडा। भूषणमलकार। आदरातिशयाभावेनेत्यर्थ। 'असक्त सुखमन्वभूत्' इत्युक्तत्वात्। इतरस्य त्वेतद्भिन्नस्य तु विडम्बना राजकृत्यासाधकत्वेन व्यसनमेव। प्रजेति। प्रजाया प्रकृतेरनुराग स्नेहस्तस्य हेतोस्तदर्थमन्तरान्तरा मध्ये मध्ये दर्शन जनाना सौधावलोकन ददौ दत्तवान्। असकृद्बहिर्ग-मनमनादरहेतुरिति भाव। सिहेति। निमित्तेषु तथाविधकारणेषु सिंहासन नृपासनमारुरोहा-रूढवान्। शुकनासोऽपीति। शुकनासनामा मन्त्रिरपि महान्त गरिष्ठमपि राज्यभारमाधि-पत्यधुरमनायासेनैव प्रयास विना प्रज्ञाबलेन राजनीतिबलेन बभार दध्रे। तथैवेति। यथा येन प्रकारेण राजा नृप कार्याणि कृत्यान्यकार्षीत्कृतवास्तद्वदसौ शुकनासोऽपि। द्विगुणीति। पूर्वस्माद्द्विगुणीकृतोऽधिकीकृत प्रजाया प्रकृतेरनुराग स्नेहो येन स तथा राजकार्याणि स्वस्वामिकृत्यानि चक्रेऽकार्षीत्। तमपीति। तं शुकनासमपि राजक राजसमूह आननाम

(के शासन) से सम्बद्ध अन्य कर्त्तव्यों के पहले ही पूर्ण हो जाने के कारण, अत्यधिक व्यसनी होनेके कारण नहीं, कर रहा था। क्योंकि जो राजा प्रजा को प्रसन्न कर चुका हो, पृथ्वी के शासनसम्बन्धी कार्यों को पूरा कर चुका हो वह यदि ऐन्द्रियिक सुखों के उपभोग की लीला करे तो उसका ऐसा करना भूषण ही है किन्तु जो (ऐसा नहीं है)—उस दूसरे का तो ऐसी लीला करना उपहासास्पद ही है। और अपनी प्रजाओ के अपने स्नेह के कारण वह बीच बीच मे दर्शन देता था और कारणवश (विचारसापेक्ष शासन कार्यों के आजाने पर अथवा उत्सव आदि अवसरो के आने पर) वह सिंहासन पर आरूढ होता था।

और शुकनास ने भी भारी शासन-उत्तरदायित्व को (राज्यभार को) बुद्धि बल द्वारा बिना किसी उद्यम के ही निभाया। राजा ने जैसे सब कार्यों की देखभाल रखी, उसके समान शुकनास ने भी राजकार्य किये और (इस प्रकार) उसने (अपने प्रति) प्रजाओ के प्रेम को दुगुना कर लिया। (करद) राजाओं के समूह ने उसको भी (प्रणाम करते समय) हिंले हुए विशेष रत्नो की किरणों के पंक्तिलाकृति जालसूत्रो वाले मस्तकों द्वारा कुछ झुकाई हुई पुष्प-मालाओ से गिरे मधु की बिन्दुओं से सभाभवन को सींचते हुए तथा दूर तक (बहुत अधिक)

तिप्रेङ्खोलितमणिकुण्डलकोटिसंघट्टिताङ्गदं राजकमाननाम। तस्मिन्नपि चलिते चलितचटुलतुरगबलमुखरखुररवबधिरीकृतभुवनान्तरालाः, बलभरप्रचलवसुधातलदोलायमानगिरयः, गलन्मदान्धगन्धगजदानधारान्धकाराः, संसर्पदतिबहुलधूलिपटलधूसरितसिन्धवः, प्रचलत्पदातिबलकलकलरवस्फोटितकर्णविवराः, सरभसोद्घुष्यमाणजयशब्दनिर्भराः, प्रोद्धूयमानधवलचामरसहस्रसछादिताः, पुञ्जितनरेन्द्रवृन्दकनकदण्डातपत्रसंघट्टनष्टदिवसा दश दिशो बभूवुः।

नमश्चक्रे। कै। मौलिभिर्मस्तकै। कीदृशै। चलिता कम्पिता ये चूडामणय शिरोमणयस्तेषा या मरीचिमञ्जर्यस्तासा जाल येषु तै। राजक विशेषयन्नाह—आवर्जितो धृतो य कुसुमशेखर पुष्पावतसस्तस्माच्च्युता स्रस्ता ये मधुसीकरा रसबिन्दवस्तै सिक्ता सिञ्चिता नृपसभा परिषद्येन तत्। दूरेति। दूराद्दूरप्रदेशाद्यावनति प्रणामस्तस्य प्रेङ्खोलितान्यान्दोलितानि यानि मणिकुण्डलानि रत्नकर्णाभरणानि तेषा कोटयोऽग्रभागास्तै सघट्टित सघर्षितमङ्गद बाहुकटक यस्य तत्तथा। तस्मिन्निति। तस्मिन्नपि शुकनासे चलिते प्रस्थिते सत्येवभूता दश दिशो बभूवु। कीदृशा। चलितेति। चलिता प्रस्थिताश्चटुलाश्चपलास्तुरगा अश्वा यस्मिन्नेवभूत यद्बल सैन्यं तस्य मुखरा वाचाला ये खुरा शफास्तेषा रव शब्दस्तेन बधिरीकृतानि भुवनान्तरालानि मध्यभागा यासु ता। बलेति। बलभरेण सैन्यभारेण प्रचलं कम्पित यद्वसुधातल पृथ्वीतल तेन दोलायमाना कम्पायमाना गिरय· पर्वता यासु ता। गलदिति। गलन्त स्रवन्तो ये मदान्धा मदोन्मत्ता गन्धगजा गन्धेभास्तेषा दानधारा मदपङ्क्तय एवान्धकाराणि यासु ताः। संसर्पदिति। ससर्पदूर्ध्वं गच्छद्यदतिबहुलमतिदृढ धूलिपटल रज समूहस्तेन धूसरिता धूसरवर्णीकृता सिन्धवो नद्यो यासु ता। प्रचलदिति। प्रचलद्गच्छद्यत्पदातीना पत्तीना बल सैन्य तस्य कलकल कोलाहलस्तल्लक्षणो यो रव शब्दस्तेन स्फोटितानि भेद प्रापितानि कर्णविवराणि श्रवणविवराणि यासु ता। सरभसेति। सरभस वेगेनोद्घुष्यमाणो यो जयजयेति शब्दस्तेन निर्भरा। भृता इत्यर्थ। प्रोद्धूयेति। प्रोद्धूयमानानि बीज्यमानानि यानि धवलचामर-

---

झुकाव (अवनति) के कारण झूलने लगे मणिमय कुण्डलो की नोकों से (एक दूसरे के) अङ्गदों को टकराते हुए, प्रणाम किया। उसके चल पड़ने पर भी दसों (सारी) दिशायें ऐसी हो जाती थीं कि चलते हुए चपल अश्वोंवाली अश्वसेना के बजते खुरों से भुवनों के अन्तराल बहरे हुए, सेना के भार से काँपे धरातल द्वारा पहाड़ झूले, मदान्ध गजोकी बहती मदधाराओं से सभी दिशाओं में अंधेरा छाया, चलते हुए (आकाश में तैरते हुए) अत्यन्त घनी धूल के बादलों ने नदियाँ मैली कीं, चलती हुई पैदल सेना के अस्पष्ट शब्द ने (लोगों के) कान फोड़े, अतिवेग से चिल्लाये जाते जयकारों से सारी दिशायें भरीं, सर्वत्र डुलायी जा रहीं सहस्रों श्वेत चँवरियों ने उनको ढका और वहाँ एकत्रित हुए राजाओं की सुवर्ण निर्मित डंडियो वाली छतरियों के आपस में टकरा जाने के कारण (बिना अन्तर छोड़े मिल जाने के कारण) दिन (दिन का प्रकाश) हुआ।

एवं तस्य राज्ञो मन्त्रिविनिवेशितराज्यभारस्य यौवनसुखमनुभवतः कालो जगाम। भूयसा च कालेनान्येषामपि जीवलोकसुखाना प्रायः सर्वेषामन्तं ययौ। एक तु सुतमुखदर्शनसुख न लेभे। तथोपभुज्यमानमपि निष्फलपुष्पदर्शन शरवणमिवान्तःपुरमभूत्। यथा यथा च यौवनमतिचक्राम, तथा तथा विफलमनोरथस्यानपत्यताजन्मावर्धतास्य सतापः। विषयोपभोगसुखेच्छाभिश्च मनो विजघ्ने। नरपतिसहस्रपरिवृतमप्यसहायमिव, चक्षुष्मन्तमप्यन्धमिव, भुवनालम्बनमपि निरालम्बमिवात्मानममन्यत।

सहस्राणि तै सछादिता आच्छादिता। पुञ्जितेति। पुञ्जित सघीभूत यन्नरेन्द्रवृन्द तस्य यानि कनकदण्डान्यातपत्राणि छत्राणि तै सघट्टो विमर्दस्तेन नष्टा दिवसा यासु ता।

एवमिति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण तस्य राज्ञस्तारापीडस्य मन्त्रिण्यमात्ये विनिवेशित स्थापितो राज्यभारो येन स तथा तस्य यौवनसुख तारुण्यसौख्यमनुभवतोऽनुभवविषयीकुर्वतः कालोऽनेहा जगाम गतवान्। भूयसा भूयिष्ठेन कालेन प्रायो बाहुल्येनान्येषामपि जीवलोकसुखाना सर्वेषामन्तं पार ययौ। लोकानामपि सर्वविषयानुभवो जात इत्यर्थ। एक त्विति। तु पुनरर्थे। सुतमुखदर्शनजनित यत्सुख तदेक न लेभे न प्राप। तथेति। तथा तेन प्रकारेणोपभुज्यमानमुपभोगविषयीक्रियमाणमपि शरवणमिवान्त पुरमभूत्। उभयं विशिनष्टि—निष्फलेति। निर्गत फल यस्मादेवभूत पुष्पं प्रसून रजश्च स्त्रीणा तस्य दर्शन यस्मिन्। यथेति। यथा यथा येन येन प्रकारेण यौवन तारुण्यमतिचक्रामातिक्रमितवान्। तथा तथा तेन तेन प्रकारेण। विफलेति। विफलो निष्फलो मनोरथो यस्य स तथा तस्यास्य तारापीडस्य राज्ञ सतापो मानसी व्यथावर्धत वृद्धिं प्राप। सताप विशिनष्टि—अनपत्येति। अनपत्यताऽसतानस्व

शासन का उत्तरदायित्व अपने मन्त्री पर डाले हुए, यौवन-सुख का उपभोग करते हुए उस राजा का समय इस प्रकार बीतता गया। और पर्याप्त समय भर[1] सुख भोग कर लेने पर वह दूसरे लगभग सभी मर्त्यलोक के सुखों के अन्त मे पहुँच गया। किन्तु उसको एक सुख—पुत्र के मुख-दर्शन का सुख, नहीं मिला। उस (पूर्व वर्णित) विधि से भोगी गयीं भी उसके अन्त पुर की स्त्रियाँ कास के बन की भाँति निष्फल पुष्प दर्शन वाली रहीं—अर्थात् जैसे कास मे फूल तो आते हैं परन्तु फल नहीं लगते—वैसे ही उनमे मासिक धर्म (पुष्प) का दर्शन तो हुआ परन्तु उन्होंने सन्तान रूपी फल नहीं दिखाये। और जैसे-जैसे उसकी युवावस्था बीती, वैसे-वैसे, निष्फल इच्छा वाले राजा का निःसन्तानता से उत्पन्न दु ख (मानसिक कष्ट) बढ़ा। और उसका मन विषयभोग के सुख की इच्छाओं से विरक्त (निराश) हो गया। सहस्रों राजाओं से घिरे भी अपने आपको उसने अकेला, आँख वाले को भी अन्धा, स्वय ससार का आश्रय होते हुए भी अपने को आश्रयविहीन माना।

---

(१) 'कालेन' में 'अपवर्गे तृतीया' इस सूत्र से काल के अत्यन्त सयोग मे तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

अथ तस्य चन्द्रलेखेव हरजटाकलापस्य, कौस्तुभप्रभेव कैटभारातिवक्षःस्थलस्य, वनमालेव मुसलायुधस्य, वेलेव सागरस्य, मदलेखेव दिग्गजस्य, लतेव पादपस्य, पुष्पोद्गतिरिव सुरभिमासस्य, चन्द्रिकेव चन्द्रमसः, कमलिनीव सरसः, तारापङ्क्तिरिव नभसः, हंसमालेव मानसस्य, चन्दनवनराजिरिव मलयस्य, फणामणिशिखेव शेषस्य, भूषणमभूत्त्रिभुवनविस्मयजननी जननीव वनिताविभ्रमाणा सकलान्तःपुरप्रधानभूता महिषी विलासवती नाम। एकदा च स तदावासगतस्ता चिन्तास्तिमितदृष्टिना शोक-

---

तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तथा। विषयेति। विषयाणा स्रक्चन्दनादीना य उपभोगोऽसकृद्भोगस्तज्जनित यत्सुख सात तस्येच्छा अभिलाषास्ताभिर्मनश्चित्त विजज्ञे विरक्त बभूव। नरेति। नरपतीना राज्ञा यत्सहस्र तेन परिवृत सहितमप्यसहायमद्वितीयमिव चक्षुष्मन्त सनेत्रमप्यन्धमिव गताक्षमिव भुवनालम्बनमपि निरालम्बमिव निराधारमिवात्मान स राजामन्यताज्ञासिष्ट।

अथेति। तस्य राज्ञो विलासवती नाम महिषी पट्टराज्ञी भूषणमलङ्कृतिरभूदित्यन्वय। कस्य केव। हरजटाकलापस्य शंभुजटाजूटस्य चन्द्रलेखेव शशिकलेव। कैटभेति। कैटभारातिर्विष्णुस्तस्य वक्ष स्थलं भुजान्तर तस्य कौस्तुभो मणिस्तस्य प्रभा कान्तिस्तयेव। मुसलायुधस्य बलभद्रस्य वनमालाभरणविशेष सेव। सागरस्य समुद्रस्य वेलेव जलवृद्धिरिव। दिग्गजस्य दिङ्नागस्य मदलेखेव दानराजिरिव। पादपस्य वृक्षस्य लतेव वल्लीव। सुरभिमासस्य वसन्तमासस्य पुष्पोद्गतिरिव कुसुमोद्गम इव। चन्द्रमस. शशिनश्चन्द्रिकेव ज्योत्स्नेव। सरस कासारस्य कमलिनीव नलिनीव। नभस आकाशस्य तारापङ्क्तिरिव नक्षत्रश्रेणिरिव। मानसस्य मानसाभिधसरसो हंसमालेव चक्राङ्गपङ्क्तिरिव। मलयस्य मलयाद्रेश्चन्दनवनराजिरिव मलयजवनश्रेणिरिव। शेषस्य नागाधिपस्य फणामणिशिखेव स्फुटरत्नज्वालेव। त्रिभुवनेति। त्रिभुवनस्य विष्टपत्रयस्य यो विस्मय आश्चर्यं तस्य जननी कारिणी। वनितेति। वनिता स्त्रियस्तासा विभ्रमाणा भ्रूसमुन्नवाना जननीव मातेव। सकलेति। सकलं समग्र यदन्त पुरमवरोधस्तस्मिन्प्रधानभूता मुख्या। एकदेति। एकदा एकस्मिन्समये स तारापीडस्तस्या विलासवत्या आवास निवासस्थल तत्र गत. सस्ता ददर्शाद्राक्षीत्। अथ च तस्या विशेषणानि—चिन्तेति। चिन्ता

अब सुनिये, जैसे शिवजी के जटाजूट की (शोभा) चन्द्रकला है, कैटभ के शत्रु विष्णु भगवान् के वक्षस्थल की शोभा कौस्तुभमणि है, मुसलायुध बलराम की शोभा वनमाला (श्वेत पुष्पों की माला) है, समुद्र की शोभा उसका तट है, दिग्गज की शोभा उसके मद की रेखा है, चन्द्र की शोभा उसकी चाँदनी है, सरोवर की शोभा कमल का पौधा है, आकाश की शोभा नक्षत्रमाला है, मानसरोवर की शोभा हंसो की पंक्ति है, मलयपर्वत का भूषण चन्दनवृक्षों की पंक्ति है, शेषनाग की शोभा फन में स्थित मणियों की ज्वाला है वैसे ही उस राजा की शोभा, (अपनी शोभा से) सारे संसार को चकित कर रही, स्त्रियोचित मोहकगुणो की मानो जन्मदात्री ही, उसके सारे अन्त पुर की मुख्य स्त्री विलासवती नाम की पटरानी थी।

और एक बार वह जब (उसको मिलने के लिये) उसके निवासस्थान में गया तो उसने उनको रोती हुई देखा, उस समय वह चिन्ता से स्थिर आँखों वाले, शोक से मौन

मूकेन परिजनेन परिवृताम्, आरादवस्थितैश्च ध्यानानिमिषलोचनैः कञ्चुकिभिरुपास्यमानाम्, अनतिदूरवर्तिनीभिश्चान्तःपुरवृद्धाभिराश्वास्यमानाम्, अविरलाश्रुपातार्द्रीकृतदुकूलाम्, अनलङ्कृताम्, वामकरतलविनिहितमुखकमलाम्, असयताकुलालकाम्, सुनिबिडपर्यङ्किकोपविष्टाम्, रुदती ददर्श। कृताभ्युत्थाना च ता तस्यामेव पर्यङ्किकायामुपवेश्य स्वय चोपविश्याविज्ञातबाष्पकारणो भीतभीत इव करतलेन विगतबाष्पाम्भःकणौ कुर्वन्कपोलौ भूपालस्तामवादीत्—'देवि, किमर्थमन्तर्गतगुरुशोक-

मानसी व्यथा तया स्तिमिता निश्चला दृष्टिर्दृग्यस्य स तेन शोकेन शुचा मूकेन जडेनैवभूतेन परिजनेन परिच्छदेन परिवृता सहिताम्। आरादिति। आराद्दूरादवस्थितै कृतावस्थानैर्ध्यानेन चिन्तया निमिषरहिते लोचने येषा तैरेवभूतै. कञ्चुकिभि सौविदल्लैरुपास्यमाना सेव्यमानाम्। अनतीति। नातिदूरवर्तिनीभिरन्त पुरवृद्धाभिरवरोधवृद्धस्त्रीभिराश्वास्यमाना भाविफलप्रशसया विश्वास्यमानाम्। अविरलेति। अविरला निबिडा येऽश्रुपाता नेत्रजलपातास्तैरार्द्रीकृत क्लिन्नीकृत दुकूल दुगूल यया सा तामनलकृतामविभूषितां वामकरतलेऽपसव्यपाणितले विनिहित स्थापित मुखकमलमाननपद्म यया सा ताम्। अनेन खेदातिशयद्योतक स्त्रीजातिस्वभावोऽभिहित। असंयतेति। असयता असबद्धा आकुला इतस्तत पर्यस्ता अलका कचा यस्यास्ताम्। क्षुद्र पर्यङ्क पर्यङ्किका। सुनिबिडा दृढा या पर्यङ्किकोपवेशनमञ्चिका तस्यामुपविष्टामासेदुषीं रुदतीं रुदन कुर्वाणाम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। कृतेति। कृत विहितमभ्युत्थान समानर्न यया सा ताम्। तां विलासवतीं तस्यामेव पूर्वोक्तायामेव पर्यङ्किकायामुपवेश्य स्थाप्य स्वयं चात्मनान्यत्रोपविश्य। स्त्रीपुसोरेकत्रावस्थितेरयोग्यत्वात्। तदनन्तरं च भूपालस्तामवादीदित्यन्वय। स्वय चेत्यनेन विलासवत्या उपवेशानन्तर स्वस्योपवेशनेन शोकनिवारक आदरातिशय सूचित। अविज्ञातेति। अविज्ञातमविदित बाष्पस्याश्रुपातस्य कारण नियामकं येन स

सेवक वर्ग से घिरी हुई थी, आदर सहित उसके समीप स्थित, चिन्तापूर्ण ध्यान मे स्थिर दृष्टियो वाले कञ्चुकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे, समीपस्थित अन्त पुर की वृद्धा स्त्रियाँ उसको आश्वासन दे रही थीं, निरन्तर बहते आँसुओं से उसने अपना उत्तरीय वस्त्र गीला कर लिया था, आभूषण उतार रखे थे, बायीं हथेली पर उसने अपना मुखकमल रखा हुआ था, उसके बाल खुले और अस्त-व्यस्त थे और वह स्वय गठरी बनी हुई एक शय्या पर बैठी थी। और जब उसके सत्कार के लिये वह उठकर खड़ी हो गयी तब उसको उसी शय्या पर बिठाकर और स्वय भी (उसी पर) बैठकर उसके रोने के कारण से अनभिज्ञ राजा ने डरते-डरते व्यक्ति की भाँति, अपनी हथेली से उसके कपोलों को आँसुओं के बिन्दुओं से रहित करते हुए (अर्थात् कपोलों पर के आँसुओं को पोछते हुए) उससे कहा—

"देवि! मन के भीतर दबाये हुए भारी शोक के कारण धीरे धीरे तथा मौन रूप से

(१) अथवा खूब घनी बनी शय्या पर बैठी थी।

भारमन्थरमशब्दं रुद्यते। ग्रथ्नन्ति हि मुक्ताफलजालकमिव बाष्पबिन्दुनिकरमेतास्तव पक्ष्मपङ्क्तयः। किमर्थं च कृशोदरि, नालंकृतासि। बालातप इव रक्तारविन्दकोशयोः किमिति न पातितश्चरणयोरयमलक्तकरसः। कुसुमशरसरःकलहंसकौ कस्मात्पादपङ्कजस्पर्शेन नानुगृहीतौ मणिनूपुरौ। किंनिमित्तमयमपगतमेखलाकलापमूको मध्यभागः। किमिति च हरिण इव हरिणलाञ्छने न लिखितः कृष्णागुरुपत्रभङ्गः पयोधरभारे। केन कारणेन तन्वीय हरमुकुटचन्द्रलेखेव गङ्गास्रोतसा न विभूषिता

तथेति राज्ञो विशेषणम्। भीतभीत इव त्रस्तत्रस्त इव। स्नेहातिशयद्योतनार्थं वीप्सा। करतलेन पाणितलेन विगतौ दूरीभूतौ बाष्पाम्भसो नेत्रजलस्य कणौ ययोरेवभूतौ कपोलौ कुर्वन्निति राजविशेषणम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। किं तदित्याह—देवीति। हे देवि, किमर्थं किंप्रयोजनम्। अन्तरिति। अन्तर्गतो गूढपथगतो यो गुरुशोको गरिष्ठशुक्तस्य भारो भरस्तेन मन्थरमनुद्भटमशब्द शब्दवर्जितं रुद्यते रोदन क्रियते। अत्राशब्दमित्यनेन धीराया स्वभाव प्रदर्शित। अधीरायास्तु सशब्द रोदन स्यादिति भाव। श्वेतवर्तुलत्वसाम्यात्तदुपमानमाह—ग्रथ्नन्तीति। एतास्तव पक्ष्मपङ्क्तयो नेत्ररोमराजयो मुक्ताफलजालकमिव मुक्ताकलापमिव बाष्पबिन्दुनिकरमश्रुकणसमूह ग्रथ्नन्ति ग्रथन कुर्वन्ति। हे कृशोदरि क्षामकुक्षि, किमर्थं किंनिमित्त नालकृतासि न भूषितासि। किमिति प्रश्ने। रक्तारविन्दकोशयोर्लोहितकमलमुकुलयोर्बालातप इव तत्कालोदितसूर्यालोक इव चरणयो पादयोरयमलक्तकरसो यावकद्रवो न पातितो न न्यस्त। कोमलमुकुलाकारसाम्याच्चरणयो कोशसाम्यम्। आरक्तसाम्यादलक्तकरसे बालातपसाम्यम्। कुसुमेति। कुसुमशरस्य मदनस्य यत्सर कासारस्तस्य कलहसाविव कलहसावनुरणनसाम्यान्मणिनूपुरौ पादकटके कस्माद्धेतोः पादपङ्कजस्पर्शेन चरणकमलसस्पर्शेन नानुगृहीतौ प्रसादपात्रीकृतौ। किंनिमित्तमिति। किंनिमित्त किंनिदानमयमपगतो यो मेखला कटिसूत्र तस्य कलाप समूहस्तेन मूको जडो मध्यभागो मध्यप्रदेश। मेखलाया एकत्वेऽपि किङ्किण्यपेक्षया कलापेऽयुक्त विविधमणिद्युतिसाम्यात्। मेखलैव कलाप प्रचलाक इति वा। किमिति चेति। हरिणलाञ्छने चन्द्रे हरिण इव पयोधरभारे स्तनाभोगे कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य द्रवेण च पत्रभङ्गो

क्यो रो रही हो। ये तुम्हारी लम्बी पलकें, मोतियो के गुच्छों सरीखे गूथ कर उनकी माला पिरो रही हैं और हे तनुमध्ये ! तुमने आभूषण क्यो नहीं पहने हैं ? तुमने अपने पाँवों पर अलक्तक रस ऐसे ही क्यों नहीं गिराया है (लगाया है) जैसे कि प्रात.कालीन धूप लाल कमल की कलियों पर पड़ती है ? पुष्पधन्वा के सरोवर के सुन्दर हस भूत मणिमय नूपुरों को अपने चरणकमलों के स्पर्श से क्यों अनुगृहीत नहीं किया है ? तुम्हारा यह कटिभाग मेखलाओं के कलाप के हट जाने पर उससे शून्य होने पर क्यों मौन हो गया है ? जैसे चन्द्रमा पर हरिण का चिह्न बना हुआ है वैसे ही उसने अपने विस्तृत स्तनों पर कृष्ण अगरु के लेप से चित्रकारी क्यों नहीं की है ? हे शोभनजघे ! जिस प्रकार शिवजी के मुकुट मे स्थित (पतली) चन्द्रकला, (आकाश) गगा की (श्वेत) धारा से शोभित रहती है, वैसे ही तुमने अपनी इस पतली

हारेण वरोरु, शिरोधरा। किं वृथा वहसि विलासिनि स्रवदश्रुजललवधौतपत्रलतं कपोलयुगम्। इद च कोमलाङ्गुलिदलनिकरं रक्तोत्पलमिव करतल किमिति कर्णपूरतामारोपितम्। इमां च केन हेतुना मानिनि, धारयस्यनुपरचितगोरोचनाबिन्दुतिलकामसयमितालकिनी ललाटरेखाम्। अय च ते बहुलपक्षप्रदोष इव चन्द्रलेखाविरहितः करोति मे दृष्टिखेदमतिबहुलतिमिरपटलान्धकारः कुसुमरहितः केशपाशः। प्रसीद, निवेदय देवि, दुःखनिमित्तम्। एते हि पल्लवमिव सराग मे हृदयमाकम्पयन्ति तरली-

---

रचनाविशेष किमिति हेतोर्न लिखितो न लिपीकृत । अत्र गौरत्ववर्तुलत्वकिंचित्कृष्णत्वसाम्याच्चन्द्रस्तनभारयो साम्यम्। गौरकृष्णत्वसाम्याच्च हरिणकृष्णागुर्वो साम्यम्। केनेति। हे वरोरु! केन कारणेनेय तन्वी शिरोधरा ग्रीवा हारेण मुक्ताकलापेन न विभूषिता नालकृता। केनेव गङ्गास्रोतसा स्वर्धुनीप्रवाहेण हरमुकुटो जटाजूटस्तस्मिन्या चन्द्रलेखा शशिकलेव। किं वृथेति। हे विलासिनि, स्रवत्क्षरद्यदश्रुजलं नेत्रजल तस्य लवा विन्दवस्तैर्धौता क्षालिता पत्रलता पत्रभङ्गिर्यस्मिन्नेवभूत यत्कपोलयुगं वृथा मुधा किं वहसि किं धारयसि । इद चेति। कोमलानि मृदूनि यान्यङ्गुलिदलानि तेषा निकर समूहो यस्मिन्नेवभूत करतलं हस्ततल रक्तोत्पलमिव कोकनदमिव। किमिति हेतो कर्णपूरता श्रवणाभरणतामारोपित स्थापितम्। इमां चेति। हे मानिनि हे गर्वयुक्ते, केन हेतुना केन कारणेन इमा प्रत्यक्षगतां ललाटरेखामलिकराजी धारयसि धत्से। ता विशेषयन्नाह—अन्विति। अनुपरचितमविहितम्। गोरोचना प्रसिद्धा तस्या बिन्दुभिस्तिलक पुण्ड्र यस्या सा तामसयमिता असबद्धा अलका केशा विद्यन्ते यस्या सा ताम्। अय चेति। अय ते तव कुसुमरहित पुष्पशून्य केशपाश कुन्तलकलापो मे मम दृष्टिखेदं करोति प्रणयतीत्यन्वय । क इव। बहुलपक्षप्रदोष इव। बहुलपक्ष कृष्णपक्षस्तस्य प्रदोषो यामिनीमुख तद्वदिव। अत्र प्रदोषेऽपि शुक्लपक्षे चन्द्रलेखादर्शनाद्बहुलग्रहणम्। बहुलपक्षेऽपि पश्चिमरात्रौ चन्द्रनक्षत्राणा दर्शनात्प्रदोषग्रहणम्। कीदृक्। चन्द्रलेखा

गर्दन को मोतियों की माला से क्यों नहीं सुशोभित किया? हे विलासिनि! तुम अपने दोनों गालो को व्यर्थ ही ऐसे क्यो बनाये हुई हो कि जिनम तुम्हारे बहते आँसुओ की बून्दों से उनकी केसर से बनायी सारी चित्रकारी धुल गयी है? और किस कारण से तुमने अपनी लाल कमल सी (बायी) हथेली को, जिसमें कोमल अगुलियाँ ही पखुड़ियों का गुच्छा है, अपना कर्णाभूषण बनाया है? और हे गर्वीली भद्रे! तुमने अपने विशाल मस्तक को न बाँधे केशोंवाले तथा गोरोचन के बिन्दुओं के तिलक से शून्य क्यों रखा हुआ है? और तेरे ये फूलो से रहित घने बाल अन्धकार के एक घने ढेर की कालिमा के सदृश कालिमा धारण किये हुए मेरी आँखो मे ऐसे खटक रहे है जैसे कि चन्द्रलेखा से रहित और अधेरे के बहुत बड़े घने ढेर से उत्पन्न कालिमा को धारण किये हुआ, कृष्णपक्ष की रात्रि का पूर्व भाग आँखो को बुरा लगता है। हे रानी! कृपया अपने दु ख का कारण बताओ। ये विस्तृत दूर तक पहुँचने हुए उच्छ्वास, तुम्हारे स्तनके वस्त्रको हिलाते हुए, प्रेमयुक्त मेरे हृदय में ऐसे कम्पन

कृतस्तनांशुकास्तवायताः श्वासमरुतः । कच्चिन्मयापराद्धमन्येन वा केनचिदस्मदनुजीविना परिजनेन । अतिनिपुणमपि चिन्तयन्न पश्यामि खलु स्खलितमात्मनस्त्वद्विषये । त्वदायत्तं हि मे जीवितं राज्यं च । कथ्यतां सुन्दरि, शुचः कारणम्' इत्येवमभिधीयमाना विलासवती यदा न किंचित्प्रतिवचः प्रतिपेदे तदा विवृद्धबाष्पहेतुमस्याः परिजनमपृच्छत् ।

अथ तस्यास्ताम्बूलकरङ्कवाहिनी सततप्रत्यासन्ना मकरिका नाम राजानमु-

---

शशिकला तया विरहित । प्रदोषं विशेषयन्नाह—अतीति । अतिबहुलान्यतिदृढानि यानि तिमिरपटलानि तमोमण्डलानि तैरन्धकारो नेत्ररश्मीनामप्रसरो यस्मिन्स तथा । अत्र शुक्लत्वसाम्यात्कुसुमचन्द्रलेखयो साम्यम् । कृष्णत्वसाधर्म्यात्केशकलापप्रदोषयो साम्यम् । सान्त्वनोपक्रमेण चाटुवचनविस्तारमुपसंहरन्नाह—देवीति । हे देवि हे राज्ञि, प्रसीद प्रसन्ना भव । दु खनिमित्तं मानसिकव्यथाकारण निवेदय कथय । एते हीति । हि निश्चितम् । एते दृश्यमानास्तवायता विस्तीर्णाः श्वासमरुतो नि श्वासा पल्लवमिव किसलयमिव सरागम् । राग आरुण्य प्रीतिश्च तेन सह वर्तमानमित्यर्थं । एतेन पल्लवसाम्यता सूचिता । मे मम हृदय चित्तमा कम्पयन्ति धूनयन्ति । श्वासमरुतो विशिनष्टि—तरलीति । तरलीकृत चञ्चलीकृत स्तनांशुक पयोधरवस्त्र यैस्ते तथा । कच्चिदिति । कच्चित्प्रश्ने । मयास्मदनुजीविनास्मत्सेवकेन परिजनेन परिच्छदेनान्येन केनचिद्वापराद्धमपराध कृत । अतीति । अतिनिपुणमतिचतुर चिन्तयन्नपि विचारयन्नपि त्वद्विषये । खलु निश्चयेन आत्मन स्वकीयस्य स्खलितमपि वैगुण्यमपि न पश्यामि नावलोकयामि । त्वदिति । हि निश्चितम् । मे मम जीवित प्राणित राज्य च त्वदायत्तम् । त्वदधीनमित्यर्थं. । हे सुन्दरि, शुच शोकस्य कारण नियामक कथ्यता प्रतिपाद्यताम् । इतीति । इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधीयमाना पृच्छ्यमाना विलासवती राजपत्नी यदा न किंचित्प्रतिवच प्रत्युत्तर प्रतिपेदे प्रतिपन्नवती । तदेति । तदा तेन प्रकारेणास्या विलासवत्या विवृद्धो वृद्धिं प्राप्तो यो बाष्पो नेत्राम्बु तस्य हेतु कारण परिजनमपृच्छदप्राक्षीत् । धातोर्द्विकर्मकत्वात्कर्मद्वयम् ।

अथेति । नृपप्रश्नानन्तर तस्यास्ताम्बूलकरङ्क स्थगी तद्वाहिका मकरिकेति नामा यस्या । अनुकरणशब्दत्वान्न ङीप् । राजान तारापीडमुवाचाब्रवीदित्यन्वयः । कीदृशी । सततं निरन्तरं प्रत्यासन्ना निकटस्थायिनी । किमुवाचेत्याह— देवेति । हे देव हे स्वामिन्, देवात्तारापीडादधि-

---

उत्पन्न कर रहे हैं मानो कि यह (हृदय) कोई लाल पत्ता हो । क्या मैंने अथवा मेरे किसी अन्य सेवक ने अथवा सम्बन्धी ने तुम्हारा अपराध किया है ? बहुत ध्यान से सोचता हुआ भी मैं अपनी ओर से तुम्हारे प्रति अपनी कोई छोटी सी भी भूल नहीं जान पाता हूँ । मेरा जीवन और मेरा राज्य तो दोनों ही तुम पर निर्भर हैं । हे सुन्दरी ! (इसलिये) अपने दु.ख का कारण बताओ ।"—इस प्रकार कही जाती विलासवती ने जब कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया तब राजा ने उसके बहुत अधिक रोने का कारण उसकी सेविकाओं से पूछा ।

तब उसकी सदा समीप रहनेवाली पानपिटारी उठानेवाली मकरिका ने राजा से

वाच—देव, कुतो देवादल्पमपि परिस्खलितम्। अभिमुखे च देवे का शक्तिः परिजनस्यान्यस्य वा कस्यचिदपराद्धुम्। किंतु महाग्रहग्रस्तेव विफलराजसमागमास्मीत्यय मस्या देव्याः संतापः। महांश्च कालः संतप्यमानायाः। प्रथममपि स्वामिनी दानवश्रीरिव सततनिन्दितसुरता शयनस्नानभोजनभूषणपरिग्रहादिषु समुचितेष्वपि दिवसव्यापारेषु कथंकथमपि परिजनप्रयत्नात्प्रवर्त्यमाना सशोकेवासीत्। देवहृदयपीडापरिजिहीर्षया च न दर्शितवती विकारम्। अद्य तु चतुर्दशीति भगवन्तं महाकालमर्चितु-

---

पत्युरल्पमपि परिस्खलितं कुतः स्यात्। एतस्याः प्रीतिविषयेऽत्यन्तं सावधानत्वादिति भावः। अतश्चाभिमुख एतद्विषये लोकेनानुकूले ज्ञाते देवे राज्ञि परिजनस्यान्यस्य कस्यचित्तद्भिन्नस्यापराद्धुमपराधं कर्तुं का शक्तिः सामर्थ्यम्। न कापीत्यर्थः। तर्हि किमस्तीत्याशयेनाह—किं त्विति। महाग्रहो भूतादिग्रहस्तद्ग्रस्तेव तद्गृहीतेव। विफलेति। विगतं फलं पुत्रादिरूपं यस्मादेवंभूतो राजसमागमो राजसंभोगो यस्याः सा तथा। या महाग्रहग्रस्ता स्यात्सापि विफलराजसमागमा स्यात्। राजरङ्कयोर्विभेदं न जानातीत्यर्थः। अहमस्मीत्यस्या देव्या अयं संतापश्चित्तोद्वेगः। संतप्यमानायाः संतापं कुर्वत्या महान्कालो भूयाननेहा। गत इत्यध्याहार्यम्। प्रथममपि पूर्वमपि स्वामिनीयं सशोकेवासीदित्यन्वयः। तामेव विशिनष्टि—दानवेति। दानवस्यासुरस्य श्रीरिव लक्ष्मीरिव। उभयं विशिनष्टि—सततं निन्दितं सुरतं मैथुनं यया सा। पक्षे सुराणां समूहः सुरता। शेषं पूर्ववत्। शयनेति। शयनं स्वापः, स्नानमाप्लवः, भोजनमशनम्, भूषणपरिग्रह आभरणस्वीकारः, इत्यादिषु समुचितेष्वपि योग्येष्वपि दिवसव्यापारेषु दिनकृत्येषु कथंकथमपि महता कष्टेन परिजनः परिच्छदस्तस्य प्रयत्न आग्रहस्तेन प्रवर्त्यमाना प्रेर्यमाणा। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तर्हि मया कथं न ज्ञातेत्याशयेनाह—देवेति। देवो भवांस्तस्य या हृदयपीडा चेतसोऽस्वास्थ्यं तस्याः परिजिहीर्षा परिहर्तुमिच्छा तया च विकारः शोकज्ञप्तिलक्षणं न दर्शित-

---

कहा—"महाराज! आपकी ओरसे तो थोड़ी सी भूल भी क्यों होती। और आपके अनुकूल अथवा सन्मुख रहते किसी सेवक को अथवा किसी दूसरे को अपराध करने की—इनको दुःख पहुँचाने की शक्ति ही क्या है? हमारी महारानी का यह दुःख तथापि यह सोचने के कारण है कि राजा (आप) से उसका समागम इस प्रकार निष्फल हो गया है मानो कि वह किसी बड़े (दुष्ट) ग्रह (भूतादि से) पकड़ी हुई हो और इसलिये उसको किसी 'नरेन्द्र' भूतचिकित्सक की सेवा में उपस्थिति निष्फल रही हो। और इस प्रकार दुःखी होते हुए उसका बहुत सा समय बीत चुका है। (इस दुःख के) आरम्भ से ही हमारी रानी शोक युक्त ही रहती थी सभी देवों की निन्दा करनेवाली राक्षसों की राजलक्ष्मी की भाँति वह सुरत क्रीडाओं से सदा घृणा करती थी, और शयन स्नान, भोजन भूषणधारण आदि प्रचलित दैनिक कर्तव्यों में वह अपनी सेविकाओं के प्रयत्नों से ही लगती थी (वह भी) बड़ी कठिनता से। आप के हृदय को दुःखी न करने की इच्छा से उसने (बाहर से) वह दुःख (सूचक विकार) कभी नहीं दिखलाया। किन्तु आज चतुर्दशी है इसलिये जब यहाँ से भगवान् महाकाल की

मितो गतया तत्र महाभारते वाच्यमाने श्रुतम्—'अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः। पुंनाम्नो नरकात्त्रायत इति पुत्त्रः' इत्येतच्छ्रुत्वा भवनमागत्य परिजनेन सशिरः प्रणाममभ्यर्थ्यमानापि नाहारमभिनन्दति, न भूषणपरिग्रहमाचरति, नोत्तरं प्रतिपद्यते। केवलमविरलबाष्पदुर्दिनान्धकारितमुखी रोदिति। एतदाकर्ण्य देवः प्रमाणम्' इत्येतदभिधाय विरराम। विरतवचनायां तस्यां भूमिपालस्तूष्णीं मुहूर्तमिव स्थित्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य निजगाद—'देवि, किमत्र क्रियतां दैवायत्ते

वती न ज्ञापितवती। तर्ह्यद्य कथं तत् (स) प्रदर्शित इत्याशयेनाह—अद्येति। तु पुनरर्थे। अद्य चतुर्दशीति कृत्वा भगवन्त माहात्म्यवन्त महाकालमर्चितु पूजितुमितो गृहाद्गतया तत्र महाकालप्रासादे महाभारते शास्त्रे वाच्यमाने श्रुतमाकर्णितम्। किमित्याशङ्कायामाह—अपुत्राणामिति। अपुत्राणां सुतवर्जितानाम्। किलेति सत्ये। शुभा लोका देवलोका न सन्ति न विद्यन्ते। अत्रार्थे पुत्रशब्दव्युत्पत्तिं प्रदर्शयन्नाह—पुंनाम्न इति। पुनाम्नो नरकात्त्रायत इति पुत्र.। एतेन पुत्रोऽपि नरकत्रायको भवतीति ज्ञापितम्। इत्येतदिति। इति पूर्वोक्तप्रकारेणै-तच्छ्रुत्वाकर्ण्य भवनं गृहमागत्यैत्य परिजनेन परिच्छदलोकेन सशिर प्रणाम शिरोवनतिपूर्वक यथा स्यात्तथाभ्यर्थ्यमानापि प्रार्थ्यमानाप्याहार भोजन नाभिनन्दति नाभिलषति। भूषणानामा-भरणानां परिग्रह स्वीकार नाचरति न करोति। उत्तर प्रतिवचो न प्रतिपद्यते। न ददातीत्यर्थ। तर्हि किं करोतीत्याशयेनाह—केवलेति। केवल रोदिति रोदनमेव करोति। नान्यत्किमपीति भाव। कीदृशी। अविरलो घनो यो बाष्पो नेत्राम्बु स एव दुर्दिन मेघज तमस्तेनान्धकारित सजातान्धकार मुख यस्या सा। एतन्मदुक्त वच आकर्ण्य श्रुत्वा देव. प्रमाणमिति देवी भवान्यदाज्ञापयिष्यति तदेव सर्वैर्वेदवाक्यवत्स्वीकरिष्यत इति भाव। इति पूर्वोक्तप्रकारेणा-भिधायोक्त्वा विरराम विरता बभूव। विरतवचनायां तस्यां मकरिकायां भूमिपालो राजा मुहूर्तमिव मुहूर्तमात्र तूष्णीं मौन स्थित्वा। तदवस्थतयास्थायेत्यर्थ। दीर्घ लम्बायमानमुष्ण तप्त नि श्वस्य नि श्वास मुक्त्वा निजगादाब्रवीत्। हे देवि किमत्रेति। दैवायत्ते दैवाधीने वस्तुनि

पूजा करने गयी थी तब वहाँ इसने पढ़े जाते महाभारत का निम्नलिखित वाक्य सुना—जिनका कोई पुत्र नहीं होता उनको मगलमय शुभ लोक नहीं मिलते। 'पुत्र' पुत्र इसी कारण कहा जाता है कि वह 'पुत्' नाम के नरक से बचाता है।" यह सुनकर महल में लौटकर यह, सेवक वर्ग से सिर झुकाकर प्रार्थना की गयी भी न तो भोजन को ग्रहण करती है, न आभूषणों को पहनती है और न कोई उत्तर ही देती है। अपने घने गिरते आँसुओं की वर्षा के कारण मलिन मुखवाली वह केवल रोती ही है यह सुनकर महाराज ही निर्णय करें (कि क्या करना है)।"—यह कह कर वह रुक गयी (उसने बोलना बन्द कर दिया)।

जब उसने बोलना रोक दिया तो राजा क्षणभर ही चुप रहकर, गहरा और गर्म निश्वास लेकर बोला—मेरी रानी। इस (सर्वथा) दैवाधीन वस्तु के विषय में भला क्या

वस्तुनि। अलमतिमात्र रुदितेन। न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्। आत्मजपरिष्वङ्गामृतास्वादसुखस्य नूनमभाजनमस्माकं हृदयम्। अन्यस्मिञ्जन्मनि न कृतमवदातं कर्म। जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि। न हि शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि। यावन्मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम्। अधिकां कुरु देवि गुरुषु भक्तिम्। द्विगुणामुपपादय देवतासु पूजाम्। ऋषिजनसपर्यासु दर्शितादरा भव। परं हि दैवतमृषयः,

---

कृत्ये किं क्रियतां किं कर्तुं शक्यम्। अतएवातिमात्र रुदितेनात्यन्तरोदनेनालं कृतम्। प्रायो बाहुल्येन सुराणां न वयमनुग्राह्या अनुग्रहविषया। नूनम् अस्माक हृदय चेत आत्मजस्य पुत्रस्य यः परिष्वङ्ग उपगूहन तदेवामृत पीयूषं तस्यास्वादसुखमुपभोगसुख तस्याभाजनमनाधारस्थलम्। अत्रार्थे हेतुमाह—अन्यस्मिन्निति। अन्यस्मिञ्जन्मनि भवान्तरेऽवदात कर्म शुद्ध कर्म न कृत न विहितम्। हि निश्चये। जन्मान्तरकृत कर्म पूर्वभवार्जित कर्म फल शुभाशुभरूपमुपनयति प्रापयति पुरुषस्य मनुष्यस्यात इह जन्मन्यस्मिन्भवे दैवमदृष्टमन्यथाकर्तुमनिष्टफलदमिष्टफलद कर्तुमेव न शक्यमभियुक्तेनापि पण्डितेनापि। किं पुनर्मन्दमेधसा। अत्र दैव द्विविधम्। प्रतिबन्धकमप्रतिबन्धक च। प्रतिबन्धक तदपि द्विविधम्। स्वत प्रतिषेधरूप वन्ध्यस्त्रीपुयोगादौ। द्वितीय तु सहकारिविघटनद्वारा राज्यप्राप्त्यादौ कार्योत्पत्तिप्रतिबन्धकम्। अप्रतिबन्धक तदपि द्विविधम्। स्नानदानादिसामग्रीसमवधानेन प्रतिबन्धक न भवति। तदभावे तु प्रतिबन्धकम्। अतोऽदृष्टस्याप्रत्यक्षत्वेन विविच्य ज्ञातुमशक्यत्वात्। द्वितीयसभावना चेतसिकृत्याह—यावदिति। मानुष्यके मनुष्यजन्मनि यावदुपपादयितु कर्तुं शक्य स्वकृतिसाध्य तावत्सर्वमुपपाद्यत। क्रियताम्। एतदेव दर्शयति—अधिकेति। हे देवि, हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टारो गुरवस्तेषु पूर्वावस्थातोऽधिकामाधिक्येन भक्तिमाराध्यत्वेन ज्ञानं कुरु विधेहि। देवतासु हरिहरादिषु द्विगुणां द्विगुणिता पूजामर्चामुपपादय निष्पादय। ऋषिजनसपर्यासु मुनिजनसेवासु दर्शित प्रकटित आदर सत्कारो यया सैवभूता भव। हि निश्चितम्। ऋषयो मुनय परमुत्कृष्ट दैवत

किया जाय? इतना अधिक मत रोओ। सम्भवत. (ऐसा प्रतीत होता है कि) हम पर देवों की कृपा नहीं है। वस्तुत (सम्भवत यह बात हो कि) हमारा हृदय पुत्र के आलिंगन रूप अमृत के आस्वादन का पात्र न हो (अर्थात् हमारे भाग्य में ही पुत्र न हो)। (निश्चय ही) हमने अपने पूर्व जन्म मे कोई शुभ कार्य नहीं किया होगा। क्योंकि पूर्व जन्म मे किये हुए कर्म ही इस पुरुष के जन्म मे (उसको) फल पहुँचाते हैं। अभियुक्त अर्थात् बुद्धिमान् (अथवा धीरज से परिश्रम करने वाला) व्यक्ति भी भाग्य को नहीं पलट सकता। मरणधर्मा मनुष्य जितना कुछ कर सकता है, फिर भी, वह सब तो करना ही चाहिये। हे देवि, (अपने) बड़ों का और अधिक सन्मान करो। देवताओं की पूजा दुगुनी करो। मुनियों की पूजा में (और अधिक) आदर दिखाओ। क्योंकि मुनिजन बड़े महत्त्वशाली देवता हैं, यदि उनकी

यत्नेनाराधिता यथासमीहितफलाना दुर्लभानामपि वराणा दातारो भवन्ति। श्रूयन्ते हि पुरा चण्डकौशिकप्रभावान्मगधेषु बृहद्रथो नाम राजा जनार्दनस्य जेतारमतुल-भुजबलमप्रतिरथं जरासन्ध नाम तनय लेभे। दशरथश्च राजा परिणतवया विभाण्डक-महामुनिसुतस्यर्ष्यश्रृङ्गस्य प्रसादान्नारायणभुजानिवाप्रतिहतानुदधीनिवाक्षोभ्यानवाप चतुरः पुत्रान्। अन्ये च राजर्षयस्तपोधनानाराध्य पुत्रदर्शनामृतस्वादसुखभाजो बभूवुः। अमोघफला हि महामुनिसेवा भवन्ति। अहमपि खलु देवि, कदा समु-पारूढगर्भभरालसामापाण्डुमुखीमासन्नपूर्णचन्द्रोदयामिव पौर्णमासीनिशा देवीं

भाग्यम्। एतदेव प्रपञ्चयन्नाह—यत्नेति। यत्नेन प्रयत्नेन। मन शुद्ध्येत्यर्थः। आराधिता प्रीणिता मुनयो यथासमीहितानि फलानि येष्वेवभूताना दुर्लभानामपि वराणां मार्गिताना दातारो दायका भवन्ति। अत्रार्थेऽन्यसमतिं प्रदर्शयन्नाह—श्रूयन्ते हीति। हि निश्चितम्। श्रूयन्त आकर्ण्यन्ते। ग्रन्थान्तरेभ्य इति शेषः। मगधेषु कीकटेषु पुरा पूर्वं चण्डकौशिको मुनिस्तस्य प्रभावान्माहा-त्म्याद्बृहद्रथो राजा। नामेति कोमलामन्त्रणे। जनार्दनस्य कृष्णस्य जेतार जयनशीलमतुलं निरुपमं भुजबल बाहुबल यस्य स तमप्रतिरथं महारथं जरासन्धं नाम जरासन्धाभिध तनय पुत्र लेभे प्राप्तवान्। दशरथेति। चकार पूर्वोक्तसमुच्चयार्थं। दशरथो राजा परिणत पक्व वयो यस्यैवभूत सन्विभाण्डकनामा यो महामुनिस्तस्य सुतस्यर्ष्यश्रृङ्गस्य प्रसादान्माहात्म्या-न्नारायणभुजानिव कृष्णबाहूनिवाप्रतिहतानपराजितानुदधीनिव समुद्रानिवाक्षोभ्याननाकलनीयां-श्चतुर पुत्रानवाप प्राप्तवान्। अन्ये चेति। पूर्वोक्तव्यतिरिक्ता राजर्षयस्तपोधनांस्तपस्विन आराध्योपास्य पुत्रस्य सुतस्य यद्दर्शनमवलोकन तदेवामृत तस्यास्वाद उपभोगस्तज्जनित यत्सुख सात तद्भाजो बभूवुर्जज्ञिरे। अत्रार्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—अमोघेति। हि निश्चितम्। अमोघं निश्चित फल यासा ता महामुनिसेवा महातपस्विसपर्या भवन्ति। हे देवि, खलु निश्चयेन। अहमपि कदा कस्मिन्काले देवीं त्वा द्रक्ष्यामि विलोकयिष्यामि। तामेव विशिनष्टि—समुपेति। समुपारूढ प्राप्तो यो गर्भो भ्रूणस्तस्य भरो भारस्तेनालसां मन्थरामा ईषत्पाण्डु शुक्ल मुखमाननं

ध्यान से (यत्न पूर्वक) आराधना-स्तुति की जाय तो वे अभीष्ट फल वाले तथा दूसरी रीति से दुर्लभ भी वर दे देते हैं। यह बात सुनी जाती है कि पहले कभी मगध देश में, बृहद्रथ नाम के राजा ने (मुनि) चण्डकौशिक की शक्ति से जनार्दन के भी विजेता, अतुल भुजबल से युक्त तथा अद्वितीय योद्धा जरासन्ध नाम का पुत्र प्राप्त किया था। और वृद्ध हुए भी राजा दशरथ ने विभाण्डक महामुनि के पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग की कृपा से, विष्णु की (चार) भुजाओं-सरीखे अजेय (अक्षरार्थ-अपराजित) तथा (चार) समुद्रों सरीखे अक्षोभ्य (गम्भीर) चार पुत्र प्राप्त किये थे। और दूसरे राजर्षि (भी) तपस्वियों की सेवा कर के पुत्र दर्शन रूप अमृत के उपभोग से सुखी हुए थे। क्योंकि महामुनियों की सेवा कभी निष्फल नहीं होती। हे रानी! (मैं भी उत्सुकता से सोचता हूँ कि) कब मैं भी अपनी रानी को प्राप्त गर्भ[1] के भार से अलसाती को, पीले मुख वाली को (और इस प्रकार) जिस (रात्रि) में पूर्ण चन्द्र का उदय होने ही वाला

1. समुपारूढ।

द्रक्ष्यामि। कदा मे तनयजन्ममहोत्सवानन्दनिर्भरो हरिष्यति पूर्णपात्रं परिजनः। कदा हारिद्रवसनधारिणी सुतसनाथोत्सङ्गा द्यौरिवोदितरविमण्डला सबालातपा, मामानन्दयिष्यति देवी। कदा सर्वौषधिपिञ्जरजटिलकेशो निहितरक्षाघृतबिन्दुनि तालुनि विन्यस्तगौरसर्षपोन्मिश्रभूतिलेशो गोरोचनाचित्रकण्ठसूत्रग्रन्थिरुत्तानशयो दशनशून्यस्मिताननः पुत्रको जनयिष्यति मे हृदयाह्लादम्। कदा गोरोचनाकपिलद्युतिरन्तःपुरिकाकरतलपरम्परासचार्यमाणमूर्तिरशेषजनवन्दितो मङ्गलप्रदीप इव मे शोकान्ध-

यस्या सा ताम्। कामिव। आसन्नेति। आसन्न समीपवर्ती पूर्णचन्द्रस्योदयो यस्यामेवभूतां पौर्णमाशीनिशामिव राकारात्रिमिव। कदेति। मे मम तनयजन्ममहोत्सव पुत्रजननलक्षण स्तस्मिन्य आनन्द प्रमोदस्तेन निर्भर संभृत परिजनः पूर्णपात्र पूर्णानकं हरिष्यति ग्रहीष्यति। 'उत्सवेषु सुहृद्भिर्यद्बलादाकृष्य गृह्यते। वस्त्र माल्य च तत्पूर्णपात्र पूर्णानक च' इति कोश। कदेति। देवी विलासवती कदा मामानन्दयिष्यति प्रमोद जनयिष्यति। तामेव विशेषयन्नाह—हारिद्रेति। हरिद्रया रजन्या रक्त हारिद्र यद्वसन तस्य धारिणी धरणशीला। सुतेति। सुतेन पुत्रेण सनाथ सहित उत्सङ्ग क्रोडो यस्या सा। केव। द्यौरिवाकाशमिव। ता विशिनष्टि—उदितेति। उदितमुदय प्राप्त रविमण्डल सूर्यबिम्ब यस्या सा। सह बालातपेन वर्तते या सा। हारिद्रवसनस्य कालेन पीतरक्तत्वाद्बालातपसाम्यम्। सूर्यबिम्बपुत्रयोश्च साम्यम्। कदेति। पुत्रक सुतो मम हृदय चेतस्तस्याह्लाद प्रमोद जनयिष्यत्युत्पादयिष्यति। सुत विशेषयन्नाह—सर्वेति। सर्वाश्च ता ओषधयस्ताभिः पिञ्जरा पीतरक्ता जटिला अन्योन्य मिलिता केशा कचा यस्य स तथा। निहित स्थापितो रक्षया युतो घृतबिन्दुर्यस्मिन्नेवभूते तालुनि काकुदे विन्यस्त स्थापितो गौरसर्षपेणोन्मिश्र. सयुतो भूतिलेशो भस्मकणिका यस्य स तथा। अय बालरक्षाविधि। गोरोचनेति। गोरोचना तया चित्रो विचित्र कण्ठसूत्रग्रन्थिर्यस्य स तथा।

होता है उस पौर्णमासी की रात-सरीखी को देखूँगा? कब मेरे सेवक, (मेरे) पुत्र के जन्म पर (किये गये) महोत्सव के समय आनन्द से भरे, पूर्णपात्र को (मुझसे) झपट कर ले जायँगे और कब मेरी रानी, हल्दी मे रगे वस्त्रों को धारण किये हुई तथा पुत्रयुक्त गोदी वाली, (इस प्रकार) उस आकाश के सदृश दिखायी देगी कि जिसमे सूर्यमण्डल उदय हो गया हो तथा (पीली) प्रात कालीन धूप फैली हुई हो, मुझको प्रसन्नता देगी? और कब मेरा पुत्र, सर्वौषधि (नाम के ओषधि मिश्रण) से पीले किये घुँघराले बालों वाला, (विशेष रूप से तैयार किये हुए) रक्षाघृत की कुछ बूँदें जिस पर रख दी गयी हैं ऐसे तालु[1] पर श्वेत सरसों से मिली थोड़ी सी राख रखे हुआ, गोरोचना से (पीली) रगी गाठवाले सूत्र को गले मे पहने हुआ, पीठ के बल पड़ा हुआ, दान्तों से रहित मुख से मुस्कराता हुआ, मेरे हृदय को प्रसन्न करेगा! गोरोचना के सदृश (अथवा उससे पीले) वर्ण का, अन्त पुरकी स्त्रियों द्वारा हाथों ही हाथों हस्तान्तरित शरीर वाला, सभी से नमस्कृत, कब वह मेरी आँखो के शोकरूपी अन्धकार को

१ यहाँ श्री काले ने 'तालु' का अर्थ सिर किया है। क्यों?

कारमुन्मूलयिष्यति चक्षुषोः। कदा च क्षितिरेणुधूसरो मण्डयिष्यति मम हृदयेन दृष्ट्या च सह परिभ्रमन्भवनाङ्गणम्। कदा केसरिकिशोरक इव संजातजानुचङ्क्रमणावस्थः सचरिष्यतीतस्ततः स्फटिकमणिभित्त्यन्तरितान्भवनमृगशावकाञ्जिघृक्षुः। कदान्तःपुरनूपुरनिनादसङ्गतान्गृहकलहंसकाननुसरन्कक्षान्तरप्रधावितः कनकमेखला-घण्टिकारवानुसारिणीमायासयिष्यति धात्रीम्। कदा कृष्णागुरुपङ्कलिखितमदलेखा-

---

अयमपि रक्षाविधि। उत्तानेति। उत्तानमूर्ध्वमुख शेते य स तथा। दशनेति। दशनै दन्तै शून्य रहितमेतादृश स्मित विकसितमानन मुख यस्य स तथा। कदेति। कदा कस्मिन्काले मे मम चक्षुषोर्नेत्रयोर्मङ्गलप्रदीप इव शोक एवान्धकार तिमिरमुन्मूलयिष्यति मूलतो दूरीकरिष्यति। कीदृक्। गोरोचनावत्कपिला पिङ्गला द्युतिः कान्तिर्यस्य स तथा। पुनस्तमेव विशिनष्टि—अन्त इति। अन्तःपुरे भवा अन्त पुरिका पटाद्यन्तरिता. स्त्रियस्तासां करतलानि हस्ततलानि तेषा परम्परा श्रेणिस्तया सचार्यमाणा हस्ताद्धस्त प्रति स्थाप्यमाना मूर्ति शरीर यस्य स तथा। अशेषेति। अशेषै समग्रैर्जनैर्वन्दितो राजपुत्रत्वान्नमस्कृत। कदा चेति। कदेति पूर्ववत्। क्षित्या पृथिव्या यो रेणुर्धूलिस्तेन धूसरो मलिनो मम हृदयेन चित्तेन दृष्ट्या च लोचनेन सह सार्धं परिभ्रमन्नितस्तत पर्यटन्भवनाङ्गण गृहाङ्गण भूषयिष्यति। एतेन राज्ञश्चित्तनेत्रयोस्तृतीय एवायं सखेति ध्वनितम्। कदेति। कदेति पूर्ववत्। इतस्तत सचरिष्यति सचरण करिष्यति। क इव। केसरी सिंहस्तस्य किशोरकः शिशुस्तद्वदिव। संजातेति। सजाता समुत्पन्ना जातु कदाचित् चङ्क्रमणावस्था गमनयोग्यता यस्य स तथा। स्फटिकेति। स्फटिकमणीना या भित्तय कुड्यानि ताभिरन्तरितान्व्यवहितान् भवनमृगाणां गृहकुरङ्गाणां शावकान्पोतान्प्रतिबिम्बादिना दृश्यमानमूर्तीञ्जिघृक्षुर्ग्रहीतुमिच्छु। कदेति। कदा कस्मिन्काले धात्रीमुपमातरमायासयिष्यति प्रयास जनयिष्यति। कीदृक्। कक्षान्तरे गृहकोणान्तरे प्रधावित उच्चलित। दर्शनविषयत्वाभावादाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य या मेखला रसना तस्या घण्टिका. किङ्किण्यस्तासां यो रव शब्दस्तमनुसर्तुं शील यस्या. सा ताम्। किं कुर्वन्। अनुसर-

---

उस मङ्गल प्रदीप की भाति दूर करेगा जो अन्धेर को भगा देता है, जो गोरोचना-जैसा पीला प्रकाश करता है, अन्त पुर की स्त्रियाँ जिसे हाथों-हाथ हस्तातरित करती हैं और सभी लोग जिसको नमस्कार करते हैं? और कब पृथ्वीपर की धूल से धूसरित हुआ वह, मेरे हृदय तथा दृष्टि द्वारा (अनुगत), महल के आगन को अलकृत करेगा? कब घुटनों के बल खिसकने की उम्र वाला होकर, स्फटिक मणि निर्मित (पारदर्शी) दीवालों द्वारा (उससे) पृथक् हुए (व्यवहित) मृगशावकों को पकड़ना चाहता हुआ, सिंहशिशु सरीखा इधर-उधर घूमता-फिरेगा? कब वह अन्तःपुर की स्त्रियों के नूपुरों की झणत्कार का अनुगमन करते पालतू हसों का पीछा करता हुआ, एक कमरेसे दूसरे मे भागता हुआ, उसकी मेखला की सोने की घटियोंके शब्द के पीछे चलती हुई (उसके पीछे दौड़ती हुई) अपनी धाय को थकाया करेगा? कृष्ण अगरु के लेप से चित्रित कपोलों वाला (इस प्रकार मद की रेखाओं से शोभित गण्डस्थल वाले हस्ती से

लंकृतगण्डस्थलकः मुखडिण्डिमध्वनिजनितप्रीतिरूर्ध्वकरविप्रकीर्णचन्दनचूर्णधूलिधूसरः कुञ्चिताङ्गुलिशिखराङ्कुशाकर्षणविधूतशिराः करिष्यति मत्तगजराजलीलाक्रीडाः। कदा मातुश्चरणयुगलरागोपयुक्तशेषेण पिण्डालक्तकरसेन वृद्धकञ्चुकिनां विडम्बयिष्यति मुखानि। कदा कुतूहलचञ्चललोचनो मणिकुट्टिमेष्वधोदत्तदृष्टिरनुसरिष्यति स्खलद्गतिरात्मनः प्रतिबिम्बानि। कदा नरेन्द्रसहस्रप्रसारितभुजयुगलाभिनन्द्यमानागमनो

अनुलक्षीकृत्य गच्छन्। कान्। गृहकलहंसकान्भवनसितच्छदान्। कीदृशान्। अन्त पुरेऽवरोधे यो नूपुरस्य पादकटकस्य निनाद शब्दस्तेन सगतान्मिलितान्। कदेति। कदेति पूर्ववत्' मत्तो यो गजराजो हस्ती तस्य लीला विलासो यस्यामेवविधा क्रीडा खेलन करिष्यति रचयिष्यति। उभयो साम्यप्रतिपादनार्थमाह—कृष्णेति। कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य पङ्को द्रवस्तेन लिखिता लिपीकृता या मदलेखावल्लेखा तयालकृत विभूषित गण्डस्थल यस्य स तथा। 'शेषाद्विभाषा' इति कप्प्रत्यय। पक्षे कृष्णागुरुपङ्कवन्मदलेखा दानपद्धति। मुखेति। धात्र्यादीनां लालनार्थं मुखेन यो डिण्डिमध्वनि। अथ चानुरक्तहस्तिपकाना मुखेन समाधानार्थं यो डिण्डिमध्वनिस्तेन जनितोत्पादिता प्रीतिर्यस्य स तथा। ऊर्ध्वेति। ऊर्ध्वकरेणोर्ध्वीकृतहस्तेन, तादृशशुण्डया च। विप्रकीर्णा विक्षिप्ता चन्दनचूर्णस्य मलयजक्षोदस्य धूलि.। अथ च चन्दनचूर्णवद्धूलि पांसु तया धूसरो मलिन। कुञ्चितेति। कुञ्चिता वक्रीकृता याङ्गुली तस्या शिखरमग्रम्। 'शिखर पुलकाग्रयो' इत्यनेकार्थं। तदेवाङ्कुश सृणि। गजपक्षे कुञ्चिताङ्गुलिशिखरवदङ्कुशस्तेनाकर्षण पृष्ठे पुरतो वा चालन तेन विधूत कम्पित शिरो मस्तकं येन स तथा। कदेति। मातुरिति। माता जननी तस्याश्चरणयुगल पादद्वन्द्व तस्य रागो रञ्जन तत्रोपयुक्त सन्य शेष उर्वरितस्तेन पिण्डालक्तक पिण्डीकृतो यो लाक्षाद्रवस्तस्य यो रसः तेन वृद्धकञ्चुकिना स्थविरसौविदल्लानां मुखानि वदनानि विडम्बयिष्यति। तद्रसाश्लेषेण विरूपाणि करिष्यतीति भाव। कदेति। कदेति पूर्ववत्। कुतूहलेन कौतुकेन चञ्चले

मिलता जुलता, (अपनी धाय द्वारा) मुखसे किये हुए, ढोल के से शब्द से प्रसन्न होता, अपने ऊपर उठाये हाथ से (अपने सारे शरीर पर बिखराये चन्दन के चूर्ण से धूसरित और (अपनी धाय की) अकुश सदृश मोड़ी हुई अगुली के सिरेके इशारे पर सिर हिलाता हुआ, उस मद से मस्त गजराज की क्रीड़ाएँ करेगा कि जिसका कपोलस्थल काले अगरु के लेप से खींची गयी प्रतीत होती मद लेखाओं से भूषित हो अपने सिरपर रखे हुए दमामे के शब्द से प्रसन्न हो रहा हो, अपनी ऊपर को उठायी गई सूँड से (शरीर पर) बखेरी हुई धूल से मटमैला हुआ हो, और मुड़ी अगुली सरीखे-अकुश से प्रेरित होकर सिर हिलाता हो। कब वह माता के चरणों को रगने के लिये प्रयुक्त अलक्तक रस की पिण्डियों के रस मे से बचे हुए रस से बूढे कचुकियों के मुखों को शरारत करके रगेगा (बिगाड़ेगा) ? कब वह उत्सुकता वश चञ्चल आँखों वाला, नीचा मुह किये मणिमय फर्शों को देखता हुआ, लड़खड़ाता हुआ अपने प्रतिबिंबों के पीछे-पीछे चलेगा ? सहस्रों राजाओं की उनकी फैलायी हुई बाहुओं द्वारा अभिनन्दित किया गया,

भूषणमणिमयूखाकुलीक्रियमाणलोलदृष्टिरास्थानस्थितस्य मे पुरः सर्पिष्यति सभान्तरेषु इत्येतानि मनोरथशतानि चिन्तयतोऽन्तःसंतप्यमानस्य प्रयान्ति रजन्यः। मामपि दहत्येवायमहर्निशमनल इवानपत्यतासमुद्भवः शोकः। शून्यमिव मे प्रतिभाति जगत्। अफलमिव पश्यामि राज्यम्। अप्रतिविधेये तु विधातरि किं करोमि। तन्मुच्यतामय देवि, शोकानुबन्धः। आधीयतां धैर्ये धर्मे च धीः। धर्मपरायणानां हि समीपसचारिण्यः कल्याणसंपदो भवन्ति' इत्येवमभिधाय सलिलमादाय स्वय करतलेनाभिनव-

---

चपले लोचने नेत्रे यस्य स तथा। मणिकुट्टिमेषु रत्नबद्धभूमिषु सक्रान्तमात्मीयमुखारविन्द द्रष्टुमधोदत्ता दृष्टिर्येन स तथा। तदलाभखेदात्स्खलन्ती गतिर्यस्यैवभूत आत्मनः स्वकीयस्य प्रतिबिम्बानि प्रतिरूपाण्यनुसरिष्यति तद्ग्रहणार्थमनुगमिष्यति। कदेति। कदेति पूर्ववत्। नरेन्द्राणा यत्सहस्रं तेन प्रसारित विस्तारित यद्भुजयुगलम्। जात्येकवचनम्। तेनाभिनन्द्य-मानमपेक्ष्यमाणमागमन यस्य स तथा। भूषणेति। भूषणाना ये मणयो रत्नानि तेषां मयूखा किरणास्तैराकुलीक्रियमाणा लोला दृष्टिर्यस्य स तथा। आस्थानस्थितस्य सभोपविष्टस्य मे मम पुरोऽग्रे सभान्तरेषु परिषन्मध्यप्रदेशेषु सर्पिष्यति पुन पर्यटन करिष्यति। सतापनिवेदकानि चिन्तावाक्यानि त्रयोदशोपसहरन्नाह—इत्येतानीति। एतानि पूर्वोक्तानि मनोरथशतानि मनो विकल्पितशतानि चिन्तयतो ध्यायतो राज्ञोऽन्तर्मध्ये सतप्यमानस्य प्रज्वल्यमानस्य रजन्यो रात्रय प्रयान्ति गच्छन्ति। ममापीति। अनपत्यताऽसतानतता तत समुद्भुव समुत्पन्न शोक शुगनल इव वह्निरिवाहर्निशं प्रतिदिन मामपि दहत्येव ज्वालयत्येव। शून्येति। मे मम शून्य-मिवोद्वसितमिव जगद्विश्वं प्रतिभाति प्रतिभासते। अफलेति। राज्यमाधिपत्यमफलमिव निरर्थक-मिव पश्याम्यवलोकयामि। अप्रतीति। न विद्यते प्रतिविधेयमस्मान्प्रति यस्य विधातुस्तस्मिन्नप्रति-विधेये प्रतीकारानर्हे वा विधातरि किं करोमि किमनुतिष्ठामि। तदिति। तत् तस्मात्पूर्वोक्ताद्धेतो। हे देवि, अयं शोकानुबन्ध शोकपरम्परा मुच्यतां त्यज्यताम्। धैर्ये धीरतायां धर्मे च धीर्बुद्धिराधीयतां स्थाप्यताम्। अत्रार्थे हेतुमाह—धर्मेति। हि निश्चितम्। धर्मपरायणाना सुकृततत्पराणां कल्याणसपद श्रेयोविभूतय सदा सर्वकाल समीपसचारिण्य. पार्श्ववर्तिन्यो

उनके आभूषणोंमे जड़ी हुई मणियों की किरणों से चुंधियाती आखो वाला वह कब सभाभवन में बैठे हुए मेरे सन्मुख विविध सदनों मे घूमेगा ? इस प्रकार के सैकड़ों मनोरथ सोचते हुए तथा मन ही मन दुःखी होते हुए मेरी रात्रियाँ बीत जाती हैं। यह नि.सन्तानता से उत्पन्न दु ख मुझको भी, रातदिन, अग्निकी भाति जलाता रहता है। मुझे सारा ससार शून्य सा लगता है। और मैं अपने राज्य को निष्फल ही समझता हूँ। किन्तु (भाग्य के अप्रतीकार्य होनेपर) भाग्य का कभी कोई उपाय ही नहीं है तो क्या करूँ ! इसके लिये हे देवि ! इस सतत शोक को छोड़ दो, अपना मन धैर्य में तथा धार्मिक कर्तव्यों (के पालन) में लगाओ ! क्योंकि (कहते हैं कि) जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक धर्मका पालन कहते हैं—प्रभूत सौभाग्य (कल्याण सपत्) उनको पदानुगामी (अक्षरार्थ उनके समीप) होता है।"—यह कहकर, जल लेकर स्वय नये

पल्लवेनेव विकचकमलोपमानमाननमस्याः साश्रुलेखं ममार्ज। पुनःपुनश्च प्रियशतमधुराभिः शोकापनोदनिपुणाभिर्धर्मोपदेशगर्भाभिर्वाग्भिराश्वास्य सुचिरं स्थित्वा नरेन्द्रो निर्जगाम। निर्गते च तस्मिन्मन्दीभूतशोका विलासवती यथाक्रियमाणाभरणपरिग्रहादिकमुचित दिवसव्यापारमन्वतिष्ठत्। ततःप्रभृति सुतरां देवताराधनेषु ब्राह्मणपूजासु गुरुजनसपर्यास्वादरवती बभूव। यद्यच्च किंचित्कुतश्चिच्छुश्राव गर्भतृष्णया तत्तत्सर्वं चकार। न महान्तमपि क्लेशमजीगणत्। अनवरतदह्यमानगुग्गुलुबहुल-

---

भवन्ति सजायन्ते। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधायोक्त्वा। सलिलमिति। सलिल पानीयमादाय गृहीत्वा स्वयमात्मन करतलेन पाणितलेनाभिनवपल्लवेनेव प्रत्यग्रकिसलयेनेव विकच विकस्वर यत्कमल नलिन तदेवोपमान यस्यैवभूतमस्या विलासवत्या साश्रुलेखमश्रुराज्या सहवर्तमानमानन मुख ममार्ज शुद्ध चकारेत्यर्थं। 'मृजूष् शुद्धौ' इति धातोर्लिटि रूपम्। पुनरिति। पुन पुनर्वारवारम्। प्रियेति। प्रियमिष्ट तस्य शत तेन मधुराभिर्मिष्टाभि शोकस्य शुचो योऽपनोदो दूरीकरणं तत्र निपुणाभि' पण्डिताभिर्धर्मस्य पुण्यस्य य उपदेश प्रतिपादन स एव गर्भेऽभ्यन्तरे यासां ताभिरेवभूताभिर्वाग्भिर्वचोभिराश्वास्याश्वासना कृत्वा सुचिर चिरकालं यावत्स्थित्वा नरेन्द्रो नृपो निर्जगाम गृहाद्बहिर्ययौ। निर्गते च बहिर्गते तस्मिन्मन्दीभूतशोका मन्दीभूत क्षीणतां प्राप्त शोको यस्या सैवंभूता विलासवत्युचित योग्यम्। यथेति। यथा पूर्वोक्तप्रकारेण क्रियमाणो विधीयमानो य आभरणपरिग्रहो विभूषणस्वीकार स एवादौ यस्मिन्नेवभूत दिवसव्यापारं दिनकृत्यमन्वतिष्ठदकरोत्। तत इति। तत प्रभृति तद्दिनादारभ्य सुतरामत्यर्थं देवताराधनेषु देवतानां देवीनामाराधनानि प्रसन्नीकरणानि तेषु ब्राह्मणास्त्रयीमुखास्तेषा पूजा अर्चास्तासु गुरुजनानां पूज्यजनाना सपर्या. सेवास्तास्वादरवत्यतिबहुमानवती बभूव जज्ञे। यद्यच्चेति। यद्यदश्रुतपूर्वमकृतपूर्वं च किंचिद्वस्तु कुतश्चिदनिर्दिष्टनामकेभ्यो जनेभ्य शुश्रावाकर्णितवती। गर्भतृष्णया भ्रूणलोभेन तत्तत्सर्वं समग्र चकार कृतवती। न महेति। महान्त महीयांसमपि क्लेश कष्ट नाजीगणन्मनसि न गणितवती। अनवरतेति। अनवरत निरन्तरं दह्यमानो यो गुग्गुलु पलङ्कषस्तस्य बहुलो निबिडो यो धूमस्तेनान्धकार सञ्जातो येष्वेवविधेषु

पत्ते सरीखी अपनी हथेली से उसके खिले कमल सरीखे अश्रु रेखाओं से भरे मुँहको उसने पोंछा। और सैकड़ों प्यारी बातों से मीठी, शोक दूर करने में निपुण, तथा कर्तव्योपदेश से भरी वचनावलि से उसको बार-बार आश्वासन देकर, बहुत देर तक वहाँ बैठने के पश्चात् राजा (रानी के भवन से) बाहर चला गया।

और राजा के चले जाने पर, विलासवती ने, जिसका शोक (अब) कम हो गया था, आभूषण धारण आदि अपने अभ्यासानुरूप दैनिक कर्त्तव्यों को वे जैसे (पहले) किये जाते थे, वैसे ही किया। तबसे उसने देवताओं को प्रसन्न करने में, ब्राह्मणों की पूजा में, अपने पूज्यों की सेवामें विशेष ध्यान दिया। और सन्तान की इच्छा से उसने जो-जो किसी से सुना, वह सब, किया। बड़े से-बड़े कष्ट की भी उसने कोई चिन्ता नहीं की। निरन्तर जलाये जाते अधि-

धूमान्धकारितेषु चण्डिकागृहेषु धवलाम्बरेण शुचिमूर्तिरुपोषिता हरितकुशोपच्छदेषु मुसलशयनेषु सुष्वाप। पुण्यसलिलपूर्णैर्विविधकुसुमफलोपेतैः क्षीरतरुपल्लवलाञ्छनैः सर्वरत्नगर्भैः शातकुम्भकुम्भैर्गोकुलेषु वृद्धगोपवनिताकृतमङ्गलाना लक्षणसपन्नानां गवामधः सस्नौ। प्रतिदिवसमुत्थायोत्थाय सर्वरत्नोपेतानि हैमानि तिलपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ। महानरेन्द्रलिखितमण्डलमध्यवर्तिनी विविधबलिदानानन्दितदिग्देवतानि, बहुलचतुर्दशीनिशासु चतुष्पथे स्नपनमङ्गलानि भेजे। सिद्धायतनानि कृत-

---

चण्डिका चामुण्डा तस्या गृहेषु सद्मसु। धवलेति। धवलाम्बरेण शुभ्रवाससा शुचिः पवित्रा मूर्तिं शरीर यस्या, सा तथोपोषिता कृतोपवासा। हरितेति। हरिता नीला ये कुशा दर्भास्त एवोपच्छद उत्तरपटो यास्वेवभूतेषु मुसलान्ययोग्राणि तेषा शयनेषु तलिनेषु सुष्वाप शयन चकार। पुण्येति। पुण्यानि पवित्राणि यानि सलिलानि जलानि तै पूर्णैर्भृतैर्विविधानि विचित्राणि यानि कुसुमफलानि तैरुपेतै सहितै क्षीरतरवो वटादयस्तेषा पल्लवा किसलया। क्वचित् 'क्षीरपल्लव—'इति पाठ। तत्र क्षीरपल्लव कोमलपल्लव इति व्याख्येयम्। त एव लाञ्छन चिह्न येषा तै। सर्वाणि समग्राणि रत्नानि गर्भे मध्यभागे येषां तै, शातकुम्भ सुवर्णं तस्य कुम्भैर्निपैर्गोकुलेषु व्रजेषु। वृद्धेति। वृद्धगोपस्य मुख्यबल्लवस्य या वनिता स्त्री तया कृत विहित मङ्गल तिलकादि याभिस्तासा लक्षणैर्मषीतिलकादिभि सपन्नानां गवां धेनूनामधोऽधोभागे सस्नौ स्नान कृतवती। प्रतीति। प्रतिदिवसमहर्निशमुत्थायोत्थायोत्थान कृत्वेत्यर्थं। सर्वरत्नै समग्रमणिभिरुपेतानि खचितानि हैमानि स्वर्णनिष्पन्नानि तिलपत्राणि तिलपर्णाकृतिरूपाणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ दत्तवती। अत्र सप्रदाने चतुर्थी। महेति। महानरेन्द्रेण स्वकीयभर्त्रा लिखितमालिखित यन्मण्डल लोकप्रसिद्ध तन्मध्य-

---

काशत गूगल मिश्रित सुगन्ध द्रव्य के धुँए से काले हुए चण्डिका (पार्वती) देवी के मदिरों में, वह, अपने विशुद्ध शरीर पर श्वेत वस्त्र पहिने हुई, हरी कुशा-रूप चादर वाले (लोहे के) मूसलों (अथवा नोकदार कीलों) की शय्या पर सोई। पवित्र जल से भरे, नाना प्रकार के पुष्पों तथा फलों से सजाये गये, दूधिया वृक्षों के पत्तों से ढके, और सभी प्रकार के रत्नों से भरे सुवर्णकलशों से, उसने, ग्वालोंके शिविरों मे, वृद्धा ग्वालिनों द्वारा (इस धार्मिक विधिके लिये) विशेष रूप से सजायी गयी अथवा किया गया है मगलाचार (तिलकादि) जिनका ऐसी शुभ (शारीरिक) लक्षणों से युक्त गौओं के नीचे (बैठकर), स्नान किया। प्रतिदिन सोकर उठने पर, उसने सब प्रकारके रत्नोंसे भरे सुवर्ण निर्मित, तिल पूरित, कलश ब्राह्मणोंको दान में दिये। प्रसिद्ध मान्त्रिकों द्वारा जमीन पर खींचे गये वृत्तोंके भीतर बैठी हुई ने प्रत्येक कृष्णपक्ष की चतुर्दशियोंमें चौराहे पर माङ्गलिक स्नान किये और इन स्नानों में उसने विविध प्रकार की बलि देकर (भेंटे चढ़ा कर) दिग्देवताओं को प्रसन्न किया देवताओं को प्रसन्न किया। देवताओं को विविध (अथवा विचित्र) उपहार देने का वचन देती' हुई वह सिद्धों (एक

---

१ 'यदि मुझे पुत्र लाभ हुआ तो मैं फिर भी यह भेंट चढ़ाऊँगी—यह स्वीकार करते हुए भेंट चढ़ाना 'उपयाचितक' है।

विचित्रदेवतोपयाचितकानि सिषेवे। दर्शितप्रत्ययानि सन्निधानमातृकाभवनानि जगाम। प्रसिद्धेषु नागकुल-ह्रदेषु ममज्ज। अश्वत्थप्रभृतीनुपपादितपूजान्महावनस्पतीन्कृतप्रदक्षिणा ववन्दे। दोलायमानवलयेन पाणियुगलेन स्नाता स्वयमखण्डसिक्थसपादित रजतपात्र-परिगृहीत वायसेभ्यो दध्योदनबलिमदात्। अपरिमितकुसुमधूपविलेपापूपपललपायस-बलिलाजकलितामहरहरम्बादेवीसपर्यामाततान। स्वयमुपहृतपिण्डपात्रान्भक्तिप्रवणेन

वर्तिनी तदन्त.स्थायिनी। विविधेति। विविधमनेकप्रकार यद्बलिदान तेनानन्दिताः प्रमोद प्राप्ता दिग्देवता येषु तानि। बहुलेति। बहुलस्य कृष्णपक्षस्य याश्चतुर्दश्यस्तासा निशासु रात्रिषु चतुष्पथे चत्वरे स्नपनमङ्गलानि स्नानभद्राणि भेजेऽभजत्। सिद्धायतनानीति। सिद्धा योगिनस्तेषामायतनानि चैत्यानि सिषेवे सेवितवती। कीदृशानि। कृतेति। कृतानि विहितानि विचित्राणि देवताना प्रतिमानामुपयाचितकानि भैक्ष्यचर्याणि येषु तानि। अथ च सन्निधानानि समवर्तीनि यानि मातृकाभवनानि माहेश्वरीप्रभृतिदेवीना गृहाणि जगाम गतवती। कीदृशानि। दर्शितः प्रकाशित प्रत्ययो विश्वासो यैस्तानि। प्रत्ययोऽनुष्ठानानुरूप देवतावचन मिति वा। यद्वा मातृगृहाण्यभिमतमातॄणा भवनानि। प्रसिद्धेति। प्रसिद्धेषु जगद्विख्यातेषु नागकुलानि तेषा ह्रदा द्रुहास्तेषु ममज्ज मज्जन चकार। अश्वत्थ पिप्पल. प्रभृतिरादौ येषां तान्महावनस्पतीन्महावृक्षानुपपादिता विहिता पूजार्चा येषा तान्कृता विहिता प्रदक्षिणा यया सैवभूता ववन्दे वन्दन कृतवती। तथा दोलायमान कम्पमान वलय कङ्कण यस्य स तथा तेन पाणियुगलेन हस्तयुग्मेन दध्योदनबलिं दधियुक्तो य ओदनस्तल्लक्षणो यो बलिस्त वायसेभ्य काकेभ्य स्वयमात्मना स्नाता कृतस्नाना सत्यदाद्दत्तवती। बलिं विशिनष्टि—अखण्डेति। अखण्डावस्फुटितोदनरूपेण पक्वै सिक्थैरन्नकणै सपादित निष्पादित रजतस्य रूप्यस्य यत्पात्र भाजन तस्मिन्परिगृहीतमात्तम्। अहरहरिति प्रतिदिनमम्बादेवी दुर्गा तस्या सपर्या सेवामाततान विस्तारयामास। तामेव विशेषयन्नाह—अपरिमितेति। अपरिमितानि बहूनि कुसुमानि पुष्पाणि, धूपो गन्धविशाचिका, विलेपो विलेपनम्, अपूप' पिष्टक. पिष्टतिलयो-जितमन्न पललम्, पयस परमान्नम्। बलिलाजा बल्यर्थमक्षता, एतै कलितां व्याप्ताम्।

प्रकार अर्ध-देवों) के मन्दिरों (अथवा अपने भक्तों के मनोरथों की पूर्ति करने वालों के मंदिरों) में गयी। (अपने भक्तों के मनोरथों की पूर्ति का) प्रमाण अथवा विश्वास दिलाये हुई समीपस्थ मातृकाओं के मंदिरों में गयी। (उनमें स्नान करने वालों की प्रार्थना स्वीकार करने की) प्रसिद्धिवाले नाग कुलों के (द्वारा बसे हुए अथवा अधिष्ठित) सरोवरों में स्नान किया। अश्वत्थ आदि बड़े-बड़े वृक्षों की पूजा की, उनकी प्रदक्षिणा की और उनको नमस्कार किया। स्नान किये हुई ने, हिलते ककणों वाले दोनों हाथों से स्वय ही बिना टूटे हुए (साबुत) चावलोंसे बनाया हुआ दही मिश्रित भात चाँदी के पात्र मे रखकर कौओं को दिया। पुष्प, धूप, उबटन, अपूप-पलल-तथा-पायस नामके मिष्टान्न की बलि और लाजाओं की अपरिमित राशि द्वारा प्रतिदिन पार्वती माता की उपासना की। भक्ति से भरे अपने मन से उसने स्वयं

मनसा सिद्धादेशान्नग्नक्षपणकान्पप्रच्छ। विप्रश्निकादेशवचनानि बहु मेने। निमित्तज्ञानुपचचार। शकुनज्ञानविदामादरमदर्शयत्। अनेकवृद्धपरम्परागमागतानि रहस्यान्यङ्गीचकार। दर्शनागतद्विजजनमात्मजदर्शनोत्सुका वेदश्रुतीरकारयत्। अनवरत वाच्यमानाः पुण्यकथाः शुश्राव। गोरोचनालिखितभूर्जपत्रगर्भान्मन्त्रकरण्डकानुवाह। रक्षाप्रतिसरोपेतान्योषधीसूत्राणि बबन्ध। परिजनोऽपि चास्याः सततमुपश्रुत्यै निर्जगाम। तन्निमित्तानि च जग्राह। शिवाभ्यो मासबलिपिण्डमनुदिनं निश्युत्ससर्ज। स्वप्नदर्शनाश्चर्याण्याचार्याणामाचचक्षे। चत्वरेषु शिवबलिमुपजहार।

स्वयमिति। स्वयमात्मना। भक्ति पूर्वं व्याख्याता, तथा प्रवणेन युक्तेन मनसा स्वान्तेनोपहृतान्युपढौकितानि पिण्डपात्राणि येभ्यस्तान्सिद्धादेशान्सिद्धसञ्ज्ञितान्नग्ना वस्त्ररहिता ये क्षपणका दिगम्बरास्तान्पप्रच्छाप्राक्षीत्। विप्रश्निकेति। शुभाशुभप्रकाशिका स्त्रियो विप्रश्निकास्तासामादेशवचनान्याज्ञावचनानि बहु मेन आदरविशेषेणाङ्गीचकार। निमित्तेति। निमित्त भौमाद्यष्टविधं जानन्तीति निमित्तज्ञास्तानुपचचार तेषा समीपे ययौ। शकुनज्ञानविदा वसन्तराजादिशास्त्रज्ञानविदामादरं बहुमानमदर्शयद्दर्शितवती। अनेकेति। अनेके ये वृद्धा स्थविरास्तेषा परम्परा परिपाटी तस्यां य आगम प्रसिद्धिस्तदागतानि यानि रहस्यानि तत्त्वान्यङ्गीचकार स्वीचक्रे। परिपाट्यां य आगमो मन्त्रशास्त्र तदागतानि रहस्यानि वा। दर्शनेति। दर्शनार्थमागत प्राप्तमेवभूत द्विजजन ब्राह्मणलोकमात्मज पुत्रस्तस्य दर्शनमवलोकन तत्रोत्सुकोत्कण्ठिता वेदस्य श्रुती श्रवणमकारयद्ब्राह्मणद्वारा कारयामास। अकारयदिति 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इत्यण्यन्तस्य कर्ता। द्विजजन कर्मसञ्ज्ञ। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर वाच्यमाना उच्यमाना पुण्यकथा पवित्रकथा शुश्रावाश्रौषीत्। गोरोचनेति। गोरोचनालिखित भूर्जपत्र गर्भे मध्ये यस्यैवभूतान्मन्त्रकरण्डकान्पिटकानुवाहावहत्। 'वह प्रापणे' इति धातोरस्या-

---

भात भरे पात्रों की भेंट चढाकर उन नग्न जैन साधुओं से प्रश्न पूछे कि जिनकी भविष्य वाणियाँ सत्य निकलतीं हैं—ऐसा ज्ञात है। भविष्य बतलाने वाली स्त्रियों द्वारा कही गयीं भविष्यवाणियों का उसने बहुत आदर किया। प्राकृतिक घटना आदि निमित्तों का अभिप्राय बतलाने वालों की उसने सेवा की। नाना वृद्ध व्यक्तियों की परम्पराओं से आये मन्त्रों को उसने सीखा। अपने आत्मज (पुत्र) के दर्शन के लिये उत्सुक उसने मिलने आये ब्राह्मणों से वेद पाठ करवाया। (महल में) निरन्तर बाँची जाती पवित्र कथायें सुनीं। शरीर पर उसने गोरोचना से लिखे मंत्रोंवाले भोजपत्रों से भरे रहस्यमय गडे बाँधे। (अशुभ से बचने के लिये) रक्षक तावीजों से युक्त ओषधि-पादपों के सूत्र बाँधे। और इसके सेवक प्रतिदिन (मनुष्यादि द्वारा सुनाये गये दैव वचनों को) सुनने के लिए (मैदान मे) गये और उन्होंने उन द्वारा बताये गये शकुनों को पकड़ा। दिन प्रतिदिन रात्रि मे उसने गीदड़ियों के मास की बलि दी। स्वप्न में देखी अद्भुत घटनाएँ उसने (स्वप्नों के अभिप्राय बताने वाले) विशेषज्ञों को बतलायीं। चौराहों पर (देवताओं को) मागलिक भेंट अर्पित की।

एवं च गच्छति काले कदाचिद्राजा क्षीणभूयिष्ठायां रजन्यामल्पावशेषपाण्डुतारके जरत्पारावतपक्षधूम्रे नभसि स्वप्ने सितप्रासादशिखरस्थितायां विलासवत्याः करिण्या इव बिसवलयमानने सकलकलापूर्णमण्डलं शशिनं प्रविशन्तमद्राक्षीत्। प्रबुद्धश्चोत्थाय हर्षविकाशस्फीततरेण चक्षुषा धवलीकृतवासभवनस्तस्मिन्नेव क्षणे शुकनासं समाहूय स्वप्नमकथयत्। स तं समुपजातहर्षः प्रत्युवाच—'देव, संपन्नाः

सम्प्रसारणे लिटि रूपम्' रक्षेति। रक्षाया प्रतिसर कङ्कण तेनोपेतान्योषधीसूत्राणि बबन्ध बन्धन कृतवती। अस्या विलासवत्या परिजनोऽपि परिच्छदोऽप्युपश्रुत्यै रजकादिवाक्यार्थं विलोकयितु निर्जगाम बहिर्ययौ। 'देवप्रश्न उपश्रुति' इति कोश। तदिति। तन्निमित्तानि तदुक्तशकुनानि जग्राहाग्रहीत्। शिवेति। शिवाभ्य शृगालीभ्योऽनुदिन प्रतिदिन मांसबलिपिण्ड निशि रात्रावुत्ससर्जोत्सृष्टवती। स्वप्नदर्शनाश्चर्याणि स्वप्नालोकनकुतूहलान्याचार्याणा गुरूणामाचचक्षे कथितवती। चत्वरेषु शिवबलिमुपजहाराहृतवती।

एवं चेति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण गच्छति व्रजति कालेऽनेहसि कदाचित्कस्मिंश्चित्समये स्वप्ने राजा विलासवत्या आनने मुखे शशिन विशन्त प्रविशन्तमद्राक्षीद्ददर्श। कस्याम्। रजन्या रात्रौ। किंविशिष्टायाम्। क्षीण भूयिष्ठ यस्या सा तस्याम्। स्तोकरात्रावित्यर्थ। कस्मिन्सति। नभस्याकाशे सति। आकाश विशेषयन्नाह—अल्पेति। अल्पा स्वल्पा एव शेषा अवशिष्टा पाण्डुतारका श्वेतनक्षत्राणि यस्मिन्। जरीयान्य पारावत कपोतस्तस्य पक्षो वाजस्तद्वद्धूम्रे धूम्रवर्णे। विलासवतीं विशेषयन्नाह—सितेति। सित शुभ्रो य प्रासादस्तस्य शिखरमग्र तत्र स्थिताया उपविष्टाया। कस्या किमिव। करिण्या हस्तिन्या आनने बिसवलयमिव। शशिन विशिनष्टि—सकलेति। सकला समग्रा या कलास्ताभि पूर्ण मण्डल यस्य स तथा तम्। प्रबुद्धो विगतनिद्र सन्नुत्थायोत्थान कृत्वा हर्षात्प्रमोदाद्यो विकाशो विमुद्रता तेन स्फीततरेणातिगरिष्ठेन विस्तारितेन चक्षुषा लोचनेन धवलीकृत शुभ्रीकृत वासभवनं निवासगृह येन स तथा तस्मिन् क्षणे समये। अत्रैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थं। शुकनास समाहूयाह्वान कृत्वा स्वप्न निशादृष्टमकथयदुक्तवान्। 'कथ वाक्यप्रबन्धे' इत्यस्य लङि रूपम्। स इति। स शुकनासस्त नृप समुपजात समुत्पन्नो हर्ष प्रमोदो यस्य स तथा प्रत्युवाच प्रत्यब्रवीत्। हे देव हे स्वामिन्, सुचिरा-

---

इस प्रकार समय बीत रहा था कि एक बार जब रात लग भग समाप्ति पर थी, और आकाश, जिसमे थोड़े से ही पीले पड़े तारे (दीखते) बच गये थे, बूढे कबूतर के पख सरीखा भूरा दिखायी देने लगा था तब राजा ने स्वप्न मे श्वेत महल के छज्जे पर बैठी हुई (अपनी रानी) विलासवती के मुँह मे पूरी कलाओ से (युक्त) पूरे बिम्बवाले चन्द्रमा को ऐसे प्रविष्ट होते देखा जैसे कि किसी हस्तिनी के मुख में (श्वेत) बिसतन्तुओं का कोई मण्डल प्रविष्ट हो रहा हो नींद खुलने पर उठकर, हर्ष से विकसित होने पर बहुत ही फैली ऑखों (की दृष्टियों) से अपने शयन कक्ष को चमकाते हुए ने उसी समय शुकनास को बुलाकर स्वप्न सुनाया।

(स्वप्न सुनकर) प्रसन्न हुए उस (शुकनास) ने राजा को उत्तर दिया—

सुचिरादस्माकं प्रजाना च मनोरथा.। कतिपयैरेवाहोभिरसंदेहमनुभवति स्वामी सुत-मुखकमलावलोकनसुखम्। अद्य खलु मयापि निशि स्वप्ने धौतसकलवाससा शान्त-मूर्तिना दिव्याकृतिना द्विजेन विकचचन्द्रकलावदातदलशतमालोलकेसरसहस्रजटा-लमकरन्दबिन्दुसीकरवर्षि पुण्डरीकमुत्सङ्गे देव्या मनोरमाया निहित दृष्टम्। आवेद-यन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रेपातीनि शुभानि निमित्तानि। किं चान्यदानन्दकारण-मतो भविष्यति। अवितथफला हि प्रायो निशावसानसमयदृष्टा भवन्ति स्वप्नाः।

इतिचिरकालेनास्माक प्रजानां च मनोरथाश्चिन्तितानि सपन्ना निष्पन्ना । कतीति। कतिपयैरेव स्तोकैरेवाहोभिर्दिवसैरसदेह नि सदेह स्वामी भवान्सुतस्यात्मजस्य यन्मुखकमलावलोकनमानन-पद्मवीक्षण तस्माद्यत्सुख सातमनुभवति। अनुभविष्यतीत्यर्थ । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यत्यर्थे वर्तमान । अद्येति। खलु निश्चयेन। अद्यास्या निशायामेव मयापि निशि रात्रौ स्वप्ने धौतानि क्षालितानि सकलानि समग्राणि वासासि वस्त्राणि येन स तथा तेन। शान्ता निरुपद्रवा मूर्ति शरीर यस्य स तथा तेन। दिव्या मनोहारिण्याकृतिराकारो यस्य स तथा तेन द्विजेन ब्राह्मणेन विकच विकस्वर चन्द्रकलावदवदात शुभ्र दलशत पत्रशत यस्मिंस्तत्। 'पर्ण पत्रं छद दलम्' इति कोश । आलोल चञ्चल यत्केसरसहस्र किञ्जल्कसहस्र तेन जटाल जटिलम्। 'प्राणिस्थादात' इति मत्वर्थ आलच्। मकरन्दो मकरन्दस्तस्य बिन्दव पृषतास्त एव सीकरा वातास्तवारि कणास्तद्वर्षणकार्ये तादृशं यत्पुण्डरीक सिताम्भोज देव्या मनोरमायाश्चित्तहारिण्या उत्सङ्गे क्रोडे निहित स्थापित दृष्टमवलोकितम्। मयेति पूर्वप्रतिपादितम्। अग्रेपातीनि पुरोजा-तानि शुभानि शिवानि निमित्तान्यक्षिस्फुरणादीनि प्रत्यासन्न समीपवर्तिनमानन्द प्रमोदमावेद-यन्ति निवेदयन्ति। किं चेति युक्त्यन्तरे। अत पूर्वोक्तादन्यदधिकमानन्दकारणं प्रमोदनिदान भविष्यति। अत्रार्थे हेतुमाह—अवितथेति। प्रायो बाहुल्येन निशावसानसमयदृष्टा रात्रिप्रान्त-क्षणावलोकिता. स्वप्ना अवितथफला सत्यफला भवन्ति सपद्यन्ते। सर्वथेति। सर्वप्रकारेण

"महाराज! हमारे तथा हमारी प्रजाओं के मनोरथ (अब) बहुत समय पश्चात् पूरे हुए हैं। निश्चय ही, स्वामी, कुछ ही दिनों मे पुत्र के मुखरूपी कमल को देखने का सुख अनुभव करेंगे। आज ही मैंने भी रात को स्वप्न में देखा है कि देवी मनोरमा की गोद मे, एक सारे श्वेत वस्त्र पहने हुए शान्त-आकृति धारण किये हुए, दिव्य ब्राह्मण ने एक ऐसा पूर्ण विकसित श्वेत कमल रखा है, जिसमें सैकड़ों चन्द्रकला-सी चमकीली पखुड़ियाँ हैं, जो सैकड़ों चञ्चल तन्तुओं के घने पुञ्जों से युक्त है तथा मधु-बिन्दुओं की वर्षा कर रहा है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि (घटनाओंसे) पूर्व अपने आपको दिखलाने वाले मागलिक शकुन सूचित करते हैं कि (किसी प्रकार की) प्रसन्नता निकट ही है। और इससे अधिक प्रिय तथा आनन्द का बड़ा कारण दूसरा कोई हो ही क्या सकता है? यह एक सामान्य नियम है कि रात्रि की समाप्ति के समय देखे गये स्वप्नों के फल झूठे नहीं होते (वे सच्चे ही सिद्ध होते हैं)। निश्चय ही

सर्वथा न चिरेण मान्धातारमिव धौरेयं सर्वराजर्षीणा भुवनानन्दहेतुमात्मजं जनयिष्यति देवी। शरत्कालकमलिनीवाभिनवकमलोद्गमेन गन्धगजमाह्लादयिष्यति देवम्। येनेय दिग्गजमदलेखेवाविच्छिन्नसताना क्षितिभारधारणोचिता भविष्यति कुलसततिः स्वामिनः' इत्येवमभिदधानमेव तं करेण गृहीत्वा नरेन्द्रः प्रविश्याभ्यन्तरमुभाभ्यामपि ताभ्या स्वप्नाभ्या विलासवतीमानन्दयाचकार। कतिपयदिवसापगमे च देवताप्रसादात्सरसीमिव प्रतिमाशशी विवेश गर्भो विलासवतीम्। येन नन्दनराजिरिव पारिजातेन

नचिरेणेति स्वल्पकालेन मान्धातारमिव युवनाश्वजमिव सर्वराजर्षीणां समग्रराज्ञा मध्ये धौरेय धुरीणम्। एतेनाधिपत्येऽपि सदाचारवत्व सूचितम्। भुवनानन्दहेतु जगत्प्रमोदकारणमात्मजं सुत देवी जनयिष्यति प्रसविष्यति। शरदिति। शरत्कालकमलिनीव घनात्ययसमयनलिनीवाभिनवकमलोद्गमेन प्रत्यग्रनलिनप्रादुर्भावेन गन्धगज देवं भवन्तमाह्लादयिष्यति प्रमोदयिष्यति। पक्षेऽभिनवा कमला पुत्रसपत्। अतएव देव्या कमलिनीसाम्य राज्ञो गन्धगजसाम्य चेति भाव। येनेति। येन कारणेन इय दिग्गजमदलेखेवाविच्छिन्नमत्रुटित सतान पुत्रापौत्रादिप्रवाहरूपं च यस्या सैवभूता स्वामिनो राज्ञ कुलसतति क्षिति पृथ्वी तस्या भारो वीवधस्तस्य धारण वहन तत्रोचिता भविष्यति। इत्येवं पूर्वोक्तरूपमभिदधान ब्रुवाणमेव त करेण गृहीत्वा हस्तेनादाय नरेन्द्रो नृपोऽभ्यन्तर मध्यप्रदेश प्रविश्य प्रवेश कृत्वा ताभ्यामुभाभ्यामपि स्वप्नाभ्यां विलासवतीमानन्दयांचकार प्रमोदयाचकार। कतीति। कतिपये कियन्तो ये दिवसास्तेषामपगमेऽतिक्रमे सति देवताप्रसादादेवतानुग्रहाद्विलासवतीं गर्भो विवेश बभूव। अत्रार्थे उपमान प्रदर्शयन्नाह—सरसीति। सरसीं कासार प्रतिमाशशीव प्रतिबिम्बरूपश्चन्द्र इव। येनेति। येन गर्भेण सा सुतरामतिशयेनाराजताशोभत। केनेव केव। पारिजातेन कल्पद्रुमेण। 'मन्दार पारिजातक.' इति कोशः। नन्दनेतीन्द्रस्य काननम्। 'नन्दनाभिध वनम्' इति कोश.। तस्य

महारानी शीघ्र ही एक ऐसे पुत्र को जन्म देंगी, जो, (यशस्वी) राजा मान्धाता सरीखा सभी राजर्षियों का मुखिया और इस ससार के आनन्द का कारण होगा। और उस पुत्र के द्वारा (महारानी) महाराज को ऐसे आनन्दित करेगी कि जैसे शरत् ऋतुमें कमलिनी, ताजे कमलों के निकल आने से गन्ध गज को आनन्दित करती है। उस पुत्र के द्वारा महाराज का परिवार पृथ्वी के शासन के उत्तरदायित्व को धारण करने में समर्थ तथा सतति की निरन्तरता से ऐसे युक्त होकर ऐसा दीख पड़ेगा कि जैसे दिग्गज के (मस्तक पर की) मदरेखा निरन्तर होती है।"—ऐसा कहते ही हुए शुकनास को हाथ से पकड़ कर राजा ने भीतरी कक्ष में प्रविष्ट होकर और दोनों स्वप्न सुनाकर विलासवती को हर्षित किया।

(इस घटना के पश्चात्) कई दिन बीत जाने पर देवताओं की कृपा से विलासवती (के गर्भाशय) में एक गर्भ ऐसे प्रविष्ट हो गया जैसे कि सरोवर में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब प्रविष्ट होता है—(अर्थात्) सरोवर के तल पृष्ठ पर चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है। उस गर्भ से विलासवती ऐसी सुशोभित हो गयी जैसे नन्दन (उद्यान में लगे हुए वृक्षों की

मधुसूदनवक्षःस्थलीव कौस्तुभमणिना सुतरामराजत सा। दर्पणश्रीरिव गर्भच्छलेन सक्रान्तमवनिपालप्रतिबिम्बमुवाह्। सा शनैः शनैश्च प्रतिदिनमुपचीयमानगर्भा निर्भर-परिपीतसागरसलिलभरमन्थरेव मेघमाला मन्द मन्द संचचार। मुहुरनुबद्धजृम्भिक-माजिह्मितलोचना सालसं निशश्वास। तथावस्था तामहरहः स्वयमनेकरसवाञ्छितपान-भोजना प्रावृषमिव श्यामायमानपयोधरमुखी केतकीमिव गर्भच्छविपाण्डुरामालोक्ये-ङ्गितकुशलः परिजनो विज्ञातवान्।

राजि श्रेणिरिव। यथा कल्पपादपेन वनमतितरा शोभां प्राप्त तथा गर्भेणेयमपीति भाव। उपमानान्तरं प्रदर्शयन्नाह—कौस्तुभेति। कौस्तुभमणिना प्रसिद्धेन मधुसूदनस्य जनार्दनस्य वक्षस्थलीव भुजान्तरस्थलीव। अतिविस्तृतत्वेन गौरत्वेन च स्थल्या उपमानं वक्षस। दर्पणेति। दर्पण आदर्शस्तस्य श्री प्रकाशरूपा सेव गर्भो भ्रूणस्तस्य छलेनोपधिना सक्रान्तमन्त प्रविष्टमवनिपालो भूनेता तस्य प्रतिबिम्बं प्रतिरूपमुवाहावहत्। 'वह प्रापणे' इति धातोरभ्या-ससम्प्रसारणे लिटि रूपम्। अथ भाव.—यथा दर्पण सक्रान्त प्रतिबिम्बं वहति तथेयमपि राजप्रतिबिम्बमुवाह। अनेन राजराजसुतयो सर्वथाऽभेदो दर्शित। सेति। सा विलासवती मन्दं मन्द सचचार चचालेत्यन्वय। तामेव विशेषयन्नाह—प्रतीति। प्रतिदिन प्रत्यह शनै शनै.। स्वल्पप्रयासेनेत्यर्थ। स्तोक स्तोकम्। उपचीयेति। उपचीयमानोऽवयवै पुष्टता प्राप्यमाणो गर्भो यस्या सा। निर्भरेति। निर्भरमतिशय परिपीतमास्वादित सागरस्य समुद्रस्य सलिल जल तस्य भरो भारस्तेन मन्थरालसा मेघमालेव कादम्बिनीव समुद्राज्जलमादाय मेघो वर्षतीति लोकोक्ति। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त मुहुरिति। मुहुर्वारवारमनुबद्धा कर्तुमारब्धा जृम्भा एव जृम्भिका। स्वार्थे कप्रत्यय। यत्र यस्या क्रियाया वा यथा भवति तथा आ समन्ताज्जिह्मित जडीकृत विकृत वा निमेषोन्मेषाभ्या लोचन यस्या सा। अनेन गर्भवतीस्वभाव. सूचित। सालसमालस्यसहित यथा स्यात्तथा निशश्वास निश्वास मुक्तवती। गर्भानुभावान्निश्वासग्रहणेऽपि

पक्ति) पारिजात से, अथवा मधुराक्षस को मारने वाले विष्णु का वक्षः स्थल कौस्तुभ मणि से सुशोभित होता है। (प्रतिबिम्बधारी) सुन्दर दर्पण की भाति उसने (अपने भीतर) गर्भ के बहाने राजा के प्रतिबिम्ब को धारण किया। और क्रमश जैसे-जैसे उसका गर्भ बढ़ता गया वैसे-वैसे उसकी गति, उस मेघ घटा की भाँति धीमी पड़ती गयी कि जो बड़ी राशि में (पेट भर कर) पीये गये सागर-जल के भार से भारी हो जाती है। लगातार जम्भाइयाँ लेती हुई तथा (उस समय) आँखों को मीचती हुई वह आलस भरी आह भरती थी। स्वय ही अनेक रसों वाले पेय तथा भोजनों की इच्छा वाली, (काले) बादलों से काले होते आरम्भिक भाग वाली वर्षा ऋतु की भाति काले होने लगे स्तन चूचुकों वाली और पीले रग के मध्य भाग वाले केतकी पुष्प की भाँति गर्भ की चमक से पीली दिखाई देती उस रानी को देखकर (अपनी स्वामिनी की) वास्तविक स्थिति को जानने मे निपुण उसके सेवक वर्ग ने उसकी उस स्थिति को जान लिया।

अथ तस्याः सर्वसेवकवर्गप्रधानभूता, सदा राजकुलसंवासचतुरा, सदा च राजसंनिकर्षप्रगल्भा, सर्वमङ्गलकुशला कुलवर्धना नाम महत्तरिका प्रशस्ते दिवसे प्रदोषवेलायामभ्यन्तरास्थानमण्डपगतम्, गन्धतैलावसेकज्वलितदीपिकासहस्रपरिवारम्

तादृशसामर्थ्याभावादिति भाव । निपूर्वस्य 'श्वस प्राणधारणे' इत्यस्य लिटि रूपम् । तथेति । तथा पूर्वोक्ता एवावस्था दशा यस्यास्ता विलासवतीमालोक्य वीक्ष्येङ्गितेष्वन्तर्गतभावावेदकचेष्टितेषु कुशलोऽभिज्ञ । चेष्टितज्ञानवानित्यर्थं । परिजनः सनिहितस्त्रीसौविदल्लजनो विज्ञातवान् । अन्तर्वत्नीरूपतया ता निश्चितवान् । तामेव विशेषयन्नाह—अहरिति । अहरह प्रतिदिनम् । स्वयमित्यात्मनिर्देश. । अनेके बहवस्तिक्तादयो रसा अन्ने स्वादहेतवो यस्मिन्नेवंभूत वाञ्छितमीप्सित पान द्राक्षापानकादि, भोजनमशन च यस्या सा ताम् । श्यामायमानं कृष्णता प्राप्यमाण पयोधरयो स्तनयोर्मुख चूचुक यस्या सा ताम् । कामिव । प्रावृषमिव वर्षासमयमिव । सापि पयोधरैर्मेघै श्यामसुखी स्यात् । केतकीति । गर्भजनिता या छविर्देहदीप्तिस्तया पाण्डुरां शुक्लाम् । कामिव । केतकीमिव । सापि गर्भो मध्यभागस्तस्य छवि कान्तिस्तया पाण्डुरा स्यात् ।

अथ तस्या कुलवर्धना नाम स्त्री भूमिपाल राजानमुपसृत्य समीपे गत्वा प्रशस्ते शोभने दिवसे रह एकान्ते कर्णमूले विलासवतीगर्भवृत्तान्त तस्या गर्भोदन्तं विदित ज्ञातमकार्षीदकरोदित्यन्वय । कुलवर्धना विशेषयन्नाह—सर्वेति । सर्वेषु सेवकवर्गेषु प्रधानभूता श्रेष्ठा । नीचस्य तादृशप्रवेशाभावाच्छ्रेष्ठत्वेऽप्यवसरानभिज्ञस्य तदभावादित्यत आह—सदेति । सदा सर्वदा राजकुले नृपपरम्पराया सवासोऽवस्थान तत्र चतुरा दक्षा । तद्वत्त्वेऽप्यदृष्टस्य तदभावादित्याह—सदेति । सदा सर्वकाल च राज्ञा य सनिकर्ष सबन्धस्तत्र प्रगल्भा पण्डिता । सर्वेति । सर्वाणि यानि मङ्गलानि श्रेयासि तत्र कुशला । तत्कृत्यकरणेऽभिज्ञेत्यर्थं । वयसातिशयिता महती महत्तरिका । स्वार्थे क । प्रदोषेति प्रदोषोत्तरवेलायाम् । प्रदोषे सर्वनिषेधात् । अथवा प्रदोषो न सध्याकाल. । वृत्तान्तस्य गोप्यकथनत्वात् । दिवसे तदभावादिति भाव. । भूमिपाल विशेषयन्नाह—अभ्यन्तरेति । अभ्यन्तरे मध्ये य आस्थानमण्डप उपवेशनस्थल तत्र गत प्राप्तम् । बाह्ये तथाविधजनससर्गादिति भाव । गन्धेति । गन्धतैल सुगन्धतैल तस्यावसेक सपातस्तेन ज्वलित दीपिकाना सहस्र यस्मिन्नेतादृश परिवारो मण्डपस्थपरिच्छदो यस्य स तम् । दीपिकासहस्रमेव परिवारो यस्येति वा । तद्दीप्त्या लोकानां तिरोधानादिति भाव । तादृशतैलसपर्काद्दीपिकाप्रभया

इसके पश्चात् एक मागलिक दिन, सायकाल के समय, उसकी सभी सेविकाओं में मुख्य सेविका, जो कुलवर्धना नाम की बूढी गृहप्रबन्धिका राजभवन में निरन्तर रहने के कारण चतुर हो गयी थी, जो सभी मागलिक विधि विधानों को सम्पन्न करने में दक्ष थी तथा राजा की सेवा में (समीपता में) सदा रहने के कारण दरबारी जीवन की पडिता थी—राजा के समीप पहुँची और एकान्त मे उसके कान में विलासवती के गर्भ का वृत्तान्त चुपके से कह दिया। राजा उस समय भीतरी सभागृह मे बैठा था, सुगन्धित तैल डालकर जलाये गये सहस्रों

उडुनिकरमध्यवर्तिनमिव पौर्णमासीशशिनम्, उरगराजफणामणिसहस्रान्तरालस्थितमिव नारायणम्, मूर्धावसिक्तैः प्रधाननरेन्द्रैः परिमितैः परिवृतम्, अनतिदूरावस्थितपरिजनम्, अनन्तरमुत्तुङ्गवेत्रासनोपविष्टेन धौतधवलाम्बरपरिधानेनानुल्बणवेषेण जलनिधिनेवागाधगाम्भीर्येण समुपारूढविश्रम्भनिर्भरास्तास्ताः कथाः शुकनासेन कुर्वाणं भूमिपालमुपसृत्य रहः कर्णमूले विदित विलासवतीगर्भवृत्तान्तमकार्षीत्।

तेन तु तस्या वचनेनाश्रुतपूर्वेणासंभाव्येनामृतरसेनेव सिक्तसर्वाङ्गस्य सद्यःप्ररूढ-

---

नक्षत्रप्रभया अवशिष्टनियुक्तपरिकरस्योडुसाम्य राज्ञश्चन्द्रसाम्य च प्रतिपादयन्नाह—उडुविति। उडूना नक्षत्राणा निकरः समूहस्तन्मध्यवर्तिन तदन्त पातिन पौर्णमासीशशिनमिव राकाचन्द्रमिव। अन्यत्र दिने चन्द्रस्यासपूर्णत्वात्पौर्णमासीग्रहणम्। तादृशपरिकरत्वादेवोपमानान्तरमाह—उरगेति। उरगराजो नागाधिपतिस्तस्य सहस्रमुखत्वात्फणामणिसहस्रं तस्यान्तराल मध्यप्रदेशस्तत्र स्थितमासीन नारायणमिव जनार्दनमिव। मूर्धेति। मूर्धावसिक्तै कृताभिषेकै प्रधाननरेन्द्रै प्रकृष्टराजभि परिमितैः स्तोकै परिवृत सहितम्। अभ्यन्तरे तादृशजनानामेव प्रवेशसभवात्। अनतीति। न अति नातिदविष्ठप्रदेशेऽवस्थित परिजनो यस्य स तम्। 'अम्बरे' इति नञो ऽनादेश (?)। पुन कीदृशम्। शुकनासेन मन्त्रिणा तास्ता कथा कुर्वाण तास्ता अनिर्वचनीया कथा किंवदन्ती कुर्वाण विदधानम्। अथ शुकनास विशेषयन्नाह—अनन्तरमिति। राज्ञ सिंहासनादनन्तर यथा स्यात्तथोत्तुङ्गमुच्च यद्वेत्रासनमासनविशेषस्तत्रोपविष्टेन स्थितेन। धौतेति। धौतं क्षालित यद्धवलाम्बर तदेव परिधानमधोंऽशुक यस्य स तथा तेन। 'परिधान त्वधोंऽशुकम्' इति कोष। अन्विति। अनुल्बणोऽनुत्कटो वेषो नेपथ्य यस्य स तेन। जलनिधिनेव समुद्रेणेवागाधमलब्धमध्य गाम्भीर्यं गम्भीरतागुणो यस्य स तेन। अथ कथा विशिनष्टि—समुपेति। समुपारूढ सम्यक्प्रकारेणोपारूढ प्राप्तो यो विश्रम्भो विश्वास स निर्भरोऽतिशयो यासु ता। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

तेनेति। तु पुनरर्थे। तस्या महत्तरिकायास्तेन वचनेन पूर्वोक्तप्रतिपादितेन राज्ञो नृपस्य

दीपक उसका परिवार (उसके चारों ओर प्रज्वलित) थे, (इसलिये) ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों नक्षत्र पुञ्जों (अर्थात् सहस्रों तारों) के मध्य पूर्णिमा का चन्द्र अवस्थित हो, अथवा शेषनाग की सहस्र फणाओं की मणियों के भीतर आराम करता विष्णु हो। उस समय वह केवल (परिमित) इने-गिने मूर्धाभिषिक्त (राज्याभिषेक किये हुए) प्रमुख राजाओं से घिरा हुआ था, उसके सेवक उससे बहुत दूर नहीं, समीप ही, स्थित थे। और वह (अपने पश्चात् ही) अपने समीप ही, ऊँचे बेंत के आसन पर बैठे हुए, धोये हुए श्वेत वस्त्र पहने हुए, न भड़कीले शृङ्गारवाले, समुद्र की भाँति गम्भीर शुकनास के साथ, (उन दोनों में विद्यमान) अत्यन्त अधिक घनिष्ठता की द्योतक विविध वार्तायें कर रहा था।

उसके उन अश्रुतपूर्व तथा उसको (लगभग) अविश्वसनीय प्रतीत होते उन शब्दों को सुनकर तो राजाने ऐसा अनुभव किया कि मानो उसके सारे अग अमृतरस से सिंच गये हो,

रोमाञ्चनिकरकण्टकिततनोरानन्दरसेन विह्वलीक्रियमाणस्य स्मितविकसितकपोलस्थलस्य परिपूरितहृदयातिरिक्तहर्षमिव दशनांशुवितानच्छलेन विकिरतो राज्ञः शुकनासमुखे लोलतारकमानन्दजलबिन्दुक्लिन्नपक्ष्ममालं तत्क्षणं पपात चक्षुः। अनालोकितपूर्वं तु हर्षप्रकर्षमभिसमीक्ष्य भूपतेः कुलवर्धनां च स्मितविकसितमुखीमागतां दृष्ट्वा तस्य चार्थस्य सततं मनसि विपरिवर्तमानत्वादविदितवृत्तान्तोऽपि तत्कालोचितमपरमतिमहतो हर्षस्य कारणमपश्यञ्छुकनासः स्वयमुत्प्रेक्ष्य समुत्सर्पितासनः समीपतरमुप-

---

चक्षुर्नेत्रं शुकनासमुखे तत्क्षणं पपातापतदित्यन्वयः। वचनं विशेषयन्नाह—अश्रुतेति। अश्रुतपूर्वेणानाकर्णितपूर्वेण। सम्भावयितुं योग्यं सम्भाव्यम्। न सम्भाव्यमसम्भाव्यं तेन। कीदृशस्य राज्ञः। सिक्तं सिञ्चितं सर्वाङ्गं समग्रं शरीरं यस्य स तथा तस्य। केनेव। अमृतरसेनेव पीयूषद्रवेणेव। मनोभीष्टत्वाद्दुःखनिवारकत्वाच्च वचनस्यामृतसाम्यम्। सद्यस्तत्कालं प्ररूढः प्रादुर्भूतो यो रोमाञ्चो रोमोद्गमस्तस्य निकरः समूहस्तेन कण्टकिता सञ्जातकण्टका तनुः शरीरं यस्य स तथा तस्य। आनन्देति। आनन्दः प्रमोदः स एव रसस्तेन विह्वलीक्रियमाणस्य व्याकुलीक्रियमाणस्य। स्मितेति। अदृष्टरदं यद्धसितं तत्स्मितम्। तेन विकसितं विस्तीर्णतां प्राप्तं कपोलस्थलं यस्य स तथा तस्य। अथोत्प्रेक्षां प्रदर्शयन्नाह—परीति। परिपूरितं पूर्णीकृतं हृदयं तस्मादतिरिक्तमुर्वरितं हर्षमिव दशनांशुवितानच्छलेन दन्तदीप्तिसमूहमिषेण विकिरतो बहिः क्षिपतः। चक्षुर्विशिनष्टि—लोला चञ्चला तारका कनीनिका यस्मिंस्तत्। आनन्देति। आनन्दजलबिन्दुभिः प्रमोदजनितनेत्रजलपृषतैः क्लिन्नं स्विन्नं पक्ष्ममालं नेत्ररोमसमूहो यस्मिंस्तत्तथा। अनालोकितेति। भूपते राज्ञोऽनालोकितपूर्वमनवीक्षितपूर्वं हर्षप्रकर्षं प्रमोदातिशयमभिसमीक्ष्य निरीक्ष्य। च पुनरर्थे। कुलवर्धनां स्मितेन विकसितं विकस्वरं मुखमाननं यस्याः एतादृशीमागतां दृष्ट्वा विलोक्य। तस्येति। तस्य विलासवत्याः समाचीर्णानि व्रतानि तन्महिम्नावश्यमेतस्या गर्भो भविष्यतीत्येतादृशस्यार्थस्य सततं निरन्तरं मनसि चित्ते विपरिवर्तमानत्वाद्दृढं स्मर्यमाणत्वादविदितोऽज्ञातो वृत्तान्तो गर्भधारणरूपो येन स तस्यैव विधोऽपि शुकनासस्तत्कालोचितं तत्समय-

---

(हर्ष के कारण) उसका शरीर रोमाचित हो गया, आनन्द के बहाव से (मानो) वह आप्लावित होगया, मुस्कराने से उसकी गालें फैल गयीं, (हसते समय) वह ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो अपने दातों की फूट पड़ती चमक के बहाने अपने हृदय को भरने के पश्चात् फालतू बचे हर्ष को चारों ओर बखेर रहा हो, और उसकी चचल कनीनिकाओं तथा आनन्द के ऑसुओंसे भीगी पलकों वाली उसकी दोनों आखे, उसी समय शुकनास के मुह पर पड़ीं (उसकी ओर मुड़कर वहा स्थिर हो गयीं) राजा के पहले कभी न देखे हुए अत्यन्त हर्ष को देखकर और यह देख कर कि कुलवर्धना उसके समीप मुस्कराहट से खिले मुँह वाली आयी है, और इस कारण भी कि यही बात निरन्तर उसके मन मे घूमती रहती थी—समाचार न जानते हुए भी शुकनास ने अत्यन्त अधिक प्रसन्नता से उस समय के उचित दूसरे कारण को न समझते हुए स्वय कल्पना कर के अपना आसन (राजा के समीप) सरका लिया और राजा के और अधिक

सृत्य नातिप्रकटमाबभाषे—'देव, अस्ति किंचित्तस्मिन्स्वप्नदर्शने सत्यम्। अत्यन्त-मुत्फुल्ललोचना हि कुलवर्धना दृश्यते। देवस्यापीदं प्रियवचनश्रवणकुतूहलादिव श्रवणमूलमुपसर्पदुपरचयदिव नीलकुवलयकर्णपूरशोभामानन्दजलपरिप्लुतं तरल-तारकं विकसदावेदयति महत्प्रकर्षकारणमीक्षणयुगलम्। उपारूढमहोत्सवश्रवणकुतू-हलमुत्सुकोत्सुकं क्लाम्यति मे मनः। तदावेदयतु देवः किमिदम्' इत्युक्तवति तस्मि-न्राजा विहस्याब्रवीत्—'यदि सत्यमनया यथा कथितं तथा सर्वमवितथं स्वप्नदर्शनम्।

योग्यमपरमन्यदतिमहतोऽत्युत्कृष्टस्य हर्षस्य प्रमोदस्य कारणं नियामकमपश्यन्ननवलोकयन्स्वय-मात्मनोत्प्रेक्ष्य विचार्य समुत्सर्पितमूर्ध्वीकृतमासनमवस्थितिबन्धो येन स तथा। समीपतरमति-निकटमुपसृत्य गत्वा। राज्ञ इति शेषः। नातिप्रकटं सुगोप्यं यथा स्यात्तथा बभाषेऽवोचत्। किं तदित्याह—देवेति। हे देव हे स्वामिन्, तस्मिन्पूर्वोक्तस्वरूपे स्वप्नदर्शने किंचित्सत्यमस्ति तद्देवो भवानावेदयतु निवेदयतु। कुत इत्यत आह—अत्यन्तेति। हि यस्मात्कारणादियं कुल-वर्धनात्यन्तमुत्फुल्ललोचनोत्प्राबल्येन विकसितनेत्रा दृश्यतेऽवलोक्यते। देवस्यापि स्वामिनो-ऽपीदमीक्षणयुगलं नेत्रयुग्मं महत्प्रकर्षकारणम्। प्रमोदस्येति शेषः। आवेदयति निवेदयति। किं कुर्वत्। विकसद्विकासं प्राप्नुवत्। तदेव विशिनष्टि—प्रियेति। प्रियमिष्टं यद्वचनं वचस्तस्य-श्रवणमाकर्णनं तस्य कुतूहलं कौतुकं तस्मादिव श्रवणमूलं कर्णमूलमुपसर्पद्गच्छत्। नीलं यत्कु-वलयं कुवेलं तल्लक्षणं यत्कर्णपूरं कर्णाभरणं तस्य शोभा कान्तिमुपरचयदिव निष्पादयदिव। आनन्देति। आनन्दजलं प्रमोदबाष्पस्तेन परिप्लुता व्याप्ता तरला चपला तारका कनीनिका यस्य तत्। उपारूढं प्राप्तं महोत्सवस्य महामहस्य श्रवणकुतूहलं येन तत्। उत्सुकोत्सुकम्। अत्युत्सुकमित्यर्थः। मे मम मनश्चित्तं क्लाम्यति खेदं प्राप्नोति। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। किमिदं प्रमोदनियामकम्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण तस्मिञ्छुकनासे उक्तवति कथितवति सति राजा नृपो विहस्य किंचित्स्मितं कृत्वाब्रवीदवोचत्। यदीति। यद्यनया यथा कथितं सत्यं तथा सर्वमवितथं

निकट पहुँच कर, बहुत ऊँचे से नहीं (धीरे से) कहा—"महाराज! उस स्वप्न में जो कुछ देखा था क्या उसमे कुछ सत्य है? कुलवर्धना की आँखें (हर्ष से) बहुत फैली हुई दिखायी देती हैं, महाराज की भी ये खिलती हुई दोनों आँखे हर्ष के (किसी) महत्त्वपूर्ण कारण को बता रही हैं, क्योंकि, वे फैलकर मानों प्यारे (स्वागत करने योग्य) समाचार को सुनने की इच्छा से ही कानों की जड़ों तक पहुँच रही हैं, (इस प्रकार) वे मानो नीलकमल रूप कर्ण-भूषण बनी जा रही हैं, आनन्दाश्रुओं से आप्लावित हैं और (हर्ष के कारण) उनकी कनीनि-काएँ चचल है। जो महान् उत्सव आगया है उसको सुनना चाहता हुआ मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हुआ, अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। इसलिये महाराज बताइये कि बात क्या है"—जब उसने यह कहा तो राजा ने मुस्कराकर कहा—"यदि इसने जो कुछ कहा है वह वस्तुत. सत्य है तो उस स्वप्न में जो कुछ भी देखा था वह सब सत्य प्रमाणित हो गया है। परन्तु मुझको

अहं तु न श्रद्दधे। कुतोऽस्माकमियती भाग्यसंपत्। अभाजनं हि वयमीदृशानां प्रियवचनश्रवणानाम्। अवितथवादिनीमप्यहं कुलवर्धनामेवंविधानां कल्याणानामसंभावितमात्मानं मन्यमानो विपरीतामिवाद्य पश्यामि। तदुत्तिष्ठ। स्वयमेव गत्वा किमत्र सत्यमिति देवीं पृष्ट्वा ज्ञास्यामि' इत्यभिधाय विसृज्य सकलनरेन्द्रलोकमुन्मुच्य स्वाङ्गेभ्यो भूषणानि कुलवर्धनायै दत्त्वा तया च दत्तप्रसादानन्तरमवनितलाश्लिष्टललाटरेखया शिरःप्रणामेनाभ्यर्चितः सह शुकनासेनोत्थाय हर्षविशेषनिर्भरेण त्वर्यमाणो

यथार्हं स्वप्नदर्शनम्। धीरोदात्तत्वादाह—अहमिति। अहमित्यात्मनिर्देशः न श्रद्दधे न विश्वास करोमि। तत्क्रियामकमाह—कुत इति। अस्माकम् इयत्येतावती भाग्यस्य भागधेयस्य संपत्संपत्तिः कुतः स्यात्। ममेति शेषः। हि निश्चितम्। ईदृशानां पूर्वोक्तानां प्रियमिष्टं यद्वचनं तस्य श्रवणान्याकर्णनानि तेषां वयमभाजनमपात्रम्। अथ चाहमवितथवादिनीमपि सत्यप्रलापिनीमपि कुलवर्धनाम्, विपरीतामिवासत्यवादिनीमिवाद्यास्मिन्दिने पश्याम्यवलोकयामि। कीदृशोऽहम्। एवंविधानां पूर्वंव्यावर्णितस्वरूपाणां कल्याणानां निःश्रेयसानामसंभावितमयोग्यमात्मानं मन्यमानो ज्ञायमानः तदिति हेत्वर्थे। हे शुकनास, उत्तिष्ठोत्थानं कुरु स्वयमेवात्मनैव गत्वा। अन्तःपुर इति शेषः। किमत्र सत्यमिति देवीं विलासवतीं पृष्ट्वापृच्छ्य ज्ञास्यामि निर्णेष्यामीत्यभिधायेत्युक्त्वान्तःपुरमयासीत्। लुङि 'या प्रापणे' एतस्यानिट्धातो रूपम्। सकलनरेन्द्रलोकं समग्रराजसमूहं विसृज्य गृहाय गम्यतामित्यनुज्ञाप्य स्वाङ्गेभ्यः स्वकीयहस्तपादादिभ्यो भूषणान्याभरणान्युन्मुच्योत्तार्य कुलवर्धनायै महत्तरिकायै दत्त्वा वितीर्य। कीदृशो नृपः। तया चेति। तया कुलवर्धनयाभ्यर्चितः पूजितः। केन। शिरःप्रणामेनोत्तमाङ्गप्रणमनेन। तां विशिनष्टि—दत्तेति। दत्तो यः प्रीत्या प्रसादो वस्त्रपात्रादिरूपस्तस्यानन्तरं पश्चादवनितले वसुधातले श्लिष्टा संयोजिता ललाटरेखालिकरेखा यया सा तथा। अनेन राज्ञोऽतिवदान्यत्वं स्वस्मिन्नभिनवोक्त्या राज्ञः संतोषकरणनिमित्तकोऽभिनिवेशश्च सूचितः। पुनः किं कृतवानित्याह—सहेति। सह समानकालं शुकनासेन उत्थाय उत्थानं कृत्वा हर्षविशेषस्य प्रमोदातिशयस्य निर्भरो यस्मिन्ने-

---

तो विश्वास नहीं होता, (क्योंकि) हमें इतना सौभाग्य कहांसे मिलता! निश्चय ही हम तो ऐसे प्रिय शब्दों के सुनने के पात्र ही नहीं हैं! यद्यपि कुलवर्धना कभी झूठ नहीं बोलती, तथापि आज, क्योंकि मैं अपने आप को इस प्रकारके सौभाग्य के अयोग्य मानता हूँ, इसलिये उसको मानो उलटी हुई को (झूठ बोलने वाली को) देखता हूँ। इसलिये उठो। मैं स्वयं जाऊँगा और रानी से पूछकर जान लूँगा कि इसमें कुछ सचाई है या नहीं।"—यह कहकर (पहले) उसने सब एकत्रित राजाओं को छुट्टी दी और अपने अंगों से (कुछ) आभूषण उतार कर कुलवर्धना को दे दिये। और दिये गये उपहार के पश्चात् जब उसने, अपने चौड़े मस्तक को पृथ्वी से छुवाये हुई ने, शिर झुकाकर प्रणाम करके उसको आदर दिया—तब वह शुकनासके साथ खड़ा हो गया और अपने हर्ष से भरे मन द्वारा वेग से चलाया जाता हुआ, वायुमें

मनसा पवनचलितनीलकुवलयदललीलाविडम्बकेन दक्षिणेनाक्ष्णा परिस्फुरताभिनन्द्यमानस्तत्कालसेवासमुचितेन विरलविरलेन परिजनेनानुगम्यमानः पुरःसर्पिणीनामनिललोलस्थूलशिखाना प्रदीपिकानामालोकेन समुत्सार्यमाणकक्षान्तरतिमिरसंहतिरन्तःपुरमयासीत्।

तत्र च सुकृतरक्षासंविधाने, नवसुधानुलेपनधवलिते, प्रज्वलितमङ्गलप्रदीपे, पूर्णकलशाधिष्ठितपक्षके प्रत्यग्रलिखितमङ्गल्यालेख्योज्ज्वलितभित्तिभागमनोहारिणि, उपरचितसितविताने वितानपर्यन्तावबद्धमुक्तागुणे, मणिप्रदीपप्रहततिमिरे वासभवने

वंविधेन मनसा चित्तेन त्वर्यमाणस्त्वरा क्रियमाण । पवनेति । पवनेन वायुना चलित यन्नीलकुवलय तस्य दलस्य या लीला तस्या विडम्बकेन तिरस्कारिणा दक्षिणेनापसव्येनाक्ष्णा चक्षुषा परिस्फुरता स्पन्दताभिनन्द्यमान आनन्द्यमानस्तत्कालीना या सेवा सपर्या तस्या समुचितेन योग्येन । विरलेति । विरलविरलेन वीप्सया द्वित्वम् । यथा यथा वासभवनाभ्यन्तरगमन राज्ञस्तथा तथा विरलविरलत्व बोध्यम् । एवविधेन परिजनेन परिच्छदेनानुगम्यमानोऽनुव्रज्यमान । पुर इति । पुरोऽग्रे ससर्पिणीना व्रजन्तीनाम् । अनिलेति । अनिलेन वायुना लोलास्तरला स्थूलशिखा यासा तासाम् । प्रदीपिकेति । प्रदीपिका । स्वार्थे क । 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप' इति कात्पूर्वमिकार । तासा प्रदीपिकानामालोकेन प्रकाशेन समुत्सार्यमाणा निराक्रियमाणा कक्षान्तर उत्तरोत्तरप्रदेशे तिमिरसहतिर्ध्वान्तसमूहो यस्येति राज्ञो विशेषणम् । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त ।

तत्र चेति । तत्र तस्मिन्नन्त पुरे वासभवने शयनतलमधिशयाना विलासवतीं ददर्शेति दूरेणान्वय । वासभवन विशेषयन्नाह—सुकृतेति । सुष्ठु शोभन कृत रक्षासंविधानं पापपाखण्डशाकिनीडाकिनीप्रभृतीनां प्रवेशप्रतिबन्धकर्मणि मन्त्राद्यौषधप्रकारो यस्मिन् । नवा प्रत्यग्रा या सुधा तस्या अनुलेपनेन धवलिते शुभ्रीकृते । प्रज्वलितो मङ्गलाभिध प्रदीपो यस्मिन् । पूर्णकलशैर्भृतकुम्भैरधिष्ठित पक्षक पक्षद्वारं यस्मिन् । 'पक्षद्वार तु पक्षकं' इति कोशः । प्रत्य-

---

कापते नीले कमल की पखुडी की क्रीड़ा की नकल करती फड़कती दायीं आँख द्वारा अभिनन्दित वह उस समय अपनी सेवा में उपस्थित रहने के कर्त्तव्य वाले थोड़े से सेवकों द्वारा अनुसृत, अन्तःपुर में चला गया। उस समय आगे-आगे उठायी हुई वायु में झिलमिलाती मोटी ज्वालाओं वाली मशालों के प्रकाश द्वारा कमरों के भीतर का अन्धकार दूर किया जा रहा था।

और वहाँ उस शयनकक्ष मे जिसकी सुरक्षा के विधि विधान कर लिये गये थे, ताजे (श्वेत) चूने के लेप से जिसकी पुताई की जा चुकी थी, जिसमे माङ्गलिक दिये जला दिये गये थे, जिसके द्वार के दोनों पार्श्वों पर (जल) पूर्णकलश रख दिये गये थे, अभी-अभी चित्रित मगल सूचक चित्रकारी से आभूषित दीवारों से जो आकर्षक बना हुआ था, जिसपर (रेशम का) एक श्वेत चन्दोआ छाया हुआ था, चन्दोए के किनारों से मोतियों के हार लटक रहे थे और जिसके भीतर का प्रकाश दीयों के काम आती मणियों ने दूर कर दिया था

भूतिलिखितपत्रलताकृतरक्षापरिक्षेपम्, शयनशिरोभागविन्यस्तधवलनिद्रामङ्गलकलशम्, आबद्धविविधौषधिमूलयन्त्रपवित्रम्, अवस्थापितरक्षाशक्तिवलयम्, इतस्ततो विप्रकीर्णगौरसर्षपम्, अवलम्बितवालयोक्त्रग्रथितलोलपिप्पलपत्रम्, आसक्तहरितारिष्टपल्लवम्, उत्तुङ्गपादपीठप्रतिष्ठितम्, इन्दुदीधितिधवलप्रच्छदपटम्,

---

ग्रेति। प्रत्यग्रलिखितानि नूतनलिपीकृतानि यानि मङ्गल्यानि मङ्गले हितान्यालेख्यानि चित्राणि तैरुज्ज्वलितो दीप्तिमान्यो भित्तिभाग कुड्यप्रदेशस्तेन मनोहारिण्यभिरामे। उपेति। उपरचित निष्पादित सितवितान श्वेतकन्दको यस्मिन्। वितानेति। वितानमुल्लोचस्तत्पर्यन्त तत्प्रान्त यावदवबद्धो मुक्तागुणो मुक्ताजाल यस्मिन्। मणीति। मणय एव प्रदीपास्तै प्रहत ध्वस्त तिमिर तमो यस्मिन्। इत परमेकादशभिः शयनतलं विशेषयन्नाह—भूतीति। भूत्या ऐश्वर्यार्थं लिखिता या पत्रलता पत्रफलान्विता लता कल्पलता तया कृतो रक्षाया गर्भरक्षाया परिक्षेपो दार्ढ्यं यस्मिन्। दृश्यते हि देशविशेषे सद्यो गर्भसभूत्यर्थं प्रथमतौ नवोढाया फलपत्रान्वितकदलिकया क्रियते। गर्भानन्तर च पर्यङ्क उत्तरच्छदे शयनीयगृहभित्तौ वा फलपत्रान्विता लिखिता कल्पलता गर्भस्य पुष्ट्यर्थं वृद्ध्यर्थं च क्रियते। शयनेति। शयनस्य शिरोभागे विन्यस्त स्थापितो धवलश्चन्दनादिना निद्रासमये मङ्गलकलशो यस्मिन्। इय च देशरीति। तदुक्तमन्यत्र—'निद्राकलशो रूप्यमय सर्वश्वेत शिरोभागेऽहर्निश पूर्णजल स्थाप्यते' इति। आबद्धेति। आबद्धानि सयतानि विविधानामनेकप्रकाराणामौषधीना मूलानि तन्त्राणि चक्रव्यूहप्रभृतीनि पवित्राणि मन्त्रपूतगोरोचनाप्रभृतीनि यस्मिंस्तत्। अवेति। अवस्थापितानि पार्श्वे रक्षितानि रक्षार्थं शक्तीना कात्यायनीना वलयानि वह्निर्मितानि यस्मिंस्तथा। इतस्तत इति। इतस्तत समन्ताद्विप्रकीर्णा विक्षिप्ता गौरसर्षपा श्वेतसिद्धार्था यस्मिन्। अवेति। अवलम्बितानि बालानां केशाना योक्त्र मुखबन्धन तेन ग्रथितानि गुम्फितानि लोलानि चञ्चलानि पिप्पलपत्राण्यश्वत्थदलानि यस्मिन्। आसक्ता अन्योन्य सलग्ना हरिता नीला अरिष्टपल्लवा निम्बकिसलया यस्मिन्। उत्तुङ्गेति। उत्तुङ्गान्युच्चानि यानि पादपीठानि पल्यङ्कपादाधारभूतानि काष्ठविशेषाणि तेषु प्रतिष्ठितम्।

उस शयन कक्ष मे, उसने विलासवती को देखा—उस समय वह गोरोचना द्वारा चित्रित किनारों वाले अत्यन्त श्वेत दो नये रेशमी वस्त्र पहने हुई थी। उस समय वह गर्भवती स्त्री के योग्य हिमालय की शिला के तल के सदृश लम्बी-चौड़ी शय्या पर आराम कर रही थी, इस शय्या के चारों ओर पवित्र भस्म द्वारा की गई चित्रकारी द्वारा रक्षा वृत्त बना दिया गया था, (उस) शयन के सिरहाने श्वेत (चाँदी के) नींद (को) प्रेरित करने वाले मगल घट रख दिये गये थे, इससे बाँधे गये विविध प्रकार की औषधियों की जड़ों द्वारा और तावीजों द्वारा वह कक्ष पवित्र कर दिया गया था, इसमें (कल्याणी आदि) शक्तियों द्वारा अधिष्ठित (रहस्य मय) रक्षा वलय रखे हुए थे, इस पर जहाँ तहाँ श्वेत सरसों के बीज बखेर दिये गये थे, इस पर बालों की रस्सी मे गूथे हुए चञ्चल पिप्पल-पत्र लटका दिये गये थे, नीम के हरे पत्ते इस पर बाँध दिये गये थे, यह एक ऊँचे पायों वाले मच पर रखा था, और इसकी चादर चन्द्रमा

अचलराजशिलातलविशालम्, गर्भोचितशयनतलमधिशयाना कनकपात्रपरिगृहीतैर-विच्छिन्नविरलावस्थितदधिलवैर्जलतरंगतरलश्वेतशालिसिक्थनिकरैरग्रथितकुसुमसनाथैः पूर्णभाजनैरखण्डिताननमत्स्यपटलैश्च प्रत्यग्रपिशितपिण्डमिश्रैरविच्छिन्नसलिलधारा-नुगम्यमानमार्गैः पटलकप्रज्वलितैश्च शीतलप्रदीपैर्गोरोचनामिश्रगौरसर्षपैश्च सलिला-ञ्जलिभिश्चाचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रियमाणावतरणकमङ्गलाम्, धवलाम्बर-विविक्तवेषेण प्रमुदितेन प्रस्तुतमङ्गलप्रायालापेन परिजनेनोपास्यमानाम्, उपारूढ-

---

इन्द्विति। इन्दोश्चन्द्रस्य या दीधिति कान्तिस्तया धवल शुभ्र प्रच्छदपट उत्तरपटो यस्मिन्। अचलेति। अचलराजो हिमाचलस्तस्मिञ्छिलातल तद्वद्विशाल विस्तीर्णम्। गर्भेति। गर्भवत्य-वस्थायामुचित योग्यमेवंविध शयनतल शयनीयतलमधिशयानां विहितस्वापाम्। पुनर्विलासवतीं विशेषयन्नाह—अन्तरिति। अन्त पुरसक्ता या जरत्यो वृद्धा योषितस्तासा जनेन समुदायेन क्रियमाण विधीयमानमवतरणकमङ्गल यस्यास्ताम्। अवतरणकमङ्गलमुत्तारणमिति देशाचार-व्यवस्थया प्रसिद्धम्। कीदृशेन। आचार कुलाचारस्तत्र कुशलेनाभिज्ञेन। तानेवाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य पात्राणि भाजनानि तै परिगृहीतैरात्तैरविच्छिन्ना अविच्छेद प्राप्ता विरला-वस्थिता अनिबिडतया स्थिता ये दध्नो लवा खण्डास्तै। जलेति। जलतरगा पानीयकल्लोला-स्तद्वत्तरला शोभायमाना श्वेतशालिसिक्थानां पक्वौदनानां शालिलाजाना वा निकराः समूहास्तै। अग्रथितेति। अग्रथितान्यगुम्फितानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तै सनाथैः सहितै पूर्णानि भृतानि भाजनानि यै। शालिविशेषणम्। अखण्डितेति। अखण्डितमच्छिन्न-मानन मुख येषामेवंविधैर्मत्स्यपटलैर्मीनसमूहै। कीदृशै। प्रत्यग्रं तत्कालीनं यत्पिशित मांसं तस्य पिण्डा प्रसिद्धास्तैर्मिश्रितै। पुन कै। शीतलप्रदीपै कर्पूरप्रदीपै। कीदृशै पटलकै रक्तवस्त्रनिर्मितगृहे मण्डलके वा प्रज्वलितैरुद्दीपितै। अविच्छिन्नेति। अविच्छिन्नात्रुटिता या सलिलधारा जलधारा तया अनुगम्यमानोऽनुष्ठीयमानो मार्गो यैस्ते तथा तै। गोरेति। गोरोचना प्रसिद्धा तया मिश्रै संयुक्तैर्गौरसर्षपै श्वेतसिद्धार्थैं। पुन. कै। सलिलस्य जलस्याञ्जलयस्तै। पुनर्विलासवतीं विशेषयन्नाह—धवलेति। धवलाम्बरस्य श्वेतवाससो

की किरणों-सरीखी श्वेत थी। उस विलासवती की अवतारणा नाम की मागलिक विधि प्रथागत रीति रिवाजों को कराने में चतुरा अन्त पुर स्थित वृद्धायें सोने के बर्तनों में लिये हुए अखडित पृथक् पृथक् स्थित दधिखण्डों से, जलतरगों सरीखे लहराते तथा श्वेत भात पिण्डों एव न गुथे हुए (पृथक् पृथक् विद्यमान) फूलों से युक्त पूर्णपात्रों से और ताजे मासपिंडों से मिले अखण्डित (साबुत) मुखवाली मछलियों के समूह से, कर रही थी, और उनके पीछे पीछे मार्ग पर (किसी वृद्धा द्वारा) लगातार जल की धारा बहायी जा रही थी, उन्होंने आँचलों से ढके बेलनाकार पात्रों में जलाये हुए शीतल दीये लिये हुए थे, गोरोचना मिश्रित श्वेत सरसों से युक्त अंजलियों में जल लिया हुआ था। श्वेत वस्त्र पहने हुई, प्रसन्न तथा मागलिक रीतियों के विषय में बात करती हुई नौकरानियाँ वहाँ उपस्थित थीं। गर्भवती होने के कारण विलास-

गर्भतयान्तर्गतकुलशैलामिव क्षितिम्, सलिलनिमग्नैरावतामिव मन्दाकिनीम्, गुहागतसिंहामिव गिरिराजमेखलाम्, जलधरपटलान्तरितदिनकरामिव दिवसश्रियम्, उदयगिरितिरोहितशशिमण्डलामिव विभावरीम्, अभ्यर्णब्रह्मकमलविनिर्गमामिव नारायणनाभिम्, आसन्नागस्त्योदयामिव दक्षिणाशाम्, फेनावृतामृतकलशामिव क्षीरोदवेलाम्, गोरोचनाचित्रितदशमनुपहतमतिधवलं दुकूलयुगलं वसाना विलासवतीं ददर्श।

विविक्तो निर्मलो वेषो नेपथ्य यस्य स तेन प्रमुदितेन हर्षितेन। प्रस्तुतेति। प्रस्तुत उपक्रान्तो मङ्गलप्रायो बाहुल्येन मङ्गलरूप आलापः संलापो यस्यैवंविधेन परिजनेन परिच्छदजनेनोपास्यमानां सेव्यमानाम्। अथोपमानान्तरेण तां विशेषयन्नाह—उपेति। उपारूढ. प्राप्तो यो गर्भस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतयान्तर्गत कुलशैलो यस्यामेवंभूतां क्षितिमिव वसुधामिव। सर्वेषामाधारभूतत्वेन कुलशैलसुतयो साम्यम्। सलिले पानीये निमग्नो ब्रुडित ऐरावतोऽभ्रमातङ्गो यस्यामेतादृशीं मन्दाकिनीं गङ्गामिव। गुहागत कन्दराप्राप्त सिंहो मृगारिर्यस्यामेवं विशिष्टां गिरिराजमेखलामिव हिमाचलमध्यमिव। जलधरपटलमभ्रवृन्द तेनान्तरितो व्यवहितो दिनकरो दिवसको यस्यामेतादृशीं दिवसश्रियमिव वासरलक्ष्मीमिव। उदयगिरिणोदयाचलेन तिरोहितमाच्छादित शशिमण्डलं यस्यामेवंभूता विभावरीं रजनीमिव। अभ्यर्णे समीपे ब्रह्मकमलस्य धातुरूपनलिनस्य विनिर्गमो बहिर्भावो यस्यामेतादृशीं नारायणनाभिमिव दामोदरकूपिकामिव। आसन्न समीपवर्त्यगस्त्यस्य पीताब्धेरुदय उद्गमन यस्यामेवंभूता दक्षिणाशामिवावाचीमिव फेनेन डिण्डीरेणावृता आच्छादिता अमृतकलशा पीयूषकुम्भा यस्यामेतादृशीं क्षीरोदवेलामिव दुग्धोदधिजलवृद्धिमिव। गोरोचनया चित्रिता पिञ्जरीकृता दशा प्रान्ता यस्यैवंभूतमनुपहतमच्छिद्रमतिधवलमतिशुभ्र दुकूलयुगल दुकूलयुग्मं वसानां दधानाम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। ततश्च पार्थिव स राजा तां विलासवतीमुत्तिष्ठन्तीमुत्थान कुर्वतीम्। हे देवि, अलमल कृत कृतमत्यादरेणातिप्रयत्नेन। नोत्थातव्यं नोत्थानं कर्तव्यमित्येवमभिधायेत्युक्त्वा तस्मिन्नेव शयनीये पर्यङ्के तया सह समुपाविशदासेदिवान्। केचित्तु स्त्रीपुरुषयोरेकत्रावस्थितिर्न युक्तेति तस्मिन्नेव शयनीये शयनसंबन्धिगृहे पृथगासने राजोपाविशदित्यर्थमाहु।

वती ऐसी दिखायी दे रही थी कि मानो कुल पर्वत को भीतर समेटे हुए पृथ्वी हो, अथवा जिसके जल में ऐरावत हाथी डुबकी लगाये हो ऐसी आकाश गगा हो अथवा जिसकी गुफा में सिंह विद्यमान हो ऐसी हिमालय की मेखला हो अथवा बादलों की घटा के बीच छिपे हुए सूर्य वाली दिवसश्री हो, अथवा उदयगिरि के चन्द्रमण्डलवाली रात्रि हो, अथवा जिस कमल पर ब्रह्मा का जन्म होने ही वाला हो ऐसे कमल वाली विष्णु की नाभि हो, अथवा वह उस दक्षिण दिशा सरीखी थी जिसमे अगस्त्य का उदय समीप ही हो, अथवा वह उस समुद्र तट सरीखी थी जिस पर (उसके) फेन से ढका अमृत घट रखा हो।

ससंभ्रमपरिजनप्रसारितकरतलालम्बनावष्टम्भेन वामजानुविन्यस्तहस्तपल्लवा प्रचलितभूषणमणिरवमुखरमुत्तिष्ठन्तीं विलासवतीम् 'अलमलमत्यादरेण । देवि, नोत्थातव्यम्' इत्यभिधाय सह तया तस्मिन्नेव शयनीये पार्थिवः समुपाविशत् । प्रमृष्टचामीकरचारुपादे धवलोपच्छदे चासन्ने शयनान्तरे शुकनासोऽपि न्यषीदत् । अथ तामुपारूढगर्भामालोक्य हर्षभरमन्थरेण मनसा प्रस्तुतपरिहासो राजा 'देवि, शुकनासः पृच्छति-यदाह कुलवर्धना किमपि तत्किं तथैव' इत्युवाच । अथाऽव्यक्तस्मितच्छुरितकपोलाधरलोचना लज्जया दशनांशुजाल-

---

तामेव विशिनष्टि—ससम्भ्रमेति । ससम्भ्रम सचकित सविलास वा, परिजनेन सेवकजनेन प्रसारित विस्तारित यत्करतल हस्तल तदेवालम्बनमाधारस्तस्यावष्टम्भेन सहायेन वामेऽपसव्ये जानौ नलकीले विन्यस्त स्थापितो हस्त एव पल्लवो ययेति गर्भवतीज्ञापकं लक्षणम् । प्रचलितानि भूषणानि तेषा मणिरवेण मुखर वाचाल यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । अलमित्यनेनादराति शय सूचित । ततश्च शुकनासोऽपि शयनान्तर आसनान्तरे न्यषीददुपविष्टवान् । तदेव विशेषयन्नाह—प्रमृष्टेति । प्रमृष्टमुज्ज्वलीकृत यत् चामीकर सुवर्णं तस्य चारवो मनोहरा पादा यस्मिन् (यस्य) । क्वचित् 'चारुपट्टे' इति पाठ । तत्र चारु सुन्दर. पट्टो दृढबन्धो यस्मिन्नित्यर्थ । धवल श्वेत उपच्छद उत्तरपटो यस्मिन् । आसन्ने समीपवर्तिनि । अथेत्यानन्तर्ये । ता विलासवतीमुपारूढः प्राप्तो गर्भो ययैवभूतामालोक्य निरीक्ष्य राजा पार्थिव इत्युवाचेत्यब्रवीत् । कीदृक् । प्रस्तुत प्रारब्ध परिहासो नर्मवचनविन्यासो येन स । केन मनसा चित्तेन । कीदृशेन । हर्षस्य प्रमोदस्य यो भर सभारस्तेन मन्थरेणालसेन प्रस्तुतो गर्भधारणरूपो वृत्तान्तस्तत्र परिहासो हास्यमिति वा । एतदेव स्पष्टीकुर्वन्नाह—देवीति । हे देवि, शुकनास पृच्छति । कुलवर्धना किमपि यदाह तत्किं तथैवेति सत्यत्वप्रश्न । अथेति । अथ प्रश्नानन्तरमव्यक्तमस्फुटं यत्स्मित हास्यं तेन छुरितानि विकसितानि कपोलाधरलोचनानि यस्या सा लज्जया त्रपया दशना दन्तास्तेषामंशव किरणास्तेषां जालकं

शीघ्रतामे सेविका द्वारा फैलाये गये हाथ की हथेली पर झुक कर उसकी सहायता से और अपने बायें घुटने पर रखे कमल हाथ वाली तथा झूलती भूषण मणियों की टनटनाहट को गुञाते हुए उठती हुई विलासवतीको "देवि ! (मेरे प्रति) इतना अधिक आदर मत दिखाओ उठने की आवश्यकता नहीं" यह कह कर राजा उसी शय्या पर उसके साथ ही बैठ गया। और चमकाये हुए सोने के बने सुन्दर पायों वाले श्वेत चादर वाले दूसरे आसन पर शुकनास भी बैठ गया।

तब उसको गर्भवती देख कर अति हर्ष के भार से अल्साये हृदय से परिहास करते हुए राजा ने कहा—"देवि ! शुकनास पूछते हैं कि क्या जो कुछ कुलवर्धना ने कहा था क्या वह वस्तुत वैसा ही (सच) है।" तब उस समय विलासवती नीचे को मुँह किये हुई, अस्फुट (दबायी हुई) मुस्कराहट से विकसित कपोल, अधर तथा लोचनों वाली, लज्जावश, दान्तों की

कव्याजेनांशुकेनेव मुखमाच्छादयन्ती विलासवती तत्क्षणमधोमुखी तस्थौ। पुनः पुनश्चानुबध्यमाना 'किं मामतिमात्रं त्रपापरवशां करोषि। नाहं किंचिदपि वेद्मि' इत्यभिदधाना तिर्यग्वलिततारकेण चक्षुषावनतमुखी राजानं साभ्यसूयमिवापश्यत्। अपरिस्फुटहासज्योत्स्नाविशदेन मुखशशिना भूभुजां पतिरेनां भूयो बभाषे—'सुतनु, यदि मदीयेन वचसा तव त्रपा वितन्यते तदयमहं स्थितो निभृतम्। अस्य तु किं प्रतिविधास्यसि विघटमानदलकोशविशदचम्पकद्युतेः सवर्णतया परिमलानुमीयमानस्य कुङ्कुमाङ्गरागस्य पाण्डुरतामापद्यमानस्य, अनयोश्च गर्भसम्भवामृतावसेक-

---

समूहस्तस्य व्याजेन मिषेणांशुकेनेव वस्त्रेणेव मुखमाननमाच्छादयन्ती प्रच्छादनं कुर्वती विलासवती तत्क्षणं तस्मिन्समयेऽधोमुख्यवाङ्मुखी तस्थौ स्थिता। पुनरिति। अपश्यदित्यन्वयः। किं क्रियमाणा। पुनः पुनर्वारंवारमनुबध्यमाना सनिर्बन्धं पृच्छ्यमाना। पुनः किं कुर्वाणा। इत्यभिदधानेतिब्रुवाणा। इतिवाच्यमाह—किमिति। किमिति हेतुना मामतिमात्रमतिसकटं त्रपापरवशां लज्जायत्तां करोषि निर्मासि। नेति प्रतिषेधे। अहमित्यात्मनिर्देशः। किंचिदपि स्वल्पमात्रमपि वेद्मि जानामि। तिर्यगिति। तिर्यग्वलिता तारका कनीनिका यस्मिन्नेवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेणावनतमुख्यानम्रवदना राजानं नृपं साभ्यसूयमिव सहेर्ष्यया वर्तमानमिवापश्यदिति प्रागुक्तमेव। पतिव्रताया धीरायास्तादृशप्रश्नस्यानुचितत्वात्साभ्यसूयमिति भावः। अपरिस्फुटोऽप्रकटो यो हासः स एव ज्योत्स्ना चन्द्रिका तया विशदेन निर्मलेन मुखशशिना वदनचन्द्रेणोपलक्षितो भूभुजां पती राजैनां विलासवतीं भूयः पुनरपि बभाष उवाच। किं तदित्याह—सुतेति। सुष्ठु शोभनं तनुः शरीरं यस्याः सेति संबोधनपदम्। यदिति यत्तदोः संबन्धः। मदीयेन मदुक्तेन वचसा वाक्येन यदि तव त्रपा लज्जा वितन्यते विस्तार्यते। तदिति हेत्वर्थे। अयमहमिति सोऽहमिति। यदिदन्ताविषयेणाहमित्यस्याभेदप्रत्यभिज्ञानम्। निभृतमत्यर्थं तूष्णींस्थितः। अस्येति। अस्य कुङ्कुमाङ्गरागस्येत्यन्वितम्। किमिति। प्रश्ने प्रकारार्थे वा। प्रतिविधास्यसि। तस्य गोपनं कथं करिष्यसीत्याशयः। विघटेति। विघटमानानि भिद्यमानानि दलानि यस्यैवंभूतः कोशो मुकुलस्तेन विशदो निर्मलो यश्चम्पको हेमपुष्पकस्तस्य द्युतिः कान्तिस्तस्याः सवर्णतया सरूपतया। अतएव विशेषाज्ञाने परिमलानुमीयमानस्येत्युक्तम्। तथा च चम्पक-

---

तेज किरणोंके समूह के छल से मानो आञ्चल से मुह को ढके रह गयी। और जब उससे बार-बार (राजा ने उत्तर के लिये) अनुरोध किया तो बोली—"क्यों मुझे इतना लज्जित करते हैं, मैं तो कुछ भी नहीं जानती।" और नीचे को झुकाये मुखवाली आँख से राजा को मानों क्रोधित होकर देखा। अव्यक्त मुस्कराहट रूपी चाँदनी से चमकते मुखरूपी चन्द्रवाले राजाओं के स्वामी सम्राट् ने उसको फिर निम्न प्रकार कहा—"हे सुतनु! यदि मेरे शब्दों से तुम को लज्जा आती है तो लो मैं चुप बैठा हूँ। परन्तु खिलती पखुडियों की कली के कारण चमकते चम्पक पुष्प की शोभा वाले, एक समान रग का होने के कारण केवल सुगन्ध से जाने जाते पीले हो रहे कुकुमलेप का क्या उपाय करोगी? और इन अपने स्तनों को (चुप करने के लिये

निर्वाप्यमाणशोकानलप्रभवं धूममिव वमतोर्गृहीतनीलोत्पलयोरिव चक्रवाकयोस्तमालपल्लवलाञ्छितमुखयोरिव कनककलशयोः सकृदिवालिखितकृष्णागुरुपङ्कपत्रलतयोः श्यामायमानचूचुकयोः पयोधरयोः, अस्य च प्रतिदिनमतिगाढतरतामापद्यमानेन काञ्चीकलापेन दूयमानस्य नश्यत्त्रिवलिरेखावलयस्य कृशिमानमुज्झतो मध्यभागस्य।' इत्येव ब्रुवाणमवनिपालमन्तर्मुखहासः शुकनासः 'देव, किमायासयसि दे-

---

परिमलो न्यूनोऽङ्गरागपरिमलस्त्वधिक इति विशेषाद्विशिष्यानुमान भवस्येवेत्याशय । कुङ्कुमं काश्मीरं तेनाङ्गराग उद्वर्तन तस्य । अन्तर्वत्नीत्वनियता पाण्डुरता तामापद्यमानस्य प्राप्यमाणस्येत्यर्थ. । अथ चानयो पयोधरयोरिति सबन्ध । कीदृशयो गर्भसभव एवामृत तस्यावसेक सिञ्चन तेन निर्वाप्यमाणो विलुप्यमानश्चिरकालीनपुत्रानुत्पत्तिनिमित्तक शोक एवानलो वह्निस्तस्मात्प्रभव उत्पत्तिर्यस्यैवंभूतं स्तनवृन्तोपरि श्यामतालक्षणधूममिव वमतोस्त्यजतो । पुनरुत्प्रेक्षां कुर्वन्नाह—गृहीतेति । गृहीतमात्तं नीलोत्पलं कुवलय याभ्यामेवभूतयोश्चक्रवाकयोरिव रथाङ्गाह्वययोरिव । पुनरुत्प्रेक्षा कुर्वन्नाह—तमालेति । तमालस्तापिच्छस्तस्य पल्लवा किसलयास्तैर्लाञ्छित चिह्नित मुख ययोरेवंभूतयो कनककलशयोरिव सुवर्णकुम्भयोरिव । पुन प्रकारान्तरेणोत्प्रेक्षां कुर्वन्नाह—सकृदिति । सकृदेकवारमालिखिता कृष्णागुरुपङ्केन पत्रलता पत्रवल्ली ययोरेतादृशयोरिव श्यामायमान श्यामतामापद्यमान चूचुक स्तनवृन्त ययो पयोधरयोस्तयोर्गोपन कथं करिष्यसि । स्तनाग्रश्यामता गर्भव्यतिरेकेणानुपपद्यमाना तद्भावमाविष्करोतीति भाव । अस्य चेति । मध्यभागस्येत्यनेनान्वितम् । प्रतिदिन प्रत्यहमतिगाढतरतामतिदृढतामापद्यमानेन प्राप्यमाणेन काञ्चीकलापेन रसनाकलापेन दूयमानस्य पीड्यमानस्य । नश्यदिति । नश्यद्भ्रश्यत्त्रिवल्यात्मिकस्य रेखावलय यस्मिन्स तथा तस्य । कृशस्य भावः कृशिमा कृशत्वमुज्झतस्त्यजतो मध्यभागस्य मध्यप्रदेशस्येत्येवमिति पूर्वोक्तप्रकारेण ब्रुवाण वदन्तम् अवनिपाल नृप शुकनास इत्यब्रवीदित्यन्वय । कीदृक् । अन्तर्मुखे मुखमध्ये हासो यस्य स । एतेन महापुरुषत्वं सूचितम्। इतिशब्दार्थमाह—देवेति । हे देव स्वामिन्, देवीं

क्या करोगी) कि जिनके चूचुक काले पड़ रहे हैं और (इस लिये) मानो गर्भ से उत्पन्न (अथवा गर्भाशय में प्रकट हुए गर्भ रूप) अमृत को छिड़कने से बुझायी जाती शोक रूप अग्नि से उत्पन्न धुएँ को उगलते प्रतीत होते हैं, अथवा (अपनी-अपनी चोंच मे) नीला कमल लिये हुए चक्रवाक पक्षी सरीखे प्रतीत होते हैं, अथवा तमाल पत्र से सुशोभित मुखों वाले दो सुवर्ण घट-सरीखे प्रतीत होते हैं अथवा ऐसा लगता है कि उन पर मानो सदा के लिए एक ही वार कृष्ण अगुरु के लेप से पत्ते एवं बेलें अंकित कर दी गयी हों। और अपने क्षीणता (पतले पन) के छोड़ रहे स्थूल हो रहे इस कटिभाग को चुप रहने के लिये क्या करोगी जो प्रतिदिन अधिकाधिक कसती जा रही करधनी से दुख रहा है और जिस पर से (नाभि के ऊपर को) त्रिवली की तीन रेखाओं का मण्डल लुप्त होता जा रहा है।" इस प्रकार कहते हुए राजा को अपने होठों के भीतर हँसी को रोके हुए शुकनास ने कहा—"महाराज आप महारानी को

वीम्। इयमनया कथयापि लज्जते। त्यज कुलवर्धनाकथितवार्तासबद्धमालापकम्' इत्यब्रवीत्। एवंविधाभिश्च नर्मप्रायाभिः कथाभिः सुचिरं स्थित्वा शुकनासः स्वभवनमयासीत्। नरेन्द्रोऽपि तस्मिन्नेव वासगृहे तया सह तां निशामत्यवाहयत्।

ततः क्रमेण समीहितगर्भदोहदसंपादनप्रमुदिता पूर्णे प्रसवसमये पुण्येऽहन्यनवरतगलन्नाडिकाकलितकालकलैर्बहिरागृहीतच्छायैर्गणकैर्गृहीते लग्ने प्रशस्तायां वेलाया-

---

विलासवतीं किमायासयसि खेदयसि। इय देव्यनया पूर्वोक्तया कथया वार्तयापि लज्जते त्रपां प्राप्नोति। त्यज दूरीकुरु। कुलवर्धना पूर्वोक्ता तया कथिता प्रोक्ता या वार्ता प्रवृत्तिस्तत्सबद्धमालापक ज्ञातस्याप्यर्थस्यावेदने लज्जाकारिवाक्प्रयोगरूपम्। एवमिति। एवविधाभि पूर्वोक्ताभिर्नर्मप्रायाभि परिहासबाहुल्याभि कथाभिर्वार्ताभि सुचिर चिरकाल स्थित्वा तत्रावस्थान कृत्वा शुकनास स्वभवन स्वगृहमयासीद् ययौ। नरेन्द्रोऽपि नृपोऽपि तस्मिन्नेव वासगृहे तां निशां रात्रिं तया सह विलासवत्या सममत्यवाहयदनैषीत्।

तत इति। तत तदनन्तरं पुण्येऽहनि पवित्रवासरे प्रसवस्य जननस्य समय कालस्तस्मिन्पूर्णे परिपक्वे सति गणकैर्ज्योतिर्विद्भिर्गृहीते लग्ने मेषादिके प्रशस्ताया सर्वदोषराहित्येन मनोभीष्टायां वेलाया लग्नान्तर्वर्तिहोरायां विलासवती सुत पुत्रमसूत सुषुवे। कीदृशी। समीहित ईप्सितो यो गर्भस्तन्निमित्तको दोहदो मनोरथ। नानारसविषयकोऽभिलाष इति यावत्। तस्य सपादन परिपूर्णतापादन तया प्रमुदिता संतुष्टा। अथ गणकान्विशिनष्टि— आगृहीतेति। बहिरङ्गणादावागृहीता पूर्वपश्चिमादिदेशविशेषेण निश्चिता छाया यै। अनवरतेति। अनवरत नित्यं गलन्ती जलं त्यजन्ती या नाडिका घटिका। नाडिकाशब्दस्य समयवाचित्वेऽपि नाडीबोधक पात्रविशेषं लक्ष्यते। तया कलिता निश्चिता ज्ञाता कालकला सूक्ष्मकालो यै। नित्य चलन्ती या नाडिका मुहूर्तार्धं तस्मिन्कलिता कालकला यैरिति वा। का किमिव। मेघमाला कादम्बिनीरंमदमिव मेघवह्निमिव। 'मेघवह्निरिरंमद' इति हैम।

क्यों सताते हैं? यह तो इस बातचीत से ही लजाती है। इस लिये कुलवर्धना द्वारा दिये गये समाचार के सम्बन्ध की बातचीत को अब छोड़ दीजिये।" इस प्रकार की हँसी मजाकभरी बातें करता हुआ देरतक वहाँ बैठकर शुकनास अपने भवन में चलाया गया। राजा ने भी उसी शयन गृह में रानी के साथ वह रात बितायी।

फिर उचित समयके पश्चात्, जब प्रसव काल पूरा हो गया, तब अभीष्ट गर्भनिमित्तक मनोरथ के पूर्ण होने से प्रसन्न हुई विलासवती ने, एक पवित्र दिन में, जल में (निरन्तर) डूबती नाडिका (समय बोधक यन्त्र विशेष) द्वारा समय की कलाओं का ठीक ठीक निश्चय किये हुए तथा बाहर खुले स्थानमें (धूप में खड़े होकर) छाया का नाप लिये हुए ज्योतिषियों द्वारा लग्न अंकित कर लेने पर, मंगलमय समय पर सारी जनता के हृदय को आनन्दित करने वाले पुत्र को ऐसे जन्म दिया जैसे कि घनघटा विद्युत की चमक उत्पन्न करती है। उसके

मिरंमदमिव मेघमाला सकललोकहृदयानन्दकारिण विलासवती सुतमसूत। तस्मिञ्जाते सरभसमितस्तत प्रधावितस्य परिजनस्य चरणशतसंक्षोभचलितक्षितितलो भूपालाभिमुखप्रसृतस्खलद्गतिशून्यकञ्चुकिसहस्रो जनसमर्दनिष्पिष्यमाणपतितकुब्जवामनकिरातगणो विस्फार्यमाणान्तःपुरजनाभरणझङ्कारमनोहरः पूर्णपात्राहरणविलुप्यमानवसनभूषणः संक्षोभितनगरो राजकुले दिष्टिवृद्धिसम्भ्रमोऽतिमहानभूत्। अनन्तर च मन्दरमथ्यमानजलधिघोषगम्भीरदुन्दुभिध्वानपुरःसरेण प्रहतमृदङ्गशङ्खकाहलानकनिवह-

---

सुत विशेषयन्नाह—सकलेति। सकला समग्रा ये लोकास्तेषा हृदयानि चित्तानि तेषामानन्दकारिण प्रमोदजनकम्। अथ च तस्मिन्पुत्रे जाते परिजनस्य बाह्याभ्यन्तरसेवकजनस्य राजकुले राज्ञां समुदाये राजगृहे वा दिष्टिरानन्दस्तस्य या वृद्धिस्तस्या सम्भ्रम सोत्साहकर्मातिमहानभूदित्यन्वय। परिजन विशेषयन्नाह—सरभसमिति। सरभस त्वरितमितस्तत समन्तात्प्रधावितस्योच्चलितस्य। दिष्टिसम्भ्रम विशेषयन्नाह—चरणेति। चरणानां पादाना शत तस्माद्यः संक्षोभ प्रघातस्तेन चलित कम्पित क्षितितल यस्मात्स तथा। भूपालेति। भूपालाभिमुख नृपसमुख प्रसृता विस्तृतास्तेषां हर्षोद्रेकात्स्खलन्ती या गतिर्गमन तया शून्य कञ्चुकिनां सौविदल्लाना सहस्र यस्मिन्स। अनेन सुतोत्पत्तिज्ञापनार्थं सर्वत कञ्चुकिन प्रवृत्ता इति ध्वनितम्। जनेति। जनाना समर्दन समुदायेन निष्पिष्यमाणा पीड्यमाना अतएव पतिता स्रस्ता। येषां शिर शिरोधिपृष्ठिपाद लक्षणोपेत न भवति पृष्ठ्युदरहृदय च सुलक्षण स्यात्ते कुब्जा। एतद्विपरीतास्तु वामना। केवल स्वल्पतनव किराता। 'किरात स्यादल्पतनौ भूनिम्बे म्लेच्छभिल्लयो' इत्यनेकार्थ। तेषां गण समु-

---

उत्पन्न होने पर उस राजभवन मे बधाइयों युक्त जयजयकार की भारी हल्चल मच गयी.—(इस हल्चल में) शीघ्रता वश इधर उधर दौड़े हुए सेवकों के सैकड़ों चरणों के भारी पदविन्यास से पृथ्वी तल हिल गया, हजारों गतिशून्य (दुर्बल) कचुकी लड़खड़ाते हुए राजा की ओर चल पड़े, कुबड़े, बौने और छोटे कद के व्यक्ति लोगो की भीड़ में पिसकर गिर गये, अन्तःपुरस्थ व्यक्तियों के आभूषणों की बढती (गूँजती हुई) झकार से वह हल्चल आकर्षक हो गयी। पूर्णपात्र की छीना झपटी के कारण उस हलचल में वस्त्र तथा अलङ्कार लूटे जा रहे थे और उस हलचल ने सारे नगर को क्षुब्ध कर दिया। और बाद में सामन्त राजाओं समेत, अन्त-पुर निवासियों समेत, मत्रियों[1] समेत, (एकत्रित) राजाओं के (लोक) अर्थात् सेवकों समेत, युवती वेश्याओं समेत, बालकों तथा बूढ़ों समेत गोपालों तक सारी प्रजा नाच उठी मानो कि वह उत्सव के उस कोलाहल को सुन कर प्रसन्न होकर पागल सी हो उठी थी। उस कोलाहल से पूर्व मन्दराचल द्वारा मथे जाते समुद्र के शोर जैसी गम्भीर दुन्दुभि की ध्वनि हुई थी, वह कोलाहल उस समय बजाये गये कोमल मृदङ्ग, शख, काहल और आनकों के शब्द से भरा

---

(१) 'प्रकृति' का अर्थ राजा, मंत्री आदि राज्य के घटक सात अंग हैं। यहाँ केवल 'मंत्री' अर्थ लिया गया है।

निर्भरेण मङ्गलपटहपटुरवसंवर्धितेनानेकजनसहस्रकलकलबहुलेन त्रिभुवनमापूरयतोत्सवकोलाहलेन ससामन्ताः सान्तःपुराः सप्रकृतयः सराजलोकाः सवेश्यायुवतयः सबालवृद्धा ननृतुरागोपालमुन्मत्ता इव हर्षनिर्भराः प्रजाः। प्रतिदिनमवर्धत चन्द्रोदयेनेव जलधिः कलकलमुखरो राजसूनोर्जन्ममहोत्सवः। पार्थिवस्तु तनयाननदर्शनमहोत्सवहृतहृदयोऽपि दिवसवशेन मौहूर्तिकगणोपदिष्टे प्रशस्ते मुहूर्ते निवारितनिखिलपरिजनः

दायो यस्मिन् स । **विस्फार्येति** । विस्फार्यमाणो वृद्धिं प्राप्यमाणो योऽन्त पुरजनानामाभरणझङ्कारोऽलकारनिनादस्तेन मनोहरो हृदयहारी। **पूर्णेति**। उत्सवेषु सुहृद्भिर्यद्बलादाकृष्य गृह्यते तत्पूर्णपात्र तस्याहरण ग्रहण तेन विलुप्यमानानि गृह्यमाणानि बलादाकृष्यमाणानि वसनभूषणानि यस्मिन् स । सक्षोभित क्षोभ प्रापित नगर येन स तथा। **अनन्तरं चेति** । अनन्तर सुतोत्पत्त्यनन्तरमुत्सवकोलाहलेन हर्षस्य निर्भरोऽतिशयो यास्वेवविधा प्रजा ननृतुर्नृत्य चक्रुरित्यन्वय । प्रजा विशिनष्टि—**ससामन्ता इति**। सामन्ता स्वदेशपार्श्ववर्तिनो राजानस्तै सहवर्तमाना, सान्त पुरा अन्त पुरेण सहिता, सप्रकृतय प्रकृति पौरलोकस्तया सहवर्तमाना, सराजलोका राजलोको नृपसबन्धिजनस्तेन सहिता, सवेश्यायुवतयो वेश्यायुवतिभिर्वाराङ्गनास्त्रीभिरुपेता. सबालवृद्धा बालवृद्धै सहिता । **आगोपालमिति** । आगोपाल बल्लव मर्यादीकृत्य यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । क इव । उन्मत्ता इव क्षीबा इव । उत्सवकोलाहलेन किं कुर्वता । आपूरयता पूर्णीकुर्वता । किम् । त्रिभुवनं त्रिविष्टपम् । उत्सवकोलाहल विशिनष्टि—**मन्दरेति** । मन्दरेण मेरुणा मथ्यमानो विलोड्यमानो यो जलधि क्षीराब्धिस्तस्य घोषस्तद्वद्गम्भीरो यो मृदुमृदङ्गो मुरज, शङ्ख कम्बु, काहलो वाद्यविशेष, आनको दुन्दुभि तेषा निवह समूहस्तेन निर्भरेण । पूर्णेन । मङ्गलार्थं वाद्यते य स मङ्गलपटहश्चर्मवाद्य तस्य य पटुरव स्पष्ट. शब्दस्तेन सवर्धितेन वृद्धिं प्रापितेन, अनेके ये जनास्तेषा सहस्र तस्य य कलकल कोलाहलस्तेन बहुलेन इढेन अधिकीभूतेनेत्यर्थ । **प्रतीति** । प्रतिदिन प्रत्यह राजसूनोर्नृपात्मजस्य जन्ममहोत्सवो जनिक्षणोऽवर्धत वृद्धिं प्राप । केनेव चन्द्रोदयेन कुमुदबान्धवोद्गमनेन जलधिरिव समुद्र इव । कीदृग्जन्ममहोत्सव । कलकलेन कोलाहलेन मुखरो वाचाल । तदनन्तर नृपतिर्यच्चकार तदाह—**पार्थिवस्त्विति** । पार्थिवो राजापि सूतिकागृहमरिष्टगृहमदर्शदिति दूरेणान्वय । अथ

हुआ था (बढ गया था), मांगलिक पटहों की तेज आवाजों से बढ़ गया था, अनेक सहस्र व्यक्तियों की कल कल ध्वनि से अधिक बढ गया था तथा सारे ससार के रिक्त स्थानों में भरा जा रहा था। जैसे समुद्र; चन्द्रमा के उदय होने पर, गड़गड़ाती मर्मर ध्वनि करता हुआ प्रति दिन बढ़ जाता है वैसे ही राजपुत्र के जन्म के समय हुआ वह कोलाहल (स्वाभाविक) शोर से गूंजता हुआ प्रतिदिन बढ़ता रहा।

परन्तु राजा ने पुत्र दर्शन के (उत्सुकता पूर्वक पूर्वानुमानित) महान् हर्ष से खिंचे हुए हृदय वाले होते हुए भी शुभ दिन अथवा शुभ समय के अनुरोध से (अपने) ज्योतिषियों द्वारा बताये गये शुभ क्षण में, सारे सेवकों को छुट्टी देकर अकेले शुकनास के साथ जाकर

शुकनासद्वितीयो मणिमयमङ्गलकलशयुगलाशून्येनासक्तबहुपुत्रिकालंकृतेन विविधनवपल्लवनिवहनिरन्तरनिचितेन सनिहितकनकमयहलमुसलयुगेन विरलग्रथितसितकुसुममिश्रदूर्वाप्रवालमालालंकृतेनावलम्बिताविकलव्याघ्रचर्मणा वन्दनमालिकान्तरालघटितघण्टागणेन द्वारेण विराजमानम्, उभयतश्च द्वारपक्षकयोर्मर्यादानिपुणेन गोमयमयीभिरुत्तानविनिहतवराटकदन्तुराभिरन्तरान्तराबद्धविविधवर्णरागरुचिरकूर्पासकुसुमलेशला-

---

राजान विशिनष्टि—तनयेति । तनय. सुतस्तस्यानन मुख तस्य दर्शनेनावलोकनेन यो महोत्सवस्तेन हृतं गृहीतं हृदय चित्त यस्यैवभूतोऽपि । कदा ददर्शेत्यत आह—दिवेति । दिवसवशेन । शुभदिनानुसारेणेत्यर्थ. । मौहूर्तिकाणां ज्योतिर्विदा गणस्तेनोपदिष्टे प्रशस्त उत्कटफलसूचके मुहूर्ते । निवारितो दूरीकृतो निखिल समग्र परिजनः परिच्छदो येनेति राज्ञो विशेषणम् । शुकनास एव द्वितीयो यस्य स तथा । गृह विशेषयन्नाह—द्वारेति । द्वारेण प्रतीहारेण विराजमानं शोभमानम् । द्वार विशेषयन्नाह—मणीति । मणिमय रत्नमय यन्मङ्गलकलशयुगल तेनाशून्येन । सर्वदा तत्संयुक्तेनेत्यर्थ । पुत्रवत्या महाद्वारोपरि मणिमयकलशारोपण क्रियत इति राजस्थिति. । आसक्ता सश्लिष्टा बहुपुत्रिका मषीलिखितास्ताभिरलंकृतमिति गृहविशेषणम् । यस्मिन्गृहे प्रसूतिर्जायते तद्द्वारदेशे क्रमव्युत्क्रमाभ्यां मषीलिखिते सश्लिष्टे पुत्रिके क्रियेते इति वृद्धाचार । केचित्तु बहुपुत्रिकानाम श्लक्ष्णफलैरुपेतो विटपिविशेष कथ्यते । शतावरीत्यन्ये । विविधा भिन्नभिन्नजातीया ये नवपल्लवा नवकिसलयास्तेषां निवह समूहस्तेन निरन्तर नित्य निचितेन व्याप्तेन । सनिहितानि समीपवर्तीनि कनकमयानि सुवर्णमयानि हलं सीरम्, मुसलमयोग्रम्, युगमीशान्तबन्धनम्, एतानि यस्मिन् । अय च राज्ञां गृहे कचिद्देशाचार । हलमुसलयोर्युगमिति समासो वा । विरलेति । विरलानि ग्रथितान्यन्तरान्तरा गुम्फितानि यानि सितकुसुमानि श्वेतपुष्पाणि तैर्मिश्रा सपृक्ता या दूर्वा बहुप्ररोहा तस्या प्रवालमालया पल्लवश्रेण्यालकृत भूषित तेन । अवेति । अवलम्बितमविकलं सपूर्ण व्याघ्रचर्म श्वेतपिङ्गलकृत्तिर्यैस्तिस्तथा तेन । वन्दनेति । मङ्गल्य पुष्पदाम वन्दनमालिका । 'तोरणार्थे तु मङ्गल्य दाम वन्दनमालिका' इत्यभि

प्रसूतिगृह को देखा। सूतिकागृह एक ऐसे (प्रवेश) द्वार से शोभि तथा जिस पर, दो मणि जटित (जल से भरे) मागलिक कलश सजित थे, उस पर (स्याही से) चित्रित गुडियों जैसी आकृतियों (देवताओं की प्रतिमाओं) से उसको सजाया हुआ था, (वृक्षों के) विविध प्रकार के नये पत्तों के समूह उस पर घने गुथे हुए थे, उसके समीप सुवर्ण निर्मित हल, मूसल, और जूआ रखे हुए थे (अथवा दो मूसल रखे हुए थे); (उसके भीतर) अन्तर छोड़ छोड़ कर (विरल) गुथे हुए श्वेत पुष्पों से मिली दूब के पत्तों की माला से वह सुशोभित था, वाघ्र की पूरी-की-पूरी खाल उस पर लटकायी हुई थी और इस प्रकार लटकायी हुई लम्बी वन्दन माला के मध्य-मध्य में, वहाँ, घंटियों की व्यवस्था कर दी गयी थी। सूतिकागृह के द्वार के दालान के दोनों पार्श्वों में कई प्रधान परिचारिकायें बैठी हुई थीं—वे उलटी रखी हुई कौड़ियों से ऊँची-नीची दिखायी देती, बीच-बीच में उन पर रखे हुए नाना रगों से रगे हुए मनोहर कपास के

ञ्छिताभिः कुसुम्भकेसरलवाश्लेषलोहिताभिर्लेखाभिरालिखितस्वस्तिकभक्तिजालमुपरचयता हारिद्रद्रावविच्छुरणपिञ्जरिताम्बरधारिणीं भगवतीं षष्ठीं देवीं कुर्वता विकचपक्षपुटविकटशिखण्डिपृष्ठमण्डलाधिरूढमालोललोहितपटघटितपताकमुल्लसितशक्तिदण्डप्रचण्डं कार्तिकेयं संघटयता विन्यस्तालक्तकपटलमध्यभागौ सूर्याचन्द्रमसावाबध्नता कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरीकृतामूर्ध्वप्रोतकनकमययवनिकरकण्टकितामविरललग्नगौरसिद्धार्थक-

---

धानचिन्तामणि.। तस्या अन्तराले मध्यविभागे घटितो रचितो घण्टागणो यस्मिन्स तेन। पुनस्तमेव विशेषयन्नाह—उभयतश्चेति। पुरन्ध्रिवर्गेण। 'पुरन्ध्री सुचरित्रा' इत्यमर.। समधिष्ठितमध्यमिति दूरेणान्वय.। किं कुर्वता। पुरंध्रिवर्गेण। आलिखितो लिपीकृत स्वस्तिक. प्रसिद्धो यस्मिन्नेवभूत भक्तिजाल रचनासमूहमुपरचयता कुर्वता। कयो। द्वारपक्षकयो। उभयत उभयपार्श्वयो। 'पक्षद्वारं तु पक्षकम्' इति कोश। कीदृशेन। मर्यादानिपुणेन मर्यादा स्थितिस्तत्र निपुणेनाभिज्ञेनेति पुरन्ध्रिवर्गस्य विशेषणम्। काभि। लेखाभिर्वर्तिभि। अथ लेखा विशेषयन्नाह—गोमयेति। गोमय छगण तन्मयीभि.। उत्तानेति। उत्तानमूर्ध्वमुख विनिहिता स्थापिता ये वराटका कपर्दकास्तैर्दन्तुराभिर्विषमोन्नताभि अन्तरान्तरा मध्येमध्य आबद्धा नियमिता विविधवर्णा नीलपीतादिधातवस्तेषां रागेण रुचिर कूर्पासमेव कुसुम तस्य लेशाश्छेदास्तैर्लाञ्छिताभिश्चिह्निताभि। कुसुम्भेति। कुसुम्भ कमलोत्तर तस्य केसरलवा किञ्जल्कखण्डास्तैराश्लेष. संबन्धस्तेन लोहिताभी रक्ताभि। पुन किं कुर्वता। सृजता। हरिद्रा रजनी तस्या द्रवो रसस्तस्य विच्छुरण प्रोक्षणं तेन पिञ्जरित पीतरक्ततां प्राप्त यदम्बर वस्त्र तद्धारिणीं भगवतीं षष्ठीं देवीम्। पुन' किं कुर्वता। सघटयता रचयता। कम्। उल्लसितावुल्लास प्राप्तौ यौ शक्तिदण्डौ तत्र शक्तिरायुधविशेष, दण्डो लगुड, ताभ्यां प्रचण्डो भीषणो य. कार्तिकेयो गुहस्तम्। तमेव विशेषयन्नाह—विकचेति। विकचपक्षपुटाभ्यां विस्तीर्णवाजपुटाभ्यां विकटो विपुलो य. शिखण्डी मयूरस्तस्य पृष्ठमण्डल तत्राधिरूढमुपविष्टम्। आलोलाश्चञ्चला लोहितपटघटिता रक्तवस्त्रनिर्मिता पताका वैजयन्त्यो यस्मिन्स तम्। पुन' किं कुर्वता। आबध्नता बन्धनविषयीकुर्वता। कौ। सूर्याचन्द्रमसौ। पुष्पदन्तौ। देवताद्वन्द्वत्वात्पूर्वपदस्य दीर्घता। तौ विशेषयन्नाह—

पुष्पों के टुकड़ों से सुशोभित, कुसुम्भ के (लाल) तन्तुओं से सम्बन्ध के कारण लाल दिखायी देतीं गोबर की रेखाओं से स्वस्तिक की आकृतियों की रचनाएँ कर रही थीं, वे हल्दी के द्रव को बीच-बीच में बिखेर कर पीले रंगे वस्त्रों को पहने हुई षष्ठी देवता (की प्रतिमा) बना रही थीं, वे अपने पूरे फैलाये पखों से भयङ्कर दिखाई देते, मयूर की विस्तृत पीठ पर (बैठाये गये) एक फहराते लाल वस्त्र से (उसकी) पताका बनाये गये और ऊपर उठायी 'शक्ति' (अस्त्र विशेष) से भयङ्कर प्रतीत होते कार्तिकेय की मूर्ति बना रही थीं, (उनके मध्यभाग पर) रखे हुए ढेर सारे अलक्तक से लाल किये मध्य भाग वाले सूर्य तथा चन्द्रमा (की आकृतियों) बना रही थीं, केसर के लेपसे गुलाबी रंगी हुई, उनमें पिरोये हुए सोने के बनाये यव समूह के कारण दानेदार बनी हुई, तथा सटाकर जड़े हुए लालपीले सरसोंके बीजों के समूह के कारण

प्रकारतया काञ्चनरसखचितामिव मृन्मयगुटिकाकदम्बमालां विन्यस्यता चन्दनजल-धवलितेषु भित्तिशिखरभागेषु पञ्चरागविचित्रचेलचीरकलापचिह्नमापीतपिष्टपङ्काङ्किता वर्धमानपरम्परामन्यानि च सूतिकागृहमण्डनमङ्गलानि संपादयता पुरंध्रिवर्गेण समधिष्ठितम्, उपद्वारसंयतविविधगन्धकुसुममालालङ्कृतजरच्छागम्, अखिलव्रीहिमध्यावस्थापितार्यवृद्धाध्यासितशयनीयशिरोभागम्, अनवरतदह्यमानाज्यमिश्रभुजगनिर्मो-

---

विन्यस्तेति। विन्यस्त रचित यदलक्तकपटल तेन पाटलौ श्वेतरक्तौ मध्यभागौ ययोस्तौ। पुनः किं कुर्वता। विन्यस्यता स्थापयता। काम्। मृन्मयगुटिकाकदम्बमाला मृन्मय्यो मृत्तिकाभिर्निष्पन्ना या गुटिका गुलिकास्तासां कदम्ब समूहस्तस्य माला स्रक्ताम्। मालां विशेषयन्नाह—कुङ्कुमेति। कुङ्कुमस्य केशरस्य य पङ्कस्तेन पिञ्जरीकृतां पीतरक्तीकृताम्। ऊर्ध्वप्रोता स्यूता ये कनकमयथवा सुवर्णद्वयप्रियास्तेषां निकर समूहस्तेन कण्टकितां सजातकण्टकाम्। अविरल निबिड लग्नाः सबद्धा ये गौरसिद्धार्थका गौरसर्षपास्तेषां प्रकारस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतया। काञ्चनस्य सुवर्णस्य यो रसस्तेन खचितामिव संबद्धामिव। अनेन सुवर्णसर्षपयो साम्य प्रदर्शितम्। चन्दनेति। चन्दन मलयज तस्य जल द्रवस्तेन धवलितेषु शुभ्रीकृतेषु भित्तिशिखरभागेषु कुड्यप्रान्तप्रदेशेषु वर्धमानपरपरां शरावश्रेणीमन्यानि च सूतिकागृहमरिष्टगृह तस्य मण्डनमङ्गलानि शोभाकारिरचनाविशेषास्तानि सपादयता निष्पादयता वर्धमानपरम्परां विशेषयन्नाह—पञ्चेति। पञ्चरागैर्विचित्रा ये चेलचीरा वस्त्रखण्डास्तेषां कलाप समूह स एव चिह्न यस्या सा ताम्। आ ईषत्पीतो य पिष्टपङ्कस्तेनाङ्कितां चिह्निताम्। पुन प्रकारान्तरेण गृह विशिनष्टि—उपेति। उपद्वारे द्वारसमीपे सयता बद्धा विविधो गन्धो यास्वेवंविधा कुसुममाला पुष्पस्रजस्ताभिरलङ्कृतो भूषितो जरच्छागो वृद्धोऽजो यस्मिंस्तत्। अखिलेति। 'क्षेत्राद्यप्रहित खिलम्' इति कोश। न विद्यते खिल येषा तेऽखिलाः क्षेत्रोत्पन्ना ये व्रीहयो धान्यानि तन्मध्येऽवस्थापिता यार्यवृद्धा तयाध्यासितः शयनीयशिरोभागो यस्मिन्। 'आयुर्वृद्ध' इति पाठ आयुर्वृद्धा गोमयपुत्तलिका। शेष पूर्ववत्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तर दह्यमान प्रज्वल्यमान आज्येन सर्पिषा मिश्र सयुक्तो भुजगस्य सर्पस्य निर्मोक

पिघले हुए सोने से जड़ी हुई सी प्रतीत होती मिट्टी की बनायी हुई गोलियों के समूह से बनायी माला को (पृथ्वी पर) रख रही थीं, और वे (पहले) चन्दन जल से धोकर श्वेत की हुई दीवारों के शिखर तलों पर पाँच मुख्य रगों (अर्थात् श्वेत, कृष्ण, लाल, हरा और पीला) से रगे वस्त्रों के अनेक टुकड़ों को चिन्ह रूप में धारण किये हुई तथा कुछ-कुछ पीले पीसे हुए चावल के लेप से चिन्हित शरावों की पक्ति की तथा दूसरी सूतिका गृहकी मॉगलिक सजावट कर रही थीं। सूतिका गृह के द्वार के समीप विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से सजाया हुआ एक बूढा बकरा बाँधा हुआ था, सूतिका गृह की शय्या के सिराहने की भूमि पर बिना टूटे चावलों के (मण्डल के) मध्य में एक आर्य वृद्धा को बिठा दिया गया था, वहाँ पर घी में मिलाया हुआ साँप की केंचुली और मेढे के सींग का चूर्ण निरन्तर जलाया जा रहा

कमेषविषाणक्षोदम्, अनलप्लुष्यमाणारिष्टतरुपल्लवोल्लसितरक्षाधूमगन्धम्, अध्ययनमुखरद्विजगणविप्रकीर्यमाणशान्त्युदकलवम्, अभिनवलिखितमातृपटपूजाव्यग्रधात्रीजनम्, अनेकवृद्धाङ्गनारब्धसूतिकामङ्गलगीतिकामनोहरम्, उपपाद्यमानस्वस्त्ययनम्, क्रियमाणशिशुरक्षाबलिविधानम्, आबध्यमानधवलकुसुमदामशतम्, अविच्छिन्नपठ्यमाननारायणनामसहस्रम्, अमलहाटकयष्टिप्रतिष्ठापितैरन्त शुभशतानीव निश्चलशिखैर्ध्यायद्भिर्मङ्गलप्रदीपैरुद्भासितम्, उत्खातासिलतासनाथपाणिभिः सर्वतो रक्षापुरुषैः परिवृतं सूतिकागृहमदर्शत्।

कञ्चुक, मेषस्योरणस्य विषाण शृङ्ग तयो क्षोदश्चूर्ण यस्मिन्। अनलेति। अनलेन वह्निना प्लुष्यमाणा दह्यमाना येऽरिष्टतरुपल्लवा निम्बवृक्षकिसलयास्तेषामुल्लसितो विकसितो रक्षार्थं धूमगन्धो यस्मिन्। अध्ययनेति। अध्ययनेन मुखरा वाचाला ये द्विजगणा विप्रसमूहास्तैर्विप्रकीर्यमाणा इतस्ततो विक्षिप्यमाणा शान्त्यर्थमुदकलवाः पानीयपृषता यस्मिन्। अभिनवेति। अभिनवो नूतनो लिखितो यो मातृणा पटो मातरो बालरक्षाकारिण्यो देव्यो यस्मिन्पटे लिख्यन्ते तस्य पूजाया व्यग्रो धात्रीजनो यस्मिन्। सूतिकेति। सूतिकामुद्दिश्य अनेकवृद्धाङ्गनाभिर्जरस्त्रीभिरारब्धा या सूतिकामङ्गलगीतिका तया मनोहरम्। उपपाद्यमान क्रियमाण स्वस्त्ययनमरिष्टनिवृत्त्युपायो यस्मिन्क्रियते, क्रियमाण विधीयमाण शिशोर्बालस्य रक्षार्थं बलिविधान यस्मिन्। आबध्येति। आबध्यमान धवलकुसुमाना श्वेतपुष्पाणां दामशत स्रक्शतं यस्मिन्। अवीति। अविच्छिन्न निरन्तर पठ्यमान नारायणस्य कृष्णस्य नामसहस्र यस्मिन्। अमलेति। अमल निर्मल यद्धाटक सुवर्ण तस्य यष्टयो दण्डास्तेषु प्रतिष्ठापितै सम्यक्तया स्थापितै। निश्चलेति। निश्चला अकम्प्रा शिखार्चिर्येषां ते तथा तै.। अतएवान्तर्मध्ये शुभशतानि ध्यायद्भिरिव। एवंविधैर्मङ्गलप्रदीपैरुद्भासित शोभितम्। उत्खातेति। उत्खाता कोशाद्बहि

था, वहाँ अग्नि में झुलसते हुए नीम के वृक्षों के पत्तों से निकले रक्षक धूम की गन्ध समायी हुई थी, (ऊँचे स्वर मे) (वेद) पाठ करते अनेक ब्राह्मण वहाँ पवित्र जल की बूँदे बखेर रहे थे, दाइयाँ, अभी-अभी चित्रित पवित्र माताओ की आकृतियों वाले वस्त्र की पूजा मे व्यस्त थीं, बहुत सी वृद्धा स्त्रियो द्वारा आरम्भ किये प्रसूति (समय के लिये उपयुक्त) गीतो से वह गृह आकर्षक बना हुआ था, वहाँ स्वस्त्ययन किया जा रहा था (वैदिक मन्त्रों से आशीर्वाद दिये जा रहे थे), शिशुरक्षा के लिये बलि (उपहार भेट करने) के विधान सम्पादित किये जा रहे थे, श्वेत फूलों की सैकड़ों बन्दनवारें बाँधी जा रही थीं, विष्णु के 'नाम सहस्र' का निरन्तर पाठ किया जा रहा था, वह सूतिकागृह शुद्ध सोने की (जमीन में गाड़ी हुई) छड़ियों (के सिरों) पर रखे हुए, न हिलती ज्वालाओं को धारण किये हुए होने के कारण मन ही मन (बालक के सम्बन्ध में) सैकड़ों मांगलिक बातों का ध्यान करने से प्रतीत होते दीपकों से जगमगा रहा था, (म्यान से) निकाली हुई नगी तलवारें हाथ में लिये हुए रक्षकों से चारों ओर से घिरा हुआ था।

अम्भः पावकं च स्पृष्ट्वा विवेश। प्रविश्य च प्रसवपरिक्षामपाण्डुमूर्तेरुत्सङ्गगतं विलासवत्याः, स्वप्रभासमुदयोपहतगर्भगृहप्रदीपप्रभम्, अपरित्यक्तगर्भरागत्वादुदयपरिपाटलमण्डलमिव सवितारम्, अपरसंध्यालोहितबिम्बमिव चन्द्रमसम्, अनुपजातकाठिन्यमिव कल्पतरुपल्लवम्, उत्फुल्लमिव रक्तारविन्दराशिम्, अवनिदर्शनावतीर्णमिव लोहिताङ्गम्, विद्रुमकिसलयदलैरिव बालातपच्छेदैरिव पद्मरागरश्मिभिरिव रचितावयवम्, अनभिव्यक्तमुखपङ्कमिव महासेनम्, सुरवनिताकरपरिभ्रष्टमिवामरपतिकुमारकम्, उत्तप्तकल्याणकार्तस्वर-

कर्षिता असिलता खड्गलतास्ताभि सनाथा. सहिता. पाणयो हस्ता येषामेवविधै सर्वतश्चतुर्दिक्षु रक्षापुरुषै रक्षार्थं नियुक्तसुभटै परिवृत परिवेष्टितम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

अम्भ इति। अम्भो जल पावक वह्निं च स्पृष्ट्वा तत्स्पर्शं विधाय विवेश गृहे प्रवेश कृतवान्। बालकनिरीक्षणे दृष्टिदोषनिवारकमेतत्। प्रविश्येति। प्रविश्य प्रवेश कृत्वात्मज ददर्शेत्यन्वय। अथात्मज विशेषयन्नाह— प्रसवेति। प्रसवेन वैजननेन परिक्षामा कृशा पाण्ड्वी च मूर्तिं शरीर यस्या एवविधाया विलासवत्या उत्सङ्ग क्रोडस्तत्र गतं प्राप्तम्। स्वेति। स्वकीयप्रभाया. कान्त्या' समुदयेन समूहेनोपहता दूर ध्वस्ता गर्भगृहस्य सूतिकागृहस्य प्रदीपप्रभा गृहमणिकान्तिर्येन स तम्। अपरित्यक्तो यो गर्भस्य रागो रक्तिमा तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्। उदयेनोद्गमनेन परिपाटल श्वेतरक्त मण्डलं यस्यैवभूत सवितार सूर्यमिव। अपरसध्या पश्चिमसायकालस्तयालोहितमा ईषद्रक्त बिम्ब यस्यैवभूत चन्द्रमसं निशानाथमिव। अनुपेति। अनुपजातमनुत्पन्न काठिन्यं जरठता यस्मिन्नेवभूत कल्पतरुपल्लवमिव पारिजातकिसलयमिव। उत्फुल्लं विकसितं रक्तारविन्दराशिमिव कोकनदसमूहमिव लोहिताङ्ग मङ्गलमवनिदर्शन पृथिव्या

राजा (उस सूतिका गृह में) जल तथा अग्नि को छू कर प्रविष्ट हुआ। और प्रविष्ट होकर उसने प्रसव के कारण दुर्बल तथा पीले हुए शरीर वाली विलासवती की गोद मे (अपनी) प्रसन्नता के कारणभूत अपने पुत्र को देखा। उस पुत्रको देखा जिसने अपनी काति की चकाचौध से प्रसूतिका गृहस्थित दीपकों की काति को मन्द कर रखा था, (अपने स्वाभाविक) गर्भ रग को न छोड़ने के कारण जो उदय (होने के) समय में लाल मण्डल वाला सूर्य-सा प्रतीत हो रहा था, अथवा पश्चिमी सन्ध्या के समय (सायकाल मे) लाल मण्डल वाला चन्द्रमा-सरीखा था, अथवा कल्पतरु के उस पत्ता सरीखा था कि जिसमें कठोरता (अर्थात् बढ जाने पर हुई हरीतिमा) अभी उत्पन्न नहीं हुई थी, अथवा खिले हुए लाल कमलों का ढेर-सरीखा था, अथवा (अपनी माता) पृथ्वी के दर्शनार्थ पृथ्वी पर उतर कर आया लाल शरीर वाला—मगल-ही था, ऐसा प्रतीत होता था कि उसके अग मानो मूँग की टहनियों के टुकड़ों से अथवा प्रात कालीन धूपकी पपड़ियों से अथवा पद्मरागमणियों की किरणों से बनाये गये हों, (शेष) पाँच मुख जिसके स्पष्ट प्रकट नहीं हुए हों ऐसा (षण्मुख) कार्तिकेय सरीखा (दुर्जय) था, किसी सुरस्त्री के हाथ से (जमीन पर) गिरा इन्द्र का पुत्र (जयन्त) सरीखा लग रहा था, तपाये हुए शुद्ध सोने की चमक सरीखे अपने शरीर की चमक

भास्वरया स्वदेहप्रभया पूरयन्तमिव वासभवनम्, उद्भासमानैः सहजभूषणैरिव महापुरुषलक्षणैरुपेतम्, आगामिकालपालनप्रहृष्टयेव श्रिया समालिङ्गितम्, आह्लादहेतुमात्मजं ददर्श। विगतनिमेषनिश्चलपक्ष्मणा च मुहुर्मुहुः प्रमृष्टसंघटितानन्दबाष्पपटलप्लुततारकेण दूरविस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव मनोरथसहस्रप्राप्तदर्शनं सस्पृहं निरीक्षमाणस्तनयाननं मुमुदे। कृतकृत्यं चात्मानं मेने। सम्भ्रममनो-

---

मवलोकनं तदर्थमवतीर्णमागतमिव। विद्रुमेत्यादि। विद्रुमाणां हेमकन्दलानां यानि किसलयदलानि तैरिव बालातपस्य नवीनातपस्य छेदैः खण्डैरिव पद्मरागो लोहितमणिस्तस्य रश्मिभिरिव रचिता निष्पादिता अवयवा अपघना यस्य स तम्। अनेति। अनभिव्यक्तमप्रकटितं मुखपद्मकं तस्यैवभूतं महासेनं कार्तिकेयमिव। सुरेति। सुरवनिता देवयोषितस्तासां कराद्धस्तात्परिभ्रष्टममरपतिरिन्द्रस्तस्य कुमारकं बालमिव। उत्तप्तं तापितं यत्कल्याणकारि कार्तस्वरं तद्वद्भास्वरया दीप्यमानया स्वदेहप्रभया स्वशरीरकान्त्या वासभवनं पूरयन्तमिव परिपूर्णीकुर्वन्तमिव। उद्भासेति। उद्भासमानैः सहजभूषणैरिव स्वाभाविकालंकारैरिव महापुरुषाश्चक्रवर्त्यादयस्तेषां लक्षणैश्चिह्नैरुपेतं सहितम्। आगामीति। आगामिकाले भविष्यत्काले यत्पालनं रक्षणं तस्मात्प्रहृष्टया हर्षितयेव श्रिया लक्ष्म्या समालिङ्गितमुपगूहितम्। आह्लादस्य प्रमोदस्य हेतुं कारणम् अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। विगतेति। स राजा चक्षुषा तनयाननं निरीक्षमाणो मुमुदे संतोषमवाप। अथ चक्षुर्विशेषयन्नाह—विगतो निमेषो यस्मात्तत एव निश्चलं स्थिरं पक्ष्म यस्य तत्तेन मुहुर्मुहुर्वारंवारं प्रमृष्टः प्रमार्जितः संघटितः प्रादुर्भूतो य आनन्दबाष्पः प्रमोदाश्रु तस्य पटलं तेन प्लुता क्लिन्ना तारका कनीनिका यस्मिंस्तत्तेन दूरमत्यर्थं विस्फारितेन विस्तारितेन स्निग्धेन चिक्कणेन। एतेनानन्दस्वरूपरसाभिव्यक्तिः सूचिता। पिबन्निव। अत्यादरेणावलोकनं पानमुच्यते। आलपन्निवालापं कुर्वन्निव। स्पृशन्निव स्पर्शं कुर्वन्निव। मन इति। मनोरथानां वाञ्छितानां यत्सहस्रं तेन प्राप्तं दर्शनं यस्य स तम्। सस्पृहं स्पृहासंयुक्तं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। कृतेति। आत्मानं च कृतकृत्यं कृतार्थं मेने ज्ञातवान्। शुकनासस्तु सम्भ्रम-

---

से उस शयन-गृह को मानो आप्लावित कर रहा था, चमकते हुए अपने स्वाभाविक आभूषणों–सरीखे महापुरुष के (द्योतक) चिन्हों से युक्त था और भविष्य में (उस द्वारा मेरा पालन होगा) होने वाले पालन से प्रसन्न लक्ष्मी द्वारा समालिंगित (अर्थात् सुन्दर प्रतीत होरहा) था। राजा अपने पुत्र के उस मुख को, जिसका कि दर्शन उसको सहस्रों मनोरथों के पश्चात् प्राप्त हुआ था, लालसा से देखता हुआ प्रसन्न हो गया, उसने झपकना छोड़ने से स्थिर हुई पलकों वाली, बार-बार पूँछे हुए तथा फिर इकट्ठे हो गये आनन्दाश्रुओं की धारा से आप्लावित, अपनी स्नेह भरी, तथा भली भाँति खोली हुई आँखों से मानो उसको पीते हुए अथवा उससे बात करते हुए अथवा उसे छूते हुए टकटकी लगा कर देखा। और उसने अपने को कृत्यकृत्य समझा।

रथः शुकनासस्तु शनैः शनैरङ्गप्रत्यङ्गान्यस्य निरूपयन्प्रीतिविस्तारितलोचनं भूमिपालमवादीत्—'देव, पश्य पश्य। अस्य कुमारस्य गर्भसंपीडनवशादस्फुटावयवशोभस्यापि माहात्म्यमाविर्भावयन्ति चक्रवर्तिचिह्नानि। तथाहि। अस्य सध्याशुकरक्तबालशशिकलाकारे ललाटपट्टे नलिननालभङ्गतन्तुतन्वीयमूर्णा परिस्फुरति। एतद्विकचपुण्डरीकधवलं कर्णान्तायतं मुहुर्मुहुरुन्मिषितैर्धवलयतीव वासभवनमरालपक्ष्म लोचनयुगलम्। विजृम्भमाणकमलकोशपरिमलमनोहरमियमस्य सहजमाननामोदमाजिघ्रतीव दूरायता कनकलेखेव नासिका। रक्तोत्पलकलिकाकारमुद्वहतीव चास्याधररुचकम्।

सपन्नो मनोरथो यस्यैवभूत शनै शनैरस्य कुमारस्याङ्ग शरीर प्रत्यङ्गानि हस्तपादादीनि निरूपयन्विलोकयन्। प्रीतीति। प्रीत्या स्नेहेन विस्तारिते लोचने नेत्रे येनैवभूत भूमिपालं नृपतिमवादीदभ्यधात्। देवेति। हे देव हे स्वामिन्, पश्य पश्य विलोकय विलोकय अस्य कुमारस्य गर्भे यत्संपीडन तद्वशादस्फुटानामव्यक्तानामवयवानामपघनाना शोभा यस्यैवभूतस्यापि चक्रवर्ती सार्वभौमस्तद्वच्चिह्नानि सामुद्रिकशास्त्रोक्तानि माहात्म्य महापुरुषत्वमाविर्भावयन्ति प्रकटीकुर्वन्ति। तदेव दर्शयन्नाह—तथा हीति। 'अस्य' इत्यारभ्य 'रुदत. श्रूयते' पर्यन्तं प्रघट्टक। सध्यांशव एव सध्याशुका। स्वार्थे क.। तै रक्ता लोहिता या बालशशिन प्रतिपच्चन्द्रस्य कला तस्या आकार आकृतिर्यस्यैवविधे ललाटपट्टे भालस्थले नलिननाल मृणालं तस्य भङ्गाच्छेदाद्यदन्तस्तन्तुर्नि सरति तद्वत्तन्वी सूक्ष्मा इय ऊर्णा रोमपद्धति परिस्फुरति। एतल्लक्षणद्वय चक्रवर्तिन. स्यादिति भाव। अराल वक्र पक्ष्म नेत्ररोम यस्मिन्नेवभूतमेतल्लोचनयुगल मुहुर्मुहुरुन्मिषितैर्निमेषैर्वासभवन धवलयतीव शुभ्रीकरोतीव। कीदृशम्। विकच यत्पुण्डरीक सिताम्भोज तद्वद्धवलम्। कर्णान्त यावदायत विस्तृतम्। विजृम्भेति। विजृम्भमाण. सर्वत प्रसृतो य कमलकोशस्य परिमलस्तद्वन्मनोहरं चार्वस्याननामोद सहज स्वारसिक-

---

किन्तु शुकनास ने, जिसके मन की इच्छा (अब) पूर्ण हो चुकी थी, शिशु के प्रमुख तथा गौण सभी अगों को धीरे-धीरे ध्यान से देखते हुए और हर्ष से ऑंखें फैलाये हुए, राजा से कहा—"महाराज! देखिये तो, यद्यपि गर्भ मे इसके दब जाने के कारण इसके अवयवों की शोभा (अभी तक) पूर्णतया अप्रदर्शित ही है तथापि (इसके शरीर पर दृश्यमान) चक्रवर्ती (सम्राट्) के चिन्ह इसके बड़प्पन को प्रकट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, सन्ध्या की किरणों से लाल हुए नवीन चन्द्रमा की कला की आकृति वाले इसके विशाल मस्तक पर कमल की डण्डी को तोड़ने से निकले तन्तु के समान पतली यह ऊर्णा—दोनों भौहों के बीच पड़ा रोमावली का आवर्त—सुशोभित है। पूर्णतया विकसित श्वेत कमलों सी धवल, उसके कानों तक पहुँची हुई तथा वक्र (अराल) बरौनियों वाली इसकी दोनों आँखें बार बार खुलती हुई इस शयनगृह को मानों श्वेत कर रही हैं। इसकी यह दूरतक फैली (अर्थात् उसके होठों की ओर फैली हुई) सोने की रेखा-सी प्रतीत होती नाक खुलती हुई कमल कलियों की गन्ध से आकर्षक इसके मुख की स्वाभाविक सुगन्ध को सूँघती हुई सी प्रतीत होती है। और इसका यह रुचिर अधर लाल

रक्तोत्पलकलिकालोहिततलौ भगवतो विष्टरश्रवस इव शङ्खचक्रचिह्नौ प्रशस्तलेखालाञ्छितौ करौ। अभिनवकल्पतरुपल्लवकोमलं लेखामयैर्ध्वजरथतुरगातपत्रकमलैरलंकृतमनेकनरेन्द्रसहस्रचूडामणिचक्रचुम्बनोचितं चरणयुगलम्। एष च दुन्दुभेरिवातिगम्भीरः स्वरयोगोऽस्य रुदतः श्रूयते।' इत्येव कथयत्येव तस्मिन्ससम्भ्रमापसृतेन राजलोकेन द्वारिस्थितेन दत्तमार्गस्त्वरितगतिरागत्य प्रहर्षोद्गमपुलकिततनुः स्फारीभवल्लोचनो मङ्गलकनामा प्रहृष्टवदनः पुरुषः पादयोः प्रणम्य राजानं व्यजिज्ञपत्—'देव, दिष्ट्या वर्धसे।

मियं नासिका नासा जिघ्रतीव गन्धोपादानं करोतीव दूरमत्यर्थमुच्छ्रिता। केव। कनकलेखेव सुवर्णलेखेव। रक्तोत्पलं कोकनदं तस्य या कलिका तस्या आकारो यस्मिन्नेवंभूतमधररुचकमधरलक्षणं रुचकं मङ्गलद्रव्यं मणिविशेषो वोद्वहतीवोद्वहनं करोतीव। "रुचकं मङ्गलद्रव्ये बीजपूरे ससैन्धवे' इत्यनेकार्थः। चिह्नान्तरमाह—रक्तेति। रक्तोत्पलस्य कलिकावल्लोहितौ रक्तौ तलौ ययोस्तौ भगवतो माहात्म्यवतो विष्टरश्रवस इन्द्रस्येव शङ्खः कम्बुः, चक्रं प्रसिद्धम्, एतयोश्चिह्नं ययोरेतादृशौ करौ। इन्द्रस्यापि करौ शङ्खचक्रलाञ्छितौ भवतः। विष्णोरनुजत्वादिति भावः। करयोरेव द्वितीयं चिह्नमाह—प्रशस्तेति। प्रशस्ता लेखा रेखा तया लाञ्छितौ चिह्नितौ करौ हस्तौ। चरणयोरप्याह—अभिनवेति। अभिनवाः प्रत्यग्रा ये कल्पतरुपल्लवाः पारिजातकिसलयास्तद्वत्कोमलं मृदु। एकं लक्षणम्। पञ्चभिर्द्वितीयमाह—लेखेति। लेखामयैः रेखानिष्पन्नैः। ध्वजरथतुरगातपत्रकमलैरिति। ध्वजः पताका, रथः स्यन्दनः, तुरगो ययुः, आतपत्रं छत्रम्, कमलं नलिनम्, एतैरलंकृतं भूषितम्। वैभवमाह—अनेकेति। अनेके ये नरेन्द्रा राजानस्तेषां सहस्रं तस्य चूडामणीनां चक्रं समूहस्तेन चुम्बनं संश्लेषस्तत्रोचितं योग्यमेवंविधं चरणयुगलं पादद्वितयम्। चिह्नान्तरमाह—एष चेति। अस्य बालस्य रुदत एष समीपतरवर्ती। दुन्दुभेरिव। पटहस्येवातिगम्भीरोऽतिमन्द्रः स्वरयोगो ध्वनिसंबन्धः श्रूयत आकर्ण्यते। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेण कथयत्येवेति क्रियासगतेनैवकारेण सामा-

---

कमल की कली सा लाल है। लालकमल की कली-सरीखी गुलाबी हथेली वाले मांगलिक रेखाओं से चिन्हित तथा शंख एवं चक्र के चिन्हों से युक्त इसके हाथ, शंख तथा चक्र पकड़े हुए विष्णु के हाथों सरीखे प्रतीत होते हैं। कल्पवृक्ष की कोपलों से कोमल दोनों पाँव, रेखाओं से बनी पताका, रथ, अश्व, छतरी और कमल की आकृतियों से सुशोभित हैं और (इसलिये) (भविष्य में) सहस्रों (सामन्त) राजाओं की अनेक शिरोमणियों से चुम्बित होने योग्य हैं। और यह लीजिये, रोते हुए इसकी सुरीली वाणी दुन्दुभि के शब्द जैसी गम्भीर सुनायी दे रही है।"—

उस शुकनास के इतना कहते ही द्वार पर खड़े राजाओं ने शीघ्रता से एक ओर हटकर जिसको मार्ग प्रदान किया था उस शीघ्र चलकर आये मंगलक नामक (दूत) ने आकर पावों में झुक कर प्रणाम कर के राजा से निवेदन किया—उस मंगलक का शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया था, उसकी आँखें फैल गयी थीं और उसका चेहरा प्रसन्न था। उसने कहा—"महाराज!

प्रतिहतास्ते शत्रवः । चिरं जीव । जय पृथिवीम् । त्वत्प्रसादादत्रभवतः शुकनासस्यापि ज्येष्ठाया ब्राह्मण्या मनोरमाभिधानाया राम इव रेणुकाया तनयो जातः, श्रुत्वा देवः प्रमाणम्' इति ।

अथ नृपतिरमृतवृष्टिप्रतिममाकर्ण्य तद्वचनं प्रीतिविस्फारिताक्षः प्रत्यवदत्—'अहो कल्याणपरम्परा । सत्योऽयं लोकप्रवादो यद्विपद्विपदं सपत्सपदमनुबध्नातीति । सर्वथा समानसुखदुःखतां दर्शयता विधिनापि भवतेव वयमनुवर्तिताः' इत्यभिधाय

नाधिकरण्यमुच्यत इति । तस्मिञ्छुकनासे कथयत्येव ब्रुवत्येव मङ्गलकनामा पुरुषो राजानं पादयोश्चरणयो प्रणम्य व्यजिज्ञपद्विज्ञापनां चकार । मङ्गलकं विशेषयन्नाह—दत्तेति । दत्तो मार्गो यस्येति स तथा । केन । राजलोकेन राजसमूहेन । कीदृशेन । द्वारिस्थितेन प्रतीहारस्थितेन । पुन. कीदृशेन । ससंभ्रमात् (म) सत्वरमपसृतेन दूरीभूतेन । त्वरित शीघ्र गतिर्गमन यस्य स तथा । प्रहर्षेति । प्रहर्षोद्गमेन प्रमोदोद्गमेन पुलकिता कण्टकिता तनुर्यस्य स. स्फारीभवन्ती विस्तीर्णता प्राप्यमाणे लोचने यस्य स । प्रहृष्ट सहर्षं वदनं यस्य स. । देव स्वामिन् । त्व दिष्ट्या भाग्येन वर्धस एधसे । ते शत्रवः प्रतिहता क्षय प्राप्ताः चिर बहुकालं जीव प्राणिहि । पृथिवीं वसुधरां जय गृहाण । त्वत्प्रसादात्तव माहात्म्यादत्रभवत पूज्यस्य शुकनासस्यापि ज्येष्ठायां ब्राह्मण्याम् । इत्यनेन हर्षातिशय सूचित । 'शूद्राया त्वनौचित्यात्तत्रायं जायते स्वत ' इत्युक्तत्वात् । मनोरमेत्यभिधान नाम यस्या सा तस्याम् । कस्यां क इव । रेणुकायां तुलजायां राम इव परशुराम इव तनय पुत्रो जात समुत्पन्न । श्रुत्वेति । श्रुत्वा एतदाकर्ण्य देवो भवान्प्रमाणमिति यदाज्ञापयति देवस्तदेव कर्तव्यमिति भाव ।

अथेति । अथ एतदाकर्णनानन्तर नृपती राजामृतस्य पीयूषस्य या वृष्टिर्वर्षणं तत्प्रतिम तुल्य तद्वचनं मङ्गलकवच आकर्ण्य श्रुत्वा । प्रीतीति । प्रीत्या स्नेहेन विस्फारिते अक्षिणी येनेति बहुव्रीहि. । ततो क समासान्त क्त्वाट्टिलोप । प्रत्यवदत्प्रत्यवोचत् । अहो इत्याश्चर्ये । कल्याणपरम्परा श्रेय.सतति । अतो ज्ञायत इति । सत्योऽयमवितथोऽय लोकप्रवादो जनानां चिरंतनो वचनव्यापार इतिवाच्य दर्शयन्नाह—यदिति । यत् यस्माद्धेतोर्विपदं विपत्सम्पदं सम्पदनु-

---

बधाई हो ! आपके शत्रु नष्ट हो गये ! आपके शत्रु नष्ट हो गये ! आप चिरजीवी और ससारविजयी हों । आप की कृपा से, पूजनीय शुकनास जी की भी मनोरमा नाम की ज्येष्ठ ब्राह्मणी से पुत्र उत्पन्न हुआ है—ठीक ऐसे ही जैसे कि रेणुका से (जमदग्नि का) परशुराम पुत्र उत्पन्न हुआ था यह सुनकर महाराज जो आज्ञा दें वही किया जाय ।"

इसके पश्चात् (अपने लिये) अमृतवर्षा के समान उसके कथन को सुनकर राजा की आँखें हर्ष से फैल गयीं और उसने उत्तर दिया—"अहा ! अद्‌भुत है यह वरदान परम्परा ! (निश्चय ही) यह लोकप्रसिद्ध कहावत सत्य ही है कि विपत्ति के पश्चात् विपत्ति और सम्पत्ति के पश्चात् सम्पत्ति आती है । सब प्रकार से भाग्य ने भी अपने आप को (हम दोनों को) एक सी सुख अथवा दु ख की स्थिति को दिखाते हुए, तुम्हारी तरह ही मेरी (हमारी) सेवा की है ।'

प्रीतिविकसितमुखः सरभसमालिङ्गय विहसन्स्वयमेव शुकनासस्योत्तरीयं पूर्णपात्र जहार। तस्मै च प्रीतमनाः प्रियवचनानुरूप पुरुषायापरिमित पारितोषिकमादिदेश। उत्थाय च तथैव तेन चरणविकुट्टनकणितनूपुरसहस्रमुखरितदिगन्तरेण सरभसोत्क्षेपचालितमणिवलयावलीवाचालितभुजलतेनोर्ध्वीकृतैरुत्तानतलैः करपुटैरनिललुलितामाकाशकमलिनीमिव दर्शयता पर्यस्तमृदितकर्णपल्लवेन परस्पराङ्गदकोटिसघट्टदष्टपाटितो-

---

बध्नात्यनुगच्छति। सर्वथा सर्वप्रकारेण समान सुखदु ख ययोस्तयोर्भागस्तत्ता ता दर्शयता ज्ञापयता विधिनापि भवतेव वयमनुवर्तिता पुत्रोत्पत्तिभ्या निर्मिता यथा पुत्रप्राप्त्या मत्साम्यं तव, तथा भवतेव ममापि साम्यमिति भाव । इत्यभिधायेत्युक्त्वा प्रीत्याभ्यन्तरस्नेहेन विकसितं विमुद्र मुख यस्य स । सरभस वेगेनालिङ्गयोपगूहन कृत्वा विहसन्स्मित कुर्वन्स्वयमेवात्मनैव शुकनासस्योत्तरीय निवसन पूर्णपात्र पूर्व व्याख्यातस्वरूप जहार हृतवान्। तस्मै शुभशसिने पुरुषाय नराय प्रीतमना सतुष्टचित्त प्रियमिष्ट यद्वचन तस्यानुरूपं योग्यमपरिमित सख्यातीत पारितोषिक सतोषप्रयुक्तमादिदेशाज्ञां दत्तवान्। उत्थाय चेति। तथैव तेनैव प्रकारेण उत्थायोत्थान कृत्वा शुकनासभवन गत्वा द्विगुणतरमुत्सवमकारयत्कारयामासेति दूरेणान्वय । कीदृशो राजा। अन्त पुरिकाजनेनानुगम्यमानोऽनु पश्चात्तदनन्तर गन्तु योग्य इत्यर्थं। अथ चान्त पुरिकाजन विशेषयन्नाह—चरणेति। चरणाना पादाना प्रमोदातिरेकाद्यद्विकुट्टनमास्फालन तेन कणित शब्दित यन्नूपुरसहस्रं पादकटकसहस्र तेन मुखरित वाचालित दिगन्तर दिङ्मध्य येन स तेन। सरभसेति। सरभसेन वेगेन य उत्क्षेपो भुजानां तेन चालिता कम्पिता या मणिवलयावली रत्नकङ्कणश्रेणी तया वाचालिता मुखरिता भुजलता बाहुलता यस्य स तथा तेन हर्षवशादूर्ध्वीकृतैरुर्ध्वविहितैरुत्तानतलै संमुखतलैः करपुटैर्हस्तपुटैरनिललुलिता वायुना विलुठितामाकाशकमलिनीं व्योमपद्मिनीमिव दर्शयता प्रकाशयता। पर्यस्तेति। पर्यस्ता

यह कहते हुए स्नेह से प्रसन्न मुख राजा ने शुकनास का गाढ आलिङ्गन करके, हँसते हुए शुकनास का उत्तरीय वस्त्र अपने लिये उपहार के रूप मे छीन लिया। और प्रसन्न होकर उस सन्देश हर के लिए सुखद समाचार के (महत्त्व के) अनुरूप अपरिमित पारितोषिक देने की आज्ञा दी। और उठकर जैसी स्थिति में था वैसे ही, अपने अन्त पुर की सेविकाओं द्वारा (सेविका वर्ग से) अनुगम्यमान शुकनास के घर को गया और वहा जाकर उसने और अधिक दुगुना उत्सव करवाया। उस सेविका वर्ग के पैरों के (पृथिवी से) टकराने से बजे सहस्रों नूपुरों से दिशाओं के अन्तराल गूँज रहे थे, (उनकी भुजाओं की) आकस्मिक उछाल से परिवर्तित अनेक मणिजटित कङ्कणों के शब्द से उनकी लताओं सरीखी (कोमल) बाहुएँ गूँज रही थीं, यह परिजन वर्ग अपने जोड़े हुए ऊपर उठाये हुए हाथों से हथेलियों को ऊपर की ओर किये हुए, उस स्थान पर मानो वायु से हिलाये जाते आकाशीय कमल के पौधे को दिखा रहा था, उसके कानों पर (आभूषण के रूप में पहने हुए) पत्ते बिखर और कुचल गये थे, उसके रेशमी उत्तरीय वस्त्र एक दूसरे के अगदों की नोकों से हुई टक्करों के प्रहारों से फट गये थे, (पहने

त्तरीयांशुकेन श्रमजलधौताङ्गरागरञ्जितनवीनवाससा किंचिदवशिष्टतमालपत्रेण विलसद्वारविलासिनीहसितैरुन्निद्रकैरववनानुकारं प्रथयता सरभसवल्गनस्खलल्लोल-हारलतास्फालितकुचस्थलेन सिन्दूरतिलकलेखेन विप्रकीर्णपिष्टातकपांसुपुञ्जपिञ्जरित-केशपाशेन प्रनृत्तकलमूककुब्जकिरातवामनबधिरजडजनपुरःसरेणोत्तरीयांशुकग्रीवा-बद्धावकृष्टविडम्बितजरत्कञ्चुकिकदम्बकेन वीणावेणुमुरजकांस्यताललयानुगतेन कलम-

---

विक्षिप्ता मृदिताश्चूर्णिता कर्णपल्लवा येन स तथा तेन। परस्परेति। परस्परमन्योन्यमङ्गनानां बाहुवलयानां या कोटिरग्रभागस्तस्या संघट्टोऽभिघातस्तेनैव दृष्टमिव पाटितं छिन्नमुत्तरीयांशुकं यस्य स तेन। सघट्टवशाच्छ्रमजलेन धौतः क्षालितो योऽङ्गरागो विलेपनं तेन रञ्जितानि नवीन-वासांसि नव्यवस्त्राणि यस्य स तेन। किंचिदिति। किंचित् अवशिष्टं उर्वरितं तमालपत्रं यस्य स तेन। इतरेषां भूषणानां वस्त्राणां च समर्दवशाक्षिपतनमभूत्। तमालपत्रं तु महता क्लेशेन सौभाग्यमण्डलनिमित्तकत्वाद्व्यवस्थापितमिति भावः। विलसन्त्यो या वारविलासिन्यो वारयो-षितस्तासां हसितैर्हास्यैः। उन्निद्रेति। उन्निद्राणि विकसितानि यानि कैरववनानि तेषाम-नुकारं सादृश्यं प्रथयता विस्तारयता। सरभसेति। सरभसं सवेगं यद्वल्गनं परस्परमङ्गाना-मामोटनं तेन स्खलन्तीर्लोलाश्चपला या हारलता मुक्तावल्यस्ताभिरास्फालितमाहतं कुचस्थलं यस्य स तेन। सिन्दूरेति। सिन्दूरं नागजं तेन जनितं यत्तिलकं पुण्ड्रं तत्र श्रमवशाल्लुलिता लुठिता अलकलेखा यस्य स तेन। अत्र लेखाशब्देन ततिरुच्यते। तेन कियतामलकानां तत्रावस्थितिर्न तु सर्वेषामिति भावः। विप्रेति। विप्रकीर्णो विक्षिप्तो यः पिष्टातः एव पिष्टातकः। स्वार्थे कः। पटवासकस्तस्य पांसुपुञ्जो धूलिसमूहस्तेन पिञ्जरितं पीतरक्ततां प्राप्तं केशपाशो यस्य स तेन। प्रनृत्तेति। प्रनृत्ताः स्वयमेवारब्धताण्डवाः, कलाः मनोज्ञाः, मूकाः अस्फुटवाचः, कुब्जाः पूर्वोक्तलक्षणाः, किराताः स्वल्पतनवः, वामनाः पूर्वव्याख्याताः, बधिराः अकर्णाः, जडाः मूर्खाः, एवंविधा जनाः पुरःसरा अग्रगामिनो यस्य स तेन। उत्तरीयेति। उत्तरीयांशुकेन प्रच्छादनव-स्त्रेण ग्रीवायां कन्धरायां बद्धं सयमितमवकृष्टमाकृष्टमत एव विडम्बितं विडम्बनां प्रापितं जरत्कञ्चुकिकदम्बकं येन स तेन। वीणेति। वीणा वल्लकी, वेणुर्वंशः, मुरजो मृदङ्गः, कांस्यताल

हुए) नये वस्त्र शरीरों पर लगे और अब पसीने से धुले लेप से रंगे गये थे, उनके तिलक चिन्ह[1] थोड़े ही शेष रह गये थे। शेष भाग इसी प्रकार धुल गये थे, वे सेविकाएँ वेश्याओं की शोभायमान हँसियों द्वारा वहाँ पूर्ण विकसित श्वेत कमलों की क्यारियाँ सी लगा रही थीं, उनकी द्रुतगतियों के कारण सरक कर हिलते लम्बे हारों से उनके कुचस्थल टकरा रहे थे, उनके घुघराले बाल सिन्दूर तिलकों में चिपक गये थे, (उस समय वहाँ) बखेरे गये मुट्ठीभर पिष्टातक चूर्ण से उनके जूड़े पीले रंगे गये थे, उनके आगे नाचते हुए गूंगे, कुबड़े, छोटे कदों वाले, बौने, बहरे और मूर्खजन चल रहे थे। अपने रेशमी उत्तरीय वस्त्रों से (उनकी) गर्दनें बान्धकर तथा खींचते चलती हुई वे बूढ़े कञ्चुकियों के दल की हँसी उड़ा रही थीं, वे सारंगियों, बांसुरियों,

---

१ तमालपत्रं तिलके तापिच्छे पत्रकेऽपि च' इति हैम.।

धुरमुद्गायता हर्षनिर्भरतया मत्तेनेवोन्मत्तेनेव ग्रहगृहीतेनेवापगतवाच्यावाच्यविवेकेन नृत्तक्रीडाप्रसक्तेनान्तःपुरिकाजनेन प्रचलमणिकुण्डलाहतकपोलभित्तिना च विघूर्णमानकर्णोत्पलेनाधोविगलितविलोलशेखरेण दोलायमानवैकक्षककुसुममालेन निर्दयप्रहतभेरीमृदङ्गमर्दलपटहनिनादानुगतकाहलाशङ्खरवजनितरभसेन चरणसंनिपातैर्दारयतेव वसुधा राजपरिजनेन प्रवृत्तनृत्येन च चारणगणेन विविधमुखवाद्यकृतकोलाहलेन पठता गायता चानुगम्यमानः शुकनासभवन गत्वा द्विगुणतरमुत्सवमकारयत् ।

प्रसिद्धम्, एतेषां यो लयः साम्यावस्था तदनुगतेन कल मधुरं यथा स्यात्तथोद्गायता गान कुर्वता हर्षस्य यो निर्भरोऽतिशयस्तत्ता तया मत्तेनेव क्षीबेनेवोन्मत्तेनेव वातग्रस्तेनेव ग्रहगृहीतेनेव ग्रथिलेनेव । अपेति । अपगतो दूरीभूतो वाच्यावाच्ययोर्विवेक पृथगात्मता यस्मात्स तेन । नृत्तेति । नृत्तलक्षणा या क्रीडा विनोदस्तस्यां प्रसक्तेन लग्नेन । अथ च राजपरिजनेन नृपपरिवारेणानुगम्यमान । परिजनं विशेषयन्नाह—प्रचलेति । प्रचलानि चञ्चलानि यानि मणिकुण्डलानि रत्नकर्णाभरणानि तैराहता कपोलभित्तिर्यस्य स तेन विघूर्णमानं पतनायोन्मुख कर्णोत्पल यस्य स तेन । अधइति । अधो विगलितो विलोलश्चञ्चल. शेखरोऽवतसो यस्य स तेन । दोलायमाना कम्पमाना वैकक्षकीकृतोत्तरासङ्गीकृता कुसुममाला यस्य स तेन । निर्दयमिति । निर्दयमतिशयेन प्रहता वादिता भेर्यो दुन्दुभय., मृदङ्गा वाद्यविशेषा , मर्दला मुरजा , पटहा प्रसिद्धा , एतेषां यो निनाद. शब्दस्तदनुगतस्तन्मिश्रित काहला वाद्यविशेषा , शङ्ख. प्रसिद्ध , तयो रव. शब्दस्तेन जनितो निष्पादितो रभसो वेगो यस्य स तेन । चरणसनिपातै पादविक्षेपैर्वसुधां पृथ्वीं दारयतेव विदीर्णां कुर्वतेव। प्रवृत्तं प्रारब्ध नृत्य येन स तथा तेन चारणगणेन कुशीलवसमुदायेन । कीदृशेन । विविध यन्मुखमेव वाद्य तेन । कृतो विहित कलकलो येन स तेन । पठतोच्चै स्वरेण राजस्तुतिं गायता गान कुर्वता च । अनुगम्यमान इत्यस्य सर्वत्रानुषङ्ग ।

ढोलों और झाझों के समस्वर (ताल लयबद्ध) सगीत के साथ सुर मिलाती हुई ऊचे तथा मधुर स्वर में गा रही थीं, अत्यन्त हर्ष से भरी होने के कारण मतवालों की भाति, वाच्य तथा अवाच्य का विवेक छोड़े हुई, लगातार नृत्य क्रीडाका आनन्द ले रही थीं। उसके पीछे राजा के सेवक भी चल रहे थे—इन सेवकों की दीवार सी चौड़ी गालों पर उनके हिलते मणिजटित कुण्डल टकरा रहे थे, कानों में (आभूषण के रूप में) पहने हुए कमल उछल रहे थे, उनके हिलते शिरोभूषण नीचे को सरक गये थे, कन्धों पर यज्ञोपवीत की भाँति पहनी हुई (वैकक्षक) लम्बी (फूलमालाएँ) हिलोरें ले रही थीं, बिना दया दिखाये—प्रबल वेग से ताडित भेरियों, मृदङ्गों, मर्दलों और पटहों के शब्द से उनका उत्साह बढ़ गया था, और वे अपने (भारी) पदन्यासों से पृथ्वी के, मानो, दो टुकड़े ही कर रहे थे, राजा के पीछे बहुत से भाट भी नाचते, विविध मुखवाद्यों द्वारा शोर मचाते और (समयोचित गीत) पढ़ते तथा गाते चल रहे थे।

अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे प्राप्ते दशमेऽहनि पुण्ये मुहूर्ते गाः सुवर्णं च कोटिशो ब्राह्मणसात्कृत्वा 'मातुरस्य मया परिपूर्णमण्डलश्चन्द्रः स्वप्ने मुखकमलमाविशन्दृष्टः' इति स्वप्नानुरूपमेव राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार। अपरेद्युः शुकनासोऽपि कृत्वा ब्राह्मणोचिताः सकलाः क्रिया राजानुमतमात्मजस्य विप्रजनोचित वैशम्पायन इति नाम चक्रे।

क्रमेण कृतचूडाकरणादिक्रियाकलापस्य शैशवमतिचक्राम चन्द्रापीडस्य। तारापीडो व्यासङ्गविघातार्थं बहिर्नगरादनुसिप्रमर्धक्रोशमात्रायामम्, अतिमहता तुहिनगिरिशिखरमालानुकारिणा सुधाधवलितेन प्राकारमण्डलेन परिवृतम्, अनुप्राकारमा-

---

अतीति। अतिक्रान्ते व्यतीते षष्ठीजागरे षष्ठदिवसकृत्ये च सति दशमेऽहनि दशमे दिवसे प्राप्ते सति पुण्ये पवित्रे मुहूर्ते वेलायां गाः सुरभीः कोटिशः ब्राह्मणसाद्ब्राह्मणाधीनं कृत्वा विधाय मया स्वप्ने परिपूर्णमण्डलश्चन्द्रः शशी अस्य मातुर्जनन्या मुखकमलं वदनाम्भोजमाविशन्प्रविशन्दृष्टोऽवलोकित इति स्वप्नानुरूपमेव स्वप्नसदृशमेव राजा नृपः स्वसूनोः स्वपुत्रस्य चन्द्रापीड इति नाम चकार निर्ममे। अपरेद्युरन्यस्मिन्दिने शुकनासोऽपि ब्राह्मणोचिता विप्रकुलयोग्याः सकलाः समग्राः क्रियाः कृत्वा विधाय राजानुमतं नृपेणानुज्ञातमात्मजस्य पुत्रस्य विप्रजनोचितं ब्राह्मणजनयोग्यं वैशम्पायन इति नाम चक्रे कृतवान्।

क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्या कृतो निष्पादितः चूडाकरणं चौलकर्म तदादिका क्रियास्तासां कलापो यस्य स तथा तस्य चन्द्रापीडस्य शैशवं बाल्यमतिचक्राम। कौमारं प्राप्तवानित्यर्थः। तारापीडस्तस्य पिता व्यासङ्गश्चित्तस्यान्यत्र गमनं तस्य विघातार्थं दूरीकरणार्थं नगराद्बहिर्विद्यामन्दिरमकारयदित्यन्वयः। अनुसिप्रं सिप्रासमीपवर्ति। कीदृशम्। अर्धक्रोशमात्रमायामो विस्तारो

और छठी के कृत्य के समाप्त हो जाने पर दसवाँ दिन आ गया तो उस दिन राजाने मांगलिक मुहूर्त मे करोड़ों गौएँ तथा सुवर्णमुद्राएँ ब्राह्मणों को दान दीं और 'मैंने स्वप्न मे इस बालक की माता के मुख कमल में पूर्ण चन्द्र को प्रविष्ट होते देखा था'—यह जानते हुए स्वप्न के अनुसार अपने पुत्र का नाम 'चन्द्रापीड' रखा। अगले दिन शुकनास ने भी ब्राह्मणों के योग्य सारे विधान करके अपने पुत्रका नाम, राजा से अनुमत, ब्राह्मणों के योग्य 'वैशम्पायन' रख दिया।

उचित समय पर जिसके चूडासंस्कार आदि कृत्य किये गये थे उस चन्द्रापीड का बचपन बीत गया। (इसी बीच) (यदि चन्द्रापीड को राजकीय महल मे ही पढ़ाया गया तो सम्भवतः क्रीडा मे अति आसक्ति हो जाय'—यह सोच कर) क्रीडा में इस अत्यासक्ति की सम्भावना को दूर करने के लिये (तारापीड ने) नगर से बाहर, सिप्रा के तटपर, आधे कोस में फैला हुआ[1] बहुत बड़ी हिमालय की चोटियोंका अनुकरण करती प्रतीत होती, चूनेसे पुती होने से धवल, चार दिवारी से तथा चार दीवारी के पीछे-पीछे खोदी गयी बहुत बड़ी

---

१ आधे कोस जितने विस्तार वाला।

हितेन महता परिखावलयेन परिवेष्टितम् अतिदृढकपाटसपुटम्, उद्घाटितैकद्वारप्रवेशम्, एकान्तोपरचिततुरङ्गबाह्यालीविभागम्, अधःकल्पितव्यायामशालम्, अमरागाराकारं विद्यामन्दिरमकारयत्। सर्वविद्याचार्याणा च सग्रहे यत्नमतिमहान्तमन्वतिष्ठत्। तत्रस्थं च त केसरिकिशोरकमिव पञ्जरगत कृत्वा प्रतिषिद्धनिर्गमम्, आचार्यकुलपुत्रप्रायपरिजनपरिवारम्, अपनीताशेषशिशुजनक्रीडाव्यासङ्गम्, अनन्यमनसम्, अखिलविद्योपादानार्थमाचार्येभ्यश्चन्द्रापीड शोभने दिवसे वैशम्पायनद्वितीयमर्पयाबभूव। प्रतिदिन चोत्थायोत्थाय सह विलासवत्या विरलपरिजनस्तत्रैव गत्वै-

---

यस्य तत्। अतिमहतात्युच्चेन तुहिनगिरिर्हिमगिरिस्तस्य या शिखरमाला सानुश्रेणिस्तदनुकारिणा तत्सादृश्यधारिणा सुधा पूर्वोक्ता तया धवलितेन शुभ्रीकृतेन प्राकारमण्डलेन वप्रवलयेन परिवृत्त वेष्टितमनुप्राकारमाहितेन स्थापितेन महता परिखावलयेन परिवेष्टितम्। अतिदृढ कपाटसंपुटं यस्य तत्। उद्घाटित यदेकद्वार तत्र (तेन) प्रवेशो यस्मिंस्तत्। एकान्तेति। एकान्ते निर्जनस्थल उपरचितस्तुरङ्गाणामश्वाना बाह्यालीना शिबिकादीना व्यवस्थापनविभागो यस्मिंस्तत्। अध-इति। अधोविभागे कल्पिता व्यायामशाला बाहुयुद्धाभ्यासादियोग्य स्थल यस्मिंस्तत्। अमरेति। अमरागार देवगृह तद्वदाकारो यस्य तत्। सर्वेति। सर्वविद्याचार्याणा समग्रविद्याध्यापकाना सग्रहे स्वीकारेऽतिमहान्तमत्युत्कृष्ट यत्नमध्यतिष्ठदकरोत्। तत्रेति। तत्रस्थ तन्निवासिन त चन्द्रापीड पञ्जरगतं केसरिकिशोरकमिव कृत्वा विधाय प्रतिषिद्धो निर्गमो बहिर्गमन यस्य स तम्। आचार्येति। आचार्यस्य कुलं वैशम्पायनकुल तस्य पुत्रप्रायो य परिजन स एव परिवारो यस्य स तम्। अपेति। अपनीतो दूरीकृतोऽशेषाया समग्राया शिशुजनक्रीडाया बालजनलीलाया व्यासङ्गो विद्याप्रतिबन्धक यस्य स तम्। न विद्यतेऽन्यस्मिन्मनो यस्य स तम्। एकाग्रचित्तमित्यर्थ.। अखिलेति। अखिला समग्रा या विद्यास्तासां यदुपादान ग्रहण तदर्थमाचार्येभ्य पाठकेभ्य शोभने प्रशस्ते दिवसे दिने वैशम्पायनो मन्त्रिसुत. स एव द्वितीयो

खाई से घिरा, बहुत मजबूत किवाड़ों की जोड़ी से सयुक्त, खोले गये एक द्वार से जिसमें प्रवेश होता था, जिसके एक सिरे पर अश्वों तथा गाड़ियोंकी पक्तियों का विभाग बनाया गया था, जिसके निचले भाग में व्यायामशाला बनायी गयी थी और जो स्वर्गीय महल के आकार का था ऐसा विद्यालय बनवाया। और तारापीड ने यहाँ सभी विद्याओंके (ज्ञान की सभी शाखाओं के) आचार्यों को एकत्रित करने का महान् यत्न किया। और पिञ्जरे मे बन्द सिंह शिशु की भाति वहा स्थित चन्द्रापीड का वहा से निकलना रोक कर उसको शुभ दिन में वैशम्पायन के साथ साथ सम्पूर्ण विद्याओं को पढने के लिये आचार्यों को सौंप दिया। वहा उसके परिवार मे अधिकतर उसके आचार्यों के तथा कुलीन जनों के पुत्र ही थे और उसके लिये बच्चों की क्रीडाओं के प्रति अति आसक्ति की सभी सम्भावनाओ को दूर कर दिया गया था जिससे कि उसका मन एकाग्र रहे। और राजा प्रतिदिन सबेरे उठकर विलासवती एव थोड़े से सेवकों के साथ वहा जाकर ही इससे भेंट करता था।

नमालोकयामास राजा। चन्द्रापीडोऽप्यनन्यहृदयतया तथा यन्त्रितो राज्ञाचिरेणैव यथास्वमात्मकौशलं प्रकटयद्भिः पात्रवशादुपजातोत्साहैराचार्यैरुपदिश्यमानाः सर्वा विद्या जग्राह। मणिदर्पण इवातिनिर्मले तस्मिन्संचक्राम सकलः कलाकलापः। तथा हि। पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायामविद्यासु, चापचक्रचर्मकृपाणशक्तितोमरपरशुगदाप्रभृतिषु सर्वेष्वायुधविशेषेषु, रथचर्यासु, गजपृष्ठेषु, वीणावेणुमुरजकांस्यतालदर्दुरपुटप्रभृतिषु वाद्येषु, भरतादिप्रणीतेषु नृत्तशास्त्रेषु, नारदीयप्रभृतिषु

विद्याभ्यसने सहायो यस्यैवंभूतं चन्द्रापीडमाचार्येभ्योऽर्पयांबभूवार्पितवान्। अथ च राजा प्रतिदिन प्रत्यहमुत्थायोत्थायोत्थान कृत्वा। स्वगृहादिति शेष। वीप्साया द्वित्वम्। सह विलासवत्या विरलपरिजन. स्वल्पपरिच्छेदस्तत्रैव गत्वैव चन्द्रापीडमालोकयामास व्यलोकयत्। चन्द्रापीडोऽपि राज्ञा तारापीडेन तथेति तेन प्रकारेण यन्त्रितो नियमितो यथाचिरेणैव स्वल्पकालेनैवानन्यहृदयतयैकाग्रचित्ततयाचार्यैर्गुरुभिरुपदिश्यमाना अध्याप्यमाना सर्वा समग्रा विद्या द्वासप्ततिकला जग्राह गृहीतवान्। आचार्यैः किं कुर्वद्भि। स्व स्वकीयमात्मकौशल निजचातुर्यं प्रकटयद्भिराविष्कुर्वद्भि पात्रवशादत्युत्कृष्टविद्याग्राहकवशादुपजात समुत्पन्न उत्साह प्रगल्भता येषां तै। आचार्यविशेषणम्। मणिदर्पणे रत्नादर्शे इवातिनिर्मलेऽतिस्वच्छे तस्मिन्सकलः कलाकलाप सचक्राम संक्रम कृतवान्। तथैव दर्शयन्नाह—तथा हीति। पदेति। पदं व्याकरणशास्त्रं तस्मिन्। वाक्येति। वाक्य मीमांसे पूर्वोत्तरे तस्मिन्। प्रमाण न्यायवैशेषिकसांख्यपातञ्जलरूप तस्मिन्। धर्मशास्त्र मन्वादिप्रणीतो ग्रन्थस्तस्मिन्। इत पर चतु षष्टिकला आह—राजेति। राजनीतय कामन्दकीप्रभृतिशास्त्राणि तेषु। व्यायामः श्रमस्तदर्थं या विद्या मल्लयुद्धादिकास्तासु। चापेति। चापं धनु, चक्रं प्रसिद्धम्, चर्म संनाह, कृपाणं खड्गम्, शक्ति. शस्त्रविशेष, तोमर प्रहरणविशेष, परशु कुठार, गदा प्रसिद्धा, एतत्प्रभृतिषु सर्वेष्वायुधविशेषेषु। रथचर्यासु रथपरिवर्तनेषु। गजपृष्ठेषु हस्तिशिरोदेशेषु। वीणा वल्लकी, वेणुर्वंश, मुरजो मृदङ्ग, कांस्यतालं वाद्यविशेष, दर्दुरपुटं दर्दुरशब्दाकारशब्दं वाद्यम्, एतत्प्रभृतिषु वाद्येष्वा-

---

इस प्रकार राजा द्वारा नियन्त्रित चन्द्रापीड ने भी, एकाग्रचित्त होकर अपने-अपने विभाग मे (यथास्व) अपनी-अपनी निपुणता दिखलाते हुए एक योग्य शिष्य (प्राप्त कर लेने) के कारण उत्साहित हुए, आचार्यों द्वारा प्रदान की गयी सभी विद्याओं को ग्रहण कर लिया। और मणि रूप दर्पण सरीखे अत्यन्त स्वच्छ (अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि) उस चन्द्रापीड में सारे विविध ज्ञान (प्रतिबिम्बित) स्थानान्तरित हो गये। उदाहरणार्थ उसने व्याकरण में, मीमासा में, न्यायशास्त्र में, राजनीतिशास्त्र की विविध शाखाओं में, व्यायाम विद्या की विविध पद्धतियों में, धनुष, लौहचक्र, ढाल, तलवार, शक्ति (बरछी), भाला, फरसा, गदा आदि सभी शस्त्रास्त्रों (के प्रयोग) मे, रथ चलाने की विधियों में, हाथियों की पीठ पर सवारी करने में, घुड़सवारी में सारगी, बासुरी, तबला, झाझ, दुर्दुरपुट (खोखली नलियाँ) आदि बाजों में, भरत आदि आचार्यों द्वारा विरचित नाट्य शास्त्रों में, नारद आदि लिखित विविध संगीत

गान्धर्ववेदविशेषेषु, हस्तिशिक्षायाम्, तुरङ्गवयोज्ञाने, पुरुषलक्षणे, चित्रकर्मणि पत्रच्छेद्ये, पुस्तकव्यापारे, लेख्यकर्मणि, सर्वासु द्यूतकलासु, शकुनिरुतज्ञाने, ग्रहगणिते, रत्नपरीक्षासु, दारुकर्मणि, दन्तव्यापारे, वास्तुविद्यासु, आयुर्वेदे, यन्त्रप्रयोगे, विषापहरणे, सुरङ्गोपभेदे, तरणे, लङ्घने, प्लुतिषु, इन्द्रजाले, कथासु, नाटकेषु, आख्यायिकासु, काव्येषु, महाभारतपुराणेतिहासरामायणेषु, सर्वलिपिषु, सर्वसंज्ञासु, सर्वशिल्पेषु, छन्दःसु, अन्येष्वपि कलाविशेषेषु परं कौशलमवाप। सहजा चाजस्रमभ्यस्यतो वृको-

---

तोद्येषु। भरतादयो विद्वांसस्तैः प्रणीतानि विहितानि नृत्तशास्त्राणि ताण्डवविधानप्रतिपादकग्रन्थास्तेषु नारदीयप्रभृतिषु गान्धर्ववेदविशेषेषु। हस्तिशिक्षायां गजशिक्षायाम्। तुरगस्याश्वस्य वयोज्ञाने वयोऽवस्था तस्य ज्ञाने। पुरुषाणां नराणां लक्षणेषु सामुद्रिकप्रतिपादितेषु मषीतिलकादिलक्षणेषु। चित्रकर्मण्यालेख्यविद्यायाम्। पत्रच्छेद्ये केतकादिपत्रच्छेदने पुस्तकानां शास्त्राणां व्यापारे प्रयोगे। लेख्यकर्मणि लेखनविद्यायाम्। सर्वासु समग्रासु द्यूतकलासु। शकुनिरुतज्ञाने पतत्रिशब्दज्ञाने। ग्रहगणिते ज्योतिःशास्त्रे। रत्नानां मण्यादीनां शुद्धाशुद्धज्ञाने। दारुकर्मणि काष्ठकर्मणि। दन्ता गजानां रदनास्तेषां व्यापारो व्या(व्यव) हृतिस्तस्मिन्। वास्तुविद्यासु गृहनिर्मितिविद्यासु। आयुर्वेदे वैद्यकशास्त्रे। यन्त्राणां सूर्यप्रतापादीनां प्रयोगो व्यापारणं तस्मिन्। विषाणां स्थावरजङ्गमप्रभृतीनामपहरणं दूरीकरणं तस्मिन्। सुरङ्गा सन्धिला तस्या उपभेदो भेदनं तस्मिन्। तरणे नद्यादितरणे। लङ्घने कूपकाद्युल्लङ्घने। प्लुतयो व्याघ्रादिषु सङ्ग्रामादिषु विद्युत्करणादिरूपास्तासु। इन्द्रजालं मायाकूटनिर्मितं तस्मिन्। कथासु बृहत्कथाप्रभृतिषु। नाटकेष्वभिनयात्मकेषु। आख्यायिकासु वासवदत्ताप्रभृतिषु। काव्यं कविकर्म तेषु। महाभारतं प्रसिद्धम्। तदुक्तम्—'भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु। तरणं सर्वतीर्थानां तेन भारतमुच्यते'। पुराणं पञ्चलक्षणम्, इतिहासः पुरावृत्तम्, रामायणं रामचरित्रम्, सर्वलिपिष्वष्टादशाक्षरविन्या-

---

शास्त्रों मे, किसी घोड़े की आयु निश्चित करने के विज्ञान में, किसी पुरुष के (शारीरिक) चिन्हों मे, चित्र खींचने में, पत्रलताचित्र कारियों-को चित्रित करने में, पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ बनाने मे, (अथवा मिट्टी के खिलौने बनाने में), नक्काशी करने में, जुआ खेलने की सभी कलाओं में, सगीत विज्ञान की विविध पद्धतियों में, पक्षियों के शब्दों का तात्पर्य समझने में, ज्योतिष सम्बन्धी गणित शास्त्र में, रत्नों की जाच करने में, बढ़ईगिरी में, उचित 'यन्त्रों' (ताबीजों) के प्रयोग में, विष दूर करने की ओषधियों के प्रयोग में, विस्फोटकों द्वारा भूमिया तोड़कर सुरगे (आन्तर्भौमिक मार्ग) बनाने में, तैरने मे, नाव खेने में, कूदने में, (वृक्षादि पर) कूद कर चढ़ने मे, जादूगरी में, कथाओं, नाटकों, आख्यायिका, काव्यों, महाभारत पुराण-इतिहास तथा रामायण के अध्ययन में, सभी (भाषाओं की) लिपियों में, देश की (में प्रचलित) सभी भाषाओं में, सभी इशारों (अर्थात् मूक-बधिरों की भाषा) में, सभी यान्त्रिक कलाओं में, वेदों में तथा (कई) दूसरी विविध कला विशेषों में निपुणता प्राप्त कर ली।

और इस प्रकार लगातार अभ्यास करते हुए (व्यस्त रहते हुए), इसके बालपन में

दरस्येव शैशव एवाविर्बभूव लोकविस्मयजननी महाप्राणता। यदृच्छया क्रीडताप्यनेन करतलावलम्बितकर्णपल्लवावनताङ्गाः सिंहकिशोरकक्रमाक्रान्ता इव गजकलभकाश्चलितुमपि न शेकुः। एकैकेन कृपाणप्रहारेण तालतरून्मृणालदण्डानिव लुलाव। सकलराजन्यवंशवनदावानलस्य परशुरामस्येवास्य नाराचाः शिखरिशिलातलभिदो बभूवुः। दशपुरुषसंवाहनयोग्येन चायोदण्डेन श्रममकरोत्। ऋते च महाप्राणतायाः सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशम्पायनः। चन्द्रापीडस्य तु सकलकलाकला-

---

तेषु। सर्वेषां देशानां भाषासु वचनव्यापारेषु। सर्वा या. सञ्ज्ञा परिभाषास्तासु। सर्वेषु शिल्पेषु। विज्ञानेषु। छन्द स्वाम्नायेषु। अन्येष्वप्येतद्व्यतिरिक्तेषु कलाविशेषेषु परमधिक कौशल चातुर्यमवाप प्राप्तवान्। अस्य कुमारस्याजस्रं निरन्तरमभ्यस्यतो विद्यापरिश्रम कुर्वतो वृकोदरस्येव भीमस्येव शैशव एव बाल्य एव सहजा नोपाधिका लोकानां जनानां विस्मयजनन्याश्चर्यकारिणी महाप्राणता महासाहसशक्तिराविर्बभूव प्रकटीबभूव। एतदेव विवृणोति—यदृच्छयेति। यदृच्छया स्वेच्छया क्रीडतापि केलिं कुर्वताप्यनेन कुमारेण गजानामनेकपानां कलभा एव कलभका स्वार्थे क। 'कलभस्त्रिंशदब्दक' इति कोश। सिंहस्य हर्यक्षस्य किशोरको बालस्तस्य क्रमौ पादौ ताभ्यामाक्रान्ता पीडिता इव चलितुमपीतस्ततो गन्तुमपि न शेकुर्न शक्ता बभूवु। कीदृशा। अनेन करतलेनावलम्बिता गृहीता ये कर्णपल्लवास्तैरवनतान्यङ्गानि येषा ते तथा। कर्णे धृत्वैव नम्रीकृता इति भाव। अन्यदप्याह—एकैकेति। एकैकेन कृपाणप्रहारेण तालतरून्मृणालदण्डानिव नलिनदण्डानिव लुलाव चिच्छेद। सकलेति। अस्य नाराचा बाणा शिखरिशिलातलभिदो बभूवु। अस्य किंविशिष्टस्य। सकला. समग्रा राजन्या राजानस्तेषा वंशा अन्वयास्त एव वनानि काननानि तेषु दावानलस्य वनवह्निसदृशस्येत्यर्थ। कस्येव। परशुरामो जामदग्न्यस्तस्येव। यथा तस्य बाणा शिलापट्टभिदस्तथास्यापीति भाव। दशेति। दशपुरुषै सवाहनयोग्येनोत्थापनोचितेन अतिप्रमाणेनेत्यर्थ.। अयोदण्डेन श्रममकरोत्परिश्रममकार्षीत्।

ही इसमें स्वाभाविक और लोगों में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली अद्भुत शारीरिक शक्ति प्रकट हो गयी-जैसी कि भीम मे उसके बचपन में उत्पन्न हो गयी थी। लक्ष्यहीनता से खेलते हुए भी इस द्वारा हथेलियों में पकड़ी कान की लौ से झुकाये शरीर वाले गजशिशु, मानो किसी सिंह शिशु के आक्रमण के आधीन हुए हिल डुल भी नहीं सकते थे। अभी जब वह बालक ही था तब तलवार के एक ही आघात से ताल के वृक्षों को ऐसे तोड़ देता था कि मानो (केवल) मृणालनालिकाओं को तोड़ रहा हो। इसके तीर सब क्षत्रियोंरूपी बांसों के लिये दावानल भूत परशुराम के तीरों के समान पर्वतों की शिलाओं को तोड़ने वाले सिद्ध हुए—परशुराम के तीर ने क्रौञ्च पर्वत की शिलाओं को तोड़ दिया था और वह दस पुरुषों द्वारा (अपनी सयुक्त शक्ति से) उठाने योग्य लौह दण्ड से व्यायाम किया करता था। और (उसकी सहज) शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त शेष सभी कलाओं में वैशम्पायन ने उसका अनुकरण किया। सभी कलाओं के समूह की जानकारी के कारण (चन्द्रापीड द्वारा) उसका आदर किये जाने

पपरिचयबहुमानेन शुकनासगौरवेण सहपांसुक्रीडनतया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रम्भस्थान द्वितीयमिव हृदय वैशम्पायनः पर मित्रमासीत्। निमेषमपि तेन विना स्थातुमेकाकी न शशाक। वैशम्पायनोऽपि तमुष्णकरमिव वासरोऽनुगच्छन्न क्षणमपि विरहयाचकार।

एव तस्य सर्वविद्यापरिचयमाचरतश्चन्द्रापीडस्य त्रिभुवनविलोभनीयोऽमृतरस इव सागरस्य, सकललोकहृदयानन्दजननश्चन्द्रोदय इव प्रदोषस्य, बहुविधरागविकार-

---

ऋते चेति। 'ऋतेयोगे द्वितीया' इति केषाचिन्मतम्। तेनान्यशब्दार्थयुक्ताया पञ्चम्या न विरोध। महाप्राणतायाः ऋतेऽन्याभि सर्वाभि कलाभिर्वैशम्पायनस्त कुमारमनुचकार सादृश्यमकरोत्। वैशम्पायनस्य ब्राह्मणपुत्रत्वात्तच्छिक्षापेक्षिता साहसशक्तिरिति भाव। चन्द्रेति। चन्द्रापीडस्य वैशम्पायन पर मित्रमासीदित्यन्वय। तत्र हेतुमाह—सकलेति। सकला समग्रा या, कला विज्ञानैकदेशास्तासा कलाप, समूहस्तदर्थं य परिचय सत्तवस्तत्कृत बहुमानेन समानेन शुकनासस्य गौरवेण पूज्यत्वेन सह सार्धं यत्पांसुना धूल्या क्रीडन खेलन तस्य भावस्तत्ता तया सह सार्धं सवृद्ध सवर्धितस्तस्य भावस्तत्ता तया। चकारो हेतुसमुच्चयार्थ। मित्र विशेषयन्नाह—सर्वेति। सर्वो यो विश्रम्भो विश्वासस्तस्य स्थानमाश्रयो द्वितीय हृदयमिव। एतेन सर्वथाभेदो दर्शित। निमेषमप्यक्षिचलनमात्रमप्येकाकी तेन वैशम्पायनेन विना स्थातु न समर्थो बभूव। वैशम्पायनोऽप्युष्णकरं सूर्यं वासर इव दिवस इव त चन्द्रापीडमनुगच्छन्पश्चाद्व्रजन्क्षणमप्यक्षिस्पन्दनमात्रमपि न विरहयाचकार न विरक्तो बभूव।

एवमिति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण तस्य चन्द्रापीडस्य सर्वविद्यापरिचयं कलादिकाभ्यासमाचरतः कुर्वत। त्रिभुवनेति। त्रयाणा भुवनानां समाहारस्त्रिभुवन तस्य विलोभनीयो लोभजनको यौवनारम्भो यौवन बाल्यात्पर वयस्तस्यारम्भ प्रादुर्भवन्प्रकटीभवन्रमणीयस्यापि मनोहरस्यापि द्विगुणां पूर्वतो द्विभागाधिका रमणीयतां शोभातिरेकतां पुपोष। कीदृश। स्वान्तस्यानन्दजनन प्रमोदोत्पादक। कस्येव। सागरस्य समुद्रस्यामृतरस इव पीयूषद्रव

के कारण शुकनास के प्रति पूज्यभाव होने के कारण, साथ ही साथ (एक ही) धूल में खेलने के कारण और साथ साथ बड़े होने के कारण, वैशम्पायन चन्द्रापीड का परम मित्र बन गया था, मानो कि यह उसका दूसरा हृदय ही हो और सभी विश्वसनीय रहस्यों का सग्रहालय हो। उसके बिना (चन्द्रापीड) एक क्षण भर के लिये भी अकेला नहीं रह सकता था। वैशम्पायन भी, जैसे दिन सूर्य के पीछे पीछे चलता है, वैसे ही उसका अनुसरण करता हुआ क्षणभर के लिये भी उसको नहीं छोड़ता था।

इस प्रकार (इधर तो) चन्द्रापीड सभी विद्याओं से अपना परिचय प्राप्त कर रहा था उधर जैसे तीनों लोकों मे स्पृहणीय अमृत, सागर की सुन्दरता को बढ़ा देता है, अथवा लोगों के हृदय को आनन्दित करनेवाला चन्द्रोदय सायकाल की शोभा को दुगना कर देता है अथवा विविध प्रकार के (नीलपीतादि) रगों के फीके अथवा गाढेपन आदि) विकारों से परिवर्तनीय

भङ्गुरः सुरधनुःकलाप इव जलधरसमयस्य, मकरध्वजायुधभूतः कुसुमप्रसव इव कल्पपादपस्य, अभिनवाभिव्यज्यमानरागरमणीयः सूर्योदय इव कमलवनस्य, विविधलास्यविलासयोग्यः कलाप इव शिखण्डिनो यौवनारम्भः प्रादुर्भवन्रमणीयस्यापि द्विगुणा रमणीयतां पुपोष। लब्धावसरः सेवक इव निकटीबभूवास्य मन्मथः। लक्ष्म्या सह वितस्तार वक्षःस्थलम्। बन्धुजनमनोरथैः सहापूर्यतोरुदण्डद्वयम्। अरिजनेन सह तनिमानमभजत मध्यभागः। त्यागेन सह प्रथिमानमाततान नितम्बभागः। प्रतापेन सहा-

---

इव। प्रदोषस्य यामिनीमुखस्य चन्द्रोदय इव। जलधरसमयस्य मेघकालस्य सुरधनु.कलाप इन्द्रचापसमूह इव बहुविधा अनेकप्रकारा ये रागास्तेषा ये विकारा विकृतयस्तैर्भङ्गुरो वक्र। उभयोर्विशेषणम्। यौवनारम्भस्याप्येतादृशरूपत्वात् कल्पपादपस्य पारिजातस्य कुसुमप्रसव इव पुष्पोद्गम इव मकरध्वजस्य कदर्पस्यायुधभूत शस्त्रभूत। उभयोर्विशेषणम्। द्वयोरपि कामोद्दीपकत्वात्। अभीति। अभिनवो नूतनोऽभिव्यज्यमान प्रकटीक्रियमाणो यो रागस्तेन रमणीयो मनोहर। इदमपि द्वयोर्विशेषणम्। उभयत्र रागोदयसद्भावात्। कमलवनस्य सूर्योदय इव विविधो यो लास्यविलासो नृत्यविलासस्तस्य योग्य उचित उभयोर्विशेषणम्। शिखण्डिनो मयूरस्य कलाप इव प्रचलाक इव। अस्य चन्द्रापीडस्य लब्धावसर प्राप्तप्रस्ताव सेवक इव भृत्य इव मन्मथ कंदर्पो निकटीबभूव समीपवर्त्यभूत्। इत्यनेन चन्द्रापीडस्य मन्मथाधीनत्वं नास्तीति सूचितम्। एतदेव विवृणोति—लक्ष्म्येति। लक्ष्म्या सह श्रिया सह वक्ष स्थलं भुजान्तरस्थलं वितस्तार विस्तीर्णं बभूव। बन्धुजनाना मनोरथैर्वाञ्छितै. सहोरुदण्डद्वय सक्थियुगलमापूर्यत

इन्द्रधनुषों का समूह जैसे वर्षा ऋतु की शोभा मे वृद्धि कर देता है, अथवा मकरकेतु (कामदेव) के शस्त्रभूत पुष्पों की अभिनव उत्पत्ति जैसे कल्पवृक्ष की शोभा को बढ़ा देती है, अथवा नये, स्पष्ट होते हुए रगों से शोभायमान सूर्योदय जैसे कमलवन की शोभा को दुगना कर देता है अथवा जैसे विविध प्रकार के सुन्दर नृत्यों को प्रदर्शित करने की उचित साधन भूत (मोर की) पूछ उसकी शोभा को बढा देती है ऐसे ही उसकी सारी प्रजा के हृदय को आनन्दित करने वाले, विविध प्रकार के आवेगों से उत्पन्न परिवर्तनों से भरे, मकरध्वज (कामदेव) के मानो शस्त्रभूत, अपने में प्रथम बार प्रकटित आवेग के कारण सुन्दर प्रतीत होते और विविध प्रकार के नृत्यों और विलासों के (प्रदर्शन के) योग्य उसके प्रकट होते हुए यौवनारम्भ ने (पहले ही) सुन्दर उस चन्द्रापीड के सौन्दर्य को दुगना कर दिया। (अपने कार्य करण के लिये) क्षेत्र पाये हुए नये सेवक की भांति, कामदेव उसके समीप आ गया। जैसे-जैसे उसके शारीरिक सौन्दर्य (लक्ष्मी) की रोचकता बढी वैसे वैसे उसका वक्ष स्थल (चौड़ाई में) बढ़ता गया। उसको योग्य हुआ जानकर उसके सम्बन्धियों की अभिलाषाओं की पूर्ति के साथ-साथ उसकी दण्ड-सी लम्बी तथा दोनों जाघें भर गयीं (मासल तथा गोल हो गयीं)। उसकी कमर (उसके) शत्रुओं के साथ साथ क्षीण होती गयी। उसकी दानशीलता के साथ साथ उसका कटिप्रदेश विशाल होता गया। उसके प्रताप के साथ साथ उसके बालों

रुरोह रोमराजिः। अहितकलत्रालकलताभिः सह प्रलम्बतामुपययौ भुजयुगलम्। चरितेन सह धवलतामभजत लोचनयुगलम्। आज्ञया सह गुरुर्बभूव भुजशिखरदेशः। स्वरेण सह गम्भीरतामाजगाम हृदयम्।

एवं च क्रमेण समारूढयौवनारम्भं परिसमाप्तसमग्रकलाविज्ञानमधीताशेषविद्यं चावगम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतुं राजा बलाधिकृत बलाहकनामानमाहूय बहुतुरगबलपदातिपरिवृतमतिप्रशस्तेऽहनि प्राहिणोत्। गत्वा विद्यागृह द्वाःस्थैः समा-

---

पूर्णं बभूव। सातिशयमजनिष्टेति भाव। अरिजनेन शत्रुजनेन सह मध्यभागोऽवलग्नप्रदेशस्तनिमान कृशत्वमभजताश्रयत्। त्यागेन दानेन सह नितम्बभाग आरोहप्रदेश प्रथिमान महत्त्वमातताम विस्तारमवाप। 'तनु विस्तारे' लिटि रूपम्। प्रतापेन कोशदण्डप्रसवतेजसा सह रोमराजिस्तनूरुहश्रेणिराहरोहारूढा बभूव। 'रुह जन्मनि' इत्यस्य लिटि रूपम्। अहितेति। अहितकलत्राणां शत्रुस्त्रीणामलकलताभिः। केशलताभि सह भुजयुगल बाहुयुग्म प्रलम्बतां दीर्घतामुपययौ प्राप। चरितेनाचारेण सह लोचनयुगल नेत्रयुग्म धवलता शुभ्रतामभजत प्रापत्। आज्ञया निर्देशेन सह भुजशिखरदेश स्कन्दप्रदेश। 'असो भुजशिर स्कन्धे' इति कोश। गुरुर्महान्बभूवाभूत्। स्वरेण शब्देन सह गम्भीरतां गाम्भीर्यं हृदय स्वान्तमाजगामागमत्। यद्यपि लक्ष्म्या विस्तारस्य मनोरथेषु पूर्णत्वस्यैवमरिजने कृशत्वादे स्वस्ववाक्यादेव लाभेऽपि सातिशयत्व व्यङ्ग्यम्।

एवमिति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण समारूढ प्राप्तो यौवनारम्भो येन स तम्। परिसमाप्त समग्रकलाविज्ञान यस्य स तम्। अधीता अशेषविद्या येनैवभूत चन्द्रापीडमवगम्य ज्ञात्वाचार्यैरध्यापकैरनुमोदित श्लाघितम्। अथ राजा चन्द्रापीडमानेतुं बलेन धाम्नाधिकृत सहित बलाहकनामान पुरुषभृत्यमाहूयाह्वान कृत्वा बहवो ये तुरगा अश्वास्तेषां बल साधन पदाति. (तय.) पत्ति(त्तय)स्ताभ्यां परिवृतं सहितमतिप्रशस्तेऽतिशोभनेऽहनि दिने प्राहिणोत्प्रेषयामास। सेति।

की पंक्ति उद्रोहित होती गयी (उगती गयी) उसके शत्रुओं की पत्नियों के वालों के साथ-साथ (भावी पतिविरह के कारण न बाधने से वाल लटकते हैं) उसकी दोनों भुजाए लम्बी हो गयीं। चरित्र के साथ साथ उसकी आखों (का भीतरी भाग) शुभ्र (श्वेत) हो गया। उसका आदेश गुरु अर्थात् महत्वशाली अर्थात् अकाट्य हुआ तो उसके साथ ही उसकी भुजाओं का शिखर भाग (अर्थात् कंधा) बड़ा हो गया। ज्यों-ज्यों उसका स्वर गम्भीर होता गया उसका हृदय भी गम्भीर होता गया।

इस प्रकार यह जानकर कि चन्द्रापीड का यौवन आरम्भ हो चुका है वह युवा होने लगा है तथा उसने सारी कलाओं का ज्ञान पूर्णतया अर्जित कर लिया है और सारी क्रियाएँ सीख ली हैं, आचार्यों द्वारा जाने की अनुमति दिये गये चन्द्रापीड को लिवालाने के लिये, राजा ने सेना के अध्यक्ष बलाहक को बुलाकर बहुत घुड़सवार तथा पदाति सेना के साथ अत्यन्त मागलिक दिन मे भेज दिया। वह (बलाहक) विद्यागृह में पहुँच कर तथा द्वारपालों द्वारा

वेदितः प्रविश्य क्षितितलावलम्बितचूडामणिना शिरसा प्रणम्य स्वभूमिसमुचिते राजसमीप इव सविनयमासने राजपुत्रानुमतो न्यषीदत्। स्थित्वा च मुहूर्तमात्रं बलाहकश्चन्द्रापीडमुपसृत्य दर्शितविनयो व्यजिज्ञपत्—'कुमार, महाराजः समाज्ञापयति—'पूर्णा नो मनोरथाः। अधीतानि शास्त्राणि। शिक्षिताः सकलाः कलाः। गतः सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्। अनुमतोऽसि विनिर्गमाय विद्यागृहात्सर्वाचार्यैः। उपगृहीतशिक्षं गन्धगजकुमारकमिव वारिविनिर्गलमवगतसकलकलाकलापं पौर्णमासीशशिनमिव नवोद्गतं पश्यतु त्वा जनः। भजन्तु सफलतामतिचिरदर्शनोत्कण्ठितानि लोकलोचनानि।

स बलाहको विद्यागृहं गत्वा द्वाःस्थैर्द्वारपालकैः समावेदितो निवेदितः प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा क्षितितले वसुधापीठेऽवलम्बित आश्रितः चूडामणिः शिरोमणिर्यस्यैवंविधेन शिरसोत्तमाङ्गेन प्रणम्य नमस्कृत्य स्वभूमिसमुचिते स्वस्य भूमौ यत्समुचितं योग्यं तस्मिन्नासने विष्टरे राजपुत्रेण नृपपुत्रेणानुमतोऽनुज्ञातो राजसमीप इव नृपसंनिधाविव सविनयं यथा स्यात्तथा न्यषीदत्तस्थौ। स्थित्वा चेति। मुहूर्तमात्रं स्थित्वावस्थानं कृत्वा बलाहकश्चन्द्रापीडमुपसृत्य समीपे गत्वा दर्शितः प्रकटीकृतो विनयः सेवाकार्यो येनैवंभूतो व्यजिज्ञपद्विज्ञापनां चकार। हे कुमार, महाराजस्तारापीडः समाज्ञापयत्याज्ञां ददाति। तदेवाह—पूर्णेति। नोऽस्माकं मनोरथाश्चिन्तितानि पूर्णाः संपूर्णाः। जाता इति शेषः। अधीतानि पठितानि शास्त्राणि कामन्दकीयप्रभृतीनि। सकलाः समग्राः कलाः शिक्षिता अभ्यस्ताः। सर्वास्वायुधविद्यासु धनुर्धरविद्यासु परामनिर्वचनीयस्वरूपां प्रतिष्ठां महत्त्वं गतः प्राप्तः। विद्यागृहात्कलाभ्यसनमन्दिराद्विनिर्गमाय निःसरणायानुमतोऽनुज्ञातः। न केवलं महाराजस्यानुज्ञामात्रं किंतु गृहीतसकलकलाकलापोऽयमित्याचार्यैरप्यनुमतः। उपगृहीतशिक्षमुपगृहीता गुरोः सकाशाच्छिक्षा शास्त्राभ्यासादिरूपा येनैवंभूतं त्वां जनो लोकः पश्यतु विलोकयतु। कस्मात्कमिव। वारी गजबन्धनी तस्माद्विनिर्गतं बहिरागतं गन्धगजकुमारकमिव। अत्र गन्धशब्दोपादानेन हस्तिनो मुख्यत्वं सूचितम्। पुनरुपमानान्तरं प्रदर्शयन्नाह—सकलेति। अवगता ज्ञाता प्राप्ताश्च सकलाः समग्रा याः कलाः षोडश ह्रासलक्षिर्वा

सूचित किये जाने पर भीतर प्रविष्ट होकर, अपने सिर को इतना झुकाकर कि उसका चूडामणि पृथ्वी तक लटक गया, अपने पद के अनुकूल आसन पर इतने विनय के साथ कि मानो राजा के समीप ही बैठा हो, राजपुत्र से अनुमति पाकर बैठ गया। और कुछ देर ठहर कर, बलाहक, चन्द्रापीड के समीप सरक गया और आदरपूर्वक उसने चन्द्रापीड को बतलाया—'कुमार! महाराज ने आज्ञा दी है—हमारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। तुमने शास्त्र पढ लिये। तुमने विद्याओं में सर्वोत्कृष्ट कुशलता[1] प्राप्त कर ली है और तुम्हारे सभी आचार्यों ने तुम्हें विद्यागृह से बाहर चले आने की अनुमति दे दी है। प्रजाजन उचित रूप से सजाये जाने के पश्चात् अपने बन्दी गृह से निकले गन्धगज की भांति शिक्षा प्राप्त तथा सभी विविध कलाओं को सीखे हुए (अतएव) अभी उदित हुए तथा सभी सोलहों कलाओं से पूर्ण पूर्णमासी के चन्द्रमा के सदृश उसको देखें। लोगों की देर से तुम्हारे दर्शन के लिए व्यग्र आँखें

1. सर्वोच्च प्रामाणिकता

दर्शनं प्रति ते समुत्सुकान्यतीव सर्वाण्यन्तःपुराणि। अयमत्रभवतो दशमः संवत्सरो विद्यागृहमधिवसतः। प्रविष्टोऽसि षष्ठमनुभवन्वर्षम्। एवं संपिण्डितेनामुना षोडशेन प्रवर्धसे। तदद्यप्रभृति निर्गत्य दर्शनोत्सुकाभ्यो दत्त्वा दर्शनमखिलमातृभ्योऽभिवाद्य च गुरूणामपगतनियन्त्रणो यथासुखमनुभव राज्यसुखानि नवयौवनललितानि च। समानय राजलोकम्। पूजय द्विजातीन्। परिपालय प्रजाः। आनन्दय बन्धुवर्गम्। अयं च त्रिभुवनैकरत्नमनिलगरुडसमजव इन्द्रायुधनामा तुरङ्गमः प्रेषितो महाराजेन द्वारि तिष्ठति। एष खलु देवस्य पारसीकाधिपतिना त्रिभुवनाश्चर्यमितिकृत्वा 'जलधि-

---

तारा कलाप समूहो येन स तम्। नवोद्गत नूतनोदित पौर्णमासीशशिनमिव राकाचन्द्रमिव। अतिचिरेण कालेन यद्दर्शनमीक्षण तत्रोत्कण्ठितानि सोत्कलिकानि लोकलोचनानि जननेत्राणि सफलता साफल्य व्रजन्तु गच्छन्तु। ते तव दर्शन विलोकन प्रति सर्वाण्यन्त पुराण्यतीव समुत्सुकान्यतिसोत्कण्ठितानि। अत्रेति। अत्र विद्यागृहेऽय दशम सवत्सरो वर्षो भवतस्तव विद्यागृहमधिवसतोऽधितिष्ठत। अत्र 'अधिशीङस्थासाम्—' इत्याधारे द्वितीया। अथ च षष्ठं वर्षमनुभवंस्त्वं प्रविष्टोऽसि। विद्यागृहमिति शेष। एवमनन प्रकारेण सपिण्डितेन सकलितेनामुना षोडशेन वर्षेण त्वं प्रवर्धसे वृद्धि गच्छसि। तदिति हेत्वर्थे। कृतकृत्यत्वादिति भाव। अद्यप्रभृतीतो निर्गत्य दर्शनोत्सुकाभ्योऽखिलमातृभ्यो दर्शन दत्त्वाभिवाद्य च पादग्रहण कृत्वा गुरूणामपगत नियन्त्रण निरोधो यस्यैवंभूतो यथासुख राज्यसुखानि नवयौवनललितानि च विलसितान्यनुभव साक्षात्कुरु। समानय राजलोकम्। यथायोग्य समानदानेन राजलोक वशी कुर्वित्यर्थ। द्विजातीन्ब्राह्मणान्पूजय। वस्त्रादिप्रदानेनाराधयेत्यर्थ। प्रजा प्रकृतीन्परिपालय रक्षा कुरु। बन्धुवर्ग स्वजनवर्गमानन्दय प्रमोदय। अयं चेति। अय प्रत्यक्षोपलभ्यमानस्त्रिभुवने त्रिविष्टप एकमद्वितीय रत्नम्। स्वजातिषु सर्वोत्कृष्टमित्यर्थ। आविष्टलिङ्गत्वान्नपुसकत्वम्। 'वेदा प्रमाणम्' इतिवत्। अनिलो वायु गरुडो गरुत्मान्, तयो सम सदृशो जवो वेगो

अब (अपनी देखने की अभिलाषा की पूर्ति से) सफल हों। सारी अन्त पुर की महिलाएँ भी तुम्हारे दर्शन के लिए व्यग्र है। यहा विद्यागृह मे बसते हुए तुम्हे दसवाँ वर्ष है, और इसमे तुम अपने छठे वर्ष में प्रविष्ट हुए थे। इस प्रकार सब मिलाकर अब अपनी आयु के सोलहवें वर्ष में प्रविष्ट हो रहे हो। इसलिए आज से (विद्यागृह से) निकल कर (तुम्हारे) दर्शन के लिये व्यग्र सभी माताओं को दर्शन देकर, अपने बड़ों को प्रणाम करके, सब प्रकार के नियत्रणों से रहित होकर सुखपूर्वक राज्य के सुख और नयी जवानी के हर्षों को भोगो। सभी (सामन्त) राजकुमारों का आदर करो। ब्राह्मणों की पूजा करो। प्रजाओं के कल्याण की देख भाल करो। और (इस प्रकार) अपने सम्बन्धियों को हर्षित करो। और महाराज द्वारा (तुम्हारे लिये भेंट रूप मे) भेजा हुआ, तीनों भुवनों में अनुपम रत्न तथा वायु एव गरुड के बराबर गति (वेग) वाला इन्द्रायुध नाम का अश्व द्वार पर खड़ा है। और यह अश्व पारसीकों के राजा ने यह समझ कर कि यह तीनो भुवनों में अभूतपूर्व है निम्न सदेश के साथ

जलादुत्थितमयोनिजमिदमश्वरत्नमासादितं मया महाराजाधिरोहणयोग्यम्' इति संदिश्य प्रहितः। दृष्ट्वा च निवेदितं लक्षणविद्भिः—'देव, यान्युच्चैःश्रवसः श्रूयन्ते लक्षणानि तैरयमुपेतः। नैवंविधो भूतो भावी वा तुरङ्गमः' इति। तदयमनुगृह्यतामधिरोहणेन। इदं च मूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलप्रसूताना विनयोपपन्नाना शूराणामभिरूपाणां कलावतां च कुलक्रमागतानां राजपुत्राणा सहस्रं परिचारार्थमनुप्रेषितं तुरङ्गमारूढ द्वारि प्रणामलालसं प्रतिपालयति'। इत्यभिधाय विरतवचसि बलाहके चन्द्रापीडः पितुराज्ञां शिरसि कृत्वा नवजलधरध्वानगम्भीरया गिरा 'प्रवेश्यतामिन्द्रायुधः,' इति निर्जिगमिषुरादिदेश।

यस्य स तथा। इन्द्रायुध इति नाम यस्यैवंविधस्तुरङ्गमोऽश्वो महाराजेन स्वामिना प्रेषितः प्रहितो द्वारि विधागृहप्रतोल्यां तिष्ठति। खलु निश्चयेन। एष इन्द्रायुध पारसीकाधिपतिना यवनाधीशेन देवस्य स्वामिनस्त्रिभुवनाश्चर्यमिति कृत्वेति संदिश्येति कथयित्वा च प्रहित प्रेषित। इतिवाच्यमाह—इदमश्वरत्न मयासादित प्राप्त महाराजस्य स्वामिनस्तारापीडस्याधिरोहण आरोहणे योग्य समुचितम्। अस्मिन्नर्थे हेतुमाह—जलधीति। जलधिजलात्समुद्रोदकादुत्थितमतएवायोनिज पुंस्त्रीसम्बन्धादनुत्पन्नम्। दृष्ट्वा चेति। लक्षणविद्भि. शालिहोत्रशास्त्रज्ञैर्दृष्ट्वा निरीक्ष्य। तमिति शेष.। निवेदितं कथितम्। राज्ञ इति शेष। देव हे स्वामिन्, यान्युच्चैःश्रवस इन्द्रतुरङ्गमस्य लक्षणानि चिह्नानि श्रूयन्त आकर्ण्यन्ते तैर्लक्षणैरयमिन्द्रायुध उपेत. सहित'। एवंविध एतादृशस्तुरङ्गमो न भूत. पूर्वं नासीन्न भावी भविष्यति नाग्रे। तदिति हेत्वर्थे। अयमश्वोऽधिरोहणेनानुगृह्यतामनुग्रहविषयीक्रियताम्। इद राजपुत्राणा सहस्रं परिचारार्थं सेवार्थमनुप्रेषितम्। तुरङ्गमप्रेषणानन्तरं पश्चात्प्रेषितमिति भावः। एतदेव विशिनष्टि—मूर्धाभिषिक्ता ये पार्थिवा राजानस्तेषां कुलं वंशस्तत्र प्रसूतानामुत्पन्नानां, विनयेन मर्यादयोपपन्नानां सहितानाम्,

---

महाराज की सेवा में भेजा था कि समुद्र के जल से निकला हुआ, (किसी घोड़ी के) गर्भाशय से न उत्पन्न हुआ यह अश्व मैंने प्राप्त किया है—और यह महाराज द्वारा सवारी करने योग्य है''—और इसको देखकर सामुद्रिक विज्ञान के पंडितों ने सूचित किया था—'महाराज! जो लक्षण उच्चैःश्रवा के कहे जाते हैं उन सभी लक्षणों से यह अश्व युक्त है। ऐसा अश्व न कभी हुआ है, न होगा।'' इस लिए आप कृपा करके इसकी सवारी करें। और यहा द्वार पर, यथाविधि राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त राजाओं के कुलों में उत्पन्न, विनयी, शूरवीर सुन्दर और कलावान् (सुसस्कृत) एक सहस्र राजपुत्र आपकी सेवा (मे उपस्थित रहने) के लिए भेजे गये, अश्वों पर सवार आपको प्रणाम करने की लालसा वाले आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''
यह कहकर जब बलाहक मौन हो गया तब चन्द्रापीड ने पिता की आज्ञा को सिर नवाकर स्वीकार किया और विदा होने की इच्छा से, नये बादलों-की सी गर्जती गम्भीर वाणी में आज्ञा दी "इन्द्रायुध को भीतर ले आओ।''

अथ वचनानन्तरमेव प्रवेशितम्, उभयतः खलीनकटकावलग्नाभ्या पदे पदे कृताकुञ्चनप्रयत्नाभ्या पुरुषाभ्यामवकृष्यमाणाम्, अतिप्रमाणम्, ऊर्ध्वकर-पुरुषाप्राप्यपृष्ठभागम्, आपिबन्तमिव संमुखागतमखिलमाकाशम्, अतिनिष्ठुरेण मुहुर्मुहुः प्रकम्पितोदररन्ध्रेण हेषारवेण पूरितभुवनोदरविवरेण निर्भर्त्सयन्तमि-वालीकवेगदुर्विदग्ध गरुत्मन्तम्, अतिदूरमुन्नमता जवनिरोधस्फीतरोधघुरघुरायमाण-

शूराणां साहसगुणोपेतानाम्, अभिरूपाणां पण्डितानाम्, कलावतां विज्ञानवताम्, कुलक्रमागतानाम्, तुरङ्गमारूढमश्वाधिरूढं द्वारि प्रतोल्यां प्रणामलालस प्रणामो नमस्कारस्तत्र लालस कृतस्पृह प्रतिपालयति कालक्षेपं करोति। इत्यभिधायेत्युक्त्वा बलाहके विरतवचसि सति चन्द्रापीड पितुराज्ञां जनकनिर्देश शिरसि मस्तके कृत्वारोप्य। नवेति। नवो यो जलधरो मेघस्तस्य यो ध्वान शब्दस्तद्वद्गम्भीरया मन्द्रया गिरा वाचा तवो निर्जिगमिषुर्निर्गन्तुमिच्छुरिन्द्रायुध प्रवेश्यतामानीयतामित्यादिदेशाज्ञां दत्तवान्। अथ एतद्वचनानन्तरमेव प्रवेशित प्रवेश कारित-मिन्द्रायुधनामानमश्वमद्राक्षीदिति दूरेणान्वय। तत्राश्वस्य यथासम्भवं क्रियागुणद्रव्यजातिभि स्वभाव वर्णयितु तद्विशेषणान्याह—खलीनेति। खलीनकं मुखयन्त्रण तस्य कटके वलये तत्रा-वलग्नाभ्यामासक्ताभ्या पदे पदे प्रतिपद कृत विहितमाकुञ्चन आकर्षणे प्रयत्नो याभ्यामेव-विधाभ्यां पुरुषाभ्यामुभयतोऽवकृष्यमाणमितस्ततो विक्षिप्यमाणम्। अतिप्रमाणमतिमहान्तम्। ऊर्ध्वमुच्चै करो यस्यैवम्भूतेन पुरुषेण प्राप्य स्प्रष्टुं योग्य पृष्ठभागो यस्य स तम्। अस्य व्यादानस्वभावमाह—आपिबेति। समुखागतमभिमुखागतमखिल समग्रमाकाश व्योमापि बन्तमिवास्वादयन्तमिव। निजजवेनेत्यध्याहार। अतीति। अतिनिष्ठुरेणातिकठिनेन मुहुर्मुहुः प्रकम्पितमुदररन्ध्र जठरविवर येनैवम्भूतेन हेषारवेण हेषाशब्देन। कीदृशेन। पूरितेति। पूरितं व्याप्त भुवनोदरविवरं येन स तेन। अलीको वितथो यो वेगो जवस्तेन दुर्विदग्ध मिथ्याभिमानिन गरुत्मन्त सौपर्णेय निर्भर्त्सयन्तमिव तिरस्कार कुर्वन्तमिव। क्रियास्वभावमाह—अतीति। अतिदूरमतिशयेनोन्नमतोर्ध्वं कुर्वता शिरोभागेनोत्तमाङ्ग-प्रदेशेन। कीदृशेन। जवस्य वेगस्य यो निरोध स्खलना तेन स्फीतो बहुलो रोष क्रोधस्तेन घुरघुरायमाणा घुरघुरेति शब्द कुर्वाणा घोणा नासिका यस्य स तेन। निज स्वकीयो

तब चन्द्रापीड ने अपने कहते ही तत्काल भीतर लाये हुए, दोनों ओर लगाम के सोने के वलयाकार टुकड़ों को पकड़े हुए और कदम पर उसको झुकाने का यत्न करने वाले दो मनुष्यों से खींचे जा रहे अत्यन्त उत्कृष्ट अश्व इन्द्रायुध को देखा। वह अश्व बहुत बड़ा था, उसकी पीठ ऊँचा हाथ किये (खड़े) मनुष्य द्वारा ही प्राप्य थी, वह अपने सामने पड़ते सारे आकाश (खाली स्थान) को मानो पीना चाह रहा था, वह अपनी अत्यन्त कर्कश बार-बार उसकी उदरदरी को कम्पाती, और विश्व में के सारे खाली स्थानों को भरती हिनहिनाहट से, झूठे वेग के मिथ्याभिमानी गरुड का मानो तिरस्कार कर रहा था, प्रतिक्षण झुकाये जाते तथा बहुत दूर तक ऊपर को उठाये जाते, (उसके) वेग के नियन्त्रण पर अत्यन्त क्रोधपूर्वक घुर

घोणेन शिरोभागेन निजदर्पवशादुल्लङ्घनार्थमाकलयन्तमिव त्रिभुवनम्, असितपीतहरितपाटलाभिराखण्डलचापानुकारिणीभिर्लेखाभिः कल्माषितशरीरम्, आस्तीर्णविविधवर्णकम्बलमिव कुञ्जरकलभम्, कैलासतटाघातधातुधूलिपाटलमिव हरवृषभम्, असुररुधिरपङ्कलेखालोहितसटमिव पार्वतीसिंहम्, रहःसघातमिव मूर्तिमन्तम्, अनवरतपरिस्फुरत्प्रोथपुटोन्मुक्तसूत्कारेणातिजवापीतमनिलमिव नासिकाविवरेणोद्वमन्तम्, अन्तःस्खलितमुखरखलीनखरशिखरक्षोभजन्मनो लालाजलभुवः फेनपल्लवानुदधिनिवासपरिपीतामृतरसगण्डूषानिवोद्गिरन्तम्, अत्यायतमतिनिर्मांसतया समुत्कीर्ण-

---

यो दर्पोऽहकार तद्वशात् उल्लङ्घनार्थमतिक्रमणार्थ त्रिभुवन त्रिविष्टपमाकलयन्तमिव विचारयन्तमिव। पुन प्रकारान्तरेण तमेव विशिनष्टि—असितेति। आखण्डलस्येन्द्रस्य यच्चाप धनुस्तदनुकारिणीभिरसितपीतहरितपाटलाभिर्लेखाभि कल्माषित कर्बुरित शरीर देहो यस्य स तम्। कर्बुरशरीरादेवोत्प्रेक्षामाह—आस्तीर्णेति। आस्तीर्णं आच्छादितो विविधवर्णो विचित्ररागः कम्बलो रल्लको यस्मिन्नेतादृश कुञ्जरकलभमिव। कैलासस्य रजताद्रेर्यस्तटाघातो वप्रप्रघातस्तस्य या धातुधूलिर्गैरिकक्षोदस्तया पाटल श्वेतरक्तं हरवृषभमिवेश्वरधवलमिव। असुरस्य यो रुधिरपङ्को रक्तकर्दमस्तस्य या लेखा ततिस्तया लोहिता रक्ता सटा केसरा यस्यैवविध पार्वतीसिंहमिव। रहो वेगस्तस्य सघात समूहमिव मूर्तिमन्त देहधारिणम्। क्रियास्वभावमाह—अनवरतेति। अनवरत निरन्तरं परिस्फुरदितस्तत प्रसरत्प्रोथो मुखाग्र तस्य पुटादुन्मुक्तो य सूत्कारोऽव्यक्त शब्दस्तेनातिजवेन वेगेनापीतमास्वादितमनिलमिव वायुमिव नासिकाविवरेण नासारन्ध्रेणोद्वमन्त बहिर्निष्कासयन्तम्। द्रव्यस्वभावमाह—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये स्खलित स्खलना प्राप्त मुखरं वाचाल यत्खलीन कवीय तस्य खर लोहकण्टकयुक्त यच्छिखरमग्रं तस्माद्य क्षोभ परिश्रमस्तज्जन्मोत्पत्तिर्येषा तॉल्लालाजलभूरुपादानं येषां तान्फेनपल्लवान्फेनो मुखकफ उदधौ

घुराते नथुनों वाले सिर से वह अपने वेग के अभिमान के कारण तीनों भुवनों को लाघने के लिये मानो (त्रिभुवन को) माप रहा था, काली, पीली, हरी और गुलाबी रग की (और इसी कारण) इन्द्र धनुष से मिलती-जुलती धारियों से उसका शरीर चितकबरा हो गया था, (जिस पर) भिन्न-भिन्न रगों के कम्बल बिछा दिये हों मानो ऐसा गज शिशु था, कैलाश (पर्वत) की ढालू भूमि (तट) से हुए टकराव से (झड़ी) (खनिज) धातुओं की धूल से गुलाबी हुआ शिवजी का वृषभ सा प्रतीत हो रहा था, असुर (महिषासुर) के जमे हुए रक्त के लेप की रेखाओं से लाल हुई सटाओं वाला पार्वती का सिंह-सा था, मानो साक्षात् शरीरधारी वेग का ढेर था, निरन्तर कपकपाती नथुनों मेंसे निकलती सूँ सूँ के बहाने मानो वह अपनी नाक मे से अपने अत्यन्त वेग के समय पी गयी वायु को ही उगल रहा था; (अपने मुख के) भीतर खिसकने से शोर करते लगाम के पैने सिरों द्वारा उत्पादित क्षोभ से निकली लार से उत्पन्न फेनों को, उगलता हुआ वह ऐसे प्रतीत हो रहा था कि मानो समुद्र में निवास के समय पिये हुए अमृत रस को मुह में भर-भर कर उगल रहा हो, उसका मुह बहुत लम्बा और माँस

मिव वदनमुद्वहन्तम्, आननमण्डलनिहितारुणमणिसमुद्गतैरंशुकलापैरुपेतेनावसक्तरक्तचामरेणेव निश्चलशिखरेण कर्णयुगलेन विराजमानम्, उज्ज्वलकनकशृङ्खलारचितरश्मिकलापकलितया लाक्षालोहितलम्बलोलसटासंतानया जलनिधिसंचरणलग्नविद्रुमपल्लवयेव शिरोधरयोपशोभितम्, अतिकुटिलकनकपत्रलताप्रतानभङ्गुरेण पदे पदे रणितरत्नमालेन स्थूलमुक्ताफलप्रायेण तारागणेनेव संध्यारागमरुणेनाश्वालकारेणालकृतम्, अश्वालंकारनिहितमरकतरत्नप्रभाश्यामायमानदेहतया गगनतलनिपतितदिवस-

समुद्रे यो निवासोऽवस्थान तत्र परिपीतो योऽमृतरस पीयूषरसस्तस्य गण्डूषानिव चुलुकानिवोद्गिरन्त वमन्तम्। अत्यायतमतिविस्तीर्णम्। जातिस्वभावमाह—अतीति। अतिनिर्मांसतया सर्वथा विगतमासतया समुत्कीर्णमिव यन्त्रकर्षितमिव वदनमाननमुद्वहन्त धारयन्तम्। आननमण्डल मुखमण्डल तत्र निहिता स्थापिता येऽरुणमणय पद्मरागरत्नानि तेभ्य समुद्गतैर्नि सृतैरंशुकलापैर्दीप्तिसमूहैरुपेतेन सहितेनावसक्तानि लग्नानि रक्तचामराणि लोहितबालव्यजनानि यस्मिन्नेवभूतेनेव निश्चल स्थिरं शिखरमग्र यस्य स तेन कर्णयुगलेन श्रवणद्वितयेन विराजमान शोभमानम्। तस्य शृङ्गारवर्णनद्वारा विशेषयन्नाह—उज्ज्वलेति। उज्ज्वला निर्मला या कनकशृङ्खला सुवर्णशृङ्खला तया रचिता निर्मिता ये रश्मयोऽश्वानां सयमनार्थोरज्जवस्तेषां कलापस्तेन कलितया सहितया। लाक्षेति। लाक्षा जतु तद्वल्लोहिता रक्ता लम्बा विस्तीर्णा लोलाश्चपला या सटा स्कन्धकेसरास्तस्या सतान यस्या सा तया। जलनिधौ समुद्रे यत्सचरण भ्रमण तत्र लग्ना आसक्ता विद्रुमपल्लवा प्रवालकिसलया यस्यामेवविधयेव शिरोधरया ग्रीवयोपशोभित विराजितम्। अलंकारद्वारा विशेषयन्नाह—अतीति। अतिकुटिलातिवक्रा या कनकपत्रलता सुवर्णपत्रभङ्गिस्तस्याः प्रतानं समूहस्तेन भङ्गुरेण वक्रेण पदे पदे रणिता शब्दिता रत्नमाला यस्मिन्स तेन। स्थूलमुक्ताफलानि प्रायो बाहुल्येन सततिर्यस्मिन्नेवभूतेनारुणेन रक्तेना-

रहित होने से नक्काशी किया हुआ-सा प्रतीत होता था, मस्तक पर (अलकार रूपमें) रखी हुई लालमणि से निकली किरणों से युक्त, (इसी लिए) मानो उनपर लाल चँवरी लटकायी हुई हो ऐसे प्रतीत होते, निश्चय अग्रभागों वाले दो कानों से सुशोभित था, वह (अपनी) चमकती सोने की शृङ्खलाओं से निकलती किरणों के समूह से अधिकृत, तथा (इस पर लटकती) लाख के रग सी लाल, लम्बी (अथवा घनी) तथा लहराती सटाओं के जाल वाली, (इस प्रकार) समुद्र में (जहाँ वह पहले रहता था) चलने-फिरने के कारण उस पर मानो प्रवाल की शाखाएँ लग गयी हो—ऐसी प्रतीत होती गर्दन से सुशोभित था, जिस प्रकार तारों के पुज से सायकालीन लाल-पीला साध्य प्रकाश सुशोभित होता है ऐसे ही वह अत्यन्त वक्र रेखाओं में चित्रित सुनहरी बेलबूटों से जड़ित,[१] तथा पग-पग पर शब्द करती मणिमाला से युक्त और अधिकतर स्थूल मोतियों से बने अश्वालकार से अलकृत था, अश्वालकार में जड़े यन्त्रों के कारण हरे-से प्रतीत होते शरीर के कारण वह आकाश से गिरे सूर्य रथ के (हरे) अश्व का भ्रम

१, अत्यन्त वक्र सुवर्ण पत्रों की लहरियों के ताने बाने से वक्र।

करस्थतुरङ्गमशङ्कामिवोपजनयन्तम्, अतितेजस्वितया जवनिरोधरोषवशात्प्रतिरोमकूपमुद्गतानि सागरपरिचयलग्नानि मुक्ताफलानीव स्वेदलवजालकानि वर्षन्तम्, इन्द्रनीलमणिपादपीठानुकारिभिरञ्जनशिलाघटितैरिवानवरतपतनोत्पतनजनितविषमखरमुखरवैः पृथुभिः खुरपुटैर्जर्जरितवसुधैर्मुरजवाद्यमिवाभ्यस्यन्तम्, उत्कीर्णमिव जङ्घासु, विस्तारितमिवोरसि, श्लक्ष्णीकृतमिव मुखे, प्रसारितमिव कंधरायाम्, उल्लिखित-

---

श्वालकारेणालङ्कृत भूषितम्। अलकारस्यारुणत्वान्मुक्ताफलाना च श्वेतत्वादुत्प्रेक्षामाह—तारेति। तारागणेन विभूषित सध्यारागमिव। सध्यारागपक्षेऽरुणो गरुडाग्रज प्रकृते रक्तिमा। पुनरुप मानान्तरमाह—अश्वेति। अश्वालकारे निहितानि स्थापितानि यानि मरकतरत्नान्यश्मगर्भानि तेषा प्रभा कान्तिस्तया श्यामायमान कृष्णता समाचरमाणो देहो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया गगनतलादाकाशतलान्निपतितो यो दिवसकरस्य सूर्यस्य रथतुरङ्गम स्यन्दनहयस्तस्य शङ्कामारेकामुपजनयन्तमिवोत्पादयन्तमिव। सूर्यरथाश्वाना हरितत्वादिति भाव। अतितेजस्विनो भावोऽतितेजस्विता तया जवस्य वेगस्य यो निरोधोऽन्तरान्तरा रुन्धन तस्माद्यो रोष क्रोधस्तद्वशाच्चेति हेतुद्वयम्। प्रतिरोमकूप प्रतिरोमरन्ध्रमुद्गतानि प्रादुर्भूतानि स्वेदलवजालकानि प्रस्वेदबिन्दुसमूहानि वर्षन्तं वृष्टिं कुर्वन्तम्। श्वेतत्वसाम्यादुपमानान्तरमाह—सागरेति। सागरपरिचयात्समुद्रोत्पन्नत्वाल्लग्नानि मुक्ताफलानीव रसोद्भवानीव। शालिहोत्रोक्ता खुरपुटेषु गुणा। तद्द्वारा विशेष यन्नाह—इन्द्रेति। इन्द्रनीलमणिनिर्मित यत्पादपीठं पदासन तदनुकारिभिस्तत्सादृश्यधारिभि। अतोऽञ्जनशिलाघटितैरिव श्यामशिलानिर्मितैरिवानवरत निरन्तर यत्पतनोत्पतनमुत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमन तस्माज्जनित समुत्पन्नो यो विषमोऽसदृश स्वर कठिनो मुखरवो येषा तै। पृथुभिर्विस्तीर्णैर्जर्जरिता जर्जरीकृता वसुधरा पृथ्वी यैरेवंविधै खुरपुटै शफपुटैर्मुरजवाद्यमिव मृदङ्गवाद्यमिवाभ्यस्यन्तमभ्यास कुर्वन्तम्। पुनरप्यस्य शालिहोत्रप्रोक्तमवयवेषु गुणातिशय वेगलाघवक्रियातिशय च प्रतिपादयितुमस्य विशेषणान्याह—उत्कीर्णेति। उत्कीर्णमिव यन्त्रघर्षितमिव

उत्पन्न करता सा प्रतीत होता था, अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण (सेवकों द्वारा अपने) वेग को रोक देने पर उत्पन्न क्रोध से (शरीर के) प्रत्येक रोम छिद्र से निकलते पसीने के बिन्दुओं के गुच्छों की इस प्रकार वर्षा कर रहा था कि मानो वे रत्नों से भरे समुद्र में रहने के कारण लगे हुए मोती हों, इन्द्र नीलमणि निर्मित चौकियों से प्रतीत होते, अजन की शिलाओं से बने-से लगते, निरन्तर (भूमि पर) गिरते-उठते रहने से जिनके अग्रभाग से बेसुरा तथा कर्कश शब्द उत्पन्न हो रहा था—ऐसे, बड़े बड़े बलपूर्वक पृथ्वी से टकराते (उसकी तोड़ फोड़ करके) खोल खुरों से मानो वह मृदङ्ग बाजा बजाने का अभ्यास कर रहा था,

उसकी जघाएँ ऐसी थीं कि मानो (काष्ठ अथवा पत्थर मे से) काटकर बनायी गयी हों, उसका वक्षस्थल इतना विशाल था कि मानो फैलाया गया हो, वह इतना सुडौल था कि मानो छील कर बनाया गया हो, गर्दन इतनी लम्बी थी कि मानो खींचकर लम्बी की गयी

मिव पार्श्वयोः द्विगुणीकृतमिव जघनभागे, जवप्रतिपक्षमिव गरुत्मतः त्रैलोक्य-सचरणसहायमिव मारुतस्य, अशावतारमिवोच्चैःश्रवसः, वेगसब्रह्मचारिणमिव मनसः हरिचरणमिव सकलवसुधरोल्लङ्घनक्षमम्, वरुणहंसमिव मानसप्रचारम् मधुमासदिवसमिव विकसिताशोकपाटलम्, व्रतिनमिव भस्मसितपुण्ड्रकाङ्कित मुखम्, कमलवनमिव मधुपङ्कपिङ्गकेसरम्, ग्रीष्मदिवसमिव महायाममुग्रतेजस

जङ्घासु प्रसिद्धासु। विस्तारितमिव प्रसारितमिवोरसि हृदये। श्लक्ष्णीकृतमिव सौन्दर्यविशेषमापादितमिव मुखे वदने। प्रसारितमिव विस्तीर्णीकृतमिव कधराया ग्रीवायाम्। उल्लिखितमिवोत्कीर्णमिव पार्श्वयो प्रसिद्धयो नानागुणव्यञ्जकरेखोपरेखावत्वादित्युपमानम्। द्विगुणीकृतमिव द्विगुणतामापादितमिव जघनभागेऽग्रभागे। जवप्रतिपक्षमिव वेगदस्युमिव गरुडस्य। त्रैलोक्यसचरणसहायमिव त्रिविष्टपगमनसखायमिव। मारुतस्य वायो। उच्चैःश्रवस इति। उच्चैःश्रवा अमृतमथनसमुत्पन्नोऽश्वो देवराजस्य तस्याशावतारमिवाशेनावतरणमिव। मनसो वेगस्य सब्रह्मचारिण सतीर्थ्यमिव। अश्वस्य राजमातङ्ग इतिवन्मनसोऽभिन्नत्वेऽपि सबन्ध। सकलवसुंधरोल्लङ्घनक्षम हरिचरणमिव जनार्दनपादमिव। वरुणस्य प्रचेतसो यो हसस्तमिव। इत उभयविशेषणानि—मानसप्रचार मानस मनस्तद्वत्प्रचारो गमन यस्य स तम्। पक्षे मानससरसि प्रचारो यस्येति विग्रह। अत्र वरुणेतिपदमुत्कर्षातिशयप्रतिपादनार्थम्। मध्विति। मधुमासो वसन्तमासस्तस्य यो दिवसो दिन चैत्रमासदिन तद्वदिव विकसितो योऽशोक कङ्केल्लिस्तद्वत्पाटलं श्वेतरक्तम्। पक्षे विकसितानि विनिद्राण्यशोकानि कङ्केल्लि-पुष्पाणि पाटलानि पाटलवृक्षकुसुमानि यस्मिन्। अशोकै पाटल इति वा। भालस्थश्वेतपट्टाभिप्रायेणाह—व्रतिनमिति। व्रतिन सन्यासिनमिव। भस्मवत्सित शुक्ल यत्पुण्ड्रक तिलकं तेनाङ्कित चिह्नित मुख यस्य स तम्। पक्षे भस्मन सित तिलकम्। शेष पूर्ववत्। कमलस्य नलिनस्य यद्वन तदिव। मधुयुक्तो य पङ्को वचाकर्दमस्तेन पिङ्गानि बभ्रूणि। रक्तपीतानीत्यर्थ।

हो, दोनों बगलें मानो खोद कर बनायी गयी थीं, नितम्ब प्रदेश तो मानो दुहरा कर दिया गया था, वह वेग में तो मानो गरुड़ का प्रतिद्वन्द्वी ही था, तीनों लोको में घूमने फिरने में वायु का मानो सहायक ही था, उच्चैःश्रवा (स्वर्गीय अश्व) का मानो आंशिक अवतार ही था, वेग का अभ्यास करने में मानो मन का सहाध्यायी था, एक पॉव से पृथ्वी को लॉघने में समर्थ विष्णु के पाँव की भॉति सारी पृथ्वी को (बिना थके) लॉघने में समर्थ था, मानससरोवर में तैरने वाले वरुण (के वाहन)–हस के समान मनके वेग से दौड़ने वाला था, खिले हुए अशोक तथा पाटल पुष्पोंसे युक्त वसन्तऋतु के दिनकी भॉति खिले हुए अशोक वृक्ष के फूलों सा लाल लाल दिखायी दे रहा था, भस्मसे श्वेत पुण्ड्रक चिह्नसे चिह्नित मुख वाले व्रतधारी पुरुष की भॉति भस्म के समान श्वेत, त्रिपुण्ड जैसे बालों के गुच्छे से अकित मुख वाला था। शहद के गाढ़े रस से पीले केसर वाले कमलवन की भॉति उसकी सटायें सुरा की कीच जैसी लाल पीली थीं, अत्यन्त लम्बाई वाले (अथवा पहरों वाले) तथा तेज गर्मी वाले ग्रीष्म ऋतु के दिन की भॉति

च, भुजगमिव सदागत्यभिमुखम्, उदधिपुलिनमिव शङ्खमालिकाभरणम्, भीतमिव स्तब्धकर्णम्, विद्याधरराज्यमिव चक्रवर्तिनरवाहनोचितम्, सूर्योदयमिव सकलभुवनार्घार्हम्, अश्वातिशयमिन्द्रायुधमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च तमदृष्टपूर्वममानुषलोकोचिताकारमखिलत्रिभुवनराज्योचितमशेषलक्षणोपपन्नमश्वरूपातिशयमतिधीरप्रकृतेरपि चन्द्रा-

---

केसराणि स्कन्धरोमाणि यस्मिन्। उक्त हि वैद्यके—'अश्वस्य वातादिदोषशान्तये मधुयुक्तव चादिचूर्णस्य पङ्कस्तेन तनुलेपनम्'। पक्षे मधु पुष्परसस्तस्य पङ्क कर्दमस्तेन पिङ्गानि केसराणि यस्मिन्। ग्रीष्मस्य निदाघस्य दिवसो वासरस्तमिव महायाम महानायामो विस्तारो यस्य स तम्। पक्षे महान्याम प्रहरो यस्मिन्। उग्रतेजस च। विशेषणमुभयत्र समानम्। भुजग सर्पस्तद्वदिव सदा निरन्तर या गतिर्गमन तस्या अभिमुख सम्मुखम्। पक्षे सदागतिर्वायुस्तस्याभिमुखम्। वातपानकारित्वात्। उदधि समुद्रस्तस्य पुलिन सैकत तद्वदिव शङ्खा कम्बवस्तेषा मालिका पंक्ति. सैवाभरण भूषण यस्येत्यभङ्गश्लेष। अश्वाना गले शङ्खमालिकाबन्धनस्य सर्वत्र प्रसिद्धत्वात्समुद्रपुलिनोपमानम्। भीत भयाकुलं तद्वदिव स्तब्धौ निश्चलौ कर्णौ श्रोत्रे यस्येत्यभङ्गश्लेष। विद्याधरा व्योमचारिणस्तेषां राज्यमाधिपत्य तदिव चक्रवर्ती यो नरस्तस्य वाहनम् उद्वहनम् उचित योग्यम्। पक्षे चक्रवर्ती यो नरवाहनो वत्सराजसुतो विद्याधरस्तस्योचितं योग्यम्। विद्याधरादिषु नरवाहनराजकीयत्वस्य प्रसिद्धत्वादिस्युपमानम्। सूर्योदयमिव सकल समग्र भुवन जगदेवार्घो मूल्य तस्यार्हं योग्यम्। सर्वोत्कृष्टमित्यर्थ.। पक्षे सकलभुवनस्यार्घं पूजा तस्यार्हम्। योग्यमित्यर्थ। 'सकलभुवननाथार्हम्' इति कुत्रचित्पाठ। तत्र समग्रभुवनस्य नाथ स्वामी तस्यार्हं योग्यम्। पक्षे सकलभुवनस्य नाथ आशीस्तस्या अर्हं योग्यम्। ध्वान्तध्वंसकत्वेन त्रिभुवनेन मङ्गलशसनमस्य क्रियत इति भाव। अश्वेषु तुरङ्गमेष्वतिशयमत्युत्कृष्टमेवविधमिन्द्रायुधमद्राक्षीदपश्यदिति। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तमदृष्टपूर्वमनवेक्षितपूर्वं दृष्ट्वा विलोक्यातिधीरप्रकृतेरप्यतिसाहसभावस्यापि चन्द्रापीडस्य हृदय विस्मयमाश्चर्य

उसकी लम्बाई बहुत अधिक थी और वह अत्यन्त तेजस्वी था, वायु की ओर मुख किये रहनेवाले (अथवा जिस ओरसे वायु आ रही होती है उस ओर अपना मुँह किये रहने वाले) सर्प की भाँति वह सदा गति की ओर मुँह किये रहता था, (सदा चल पड़ने के लिये तैयार रहता था), शङ्खमालाओंका भूषण धारण किये रहने वाले)—अर्थात् शङ्खमालाओं से भूषित समुद्र के तट की भाँति वह उसकी (गर्दन पर) शङ्खमालाओंका आभूषण पड़ा हुआ था, सुन्न हुए कान वाले भयभीत व्यक्ति की भाँति, उसके कान निश्चल थे, चक्रवर्ती नरवाहनदत्त (नरवाहन) नाम के राजा के (भोगने) योग्य विद्याधरों के स्वामित्व की भाँति वह चक्रवर्ती पुरुष की सवारी के ही योग्य था, और सारे संसार से पूजा किये जाने योग्य सूर्योदय की भाँति वह सारे ससार के मूल्य के बराबर मूल्य वाला था।

और उस अदृष्ट पूर्व, मनुष्यागम्य लोक के योग्य आकार वाले, सारे के सारे तीनों लोकों के स्वामित्व के लिए योग्य, और सभी (मागलिक) शरीर लक्षणोंसे युक्त इन्द्रायुध को देखकर

पीडस्य पस्पर्श विस्मय हृदयम्। आसीच्चास्य मनसि—'सरभसपरिवर्तनवलितवासुकिभ्रमितमन्दरेण मथ्नता जलधिजलमिदमश्वरत्नमनभ्युद्धरता किं नाम रत्नमुद्धृत सुरासुरलोकेन। अनारोहता च मेरुशिलातलविशालमस्य पृष्ठमाखण्डलेन किमासादित त्रैलोक्यराज्यफलम्। उच्चैःश्रवसा विस्मितहृदयो वञ्चितः खलु जलनिधिना शतमखः। मन्ये च भगवतो नारायणस्य चक्षुर्गोचरमियता कालेन नायमुपगतो येनाद्यापि तां गरुडारोहणव्यसनिता न त्यजति। अहो खल्वतिशयितत्रिदशराज्यसमृद्धिरियं तातस्य राज्यलक्ष्मीर्यैदेवविधान्यपि सकलत्रिभुवनदुर्लभानि रत्नान्युप-

---

पस्पर्श स्पृष्टवदित्यन्वय। तमेव विशेषयन्नाह—अमानुषेति। अमानुषो यो लोको देवलोकस्तस्योचितो योग्य आकार आकृतिर्यस्य स तम्। अखिल समग्र त्रिभुवनराज्य यस्य, अखिलं त्रिभुवनराज्य वा तस्योचित योग्यम्। अशेषलक्षणैरुपपन्न सहितम्। अश्वस्य यद्रूप तदेवातिशयमस्युत्कृष्ट यस्मिन्। अस्य चन्द्रापीडस्य मनसि चित्त इदमासीद्बभूव। तदेवाह—सरभसेति। सरभस वेगवत्तर परिवर्तनार्थं वलितो बद्धो यो वासुकि सर्पस्तेन भ्रमितो यो मन्दरो मेरुस्तेन जलधिजल समुद्रपानीय मथ्नता विलोडयतेदमश्वरत्नमनभ्युद्धरतागृह्णता सुरासुरलोकेन किमिति प्रश्ने। नामेति कोमलामन्त्रणे। रत्न वस्तूद्धृतम्। न किंचिदुद्धृतमिति भाव.। अनेति। मेरुशिलातलवद्विशाल विस्तीर्णमस्य पृष्ठ पृष्ठिप्रदेशमनारोहतानधिरोहताखण्डलेनेन्द्रेण त्रैलोक्य राज्यफल किमासादितम्। न किमपीत्यर्थं। उच्चैरिति। खलु निश्चयेन उच्चैःश्रवसा कृत्वा विस्मितहृदयो हर्षितहृदयो जलनिधिना समुद्रेण शतमख इन्द्रो वञ्चितो विप्रतारित। गुणातिशय प्रतिपादयितु वितर्कमाह—मन्ये चेति। अहमिति मन्य इति जाने। इयता कालेन भगवतो नारायणस्य चक्षुर्गोचर नेत्रविषयमयं नोपगतो न प्राप्त। हेतुमाह—येनेति। येन हेतुनाप्येतावत्कालपर्यन्तमपि। ता गरुडारोहणव्यसनिता वैनतेयाधिरोहणासक्तता न त्यजति न जहाति। अहो इत्याश्चर्ये। खलु निश्चयेन तातस्य मत्पितुरियं राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्रीरतिशयि-

---

अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाले भी उस चन्द्रापीड का हृदय विस्मित हो गया। और तब उसके मनमे इस प्रकारके विचार उठे—"वेगपूर्वक घुमावों से अपनी ओर घुमाये गये वासुकि के द्वारा अन्दर पर्वत द्वारा समुद्रजलका विलोडन करते हुए देवताओं तथा असुरों ने यदि इस अश्वरूपी रत्न को नहीं निकाला तो मुझे आश्चर्य है कि उन्होंने कौन सा रत्न निकाला था? और इन्द्र ने जब मेरु पर्वत की शिला के तल जितनी विशाल इसकी पीठपर सवारी नहीं की तो उसको तीनों भुवनों के स्वामित्व का क्या फल मिला? निश्चय ही, उच्चैःश्रवा (की प्राप्ति) से विस्मित मन वाले इन्द्र को समुद्र ने ठग ही लिया था। और मैं समझता हूँ कि यह (उच्चैःश्रवा) इतने समय मे भी भगवान् विष्णु की आँखों मे नहीं पड़ा (विष्णु को नहीं अच्छा लगा) क्योंकि वह आज तक भी गरुड़ पर सवारी करने की अपनी आसक्ति (व्यसनिता) को नहीं छोड़ता है। अहो! मेरे पिता की यह राज्यश्री वस्तुत. स्वर्गाधिपति की समृद्धि से भी बढ़ी चढ़ी है कि ऐसे सारे के सारे तीनों

करणतामागच्छन्ति। अतितेजस्वितया महाप्राणतया च सदैवतेवेयमस्याकृतिर्यत्सस्य-मारोहणे शङ्कामिव मे जनयति। न हि सामान्यवाजिनाममानुषलोकोचिताः सकलत्रिभुवनविस्मयजनन्य ईदृश्यो भवन्त्याकृतयः। दैवतान्यपि हि मुनिशाप-वशादुज्झितनिजशरीराणि शापवचनोपनीतान्येतानि शरीरान्तराण्यध्यासत एव। श्रूयते हि पुरा किल स्थूलशिरा नाम महातपा मुनिरखिलत्रिभुवनललामभूता-मप्सरसं रम्भाभिधाना शशाप। सा सुरलोकमपहायाश्वहृदये निवेश्यात्मानमश्व-हृदयेति विख्याता वडवा मृत्तिकावत्यां शतधन्वान नाम राजानमुपसेवमाना

तातिक्रान्ता त्रिदशराज्यसमृद्धिर्देवाधिपत्यश्रीर्ययैवंविधा वर्तते। अस्मिन्नर्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह—यदिति। एवंविधान्यपि पूर्वोक्तस्वरूपाण्यपि सकलत्रिभुवनदुर्लभानि त्रिजगद्दुष्प्राप्याणि रत्नान्युपकरणतां परिभोग्यतामागच्छन्ति प्राप्नुवन्ति। अतीति। अतितेजस्वितया महाप्राणतया महासाहसपराक्रमतया। चकार समुच्चयार्थः। अस्य अश्वस्येयमाकृतिराकार सदैवता स्वर्वासिना सहवर्तमाना। अधिष्ठितेति यावत्। सत्यमेतद्यस्मादारोहणाऽधिरोहणे मे मम शङ्कामिव जनयति। नहि सामान्यवाजिनां दैवतानधिष्ठिततुरङ्गमाणाममानुषलोकोचिता सुरलोकयोग्या सकल समग्र यस्त्रिभुवन त्रिविष्टप तस्य विस्मयजनन्य आश्चर्योत्पादिन्य ईदृश्य एतादृशा आकृतय आकारा भवन्ति। देवानामपि रूपान्तरग्रहण सम्भवतीत्याशयेनाह—दैवतेति। हीति निश्चितार्थे। दैवतान्यपि नाकिनोऽपि मुनयो योगिनस्तेषां शापवशादननुग्रहबलादुज्झितानि त्यक्तानि निजशरीराणि यैरेवभूतानि शापवचनोपनीतानि शापवाक्यप्रापितानि शरीरान्तराणि स्वशरीरात्त्रिभेन्द्रियायतनान्यध्यासत एवाश्रयन्त्येव। श्रूयते हीति। किलेति सत्ये। हि निश्चये। श्रूयते आकर्ण्यते। पुरा पूर्वं स्थूलशिरा नाम महातपा मुनिरखिल समग्र यस्त्रिभुवन त्रिविष्टपं तत्र ललामभूताभरणभूतामप्सरस स्वर्वधूम्। क्वचिदेकवचनान्तोऽप्ययम्। तदुक्तम्—'स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्यादेकत्वेऽप्सरा इति' इति। रम्भाभिधानां रम्भानाम्नीं शशाप शाप दत्तवान्। सा सुर-

---

भुवनों में दुर्लभ रत्न भी उसकी सामग्री के अग बनते हैं। इसके तेजस्वी तथा उच्च पौरुषवान् होने के कारण ऐसा लगता है कि मानो इसकी इस आकृति में यह कोई देवता न हो—इसी कारण, सच तो यह है कि जब मैं इसपर सवार होने की बात सोचता हूँ तो मेरा यह विचार मेरे मन में कुछ कुछ भय-सा उत्पन्न कर देता है। साधारणतया पाये जाने वाले—सामान्य घोड़ों की ऐसी केवल अमानुषी लोकों के योग्य सारे के सारे तीनों भुवनों को आश्चर्यान्वित कर देने वाली आकृतियाँ नहीं होतीं। देवता आदि तक भी, मुनि के शाप के आज्ञावर्ती होकर, अपने शरीरों को छोड़ देते हैं और फिर शाप के वचनों द्वारा उनको समर्पित दूसरे शरीरों में आश्रय ले लेते हैं। यह बात सुनी जाती है कि—पहले कभी स्थूलशिरा नाम के महान् तपस्वी मुनि ने सारे के सारे तीनों भुवनों मे रत्न-सरीखी रम्भा नाम की अप्सरा को शाप दे दिया था। वह देवलोक को छोड़ कर एक अश्व के हृदय मे जा बैठी और फिर 'अश्वहृदया' नाम से प्रसिद्ध घोड़ी बनकर उसने मृत्तिकावती नाम की नगरी मे शतधन्वा नाम के राजा की सेवा

मर्त्यलोके महान्तं कालमुवास। अन्ये च महात्मानो मुनिजनशापपरिपीतप्रभावा नानाकारा भूत्वा बभ्रमुरिमं लोकम्। असंशयमनेनापि महात्मना केनापि शापभाजा भवितव्यम्। आवेदयतीव मदन्तःकरणमस्य दिव्यताम्' इति विचिन्तयन्नेवारुरुक्षुरासनादुदतिष्ठत्। मनसा च तं तुरङ्गममनुपसृत्य 'महात्मन्नर्वन्, योऽसि सोऽसि। नमोऽस्तु ते। सर्वथा मर्षणीयोऽयमारोहणातिक्रमोऽस्माकम्। अपरिगतानि दैवतान्यप्य-

---

लोक देवलोकमपहाय विहायाश्वहृदये तुरङ्गमोरस्यात्मानं निवेश्य संस्थाप्य अश्वशरीरं परिगृह्येत्यर्थः। अतएवाश्वहृदयेति विख्याता वडवा मृत्तिकावत्या मृत्तिकावती नगरी तस्या भव शतधन्वानं नाम राजानमुपसेवमाना भजमाना मर्त्यलोके नृलोके महान्तं भूयांसं कालं समयमुवासोषितवती। अत्र कथा —'स्थूलशिरा नाम महर्षिः कुशसमिदर्थं पर्यटन् 'महति श्वभ्रान्तरे पतामः परित्रायस्व परित्रायस्व' इत्युच्चतरं ध्वनिमश्रृणोत्। गत्वा च तत्र क्षामशरीरान्पुरुषांस्तत्र लग्नान्प्रलम्बमानानपश्यत्। पृष्टाश्च 'के यूयम्' इति। ते च पितर इत्यवोचन्—'त्वया चापत्योत्पत्तिर्न कृता। तद्विरहात्त्वदुपरमे पुनाम्नि नरके पतिष्याम' इति। तच्छ्रुत्वा महर्षी रम्भाभिधानामेव योषितमिदमुक्तवान्—'त्वां कामयाम' इति। तया चोक्तम्—'यथाज्ञापयसि। किंतु देवकार्यं कृत्वागच्छामि। क्षम्यतां तावत्' इति। गतायां संकेतभङ्गो जात इति महर्षिणा क्रुद्धेन 'वडवा भव' इति सा शप्ता 'नरनारायणविग्रहावधिश्च शापो भविष्यति' इति। अन्येति चेति। अन्ये महात्मानोऽपरे गरीयांसो जना मुनिजनानां तपस्विनां शापेनानुग्रहेण परिपीत आस्वादितः प्रभावो माहात्म्यं येषां ते तथा नानाकारा भूत्वा विविधप्रकाराणि शरीराण्युपगृह्येमं लोकं बभ्रमुर्भ्रमितवन्तः। असंशयं नि संशयमनेनापि केनापि महात्मना महापुरुषेण शापभाजा भवितव्यम्। मदन्तःकरणं मन्मानसमस्य तुरङ्गस्य दिव्यतां देवत्वमावेदयतीव ज्ञापयतीव। इति विचिन्तयन्नेवेति ध्यायन्नेव आरुरुक्षुरारोढुमिच्छुरासनात्सिंहासनादुदतिष्ठदुत्थितो बभूव। तं तुरङ्गममनुपसृत्य तत्समीपेऽनागत्य मनसैव महात्मन् हे अर्वन् हे अश्व, योऽसि सोऽसि यत्तद्भवसि। अतोऽलक्ष्यस्वरूपायानाकलनीयात्मने ते तुभ्यं नमो नमस्कारोऽस्तु। सर्वथा सर्वप्रकारेणास्माकमारोहणेन योऽतिक्रमोऽ-

---

करते हुए मानुषलोक में बहुत समय तक निवास किया था। और भी महात्मा पुरुष मुनियों के शापों द्वारा जिनकी शक्ति नष्ट कर दी गयी थी, विविध आकारों वाले होकर इस (मर्त्य) लोक में मारे-मारे फिरे थे। (इसलिये) इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह अश्व भी कोई शापभोगी महात्मा होगा। मेरा अन्त करण ही मानो इसके दैवी होने का आवेदन कर रहा है।"

इस प्रकार सोचता हुआ ही वह उस अश्व की सवारी करना चाहता हुआ आसन से उठ खड़ा हो गया। और उसके समीप पहुँच कर उसने मन ही मन इस प्रकार कहा—"अये, महात्मन्, अश्व! तुम जो हो सो रहो। तुम्हें मेरा नमस्कार पहुँचे। मैं तुम्हारी सवारी करके जो अपराध कर रहा हूँ, उसको पूर्णतया क्षमा करो। वे देवता तक भी जो कि अपरिचित

नुचितपरिभवभाञ्जि भवन्ति' इत्यामन्त्रयांबभूव। विदितामिप्राय इव स तमिन्द्रायुधश्च- टुलशिरःकेसरसटाहत्याकूणिताकेकरतारकेण तिर्यक्चक्षुषा विलोक्य मुहुर्मुहुस्ताडयता क्षितितलमुत्खातधूलिधूसरितक्रोडरोमराजिना दक्षिणखुरेणारोहणायाह्वयन्निव स्फुरित- घ्राणविवरघर्घरध्वनिमिश्रं मधुरमपरुषहुंकारपरम्परानुबद्धमतिमनोहर हेषारवमकरोत्। अथानेन मधुरहेषितेन दत्तारोहणाभ्यनुज्ञ इवेन्द्रायुधमारुरोह चन्द्रपीडः। समारुह्य तं प्रादेशमात्रमिव त्रैलोक्यमखिलं मन्यमानो निर्गत्य जलधरविमुक्तोपलासारपरुषेण

वज्ञा स मर्षणीय सहनीय । अपरिगतान्यज्ञातानि दैवतान्यनुचितोऽयोग्यो य परिभव क्लेशस्तद्भाञ्जि भवन्तीति हेतोरामन्त्रयाबभूवामन्त्रण चकार। स इन्द्रायुधोऽश्वस्त चन्द्रापीड स्वस्मिन्नारोहणेऽनुमतिरेव नापराध इति स्वाभिप्राय स्वाङ्गक्रियाभि स्पष्टयन्विदितो ज्ञातोऽभिप्राय आरोहणानुमतिलक्षणो येनैतादृश इव हेषारव हेषाशब्दमकरोदित्यन्वय। अथ हेषारव विशेषयन्नाह— स्फुरितेति। स्फुरितो धूतो यो घ्राणविवरो नासिकारन्ध्र तस्य यो घर्घरध्वनिरव्यक्तः शब्दस्तेन मिश्र सयुक्त मधुर कर्णसुखदमत एवापरुषमकठोरं हुङ्कृतेर्या परम्परा सतानं तयानुबद्धं सहितमत- एवातिमनोहरमतिरमणीयम्। चटुलं चञ्चलं यच्छिर उत्तमाङ्ग तस्य केसरलक्षणा सटा जटा तस्या आहतिराघातस्तयाकूणिता किंचिन्निम्ना आकेकरा किंचिद्वक्रा तारका कनीनिका यस्मिन्नेवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेण तिर्यक्तिरश्चीन विलोक्य निरीक्ष्य मुहुर्मुहुर्वारंवारं क्षितितलं पृथ्वीतलं ताडयतास्फाल- यतोत्खातोत्खनिता या धूलि पांसुस्तया धूसरिता धूम्रा क्रोडरोमराजिर्भुजान्तरालकपङ्क्ति- र्यस्मिन्नेवविधेन दक्षिणखुरेणापसव्यशफेनारोहणायाधिरोहणायाह्वयन्निवाह्वान कुर्वन्निव। अथेत्या- नन्तर्ये। अनेन मधुरहेषितेन दत्तारोहणाभ्यनुज्ञ इव दत्तारोहणेऽभ्यनुज्ञा यस्यैवंविध इव चन्द्रा-

रह जाते हैं अनुचित निरादर के भागी बन जाते हैं।" (इस पर) उसका अभिप्राय जानते हुए-से इन्द्रायुधने, उस चन्द्रापीड को (अपने) हिलते सिर (पर) के बालों के समूह (अयालों) से टकरा कर कुछ-कुछ सिकुड़ी हुई तथा कुछ-कुछ तिरछी हुई पुतली वाली आँख से देखकर और बार-बार पृथ्वीतल पर आघात करते तथा इस द्वारा खोदी गयी धूलि से मटमैली हुई छाती पर के बालों की पंक्ति वाले दाँये खुर से चन्द्रापीड को मानो (अपने ऊपर) सवार होने का निमन्त्रण-सा देते हुए अपने फड़कते नथुनों के घर्घर शब्द से मिली, मीठी-मीठी तथा मृदु हुकारों से अनुस्यूत, अति आकर्षक हिनहिनाहट की।

इसके पश्चात् चन्द्रापीड यह अनुभव करता हुआ सा कि मीठी हिनहिनाहट द्वारा उसने सवार होने की अनुमति दे दी है, इन्द्रायुध पर सवार हो गया। उसपर सवार होकर सारे के सारे तीनों लोकों को एक बित्ता[1] भर (नौ इञ्च लम्बा) समझता हुआ वह बाहर निकला और वहाँ उसने वह घुड़सवार सेना देखी जिसका कोई सिरा नहीं दिखायी दे रहा था।

(१) प्रादेशमात्र = 'प्रदेशिन्यादिभि सार्धमंगुष्ठे वितते सति। प्रादेश ताल गोकर्ण वितस्तयो यथा क्रमम्।

जर्जरयतेव रसातलमतिनिष्ठुरेण खुरपुटानां रवेण रजोनिरुद्धघ्राणघोषेण च ह्रेषितेन बधिरीकृतसकलत्रिभुवनविवरम्, अशिशिरदीधितिसस्पर्शस्फुरितविमलफलकेनोर्ध्वीकृतेन कुन्तलतावनेनोन्नालनीलोत्पलकलिकावनगहन सर इव गगनतलमलकुर्वाणम्, उद्दण्डमायूरातपत्रसहस्रान्धकारिताष्टदिङ्मुखतया स्फुरितशतमन्युचापकलापकल्माष-

पीड इन्द्रायुधमारुरोहाधिरूढ । तमिति । तमिन्द्रायुध समारुह्यारोहणं कृत्वाखिल समग्र त्रैलोक्यं त्रिविष्टप प्रादेशमात्रमिति तर्जन्यङ्गुष्ठे वितते सति यन्मान तत्प्रादेश कथ्यते । यदाह—'प्रदेशिन्यादिभि सार्धमङ्गुष्ठे वितते सति । प्रादेशतालगोकर्णवितस्तयो यथाक्रमम्' इत्यभिधानचिन्तामणिः । तद्वदिव मन्यमानो ज्ञायमान (?) । निर्गत्येति । निर्गत्य ततो बहिरागत्य स चन्द्रापीडोऽश्वसैन्यमपश्यदित्यन्वयः । अश्वसैन्यं विशिनष्टि—इन्द्रायुध वा । बधिरीकृतमकर्णता प्रापित सकलत्रिभुवनविवर येन तत् । केन । जलेति । जलधरविमुक्तो य उपलासार करकासारस्तद्वत्परुषेण रूक्षेण रसातल पृथ्वीतल जर्जरयतेव प्रशिथिलावयवं कुर्वतेवातिनिष्ठुरेणातिकठिनेन खुरपुटाना शफपुटानां रवेण ध्वनिना । पुन केन । रजसा निरुद्धमावृत यद्घ्राण घोणा तस्य यो घोरघोषो घोरध्वनिस्तेन ह्रेषितेन शब्दितेन । चकार समुच्चयार्थं । पुन प्रकारान्तरेण विशेषयन्नाह—अशिशिरेति । अशिशिरदीधितिः सूर्यस्तेन य सस्पर्श सश्लेषस्तेन स्फुरितं देदीप्यमान विमलफलक निर्मलावरणं यस्मिंस्तेनोर्ध्वीकृतेनोर्ध्वं स्थापितेन । कुन्तलता । कुन्त प्रास । सरलत्वाल्लतोपमानम् । तासां वन तेनोर्ध्वं नालानि मृणालानि यास्वेवंविधा या नीलोत्पलकलिका इन्दीवरकोरकास्तासां वन तेन गहनं सर इव तटाक इव गगनतलमाकाशतलमलकुर्वाण शोभा विदधानम् । अत्र लोहफलकस्य नीलत्वसाम्यान्नीलोत्पलोपमान कुन्तानां च सरलत्वसाम्यान्मृणालोपमानम् । नीलत्वसाम्याद्गगनतलस्य सरस उपमानम् । ऊर्ध्वं दण्डा येष्वेवविधानि यानि मायूरातपत्राणि मयूरपिच्छनिर्मितानि छत्राणि तेषा सहस्र तेनान्धकारिता अन्धकारं प्रापिता अष्टौ दिङ्मुखास्तेषां भावस्तत्ता तया स्फुरितो दीप्यमान शतमन्युरिन्द्रस्तस्य यश्चापकलापो धनु समुदायस्तेन कल्माषं कर्बुरं जलधरवृन्दमिव मेघसमूहमिव ।

इस घुड़सवार सेना ने प्रलयकाल के बादल से छूटे (और गिरते) ओलों की मूसलाधार वर्षा-जैसे कठोर (अतएव बेधक) और पृथ्वी के धरातल को मानो छिन्नभिन्न करते हुए, खुरों के अत्यन्त कर्कश शब्द से तथा अपने खुरों से (उठायी हुई) धूल से रुके नथुनों से निकले भयकर शब्द वाली हिनहिनाहट द्वारा सारे के सारे तीनों भुवनों को बहरा कर रखा था, सूर्य की किरणों के (उनपर पड़ने से हुए) स्पर्श द्वारा निर्मल धार वाले, ऊपर उठाये हुए, लतासदृश (लम्बे) भालों के समूह से आकाश को सुशोभित करती हुई वह सेना ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो वह सीधी खड़ी डडियों वाला नीले कमलों के समूह से घना ढका हुआ[1] कोई तालाब ही हो, ऊपर को उठाये हुए दण्डों (हाथों) वाली मोरपखों की सहस्रों छतरियों द्वारा आठों दिशाओं में अँधेरा कर देने के कारण वह सेना (उसमें) चमकते हुए इन्द्रधनुषों के

१ गहनम् = ठूँस कर भरा हुआ ।

मिव जलधरवृन्दम्, उद्गमत्फेनपुञ्जधवलितमुखतयानवरतवल्गनचटुलतया च प्रलयसागरजलकल्लोलसंघातमिव समुद्गतम्, अदृष्टपर्यन्तमश्वसैन्यमपश्यत्। तच्च सागरजलमिव चन्द्रोदयेन चन्द्रापीडनिर्गमेन सकलमेव सचचालाश्वीयम्। अहमहमिकया च प्रणामलालसाः सरभसापनीतातपत्रशून्यशिरसः परस्परोत्पीडमकुपिततुरङ्गमनिवारणायस्ता राजपुत्रास्त पर्यवारयन्त। एकैकशश्च प्रतिनामग्राहमावेद्यमाना बलाहकेन विचलितमुकुटपद्मरागकिरणोद्गमच्छलेनानुरागमिवोद्वमद्भिः सघटितसेवाञ्जलिमुकुलतया यौवराज्याभिषेककलशावर्जितसलिललग्नकमलैरिव दूरावनतैः शिरोभिः प्रणेमुः।

उद्गमद् बहिर्निःसरच्च फेनोऽश्वमुखकफस्तस्य पुञ्जस्तेन धवलितानि शुभ्रीकृतानि यानि मुखानि तेषां भावस्तत्ता तयानवरतं निरन्तरं यद्वल्गनमन्योन्यसघट्टस्तेन या चटुलता चञ्चलता तया च प्रलयकालीनो यः सागरः समुद्रस्तस्य जलं पानीयं तस्य कल्लोलास्तरङ्गास्तेषां सघातमिव समूहमिव समुद्गतं प्रादुर्भूतम्। फेनचटुलत्वसाम्येन सागरोपमानमिति। अदृष्टोऽनवलोकितः पर्यन्तः प्रान्तो यस्य तत्। सोऽश्वसैन्यमपश्यदित्यन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तच्चेति। तच्च सकलमेव समग्रमेव चाश्वीयं सैन्यं चन्द्रापीडनिर्गमेन सचचालाचालीत्। केन किमिव। चन्द्रोदयेन सागरजलमिव समुद्रपानीयमिव। अहपूर्वमहपूर्वमित्यहमहमिका। स्पर्धेत्यर्थः। तया प्रणामलालसाः प्रणामे नमस्कृतौ लालसा लोलुपा राजपुत्रा नृपसुतास्तं चन्द्रापीडं पर्यवारयन्त परिवेष्टनमकुर्वन्त। राजसुतान्विशेषयन्नाह—सरभसेति। सरभसं सवेगमपनीतानि दूरीकृतानि यान्यातपत्राणि छत्राणि तैः शून्यानि रिक्तानि शिरासि येषां ते तथा। परस्परेति। परस्परमन्योन्यं यत्पीडनं तेन कुपिताः कोपं प्राप्ता ये तुरङ्गमा

समूह से रंग बिरंगे बादलों के समूह सी प्रतीत हो रही थी, उस सेना में उगलते फेन से (घोड़ों के) श्वेत मुख हो जाने के कारण तथा निरन्तर उछालों से (घोड़ों की) चपलता के कारण वह सेना ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो वहाँ प्रलयकालीन समुद्र के जल की बड़ी-बड़ी लहरों का समूह उमड़ आया हो। और वह सारा अश्वसैन्य चन्द्रापीड के निकलने के साथ ही ऐसा गतिशील हो गया जैसे कि चन्द्रमा के उदय के साथ ही समुद्र का जल क्षुब्ध हो उठता है। 'मैं पहले' 'मैं पहले' इस प्रकार स्पर्धापूर्वक प्रणाम करने के इच्छुक, शीघ्रतापूर्वक हटायी गई (बन्द की गई) छतरियोंसे रहित सिरों वाले, एक दूसरे के साथ सट जाने के कारण क्रुद्ध (अपने अपने) अश्वों को प्रयत्नपूर्वक नियन्त्रित करने में व्यस्त राजपुत्र उसके चारों ओर एकत्रित हो गये। और एक एक करके प्रत्येक का नाम ले लेकर बलाहक द्वारा अवगत कराये जा रहे उन राजपुत्रों ने दूर से ही झुकाये सिरों से उसको प्रणाम किया—उनके सिर (उस समय) मुकुटों में लगी पद्मराग मणियों की किरणों के निकलने के बहाने मानो अपने अनुराग को उँडेल रहे थे और उनपर रखी हुई अभिवादनार्थ कलियोंसरीखी अञ्जलियों से वे सिर ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो युवराज बनाये जाने के समय कराये गये स्नान के घड़ों से छोड़े गये जल में से गिरकर कमल उनपर लग गये हों।

चन्द्रापीडस्तु तान्सर्वान्मानयित्वा यथोचितमनन्तरं तुरङ्गमाधिरूढेनानुगम्यमानः वैशम्पायनेन, राज्यलक्ष्मीनिवासपुण्डरीकाकृतिना सकलराजन्यकुलकुमुदखण्डचन्द्रमण्डलेनेव तुरङ्गमसेनास्रवन्तीपुलिनायमानेन क्षीरोदफेनधवलितवासुकिफणामण्डलच्छविना स्थूलमुक्ताकलापजालकावृतेनोपरि चिह्नीकृतं केसरिणमुद्वहतातिमहता

अश्वास्तेषां निवारण निषेधन तत्रायस्ता उद्यता। अथ च बलाहकेन नामनिवेदननियुक्तपुरुषेण प्रोक्तनामग्राहं यथा स्यात्तथैकैकश आवेद्यमाना निवेद्यमाना । नामग्रहणे नामग्रहणनियुक्ते वा। 'बलाहकोऽम्बुदे गिरौ' इत्यनेकार्थं । शिरोभि प्रणेमुर्नमस्कार चक्रु । तमिति शेष । शिरांसि विशेषयन्नाह—विचलितेति। विशेषेण चलिता कम्पिता मुकुटा कोटीराणि तेषां पद्मरागा लोहितमणयस्तेषा किरणाना प्रभाणामुद्गमो बहि प्रचारस्तस्य छलेन मिषेणानुरागं रक्तिमानमुद्वमन्द्भिरिवोद्गिरद्भिरिव। सघटीति। सघटित सगतो य सेवाया अञ्जलि स एव मुकुल कुड्मलस्तस्य भावस्तत्ता तया। शिरसा वर्तुलत्वसाम्यादञ्जलिमुकुलस्य कमलमुकुलसाम्याच्छिर स्थिताञ्जलिमुकुलोत्प्रेक्षामाह—यौवराज्येति। यौवराज्यस्य योऽभिषेकस्तदर्थं ये कलशा कुम्भास्तैरावर्जित गृहीत यत्सलिल तत्र लग्नानि यानि कमलानि तैरिव दूरावनतैर्दूरतोऽवनतैर्नम्रीभूतैश्चन्द्रापीड पर्यवारयन्नित्यन्वयस्तु प्रागेवोक्त। चन्द्रापीडस्तु नगराभिमुखं प्रतस्थ इत्यन्वय। तान्सर्वान्राजपुत्रान्यथोचित यथायोग्य मानयित्वा समान दत्त्वानन्तर पश्चाद्वागेनैव तुरङ्गमाधिरूढेनानुगम्यमानः समनुयायमान। पुन कीदृशः। आतपत्रेण छत्रेण निवारितो दूरीकृत आतपो दिनकरप्रकाशो यस्य स। छत्र विशेषयन्नाह—राज्येति। राज्यस्याधिपत्यस्य या लक्ष्मी श्रीस्तस्या यन्निवासार्थं पुण्डरीक कमल तद्वदाकृतिराकारो यस्य स तेन सकलानि समग्राणि यानि राजन्यकुलानि नृपकुलानि तान्येव कुमुदानि कैरवाणि तेषा खण्ड वनं तत्र चन्द्रमण्डलेनेव शशिबिम्बेनेव। छत्रेण राजचिह्नेन राजन्या विकसितमुखा भवन्तीति भाव। तुरङ्गमसेनाश्ववाहिनी सैव स्रवन्ती तटिनी तस्या पुलिनायमानेन सैकतायमानेन। अत्र विततगहनगाम्भीर्यादिगुणवत्त्वादश्वसेनाया नद्युपमानम्। क्षीरोदस्य दुग्धसमुद्रस्य य. फेनोऽब्धिकफस्तेन धवलितो यो वासुकिर्नागराज.। वासुकेर्नीलत्वप्रसिद्ध्या एतद्विशेषणम्। तस्य यत्फणामण्डल तद्वच्छविर्यस्य स तथा तेन। स्थूल-

---

इधर, चन्द्रापीड ने उन सबका यथोचित सत्कार किया और घोड़े पर सवार वैशम्पायन द्वारा निकटतया अनुगम्यमान वह नगर की ओर चल पड़ा। उस समय सोने के दण्ड द्वारा उस (के सिर) पर छवाये गये एक बहुत बड़े छाते से धूप हटायी जा रही थी। वह छाता राज्यलक्ष्मी के निवास स्थान भूत श्वेत कमल की आकृति वाला था, (वहाँ एकत्रित) सम्पूर्ण राजपुत्रों रूप कमलवन के लिये वह चन्द्रबिम्ब सरीखा था, अश्व-सेना रूपी नदी का (श्वेत) रेतीला किनारा (पुलिन) सा प्रतीत हो रहा था, दुग्धसागर के जल के फेन से श्वेत हुई वासुकि की फणाओं के मण्डल की आभा वाला था, बड़े-बड़े मोतियों की लड़ियों की जालियों से ढका हुआ था और उसके ऊपर राजचिह्नरूप सिंह का चित्र विद्यमान था। दोनों

कार्तस्वरदण्डेन ध्रियमाणेनातपत्रेण निवारितातपः, उभयतः समुद्धूयमानचामरकलाप-पवननर्तितकर्णपल्लवः, पुरः प्रधावता तरुणवीरपुरुषप्रायेणानेकसहस्रसंख्येन पदाति-परिजनेन जय जीवेति च मधुरवचसा मङ्गलप्रायमनवरतमुच्चैः पठता बन्दिजनेन स्तूयमानः, नगराभिमुख प्रतस्थे।

क्रमेण च त समासादितविग्रहमनङ्गमिवावतीर्णं नगरमार्गमनुप्राप्तमवलोक्य सर्व एव परित्यक्तसकलव्यापारो रजनिकरोदयपरिक्षुभ्यमानकुमुदवनानुकारी जनः समजनि। 'सत्यस्मिन्मुखकुमुदकदम्बकविकृताकृतिः कार्तिकेयो विडम्बयति कुमार-

---

मुक्ताना कलापैर्निर्मितजालकेर्गुच्छैरावृतेनाच्छादितेन। उपरीति। उपरि ऊर्ध्वं चिह्नीकृत लाञ्छनीकृत केसरिणि सिंहमुद्वहता धारयतातिमहतातिमहीयसा कार्तस्वरदण्डेन सुवर्णदण्डेन कृत्वा ध्रियमाणेन धार्यमाणेन। उभयत इति। उभयत उभयपार्श्वयो समुद्धूयमानो वीज्यमानो यश्चामरकलापो वालव्यजनसमूहस्तस्य य पवन समीरणस्तेन नर्तिता लास्यं कारिता कर्ण-पल्लवा यस्य स तथा। पुर इति। पुरोऽग्रे प्रधावता प्रचलता तरुणा युवानो ये वीरपुरुषा, सुभटनरास्तत्प्रायेण तत्तुल्येनानेकेषा सहस्राणा सख्या यस्मिन्स तेन पदातिपरिवारेण पत्तिपरि-जनेन। पुन कीदृश। बन्दिजनेन याचकजनेन स्तूयमानो नूयमान.। अनवरत निरन्तर मधुरवचसा मिष्टवाक्येन जय जीवेति मङ्गलप्राय मङ्गलात्मकमुच्चै पठता पाठ कुर्वता। अन्व-यस्तु प्रागेवोक्त।

क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्या त चन्द्रापीड नगरमार्गं पुरीपद्धतिमनुप्राप्तमागतमव-लोक्य निरीक्ष्य रजनीकरश्चन्द्रस्तस्योदयेनोद्गमेन परिक्षुभ्यमान विकास प्राप्यमाण यत्कुमुदवनं तस्यानुकारी सादृश्यकरणशील सर्व एव जनो लोक समजनि बभूव। तमेव विशिनष्टि—समेति। समासादित प्राप्तो विग्रह शरीर येनैवंभूतमनङ्ग काममिवावतीर्णं गृहीतावतारम्।

ओर डुलाये गये चँवर समूह से उठी वायु द्वारा उसके कानों की (आभूषण रूप पहनी हुई) मंजरियाँ नाच रही थीं और आगे-आगे दौड़ते चलते, युवा वीर पुरुष बहुत अनेक सहस्र पैदल सेवक, और मीठी बोली में 'विजयी रहो' 'दीर्घजीवी बनो' इस प्रकार के मांगलिक शब्दों से भरी प्रार्थना को ऊँचे ऊँचे पढ़ते भाट उसकी स्तुति कर रहे थे।

और क्रमश पुन॰ शरीर धारण किये हुए पृथ्वी पर आये कामदेव जैसे उस चन्द्रा-पीड को नगरमार्ग पर पहुँचे हुए को देखकर सारे जनसमुदाय चन्द्र के उदय होने पर (उसके प्रभाव से) खिलते कमलों के समूह का अनुकरण करने वाला (अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से खिले चेहरों वाला) बन गया। "इस कुमार (चन्द्रापीड) के रहते मुखरूपी कमलों के समूह से बिगड़ी (भयानक) शक्ल वाला कार्तिकेय तो 'कुमार'—पद का मानो उपहास ही कर रहा है[1]।

---

1 कुत्सितो मारो यस्मात्—इति कुमार। इस व्युत्पत्ति द्वारा काम से भी अधिक सुन्दर होने से कुमार शब्द चन्द्रापीड के लिए ही अधिक उपयुक्त है।

शब्दम्। अहो, वयमतिपुण्यभाजो यदमानुषीमस्याकृतिमन्तःसमारूढप्रीतिरसनिःस्यन्दविस्तारितेन कुतूहलोत्तानितेन लोचनयुगलेनानिवारिताः पश्यामः। सफला नोऽद्य जाता जन्मवत्ता। सर्वथा नमोऽस्मै रूपान्तरधारिणे भगवते चन्द्रापीडच्छद्मने पुण्डरीकेक्षणाय' इति वदन्नारचितप्रणामाञ्जलिर्नगरलोकः प्रणनाम। सर्वतश्च समुपावृत्तकपाटपुटप्रकटवातायनसहस्रतया चन्द्रापीडदर्शनकुतूहलान्नगरमपि समुन्मीलितलोचननिवहमिवाभवत्। अनन्तरं च 'समाप्तसकलविद्यो विद्यागृहान्निर्गतोऽयं चन्द्रा-

---

पूर्वमीश्वरेण शरीरस्य दग्धत्वात्समासादिलेत्युक्तम्। कीदृशो जन। परित्यक्तो दूरीकृत सकलव्यापारः समग्रव्यापृतिर्येन स तथा तेन। **सतीति**। अस्मिंश्चन्द्रापीडे सति कार्तिकेयो गुह कुमारशब्दं विडम्बयति। नाममात्र धत्त इति भाव। तस्मिन्निति शेष। अस्मिन्नर्थे हेतुगर्भित विशेषणमाह—**मुखेति**। मुखान्येव कुमुदानि। विकाससाम्यात्तदुपमानम्। तेषा कदम्बकं समूहस्तेन विकृतो बीभत्साकृतिराकारो यस्य स तथा। अहो इत्याश्चर्ये। वयमतिपुण्यभाजो गरिष्ठसुकृतभाज। यदिति हेत्वर्थे। अस्य कुमारस्यामानुषी देवसबन्धिनीमाकृतिमाकार लोचनयुगलेन नेत्रयुग्मेनानिवारिता पश्यामो विलोकयाम इत्यन्वय। लोचनयुगल विशिनष्टि—**अन्त इति**। अन्त स्वान्ते समारूढ समुत्पन्नो य प्रीतिरस स्नेहरसस्तस्य नि स्यन्द सारस्तेन विस्तारितेन विस्तीर्णीकृतेन। कुतूहलमाश्चर्यं तेनोत्तानितेनोर्ध्वमुखेन। नोऽस्माकमद्य जन्मवत्तोत्पत्तिमत्ता सफला फलवती जाता जज्ञे। **सर्वथेति**। सर्वथा सर्वप्रकारेणास्मै चन्द्रापीडच्छद्मने पुण्डरीकेक्षणाय कृष्णाय भगवते रूपान्तरधारिणे नम इति वदन्निति ब्रुवन्नारचितो विहित प्रणामार्थमञ्जलिर्येनैवभूतो नगरलोक प्रणनाम प्रणाम चक्रे। **समुपावृत्तेति**। सर्वत सर्वत्र समुपावृत्त समुद्घाटित कपाटपुटमररसपुट यस्मिन्नेवभूत प्रकट स्पष्ट वातायनसहस्र गवाक्षसहस्र तस्य भावस्तत्ता तया चन्द्रापीडस्य तद्दर्शनकुतूहल दर्शनाश्चर्यं तस्मान्नगरमपि द्रङ्गमपि समुन्मीलित विकसित लोचननिवह यस्मिन्नेतादृशमिवाभवद्बभूव। अत्रावलोकननिमित्तकत्वसाम्याद्वातायनसहस्रस्य विकसितनेत्रोपमानम्। **अनन्तरमिति**। अनन्तर चन्द्रापीडदर्श-

---

अहा! हम तो बड़े पुण्यशील हैं कि इसकी अलौकिक (अमानुषी) आकृति को भीतर ही भीतर उमड़ते प्रेम के प्रवाह के कारण फैली हुई तथा कौतुक से ऊपर उठायी हुई दोनों आँखों से, बिना किसी रुकावट के देख रहे हैं। (ऐसे परमानन्दकर दृश्य को देखकर) आज हमारा जन्मयुक्त होना (जन्म लेना) सफल हो गया। इस दूसरी आकृति को धारण किये हुए, चन्द्रापीड के छद्म वेशधारी, कमलनेत्र भगवान् विष्णु को हृदय से हमारा नमस्कार है।" यह कहते हुए और प्रणाम के लिये हाथों को जोड़े हुए नगर निवासी जनोंने (उसको) प्रणाम किया। और सब ओर से खुल गये किवाड़ों से सहस्रों खिड़कियों के दृश्य हो जाने के कारण वह नगर भी चन्द्रापीड के दर्शनों की उत्सुकता से खुली हुई आँखों के समूह से युक्त-सा दिखायी देने लगा।

और इसके पश्चात् "सारी पढाई को समाप्त करके विद्यागृह से बाहर निकला चन्द्रापीड

पीडः—'इति समाकर्ण्यालोकनकुतूहलिन्यः सर्वस्मिन्नेव नगरे ससंभ्रममुत्सृष्टार्धपरिसमाप्तप्रसाधनव्यापाराः, काश्चिद्वामकरतलगतदर्पणाः स्फुरितसकलरजनिकरमण्डला इव पौर्णमासीरजन्यः, काश्चिदार्द्रालक्तकरसपाटलितचरणपुटाः कमलपरिपीतबालातपा इव नलिन्यः, काश्चित्ससंभ्रमगतिविगलितमेखलाकलापाकुलितचरणकिसलयाः शृङ्खलासदानमन्दमन्दसचारिण्य इव करिण्यः, काश्चिज्जलधरसमयदिवसश्रिय इवेन्द्रायुधरागरुचिराम्बरधारिण्यः, काश्चिदुल्लसितधवलनखमयूखपल्लवान्नूपुररवाकृष्टगृहकलहंस-

---

नोत्कण्ठया गवाक्षकपाटोद्घाटनानन्तरमित्यर्थ । समाप्ता पारं प्राप्ता सकला समग्रा विद्या यस्य स तथा । विद्यागृहादद्य चन्द्रापीडो निर्गत इति समाकर्ण्य श्रुत्वालोकने कुतूहलं यासां ता आलोकनकुतूहलिन्यो ललनाः स्त्रियो हर्म्यतलानि समारुरुहुरारोहणं चक्रु । सर्वस्मिन्नेव नगरे ससंभ्रममुत्सृष्टस्त्यक्तोऽर्धपरिसमाप्तः प्रसाधनं प्रतिकर्म तस्य व्यापारो याभिस्ता । काश्चिद्वामकरतले सव्यपाणितले गत. प्राप्तो दर्पणो मुकुरो याभिस्ता पौर्णमासीरजन्य राकात्रियामा इव । कीदृश्य स्फुरित स्फुटित सकल समग्र रजनिकरमण्डल शशाङ्कबिम्ब यासु ता । निर्मलत्ववर्तुलत्वसाम्याद्दर्पणस्य चन्द्रोपमानम् । काश्चिदिति । काश्चनार्द्रो योऽलक्तकरसो यावकरसस्तेन पाटलित श्वेतरक्तीकृत चरणपुट यासां ताः । का इव । नलिन्य इव पद्मिन्य इव । कीदृश्य । कमलेन परिपीतो बालातपो याभिस्ता । अत्रालक्तकस्य बालातपसाम्य चरणपुटाना च कमलेन साम्य सूचितम् । काश्चिदिति । काश्चन स्त्रिय सभ्रमेण या गतिर्गमन तया विगलित स्रस्तो यो मेखलाकलापो रसनाकलापस्तेनाकुलिता व्याकुलीभूताश्चरणकिसलया पादपल्लवा यासां ता । का इव । करिण्य इव हस्तिन्य इव । कीदृश्य. । शृङ्खला प्रसिद्धा तस्या सदान बन्धन तेन मन्दमन्दसचारिण्यो मन्दमन्दगामिन्य । अत्र गतिप्रतिबन्धसाम्यान्मेखलाया शृङ्खलोपमानम् । काश्चिदिति । काश्चनेन्द्रायुधमिन्द्रधनुस्तस्य राग इव रागो येष्वेव विधानि रुचिराण्यम्बराणि धारयन्तीत्येवशीलास्तास्तथा । का इव । जलधरसमयस्य यो दिवसो दिन तस्य श्रियस्ता इव । इन्द्रायुध तस्य रागो रक्तिमा तेन

अभी आ रहा है" यह सुनकर देखने को उत्सुक नारियाँ सारे ही नगर में शीघ्रतामें अपने शृङ्गार-कार्य को आधा ही छोड़ कर (अपने-अपने) घरो की छतों पर चढ गयीं। इनमें से कुछ तो बायें हाथो मे दर्पण लिये हुई ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो चमकते पूरे चन्द्रमण्डल वाली पूर्णिमा की रात्रियाँ हों, कुछ गीले अलक्तक से लाल पैरों वाली ऐसी कमलिनियाँ-सी लग रही थीं कि जिनके कमलो ने मानो प्रातःकालीन धूप को पी लिया हो, कुछ के कोमल पॉव जल्दी-जल्दी चलने से सरकी हुई मेखलाओं द्वारा विरुद्ध हो गये थे, इसलिये वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो साकलों के अवरोध से धीरे-धीरे चल रही हथनियाँ ही हो, कुछ इन्द्र धनुषी रगों के (अम्बर) वस्त्र पहने हुई ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो इन्द्रधनुष के रगों से आकर्षक रूप में चित्रित (अम्बर) आकाश वाले वर्षाकालीन दिन की शोभाएँ (अथवा सुशोभित दिन) हों, कुछ मुकुलित श्वेत नख-किरणों रूप किसलयों सहित चरणों वाली ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो वे अपने साथ साथ उनके नूपुरों की रणत्कार से आकृष्ट पालतू

कानिव चरणपुटानुद्वहन्त्यः, काश्चित्करतलस्थितस्थूलहारयष्ट्यो रतिमिव मदनविनाशशोकगृहीतस्फटिकाक्षवलया विडम्बयन्त्यः, काश्चित्पयोधरान्तरालगलितमुक्तालतास्तनुविमलस्रोतोजलान्तरितचक्रवाकमिथुना इव प्रदोषश्रियः, काश्चिन्नूपुरमणिसमुत्थितेन्द्रायुधतया परिचयानुगतगृहमयूरिका इव विराजयन्त्यः, काश्चिदर्धपीतोज्झितमणिचषकाः स्फुरितरागैर्मधुरसमिवाधरपल्लवैः क्षरन्त्यो हर्म्यतलानि ललना समारुरुहुः। अन्याश्च मरकतवातायनविवरविनिर्गतमुखमण्डला विकचकमलकोशपुटामम्बरतल-

---

रुचिर यदम्बरमाकाश तद्धारिण्य । काश्चिदिति । काश्चन किं कुर्वत्य । उद्वहन्त्य उद्वहन कुर्वत्य । कान् । चरणपुटान् । तानेव विशिनष्टि—उल्लसिता उल्लास प्राप्ता धवला नखमयूखा एव पल्लवा येषु तान्नूपुररवेण पादकटकध्वनिनाकृष्टानाकर्षितान्गृहकलहसकान्सद्महसानिव । काश्चिदिति । काश्चन करतले स्थिता स्थूलहारयष्टिर्यासा ता । किं कुर्वत्य । रतिं मदनस्त्रिय विडम्बयन्त्यो निराकुर्वत्य । तामेव विशिनष्टि— मदनेति । मदनस्य कन्दर्पस्य यो विनाशोऽभावस्तस्माद्य शोकस्तेन गृहीत स्फटिकाक्षवलय यया ताम् । अतिस्वच्छत्वात्स्फटिकाक्षवलयेन सम मुक्ताफलसाम्य दर्शितम् । काश्चिदिति । काश्चन स्त्रिय पयोधराणामन्तराल प्रवाहपानीय तेनान्तरित व्यवधान प्रापित चक्रवाकमिथुन रथाङ्गाह्वमिथुन यास्त्वेवंविधा । प्रदोषो रजनीमुख तस्य श्रिय इव शोभा इव । काश्चिदिति । काश्चन योषितो नूपुरमणिभ्य समुत्थित प्रकटीभूत यदिन्द्रायुध शक्रधनुस्तस्य भावस्तत्ता तया । परिचयेन सबन्धेन वात्सल्येन वा । अनुगता पश्चादागता गृहमयूरिका इव सदनमयूर्य इव विराजयन्त्य । पूर्वनायिकानामिन्द्रायुधरागरुचिराम्बरपरिधानवरववर्णनादेतदुपमानम् । काश्चिदिति । अर्धं पीत पानविषयीकृत येष्वेवविधा उज्झितास्त्यक्ता मणिचषका रत्ननिर्मितपानभाजनानि याभिस्ता स्फुरितो देदीप्यमानो रागो रक्तिमा येष्वेवविधैरधरपल्लवैर्दन्तच्छदकिसलयैर्मधुरसमिव कादम्बरीरसमिव क्षरन्त्य

कलहसों को अपने साथ खींचे चल रही हों, कुछ अपनी हथेलियों मे मोटे मोटे मोतियों के हार उठाये हुए ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो (अपने पति) कामदेव के ध्वस के शोक में स्फटिकों की अक्षमाला को (हाथों में) लिये हुई रति को तिरस्कृत कर रही हों (उसकी नकल कर रही हों) कुछ अपने स्तनों के बीच (खाली स्थान) मे मोतियों की माला को लटकाये ऐसी लग रही थीं कि मानो पतली सी निर्मल जलधारा द्वारा (व्यवहित) पृथक् पृथक् कृत चक्रवाक की जोड़ियों वाली सुन्दर साय-सध्याएँ हों ! कुछ अपने नूपुरों में जड़ी मणियों से (रग बिरगी किरणों वाले) इन्द्रधनुषों के सहसा कौंध जाने के कारण (अपने से) परिचय वश पीछे-पीछे आ रही पाल्तू मोरनियाँ (चमकती भित्तियों वाली इन्द्रधनुषी रगों की पूँछ वाली) सी सुशोभित थीं । और कुछ अपने मणिमय प्यालों को आधे पिये हुए ही छोड़कर ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो वे (अभी पिये गये नये मद्य से) चमकते लाल-लाल हुए कोमल अधरों से ही मद्य को नीचे गिरा रही हों। और दूसरी मरकत-मणिमय खिड़कियों के छिद्रों में से अपने मुखमण्डलों को निकाले हुई उस कमलिनी (को दिखलाती हुई) सी प्रतीत

संचारिणी कमलिनीमिव दर्शयन्त्यो ददृशुः। उदपादि च सहसा सरभससंचलनजन्मा, मधुरसारणास्फालितवीणारवकोलाहलबहलः, रसनारवाहूतसारसरसितसभिन्नः, स्खलितचरणतलताडितसोपानजातगम्भीरध्वनिप्रहृष्टानामवरोधशिखण्डिनां केकारवैरनुगम्यमानः, नवजलधररवभयचकितकलहंसकोलाहलकोमलः, मकरध्वजविजयघोषणानुकारी, परस्परविघट्टनारणिततारतरहारमणीनां रमणीनां श्रोत्रहारी, हर्म्यकुक्षिषु प्रतिरवनिर्ह्लादी भूषणनिनादः। मुहूर्तादिव युवतिजननिरन्तरतया नारीमया इव

क्षरण कुर्वत्य । अत्र रक्तत्वसाम्यादधररागस्य मधुरसोपमानमिति भाव । ललना हर्म्यतलानि समारुरुहुरित्यन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। अन्याश्चेति। अन्या काश्चन स्त्रियश्चन्द्रापीड ददृशुरद्राक्षुः। कीदृश्य । मरकतस्याश्मगर्भस्य ये वातायना गवाक्षास्तेषां विवराणि रन्ध्राणि तेभ्यो विनिर्गत बहिरागत मुखमण्डल यासां ता । कमिव । विकच स्मित कमलकोशपुट यस्यामेवंविधामम्बरतलसचारिणीं व्योमतलगामिनीं कमलिनीमिव दर्शयन्त्य आत्मानं प्रकाशयन्त्य । अत्र नीलत्वसाम्यान्मरकताम्बरयो साम्य वतु लत्वसाम्यान्मुखकमलयो साम्य च प्रदर्शितम्। ततो भूषणनिनादोऽङ्गाभरणध्वनि सहसा सद्य उदपाद्युत्पन्न । अथ ध्वनिं विशेषयन्नाह—सरभसेति। सरभस सत्वर यत्सचलन गमन तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तथा। मधुर यथा स्यात्तथा सारणासु तन्त्रीष्वास्फालिता या वीणा वल्लक्यस्तासा रव शब्दस्तज्जनितो यः कोलाहल॰ कलकलस्तेन बहलो दृढ । रसना काञ्ची तस्या रवेण शब्देनाहूता आमन्त्रिता ये सारसा लक्ष्मणास्तेषां रसित शब्दित तेन सभिन्नो मिश्रित स्खलिता. स्खलना प्राप्ता ये चरणा पादास्तेषां तलेन ताडितं हत यत्सोपानजातमारोहणसमूहं ततो यो गम्भीरध्वनिर्मन्द्रध्वनिस्तेन प्रहृष्टाना हर्षितानामवरोधशिखण्डिनामन्त पुरमयूराणां केकारवैरनुगम्यमान । नवो नवीनोऽकालसमवो यो जलधरो मेघस्तस्य यो रव शब्दस्तस्माद्भय तेन चकितास्त्रस्ता ये कलहसा कादम्बास्तेषा कोलाहलस्तेन कोमलो मधुर । हर्षप्रकर्षाद्वाद्यमानपटहध्वनेर्नवजलधरध्वनिसाम्यम्। मकरध्वजस्य कन्दर्पस्य

हुई कि जिसकी कमल की कलियाँ पूर्णतया खिली हुई हों और जो आकाश में इधर से उधर आ जा रही हों। और वहाँ एकाएक द्रुतगति से (त्वरापूर्वक चलने फिरने से) उत्पन्न, मृदुलता से छुई गई तन्त्रियों (तारों) से आहत वीणा के शब्द के शोर से मिलकर बना हुआ, करधनी की झनकार से (बुलाये गये) आकर्षित पालतू सारसों की चिल्लाहट से मिश्रित, (ललनाओं के) लड़खड़ाते पावोंसे आहत सीढ़ियों से उत्पन्न (बादल की गर्जना से मिलती जुलती) गड़गड़ाहट ध्वनि (को सुनकर) प्रसन्न हुए अन्त पुरस्थ मयूरों के शब्द जिसके साथ साथ हो रहे हैं, नये बादल की गड़गड़ाहट को सुनकर भयभीत कलहंसों के शब्द से कोमल बना, मकरध्वज कामदेव की विजय घोषणा सा प्रतीत होता, आपस की टक्करों से बजे हुए सुन्दर हारों की मणियो वाली ललनाओं का, कर्णाकर्षक और महलों के कमरों मे गूँजता हुआ गहनों का शब्द उत्पन्न हो गया।

और थोड़ी ही देर में युवतियों द्वारा घना भर जाने से महल ऐसे प्रतीत होने लगे

प्रासादाः, सालक्तकपदकमलविन्यासैः पल्लवमयमिव क्षितितलम्, अङ्गनाङ्गप्रभाप्रवाहेण लावण्यमयमिव नगरम्, आननमण्डलनिवहेन चन्द्रबिम्बमयमिव गगनतलम्, आतपनिवारणायोत्तानितकरतलजालकेन कमलवनमयमिव दिक्चक्रवालम्, आभरणांशुकलापेनेन्द्रायुधमय इवातपः, लोचनमयूखलेखासतानेन नीलोत्पलदलमय इव दिवसो बभूव । कौतुकप्रसारितनिश्चललोचनाना च पश्यन्तीना तासामादर्शमयानीव स्फटिकमयानीव हृदयानि विवेश चन्द्रापीडाकृतिः । आविर्भूतमदनरसाना चान्योन्यं सपरि-

---

या विजयघोषणा त्रैलोक्य मया जितमित्युद्घोषण तस्या अनुकारी सादृश्यकरणशील । परस्पर यद्विशेषेण घट्टन सश्लेषस्तेनारणिता शब्दितास्तारतरा आकरशुद्धोद्भवा अतिमनोहरा हारमणयो यासामेवविधाना रमणीना स्त्रीणा श्रोत्रहारी कर्णमनोहर । हर्म्यकुक्षिषु गृहकोणेषु प्रतिरवनि र्ह्राद प्रतिच्छन्दध्वनिर्विद्यते यस्य स तथा । ततो भूषणध्वनिरुदपादीत्यन्वयस्तु प्रागेवोक्त । मुहूर्तादिव मुहूर्तानन्तर युवतिजनै स्त्रीजनैर्निरन्तरतया निबिडतया प्रासादा भूपसद्मानि नारीमया इव स्त्रीभिर्निष्पन्ना इव बभूवुः । सालक्तक सयावक यत्पदकमल चरणपद्म तस्य विन्यासै स्थापनै क्षितितल वसुधातल पल्लवमयमिव किसलयमयमिवासीत् । अङ्गनाना योषितामङ्गस्य शरीरस्य प्रभाप्रवाहेण कान्तिधारया नगर द्रङ्ग लावण्यमयमिव चातुर्यमयमिवासीत् । आनन मुख तस्य मण्डलम् । वर्तुलाकृतित्वात् । तेषा निवहेन समूहेन गगनतल व्योमतल चन्द्रबिम्बमयमिवासीत् । आतपनिवारणाय सूर्यालोकदूरीकरणायोत्तानितान्यूर्ध्वीकृतानि यानि करतलानि तेषा जालकेन समूहेन दिक्चक्रवालं दिशा चक्र कमलवनमयमिवासीत् आभरणाना भूषणानामशव किरणास्तेषां कलापेन समूहेनातप इन्द्रायुधमय इव आसीत् । लोचनाना नेत्राणा या मयूखलेखा कान्तिराजयस्तासा सतानेन परपरया दिवसो नीलोत्पलदलमय इव बभूव । नीलनलिनदलैर्निष्पन्न इवेत्यर्थ । कौतुकेन कुतूहलेन प्रसारितानि विस्तारितान्यत

कि मानो नारियों से ही बने हुए हों, अलक्तक पुते चरणकमलों की छापों से पृथ्वीतल (सर्वथा) लता किसलयों का बना प्रतीत होने लगा, स्त्रियों के अगों की कांति के प्रवाह के कारण नगर (सर्वथा) सुन्दरता से रचित प्रतीत होने लगा, (सर्वत्र ही) उनके गोल गोल चेहरों की विद्यमानता से आकाश चन्द्रबिम्बों से रचित सा हो गया, धूप को हटाने के लिये तानी हुई उनकी बहुतसी हथेलियों से चारों दिशाएँ कमलवनों से रचित सी प्रतीत हुईं, उनके आभूषणों की किरणों के ढेर के कारण धूप इन्द्रधनुषों से बनी हुई प्रतीत हुई और उनकी आँखों से कौंधती किरणरेखा से ताने बाने से दिन नीले कमलों की पखुडियो से रचित-सा प्रतीत हुआ। और आश्चर्य फैलायी हुई तथा स्थिर आँखों से देखतीं स्त्रियोंके उन हृदयों में चन्द्रापीड की आकृति प्रविष्ट हो गयी–(उनके हृदय चन्द्रापीड की ओर आकर्षित हो गये) जो हृदय मानो दर्पणरचित, जलरचित अथवा स्फटिकरचित थे। (अर्थात् प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने मे समर्थ थे)।

और कारण कि उनमें उसी क्षण (चन्द्रापीड के लिए) प्रेम की भावना उत्पन्न हो

हासाः सविश्रम्भाः ससंभ्रमाः सेर्ष्याः सोत्प्रासाः साभ्यसूयाः सविलासाः समन्मथाः सस्पृहाश्च तत्क्षणं रमणीयाः प्रसस्रुरालापाः। तथाहि 'त्वरितगमने, मामपि प्रतिपालय। दर्शनोन्मत्ते, गृहाणोत्तरीयम्। उल्लासयालकलतामाननावलम्बिनीं मूढे, चन्द्रलेखामुपाहर, उपहारकुसुमस्खलितचरणा पतसि मदनान्धे। संयमय मदनिश्चेतने, केशपाशम्। उत्क्षिप चन्द्रापीडदर्शनव्यसनिनि, काञ्चीदामकम्। उत्सर्पय पापे, कपोल-

एव निश्चलानि स्थिराणि लोचनानि नेत्राणि यासामेवंविधानां पश्यन्तीनां विलोकयन्तीनां तासां योषितां हृदयानि चन्द्रापीडाकृतिर्विवेश प्रविष्टा। हृदयानि विशेषयन्नाह—आदर्शेति। आदर्शो मुकुरस्तन्मयानीव तद्रूपाणीव। सलिलं जलं तन्मयानीव। स्फटिकं प्रसिद्धस्तन्मयानीव प्रतिबिम्बसाधर्म्यादेतेषामुपमानम्। आविरिति। आविर्भूतः प्रकटीभूतो मदनरसः कामरसो यासामेवंविधानां कामिनीनामन्योन्यं परस्परं तस्मिन्समये रमणीयाः मनोहरा आलापाः संलापाः प्रसस्रुर्विस्तारं प्रापुः। आलापान्विशिनष्टि—सपरीति। सह परिहासेन नर्मवचनेन वर्तमानाः सपरिहासाः। सह विश्रम्भेण विश्वासेन वर्तमानाः सविश्रम्भाः। सह संभ्रमेण भयेन वर्तमानाः ससंभ्रमाः। सहेर्ष्यया परासहनलक्षणया वर्तमानाः सेर्ष्याः। सहोत्प्रासेन वितर्केण वर्तमानाः सोत्प्रासाः। सहाभ्यसूययान्यगुणदूषणात्मकया वर्तमानाः साभ्यसूयाः। सह विलासेन नेत्रजेन वर्तमानाः सविलासाः। सह मन्मथेनानङ्गेन वर्तमानाः समन्मथाः। सह स्पृहया वाञ्छया वर्तमानाः सस्पृहाः। तानेव प्रदर्शयन्नाह—तथा हीति। त्वरितं शीघ्रं गमनं यस्यास्तस्याः संबोधनं हे त्वरितगमने। मां सखीमपि प्रतिपालय। गृहीत्वा गच्छेत्यर्थः। दर्शनेऽवलोकन उन्मत्ता ग्रथिला तस्याः संबोधनं हे दर्शनोन्मत्ते। उत्तरीयमुपरिवस्त्रं गृहाण। पतन्तं निवारयेत्यर्थः। हे मूढेऽनभिज्ञे। आननावलम्बिनीं मुखोपरि स्रस्तामलकलतां केशलतामुल्लासयोर्ध्वीकुरु। हे मदनान्धे, चन्द्रलेखामलिकाभरणमुपाहर दूरीकुरु। उपहारार्थं पूजार्थं यानि कुसुमानि तैः स्खलितचरणा पतसि। पतिष्यसीत्यर्थः। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यत्यर्थे वर्तमानः। हे मदनिश्चेतने, केशपाशमलकसमूहं संयमय

गयी थी इस कारण उनके आपस में चित्ताकर्षक वार्तालाप परिहासों, विश्वासों, द्रुतवक्तव्यों, ईर्ष्यालु विचारों, उपहासों, स्पर्धाओं, [1]चाटूक्तियों प्रणयोन्माद और लालसा से युक्त थे। उदाहरणतः—"अरी! शीघ्र चलने वाली, मेरी भी प्रतीक्षा कर", "अरी ओ! उसके दर्शन (की इच्छा) से पागल, अपने उत्तरीय को तो ओढ़ ले", "अरी पगली! अपने चेहरे तक लटकते लम्बे केशों को ऊपर कर ले", "अरी प्रणयोन्मत्ते! अपने चन्द्रलेखा आभूषण (मस्तकाभरण) को उठाकर उसे उचित स्थान पर रख ले[2]—क्योंकि (नहीं तो) (पृथ्वी पर रखे) पूजा के फूलों पर पैर फिसल कर गिर जायगी"[3] "अरी ओ, प्रणयोन्माद से अन्धी! अपने घने बालों को बाँध ले।" "अरी ओ, चन्द्रापीड के दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्सुक (अपने नीचे सरकती) रशना की रस्सी को ऊपर कर ले", "अरी ओ! पापिनि! अपनी गालों पर

१ विलास = कामुकता। २ उपाहर = उप + आङ् + हृ लोट् (सिप्)। ३ पतसि = पतिष्यसि—वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा।

दोलायितं कर्णपल्लवम्। अहृदये, गृहाण निपतित दन्तपत्रम्। यौवनोन्मत्ते, विलोक्यसे जनेन, स्थगय पयोधरभारम्। अपगतलज्जे, शिथिलीभूतमाकलय दुकूलम्। अलीकमुग्धे, द्रुततरमागम्यताम्। कुतूहलिनि, देहि नृपदर्शनान्तरम्। असंतुष्टे, कियद्रालोकयसे। तरलहृदये, परिजनमपेक्षस्व। पिशाचि, गलितोत्तरीया हस्यसे जनेन। रागावृतनयने, पश्यसि न सखीजनम्। अनेकभङ्गिविकारपूर्णे, दुःखमकारणायासितहृदया जीवसि। मिथ्याविनीते, किं व्यपदेशवीक्षितैः, विश्रब्धं विलोकय। यौवन-

---

सम्यग्बन्धनं कुरु। हे चन्द्रापीडदर्शनव्यसनिनि, काञ्चीदामक रसनादामोत्क्षिपोच्चैर्नय। हे पापे, कपोलदोलायित कपोलावलम्बि कर्णपल्लवमुत्सर्पयोर्ध्वं कुरु। हे अहृदये हृदयवर्जिते। निपतित स्रस्त दन्तपत्र कर्णाभरणं गृहाण स्वीकुरु। हे यौवनोन्मत्ते, यौवन तारुण्य तेनोन्मत्ते, पयोधरभार स्थगयाच्छादय। जनेन अवलोक्यसे आगन्तुकलोकेन दृग्विषयीक्रियसे। हे अपगतलज्जे अपगता दूरीभूता लज्जा यस्यास्तस्या. सबोधनम्, शिथिलीभूत श्लथीभूत दुकूल दुगूलमाकलय जानीहि। हे अलीकमुग्धे, त्व मुग्धा नासि। किंतु मिथ्यामुग्धत्व प्रतिपन्नासि। द्रुततर शीघ्रतरमागम्यताम्। किमर्थं विलम्ब करोषि। हे कुतूहलिनि कुतूहल विद्यते यस्यामिति तस्या सबोधनम्, नृपदर्शनार्थमन्तर विचालं देहि। 'विचालं मध्यमन्तरे' इति कोश। हे असतुष्टे सतोषवर्जिते, कियत्कियन्मात्रमालोकयसे वीक्षसे। हे तरलहृदये चञ्चलचित्ते, परिजन परिच्छदमपेक्षस्वापेक्षां कुरु। हे पिशाचि हे राक्षसि, गलित स्वस्थानात्स्रस्तमुत्तरीय सख्यान यस्या एवविधा त्व जनेन लोकेन हस्यसे। हे रागावृतनयने रागेण कामरागेणावृते आच्छादिते नयने लोचने यस्यास्तस्या संबोधनम्, सखीजनमालिजन न पश्यसि न विलोकयसि। अनेकेति। अनेके ये भङ्गिविकारा कौटिल्यविकारास्तै पूर्णे भृते हे सखि, अकारणेन निमित्तव्यतिरेकेणायासित खेदित हृदय यथैवभूता सती दु ख दु खरूपमेव। न

झूलते कानों के आभूषण रूप पत्र को उठाकर यथास्थान कर ले", "अरी ओ हृदयहीने! नीचे गिरे हुए हाथीदान्त के आभूषण को तो ले ले", "अरी ओ! अपने यौवन से मुग्धे! तुझे लोग देख रहे हैं, अपने स्तन प्रदेश को ढक ले", "अरी ओ! निर्लज्ज! अपने ढीले हुए रेशमी वस्त्र का ध्यान कर—उसको बाँध ले", अरी ओ झूठमूठ की सरले! शीघ्र आ!" अरी ओ! अत्यन्त उत्सुके! मुझे भी राजा के दर्शनो के लिये स्थान दे" "अरी ओ कभी तृप्त न होनेवाली! तू कब तक देखती रहेगी?" (चन्द्रापीड के दर्शन से उत्पन्न प्रणयोन्माद से) काँपते हृदयवाली! सेवकों का ध्यान कर", अरी ओ! राक्षसी-सा आचरण करने वाली! "तेरा उत्तरीय खिसक गया है, लोग तेरी हँसी उड़ा रहे हैं!", 'अनुराग से ढकी आँखों वाली! अन्धी! क्या तू अपनी सखी (मुझ) को (भी) नहीं देखती?" अरी, ओ! 'नानाविध भावावेगों से भरी हुई! निष्कारण ही अपने हृदय को दु खी करने वाली (इसी प्रकार) कष्टमय जीवन ही बितायेगी!" "अरी ओ! झूठमूठ मे नम्र बनी हुई! बहानोंसे क्यो देख रही है, नि सकोच (खुलकर) देख!" "अरी ओ! यौवन विभूषिते! अपने स्तनो के भार से

शालिनि, किं पीडयसि पयोधरभारेण, अतिकोपने, पुरतो भव। मत्सरिणि, किमेकाकिनी रुणत्सि वातायनम्। अनङ्गपरवशे, मदीयमुत्तरीयांशुकमुत्तरीयतां नयसि। रागासवमत्ते, निवारयात्मानम्। उज्झितधैर्ये, किं धावसि गुरुजनसमक्षम्। उल्लसत्स्वभावे, किमेवमाकुलीभवसि। मुग्धे, निगूहस्व मदनज्वरजनितपुलकजालकम्। असाध्वाचरणे, किमेवमुत्ताम्यसि। बहुविकारे, अङ्गभङ्गवलनायासितमध्यभागा वृथा खिद्यसे। शून्यहृदये, स्वभवनान्निर्गतमपि नात्मानमवगच्छसि। कौतुकाविष्टे, विस्मृ-

---

सुखेनेत्यर्थः। जीवसि प्राणान्धत्से। हे मिथ्याविनीते हे असत्येन विनयकारिणि, व्यपदेशवीक्षितैः कपटावलोकितैः किम्। विश्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात्तथा विलोकय पश्य। हे यौवनशालिनि हे तारुण्यशोभिनि, पयोधरभारेण स्तनभारेण किं पीडयसि किं पीडां जनयसि। मदुपरि पतनेनेति भावः। हे अतिकोपने हे चण्डि, पुरतोऽग्रतो भव। हे मत्सरिणि हे अमर्षिणि एकाकिनि वातायनं गवाक्षं किं रुणत्सि रोधनं कुरुषे। हे अनङ्गपरवशे हे मदनायत्ते, मदीयमुत्तरीयांशुकमुत्तरीयतामुपरिवस्त्रतां नयसि प्रापयसि। हे रागासवमत्ते रागः प्रीतिः स एवासवः सीधु तेन मत्ते क्षीबे, आत्मानं निवारय वारणां कुरु। अतिरागवशान्मरणं भविष्यतीति भावः। हे उज्झितधैर्ये त्यक्तसाहसे, गुरुजनसमक्षं गुरुजनाः पूज्यजनास्तेषां समक्षं प्रत्यक्षं किं धावसि प्रधावनं किं करोषि। हे उल्लसत्स्वभावे प्रवर्धमानाशये। किमिति प्रश्ने। एवममुना प्रकारेणाकुलीभवसि व्याकुलतां भजसे। हे मुग्धे ग्रथिले, मदनज्वरेण कामज्वरेण जनितं यत्पुलकजालकं रोमाञ्चसमूहं निगूहस्व संवृतं कुरु। हे असाध्वाचरणे अशुभचरिते। किमेवमुत्ताम्यसि कथं ग्लानिं भजसि। हे बहुविकारे हे अनेकविकारवति, अङ्गानां भङ्गाः संस्थानविशेषास्तेषां वलनं सङ्कोचस्तेनायासितः खिन्नो मध्यभागोऽवलग्नं यस्या एवंविधा त्वं वृथा मुधा खिद्यसे खेदं प्राप्नोषि। हे शून्यहृदये शून्यचित्ते। स्वभवनान्निजगृहादात्मानं निर्गतमपि बहिरागतमपि

(अथवा भारी स्तनों से)। क्यों दुःख देती है?" "अरी ओ! (पिछड़ जाने के कारण) अत्यन्त क्रुद्ध हुई! आगे तो बढ़!" अरी ओ! लालचिन (स्वार्थिनी)! क्या अकेले ही खिड़की को रोक रखेगी?" "ओ! प्रणयोन्माद के अधीन हुई!" तू तो मेरे उत्तरीय वस्त्र को अपना उत्तरीय बनाये हुए है!" "अनुराग रूपी मदिरा मे मस्त! अपने को नियन्त्रित कर। "अरी! ओ! अधीरे! गुरुजनो की उपस्थिति मे क्यों दौड़ रही है?"

"अरी ओ प्रकट हो रही आन्तरिक भावनाओं वाली! इस प्रकार विक्षिप्त (हतबुद्धि) क्यों हो रही है?" "अरी ओ भोली! प्रणयोन्माद के ज्वर से उत्पन्न रोमाञ्चों को छिपा ले!" "अरी ओ! अशोभनचरित्रे! इस प्रकार उत्तेजित क्यों होती है?" "अरी ओ! बहुत से विकारों वाली—(विविध प्रकार से जिसका मन प्रभावित हो चुका है), अपने अगो को (विविध प्रकार से) तोड़कर और मरोड़ कर मध्य भाग को थकाये हुए क्यों व्यर्थ ही अपने आप को दुःखी करती है?" "अरी ओ! भ्रान्तचित्ते! अपने घर से निकले अपने आपको भी तू क्यों नहीं जानती?" "अरी ओ! कुतूहलपरवशे! साँस लेना भी भूल गई

तासि निःश्वसितुम्, अन्तःसंकल्परचितरतसमागमसुखरसनिमीलितलोचने, समुन्मीलय लोचनयुगलम्, अतिक्रामत्ययम्। अनङ्गशरप्रहारमूर्छिते, रविकिरणनिवारणाय कुरु शिरस्युत्तरीयाशुकपल्लवम्। अयि सतीव्रतग्रहगृहीते, द्रष्टव्यमपश्यन्ती वञ्चयसि लोचनयुगलम्। अधन्ये हतासि परपुरुषादर्शनव्रतेन। प्रसीदोत्तिष्ठ सखि, पश्य रतिविरहित साक्षादिव भगवन्तमगृहीतमकरध्वजं मकरध्वजम्। अयमस्य सितातपत्रान्तरेण अलिकुलनीले शिरसि तिमिरशङ्कानिपतित इव शशिकरकलापो मालतीकुसुमशेखरोऽ-

---

नावगच्छसि न जानासि। हे कौतुकाविष्टे हे कुतूहलगृहीते। नि श्वसित नि श्वास ग्रहीतु विस्मृतासि। कौतुकेनैव व्याक्षिप्तचित्ताभूर्यथोच्छ्वासमपि न गृह्णासीति भाव.। अन्तःसकल्पेन मनोध्यवसायेन रचितो यो रतसमागमो मैथुनप्राप्तिस्ततो यत्सुख सात तस्य यो रस आन्तरप्रीतिस्तेन निमीलिते मुद्रिते लोचने यस्यास्तस्या सबोधनम्, लोचनयुगल समुन्मीलय विकासय। अय चन्द्रापीडोऽतिक्रामति गच्छति। हे अनङ्गशरप्रहारमूर्च्छिते हे कामबाणाघातनिश्चेतने, रविकिरणनिवारणाय सूर्यतापापनोदायोत्तरीयाशुकपल्लव शिरसि मस्तके कुरु विधेहि। अयीति कोमलामन्त्रणे। हे सतीव्रतग्रहगृहीते सतीव्रत पातिव्रत्य तल्लक्षणो यो ग्रहस्तेन गृहीते, ग्रथिले इत्यर्थ। द्रष्टव्य द्रष्टु योग्यमपि चन्द्रापीडमपश्यन्त्यनवलोकयन्ती लोचनयुगल वञ्चयसि वञ्चनां करोषि। हे अधन्ये हे अभाग्ये परपुरुषाणा यदर्शनव्रत तेन हतासि पीडितासि। चन्द्रापीडस्तु न तथाविध पुरुषो येन दर्शनादेव व्रतभङ्ग स्यादिति भाव। प्रसीद प्रसन्ना भव। हे सखि, उत्तिष्ठोत्थान कुरु। रतिविरहित रतिरहितमगृहीतो मकरचिह्नितो ध्वजो येनैवभूत साक्षादिव भगवन्त मकरध्वज पश्य विलोकय। अयमिति। अस्य चन्द्रापीडस्य सित यदातपत्र छत्र तस्यान्तरेणान्तरालिकुल भ्रमरकुल तद्वन्नीले हरिते शिरसि मस्तकेऽय मालतीकुसुमशेखरस्तिमिरस्य या शङ्का शङ्कन तेन निपतित शशिकरकलाप इव चन्द्ररश्मिसमूह

है!" "मानसिक चिन्तन से किये गये मैथुन से प्राप्त परमाह्लाद मे बन्द की हुई आँखों वाली! आँखें खोल दे, यह (चन्द्रापीड) आँखों से ओझल हो रहा है!" "कामदेव के तीरो के आघातों से मूर्छित हुई! सूर्य की किरणों को दूर रखने के लिये अपने सिर पर अपने रेशमी दुपट्टे का आँचल कर ले!" "अरी पातिव्रत्य रूपी प्रेत (अथवा ग्रह) से पकड़ी गयी! तू तो दर्शनीय को न देखती हुई आँखो से (उनका सुख) लूट रही है!" "अरी अभागिनी! (अपने पति के अतिरिक्त) किसी दूसरे पुरुष को न देखने के अपने व्रत के द्वारा तू तो नष्ट हो गयी है (अथवा अभागी बन गयी है)।" अरी! सखि! प्रसन्न हो! उठ, और इस (अपनी पत्नी) रति (के सग) रहित तथा अपनी मकर (चिह्नित) पताका को न लिये सशरीर भगवान् कामदेव से प्रतीत होते इस (चन्द्रापीड) को देख।" "यह देख, यह इसके भ्रमरों के झुण्ड के सदृश काले (बालों वाले) सिर पर इसको (बालों से ढके सिर को) भूल से अन्धकार समझ कर गिरे चन्द्रकिरणों का समूह-सा प्रतीत होता हुआ (श्वेत) मालती पुष्पो का हार इसके श्वेत छाते के अन्तराल से दिखायी दे रहा है।" "यह इसका कपोल

भिलक्ष्यते। एतदस्य कर्णाभरणमरकतप्रभाश्यामायितमुपरचितविकचशिरीषकुसुमकर्णपूरमिव कपोलतलमाभाति। अयमस्य हारान्तर्निविष्टारुणमणिकिरणकलापच्छलेन हृदयं विविक्षुरभिनवयौवनराग इव बहिः परिस्फुरति। एतदनेन चामरकलापान्तरैरित इव वीक्षितम्। एतत्किमपि वैशम्पायनेन सह समामन्त्र्य दशनमयूखलेखाधवलीकृतदिक्चक्रवालं हसितम्। एषोऽस्य शुकपक्षतिहरितरागेणोत्तरीयांशुकप्रान्तेन बलाहकस्तुरगखुरचलनजन्मानं लग्नमग्रकेशेषु रेणुमपहरति। अयमनेन लक्ष्मीकरकमल-

---

इवाभिलक्ष्यते अनैर्ज्ञायते। तिमिरस्य शशिकरबाध्यत्वात्तच्छङ्कया तद्दालयितुं निपतित इवेत्युत्प्रेक्षा। श्वेतत्वसाम्यान्मालतीकुसुमशेखरस्य चन्द्रकरकलापोपमानम्। एतदिति। अस्य कुमारस्यैतत्कपोलतलं गल्लात्परो भाग आभाति शोभते। कीदृशं कपोलस्थलम्। कर्णाभरणस्य या मरकतप्रभा तया श्यामायितं श्यामवदाचरितम्। किमिव। उपरचितो निर्मितो विकचशिरीषकुसुमस्य कर्णपूरो यस्मिन्नेवंभूतमिव। मरकतप्रभाया श्यामत्वात्तयालङ्कृतस्य कपोलस्य शिरीषकुसुमकर्णपूरीभावेऽपि तद्वत्त्व बोध्यमिति भाव। एतस्येति विषये षष्ठी। फलस्येच्छेतिवत्। एतद्विषये योऽभिनवयौवनेनाभिनवतारुण्येन योऽस्माकं राग स हारा मुक्ताकलापास्तेष्वन्तर्निविष्टा अन्त प्रविष्टा येऽरुणमणय पद्मरागास्तेषां किरणास्त्विषस्तेषां कलापच्छलेन बहि परिस्फुरति। हृदयं चित्त विविक्षु प्रवेष्टुमिच्छुरिव। बहि प्रसर्पति। यद्वाभिनवयौवनरागो हृदयं विविक्षुरिव पूर्वोक्तच्छलेन बहि. परिस्फुरति। एतदिति। एतद्वस्त्वभिनवमनेन चन्द्रापीडेन चामरकलापान्तरैर्मध्यैरिव एवंत प्रदेश एव वीक्षितमवलोकितम्। अनेन किमप्येतदज्ञातस्वरूपं वैशम्पायनेन सह समामन्त्र्य सभाषण कृत्वा दशनमयूखलेखाधवलीकृतदिक्चक्रवालं यथा स्यात्तथा हसितम्। एषोऽस्येति। एष बलाहकोऽस्य राज्ञ शुक कीरस्तस्य पक्षतिः पक्षस्तद्वद्धरितरागो नीलरागो यस्मिन्नेवंभूतेनोत्तरीयांशुकप्रान्तेन संव्यानवस्त्रप्रान्तेन। तुरगखुरचलनजन्मानमिति। तुरगा अश्वास्तेषां खुरा शफास्तेषां चलनं गमनं तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यं-

---

प्रदेश, इसके कर्ण-आभूषणों की मरकत मणियों के प्रकाश से हरा हुआ-हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो इसपर पूरे खिले शिरीष के फूलों का कर्णपूर बनाया गया (लटकाया हुआ) हो।" "यह इसका नये यौवन (में उत्पन्न) राग-अनुराग (आवेग-रक्तिमा) इसके हृदय मे प्रविष्ट होना चाहता हुआ सा लगता इसके हार से भीतर लगी लाल मणियों की किरणों के समूह के बहाने, (हृदय के) बाहर ही बाहर मडरा रहा है[1]।" "यह ले, इसने चावरियों के अन्तरालों में से इसी ओर को देखा है।" "यह ले, वैशम्पायन के साथ कुछ सलाह करके वह इस प्रकार हँसा है कि (उसके) (चमकीले) दातों की किरणों से दिशाओं का सारा मण्डल ही श्वेत हो गया है।" "यह देख, घोड़े के खुरों के चलने से उत्पन्न (पृथ्वी से उठी हुई), और उसके अगले बालों के सिरे पर पड़ी हुई धूलि को बलाहक, तोते के पखों के सदृश हरे रग के उत्तरीय के किनारे से पूँछ रहा है। "यह देख इसने अपना लक्ष्मी के हाथ के

---

1. शैशव को हराकर यौवन अभी तक इस पर अधिकार नहीं कर पाया है।

कोमलतलः समुत्क्षिप्य तिर्यक्तुरङ्गमस्कन्धे निक्षिप्तश्चरणपल्लवः सलीलम् । अयमनेन च ताम्बूलयाचनार्थमुत्तानिततलो दीर्घाङ्गुलिराताम्रपुष्करकोशशोभी गजेनेव शैवालकवलग्रासलालसः प्रसारितः करः । धन्या सा या लक्ष्मीरिव निर्जितकमलं करतलमस्य वसुन्धरासपत्नी ग्रहीष्यति । धन्या च देवी विलासवती सकलमहीमण्डलभारधारणक्षमः ककुभा दिग्गज इव गर्भेण यया व्यूढः । इत्येवंविधानि चान्यानि च वदन्तीनां तासामापीयमान इव लोचनपुटैः, आहूयमान इव भूषणरवै, अनुगम्यमान इव हृदयैः,

---

स्यैवंविधं रेणुं धूलिमग्रकेशेषु लग्नमपहरति दूरीकरोति । अनेनेति । अनेन चन्द्रापीडेन लक्ष्म्या यत्करकमलं तद्वत्कोमलं मृदु तलं यस्य स तथा चरणपल्लवस्तुरङ्गमस्कन्धे तिर्यक्समुत्क्षिप्य तिर्यगुत्पाद्य सलीलं यथा स्यात्तथा निक्षिप्तः स्थापितः । अयमिति । अनेन चन्द्रापीडेन ताम्बूलं नागवल्लीदलं तद्याचनार्थमयं करो हस्तः शुण्डा च गजेनेव प्रसारितो विस्तारितः । करं विशिनष्टि—उत्तानितेति । उत्तानितं तलं यस्य स तथा । दीर्घा अङ्गुलयो यस्य स तथा । आ ईषत्ताम्रो रक्तवर्णः पुष्करकोशः कमलकोशस्तद्वच्छोभत इत्येवंशीलः स तथा । पक्षे पुष्करं शुण्डाग्रम् । ताम्बूलपत्राणां तत्साम्येनाह—शैवेति । शैवालं शैवलं तस्य कवलो गुडस्तस्य ग्रासो भक्षणं तत्र लालसो लोलुपः । धन्येति । सा स्त्री धन्या भाग्यवती यास्य निर्जितकमलं करतलं लक्ष्मीरिव ग्रहीष्यति । अतएव वसुंधरायाः सपत्नीत्युक्तम् । धन्या चेति । चकारः पुनरर्थे । देवी विलासवती धन्या महाभाग्यवती । एतदर्थं स्पष्टयन्नाह—सकलेति । यया विलासवत्या सकलं यन्महीमण्डलं तस्य यो भारो वीवधस्तस्य धारणे निर्वहणे क्षमः समर्थो गर्भत्वेन व्यूढो वर्धितः । क कयेव । ककुभा दिशा गर्भेण मध्यभागेन दिग्गज इव व्यूढो धृतः सोऽपि समग्रमहीभारधारणक्षमः । उपसंहरन्नाह—इत्येवमिति । इति समाप्तौ । एवंविधानि पूर्वोक्तस्वरूपाण्यन्यानि चैभ्योऽनुक्तानि वचनानि च वदन्तीनां जल्पन्तीनां तासां स्त्रीणां लोचनपुटैरापीयमान इव । अत्यादरेण वीक्षणं पानमुच्यते । भूषणरवैरिवाभरणध्वनिभिरिवाहूयमान

कमल सरीखे कोमल तलुवे वाला कोंपल सा पैर उठाकर घोड़े के कन्धे पर तिरछा रख दिया है।" और यह इसने पान मागने के लिये चित हथेली वाला, लम्बी-लम्बी अगुलियों वाला, कुछ कुछ लाल (गुलाबी) कमल के आलवाल सरीखा आभा वाला हाथ इस प्रकार फैला दिया कि मानो किसी हाथी ने शैवाल के एक गस्से की लालसा वाली तथा कुछ कुछ लाल अग्र भाग वाली अपनी सूँड फैला दी हो।" "वह ललना धन्य है कि जो (विवाह के समय) इसके कमल से अधिक कोमल हाथ को लक्ष्मी की भाँति ग्रहण करेगी और इस प्रकार पृथ्वी की सपत्नी बनेगी।" "और देवी विलासवती सौभाग्यशालिनी है कि जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी के भार को (उसके शासन के उत्तर दायित्व को) धारण करने योग्य इसको अपने गर्भ में इस प्रकार धारण किया जैसे कि सारे पृथ्वी के भार को उठाने में समर्थ दिग्गज को दिशा ने अपने में धारण किया था।" इस प्रकार ऐसी तथा अन्य युक्तियों को बोलती हुई उन ललनाओं की (एक टक निहारती हुई) आँखों से पिया जाता हुआ-सा, उनके अलङ्कारों की झनझनाहट से

अनुबध्यमान इवाभरणरत्नरश्मिरज्जुभिः, उपह्रियमाण इव नवयौवनबलिभिः, शिथिलभुजलताविगलितधवलवलयनिकरे पदे पदे विवाहानल इव कुसुममिश्रैर्लाजाञ्जलिभिरवकीर्यमाणश्चन्द्रापीडो राजकुलसमीपमाससाद। क्रमेण च यामावस्थिताभिरनवरतकरटस्थलगलितमदमषीकरीभिरञ्जनगिरिमालामलिनाभिः कुञ्जरघटाभिरन्धकारितदिङ्मुखतया जलधरदिवसायमानमुद्दण्डधवलातपत्रसहस्रसंकटमनेकद्वीपान्तरागतदूतशतसकुलं राजद्वारमासाद्य तुरङ्गमादवततार। अवतीर्य च करतलेन करे

इव निमन्त्र्यमाण इव। हृदयैश्चित्तैरनुगम्यमान इवानुयायमान इव। आभरणरत्नाना रश्मयः किरणास्त एव रज्जवस्ताभिरनुबध्यमान इव। नवयौवनान्येव बलयास्तैरुपह्रियमाण पूज्यमान इव। शिथिला श्लथा या भुजलता बाहुलतास्ताभ्यो विगलितानि च्युतानि धवलवलयनिकर श्वेतकटकसमूहो यस्मिन्नेवविधे पदे पदे प्रतिपद विवाहानल इवोद्वाहवह्निरिव कुसुममिश्रै पुष्पसंपृक्तैर्लाजाञ्जलिभिरवकीर्यमाणो वर्धाप्यमानश्चन्द्रापीडो राजकुलसमीपमाससाद प्राप। क्रमेण परिपाट्या राजद्वारमासाद्य प्राप्य तुरङ्गमादश्वादवततारोत्तीर्ण। अथ राजद्वार विशिनष्टि—यामेति। यामावस्थिताभि सेवावसरस्थिताभि। अनवरत निरन्तर करटस्थलाद्गण्डस्थलाद्गलितो यो मदो दान स एव मषीनामम्बुकर्दमस्तं कुर्वन्तीति कार्यस्ताभि। अञ्जनगिरीणां या माला पङ्क्तिस्तद्वन्मलिनाभिर्मलीमसाभि कुञ्जरघटाभिर्हस्तिसहतिभिरन्धकारितानि यानि दिङ्मुखानि तेषा भावस्तत्ता तया जलधरदिवसायमान मेघदिनमिवाचरमाणमुद्दण्ड प्रचण्ड यद्धवलातपत्राणा श्वेतच्छत्राणा सहस्र तेन सकट संकुलम्। अनेके द्वीपान्तराद्देशान्तरादागता ये दूता. सदेशहारकास्तेषां शतानि तै सकुल व्याप्तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। च पुनरर्थे। अवतीर्याश्वादुत्तीर्य करतलेन हस्ततलेन कृत्वा करे हस्ते वैशम्पायन मन्त्रिसुतमवलम्ब्यावलम्बनी-

---

बुलाया गया सा, उनके हृदयों द्वारा अनुगत-सा, उनके आभूषणों में जड़े हुए रत्नों की किरणों रूप रस्सियों से खींचा जाता हुआ सा उनके नवयौवन रूप उपहारों से पूज्यमान सा, पद पद पर जिसपर (वासना की अधिकता से) शिथिल पतली पतली लम्बी-लम्बी (लतारूप) भुजाओं से गिरे श्वेत कटक समूह वाली तथा फूल मिली हुई लाजाएँ बखेरी जा रही थी मानो कि वह ऐसी लाजाएँ जिसपर बखेरी जाती हैं ऐसी विवाहाग्नि ही हो ऐसा वह चन्द्रापीड राजभवन के समीप पहुँच गया।

और वह यथाक्रम राजभवन के द्वार पर पहुँच कर घोड़े से नीचे उतर गया। वह द्वार (वहाँ पर बारी बारी से) (एक एक) याम (अर्थात् तीन घंटे) के लिये स्थापित, निरन्तर कनपटियों से बहते मदजल के कारण काली स्याही के रंग के कीचड़ को उत्पन्न करते और स्वयं अञ्जन की पर्वतमाला सरीखे काले हाथियों द्वारा वहाँ के (सभी) दिशान्तरालों के अँधेरेसे भर जाने के कारण, (काले) वर्षा दिन के सदृश प्रतीत हो रहा था, और ऊपर को उठाये हुए श्वेत, सहस्रों छातों से भरा हुआ था, और बहुत से अन्य द्वीपों से-देशों से आये हुए सैंकड़ों राजपूतों की वहाँ भीड़ लगी हुई थी।

वैशम्पायनमवलम्ब्य पुरः सविनयं प्रस्थितेन बलाहकेनोपदिश्यमानमार्गस्त्रिभुवनमिव पुञ्जीभूतम्, आगृहीतकनकवेत्रलतैः सितवारबाणैः सितकुसुमशेखरैः सितोष्णीषैः सितवेषपरिग्रहतया श्वेतद्वीपसभवैरिव कृतयुगपुरुषैरिव महाप्रमाणैर्दिवानिशमालिखितैरिवोत्कीर्णैरिव तोरणस्तम्भनिषण्णैर्द्वारपालैरनुज्झितद्वारदेशम्, अनेकसयवनचन्द्रशालाविटङ्कवेदिकासकटशिखरैरभ्रंकषैरपहसितसितकैलासशोभैरमलसुधावदातैः सप्राले-

---

कृत्य पुरोऽग्रे सविनय विनयसहित यथा स्यात्तथा प्रस्थितेन गन्तु प्रवृत्तेन बलाहकेनोपदिश्यमानो निवेद्यमानो मार्गः पन्था यस्यैवभूतो राजकुल विवेशेति दूरान्वय । अत्र कुल गृहम् । 'कुल गृहेऽपि ताटङ्के कुबेरे चैव कुण्डले' इत्यनेकार्थे । पुञ्जीभूतमिव राशीभूतमिव त्रिभुवनम् । आगृहीतात्ता कनकवेत्रलता सुवर्णवेष्टिता वेत्रयष्टिर्यैः । सित शुक्लो वारबाण कन्चुको येषा ते । सितानि यानि कुसुमानि तेषा शेखरो येषा ते । सित श्वेत उष्णीषो मूर्धवेष्टन येषा ते । सितो यो वेषो नेपथ्य तस्य परिग्रह स्वीकारस्तस्य भावस्तत्ता तया । श्वेतद्वीपसभवैरिव । श्वेताभिधानद्वीपे सर्वं श्वेतवर्णोपयुक्त स्यादित्यभिप्राय । कृतयुगपुरुषैरिव कृतयुग सत्ययुगस्तत्रोत्पन्नै पुरुषैरिव । महाप्रमाणैरत्युच्चैर्दिवानिशमहर्निशमालिखितैरिव चित्रितैरिव । उत्कीर्णैरिवोत्कीर्य कर्षितैरिव । तोरण प्रसिद्ध तस्य य स्तम्भस्तत्र निषण्णै स्थितैस्तदवष्टम्भेनावस्थितैरेवभूतैर्द्वारपालैर्दौवारिकैरनुज्झितोऽपरित्यक्तो द्वारदेशो यस्य तत् । पुन कीदृशम् । विराजमान शोभमानम् । कै कै. प्रासादैर्देवभूपाना गृहै । कीदृशै । अनेकेति । अनेकानि सयवनानि चतु शालानि चन्द्रशाला शिरोगृहाणि विटङ्क कपोतपालिका स चोन्नतप्रदेश , वेदिका प्रसिद्धा , ताभि सकटानि सकीर्णानि शिखराणि गृहप्रान्ताग्राणि येषा तैरभ्रकषैर्व्योमव्यापिभिरपहसितापहासास्पदीकृता सितकैलासस्य शोभा दीप्तिर्यैः । अमला निर्मला या सुधा तयाव दातै शुभ्रैरेवभूतैर्महाप्रासादैर्देवभूपाना गृहै सप्रालेयशैलेयमिव हिमोपयुक्तगिरिमिव सुधाधव-

---

और उतरकर अपनी हथेली से, वैशम्पायन के हाथ का सहारा लेकर (वैशम्पायन का हाथ पकड़े हुए) आगे आगे विनयपूर्वक चलते हुए बलाहक द्वारा मार्ग बतलाया जाता हुआ वह राजभवन में प्रविष्ट हो गया। यह राजभवन ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वहा तीनों लोक एकत्र हो गये हों। (अपने हाथों में) पकड़ी हुई सोने की बेतों वाले, श्वेत अँगरखे पहने हुए, श्वेत फूलों के गजरे धारण किये हुए, श्वेत पगड़ी पहने हुए और (इस प्रकार) (सभी) श्वेत वेश पहने होने के कारण श्वेतद्वीप के (मूल-जन्मा) नागरिक से प्रतीत होते, सतयुग के पुरुषों की भाति लम्बे चौड़े डील डौल वाले, रातदिन प्रवेश द्वार की तोरण (महराव) के थम्भों के निकट (निश्चल) बैठे वहाँ चित्रित से अथवा (पत्थर में से) खोदकर बनाये गये से प्रतीत होते द्वारपालों द्वारा वह कभी (खाली) नहीं छोड़ा जाता था। यह राजभवन इनमे विद्यमान बहुत से समवन, चन्द्रशाला, विटङ्क वेदिका (आदि छोटे-छोटे भवनों) से भरे शिखरों वाले, बहुत ऊँचे-ऊँचे, श्वेत कैलाश पर्वत की शोभा से अधिक शोभा वाले, श्वेत चूने से पुते बड़े बड़े महलों से ऐसा प्रतीत होता था कि

यशैलेयमिव महाप्रासादैरनेकवातायनविवरविनिर्गतयुवतिकिरणसहस्रतया कनकशृङ्खलाजालकेनेवोपरिविस्तीर्णेन विराजमानम्, अन्तर्गतायुधनिवहाभिराशीविषकुलसकुलाभिः पातालगुहाभिरिवातिगम्भीराभिरायुधशालाभिरुपेतम्, अबलाचरणालक्तकरसरक्तमणिशकलैः शिखरनिलीनशिखिकुलकृतकेकारवकलकलैः क्रीडापर्वतकैरुपशोभितम्, उज्ज्वलवर्णकम्बलावगुण्ठितकनकपर्याणाभिः प्रलम्बचामरकलापचुम्बितचलकर्णपल्लवाभिः कुलयुवतिभिरिवोपरूढशिक्षाविनयनिभृताभिर्यामकरेणुकाभिरशून्य-

---

लितत्वेनोच्चत्वेन च द्वारदेशस्य शैलसाम्यम्। अनेके ये वातायना गवाक्षास्तेषा विवराणि रन्ध्राणि तेषु विनिर्गत यद्युवतीना स्त्रीणा किरणसहस्र तस्य भावस्तत्ता तया। कनकशृङ्खलाजालकेनेवोपरिविस्तीर्णेन विस्तृतेन विराजमानमित्यर्थ.। पुन कीदृशम्। अतिगम्भीराभिरलब्धमध्याभिरायुधशालाभि शस्त्रशालाभिरुपेत सहितम्। कीदृशीभि। अन्तर्गतो मध्यगत आयुध निवह शस्त्रसमूहो यासु ताभि। काभिरिव। आशीविषा सर्पास्तेषा कुलानि तै सकुलाभिर्व्याप्ताभिः पातालगुहाभिरिव बलिवेश्मकन्दराभिरिव। पुन प्रकारान्तरेण तदेव विशेषयन्नाह— अबलेति। अबलाचरणाना वनितापादाना योऽलक्तकरसो यावकरसस्तेन रक्तानि मणिशकलानि रत्नभाण्डानि येषु तै शिखरनिलीनै सानुमध्यवर्तिभि शिखिकुलैर्मयूरसमूहै कृतस्य विहितस्य केकारवस्य कलकलः कोलाहलो येषु तैरेवभूतै क्रीडापर्वतकै. क्रीडाचलैरुपशोभितम्। उज्ज्वलेति। उज्ज्वलवर्णो य कम्बलो रल्लकस्तेनावगुण्ठितमाच्छादित कनकपर्याणं सुवर्णपल्ययनं यासु ताभि। प्रलम्बानि यानि चामराणि तेषा कलाप समूहस्तेन चुम्बिता सहिताश्चला कर्णपल्लवा यासां ताभि। उपरूढौ प्राप्तौ यौ शिक्षाविनयौ ताभ्या निभृताभिर्भृताभि। तत्र शिक्षा सञ्ज्ञादिज्ञानम्, विनयो नम्रता। अतएव कुलयुवतिभिरिव ता अपि शिक्षाविनयाभ्यां निभृता स्यु। एवविधाभिर्यामकरेणुकाभिश्चतुष्किकाहस्तिनीभिरशून्य कक्षान्तर गृहान्तर यस्य

इसमें हिमालय पर्वत विद्यमान हो। (खिड़कियों के अनगिनत झरोखों से निकलतीं) ललनाओं के आभूषणों की किरणों से यह भवन ऐसा दिखायी देता था कि ऊपर (चन्दोए के रूप से) फैलाए हुए सुनहरी शृङ्खलाओं के जाल से सुशोभित हो रहा हो। इसमें ऐसे ऐसे शस्त्रागार थे जो बहुत गहरे थे और जो (भयानक, काले) शस्त्रोंके ढेर से युक्त ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो (काले) साँपों की भीड़ से बसी पाताल प्रदेशों की गुफाएँ हों। वह भवन ललनाओं के पाँवों के गीले अलक्तक से लाल हुए रत्नों के टुकड़ों से युक्त (टुकड़े जिन पर बिखरे पड़े हैं); चोटियों पर बैठे हुए मोरों द्वारा की गयी केका ध्वनि के शोर वाले क्रीड़ा पर्वतों से सुशोभित था। इस भवन के कमरों के भीतरी भाग चमकीले रंगों के कम्बलों से आछादित काठियों से युक्त, लटकते चँवरों से युक्त फड़कते पत्र सदृश कानों वाली, प्राप्तशिक्षा तथा अनुशासन से मौन कुलीन स्त्रियों सी प्रतीत होती, सधाने से पालतू बनी हुई क्रमश. एक एक याम अथवा तीन-तीन घंटे समय के लिये प्रहरी के रूप में वहाँ बाँधी गयीं (याम) हथिनियों

कक्षान्तरम्, आलानस्तम्भनिषण्णेन च नवजलधरघोषगम्भीरमनुगतवीणावेणुरवरम्य-मास्फालितघर्घरिकाघर्घरमनवरतसगीतकमृदङ्गध्वनिमामीलितलोचनत्रिभागेण वाम-दशनकोटिनिषण्णहस्तेन निश्चलकर्णतालेनाकर्णयता सलीलमुभयपार्श्वावलम्बिवर्णकम्बल-तया विन्ध्यगिरिणवाविष्कृतधातुविचित्रितपक्षसपुटेनाधोरणगीतानन्दकृतमन्द्रकण्ठगर्जि-तेन मदजलशबलशङ्खशोभितश्रवणपुटेन रजनिकरबिम्बचुम्बिसवर्तकाम्बुदवृन्दविडम्बकेन

तत । आलानेति । आलानस्तम्भो गजबन्धनस्तम्भस्तत्र निषण्णेन स्थितेन गन्धमादननाम्ना गन्धहस्तिना सनाथीकृत एकदेशो यस्येति दूरेणान्वय । अथ गज विशेषयन्नाह—नवेति । नवजलधरो नवीनमेघस्तस्य यो घोषो ध्वनिस्तद्वद्गम्भीरम् । अनुगत सहितो यो वीणावेणुरवस्तेन रम्य मनोहरम् । आस्फालिता वादिता या घर्घरिका वाद्यविशेषस्तया घर्घरम् । घर्घरशब्दमिश्र मित्यर्थ । अनवरत निरन्तरम् । गीतनृत्यवाद्यत्रय प्रेक्षणार्थे प्रयुक्त सगीतकमुच्यते । तस्य यो मृदङ्गध्वनिर्मुरजरवस्त सलील यथा स्यात्तथाकर्णयता शृण्वतातएव मीलितो लोचनत्रिभागो येन स तथा तेन । यद्वा गजानामवलोकनस्वभावोऽयमिति । वामेति । वामदशनकोटावपसव्यदन्ताग्रे निषण्ण स्थितो हस्तो येन (यस्य) तथा । अयमपि गजस्य स्वभाव । निश्चल स्थिर कर्णतालो यस्य स तथा । तेन केवलमेतद्गीतश्रवणमाहात्म्यम् । उभयेति । उभयपार्श्वेऽवलम्बत इत्येवशीलो यो वर्णकम्बल परिस्तोमस्तस्य भावस्तत्ता तया विन्ध्यगिरिणेव जलबालकेनेव । आविष्कृतेति । आविष्कृतो यो धातुर्गैरिक तेन विचित्रित पक्षसपुट यस्य । गजस्यापि कुथेनाच्छादितत्वेन तस्यो-पमानम् । विचित्रितपक्षसपुटत्वादिति भाव । आधोरणेति । आधोरणा हस्तिपकास्तेषा गीत गान तस्माद्य आनन्द प्रमोदस्तेन कृत विहित मन्द्र मधुर कण्ठगर्जित येन स तथा तेन । मदेति । मदजल दानजल तेन शबल कर्बुरो य शङ्खो भालभ्रुवोरन्तर तेन शोभित विराजित श्रवणपुट कर्णसपुट यस्य स तथा तेन । 'शङ्खो निधौ ललाटास्थिनकम्बौ' इत्यमर । रजनीति । रजनिकरबिम्ब चन्द्रबिम्ब चुम्बन्तीत्येवंशीला ये सवर्तकाम्बुदा लोकविनाशकालीना मेघास्तेषा

से शून्य नहीं रहते थे। राजभवन के उस अहाते के एक भाग में अपने आलान (बाँधने के खम्भे) के सहारे गन्धमादन नाम का एक गन्धहस्ती बैठा था, वह नये बादल की गर्ज के सदृश गम्भीर, निरन्तर (बजती) वीणाओं के शब्द से मिल कर आकर्षक बनी हुई, ताड़ित घर्घरिका की (घर्घराती) घर्घरध्वनि से मिश्रित, सगीत मे बजाये गये मृदङ्गों की सतत ध्वनि को आँखों की कोरों को कुछ कुछ बन्द किये हुए, बायें दात के अग्रभाग से सूँड़ को सहारा दिये हुए और अपने फड़फड़ाते कानों को स्थिर किए हुए आराम से सुन रहा था, दोनों ओर लटकते रगीन (चमकते) शाल के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो (अपनी ढलानो पर पड़े) खनिजों (धातुओं) से रंग बिरगे हुए अपने पखों को दिखलाता विन्ध्य पर्वत हो, अपने महावत (आधोरण) के गायन से (उत्पन्न) आनन्द के कारण वह गम्भीर कण्ठ गर्जना कर रहा था, उसके कान मदजल से रग बिरगे हुए शखों से सजाये हुए थे, और इस प्रकार वह, चन्द्र बिम्ब को स्पर्श करते (प्रलय कालीन) मेघो के समूह के समान

कर्णावलम्बिना काञ्चनमयेन कृतकर्णपूरमिवाङ्कुशेन मुखमुद्वहता मदजलमलिनेन द्वितीयनेव कर्णचामरेण कपोलतलदोलायमानेन मधुकरकुलेनालक्रियमाणेनात्युदग्रतया पूर्वकायस्य वामनतया च जघनभागस्य पातालादिवोत्तिष्ठता निशासमयेनेव परिस्फुरत्सार्धचन्द्रनक्षत्रमालेन शरदारम्भेणेव प्रकटितारुणचारुपुष्करेण वामनरूपेणेव कृतत्रिपदीविलासेन स्फटिकगिरितटेनेव लग्नसिंहमुखप्रतिमेन प्रसाधितेनेवालोलकर्णपल्ल-

---

वृन्द समूहस्तद्विडम्बयत्यनुकरोति य स तथा तेन। 'शेषाद्विभाषा' इति कप्प्रत्यय । अनेन स्वच्छत्वेन वर्तुलत्वेन च शङ्खस्य चन्द्रसादृश्य हस्तिनो जलधरसाम्य च स्पष्टीकृतम् । कर्णेति । कर्णावलम्बिना काञ्चनमयेन स्वर्णनिष्पन्नेनाङ्कुशेन सृणिना कृतकर्णपूरमिव विहितश्रोत्राभरणमिव विभूष्यमाणेन । धारयता । पुन कीदृशेन । मधुकरकुलेन भ्रमरसमूहेन कृत्वालक्रियमाणेन । भ्रमरकुल विशिनष्टि—कपोलेति । कपोलतल गल्लात्परो भागस्तत्र दोलायमानेनेतस्ततो भ्रममाणेन । चञ्चलत्वसाम्यादुपमानान्तरमाह—कर्णेति । द्वितीयेनापरेण कर्णचामरेणेव । शुक्लत्व शङ्का निराकर्तुमाह—मदेति । मदजल दानजल तेन मलिनेन कृष्णेन । एतेन वर्णेनाप्युपमानस्य साम्यमाविष्कृतम् । तदवयवाना सगुणत्व वर्णयितुमाह—पूर्वेति । अत्युदग्रतयात्युच्चतया पूर्वकायस्य पुरोभागस्य । जघनभागे वामनत्व गजस्य गुण इत्याशयेनाह—वामनेति । वामनतया ह्रस्वतया जघनभागस्य पश्चाद्भागस्य । एतन्निमित्तादेवोत्प्रेक्षामाह—पातालेति । पातालाद्रसातलाद्वडवामुखादुत्तिष्ठता प्रादुर्भवता निशासमयेनेव विभावरीकालेनेव । कीदृशेन । परिस्फुरन्ती दीप्यमानार्धचन्द्रोऽष्टमीचन्द्रस्तदाकृतिना मध्यमणिना सह वर्तमाना नक्षत्रमालाभरण यस्मिन्स

लग रहा था, कानो से लटकता सोने का अकुश माना जिसके कानो का आभूषण था वह ऐसा मुह लिये हुआ था, वह मदजल के सदृश काले, गालों पर मडराते, इसी कारण बहते मद से काला दूसरा चवर सा प्रतीत होते भौरों के समूह से सुशोभित हो रहा था, शरीर का अगला भाग बहुत ऊँचा और पिछला भाग अत्यन्त बौना (नीचा) होने के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि मानो पाताल से उठ रहा हो, अपनी चमकती, मध्य में अर्धचन्द्र वाली (२७ मोतियों की) नक्षत्र माला से वह ऐसा लग रहा था कि अर्धचन्द्र के चारों ओर चमकते (२७) नक्षत्रों की माला वाला रात्रि का समय हो, वह लाल लाल सुन्दर शुण्डाग्र को प्रदर्शित (धारण) करता हुआ ऐसा लग रहा था कि मानो लाल कमलों को प्रदर्शित करता शरद् ऋतु का आरम्भ समय हो, त्रिपदी (अर्थात् एक पॉव उठा कर तीन पाँवों पर खड़े रहना) का खेल करता वह तीन कदम चला शरीर धारी वामनावतार-सा प्रतीत हो रहा था, उसके दातों के अग्रभाग पर सिंह मुख की आकृतिया लगी (बनी) हुई थीं—उनके कारण वह उस कैलाश पर्वत के तट के किनारे के सदृश प्रतीत हो रहा था कि जिसम (पार्वती के) सिंह के मुख की प्रतिमाएँ लगी हुई—प्रतिष्ठित—हो, और (उसका) मुख (उसके) फड़फड़ाते (पत्रसदृश कोमल) कानों से आहत हो रहा था—इसी कारण वह उस सज्जित पुरुष के समान दिखायी दे रहा था जिसका मुख कर्णाभूषण के रूप म पहने थरथराते पत्त से

वाहतमुखेन गन्धमादननाम्ना गन्धहस्तिना सनाथीकृतैकदेशम्, उज्ज्वलपट्टकम्बलपट-प्रावारितपृष्ठैश्च रसितमधुरघण्टिकारवमुखरकण्ठैर्मञ्जिष्ठालोहितस्कन्धकेसरबालैर्वनगजरुधिरपाटलसटैरिव केसरिभिः पुरोनिहितयवसराशिशिखरोपविष्टमन्दुरापालैरासन्नमङ्गलगीतध्वनिदत्तकर्णैरन्तःकपोलधृतमधुरसरसलुलितलाजकवलैर्भूपालवल्लभैर्मन्दुराग-

---

तेन। पक्षे सार्धचन्द्रा नक्षत्रमाला तारापङ्क्तिर्यस्मिन्निति विग्रहः। पुनस्तमेव विशिनष्टि—**प्रकटितेति**। प्रकटितमाविष्कृतमरुणं रक्तमतएव चारु मनोहरं पुष्करं शुण्डाग्रं येन स तथा तेन। केनेव। शरदारम्भेणेव घनात्ययप्रारम्भेणेव। तत्पक्षे पुष्कराणि कमलानि। 'राजीवपुष्करे' इति कोशः। शेषं पूर्ववत्। पुनर्विशेषतो विशेषयन्नाह—**वामनेति**। वामनरूपेणेव वामनावतारेणेव। उभयसाम्यमाह—**त्रिपदीति**। कृतो विहित एकं पादमुत्क्षिप्य पादत्रयेणावस्थानं त्रिपदी तस्या विलासो विभ्रमो येन स तथा तेन। पक्षे त्रिपदीति स्वर्गमृत्युपाताललक्षणा तस्या विलासो विलसनं येनेति भावः। **स्फटिकेति**। स्फटिकगिरिः स्फटिकाचलस्तस्य तटनेव वप्रेणेव। उभयं विशिनष्टि—**लग्नेति**। लग्ना सिंहमुखा प्रतिमा गजस्य दन्तबन्धो यस्य स तेन। 'प्रतिमा प्रतिरूपके। गजस्य दन्तबन्धे च' इत्यनेकार्थः। पक्षे लग्ना प्रतिबिम्बिता सिंहमुखस्य प्रतिमा प्रतिरूपकं यस्मिन्स तेन। अतएव प्रसाधितेनेव स्वीकृतभूषणपरिग्रहेणेव। लोलौ चपलौ यौ कर्णपल्लवौ ताभ्यामाहतं मुखं येन (यस्य) स तेन। पक्षे कर्णपल्लवः। शेषं पूर्ववत्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। पुनः प्रकारान्तरेण विशेषयन्नाह—**उज्ज्वलेति**। उज्ज्वला श्वेता ये पट्टकम्बलाः पट्टसूत्रनिर्मिताः। 'पट्' इति प्रसिद्धा वा। तेषां पटास्तैः प्रावारितान्याच्छादितानि पृष्ठानि येषां तैः। **रसितेति**। रसितानां रणितानां मधुरः श्रोत्रसुखदो यो घण्टिकानां लघुकिङ्किणीनां रवः स्वरस्तेन मुखरो वाचालः कण्ठो येषां ते। **मञ्जिष्ठेति**। मञ्जिष्ठया प्रसिद्धया लोहिता रक्तीकृताः स्कन्धकेसराणां बाला येषां ते। रक्तबालसाम्यादाह—**वनेति**। वनगजानामरण्यहस्तिनां रुधिरेण पाटला श्वेतरक्ताः सटा येषामेवभूतैः केसरिभिरिव हर्यक्षैरिव। पुरो निहितोऽग्रे न्यस्तो यो यवसराशिस्तृणसमूहस्तस्य शिखरमग्रं तत्रोपविष्टा मन्दुरापाला वाजिशालारक्षका येषां तैः। 'वाजिशाला तु मन्दुरा' इति कोषः। **आसन्नेति**। आसन्नः समीपवर्ती यो मङ्गलगीतध्वनिस्तत्र दत्ता न्यस्ता कर्णा यैः। **अन्तरिति**। कपोलयोरन्तर्मध्ये धृता स्थापिता मधुरा मिष्टा सरसा रसोपेता लुलिता हस्तेन मर्दिता लाजा आर्द्रतण्डुलाः। 'लाजाः स्युरार्द्र-

---

(मृदुता से) रगड़ खा रहा हो। राजभवन का यह आहाता इसकी अश्वशालाओं में स्थित राजा के प्यारे उन अश्वों से भव्य प्रतीत हो रहा था जिनकी पीठें चमकीले रेशमी आवरणों से ढकी हुई थीं, जिनकी गर्दनें मनोहर टनटनाती घंटियों की ध्वनियों से प्रतिध्वनित हो रही थीं, जिनके लहराते स्कन्ध स्थित अयाल मजिष्ठ से लाल हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो वे जगली हाथियो के रक्त से लाल हुए शेरो के अयाल हों, जिनके साईस आगे रखे चारे के ढेरो के शिखरों पर बैठे थे, जो समीप मे गाये गये मगल गीतो को ध्यान से सुन रहे थे और जिन की गालों के भीतर मीठी गुड़मिश्रित लाजाओं के ग्रास रखे हुए थे (अर्थात् उनको चबा रहे

वैस्तुरङ्गमैरुद्भासितम्, अधिकरणमण्डपगतैश्चार्यवेषैरत्युच्चवेत्रासनोपविष्टैर्धर्ममयैरिव धर्माधिकारिभिर्महापुरुषैरधिष्ठितम्, अधिगतसकलग्रामनगरनामभिरेकभवनमिव जगदखिलमालोकयद्भिरालिखितसकलभुवनव्यापारतया धर्मराजनगरव्यतिकरमिव दर्शयद्भिरधिकरणलेखकैरालिख्यमानशासनसहस्रम्, अभ्यन्तरावस्थितनरपतिनिर्गम प्रतीक्षणपरेण च स्थानस्थानेषु बद्धमण्डलेन कनकमयार्धचन्द्रतारागणशबलचर्मफलकैर्निशासमयमिव दर्शयता स्फुरितनिशितकरवालकरप्ररोहकरालितातपेनैकश्रवणपुटघटि-

---

तण्डुला' इति कोश । तेषा कवला गुडेरका येषा तै । भूपेति । भूपाला राजानस्तेषा वल्लभे प्रीत्युत्पादकैर्मन्दुरागतैर्वाजिशालाप्राप्तैरेवविधैस्तुरङ्गमैरश्वैरुद्भासित शोभितम् । अधीति । अधिक्रियते जनोऽस्मिन्नित्यधिकरणमण्डपस्तत्र गते । आर्य प्रशस्यो वेषो नेपथ्य येषा त । अत्युच्च यद्वेत्रासन तत्रोपविष्टै स्थितैर्धर्ममयैरिव धर्मनिष्पन्नैरिव धर्माधिकारिभिर्महापुरुषैरधिष्ठितमाश्रितम् । पुन कीदृशम् । यस्य यस्य कार्यस्य यदधिकरण तस्मिन्ये लेखकास्तैरालिख्यमान लिपीक्रियमाण शासनसहस्रमाज्ञापत्राणा दशशत यस्मिन् । अथ लेखकान्विशिनष्टि—अधीति । अधिगत ज्ञात सकलग्रामनगराणा नामाभिधान यैस्ते तथा तै । एकभवनमिवैकगृहमिवाखिल समग्र जगद्विष्टपमालोकयद्भिर्विलोकयद्भि । आलिखितेति । आलिखितो लिपीकृत सकल भुवनस्य त्रिविष्टपस्य यो व्यापारो व्यवहारस्तस्य भावस्तत्ता तया । धर्मराजो यमस्तस्य नगर सयमिनीति ख्यात तस्माद्व्यतिकरमतिशय दर्शयद्भिः । एतेन चित्रगुप्तलिखितोत्कृष्टलिपीकरणेन यमनगरापेक्षयाप्यत्र सातिशयत्व सूचितमिति भाव । पुन कीदृशम् । वक्ष्यमाणेन सेवकजनेनोत्पादिनाधिष्ठितमिति सर्वत्रान्वय । अथ सेवकजन विशिनष्टि—अभ्यन्तरेति । अभ्यन्तरे राजसमीपे येऽवस्थिता नरपतयो राजानस्तेषा निर्गमो बहिरागमन तस्य प्रतीक्षण प्रतीक्षा तत्र परेणासक्तेन । स्थानस्थानेषु स्थानानि च स्थानानि च स्थानस्थानानीति कर्मधारयस्तेषु बद्ध मण्डल येन स तेन । कनकेति । कनकमय सुवर्णनिष्पन्नो योऽर्धचन्द्रोऽर्धचन्द्रचित्र तारागणश्च

थे) । वह राजभवन न्यायमण्डपों मे सम्माननीय वेष पहने, ऊँचे वेत्रासनों पर बैठे साक्षात् धर्मरूप न्यायाधिकारी महापुरुषों से अधिष्ठित था । वहा पर सभी गाँवों तथा नगरों के जानने वाले, सारे ससार को मानो केवल एक भवन सा ही देख रहे और सारे ससार मे हो रहे व्यापारो के लिख लेने से धर्मराज (यम) के नगर की कार्यपद्धति[1] को ही दिखा रहे प्रतीत होते कचहरी के लेखक सहस्रों सरकारी आज्ञाएँ लिख रहे थे । वह भवन भीतर बैठे (अपने अपने) राजकुमारों के बाहर आने की प्रतीक्षा करते, और विभिन्न स्थानों पर समूह बनाये हुए, सुनहरी अर्धचन्द्र के तथा सैकड़ों (सुनहरी) नक्षत्रपुञ्जों के चित्रो से चित्रित (काले) चमड़े की ढालों से मानो रात्रि समय को प्रदर्शित करते, चमकते तथा तेज तलवार फलक से निकलतीं किरणों से धूप के (वहाँपर) दानेदार (अथवा) भयानक बनाते हुए, एक कान पर श्वेत

---

१. व्यतिकर = procedure, अथवा mutual relation धर्मराज नगरी से पारस्परिक सम्बन्ध को प्रदर्शित करते।

तधवलदन्तपत्रेणोर्ध्वबद्धमौलिकलापेन धवलचन्दनस्थासकखचितभुजोरुदण्डेन बद्धासिधेनुकेनान्ध्रद्रविडसिंहलप्रायेण सेवकजनेनास्थानमण्डपगतेन च यथोचितासनोपविष्टेन प्रसारयता दुरोदरक्रीडामभ्यस्यताष्टापदव्यापारमास्फालयता परिवादिनीमालिखता चित्रफलके भूमिपालप्रतिबिम्बमाबध्नता काव्यगोष्ठीमातन्वता परिहासकथां विन्दता बिन्दुमती चिन्तयता प्रहेलिका भावयता नरपतिकृतकाव्यसुभाषितानि पठता द्विपदीं

श्वेतबिन्दुचित्रं याभ्या शबलानि कर्बुराणि चर्मफलकानि तै चन्द्रतारकनिमित्तत्वादाह—निशेति। निशासमयमिव रात्रिकालमिव दर्शयतान्येभ्यो ज्ञापयता। स्फुरितेति। स्फुरित देदीप्यमान निशित तीक्ष्ण यत्करवाल खड्ग तस्य ये करा किरणास्तेषा प्ररोहा अङ्कुरास्तै करालितो दन्तुरित आतपो दिनकरालोको येन स तथा तेन। एकश्रवणपुट एककर्णपुटे घटित सयोजित धवल दन्तपत्र येन स तथा तेन। देशाचारोऽयं यदेककर्णे दन्तपत्रपरिधानम्। ऊर्ध्वं बद्धो नद्धो मौलिकलाप केशकलापी येन स तथा तेन। धवलेति। धवल यच्चन्दन तस्य स्थासका आभरणविशेषास्तै खचिता नद्धा भुजोरुदण्डा बाहुदण्डा यस्य स तेन। बद्धासीति। बद्धा। कट्यामिति शेष। असिधेनुका क्षुरिका येन। नानादेशपरिग्रहादाह—आन्ध्रेति। आन्ध्रस्त्रिलिङ्ग, द्रविडो द्राविडदेश, सिंहल सिंहलद्वीपम्, तत्प्रायेण तत्सदृशेन। एतद्देशोद्भवा प्रायो बाहुल्येन सन्ति यस्मिन्निति वा। स तेन सेवकजनेन। सेवकसेवकेनेत्यर्थ। इत पर सामन्तविशेषणानि—आस्थानमण्डपो मध्यमण्डपस्तत्र गतेन प्राप्तेन यथोचितानि यथायोग्यानि यान्यासनानि विष्टराणि तेषूपविष्टेनाभेदुषा। किं कुर्वता। दुरोदरक्रीडा द्यूतक्रीडा प्रसारयता विस्तारयता। अभ्यस्यताभ्यास कुर्वता। अष्टापद शारिफलम्। नयपिटकमित्यन्ये। तस्य व्यापारम्। आस्फालयता वादयता परिवादिनीं वीणाम्। चित्रफलक आलेख्यपट्टके भूमिपालो राजा तस्य प्रतिबिम्ब प्रतिरूपमालिखता लिपीकुर्वता। काव्येति। काव्यगोष्ठीमाबध्नता। काव्यश्रवणार्थं स्वस्योपवेशनेन जनबन्ध कुर्वतेत्यर्थ। परिहासकथामुपहास्यकारिवचनरचनामातन्वता विस्तारयता। बिन्दुमतीं विचित्रा लिपिं विन्दता प्राप्नुवता। प्रहेलिका पूर्वोक्ता चिन्तयता ध्यायता। नरपतिना राज्ञा कृतानि विरचितानि यानि काव्यसुभाषितानि काव्यसू-

---

हाथी दाँत का पत्ता लगाये हुए, सिर के बालों को ऊँचा बाँधे, सुगठित बाहुओं तथा जाँघों पर श्वेत चन्दन छापे (स्थासक) लगाये हुए, (कमर पर) छुरियाँ बाँधे हुए, अधिकतर आन्ध्र, द्रविड़ और लका के निवासी सेवकों से घिरा हुआ था और राजकीय सभाभवन मे जाकर उचित आसनों पर बैठे हुए सामन्त समूह से अधिष्ठित था, इनमें से (कुछ) जुआ खेल रहे थे (कुछ) 'चौपड़' (अष्टापद) के खेल का अभ्यास कर रहे थे, (कुछ) वीणा बजा रहे थे, (कुछ) चित्र बनाने के पट्ट पर राजा का चित्र बना रहे थे, (कुछ) कविताओं के सम्बन्ध मे गोष्ठी का आयोजन कर रहे थे, (कुछ) उपहासवाली बातों मे व्यस्त थे, कुछ 'बिन्दुमती' (बिन्दुओं से रचे वाक्य) को समझ रहे थे, कुछ पहेलियाँ बूझ रहे थे, कुछ राजाओं द्वारा रचित कवितामय सुभाषितों पर विचार कर रहे थे, कुछ 'द्विपदी' पद्य को पढ रहे थे, कुछ

गृह्णता कविगुणानुत्किरता पत्रभङ्गानालपता वारविलासिनीजनमाकर्णयता वैतालिकगीतमनेकसहस्रसंख्येन धवलोष्णीषपटाश्लिष्टविकटकिरीटसंकटशिरसा सनिर्झरशिखरलग्नबालातपमण्डलेनेव कुलपर्वतचक्रवालेन मूर्धाभिषिक्तेन सामन्तलोकेनाधिष्ठितम्, आस्थानोत्थितभूमिपालसवर्तितानां च कुथानां रत्नासनानां च राशिभिरनेकवर्णैरिन्द्रायुधपुञ्जैरिव विराजितसभापर्यन्तम्, अमलभूमिसंक्रान्तमुखनिवहप्रतिबिम्बतया विकचकमलपुष्पप्रकरमिव संपादयता गतिवशरणितनूपुरपारिहार्य-

---

त्कानि तानि भावयता चेतसि भावनां कुर्वता। द्विपदीं पदद्वयात्मिकां पठता पाठं कुर्वता। कविगुणान्नवीनकाव्यकर्तॄणां गुणास्तत्कालकाव्यकरणादिरूपान्गृह्णता ग्रहणं कुर्वता पत्राणि केतकीसंबन्धीनि तेषां भङ्गान्रचनाविशेषानुत्किरतोत्कीर्णं कुर्वता। वारविलासिनीजनं वारयोषिज्जनमालापयता संभाषयता। वैतालिका बोधिजना सुभाषितपाठका बन्दिनो वा तेषां गीतं गानमाकर्णयता शृण्वता। अनेकेति। अनेकानि सहस्राणि संख्या परिमाणं यस्य स तेन। धवलेति। धवलः श्वेतो यः उष्णीषपटो मूर्धवेष्टपटस्तेनाश्लिष्टान्यालिङ्गितानि विकटानि विपुलानि किरीटानि कोटीराणि तैः संकटं संकीर्णं शिरो यस्य स तेन। उष्णीषस्य श्वेतत्वात्किरीटस्य मणिप्रभया रक्तत्वाच्च श्वेतरक्तत्वसाम्यादुत्प्रेक्षामाह—सेति। सनिर्झरं निर्झरैः सह वर्तमानं यच्छिखरं शृङ्गं तत्र लग्नं बालातपस्य मण्डलं यस्मिन्नेवंभूतेन कुलपर्वतचक्रवालेनेवैदृशेन मूर्धाभिषेकेण कृतपट्टाभिषेकेण सामन्तलोकेन स्वदेशसमीपवर्तिगजसमूहेनाधिष्ठितमिति प्रागुक्तमेव। आस्थानेति। आस्थानादुपवेशनस्थलादुत्थितो यो भूमिपालो नृपतिस्तस्मात्संवर्तितानां समूहैरित्वेन्द्रायुधपुञ्जैरिवेन्द्रधनुःसमूहैरिव विराजितं शोभितं सभापर्यन्तं सभाप्रान्तो यस्य तत्। पुनः कीदृशम्। अनवरतं निरन्तरं वारविलासिनीनां जनेनागच्छता निर्गच्छता चाकुलितं व्याकुलीभूतम्। अथ च वारविलासिनीजनं विशेषयन्नाह—अमलेति। अमला निर्मला भूमिस्तस्यां संक्रान्तो यो मुखनिवहस्तस्य प्रतिबिम्बस्तस्य भावस्तत्ता तया। तस्य विकाससौगन्ध्यादिगुणवत्त्वादुत्प्रेक्षते—विकचेति। विकचो विकस्वरः कमललक्षणपुष्पाणां प्रकरः समूहो

कवियों के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे, कुछ (भूमि पर) सजावटी चित्र खोद कर बना रहे थे (अथवा केतकी पत्रों को काट काट कर सजावटी आकृतियाँ बना रहे थे), कुछ, वहाँ उपस्थित वेश्याओं से बोलचाल कर रहे थे और कुछ भाटों के गीत सुन रहे थे। ये सामन्त संख्या में कई सहस्र थे और श्वेत पगड़ी के वस्त्र से कसे बड़े से मुकुट से जकड़े सिरों के कारण इनका यह सामन्तकुल स्रोतों से ढकी चोटियों पर पड़ती नई धूपवाले कुल पर्वतों का जमघट-सा प्रतीत हो रहा था। बैठने के स्थान से राजा के उठ जाने पर तह की गई (कुथः) रंगीन दरियों और रत्नजटित सिंहासनों के समूह द्वारा उस संसद के किनारे ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो वे इन्द्रधनुषों के समूहों से सुशोभित हो। वह राजभवन निर्मल (पारदर्शक) मणियों से युक्त फर्श में प्रविष्ट नारीमुखों के प्रतिबिम्बित हो जाने से ऐसा प्रतीत होता कि मानो वे (फर्श पर) (पूजा के लिये) खिले फूलों की रचना कर रही हो और उनके चलने फिरने के कारण

रशनास्वनमुखरेण स्कन्धावसक्तकनकदण्डचामरेण निर्गच्छता प्रविशता चानवरत वारविलासिनीजनेनाकुलितम्, एकदेशनिषण्णचामीकरशृङ्खलासयतश्वगणम्, इतस्ततः प्रचलितपरिचितामितकस्तूरिकाकुरङ्गपरिमलवासितदिङ्मुखम्, अनेककुब्जकिरातवर्षवरबधिरवामनमूकसकुलम्, उपाहृतकिन्नरमिथुनम्, आनीतवनमानुषम्, आबद्धमेषकुक्कुटकुररकपिञ्जललावकवर्तिकायुद्धम्, उत्कूजितचकोरकादम्बहारीतकोकिलम्, आलप्यमानशुकसारिकम्, इभपतिपरिमलामर्षजृम्भितैश्च निःकूजद्भिः शिखरिणा जीवितैरिव गिरिगुहानिवासिभिर्गृहीतैः पञ्जरकेसरिभिरुद्भास्यमानम्, उत्त्रास्य-

यस्मिन्नेवंभूतमिव सपादयता कुर्वता। गतिवशेन गमनवशेन रणितानि शब्दितानि नूपुराणि पादकटकानि पारिहार्याणि कङ्कणानि रशना च कटिमेखला तासा स्वन शब्दस्तेन मुखरेण वाचालेन स्कन्धेऽवसक्त स्थापितं कनकदण्डयुक्त चामर येन स तथा तेन। एकस्मिन्देशे निषण्ण आसीनश्चामीकरस्य सुवर्णस्य शृङ्खलान्दुकस्तया सयतो बद्ध शुनां गणो यस्मिन्। इतस्तत इति। इतस्तत समन्तात्प्रचलिता परिचिता विश्वस्ता अमिता अनेके ये कस्तूरिकाकुरङ्गा कस्तूरिकामृगास्तेषा परिमल आमोदस्तेन वासित सुरभीकृत दिङ्मुख यस्य तत्। अनेकेति। प्रत्येकमभिसबन्ध। कुब्जा पूर्वोक्तलक्षणा, किराता पूर्वंव्याख्याता, वर्षवरा षण्ढा, बधिरा प्रसिद्धा, वामना. पूर्वंव्यावर्णितस्वरूपा। मूका प्रसिद्धा, तै सकुल व्याप्तम्। आश्चर्यावहमाह—उपाहृतेति। उपाहृतमानीत किंनरमिथुन यस्मिंस्तत्। आनीत वनमानुषमरण्यमनुष्यरूपवनचरं यस्मिन्। आबद्धेति। आबद्धा सयता ये मेषा हुडा, कुक्कुटाश्चरणायुधा, कुररा पक्षिविशेषा, कपिञ्जला गणेशा, लावका. प्रसिद्धा, वर्तिका पक्षिविशेषा, तेषा युद्ध यस्मिन्। उदिति। उत्प्राबल्येन कूजित येषामेवविधाश्चकोरा विषसूचका, कादम्बा कलहंसा, हारीता पक्षिविशेषा, कोकिला पिका

(निरन्तर) खड़खड़ाते नूपुरों ककणों और रशनाओं के शब्द को गुंजातीं, कन्धों पर सुवर्ण के दस्तों वाले चँवर रखे हुई, निकलती और (फिर) प्रविष्ट होती वेश्याओं से भरा हुआ था। इसके एक भाग में सोने की साँकलों से बधे बहुत से कुत्ते बैठे थे। इसमे चारों दिशाये इधर-उधर घूमते-फिरते अनगिनत पालतू कस्तूरिका मृगों की सुगन्ध से सुगन्धित थीं। यह अनेक कुबड़ों, किरातों, (वर्षवरों) नपुसकों, बहरों, बौनों और गूँगे व्यक्तियों से भरा हुआ था। इसमे (प्रदर्शनार्थ) किंनरों का एक जोड़ा तथा बनमानुष लाये गये थे। यहाँ (विशेषतया सधाये हुए) मेढों, मुर्गों, कुररों, कपिंजलों, बटेरो (लवा) और चिड़ियाओं के (मनोरञ्जनार्थ) युद्ध चल रहे थे। इसमे चकोर, कादम्ब, हारीत तथा कोयलें (आदि) पक्षी गा रहे थे। शुक तथा सारिकाओं से (उनके शिक्षक) बातें कर रहे थे। यह भवन उत्कृष्ट हस्तियों (इभपति) के मद की तेज गन्ध से (उत्पन्न) उतावली से क्षुब्ध और गुर्राते हुए और (इसलिये) ऐसे प्रतीत होते हुए कि वे मानों पर्वत कन्दरा (मूल) निवासी परन्तु अब पकड़ लिये गये पर्वतो के जीवन ही हों, पिंजरों (मे बन्द) सिंहों द्वारा विशेष आकर्षक बना

मानैः काञ्चनभवनप्रभाजनितदावानलशङ्कैर्लोलतारकैर्भ्रमद्भिर्भवनहरिणकदम्बकैर्लोचनप्रभया शबलीकृतदिगन्तरम्, उद्दामकेकारवानुमीयमानमरकतकुट्टिमस्थितशिखण्डिमण्डलम्, अतिशिशिरचन्दनविटपिच्छायानिषण्णनिद्रायमाणगृहसारसम्, अन्तःपुरेण च बालिकाजनप्रस्तुतकन्दुकपञ्चालिकाक्रीडेनानवरतसवाह्यमानदोलाशिखरक्कणितघण्टाटङ्कारपूरिताशामुखेन भुजगनिर्मोकशङ्कितमयूरह्रियमाणहारेण सौधशिखरावतीर्णप्रच-

---

यस्मिन्। आलप्येति। आलप्यमाना संभाष्यमाणा शुकसारिका यस्मिन्। पुन कीदृशम्। पञ्जरकेसरिभि पञ्जरप्राप्तहर्यक्षैरुद्भास्यमानमुत्प्राबल्येन शोभमानम्। अथ केसरिणं(णो)विशेषयन्नाह—इभपतीति। इभपतिर्गन्धगजस्तस्य परिमलस्तस्माद्योऽमर्ष क्रोधसम्भवस्तेन जृम्भितैर्घूर्णितैरतएव नि कूजद्भिर्नितरां गुञ्जद्भिर्गुंञ्जारव कुर्वद्भि। शिखरिणां पर्वतानां केसरिसारवत्वादाह—जीवितैरिति। जीवितैरिव गिरीणा या गुहा कन्दरास्तत्र निवासिभिरवस्थायिभिर्गृहीतैर्बलाद्वनानीतैरित्यर्थ.। पुन प्रकारान्तरेण विशेषयन्नाह—भवनेति। भवनहरिणकदम्बकैर्गृहमृगसमूहैर्लोचनप्रभया नेत्रदीप्त्या शबलीकृत दिगन्तर यस्मिन्। कीदृशै। काञ्चनभवन सुवर्णगृह तस्य प्रभा कान्तिस्तया जनितोत्पादिता दावानलशङ्का वनवह्निद्वापरो येषां तै। अतएवोत्त्रास्यमानैरुत्प्राबल्येन त्रास प्राप्यमाणै। लोलास्तारका कनीनिका येषा तैर्भ्रमद्भिरितस्तत पर्यटद्भि। उद्दामेति। उद्दाम उद्धतो य केकारवस्तेनानुमीयमानमनुमानविषयीक्रियमाण मरकतकुट्टिमस्थितमश्मगर्भबद्धभूमिस्थितमुपविष्टं शिखण्डिमण्डलं मयूरसमूहो यस्मिन्। अतीति। अतिशिशिरोऽतिशीतलो यश्चन्दनविटपिर्मलयजतरुस्तस्य छाया आतपाभावस्तत्र निषण्णा उपविष्टा निद्रायमाणाः प्रमीला कुर्वन्तो गृहसारसा यस्मिन्। अथ चान्त पुरेण शुकेत्यारभ्यावरोधजनेन भवनेत्यारभ्य गणेनाधिष्ठितेन समुपेत सहितमभ्यन्तर मध्य यस्येति दूरेणान्वय। क्रमेण कीदृशेत्यादि। बालिकेति। बालिकाजनेन कन्याजनेन प्रस्तुता प्रारब्धा कन्दुकस्य गेन्दुकस्य पञ्चभिर्मृदादिमयीभि स्वल्पगुलिकाभिर्व्यूत पञ्चालिकोच्यते। तस्या क्रीडा येन स तेन। अनवरतेति। अनवरत निरन्तर सवाह्यमानारुह्यमाणा या दोला प्रेङ्खा तस्या

हुआ था। इस भवन की चारों दिशाओं को डरते हुए, सुवर्ण भवनों की कांति से (अपने मनों में) वनाग्नि की शङ्का उत्पन्न किये हुए, चञ्चल पुतलियों वाले, (खुले) घूमते हुए हरिणों के समूह ने अपनी आँखों की ज्योति से रगबिरगा किया हुआ था। वहाँ अनियन्त्रित (अतएव बहुत प्रबल) केकाध्वनि से ही (केवल) मरकतमणि खचित फर्श पर स्थित मोरों के समूह का अनुमान किया जा सकता था। अत्यन्त ठडी चन्दनवृक्ष की छाया में (वहाँ) पालतू सारस सोये पड़े थे। राजभवन के भीतरी प्रवेश में रनिवास था। रनिवास में बालिकाओं ने गेंद और पुतलियों का खेल आरम्भ किया हुआ था, वहाँ निरन्तर झुलाये जा रहे झूलों के शिखरों पर लगी हुई टनटनाती घण्टियों की टनटनाहट से सारी दिशाओं के अन्तराल भरे हुए थे, साँपों की केंचुलियों से भ्रान्त हुए (केंचुलियों को भूल से हार समझते हुए) मयूर (ललनाओं के) मुक्ताहारों को उठाये ले जा रहे थे, भवनों की छतों पर से उतार कर (नीचे

लितपारावतकुलतया स्थलोत्पलिनीवनेनेवान्तःपुरिकाजनप्रस्तुतनरपतिचरितविडम्बन-क्रीडेनाश्वमन्दुरापरिभ्रष्टागतैरवलुप्तभवनदाडिमीफलैराखण्डिताङ्गणसहकारपल्लवैरभि-भूतकुब्जवामनकिरातकरतलाच्छिन्नानि भूषणानि विकिरद्भिः कपिभिराकुलीभूतेन शुकसारिकाप्रकाशितसुरतविश्रम्भालापलज्जितावरोधजनेन प्रासादसोपानसमारोहण-चलितैरबलाना चरणावसक्तैर्मणिमयैः पदेपदे रणद्भिस्तुलाकोटिवलयैर्द्विगुणीकृतकूजितरु-ताभिर्वनहंसमालिकाभिर्धवलिताङ्गणेन धृतधौतधवलदुकूलोत्तरीयैः कलधौतदण्डाव-

शिखरमग्र तस्मिन्क्वणिता या घण्टास्तासा टङ्कारस्तेन पूरित भृतमाशामुख येन। भुजगेति। भुजगस्य सर्पस्य यो निर्मोक कञ्चुकस्तेन शङ्कित शङ्का प्राप्तो यो मयूर. केकी तेन ह्रियमाणो हारो मुक्ताकलापो यस्य स तेन। सौधेति। सौधशिखरादवतीर्णं प्रचलित यत्पारावतकुलं रक्तलोचनकुल तस्य भावस्तत्ता तया। स्थलेति। स्थलस्य या उत्पलिन्य कमलिन्यस्तासां वनेनेव काननेनेव। पारावतानां नीलत्वसाम्यात्तदुत्प्रेक्षा। अन्तःपुरेति। अन्त पुरिकाजनेन प्रस्तुता प्रारब्धान्यनरपतिचरितानां विडम्बनक्रीडा यस्मिन्स तेन। पुन किंविशिष्टेन। कपिभि-र्वानरैराकुलीभूतेन। अश्वानां दृष्टिदोषबाधनार्थमश्वशालायां कपय स्थाप्यन्त इति राज्ञामा-चार'। अत उक्तम्। अश्वमन्दुरात परिभ्रष्टा बन्धनाद्विमुक्ता अतएवागतास्तै। अवेति। अवलु-प्तानि मर्दितानि भवनदाडिमीफलानि यै। आखण्डितेति। आखण्डिता शकलीकृता गृहाङ्गण तस्य सहकारपल्लवाश्चूतकिसलया यै। अभीति। अभिभूता पराभूता ये कुब्जवामनकिरा-तास्तेषा करतलाद्धस्ततलादाच्छिन्नानि बलाद्गृहीतानि भूषणानि विकिरद्भिर्विक्षिपद्भिरेवभूतै कपिभिर्वानरैराकुलीभूतेन व्याकुलीभूतेन। शुकेति। शुक कीर, सारिका पीतपादा, ताभि प्रकाशित प्रकटीकृतो यः सुरते मैथुने विश्रम्भालापो विश्वासालापस्तेन लज्जितत्रपितोऽवरोध-

के भवनों में) तथा (इधर उधर) फिरते कबूतरो के कारण यह प्रदेश स्थलकमलिनियों के गुच्छों से सुशोभित सा प्रतीत हो रहा था, वहाँ रनिवास की (कई) नौकरानियाँ राजा (चन्द्रापीड) के सफल कार्यों के प्रदर्शन[1] (विडम्बन = Imitation) कर रही थीं, उस रनिवास (के एकभाग) में घुड़सालों से भागकर आये, भवनों मे के अनारो के फलों को तोड़ते तथा आँगन के आमों की टहनियो को चरमराते और वशीकृत कुबड़ों, बौनो और किरातों के हाथ से छीने हुए आभूषणों को इधर-उधर बखेरते बानरों ने उत्पात मचाया हुआ था, वहाँ की कुछ महिलाएँ, तोतों और मैनाओं द्वारा उनके सुरत (कालीन) विश्वस्त (निजी) वार्तालापों के प्रकाशित होने से लज्जित हो रही थीं, उसका आँगन भवन की सीढ़ियों पर चढ़ने से हिले, ललनाओं के पाँवो मे चिपके, एक एक पग (उठाने) पर शब्द करते, मणिजटित गोल नूपुरों (तुलाकोटि = नूपुर) की झनझनाहट से (मिल्कर) प्रबल हुई मधुर ध्वनिवाले पालतू हंसों की पंक्तियों से श्वेत हुआ था, और उस रनिवास की देखभाल श्वेत स्वच्छ

१ अथवा (चन्द्रापीड से भिन्न दूसरे) राजाओं के कारनामों की नकल करके हँसी उड़ाने के खेल खेल रही थीं।

लम्बिभिः पलितपाण्डुरमौलिभिराधारमयैरिव मर्यादामयैरिव मङ्गलमयैरिव गम्भीराकृतिभिः स्वभावधीरैरुष्णीषिभिर्वयःपरिणामेऽपि जरत्सिंहैरिवापरित्यक्तसत्त्वावष्टम्भैः कञ्चुकिभिरधिष्ठितेन समुपेताभ्यन्तरम्, जलधरसनाथमिव कृष्णागुरुधूमपटलैः, सनीहारमिव यामकुञ्जरघटाकरसीकरैः, सनिशमिव तमालवीथिकान्धकारैः सबालातप-

जनो यस्मिन्स तेन। प्रासादेति। प्रासादस्य गृहस्य यानि सोपानान्यारोहणानि तत्र यत्समारोहणमुपरिष्टाद्गमन तेन चलितै कम्पितैरबलाना स्त्रीणा चरणावसक्तै पादावलग्नैर्मणिमये रत्नविकारै पदे पदे। प्रतिचरणविन्यासमित्यर्थ। रणद्भि शब्द कुर्वद्भिस्तुलाकोटिवलयै पादाङ्गदवलयैर्द्विगुणीकृत द्विगुणतामापादित कूजितलक्षण रुत शब्दित यासा ताभिरेवभूताभिर्हंसमालिकाभि कलहसपङ्क्तिभिर्धवलित शुभ्रीकृतमङ्गण चत्वर यस्य स तेन। धृतेति। धृत धारित धौत क्षालित धवलं श्वेत दुकूलस्य क्षौमस्योत्तरीयं यै। कलेति। कलधौतस्य सुवर्णस्य यो दण्डो यष्टिस्तस्यावलम्बो विद्यते येषा ते। अतिवृद्धत्वाद्दण्डमवलम्ब्य स्थायिभिरित्यर्थ। पलितेति। पलित पाण्डुरा कचास्तैः पाण्डुरा श्वेता मौलयो येषा ते। आधारोऽवष्टम्भस्तन्मयैरिव तद्विकारैरिव, मर्यादा स्थितिस्तन्मयैरिव, मङ्गल श्रेयस्तन्मयैरिव, गम्भीरालक्ष्यमध्याकृतिराकारो येषा ते। अतएव स्वभावेनानुपाधिकेन धीरा धैर्यवन्तस्तै। उष्णीषो मूर्धवेष्टन विद्यते येषा तैरुष्णीषिभि। वय परिणामेऽप्यतिवृद्धत्वेऽपि जरत्सिंहैरिव वृद्धहर्यक्षैरिवापरित्यक्तोऽनुज्झित सत्त्वावष्टम्भो यै सत्त्व साहस तस्यावष्टम्भ आधारो यैरेवविधै कञ्चुकिभि सौविदल्लैरधिष्ठितेनाश्रितेन। अङ्गणविशेषणम्। एवविधेनान्त पुरेण समुपेत सहितमभ्यन्तर मध्यभागो यस्येति। गृहविशेषणमिति भाव। प्रकारान्तरेण गृह वर्णयन्नाह—जलेति। जलधरसनाथमिव मेघसदृशमिव। कै। कृष्णागुरूणां काकतुण्डाना ये धूमास्तेषां पटलै समूहै। सनीति। सनीहारेण हिमेन सह वर्तमानमिव यामकुञ्जराश्चतुष्किकागतहस्तिनस्तेषा घटा समूहास्तस्य करा शुण्डास्तेषां शीकरा पृषतास्तै। सनीति। निशा रात्रिस्तया सह वर्तमानमिव तमालाना तापिच्छाना वीथिका पङ्क्तिस्तस्या अन्धकारस्तिमिरै। सेति। सह

रेशमी उत्तरीय पहने, सुवर्ण के दण्डों का आश्रय लिये हुए, (बुढापे से) श्वेत हुए बालो से श्वेत सिरो वाले, गम्भीर आकृतिवाले होने से स्थिरतामय से अथवा मर्यादा (उचित व्यवहार) से बने हुए से अथवा मगलमय से प्रतीत होते, स्वभाव से ही साहसी, (सिर पर) पगड़ियाँ पहने और वृद्धावस्था तक मे अपनी भव्य गरिमा[1] को न छोड़े हुए और इस कारण वृद्ध होकर भी पशुओ पर आक्रमण करना न छोड़े हुए सिंहों से प्रतीत होते कञ्चुकी कर रहे थे। वह राजभवन (उसमें लहराते) काल अगरु के धूम्रसमूह के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इसके भीतर (काले वर्षा ऋतु के) बादल हो, पहरेदार हस्तियो की सूँड़ों से निकली फुहारों के कारण कुहरे से भरा हुआ सा, तमालो (वृक्षों) की पक्तियो से हुए अन्धकार के कारण रात्रि मे लिपटा हुआ सा, (खिले) लाल अशोक वृक्षो (की विद्यमानता) के कारण प्रात कालीन

१ सत्त्वावष्टम्भ = साहस का आश्रय।

मिव रक्ताशोकैः, सतारागणमिव मुक्ताकलापैः, सवर्षासमयमिव धारागृहैः, सतडिल्लतमिव हेममयीभिर्मयूरयष्टिभिः, सगृहदैवतमिव शालभञ्जिकाभिः, शिवभवनमिव द्वारावस्थितदण्डपाणिप्रतीहारगणम्, उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्, अप्सरोगणमिव प्रकटमनोरमारम्भम्, दिवसकरोदयमिवोल्लसत्पद्माकरकमलामोदम्, उष्णकिरणमिव निजलक्ष्मीकृतकमलोपकारम्, नाटकमिव

बालातपेन तरुणालोकेन वर्तमानमिव रक्ता येऽशोका कङ्केल्लयस्तै । सेति । सह तारागणेन नक्षत्रसमूहेन वर्तमानमिव । कै । मुक्ताकलापैर्मुक्ताप्रालम्बै । सवर्षेति । सह वर्षासमयेन प्रावृट्समयेन वर्तमानमिव । कै । धारागृहैर्यन्त्रगृहै. । सेति । सह तडिल्लतया विद्युल्लतया वर्तमानमिव । काभि । हेममयीभि सुवर्णनिर्मितैर्मयूरयष्टिभि कलापिसमूहोपवेशनदण्डै । सेति । सह गृहदैवतेन वर्तमानमिव । काभि । शालभञ्जिकाभि पुत्रिकाभि । शिवेति । शिवस्येश्वरस्य भवन गृह तद्वदिव द्वारावस्थिता दण्डपाणय प्रतीहारगणा यस्मिन् । ईश्वरपक्षे कूष्माण्डकादयो गणा । उत्कृष्टमलकाराद्युपेत यत्कविगद्यमच्छन्द तद्वदिव । उभय विशेषयन्नाह—विविधेति । विविधा अनेके ये वर्णा ब्राह्मणादय , एकमुल्यसजातीयसमूहश्रेणि , ताभि प्रतिपाद्यमान कथ्यमानोऽभिनवोऽश्रुतपूर्वोऽर्थसंचयोऽभिधेयसमूहो यस्मिन् । अप्सरसा तिलोत्तमानां गण समुदायस्तमिव । प्रकट स्पष्टो मनसो रमाणा सुन्दराणामारम्भ प्रारम्भो यस्मिन् , पक्षे मनोरमा रम्भा देवाङ्गना यस्मिन् । दिवसेति । दिवसकरस्य सूर्यस्योदय उद्गमन तमिव । उल्लसन्ति यानि पद्माकरेषु तटाकेषु कमलानि सरोजानि तेषामामोद. परिमलो यस्मिन्नत्यभङ्गश्लेष । यद्वोल्लसन्त पद्माकरा श्रीकारका कमलाहरिणविशेषास्तेषामामोद' परिमलो यस्मिन् । उष्णकिरण सूर्यस्तमिव निजलक्ष्म्या स्वराज्यश्रिया कृतो विहित कमलवज्जलजवत्कमलैर्वोपकार उपकृति. पूजा वा येन तत् ।

धूप से युक्त-सा, मोतियों के हारों के कारण नक्षत्र युक्त-सा, धारागृहों (फुहार से नहाने के स्नानागारों) के कारण वर्षाऋतु से युक्त सा, मयूरों की सोने की वास-यष्टियों के कारण विद्युत् की चमकों से युक्त सा, उत्कीर्ण चित्रों (शालभञ्जिकाभि) (की विद्यमानता) के कारण गृह-देवताओं से युक्त सा, द्वार पर बैठे हाथ मे दण्ड लिये द्वारपालों के कारण अपने गणों (सेवकों) से अधिष्ठित द्वारवाला शिवजी का निवास स्थान सा, विविध वर्णों तथा श्रेणियों अर्थात् वर्गों तथा सघो द्वारा (इसमे) किये गये बहुमूल्य पदार्थों के संग्रह (अर्थसंचय) के कारण, विविध शब्द (वर्ण) समूहों द्वारा विचित्र अर्थों को प्रकट करते किसी उत्कृष्ट (कवि रचित) गद्य सा, विविध प्रकार के मनोरञ्जक कार्यक्रमो के स्पष्टत इसमे दिखायी देने के कारण, विशेषत दृश्यमान हृदयहारिणी रम्भा (अथवा मनोरमा और रम्भा) युक्त अप्सराओं के समूह सा, (हाथो मे) शोभायमान कमलों की (चारों ओर फैली हुई) सुगन्धयुक्त (होने के कारण) [अथवा सुवर्णमुद्राओं के रूप मे लायी गयी लक्ष्मी के कारण सर्वत्र आनन्द के सचार से युक्त], कमलसरो से लाये गये (अभी अभी विकसित हुए) कमलों की गन्ध को फैलाते सूर्योदय सा, अपनी निजी चमकदमक से (लक्ष्मी को भी और अधिक भव्य प्रतीत होती बनाकर) लक्ष्मी का भी उपकार करके, अपनी प्रभा से (विकसित कर) कमलों को उपकृत करनेवाले सूर्य सा,

पताकाङ्कशोभितम्, शोणितपुरमिव बाणयोग्यावासोपेतम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, सपूर्णचन्द्रोदयमिव मृदुकरसहस्रसवर्धितरत्नालयम्, दिग्गजमिवाविच्छिन्नमहादानसतानम्, ब्रह्माण्डमिव सकलजीवलोकव्यवहारकारणोत्पन्नहिरण्यगर्भम्, ईशानबाहुवनमिव महाभोगिमण्डलसहस्राधिष्ठितप्रकोष्ठम्, महाभारतमिवान-

---

पक्षे निजलक्ष्म्या निजशोभया कृतो विहित कमलानामुपकारो विकाशरूपो येन तम्। नाटक ताण्डव तद्वदिव पताका वैजयन्ती तस्या अङ्को मध्यं तेन शोभितम्। पक्षे पताका हस्तविन्यासा, अङ्को नाटकैकदेश ताभ्या शोभित विराजितम्। शोणितपुर बाणनाम्नो दैत्यस्य नगर तच्च 'देवीकोट' इति प्रसिद्धं तद्वदिव बाणा शरास्तेषां योग्यो य आवासस्तेनोपेत सहितम्। पक्षे बाणो दैत्यस्तदावासोपेतमित्यर्थ। पुराणेति। पुराण पञ्चलक्षण तद्वदिव विभागेन भिन्नतयावस्थापितो रचित सकलभुवनस्य समग्रविष्टपस्य कोशो द्रव्यसमूहो यस्मिन्। पक्षे विभागेनावस्थापित ज्ञापित सकलभुवनकोश समग्रभुवनमण्डल येन। संपूर्णेति। सपूर्ण समग्रो यश्चन्द्रस्तस्योदयस्तद्वदिव मृदव स्वल्पा ये करा राजदेयद्रव्याणि तेषां सहस्रं तेन संवर्धितानि वृद्धिं प्रापितानि यानि रत्नानि तान्येवालये गृहे यस्मिन्। पक्षे मृदुकराणां सुकुमारकिरणानां यत्सहस्र तेन सवर्धितो वेलां प्रापितो रत्नालय समुद्रो येन स तम्। दिगिति। दिशि स्थितो गजो दिग्गजस्तमिवाविच्छिन्नमत्रुटित महादानस्य महद्वितरणस्य सतानं परपरा यस्मिन्। पक्षे दानसतानं मदसतति। शेष पूर्ववत्। ब्रह्माण्डेति। ब्रह्माण्ड विश्वं तदिव सकलजीवलोकस्य समग्रविष्टपस्य व्यवहारो व्यवहरणं तस्य कारण निदान तदर्थमुत्पन्न यद्धिरण्य सुवर्णं तदेव गर्भे मध्ये यस्य तत्। पक्षे हिरण्यगर्भो विश्व-

---

(सर्वत्र) फहरायी हुई ध्वजों पर अङ्कित चिह्नों से सुशोभित होने के कारण स्पष्टतया निर्दिष्ट पताकाओं तथा अंकों से सुशोभित नाटक सा, बाणविद्या के अभ्यास के योगकक्षों से युक्त होने के कारण, बाणासुर के निवास योग्य (उसकी राजधानी) शोणितपुर सा, क्योंकि इसके विविध भागों में सभी लोकों की धन सम्पत्ति (वहाँ से लाकर) रखी गयी है—इस कारण यह उस पुराण सा प्रतीत होता है कि जिसमें सारे जगत् के मण्डल का वर्णन उनके पृथक् विभागों के अनुसार किया गया है। सहस्रों हलके करों द्वारा इसका रत्न भण्डार भरा रहता है—इस कारण यह राजभवन अपनी सहस्रों मृदुकरों से रत्नों के भण्डार-समुद्र को बढ़ानेवाले पूर्ण चन्द्रोदय सा प्रतीत होता है। इस भवन की दानपरम्परा कभी खण्डित न होने के कारण यह उस दिग्गज सा प्रतीत होता है कि जिसके मद की परम्परा कभी खण्डित नहीं होती—जिसका मद सदा बहता रहता है। क्योंकि इसके गर्भ में, अन्तःस्थ कमरों में सम्पूर्ण जीवों के लौकिक व्यवहार का कारणभूत सोना भरा हुआ है, इसलिये यह भवन सम्पूर्ण मृत्युलोक के व्यवहार को (समुचित रीति से चलवाने के) उद्देश्य से ब्रह्मा (हिरण्य) की उत्पत्ति के स्थान ब्रह्माण्ड सा प्रतीत होता है। क्योंकि अत्यन्त भोगी (अथवा सम्पत्तिशाली) सहस्रों व्यक्ति इसके कक्षों पर अधिकार किये हुए हैं इसलिये यह कुण्डली लगाये बड़े-बड़े सहस्रों सर्पों से घिरी कलाई वाली शिवजी की सहस्रों बाहुओं का वन सरीखा प्रतीत हो रहा था। असख्य गीतों के सुनने से प्रसन्न मनुष्यों से भरा यह राजभवन अनन्त (श्रीकृष्ण) की गीता के सुनने से प्रसादित अर्जुन

न्तगीताकर्णनानन्दितनरम्, यदुवशमिव कुलक्रमागतशूरभीमपुरुषोत्तमबलपरिपालितम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपञ्चसुस्थितम्, उदधिमिव भयान्तःप्रविष्टसपक्षभूभृत्सहस्रसंकुलम्, उषा-

---

रेताः शेष पूर्ववत् । ईशानेति । ईशान ईश्वरस्तस्य बाहुवनं भुजवनम् । सरलत्वाद्बाहुल्याच्च नृत्यारम्भ ऊर्ध्वीकृतत्वेन च वनोपमानम् । तद्वदिव । महेति । महाभोगिनां नृणां मण्डलसहस्रैरधिष्ठित आश्रित प्रकोष्ठो गृहैकदेशो यस्मिन् (स्य) । पक्षे महाभोगिनां महासर्पाणा मण्डलसहस्रैरधिष्ठित प्रकोष्ठ कलाचिका यस्मिन् (स्य) । महानाभोगो विद्यते येषामेवविधानां मण्डलानां खड्गाना सहस्र तेनाधिष्ठितौ प्रकोष्ठौ यस्येति वा । महेति । महाभारत शास्त्र तदिवान न्तान्यसख्यानि गीतानि गानानि तेषामाकर्णन श्रवण तेनानन्दिता हर्षिता नरा मानवा यस्मिन् । पक्षेऽनन्त परमेश्वरस्तस्य गीत स्तुतिस्तदाकर्णनेनानन्दितो नरोऽर्जुनो यस्मिन् । यदुवशमिव यदुर्नृपतिस्तस्य वश सतानपरपरा तमिव कुलक्रमागता परपरायाता, शूरा शौर्यगुणयुक्ता, भीमा क्रूराकृतय, पुरुषोत्तमा पुरुषेषु मुख्या, तेषा बलेन सैन्येन परिपालित रक्षितम् । रजन्यां चतुष्किकाप्रदानेन तद्रक्षा कुर्वन्तीति भाव । पक्षे शूरो नाम विष्णो पितामह, भीमो नाम कश्चित्, पुरुषोत्तमो विष्णु, बलो बलदेव एभि परिपालित लालितम् । जरासिन्धोरिति शेष । व्याकरण शब्दशास्त्र तद्वदिवायं प्रथम आद्य, अथ मध्यमोऽनुत्कृष्टाधम, अथ चोत्तम सर्वोत्कृष्ट, एवविधा या पुरुषविभक्तिस्तस्या स्थिता येऽनेक आदेशकारका आज्ञाकारकास्तैराख्याता प्रतिपादिता सम्यक्प्रकारेण या संप्रदानक्रिया तस्यां यो व्ययस्तस्य प्रपञ्चो विस्तारस्तत्र सुस्थितम् । सुखेनावस्थितमित्यर्थं । पक्षे प्रथमपुरुषो मध्यमपुरुष उत्तमपुरुषश्चेति सज्ञात्रय पाणिनिना प्रपञ्चितम् । विभक्तयश्च स्वादयस्तासु स्थिता आदेशास्तिस्चतसृप्रभृतय, कारकाणि कर्त्रादीन्याख्यातानि नव दश वा । सप्रदानं चतुर्थीकारकम्, क्रिया भ्वादि, अव्ययान्युच्चैरित्यादीनि तेषां प्रपञ्चो विस्तार सुस्थितो यस्मिन् । उदधि समुद्रस्तद्वदिव भयाद्भीतेरन्त प्रविष्ट

वाला महाभारत (काव्य) सा प्रतीत हो रहा था। वशक्रमागत, वीर, भयङ्कर तथा चुने हुए (श्रेष्ठ) पुरुषों की सेना द्वारा सुरक्षित यह भवन, शूर, भीम, कृष्ण तथा बलराम से सुरक्षित यदुवश सा प्रतीत हो रहा था। प्रथम अर्थात् निम्न, मध्यम और उत्कृष्ट पुरुषों का विभाजन करने के लिये नियुक्त राजाज्ञाओं को क्रियान्वित करनेवाले (राजपुरुषों) के निर्देशों के अनुसार दान देने की क्रिया के कारण हुए व्यय के विस्तार से सुखी यह भवन प्रथम-मध्यम उत्तम पुरुष और विभक्तियों के वर्णन से सुव्यवस्थित तथा कारक, आख्यात, सम्प्रदान, क्रिया, अव्यय के विस्तार से सुव्यवस्थित व्याकरण शास्त्र सा प्रतीत हो रहा था। (शत्रुओं से) डरकर वहाँ भीतर प्रविष्ट हुए सहस्रों (तारापीड के) मित्र (सपक्ष) राजाओं से भरा यह राजभवन (उनके पखोंको काटनेवाले इन्द्र के) भय से (समुद्र के) भीतर घुस आये पखोंवाले सहस्रों पर्वतों से भरे हुए समुद्र के समान प्रतीत हो रहा था। वहाँ चित्रों (की पक्तियों) द्वारा ससार भर के सारे विचित्र (दृश्य) दिखाये हुए थे—इस कारण वह भवन उषा तथा अनिरुद्ध के

निरुद्धसमागममिव चित्रलेखादर्शितविचित्रसकलत्रिभुवनाकारम्, बलियज्ञमिव पुराणपुरुषवामनाधिष्ठिताऽभ्यन्तरम्, शुक्लपक्षप्रदोषमिव विततशशिकिरणकलापधवलाम्बरवितानम्, नरवाहनदन्तकथेवान्तःसवर्धितप्रियदर्शनराजदारिकागन्धर्वदत्तोत्कण्ठम्, महातीर्थमिव सद्योऽनेकपुरुषप्राप्ताभिषेकफलम्, प्राग्वंशमिव नानासवपात्र-

---

मध्ये समागत यत्सपक्षाणां परिच्छदोपेताना भूभृता राज्ञा सहस्रं तेन सकुलम्। पक्षे सपक्षा पक्षयुक्ता भूभृत पर्वताः। शेषं पूर्ववत्। उषेति। उषा बाणासुरपुत्री, अनिरुद्ध प्रद्युम्नतनय, तयो समागम संबन्धस्तदिव। तस्या सखीभूता चित्रलेखा तयानिरुद्धोत्कण्ठितामुषां प्रत्यनिरुद्धज्ञानाय चित्रे त्रिभुवनमालिख्य दर्शितमिति पौराणिकी कथा। तामधिकृत्याह—चित्रेति। चित्रलेखाभिरालेख्यपङ्क्तिभिर्दर्शित प्रकाशितो विचित्रो नानाविध सकल समग्रस्त्रिभुवनस्य त्रिविष्टपस्याकार आकृतिर्येन तत्। पक्षे चित्रलेखा सखी। शेष पूर्ववत्। बलिर्नृपस्तेन कृतो यज्ञो यागस्तमिव पुराणपुरुषैर्वृद्धपुरुषैर्वामनैश्चाधिष्ठितमाश्रितमभ्यन्तर मध्यभागो यस्य तत्। पक्षे पुराणपुरुषो यो वामनो गृहीतवामनावतार। शेष पूर्ववत्। शुक्लेति। शुक्लो य पक्षस्तस्य प्रदोषो यामिनीमुख तद्वदिव। विततो विस्तीर्णो य शशिकिरणकलापस्तद्वद्धवल यदम्बर वस्त्र तस्य वितानमुल्लोचो यस्मिन्। पक्षे शशिकिरणकलापेन धवलाम्बरमेव वितान यस्मिन्निति विग्रह। नरवाहनो राजा तस्य दन्तकथा लोकप्रवृत्तिस्तद्वदिवान्त सवर्धिता अन्त पुरे वृद्धिं प्राप्ता या प्रियदर्शना दृष्टावलोकना राजदारा एव राजदारिकाः। स्वार्थे क। 'काम्यच्च' इति पूर्वस्येकार। ताभिर्गन्धर्वाणां देवगायकाना दत्तोत्कण्ठा यस्मिन्। पक्षेऽन्त सवर्धिता प्रियदर्शनानाम्नी राजदारिका नरवाहनपुत्री गन्धर्वदत्तश्च तस्या गन्धर्वशिक्षकोपाध्याय-

---

उस समागम जैसा लग रहा था कि जिसमें इस समागम सम्बन्धी तीनों भुवनों की विविध आकृतियाँ (सहेली) चित्रलेखा द्वारा (उषा को) दिखायी गयी हों। उसके भीतरी भाग में वृद्ध पुरुष (कंचुकी) तथा बौने रहते थे—इस कारण वह पुराण पुरुष (विष्णु) के वामन अवतार से अधिष्ठित बलि के यज्ञीय आँगन सा प्रतीत हो रहा था। उसमें चन्द्रमा की फैली किरणों के पुञ्ज से श्वेत वस्त्र का बना चन्दोवा लगा हुआ था—इसलिये वह चन्द्रमा की निकलती किरणों के गुच्छ से श्वेत हुए आकाशवाले शुक्लपक्ष की सन्ध्या सा प्रतीत हो रहा था। उस राजभवन के भीतर पाली जाती परम सुन्दरी राजकन्याओं के कारण उस राजभवन ने गन्धर्वों (तक के हृदयों में) उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी थी और इसी कारण वह उस नरवाहन दत्त की कथा सरीखा प्रतीत होता था कि जिसमें परम सुन्दरी गन्धर्वदत्ता के लिये (नरवाहनदत्त) के हृदय में उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी थी। इसमें अनेक पुरुषों (अर्थात् ब्राह्मणों ने) (देवताओं की अपनी की गयी) पूजा (अभिषेक) का फल तत्काल प्राप्त किया है—इस कारण वह उस एक अत्यन्त पवित्र तीथ (महातीर्थ) सरीखा प्रतीत हो रहा था कि जिस (के पवित्र जल) में स्नान करने का फल अनेक पुरुष प्राप्त करते हैं। विविध प्रकार के मदिरापात्रों से भरा वह राजभवन यज्ञगृह के उस पूर्वीगृह-सा प्रतीत होता था कि जो विविध

संकुलम्, निशासमयमिवानेकनक्षत्रमालालंकृतम्, प्रभातसमयमिव पूर्वदिग्भागरागानुमेयमित्रोदयम्, गन्धिकभवनमिव स्नानधूपविलेपनवर्णकोज्ज्वलम्, ताम्बूलिकभवनमिव कृतलवलीलवङ्गैलाकक्कोलपत्रसचयम्, प्रथमवेश्यासमागममिवाविदितहृदयाभिप्रायचेष्टाविकारम्, कामुकजनमिव बहुचाटुसलापसुभाषितरसास्वाददत्तताल-

स्तयोश्चिरविरहितयो समागमोत्कण्ठा यस्मिन्। महातीर्थं वाराणस्यादि तद्वदिव सद्यस्तत्कालमनेकै पुरुषै प्राप्त लब्धमभिषेकेण फल शरीरशुद्धिलक्षण यस्मिन्। पक्षेऽनेकपुरुषै प्राप्तमभिषेकात्स्नानात्स्वर्गादिपदबन्धफल यस्मात्। प्रागिति। प्राग्वंशो हविर्गृहात्प्राग्गृहम्। यज्ञगृहमित्यर्थं। तमिव नानाविधो य आसव· सोमवल्ल्यासवस्तेषां पात्राणि भाजनानि तै सकुल व्याप्तम्। पक्ष आसवपात्राणि मद्यपात्राणि। 'मध्वासवो माधवको मैरेयो सीधुरासव' इति कोश। निशा रात्रिस्तस्या समयः कालस्तमिव सप्तविंशतिभिर्मुक्ताफलै रचिता नक्षत्रमालास्ताभिरनेकाभिरलकृतं विभूषितम्। पक्षेऽनेका नक्षत्रमाला ग्रहश्रेणिर्यस्मिन्। प्रभात प्रत्यूष तस्य समयोऽवसरस्तमिव पूर्वदिशा पूर्वरीत्या भागेनैकदेशेन यो राग स्नेहस्तेनाप्यनुमेयो मित्रस्य उदयोऽभ्युन्नतिर्यस्मिन्। स्तोकसबन्धेन समागतानामपि सुहृदामतिगौरवम्। का कथा बहुसबन्धेनागतानामिति भाव। पक्षे पूर्वदिग्भागे प्राच्येकदेशे यो रागस्तेनानुमेयोऽनुमातु योग्यो मित्रस्य सूर्यस्योदयो यस्मिन्। गन्धिक औषधादिविक्रयकृत्तस्य भवन गृह तद्वदिव स्नानानन्तर केशानां धूप, विलेपनमङ्गराग., वर्णको वर्तिविशेष, तैरुज्ज्वल निर्मलमित्यभङ्गश्लेष। ताम्बूलिकानां नागवल्लीदलविक्रयकारिणां भवनमिव कृतो विहितो लवली सुगन्धवल्लीविशेष, लवङ्गं देवकुसुमम्, एला चन्द्रबाला,

प्रकार के सब पात्रों (यज्ञपात्रों) से भरा होता है। अनेक हारों (२७ २७ मणियों वाले) से सुशोभित वह राजभवन अनेक नक्षत्रों की पक्तियों से सुसज्जित रात्रिकाल सा प्रतीत हो रहा था। वहाँ (पारस्परिक मित्रता के प्रथम भाग मे ही) (आरम्भ मे ही) (उनके प्रति प्रदर्शित) स्नेह से मित्रो की उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता था—इस कारण वह उस प्रात काल-सा प्रतीत हो रहा था कि जब पूर्व दिशा मे (आकाश की) लालिमा से सूर्योदय का अनुमान लगाया जा सकता है। सुगन्धों के व्यापारी के भवन की भाँति वह राजभवन स्नान के पश्चात् की धूपों, लेपों तथा शृङ्गार सामग्री (वर्णक) से उज्ज्वलता (ध्यानाकर्षी) बना हुआ था। पानों के व्यापारी के भवन की भाँति इसमे लवली के फल, लौंगें, इलायची, कक्कोल (बीज) और सुपारियों (पत्र=पर्णम्=नागवल्लीदलम्) एकत्रित कर रखी थीं। उस (के निवासियों के हार्दिक अभिप्राय तथा उनकी चेष्टाएँ नहीं जानी जा सकती थीं—मानों वह उस प्रथम वेश्या-समागम सरीखा था कि जिसमे (वेश्या के) अन्त करण की इच्छाएँ तथा उसके विविध हावभाव अविदित रहते हैं। बहुविध रोचक सलापों तथा आनन्दजनक शब्दावली का रसास्वादन करने पर वहाँ जोर से तालियाँ बज रही थीं—इस कारण कामुकों की उस मण्डली सा प्रतीत हो रहा था जो विभिन्न तथा रोचक विषयों से भरपूर सलापो का आनन्द लेते हुए तालियाँ

शब्दम्, धूर्तमण्डलमिव दीयमानमणिशतसहस्रालंकरणकृतलेख्यपत्रसंचयम्, धर्मारम्भमिवाशेषजनमनःप्रह्लादनम्, महावनमिव श्वापदद्विजोपघुष्टम्, रामायणमिव कपिकथासमाकुलम्, माद्रीकुलमिव नकुलालंकृतम्, संगीतभवनमिवानेकस्थानावस्थापितमृदङ्गम्, रघुकुलमिव भरतगुणानन्दितम्, ज्योतिषमिव ग्रहमोक्षकलाभाग-

---

कक्कोल. कोशफलम्, पत्र जातिफलपत्रम्, एतेषां सचय सनिधिर्यस्मिन्नित्यभङ्गश्लेष । प्रथम आद्यो यो वेश्यया वारयोषिता समागमस्तमिव । अतिगाम्भीर्यादविदितोऽज्ञातो हृदयाभिप्रायश्चित्ताशयो यस्यैवविधस्य । अर्थादिङ्ग चेष्टाविकारश्चेष्टा शरीरादिक्रिया तस्या विकारो विकृतिर्यस्मिन्नित्यभङ्गश्लेष । कामुकः कामयिता यो जनस्तमिव बहूनि चाटूनि प्रियप्रायाणि येष्वेवं विधा सलापा परस्परालापा सुभाषिताना सूक्तानां रसास्वादास्तेषु दत्तास्तालशब्दा अभीष्टाव बोधनेन परस्परकरतालाहतयो यस्मिन् । पक्षे यैरिति तृतीयाबहुव्रीहि । धूर्तो द्यूतकृत्तस्य मण्डलमिव समूहमिव दीयमान यन्मणिशतसहस्रालकृतिस्तत्र कृतो लेख्यपत्रसचयो यस्मिन् । अवरोधजनस्य मध्ये यदलकारादिक प्रेष्यते प्रदीयते वा तत्सर्व बहि स्थैर्लिपीक्रियत इति राजस्थितिः । पक्षे कृतो लेख्यपत्रसचयो यैरिति । धूर्तैरपि सर्व पत्र लेख्यपूर्वक गृह्यत इति तदुपमानम् । धर्मस्य वृषस्यारम्भ. प्रारम्भस्तमिवाशेषा समग्रा जनास्तेषां मनस्तस्य प्रह्लादनमानन्दजनकमित्यभङ्गश्लेष । महच्च तद्वन च महावन तदिव श्वापदा वने व्याघ्रादयो गृहे मृगयार्थं सरक्षिताश्च द्विजा पक्षिणो ब्राह्मणाश्च तैरुपघुष्ट शब्दितम् । रामायण रामचरित्र तदिव विनो-

---

बजाते हैं। वहाँ (अन्त पुर की स्त्रियों को) दी जाती मणियों और सैकड़ों-हजारों आभूषणों के लेख्यपत्रों का सचय किया हुआ था—इस कारण वह राजभवन जुआरियों (धूर्तों) की उस मण्डली सा दिखायी दे रहा था जो परस्पर दातव्य मणियों तथा सैकड़ों-सहस्रों आभूषणों के लिखित दस्तावेज (आलेख्य पत्र) एकत्रित किये रहते हैं। किसी धार्मिक अनुष्ठान की भाँति वह सभी लोगों के मन में आनन्द उत्पन्न करता था। वह विविध पशुओं के शोर और ब्राह्मणों (द्वारा किये गये वेदपाठ की ध्वनि) से गूँज रहा था, इस कारण वह उस महावन-सा प्रतीत हो रहा था कि जो विविध (जगली) प्राणियों और पक्षियों की चिल्लाहट से भरा होता है। वह राजभवन बन्दरों की बड़बड़ से गूँजता ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों (सुग्रीव, हनुमान् आदि) कपियों की कथाओं से भरी रामायण-नाम की पुस्तक ही हो। माद्री का कुल नकुल जन्म से सुशोभित हुआ था तो वह भवन भी नेवलों (नकुलों) से अलकृत था। सगीत-भवन की भाँति वहाँ भी अनेक स्थानों पर (अभ्यास के लिये) मृदङ्ग रखे हुए थे। वहाँ लोग भरत अर्थात् अभिनेताओं के गुणों का आनन्द लेते थे—इस कारण वह भरत (राम के भाई) के गुणों से प्रसन्न रघुकुल सा प्रतीत हो रहा था। उस राजभवन के निवासी (बन्दियों) को पकड़ने तथा उनको छोड़ने के कार्य में तथा विविध प्रकार की कलाओं में निपुण थे, इस कारण वह उस ज्योतिषशास्त्र-सा प्रतीत हो रहा था जो ग्रहों के ग्रहण (अर्थात् ग्रहण आरम्भ होने) तथा ग्रहों के मोक्ष (ग्रहण काल की समाप्ति) और कला (समय की एक मात्रा) के विभागों के

निपुणम्, नारदीयमिव वर्ण्यमानराजधर्मम्, यन्त्रमिव विविधशब्दरसलब्धास्वादम्, मृदुकाव्यमिवान्यचिन्तितस्वभावाभिप्रायावेदकम्, महानदीप्रवाहमिव सर्वदुरितापहम्, धनमिव न कस्यचिन्नाकाङ्क्षणीयम्, सध्यासमयमिव दृश्यमानचन्द्रापीडोदयम्,

---

दार्थं रक्षितानां कपीनां वानराणा कथा वार्तास्ताभि समाकुलम्। पक्षे कपिकथा हनूमत्कथा। माद्रीकुल माद्री पाण्डुपत्नी तस्या कुलं तद्वदिव नकुल सर्पहा तेनालकृतम्। विनोदार्थं राज्ञां गृहे तत्सद्भाव इति भाव। पक्षे नकुलः सहदेवाग्रज। सगीतस्य प्रेक्षणार्थं प्रयुक्तस्य गीतनृत्यवाद्यत्रयस्य भवनमिवानेकस्थानेष्ववस्थापित न्यस्त मृदां मृत्तिकानामङ्गं यस्मिन्। पक्षे मृदङ्गानि मुरजानि। रघुकुलं दशरथकुल तद्वदिव। भरत शैलूषस्तस्य गुणेन कलाकौशलेनानन्दितम्। पक्षे भरतस्य दाशरथेर्गुणो व्रतपालनलक्षण। ज्यौतिषमिव ज्योति शास्त्रमिव ग्रह उद्धतनृपाणा ग्रहण, मोक्षस्तेषामेव दण्डादिना मोचनम्, कलाभागा विज्ञानैकदेशा तेषु निपुणा यस्मिन्। पक्षे अर्केन्द्वो ग्रहो मोक्षश्च, कला षोडशो भाग, तासा भागा विभागास्तेषु निपुणम्। एतज्ज्ञापकमित्यर्थ। नारदीय पुराण तद्वदिवासमन्ताद्वर्ण्यमान स्तूयमानो राजधर्मो यस्मिन्नित्यभङ्गश्लेष। यन्त्र वीणा तद्वदिव विविधाः शब्दा मनोज्ञशब्दा, रसा शृङ्गारादय, तेषां लब्ध आस्वादश्चर्वण येन तत्। पक्षे विविधशब्दरसैर्नानाविधरागरसैर्लब्धास्वादा जना यस्मात्। मृदु सुकुमार यत्काव्य कविकर्म तद्वदिवान्यचिन्तितानि स्वभावा प्रकृतय अध्यवसाया मनोगताभिप्राया तेषामावेदक कथकम्। पक्षेऽन्येन कविना चिन्तितो विचारितो य स्वभावाभिप्राय सहजोऽभिप्राय तात्पर्यविषयीभूतोऽर्थ इति यावत्। तस्यावेदकं ज्ञापकम्। महानद्या बृहत्तटिन्या प्रवाह ओघस्तमिव सर्वं यद्दुरित दुश्चरित तस्यापहरम्। पक्षे सर्वं दुरित पापम्। धन द्रव्य तद्वदिव न कस्यचिदपि नाकाङ्क्षणीय नाभिलषणीयम्। अपि तु सर्वस्यापि स्पृहणीयमित्यर्थ। इत्यभङ्गश्लेष। सध्याया सायकालस्य समय क्षणस्तमिव दृश्यमान प्रेक्ष्यमाणश्चन्द्रापीडस्य सुतस्योदयोऽभ्युन्नतिर्यस्मिन्। पक्षे चन्द्रापीड ईश्वर। सर्वदा सध्याया नृत्यविधानादिति

विषय में सही सही सूचना देता है। नारदीय अर्थात् नारदस्मृति में जैसे राजा के कर्तव्यो का वर्णन है, वैसे ही वहाँ भी राजाओं के कर्तव्यों की (मौखिक) रूप से व्याख्या की जा रही थी। यहाँ पर विविध प्रकार के शब्दों और रसों का स्वाद लिया जा रहा था—इसलिये वह राजभवन उस बाजे सा प्रतीत हो रहा था कि जहाँ विविध शब्दों तथा ध्वनियों का आनन्द लिया जा रहा हो। वह भवन (अचिन्तित) अन्यत्र अज्ञातपूर्व स्वभावों तथा विचारों का ज्ञान करवाता था—इस कारण वह उस सुकुमार काव्य सा प्रतीत हो रहा था जो अन्यत्र अनुपलब्ध (अर्थात् मौलिक) स्वभावों और विचारों का वर्णन करता है। वे सब बुरे कर्मों को पराजित किये हुए थे, इस कारण ऐसा प्रतीत होता था कि सब पापों की नाशक महती (अर्थात् पवित्र) नदी की धारा हो। धन की भाँति वह सबका अभीष्ट ही था। (वह किसी का अनाकांक्षणीय नहीं था)। उसमे चन्द्रापीड का उदय (भाग्योदय) अर्थात् उसकी समृद्धिशीलता दिखायी दे रही थी और इस प्रकार वह भवन उस सन्ध्याकाल सा प्रतीत हो रहा था कि जिसमे उसके

नारायणवक्षःस्थलमिव श्रीरत्नप्रभाभासितदिगन्तम्, बलभद्रमिव कादम्बरीरसविशेष-वर्णनाकुलमतिम्, ब्राह्मणमिव पद्मासनोपदेशदर्शितभूमण्डलम्, स्कन्दमिव शिखि-क्रीडारम्भचञ्चलम्, कुलाङ्गनाप्रचारमिव सर्वदोपजातशङ्कम्, वेश्याजनमिवोपचार-चतुरम्, दुर्जनमिवापगतपरलोकभयम्, अन्त्यजजनमिवागम्यविषयाभिलाषम्, अगम्य-

भाव । नारायणो विष्णुस्तस्य वक्ष स्थलं भुजान्तरं तद्वदिव श्री शोभा तया युक्तानि रत्नानि तेषां प्रभा कान्तयस्ताभिर्भासितं प्रकाशित दिगन्तं यस्मिन् । पक्षे श्रीर्लक्ष्मी रत्न कौस्तुभम् । शेषं पूर्ववत् । बलभद्रो रामस्तमिव कादम्बरी वक्ष्यमाणा स्त्री तस्या रसविशेषवर्णन आकुला मतिर्यस्मिन् । पक्षे कादम्बरी कापिशायनम् । ब्राह्मणमिव द्विजमिव पद्मासनोपदेशाय दर्शित भूमण्डल यस्मिन् । पक्षे पद्मासनो ब्रह्मा तस्योपदेशो वेदस्तेन दर्शितमन्येभ्य प्रकाशित भूमण्डलं

शिरोभूषण चन्द्रमा का उदय दीख पड़ता है। उस भवन ने अपनी लक्ष्मी तथा अपने रत्नों की चमक से सभी दिशाओ के प्रान्तभागो को उद्दीप्त कर रखा था। इस प्रकार वह लक्ष्मी तथा कौस्तुभमणि की चमक से दिग्प्रान्तों को चमकाते विष्णु-वक्ष स्थल सा प्रतीत हो रहा था। मद्यविशेष के वर्णन मे दत्तचित्त बलराम सा प्रतीत हो रहा था—राजभवन मे (लोगों के) मन (पी हुई) मद्यविशेष के वर्णन मे व्यस्तमन थे। वहाँ पद्मासन के अनुष्ठान के लिये (उचित) भूभाग को दिखलाया गया था, अथवा वहाँ सम्पूर्ण जगत् (अर्थात् इसके व्यवहार) राजनीति की शिक्षा (जो साम्राज्य को दृढ़ बनाती है) के रूप मे दिखाया गया था और इस प्रकार वह राजभवन, (पद्मासन) ब्रह्मदेव के उपदेशों (अर्थात् वेद की शिक्षाओं) के अनुसार (दूसरों) को भूमण्डल की व्याख्या करनेवाले ब्राह्मण सा प्रतीत हो रहा था (ब्रह्माणम्—इस पाठ की अवस्था मे इसका अर्थ इस प्रकार होगा—पद्मा अथवा लक्ष्मी के निवास स्थान विष्णु के निर्देशानुसार भूमण्डल की रचना करने वाले ब्रह्मा की भाँति दिखायी दे रहा था)। वह राजभवन (अर्थात् इसमें कुछ व्यक्ति) मयूरों के क्रीड़ामय नृत्यों से चञ्चल था। इस कारण (अपनी सवारी) मयूर द्वारा नृत्य आरम्भ करने पर चलायमान हुए कार्तिकेय सा प्रतीत हो रहा था। वहाँ पर सदा अविश्वास (इसीलिये सावधानता) का वातावरण उत्पन्न हुआ रहता था—इस कारण वह एक कुलीन स्त्री के व्यवहार सा प्रतीत हो रहा था जिसमें एक प्रकार की शका (भय की भावना) सदा बनी रहती है। उस राजभवन में लोग आतिथ्य (उपचार) दिखाने में चतुर थे, इस कारण वह उस वेश्यावर्ग सा प्रतीत हो रहा था जो (अपने प्रेमियों की) सेवा (की कला) मे निपुण होता है। वह (परलोक) शत्रुओं के भय से रहित था और इस कारण परलोक के भय से रहित दुष्ट पुरुष सा प्रतीत होता था। उसमें (अभी अविजित) देशों को लेने की (राजनीतिज्ञों की) इच्छा पहले से ही नहीं जानी जाती थी (अथवा सामान्यतया पहुँच से बाहर के प्रदेशों के विषय में अभिलाषा उसमे विद्यमान थी), इस प्रकार वह उन चाण्डाल व्यक्तियों (अर्थात् स्त्रियो) सा प्रतीत हो रहा था कि जिनके साथ विषयभोग की इच्छा (उच्च वर्ण के व्यक्ति) नहीं करते। (विषयभोग के लिये)

विषयासक्तमपि प्रशसनीयम्, अन्तकभटगणमिव कृताकृतसुकृतविचारनिपुणम्, सुकृतमिवादिमध्यावसानकल्याणकरम्, वासरारम्भमिव पद्मरागारुणीक्रियमाणनिशान्तम्, दिव्यमुनिगणमिव कलापिसनाथश्वेतकेतुशोभितम्, भारतसमरमिव कृतवर्मबाणचक्रसभारभीषणम्, पातालमिव महाकञ्चुक्यध्यासितम्, वर्षपर्वतसमूह-

येन स तम्। स्कन्द स्वामी तमिव शिखी मयूरस्तस्य य क्रीडारम्भस्तेन चञ्चल चटुलमित्यभङ्गश्लेष। कुलाङ्गनाया कुलवध्वाः प्रचार सचरण तमिव सर्व ददातीति सर्वद परमेश्वरस्तस्मादुपजाता शङ्का भय यस्मिन्। पक्षे सर्वदा सर्वकालम्। वेश्याजनो वाराङ्गनाजनस्तमिवोपचार सेवा तत्र चतुरमित्यभङ्गश्लेष। दुर्जन खलस्तमिवापगता परे लोका शत्रवस्तेभ्यो भय यस्मिन्। पक्षे परलोको भवान्तरम्। अन्त्यजजनो दिवाकीर्तिजनस्तमिवागम्य परैरग्राह्य एवविधो विषयो देशस्तस्याभिलाषो यस्मिन्। पक्षेऽगम्याना विषयाभिलाषो यस्मिन्निति बहुव्रीहि। अगम्यविषयासक्तमपि प्रशसनीयमिति विरोध। तत्परिहारस्त्वगम्य परैरग्राह्यो विषयो देशस्तदासक्तमित्यर्थात्। अन्तको यमस्तस्य भटगण सुभटसमूहस्तमिव कृताकृत यत्सुकृत शोभन कृत्य तस्य यो विचारस्तत्र निपुण चतुरम्। पक्षे । सुकृत पुण्य तद्वदिवादिमध्यावसानेषु कल्याणकर शुभकारकमित्यभङ्गश्लेष। वासरस्य दिवसस्यारम्भस्तमिव पद्मरागै रक्तमणिभिररुणीक्रियमाण रक्तीक्रियमाण निशान्त गृह यत्र तत्। 'धामागार निशान्तम्' इति कोश। पक्षे पद्माना रागैररुणीक्रियमाणो निशान्तो रात्रिप्रान्तो यस्मिन्। दिव्यो मुनिगणो वसिष्ठादिस्तमिव कलापिनो मयूरास्तै सनाथा सहिता ये श्वेतकेतव सितध्वजास्तै शोभितम्। पक्षे कलापी सनाथ श्वेतकेतुश्च त्रयोऽप्येते देवर्षयस्तै शोभित विराजितम्। भारतशास्त्रोक्तसमरमिव कृतो विहितो वर्म कवचम्, बाणा शरा॰, चक्राणि प्रसिद्धानि, एतेषा सभार समूहस्तेन भीषण भयजनकम्। पक्षे कृतवर्मा हृदीकपुत्र, बाणा शिलीमुखा तेषा चक्रेषु परदलेषु सभारस्तेन

निषिद्ध स्त्रियों मे आसक्त रहता हुआ भी वह राजभवन (वस्तुत अगम्य प्रदेशों को जीतने की अभिलाषा रखने के कारण) प्रशसनीय था। क्योंकि वहाँ के निवासी कृत, अकृत तथा पुण्य कार्यों को पहचानने में चतुर थे, इसलिये वह राजभवन मृत्यु के सैनिकों के उस समूह सा प्रतीत हो रहा था कि जो मनुष्यों के किये हुए पापकार्यों तथा पुण्यकार्यों का विवेचन करने मे निपुण है। पुण्यकार्य की भाँति वह भी आरम्भ मे, मध्य मे तथा अन्त मे (अर्थात् सर्वदा) कल्याणकारक था। उसमें के (निशान्त) घर पद्मराग मणियों की किरणों से लाल हुए रहते थे— इस प्रकार वह उस प्रभात समय सा प्रतीत होता था कि जिस समय रात्रि का अन्तिम भाग चमकते खिलते कमलों के (लाल) रग से लाल हुआ रहता है। वह राजभवन मयूरो (की आकृतियों) से युक्त, श्वेत पताकाओ से सुशोभित, दिव्य मुनियों के उस समूह-सा प्रतीत होता था कि जो कलापिसहित श्वेतकेतु की उपस्थिति से अलकृत हो। कवचो, तीरों तथा चन्द्राकार अस्त्रों का वहाँ ढेर किया होने के कारण भयानक बना हुआ वह राजभवन महाभारत के उस महायुद्ध सा प्रतीत हो रहा था जो कृतवर्मा के बाणों के भारी सग्रह से भीषण था। सहस्रो बड़े कचुकियो द्वारा अध्यासित वह राजभवन सहस्रों बड़े बड़े साँपो द्वारा आश्रित पाताललोक सा प्रतीत होता था। उस राजभवन के भीतर अनगिनत सोने के ऊँचे-ऊँचे ढेर लगे हुए थे इसलिये वह वर्षपर्वतो (वर्ष अर्थात् द्वीप के एक भाग को दूसरे भाग से पृथक् करनेवाले पर्वत) के

मिवान्त स्थितापरिमितशृङ्गिहेमकूटम्, महाद्वारमपि दुष्प्रवेशम्, अवन्तिविषयगतमपि मागधजनाधिष्ठितम्, स्फीतमपि भ्रमन्नग्नलोक राजकुल विवेश। ससंभ्रमोपगतैश्च कृतप्रणामैः प्रतीहारमण्डलैरुपदिश्यमानमार्गः, सर्वतः प्रचलितेन च पूर्वकृतावस्थानेन दूरपर्यस्तमौलिशिथिलितचूडामणिमरीचिचुम्बितवसुधातलेन राजलोकेन प्रत्येकशः प्रतीहारनिवेद्यमानेन सादर प्रणम्यमानः, पदे पदे चाभ्यन्तरविनिर्गताभिराचारकुशलाभिरन्तःपुरवृद्धाभिः क्रियमाणावतरणमङ्गलः भुवनान्तराणीव विविधप्राणि-

---

भीषणम्। पाताल वडवामुख तदिव महाकम्बुकिन सौविदल्लास्तैरध्यासितमाश्रितम्। पक्षे महाकम्बुकिन सर्पा.। वर्षपर्वता क्षेत्रसीमाकारिणोऽचला सप्तैव। तदुक्तम्—'हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च। श्वेत कृष्णश्च शृङ्गी च सप्तैते वर्षपर्वता'। तेषा समूहमिवान्त स्थितानि मध्यस्थितान्यपरिमितान्यसख्येयानि शृङ्गीहेमानि। 'अलकाराय यत्स्वर्ण तच्छृङ्गीकनक विदु'। तेषा कूटानि यस्मिंस्तत्सबन्धस्तैरपरिमितत्वेन शृङ्ग प्राधान्य येषामेवभूतानि हेमकूटानि सुवर्णसमूहा यस्मिन्। 'शृङ्ग प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यनेकार्थ। पक्षेऽपरिमितशृङ्गी हेमकूटाचलो यस्मिन्। महाद्वारमपि दु प्रवेशमित्यतिशयोक्तिः। अवन्तिविषयो मालवदेशस्तत्र गतमपि प्राप्तमपि मागधजनैर्जरासन्धदेशोद्भवजनैरधिष्ठितमिति विरोध तत्परिहारस्तु मागधा युद्धाग्निवर्तिनो गायनास्तैरधिष्ठितमित्यर्थात्। स्फीतमपि ऋद्धिमदपि भ्रमन्तो नग्ना लोक. यस्मिन्निति विरोध। तत्परिहारस्तु भ्रमन्तो देशान्तरादागता नग्नलोका स्तुतिव्रता नग्नाचार्याश्च यस्मिन्नित्यर्थात्। ससभ्रमं सवेगमुपगतै प्राप्तै कृत प्रणामो येनैवंभूतै प्रतीहारमण्डलैर्द्वारपालसमूहैरुपदिश्यमान उपदर्श्यमानो मार्ग. पन्था यस्य स तथा। बहुभिर्वर्षैर्विद्याभ्यास विधाय गृहागतत्वेन तादृशगृहज्ञानाभावाद्द्वारपालैर्मार्गं प्रदर्शित इति भाव। यद्वा पितुराह्वानजनितप्रमोदातिरेकेण विस्मृतान्यव्यापारत्वात्तत्प्रदर्शन युक्तमेवेति भाव। राजगृह प्रवेशान्तर स चन्द्रापीडो भुवनान्तराणीव सप्तकक्षान्तराण्यतिक्रम्य पितर तारापीडमपश्यदि-

---

उस समूह-जैसा प्रतीत हो रहा था कि जिसमें अपरिमित प्रमाण 'शृङ्गी' तथा हेमकूट (पर्वत) सम्मिलित हैं। उस राजभवन का प्रवेशद्वार बड़ा था, तो भी (अनधिकृत व्यक्तियों द्वारा) उसमें प्रवेश कर पाना कठिन था। वह राजभवन स्थित तो अवन्ती प्रदेश में था तो भी वहाँ मगध के निवासी (वस्तुतः राजकीय भाट) बसे हुए थे। वह राजभवन समृद्धिशाली था तथापि वहाँ नगे व्यक्ति (वस्तुत. दिगम्बर (नग्न) जैन साधु) फिरते दिखायी देते थे।

तब (ज्यों ही वह चन्द्रापीड प्रविष्ट हुआ तो) वहाँ से वेगपूर्वक आये उसके सम्मुख सिर झुकाये अनेक द्वारपालों ने उसको मार्ग दिखाया, पहले बैठे हुए और अब सभी ओर से (उसकी ओर) आये हुए, दूर से झुकाये मस्तकों के ढीले हुए मुकुट मणियों की किरणों से पृथ्वीतल को छूते हुए, द्वारपाल द्वारा एक एक का नाम बताये जाते राजाओं ने उसको प्रणाम किया, पग पग पर भीतर से बाहर आयीं, (ऐसी) प्रथाओं (के निर्वाह) में कुशल, अन्तःपुर की वृद्धाओं ने उसकी अवतारणा (आरती) उतारी, और फिर चन्द्रापीड ने विविध प्रकार के

सहस्रसंकुलानि सप्तकक्षान्तराण्यतिक्रम्याभ्यन्तरावस्थितम्, अनवरतशस्त्रग्रहणश्यामिकालीढकरतलैः करचरणलोचनवर्जमसितलोहजालकावृतशरीरैरालानस्तम्भैरिव गजमदपरिमललोभनिरन्तरनिलीनमधुकरपटलजटिलैः कुलक्रमागतैरुदात्तान्वयैरनुरक्तैर्महाप्राणतयातिकर्कशतया च दानवैरिवाशयाकारसभाव्यमानपराक्रमैः सर्वतः शरीररक्षाधिकारनियुक्तैः पुरुषैः परिवृतम्, उभयतो वारविलासिनीभिश्चानवरतमुद्धूय-

---

त्यन्वय । पुन कीदृश । राजलोकेन प्रणम्यमानो नमस्क्रियमाण । अथ राजलोक विशिनष्टि—सर्वत इति । सर्वत समन्तात्प्रचलितेनोत्थितेन कुमारागमनप्रतीक्षया पूर्वं कृत विहितमवस्थानमवस्थितिर्येन । दूरादेव पर्यस्ता नम्रा ये मौलय शिरासि मुकुटानि वा तेभ्य शिथिलिता श्लथीभूता ये चूडामणयस्तेषा मरीचिभिश्चुम्बितमाश्लिष्ट वसुधातल येन । प्रत्येकश प्रत्येकं प्रतीहारो द्वारपालस्तेन निवेद्यमानेन निवेदनां क्रियमाणेन सादर यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । पदे पदे प्रतिपदमभ्यन्तरान्मध्यप्रदेशाद्विनिर्गताभिर्बहिर्निसृताभिराचारे राजस्थितौ कुशलाभिर्निपुणाभिरन्त पुरवृद्धाभिर्महत्तरिकाभि क्रियमाणमवतरणमङ्गल यस्य स । अथ राजान विशेषयन्नाह—अभ्यन्तरेति । अभ्यन्तरे मध्यगृहेऽवस्थित कृतावस्थानम् । पुन कीदृशम् । पुरुषै परिवृतं आवृतम् । पुरुषान्विशेषयन्नाह—अनवरतेति । अनवरत निरन्तर यच्छस्त्रग्रहण तेन या श्यामिका तयालीढमाश्लिष्ट करतल हस्ततल तै करचरणलोचनवर्जम् । एतान्विहायेत्यर्थं । तेषामप्यावरणे शस्त्रग्रहणगतिप्रेक्षणानामेवाभाव स्यादित्यर्थं । असित यल्लोहजालक तेनावृतमाच्छादित शरीर येषा तै । कैरिव । आलानस्तम्भैरिव गजबन्धनस्तम्भैरिव । असितत्वसाम्यादाह—गजेति । गजस्य हस्तिनो यो मदो दान तस्य य परिमलस्तस्य लोभेन निरन्तर निलीना ये मधुकरा भ्रमरास्तेषा पटलानि तैर्जटिलैर्व्याप्तै कुलक्रमागतै परम्परायातै । उदात्तो महानन्वयो वंशो येषा तै । अनुरक्तै प्रीतिमद्भि । महाप्राणतया महापराक्रमतयातिकर्कशतया तिनिष्ठुरतया च दानवैरिव दनुजैरिवाशयश्चित्ताभिप्राय , आकार आकृति , ताभ्यां सभाव्यमान पराक्रम साहस येषु तैरेवभूतै सर्वतश्चतुर्दिक्षु शरीररक्षाधिकारनियुक्तैरात्मरक्षकै पुरुषै.

सहस्रों प्राणियों से भरे (सात) विभिन्न ससारों सरीखे सात बड़े-बड़े कमरों को लाँघ कर भीतर बैठें हुए अपने पिता (तारापीड) को देखा । उसका पिता (वहाँ) अपने शरीर की रक्षा के कर्त्तव्य में नियुक्त व्यक्तियों से चारों ओर घिरा हुआ था । निरन्तर शस्त्र लिये रहने के कारण इन (अग-रक्षकों) की हथेलियों में कालिमा चिपक गयी थी, हाथों, पैरो तथा आँखों को छोड़ कर उनके शरीर लोहे की जाली से (कवच से) ढके हुए थे, और इस कारण वे गजमद की गन्ध के लोभ से उन पर सट कर बैठे काले भौंरों से ढके आलान (हाथियों के बाँधने के खूँटों) स्तम्भों-से प्रतीत हो रहे थे, वे (राजा के) आनुवशिक (सेवक) थे, कुलीन थे और (राज्य के) भक्त थे, वे अपने महाबल तथा (शरीर की) कठोरता के कारण राक्षसों के सदृश प्रतीत होते थे और उनकी शूरवीरता उनके व्यक्तित्व (अथवा आकाक्षा) तथा सामान्य व्यवहार अथवा रूप से प्रतीत हो रही थी, राजा के दोनों ओर नर्तकियाँ श्वेत चँवर निरन्तर झुला रही

मानधवलचामरम्, अमरपुलिनतलशोभिनि सुरकुञ्जरमिव मन्दाकिनीवारिणि हंसधवलशयनतले निषण्ण पितरमपश्यत्। आलोकयेति च प्रतीहारवचनानन्तरमतिदूरावनतेन चलितचूडामणिना शिरसा कृतप्रणाममेह्येहीत्यभिदधानो दूरादेव प्रसारितभुजयुगलः शयनतलादीषदुच्छ्वसितमूर्तिरानन्दजलपूर्यमाणलोचनः समुद्गतपुलकतया सीव्यन्निवैकीकुर्वन्निव पिबन्निव त पिता विनयावनतमालिलिङ्ग। आलिङ्गितोन्मुक्तश्च पितुश्चरणपीठसमीपे पिण्डीकृतमुत्तरीयमात्मताम्बूलकरङ्कवाहिन्या सत्वरमासनीकृतमपनयेति शनैर्वदन्नग्रचरणेन समुत्सार्य चन्द्रापीडः क्षितितल एव निषसाद।

परिवृत परिवेष्टितम्। उभयत पार्श्वद्वये वारविलासिनीभिर्वारयोषिद्भिरनवरतमुद्धूयमान वीज्यमान धवलचामर यस्य स तम्। पुन कीदृशम्। हसवद्धवल यच्छयनतल शय्यातल तत्र निषण्ण स्थितम्। कमिव। मन्दाकिनी गङ्गा तस्या वारिणि जले सुरकुञ्जरमिवैरावणमिव। शयन विशिनष्टि—अमलेति। अमल निर्मल यत्पुलिन सैकत तस्य तल तद्वच्छोभिनि विराजिनि। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। आलोकय विलोकयेति प्रतीहारवचनानन्तरं द्वारपालोक्ते पश्चादतिदूरादतिदविष्ठदेशादवनतेन नम्रेण चलितः कम्पितश्चूडामणि शिरोमणिर्यस्यैवभूतेन शिरसा मस्तकेन कृत प्रणामो येन तम्। एह्येहि। वीप्सायां द्विस्वम्। आगच्छागच्छेत्यभिदधान इति ब्रुवाण दूरादेव प्रसारित विस्तारित भुजयुगल बाहुयुग्म येन स। शयनतलादीषत्किंचिदुच्छ्वसितोर्ध्वीभूता मूर्ति शरीरं यस्य स। आनन्दजलेन प्रमोदबाष्पेण पूर्यमाणे ध्रियमाणे लोचने नेत्रे यस्य स। आनन्दरूपमभिव्यञ्जयन्नाह—समुद्गतेति। समुद्गत प्रादुर्भूतो य पुलको रोमाञ्चस्तस्य भावस्तत्ता तया सीव्यन्निव सेवन कुर्वन्निवैकीकुर्वन्निव तन्मयीकुर्वन्निव पिबन्निवात्यादरेण पान कुर्वन्निव। पितुर्निकटे विनयातिशय व्यञ्जयन्नाह—विनयेति। विनया-

---

थीं, और वह हस के सदृश श्वेत, निर्मल रेतीले (नदी) तट के समान सुशोभित बिस्तर पर बैठा निर्मल रेतीले तटवाली स्वर्गंगा के जल (की श्वेत राशि) पर स्वर्गीय हस्ती (ऐरावत) सा प्रतीत हो रहा था।

और जब द्वारपाल ने कहा 'देखिये'—तब चन्द्रापीड ने अपने बहुत अधिक (अथवा दूर से ही) झुकाये तथा (हिलती चूडामणियों वाले) सिर से प्रणाम किया। और (तब) उसके पिता ने 'आओ आओ' कहते हुए दूर से ही अपनी भुजाएँ फैला दीं और शय्या से अपने शरीर को कुछ उठा कर आँखों मे प्रसन्नता के आँसू भरे हुए उसने (उचित) सम्मान में झुके हुए चन्द्रापीड का आलिंगन किया, ऐसा प्रतीत होता था कि रोमाञ्चित हो जाने के कारण वह चन्द्रापीड को मानो (सूइयों से) अपने साथ सी रहा था अथवा उसको अपने साथ कीलों से जोड़ कर (दोनों को) एक बना रहा था अथवा (नलिकाओं द्वारा) मानो उसको पी रहा था। और जब चन्द्रापीड आलिंगन से मुक्त कर दिया गया तब वह अपनी ताम्बूलवाहिनी द्वारा लपेट कर शीघ्र ही आसन बनाये गये उत्तरीय को अपने पजे से परे हटा कर और उसको हटाने के लिये कह कर अपने पिता के पादपीठ के समीप नगी जमीन पर ही

अनन्तरं निहिते चास्यासने राज्ञा सुतनिर्विशेषमुपगूढो वैशम्पायनो न्यषीदत्। मुहूर्तमिव विस्मृतचामरोत्क्षेपनिश्चलाना वारविलासिनीना साभिलाषैरनिलचलित-कुवलयदामदीर्घैराजिह्मतरलतारसारैरवलुप्यमान इव दृष्टिपातैः स्थित्वा 'गच्छ वत्स, पुत्रवत्सलां मातरमभिवाद्य दर्शनलालसा यथाक्रम सर्वा जननीर्दर्शनेनानन्दय' इति विसर्जितः पित्रा सविनयमुत्थाय निवारितपरिजनो वैशम्पायनद्वितीयोऽन्तःपुरप्रवेश-योग्येन राजपरिजनेनोपदिश्यमानवर्त्मान्तःपुरमाययौ । तत्र धवलकञ्चुकावच्छन्न-

---

द्वैनयिकगुणेनावनतं नम्रीभूत पिता तारापीडस्त चन्द्रापीडमालिलिङ्ग परिषस्वजे। पूर्वमालिङ्गित पश्चादुन्मुक्तो विभिन्नीभूत पितुस्तारापीडस्य चरणयो पादयोः पीठ पादासनं तस्य समीपेऽन्तिके ताम्बूलकरङ्कवाहिन्या पिण्डीकृतमात्मन स्वकीयमुत्तरीय सत्वर शीघ्रमासनीकृत विष्टरीकृतम् अपनय दूरीकुर्विति शनै शनैर्वदन्नुवसनग्रचरणेन तत्समुत्सार्य दूरीकृत्य चन्द्रापीड क्षितितल एव भूमावेव निषसादोपविष्टवान्। तदनन्तर तदुपवेशनानन्तर राज्ञा तारापीडेन सुतनिर्विशेष यथा स्यात्तथोपगूढ आलिङ्गितो वैशम्पायनो निहिते स्थापितेऽस्यासने चन्द्रपीडासने न्यषीददु-पाविशत्। विस्मृतो यश्चामरोत्क्षेपस्तेन निश्चलाना वारविलासिनीनां वाराङ्गनाना दृष्टिपातैर्नेत्र-प्रान्तैरवलुप्यमान इवाच्छाद्यमान इव। दृष्टिपात विशेषयन्नाह—सेति। सहाभिलाषाभि-र्वर्तमानै साभिलाषै । सस्पृह सादेश । अनिलेन वायुना चलित कम्पित तत्कुवलयदाम माला तद्वद्दीर्घैरायतैराजिह्माकुटिला तरला चञ्चला तारा कनीनिका सैव सार प्रधान येषु तै । मुहूर्त-मिव कियत्काल तत्र राजसमीपे स्थित्वा स्थान कृत्वा । हे वत्स हे पुत्र, गच्छ व्रज । पुत्रवत्सला पुत्रहिता मातर जननीं दर्शनलालसा त्वद्दर्शनोत्कण्ठितामभिवाद्य पादग्रहण कृत्वा यथाक्रम यथा-नुक्रम सर्वा जननीरूपमातृदर्शनेनानन्दय प्रमोदय । इति हेत्वर्थे । पित्रा तारापीडेन विसर्जितो विसृष्ट सविनय यथा स्यात्तथोत्थायोत्थान कृत्वा निवारितस्तत्रैव रक्षित परिजन परिच्छदो येनैव भूतो वैशम्पायनद्वितीयोऽन्त पुरप्रवेशयोग्येन राजपरिजनेनोपदिश्यमानवर्त्मान्त पुरमाययौ समागमत् । तत्रेति । तत्र अन्त पुरे मातर जननीं प्रणनाम नमश्चक्र इति दूरेणान्वय । अथ मातुर्विशेष-

---

बैठ गया। और राजा द्वारा अपने निज पुत्र की भाँति आलिंगित वैशम्पायन (चन्द्रापीड के) समीप ही रखे आसन पर बैठ गया। चँवर डुलाना भूल कर (विस्मय से) स्थिर हुई नर्तकियों की आवेगपूर्ण, वायु द्वारा कम्पित कमलपत्रों की माला सदृश लम्बी, कुछ-कुछ तिरछी तथा चञ्चल हुई पुतलियों से रंजित, चितवनों से मार डाला गया सा चन्द्रापीड वहाँ थोड़ी ही देर बैठ कर "पुत्र! जा, अपनी प्रिय माता को प्रणाम करके, दर्शनोत्सुक अपनी सभी (वि) माताओं (के हृदयों) को अपनी भेंट से आनन्दित कर"—यह कह कर राजा द्वारा जाने की अनुमति दिया हुआ चन्द्रापीड आदरपूर्वक उठ कर अपने सेवकों को (पीछे आने से) रोक कर, केवल वैशम्पायन को साथ लिये हुए, अन्त पुर मे प्रवेश के विशेषाधिकारी राजकीय सेवकों द्वारा मार्ग दिखाया हुआ अन्त पुर में चला गया।

वहाँ उसने माता के समीप पहुँच कर उसको प्रणाम किया। उसकी माता उस समय

शरीरैरनेकशतसंख्यैः श्रियमिव क्षीरोदकल्लोलैः समन्तात्परिवृता शुद्धान्तर्वंशिकैः, अतिप्रशान्ताकाराभिश्च कषायरक्ताम्बरधारिणीभिः संध्याभिरिव सकललोकवन्द्याभिः प्रलम्बश्रवणपाशाभिर्विदितानेककथावृत्तान्ताभिर्भूतपूर्वाः पुण्याः कथाः कथयन्तीभिरितिहासान्वाचयन्तीभिः पुस्तकान्दधतीभिर्धर्मोपदेशान्निवेदयन्तीभिः जरत्प्रव्रजिताभिर्विनोद्यमानाम्, उपरचितस्त्रीवेषभाषेण गृहीतविकटप्रसाधनेन वर्षवरजनेनोपसेव्यमानाम्, अनवरताभिधूयमानवालव्यजनकलापाम्, अङ्गनाजनेन च वसना-

---

णानि—धवलकञ्चुकैरवच्छन्नान्याच्छादितानि शरीराणि येषा ते । अनेके ये शतसंख्यास्तै शुद्धान्तर्वंशिकै शुद्धान्तवंशश्चान्त पुर तत्र नियुक्ता आन्तर्वंशिका कञ्चुक्यादयस्तै समन्तात्सर्वत परिवृता परिवेष्टिताम् । कै कामिव । क्षीरोदकल्लोलै क्षीरसमुद्रतरङ्गै परिवृतां श्रियमिव लक्ष्मीमिव । पुन कीदृशीम् । जरत्प्रव्रजिताभिर्वृद्धतापसीभिर्विनोद्यमानां विनोदविषयीक्रियमाणाम् । अथ च तापसीना विशेषणानि—अतिप्रशान्तोऽतिशान्त आकारो यासां ताभि । कषायेण रक्तं यदम्बर वस्त्र तद्धारयन्तीत्येवशीलास्ताभि । सकला. समग्रा ये लोकास्तैर्वन्द्याभिर्वन्दनीयाभि । रक्ताम्बरसाम्यादाह—सध्याभिरिव प्रलम्बा लम्बायमाना श्रवणपाशा' कर्णपाल्यो यासा ताभि विदिता ज्ञाता अनेका कथा. प्रबन्धास्तासां वृत्तान्तो वार्ता याभिस्तास्ताभि । पूर्वं भूता भूतपूर्वा एवविधा. पुण्या पवित्रा कथा सबन्धान्कथयन्तीभि' प्रतिपादयन्तीभि । इतिहासान्पूर्ववृत्तान्तान्वाचयन्तीभि. पठन्तीभिः । पुस्तकान्छास्त्रान्दधतीभिर्धारयन्तीभि । धर्मोपदेशान्निवेदयन्तीभिर्ज्ञापयन्तीभि । पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—उपरचितेति । उपरचितो विहित स्त्रीणां वेषो नेपथ्यं भाषा च येन स तथा तेन । गृहीतमात्तं विकट विपुल प्रसाधन प्रतिकर्म येनैवविधेन वर्षवरजनेन षण्ढजनेनोपसेव्यमानां पर्युपास्यमानाम् । कामन्दक्यां तेषां लक्षण यथा—'ये स्वल्पसत्त्वा प्रथमा. क्लीबाश्च स्त्रीस्वभाविन । आत्या न दुष्टा कार्येषु ते वै वर्षवरा स्मृता ' इति । अनवरतं निरन्तरमभिधूयमानो वीज्य-

---

श्वेत वस्त्रों से ढके शरीर वाले, कई सौ अन्तःपुर सेवकों से घिरी दुग्ध सागर की (श्वेत तथा बहुत-सी) लहरों से घिरी लक्ष्मी सी प्रतीत हो रही थी । अत्यन्त शान्त आकृतियों वाली, कषाय में रँगे (लाल) वस्त्रों को पहने हुई तथा सारे ससार की पूज्या और इस प्रकार अत्यन्त मृदु-रूपा, लालिमा से लाल आकाश को धारण करने वालीं, ससार की आराध्य, सध्याओं-सी प्रतीत होतीं, (बुढ़ापे के कारण) लटकती कानों की लौ वालीं, अनेक (पुरानी) कथाओं को जानने वालीं, (कुछ) पिछली घटनाओं की पुण्यकथाएँ सुनाती हुईं, (कुछ) ऐतिहासिक विवरणों का ऊँचे से पाठ करती हुईं, (कुछ केवल) पुस्तकों को लिये हुई और (कुछ) धार्मिक (नैतिक) उपदेशों की व्याख्या करती हुईं वृद्ध सन्यासिनियाँ उस समय उसका मन बहला रही थीं । स्त्रियों का वेश पहने तथा उनकी बोली बोलते और (अपने शरीरों पर) अटपटांग (विकट) सजावट किये हुए नपुसक उसकी सेवा में उपस्थित थे । उसके चारों ओर बहुत से चँवर डुलाये जा रहे थे । (हाथों में) वस्त्र, आभूषण, फूल, सुगन्धित (प्रसाधन) चूर्ण, पान

भरणकुसुमपटवासताम्बूलतालवृन्ताङ्गरागभृङ्गारधारिणा मण्डलोपविष्टेनोपास्यमानाम्, पयोधरावलम्बिमुक्तागुणाम्, अचलमध्यस्रवद्गङ्गाप्रवाहामिव मेदिनीम्, आसन्नदर्पणपतितमुखप्रतिबिम्बाम्, अर्कबिम्बप्रविष्टशशिमण्डलामिव दिव समुपसृत्य मातर प्रणनाम। सा तु त ससम्भ्रममुत्थाप्य सत्यप्याज्ञासपादनदक्षे पार्श्वपरिवर्तिनि परिजने स्वयमेव कृतावतरणका प्रस्नुतपयोधरक्षरत्पयोबिन्दुच्छलेन द्रवीभूय स्नेहाकुलेन निर्गच्छतेव हृदयेनान्त शुभशतानीव ध्यायन्ती मूर्धन्युपाघ्राय त सुचिरमाशिश्लेष। अनन्तर च तथैव कृतयथोचितसमुपचारमाश्लिष्टवैशम्पायना स्वयमुप-

---

मानो बालव्यजनकलापश्चामरसमूहो यस्या सा ताम्। अङ्गनाजनेन स्त्रीजनेन चोपास्यमाना सेव्यमानाम्। अङ्गनाजन विशेषयन्नाह—वसनेति। वसनानि वस्त्राणि, आभरणानि भूषणानि, कुसुमानि पुष्पाणि, पटवास पिष्टात, ताम्बूल नागवल्लीदलानि, तालवृन्त व्यजनम्, अङ्गरागो विलेपनम्, भृङ्गार कनकालुका, एतान्धरतीति धारी तेन धारिणा। कीदृशेन। मण्डलोपविष्टेन स्थितेन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। पुनरपि विशेषतस्तामेव विशेषयन्नाह—पयोधरेति। पयोधरयो कुचयोरवलम्बी मुक्तागुणो हारो यस्यास्ताम्। स्तनानामप्युच्चत्वेन मुक्ताना चात्युज्ज्वलत्वेनोपमान्तरं प्रदर्शयन्नाह—अचलेति। अचलयो पर्वतयोर्मध्येऽन्तरे स्रवन् वहमानो गङ्गाप्रवाहो यस्यामेवंभूतां मेदिनीमिव वसुंधरामिव। सर्वंसहत्वात्तस्या पृथिव्या उपमानम्। आसन्नेति। आसन्न समीपवर्ती यो दर्पण आदर्शस्तत्र पतितो मुखप्रतिबिम्बो यस्यास्ताम्। अत्रार्थे उपमानान्तरं दर्शयन्नाह—अर्केति। अर्कबिम्बे सूर्यमण्डले प्रविष्टं शशिमण्डलं यस्यामेवंभूतां दिवमिवामावास्यामिव। तस्यामेव शशिबिम्बस्यार्कबिम्बे प्रवेशात्। अत्रादर्शस्य सूर्यबिम्बोपमानम्। मुखस्य शशिमण्डलोपमानम्। राज्ञ्या अमावास्योपमानमिति भाव। समुपसृत्य पार्श्वे समागत्य। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तु पुनरर्थे। सा विलासवती त सुत ससम्भ्रमं

के बीड़े, ताड़वृक्ष के पत्ते, उबटन और सुवर्ण कलश (भृङ्गार) लिये हुई, गोल चक्कर बना कर (मण्डल) बैठी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ उसकी सेवा कर रही थीं। उसके दोनो स्तनों के बीच में (बड़े-बड़े) मोतियों की माला लटक रही थी और इस प्रकार वह दो पर्वतों के बीच मे बहती गगानदी वाली पृथ्वी-सी प्रतीत हो रही थी। उसके मुख की परछाई समीप रखे हुए दर्पण में पड़ रही थी और उस प्रकार वह उस आकाश-सी प्रतीत हो रही थी कि जिसमें सूर्य के बिम्ब में चन्द्रमा का बिम्ब प्रविष्ट हो गया हो।

और यद्यपि उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिये उद्यत सेवक उसके समीप ही थे तो भी उसने (उसकी माता ने) स्वयं ही उसकी अवतारणा की और फिर स्नेह से आप्लावित, दूध-भरे स्तनों से बहते दूध के बिन्दुओं के बहाने (चन्द्रापीड को मिलने के लिये) बाहर निकलते हुए प्रतीत होते हृदय से भीतर-ही-भीतर सैकड़ों आशीर्वाद देती हुई ने उसका सिर सूँघा और बहुत देर तक उसको छाती से लगाये रखा। इसके पश्चात् उसने उसी प्रकार उचित आतिथ्य करते हुए वैशम्पायन को छाती से लगाया और स्वय बैठ कर नम्रता से

विश्य विनयादवनितले समुपविशन्तमाकृष्य बलादनिच्छन्तमपि चन्द्रापीडमुत्सङ्गमारोपितवती। ससम्भ्रमपरिजनोपनीतायामासन्द्यामुपविष्टे च वैशम्पायने चन्द्रापीड पुनःपुनरालिङ्ग्य ललाटदेशे वक्षसि भुजशिखरयोश्च मुहुर्मुहुः करतलेन परामृशन्ती विलासवती तमवादीत्—'वत्स, कठिनहृदयस्ते पिता येनेयमाकृतिरीदृशी त्रिभुवनलालनीया क्लेशमतिमहान्तमियन्त काल लम्भिता। कथमसि सोढवानतिदीर्घामिमा गुरुजनयन्त्रणाम्। अहो, बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते महद्धैर्यम्। अहो, विगलित-

---

सवेग पादपतितमुत्थाप्य पार्श्वपरिवर्तिनि निकटस्थायिनि परिजने परिच्छद अ सादनदक्षे नियोगकरणाभिज्ञे सत्यपि स्वयमेवात्मनैव कृत विदितमवतरणमुत्साहकर्मविशेषो यया सा। हृदयेन चेतसान्तर्मध्ये शुभशतानि कल्याणशतानि ध्यायन्ती चिन्तयन्ती। अथ हृदयविशेषणानि—स्रस्तु (प्रस्नु)-तेति। प्रस्नुतौ पय पूर्णौ यौ पयोधरौ ताभ्यां क्षरन्तो ये पयोबिन्दवस्तेषा छलेन मिषेण द्रवीभूय रसीभूय निर्गच्छतेव बहि प्रसर्पतेव स्नेह आभ्यन्तरप्रीतिस्तेनाकुलेन व्याप्तेन मूर्धन्युत्तमाङ्ग उपाघ्राय चुम्बन कृत्वा त सुचिर चिरकालमाश्लिष्य लेपालिलिङ्ग। अनन्तरं चेति। अनन्तरम् आलिङ्गनानन्तरम्। तथैव पूर्ववत्। कृतमिति। कृतो यथोचिता यथायोग्य समुपचार प्रियवाग्व्यापारो यथा स्यात्तथाश्लिष्ट आलिङ्गितो वैशम्पायनो यया सा स्वयमुपविश्य विनयादवनितले समुपविशन्तमासेदिवासमाकृष्य बलादाकर्षण कृत्वानिच्छन्तमपि। मातु श्रमसम्भवात्। चन्द्रापीडमुत्सङ्ग क्रोडमारोपितवत्यारोपयामास। ससम्भ्रम सवेग परिजनेन परिच्छदेनोपनीतायामासन्द्या वेत्रपीठे वैशम्पायन उपविष्टे स्थिते सति चन्द्रापीड पुन पुनर्वारवारमालिङ्ग्योपगूहन विधाय ललाटदेशेऽलिकप्रदेशे वक्षसि भुजान्तरे भुजशिखरयो स्कन्धयोर्मुहुर्मुहुर्वारवारं करतलेन स्वपाणितलेन परामृशन्ती परामर्शन कुर्वती विलासवती तमवादीदवोचत्। किमुवाचेत्याह—वत्सेति। हे वत्स हे पुत्र, कठिन कठोर हृदय यस्यैवविधस्ते पिता जनको येनेदृश्येतादृशीयमाकृतिराकारस्त्रिभुवने लालनीया पालनीया अतिमहान्त काल भूयस्तरमियन्तमेतावत्प्रमाण क्लेश खेद लम्भिता प्रापिता। अतिदीर्घा चिरकालमिमां गुरुजनयन्त्रणा पूज्यजननियन्त्रणा कथं सोढवानसि। अहो इत्याश्चर्ये। ते तव बालस्यापि सत कठोरस्येव महद्धैर्यम्। अहो इति पूर्ववत्। अर्भके बालके त्वयि विगलित दूरीभूतं शिशुजना

पृथ्वी पर बैठते हुए अनिच्छुक भी चन्द्रापीड को बलपूर्वक खींच कर उसने अपनी गोद में बैठा लिया और जब वैशम्पायन हड़बड़ाते सेवकों द्वारा लाये गये वेत्रासन पर बैठ गया तब उसने चन्द्रापीड को बार-बार छाती से लगाया और उसके मस्तक को, वक्षःस्थल को, तथा उसके दोनों कन्धों को बार-बार अपने हाथ से छूते हुए उससे कहा—"प्रिय पुत्र! तेरा पिता (सचमुच) कठोर हृदय है—उसने तेरी ऐसी (सुन्दर और) तीनों लोकों द्वारा लाड़-प्यार करने योग्य आकृति को इतनी देर तक अत्यन्त अधिक कष्ट दिलवाया। तूने अपने गुरुओं द्वारा लगाये गये इस दीर्घकालीन नियन्त्रण को कैसे सहा होगा। ओ, निरे बालक होते हुए भी तेरी दृढ़ता तो किसी प्रौढ व्यक्ति की दृढता सरीखी है। अहो! निरा बचपन होते हुए भी तेरा

शिशुजनक्रीडाकौतुकलाघवमर्भके ते हृदयम्। अहो गुरुजनस्योपरि भक्तिरसाधारणा सर्वा। यथा पितुःप्रसादात्समस्ताभिरुपेतो विद्याभिरालोकितोऽस्येवमचिरेणैव कालेनानुरूपाभिर्वधूभिरुपेतमालोकयिष्यामि' इत्येवमभिधाय लज्जास्मितावनतमात्म मुखप्रतिबिम्बगर्भे विकचकमलालङ्कृतकर्णपल्लवावतंस इव कपोले पर्यचुम्बदेनम्। एव च तत्रापि नातिचिरमेव स्थित्वा क्रमेण सर्वान्तःपुराणि दर्शनेनानन्दयामास। निर्गत्य च राजकुलद्वारा बहिःस्थितमिन्द्रायुधमारुह्य तथैव तेन राजपुत्रलोकेनानुगम्यमानः शुकनास द्रष्टुमयासीत्। यामावस्थितविविधगजघटासकटम्, अनेकतुरङ्गसहस्र-

---

बालजनास्तेषा क्रीडाकौतुक तेन लाघव लघुत्वमेवभूत हृदयम्। अहो इति पूर्ववत्। गुरुजनस्योपर्यसाधारणा सर्वा भक्ति। यथा पितुर्जनकस्य प्रसादान्माहात्म्यात्समस्ताभि समग्राभिविद्याभिरुपेत सहित आलोकितोऽसि वीक्षितोऽसि। एव पूर्वोक्तप्रकारेणाचिरेणैव कालेन स्तोककालेनानुरूपाभिर्योग्याभिः वधूभिरुपेतमालोकयिष्यामीत्येवमभिधाय एन कुमार पर्यचुम्ब च्चुम्बन कृतवती। कीदृशम्। लज्जास्मितेनावनत नम्रीभूतम्। कस्मिन्। कपोले गल्लाग्रभागे। कीदृशे। आत्मनो मातुर्मुखप्रतिबिम्बो गर्भे यस्मिन्। मुखस्य कमलसाम्यादाह—विकचेति। विकचैर्विकस्वरै कमलै कृतो विहित कर्णपल्लवावतसो यस्मिन्। एवं चेति। पूर्वोक्तप्रकारेण तत्रापि मातु समीपेऽपि नातिचिर नातिचिरकालमेव स्थित्वावस्थान कृत्वा क्रमेण परिपाट्या सर्वान्त पुराणि समग्राण्यवरोधानि दर्शनेनानन्दयामास प्रमोदयामास। राजकुलद्वारा प्रतोली मार्गेण निर्गत्य बहिरागत्य बहि स्थितमिन्द्रायुधमश्वमारुह्य तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण तेन पूर्वोक्तेन राजपुत्रलोकेनानुगम्यमान शुकनास मन्त्रिण द्रष्टु विलोकयितुमयासीदित्यन्वय। 'या प्रापणे'

हृदय तो बालोचित खेलकूद की चाह तथा लघुता से रहित हो गया! अहो! गुरुओं के प्रति तेरी भक्ति सारी अपूर्व ही रही! जैसे अब मैंने तुझे पिता की कृपा से सब विद्याओं से युक्त देखा है वैसे ही मै तुझे शीघ्र ही (तेरे) अनुरूप बहुओं से युक्त भी देखूँगी।" यह कह कर उसने लज्जा-भरी मुस्कान के साथ झुकाये मुख वाले चन्द्रापीड का चुम्बन उसके उस गाल पर लिया जिसमे कि रानी के अपने मुख का प्रतिबिम्ब विद्यमान था और इस कारण वह मानो पूर्ण विकसित कमल को उसके कर्ण का आभूषण बनाये हुए था। और इस प्रकार वहाँ भी बहुत देर न बैठ कर चन्द्रापीड ने क्रमश सभी विमाताओ को अपने दर्शन से आनन्दित किया। और वहाँ से निकल कर राज-भवन के (आँगन के) द्वार पर स्थित इन्द्रायुध पर सवार होकर वह पहले की भाँति उन्हीं राजकुमारों के साथ शुकनास से मिलने के लिये चला गया।

शुकनास के घर के द्वार पर पहुँच कर वह, जैसे उसने राजभवन मे किया था वैसे ही, वहाँ भी उसके बाहरी आँगन मे ही घोड़े पर से उतर गया, यद्यपि द्वार पर स्थित द्वारपालों ने उसको भीतर प्रविष्ट होने से रोका नहीं था और (उसका स्वागत करने के लिये) दौड़ आये थे। (शुकनास के) उस घर पर पहरेदार बहुत से हाथियों के समूह की भीड़ थी, वह सहस्रो

सबाधम्, अपरिमितजनसमूहसहस्रसमर्दसकुलम्, एकदेशोपविष्टैः सहस्रशो निबद्धचक्रवालैरनेककार्यागतैर्दर्शनोत्सुकैः समन्ततो विविधशास्त्राञ्जनोन्मीलितप्रतिभैरवरच्छद्मना विनयानुरागिभिर्धर्मपटैरिवावगुण्ठितैः शाक्यमुनिशासनपथधौरेयै रक्तपटैः पाशुपतैर्द्विजैश्च दिवानिशमासेव्यमानम्, अभ्यन्तरप्रविष्टाना च सामन्तानां जघनोपविष्टपुरुषोत्सङ्गावस्थितद्विगुणकुथाभिरतिचिरावस्थाननिर्वेदप्रसुप्ताधोरणाभिरपर्याणाभिः सपर्याणाभिश्च निश्चलावस्थानप्रचलायिताभिः शतसहस्रशः करिणीभिराकीर्णं शुकनासगृहद्वारमासाद्य सत्वरप्रधावितैर्द्वारदेशावस्थितैः प्रतीहारपुरुषैरनिवार्यमाणोऽपि राजकुल इव राजपुत्रो बाह्याङ्गण एव तुरगादवततार। द्वारदेशावस्थापि-

---

लुकि रूपम्। ततश्च शुकनासगृहद्वारमासाद्य शुक्रवासभवन विवेशेत्यन्वय। अथ गृहद्वार विशेषयन्नाह—यामेति। यामावस्थिताश्चतुष्किकायां स्थिता विविधानां गजानां घटा समूहस्तया सकटं सबाध प्रवेष्टुमशक्यम्। अनेके ये तुरङ्गास्तुरङ्गमास्तेषा सहस्रं तेन संबाधं बाधासहितम्। अपरीति। अपरिमिता असख्या ये जना मनुष्यास्तेषां समूहा भिन्नभिन्नजातीयनरगणास्तेषां सहस्राणि तेषां समर्दोऽन्योन्याघातस्तेन सकुलम्। एकदेश एकान्त उपविष्टै. स्थितै सहस्रशो निबद्धानि चक्रवालानि यै। अनेकानि यानि कार्याणि तदर्थं आगतै प्राप्तै। दर्शनार्थमवलोकनार्थमुत्सुकैरुत्कण्ठितै। समेति। समन्तत सर्वतो विविधानि यानि शास्त्राणि तान्येवाञ्जन नेत्रौषध तेनोन्मीलितानि विकाशं प्रापितानि प्रतिभानि चक्षूंषि येषां तै। अवरेति। अव रच्छद्मना सेवकमिषेण विनयेनानुरागो विद्यते येषां तै। तद्गुणानुरागेण विनयादेव सेवकीभूतैरित्यर्थं। धर्मपटैरिवावगुण्ठितैराच्छादितै शाक्यमुनी नामकं बान्धवतपस्विना अच्छासनमाज्ञा तस्य पन्था मार्गस्तत्र धौरेयैर्धुरधरैस्तथा रक्तपटै रक्ताम्बरै पाशुपतै. शैवैर्द्विजैर्ब्राह्मणैश्च दिवानिशमहर्निशमासेव्यमानमुपास्यमानम्। अभ्यन्तरप्रविष्टानां मध्यगतानां सामन्तानां स्वदेशपार्श्ववर्तिराज्ञां च शतसहस्रश करिणीभिर्धेनुकाभिराकीर्णं व्याप्तम्। अथ करिणीविशेषणानि—

अश्वों से भरपूर था, वहाँ अनगिनत व्यक्तियों की सहस्रों टोलियों की भीड़ ठसाठस भरी थी, एक भाग में बैठे, सहस्रों (छोटी-छोटी) टोलियाँ (मण्डल) बनाये, विविध प्रयोजनों से आये, (शुकनास) से भेंट करने के लिये व्यग्र, विविध शास्त्ररूपी अञ्जन के लेप (शास्त्रों के अध्ययन) से खुली आँखों (विकसित प्रतिभा) वाले, बौद्ध साधुओं द्वारा पहने जाते चीवरों के बहाने मानो अपनी नम्रता (अथवा धर्म) के प्रति अनुराग रूपी रग से रँगे स्वय 'धर्म' के ही वस्त्रों को पहने हुए बुद्ध के उपदेश के अनुयायियों के मुखिया, लाल कपड़े वाले शैव और ब्राह्मण वहाँ दिन-रात बैठे रहते थे, वहाँ (शुकनास से भेंट करने के लिये) भीतर प्रविष्ट हुए सामन्तों की उनके कटिभाग के अग्र प्रदेश पर बैठे पुरुषों की गोद में तह करके रखी हुई झीनों वाली, अत्यन्त दीर्घकालीन प्रतीक्षा से हुई थकावट के कारण सोये हुए महावतों वाली काठियों-सहित और (दीर्घकाल से) निश्चल ठहरी रहने के कारण चक्कर खाती हुई सैकड़ों सहस्रों हथिनियों से (भी) भरा हुआ था। अपने घोड़े को द्वार के समीप (बाहर ही) ठहरा कर, वैशम्पायन का

तुरङ्गश्च वैशम्पायनमवलम्ब्य पुरःप्रधावितैः समुत्सारितपरिजनैस्तत्प्रतीहारमण्डलैरुपदिश्यमानमार्गस्तथैव च चलितमुकुटकोटिभिर्नरेन्द्रवृन्दैः सेवासमुपस्थितैरुत्थायोत्थाय प्रणम्यमानस्तथैव च प्रचण्डप्रतीहारहुंकारभयमूकीभवत्परिजनानि प्रचलितवेत्रलताचकितसामन्तचक्रचरणशतचलितवसुधराणि कक्षान्तराणि निरीक्ष्यमाणस्तथैव च नवनवसुधावदातप्रासादनिरन्तरं द्वितीयमिव राजकुलं शुकनासभवन विवेश। प्रविश्य चानेकनरेन्द्रसहस्रमध्योपस्थितमपरमिव पितरमुपदर्शितविनयो दूरावनतेन मौलिना

जघनेति। कक्ष्या अग्रिमो भागो जघन तत्रोपविष्टा स्थिता ये सामन्तीया पुरुषास्तेषामुत्सङ्गा क्रोडास्तेष्ववस्थिता द्विगुणाः कुथा वर्णपरिस्तोमा यासु ताभि । अतीति। अतिचिर बहुकाल यदवस्थान तस्माद्यो निर्वेद स्वावमानन तेन प्रसुप्ता निद्रा प्राप्ता आधोरणा हस्तिपका यासु ताभि । सह पर्याणेन पल्ययनेन वर्तमानास्ताभिर्निश्चल चेष्टारहित यदवस्थानं तेन प्रचलायिताभि संजातनिद्राभिरेतादृशं शुकनासगृहद्वारमासाद्य प्राप्य सत्वर सवेग प्रधावितैरविस्वराकृतगमनैर्द्वारदेशावस्थितै प्रतीहारपुरुषैर्द्वारपालकैरनिवार्यमाणोऽप्यनिषेध्यमानोऽपि राजकुल इव बाह्याङ्गण एव राजपुत्रस्तुरगादश्वादवततारोत्तीर्णवान्। द्वारेति। द्वारदेशे प्रतोल्यामवस्थापितस्तुरङ्गो येन स वैशम्पायनमवलम्ब्यालम्ब्य पुर प्रधावितैरग्रत शीघ्रप्रचलितै । समुत्सारितो दूरीकृत· परिजनो यै·। तथैव पूर्ववत्। प्रतीहारमण्डलैरुपदिश्यमान उपदेशविषयीक्रियमाणो मार्गो पन्था यस्य स तथा। तथैव पूर्ववत्। चलिता कम्पिता मुकुटाना कोटयो येषा तैः नरेन्द्रवृन्दै राजसमूहै सेवार्थं सपर्यार्थं समुपस्थितैरागतैरुत्थायोत्थायेति। उत्थानमुत्थान कृत्वेत्यर्थं । प्रणम्यमानो नमस्क्रियमाण । तथैव पूर्ववत्। प्रचण्डा ये प्रतीहारा द्वारपालकास्तेषा हुकारा हुकृतयस्तेभ्यो भय भीतिस्तेन मूकीभवन्मौनता समाश्रयन्परिजनो येषु तानि। प्रचलितेति। प्रचलिता इतस्ततो विक्षिप्ता या वेत्रलता वेतसयष्टयस्ताभ्यश्चकित शङ्कितं यत्सामन्तचक्रं तस्य चरणशतेन पादशतेन चलिता कम्पिता वसुधरा पृथ्वी येषु तान्येवविधानि कक्षान्तराणि गृहप्रदेशानि। 'कक्षा प्रकोष्ठे केदारे काञ्च्यां मध्येभबन्धने' इति विश्व.। निरीक्ष्यमाणो विलोक्य-

---

सहारा (हाथ पकड़ कर) लिये हुए चन्द्रापीड ताजी (सुधा) चूने की पुताई से चमकते महलों से भरे, दूसरे राजभवन से प्रतीत होते शुकनास के घर मे प्रविष्ट हुआ। राजभवन की भाँति वहाँ भी (दूसरे) सेवकों को हटाते आगे-आगे दौड़ कर चलते हुए द्वारपालों की टोलियों ने उसको मार्ग दिखाया, और राजभवन की भाँति वहाँ भी हिलते मुकुटों के शिखरों (पर के रत्नों) वाले अभ्यर्थना (सेवा) के लिये वहाँ उपस्थित राजकुमारों के समूहों ने उठ-उठ कर उसको प्रणाम किया, और वहाँ भी राजभवन की भाँति ही उसने द्वारपालों के प्रबल हुंकार (चेतावनी) के भय से चुप हुए सेवकों वाले, इधर-उधर घूमते बेंतधारियों को देख कर चौंके हुए बहुत-से सामन्तों के पाँवों (के आघात) से कम्पायमान धरती वाले भीतरी कक्षों का निरीक्षण किया। और प्रविष्ट होकर उसने आदर दिखा कर सहस्रों राजाओं के बीच में बैठे, दूसरे पिता-सरीखे शुकनास को अपना सिर बहुत नीचे तक झुका कर प्रणाम किया।

शुकनासं ववन्दे। शुकनासस्तं ससभ्रमं समुत्थायानुपूर्व्येणोत्थितराजलोकः सादरमभिमुखदत्ताविरलपदः प्रहर्षविस्फारितविलोचनागतानन्दजलकणः सम वैशम्पायनेन प्रेम्णा गाढमालिलिङ्ग। आलिङ्गितोन्मुक्तश्च सादरोपनीतमपहाय रत्नासनमवनावेव राजपुत्रः समुपाविशत्। तदनु च वैशम्पायनः। उपविष्टे च राजपुत्रे शुकनासवर्जमन्यदखिलमवनिपालचक्रमुज्झितनिजासनमवनितलमभजत। स्थित्वा च तूष्णीं क्षणमिव शुकनासः समुद्गतप्रीतिपुलकैरङ्गैरावेद्यमानहर्षप्रकर्षस्तमब्रवीत्—'तात, अद्य खलु देवस्य

मान। नवेति। नवनवा नवीना सुधावदाता सुधयावदाता उज्ज्वला ये प्रासादास्तैर्निरन्तर व्याप्त द्वितीयमिव राजकुल शुकनासभवन विवेश प्रविष्टवान्। प्रविश्य च प्रवेशं कृत्वा। अनेकेति। अनेकेषा नरेन्द्राणा यत्सहस्र तन्मध्य उपस्थितमपरमिवान्यमिव पितर जनकम्। उपेति। उपदर्शितो विनयो येन स तथा दूरादविष्टादवनतेन मौलिना शिरसा शुकनास ववन्दे नमश्चक्रे। शुकनासस्त चन्द्रापीड गाढ यथा स्यात्तथालिलिङ्गोपगूहन चक्रे। ससभ्रम सवेग समुत्थायोत्थान कृत्वा वैशम्पायनेन स्वसुतेन सम सार्धम्। केन। प्रेम्णा स्नेहेन। अथ शुकनास विशेषयन्नाह—आन्विति। आनुपूर्व्यानुक्रमेणोत्थितो राजलोको यस्मात्। आदरेण सह वर्तमानं सादर यथा स्यात्तथा। अभिमुख सम्मुखं दत्तान्यविरलान्यनवच्छिन्नानि पदानि येन स तथा। प्रहर्षेति। प्रहर्षेण प्रमोदेन विस्फारिते विस्तारिते ये विलोचने तयोरागता आनन्दजलकणा यस्य स तथा। पूर्वमालिङ्गित पश्चादुन्मुक्तश्च सादर उपनीतमानीत रत्नासन सिंहासनमपहाय त्यक्त्वावनावेव पृथिव्यामेव राजपुत्रश्चन्द्रापीड समुपाविशदुपाविशत्। तदनु पश्चाद्वैशम्पायन उपाविशत्। उपविष्टे च राजपुत्रे शुकनासवर्जमेक शुकनास विहायाखिल समग्रमन्यदवनिपालचक्र राजसमूहमुज्झित त्यक्तं निजासनमात्मीयासन येन तत्। अवनितलं पृथ्वीतलमभजदशिश्रियत्। क्षणमिति। क्षणमिव क्षणमात्रं तूष्णीं मौन स्थित्वा च शुकनास समुद्गत प्रादुर्भूतः प्रीत्या स्नेहेन पुलको रोमाञ्चो येष्वेवविधैरङ्गैरावेद्यमानो हर्षप्रकर्षोत्कर्षं प्रमोदो यस्य स तथा त चन्द्रापीडमब्रवीत्। हे तात हे पुत्र।

शुकनास हड़बड़ा कर उठा, उसके चारों ओर के राजा भी एक एक करके क्रमशः खड़े हो गये, आदरसहित उसकी ओर कई डग बढ़ा, हर्ष से फैली हुई उसकी आँखों में आनन्दाश्रु भर गये और उसने चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन का प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिंगन किया। और जब आलिंगन से मुक्त हो गया, तब वह आदरसहित लाये गये मणिजटित आसन को छोड़ कर (उसको अस्वीकार करके) पृथ्वी पर ही बैठ गया तथा उसके पश्चात् वैशम्पायन भी बैठ गया। और राजपुत्र जब इस प्रकार बैठ गया, तब शुकनास के अतिरिक्त वह सारा ही राजमण्डल अपने आसनों को छोड़ कर पृथ्वी पर बैठ गया। और थोड़ी ही देर तक चुप रहने के पश्चात् शुकनास ने चन्द्रापीड से कहा—इस समय हर्ष से अभिभूत (रोमाञ्चित) उसके अंग उसके हृदय के हर्ष को सूचित कर रहे थे।

तारापीडस्य समाप्तविद्यमुपारूढयौवनमालोक्य भवन्त सुचिराद्भुवनराज्यफलप्राप्ति-रुपजाता। अद्य समृद्धाः सर्वा गुरुजनाशिषः। अद्य फलितमनेकजन्मान्तरोपात्तमव-दातं कर्म। अद्य प्रसन्नाः कुलदेवताः। न ह्यपुण्यभाजा भवादृशास्त्रिभुवनविस्मयजनकाः पुत्रता प्रतिपद्यन्ते। क्वेद वयः। क्वेयममानुषी शक्तिः। क चेदमशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यम्। अहो, धन्याः प्रजा यासा भरतभगीरथप्रतिमो भवानुत्पन्नः पालयिता। कि खलु कृतम-वदातं कर्म वसुधरया ययासि भर्ता समासादित'। हरिवक्षःस्थलनिवासासद्ग्रहव्यस-नितया हृता खलु लक्ष्मीः, या विग्रहवती भवन्त नोपसर्पति। सर्वथा कल्पकोटीर्महा-

---

'तातस्तु पितृपुत्रयो' इति कोश। खलु निश्चितम्। अद्यास्मिन्दिने देवस्य तारापीडस्य समाप्त-विद्य परिपूर्णीकृता विद्या येनैवविधमुपारूढयौवन सम्प्राप्ततारुण्य भवन्तं त्वामालोक्य सुचिराच्चि-रकालेन भुवनराज्यफलप्राप्तिस्त्रिभुवनापत्यफलोपलब्धिरुपजाता प्रादुर्भूता। अद्य गुरुजनाना पूज्यजनाना सर्वा आशीर्वादा, समृद्धा सपत्तिभाजो बभूवु। अद्यानेकजन्मान्तरोपात्तमनेकभवा-र्जितमवदात शुद्ध कर्म फलित फलवज्जज्ञे। अद्य कुलदेवता कुलाधिष्ठात्र्य प्रसन्ना प्रसादवत्य। न हि अपुण्यभाजामधर्मवता भवादृशा भवत्सदृशास्त्रिभुवनस्य त्रिविष्टपस्य विस्मयजनका आश्च-र्योत्पादका पुत्रता सुतत्व प्रतिपद्यन्ते भजन्ते। क्वेति महदन्तरे। इयं वयोवस्था क। इय परिदृश्यमाना मानुषी मनुष्येष्वसभाव्यमानैतादृशी शक्ति पराक्रम क। इदमशेषविद्याग्रहण सामर्थ्य च क। अहो इत्याश्चर्ये। धन्या भाग्यवत्य प्रजा प्रकृतयो यासा प्रजाना भरत आर्षभि, भगीरथ सगरपौत्र, ताभ्या प्रतिम, सदृशो भवास्त्व पालयिता रक्षक उत्पन्न। किमिति प्रश्ने। खलु निश्चयेन। वसुधरया पृथिव्यावदात शुद्ध कर्म किं कृतमाचरितं यया त्व भर्ता प्रभु समासा-दित प्राप्त असि। हरिवक्ष स्थले विष्णुभुजान्तरे यो निवासोऽवस्थितिस्तल्लक्षणो योऽसद्ग्रहो

उसने कहा—"पुत्र चन्द्रापीड! आज विद्या समाप्त किये हुए तथा युवावस्था को प्राप्त हुए तुमको देखकर आज ही (प्रतीक्षा के) बहुत समय पश्चात् महाराज (तारापीड) को ससार के स्वामित्व का फल प्राप्त हुआ है। केवल आज ही गुरुजनों के सब आशीर्वाद पूर्णतया पूरे हुए है। अनेक दूसरे जन्मो मे किये गये पुण्यकर्म आज सफल हुए हैं। कुल देवताओं ने आज अपनी प्रसन्नता (कृपा) की है। अधर्मात्माओं के तो तुम्हारे सरीखे तीनों लोकों को आश्चर्य में डालने वाले पुत्र नहीं होते। कहाँ (तुम्हारी) यह (तरुण) आयु और कहाँ यह (तुम्हारी) अतिमानवी शक्ति! (दोनों मे बहुत अन्तर है)[1] अहा! वे प्रजाएँ भाग्यशाली हैं जिनका पालनकर्ता (शासक) भरत तथा भगीरथ सदृश तू उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी ने जाने कौन से पुण्य कार्य किये होंगे कि (अब) उसने तेरा जैसा स्वामी (शासक) प्राप्त कर लिया है। लक्ष्मी तो वस्तुत नष्ट (अर्थात् भाग्यहीन) ही है जो विष्णु के वक्ष स्थल पर निवास करने के हठ (असद् ग्रह) पर तो दृढ है (किन्तु) अपने शरीर को धारण करके तेरे पास नहीं आती, जैसे महावराह अर्थात् वराहावतार ने अपनी दाढ पर पृथ्वी के भार को

---

1 क्वेति महदन्तरे।

वराह इव दंष्ट्रावलयेन वह बाहुना वसुंधराभारं सह पित्रा' इत्यभिधाय च स्वयमाभरणवसनकुसुमाङ्गरागादिभिरभ्यर्च्य विसर्जयाचकार। विसर्जितश्चोत्थायान्तःपुर प्रविश्य दृष्ट्वा वैशम्पायनमातर मनोरमाभिधाना निर्गत्य समारुह्येन्द्रायुध पित्रा पूर्वकल्पितम्, प्रतिच्छन्दकमिव राजकुलस्य द्वारावस्थितसितपूर्णकलशम्, आबद्धहरितचन्दनमालम्, उल्लसितसितपताकासहस्रम्, अभ्याहतमङ्गलतूर्यरवपरिपूरितदिगन्तरम्, उपरचितविक-

---

इठस्तद्व्यसनितया तदासक्ततया। खलु निश्चयेन लक्ष्मी श्रीर्हृता। देवेनेति शेष.। या श्रीर्भवन्त स्वा विग्रहवती शरीरधारिणी नोपसर्पति नाभ्युपैति। अमूर्तरूपेण यद्यप्यनुसरति तथापि न मूर्तिविग्रहरूपेणेत्यर्थं। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेण कल्पकोटीर्यावद्बाहुना भुजेन वसुधराभार पित्रा सह जनकेन सम वह धारय। दंष्ट्रावलयेन दाढामण्डलेन महावराह इव। इति पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधायोक्त्वा। चकार समुच्चयार्थं। स्वयमात्मनैव। आभरणेति। आभरणानि भूषणानि, वसनानि वस्त्राणि, कुसुमानि पुष्पाणि, अङ्गरागो विलेपनम्, एतत्प्रभृतिभिर्वस्तुभिरभ्यर्च्यार्चयित्वा विसर्जयाचकार विसर्जितवान्। विसर्जितो गृहायानुज्ञात उत्थायोत्थान कृत्वान्त.पुरमवरोध प्रविश्य मध्ये गत्वा मनोरमाभिधानां मनोरमेति नाम्नीं वैशम्पायनमातर दृष्ट्वा विलोक्य तदनन्तर बहिर्निर्गत्येन्द्रायुध समारुह्यारोहण कृत्वा कुमारो भवन अगामेत्यन्वय। अथ भवन विशेषयन्नाह—पित्रेति। पित्रा जनकेन पूर्वं पूर्वस्मिन्काले कल्पितम्। कारितमित्यर्थं। राजकुलस्य राजसमूहस्य प्रतिच्छन्दकमिव प्रतिबिम्बमिव द्वारेऽवस्थिता सिता श्वेता पूर्णा' कलशा. कुम्भा यस्मिन्। आबद्धा सदानिताः हरिता नीलाश्चन्दनमाला यस्मिन्। उल्लसितमुच्छ्रित सितपताकाना श्वेतवैजयन्तीना सहस्रं यस्मिन्। अभ्याहतानि वादितानि यानि मङ्गलतूर्याणि कल्याणहेतुकातोद्यानि तेषा रवेण शब्देन परिपूरितं दिगन्तर येन तत्। उप-

---

सहारा था वैसे ही तू अब अपनी भुजा से पिता के साथ-साथ, ससार के शासन के दायित्व को करोड़ों कल्पों तक धारण किये रह।" और यह कहकर शुकनास ने स्वयं आभूषण, वस्त्र, पुष्प तथा उबटन आदि उपहारों से उसका सम्मान करके (उसको) छुट्टी दे दी। और (इस) प्रकार (घर जाने की) अनुज्ञा दिया गया चन्द्रापीड अन्त'पुर में जाकर मनोरमा नाम की वैशम्पायन की माता से भेंट करके, वहाँ से बाहर आकर, इन्द्रायुध पर चढ़कर पिता द्वारा पहले ही नियत (अथवा उसके लिये विशेष रूप से बनवाये गये) भवन में चला गया। वह भवन मानो राजभवन की प्रतिमूर्ति ही था, उसके प्रवेशद्वार के समीप (मङ्गलसूचक) (जल से) भरे चाँदी के कलश रखें हुए थे, उसके (दरवाजों के आरपार) हरी चन्दन-मालाएँ बाँधी गयी थीं, उसपर सहस्रों श्वेत ध्वज फहरा रहे थे, (जोर-जोर से) प्रताड़ित मङ्गलसूचक वाद्यों की ध्वनि से वहाँ सारे दिगन्तराल भरे हुए थे, वहाँ (फर्श पर) खिले हुए कमलों और पुष्पों के गुच्छे (अर्घ्य रूप में) रखे हुए थे, वहाँ अभी-अभी हवन किया गया था, वहाँ का सेवक वर्ग उजला और निर्मल (अथवा औरों से भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने हुए) था; और इसमें (नये बने हुए भवन में प्रथम बार) प्रवेश के लिए आवश्यक सभी मङ्गलचार किये

चक्रमलकुसुमप्रकरम्, अचिरकृताग्निकार्यम्, उज्ज्वलविविक्तपरिजनम्, उपपादिताशेषगृहप्रवेशमङ्गलं कुमारो भवनं जगाम। गत्वा च श्रीमण्डपावस्थिते शयने मुहूर्तमुपविश्य सह तेन राजपुत्रलोकेनाभिषेकादिमशनावसानमकरोद्दिवसविधिम्। अभ्यन्तरे च शयनीयगृह एवेन्द्रायुधस्यावस्थानमकल्पयत्।

एवप्रायेण चास्योदन्तेन तदहः परिणतिमुपययौ। गगनतलादवतरन्त्या दिवसश्रियः पद्मरागनूपुरमिव स्वप्रभापिहितरन्ध्रं रविमण्डलमुन्मुक्तपादं पपात। जलप्रवाह इव रथचक्रमार्गानुसारेण दिवसकरस्य वासरालोकः प्रतीचीं ककुभमगात्। अभिनवपल्लवलोहिततलेन करेणेवाधोमुखप्रसृतेन रविबिम्बेन वासरः कमलरा-

रचितो निर्मितो विकचानां विकस्वराणां कमलानां नलिनानां कुसुमप्रकरो यस्मिन्। अचिरं कृतमग्निकार्यं होमादिकं यस्मिन्। उज्ज्वलो निर्मलो विविक्तो भिन्नभिन्नस्वरूपः परिजनः परिवारो यस्मिन्। उपपादितं विहितमशेषं समग्रं गृहप्रवेशमङ्गलं धात्वालेख्यादि यस्मिन्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। गत्वा चेति। गत्वा तत्र गमनं कृत्वा श्रीमण्डपं आस्थानमण्डपस्तत्रास्थिते स्थापिते शयने शय्यायां मुहूर्तं नाडिकाद्वयमात्रमुपविश्यावस्थानं कृत्वा तेन राजपुत्रलोकेन सह सार्धमभिषेकं स्नानमादिर्यस्य तम्। अशनं भोजनमवसानेऽन्ते यस्यैवभूतं दिवसविधिं दिवसकर्माकरोदकार्षीत्। अभ्यन्तरे मध्ये यच्छयनीयगृहं सुषुप्तिगृहं तस्मिन्निवेन्द्रायुधस्य स्वकीयाश्वस्यावस्थानमकल्पयदन्वतिष्ठत्।

एवमिति। अस्य राज्ञ एवंप्रायेणोदन्तेन वृत्तान्तेन तदहस्तद्दिनम्। परिणतिस्त्रयोदशमुहूर्तपर्यन्तदिवसावस्था परिणतिस्तामुपययावगमत्। रविमण्डलं सूर्यबिम्बमुदूर्ध्वं मुक्ता पादा किरणा येनैवभूतं पपात स्रस्तम्। अन्योऽप्युपरिप्रदेशाद्य. पतति स ऊर्ध्वपाद एव स्यात्। स्वभाववर्णवर्तुलत्वसाम्यादुपमानान्तरं दर्शयन्नाह—गगनेति। गगनतलादाकाशतलादवतरन्त्या आगच्छन्त्या दिवसश्रियो दिनलक्ष्म्याः पद्मरागनूपुरमिव लोहितकपादकटकमिव। नूपुरं प्रायेण सच्छिद्रम्। छिद्रोपकथय आह—स्वेति। स्वस्य या प्रभा कान्तिस्तया पिहितान्याच्छादितानि रन्ध्राणि छिद्राणि यस्य तत्। दिवसकरस्य सूर्यस्य रथचक्रमार्गानुसारेण वासरालोको दिवसप्रकाश. प्रतीची

हुए थे। वहाँ पहुँच कर कुछ देर तक भड़कीले मण्डप के नीचे स्थापित पलग पर बैठकर उसने उन (दूसरे) राजपुत्रों के साथ स्नान से लेकर भोजन पर्यन्त सब दैनिक कर्त्तव्य किये और भीतर अपने सोने के कमरे में ही उसने इन्द्रायुध को ठहराया।

और इसके इस प्रकार के वृत्तान्त से वह दिन समाप्त हो गया। आकाश से उतरती हुई दिवस-श्री के पाँव से फिसले हुए, अपनी ही चमक से ढके छिद्रों वाले पद्मराग-मणिजटित नूपुर-सा प्रतीत होता सूर्यबिम्ब अपनी किरणों (पाद) से रहित हुआ नीचे गिर पड़ा, अस्त हो गया। सूर्य का दिवसकालीन प्रकाश (उसके) रथ के पहिये के मार्ग पर चलता हुआ पश्चिम दिशा में ऐसे चला गया जैसे कि कोई जल का प्रवाह रथ के पहिये की लीक पर चलता-चलता पश्चिम दिशा में चला गया हो। (अस्त होते हुए) दिन ने, अब बन्द होते हुए) दिन ने (अब बन्द होते हुए) कमलों की सारी चमक (रंग) को ताजी कोंपल सरीखे लाल लाल पृष्ठ वाले, नीचे की ओर मुँह करके डूबते हुए (प्रसृतेन—आगे बढ़ते हुए) सूर्य-

गमशेषं ममार्ज। कमलिनीपरिमलपरिचयागतालिमालाकुलितकण्ठं कालपाशैरिव चक्रवाकमिथुनमाकृष्यमाण विजघटे करपुटैरा दिवसान्तमापीतमरविन्द-मधुरसमिव रक्तातपच्छलेन गगनगमनखेदादिव दिवसकरबिम्बं ववाम। क्रमेण च प्रतीचीकर्णपूररक्तोत्पले लोकान्तरमुपगते भगवति गभस्तिमालिनि, समुल्लसितायामम्बरतटाकविकचकमलिन्या सध्यायाम्, कृष्णागुरुपङ्कपत्रलतास्विव

पश्चिमा कुकुभ दिशमगात्प्रययौ। क इव जलप्रवाह इव पानीयपूर इव। सोऽपि रथमार्गानुगामी स्यादिति भाव। वासरो दिवसोऽधोमुख प्रसृतेन विस्तृतेन रविबिम्बेन सूर्यबिम्बेनाभिनवा प्रत्यग्रा ये पल्लवास्तद्वल्लोहित रक्त तल यस्यैवभूतेन करेणेव करतलेनेव कमलरागमशेष समग्र ममार्ज दूरीचकारेत्यन्वय। अत्र वर्तुलत्वरक्तत्वसाम्याद्रविबिम्बस्य हस्ततलोपमानम्। कमलाना संकोचत्वादेव रागनिवृत्तिरिति। कमलिनीति। कमलिन्या नलिन्या य परिमलस्तस्य परिचयात्सबन्धादागता प्राप्तालिमाला भ्रमरश्रेणिस्तयाकुलितो व्याप्त कण्ठो यस्य। अतएव हेतुमाह—कालेति। कालपाशै कृष्णबन्धनैराकृष्यमाणमिव चक्रवाकमिथुनं द्वन्द्वचरमिथुन विजघटे विघटयांचकार। दिवसकरेति। दिवसकरबिम्ब सूर्यबिम्बं गगनगमनखेदादिव व्योमसंचरणप्रयासादिव करपुटै किरणसपुटैरादिवसान्तमादिनपर्यन्तमापीतो योऽरविन्दमधुरसस्तमिव रक्तातपच्छलेन लोहितप्रकाशमिषेण ववामोद्गिरयाचकार। अस्तावस्थामाह—प्रतीचीति। प्रतीची पश्चिमा तस्या कर्णपूर तदेव रक्तोत्पलं तद्रूपे लोकान्तर क्षेत्रान्तरमुपगते प्राप्ते भगवति माहात्म्यवति गभस्तिमालिनि श्रीसूर्ये सति। अथ च सध्याया समुल्लसितायामुल्लास प्राप्तायाम्। अत्रोल्लास एव कमलिनीसाम्य प्रदर्शयन्नाह—अम्बरेति। अम्बरमाकाशम्। स्वच्छत्वनीलत्वसाम्यात्। तदेव तटाक सरस्तस्मिन्विकचा विकस्वरा कमलिनी नलिनी तस्याम्। अत्रारुण्यातिशयो व्यङ्ग्य। पुन केषु सत्सु। दिशामुखेषु दिग्वदनेषु तिमिरलेखासु भूच्छायराजिषु स्फुरन्तीषु देदीप्यमानासु। कृष्णत्वसाम्यादाह—कृष्णेति। कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य

मण्डल के द्वारा पोछ दिया। मानो कि सूर्यमण्डल (इस समय) नयी कोंपल-सरीखी लाल लाल हथेली वाला (चमक को पोंछने के लिये) नीचे की ओर फैलाया हुआ हाथ ही था। कमलिनी की गन्ध को पहचान कर वहाँ आये हुए भौंरों की पक्तियों से घिरे कण्ठों वाले चक्रवाक-जोड़े इस प्रकार वियुक्त हो गये कि मानो कि उन्हे यम के फन्दों ने खींच कर अलग-अलग किया हो। सूर्य-बिम्ब ने मानो आकाश के आरपार चलने से थक कर ही, अपनी किरणों-रूप अञ्जलियों द्वारा दिन की समाप्तिपर्यन्त पिये हुए कमलों के लाल रग के द्रव मधु को लाल लाल धूप के बहाने उगल दिया।

और जब पश्चिमदिशा के कर्णालकारभूत लाल कमल से प्रतीत होते भगवान् सूर्य क्रमश. अस्त हो गये, जब आकाश रूपी तालाब में पूर्णतया खिली कमलिनी रूपा सन्ध्या (पूर्णतया) खिल उठी (अत्यधिक लाल हो उठी), जब दिशाओं (रूपी महिलाओं) के मुखों पर अन्धकार की रेखाएँ प्रकट होने लगीं कि मानो वे काले अगरु के लेप से बनायी गयीं आभूषक

तिमिरलेखासु स्फुरन्तीषु दिशामुखेषु, अलिकुलमलिनेन कुवलयवनेनेव रक्तकमलाकरे तिमिरेणोत्सार्यमाणे सन्ध्यारागे, कमलिनीनिपीतमातपमुन्मूलयितुमन्धकारपल्लवेष्विव प्रविशत्सु रक्तकमलोदराणि मधुकरकुलेषु शनैःशनैश्च, निशाविलासिनीमुखावतसपल्लवे गलिते सन्ध्यारागे, दिक्षु विक्षिप्तेषु सन्ध्यादेवतार्चनबलिपिण्डेषु शिखरदेशलग्नतिमिरास्वनारूढमयूरास्वपि मयूराधिष्ठितास्विव मयूरयष्टिषु, गवाक्षविवरनिलीनेषु प्रासादलक्ष्मीकर्णोत्पलेषु, पारावतेषु, विगतविलासिनीसवाहननिश्चलकाञ्चनपीठासु

पङ्क कर्दमस्तस्य पत्रलतास्विव पत्रभङ्गेष्विव। दिशा मुख तन्मुखमेव। अतएव तिमिरलेखासु पत्रलतात्वोपवर्णन युक्तम्। तिमिरेणान्धकारेण सन्ध्याराग उत्सार्यमाणे दूरीक्रियमाणे सति। केनेव। अलिकुल भ्रमरसमूहस्तेन मलिनेन कृष्णेन कुवलयवनेनेव रक्तकमलाकरे रक्तपद्मसमूहे। तथा च रागतिमिरयो कुमुदकमलयोर्विरुद्धातिशयवत्त्वेनैतदुपमानम्। कमलिनीति। कमलिन्या पद्मिन्या निपीतमास्वादितमातप सूर्यालोकमुन्मूलयितु मूलतोऽपि दूरीकर्तुं रक्तकमलोदराणि मधुकरकुलेषु शनै शनै प्रविशत्सु प्रवेश कुर्वत्सु। कृष्णत्वसाम्यादाह—अन्धेति। अन्धकारपल्लवेष्विव तमोभागेष्विव। एतेन तमसोऽतिशयत्व सूचितम्। निशेति। निशैव रात्रिरेव विलासिनी स्त्री तस्या मुखमानन तस्यावतसपल्लवे शेखरकिसलये सन्ध्यारागे गलिते दूरीभूते सति। दिक्षु पूर्वादिषु सन्ध्यादेवतार्चनार्थं बलिपिण्डेषु विक्षिप्तेषु विकीर्णेषु सत्सु। अर्धजलाञ्जलैरित्यपि बोध्यम्। तमसो नीलत्वात्तदेव मयूरसाम्यमित्याशयेनाह—मयूरेति। शिखरदेशे प्रान्तप्रदेशे लग्न तिमिर तमो यास्वेवंविधास्वनारूढमयूरास्वप्यनाश्रितनीलकण्ठास्वपि मयूराधिष्ठितास्विव मयूरयष्टिषु सतीषु। पारावताना रात्रौ विवरे निवास प्रसिद्ध इति तदाह—गवाक्षेति। गवाक्षा वातायनास्तेषा विवरेषु छिद्रेषु निलीना गुप्तीभूय स्थितास्तेषु। कृष्णत्वसाम्यादाह—प्रासादेति। प्रासादस्य राजसदनस्य या लक्ष्मीस्तस्या. कर्णोत्पलेषु पारावतेषु

रेखाएँ ही हों, जब लाल लाल सन्ध्या के रग को भौंरों के झुण्ड सरीखा काला घना अन्धकार इस प्रकार पीछा करके निकाल रहा था कि मानो (इस पर बैठे) भौंरो से काले हुए (खिलते) नील कमलों का वन (बन्द होते) लाल कमलों के वन (की शोभा को) ग्रहण लगा रहा हो, उसको दूर कर रहा हो। जब भौंरे लाल कमलों के भीतर प्रविष्ट होते ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो वे (दिन भर) पी गयी धूप को सर्वथा निकाल देने के लिये उनमें प्रविष्ट हो रहीं अन्धकार की रेखाएँ (अथवा अन्धकार रूपी कोमल हाथ) हों', जब निशा-रूपी स्त्री के मुख की भूषक (लाल) पत्रभूत सायकालीन लालिमा धीरे-धीरे अदृश्य हो गयी, जब सन्ध्या देवता की पूजार्थ बलि के पिण्ड चारों दिशाओं मे बिखेर दिये गये, जब उनके शिखर प्रदेश पर चिपटे अन्धकार वाले मयूर (बैठने के) दण्ड, उन पर मयूरों के बैठे न होने पर ऐसे प्रतीत होने लगे कि मानों उन पर मयूर बैठे हुए हों, जब महलों की लक्ष्मी शोभा (वा स्त्री) के कर्णों के (नील) कमल भूत कबूतर जालीदार झरोखों के छिद्रो में छिप गये, जब स्त्रियों का (सवाहन) झूलना दूर (बन्द) हो जाने के कारण (झूलों की सुवर्णपट्टिकाएँ ठहर गयीं

मूकीभूतघण्टास्वरास्वन्तःपुरदोलासु, भवनसहकारशाखावलम्बिपञ्जरेषु विगतालापेषु शुकसारिकानिवहेषु, सगीतविरामविश्रान्तरवासूत्सार्यमाणासु वीणासु युवतिनूपुर-शब्दोपशमनिभृतेषु भवनकलहंसेषु, अपनीयमानकर्णशङ्खचामरनक्षत्रमालामण्डनेषु मधुकरकुलशून्यकपोलभित्तिषु मत्तवारणेषु, प्रदीप्यमानेषु राजवल्लभतुरङ्गममन्दुरा-प्रदीपेषु, प्रविशन्तीषु प्रथमयामकुञ्जरघटासु, कृतस्वस्त्ययनेषु निष्क्रामत्सु पुरोहितेषु, विसर्जितराजलोकविरलपरिजनेषु विस्तारितेष्विव राजकुलकक्षान्तरेषु, प्रज्वलित-दीपिकासहस्रप्रतिबिम्बचुम्बितेषु कृतविकचचम्पकदलोपहारेष्विव मणिभूमिकुट्टिमेषु,

---

कपोतेषु सत्सु । पुन. कासु । अन्त पुरदोलास्ववरोधप्रेङ्खासु सतीषु । ता विशेषयन्नाह—विग-तेति । विगत दूरीभूत विलासिनीनां सवाहनमुद्वहनं तेन निश्चलानि स्थिराणि काञ्चनपीठानि सुवर्णफलकानि यासु । मूकीति । मूकीभूता दोलासबन्धिघण्टास्ताभिरस्वरासु' शब्दरहितासु । आन्दोलनाभावादिति भाव । तदभावस्तु कस्यचिदारोहणाभावात् । भवनेति । भवनस्य गृहस्य यः सहकारश्चूतस्तस्य शाखावलम्बीनि पञ्जराणि येषां तेषु विगतालापेषु संलापवर्जितेषु । शुक कीर', सारिका पीतपादा, तयोर्निवहेषु सत्सु । संगीतेति । संगीतस्य यो विरामोऽवसानं तेन विश्रान्त. स्थितो रव शब्दो यासां तासूत्सार्यमाणासु दूरीक्रियमाणासु वीणासु वल्लकीषु सतीषु । युवतीति । युवतीनां यानि नूपुराणि पादकटकानि तेषां च शब्दस्तस्योपशमो निवृत्तिस्तेन निभृतेषु निश्चलेषु भुवनकलहंसेषु गृहराजहंसेषु सत्सु । नूपुरशब्दोपशमस्य सजातीयस्वराह्वा-कारित्वाभावेन तेऽपि सुखेन सुप्ता इति भाव । अपनीयेति । अपनीयमानानि दूरीक्रियमाणानि दृष्टदोषोपशमार्थं कर्णे बद्धो य. शङ्ख , चामरं बालव्यजनम्, नक्षत्रमाला नक्षत्रसख्यमौक्तिका-रचिताभरणविशेष , एवंविधानि मण्डलानि भूषणानि येषु । मधुकरेति । मधुकरा भ्रमरास्तेषां कुलं समूहस्तेन शून्या रिक्ता कपोलभित्तिर्येषां तेषु । एवंविधेषु मत्तवारणेषु मत्तगजेषु सत्सु ।

और उनकी घटियों का शब्द मौन हो गया; जब आम की शाखाओं में लटकते पिंजरों वाले तोतों और मैनाओं के समूहों ने परस्पर बातचीत करना बन्द कर दिया, जब संगीत की समाप्ति पर (उनका) शब्द अथवा बजाया जाना रुक जाने पर वीणाओं को हटाया जाने लगा था, जब युवतियों के नूपुरों के शब्द के शान्त हो जाने पर—न सुनाई पड़ने पर पालतू हस चुप हो गये, जब महाकाय हस्तियों के कानों के आभूषणभूत, शख, चँवर तथा मोतियों के हार आदि अलकार (उनके शरीरों पर से) उतारे जाने लगे और उनके विशाल कपोलों को भौंरों ने खाली कर दिया, जब राजा के (प्रिय) कृपापात्र अश्वों की अश्वशाला के दीपक प्रज्वलित किये जाने लगे, जब पहले पहरे के हाथियों के दल अभी (महल में) प्रविष्ट हो रहे थे, जब (राजा के लिये) स्वस्त्ययन विधि करके पुरोहित (भवन से) निकलने लगे, जब राजाओं के छुट्टी दे देने पर उनमें से सेवकों के रह जाने पर राजभवन के भीतरी कक्ष फैले हुए-से प्रतीत होने लगे, जब सहस्रों दीपों के प्रतिबिम्ब वाले मणिजटित फर्श ऐसे प्रतीत होने लगे कि मानो उन पर पूर्ण विकसित (पीले) चम्पक-पुष्पों की भेंट अर्पित की

निपतितदीपालोकासु रविविरहार्तनलिनीविनोदनागतबालातपास्विव भवनदीर्घिकासु, निद्रालसेषु पञ्जरकेसरिषु, समारोपितकार्मुके गृहीतसायके यामिक इवान्तःपुरप्रविष्टे मकरकेतौ, अवतंसपल्लवेष्विव सरागेषु कर्णे क्रियमाणेषु सुरतदूतीवचनेषु, सूर्यकान्तमणिभ्य इव सक्रान्तानलेषु प्रज्वलत्सु मानिनीनां शोकविधुरेषु हृदयेषु, प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडः प्रज्वलितदीपिकाचक्रवालपरिवारश्चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनमनेकरत्नप्रभाशबलमुरगराजफणामण्डलमिव हृषीकेशः शयनतलमधिशिश्ये ।

प्रदीति । प्रदीप्यमानेषु प्रज्वाल्यमानेषु राज्ञो नृपस्य वल्लभा प्रिया ये तुरङ्गमा अश्वास्तेषां मन्दुरा शाला तस्या प्रदीपेषु स्नेहप्रियेषु । प्रवीति । प्रविशन्तीषु प्रवेशं कुर्वतीषु प्रथमयामसक्ता याः कुञ्जरघटास्तासु । कृतेति । कृत विहित स्वस्त्ययन विघ्नोपशमनविधिर्यैरेवभूतेषु पुरोहितेषु पुरोधस्सु निष्क्रामत्सु बहिर्गच्छत्सु । पुन केषु सत्सु । मणिभूमिकुट्टिमेषु स्फटिकमणिना बद्धानि यानि भूमौ कुट्टिमानि तेषु सत्सु । तानि विशेषयन्नाह—विसर्जित इति । विसर्जितो विसृष्टो यो राजलोकस्तेन विरल स्तोक परिजनो येषु । अतएव विस्तारितेष्विव विस्तार प्राप्तेष्विव । स्तोकजनापेक्षया स्थानं महद्दृश्यते रजन्यामिति भाव । राजेति । राजकुलस्य यानि कक्षान्तराणि प्रकोष्ठान्तराणि तेषु प्रज्वलित यद्दीपिकासहस्रं तस्य प्रतिबिम्बानि प्रतिच्छायास्तैश्चुम्बितेषु सहितेषु । दीपकप्रतिबिम्बानां पीठत्वादुपमानान्तर दर्शयन्नाह—कृतेति । कृतो विहितो विकचचम्पकवृक्षैरुपहार पूजा येष्वेवंविधेष्विव । चम्पकदलानां पीतत्वादेव तदुपमानमिति भाव । निपतितेति । निपतित पतितो दीपालोको गृहमणिप्रकाशो यासु । रवीति । रविविरहेण सूर्यविरहेणार्ता या नलिन्यस्तासां विनोदनं क्रीडन तदर्थमागतो बालातपो यास्वेवंविधास्विव भवन

हुई हो, जब भवन के साथ सलग्न बावड़ियाँ, (उनमें) दीप-प्रकाश के (गिरने) प्रतिबिम्बित होने पर ऐसी प्रतीत होने लगीं कि मानो सूर्य के वियोग से दु खी नलिनी को सान्त्वना देने के लिये वहा प्रात.कालीन धूप आ गयी हो, जब पिञ्जरों में बन्द सिंह नींद से अलसाने लगे, जब अपने धनुष को चढ़ाये, बाणों के लिये हुए कामदेव (सशस्त्र) पहरेदार सा अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गया, जब दूतियों द्वारा प्रदत्त (सराग) प्रेमपूर्ण प्रेम-सन्देश इस प्रकार सुने जाने लगे (कानों में किये जाने लगे) कि मानो वे कर्णाभूषण-रूप लाल पत्ते हों, जब मानिनियों के शोक-सन्तप्त हृदय इस प्रकार जलने लगे कि उनमें सूर्यकान्तमणियों से ही अग्नि प्रतिबिम्बित हो गयी हो, इस प्रकार सन्ध्या समय के प्रवृत्त हो जाने पर चन्द्रापीड कई प्रज्वलित मशालों (को हाथोंमें लिये हुए सेवकों) द्वारा सेवित पैदल ही राजभवन में गया, कुछ देर अपने पिता के समीप बैठा, और अपनी (माता) विलासवती के दर्शन करके अपने महल में आकर (इस पर लटकते) अनेक रत्नों की चमक से जगमगाते अपने पलग पर ऐसे सो गया जैसे कि विष्णु अनेक रत्नों की काति से रग-बिरगे शेषनाग के फणामण्डल पर विश्राम करता है ।

प्रभातायां च निशीथिन्या समुत्थाय समभ्यनुज्ञातः पित्राभिनवमृगयाकौतुकाकृष्यमाणहृदयो भगवत्यनुदित एव सहस्ररश्मावारुह्येन्द्रायुधमश्वतो बालेयप्रमाणानाकर्षयद्भिश्चामीकरशृङ्खलाभिः कौलेयकाञ्जरद्व्याघ्रचर्मशबलवसनकञ्चुकधारिभिरनेक-

---

दीर्घिकासु गृहवापीषु सतीषु। पञ्जरस्थकेसरिषु सिंहेषु निद्रया प्रमीलयालसेषु मन्थरेषु सत्सु। **समारोपितेति।** समारोपितमधिज्यं कृत कार्मुकं येन स तस्मिन्। गृहीता सायका बाणा येन स तस्मिन्। यामिक इव प्राहरिक इवान्त पुरप्रविष्टे मकरकेतौ कंदर्पे सति। **सुरतेति।** सुरते मैथुने यानि दूतीवचनानि तेषु कर्णे श्रोत्रे क्रियमाणेषु श्रूयमाणेषु सत्सु सरागेषु। अत्र राग आरुण्य इच्छा च। अत एवावतससाम्य प्रदर्शयन्नाह—**अवेति।** अवतसपल्लवेष्विव। **मानिनीति।** मानिनीना शोकविधुरेषु शुक्पीडितेषु हृदयेषु मन सु मानादेव प्रज्वलत्सु दह्यमानेषु सत्सु। अतएवाह—**सूर्येति।** सूर्यकान्ता ये मणयस्तेभ्य इव सक्रान्त. प्रतिबिम्बितोऽनलो वह्निर्येषु। उपसहरन्नाह—एवविधे प्रदोषसमये यामिनीमुखसमये प्रवृत्ते सति चन्द्रापीड। **प्रज्वलितेति।** प्रज्वलितमुद्दीपित यद्दीपिकाचक्रवाल तदेव परिवार परिच्छदो यस्यैवंभूत। चरणाभ्यामेव राजकुल गत्वा पितु समीपे मुहूर्त स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवन शयनतल शयनीयतलमधिशिश्ये शयन चक्रे। शयनतलमित्यत्र 'अधिशीङ्स्थासाम्'—इत्यधिकरणे द्वितीया। शयनतल विशेषयन्नाह—**अनेकेति।** अनेकेषा रत्नानां मणीना या प्रभा तया शबलं कर्बुरम्। कृष्णत्वसाम्यादुपमानान्तरमाह—**उरगेति।** उरगराज. शेषनागस्तस्य यत्फणामण्डल तत्र हृषीकेश इव।

प्रभातायामिति। प्रभातायां विभातायां निशीथिन्यां रजन्यां च समुत्थायोत्थाम कृत्वा पित्रा जनकेन समभ्यनुज्ञात प्रदत्तानुज्ञोऽभिनवा प्रत्यग्रा या मृगयाखेटकं तस्य यत्कौतुक माश्चर्यं तेनाकृष्यमाण हृदय यस्य स। भगवत्यनुदित उदयमप्राप्त एव सहस्ररश्मौ सूर्ये इन्द्रायुधमश्वमारुह्य बहुगजतुरगपदातिपरिवृतो वन ययावित्यन्वय। कीदृशो राजकुमार। **द्विगुणेति।** द्विगुणीक्रियमाणो मनोत्साहो यस्य स। कै। श्वपोषकै कौलेयकरक्षकैः। तानेव

और जब प्रात काल हो गया तो वह उठ बैठा, और अपने लिये नये शिकार (के खेल का रसास्वादन करने) की उत्सुकता से आकर्षित किये जाते हृदय वाला, अपने पिता द्वारा अनुमति दिया गया, इन्द्रायुध पर सवार होकर सहस्ररश्मि भगवान् सूर्यदेव का उदय होने से भी पूर्व ही, बहुत से हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकों से घिरा हुआ (उनको साथ लिये हुआ) जगल की ओर चल पड़ा, उसके आगे दौड़ते दौड़ते, गधों-जैसे लम्बे चौड़े शिकारी कुत्तों को सोने की शृङ्खलाओं द्वारा घसीटते हुए कुत्ते पालने वालों ने उसका उत्साह दुगुना कर दिया था, इन श्वपोषकों ने बूढ़े चीते की खाल-सरीखे रग-बिरगे वस्त्र तथा पोशाकें पहनी हुईं थीं, विविध रगों की रेशमी कपड़ों की पट्टियाँ उन्होंने मस्तकों पर लपेट रखी थीं,

वर्णपट्टचीरिकोद्बद्धमौलिभिरुपचितश्मश्रुगहनमुखैरेककर्णावसक्तहेमतालीपुटैराबद्धनिबिडकक्षैरनवरतश्रमोपचितोरुपिण्डिकैः कोदण्डपाणिभिः श्वपोषकैरनवरतकृतकोलाहलैः प्रधावद्भिर्द्विगुणीक्रियमाणमनोत्साहो बहुगजतुरगपदातिपरिवृतो वनं ययौ। तत्र चाकर्णान्ताकृष्टमुक्तैर्विकचकुवलयपलाशकान्तिभिर्भल्लैर्मदकलकलभकुम्भभित्तिभिदुरैश्च नाराचैश्चापटङ्कारभयचकितवनदेवताधाक्षवीक्षितो वनवराहान्केसरिणः शरभाश्चामराननेककुरङ्गकांश्च सहस्रशो जघान। अन्यांश्च जीवत एव महाप्राणतया स्फुरतो

विशिनष्टि—अग्रत इति। अग्रतः पुरतो बालेयो रासभस्तत्प्रमाणाश्चामीकरशृङ्खलाभिः सुवर्णशृङ्खलाभिः कौलेयकान्शुन आकर्षयद्भिराकर्षणं कुर्वद्भिः। जरदिति। जरज्जरीयान्यो व्याघ्रो द्वीपी तस्य चर्म त्वक्तद्वत्तदिव शबलं कर्बुरं यद्वसनं वस्त्रं तस्य यः कञ्चुकोऽङ्गिका तद्धारिभिः। अनेकेति। अनेकवर्णा या पट्टचीरिका तयोद्बद्धा संयता मौलयः केशा यैः। उपेति। उपचितानि वर्धितानि यानि श्मश्रूण्यास्यलोमानि तैर्गहनानि सकीर्णानि मुखानि येषां ते। एकेति। एकस्मिन्कर्णेऽवसक्तः क्षिप्तः हेमतालीपुटः यैः। आबद्धेति। आबद्धा नद्धा निबिडा दृढा कक्षा मध्यप्रदेशो यैः। अनवरतेति। अनवरतं यः श्रमस्तेनोपचिते पुष्टे ऊरुपिण्डिके जङ्घापिचिण्डिके येषां ते। पिण्डिका च गुल्फोपरि जानोरधः प्रदेशः। कोदण्डो धनुः पाणौ येषां ते। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं कृतः कोलाहलो यैः। प्रधावद्भिः शीघ्रं गच्छद्भिः। तत्रेति। तत्र तस्मिन्वने सहस्रशोऽनेकशो वनवराहानरण्यक्रोडान्, केसरिणः सिंहान्, शरभानष्टापदान्, चामराश्चमरीः, अनेककुरङ्गकानसल्यमृगांश्च जघान हतवानित्यन्वयः। कैः। नाराचैर्लोहनिर्मितैर्बाणैः। 'सर्वलोहो नाराचः एषणश्च सः' इति कोशः। अथ नाराचान्विशेषयन्नाह—कर्णान्तेति। आकर्णान्तमाश्रवणप्रान्तमाकृष्टा आकर्षिता पश्चान्मुक्ताः क्षिप्तास्तैः। मदेति। मदेन कला मनोहरा। अनेन कलभस्य त्रिंशदब्दकत्वान्मदावस्था सूचिता। अतएव कलभशब्दप्रयोगः। एवंविधा ये कलभा हस्तिशावकास्तेषां कुम्भाः शिरसः पिण्डास्त एव भित्तयः कुड्यानि तासां भिदुरैर्भेदकैः। पुनः कैः। भल्लैः कुन्तैः। तानेव

उनके चेहरे बढ़ी हुई मूँछों से भरे हुए थे, उन्होंने (केवल) एक कान पर सोने का तालीपुट आभूषण बाँधा हुआ (कान से लटका रखा) था, निरन्तर किये गये व्यायाम (अथवा शारीरिक श्रम) से उनकी जाँघें तथा पिंडलियाँ स्थूल हो गयी थीं, उन्होंने अपने कटिभाग कस कर बाँधे हुए थे, हाथों में उन्होंने धनुष ले रखे थे और इस प्रकार दौड़ते दौड़ते निरन्तर शोर मचा रहे थे। और वहाँ उसने, (अपने) कान तक खींच कर छोड़े गये, पूरे खिले हुए नीलकमल की पखुड़ियों की चमक सरीखी चमक वाले भल्ल नामक बाणों से और मदमत्त गज शिशुओं के दीवार-सरीखे मस्तकों को बींध सकने वाले 'नाराच' नामक बाणों से, उसके धनुष की टंकार सुनकर भय से चौंकी हुई वनदेवताओं द्वारा आधी आँख (आधी खोली हुई आँख) से देखे गये वे हजारों जंगली सूअर, शेर, शरभ, चमर हिरण तथा बहुत-से दूसरे प्रकार के हरिण मारे। और स्वयं महान् शक्तिशाली होने के कारण उसने (बहुत से) दूसरे पकड़ने के समय संघर्ष करते पशुओं को जीते हुओं को ही पकड़ लिया। और जब सूर्य

जग्राह। समारूढे च मध्यमहः सवितरि वनात्स्नानोत्थितेनेव श्रमसलिलबिन्दुवर्षमनवरतमुज्झता मुहुर्मुहुर्दशनविघट्टनैः खणखणायितखरखलीनेन श्रमशिथिलमुखविगलितफेनिलरुधिरलवेन पर्याणपट्टकानुसरणोत्थितफेनराजिना कर्णावतसीकृतमुत्फुल्लकुसुमशबलमलिपटलझङ्काररवमुखरं वनगमनचिह्नं पल्लवस्तबकमुद्वहतेन्द्रायुधेनोह्यमानः, समुद्गतस्वेदतयान्तरार्द्रीकृतमण्डलेन मृगरुधिरलवशतशबलेन वारबाणेन

विशिनष्टि—विकचेति। विकचानि विकस्वराणि यानि कुवलयान्युत्पलानि तेषां पलाशानि पत्राणि तद्वत्कान्तिर्दीप्तिर्येषां ते। उत्तेजितानां भल्लानामपि तदुपमानम्। चापेति। चापस्य धनुषो यष्टङ्कारष्टङ्काररवोऽनुकरणशब्दस्तस्मादुद्भय तेन चकिता त्रस्ता या वनदेवता वनाधिष्ठात्र्यस्ताभिरर्धाक्षेण वीक्षित। अन्याश्चेति। अन्यानेतद्भिन्नाञ्जीवत एव प्राणान्दधत एव स्फुरतो दीप्यमानान्महाप्राणतया महासाहसतया जग्राह गृहीतवान्। समेति। अह्नो दिवसस्य मध्य समारूढे प्राप्ते सवितरि सूर्ये सति वनादरण्यात्कुमार स्वभवन स्वगृहमाजगामाथयावित्यन्वय। अथ कुमार विशिनष्टि—इन्द्रेति। इन्द्रायुधेनाश्वेनोह्यमान वह्यमानम्। अथ तुरगम विशेषयन्नाह—स्नानेति। अनवरत श्रमसलिलाना स्वेदोत्थजलाना ये बिन्दव पृषतास्तेषा वर्षं वृष्टिमुज्झता त्यजता। अतएवाह—स्नानोत्थितेनेवाप्लवानन्तरमेव कृताभ्युत्थानेनेव। मुहुरिति। मुहुर्मुहुर्वारंवार दशनविघट्टनैर्दन्तघर्षणैः खणखणायित खणखणेत्याचरित खर कठिनं खलीन मुखयन्त्रणं येन। श्रमेति। श्रमेण खेदेन शिथिल श्लथ यन्मुख तस्माद्विगलिताः स्रस्ता फेनिलयुक्ता कफसहिता रुधिरलवा यस्य स तेन। पर्याणेति। पर्याण पल्ययनं तस्य पट्टक काष्ठपीठं तद्यावदनुसरण यस्या एवंविधोत्थिता फेनराजि कफश्रेणिर्यस्य स तेन। कर्णेति। कर्णेऽवतसीकृत श्रवणाभरण कृतम्। उत्फुल्लानि विकचानि यानि कुसुमानि तै शबल मिश्रितम्। अलिपटलानि भ्रमरसमूहास्तेषा झङ्काररवो झङ्कृतिशब्दस्तेन मुखर वाचालं वनेऽरण्ये यद्गमन तस्य चिह्न लक्ष्मैवंविध पल्लवस्तबक किसलयगुच्छकमुद्वहता धारयता। पुन. कीदृश। समुद्गत प्रादुर्भूत. स्वेदस्तस्य भावस्तत्ता तयान्तरार्द्रीकृत मण्डलं यस्य स तेन। मृगेति। मृगाणां हरिणाना रुधिरलवा रक्ताशास्तेषां शत तेन शबलेन कर्बुरेणैवभूतेन वारबाणेन कञ्चुकेन द्विगुणतरमुपजाता कान्तिर्यस्य स। सरवतो वारबाणेन महती दीप्तिर्मेव-

---

भगवान् दिन के मध्य में पहुँच गये तब वह जगल से अपने भवन में लौट आया। वह उस समय लगातार पसीने की बिन्दुओं की फुहार छोड़ते, मानो (अभी) स्नान करके निकले, बार बार दाँतों के परस्पर टकराने से अपनी कठोर लगाम को खनखनाते, थकावट के कारण ढीले हुए मुख से फेनमिश्रित रक्त की बूँदें टपकाते, काठी के कपड़े (की झालर) के साथ साथ पहुँची हुई फेन की रेखा वाले, और अपनी वन-यात्रा की स्मृति के चिह्न-रूप, कानों के आभूषण-भूत, खिले हुए फूलों से मिश्रित (फूलों से रग-बिरगे), तथा भौंरों की हुकार से गूँजते, कोंपलों के गुच्छे को धारण किये हुए, इन्द्रायुध पर सवार था। पसीना आ जाने के कारण गीले हुए भीतरी मंडलाकार भाग वाले, ऊपर जमे पशुओं के रक्त की सैकड़ों बूँदों से

द्विगुणतरमुपजातकान्तिः, अनेकरूपानुसरणसंभ्रमपरिभ्रष्टच्छत्रधरतया छत्रीकृतेन नवपल्लवेन निवार्यमाणातपः, विविधवनलताकुसुमरेणुधूसरो वसन्त इव विग्रहवान्, अश्वखुररजोमलिनललाटाभिव्यक्तावदातस्वेदलेखः दूरविच्छिन्नेन पदातिपरिजनेन शून्यीकृतपुरोभागः, प्रजवितुरङ्गमाधिरूढैरल्पावशिष्टैः सह राजपुत्रैः 'एवं मृगपतिः, एव वराहः, एव महिषः, एव शरभः, एवं हरिणः' इति तमेव मृगयावृत्तान्तमुच्चारयन्स्वभवनमाजगाम। उत्तीर्य च तुरङ्गमात्ससम्भ्रमप्रधावितपरिजनोपनीत उपविश्यासने वारबाणमवतार्य, अपनीय चाशेष तुरङ्गाधिरोहणोचित वेषपरिग्रहमितस्ततः प्रचलिततालवृन्तपवनापनीयमानश्रमो मुहूर्तं विशश्राम। विश्रम्य च मणिरजत-

---

त्येवेति विश्वविदितम्। अनेकेति। अनेके ये रूपा पशवस्तेषामनुसरण गवेषण तत्र य सभ्रमश्चेतसो वैक्लव्य तेन परिभ्रष्टा दूरीभूता ये छत्रधरास्तेषा भावस्तत्ता तया। 'रूपं तु श्लोकशब्दयो पशौ' इत्यनेकार्थे। छत्रीकृतेनातपवारणीकृतेन नवपल्लवेन प्रत्यग्रकिसलयेन निवार्यमाणो दूरीक्रियमाण आतपो यस्य स। विविधेति। विविधा अनेकप्रकारा या वनलता अरण्यव्रतत्यस्तासा कुसुमरेणु पुष्परागस्तेन धूसर ईषत्पाण्डु। क इव। विग्रहवान्सशरीरो वसन्त इव इष्य इव। अश्वखुरस्य यद्रजस्तेन मलिन कश्मल यल्ललाट तत्राभिव्यक्ता प्रकटावदाता निर्मला स्वेदलेखा यस्य स। दूरविच्छिन्नेन दूरान्तरितेन पदातिपरिजनेन पत्तिपरिच्छदेन शून्य कृतो विहित पुरोभागोऽग्रभागो यस्य स। प्रजविनो जवयुक्ता ये तुरङ्गमा अश्वास्तेष्वधिरूढैरारूढैरल्पावशिष्टै स्तोकै राजपुत्रैर्नृपसुतै. सह। इति तमेव मृगयावृत्तान्तमाखेटकोदन्तमुच्चारयन्नन्योन्य ब्रुवन्। इतिशब्दार्थमाह—एवमिति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण मृगपति सिंह, एव वराहो वनक्रोड, एव महिषो रक्ताक्ष, एव शरभोऽष्टापद, एव हरिणो मृग।

रंग-बिरंगे बने कवच ने उसकी शोभा को दुगुना कर दिया था। अनेक पशुओं[1] के अनुसरण करने की गड़बड़ में (उसका) छत्रधर उससे दूर हो जाने के कारण, ताजे पल्लवों द्वारा उसकी धूप रोकी जा रही थी। विविध प्रकार की जंगली लताओं के पुष्पों के पराग से धूसरित हुआ वह उस समय शरीरधारी वसन्त-सरीखा प्रतीत हो रहा था। उसके घोड़े के खुरों से उठी धूल से मलिन मस्तक पर पसीने की रेखा स्पष्टतया दिखायी दे रही थी। (प्राय) पैदल चलने वाले दूर (पीछे) रह गये सेवकों ने अब उसका अग्रभाग शून्य कर दिया था—वे अब उसके आगे-आगे नहीं भाग रहे थे। और तेज घोड़ों पर चढ़े हुए थोड़े-से शेष राजपुत्रों के साथ "ऐसे वह शेर (मारा गया), ऐसे वह सूअर, ऐसे वह भैंसा, ऐसे वह शरभ, ऐसे हरिण"—इत्यादि उन्हीं शिकार की घटनाओं का वर्णन करता हुआ वह अपने भवन मे आ गया।

और घोड़े से उतर कर शीघ्रता से दौड़े हुए सेवकों द्वारा लाये गये आसन पर बैठकर, अपना कवच उतार कर और घोड़े पर चढने के लिये उचित जो पोशाक उसने पहन रखी थी उस सारी पोशाक को उतार कर उसने थोड़ी देर तक विश्राम किया, इस समय (उसके

---

1. रूपा पशवः।

कनककलशशतसनाथामन्तर्विन्यस्तकाञ्चनपीठा स्नानभूमिमगात्। निर्वर्तिताभिषेकव्यापारस्य च विविक्तवसनपरिमृष्टवपुषः स्वच्छदुकूलपल्लवाकलितमौलेर्गृहीतवाससः कृतदेवार्चनस्याङ्गरागभूमौ समुपविष्टस्य राज्ञा विसर्जिता महाप्रतीहाराधिष्ठिता राजकुलपरिचारिकाः कुलवर्धनासनाथाश्च विलासवतीदास्यः सर्वान्तःपुरप्रेषिताश्चान्तःपुरपरिचारिकाः पटलकविनिहितानि विविधान्याभरणानि माल्यान्यङ्गरागान्वासांसि चादाय पुरतस्तस्योपतस्थुरुपनिन्युश्च। यथाक्रममादाय च ताभ्यः प्रथमं स्वयमुपलिप्य

व्यापादित इति शेष । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । स्वभवनगमनानन्तर च तुरङ्गमादश्वादुत्तीर्यावरोह कृत्वा ससम्भ्रम सवेग प्रधावितो य परिजन परिच्छदस्तेनोपनीत आनीत आसने विष्टर उपविश्योपवेशन कृत्वा वारबाण कञ्चुकमवतार्य तस्यावतरण कृत्वा तुरङ्गाधिरोहणोचितमशेष समग्र वेषपरिग्रहणमपनीय दूरीकृत्य। इतस्तत प्रचलित यत्तालवृन्त व्यजन तस्य य पवनो वायुस्तेनापनीयमानो दूरीक्रियमाण श्रम क्लमो यस्य स तथा मुहूर्त घटिकाद्वय विश्राम विश्राम गृहीतवान्। विश्रम्य चेति। विश्राम गृहीत्वा । मणीति। मणयश्चन्द्रकान्ताद्या, रजत रौप्यम्, कनक सुवर्णम्, एतेषा यत्कलशशत कुम्भशत तेन सनाथा सहिताम्। अन्तर्मध्ये विन्यस्त स्थापित काञ्चनपीठ स्वर्णपीठ यस्यामेवभूता स्नानभूमिमगाज्जगाम। निर्वर्तितेति। निर्वर्तितो निष्पादितोऽभिषेकव्यापारो यस्य स तस्य। विविक्ते विजने वसन वस्त्र तेन परिमृष्ट शुष्कीकृत वपुर्येन स तस्य। स्वच्छेति। स्वच्छो निर्मलो यो दुकूलपल्लवस्तेनाकलितो वेष्टितो मौलि शिरो यस्य स तस्य। गृहीत स्वीकृत वासो वस्त्र येन स तथा तस्य। कृत देवार्चन देवपूजा येन स तस्य। अङ्गरागभूमौ विलेपनभूमौ समुपविष्टस्य राज्ञा तारापीडेन विसर्जिता विसृष्टा महाप्रतीहारेण महाद्वारपालकेनाधिष्ठिता आश्रिता राजकुलपरिचारिका नृपकुलसेवाकारिण्य कुलवर्धना प्रगल्भा दासी तया सनाथा सहिता विलासवती कुमारजननी तस्या दास्य कुटहारिकाः (?)। सर्वान्तःपुरप्रेषिता इति। सर्व यदन्त पुर तेन प्रेषिता अन्त पुरपरिचारिकाश्चावरोधसेवाविधायिन्य. पट-

---

सेवकों द्वारा) इधर उधर चारों ओर डुलाये गये पंखों की वायु से उसकी थकावट दूर हो रही थी। और विश्राम करने के पश्चात् वह स्नान गृह में गया—वहाँ मणियों के, चांदी के तथा सोने के सैकड़ों कलश रखे हुए थे और उसके भीतर (मध्य में) सोने की एक चौकी रखी थी। और जब उसने स्नान की क्रिया समाप्त करली, स्वच्छ कपड़े से अपना शरीर पोंछकर सुखा लिया, स्वच्छ रेशमी वस्त्र अपने मस्तक पर लपेट लिया, कपड़े पहन लिये, देव-पूजा कर ली और प्रसाधन-कक्ष में प्रविष्ट हो गया तो मुख्य द्वारपाल के नायकत्व में महल से राजा द्वारा भेजी गयीं राजभवन की सेविकाएँ, कुलवर्धना सहित विलासवती की दासियाँ और उसकी सभी विमाताओं द्वारा प्रेषित अन्तःपुर की दासियाँ सभी अपने साथ पेटियों मे रखे हुए नाना प्रकार के आभूषणों, मालाओं, अनुलेपनों तथा वस्त्रों को लेकर उसके सामने आयीं तथा वे उसको समर्पित कर दीं। उसने उचित क्रम से उन परिचारिकाओं से वे वस्तुएँ लीं, और पहले स्वय वैशम्पायन का अनुलेपन कर, उसने अपना प्रसाधन किया। और अपने

वैशम्पायनमुपरचिताङ्गरागो दत्त्वा च समीपवर्तिभ्यो यथार्हमाभरणवसनाङ्गराग-कुसुमानि विविधमणिभाजनसहस्रसारं शारदमम्बरतलमिव स्फुरिततारागणमा हारमण्डपमगच्छत्। तत्र च द्विगुणितकुथासनोपविष्टः समीपोपविष्टेन तद्गुणो पवर्णनपरेण वैशम्पायनेन यथार्हं भूमिभागोपवेशितेन राजपुत्रलोकेन 'इदमस्मै-दीयताम्, इदमस्मै दीयताम्' इति प्रसादविशेषदर्शनसवर्धितसेवारसेन च सहा-हारविधिमकरोत्। उपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मिन्मुहूर्तमिव स्थित्वेन्द्रायुधसमीप-मगमत्। तत्र चानुपविष्ट एव तद्गुणोपवर्णनप्रायालापाः कथाः कृत्वा सत्यप्याज्ञा-

---

लक वर्ङ्गेरिका तस्या विनिहितानि स्थापितानि विविधानि विचित्राण्याभरणानि भूषणानि, माल्यानि पुष्पदामानि, अङ्गरागान्विलेपनानि, वासासि वस्त्राण्यादाय गृहीत्वा तस्य चन्द्रा-पीडस्य पुरतोऽग्रत उपतस्थु स्थिता बभूवु । उपनिन्युश्च । आनीत वस्तूपढौकयामासुरित्यर्थ । यथेति । यथाक्रममनुक्रमेण ताभ्योऽन्त पुरपरिचारिकाभ्यस्तद्वस्त्वादाय गृहीत्वा प्रथममादौ वैशम्पायनमुपलिप्य पश्चात्स्वयमुपरचित कृतोऽङ्गरागो येनैवभूत आहारमण्डप भोजनमण्डप मगच्छदित्यन्वय । किं कृत्वा । यथार्हं यथायोग्यमाभरणवसनाङ्गरागकुसुमानि समीपवर्तिभ्य पार्श्वस्थायिभ्यो दत्त्वा वितीर्य । भोजनमण्डप विशेषयन्नाह—विविधेति । विविधानि विचि-त्राणि यानि मणिभाजनानि रत्नपात्राणि तेषा सहस्र तेन सार प्रधानम् । भाजनाना वर्तुलत्वा-दिसाम्यादुपमानान्तरमाह—शारदेति । स्फुरिततारागण शारदमम्बरतलमिव । तत्र चेति । तत्र तस्मिन्मण्डप आहारविधिं भोजनविधिमकरोदित्यन्वय । द्विगुणित परावर्तित यत्कुथासन तत्रोपविष्ट । समीपेति । समीप पार्श्व तत्रोपविष्टेन स्थितेन । तदिति । तस्य तारापीडस्य ये गुणा शौर्यादयस्तेषामुपवर्णनं श्लाघन तत्र परेणासक्तेन वैशम्पायनेन यथार्हं यथायोग्यम् । भूमिभागेति । यस्य योचिता योग्या भूस्तस्यानुपवेशितेन स्थापितेन । राजपुत्रलोकस्य विशेष-णम् । राजपुत्रलोकेन 'अस्मा इद दीयताम्, अस्मा इदं दीयताम्' इति पूर्वोक्तप्रकारेण प्रसाद प्रसन्नता तस्य विशेष आधिक्य तस्य दर्शनं प्रकटीकरण तेन सवर्धितो वृद्धिं प्रापित सेवारस

समीपवर्ती (सेवकों) को जिसको जितना देना उचित था उतने अलकार, वस्त्र, अनुलेपन तथा फूल देकर वह विविध प्रकार की मणियों के सहस्रों पात्रों से शोभित और चमकते अनेक तारों वाले शरदृतु के आकाश सरीखे भोजन-मण्डप मे चला गया। और वहाँ उसने दुहरे किये गलीचे के आसन पर बैठकर समीप बैठे हुए तथा उसके गुणों का वर्णन करने में व्यस्त वैशम्पायन के साथ और औचित्य के अनुसार विभिन्न स्थानों पर बैठे हुए उन राजकुमारों के साथ बैठकर कि जिनकी सेवारुचि "यह इसको दो, वह उसको दो"—यह कह कर कृपा-विशेष दिखलाने से बढ़ गई थी, उसने भोजन क्रिया की। फिर उसने जल से कुल्ला किया (आचमन किया), पान लिया, कुछ देर वहाँ ठहरा (विश्राम किया) और फिर इन्द्रायुध के समीप चला गया। और बिना बैठे ही (खड़े ही खड़े) उसके गुणों के वर्णन से युक्त बातें करके, उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा के उत्सुक सेवकों के पार्श्व मे होते हुए भी, उसके गुणों से

प्रतीक्षणोन्मुखे पार्श्वपरिवर्तिनि परिजने तद्गुणहृतहृदयः स्वयमेवेन्द्रायुधस्य पुरो यवसमाकीर्य निर्गत्य राजकुलमयासीत्। तेनैव च क्रमेणावलोक्य राजानमागत्य निशामनैषीत्।

अपरेद्युश्च प्रभातसमय एव सर्वान्तःपुराधिकृतम्, अवनिपतेः परमसमतम्, अनुमार्गागतया च, प्रथमे वयसि वर्तमानया, राजकुलसंवासप्रगल्भयाप्यनुज्झित-विनयया, किंचिदुपारूढयौवनया, शक्रगोपकालोहितरागेणांशुकेन रचितावगुण्ठनया

सपर्यास्वादो यस्य स तेन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। भोजनानन्तरमुपस्पृश्याचमनं कृत्वा गृहीत ताम्बूल नागवल्लीदल येन स। तस्मिन्मण्डपे मुहूर्तमिव नाडिकाद्वयमिव स्थित्वेन्द्रायुधसमीप-मगमद्ययौ। तत्र चेति। तत्र तस्मिन्स्थलेऽनुपविष्ट एवोर्ध्वस्थित एव तस्येन्द्रायुधस्य ये गुणा मुखमण्डले निर्मांसत्वादतस्तेषामुपवर्णनं प्रायो बाहुल्य येषु एवंविधा आलापा. सलापा यास्त्वेवं भूता कथा. किंवदन्ती कृत्वा विधायाज्ञाया निदेशस्य प्रतीक्षण समयावेक्षण तत्रोन्मुखे सावधाने पार्श्वपरिवर्तिनि समीपस्थायिनि परिजने सत्यपि तस्य ये गुणा शालिहोत्रप्रसिद्धास्तैर्हृतमाकर्षित हृदय चेतो यस्यैवंभूत स्वयमेवात्मनैव। अत्रैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदकृत्। इन्द्रायुधस्याश्वस्य पुरोऽग्रे यवस तृणमाकीर्य प्रकीर्य प्रक्षिप्य तदनन्तरं निर्गत्य राजकुलमयासीद्व्राजीत्। तेनैव क्रमेण पूर्वोक्तपरिपाट्या राजान तारापीडमवलोक्य निरीक्ष्य पुनरागत्यैत्य। स्वगृहमिति शेष। निशा रात्रिमनैषीत्परिकलितवान्।

अपरेद्युरिति। अपरस्मिन्दिने प्रभातसमय एव कन्ययानुगम्यमानं कैलासनामान कञ्चुकिनमायान्तमागच्छन्तमपश्यदित्यन्वय। कञ्चुकिन विशिनष्टि—सर्वेति। सर्वं समग्र यदन्त पुर तत्राधिकृत नियुक्तम्। स्वस्वामिनेति शेष.। अवनिपते राज्ञ परमसमत पर विश्वस्तम्। अथ च सहागतकन्यां विशेषयन्नाह—अन्विति। अनुलक्षीकृत्य मार्गमागता प्राप्ता तया। प्रथमवय कौमारवयस्तस्मिन्वर्तमानया स्थितया। राजेति। राजकुले नृपकुले य संवासो वसन तत्र प्रगल्भया प्रतिभान्वितयाप्यनुज्झितोऽपरित्यक्तो विनयो मर्यादा यया सा तया। प्रगल्भस्याभिमानातिरेकेण विनयाभाव स्यात्। अत्र तु तत्सद्भावेऽपि तदाधिक्यमित्याश्चर्य-

---

आकृष्ट हृदय वाले उस चन्द्रापीड ने स्वय ही इन्द्रायुध के सम्मुख चारा फैलाया और वहाँ से निकल कर वह राजभवन में चला गया। और (दिनचर्या के) उसी क्रम से राजा के दर्शन कर लौट आया तथा वहाँ रात बितायी।

और अगले दिन, प्रात.काल ही उसने (अपनी ओर) आते हुए कैलास नाम वाले, सारे अन्त पुर के मुखिया, तथा राजा के परम कृपापात्र, एक भली आकृति वाली कन्या द्वारा अनुगम्यमान कञ्चुकी को देखा। वह कन्या उसके ठीक पीछे पीछे उसी मार्ग से आ रही थी, और प्रथम युवावस्था में थी। राजभवन में निवास करने के कारण यद्यपि वह धृष्ट हो गयी थी तो भी उसने नम्रता नहीं छोड़ी थी। उसने 'इन्द्रगोप' (वीरबहूटी) नाम के कीड़े-सरीखे लाल रग के रेशमी कपड़े का पर्दा डाल रखा था और (इस प्रकार) वह प्रातःकालीन धूप से

सबालातपयेव पूर्वया ककुभा प्रत्यग्रदलितमनःशिलावर्णेनाङ्गलावण्यप्रभाप्रवाहेणामृतरसनदीपूरेणेव भवनमापूरयन्त्या, ज्योत्स्नयेव राहुग्रहग्रासभयादपहाय रजनिकरमण्डलं गामवतीर्णया, राजकुलगृहदेवतयेव मूर्तिमत्या, क्वणितमणिनूपुराकुलचरणयुगलया कूजत्कलहंसाकुलितकमलयेव कमलिन्या, महार्हहेममेखलाकलापकलितजघनस्थलया, नातिनिर्भरोद्भिन्नपयोधरया, मन्दं मन्दं भुजलताविक्षेपप्रेङ्खितनखमयूखच्छलेन धाराभिरिव लावण्यरसमनवरतं क्षरन्त्या, दिङ्मुखविसर्पिणि

मिति भाव । किंचिदिति । किंचिदीषदुपारूढमाश्रितं यौवनं तारुण्यं यया सा तया । शक्रेति । शक्रगोप एव शक्रगोपकः । स्वार्थे कः । आरक्तः प्रावृट्कीटस्तद्वदालोहितो रक्तो रागो यस्मिन्नेतादृशेनांशुकेन वस्त्रेण रचितं विहितमवगुण्ठनं शिरोवेष्टनं यया सा तया । अंशुकस्यातिरक्तत्वादुपमानं प्रदर्शयन्नाह—सबालेति । सह बालातपेन वर्तमानया पूर्वया प्राच्या ककुभा दिशा इव । प्रत्यग्रदलिता तत्कालमर्दिता या मनःशिला मनोगुप्ता तद्वद्वर्णो यस्यैवंभूतेनाङ्गस्य देहस्य लावण्यं सौन्दर्यं तस्य प्रभा कान्तिस्तस्या प्रवाहो रयस्तेन भवनं गृहमापूरयन्त्या परिपूर्णं कुर्वत्या । केनेव । अमृतरसस्य या नदी तस्याः पूरेणेव । राहुः सैंहिकेयः स चासौ ग्रहस्तेन ग्रासो भक्षणं तस्माद्भयं तस्माद्रजनिकरमण्डलं चन्द्रबिम्बमपहाय त्यक्त्वा गां पृथ्वीमवतीर्णयागतया ज्योत्स्नयेक कौमुद्येव । मूर्तिमत्या शरीरधारिण्या राजकुलदेवतयेव नृपकुलाधिष्ठात्र्येव । क्वणितं शब्दितं यन्मणिनूपुरं रत्नपादकटकं तेनाकुलं व्याप्तं चरणयुगलं पादद्वितयं यस्याः सा तया । नूपुरस्य श्वेतत्वाच्चरणयोश्चारक्तत्वादुत्प्रेक्षामाह—कूजदिति । कूजन्यः कलहंसः कादम्बस्तेनाकुलितं कमलं यस्याः एवंविधया कमलिन्येव । महार्हो महार्घो यो हेममेखलाकलापः सुवर्णरशनाकलापस्तेन कलितं जघनस्थलं कट्याः अग्रप्रदेशो यस्याः सा तया । नातीति । नातिनिर्भरं नातिबाहुल्येनोद्भिन्नौ प्रकाशं प्राप्तौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः सा तया । मन्दमिति । मन्दं मन्दं नातिप्रयत्नेन यो भुजलताया बाहुवल्ल्या

ढकी पूर्वदिशा-सरीखी दिखायी दे रही थी। ताजी पीसी हुई हरताल के रंग के अपने अंगों के सौन्दर्य की कांति की धारा से वह भवन को ऐसे आप्लावित कर रही थी मानो कि द्रव अमृत की नदी के बाढ़ से ही उसको भर रही हो। मानो कि वह ऐसी चाँदनी थी जो राहु ग्रह का ग्रास होने के डर से चन्द्रबिम्ब को छोड़ कर पृथ्वी पर उतर आयी हो। वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो शरीरधारिणी राजमहल की गृहरक्षिका देवी ही हो। झणझणाते मणिनिर्मित नूपुरों से कसकर लिपटे दोनों पैरों वाली वह ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो कुड़कुड़ाते कलहंसों से घिरे कमलोंवाली कोई कमलिनी हो। उसका कटि-प्रदेश अत्यन्त महँगी सोने की मेखला से घिरा हुआ था। उसकी छातियाँ उभर आयी थीं परन्तु बहुत अधिक नहीं उभरी थीं। अब अपनी लम्बी व पतली भुजाओं (भुजलताओं) के धीरे-धीरे इधर-उधर हिलाने के कारण काँपे हुए नखों की किरणों के बहाने वह मानो अपने तरल सौन्दर्य को (इतनी) धाराओं मे लगातार उँडेल रही थी। उसका शरीर दिशाओं मे फैले हुए उसके हारों की

हारलताना रश्मिजाले निमग्नशरीरतया क्षीरसागरोन्मग्नवदनयेव लक्ष्म्या, बहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारिताधरलेखयासमसुवृत्ततुङ्गनासिकया, विकसितपुण्डरीकलोचनया मणिकुण्डलमकरपत्रभङ्गकोटिकिरणातपाहतकपोलतया सकर्णपल्लवमिव मुखमुद्वहन्त्या, पर्युषितधूसरचन्दनरसतिलकालकृतललाटपट्टया मुक्ताफलप्रायालकारया राधेयराज्यलक्ष्म्येवोपपादिताङ्गरागया, नववनलेखयेव कोमलतनुलतया, त्रय्येव सुप्रतिष्ठितचरणया,

---

विक्षेप इतस्ततश्चालन तेन प्रेङ्खिता धूता ये नखमयूखा नखरदीप्तयस्तेषा छलेन मिषेणानवरत निरन्तर लावण्यरस तारुण्यरस धाराभि क्षरन्त्येव । दिगिति । दिङ्मुखविसर्पिण्यो दिङ्मुखप्रसरशीला या हारलतास्तासा रश्मिजाले कान्तिसमूहे निमग्न ब्रुडित यच्छरीर तस्य भावस्तत्ता तया । क्षीरसागरात् दुग्धाम्भोधेरुन्मग्न वदन यस्या एवविधया लक्ष्म्येव । बहलेति । बहलो निबिडो यस्ताम्बूलस्तस्य कृष्णिका श्यामता तयान्धकारितान्धकार इवाचरिताधरलेखा दन्तच्छदरेखा यस्या सा तया । समेति । समाऽविषमा, सुवृत्ता वर्तुला, तुङ्गोच्चा नासिका नासा यस्या सा तया । विकेति । विकसित यत्पुण्डरीक तद्वल्लोचने यस्या सा तया । मणीति । मणिकुण्डलयो रत्नाभूषणयोर्मकरपत्रभङ्ग कोटीरपत्रेषु मकराकृतिस्तस्या किरणानामातप प्रकाशस्तत्याहत प्रतिबिम्बित ययोरेवंविधकपोलौ तस्य भावस्तत्ता तया । सह कर्णपल्लवेन श्रोत्रावतसेन वर्तमान मुखमिवोद्वहन्त्या धारयन्त्या । पर्युषीति । पर्युषितो गतदिनोद्भवोऽतएव धूसरो यश्चन्दनरसस्तस्य तिलकेनालङ्कृत भूषित ललाटपट्टं यस्या सा तया । मुक्तेति । मुक्ताफलानि प्रायो बाहुल्येन सन्ति यस्मिन्नेवविधा अलकारा यस्याः सा तया । राधेयेति । राधेय कर्णस्तस्य या राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्रीस्तयेव । उभय विशिनष्टि—उपेति । उपपादितोऽङ्गरागो यया ।

किरणों के जाल में लिपटा हुआ होने के कारण वह ऐसी दिखायी दे रही थी कि मानो दुग्ध-सागर से अभी-अभी निकाले हुए मुख वाली लक्ष्मी हो। उसका पतला निचला होठ (अधर लेखा) बहुत अधिक पान (चबाने) से उत्पन्न कालिमा से काला पड़ गया था। उसकी नाक सम (ऊँची-नीची नहीं), ठीक गोल तथा ऊँची थी, और उसकी आँखें एक विकसित श्वेत कमल-जैसी थीं। उसके कपोलों पर मणिमय कुण्डलों पर खुदी हुई मकराकृत रेखाचित्रों के किनारों से निकली किरणें फैली हुई होने के कारण वह ऐसे चेहरे वाली प्रतीत हो रही थी कि जिसने मानो कर्णाभूषण पहना हुआ हो। उसका विशाल मस्तक ऐसे चन्दन-लेप से बनाये 'तिलक चिह्न' से सुशोभित था जो पिछले दिन बनाया होने के कारण धूसर (भूरे) रग का हो गया था। उसके आभूषण प्राय. मोतियों के बनाये गये थे। उसने (अङ्गरागों) विलेपनों को प्रयुक्त किया था इस प्रकार वह अङ्ग (देश के लोगों में) प्रेम उत्पन्न कर लेने के कारण राधेय—अर्थात्—कर्ण की राज्य-शोभा-सी प्रतीत हो रही थी। वन्य लता-सरीखे कोमल शरीर वाली होने के कारण वह उस ताजे वृक्ष-कुञ्ज जैसी लगती थी कि जिसमें लताएँ कोमल तथा छोटी-छोटी होती हैं। (चलते हुए, पृथ्वी पर) खूब जमा कर पैर रखती थी, इस कारण वह उस वेदत्रयी-सरीखी लगती थी कि जिसके सभी विविध 'चरण' (अर्थात् सम्प्रदाय) सुसंस्थापित

मखशालयेव वेदिमध्यया, मेरुवनलतयेव कनकपत्रालंकृतया महानुभावाकारयानुगम्यमान कन्यया कैलासनामान कञ्चुकिनमायान्तमपश्यत्। स कृतप्रणामः समुपसृत्य क्षितितलनिहितदक्षिणकरो विज्ञापयामास—'कुमार, महादेवी विलासवती समाज्ञापयति—'इयं खलु कन्यका महाराजेन पूर्वं कुलूतराजधानीमवजित्य कुलूतेश्वरदुहिता पत्रलेखाभिधाना बालिका सती बन्दीजनेन सहानीयान्तःपुरपरिचारिकामध्यमुपनीता। सा मया विगतनाथा राजदुहितेति च समुपजातस्नेहया दुहितृनिर्विशेषमियन्तं कालमुपलालिता

पक्षेऽङ्गनाम्नो देशस्य राग प्रीति । नवा प्रत्यग्रा या वनलेखारण्यश्रेणिस्तयेव । उभय विशेषयन्नाह—कोमलेति। कोमला सुकुमारा तनुलता शरीरलता यस्या सा तया। पक्षे कोमलास्तनवो लता व्रतत्यो यस्याम्। त्रयी वेदत्रयी तयेव । सुप्रतीति । सुप्रतिष्ठिता शोभनतया स्थापिताश्चरणा पादा यया सा तया । पक्षे सुप्रतिष्ठिता सर्वत्र प्रसिद्धाश्चरणा शाखा. पदानि यस्या सा तया। मखेति । मखो यज्ञस्तस्य शालयेव । उभयो साम्यमाह—वेदीति । वेदिवन्मध्य यस्या सा तया। तनुमध्येत्यर्थं । पक्षे वेदि परिष्कृता भूमिर्मध्ये यस्या । मेरुर्मन्दरस्तस्य या वनलता तयेव । कनकपत्रै कर्णाभरणैरलकृतया भूषितया । पक्षे कनक नागकेसरश्चम्पको वा तस्य पत्राणि दलानि । 'कनको नागकेसरे । धत्तूरे चम्पके काञ्चनारकिंशुकयोरपि' इत्यनेकार्थ । महाननुभावो माहात्म्य तदनुरूप आकार आकृतिर्यस्या सा तया। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त'। आगमनानन्तर स कञ्चुकी कृत प्रणामो येनैवंभूतो विज्ञापयामास विज्ञप्तिमकरोत्। किं कृत्वा। समुपसृत्य समीपमागत्य क्षितितले निहित स्थापितो दक्षिणकरो येन स. । इय दक्षिणदेशरीति । क्षितौ दक्षिणकर व्यवस्थाप्य विज्ञप्तिं कुर्वन्तीति भाव । हे कुमार, महादेवी विलासवती समाज्ञापयति भवन्त ज्ञापना करोति । इयमिति । खलु निश्चयेन । इय कन्यका महाराजेन त्वपित्रा पूर्वं कुलूतनाम्नीं राजधानीमवजित्य स्वायत्तीकृत्य कुलूतेश्वरस्य हिमवद्द्रोण्या ईश्वरस्य दुहिता पुत्री पत्रलेखेत्यभिधान यस्या सा बालिका सती बन्दीजनेन सहानीयान्त पुरस्य या

हैं। उसकी कटि वेदी के आकार की (अर्थात् पतली) थी, इस कारण वह उस मखशाला के समान थी जिसके मध्य में वेदी बनायी गयी हो। वह कनकपत्रों (सोने के कुण्डलों) से शोभित थी इस कारण सुवर्णपत्रों से अलकृत मेरुपर्वत (पर स्थित) वनलता-सरीखी दिखायी दे रही थी।

उस कचुकी ने प्रणाम करके (चन्द्रापीड के) समीप पहुँचकर पृथ्वी पर अपना दायाँ हाथ रखा और (निम्नलिखित शब्दों में) प्रार्थना की—"कुमार, महादेवी रानी विलासवती ने यह सन्देश भेजा है—कुलूत देश के राजा की कन्या इस पत्रलेखा नाम की कुमारी को, जब यह केवल बालिका ही थी, दूसरे कैदियों के साथ, राजा लाये थे जब कि उन्होंने पहले कुलूत देश की राजधानी को जीता था और इसको अन्त पुर की सेविकाओं के बीच रख दिया था। यह देखकर कि यह अनाथ है और एक राजकुमारी है, इस पर मेरा स्नेह हो जाने के कारण इसको मैंने इतने समय तक अपनी पुत्री के समान ही प्यार किया है और पाला है।

संवर्धिता च । तदियमिदानीमुचिता भवतस्ताम्बूलकरङ्कवाहिनीति कृत्वा मया प्रेषिता । न चास्यामायुष्मता परिजनसामान्यदृष्टिना भवितव्यम् । बालेव लालनीया । स्वचित्तवृत्तिरिव चापलेभ्यो निवारणीया । शिष्येव द्रष्टव्या । सुहृदिव सर्वविश्रम्भेष्वभ्यन्तरीकरणीया । दीर्घकालसंवर्धितस्नेहतया स्वसुतायामिव हृदयमस्यामस्ति मे । महाभिजनराजवंशप्रसूता चार्हतीयमेवंविधानि कर्माणि । नियतं स्वयमेवेयमतिविनीततया कतिपयैरेव दिवसैः कुमारमाराधयिष्यति केवलमतिचिरकालोपचिता बलवती मे प्रेमप्रवृत्तिरस्याम् । अविदितशीलश्चास्याः कुमार इति संदिश्यते । सर्वथा तथा कल्याणिना प्रयतितव्यं यथेयमतिचिरमुचिता परिचारिका ते भवति' इत्यभिधाय विरत-

---

परिचारिका सेवाकारिण्यस्तासां मध्यमुपनीता प्रापिता सती सा मया विगतनाथा राजदुहितेति कृत्वा समुपजात समुत्पन्न स्नेहो यस्यामेवंविधा मया सा पत्रलेखा दुहितृनिर्विशेष दुहिता पुत्री तस्याः सकाशान्निर्गतो विशेषोऽस्या यथा स्यात्तथेयन्त कालमेतावत्पर्यन्तमुपलालिता पालिता संवर्धिता च वृद्धिं प्रापिता च । तदिति हेत्वर्थे । इदानीं सांप्रतमियमुचिता योग्या भवतस्तव ताम्बूलस्य करङ्क स्थगी तद्वाहिनीति कृत्वा मया प्रेषिता । नचेति । अस्यां पत्रलेखायामायुष्मता भवता परिजने परिच्छदे सामान्या सर्वसाधारणा दृष्टिर्यस्यैवंविधेन त्वया न च भवितव्यम् । बालेव बालिकेव लालनीया पालनीया । स्वस्य चित्तवृत्तिर्मनोवृत्तिस्तद्वदिव चापलेभ्योऽनवस्थितिभ्यो निवारणीया वर्जनीया शिष्या शिष्यिणी सेव द्रष्टव्या विलोकनीया । सुहृदिव मित्रमिव सर्वविश्रम्भेषु समग्रविश्वासस्थानेष्वभ्यन्तरा मध्यवर्तिनी करणीया कार्या । दीर्घकालेन संवर्धितो वृद्धिं प्राप्तो य स्नेह प्रीतिस्तस्य भावस्तत्ता तया स्वसुतायामिव निजपुत्र्यामिवास्यां मे मम हृदय चेतोऽस्ति । महानभिजन कुलं यस्मिन्नेवंभूतो यो राजवंशस्तत्र प्रसूतोत्पन्नैवंविधानि कर्माणि

और अब मैंने इसको (तुम्हारे पास) यह सोचकर भेजा है कि यह अब तुम्हारी पान-पेटी उठानेवाली बनने योग्य है । और आयुष्मान्, इसे तुम एक सामान्य सेविका मत समझना और बालिका समझ कर इसे प्यार से रखना । तुम अपनी (निजी) मनोवृत्ति की भाँति इसको भी उद्दण्ड कार्य के करने से रोकना—इस पर ऐसी दृष्टि रखना जैसी कि एक शिष्य पर रखी जाती है । मित्र की भाँति इसको अपनी सभी विश्वसनीय बातों में अंतरंग बनाना । इसके प्रति (मेरे मन में) देर से बढ़े स्नेह के कारण मेरा हृदय इसमें ऐसे ही लगा हुआ है जैसा कि अपनी पुत्री में लगा होता है । उच्च कुलीन राजवंश से उत्पन्न इसको मैं बहुत चाहती हूँ । वह तुमसे ऐसे व्यवहार के योग्य ही है । निश्चय ही स्वयं ही (अपनी) अत्यन्त विनम्रता के कारण (अथवा भली भाँति प्रशिक्षित होने के कारण) कुमार को कुछ ही दिनों में प्रसन्न कर लेगी । केवल इस कारण तुम्हें संदेश भेज रही हूँ कि बहुत देर से बढ़ी हुई इसके प्रति मेरी प्रेम-भावना बड़ी प्रबल है और कुमार इसके चरित्र से अपरिचित हैं । कुछ भी हो, सौभाग्यशाली, तुमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे यह देर तक तुम्हारी योग्य सेविका बनी रहे ।" इतना कहने के पश्चात् जब कैलास ने कहना बन्द कर दिया, तब प्रतिष्ठापूर्ण प्रणाम

वचसि कैलासे कृताभिजातप्रणामा पत्रलेखामनिमिषलोचन सुचिरमालोक्य चन्द्रापीडः 'यथाज्ञापयन्त्यम्बा' एवमुक्त्वा कञ्चुकिनं प्रेषयामास। पत्रलेखा तु ततःप्रभृति दर्शनेनैव समुपजातसेवारसा न दिवा न रात्रौ न सुप्तस्य नासीनस्य नोत्थितस्य न भ्रमतो न राजकुलगतस्य छायेव राजसूनोः पार्श्वं मुमोच। चन्द्रापीडस्यापि तस्यां दर्शनादारभ्य प्रतिक्षणमुपचीयमाना महती प्रीतिरासीत्। अभ्यधिकं च प्रतिदिनमस्य प्रसादमकरोत्। आत्महृदयादव्यतिरिक्तामिव चैना सर्वविश्रम्भेष्वमन्यत।

ताम्बूलकरङ्कधारणप्रभृतीनीयमेवार्हती योग्या। नियतमिति। नियत निश्चितमिय स्वयमेवाति विनीततयातिविनयवत्तया कतिपयैरेव कियद्भिरेव दिवसैर्घस्रै कुमार स्वमाराधयिष्यति स्ववशीकरिष्यति। केवल परमस्यामतिचिरकालेन भूयसानेहसोपचिता पुष्टिं प्राप्ता मे मम बलवती प्रेमप्रवृत्ति स्नेहप्रवृत्तिः। अस्या अविदितमज्ञात शील येनैवविध कुमार इति सदिश्यते कथ्यते। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेण तथा कल्याणिना श्रेयोवता प्रयतितव्य प्रयत्न कर्तव्य। यथाचिरं चिर चिरकाल यावत्। ते तवोचिता योग्येय परिचारिका भवतीत्यभिधायेत्युक्त्वा विरतवचस्यपास्तवचने कैलासे सति कृतोऽभिजात कुलीनस्तद्वत्प्रणामो यया ता पत्रलेखामनिमिषलोचन यथा स्यात्तथा सुचिर चिरकालमालोक्य निरीक्ष्य चन्द्रापीडो यथाज्ञापयत्यादेश दत्तेऽम्बा मातैवमुक्त्वा कञ्चुकिन प्रेषयामास विसर्जितवान्। तु पुनरर्थे। पत्रलेखा तत प्रभृति तद्दिनादारभ्य दर्शनेनैव तदवलोकनेनैव समुपजात समुत्पन्न सेवाया रसो यस्या सा। न दिवेति। न दिवा दिवसे, न रात्रौ त्रियामायाम्, न सुप्तस्य शयन कृतवत, नासीनस्योपविष्टस्य, नोत्थितस्योत्थान कृतवत न भ्रमत इतस्ततो गच्छत न राजकुलगतस्य छायेव स्वप्रतिबिम्बमिव राजसूनोश्चन्द्रापीडस्य पार्श्वं मुमोचेत्यस्य सर्वनकारेणान्वय। चन्द्रापीडस्यापि तस्या पत्रलेखायां दर्शनादारभ्यावलोकनात्प्रभृति प्रतिक्षण क्षण क्षणं प्रत्युपचीयमाना वृद्धिं प्राप्यमाणा महती प्रीतिर्महान्स्नेह आसीदभूत्। अस्य प्रतिदिन प्रत्यहमभ्यधिकमधिकाधिक प्रसाद सद्वस्तुप्रत्यर्पणरूपमकरोत्। सर्वविश्रम्भेषु समग्रविश्वासस्थलेष्वेनां पत्रलेखामात्महृदयादव्यतिरिक्तामिव स्वस्वान्तादभिन्नामिवामन्यत ज्ञातवान्।

किये हुई पत्रलेखा को एकटक दृष्टि से देर तक देख कर चन्द्रापीड ने 'जैसी मेरी माता ने आज्ञा दी है'-(ऐसा ही होगा)' कहकर कञ्चुकी को भेज दिया। पत्रलेखा ने तो तब से, (चन्द्रापीड के) दर्शन से ही जिसके मन में उसकी सेवा करने की उत्सुकता[1] उत्पन्न हो गयी थी, न दिन में और न रात में ही, चाहे वह सोता हो वा बैठा हो, खड़ा हो वा चल रहा हो वा राजभवन में (मिलने) गया हो—छाया की भाँति उसका पार्श्व (पल्ला) नहीं छोड़ा। चन्द्रापीड की भी उसके प्रति अत्यन्त प्रीति, जब उसने पहले-पहल उसको देखा तभी से, प्रतिक्षण बढ़ती गयी। और वह उस पर प्रतिदिन अधिकाधिक कृपा करता गया। और चन्द्रापीड ने अपनी सभी विश्वसनीय बातों में उसको अपने हृदय से भिन्न नहीं समझा।

(१) सेवारस.—सेवा की इच्छा।

एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसंभारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छञ्छुकनासः सविस्तरमुवाच—'तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनञ्जनवर्तिसाध्यमपर-

---

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण समतिक्रामत्सु गच्छत्सु दिवसेषु राजा तारापीडश्चन्द्रापीडस्य यौवराज्ये योऽभिषेकस्तं चिकीर्षुं कर्तुमिच्छुः प्रतीहारान्द्वारपालानुपकरणस्य स्नानयोग्यसामग्र्या संभारं समूहस्तस्य संग्रहार्थमानयनार्थमादिदेश आज्ञां दत्तवान्। समिति। समुपस्थितः संजातो यौवराज्याभिषेको यस्य स तम्। कदाचित्कस्मिंश्चित्समये दर्शनार्थमवलोकनार्थमागतं प्राप्तमारूढविनयमपि संप्राप्तविनयमपि'। किंचिन्निगूढाभिप्रायं। विनीततरं विनम्रतरमिच्छन्वाञ्छञ्छुकनासः सविस्तरं सव्यासमुवाचाब्रवीत्। तदेवाह—तातेति संबोधनम्। हे पुत्र चन्द्रापीड, ते तवाल्पमपि स्तोकमप्युपदेष्टव्यं वक्तव्यं नास्ति। तत्र हेतुमाह—अधीतेति। अधीतानि पठितानि सर्वशास्त्राणि येन स तथा तस्य। सर्वपदेन नीतिशास्त्रस्यापि परिग्रहः। अधीतशास्त्रत्वेऽपि तत्त्वविरवाभावादुपदेष्टव्यमस्तीत्यत आह—विदितेति। विदितं ज्ञातं वेदितव्यं शास्त्राभिप्रायो येन तस्य। आशयमुद्घाटयति—केवलं चेति। परं निसर्गत एव स्वभावत एवाभानुभेद्यमसूर्योच्छेद्यम्। अरत्नेति। न रत्नानां मणीनामालोकेनोच्छेद्यं दूरीकर्तुं योग्यम्। अप्रदीति। न प्रदीपप्रभया गृहमणिकान्त्यापनेयं दूरीकरणीयम्। अतीति।

चन्द्रापीड का राज्याभिषेक और शुकनास का उपदेश

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर चन्द्रापीड के युवराज (राज्य के उत्तराधिकारी) के पद का संस्कार करने के इच्छुक राजा ने द्वारपालों को आज्ञा दी कि वे आवश्यक सामग्री एकत्रित करें। कभी अपने से भेंट करने आये उस चन्द्रापीड को, जिसका राजतिलक होने ही वाला था, पहले ही सुप्रशिक्षित भी उसको और अधिक शिक्षित करने के इच्छुक शुकनास ने विस्तार से (निम्न प्रकार से) कहा—

"पुत्र चन्द्रापीड! तुमको, जो (पहले ही) जानने-योग्य सभी कुछ जानते हो, और सभी शास्त्रों को पढ़ चुके हो, थोड़ा-सा भी उपदेश देना शेष नहीं है। परन्तु केवल (ध्यान देने योग्य) बात यह है कि—युवावस्था में उत्पन्न अन्धकार (अर्थात् अज्ञान) बहुत ही घना होता है, इसका स्वरूप (स्वभाव) ही ऐसा है कि यह सूर्य से अभेद्य है—सूर्य का प्रकाश भेद कर इसके पार नहीं जा सकता, रत्नों के प्रकाश से भी यह दूर नहीं होता, नाही यह शक्तिशाली दीपक के प्रकाश से दूर हो सकता है। लक्ष्मी से (ऐश्वर्य द्वारा) चढ़ा हुआ मद बहुत भयङ्कर है, यह वृद्धावस्था में भी (शान्त नहीं होता) उतरता नहीं है। बहुत-सी समृद्धि-रूप

मैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे। गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि

अतिशयेन निरवधिकतया गहनमलब्धमध्यं यौवनं तारुण्यं तत प्रभवः उत्पत्तिर्यस्यैवंविधं तमोऽज्ञानम्। द्वितीयो लक्ष्मीमदो द्रव्यमदः। अपरीति। न विद्यते परिणामेनोपशमो यस्य स। अयं भावः—परिणामेनोपसमः औषध्यादिषु प्रसिद्धः। विपरीतमत्र वयःपरिणामेऽपि नोपशमः। दारुणो भयावहः। कष्टं दुःखरूपमपरं तृतीयमैश्वर्यमेव तिमिरमन्धकारं तेनान्धत्वं गताक्षत्वम्। अनञ्जनेति। अञ्जनवर्तिर्बिडालादिवसाञ्जनवर्तिस्तया तिमिरान्धत्वं विनश्यति। तदुक्तम्—'अन्धकारे महाघोरे रात्रौ पठति पुस्तकम्' इति पद्‌वाञ्जनवर्तेरपि न साध्यम्। न निवर्तयितुं शक्यमिति भावः। अशिशिरेति। न शिशिरैः शीतलैरुपचारैश्चन्दनादिभिर्हार्यं परिहर्तुं योग्यः अत्यन्तमतिशयेन तीव्रः कठिनो दर्पोऽभिमानः स एव दाहज्वरस्तीव्रतापस्तस्योष्मा घर्मः। सततेति। सततं निरन्तरं मूलमन्त्रैरगम्यो निवर्तयितुमशक्यः। मूलमन्त्रेत्युपलक्षणम्। तेन मणिमधुकरादिविषोत्तारणहेतूनां सर्वेषामपि संग्रहः। विषमः कठिनो विषयाः स्रक्चन्दनादयस्त एव विषं गरलं तस्यास्वादो भक्षणं तस्माद्यो मोहो मूर्च्छा। नित्यमिति। नित्यं सर्वदा स्नानमाप्लवः, शौचं शुचिक्रिया, ताभ्यां न वध्यो न विनाश्यः एवंविधो रागो विषयाभिलाषः

मोतियाबिन्द[1] द्वारा उत्पन्न किया गया अन्धापन दूसरे ही प्रकार का होता है और कष्ट देता है—यह अन्धापन (सामान्य अन्धेपन की भाँति) अंजन की बत्ती लगाने से अच्छा नहीं होता। अहंकार-रूप दाहक ज्वर की भयानक गर्मी शामक औषधियों से शान्त नहीं होती। ऐन्द्रियिक सुखों—विषयों रूप विष का स्वाद लेने से उत्पन्न भयानक अचेतनता सदा ऐसी होती है कि ओषधिरूप जड़ी बूटियों अथवा मन्त्रों की उस पर प्रतिक्रिया नहीं होती। (विवेक-बुद्धि पर हुआ) प्रणयोन्माद-रूपी मल का गाढ़ा लेप स्नान करने से और सफाई करने से भी कभी नहीं छुटता। और राज्यसुखों के उपभोग-रूपी सन्निपात से प्रेरित घोर निद्रा सदा ऐसी होती है कि रात्रि की समाप्ति पर भी उससे जागा नहीं जा सकता। जन्म से किसी का धनी होना, नयी जवानी, अद्वितीय सौन्दर्य और अतिमानुषी शारीरिक शक्ति—निश्चय ही यह एक बहुत बड़ी सर्वनाशकारी शृङ्खला है। उनमे से एक-एक भी (अकेला भी) सभी प्रकार की धृष्टताओं के कार्यों का निवास स्थान है, फिर इनके संघात का तो कहना ही क्या! और यह नियम है कि प्रारम्भिक जवानी मे (व्यक्ति की) बुद्धि शास्त्रों के (अध्ययन) रूपी जल से धोयी गयी (परिष्कृत) भी मैली हो जाती है। नवयुवकों की आँखें (अपनी) सफेदी को न

(१) तिमिर नाम का अक्षिदोष, मोतियाबिन्द।

सरागैव भवति यूना दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुष प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्।

स एव मल पङ्कस्तस्यावलेप सपर्क । अजस्रमिति। अजस्रं निरन्तर न विद्यते क्षपावसाने राश्यन्ते प्रबोधो विनिद्रत्व यस्यामेतादृशी घोरा च राज्यस्याधिपत्यस्य यत्सुख सात तस्य सनिपात सघात स एव निद्रा प्रमीला भवतीति हेतोर्विस्तरेण वारवारमभिधीयसे। वक्तव्यो ऽसीत्यर्थं। अपरामप्यनर्थपरपरा प्रदर्शयन्नाह—गर्भेश्वरेति। गर्भेश्वरत्व बाल्यावधिक मीश्वरत्वम्, अभिनवयौवनत्व सर्वाधिक तारुण्यम्, अप्रतिम प्रतिनिधिशून्य रूपं सौन्दर्यम्, अमानुषशक्तित्व न विद्यते मानुषेषु मनुष्येषु यैवंविधा शक्ति सामर्थ्यं यस्मिंस्तस्य भावस्तत्त्वम्। चकार समुच्चयार्थं। इति समासौ। खलु निश्चयेन। इय महती गरीयसी सर्वा समग्रानर्थपरपरा कष्टपरपरा। एषा पूर्वोक्तानामेकैकमप्यविनयानां दुर्बुद्धीनामायतनमास्थानम्, किमुत समवाय। एतेषां समुदायस्य दुर्बुद्धिजनकत्वे किं पुनर्भण्यते। तदुक्तं—'यौवन धनसपत्ति प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमनवस्थान किं पुनस्तच्चतुष्टयम्।' अथ यौवनस्यापि दुर्बुद्धिजनकत्वं प्रदर्शयन्नाह—यौवनेति। यौवनारम्भे तारुण्यप्रारम्भे प्रायो बाहुल्येन शास्त्रमेव जलं पानीयं तेन प्रक्षालन तेन निर्मला निर्गतो मलोऽबोधो यस्या एवभूतापि बुद्धि' कालुष्य बुद्धिवैपरीत्यमुपयाति प्राप्नोति। अन्विति। अनुज्झिता परित्यक्ता धवलता श्वेतता ययैवंविधापि यूनां तरुणाना दृष्टि। सरागैवेति। सह रागेण वर्तमानैव भवति। आत्मेति। आत्मेच्छया स्वेच्छया यौवनसमये तारुण्यक्षणे प्रकृतिः पुरुष दूरमपहरति। दूर परिणयतीत्यर्थं। अस्मिन्नर्थे उपमानमाह—शुष्कमिति। वाताना समूहो वात्या वातकलिकोच्यते। शुष्कपत्रं यथापहरति। उभयो साम्यमाह—समुद्भूतेति। समुद्भूता रजोगुणेन भ्रान्तिर्भ्रमो यस्याम्। पक्षे रजसां

छोड़ती हुई भी (सफेद रहती हुई भी) 'सराग' (लाल—कामोन्माद से प्रभावित) हो जाती हैं। जैसे धूलि के बगूले को उठाये हुआ वायु का प्रबल झोंका, सूखे पत्ते को दूर ले जा कर फेंक देता है वैसे ही युवावस्था के दिनों में व्यक्ति की स्वाभाविक मनोवृत्ति रजोगुण द्वारा उत्पन्न हुई भ्रान्ति से प्रभावित होकर अपनी इच्छानुसार दूर ले जाती है। और इन्द्रियरूप हरिणों को भटकाने वाली विषयभोग-रूपी मृगतृष्णा (के पीछे दौड़ने) का परिणाम अत्यन्त विनाशक है। (और तो भी) नई जवानी से प्रभावित (उससे कसैले हुए) व्यक्ति के मन को विषय सुखों के वे ही स्वरूप भोगे जाते हुए अधिकाधिक मीठे लगते हैं जैसे कि किसी कसैली वस्तु को चखे हुए व्यक्ति को जल मीठा लगता है। और विषय सुखों में अत्यासक्ति, व्यक्ति को कुमार्ग पर ले जाकर नष्ट कर देती है—ठीक ऐसे ही जैसे कि दिशाओं के विषय में उलझन (दिङ-मोह) मनुष्य को गलत मार्ग पर भटका देती है। तुम्हारे जैसे व्यक्ति ही उपदेशों के उपयुक्त भाजन (सुपात्र) होते हैं। जिस मनकी मैल दूर हो चुकी है उसमें ही उपदेश के

अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति। हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव गुरूपदेशः प्रशमहेतुर्वयः-

---

रेणूना भ्रमो यस्याम्। इन्द्रियेति। इन्द्रियाण्येव करणान्येव हरिणा कुरङ्गास्तेषां हारिणी हरणशीलैतादृश्युपभोगोऽङ्गनादिक स एव मृगतृष्णिका मरुमरीचिकेयं सतत निरन्तरम्। सुखाभिमानोत्पादनाद्दुरन्ता दु खावसाना। नवेति। नवयौवनेन प्रत्यग्रतारुण्येन कषायित विपरिवर्तितमात्मान्त करण यस्यैवभूतस्य पुरुषस्यास्वाद्यमानानि तान्येव विषयस्वरूपाणि मनसश्चेतसो मधुरतराण्यापतन्ति। मधुराण्येव भवन्तीत्यर्थं। अत्रैव दृष्टान्तमाह—सलिलेति। यथा कषायद्रव्येण हरीतक्यादिना मधुराण्यपि जलानि मधुराणि स्यु। 'आत्मान.' इति प्रामादिक पाठ। विषयेषु स्रक्चन्दनवनितादिष्वत्यासङ्गोऽत्यासक्ति पुरुषमात्मान नाशयति। क इव। दिङ्मोहो दिग्भ्रान्तिरिव। उभयो सादृश्यमाह—उन्मार्ग इति। उन्मार्गोऽपथो विरुद्धाचारश्च तत्र प्रवर्तक प्रेरक। तत किमित्यत आह—भवादृशा इति। उपदेशाना शिक्षाणा भाजनानि पात्राणि भवादृशा भवत्सदृशा एव भवन्ति नान्य इति भाव। उपदेशफलमाह—अपगतेति। अपगतो दूरीभूत कालुष्यलक्षणो मलो यस्मादेवभूते मनसि चित्त उपदेशगुणा शिक्षागुणा सुखेनानायासेन विशन्ति प्रवेश कुर्वन्ति। कस्मिन्क इव। स्फटीति। स्फटिकमणौ रजनिकरश्चन्द्रस्तस्य गभस्तय किरणास्तद्वदिव। दोषे सति किं स्यादित्याह—गुरुवचनमिति। गुरुवचन हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा गुरुस्तस्य वचनं वाक्यममलमपि निर्मलमप्यभव्यस्यासाधो श्रवणस्थित कर्णकोटरगत सन्महच्छूलमुपजनयत्युत्पादयतीत्यर्थ.। अत्रार्थेऽनुभवसिद्ध दृष्टान्तमाह—सलिलेति। यथा सलिल पानीयमतिस्वच्छमपि कर्णगत महान्यथाजनक

गुण सरलता से प्रविष्ट होते हैं—ठीक ऐसे जैसे कि मल से रहित (स्वच्छ) स्फटिकमणि में चन्द्रमा की किरणें प्रविष्ट होती हैं (अर्थात् प्रतिक्षिप्त होती हैं)। दुष्ट (अथवा अभागे) व्यक्ति के कान पर पड़ा (उससे सुना गया) गुरु (उपदेष्टा अथवा अपने बड़े) का उपदेश, भले ही वह कितना ही लाभदायक क्यों न हो, बहुत ही दु:ख देता है, ठीक वैसे ही जैसे कि कान में गिरा हुआ शुद्ध जल भी कर्णशूल उत्पन्न कर देता है। परन्तु (भले अथवा विवेकी व्यक्ति से भिन्न) दूसरे व्यक्ति को तो वही उसके चेहरे को अधिक शोभायमान कर देता है—ठीक ऐसे ही जैसे कि शङ्खों का आभूषण हाथी के चेहरे की शोभा को बढ़ा देता है। जैसे सायकालीन चन्द्रमा सारे अन्धकार को—काले से काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही गुरु का उपदेश सारे ही, अत्यन्त गर्हित भी, दोषों को दूर कर देता है। (व्यक्ति के कामोन्माद को) शान्त करने वाला गुरु का उपदेश उन्हीं दोषों पर चूना फेर देता है (अर्थात् उन्हें अनपकारी बना देता है और उनको गुणों में परिवर्तित कर देता है, ठीक ऐसे ही)

परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणमयति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारण च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुत चाविनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः। किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा। गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल-

---

स्यात्। दोषाभावे त्वाह—इतरस्य त्वधिकतरमाननशोभासमुदयमुपजनयति विदधाति। क इव। शङ्खो जलजस्तस्याभरण भूषण करिण इव हस्तिन इव। हस्तिनां दृष्टिदोषबाधनार्थं शङ्खाभरण कर्णे बध्यत इति लोकरीति। अतिमलिनमतिश्याम दोषजात दूषणसमूहमन्धकारमिव तिमिरमिव हरति दूरीकरोति। क इव। प्रदोषसमयनिशाकर इव यामिनीमुखचन्द्रोदय इव। प्रकारान्तरेणाह—प्रशम इति। प्रशमोऽन्तरिन्द्रियनिग्रहस्तद्धेतुर्गुरूपदेश शिरसिजजालं शिरोरुहभारममलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणमयति परिपाक नयति। क इव। वय परिणाम इवावस्थापरिणतिरिव। यथा सोऽपि शिरसिजजाल केशसमूह पलितरूपेणामलीकुर्वंस्तदेव शिरसिजजाल गुण रूपेण परिणमयति। तन्निदानमेव प्रथमे वयसि किमुपदेशेनेत्यत आह—अयमिति। अयमेव नापरस्ते तवोपदेशस्य काल शिक्षाप्रदानसमय। अत्रार्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—अनास्वादीति। न विद्यत आस्वादोऽनुभवो यस्यैवंविधो विषयरसो यस्य तथा तस्य। आस्वादितविषयस्य तूपदेशो निरर्थक स्यादित्याह—कुसुमेति। हि निश्चितम्। कुसुमशर कदर्पस्तस्य शरा बाणास्तेषां प्रहारा अभिघातास्तैर्जर्जरिते शिथिलीभूते हृद्युपदिष्टमुपदेशविषयीकृत जलमिव गलति क्षरति विनश्यति। निरर्थक भवतीत्यर्थं। दोषान्तरमाह—अकारणं चेति। उपशमादिकार्यजनक न भवतीत्यर्थं। ननु मदनशरप्रहारजर्जरितहृदयस्योपदेशाभावेऽप्युपदेशकार्यं प्रशमादिक सर्वमन्वयो वश, श्रुत च शास्त्रम्, ताभ्यामेव भविष्यतीत्याशयेनाह—दुष्प्रकृतेरिति। दुष्प्रकृतेर्दुरात्मनस्तादृशहृदयस्यान्वय श्रुत चाविनयस्य हेतोर्भवति। न तु विनयायेत्यर्थं। ननु सुवंशजस्य कथमविनये प्रवृत्तिरित्यत आह—चन्दनेति। चन्दनं मलयजं तस्मात्प्रभवो

जैसे कि कामोन्माद को घटा देने वाली वृद्धावस्था (परिपक्व आयु) सिर के (काले) बालों को, बालों की श्वेतता की उपस्थिति के रूप में, श्वेत कर देती है और इसको वृद्धावस्था की श्रद्धेयता रूपी गुणों में परिवर्तित कर देती है। तुम्हें उपदेश देने का ठीक यही समय है, कारण कि तुमने अभी तक इन्द्रियों के विषयों के आनन्द का स्वाद नहीं लिया है। जो हृदय पुष्पधन्वा (काम) के बाणों के प्रहार से जर्जर हो जाता है, उस पर दिया हुआ उपदेश जल की भाति धीरे धीरे बह जाता है। और दुष्ट स्वभाव वाले (अथवा पतित) व्यक्ति में उसका कुल वा उसकी शिक्षा उसमें शुद्ध आचरण (विनय) का कारण नहीं होते (अर्थात् कुल अथवा शिक्षा उसको भद्र नहीं बनाते)। क्या चन्दन की लकड़ी से उत्पन्न आग नहीं जलाती ? अथवा क्या (अग्नि को) शान्ति के हेतु भूत (उसको बुझा देने वाले) जल से भी वाडवाग्नि और प्रबल नहीं हो उठती ? वस्तुतः गुरु का उपदेश तो मनुष्यों के लिये बिना जल

प्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पाश्व पृथुस्थगितश्रवविवराश्चो-

---

यस्यैवभूतोऽनलो वह्नि किं न दहति न भस्मीकरोति। परस्परसघर्षदोषे सति चन्दनात्समुत्थितोऽग्निर्दहत्येवेति। ननु प्रशमहेतुभूताच्छ्रुतात्कथमविनयोत्पत्तिरित्यत आह—किं वेति। प्रशमहेतुनापि वारिणा किं वडवानलो वाडवाग्निस्तोयधे प्रादुर्भवति, सर्वलोकविनाशाय सर्वदा महासमुद्रे तिष्ठति, यस्य वडवामुख इति प्रसिद्धि। न प्रचण्डतरीभवति प्रबलतरो न स्यात्। अथ प्रकारान्तरेण गुरुवचनमाहात्म्य वर्णयन्नाह—गुर्विति। नामेति कोमलामन्त्रणे। गुरूणा हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टॄणामुपदेश. शिक्षा पुरुषाणाम्। अजल जलव्यतिरेकेणापि स्नानमाप्लव। कीदृशम्। अखिल समग्रो यो मल कालुष्य तस्य प्रक्षालन शुचीकरण तत्र क्षम समर्थम्। अन्विति। अनुपजातमनुत्पन्न पलित पाण्डुर कचस्तदादि वैरूप्य यस्मिन्नेतादृशम्। अजरमिति। जराव्यतिरेकेण वृद्धत्व स्थविरत्वम्। अनेति। नारोपित स्वीकृतो मेदोदोषो येनैवभूत गुरूकरणं स्थूलीभवनम्। मेदोदोषेण स्थूलता भवतीति सर्वत्र प्रसिद्धम्। तथाय न भवतीत्यर्थ। असुवेति। न विद्यते सुवर्णस्य कनकस्य विरचनं यस्मिन्नेवंभूतमग्राम्य प्रशसनीय कर्णाभरण श्रवणविभूषणम्। अतीतेति। अतीतो गतो ज्योति प्रकाशो यस्मादेवभूत आलोक उद्योत। न उद्वेगकरो न संतापजनक प्रजागरो जागरणम्। केवल तवैव नायमुपदेश इत्यत आह—विशेषेणेति। राज्ञा भूभुजामयमुपदेशो विशेषेणाधिक्येन प्रदातव्य इति भाव। राज्ञामनेक उपदेष्टार किं तवोपदेशेनेत्यत आह—विरलेति। हि निश्चितम्। तेषा राज्ञामुपदेष्टार उपदेशदातारो विरला स्तोका। यतो राज्ञामुपदेशसमर्थोऽप्युत्कृष्टो विवक्षितोऽस्मदादि, न त्वन्यो जन। तदेव प्रदर्शयन्नाह—प्रतिशब्दक इवेति।

का स्नान है जो उनके सभी मैलों को धो देने में समर्थ है। यह वह स्थविरता है कि जिसमें श्वेतकेशता आदि कोई (शारीरिक) विकार उत्पन्न नहीं होता और जो बुढापे से रहित है। यह व्यक्तियों को गुरु (स्थूल) अर्थात् उनके महत्त्व को बढा देने वाला एक ऐसा साधन है कि जो शरीर पर व्याधिक स्थूलता को (मेदो दोष) को नहीं लादता है। (सुनने वाले के लिये) यह एक ऐसा कर्णाभूषण है जिसमें सोने की रचना नहीं है—सोना जड़ा हुआ नहीं है (अथवा जो सोने से नहीं बनाया गया है) और जो अशोभनीय नहीं है। यह एक ऐसा प्रकाश है (लोगों को उनके कर्त्तव्य मार्ग को दर्शाता है) जिसमें ज्वाला नहीं है। यह ऐसा जागरण अथवा प्रबोध (अपने हित के प्रति जागरूकता) है जो थकाता नहीं है (निरुत्साहित नहीं करता है)। और यह सब विशेषतया राजाओं के लिये सच है, क्योंकि उनको नि स्वार्थ उपदेश देने वाले बहुत कम हैं। राजा के वचन का अनुसरण लोग, डर कर गूंज की भाति करते हैं। जिन लोगों के कर्णमार्ग बेलगाम अभिमान रूपी सूजन से रुक जाते है वे उपदेश के रूप मे

पदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् । अहङ्कारदाहज्वरमूर्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः । आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इय हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्,

---

जनो लोको भयाद्भीते राजवचन नृपवचोऽनुगच्छति नृपवचनानुगो भवति । न तु प्रत्युत्तर दातु समर्थ इति भाव । क इव । प्रतिशब्दक इव प्रतिध्वनिरिव । यथा सोऽपि मूलशब्दसाम्येनानुगच्छति । केषाचिदुपदेशश्रवणमेव नास्तीत्यत आह—उद्दामेति । उद्दाम उत्कटो दर्पोऽहकारो येषां ते च । पृथु यथा स्यात्तथा स्थगितान्याच्छादितानि श्रवणविवराणि कर्णच्छिद्राणि येषा ते च । द्वौ चकारावेककाल सूचयत । एवविधा राजान उपदिश्यमानमपि कथ्यमानमपि हितोपदेशमिति न शृण्वन्ति नाकर्णयन्ति । कदाचिच्छृण्वन्तोऽप्याकर्णयन्तोऽपि गजो हस्ती तस्य यन्निमीलित नेत्रसकोचस्तद्वन्निमीलितेनावधीरयन्तोऽनादर कुर्वन्त । हितोपदेशदायिन शिक्षाकथकान्गुरून्खेदयन्ति । दु ख प्रापयन्तीत्यर्थ । अथ नृपस्वभाव प्रदर्शयन्नाह—राजेति । हि निश्चितम् । एतादृशी राजप्रकृती राज्ञा स्वभावो विह्वला व्याकुला । अहमिति । अहकार एव दाहज्वरस्तीव्रतापस्तद्धेतुका या मूर्च्छा मोहस्तयान्धकारितान्धकार इवाचरिता । धनराज्यलक्ष्म्या स्वरूप प्रदर्शयन्नाह—अलीकेति । अलीकोऽवास्तवो योऽभिमानोऽहङ्कार उन्मादश्च तावुभौ कुर्वन्तीति तान्येवविधानि धनानि द्रव्याणि । राज्यमिति । राज्यमेव विष गरल तस्माद्यो विकारो विकृतिस्तेन कृत्वा तन्द्रालस्य तत्प्रदा राजलक्ष्मी राज्यश्री । नेद पूर्वोक्तमतथ्य किंतु सत्यमेवेत्याह—आलोकयत्विति । कल्याणे मङ्गलेऽभिनिवेश आग्रहो यस्यैवभूतस्त्व तावदादौ लक्ष्मीमेव प्रथममालोकयतु विचारयतु । लक्ष्मीदोषानाह—इयमिति । हि निश्चितम् । इय प्रत्यक्षोपलभ्यमाना खड्गाना कौक्षेयकाणा यन्मण्डल सघातस्तदेव कृष्णत्वसाम्यादुत्पलवन तत्र

जो कुछ कहा जाता है उसको नहीं सुनते हैं। और जब वे सुन भी लेते हैं तब भी, आखें बन्द कर लेने वाले (और अपने चारों ओर की घटनाओं के प्रति उदासीन हो जाने वाले) हाथी के ढग पर उपदेश का निरादर करके उपदेश देने वाले गुरुओं को कष्ट पहुँचाते हैं। आत्माभिमान रूपी दाहक ज्वर से उत्पन्न अचेतना से अज्ञानी बनी राजकीय प्रकृति निश्चय ही सदा क्षुब्ध रहती है। धन झूठे अभिमान रूपी विलाप को उत्पन्न करने वाले हैं और राजकीय लक्ष्मी राजकीय शक्ति रूपी विष से उत्पादित तन्द्रा (मूर्छा) को प्रेरित करती है।

भलाई करने में प्रवृत्त आप पहले स्वय लक्ष्मी (ऐश्वर्य की देवी) का विचार (उसकी परख) कीजिये। यह लक्ष्मी, जो मानो शूरवीर योद्धाओं की तलवारों के कमलवन में भ्रमण करने वाली भौंरी ही है, वियोग को हलका करने के उसके स्मारक चिह्नों को, (देर तक) साथ रहने के कारण उनके प्रति प्रेम हो जाने के कारण, अपने साथ लेकर ही मानो क्षीरसागर से निकलती थी—अर्थात् वह राग रक्तता लिये पारिजात से 'राग' अर्थात् प्रणयोन्माद को

इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता। न ह्येवंविधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसंदाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति। उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटित-

---

विभ्रमोऽवस्थितिस्तस्मिंश्चञ्चलत्वसाम्याद्भ्रमरी मधुकरी लक्ष्मी.। पुनर्दोषान्तरं प्रदर्शयन्नाह—क्षीरेति। यदा कश्चिद्दूरदेशान्तरं गन्तुमीहते तदासौ च सहवासिस्मृतिहेतोस्तदीयं किंचिद्वस्त्वादायैव गच्छति, तथेयमपि सहवासजनितो यः परिचयः संबन्धविशेषस्तद्वशात्सहवासिपारिजातादीनामित्येतानि वस्तूनि गृहीत्वैवादायैव क्षीरसागराद्दुग्धाम्बुधेरुद्गता प्रादुर्भूता। कीदृशानि। विरहः सहवासिभिरसंबन्धस्तस्मिन्विनोदचिह्नानि चित्तालम्बनलक्षणानि। एतानि कानीत्यपेक्षायामाह—पारीति। पारिजातपल्लवेभ्यो मन्दारकिसलयेभ्यो रागं विषयलिप्सामारुण्यं च। इन्दुशकलाच्चन्द्रलेखादेकान्तवक्रतां कुटिलतां प्रातिकूल्यं च। उच्चैःश्रवस इन्द्राश्वाच्चञ्चलतां चित्तास्थैर्यं चाञ्चल्यं च। कालकूटात्कालकूटनाम्नो विषान्मोहनशक्तिं मूर्च्छोत्पादकशक्तिमन्यवशीकरणशक्तिं च। मदिरायाः कादम्बर्या मदमुन्मादत्वमुन्मोहसंभेदलक्षणं च। कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यं काठिन्यं निर्दयत्वं चेति। अथ लक्ष्म्यास्तत्सहितस्यापि राज्ञो निन्दां कुर्वन्नाह—न हीति। इह जगत्येवं विधमेतादृशमपरिचितं निर्दाक्षिण्यं किंचिन्नास्ति यथेयमनार्याश्रेष्ठा वर्तते। एतदेव प्रपञ्चयन्नाह—लब्धेति। लब्धापि महता कष्टेन प्राप्तापि दुःखेन खलु परिपाल्यते परिपालनविषयीक्रियते। दृढं गाढं गुणाः शौर्यादयस्तल्लक्षणं यत्संदानं बन्धनं तेन निस्पन्दीकृतापि निश्चलीकृतापि नश्यति प्रपलायते। उद्दामेति। उद्दाम उत्कटो दर्पोऽहंकारो येषामेवंभूता ये भटा योद्धारस्तेषां सहस्रं तेन उल्लासिता ऊर्ध्वीकृता या असिलतास्ता एव पञ्जरं तत्र विधृतापि स्थापिताप्यपक्रामत्यपसरति। मदेति। मदजलं दानवारि तदेव श्यामत्वसाधर्म्याद्दुर्दिनान्धकारस्तद्युक्ता ये गजा हस्तिनस्तैर्घटिता निष्पादिता या घना निबिडा घटा समूहस्तया

लेकर आयी है (वक्र अर्थात् गोलाकृति) चन्द्रकला से निपट वक्रता अर्थात् कुटिलता को लेकर आयी है, शीघ्रगामिताधारी उच्चैःश्रवा से चञ्चलता-अस्थिरता को लेकर आयी है, मूर्छित करने वाले (भयंकर विष) कालकूट से मोहन करने की मदान्ध करने की शक्ति को लेकर आयी है, (मत्तता धारिणी) शराब से मदधृष्टता को लेकर आयी है, और (काठिन्य वाली) कौस्तुभ मणि से निष्ठुरता—क्रूरता को लेकर आयी है। इस संसार में ऐसी कोई दूसरी वस्तु परिचितता (अर्थात् मित्रता) के सम्बन्ध की उपेक्षा करने वाली नहीं है जैसी कि यह दुष्टा (लक्ष्मी) है। क्योंकि प्राप्त की हुई भी यह कठिनता से ही संभाल कर रखी जाती है। गुणों की रस्सियों से कस कर गतिहीन कर दी गयी भी भाग जाती है—लुप्त हो जाती है। उत्कट अहंकारी सहस्रों योद्धाओं द्वारा चमकायी गयी (उठायी हुई) लम्बी पतली तलवारों के पिञ्जरे में (उनके पिंजरे सरीखे चक्रव्यूह में) बन्द की गयी भी भाग खड़ी होती है। (अपने) मदजल की वर्षा

घनघटापरिपालितापि प्रपलायते। न परिचय रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शील पश्यति। न वैदग्ध्य गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञता विचारयति। नाचार पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षण प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरणव्य-

---

परिपालितापि रक्षितापि प्रपलायते पलायन करोति। नेति। परिचयं सस्तव न रक्षति न पालयति। नेति। अभिजन कुल नेक्षते नावलोकयति। नेति। रूप सौन्दर्य न आलोकयतेऽवलोकयति। नेति। कुलक्रम कुलपरिपाटीं नानुवर्तते नानुगच्छति। नेति। शीलमाचार न पश्यति नावलोकयति। नेति। वैदग्ध्य पाण्डित्य न गणयति न विचारयति। नेति। श्रुत शास्त्र नाकर्णयति न शृणोति। नेति। धर्म वृष नानुरुध्यते धर्मानुरोधेनैव न प्रवर्तते अधर्मवतामपि गृहे तद्दर्शनात्। नेति। त्याग दान प्रति नाद्रियते नादर करोति। कृपणसद्मन्यपि दर्शनात्। नेति। विशेषज्ञता विशेषेण सर्वार्थवेदिता न विचारयति न विचारणा करोति। अत एव विद्वासो दरिद्रोपद्रुता स्युरिति प्रसिद्धि। नेति। आचार शिष्टानुचरित मार्ग न पालयति न रक्षति। लक्ष्मीवतोऽपि प्राय शिष्टाचरणदर्शनात्। नेति। सत्यमवितथ नानुबुध्यते न जानाति। असत्यवतोऽपि गृहे बाहुल्येन दर्शनात्। नेति। लक्षण मषीतिलकादि सामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादित न प्रमाणीकरोति लक्षणसत्त्वेऽपि तस्या अभावदर्शनात्। गन्धर्वेति। गन्धर्वनगरलेखा हरिश्चन्द्रपुरीति यस्या प्रसिद्धि। असद्वस्तुभ्रमो वा। तद्वदेव पश्यत एवावलोकयत एव पुरुषस्य नश्यति विनश्यति। अद्यापीति। अद्यापि इदानीमप्यारूढ प्राप्तो यो मन्दरेण मेरुणा परिवर्त परिभ्रमस्तज्जनितो य आवर्त पयसा भ्रमस्तस्माद्या भ्रान्तिर्भ्रमिस्तज्जनित सस्कारो वेगाख्यो यस्या

से काले पड़े हस्तियों की भारी सेना द्वारा चौकसी की जाती हुई भी भाग जाती है। वह परिचिति (के बन्धन) की भी चिन्ता नहीं करती, उत्तम कुल का भी आदर नहीं करती, सौन्दर्य को भी नहीं देखती, कुल-परम्परा का भी आदर नहीं करती, चरित्र अथवा गुण को भी नहीं देखती; चतुरता (अथवा सस्कृति) को भी नहीं गिनती, शिक्षा को भी नहीं सुनती, धर्म के अनुरोध पर भी नहीं चलती, त्याग का भी आदर नहीं करती, (गुणागुण के विवेक की शक्ति) विशेषज्ञता का भी विचार नहीं करती, (प्रथागत) आचार का पालन नहीं करती, सत्य को कुछ नहीं समझती, मागलिक लक्षणों (को धारण करने वाले व्यक्तियों) का कोई मूल्य नहीं लगाती। किसी के उसको देखते-देखते ऐसे अदृश्य हो जाती है जैसे कि गन्धर्व नगर की वहि रेखा मिट जाती है। अब तक भी वह (एक व्यक्ति से दूसरे के पास) इस प्रकार चक्कर काटती है कि मानो उस पर मन्दर पर्वत के घूमने से उत्पन्न भँवर में घुमाये जाने से बड़ी घुमेरी का सस्कार (उसका प्रभाव) अभी तक विद्यमान हो। वह कहीं भी अपना पाँव दृढ़ता से नहीं जमाती, मानो कि कमलिनियों में घूमने फिरने के कारण[1]

---

1. 'व्यतिकर' का अर्थ सम्बन्ध है।

तिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम् । अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति । पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति । विश्वरूपत्वमिव गृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्, लतेव

एवविधेव परिभ्रमति परिभ्रमण करोति। क्वचिदपीति। क्वापि स्थले निर्भर निश्चल पद नावबध्नाति न निदधाति। अतएवोत्प्रेक्षते—लक्ष्म्या कमलवासस्य प्रसिद्धत्वात्कमलिनीषु सचरणव्यतिकर सबन्धस्तेन लग्ना नलिननालकण्टका यस्या सैवविधेव। यथा भग्नकण्टका भूमौ निश्चलपद न दत्ते तथेयमपीत्यर्थ । अतिप्रयत्नेनातिप्रयासेन विधृतापि स्थिरीकृतापि परमेश्वरगृहेषूत्कृष्टेभ्यसद्मसु परिस्खलति स्खलना प्राप्नोति। विविधा ये गन्धगजा गन्धेभास्तेषा गण्डा कटास्तेषा मधु मदस्तस्य पानमास्वादस्तेन मत्तेव क्षीबेव। ननु परमेश्वरगृहे गजास्तिष्ठन्तीति कृत्वा तन्मधुपानमत्ताया स्खलन भवतु पर साधुगृहेष्वपरिस्खलिता कुतो न तिष्ठतीत्यत आह—पारुष्यमिति। पारुष्य क्रूरत्वमिवोपशिक्षितुमभ्यसितुमसिधारासु खड्गधारासु निवसति निवास करोति। यथासिधारासु क्रौर्यशिक्षण कृत सा क्रूरा साधुगृहेषु कथ तिष्ठतीति भाव । विश्व प्रविष्ट यस्मिन्रूपे तत् । अथवा विश्वेन रूप्यते निरूप्यते यद्रूप तद्विश्वरूप तस्य भावस्तत्व तदिव ग्रहीतु नारायणमूर्ति जनार्दनशरीरमाश्रिताधिगता । अप्रत्ययेति। अप्रत्ययोऽविश्वासो बहुलो यस्यामेवभूता सती। दिवसान्ते यथा कमल स्वाश्रय मुञ्चति तथा स्वाश्रयीभूत भूभुजमपि। तत्रोभयो साम्यमाह—समिति। सम्यक्प्रकारेणोपचितानि वृद्धि प्राप्तानि। अथ च समुपचित वर्धमान मूलं मित्रादिमूलकन्द, दण्डो नालम्, कोश' कमलाभ्यन्तरम्, मण्डल पारिमाण्डल्यम्, एतानि यस्येति। विग्रह । दण्ड कर, कोशो भाण्डागार मण्डल देशो यस्य। 'मण्डल द्वादशराजकम्' इत्येकस्य। 'विजिगीषुरुदासीनो

कमलिनी की डडी के काँटे उसके पाँव में लग गये (चुभ गये) हों। राजाओं के महलों मे बड़े प्रयत्न से कस कर पकड़ी हुई भी लड़खड़ाकर ऐसी चली जाती है कि मानो अनेक गन्धगजों के गण्डस्थलों से च्युत नशे (अर्थात् मदरस) को पीकर नशे में आयी हो। वह तलवारों की धाराओं में रहती है (अर्थात् उसकी स्थिरता तलवार की नोकों पर निर्भर रहती है) मानो वह (उन तलवारों से जिनमें कि पारुष्य–पैनापन है) क्रूरता सीखने के लिये उनमें रहती हो। वह नारायण के शरीर (के वक्षःस्थल) पर आश्रय लिये रहती है, मानो कि वह (विश्वरूपत्व—अपनी आकृति के भीतर ससार भर को धारण करने के गुण वाले नारायण से) विश्वरूपत्व को, नाना प्रकार के भ्रामक रूपों के धारण करने के गुण को सीखने के लिये वहा चिपटी हुई है। और आशका से भरी हुई (अक्षरार्थ—अधिकाशत किसी का विश्वास न करने वाली) अपने पैतृक राज्य मे, अपनी सेना मे, अपने कोश में और करद राजाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि किये राजा को भी ऐसे छोड़ देती है और जैसे कि वह उस कमल को दिनात में छोड़ देती है जिसकी जड़, डडी और बीजकोश खूब विकसित हो गये हों। वृक्षों की

विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसङ्क्रान्तिः, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्ती-करोति। सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न

मध्यमश्चेति राजकम्। गुणाना विषय वृद्धा जगु प्रकृतिमण्डलम्। पार्ष्णिराक्रन्द आसार' इत्यपि। 'तदेव शक्रमित्यादिभेदा द्वादश इष्यते। मण्डल द्वादशराजकम्' इत्यन्ये। लता वल्ली सेव विटा भाण्डादयस्तान्पान्तीति विटपा.। विटपा एव विटपका। स्वार्थे कप्रत्यय। पक्षे विटपा वृक्षा। विटपानध्यारोहत्याश्रयण करोति। गङ्गा स्वर्धुनी सेव वसु द्रव्य तज्जनन्यपि तरगा भङ्गा. बुद्बुद स्थासकस्तद्वच्चञ्चला चपला। पक्षे वसोर्भीष्मस्य तरगबुद्बुदाभ्या चाञ्चल्यवती च। दिवसकर सूर्यस्तस्य या गतिर्गमन सेव प्रकटिताविष्कृता विविधानेकप्रकारा सक्रान्तिर्वस्तुनेच्छासबन्धो यया सा। पक्षे राशिषु सूर्यसबन्ध। पाताल वडवामुख तस्य गुहा कन्दरा सेव तमोगुणस्तेन बहुला दृढा। पक्षे तमोऽन्धकार हिडिम्बेव घटोत्कचप्रसूरिव भीम-साहसेनातिकठिनकर्मणैकमद्वितीय हार्द हृदय यस्या। पक्षे भीमस्य वृकोदरस्य य साहसगुण। प्रावृडिति। प्रावृड् वर्षाकाल सेवाचिरा स्वल्पकालीना या द्युति प्रकाशस्तत्कारिणी। पक्षेऽ-चिरद्युतिर्विद्युत्। दुष्टेति। दुष्टा क्रूरा या पिशाची राक्षसी सेव दर्शित. प्रकटीकृतोऽनेक-पुरुषाणामुच्छ्रायोऽभ्युन्नतिर्यया सा। पक्ष ऊर्ध्वीकृतभुजपाणिनरमान पुरुष। अनेकपुरुषाणा मुच्छ्राय उच्चता। एवभूता लक्ष्मी स्वल्पसत्त्वमल्पसाहस नरमुन्मत्तीकरोत्युन्मत्तता नयति।

शाखाओ पर चढ़नेवाली बेल की भाँति वह परजीवी (विलासी) व्यक्तियों का आश्रय देने वाले व्यक्तियों से साथ रहती है। गगा जैसे (आठ) वसुओं की माता होती हुई भी तरगों और बुल्बुलों वाली होने से चचल है—वह भी वसु अर्थात् धन की जन्मदात्री होती हुई भी लहरों के बुल्बुलों के समान चचल है। जैसे (एक राशि से दूसरी राशि में जाने वाले) सूर्य की गति विविध सक्रान्तियों—राशियों के साथ सूर्य के सम्बन्ध को प्रकट करती है, वैसे वह विविध (जनों) मे अपना सचार प्रकट करती है। पाताल प्रदेश की गुफा जैसे अँधेरी है, वह काले कृत्यों से युक्त है। हिडिम्बा राक्षसी का हृदय एकमात्र (केवल) भीमसेन के साहस (साहसिक कार्यों) के ही आधीन हुआ था—उसका हृदय केवल आश्चर्यजनक साहसिक कार्यों के प्रति ही आकर्षित होता है। अचिरद्युति, अर्थात् विद्युत् उत्पन्न करने वाली, वर्षा ऋतु की भाँति वह भी अचिरद्युति-कारिणी है—स्वल्पकालीन प्रकाश (समृद्धि का स्वल्पकालीन प्रदर्शन) करने वाली है। दुष्ट पिशाची (एक दूसरे के ऊपर खड़े हुए) अनेक पुरुषों की ऊँचाई बराबर अपनी ऊँचाई को दिखा देती है और स्वल्पसत्त्व अर्थात् डरपोक व्यक्ति को पागल बना देती है, वह कई (विविध) व्यक्तियों की उन्नति (समृद्धि मे) वृद्धि (क्रमशः) दिखाती है और निर्बलमनस्क व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है। (विद्या-विज्ञान की देवी) सरस्वती के कृपापात्र व्यक्ति को तो मानो वह ईर्ष्या के कारण ही नहीं चिपटती। गुणी पुरुष

स्पृशति। उदारसत्त्वममङ्गलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथाहि। सततमूष्माण-मुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति।

सरस्वतीति। सरस्वती भारती तया परिगृहीतं स्वीकृतं नरमीर्ष्ययेव मत्सरेणेव नालिङ्गति नाश्लिष्यति। गुणवन्तं शौर्यादिगुणोपयुक्तं जनं नरमपवित्रमिवापावनमिव न स्पृशति न स्पर्शं करोति। उदारेति। उदारं स्फारं सत्त्वं यस्यैवंविधं पुरुषममङ्गलमिव न बहु मन्यते नादरं करोति। सुजनं शुभजनमनिमित्तमिव निष्फलमिव न पश्यति नावलोकयति। अभिजातं कुलीनमहिमिव सर्पमिव लङ्घयत्युत्क्रामयति। शूरमिति। शूरं शौर्यगुणोपेतं कण्टकमिव परिहरति दूरतस्त्यजति। दातारमिति। दातारं बहुप्रदं दुःस्वप्नमिवाशुभस्वप्नमिव न स्मरति न स्मृतिविषयीकरोति। विनीतमिति। विनीतं विनयगुणोपेतं पातकिन-मिव पापकारिणमिव नोपसर्पति न पार्श्वं प्रयाति। मन इति। मनस्विनं पण्डितमुन्मत्त-मिव ग्रथिलमिवोपहसत्युपहास्यं करोति। इन्द्रेति। इन्द्रजालमिव कुहकमिव परस्परविरुद्धमन्योन्यासंबद्धं दर्शयन्ती प्रकाशयन्ती निजमात्मीयं चरितं वृत्तं जगति लोके प्रकट-

---

को छूती ही नहीं मानो कि वह अपवित्र हो। उदारमना व्यक्ति को मानो अशुभ समझती हुई आदर नहीं देती। सज्जन पुरुष को तो देखती (तक भी) नहीं, मानो कि वह कोई अपशकुन हो। कुलीन को लाँघ जाती है—(उससे बच कर निकल जाती है) मानो कि वह कोई साँप हो। शूर पुरुष से ऐसे कतरा कर निकल जाती है जैसे कि वह (उसके मार्ग पर पड़ा) काँटा हो। (उदार) दाता को स्मरण नहीं रखती मानो कि वह कोई बुरा स्वप्न हो। विनीत अर्थात् शिक्षित व्यक्ति के पास नहीं फटकती, मानो कि वह कोई पापी व्यक्ति हो। मनस्वी पुरुष की वह ऐसे हँसी उड़ाती है कि जैसे किसी पागल की उड़ायी जाती है और फिर, इस संसार में वह अपने कृत्यों को ऐसे दिखाती है कि मानो वह किसी इन्द्रजाल (जादुई खेल) को दिखा रही हो जो (ऊपर से देखने में) परस्पर विरुद्ध हैं। जैसे कि वह निरन्तर ऊष्मा को उत्पन्न करती हुई भी ठंड उत्पन्न कर देती है (वस्तुतः मनुष्य को सोत्साह रखती हुई भी उसको कुण्ठित कर देती है, मूढ बना देती है)। ऊँचाई प्रदान करती हुई भी वामनता को प्रदर्शित करती है, (वस्तुतः पद अथवा स्थिति को ऊँचा कर देती है परन्तु लोभी स्वभाव अथवा चरित्र को नीच, तुच्छ बना देती है)। तोयराशि (जल का भंडार) उसका जन्म स्थान है तो भी वह प्यास बढ़ाती है, (वस्तुतः, समुद्र से उत्पन्न होती हुई भी मनुष्य की तृष्णा को बढ़ाती है)। व्यक्ति को वह ईश्वर, शिव बना देती है, तो भी वह अपने अशिव स्वभाव को प्रदर्शित करती है (वस्तुतः, मनुष्य को परमैश्वर्यवान् बनाती है तो भी स्वभाव को दुष्ट बना

बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका, विग्रह-वत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना, पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया, रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति। यथायथा चेय चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवल-मुद्वमति। तथाहि। इय सवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रिय-

---

यत्याविष्करोति। तदेव दर्शयति—तथाहीति। सतत निरन्तरमूष्माण तापमुपजनयन्त्यपि कुर्वत्यपि जाड्यं शैत्यमुपजनयतीति विरोध. शाब्द। तत्परिहारस्तूष्माण दर्प शैत्य जाड्यमित्यर्थात्। उन्नतिमादधानापि धारयन्त्यपि नीचस्वभावतामाविष्करोतीति विरोध। तत्परिहारस्तून्नतिमुत्कर्ष नीचस्वभावोऽकर्तव्य कर्मेत्यर्थात्। तोयराशि समुद्रस्तस्मात्सभवापि समुत्पन्नापि तृष्णां सवर्धयतीति विरोध। तत्परिहारस्तु तृष्णा गार्ध्यमित्यर्थात्। ईश्वरता दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमनीश्वरप्रकृतित्वमातनोतीति विरोध। तत्परिहारस्त्वीश्वरता प्रभुतामशिवमशुभमित्यर्थात्। बलोपचयमाहरन्त्यप्यानयन्त्यपि लघिमानमापादयतीति विरोध। तत्परिहारस्तु बलोपचय सैन्यसमूह लघिमानं कार्पण्यमित्यर्थात्। अमृतसहोदराप्यमृतेन सहोत्पन्नापि कटुकरसोपेतो विपाको यस्या इति विरोध। तत्परिहारस्तु कटुको दु खदायीत्यर्थात्। विग्रहवत्यपि मूर्तिमत्यप्यप्रत्यक्षमगम्य दर्शन यस्या इति विरोध। तत्परिहारस्तु विग्रहवती कलहवतीत्यर्थात्। पुरुषोत्तमरतापि खला ये दुर्जना जनास्ते प्रिया यस्या इति विरोध। तत्परिहारस्तु पुरुषोत्तमे कृष्णे रत मैथुन यस्या एवविधापि खलजनानां प्रिया वल्लभेत्यर्थात्। रेणुमयीव रजोगुणमयीव स्वच्छमपि निर्मलमपि कलुषीकरोति मलिनीकरोति। यथेति। यथायथेय लक्ष्मीश्चपला चञ्चला दीप्यते दीप्ता भवति तथातथा केवल दीपशिखेव कज्जलवन्मलिन कश्मल कर्मोद्वमत्युद्गिरति। दीपशिखापि कज्जललक्षणं यन्मलिन कर्म तदेवोद्वमति। तदेव दर्शयति--तथाहीति। तृष्णा लोभस्तल्लक्षणानां विष-

---

देती है)। यद्यपि वह मनुष्य के बल को बढ़ा देती है तो भी उसमें हलकापन (भार की कमी) उत्पन्न कर देती है (वस्तुत· मनुष्य को अत्यन्त बलशाली तो बना देती है परन्तु उसको तुच्छ बना देती है)। (एक ही स्थान से उत्पन्न होने के कारण) वह अमृत की सगी बहन होती हुई भी परिणाम में कड़वी है (वस्तुत·, उसका परिणाम दु·खदायी है)। शरीरधारिणी होती हुई भी इन्द्रियों से वह दिखायी नहीं देती (विग्रहवती का वास्तविक अर्थ यहाँ विग्रहों, सघर्षों से युक्त होना है)। सर्वोत्तम व्यक्ति से प्रेम करने वाली है तो भी दुष्टों की प्यारी है (वास्तविक अर्थ—विष्णु से आश्लिष्ट है और दुष्ट व्यक्तियों पर कृपालु है)। मानो धूल की बनी हुई हो—वह शुद्ध को धूलिमय कर देती है, (वास्तविक अर्थ—पवित्र अर्थात् ईमानदार व्यक्ति को भी बेईमान बना देती है (अथवा-पवित्र विचारों वाले व्यक्ति के विचारों को भ्रष्ट कर देती है) और जितना अधिक यह चञ्चला प्रदीप्त होती है (मनुष्य को अधिकाधिक समृद्ध बनाती है) उतना ही अधिक यह काजल के समान काले कारनामे करती है, ठीक वैसे ही जैसे कि हिलती हुई दीपशिखा जितनी अधिक जलती है वह उतने अधिक केवल काजल को ही उत्पन्न करती है। उदाहरणतया, तृष्णाओं (दुष्ट इच्छाओं) रूप बेलों को बढ़ाने वाली जलधारा है, इन्द्रियों

मृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, सगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवाद-विस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधु-

वल्लीना सवर्धने विस्तारणे वारिधारा जलश्रेणि । अत्र श्रीजलधारयोर्वृद्धिहेतुत्वेन साम्यम् । छेद-योग्यतया तृष्णावल्लयो साम्यम् । व्याधेति । व्याधगीतिर्मृगवधाजीविगानमिन्द्रियमृगाणाम-क्षहरिणानाम् । अत्र नाशकत्वसाम्याच्छ्रीगीत्यो साम्यम् । नाश्यत्वसाम्याच्चाक्षमृगयो साम्यम् । गानलुब्धाश्च मृगा हन्यन्त इति सर्वप्रसिद्धम् । सच्चरितानि सदाचरणानि तान्येव चित्राणि तेषा परामर्श आचमन तदर्थं या धूमलेखा धूमपङ्क्ति । लोके कफनिवृत्त्यर्थं द्रव्यान्तरस्य धूम्रपान कृत्वा पश्चात्स एवोदीर्यते तत्स्पर्शादेवालेख्य विनश्यतीति भाव । मोह इति । मोहो मौढ्यम्, दीर्घनिद्रा निमीलितानि (?) तासा विभ्रमशय्या विलासशयनम् । धनेति । धनानि द्रव्याणि, मदो मुन्मोहसभेद त एव पिशाचिन्यस्तासा निवासार्थं जीर्णा प्राचीना वलभी गृहोपरिभाग । तिमिरेति । शास्त्राण्येव दृष्टयस्तासा तिमिरस्य नेत्ररोगविशेषस्योद्गति प्रादुर्भाव । पुर इति । सर्वेषामविनयानां दुर्बुद्धीना पुर पताकाग्रे वैजयन्ती । उत्पत्तीति । क्रोधस्य कोपस्य य आवेगा सभ्रमास्त एव ग्राहा जलजन्तवस्तेषामुत्पत्तिनिम्नगा तटिनी । आपानेति । विषयागोचरा एव मधूनि मद्यानि तेषामापानभूमि पानगोष्ठिकास्थलम् । संगीतेति । भ्रुवां विकारा विक्रुतयस्त एव नाट्यानि तेषा सगीतशाला रङ्गशाला । आवासेति । दोषा एव दूषणान्येव आशीविषा आशी दष्ट्रा तस्या विष येषा त आशीविषा सर्पास्तेषामावासार्थं दरी गुहा । उत्सारणेति । सत्पुरुषा शिष्टास्तेषा व्यवहारा आचरणानि तेषामुत्सारण दूरीकरण तद्धेतुका

रूप हरिणों को (लुभाने के लिये) शिकारी का गीत है, सत्कार्यों रूपी चित्रो को (ढक कर) मलिन करनेवाली धुएँ की पक्ति है, मूढता (विवेकाभाव) रूपी लबी नींद के लिये विशाल शय्या है, ऐश्वर्यमद रूपी पिशाचिनियों के निवास की टूटी-फूटी (पुरानी) खुली छत है। शास्त्र रूप चक्षुओं के लिए मोतियाबिन्द की उत्पत्ति है। धृष्टता के सभी कृत्यों की अग्र पताका है। क्रोधावेग-रूपी ग्राहों (नक्रों) की पैदाइशी नदी है। विषयसुखरूपी मदिराओं की पानभूमि है। भौंहों को टेढी करना रूप अग-भगियों की सगीतशाला (रगशाला) है। दोषरूप अजगरों की माँद (उनके रहने की गुफा) है। सज्जनों (उपदेश) वचनों[1] की (लोगों को हटाने की) छड़ी है। गुणरूपी कलहसो के लिये असामयिक वर्षा है। लोकनिंदारूप फोड़ों के फैलने का (अनुकूल) स्थान है। कपटरूप नाटक की प्रस्तावना है। विषयभोगेच्छारूप हाथी की (उसके सिर पर उठायी हुई) पताका[2]

१ व्यवहार वचनम् । २ कदलिका का अर्थ कदली-कुञ्ज—यहाँ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि हाथी कदली-वन में बड़ी प्रसन्नता से विहार करता है।

भावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि त पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति। एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भजन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानता च गच्छन्ति। तथाहि। अभिषेकसमय एव चैतेषा

वेत्रलता वेत्रयष्टि। अकालेति। गुणा एव कलहसा कादम्बास्तेषामकालप्रावृड्समयो वर्षाकाल। प्रावृषि हसा नश्यन्ति। इय तु सर्वगुणाना विनाशहेतुरित्यपकर्षस्तु प्रसिद्धि। विसर्पणेति। लोकेषु येऽपवादा विरोधोक्तयस्त एव विस्फोटका शिलीन्ध्राणि तेषां विसर्पणभूमिर्विस्तरणस्थलम्। प्रस्तावनेति। कपटनाटकस्य कैतवनृत्यस्य प्रस्तावना प्रारम्भ सूत्रधारादिप्रवेश। कदलिकेति। कामकरिणो मदनगजस्य कदलिका रम्भा। वध्येति। साधुभावस्य शोभनाध्यवसायस्य वध्यशाला सूनास्थानम्। राहुजिह्वेति। धर्म सदाचार निर्मलसाम्यात्स एवेन्दुमण्डल चन्द्रबिम्बं तस्य राहुजिह्वा सैंहिकेयरसना। नहीति। हि निश्चितम्। तं पुरुष न पश्यामि नावलोकयामि। यत्तदोर्नित्याभिसबन्धात्। य पुमानपरिचितयासनिहितया निर्भरमतिशय नोपगूढो नाश्लिष्ट। यो वा न विप्रलब्धो न च विप्रतारित। नियत निश्चितम्। इय लक्ष्मीरालेख्यगता चित्रलिखितापि चलति न स्थिरा भवति। अन्येषां चित्तानि चालयतीति वा। पुस्तकेति। पुस्तकमय्यपि ज्ञानमय्यपीन्द्रजालवज्जालमाचरति। उत्कीर्णेति। उत्कीर्णा-

---

है। उत्तम भावनाओं की वध्यभूमि है। धर्मरूप चन्द्रमडल की (उसको ग्रसने वाली) राहु की जिह्वा है। ससार में मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखता हूँ (ससार में ऐसा कोई नहीं है) कि अपरिचित भी जिसका आलिंगन इसने (अचानक) न किया हो और फिर उसको ठग न लिया हो। जब किसी व्यक्ति के (मानसिक) चित्र में आ जायगी (जब कोई मनुष्य मन ही मन मे इसको मिली हुई समझने लगेगा) तब भी यह निश्चय ही (उससे दूर) चली जाती है। उसको छोड़कर चल पड़ती है। पुस्तकों में बन्द भी (अर्थात् पुस्तकों में निहित विषयवस्तु की भाति स्थिर की हुई भी)[1] (जादू की भाति) भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर देती है। (व्यक्ति के मन मे) मूर्ति के रूप में आलिखित (अकित) कर लेने पर भी (अर्थात् त्रुटियों को दूर करके उसको स्थिर कर देने के उपायों की कल्पना कर लेने पर भी) यह धोखा दे जाती है। (केवल) सुनी हुई भी कपटाचरण करती है। जब यह (केवल) सोची जाती है (अर्थात् लोग इसे केवल चाहते ही हैं किन्तु अभी प्राप्त नहीं कर पाते) तब भी यह धोखा दे जाती है। और ऐसी (उपरिवर्णित प्रकार की) भी यह दुष्ट व्यवहार करने वाली किसी प्रकार जिन राजा लोगों को स्वीकार कर लेती है—उनपर कृपालु हो जाती है, तब वे असहाय हो जाते हैं और सब प्रकार के दुष्कृत्यों के निवास-स्थान बन जाते हैं। इस प्रकार—राज्याभिषेक

---

१. 'पुस्तमयी'—पाठ अधिक उचित है। पुस्तमयी अर्थात् मिट्टी लकड़ी आदि से निर्मित पुतली-रूपा।

मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः। तथाहि। केचिच्छ्रम-

---

प्युत्कीरितापि विप्रलभते विप्रतारणा करोति। श्रुताप्याकर्णिताप्यभिसधत्ते सशय करोति। चिन्तितापि वञ्चयति वञ्चना करोति। एवविधयापि पूर्वोक्तलक्षणलक्षितयाप्यनया श्रिया दुराचारया दुष्टाचरणया कथमपि महता कष्टेन दैववशेन भाग्यवशेन परिगृहीता स्वीकृता राजानो विक्लवा विह्वला भवन्ति। सर्वेषामविनयाना दुर्बुद्धीनामधिष्ठानतामधिकरणता च गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति। चकार समुच्चयार्थं। तदेव दर्शयति—तथाहीति। अभिषेकसमये राज्याभिषेकक्षण एवैतेषां राज्ञामङ्गलकलशजलैरिव कल्याणकुम्भाम्भोभिरिव दाक्षिण्यमनुकूलता प्रक्षाल्यते धावनविषयीक्रियते। अग्नीति। अभिषेकानन्तरं होमस्य सद्भावादग्नीत्युक्तम्। अग्निकार्यं होमादि तस्य धूमेन हृदय स्वान्त मलिनीक्रियते। राज्ञामिति शेष। पुरोहितेति। पुरोहित पुरोधास्तस्य कुशाग्राणि दर्भाग्राण्येव समार्जन्यो बहुकार्यस्ताभिरिव क्षान्ति क्षमापह्रियते दूरीक्रियते। उष्णीषेति। उष्णीषो मूर्धवेष्टन स एव पट्टबन्धस्तेनेव जरा विस्रसा तस्या आगमनमागमस्तस्य स्मरण स्मृतिराच्छाद्यत आव्रियते। आतपत्रेति। आतपत्र छत्रं तस्य मण्डलेन निस्तलेन परलोकस्य भवान्तरस्य दर्शनमवलोकनमपसार्यते दूरीक्रियते। चामरेति। चामर वालव्यजन तस्य पवनैर्वीजनैरिव सत्यमवितथं वदतीत्येवशील सत्यवादी तस्य भावस्तत्ता सा अपह्रियतेऽपहरणविषयीक्रियते। वेत्रेति। वेत्रदण्डैर्वेतसयष्टिभिरिव गुणा शौर्यादय उत्सार्यन्ते दूरीक्रियन्ते। जयेति। जयशब्दस्य ये कलकलरवा कोलाहलशब्दास्तैरिव साधुवादा ख्यातयस्तिरस्क्रियन्ते न्यक्क्रियन्ते। ध्वजेति। ध्वजा वैजयन्त्यस्तेषा पटा वस्त्राणि तेषा पल्लवैः प्रान्तैरिव यश श्लोक. परामृश्यते परामर्शो

(सस्कार) के समय ही उनकी शालीनता—भद्रता, मानो मागलिक घड़ो के जल से धुल जाती है, उनका हृदय मानो अग्निहोत्र के धुएँ से काला (अनुभूति रहित) हो जाता है, उनका क्षमागुण मानो (पुरोहितों द्वारा हाथों में ली हुई) पुरोहितो की कुशाओंरूप झाडुओं से बुहार दिया जाता है—हटा दिया जाता है, बुढापे की प्राप्ति (के विचार) का स्मरण मानो पगड़ी बाँधने से ही ढक दिया जाता है (उसकी स्मृति नहीं रहती), उनका परलोकदर्शन, मानो (उनके सिर पर ताने हुए) गोल छाते से रोक दिया जाता है—उन्हे तब परलोक नहीं दिखायी देता है, उनका सत्य बोलने का गुण मानो, (उन पर डुलायी गई) चँवरियों की वायु से उड़ा दिया जाता है, उनके गुण मानो (द्वारपालों के हाथों मे की) छड़ियों से दूर भगा दिये जाते हैं, उनके (उपदेश के) शुभ वचन मानो जय-जयकार के शोर में (दब कर.) (मन्द हो जाते हैं) सुनायी नहीं देते, और उनकी कीर्ति को मानो पताकाओं के वस्त्रों के आचलों से मिटा दिया जाता है। और इस प्रकार—कुछ राजा तो, थकावट के कारण

श्रमशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः, प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते,

---

लोप स क्रियते। तदेव दर्शयति—तथाहीति। केचिन्मनुष्या। श्रमेति। श्रमवशेन प्रयासाधिक्येन शिथिल श्लथोऽदृढ शकुनेर्मयूरस्य। अन्यस्य वा पक्षिविशेषस्य यो गल. कण्ठस्तस्य यत्पुट तद्वच्चपलाभि। मयूरस्य कण्ठ श्रमवशेन चात्यन्त चपल स्यादिति तदुपमानम्। खद्योत इति। खद्योतो ज्योतिरिङ्गणस्तस्य य उन्मेषोऽवभासस्तद्वन्मुहूर्तं मनोहराभिश्चित्तहारिणीभि। मनस्वीति। मनस्विजना पण्डितलोकास्तैर्गर्हिताभिर्निन्दिताभिरेवंविधाभि सपद्भि' समृद्धिभि प्रलोभ्यमाना लोभ प्राप्यमाणाः। धनेति। धनस्य द्रव्यस्य यो लवो लेशस्तस्य लाभ' प्राप्तिस्तस्माद्योऽवलेपोऽहकारस्तेन विस्मृत विस्मरणं प्राप्तं जन्म येषां ते तथानेके दोषा दूषणानि तैरुपचितेन व्याप्तेन। रागावेशेनेति। राग इच्छारुण्य च तेषामावेशस्तन्मयीभावस्तेन बाध्यमाना पीड्यमाना। केनेव। दोषेति। दोषं दुष्टं यदसृक्त तेनेव। तत्रापि रागो भवत्येवेति साम्यम्। विविधेति। विविधा येऽनेके विषया गोचरास्त एव ग्रासा गुडेरकास्तत्र लालसैर्लम्पटै। पञ्चभिरिति। पञ्चभिरपि प्राणप्रमितसंख्यैरपि चक्षुरादिभिरपि शतसहस्रता लक्षतामुपगतेन प्राप्तेन अनेकसहस्रसंख्यैरिन्द्रियै करणैरायास्यमाना. परिक्लिश्यमाना। प्रकृतीति। प्रकृत्या स्वभावेन चञ्चलश्चपलस्तस्य भावस्तत्ता तया लब्ध प्रसरोऽवकाशो येनैवभूतेनैकेन मनसा चित्तेनाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुत्पिञ्जलतामुपयान्ति

लटकी हुई किसी पक्षी की खोखली गर्दन के समान अस्थिर, जुगनू की चमक के समान केवल क्षण भर के लिये ही सुन्दर दिखायी देतीं और (सभी) उच्चमनस्क व्यक्तियों द्वारा निंदित धनसम्पदाओं के लोभ मे पड़ कर, थोड़े धन की प्राप्ति के कारण हुए अभिमान से (अपने) जन्म (के समय की अवस्था को) भूलकर, विविध प्रकार के दोषों—दुष्कृत्यों से अभिवर्धित प्रणयोन्माद रूपी विभिन्न वातपित्तादि रूप मलिनताओं से भरे दुष्ट रक्त से दुःखी हो रहे, विविध विषयों का आस्वाद लेने को लालायित, (इसी कारण) पाँच होती हुई भी गिनती में कई सहस्र प्रतीत होती हुई इन्द्रियों द्वारा दु:खी किये जाते, और अपनी स्वाभाविक चञ्चलता के कारण (फैलने के लिये) खुला निर्गम मार्ग प्राप्त किये हुए, (इसी कारण) एक होते हुए भी मानो लाखों बने हुए अपने मन द्वारा दु:खी किये जाते हुए—परेशान हो जाते हैं। मानो उन्हे दुष्ट ग्रह पकड़ लेते हैं, भूत मानो उन पर चढ़ बैठते हैं, मत्र मानो उन्हें वश में कर लेते हैं, मानो सत्त्व, दुष्ट प्राणी, उन्हें (उनके अगो को) निश्चेष्ट कर देते हैं, वायु (द्वारा उत्पादित प्रलाप) से तिरस्कृत किये जाते हैं, और मानो पिशाच उन्हें पकड़ लेते हैं—पूर्णतया

मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक्परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण सचार्यन्ते, मृषावादविपाकसजातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कम्पितलोचना इव तेजस्विनो

गच्छन्ति । ग्रहैरिति । ग्रहै शनैश्चरादिभिरिव गृह्यन्ते ग्रहणविषयीक्रियन्ते । भूतै पिशाचैरिवाभिभूयन्ते । मन्त्रैरिति । मन्त्रा देवाधिष्ठातृकास्तैरिवावेश्यन्ते मन्त्रेणान्यत्रावेश क्रियते । यथा भूतमन्यत्र प्रवेश्यते । सत्त्वैरिव दुष्टप्राणिभिरिवावष्टभ्यन्ते हठेन गृह्यन्ते । वायुनेव पवनेनेव विडम्ब्यन्त इतस्ततो विक्षिप्यन्ते । पिशाचैरिव राक्षसैरिव ग्रस्यन्ते भक्ष्यन्ते । मदनेति । मदनशरै कामबाणैर्मर्मस्थल आहतास्ताडिता इव मुखभङ्गसहस्राण्याननविकृतिसहस्राणि कुर्वते घटयन्ति । धनेति । धनस्य द्रव्यस्योष्मा तापस्तेन पच्यमाना पाकविषयीक्रियमाणा इव विचेष्टन्ते । विविधां चेष्टा कुर्वन्तीत्यर्थ. । गाढेति । गाढस्तीव्रो य प्रहारो लगुडादिना कुट्टनन तैराहता इवाङ्गानि हस्तपादादीनि न धारयन्ति न धर्तुं शक्नुवन्तीत्यर्थ । कुलीरेति । कुलीरा इव कर्कटा इव तिर्यक्तिरश्चीना एव परिभ्रमन्ति परिभ्रमण कुर्वन्ति । अधर्मेति । अधर्मेणासदाचरणेन भग्ना भङ्ग प्राप्ता गतिर्गमन सत्कर्मणि वृत्तिश्च येषामेवभूता पङ्गव इव खञ्जा इव परेणान्येन सचार्यन्ते सचरणशीला क्रियन्ते । मृषेति । मृषावादोऽसत्यभाषण तस्य विपाक परिणामस्तेन सजात समुत्पन्नो मुखरोगो येषामेतादृश इवातिकृच्छ्रेणातिकष्टेन जल्पन्ति ब्रुवन्ति । सप्तेति । सप्तच्छदतरव इव विषमच्छदवृक्षा इव कुसुमानि नेत्राणि तेषा ये रजोभिर्गुणैर्विकारा विकृतयस्तै । पक्षे कुसुमरजोविकारै पुष्परागविकृतिभि । 'कुसुम स्त्रीरजो नेत्रे' इत्यनेकार्थ । पार्श्ववर्तिना समीपस्थायिना शिर शूल मस्तकव्यथा-

---

अपने वश मे कर लेते हैं। कामदेव के बाणों द्वारा मर्मस्थानो पर ताड़ित हुए ही मानो, वे (भौहो की वक्रता आदि) सहस्रों प्रकार से अपने मुँह बिगाड़ते हैं मानों धन की ऊष्मा से उबाले जाते हुए वे उन्मत्त चेष्टाएँ करते हैं। मानो गहरी चोटों से घायल हुए वे अपने अगों को नहीं सँभाल पाते हैं (अर्थात् वे गिर पड़ते हैं और उन्हे उनके सेवक सँभालते हैं)। वे टेढे चलते हैं (कुटिल आचरण करते हैं) मानों कि केंकड़े हों। अपने अधर्म (अन्याययुक्त) कृत्यो द्वारा उनकी गति, कार्य करने की क्षमता, भग हो जाती है और इस कारण (स्वय) चलने में असमर्थ लँगड़ों की भाँति उन्हे दूसरे ही चलाते है। असत्य-भाषण के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुए मुखरोग वालों की भाँति वे बड़ी कठिनता से बातचीत (करने को सहमत) होते हैं। जैसे गेंदे के पौधे अपने फूलों के पराग की क्रिया से समीपवर्तियों के सिर मे पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं—वैसे ही वे कुसुम अर्थात् नेत्ररोग रूप रजोगुण के परिणामों (परिणामभूत अपनी दृष्टियो) से अपने समीपवर्तियों के सिर में दर्द उत्पन्न कर देते हैं। मरणासन्न व्यक्तियों की भाँति अपने सम्बन्धियों को भी नहीं पहचानते, दु खती आँखों वाले

नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माण न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकाल-

---

मुत्पादयन्ति जनयन्ति। सप्तपर्णकुसुमरजस शिर शूलोत्पादकत्व वैद्यके प्रसिद्धम्। आसन्नेति। आसन्न समीपवर्ती मृत्युर्येषा त एवविधा इव बन्धुजनमपि स्वजनमपि नाभिजानन्ति नोपलक्षयन्ति। उद्दिति। उत्प्राबल्येन कम्पित धूत लोचन नेत्र येषामेवविधा इव तेजस्विन प्रतापवत पुरुषान्नि स्पृहान्नेक्षन्ते नावलोकयन्ति। पक्षे तेजस्विन सूर्यादिकान्। कालदष्टेति। निषिद्धकाले सध्यादिरूपे दष्टा भक्षिताः। सर्पेणेति शेष। एवविधा इव महामन्त्रैर्जाङ्गुलीप्रभृतिभि षाड्गुण्यादिभिरपि न प्रतिबुध्यन्ते न प्रबोध प्राप्नुवन्ति। जातुषेति। जातुषाभरणानि लाक्षानिष्पन्नभूषणानीव सोष्माण तेजस्विन पुरुष न सहन्ते न मृष्यन्ति। दुष्टेति। दुष्टवारणा इव मदोन्मत्तगजा इव महानत्युत्कृष्टो यो मानोऽहंकारस्तल्लक्षणो यः स्तम्भ स्थूणा तेन निश्चलीकृता स्तब्धता प्रापिता सन्त उपदेश शिक्षा न गृह्णन्ति नाददते। गजपक्षे महन्मान यस्यैवविधो य स्तम्भ आलानस्तम्भस्तेन निश्चलीकृता नद्धा सन्त उपदेश हस्तिपकवाक्य न गृह्णन्ति। अवगणयन्तीत्यर्थ.। तृष्णेति। तृष्णैव विषं गरल तेन मूर्च्छिता भ्रान्ता कनकमय सुवर्णमयमिव सर्वं पश्यन्ति विलोकयन्ति। इषव इति। पान मधुपान निशान

(रोगी नेत्रों वाले) व्यक्ति जैसे चमकते पदार्थों पर दृष्टि नहीं डाल सकते, ऐसे ही वे तेजस्वी व्यक्तियों को नहीं देख सकते। जैसे काल अर्थात् घातक काले साँपों से डसे व्यक्ति शक्तिशाली मन्त्रों से भी पुन जीवित नहीं हो सकते, ऐसे ही वे सर्वोत्कृष्ट उपदेशों से भी जगाये नहीं (कर्मशील नहीं बनाये) जा सकते। लाख के आभूषण जैसे उत्तप्त वस्तुओं (की उपस्थिति) को नहीं सहन कर सकते (गरम पदार्थ की समीपता में वे पिघल जाते हैं), वैसे वे (अपने समीप) तेजस्वी पुरुषों को नहीं सहन कर सकते। जैसे पागल हाथी अपने बड़े भारी बन्धन-स्तम्भ से बाँध कर निश्चल किये गये (अपने चालकों के निर्देश नहीं सुनते), वैसे ही वे अपने भारी अभिमान के कारण उत्पन्न निरुत्साह द्वारा अचेतन किये गये उपदेश को ग्रहण नहीं करते—उस ओर ध्यान ही नहीं देते। तृष्णा-सरीखे विष (के प्रभाव) से अचेतन हुए प्रत्येक पदार्थ को सोने से निर्मित देखते हैं, वैसे ही वे लालच के विष से मूर्छित हुए सभी पदार्थों को सोने के बने हुए समझते हैं। पत्थर पर सान देने से अधिक पैने हुए बाण शत्रु द्वारा चलाये जाकर विनाश कर देते हैं, वैसे ही वे, मद्यपान द्वारा अधिक क्रूर होकर दूसरों द्वारा उभाड़े जाकर नष्ट कर देते हैं। साम दान दण्ड भेद इन चार रूपों में से चौथे, अर्थात् दण्ड का उपहार करके (दण्ड देने के लिये सेना भेजकर) वे दूर-दूर अवस्थित भी बड़े-बड़े परिवारों को इस प्रकार विनष्ट कर देते हैं जैसे कि लोग वृक्षों पर दूर ऊँचाई पर स्थित (लगे हुए) भी फलों को उन पर डण्डे फेंक-फेंक कर नीचे गिरा लेते हैं। सुन्दर आकृतियों वाले (देखने मे सुन्दर)

कुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसख्यतामुपगता

घर्षण च ताभ्या वर्धित तैक्ष्ण्य मदक्रौर्य प्रहारशक्तिश्च येषामेवविधा इषव इव बाणा इव परोऽन्यो मन्त्री च ताभ्या प्रेरिता नोदिता विनाशयन्ति विनाश जनयन्ति। दण्डो यष्टिर्भागधेयश्च तयोर्विक्षेपा प्रहारा दुर्दिनानि च तैर्दूरस्थितान्यपि दविष्ठदेशवर्तीन्यपि फलानीव सस्यानीव महाकुलानि महाभिजनानि शातयन्ति पीडयन्ति पातयन्त्यपि च। अकालेति। मनोहराश्चित्तहारिण्य आकृतय आकारा येषामेवविधा अपि राजानो लोकविनाशहेतवो भवन्ति। सदाकृतिसाम्यादुपमानान्तरमाह—अकालेति। अकालेऽऋतौ कुसुमप्रसवा इव। तदुक्तम्—'द्रुमौषधिविशेषाणामकाले कुसुमोद्गम। फलप्रसवयोर्बन्ध महोत्पात विदुर्बुधा'। श्मशानाग्नय इति। श्मशान प्रेतवन तस्याग्नय इवातिरौद्रा अन्येषा भयोत्पादिका भूति सपद्येषा ते तथा। पक्षेऽतिक्रूरा भूतिर्भस्म येषु। तैमिरिकेति। तिमिरं नेत्ररोग स सजातो येषा ते तैमिरिकास्त इवादूरदर्शिन। भाविन दोष न पश्यन्तीत्यर्थ। दूर परलोक न पश्यन्तीत्यर्थो वा। पक्षेऽदूरदर्शिन समीपस्थितवस्तुविलोकिन। उपसृष्टेति। उपसृष्टा बहिःकृता इव क्षुद्रैर्विटैरधिष्ठितमाश्रित भवन गृह येषा ते तथा। श्रूयमाणा इति। श्रूयमाणा आकर्ण्यमाना अप्युद्वेजयन्त्युद्वेग जनयन्ति। क इव। प्रेतपटहा इव। यथा मृतकवाद्यानि निर्वेदमन्येषा समुत्पादयन्तीत्यर्थ। कस्मिंश्चिद्देशे मृतकाना पुरस्ताद्वाद्यानि वाद्यन्त इति देशाचार। चिन्त्येति। चिन्त्यमाना अपि चेतसि स्मर्यमाणा अपि महापातक स्त्रीहत्यादि तदध्यवसाया इव तदभिप्राया इवोपद्रव वञ्चकादिदु खमुपजनयन्ति निष्पादयन्ति। अन्विति। अनुदिवस प्रतिदिवम पापेनैनसापूर्यमाणा क्रियमाणा

भी वे लोकों को नष्ट करने के कारण बनते है, जैसे कि (किसी वृक्ष पर) समय से पूर्व लगे हुए फूल विनाश के सूचक होते हैं। श्मशान की अग्नि की (भूति) राख जैसे भयानक होती है, वैसे ही उनका ऐश्वर्य भी बहुत भयानक होता है। जैसे मोतियाबिन्द अथवा अल्प दृष्टि-दोष वाले व्यक्ति दूर (की वस्तु) को नहीं देखते—वे भी दूर भविष्य की बातों को नहीं सोच सकते। जैसे कि (उपसृष्ट) भूताविष्ट जन ऐसे होते हैं कि उनके घर (क्षुद्रा) मधु-मक्खियो से भरे रहते हैं—उनके घरो मे नीच जनो ने अधिकार कर लिया होता है। (शवयात्रा मे बजाये जाने वाले) मृतकवाद्य जैसे (केवल) सुने जाकर भी घृणा अथवा ऊब उत्पन्न कर देते है ऐसे ही उनकी बातें सुनकर ही उकताहट उत्पन्न होती है। उनके विषय में (केवल) सोचने पर ही वे सकट उत्पन्न कर देते हैं जैसे कि बड़े पाप करने का निश्चय मात्र ही सकट का कारण हो जाता है। प्रतिदिन (धन सम्पत्ति से) भरे जाकर उनके शरीर फूल (कर कुप्पा हो) जाते हैं—मानो कि वे पापों से फूल गये हों और इस अवस्था में पहुँचे हुए वे सैकड़ों पापों के लक्ष्य[1] बन जाते है और अपने पतन को भी ऐसे

1 शरव्य लक्ष्यम्।

वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति। अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीधूर्तबकैर्द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता

इवाध्मातमूर्तय स्थूलदेहा भवन्ति। तदिति। सैवावस्था येषा ते तदवस्था। च समुच्चयार्थे। एवविधा व्यसनाना द्यूतादीनां शत तस्य सख्यता मित्रतामुपगता प्राप्ता.। 'शरव्यताम्' इति पाठे तु शरव्य लक्ष्य तस्य भावस्तत्त्वमुपगता इत्यर्थ। वल्मीकेति। वल्मीकमुपदेहिकागृह तस्य तृणानि नडादीनि तेषामग्राणि प्रान्तानि तेष्ववस्थिता ये जलबिन्दवस्त इव पतितमपि मनुष्यजन्मन. स्खलमप्यात्मान नावगच्छन्ति न जानन्ति। अपरे त्विति। अपरेऽन्ये। तु पुनरर्थे। राजान। श्रीमता दोषान्तरमप्याह—अपरे त्विति। इति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिर्धूर्तैर्विप्रतारकै स्तुतिभि प्रतार्यमाणा सर्वजनस्योपहास्यतामुपहासयोग्यतामुपयन्ति प्राप्नुवन्तीत्यन्वय। कीदृशैर्धूर्तैं। स्वेति। स्वस्यात्मनो योऽर्थ प्रयोजन तस्य निष्पादन करण तत्र परैस्तत्परै। धनमिति। धन द्रव्य तदेव पिशित मास तस्य ग्रासो ग्रहणं तस्मिन्। गृध्रैर्दूरदृग्भिर्यथा तथा। द्रव्यार्जनपरैरित्यर्थ। आस्थानेति। आस्थान नृपोपवेशनस्थल तदेव नलिनी कमलिनी तस्या बकैर्धूर्तै। यथा बका नलिनीमाश्रित्य तदाश्रयबलेन स्वात्मानमाच्छाद्य येन केन प्रकारेण परान्वञ्चयित्वाकस्मादेव परान्भक्षयन्ति तद्वदास्थानबलेन परान्वञ्चयित्वा स्वानि भक्षयन्ति। इतिशब्दार्थमाह—द्यूतमिति। द्यूत दुरोदर विनोद क्रीडामात्रम्। न चैतद्विहिते किंचित्पातकमस्तीति भाव। परेति। परदारा परस्त्रियस्तेषामभिगमनं सभोगो वैदग्ध्यमिति चातुर्यमित्यर्थ। मृगयेति। मृगयां मृगव्या श्रम इति। 'अभ्यासः खुरलीति श्रमो योग्याभ्यास' इति कोश। न तु परप्राणव्यापादनजनित किमपि पातकमस्तीति भाव। पानमिति। पान मद्यादीना। विलास इति। विलसितमित्यर्थ।

ही नहीं जान पाते जैसे कि बामी पर की घास (के पत्तों) के अग्र भाग पर लटकते जल के बिन्दु अपने गिरने को नहीं जान पाते, (वे बामी की मिट्टी में शीघ्र ही सोख लिये जाते हैं)।

फिर दूसरे राजा, बहकाने में कुशल, अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हुए, धनरूपी मास को निगलने वाले गीधों सरीखे, (राजकीय) सभाभवन-रूपी नलिनी को घेरे हुए दुष्ट बगुलों सरीखे, दुष्ट व्यक्तियों द्वारा केवल अलौकिक जनों के लिये ही उचित स्तुतियों से ठगे जाते हुए, सभी लोगों की हँसी के पात्र हो जाते हैं। दुष्ट उनके दोषों को भी गुण बता बताकर भीतर ही भीतर हँस रहे होते हैं। ये दुष्ट जुआ (खेलने) को मनोविनोद बताते हैं, दूसरों की स्त्रियों के सतीत्वहरण को चतुराई, शिकार करने को व्यायाम करना, मद्यपान को क्रीड़ा, लापरवाही को शूरवीरता, अपनी पत्नी को छोड़ देने को—उसकी उपेक्षा को, विषयभोग में अत्यासक्ति का अभाव, गुरु अथवा बड़े के उपदेश के अनादर को दूसरों से शासित न होना, (अपराध करने पर) अपने सेवकों की ताड़ना न करने को, इस बात का चिह्न कि इसकी

सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्तगीतवाद्यवेश्याभिसक्ति रसिकतेति, महापराधावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमानं महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्यातिं यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता

प्रमत्ततामिति । प्रमत्तता क्षीबता शौर्यं सुभटकृत्यमिति । स्वेति । स्वस्य दारा स्त्री तस्याः परित्यागः त्यजनमभ्यर्सनितानासक्तिता इति । ननु धर्माधिक्यम् । गुरुरिति । गुरुर्हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा तस्य वचनं वचस्तस्यावधीरणमुल्लङ्घनमपरप्रणेयत्वमनन्यवश्यत्वम् । 'वश्य - प्रणेय' इति कोशः । गुरुवचनावधीरणेन क्रूरोऽयं प्रभुरिति भिया परे सामन्तादयो वश्यत्वं प्रतिपद्यन्त इति तेषामाशयः । अजितेति । शिक्षार्थं ताडिता भृत्या यस्य राज्ञः सम्यक्सेवां कुर्वन्ति स जितभृत्योऽन्यस्त्वजितभृत्यस्तस्य भावस्तत्ता ताम् । इदं च नृपतेर्दूषणम् । वैगुण्ये भृत्यानामवश्यं शिक्षा प्रदातव्येति राजचिह्नम् । तदुक्तम्—'शठदमनमशठपालनमाश्रितभरणं च राजचिह्नानि' इति । तस्मिन्सुखोपसेव्यत्वं सुखेनोपसेवितुं योग्यः सुखोपसेव्यस्तस्य भावस्तत्त्वम् । सुखोपसेव्योऽयं नृप इति लोके ख्यातिमात्रं गुण आरोप्यते । नृत्तेति । नृत्तं नाट्यम्, गीतं गानम्, वाद्यमातोद्यम्, वेश्या वारवधूः, तास्वभिसक्तिमत्यासक्तचित्तता रसिकता रसाभिज्ञता इति । महेति । महापराधानां कौरवयुद्धादीनामवकर्णनं श्रवणं महानुभावता महाधर्मिष्ठता । श्रदानृत्ववशात् । मागधादिभिर्विहितस्य गालिप्रदानादिपराभवस्य तिरस्कृतेः सहत्वं क्षमेति क्षान्तिः । स्वच्छन्दता निरवग्रहता प्रभुत्वमैश्वर्यम् । देवेति । देवा अर्हदादयस्तेषामवमाननमवगणनं महासत्त्वता महाधैर्यता । वन्दीति । वन्दिजना मागधादयस्तेषां ख्यातिं प्रसिद्धिम् । यश श्लोक इति । एतेन पण्डितजनप्रदानं न शोकजनकमिति भावः । तरलता चपलतामुत्साहः प्रगल्भता इति । अवीति । अविशेषज्ञता विशेषाविशेषानभिज्ञतामपक्षपातित्वं माध्यस्थ्यमिति । अत्र 'द्यूतम्' इत्यारभ्य पूर्वपूर्वस्योद्देश्यतयोत्तरोत्तरस्य बाध्यमानतया पूर्वस्मिन्दोषः उत्तरस्य गुणस्यारोपः । अत्राध्यारोपकलक्षणे रूपकव्यासङ्गजनकत्वं सातिशयसुखजनकत्वादिकं साम्यं स्वयमूहनीयम् । अथ धूर्तान्विशेषयन्नाह—अन्त इति । अन्तर्मध्ये स्वयमप्यात्मनापि विहसद्भिर्हास्यं कुर्वद्भिः । अस्मद्विप्रतारणानभिज्ञ इति हास्यनियामकम् । प्रतारणं वञ्चना तत्र कुशलैरभिज्ञैः । किं क्रियमाणा धनिनः । अमानुषलोको देवलोकस्त-

---

सेवा करना सरल है, नाचने, गाने, बजाने तथा वेश्याओं के संग की आदत को रसिकता (का प्रमाण), बड़े बड़े अपराधों को सुनकर (उनकी अपेक्षा करने को) मन की साधुता, अपने अनादर को सह लेने को क्षमा, अपनी मनमानी करने को अपनी प्रभुता स्थापित करना, देवताओं का अपमान करने को भारी (नैतिक) शक्ति का चिह्न, भाटों द्वारा की गयी स्तुति को यश, उतावलेपन को उत्साह, (भले-बुरे में) भेद न समझने को निष्पक्षपातता,—इस प्रकार दोषों को भी गुण बताते हैं। ऐसे राजाओं का मन धन के अभिमान से पागल होता है,

निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणा प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति। आत्मविडम्बना चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसंभावनोपहताश्चान्तःप्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। संभाषणमपि संविभागमध्ये

स्तोचिताभिर्योग्याभि। स्तुतेर्विशेषणम्। वित्तेति। वित्तस्य द्रव्यस्य मदस्तेन मत्तं चित्तं येषां ते तथा। अतएव निश्चेतनतया निर्गता चेतना ज्ञानं यस्मात्तस्य भावस्तत्ता तया। तथैवेति। यथा यथा प्रतार्यमाणस्तथैवेत्यर्थः। आत्मन्यारोपितं स्थापितमलीकं मिथ्याभिमानं यैस्ते तथा मर्त्यधर्माणोऽपि मर्त्यस्य मनुष्यस्य धर्मा गमनादयो येषामेवंविधा अपि। दिव्येति। दिव्या देवसंबन्धिनो येंऽशा भागास्तैरवतीर्णमुत्पन्नमिव सदैवतमिव देवताधिष्ठितमिवातिमानुषं कर्मातिक्रम्य वर्तमानमात्मानमुत्प्रेक्षमाणा मन्यमाना। प्रारब्धेति। प्रारब्धा या दिव्योचिता देवजनयोग्याश्चेष्टाः क्रियास्ताभिरनुभावो माहात्म्यं येषां ते तथा। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। अनुजीविना जनेन सेवकजनेन क्रियमाणां विधीयमानामात्मविडम्बनामसद्गुणारोपलक्षणामभिनन्दन्ति प्रशंसन्ति। चकारः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थः। विभूतिमता राज्ञा पुनर्दोषान्तरमाह—मनसेति। देवताया हरिहरादेरध्यारोपणम् आरोपणं तेन विप्रतारणं वञ्चनं तस्मादिति। असदिति। असद्भूतासद्रूपा या संभावना। देवरूपत्वेन निश्चयस्तेनोपहता विनष्टबुद्धय। देवत्वाध्यारोपत्वनिमित्तमूलानि प्रदर्शयन्नाह—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये प्रविष्टमपरमन्यद्भुजद्वयं यस्मिन्नेवंविधमिवात्मनो बाहुयुगलं स्वकीयं भुजयुगं संभावयन्ति संभावनाविषयीकुर्वन्ति। एतेन स्वस्मिंश्चतुर्भुजत्वं स्थापितम्। त्रिनेत्रत्वमप्याह—त्वगिति। त्वक्कृत्तिस्तयान्तरितं पिहितं तृतीयलोचनं यस्मिन्नेतादृशं स्वललाटं निजालिकमाशङ्कन्त आरेकाविषयीकुर्वते। दर्शेति। लोकानां

वे सब प्रकार की चेतनता को गँवा देने के कारण ये सब ऐसे ही हैं—(जैसा कि धूर्त कहते हैं) यह मानकर अपने आप झूठे अभिमानी बन जाते हैं और स्वयं मरणशील होते हुए भी अपने-आप को दिव्य आत्माओं का अंशावतार सरीखा, दिव्यता से परिपूर्ण-सा मानते हुए ऐसी चेष्टाएँ करने लगते हैं जो केवल दिव्य पुरुषों के लिये ही उपयुक्त हैं और इस प्रकार सबकी हँसी के पात्र बन जाते हैं। और अपने भृत्यों द्वारा की गयी अपनी (देवताओं के भृत्यों के रूप में) नकल का स्वागत करते हैं। मन से अपने आप में देवतापन के अध्यारोपण द्वारा ठगे जाने के कारण तथा (असद्भूत) विवेक वर्जित धारणा के वशीभूत हुए अपनी दोनों भुजाओं के भीतर छिपी हुई दूसरी दो भुजाओं वाला समझते हैं (वे अपने आपको इस प्रकार विष्णु समझ लेते हैं), वे अपने मस्तक को (उसकी) त्वचा के भीतर छिपी हुई तीसरी आँख वाला (अतएव अपने आप को शिव भगवान्) समझ लेते हैं। अपने दर्शन देने को भी कृपा समझते हैं। किसी को देख भर लेने को ही उस पर

कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने । सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य

दर्शनप्रदानं स्वात्मप्रकटनमनुग्रहं प्रसादं गणयन्ति मन्यन्ते । दृष्टीति । दृष्ट्याश्चक्षुषः पातमवलोकनं तदप्युपकारपक्षे उपकृतिपक्षे स्थापयन्ति निक्षिपन्ति । सम्भाषेति । सम्भाषणं जल्पनं तदपि संविभागं पारितोषिकं दानं तन्मध्ये कुर्वन्ति । पारितोषिकतुल्यं गणयन्तीत्यर्थः । आज्ञामिति । आज्ञामपि निदेशमपि वरप्रदानं समीहितप्रदानं मन्यन्ते जानन्ति । स्पर्शं संश्लेषस्तदपि पावनं पूतं पवित्रमाकलयन्ति विचारयन्ति । मिथ्येति । मिथ्या वृथा यो माहात्म्यगर्वो माहात्म्याभिमानस्तेन निर्भरा भृता देवताभ्योऽर्हद्भ्यो न प्रणमन्ति नमस्कारं न कुर्वन्ति । द्विजेति । द्विजातीस्त्रयीमुखान्न पूजयन्ति वस्त्रपात्रादिप्रदानेन न सत्कुर्वन्तीत्यर्थः । मान्यानिति । मान्यान्माननीयान्न मानयन्ति न सम्मानं ददते । नेति । अर्चनीयानर्चायोग्यान्नार्चयन्ति नार्चां कुर्वन्ति । नेति । अभिवादनार्हानुपसंग्रहयोग्यान्नाभिवादयन्ति न पादग्रहणं कुर्वन्ति । नेति । गुरून्हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टॄन् न अभ्युत्तिष्ठन्ति नाभ्युत्थानं कुर्वन्ति । अनर्थकेति । अनर्थको निष्फलो य आयासः प्रयासः श्रातस्मार्तकर्मणि क्लेशस्तेनान्तरितं व्यवहितमुपभोगोऽङ्गनालिङ्गनस्तज्जनितं सुखं सातं यस्येति कृत्वा विद्वज्जनं विबुधजनमुपहसन्त्युपहासं कुर्वन्ति । जरेति । जरा विस्रसा तस्या वैक्लव्यं विकलता तेन प्रलपितं जल्पितमिति कृत्वा वृद्धानां स्थविराणामुपदेशं शिक्षां पश्यन्ति । जानन्तीत्यर्थः । आत्मेति । आत्मनः स्वस्य या प्रज्ञा बुद्धिस्तस्याः परिभवः पराभव इति कृत्वा सचिवोपदेशाय प्रधानशिक्षाया असूयन्त्यसूयां कुर्वन्ति । हितेति । हितवादिने यथास्थितवादिने

उपकार गिनते हैं । (किसी व्यक्ति से) बात कर लेने को (उसको) पारितोषिक देना गिन लेते हैं । (किसी को) आज्ञा देने को (उसको) वर देना गिन लेते हैं । (किसी को) छू लेने को (उसको) पवित्र करना मानते हैं । और झूठे बड़प्पन के अभिमान से भरे हुए (फूले हुए) वे देवताओं को प्रणाम नहीं करते । ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते, पूजनीय व्यक्तियों का आदर नहीं करते; जिनको प्रणाम करना चाहिए उनको प्रणाम नहीं करते, अपने बड़ों (अथवा गुरुओं) का स्वागत करने के लिये (अपने आसन से) नहीं उठते । ये विद्वानों की यह समझकर हँसी उड़ाते हैं कि ये तो व्यर्थ श्रम में लगे हुए (सुख-भोग नहीं करते) हैं । वे वृद्ध पुरुषों के उपदेश को सठियाये की बकवास मानते हैं । मन्त्री की सलाह को अपनी बुद्धि का निरादर समझकर उसका निरादर करते हैं । कल्याणकारी उपदेश देने वाले पर क्रुद्ध हो जाते हैं । सब प्रकार से वे उसका ही स्वागत करते हैं, उससे ही बात करते

वचन शृण्वन्ति तत्र वर्षन्ति, त बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसंधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहज-

---

कुप्यन्ति कोप कुर्वन्ति। सचिवोपदेशाय हितवादिन इति चतुर्थी। द्वयमपि 'क्रुधद्रुह—' इत्यादिना सम्प्रदानसंज्ञायां सत्यां ज्ञेयम्। एतादृश पुरुष सर्वथा स्तुवन्तीत्याशयेनाह—तमिति। त पुरुष सर्वथा सर्वप्रकारेणाभिनन्दन्ति प्रशसन्ति। तयालपन्त्यालाप कुर्वन्ति। त पुरुष पार्श्वसमीपे कुर्वन्ति रक्षयन्ति। त सवर्धयन्ति वृद्धिं प्रापयन्ति। तेनेति। तेन पुरुषेण सह सुख यथा स्यात्तथावतिष्ठन्तेऽवस्थान कुर्वन्ति। तस्मायिति। तस्मै पुरुषाय ददति प्रयच्छन्ति। तमिति। त पुरुष प्रति मित्रता सुहृद्भावतामुपजनयन्ति निष्पादयन्ति। तस्येति। तस्य पुरुषस्य वचन वाक्य शृण्वन्ति। तत्रेति। तस्मिन्पुसि वर्षन्ति पुन.पुन प्रदान कुर्वन्ति। त पुरुष बहु मन्यन्ते। अत्युत्कृष्टतया जानन्तीत्यर्थ। तमिति। तं प्रत्याप्ततां शिष्टतामापादयन्ति प्रतिपादयन्ति। तच्छब्दस्य यच्छब्दसाक्षेपादाह—य इति। यः पुमानहर्निशमहोरात्रम् अनवरत निरन्तर विगतमन्यकर्तव्य यस्यैवभूत उपरचिताञ्जलि सयोजितकरपुटोऽधिदैवतमिवष्टदेवतामिव स्तौति नवीति। यो वेति। यो माहात्म्य तद्गुणवर्णनलक्षणमुद्भावयत्युद्भावना करोति। विभूतिमतां पुनर्दोषान्तरमाह—किं वेति। तेषां विभूतिमतां वाथवा किं साम्प्रतं युक्त येषां विभूतिमतामतिनृशसप्रायोऽतिनिस्त्रिंशबहुल उपदेश शिक्षा निर्गता घृणा दया यस्मादेतादृश कौटिल्यशास्त्र यामलादि प्रमाणमिति। अभिचारक्रिया कृत्याप्रतिकृत्यादिरूपक्रिया। क्रूरेति। क्रूरा निस्त्रिंशैकाद्वितीया प्रकृति स्वभावो येषामेवविधा पुरोधस पुरोहिता गुरवो धर्मोपदेशका परेषामितरेषामभिसधान निरोधस्तत्र परास्तत्परा मन्त्रिण सचिवा उपदेष्टार शिक्षादायका। नरेति। नरपतीनां यत्सहस्रं तेन भुक्ता चासावुज्झिता त्यक्ता चेति कर्मधारय। एवंविधायां

है, उसीको अपने पहलू मे बिठाते हैं, उसीको आगे बढाते हैं, उसीके साथ सुख से बैठते हैं, उसीको देते हैं, उसीसे मित्रता करते है, उसीका कहना सुनते है, उसी पर (अनुग्रह की) वर्षा करते है, उसीका आदर करते हैं, उसीको अपना विश्वसनीय बनाते हैं, जो दूसरे (कर्तव्य) कामों को छोड़े हुआ, हाथ जोड़े हुआ, रात दिन, उनको देवता की भाँति निरन्तर स्तुति करता रहता है अथवा उनके बड़प्पन की घोषणा करता रहता है। अथवा उनके लिये कौन सा काम उचित है (ऐसे राजाओं की दृष्टि मे कौन सा उपयुक्त कार्य है) कि जिनका (कार्य करने के लिये) प्रामाणिक ग्रंथ अत्यन्त क्रूर कर्मों के उपदेश से भरा कौटिल्यशास्त्र (अर्थशास्त्र) ही है, जिनके आध्यात्मिक आदर्श वे पुरोहित हैं जिनके स्वभाव, वधजनक क्रूर कृत्यों के करने के कारण, अत्यन्त क्रूर हो गये हैं, जिनके परामर्शदाता दूसरों को ठगने मे कुशल मन्त्री हैं, सहस्रों राजाओं द्वारा भोग कर छोड़ी हुई लक्ष्मी म जिनका गहरा लगाव है, मारने के लिये निर्दशा से युक्त शास्त्रों (का अध्ययन करने) मे जो उद्यम करते हैं और जो अपने स्वाभाविक स्नेह से

प्रमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः। तदेवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे विटैः न प्रतार्यसे कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण,

---

लक्ष्म्यामासक्ति प्रेमाधिक्यम्। मारणेति। मारण व्यापादन तदेवात्मा स्वरूपं येषा तथाविधेषु शस्त्रेष्वभियोग उद्यम। सहेति। सहज स्वारसिक यत्प्रेम तेनार्द्र स्विन्नं हृदय येषा मत एवानुरक्ता एतादृशा भ्रातर सहोदरा उच्छेद्या मूलत उन्मूलनीया। प्रकृतमुपसहरन्नाह—तदेवमिति। तदिति हेत्वर्थे। एवप्राये पूर्वोक्तस्वरूपबहुले। अतीति। अतिकुटिला अतिवक्रा कष्टदायिन्यश्चेष्टा कायव्यापारास्तासा सहस्र तेन दारुणे भीषणे। राज्यतन्त्र इति। राज्यस्य तन्त्र इतिकर्तव्यतायाम्। 'इतिकर्तव्यता तन्त्रे' इत्यनेकार्थ। अस्मिन्ननुभूयमाने यौवने तारुण्ये च महामोहकारिणि महामौढ्यजनके। कुमारेति सबोधनम्। तथेति। तेनैव प्रकारेण प्रयतेथा प्रयत्न कुथा। यथा येन प्रकारेण जनैर्लोकैर्भवास्त्वं नोपहस्यसे न उपहासविषयीक्रियसे। साधुभि सज्जनैर्न निन्द्यसे न निन्दाविषयीक्रियसे। गुरुभिर्धर्माचार्यैर्न धिक्क्रियसे न धिग्जीवित मित्यादिवाक्यगोचरीक्रियसे। सुहृद्भिर्मित्रैर्नोपालभ्यसे नोपालम्भविषयीक्रियसे। विद्वद्भि पण्डितैर्न शोच्यसे न शोकविषयीक्रियसे। यथा विटैरसदाचरणकारिभिर्न प्रकाश्यसे न प्रकटी क्रियसे। कुशलैरनाचाराभिज्ञैर्न प्रतार्यसे न प्रतारणाविषयीक्रियसे। भुजङ्गैर्गणिकापतिभिर्नास्वाद्यसे गणिकार्थं द्रव्यवितरणद्वारा नोपभोज्यसे। सेवका सपर्याकारिण एव वृका ईहामृगास्तैर्नावलुप्यसे नानिष्टे प्रसज्यमे। नाकुलीक्रियस इत्यर्थ.। धूर्तैं शठैर्न वञ्च्यसे न प्रतार्यसे।

भीगे हृदय से प्रेम करने वाले भाइयों को नाश करने योग्य मानते हैं।

इसलिये, हे राजकुमार! इस ऐसे, अत्यन्त कुटिल तथा कष्टदायक सहस्रो चेष्टाओ के कारण अत्यन्त भयानक बने हुए इस राज्य-शासन मे और अपनी इस (साधारण तथा) अत्यन्त मूढता उत्पन्न करने वाली जवानी मे, तुम्हें इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, अपना जीवन ऐसे बिताना चाहिये कि, लोग तुम्हारी हँसी न उड़ावे, सज्जन तुम्हारी निंदा न करे, बड़े बूढे तुमसे घृणा न करे, तुम्हारे मित्र तुम्हें ताने न मारें, बुद्धिमान् व्यक्ति तुम्हारे (कार्यों पर) शोक प्रकट न करें। और, जिस प्रकार धूर्तजन तुम्हारा अपयश न करें, चालाक वचक तुम्हे धोखा न दें, रँगीले व्यक्ति तुम्हें खा न जावें (अपना शिकार न बना ले), सेवक रूपी भेड़िये फाड़कर तुम्हारे टुकड़े टुकड़े न कर डालें, धूर्तजन ठग न लें, स्त्रियाँ लुभा न ले, लक्ष्मी (के अनुचित प्रयोग) से तुम्हारा अपमान न हो, धृष्टता अथवा (अधिकार जनित) अहकार तुम्हे नचा न दे, कामोन्माद तुम्हे पागल न कर डाले, ऐन्द्रियिक सुख तुम्हे प्रेरित न करें—अपनी इच्छानुसार न चलाने लगें, अनुराग तुम्हे आकर्षित न करे, और सुख तुमको

नापह्रियसे सुखेन। काम भवान्प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च समारोपितसंस्कारः, तरल हृदयमप्रतिबुद्ध च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेव मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढा धुरम्।

वनिताभि' स्त्रीभिर्न प्रलोभ्यसे न प्रलोभनाविषय क्रियसे। लक्ष्म्या श्रिया न विडम्ब्यसे न विडम्बनायुक्त क्रियसे। न परित्यज्यस इत्यर्थ। मदेनाधिपत्यजनिताहङ्कारेण न नर्त्यसे न नृत्य कार्यसे। मदनेन मनोभवेन न उन्मत्तीक्रियसे न चित्तविप्लवतामापाद्यसे। विषयैरिन्द्रियार्थैर्नाक्षिप्यसे न प्रेर्यसे। रागेण स्नेहादिना न विकृष्यसे नाकृष्यसे। सुखेन सातेन नापह्रियसे न परित्यज्यसे। काममत्यर्थं सकलशास्त्रवेत्तृभि शिक्षिते त्वय्युपदेशो व्यर्थ इत्यर्थ। पुनराह—प्रकृत्येति। प्रकृत्या स्वभावेन धीरो धैर्यवान्। यद्यपीति पूरणीयम्। कीदृक्। पित्रा चेति। पित्रा चकारान्मयापि समारोपिता विहिता संस्कारा जातकर्मादय। अथ च तत्तद्गुणविशेषाश्च यस्यैवभूत। अथवान्यदप्याह—तरलेति। तरल चञ्चल हृदय चेतो यस्य स तमप्रतिबुद्ध बोधरहित च पुरुष धनानि द्रव्याणि मदयन्ति मद जनयन्ति। अह तु न तथाज्नुनयामीति। येनोपदेश सार्थक स्यादिति तदभिप्रायमाशङ्क्योत्तरमाह—तथापीति। अनुपदेश्यत्वेऽपि भवद्गुणै शौर्यादिभिर्य सतोषो मनसस्तुष्टिर्मा शुकनासमेव पूर्वोक्तप्रकारेण मुखरीकृतवास्ताहग्वाग्व्यापारे प्रवर्तितवान्। अहार्यविपरीतशङ्कानिवृत्तयेऽयमुपदेश इत्यत आह—इदमेवेति। इद पूर्वोक्त पुन पुनर्वारवारमभिधीयसे कथ्यसे। अहार्यशङ्कामुद्घाटयति—विद्वांसमिति। विद्वांसमपि पण्डितमपि सचेतनमपि ज्ञानवन्तमपि महासत्त्वमपि महासाहसमप्यभिजातमपि कुलीनमपि धीरमपि धैर्यवन्तमपि प्रयत्नवन्तमप्युद्योगयुक्तमपि पुरुष लक्ष्मी श्री खलीकरोति सन्मार्गात्स्खलना प्रापयति। अत्र सर्वत्रापिशब्द कैमुतिकन्यायपर। अयमप्येवकरोति। अन्यस्य का वार्तेत्यर्थ। तत्र हेतुमाह—यत इय दुर्विनीता। अपगतविनयेत्यर्थ। भवांस्त्व

पूर्णतया अपने वश में न कर ले। यह मान लिया कि तुम स्वभाव से ही धैर्यवान् हो, और तुम्हारे पिता ने बड़े यत्न से तुम पर संस्कार किया है—तुम्हें उचित शिक्षा दिलवायी है, धन तो चचल मन वाले तथा अभी तक अशिक्षित व्यक्ति को ही अभिमान से युक्त करते हैं, तो भी तुम्हारे गुणों से उत्पन्न मेरे सन्तोष ने मुझसे इतना कुछ कहलवाया है। और बार-बार यही बात तुमसे कहता हूँ—कि, यह दुष्ट स्वभाव वाली लक्ष्मी ऐसे पुरुष को भी दुष्ट बना देती है कि जो विद्वान् भी हो, सदा जागरूक रहे, अत्यन्त सज्जन अथवा अत्यन्त साहसी हो, कुलीन हो और दृढ़ निश्चयी तथा धैर्यशाली भी हो। मेरा तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम अपने पिता द्वारा युवराज पद के लिये किये जा रहे राज्याभिषेक के मांगलिक उत्सव का तथा इसके सहवर्ती आशीर्वादों का आनन्द लो। (तुमसे पहले) अपने पूर्वजों द्वारा वहन की गयी और अब कुल

अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन्विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुधराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति', इत्येतावदभिधायोपशशाम। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

पित्रा जनकेन कल्याणैर्मङ्गलैः क्रियमाणं विधीयमानं नवयौवनस्य यो राज्याभिषेकस्तल्लक्षणं यन्मङ्गलं श्रेयोऽनुभवस्वनुभवविषयीकरोतु। पूर्वपुरुषैरूढां कुलक्रमागतां परम्परायातां धुरं राज्यभारमुद्वहोद्वहन कुरु। अवेति। द्विषतां शत्रूणां शिरांस्युत्तमाङ्गान्यवनमय नम्राणि कुरु। स्वबन्धुवर्गं स्वजनसमुदायमुन्नमयोर्ध्वीकुरु। अभीति। अभिषेकानन्तरं यौवराज्याभिषेकादनु। प्रारब्धेति। प्रारब्धः प्रस्तुतो दिग्विजयो येन स परिभ्रमन्प्रतिदिशं दिशं दिशं प्रति गच्छंस्तव पित्रा च स्वज्जनकेन विजितामपि स्वायत्तीकृतामपि सप्तद्वीपभूषणां सप्तसंख्याका द्वीपा जम्बूप्रभृतयो भूषणं यस्या एवंविधां वसुन्धरां पुनर्द्वितीयवारं विजयस्व स्वायत्तीकुरु। यमिति। प्रताप कोशदण्डजं तेज आरोपयितुं लब्धास्पदं कर्तुं ते तवायं कालः समयः। समागत इति शेषः। तस्य फलं प्रदर्शयन्नाह—आरूढेति। आरूढो लब्धास्पदः प्रतापो यस्यैवंभूतो राजा त्रैलोक्यदर्शीव योगीव सिद्धो निष्पन्न आदेश आज्ञा यस्य स तथा त्रिकालदर्श्यपि सिद्धादेशो भवति। यथा वदति तथैव भवतीत्यर्थः। इतीति। इति परिसमाप्तावेतावन्मात्रमभिधायोक्त्वोपशशाम विरतवाग्व्यापारो बभूव। उपेति। उपशान्तवचस्युपरतवाग्व्यापारे तस्मिञ्शुकनासे सति चन्द्रापीडस्ताभिः पूर्वोक्ताभिरुपदेशवाग्भिः शिक्षावचनैः प्रक्षा-

---

परम्परा से तुम्हे प्राप्त (राज्य के) जूए को तुम धारण करो। अपने शत्रुओं के सिर झुकाओ और अपने सम्बन्धियों को उठाओ, उनको समृद्ध बनाओ। और राज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय करना आरम्भ करो और (इस क्रम में) यात्राएँ करते हुए सात द्वीपों-रूप आभूषणों से युक्त तथा (एक बार) तुम्हारे पिता द्वारा जीती हुई भी पृथ्वी को फिर से जीतो। अपना प्रताप-प्रभाव जमाने का सबसे अधिक उपयुक्त समय यही है। क्योंकि जो राजा अपना प्रभाव जमा लेता है वह ऐसा बन जाता है कि जिसकी आज्ञाओं का सभी ऐसे पालन करते हैं (सिद्धादेश) जैसे कि किसी त्रिकालदर्शी ऋषि की भविष्यवाणी सदा सच निकलती हैं।" यह कहकर शुकनास चुप हो गया।

जब शुकनास मौन हो गया तो चन्द्रापीड उसके उन (जल सदृश) उपदेश-वचनों से धुला हुआ सा, चमक गया-सा, स्वच्छ (निर्मल तथा पवित्र) हृदय सा, माँजा हुआ-सा, नहलाया हुआ सा, लेपकर दिया गया सा, सुशोभित सा, पवित्र किया हुआ-सा और दमकाया हुआ सा, प्रसन्न-चित्त हुआ हुआ कुछ देर ठहरकर अपने महल मे लौट आया।

ततः कतिपयदिवसापगमे च राजा स्वयमुत्क्षिप्तमङ्गलकलशः सह शुकनासेन पुण्येऽहनि पुरोधसा सपादिताशेषराज्याभिषेकमङ्गलमनेकनरपतिसहस्रपरिवृतः सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यः सर्वाभ्यो नदीभ्यः सर्वेभ्यश्च सागरेभ्य समाहृतेन सर्वौषधिभिः सर्वफलैः सर्वमृद्भिः सर्वरत्नैश्च परिगृहीतेनानन्दबाष्पजलमिश्रेण मन्त्रपूतेन वारिणा सुतमभिषिषेच। अभिषेकसलिलार्द्रदेह च त लतेव पादपान्तर निजपादपममुञ्चत्यपि तारापीड

लित इव धौत इव, उन्मीलित इव विकसित इव, स्वच्छीकृत इव स्वच्छता प्रापित इव, निमृष्ट इव मसृणीकृत इव, अभिषिक्त इव स्नपित इव, अभिलिप्त इव प्रलिप्त इव, अलकृत इव भूषित इव, पवित्रीकृत इव पावनीकृत इव, उद्भासित इवोद्दीपित इव। प्रीतेति। प्रीत सतुष्ट हृदय चेतो यस्यैवभूतो मुहूर्त घटिकाद्वय स्थित्वावस्थान कृत्वा स्वभवन निजसद्माजगामायर्यौ।

तत इति। ततस्तदनन्तर कतिपयदिवसापगमे कियद्वासरातिक्रमे च राजा नृप सुत तनय वारिणा जलेनाभिषिषेच स्नपयाचकार। राजान विशिनष्टि—स्वयमिति। स्वयमात्मनोत्क्षिप्त ऊर्ध्व नीतो मङ्गलाभिधान कलशो येन स तथा शुकनासेन मन्त्रिणा सह पुण्येऽहनि पवित्रे वासरे। सुत विशेषयन्नाह—पुरोधसेति। पुरोधसा पुरोहितेन सपादित विहितमशेष समग्र राज्याभिषेकलक्षण मङ्गल यस्य स तम्। राजान विशिनष्टि—अनेकेति। अनेके भिन्नभिन्नदेशोद्भवा ये नरपतयो राजानस्तेषा सहस्र तेन परिवृत सहित। जल विशिनष्टि—सर्वेभ्य इत्यादि। सर्वेभ्य समग्रेभ्यस्तीर्थेभ्यो मागधादिभ्य सर्वाभ्यो नदीभ्यस्तटिनीभ्य सर्वेभ्य सागरेभ्य। समुद्रान्तर्वर्तिस्थलेभ्य इत्यर्थ। अन्यथा सागरस्यैक्याद्बहुवचनमनर्थक स्यात्। समाहृतेनैकीकृतेन। पुनस्तदेव विशिनष्टि—सर्वौषधीति। सर्वा समग्रा ओषधय फलपाकान्तास्ताभि सर्वफलै समग्रसस्यै. सर्वमृद्भि समग्रतीर्थोद्भवमृत्तिकाभिः सर्वरत्नै समग्र मणिभि परिगृहीतेन स्वीकृतेन। आनन्देति। आनन्द प्रमोदस्तज्जनित यद्बाष्पजल तेन मिश्रेण सपृक्तेनेति जलविशेषणम्। मन्त्रेति। मन्त्रो देवाधिष्ठातृकस्तेन पूतेन पवित्रेणेति तस्यैव विशेषणम्। अभीति। अभिषेकस्य यौवराज्याभिषेकस्य यत्सलिल पानीय तेनार्द्र क्लिन्नो देहो

फिर कई दिन बीत जाने पर, एक पवित्र दिन, शुकनास के साथ साथ अनेक सहस्रों राजाओं से घिरे हुए और स्वय ही मागलिक कलश को (चन्द्रापीड के सिर के ऊपर) उठाये हुए राजा ने, पुरोहित द्वारा राज्याभिषेक सम्बन्धी सारे मांगलिक कार्य जिसके सम्पन्न हुए थे अपने उस पुत्र का अभिषेक सस्कार, सभी (तीर्थों) पवित्र स्थानों से, सभी नदियों से और सभी समुद्रों से (लाकर) एकत्रित किये गये और सभी प्रकार की औषधियों से, सब प्रकार के फलों से, सभी प्रकार की विभिन्न मिट्टियों से और सभी रत्नों से मिले (युक्त) तथा राजा के हर्ष के कारण निकले आँसुओं के जल से मिश्रित तथा मत्रों (के उच्चारण) से पवित्र किये हुए जल से, किया। और राज्य-लक्ष्मी (पुराने राजा) तारापीड को न छोड़ती हुई भी, राज्याभिषेक के जल से (अभी तक) गीले हुए शरीर वाले उस चन्द्रापीड में उसी क्षण ऐसे चली गयी जैसे कि कोई बेल अपने (मूल) वृक्ष को न छोड़ती हुई भी दूसरे

तत्क्षणमेव संचक्राम राज्यलक्ष्मीः। अनन्तरमखिलान्तःपुरपरिवृतया च प्रेमार्द्रहृदयया विलासवत्या स्वयमापादतलादामोदिना चन्द्रातपधवलेन चन्दनेनानुलिप्तमूर्तिः, अभिनवविकसितसितकुसुमकृतशेखरः, गोरोचनाच्छुरितदेहः, दूर्वाप्रवालरचितकर्णपूरः, दीर्घदशमनुपहतमिन्दुधवलं दुकूलयुगलं वसानः, पुरोहितप्रतिबद्धप्रतिसरप्रसाधितपाणिः, नवराजलक्ष्मीकमलिनीमृणालेनाभिषेकदर्शनार्थमागतेन सप्तर्षिमण्डलेनेव

यस्यैवभूत त चन्द्रापीड राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्री. अन्य पादप पादपान्तर लतेव वल्लीव निजपादप स्वकीयवृक्षममुञ्चत्यप्यत्यजन्त्यपि तारापीड तत्क्षणमेव सचक्राम प्रविष्टा बभूव। अनन्तरमिति। अनन्तर यौवराज्याभिषेकानन्तरम्। अखिलेति। अखिल यदन्त पुरमवरोधस्तेन परिवृतया सहितया प्रेम्णा स्नेहेनार्द्रं हृदय यस्या सा तथा विलासवत्या स्वकीयजनन्या स्वयमात्मनामोदिनामोद परिमल स विद्यते यस्मिन्नेतादृशेन चन्द्रातपश्चन्द्रगोलिका तद्वद्धवलेन शुभ्रेण चन्दनेन मलयजेनापादतलात् पादतल मर्यादीकृत्यानुलिप्ता कृताङ्गरागा मूर्तिर्यस्य स। अभीति। अभिनवानि प्रत्यग्राणि विकसितानि विनिद्राणि सितानि श्वेतानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषा कृतो विहित शेखरोऽवतसो यस्य स। गोरेति। गोरोचनेनाच्छुरितश्छुटितो देहो यस्य स। दूर्वेति। दूर्वा शतपर्विका तस्या प्रवालै किसलयै रचितो निर्मित कर्णपूर कर्णावतसो येन स। दीर्घेति। दीर्घा आयता दशा वर्तयो यस्यैवभूतमनुपहतमखण्डमिन्दुश्चन्द्रस्तद्वद्धवलं श्वेत दुकूलयुगल दुकूलयुग्म वसानो दधान। पुरो इति। पुरोहितेन पुरोधसा प्रतिबद्धो य प्रतिसरो हस्तसूत्र तेन प्रसाधितोऽलकृत पाणिर्यस्य स। राजान विशिनष्टि—नवेति। नवा प्रत्यग्रा या राजलक्ष्मीराधिपत्यश्री सैवोल्लसत्त्वसाम्यात्कमलिनी नलिनी तस्या आयतत्वसाम्यान्मृणालेनेव बिसेनेव। मुक्तासु सक्रान्तमुखत्वेनोपमानान्तरमावि कर्तुमाह—अभीति। अभिषेकदर्शनार्थं यौवराज्याभिषेकावलोकनार्थमागतेन प्राप्तेन सप्तर्षिमण्डलेनेव मरीचिप्रभृतिमुनिसमुदायेनैवविधेन हारेण मुक्ताप्रालम्बेनालिङ्गितमाश्लिष्टं वक्ष स्थल भुजान्तर यस्य स तथा।

वृक्ष पर चढ जाती है। उसके पश्चात् सारे अन्त पुर-(की स्त्रियों) द्वारा घिरी हुई और स्नेह से भीगे हृदय वाली विलासवती द्वारा पाँवों के तलुओं से ऊपर की ओर[1] अपने आप (अपने हाथों से) सुगन्धित तथा चन्द्रिका-सदृश श्वेत चन्दन (के लेप) से लेप किये गये शरीर वाला, ताजे खिले हुए श्वेत पुष्पों से रचित शिरोमाल्य को पहने हुआ, गोरोचना को शरीर पर छिड़के हुआ, दूब घास की कोंपलों से बनाये गये कर्णाभूषण वाला, लम्बी झालरों[2] वाले अखंडित,[3] चन्द्रमा सदृश श्वेत, रेशमी वस्त्रों का जोड़ा पहने हुआ, पुरोहित द्वारा बाँधी गयी पौंची[4] से विभूषित हाथ वाला, मानो कि नयी (अभी-अभी प्राप्त) राज्यलक्ष्मीरूपा नलिनी के लम्बे तथा चमकीले मृणाल-तन्तु सरीखे प्रतीत होते और मानो अभिषेक (समारोह) को देखने के लिये आये सप्तर्षियों के मण्डल-जैसे प्रतीत होते मोतियों के हार मे कस कर लपेटे

१ अथवा सिर से पैर के तलुओ तक । २ दशा प्राञ्चल-प्रवर्तिन्य सूत्रवर्तिका ।
३ अनुपहतम् अर्थात् नया पहले से न पहना हुआ। ४ प्रतिसर हस्तसूत्रम्।

हारेणालिङ्गितवक्षःस्थलः, सितकुसुमग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिरिन्दुकरकलाभिर्वैक-क्षस्रग्भिर्निरन्तरनिचितशरीरतया धवलवेशपरिग्रहतया च नरसिंह इव विधूतकेसर-निकरः, कैलास इव स्रवत्स्रोतस्विनीस्रोतोराशिः, ऐरावत इव मन्दाकिनीमृणालजाल-जटिलः, क्षीरोद इव स्फुरितफेनलवाकुलस्तत्कालप्रतिपन्नवेत्रदण्डेन पित्रा स्वय पुरः-प्रारब्धसमुत्सारणः सभामण्डपमुपगम्य काञ्चनमय शशीव मेरुशृङ्ग चन्द्रापीडः

सितेति। सितानि श्वेतानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तैर्ग्रथिताभिर्गुम्फिताभिराजान्वानलकील यावल्लम्बन्त इत्येवशीला आजानुलम्बिन्यस्ताभि । इन्दुरिति। इन्दुश्चन्द्रस्तस्य करा किरणास्त-द्वत्कला मनोहरास्ताभि । वैकक्षेति। वैकक्षमुत्तरीयक तद्वत्स्थापिताभि स्रग्भिर्मालाभिर्निरन्तर निचित व्याप्त शरीरं यस्य भावस्तत्ता तथा। धवलेति। धवल शुभ्रो यो वेशो नेपथ्य तस्य परिग्रह स्वीकारो यस्य तस्य भावस्तत्ता तथा। चेति। चकार उभयसमुच्चयार्थं । उभयसमु-च्चयेन द्वयोरुत्प्रेक्षामाह—नरेति। नरसिंह इव नृसिंहावतार इव। कीदृक्। विधूत कम्पित केसरनिकर सटासमूहो येन स। अत्र केसरस्रजो साम्यम्, वेशशरीरचर्मणो साम्य चेति भाव। कैलासेति। कैलास इव रजताद्रिरिव। एनं विशिनष्टि—स्रवदिति। स्रवन्त्या क्षरन्त्या स्रोतस्विन्या गङ्गाया स्रोतोराशि प्रवाहसमूहो यस्मिन्। अत्र कैलासवेषयो साम्यम्, स्रवत्स्रोत स्विन्यो साम्य च दर्शितम्। ऐरावतेति। ऐरावत इव हस्तिमल्ल इव। एन विशिनष्टि—मन्दाकिनीति। मन्दाकिन्या गङ्गाया यन्मृणालजालं बिससमूहस्तेन जटिलो व्याप्त। पुनर्धवल वेशसाम्यनिमित्तकमुत्प्रेक्षान्तरमाह—क्षीरोदेति। क्षीरोद क्षीरसमुद्रस्तद्वदिव। एन विशेषयन्नाह—स्फुरितेति। स्फुरिता दीप्यमाना ये फेनलवा डिण्डीरांशास्तैराकुलो व्याप्त.। तदिति। तत्काले तदात्वे प्रतिपन्न स्वीकृतो वेत्रदण्डो वेतसयष्टिर्येनैवविधेन पित्रा जनकेन स्वयमात्मना पुरोऽग्रे प्रारब्धं प्रस्तुत समुत्सारणं जननिवारणं येन स.। सभामण्डपमास्थानमण्डपमुपगम्य समीपे गत्वा काञ्चनमय मेरुशृङ्गं स्वर्णाद्रिशिखर शशीव हिमद्युतिरिव चन्द्रापीडो युवराट् काञ्चनमय सिंहा-

---

हुए विशाल वक्षःस्थल वाला, श्वेत फूलों को गूँथकर बनायी हुई, घुटनों तक लटकती हुई, चन्द्रकिरणों के समान पतली अथवा सुन्दर दिखायी देतीं, यज्ञोपवीत अथवा उत्तरीय की भाँति (कन्धे पर पहनी हुई) मालाओं द्वारा सटाकर ढके शरीरवाला होने के कारण तथा श्वेत वस्त्र धारण किये हुआ होने के कारण वह अपनी (श्वेत) सटाओं के समूह को बखेरे हुए (विष्णु के अवतार) नरसिंह-सा अथवा बहती नदियों की (श्वेत) जलराशि से युक्त कैलास-पर्वत-सरीखा अथवा आकाशगगा के बिसतन्तुजाल में उलझा हुआ ऐरावत-सरीखा अथवा नाचते हुए (उछलते हुए) झाग की पपड़ियों से व्याप्त क्षीरसमुद्र सरीखा प्रतीत होता हुआ, वह चन्द्रापीड, उस अवसर पर स्वय पिता जिसके आगे से (मार्ग से) (लोगों को) हटाने का काम कर रहा था—सभाभवन मे पहुँचकर सोने के सिंहासन पर ऐसे आरूढ हो गया कि मानो सोने से निर्मित मेरु की चोटी पर चन्द्रमा आरूढ़ हो गया हो।

सिंहासनमारुरोह। आरूढस्य चास्य कृतयथोचितसकलराजलोकसमानस्य मुहूर्तं स्थित्वा दिग्विजयप्रयाणाशंसी प्रलयघनघटाघोषघर्घरध्वनिरुदधिरिव मन्दरपातैः, वसुधरापीठमिव युगान्तनिर्घातै, उत्पातजलधर इव तडिद्दण्डपातैः, पातालकुक्षिरिव महावराहघोणाभिघातैः, कनककोणैरभिहन्यमानः प्रस्थानदुन्दुभिरामन्थर दध्वान। येन ध्वनता समाध्मातानीवोन्मीलितानीव, पृथक्कृतानीव, विस्तारितानीव, गर्भीकृतानीव, प्रदक्षिणीकृतानीव, बधिरीकृतानीव रवेण भुवनान्तराणि। विश्लेषिता इव

सन नृपासनमारुरोहारूढवान्। आरूढस्य च तदुपविष्टस्य च। अत्र चकार पुनरर्थक। अस्य चन्द्रापीडस्य कृतो विहितो यथोचित यथायोग्य सकलराजलोकस्य समग्रनृपजनस्य संमान सत्कारो येन स तस्य। मुहूर्तं घटिकाद्वय स्थित्वोपविश्य तदनन्तर दिग्विजयार्थं यत्प्रयाण गमन तस्याशसी कथक प्रस्थानदुन्दुभिर्यात्रापटह आमन्थर नात्युच्च यथा स्यात्तथा दध्वान शब्द चकार। अथ दुन्दुभि विशेषयन्नाह—प्रलयेति। प्रलयकालानां लीना कल्पान्तसमयोद्भवा या घनघटा कादम्बिनी तस्या घोषो गर्जित तद्वद्घर्घर कठिनो ध्वनि शब्दो यस्य सः। किंक्रियमाण। अभिहन्यमान। कै। कनकस्य सुवर्णस्य कोणाः पटहवादनदण्डास्तै.। 'कोणो वीणादिवादनम्' इति कोश। क इव। उदधि समुद्रस्तद्वदिव मन्दरो मेरुस्तस्य पातै पुन पुन पतनै। वसुंधरेति। वसुधरा पृथ्वी तस्या पीठो मूलभागस्तद्वदिव युगान्ते कल्पान्ते निर्घाता दिशा महान्त शब्दा श्रूयन्ते तै। उत्पातेति। उत्पातोऽजन्य तज्जनितो यो जलधरो मेघस्तद्वदिव तडिद्दण्डा विद्युद्दण्डास्तेषा पातै प्रपतनै। पातालेति। पाताल बलिवेश्म तस्य कुक्षिर्मध्यप्रदेशस्तद्वदिव। महेति। महावराह कृष्णावताररूपस्तस्य घोणा विकूणिका तस्या अभिघातै प्रहारै। येनेति। येन दुन्दुभिना। कर्तरि तृतीया। ध्वनता शब्द कुर्वता रवेण शब्देन भुवनान्तराणि विश्वविवराणि समाध्मातानीवापूरितानीवोन्मीलितानीव विकसितानीव

जब चन्द्रापीड राजगद्दी पर बैठ गया और उसने सभी राजाओं का यथोचित स्वागत-सम्मान कर लिया तब कुछ देर ठहर कर दिग्विजय अर्थात् ससार की विजय के लिये चलने की घोषणा करनेवाला, चलने के अवसर पर बजाया जाने वाला दमामा प्रलयकालीन मेघ-माला की गर्जना-सरीखी घर्घर (कर्णकटु) ध्वनि करता, सोने की डडियों से[1] पीटा (बजाया) जाता, धीरे-धीरे ऐसे बज उठा जैसे कि मन्दर पर्वत की चोटो से (पीटा जाता) समुद्र हो, (अथवा) युग के अन्त मे भयानक वायवीय तूफानों[2] से हिली पृथ्वी की नींव हो, बिजली की चाबुकों से आहत अपशकुनसूचक मेघ हो, महावराह (वराहावतार) की थूथनी के प्रहारों से आहत पाताल का मध्य प्रदेश हो। और उस बजती हुई दुन्दुभि द्वारा अपने शब्द से भरे ससार के शून्य स्थान ऐसे लगे कि मानो फुला दिये गये हों, मानो खोल दिये हो,[3] मानो पृथक्-पृथक् कर दिये हों, मानो बड़े कर दिये हो, मानो उनको अपने भीतर रख लिया हो, (उस ध्वनि ने) उनकी प्रदक्षिणा कर ली हो और मानो उनको बहरा कर दिया हो, मानो उस शब्द ने दिशाओ को एक

१ कोण, डडी। २ निर्घारित पृथ्वी पर गिरा पवनाहत पवन (तूफान) ३ अथवा जगा दिये हों।

दिशामन्योन्यबन्धसधयः। यस्य च भयवशविषमवलितोत्तानफणासहस्रेणालिङ्ग्यमान इव रसातले शेषेण, मुहुर्मुहुरभिमुखदन्तोर्ध्वघातैराहूयमान इव दिक्षु दिक्कुञ्जरैः, सत्रासरचितरेचकमण्डलैः प्रदक्षिणीक्रियमाण इव नभसि दिवसकररथतुरङ्गमैः, अपूर्वशर्वाट्टहासशङ्काहर्षहुङ्कृतेनाश्रुतपूर्व आभाष्यमाण इव कैलासशिखरिणि त्र्यम्बकवृषभेण, कृतगम्भीरकण्ठगर्जितेन प्रत्युद्गम्यमान इव मेरावैरावतेन, अश्रुतपूर्वरवरोषावेशतिर्यगवनमितविषाणमण्डलेन प्रणम्यमान इव विबुधसद्मनि कृतान्तमहिषेण, सत्रस्तलोकपालाकर्णितो बभ्राम त्रिभुवनं निनादः। ततो दुन्दुभिरवमाकर्ण्य जयजयेति

पृथक्कृतानीव भिन्नीकृतानीव विस्तारितानीव विपुलीकृतानीव गर्भीकृतानीवान्तर्हितानीव प्रदक्षिणीकृतानीवावर्तीकृतानीव बधिरीकृतानीवाकर्णीकृतानीव जातानीति सर्वैरभि समाध्मातादिभि सबध्यते। विश्लेषिता इति। दिशा ककुभामन्योन्यं परस्पर बन्धस्य सबन्धविशेषस्य सधय सश्लेषा विश्लेषिता विघटिता इव। यस्य चेति। दुन्दुभि सबध्यते। निनादापेक्षया षष्ठी। यस्य दुन्दुभेर्निनाद शब्दस्त्रिभुवन विष्टपत्रय बभ्राम भ्रमण चकार। अत्रोत्प्रेक्षते—भयेति। भयवशेन भीतिवशेन विषम स्थपुट चलित पश्चादागतमुत्तानमूर्ध्वमुखं फणासहस्रं यस्यैव विधेन शेषेण नागाधिपेन रसातले बडवामुख आलिङ्ग्यमान इवाश्लिष्यमाण इव मुहुर्मुहुर्वारंवार दिक्षु दिशासु दिक्कुञ्जरैर्दिङ्नागैराहूयमान इव निमन्त्र्यमाण इवाभिमुखं समुख ये दन्तानां रदानामूर्ध्वघाता ऊर्ध्वप्रहारास्तै। सत्रासेति। सत्रासेन भयेन रचित रेचकमण्डल तिर्यग्भ्रमणमण्डल यैरेवविधैर्दिवसकररथतुरङ्गमै सूर्यरथसप्तसप्तिभिर्नभसि विहायसि प्रदक्षिणीक्रियमाण आवर्तीक्रियमाण इव। अपूर्वेति। अपूर्वोऽश्रुतपूर्वो य शर्वस्य भवानीपतेरट्टहासो महान्हासस्तस्य शङ्कारेका तस्या हर्ष प्रमोदस्तस्माद्यद्धुङ्कृत तेन हुकारेण कैलासशिखरिणि रजताद्रिसानुनि त्र्यम्बक-

---

दूसरे के साथ बाँध रखने के जोड़ों को ढीला कर दिया हो, और उस ध्वनि का शोर डरे हुए आठों लोकपालों द्वारा सुना गया तीनों लोकों मे घूम गया, पाताललोक मे यह भय के कारण लड़खड़ाती तथा पूरे रूप मे फैलाये हुई[1] सैकड़ों फणाओं वाले शेषनागद्वारा आलिंगित किया जाता-सा प्रतीत हुआ। (आठों) दिशाओं में बार-बार अपने सामने (शून्य में) अपने दाँतों द्वारा चोट करते दिग्गज मानो इसको (युद्ध के लिये) ललकार रहे थे, आकाश में भय के कारण रेचकमण्डल[2] बनाते सूर्य-रथ के अश्व मानो इसकी प्रदक्षिणा कर रहे थे, कैलास पर्वत पर शिवजी का यह कोई अद्भुत अट्टहास है यह समझकर हर्षपूर्वक हुकार करता शिवजी का वृषभ मानो इससे बातचीत कर रहा था, मेरु पर्वत पर (स्वर्ग प्रदेश में) अपने गले से गहरी गर्जना करता ऐरावत हाथी मानो इसका स्वागत कर रहा था, और यम (मृत्यु देवता) के घर में, पहले कभी न सुने शब्द को सुनकर आये क्रोध के आवेग में अपने गोल सींगों को तिरछा झुकाए हुआ यम का भैंसा मानो इसको प्रणाम कर रहा था। इसके पश्चात् दुन्दुभि का शब्द सुनकर

---

१ उत्तान, उलटकर स्थापित की गयी। २ रेचकमण्डल का अर्थ मध्यम चाल से गोल घेरा बनाते हुए चलना है।

च सर्वतः समुद्घुष्यमाणजयशब्दः सिंहासनात्सह द्विषता श्रिया सचचाल चन्द्रापीडः। समन्तात्ससंभ्रमोत्थितैश्च परस्परसघट्टविघटितहारसूत्रविगलितानवरतमाशाविजयप्रस्थानमङ्गललीलालाजानिव मुक्ताफलप्रकरान्क्षरद्भिः, पारिजात इव सितकुसुममुकुलपातिभिः कल्पपादपैः, ऐरावत इव विमुक्तकरशीकरैराशागजैः, गगनाभोग इव तारागणवर्षिभिर्दिगन्तरैः, जलदकाल इव स्थूलजललवासारस्यन्दिभिर्जलधरैरनुगम्यमानो नरपतिसहस्रैरास्थानमण्डपान्निरगात्।

वृषभेणेश्वरबलीवर्देनाभाष्यमाण इवोच्यमान इव। कृतेति। कृत विहितं गम्भीरमतुच्छ कण्ठगर्जित येनैवविधेनैरावतेनाभ्रमुप्रियेण प्रत्युद्गम्यमान इवाभिमुख यायमान इव। अश्रुतेति। अश्रुतपूर्वोऽनाकर्णितपूर्वो यो रव शब्दस्तेन जनितो रोषो रुट् तस्यावेशोऽपस्मारस्तेन तिर्यगवनमित नम्रीभूत विषाणमण्डल शृङ्गमण्डल यस्यैवविधेन विबुधसद्मनि देवलोके कृतान्तमहिषेण यमकासरेण प्रणम्यमान इव नमस्क्रियमाण इव। सन्त्रस्तेति। सन्त्रस्ताश्चकिता ये लोकपाला सोमाद्यास्तैराकर्णित श्रवणविषयीकृत। ततस्तदनन्तर दुन्दुभिरव पटहरवं जयजयेति च शब्दम्। चकार पुनरर्थक। आकर्ण्य निशम्य सर्वत सर्वत्र समुद्घुष्यमाण उद्घोषणाविषयीक्रियमाणो जयशब्दो यस्य स तथा। एवविधश्चन्द्रापीडो द्विषता शत्रूणा श्रिया लक्ष्म्या सह सिंहासनात् सचचाल चलितो बभूव। क्रमेणास्थानमण्डपान्निरगान्निर्गतो बभूवेत्यन्वय। किंविशिष्ट। नरपतिसहस्रैर्भूमिपतिदशशतैरनुगम्यमानोऽनुव्रज्यमान। अथ नरपतीना विशेषणानि—समन्तादिति। समन्तादेकवार ससभ्रम त्वरितमुत्थितै कृतोत्थानै। किं कुर्वद्भि.। मुक्ताफलप्रकरान्मौक्तिकसमूहान्क्षरद्भिर्विकिरद्भि। किंविशिष्टान्। परस्परम् अन्योन्य य सघट्ट समर्दस्तेन विघटित त्रुटित यद्धारसूत्र तेन विगलिताश्च्युतान्। कानिव। अनवरत निरन्तरमाशाविजयो दिग्विजयस्तदर्थं प्रस्थान गमन तस्मिन्मङ्गलस्य विघ्नवारकस्य या लीला विलासस्तस्य लाजानिवाक्षतानिव। मङ्गलनिमित्त लीलया लाजा प्रक्षिप्यन्त इति भाव। कै क

'आप सफल हों' 'आप विजयी हों'—इत्यादि प्रकार के जयकार के नारे जिसके लिये सब ओर लगाये जा रहे थे ऐसा चन्द्रापीड सिंहासन से हट गया (नीचे उतर आया) और इसके साथ ही शत्रुओ की राज्यलक्ष्मी भी (उनके सिंहासनो से उतर गयी) और चन्द्रापीड के साथ चल पड़ी और तब वह शीघ्रता मे चारो ओर से उठकर खडे हुए, आपस में टक्कर खाकर टूटे हुए हार-सूत्रों से खिसके हुए मोतियो के समूहों को मानो दिग्विजय (ससार-विजय) के लिये चलने की मागलिक लीला की (उस अवसर पर मगलार्थ बिखेरी गयी) लाजाओं को ही निरन्तर गिराते हुए, सहस्रों राजाओं से अनुगम्यमान चन्द्रापीड राजभवन से ऐसा निकला कि मानो श्वेतपुष्पों तथा कलियों को गिराते हुए (दूसरे) कल्पवृक्षों से अनुगम्यमान पारिजात वृक्ष हो (अथवा) अपनी सूंडों से फुवारें छोड़ते हुए (दूसरे) दिग्गजों से अनुगम्यमान ऐरावत हाथी हो, (अथवा) (टूटनेवाले) तारों की वर्षा करते दिगन्तरालो से अनुगम्यमान आकाश का फैलाव हो, (अथवा) जल की मोटी मोटी बूँदे बरसाते बादलो से अनुगम्यमान वर्षाकाल हो।

निर्गत्य च पूर्वारूढया पत्रलेखयाध्यासितान्तरासनामुपपादितप्रस्थानसमुचितमङ्गल्यालंकारां ससंभ्रमाधोरणोपनीतां करेणुकामारुह्याचलरेचकचक्रीकृतक्षीरोदावर्तपाण्डुरेण दशवदनबाहुदण्डावस्थितकैलासकान्तिना मुक्ताफलजालिना शतशलाकेनातपत्रेण निवार्यमाणातपो निर्गन्तुमारेभे। निर्गच्छन्नभ्यन्तरावस्थित एव प्राकारान्तरितदर्शनानां प्रतिपालयतां राज्ञामुन्मयूखानां चूडामणीनामलक्तकवद्रक्तद्युतिमुषा बहले-

---

इवानुगत । पारीति । कल्पपादपैर्देववृक्षैरनुगतः पारिजात इव मन्दार इव । एतान् विशिनष्टि—सितेति । सितकुसुमानां श्वेतपुष्पाणां यानि मुकुलानि गुच्छानि तानि पातयन्त्येवंशीलास्तै । ऐरावतेति । आशागजैर्दिग्गजैरनुगत ऐरावत इव श्वेतगज इव । किंविशिष्टै । विमुक्तेति । विमुक्तास्त्यक्ता करेभ्य शुण्डादण्डेभ्य. शीकरा पृषता यै । गगनेति । दिगन्तरैर्दिशां विचालैरनुगतो गगनाभोग इव व्योमविस्तार इव । कीदृशै । तारेति । ताराणां नक्षत्राणां गण समूहस्त वर्षन्तीत्येवंशीलास्ते । जलदेति । जलधरैर्मेघैरनुगतो जलदकाल इव प्रावृट्समय इव । कीदृशै । स्थूलेति । स्थूला स्थविष्ठा ये जललवा पानीयबिन्दवस्तेषामासारो वेगवान्वृष्टिस्त स्यन्दन्तीत्येवंशीलास्तै. । अत्र श्वेतत्वानुगताभ्यां त्रिभिरप्यनुमान बोध्यम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । ततो निर्गत्य बहिरागत्य । चकार पुनरर्थे । निर्गन्तुमिति । नितरामतिशयेन गन्तु यातुमारेभ आरम्भ चकार । किं कृत्वा । ससंभ्रमेण वेगेनाधोरणा हस्तिपकास्तैरुपनीतामानीतां करेणुकां वशामारुह्यारोहण कृत्वा । अथ करेणुकां विशिनष्टि—पूर्वेति । पूर्वारूढेति पूर्वं प्रथममारूढयोपरिस्थितया पत्रलेखया ताम्बूलकरङ्कवाहिन्याध्यासितमाश्रितमन्तरासन नृपासनात्पृथगासन यस्यां सा ताम् । उपेति । उपपादितो विहित प्रस्थानसमुचित. प्रयाणयोग्यो मङ्गलं यातीति मङ्गल्योऽलंकारो भूषा यस्यां सा ताम् । अचलेति । अचलरेचको मन्दरभ्रमण तेन चक्रीकृतश्चक्रतां प्रापितो य क्षीरोद क्षीरसमुद्रस्तस्यावर्तो पयसा भ्रमास्तद्वत्पाण्डुरेण शुभ्रेण । दशेति । दशवदनो लङ्काधिपतिस्तस्य बाहुदण्डा भुजदण्डास्तत्रावस्थित कृतावस्थानो य कैलासो रजताद्रिस्तद्वत्कान्ति. प्रभा यस्य स तेन । मुक्तेति । मुक्ताफलानां

और बाहर आकर वह जल्दी ही चालक द्वारा समीप लायी हुई हथिनी पर सवार हो गया—इस हथिनी के भीतरी आसन पर (अथवा कुमार के आसन के ठीक पीछे के आसन पर) पहले सवार हुई पत्रलेखा बैठी थी, और वह प्रस्थान के (अवसर के) लिये उचित मागलिक सज्जाओं से सुशोभित थी। उस पर सवार होकर उसने चलना आरम्भ कर दिया, उस समय उसकी धूप, एक सौ तारों वाले, (किनारों पर) मोतियों की जालियों से युक्त, (मन्द्र) पर्वत के घुमाव से घुमाये गये दुग्ध सागर की भँवर के सदृश श्वेत दिखायी देते और रावण की डण्डों-सरीखी (लम्बी) भुजाओं पर उठाये गये (उस समय) (श्वेत) कैलास पर्वत-सरीखी शोभावाले छाते द्वारा हटायी जा रही थी। और इस प्रकार चलते ही चलते चन्द्रापीड ने (हौदे के भीतर बैठे हुए ही ने) देखा कि बीच में पड़ी प्राचीर से जिनकी दृष्टि उससे छिपी हुई है, उन द्वार पर प्रतीक्षा करते राजाओं की, किरणें फैंकती मुकुट मणियों के, (लाल) अलक्तक

नालोकबालातपेन राज्याभिषेकानन्तरप्रसृतेन स्वप्रतापवह्निनेवात्यर्थं पिञ्जरीक्रियमाणा दश दिशो यौवराज्याभिषेकजन्मना निजानुरागेणेव रज्यमानमवनितलमासन्नरिपुविनाशपिशुनेन दिग्दाहेनेव पाटलीक्रियमाणमम्बरतलमभिमुखागतभुवनतललक्ष्मीचरणालक्तकरसेनेव लोहितायमानातपं दिवसं ददर्श। विनिर्गतश्च ससम्भ्रमप्रचलितगन्धगजघटासहस्रैरन्योन्यसघट्टजर्जरितातपत्रमण्डलैरादरावनतमौलिशिथिलमणिमुकुट-

---

आलानि विद्यन्ते यस्मिन्स तेन। शतेति। शतसख्या शलाका स्वर्णनिर्मिता ईषिका यस्मिन्स तेनैवविधेनातपत्रेण छत्रेण निवार्यमाणो दूरीक्रियमाण आतप सूर्यालोको यस्य स तथा। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त.। निरिति। निर्गच्छन्नजसभ्यन्तरावस्थित एव चन्द्रापीड प्राकारान्तरित दर्शनाना वप्रव्यवहितदर्शनानां प्रतिपालयता प्रतीक्षां कुर्वाणाना राज्ञा नृपाणामुद्‌र्ध्वं मयूखाः किरणा येषामेवविधाना चूडामणीना शिरोमणीनां तेषामालोकलक्षणो यो बालातपस्तेन दृढेन बहुलेनालक्तकद्रवद्युतिमुषालक्तकरसहारिणात्यर्थमतिशयेन पिञ्जरीक्रियमाणा पीतरक्तीक्रियमाणा दश दिश कर्म ददर्शालोकयामासेत्यन्वय। अत्रोत्प्रेक्षते— राज्येति। राज्यस्य यौवराज्यस्य योऽभिषेक स्नान तस्यानन्तर प्रसृतेन स्वप्रतापवह्निनेव स्वस्य स्वकीयस्य य प्रताप कोशदण्डज तेज स इव वह्निरग्निस्तेनेव। प्रतापस्य रक्तत्वात्तदनुमानम्। अथ च यौवराज्याभिषेकजन्मना यौवराज्यस्नानसमुद्भवेन निजानुरागेणेवात्मीयस्नेहेन रज्यमान रक्तीक्रियमाणमवनितल वसुधातलम्। अथ चासन्न समीपवर्ती यो रिपुविनाश शत्रुक्षयस्तस्य पिशुनेन सूचकेन दिग्दाहेनेव पाटलीक्रियमाणं श्वेतरक्तीक्रियमाणम् अम्बरतल व्योमतलम्। अभीति। अभिमुखा सम्मुखागता या भुवनतललक्ष्मीस्त्रिविष्टपश्रीस्तस्याश्चरणालक्तक पादयावकस्तस्य रसेनेव लोहितायमानो रक्तवदाचरमाण आतप आलोको यस्यैवभूत दिवस वासर ददर्शेति पूर्वक्रियया सबन्ध। विनीति। विशेषेण निर्गतो बहिरागत। च पुनरर्थक। अवनिभुजा राज्ञा चक्रवालै समूहै प्रणम्यमानो नमस्क्रियमाण। अथ राजकविशेषणानि—ससंभ्रमेति। ससम्भ्रमं सवेगं प्रचलित प्रस्थित

रस की छवि को मात करते, बहुत से प्रकाश की प्रात कालीन धूप के कारण, मानो अपने राज्याभिषेक के पश्चात् फैली हुई अपनी प्रतापरूपी अग्नि से ही दसों दिशाएँ लाल-पीली-सी हो रही थीं, (उसने देखा कि) धरातल मानो उसके युवराज पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के कारण (अपने पति के रूप मे उसके प्रति उत्पन्न) स्नेह से ही (लाल पीले रग मे) रँगा जा रहा था, (उसने देखा कि) विस्तृत आकाश मानो उसके शत्रुओं के सहार के सूचक दिग्‌दाह से (दिशाओं में लगी आग) के कारण लाल हो गया था और (उसने देखा कि) दिन का प्रकाश मानो (उसका स्वागत करने के लिये उसके सामने आयी पृथ्वी की राज्यलक्ष्मी के पैरों पर लगे अलक्तक-रस से ही लाल-लाल दिखायी दे रहा था। और जब वह बाहर निकल आया तो उसको सामन्त राजा प्रणाम कर रहे थे, ये राजा ऐसे थे कि इनके वेग से चले हुए गन्धगजों के सहस्रों समूह थे, एक दूसरे के साथ हुई टक्करों से उनके गोल छत्र टूट-फूट रहे थे, (चन्द्रापीड के प्रति) सन्मान (प्रदर्शित करने) मे सिर झुकाने से उनके मणिमय मुकुटों की पक्तियाँ शिथिल हो रही

पङ्क्तिभिरावर्जितकर्णपूरैः कपोलस्थलस्खलितकुण्डलै राजाप्तसेनापतिनिर्दिश्यमाननामभिरवनिभुजा चक्रवालैः प्रणम्यमानः बहलसिन्दूररेणुपाटलेन क्षितितलदोलायमानमुक्ताकलापावचूलेन सितकुसुममालाजालशबलशिरसा सलग्नसध्यातपेन तिर्यगावर्जितश्वेतगङ्गाप्रवाहेण तारागणदन्तुरितशिलातलेन मेरुगिरिणेव गन्धमादनेनानुगम्यमानः, कनकालकारप्रभाकरमापितावयवेन च दत्तकुङ्कुमस्थासकेनेवाकृष्यमाणेनेन्द्रायुधेन सनाथीकृतपुरोभागः शनैःशनैः प्रथममेव शातक्रतवीमाशामभिप्रतस्थे ।

गन्धगजाना गन्धेभाना घटासहस्र येषा ते । अन्योन्येति । अन्योन्य परस्पर य सघट्ट समर्दस्तेन जर्जरितानि शिथिलीभूतान्यातपत्रमण्डलानि छत्रसमूहा येषा ते । आदरेति । आदरेण गौरवेणावनता नम्रा ये मौलय शिरासि तेन शिथिला श्लथा मणिमुकुटाना रत्नकिरीटाना पङ्क्तय श्रेणयो येषा ते । आवर्जितेति । आवर्जितान्यानमितानि कर्णपूराणि कर्णाभरणानि येषां ते । कपोलेति । कपोलस्थलाद्गल्लात्परप्रदेशात्स्खलितानि स्खलना प्राप्तानि कुण्डलानि कर्णभूषणानि येषा ते । राजेति । राज्ञो य आप्त प्रत्ययित सेनापति सैन्याध्यक्षस्तेन निर्दिश्यमानानि निवेद्यमानानि नामानि येषां ते । पुन कीदृश गन्धमादननाम्ना गजेन्द्रेणानुगम्यमानोऽनुव्रज्यमान । अथ गज विशेषयन्नाह—बहलेति । बहलो निबिडो य सिन्दूररेणु शृङ्गारभूषणधूलिस्तेन पाटलेन श्वेतरक्तेन । गजस्य सिन्दूरभूषणमिति सर्वप्रसिद्धि । गजशोभान्तरमाह—क्षितीति । क्षितितल पृथ्वीतल यावद्दोलायमान कम्पमानो यो मुक्ता कलापो मौक्तिकप्रकरस्तदेवावचूल कर्णाभरण यस्य स तथा । प्रस्थानसमये सर्व गजस्येष्टत्वात् । अलकारान्तरमाह—सितेति । सित यत्कुसुममालाजाल पुष्पस्रक्समूहस्तेन शबल कर्बुर शिरो यस्य स तेन । अत्रोत्प्रेक्षते—मेर्विति । मेरुर्मन्दर स चासौ गिरिश्चेति कर्मधारय । तत्सदृशेनेव । उच्चत्वसाम्यादस्य मेरुसाम्यमित्यर्थ । विशेषणत्रयेण मेरोरपि गन्धमादनसाम्यं प्रदर्श-

---

थीं, उनके रत्नमय कर्णाभूषण नीचे की ओर लटक आये थे, उनके कुण्डल उनके गालों पर लुढक आये थे और उनके नाम राजा द्वारा आदिष्ट सेनापति (चन्द्रापीड को) बताता जा रहा था। ऐसे राजाओं द्वारा सत्क्रियमाण चन्द्रापीड ने पहले-पहल पूर्व दिशा की ओर पस्थान किया। सिन्दूर के गाढे गाढे चूरे से पीला हुआ, धरातल तक झूलते हुए मोटे-मोटे मोतियों के बने 'अवचूल' नाम के आभूषणवाला, श्वेत फूलों की मालाओं के समूह से रग बिरगे सिरवाला और इस प्रकार लगी हुई (उस पर गिरी हुई) सायकालीन (लाल) धूपवाले, तिरछे गिरते (स्वर्ग) गगा के प्रवाह वाले, तारों के (श्वेत) पुज से दन्तुरित (ऊँची नीची हुई) शिलातल वाले मेरु पर्वत के समान प्रतीत होता गन्धमादन उसके पीछे पीछे चल रहा था। और उसके सामने का भाग इन्द्रायुध के सहित था—अर्थात् उसके आगे इन्द्रायुध चल रहा था, वह इन्द्रायुध जिसके अग सोने के आभूषणों की छवि से रग बिरगे हो रहे थे, और जो इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उस पर कुङ्कुम के छापे अकित कर दिये गये हों।

अथ चलितगजघटाकम्पितातपत्रवनमनेककल्लोलपरम्परापतितचन्द्रमण्डलप्रतिबिम्बसहस्रं महाप्रलयजलधिजलमिव प्लावितमहीतलमद्भुतोद्भूतकलकलमखिल सचचाल बलम्। उच्चलितस्य चास्य स्वभवनादुपपादितप्रस्थानमङ्गलो धवलदुकूलवासाः

यन्नाह—संलग्नेति। सलग्न सश्लिष्ट. सध्यातपो यस्मिन्। एतेन सिन्दूरसादृश्यम्। तिर्यगिति। तिर्यगावर्जित प्रवर्तित श्वेतगङ्गाप्रवाहो यस्मिन्। एतेन मुक्ताकलापसाम्यम्। तारेति। तारागणेन नक्षत्रवृन्देन दन्तुरित विषमित शिलातलं यस्मिन्। एतेन चक्रसाम्यम्। पुना राजान विशेषयन्नाह—इन्द्रायुधेति। इन्द्रायुधेनाश्वरत्नेन सनाथीकृत सहित पुरोभागोऽग्रभागो यस्य स तथा। अथाश्व विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य योऽलकारस्तस्य प्रभा कान्तिस्तया कल्माषिता कर्बुरिता अवयवा अपघना यस्य स तेन। अत्रोत्प्रेक्षते—दत्तेति। दत्ता कुङ्कुमस्य किञ्जल्कस्य स्थासका हस्तबिम्बा यस्यैवंविधेनेव। कीदृशेन। इन्द्रायुधेनाकृष्यमाणेन। अश्वपालकेनेति शेष। एतेनास्याग्रयानत्व सूचितमिति भाव। शनै शनैर्मन्दमन्द प्रथममेवादावेव शातक्रतवीं शतक्रतोरियं शातक्रतवी ता प्राचीमभिप्रतस्थे। तस्या अभिमुख चचालेत्यर्थं। तदनन्तर बल सैन्य संचचाल। सम्यक्प्रकारेण चलित बभूवेत्यर्थं।

अथ बल विशेषयन्नाह—चलितेति। चलिता गन्तुं प्रवृत्ता या गजघटा हस्तिसमुदायस्तया कम्पितानि धूतान्यातपत्राणि छत्राणि यस्मिंस्तत्। कीदृशम्। प्लावितेति। प्लावित प्रलय नीत महीतल येन तत्। गजाना कृष्णत्वसाम्यात्समन्तत. प्रसरणसाम्याच्चोपमानान्तरमाह—महेति। महाप्रलयो महाकल्पान्तस्तस्मिन्यो जलधि समुद्रस्तस्य जल पानीय तद्वदिव। अथ जल विशिनष्टि—अनेकेति। अनेके सख्यातीता ये कल्लोलास्तरङ्गास्तेषा परम्परा पङ्क्तिविस्तारास्तासु पतित प्रतिबिम्बित सक्रान्त चन्द्रमण्डलस्य शशिमण्डलस्य प्रतिबिम्बसहस्र प्रतिच्छायसहस्र यस्मिन्। अत्रातपत्राणा वर्तुलत्वस्वच्छत्वसाम्याच्चन्द्रप्रतिबिम्बसाम्यम्। एतदपि प्लावितमहीतलम्। अद्भुतेति। अद्भुतोद्भूत अश्वादप्याश्चर्यकारी कलकल कोलाहलो यस्मिन्। एतच्चोभयत्र साम्यम्। उच्चेति। अथोत्प्राबल्येन चलितस्य कृतप्रयाणस्यास्य राज्ञश्चन्द्रापीडस्य। अत्र चकारोऽधिकारान्तरसूचक। वैशम्पायन समीपं पार्श्वमाजगामाययौ। कया। त्वरितपद-

---

इसके पश्चात् वह सारी सेना भी चल पड़ी, उस सेना मे हस्तियूथों के चल पडने पर श्वेत छत्र हिल गये, वह सेना सारे धरातल पर छा गयी और उससे एक प्रकार की कलकल ध्वनि आने लगी, और इस प्रकार वह सेना ऐसी प्रतीत होने लगी कि मानो अनेक तरङ्गो की पंक्तियों पर गिरे हुए चन्द्रमा के हजारों प्रतिबिम्बों वाला अद्भुत क्षोभ से भूतल को भर देने वाला महाप्रलयकालीन जलधि का जल ही हो। जब वह (चन्द्रापीड) चल पड़ा तब अपने भवन से तेज कदमों से चलती हुई हथिनी द्वारा (उस पर सवार हुआ) वैशम्पायन उसके समीप पहुँच गया, (वैशम्पायन के लिये भी) प्रस्थान-समय के मङ्गलाचार कर लिये गये थे, वह श्वेत रेशमी वेष-वाला (धारी) था, श्वेत पुष्पो से उसने

सितकुसुमाङ्गरागो महता बलसमूहेन नरेन्द्रवृन्दैश्चानुगम्यमानो धृतधवलातपत्रो द्वितीय इव युवराजस्त्वरितपदसंचारिण्या करिण्या वैशम्पायनः समीपमाजगाम। आगत्य च शशिकर इव रवेरासन्नवर्ती बभूव। अनन्तरमितश्चेतश्च 'निर्गतो युवराजः' इति समाकर्ण्य प्रधावता बलानां भरेण चलितकुलशैलकीलितजलधिजलतरङ्गगतेव तत्क्षणमाचकम्पे मेदिनी समुखागतैरन्यैश्चान्यैश्च प्रणमद्भिर्भूमिपालैः। अंशुलताजालजटिलचूलिकानां

सञ्चारिण्या शीघ्रचरणगामिन्या करिण्या हस्तिन्या करणभूतयेत्यर्थं। स्वेति। स्वभवनान्निजगृहादुपपादित विहित प्रस्थानमङ्गल येन स। धवलेति। धवल श्वेत दुकूलमेव वासो वस्त्र यस्य स। सितेति। सितकुसुमै श्वेतपुष्पैरङ्गराग. शरीरशोभा यस्य स तथा। सितकुसुमवदङ्गरागो विलेपन यस्येति वा। महता महीयसा बलसमूहेन सैन्यसघातेन नरेन्द्रवृन्दैश्च राजसमूहैश्चानुगम्यमानोऽनुव्रज्यमान.। धृतेति। धृत शिरसि धारित श्वेतमातपत्र छत्र येन स। द्वितीय इवापर इव युवराज। आगत्याभ्येत्य। चकार पुनरर्थक। आसन्नवर्ती समीपवर्ती बभूव सजज्ञे। कस्य क इव। यथा रवे सूर्यस्य शशिकरश्चन्द्र समीपगो भवति। अत्र शशिकर इवेति कथनाद्वैशम्पायनस्य कुमारापेक्षया शोभायामपकर्ष सूचित। युक्तोऽयमर्थ। अमावस्याया सूर्यनिकटे चन्द्रस्य न्यूनतैव भवतीति भाव। अथवेतश्चेतश्च निर्गतो युवराज इति लोकोक्त्या समाकर्ण्य श्रवणविषयीकृत्य प्रधावतां धावनं कुर्वतां बलाना सैन्यानां भरेण समुदायेन समुखागतैरभिमुखायातै प्रणमद्भि प्रणामं कुर्वद्भि. अन्यैश्चान्यैश्च भिन्नभिन्नदेशोद्भवैश्च भूमिपालैर्नृपतिभि कृत्वा तत्क्षण तत्काल मेदिनी पृथ्व्याचकम्पे चचाल। कीदृशीव। चलितेति। चलिता कम्पिता ये कुलशैला क्षेत्रमर्यादाकारिणो नगास्तै कीलितो यन्त्रितो यो जलधि समुद्रस्तस्य जलं पानीयं तस्य तरङ्गा कल्लोलास्तत्र गतेव प्राप्तेव। अंशुलतेति। अंशुलतानां किरणश्रेणीना जालसमूहस्तेन जटिला व्याप्ता चूलिका प्रान्तभागो येषामेवंविधानां मणिमुकुटानां रत्नकिरीटानामा-

---

अपने शरीर को सजाया हुआ था, एक बड़ी सेना और राजाओं की एक पलटन (वृन्द-समूह) उसके पीछे-पीछे चल रही थी और उसने अपने (सिर के ऊपर) एक श्वेत छत्र धारण किया हुआ था, इस प्रकार वह मानो दूसरा (उत्तराधिकारी) राजकुमार ही लग रहा था। वहाँ आकर (पहुँच कर) वह उसके समीप ऐसे (खड़ा) हो गया जैसे कि मानो चन्द्रमा सूर्य के समीप आ खड़ा हुआ हो। इसके पश्चात् 'युवराज निकल चुका' यह सुनकर इधर उधर दौड़ती हुई सेनाओं के भार से पृथ्वी उस समय ऐसी काँप उठी कि मानो वह (महाप्रलय के समय) हिले कुल पर्वतों द्वारा घिरे[1] समुद्र के जल की लहरों पर तैर रही हो। और उसके सामने आये तथा प्रणाम करते दूसरे-दूसरे (बहुसख्यक) राजाओं ने, (लता-सरीखी) अतएव लम्बी किरणों के समूह से व्याप्त शिखाओं[2] वाले (अपने) मणिमय मुकुटों

---

१. कीलित, बन्द अर्थात् घिरी हुई। २. चूलिका, शिखर।

मणिमुकुटानामालोकेनोन्मिषितबहुलरोचिषा च पत्रभङ्गिनीना केयूरमण्डलीना प्रभासंतानेन क्वचिद्विकीर्यमाणचाषपक्षक्षोदा इव, क्वचिदुत्पतितशिखिकुलचलच्चन्द्रकशतशारा इव, क्वचिदकालजलधरतडित्तरला इव, क्वचित्सकल्पतरुपल्लवा इव, क्वचित्सशतक्रतुचापा इव, क्वचित्सबालातपा इव क्रियन्ते दश दिशः। धवलान्यपि विविधमणिनिकरकल्माषैरुत्सर्पिभिश्चूडामणिमरीचिभिर्मायूराणीव राजन्ते राज्ञामातपत्राणि। क्षणेन च तुरगमयमिव महीतलम्, कुञ्जरमयमिव दिक्चक्रवालम्, आतपत्रमण्डलमयमिवान्तरि-

लोकेन प्रकाशेन। उन्मिषितेति। उन्मिषिता विकास प्राप्ता बहुला दृढा रोचिष कान्तयो यासु तासाम्। पत्रेति। पत्रभङ्गा रचनाविशेषा विद्यन्ते यास्वेवविधाना केयूरमण्डलीनामङ्गदश्रेणीनां प्रभासतानेन च कान्तिसमूहेन चैवविधा दश दिशो दश ककुभ क्रियन्ते विधीयन्त इत्यन्वय। तदाह—क्वचिदिति। क्वचित् कस्मिंश्चित्प्रदेशे विकीर्यमाणा विक्षिप्यमाणाश्चाषाणा किकीदिवीनां पक्षक्षोदा पिच्छचूर्णानि यास्वेवविधेषु। क्वचिदिति। क्वचित् उत्पतितमुड्डीन यच्छिखिकुल नीलकण्ठसमुदायस्तस्य ये चलन्तो दीप्यमानाश्चन्द्रका मेचकास्तेषां शत तेन शारा कर्बुरा इव। 'शार शबलवातयो' इत्यनेकार्थ.। क्वचिदिति। क्वचित् अकालेऽनवसरे यो जलधरो मेघस्तस्य तडिद्विद्युत्तया तरला इव परिप्लवा इव। क्वचिदिति। क्वचित् कल्पतरूणां देववृक्षाणा पल्लवा किसलयास्तै सह वर्तमानेव। क्वचिदिति। क्वचित् शतक्रतुरिन्द्रस्तस्य चाप धनुस्तेन सह वर्तमानेव। क्वचिदिति। क्वचित् बालातप प्रभातकालीनसूर्यालोकस्तेन सह वर्तमानेव तथा। राज्ञा धवलान्यपि श्वेतान्यप्यातपत्राणि। विविधेति। विविधानामनेकप्रकाराणां मणीनां निकरा. समूहास्तै कल्माषै शबलैरुत्सर्पिभि प्रसरद्भिश्चूडामणिमरीचिभि शिरोमणिकान्तिभिर्मायूराणीव मयूरपिच्छनिर्मितानीव राजन्ते शोभन्ते। क्षणेन समयमात्रेणैतादृशमभवदजायत। तदेवाह—तुरगेति। तुरगा अश्वास्तन्मयमिव महीतल पृथ्वीतलम्। कुञ्जरा हस्तिनस्तन्मयमिव

के प्रकाश से और पत्राकार रचनाविशेष से युक्त तथा बहुत से प्रकाश को छोड़ते—प्रकाश के प्रवाह को बहाते—केयूरों के समूह की ज्योति की धारा से, दसों दिशाएँ ऐसी कर दीं (वे ऐसी दिखायी देने लगीं कि) कहीं तो मानो 'चाष' नामक पक्षी के (नाना वर्णों के) पंखों के चूर्ण को बिखेर रही हों, कहीं मानो उड़ते-फिरते मोरों के समूह (की पूँछ) के हिलते (चमकते) सैकड़ों गोलाकार धब्बों (चन्द्रकों) से रंगबिरंगी हो गयी हों, कहीं मानो असामयिक बादलों की बिजली की चमक से चमक रही हों, कहीं मानो कल्पवृक्ष की पत्रावली से युक्त हों, कहीं मानो इन्द्रधनुषों से भर गयी हों और कहीं मानो प्रातःकालीन धूप से युक्त हों। (उन) राजाओं की श्वेत छतरियाँ भी, विविध प्रकार की मणियों के गुच्छों से रंग-बिरंगी, ऊपर को फैलतीं (उनके) मुकुटों की मणियों की किरणों (मे लपट जाने) के कारण मोरों के पंखों की बनी हुई-सी प्रतीत होने लगीं और क्षण भर मे ही धरातल ऐसा हो गया कि मानो (केवल) घोड़े ही घोड़े हों,[1] दिशाओं (दिङ्मण्डल) में (केवल) हाथी ही हाथी हों, अन्तरिक्ष ऐसा

१ विकारार्थ में मयट् प्रत्यय होता है।

क्षम्, ध्वजवनमयमिवाम्बरतलम्, इभमदगन्धमय इव समीरणः, भूपालमयीव प्रजासृष्टिः, आभरणांशुमयीव दृष्टिः, किरीटमय इव दिवसः, जयशब्दमयमिव त्रिभुवनमभवत्। सर्वतश्च कुलपर्वताकारैः प्रचलद्भिर्मत्तवारणैः उत्पातचन्द्रमण्डलनिभैश्च प्रेङ्खद्भिरातपत्रैः, सवर्तकाम्भोदगम्भीरभीमनादेन च ध्वनता दुन्दुभिना, तारकावर्षसदृशेन विसर्पता गजसीकरनिकरेण, धूमकेतुधूसरैश्चोल्लसद्भिरवनिरजोदण्डकैः, निर्घातपातपरुषगम्भीरघोषैश्च करिकण्ठगर्जितैः, क्षतजकणवर्षबभ्रुणा च भ्रमता

दिक्चक्रवालं ककुभां मण्डलम्। आतपत्राणि छत्राणि तेषां मण्डलं तन्मयमिवान्तरिक्षमाकाशम्। ध्वजा वैजयन्त्यस्ता एव वनमरण्यं तन्मयमिवाम्बरतलमाकाशतलम्। इभा हस्तिनस्तेषां मदगन्धो दानवारिपरिमलस्तन्मय इव समीरणो वायुः। भूपाला राजानस्तन्मयीव प्रजा सृष्टिः प्रकृतिसृष्टिः। आभरणानि तेषामंशवः किरणास्तन्मयीव दृष्टिश्चक्षुः। किरीटानि कोटीराणि तन्मय इव दिवसो वासरः। जयशब्दो मागधानां शुभसूचकः शब्दस्तन्मयमिव त्रिभुवनं त्रिविष्टपम्। सर्वतश्च वक्ष्यमाणेन प्रकारेण महाप्रलयकाल इव कल्पान्तसमय इव सज्जः समभूत्। तदेव दर्शयन्नाह—कुलपर्वतेति। सर्वतः सर्वदिक्षु प्रचलद्भिर्गच्छद्भिर्मत्तवारणैर्मदकलैर्हस्तिभिः। कीदृशैः। कुलपर्वताः सप्तकुलाचलास्तद्वदाकार आकृतिर्येषां ते। अत्युच्चत्वसाम्यात्कल्पान्ते कुलाचलानामपि चलनमद्भावाच्च समग्रसाम्यमिति भावः। तथा। उत्पातेति। उत्पातकाले बहूनि चन्द्रमण्डलानि भवन्ति क्षतजकणवर्षाश्चेत्यत आह—तत्समयेति। तत्समयवर्तीनि यानि चन्द्रमण्डलानि शशिमण्डलानि तन्निभैस्तत्सदृशैरेवंविधैः प्रेङ्खद्भिः प्रचलद्भिरातपत्रैश्छत्रैश्च। तथा सवर्तकाम्भोदो लोकक्षयकारी मेघस्तद्वद्गम्भीरो भीमश्च नादो यस्यैवंविधेन ध्वनता शब्दं कुर्वता

दिखायी देने लगा कि उसमें केवल छतरियाँ ही हों, आकाश ऐसा दिखायी देने लगा कि उसमें केवल पताकाओं का वन (अर्थात् समूह) ही हो, वायु ऐसी प्रतीत होने लगी कि वह हस्तियों के मदरस की गन्ध से भरी हो, प्रजाओं-मरणधर्माओं के इस संसार में मानो राजा ही राजा हों, दृष्टि मानो (मणिमय) आभूषणों की किरणों से भरी हो,[1] दिन मुकुटों से भरा हो, और तीनों लोक जयनाद से ही भर गये हों।

और चारों ओर कुलपर्वतों के बराबर आकार वाले घूमते फिरते मदमस्त हाथियों के कारण, उत्पात (सूचक) चन्द्रमण्डलों के सदृश हिलते हुए छत्रों के कारण—तथा सवर्तक नाम के बादल के गम्भीर तथा भयानक शब्द के सदृश गम्भीर तथा भयावह शब्दवाली बजती हुई दुन्दुभी के कारण—टूटते नक्षत्रों की वर्षा प्रतीत होते, फैलते हाथियों (द्वारा छोड़ी गयी) फुहार के पुञ्ज के कारण—तथा धूमकेतु के सदृश धूसर एवं चमकती धूल के डण्डों-सरीखे ऊपर को उठते हुए—धूल के स्तम्भों (बगूलों) के कारण—तथा परस्पर स्पर्धा करतीं वायुओं अथवा बिजली के गिरने पर हुए कर्णकटु तथा गम्भीर शब्द के समान कर्णकटु तथा गम्भीर, हाथियों की चिंघाड़ों के कारण, तथा रक्तकणों की (रक्त की बूँदों की) वर्षा के समान लाल-

---

1. आँख को केवल आभूषणों की किरणें ही दिखायी देती थीं।

मतङ्गजकुम्भसिन्दूररेणुना, सङ्क्षुभितजलधिजलकल्लोलचलाभिश्च प्रविशन्तीभिस्तुरङ्गममालाभिः, अन्धकारितदिगन्तरेण चानवरत क्षरता मदजलधारादुर्दिनेन, कलकलेन च भुवनान्तरव्यापिना महाप्रलयकाल इव सजज्ञे। बलकोलाहलभीता इव धवलध्वजनिवहनिरन्तरावृता ययुः क्वापि दश दिशः। मलिनावनिरजःसंस्पर्शशङ्कितमिव समदगजघटावचूलसहस्रसरुद्धमतिदूरमम्बरतलमपससार। प्रबलवेत्रिवेत्रलतासमुत्सार्यमाणा इव तुरगखुर-

---

दुन्दुभिना पटहेन च। तथा तारकावर्षो नक्षत्रवृष्टिस्तत्सदृशेन तदनुकारिणा विसर्पता प्रसरणशीलेन गजाना हस्तिना सीकरनिकरेण शुण्डानि सृतजलपृषत्समूहेन तथा धूमकेतुर्ग्रहविशेषस्तद्द्धूसरैर्धूम्रैरुल्लसद्भिरुल्लास गच्छद्भिरवनिरजोदण्डकैरवनेर्वसुधाया रजोदण्डैर्धूलिदण्डै। आयतत्ववर्तुलत्वाभ्या दण्डसाम्यम्। निर्घातो वज्रं तस्य पात पतन तद्वत्परुष कठोरो गम्भीरो बहुकालस्थायी घोष शब्दो येषामेवविधै करिकण्ठगर्जितैर्गजशब्दैश्च। क्षतज रुधिर तस्य कणा बिन्दवस्तेषा वर्षो वृष्टिस्तद्वद्बभ्रुणा कडारेण मतङ्गजा हस्तिनस्तेषा कुम्भा शिरस पिण्डास्तेषां च सिन्दूररेणुर्नागजधूलिस्तेन भ्रमता प्रसर्पता च। तथा सङ्क्षुभित क्षोभं प्राप्तो यो जलधि समुद्रस्तस्य जल पानीय तस्य कल्लोलास्तरङ्गास्तद्वच्चञ्चलाभिस्तरलाभि प्रविसर्पन्तीभि प्रकर्षेण विस्तार प्राप्नुवन्तीभिस्तुरङ्गममालाभिश्च। तथान्धकारित सजातान्धकार दिगन्तर येनैवविधेनानवरत निरन्तर क्षरता स्रवता मदजलधारा दानवारिधारा तदेव दुर्दिन मेघजं तमस्तेन। तथा भुवनान्तरव्यापिना विष्टपविवरप्रसरशीलेन। महाप्रलयेऽप्येतद्धर्माणां सद्भावात्। कलकलेन। सैन्येऽपि तद्दर्शनादुपमानोपमेयभाव। बलेति। बलस्य सैन्यस्य च कोलाहल कलकलस्तेन भीता इव त्रस्ता इव दशसख्याका दिश ककुभ क्वाप्यनिर्दिष्टस्थले ययुर्गता। किंविशिष्टा। धवला श्वेता ये ध्वजनिवहा वैजयन्तीगणास्तैर्निरन्तर सर्वदावृता आच्छादिता। दिग्गमनेऽयमेव हेतुरिति भाव। मलिनेति। मलिन यदवनिरजस्तस्य च सस्पर्श सश्लेषस्तस्माच्छङ्कितमिवारेकितमिवातिदूरमतिदविष्ठमम्बरतलं व्योमतलमपससारापसृत बभूव। अत्रार्थे हेतुगर्भित

भूरी सी प्रतीत होती तथा इधर उधर फैलती हुई, हाथी के मस्तक पर के सिन्दूर की धूलि के कारण, सक्षुब्ध समुद्र जल की लहरों के सदृश चञ्चल एव आगे बढती अश्वपक्तियों के कारण, निरन्तर बह रही एव सभी दिगन्तरालों को अन्धकारयुक्त कर रही, (हाथी के) मदजल की धारा की वर्षा के कारण और ससार के सभी प्रदेशों के भीतर व्यापक शोर के कारण मानो वहाँ महाप्रलय का काल ही बन गया था। दसों दिशाएँ मानो सेना के शोर से डरी हुई-सी, श्वेत पताकाओं के समूह से बिना अन्तर (अवकाश) छोड़े हुए ढकी हुई सी न जाने कहाँ चली गयी थीं—(अर्थात् वे पहचान में नहीं आती थीं)। आकाश मदमस्त हाथियों के दल के सहस्रों 'अवचूलों' (झूलों) से रुका हुआ (अर्थात् ठूँस ठूँस कर भरा हुआ) ही मानो मैली मिट्टी के छूने से डरा हुआ-सा दूर (अपने दूरतम कोने में) चला गया था। मानो शक्तिशाली नेत्रधारियों की बेंतों से बुहारी जाती हुई (अथवा) मानो घोड़ों के खुरों से (उत्थापित)

रजोधूसरताभीतार्ककिरणा मुमुचुः पुरोभागम्। इभकरसीकरनिर्वापणत्रस्त इवातपत्रसंच्छादितातपो दिवसो ननाश। बलभरजर्जरीकृता मदकलकरिचरणशतखण्डिता द्वितीयेव प्रयाणभेरी भैरव भूमी रराम। गुल्फद्वयसे चतुरङ्गमुखविनिःसृतसितफेनपल्लविते मदपयसि मदस्रुता करिणा प्रचस्खलुः पदे पदे पदातयः। हरितालपरिमलनिभेन चातिपटुना गजमदामोदेनानुलिप्तस्य सामजस्येव समुपययौ निखिलान्यगन्धग्रहणसामर्थ्यं

विशेषणमाह—समदेति। मदेन सह वर्तमाना या गजघटानेकपसमूहस्तस्या अवचूलसहस्र कर्णाभरणसहस्र तेन सहर्षं सच्छत्रम्। अत्र गजातिशयस्य व्यङ्ग्यम्। प्रबलेति। प्रबला प्रकृष्टबलयुक्ता ये वेत्रिणो द्वारपालकास्तेषा वेत्रलता वेतसयष्टयस्ताभि समुत्सार्यमाणा इव दूरीक्रियमाणा इव। तुरगेति। तुरगाणामश्वानां खुररज शफधूलिस्तेन या धूसरतेषत्पाण्डुता तया भीता इवार्ककिरणा सूर्यरश्मय. पुरोभागमग्रभाग मुमुचुस्तत्यजु। अनेन तुरङ्गाणा भूयस्त्व वेगातिशय खुरनिक्षेप शक्तिविशेषश्च व्यज्यते। इभेति। इभा हस्तिनस्तेषां करसीकराः शुण्डादण्डोद्गतजलपृषतस्तैर्निर्वापणमपनयन तेन त्रस्त इव चकित इव। आतपत्रेति। आतपत्रैश्छत्रैः सच्छादित आतपो रविप्रकाशो यस्मिन्नेवंभूतो दिवसो ननाश नाश प्राप्तवान्। बलेति। बलभरेण जर्जरीकृता शकलीकृता मदेन कला मनोहरा ये करिणो हस्तिनस्तेषां चरणशतमङ्घ्रिशत तेन खण्डिता भिन्ना द्वितीयापरा प्रयाणभेरीव प्रस्थानदुन्दुभिरिव भैरव कठोर भूमिर्वसुधा रराम शब्द चकार। शब्दविशेषजनकत्वसाम्यादुत्प्रेक्षा। 'रस शब्दे' इति धातोर्लिटि रूपम्। मदेति। मदस्रुता दानवारि क्षरतां करिणा गजाना मदपयसि पदे पदे पदातय पत्तय प्रचस्खलु प्रस्खलना प्रापु। अथ मदपयो विशिनष्टि—गुल्फद्वयसे चरणग्रन्थिपरिमिते। अत्र प्रमाणे द्वयसच्। तुरङ्गेति। तुरङ्गमुखेभ्योऽश्ववदनेभ्यो विनिःसृता बहिरागता सितफेना श्वेतकफास्तै पल्लविते विस्तारं प्राप्ते। हरीति। हरितालस्य पिञ्जरस्य य परिमलो गन्धस्तस्य निभेन सदृशे-

धूल से धूसरित हो जाने से डरी हुई सूर्य की किरणों ने सेना के अग्रभाग को छोड़ दिया था। छतरियों से छिपी हुई धूप वाला दिन मानो हाथियों की सूँड़ से निकली फुहारों द्वारा नष्ट हो जाने (बुझ जाने) के डर के कारण ही अदृश्य हो गया था। उस सेना के भार के नीचे कुचली गयी तथा मदमस्त हाथियों के सैकड़ों पाँवों से आहत हुई भूमि भयानक रूप से कराह उठी, मानो कि वह दूसरी भेरी थी जो प्रस्थान के अवसर पर बजायी गयी थी। टखनों जितने[1] गहरे और घोड़ों के मुख से निकले फेन से युक्त मद चुवाते हाथियों के मदरस में पदाति सैनिक कदम-कदम पर लड़खड़ाये। (मनुष्यों की) घ्राण इन्द्रिय की दूसरी सभी गन्धों को ग्रहण करने की शक्ति ऐसे ही दूर हो गयी जैसे कि (पीली) हरताल की गन्ध के सदृश, अति शक्तिशाली, मस्त मदरस की गन्ध से अनुलिप्त (व्याप्त) सामज[2] अर्थात् हाथी की नाक की

१ 'प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ् मात्रचः' इस सूत्र से प्रमाण अर्थ में द्वयसच् प्रत्यय हुआ है।

२. सामज अर्थात् सामोत्पन्न अर्थात् हाथी। कहते हैं कि ब्रह्मा द्वारा सात साम गाये जाने पर हस्ती उत्पन्न हुआ था।

घ्राणेन्द्रियस्य। क्रमेण च प्रसर्पतो बलस्य पुरः प्रधावता जनकदम्बकाना कोलाहलेन तारतरदीर्घेण च काहलाना निनादेन, खुररवविमिश्रेण च वाजिना हर्षहेषारवेण, अनवरतकर्णतालस्वरसम्पृक्तेन च दन्तिनामाडम्बररवेण, ग्रैवेयककिङ्किणीकणितानुसृतेन च गतिवशाद्विषमविरागिणीना घण्टानां टङ्कृतेन, मङ्गलशङ्खशब्दसवर्धितध्वनीना च प्रयाणपटहाना निनादेन, मुहुर्मुहुरितस्ततस्ताड्यमानाना च डिण्डिमाना

नातिपटुनातिस्पष्टेन गजमदामोदेन करिदानवारिपरिमलेन चानुलिप्तस्य व्याप्तस्य घ्राणेन्द्रियस्य नासिकाकरणस्य निखिलान्यग्रहणसामर्थ्यं समग्रापरग्रहणशक्ति समुपययौ। दूरीभूतमित्यर्थं। कस्येव। सामजस्येव मतङ्गजस्येव। यथा तदनुलिप्तत्वेन तस्यान्यग्रहणसामर्थ्यं न भवति तथेत्यर्थं। यथा नानारसशष्कुल्यादिस्थले सकलसमुदायवशान्नैकस्यापि रसविशेषस्य ग्रहो रसनेनैव तादृशसमुदायद्वन्द्व्युत्कृष्टार्द्रकनिम्बूफलरसमवधाने च रसनेन सकलान्यरसग्रहो भवत्ययमुत्कर्षं। आर्द्रकरसादेस्तथैव घ्राणेन्द्रियस्य नानासुगन्धद्रव्यसन्निधानदोषवशान्नैकस्यापि गन्धविशेषस्य धूपग्रहणसामर्थ्यम्। एव तादृशोक्तगजमदामोदेनानुलिप्तस्य घ्राणस्यातीतान्यगन्धग्रहणसामर्थ्यमभवदित्यर्थं। अथ चैतै कृत्वा जनस्य लोकस्य मूर्च्छेव मोह इवाभवदित्यन्वयः। तानेवाह—क्रमेति। क्रमेण परिपाट्या प्रसर्पतो गच्छतो बलस्य सैन्यस्य पुरोऽग्रे प्रधावता शीघ्र प्रचलता जनकदम्बकाना लोकसमुदायानां कोलाहलेन कलकलेन तथा। तारतरदीर्घेणोत्तरमधिकता प्राप्तेन काहलानां वाद्यविशेषाणां निनादेन शब्देन। तथा खुररवा. शफस्वनास्तैर्विमिश्रेण सम्पृक्तेन वाजिनां तुरङ्गाणां हर्षहेषारवेण हर्ष प्रमोदस्तेन या हेषा ह्रेषा तस्या रव शब्दस्तेन। तथा अनवरत निरन्तर कर्णतालस्य य स्वर शब्दस्तेन सम्पृक्तेन दन्तिना हस्तिनामाडम्बररवेण। पृष्ठे मुखे दन्तयोश्च नानाश्रृङ्गारभूषणरवेणेत्यर्थं। दन्तिन विशेषयन्नाह—ग्रैवेयेति। ग्रैवेयक कण्ठाभरणं तस्य किङ्किण्य क्षुद्रघण्टिकास्ताभिः क्वणित शब्दित तेनानुसृतेनानुगतेन तथा। गतीति। गतिवशाद्गमनवशाद्विषमोऽसदृशो विराव शब्दो यासामेवविधाना घण्टाना भूषणविशेषाणा टङ्कृतेन टणत्कारशब्देन तथा। मङ्गलेति। मङ्गलार्थं श्रेयोर्थं ये शङ्खशब्दास्तै सवर्धिता वृद्धिं प्राप्ता ध्वनयो येषामेवविधानां प्रयाणपटहाना प्रस्थानदुन्दुभीनां

दूसरी सभी गन्धों को ग्रहण करने की शक्ति चली जाती है। और क्रमश आगे बढ़ती सेना के आगे आगे दौड़ रहे जनसमूहों के शोर के कारण, काहल (नाम के ढोलों) के ऊँचे तथा लम्बे शब्द के कारण, खुरों की टाप से मिश्रित घोड़ों की हिनहिनाहट के कारण, निरन्तर कानों की फड़फड़ाहट से मिली, हाथियों (विशाल स्वर)[1] की चिंघाड़ों के कारण, (हाथियों की) गर्दनों के आभूषणों में[2] लगी घण्टियों की टुनटुनाहट से अनुसृत अर्थात् मिश्रित (हाथियों) के चलने के कारण एक सा शब्द न करते हुए घण्टों की झकार के कारण, मागलिक शखों के शब्द से बढ़े हुए (मिलकर अधिक हुए) स्वर वाले, प्रस्थान के अवसर पर बजाये गये, ढोलों के शोर

---

१ आडम्बर अर्थात् हाथी की चिंघाड़। २ ग्रैवेयक—ग्रीवायां भव अलंकार। 'कुलकुक्षिग्रीवाभ्य श्वास्यलंकारेषु' सूत्र से ढकञ् प्रत्यय हुआ है।

निःस्वनेन जर्जरीकृतश्रवणपुटस्य मूर्च्छेवाभवज्जनस्य। शनैःशनैश्च बलसंक्षोभजन्मा क्षितेरनेकवर्णतया क्वचिज्जीर्णशफरक्रोडधूम्रः, क्वचित्क्रमेलकसटासनिभः, क्वचित्परिणतरल्लकरोमपल्लवमलिनः, क्वचिदुत्पन्नोर्णातन्तुपाण्डुरः, क्वचिज्जरठमृणालदण्डधवलः, क्वचिज्जरत्कपिकेशकपिलः, क्वचिद्धरवृषभरोमन्थफेनपिण्डपाण्डुरः, त्रिपथगाप्रवाह इव हरिचरणप्रभवः, कुपित इव मुञ्चन्क्षमाम्, आरब्धपरिहास इव रुन्धन्भववनानि, तृषित इव पिबन्करिकरसीकरजलानि, पक्षवानिवोत्पतन्गगनतलम्, अलिनिवह

निनादेन निर्घोषेण तथा। मुहुर्मुहुर्वारंवारमितस्ततस्ताड्यमानानां डिण्डिमानां पटहविशेषाणां निःस्वनेन शब्देन। कीदृशस्य जनस्य। पूर्वोक्तैर्जर्जरीकृत श्लथीकृत श्रवणयो कर्णयो पुट यस्य स तथा तस्य। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। शनै शनैर्मन्द मन्दम्। बलेति। बलेन सैन्येन य संक्षोभ समर्दस्तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्यैवभूतो रेणू रज उत्पपातोर्ध्वं जगाम। क्षितेरिति। क्षिते. पृथिव्या अनेके ये वर्णा श्वेतादयस्तेषां भावस्तत्ता तया। रेणोरप्यनेकवर्णता प्रदर्शयन्नाह—क्वचिदिति। क्वचित् कस्मिंश्चित्प्रदेशे जीर्णो जरीयान्य शफरो मत्स्यस्तस्य क्रोड उपरिभागस्तद्वद्धूम्रो धूसर.। क्वचिदिति। क्वचित् कस्मिंश्चित्प्रदेशे क्रमेलक उष्ट्रस्तस्य सटा जटास्ताभि सनिभ सदृश। क्वचिदिति। क्वचित् परिणत पक्ववया यो रल्लको डुण्डस्तस्य रोमपल्लवस्तनूरुहकिसलयस्तद्वन्मलिन कृष्ण। क्वचिदिति। क्वचित् उत्पन्नः समुद्भूतो य ऊर्णातन्तुर्जालकारकस्तद्वत्पाण्डुर श्वेतरक्त। क्वचिदिति। क्वचित् जरठो दीर्घकालीनो यो मृणालदण्डो बिसदण्डस्तद्वद्धवल शुभ्र। क्वचिदिति। जरज्जरीयान्य कपिर्वनौकास्तस्य केशा अलकास्तद्वत्कपिल पिङ्गल। क्वचिदिति। क्वचित् वर. प्रधानो यो वृषभो बलीवर्दस्तस्य रोमन्थश्चर्वितचर्वण तस्मिन्य फेनपिण्ड कफपुञ्जस्तद्वत्पाण्डुर श्वेतरक्त.। कीदृश। त्रिपथगा गङ्गा तस्याः प्रवाह. स्रोतस्तद्वदिव हरिचरणप्रभव। हरयोऽश्वा विष्णुश्च। कुपित इव कोप प्राप्त इव। किं कुर्वन्। क्षमां पृथ्वीं मुञ्चस्त्यजन्। पक्षे क्षमां क्षान्तिम्। आरब्धेति। आरब्ध

के कारण और (अन्ततः) बार बार विभिन्न दिशाओं में बजाये गये ढोलों के शब्द के कारण बहरे किये गये कानों वाले मनुष्यों को मूर्छा सी आ गयी थी।

और धीरे धीरे सेना के द्रुत पाद विन्यास से उत्पन्न धूलि ऊपर उठ गयी (आसमान में छा गयी), यह धूल पृथ्वी के वर्णों के विविध होने के कारण कहीं तो वृद्ध शफर (मत्स्य) की छाती के समान भूरी सी थी, कहीं (रग में) ऊँट की अयाल के समान थी, कहीं यह पकी उम्र के रल्लक जाति के हरिण के घुघराले बालों[1] के समान मैली थी, कहीं पत्रोर्णतन्तु[2] बुनी हुई ऊन-जैसी श्वेत थी, कहीं परिपक्व मृणालदण्ड सी शुभ्र रग की थी, कहीं वृद्ध वानर के बालों के समान पीली सी भूरी थी, कहीं, हर अर्थात् शिवजी के बैल द्वारा की गयी जुगाली के समय उत्पन्न झागों के समान श्वेत थी। स्वर्गगा की जलधारा विष्णु के चरणों से उत्पन्न (हरि चरणप्रभव) होती है, यह धूल भी हरि अर्थात् अश्वों के पाँवों के खुरों द्वारा उत्पन्न की गयी होने

---

१. रोमपल्लव- रोमविस्तार।

इव चुम्बन्मदलेखाम्, मृगपतिरिव रचयन्करिकुम्भस्थलीषु पदम्, उपात्तविजय इव गृह्णन्पताकाम्, जरागम इव पाण्डुरीकुर्वञ्शिरांसि, मुद्रयन्निव पक्ष्माग्रसंस्थितो दृष्टिम्, आजिघ्रन्निव मकरन्दमधुबिन्दुपङ्कलग्नः कर्णोत्पलानि, मदकलकरिकर्णतालताडनत्रस्त इव विशन्कर्णशङ्खोदरविवराणि, पीयमान इवोन्मुखीभिरवनिपतिमुकुटमणिपत्र-

---

प्रस्तुत परिहासो हास्यं येनैवंविध इव। किं कुर्वन्। नयनानि लोचनानि रुन्धन्नाच्छादयन् उपहासकारिणो लोचनाच्छादनं लोकेऽपि प्रसिद्धम्। तृषित इव पिपासित इव करिणां हस्तिनां करसीकरजलानि शुण्डादण्डोद्भूतवातास्रवारीणि पिबन्पानं कुर्वन्। अदृश्यतां प्रापयन्नित्यर्थः। पक्षेति। पक्षवानिव गरुत्मानिव। तत्कृत्यमाह—उदिति। गगनतलमाकाशतलमुत्पतन्नाच्छन्। उभयोरेकधर्मत्वात्तदुपमानम्। अलीति। अलीना भ्रमराणां निवह समूहस्तद्वदिव। किं कुर्वन्। मदलेखा चुम्बश्चुम्बनं कुर्वन्। चुम्बनस्य सस्पर्शविशेषत्वात्तदुपमानम्। मृगेति। मृगपति सिंहस्तद्वदिव। किं कुर्वन्। करिकुम्भस्थलीषु गजशिरस पिण्डस्थलीषु पदं स्थान चरण वा रचयन्विदधत्। उपात्तेति। उपात्त स्वीकृतो विजयो दस्युजयरूपो येन स तद्वदिव पताका वैजयन्तीं गृह्णन्नाददत्। जरेति। जरा विस्रसा तस्या आगमस्तद्वदिव। तत्कृत्यमाह—शिरांस्युत्तमाङ्गानि पाण्डुरीकुर्वञ्श्वेतीकुर्वन्। शुक्लतापादनसाधर्म्याज्जराया उपमानम्। मुद्रयन्निति। पक्ष्म नेत्ररोम तदग्रसंस्थितस्तत्पुरोवर्ती दृष्टि मुद्रन्निव सकोचयन्निव।

के कारण 'हरि-चरण प्रभव' थी, क्रोधी व्यक्ति क्षमा को छोड़ बैठता है (सहनशील नहीं रहता), ऐसे ही धूल भी (क्षमा अर्थात्) पृथ्वी को छोड़ती हुई (ऊपर को) उठती है। दूसरों की आँखे बन्द करने वाले हँसी-मखौल करने में लगे व्यक्ति की भाँति यह भी (लोगों को) देखने मे रुकावट डाल रही थी। प्यासे व्यक्ति की भाति इसने हाथियों की सूँड़ों के जल-कण पी लिये थे अर्थात् सुखा दिये थे, पखोंवाले अर्थात् पक्षी की भाति यह आकाश प्रदेश को उड़कर जा रही थी, यह (हाथियों के) मद की रेखा को छू रही थी, उस पर बैठ रही थी, अतएव यह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो (काले) भौंरों का एक समूह हो। यह हस्तियों की विशाल कनपटियों पर अपना स्थान बनाती हुई—अथवा अपना पैर जमाती हुई—स्वय बैठती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो यह कोई सिंह हो, यह पताका को हथियाती हुई (अर्थात् उस पर फैलती हुई) ऐसी प्रतीत होती थी कि (शत्रु की पताकाओं को पकड़ने वाला) कोई विजेता हो। (लोगों के) सिरों को श्वेत करती हुई यह मानो बुढापे का आगमन थी। (लोगो की) आँखों की बरौनियों पर बैठी हुई (गिरी हुई) यह उनकी दृष्टि को बन्द कर रही-सी प्रतीत होती थी। (सैनिकों द्वारा अपने कानों मे पहने कमलों में विद्यमान) मकरन्द की मीठी बूँदों पर (लगी) बैठी हुई ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो वह कमलों को सूघ रही हो। मानो मत्त हस्तियों के कानों की फड़फड़ाहट में पिट जाने से डरी हुई हाथियों के कानों में आभूषण रूप शङ्खों के छिद्रों में प्रविष्ट हो रही थी (अथवा हाथियों के कानों में तथा उनकी कनपटियों के गड्ढों में घुस रही थी)। राजाओं के मुकुटों में भी मणियों पर पत्रों की रेखाओं मे उत्कीर्ण मकर

भङ्गमकरिकाभिः, अभ्यर्च्यमान इव तुरगमुखविक्षेपविप्लुतैः फेनपल्लवकुसुमस्तबकैः अनुगम्यमान इव मत्तगजघटाकुम्भभित्तिसंभवेन धातुधूलिवलयेन, आलिङ्ग्यमान इव चलच्चामरकलापविधुतेन पटवासपांसुना, प्रोत्साह्यमान इव नरपतिशेखरसहस्र-परिच्युतैः कुसुमकेशररजोभिः उत्पातराहुरिव दिवसकरमण्डलमकाण्ड एव पिबन्, नृपप्रस्थानमङ्गलप्रतिसरवलयमालिकासु गोरोचनाचूर्णायमानः, क्रकचकृतचन्दन-क्षोदधूसरो रेणुरुत्पपात ।

मकरन्देति । मकरन्दो मरन्दस्तस्य मधु रसस्तस्य बिन्दुपङ्क पृषत्कर्दमस्तत्र लग्न सयुक्त कर्णोत्पलानि श्रोत्रकुवलयान्याजिघ्रन्निव गन्धम् । मदेति । मदेन दानवारिणा कला मनोज्ञा ये करिणो हस्तिनस्तेषा कर्णतालस्तैस्ताडन प्रहारप्रदान तेन त्रस्त इव भीत इव । कर्णा श्रोत्रा शङ्खो भालश्रवोन्तरम्, तेषामुदरविवराणि मध्यच्छिद्राणि विशन्प्रविशन् । उन्मुखीभिरिति । उन्मुखीभिरूर्ध्वमुखीभिरवनिपतयो राजानस्तेषां मुकुटा किरीटानि तेषां मणयश्चन्द्रकान्ताद्यास्तत्र पत्रभङ्गमकरिकास्ताभि पीयमान इव । तुरगेति । तुरगाणा वाजिनां मुखान्याननानि तेषां विक्षेपा प्रस्फारणक्रियाविक्षेपास्तेभ्यो विप्लुतैर्गलितै फेनो मुखकफस्तस्य पल्लवा परपरास्त एव कुसुमस्तबका पुष्पगुच्छास्तैरभ्यर्च्य मान इव पूज्यमान इव । मत्तेति । मत्ता मदयुक्ता ये गजा हस्तिनस्तेषां घटा समूहास्तासा कुम्भा शिरस पिण्डास्त एव भित्तय कुड्यानि तेभ्य सभव उत्पत्तिर्यस्यैवविधेन धातुर्गैरि कादि कुम्भस्थलशोभार्थमनुलिप्यते तस्य धूलिवलयेन रजोवलयेनानुगम्यमान इव । चल-दिति । चलन्वेल्लन्यश्चामरकलापो बालव्यजनसमूहस्तेन विधुतेन कम्पितेन पटवास पिष्टातस्तस्य पांसुर्धूलिस्तेनालिङ्ग्यमान इवाश्लिष्यमाण इव । नरेति । नरपतीना राज्ञां शेखरसहस्रमवत-ससहस्र तस्मात्परिच्युतै स्रस्तै कुसुमानां पुष्पाणां केसराणि किञ्जल्कानि तेषां रजांसि परा-गास्तै प्रोत्साह्यमान इव प्रोत्साह प्राप्यमाण इव । उत्पातोऽजन्यं तादृशो राहुः सैंहिकेयस्त-

---

की आकृतियों द्वारा अपने मुँह उलट कर मानो पी जा रही थी । घोड़ों के मुखों से गिरे तथा इधर उधर उछाले हुए फेन की परतों-रूप पुष्पगुच्छों द्वारा मानो पूजी जा रही थी । मदमस्त हाथियों के समूह की चौड़ी कनपटियों पर से गिरती धात्वीय धूल के छल्ले मानो सादर इनके पीछे-पीछे चल रहे थे । डुलाई जाती चौरियों के समूह अर्थात् अनेक चौरियों द्वारा उड़ाये गये सुगन्धित कातिवर्धक चूर्ण द्वारा मानो इसका आलिंगन किया जा रहा था । राजाओं के सहस्रों मुकुटों से गिरी फूलों की तन्तुओं के पराग से मानो इसको प्रोत्साहन अर्थात् सहायता मिल रही थी । उत्पात अर्थात् अशुभ (सूचक) राहु की भाँति यह सूर्य मण्डल को असमय में ही मानो पिये जा रही थी—उसको धुँधला किये हुई थी । (किसी अभियान के लिये) राजा के प्रस्थान (करते समय किये गये) मगलाचारों में पहले हस्तसूत्रों के ककणों की पंक्तियों पर (बैठी हुई) यह धूल गोरोचना का चूर्ण प्रतीत हो रही थी । आरी द्वारा किये गये चन्दन चूर्ण (धूल) के समान धूसर वर्ण की थी ।

अपरिमाणबलसघट्टसमुपचीयमानश्च शनैःशनैः सहरन्निव विश्वमशेषमकाल-कालमेघपटलमेदुरो विस्तारमुपगन्तुमारेभे। तेन च क्रमेणोपचीयमानबहलमूर्तिना, दिग्विजयमङ्गलध्वजेन, रिपुकुलकमलप्रलयनीहारेण, राजलक्ष्मीविलासपटवासचूर्णेन, अहितातपत्रपुण्डरीकखण्डनतुषारेण, सैन्यभरपीडितमहीतलमूर्च्छान्धकारेण चलद्बल-जलदकालकदम्बकुसुमोद्गमेन, दिवसकरकरकमलवनोद्दलनद्विपयूथेन, गगनमहीतल-

द्दिवाकाण्ड एवाप्रस्ताव एव दिवसकरमण्डल सूर्यबिम्ब पिबन्ग्रसन्। नृपेति। नृपाणा राज्ञा प्रस्थानमङ्गलेषु या प्रतिसरा हस्तसूत्राणि तेषा वलयमालिका वलयश्रेण्यस्तासु गोरोचनाचूर्णाय-मानो गोरोचन प्रसिद्ध तत्क्षोदवदाचरमाण। क्रकचेति। क्रकच करपत्रक तेन कृतो यश्चन्दन-क्षोदो मलयजचूर्ण तद्वद्धूसर। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

अपेति। अपरिमाणमसख्य यद्बल सैन्य तस्य सघट्ट समर्दस्तेन समुपचीयमान उप-चय प्राप्यमाण। चकार पुनरर्थक। शनै शनैर्मन्दमन्दमशेष समग्र विश्व सहरन्निव तिरोधान कुर्वन्निव। अकालेति। अकालेऽप्रस्तावे यस्काल कृष्ण मेघपटलमभ्रवृन्द तद्वन्मेदुर पुष्टो विस्तारमुपसरणमुपगन्तु प्राप्तुमारेभे। प्रारम्भ चकारेत्यर्थ। तेनेति। तेन पूर्वोक्तेन रेणुना। चकार पुनरर्थ। क्रमेति। क्रमेण परिपाट्योपचीयमाना पुष्टि प्राप्यमाणा बहला दृढा मूर्ति-र्देहो यस्य स तेन। दिगिति। दिशा ककुभा यो विजय आत्मसात्करण तत्र यन्मङ्गल विघ्न-निवारकदधिदूर्वादि तस्य ध्वजेन केतुना। मुख्यमङ्गलेनेत्यर्थ। रिपुरिति। रिपवो दस्यवस्तेषा कुलानि गोत्राणि तान्येव कमलानि नलिनानि तेषा प्रलय क्षयस्तस्मिन्नीहारेण। हिमप्रतिमेने-त्यर्थ। राजेति। राजलक्ष्मीर्नृपश्रीस्तस्या विलासो विलसन तदर्थ पटवासचूर्णेन पिष्टातक्षोदेन। अहितेति। अहिताना विपक्षाणा यान्यातपत्राणि छत्राणि तान्येव पुण्डरीकाणि कमलानि

अपरिमित सेना की भीड़ भाड़ के कारण मात्रा में बढती हुई तथा बिना समय के प्रकट होने वाले काले काले बादलों के समूह के समान घनी[1] यह धूल अधिक विस्तृत (लम्बी चौड़ी) होने लगी कि मानो सारे ससार को ही निगल जायगी और उस धूलि ने, जिसकी स्थूल राशि क्रमश. बढ़ती जा रही थी, तीनो भुवनो को पार कर लिया। वह धूलि मानो (चन्द्रापीड की) दिग्विजय की (घोषणा करने वाली) मागलिक पताका थी, (उसके) शत्रुओं के परिवार-रूप कमलों को नष्ट करने वाला पाला थी, राज्यलक्ष्मी (के काम आने वाला) सुगन्धित चूर्ण थी, शत्रुओं के छत्री रूप श्वेत कमलों के वन पर गिरने वाली बर्फ थी, सेना के भार से पीड़ित धरातल की मूर्छा से उत्पन्न अन्धकार थी, क्रम से प्रस्थान करती (चलती) सेना रूप वर्षाऋतु मे कादम्ब पुष्पों की (आकस्मिक) उत्पत्ति अथवा उपस्थिति थी, सूर्य की किरणों रूपी कमल-क्यारियों को जड़ से उखाड़ने वाले हस्तियों का समूह थी। आकाश तथा पृथ्वी दोनो को जल

१ मेदुर. पुष्टः।

२ सहरन् तिरोधान कुर्वन्। ससार को अपने भीतर छिपा लेती हुई सी प्रतीत हो रही थी।

प्लावनप्रलयपयोधिपूरेण, त्रिभुवनलक्ष्मीशिरोवगुण्ठनपटेन, महावराहकेसरनिकरकर्बुरेण, प्रलयानलधूमराजिमांसलेन, पातालतलादिवोत्तिष्ठता, चरणेभ्य इव निर्गच्छता, लोचनेभ्य इव निष्पतता, दिग्भ्य इवागच्छता, नभस्तलादिव पतता, पवनादिवोल्लसता, रविकिरणेभ्य इव संभवता, अनपहृतचेतनेन निद्रागमेन अनवगणितसूर्येणान्धकारेण, अघर्मकालोपस्थितेन भूमिगृहेण, अनुदिततारागणनिवहेन बहुलनिशाप्रदोषेण, पतित-

---

तेषां खण्डन कर्तनं तस्मिंस्तुषारेण नीहारेण। कमलानां विध्वंसन एतस्यैव सामर्थ्यात्। सैन्येति। सैन्यभरेण बलभरेण पीडितमाक्रान्तं यन्महीतलं तस्य मूर्च्छा निश्चेष्टता तत्रान्धकारेण तिमिरेण। चलदिति। चलदुच्छलद्बलं सैन्यं तदेव जलदकाल मेघसमयस्तत्र कदम्बकुसुमोद्गमेन नीपपुष्पोद्गमेन। दिवसेति। दिवसकरः सूर्यस्तस्य कराः किरणास्त एव कमलवनं नलिनखण्डं तस्योद्दलनं मूलत उच्छेदनं तस्मिन्द्विपयूथेन हस्तिसमूहेन। गगनेति। गगनमेव महीतलं पृथ्वीतलं तस्य प्लावनमाक्रमणं तस्मिन्प्रलयः कल्पान्तस्तस्य य पयोधिः समुद्रस्तस्य पूरेण प्लवेन। त्रिभुवनेति। त्रिभुवनस्य त्रिविष्टपस्य या लक्ष्मीः श्रीस्तस्याः शिरोवगुण्ठनपटेनोत्तमाङ्गाच्छादनवस्त्रेण। महेति। महावराह आदिवराहस्तस्य केसरनिकरः सटासमूहस्तद्वत्कर्बुरेण मलिनेन। प्रलयेति। प्रलयस्य कल्पान्तस्यानलो वह्निस्तस्य या धूमराजिर्दहनकेतनपङ्क्तिस्तद्वन्मांसलेन पुष्टेन। पातालेति। पातालतलाद्वडवामुखतलादुत्तिष्ठतेवोत्थानं कुर्वतेव। चरणेति। चरणेभ्यः पादेभ्यो निर्गच्छतेव निर्गमनं कुर्वतेव। लोचनेति। लोचनेभ्यो नेत्रेभ्यो निष्पततेव पतनं कुर्वतेव। दिग्भ्य ऐन्द्र्यादिभ्य आगच्छतेवागमनं कुर्वतेव। नभ इति। नभस्तलाद्व्योमतलात्पततेव पतनं कुर्वतेव। पवनेति। पवनात्समीरणादुल्लसतेवोल्लासं प्राप्नुवतेव। रवीति। रविकिरणेभ्यः सूर्यरश्मिभ्यः संभवतेव प्रादुर्भवतेव। अनेति। निद्राया प्रमीलाया आगमः समागमस्तेन। अत्र तु स्वप्नादिविलक्षणं बाह्यं ज्ञानं तस्मादित्यत आह—अनेति। अनपहृतमगृहीतं चेतनं चैतन्यं येनैवविधेनेत्यर्थः। अतएवालौकिक एवेति भावः। अनवेति। अनवगणितोऽनिराकृतः सूर्यो भानुर्येनैवंभूतेनान्धकारेणेव तमिस्रेणेव। अघर्मेति। अघर्मकाल उपस्थितेन

से भरने वाला प्रलयकालीन लहराता समुद्र थी, तीनों लोकों की लक्ष्मी-रूपी महिला के सिर पर पर्दा करने का वस्त्र थी, महावराह (अर्थात् विष्णु के अवतार) के अयालों के समान रंग-बिरंगी थी, महाप्रलयकालीन अग्नि (से उठे) धुएँ के स्तम्भ के समान स्थूल थी। वह (सर्वव्यापक होने के कारण) मानो पाताल प्रदेश से उठती हुई सी प्रतीत होती थी, (अथवा) (सैनिकों के) पाँवों से निकलती हुई सी प्रतीत होती थी, उनकी आँखों से गिरती हुई-सी, सभी ओर से आती हुई सी आकाशतल से गिरती हुई सी, वायु से फूट पड़ती-सी; सूर्यकिरणों से जन्म लेती-सी, प्रतीत होती थी। मानो वह ऐसी नींद का आगमन थी जो चेतनता को नहीं छीनती है, ऐसा अन्धकार थी जो सूर्य की उपेक्षा नहीं करता (अर्थात् सूर्य को नहीं छिपाता), ऐसा भूम्यन्तर्गत (शीतल) कक्ष थी जो तब उपस्थित होता है जब ग्रीष्म ऋतु नहीं होती (ग्रीष्मऋतु के अभाव में उपस्थित होता है), कृष्णपक्ष की रात्रि का वह सन्ध्याकाल थी

सलिलेन जलधरसमयेन, अभ्रान्तभुजगमेन रसातलेन, हरिचरणेनेव संवर्धमानेन त्रिभुवनमलङ्घ्यत रजसा। विकचकुवलयवनमिव नवोदकेन गगनतलमवष्टभ्यमाननलक्ष्यत क्षीरोदपाण्डुना क्षितिक्षोदेन। बहुलरजोधूसरितमशिशिरकिरणबिम्बमवचूलचामरमिव निष्प्रभमभवत्। दुकूलपटधवला कदलिकेव कलुषतामाजगाम गगनापगा। नरपालबलभरमसहमाना

प्राप्तेन भूमिगृहेण वसुधामध्यसदनेन। धर्मकाले तु तदीप्सित स्यादतएवोक्तमधर्मकालेति। 'अधर्मकालोपस्थितेन' इति पाठे धर्मकालस्तपस्याचरणादौ तस्येष्टत्वात्। अतएवोक्तमधर्मकालेति। अनुदितेति। अनुदित उदय न प्राप्तस्तारागणनिवहो नक्षत्रसमूहो यस्मिन्नेवभूतेन बहुलनिशा कृष्णपक्षरात्रिस्तस्या प्रदोषेण यामिनीमुखेन। पतितेति। पतित स्रस्त सलिल पानीय यस्मिन्नेवभूतेन जलधरसमयेन वर्षाकालेन। अभ्रेति। अभ्रान्ता अप्रचलिता भुजगमा सर्पा यस्मिन्नेवंविधेन रसातलेन पृथ्वीतलेन। सवर्धनेन वृद्धिं प्राप्यमाणेन। केनेव। हरिचरणेनेव विष्णुपादेनेव। यथा हरिचरणो बलिध्वसनार्थं क्रमेण वृद्धिं प्राप्तस्तथायमपीत्यर्थ। एवविधेन रजसा रेणुना त्रिभुवन त्रिविष्टपमलङ्घ्यत। क्षीरोद क्षीरसमुद्रस्तद्वत्पाण्डुना श्वेतरक्तेन क्षितिक्षोदेन वसुधाचूर्णेन गगनतल व्योमतलमवष्टभ्यमान व्याप्यमानमलक्ष्यतादृश्यत। केनेव किमिव। नवोदकेन नवीनपानीयेन विकचानि विकस्वराणि यानि कुवलयान्युत्पलानि तेषा वनमिव। अत्र गगनस्य कृष्णत्वसाम्यात्तदुपमानम्। क्षितिक्षोदस्य शुक्लत्वसाम्यान्नवोदकोपमानमिति भाव। बहुलेति। बहुल निबिड यद्रजस्तेन धूसरित कर्बुरीकृतमशिशिरकिरणबिम्ब चन्द्रसूर्यबिम्बमण्डलमवचूलचामरमिव हस्तिकर्णाभरणबालव्यजनमिव निष्प्रभ विगतद्युत्यभवज्जज्ञे। दुकूलेति। दुकूल क्षौम तदेव पटो वस्त्र तद्वद्धवला श्वेता गगनापगा स्वर्धुनी कलुषता मलिनतामाजगामागतवती। केव। कदलिकेव रम्भेव। यथा रम्भा रजोभि कृत्वा कृष्णत्व याति तथेयमित्यर्थ। नरेति। नरपालो नृपस्तस्य बल सैन्य तस्य भर वीवधमसहमानेवाक्षममाणेव पुनर्भारावतारणार्थं भार कुत्रचित्स्थापयितुममरलोक स्वर्लोक रजोमिषेण रेणुच्छलेन मही पृथ्व्यारुरोहावरोहण चकार। एकवार

जिसमे नक्षत्रो के समूह उदित नहीं होते, ऐसी वर्षाऋतु थी जिसमे जल नहीं बरसा हो, ऐसा पाताललोक थी कि जिसमे साँप घूमते नहीं फिरते, और वह धूलि (अपने वामनावतार के समय) विष्णु के उस पाँव सरीखी थी जो सदा बढता रहता है। उस समय ताजे (वर्षा) जल से ढकी जाती पूर्णविकसित नीले कमलों की क्यारी की भाँति, आकाश, दुग्ध-सागर के फेन के समान श्वेत पृथ्वी की धूलि द्वारा आक्रान्त होता दिखायी दिया। उत्तप्तकिरण सूर्य का बिम्ब, गाढी गाढी धूल से धूसरित हुआ, (हाथी की) झूल की भाँति प्रयुक्त चौरी के समान चमक विहीन हो गया—अवचूल (झूल) भी धूल से धूसरित हुआ चमक को खो बैठता है। रेशमी वस्त्र की बनी होने के कारण मूलत श्वेत (सेना की) पताका जैसे काली पड़ जाती है वैसे ही रेशमी वस्त्र के समान श्वेत देवगगा कलुषित हो गयी थी। पृथ्वी राजा की सेनाओं के भार को न सहन कर

पुनरिव भारावतारणार्थममरलोकमारुरोह रजोमिषेण मही। निःशेषपीतातपमन्तर्दह्यमानामिव जलधिजलेषु धूसरितरविरथध्वजपटमपतद्वनिरजः। मुहूर्तेन च गर्भवासमिव, संसारसागरजलमिव, कृतान्तजठरमिव, महाकालमुखमिव, नारायणोदरमिव, ब्रह्माण्डमिव विवेश पृथिवी मृन्मय इव बभूव दिवसः। पुस्तमय्य इव चकाशिरे ककुभः। रेणुरूपेणेव परिणतमम्बरतलम्। एकमहाभूतमयमिव त्रैलोक्यमासीत्।

गोरूपेण गताभूत्। इदानीं रवेतद्रूपेणेत्यर्थ। अतएव पुन शब्दोपादानम्। नि शेषेति। तदव निरजो जलधिजलेषु सामुद्रपानीयेष्वपतत्पपातेत्यर्थ। कीदृशम्। नि.शेष समग्र पीत आस्वादित आतप सूर्यलोको येन तदन्त एवान्तर्दह्यमानमिवान्तर्मध्ये प्रज्वलमानमिव। अनेन जलपाने हेतुर्दर्शित.। पुन. कीदृशम्। धूसरितेति। धूसरितो धूम्रवर्णीकृतो रविरथस्य सूर्यस्यन्दनस्य ध्वजपटो येन तत्। मुहूर्तेनेति। मुहूर्तमात्रेण। सर्वत्र सबाह्याभ्यन्तरव्याप्त्योपमानान्याह—गर्भेत्यादि। गर्भवासमिव भ्रूणवासमिव। ससारसागरजलमिव कल्पान्तजलधिपानीयमिव। कृतान्तजठरमिव यमोदरमिव। महाकालमुखमिवाखण्डदण्डायमानो य. कालो महाकालस्तस्य मुखमिव। नारायणोदरमिव जनार्दनोदरमिव। ब्रह्माण्डमिव। पृथिवी वसुधरा विवेश सर्वत्र प्रविष्टवतीति। सैन्यमिति शेष। गर्भवासादिकमिव रजोरूपेण पृथिवी सैन्यं प्रविष्टेत्यर्थ। अत्र गर्भवासादिभिरुपमानै सैन्यस्यात्युत्कृष्टताद्यनेकधर्मावच्छिन्नत्व सूचितम्। तदन्त प्रवेशाच्च रजसोऽपि ततोऽप्याधिक्यमिति भाव.। मृदिति। मृन्मय इव मृदां विकार इव। अत्र विकारार्थे मयट्। तद्वदिव दिवसो दिन बभूव। पुस्त इति। पुस्त लेप्यादिकर्म तन्मय्य इव विलिप्ता इव ककुभो दिशश्चकाशिर शुशुभिरे। रेणुरूपेणेति। रेणुरूपेण रजोमयत्वेनेवाम्बरतल व्योमतलं परिणत तन्मयतां गतम्। एकमिति। एकं महाभूत पृथिवीलक्षणं तन्मयमिव त्रैलोक्य त्रिविष्टपमासीद्बभूव।

सकती हुई, भार को उतरवाने के लिये ही मानो धूलि के बहाने स्वर्ग में चढ़ गयी थी। पृथ्वी की वह धूल, जिसने सूर्य के रथ की ध्वजा के वस्त्र को मैला कर दिया था, जलधि के जलों पर गिर गयीं थीं—मानो सारे के सारे सूर्य-प्रकाश को पिये हुए भीतर ही भीतर जल रही थी। और मुहूर्त भर में ही (शीघ्र ही) पृथ्वी अपने गर्भस्थ निवासस्थान में, (अथवा) प्रलयकालीन सागर के जल में, अथवा यम के उदर में, (अथवा) (प्रलय काल में) महादेवजी के मुख में, (अथवा) विष्णु के उदर में (अथवा) ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होती हुई दिखायी दी। दिन मिट्टी से बना सा दिखायी दिया। दिशाएँ ऐसी प्रतीत हुईं (चमकीं) कि मानो वे पुस्तमयी[1] हों अर्थात् सर्वथा मिट्टी में ढली आकृतियों की बनी हों। आकाशतल मानो धूलि ही बन गया था। सारे के सारे (तीनों लोक) मानो (पाँच महाभूतों में से) एक ही भूत (अर्थात् पृथ्वी अर्थात् धूलि) के बने हो गये थे।

---

१. पुस्तमयी अर्थात् मृल्लेपनिर्मित आकृतियाँ।

२. विप्लुतैः अर्थात् विभिन्न दिशाओं में बहे।

अथ निजमदोष्मसंतप्नाना दन्तिना दिशि दिशि करविवरनिःसृतैः क्षरद्भिः क्षीरोदधवलैः शीकरासारैः, कर्णपल्लवप्रहतिविसृतेन च विसर्पता दानजलबिन्दुदुर्दिनेन, हेषारवविप्रकीर्णैश्च वाजिना लालाजललवजालकैरुपशमिते रजसि, पुनरपि जाता-लोकासु दिक्षु, सागरादिवोन्मग्नमालोक्य तदपरिमाण बलमुपजातविस्मयः सर्वतोदत्त-दृष्टिर्वैशम्पायनश्चन्द्रापीडमावभाषे—'युवराज, कि न जित देवेन महाराजाधिराजेन तारापीडेन यज्जेष्यसि, का दिशो न वशीकृता या वशीकरिष्यसि, कानि दुर्गाणि न

अथेति। तदनन्तर वैशम्पायनश्चन्द्रापीडमाबभाषेऽभिदधावित्यन्वय । कस्मिन्सति। रजस्युपशमिते शान्ति प्राप्ते सति। के । निजेति। निजमदस्यात्मीयदानस्य य ऊष्मा तापस्तेन सतप्तानां प्रज्वलितानां दन्तिनां हस्तिना दिशि दिशि प्रतिदिश करा. शुण्डास्तेषा विवराणि रन्ध्राणि तेभ्यो विनि.सृतैर्बहिरागतैरतएव क्षरद्भि स्रवद्भि । क्षीरोद क्षीरसमुद्रस्तद्वद्धवलै शुभ्रै.। शीकरा वातास्तवारिविप्रुषस्तेषामासारा वेगवत्यो वृष्टयस्तैस्तथा। कर्णा एव पल्लवास्तेषा प्रहति प्रकर्षेण हनन तया विसृतेनेतस्ततो विक्षिप्तेन। अतएव विसर्पता प्रसरता दानजलबिन्दु-दुर्दिनेन मदवारिपृषन्मेघजनिततमसा । तथा वाजिना तुरङ्गाणां हेषारवा हेषाशब्दास्तैर्विप्रकीर्णै-र्विक्षिप्तै । 'हेषा हेषा तुरङ्गाणा गजानाम्' इति कोश । एवविधै । लालाजल मुखनिष्ठ्यूतजलं तस्य लवा खण्डास्तेषा जालकै समूहै । 'समवायो निकुरम्ब जाल निवहसचयौ' इति हैम । पुनरपीति। रज शमनानन्तरं जात प्रकटीभूत आलोक प्रकाशो यास्वेव भूतासु दिक्षु ककुप्सु। कृष्णत्वसाम्यादाह—सागरेति। सागरात्समुद्रादुन्मग्नमिवोपर्यागतमिवापरिमाण मसख्य बल सैन्यमालोक्य निरीक्ष्य। अथ वैशम्पायन विशेषयन्नाह—उपेति। उपजात समुत्पन्नो विस्मयश्चित्र यस्य स । सर्वत इति। सर्वतोऽभितो दत्ता प्रेरिता दृष्टिर्येन स । अन्व-यस्तु प्रागेवोक्त । किमुवाचेत्याह—युवराजेति। हे युवराज, देवेन पूज्येन तारापीडेन महा-राजाधिराजेन। किमिति प्रश्ने। न जितं न वशीकृतम्। सर्वमेव जितमित्यर्थ । यन्नवास्त्व

इसके पश्चात् जब अपने ही मद की ऊष्मा से पीड़ित हस्तियों की सूडों के छिद्रों से निकली तथा सभी दिशाओं से गिरती हुई दुग्धसागर की भाँति श्वेत फुहारों की वर्षा से, तथा हस्तियों के पत्रसदृश कानों से टकराकर[२] बहते हुए मदजल की बूँदों की वर्षा से और हिनहिनाते समय बिखरी हुई अश्वों की बहती हुई लार के बिन्दुओं के गुच्छों से धूल शान्त हो गयी (नीचे बैठ गयी) और जब इस प्रकार दिशाओं में फिर प्रकाश हो गया तो वैशम्पायन, मानो समुद्र से (अभी अभी) निकल कर बाहर आ गयी हो—ऐसी उस अपरिमित सेना को देखकर आश्चर्यचकित हुआ और चारों ओर देखता हुआ चन्द्रापीड से बोला—राजकुमार ! सर्वोपरि राजा महाराज तारापीड ने जिसको (पहले ही) न जीत रखा ऐसा क्या कुछ शेष है जिसको तुम अब जीतोगे ? कौन सी दिशाएँ अपने अधीन नहीं कर रखी हैं जिन्हें तुम अब अपने वश मे करोगे ? कौन से किले हस्तगत नहीं किये जिन्हें तुम अब हस्तगत करोगे ? कौन से अन्य द्वीप

प्रसाधितानि यानि प्रसाधयिष्यसि, कानि द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि, कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि, के वा न प्रणता राजानः, कैर्न विरचितः शिरसि बालकमलकुड्मलकोमलः सेवाञ्जलिः, कैर्न मसृणीकृताः प्रतिबद्धहेमपट्टैर्ललाटैः सभाभुवः, कैर्न घृष्टाः पादपीठे चूडामणयः, कैर्न प्रतिपन्ना वेत्रलताः, कैर्नोद्धूतानि चामराणि, कैर्नोच्चारितो जयशब्दः, केषा न पीताः किरीटपत्रमकरैः सलिलधारा इव निर्मलास्त्वच्चरणनखमयूखराजयः। एते हि चतुरुदधिजलावगाहदुर्ल-

---

जेष्यसि। वशीकरिष्यसि। तथा का दिश ककुभो न वशीकृता नात्मसात्कृता यास्त्व वशीकरिष्यसि स्वायत्तीकरिष्यसि। कानि दुर्गाणि कोट्टानि न प्रसाधितानि न गृहीतानि यानि त्व प्रसाधयिष्यसि ग्रहीष्यसि। तथा कानि द्वीपान्तराण्यन्तरीपान्तराणि नात्मीकृतानि यानि त्वमात्मीकरिष्यसि। तथा कान्यनिर्दिष्टाभिधेयानि रत्नानि स्वस्वजातावस्युत्कृष्टवस्तूनि नोपार्जितानि नोपार्जनाविषयीकृतानि यानि त्वमुपार्जयिष्यस्युपार्जना करिष्यसि। अथ च के राजानो नृपा न प्रणता न नमस्कार कृतवन्त। तथा कैर्नृपै राजभिर्न विरचितो न विहित शिरस्युत्तमाङ्गे बालकमलस्य नवीननलिनस्य कुड्मलो मुकुल तद्वत्कोमलो मृदुरेतादृक्सेवाञ्जलि. सपर्यानियामकं पाणियोजनम्। तथा कैर्भूपतिभि प्रतिबद्धा सनद्धा हेमपट्टा कनकपट्टा येष्वेवभूतैर्ललाटैर्भालै सभाभुव समाजक्षोण्यो न मसृणीकृता न श्लक्ष्णीकृता। तथा कै राजभिर्नृपै पादपीठे पदासने चूडामणय शिरोमणयो न घृष्टा न घर्षण प्रापिता। तथा कैर्नृपैर्वेत्रलता वेतसयष्टयो न प्रतिपन्ना न स्वीकृता। एतेन सर्वे प्रतीहारता प्राप्ता इति सूचितम्। तथा कैर्भूपतिभिश्चामराणि बालव्यजनानि नोद्धूतानि न वीजितानि। एतेनास्य सर्वेऽपि राजानश्चामरग्राहिणोऽभूवन्निति ध्वनितम्। तथा कैर्नृपतिभिर्जयशब्दा मङ्गलशब्दा नोच्चारिता नोदीरिता। तथा केषां राज्ञां किरीटानां मुकुटानां पत्रमकरा पत्रेषु मकराकारा विवृतमुखास्तै सलिलधारा इव पतत्पानीयपङ्क्तय इव निर्मला स्वच्छास्तस्य तारापीडस्य यौ चरणौ पादौ तयोर्नखा पुनर्भवास्तेषा मयूखा किरणास्तेषा

(महादेश) उसने अपनाये नहीं हैं, जिन्हें तुम (अत्र) अपनाओगे? कौन से रत्न उपार्जित नहीं कर रखे हैं जिन्हें तुम अब उपार्जित करोगे? अथवा कौन से राजा उसके सम्मुख नहीं झुके हैं? उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिये किन्होंने नवीन कमल पौधे की नई कली के समान कोमल आदरार्थ अञ्जली अपने सिरोंपर नहीं बनायी—अर्थात् किन्होंने अपने हाथ जोड़ कर सिर पर नहीं रखे? किन्होंने सोने के पट्टे बाँधे हुए अपने मस्तकों से सभा भवन की भूमियों (फर्शों) को नहीं रगड़ा? किन्होने पाँव रखने के पीढे पर अपनी मुकुट मणियों को नहीं घिसा? किन्होंने (उसके द्वारपालों के रूप में) छड़ियाँ हाथ में नहीं लीं, किन्होंने (उसके सेवकों के रूप में) चँवर नहीं डुलाये? अथवा किन्होंने (उसकी घोषणा करने वालों के रूप में) 'जय'-कार नहीं की? किन के मुकुटों पर पत्तों के रूप में बनी हुई मकराकृतियों ने जलधाराओं-जितनी शुद्ध, उसके पाँवों के नखों की किरणपंक्तियाँ नहीं पीं? और ये हैं वे पृथिवी पर के सारे मुकुटधारी राजा जो चारों समुद्रों के जलों में उतरने की (अर्थात् वहा तक अपने शस्त्र ले जाने की)

लितबलमदावलिप्ता दशरथभगीरथभरतदिलीपालर्कमान्धातृप्रतिमाः कुलाभिमान-शालिनः सोमपायिनो मूर्धाभिषिक्ताः पृथिव्या सर्वपार्थिवा रक्षाभूतिमिवाभिषेकपयःपातपूतैश्चूडामणिपल्लवैरुद्वहन्ति मङ्गल्या भवच्चरणरजःसंहतिम्। एभिरियमादि-पर्वतैरिवापरैर्धृता धरित्री। एतानि चाप्यमीषामाप्लावितदशदिगन्तरालानि सैन्यानि भवन्तमुपासते। तथाहि। पश्य पश्य यस्यां यस्या दिशि विक्षिप्यते चक्षुस्तस्या तस्या रसातलमिवोद्गिरति, वसुधेव सूते, ककुभ इव वमन्ति, गगनमिव वर्षति, दिवस

राजय श्रेणयो न पीता न पानविषयीकृता। एतेन सर्वेऽपि क्षितिभुजस्तारापीडस्य महाराजस्य चरणसपर्यां कृतवन्त इति ध्वनितम्। अथ राज्ञा स्वरूप वर्णयन्नाह—**एते हीति**। हि निश्चि-तम्। पृथिव्या रत्नगर्भायामेते प्रत्यक्षोपलभ्यमाना ये सर्वपार्थिवा समग्रराजानो रक्षाभूतिमिव रक्षाभस्ममिवाभिषेकस्य यौवराज्याभिषेकस्य य पय पात सलिलपातस्तेन पूतै पवित्रैश्चूडा-मणय. शिरोरत्नानि त एव पल्लवास्तैर्मङ्गल्यां मङ्गले हिता भवच्चरणयोस्त्वत्पादयो रज सहतिं रेणुसमूहमुद्वहन्ति धारयन्ति। कीदृशा राजानः। **चतुरिति**। चतुरुदधयश्चतु समुद्रास्तेषा जलानामवगाह सबन्धो महाप्रलयस्तद्वद्दुर्ललित दुश्चेष्टित रिपुक्षयकुलक्षण यस्मिन्नेतादृश बल सैन्य तस्य मदोऽहकारस्तेनावलिप्ता व्याप्ता। दशरथो रामपिता, भगीरथ सगरपौत्र भरत आर्षभि, दिलीपो रघुपिता, अलर्क प्रसिद्ध, मान्धाता युवनाश्व-तनय एतै, प्रतिमा सदृशा कुलस्य गोत्रस्य योऽभिमानोऽहकारस्तेन शालिन शोभिन। सोमपायिन सोमेष्टिकारिणो मूर्धन्यभिषिक्ता कृताभिषेका। **इयमिति**। एभि पूर्वोक्तव्यावर्णितस्वरूपै राजभिरिय धरित्री वसुधा धृता धारिता। कैरिव। अपरै-र्भिन्नैरादिपर्वतैरिव कुलपर्वतैरिव। **एतानीति**। अमीषा राज्ञामेतानि सैन्यानि भवन्त त्वामु-पासते सेवन्ते। कीदृशानि। आप्लावितान्यवगाहितानि दशदिशामन्तरालानि मध्यभागा यैस्तानि। एतदेव दर्शयति—**तथाहीति**। पश्य पश्य विलोकय विलोकय। यस्या यस्या

धृष्ट इच्छा रखने वाली अपनी शक्ति (अथवा सेना) पर गर्व रखते हैं, जो दशरथ, भगीरथ, भरत, दिलीप, अलर्क और मान्धाता के तुल्य हैं, अपने वश के अभिमान से (सुशोभित) यशस्वी हैं और जिन्होंने (सोमयज्ञ करके) सोम का पान किया है—ये (राजा) राज्याभिषेक के जलों के गिरने से (उससे सींचे जाकर) पवित्र हुए अपने मुकुटों की मणियों के पत्रों पर मगल-कारिणी तुम्हारे चरणों की रजोराशि को इस प्रयोजन से धारण किये हुए हैं कि मानो वह (अनिष्ट से) बचाये रखने के लिए (अभिमन्त्रित) राख हो। इन राजाओं ने इस पृथिवी को इस प्रकार सँभाला हुआ है, मानो कि वे दूसरे (पृथ्वी को सँभालने वाले) कुल पर्वत ही हों। और इनकी ये सेनाएँ, दसों दिशाओं के अन्त.प्रदेश मे अर्थात् दसों दिशाओं में व्याप्त हुई तुम्हारी सेवा के लिये तत्पर हैं। उदाहरणतया, देखो, जिस जिस भी ओर आँख उठायी जाती है, उसी-उसी ओर मानो पाताल सेनाओं को उगलता प्रतीत हो रहा है, पृथ्वी उन्हें उत्पन्न करती दिखायी देती है, दिशाएँ उन्हें उगलती लगती हैं, आकाश उन्हे बरसाता

इव सृजति बलानि। अपरिमितबलभराक्रान्ता मन्ये स्मरति महाभारतसमरसंक्षोभस्याद्य क्षितिः। एष शिखरदेशेषु स्खलितमण्डलो ध्वजान्गणयन्निव कुतूहलाद्‌भ्रमति कदलिकावनान्तरेषु मयूखमाली। सर्वतश्च मदजलमुचा करिणामेलापरिमलसुरभिणि वेणिकावाहिनि मदवारिणि निरन्तरमग्ना निपतितमधुकरकुलकलकलकलिला कालिन्दीजलकल्लोलकलितेव भाति भूतधात्री। सैन्यभरसक्षोभभयात्सरित इव गगनतल-

---

दिशि चक्षुर्नेत्र विक्षिप्यते प्रेर्यते तस्या तस्यां दिशि रसातलमिव पृथ्वीतलमिवोद्गिरति वमति। बलानि सैन्यानीति सर्वत्र सबध्यते। वसुधेव वसुधरेव सूते जनयति। ककुभ इव दिश इव वमन्त्युद्गिरन्ति। गगनमिवान्तरिक्षमिव वर्षति वृष्टिं करोति। दिवस इव दिनमिव सृजति प्रणयति। अहमिति मन्ये जानेऽद्य क्षितिर्वसुधापरिमित यद्‌बल सैन्य तस्य भरोऽतिशयस्तेनाक्रान्ता भारिता सती। महेति। महाभारते प्रतिपादितो व्याख्यातो य समरसक्षोभ सङ्ग्रामसमर्दस्तस्य स्मरति स्मरण करोति। अत्र स्मृत्यर्थधातुभिर्योगे 'मातु स्मरति' इतिवत्कर्मणि षष्ठी। एषेति। एष समीपतरवर्ती कदलिकावनान्तरेषु रम्भाकाननान्तरेषु मयूखमाली सूर्य शिखरदेशेषु ध्वजाग्रभागेषु स्खलित स्खलना प्राप्त मण्डल बिम्बं यस्यैवभूत प्रतिरोधनिवृत्त्यर्थं ध्वजान्गणयन्निव सख्या कुर्वन्निव कुतूहलाद्‌भ्रमतीत्युत्प्रेक्षा। ध्वजानामुच्चतोत्कर्षो व्यङ्ग्य। कदलिकावनमिति सूर्यप्रदर्शनोपलक्षणमात्र न त्वन्यत्। करिमदोत्कर्षमाह—सर्वतश्चेति। मदजलमुचां मदस्राविणा करिणां हस्तिनामेलायाश्चन्द्रबालाया य परिमल आमोदस्तद्वत्सुरभिणि सौरभ्ययुक्ते। वेणिकावाहिनीति। वेणिका प्रवेणी तया वहति गच्छतीत्येवंशील तस्मिन्नेवभूते मदवारिणि दानजले निरन्तरं मग्ना। समन्ततो जलक्लिन्नेत्यर्थ। एवभूता भूतधात्री। तामेव विशिनष्टि—निपतितेति। निपतित पर्यस्त यन्मधुकरकुलं भ्रमरसमूहस्तस्य य कलकल कोलाहलस्तेन कलिला गहना। 'कलिल गहने' इति कोश.। अत्र च श्यामताद्रवत्वाभ्या मदवारिण शब्दविशेषै श्यामतापरिमाणविशेषैश्च भ्रमरकुलस्य साम्येनोत्प्रेक्षते—कालिन्दीति। कालिन्दी यमुना तस्या जलकल्लोलै पानीयतरङ्गै कलितेव भाति

लगता है, और दिन उन्हें बनाता लगता है। मैं समझता हूँ कि असंख्य सेना के भार के नीचे दबी हुई पृथ्वी को आज महाभारत में वर्णित युद्ध की हलचल स्मरण हो रही होगी। ध्वजाओं के अग्रभागों पर लड़खड़ाये अपने बिम्ब (देह) वाला सूर्य—वस्तुतः ध्वजाओं पर प्रतिबिम्बित सूर्य—ध्वजाओं के (ध्वजाओं-रूप) वन-प्रदेशों में मानों ध्वजाओं को गिनता हुआ ही उत्सुकता वश घूमता हुआ प्रतीत हुआ। और मदजल बहाते हुए हस्तियों के, इलायची की गन्ध के समान सुगन्धित वेणी-सरीखी (पतली) धार में बह रहे मदजल में चारों ओर से पूर्णतया डूबी हुई तथा इस पर (नियतित = पर्यस्त) बैठे हुए भौंरों के समूह की कलकल (ध्वनि) से परिपूर्ण भूमि ऐसी प्रतीत होती है कि मानो यमुना के (काले) जल की लहरों में निगल ली गयी हो। ये चन्द्रमा जैसी श्वेत ध्वजाओं की पंक्तियाँ दिशाओं के मडल को ऐसे ढके हुए हैं कि मानो वे सेनाओं के भारी भार से उत्पन्न गड़गड़ाहट से डर कर आकाश में उड़ कर गयी हुई नदियाँ

मुत्पतिता आच्छादयन्त्येता दिक्चक्रवालमिन्दुधवला ध्वजपङ्क्तयः। सर्वथा चित्र यन्नाद्य विघटितसकलकुलशैलसधिबन्धा सहस्रशः शकलीभवति बलभरेण धरित्री, यद्वा बलभरपीडितवसुधाधारणविधुरा न चलन्ति फणिनां पत्युः फणाभित्तयः' इत्येव वदत एव तस्य युवराजः समुच्छ्रितानेकतोरणा तृणमयप्राकारमन्दिरसहस्रसबाधामुल्लासितधवलपटमण्डपशतशोभिनीमावासभूमिमवाप। तस्या चावतीर्य राजवत्सर्वाः क्रियाश्चकार। सर्वैश्च तैः समेत्य नरपतिभिरमात्यैश्च विविधाभिः कथा-

---

शोभते। सैन्येति। सैन्यस्य बलस्य यो भरस्तज्जनितो य सक्षोभ क्षुब्धता तल्लक्षण यद्भय त्रासस्तस्माद्गगनतल व्योमतलमुत्पतिता. स्वच्छत्वनैर्मल्यसाधर्म्यात्सरित इव नद्य इव एता प्रत्यक्षोपलक्ष्यमाणा इन्दुवच्चन्द्रवद्धवला शुभ्रा ध्वजपङ्क्तयो वैजयन्तीश्रेण्यो दिक्चक्रवाल ककुप्समूहमाच्छादयन्त्यावृण्वन्ति। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेणैतच्चित्र महदाश्चर्यम्। एतत्किमित्याह—यदिति। यदद्य विघटिता विश्लेषं प्राप्ता सकला समग्रा ये कुलशैलास्त एव सधिबन्धा अस्थिबन्धा यस्या एवभूता धरित्री वसुंधरा बलभरेण सैन्यसमर्दन सहस्रश सहस्रधा न शकलीभवति। न सहस्रधा जायत इत्यर्थ। एतदाश्चर्यमित्यर्थ। एतच्छङ्कां दूरीकर्तु पक्षान्तरमाह—यद्वेति। यद्वा बलभरेण सैन्यभरेण पीडिता या वसुधा तस्या धारण तेन विधुरा पीडिता फणिना पत्यु शेषनागस्य फणाभित्तय फणाकुड्यानि न चलन्ति। अतएवेय तदाधारेण तिष्ठतीत्यर्थं। इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण तस्य वैशम्पायनस्य वदतो ब्रुवत एव युवराजश्चन्द्रापीड आवासभूमिं निवासभूमिमवाप प्रापेत्यन्वय। अथ ता विशेषयन्नाह—समुच्छ्रितेति। समुच्छ्रितान्युच्चान्यनेकानि तोरणानि बहिर्द्वाराणि यस्या ताम्। 'बहिर्द्वार तु तोरणम्' इति कोश.। तृणेति। तृणमयो यवसमयो य प्राकारो वप्रस्तस्मिन्यन्मन्दिरसहस्रं गृहदशशत तेन न विद्यते सबाध साकर्यं यस्याम्। उल्लासितेति। उल्लासितमुल्लास प्राप्त यद्धवलपटस्य श्वेतवस्त्रस्य मण्डपशत जनाश्रयशत तेन शोभिनीं शोभायुक्ताम्। तस्यामावासभूमाववतीर्यावतरण कृत्वा। चकार पुनरर्थक। राजवत्तारापीडवत्सर्वा क्रिया समग्रकृत्यानि

हो। निश्चय ही सब प्रकार से यह आश्चर्य की बात है कि आज पृथ्वी जबकि उसके कुल पर्वतों से जोड़ने के सभी बन्धन टूट चुके है, सेनाओं के भार के कारण सहस्रो टुकड़े क्यो नहीं हो जाती! अथवा आज इन सेनाओं के भार से दबी पृथ्वी को सहारने मे असमर्थ, शेषनाग की (भित्ति सरीखी) भारी फणाएँ (अपनी वास्तविक स्थिति से) क्यों विचलित नहीं हो जातीं!"—वैशापायन इस प्रकार बात कर ही रहा था कि युवराज चन्द्रापीड शिविर-भूमि में पहुँच गया। इस शिविर भूमि मे अनेक तोरण खड़े किये गये थे, तिनकों (नरकटों = सरकडों) की चार दीवारी वाले—अथवा दीवारों वाले हजारों घरों की उसमें भीड़ थी और वह, उसमें लगाये गये श्वेत वस्त्र (श्वेत किरमिच) के सैकड़ों मण्डपों (तम्बुओ) से शोभित थी।

और वहाँ उतर कर—ठहरकर, उसने सारी क्रियाएँ इस प्रकार कीं कि जैसे वह स्वय राजा हो। और (यद्यपि) उन सभी राजाओं तथा मत्रियों ने (उसके चारों ओर) एकत्र होकर

भिर्विनोद्यमानस्तं दिवसमशेषमभिनवपितृवियोगजन्मना शोकावेगेनायास्यमानहृदयो दुःखेनात्यवाहयत् । अतिवाहितदिवसश्च यामिनीमपि स्वशयनीयस्य नातिदूरे निहितशयननिषण्णेन वैशम्पायनेन, अन्यतश्च समीपे क्षितितले विन्यस्तकुथप्रसुप्तया पत्रलेखया सह, अन्तरा पितृसक्तम्, अन्तरा मातृसबद्धम्, अन्तरा शुकनासमय कुर्वन्नालाप नातिजातनिद्रः प्रायेण जाग्रदेव निन्ये । प्रत्यूषे चोत्थाय तेनैव क्रमेणानवरतप्रयाणकैः प्रतिप्रयाणकमुपजीव्यमानेन सेनासमुदायेन जर्जरयन्वसुंधराम्,

---

चकार कल्पयामास । सर्वैश्चेति । तै पूर्वोक्तै सर्वैं समग्रैर्नरपतिभिरमात्यैश्च । अत्र चकार समुच्चयार्थं । समेत्य नृपान्तिकमागत्य विविधाभिरनेकप्रकाराभि कथाभिर्वार्ताभिर्विनोद्यमान क्रीडाविषयीक्रियमाणोऽशेष समग्रं त दिवस दिनमत्यवाहयदत्यक्रामत् । केन । दु खेन कृच्छ्रेण । अथ युवराज विशिनष्टि—अभीति । अभिनव प्रत्यग्रो य पितृवियोगोऽननुभूतजनकविरहस्तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तथैवविधेन शोकावेगेन शोचतातिशयेनायास्यमानमायास प्राप्यमाण हृदय चित्त यस्य स तथा । रात्रिं कथमतिक्रमितवानित्याह—अतीति । अतिवाहितोऽतिक्रमितो दिवसो येनैवभूतो यामिनीमपि त्रियामामपि स्वशयनीयस्य सौवशय्याया (?) । नातीति । नातिदूरे नाविदवीयसि प्रदेशे निहित स्थापित यच्छयन शयनीय तत्र निषण्णेनोपविष्टेन वैशम्पायनेन । अन्यतश्चान्यस्मिन्वैशम्पायननिषीदनव्यतिरिक्ते समीपे पार्श्ववर्तिनि क्षितितले पृथ्वीतले विन्यस्ता स्थापिता या कुथा परिस्तोमस्तत्र प्रसुप्तया कृतशयनया पत्रलेखाभिधानया करङ्कवाहिन्या सह सार्थम् । अन्तरा मध्ये पितृसक्तं जनकसबन्धि । अन्तरा मातृसबद्धम् । अन्तरा शुकनासो वैशम्पायनपिता तद्वार्ताभिर्निष्पन्नमालापमन्योन्य प्रीतिभाषण कुर्वन्विदधन्नातिजाता न बाहुल्येन समागता निद्रा प्रमीला यस्य स तथा । प्रायेण बाहुल्येन जाग्रदेव निद्राभाववानेव निन्ये निनाय । प्रत्यूषे चेति । प्रत्यूषे प्रभाते चोत्थायोत्थानं कृत्वा तेनैव क्रमेण पूर्वोक्तपरिपाट्यानवरतप्रयाणकैर्निरन्तरगमनै । प्रतीति । प्रतिप्रयाणक प्रयाण प्रयाण प्रत्युपचीयमानेन पुष्टता प्राप्यमाणेन सेनासमुदायेन सैन्यसंघातेन प्रतिष्ठता चलता वसुंधरा धात्रीं

विविध प्रकार की कथाओ से उसका मन बहलाया, (तो भी) उसने वह सारा दिन दुःख मे बिताया, क्योंकि ताजे पितृ-वियोग से उत्पन्न शोक के आवेग से—भारी शोक से—वह पीड़ित किये जा रहे हृदयवाला था । और इस प्रकार दिन बिता देने के पश्चात् रात्रि भी उसने, प्राय: (अधिकांशत) जागते हुए ही, बहुत नींद प्राप्त किये बिना ही, बितायी । उस समय वह अपने पलग के समीप ही रखे हुए पलग पर बैठे हुए—विश्राम करते हुए, वैशम्पायन के साथ और दूसरी ओर समीप ही धरातल पर दरी बिछाकर सोयी हुई पत्रलेखा के साथ, (अन्तरा) मध्य में—कभी—तो पिता विषयक, कभी माता विषयक, कभी शुकनास-विषयक बातें करता रहा । और प्रभातकाल मे उठकर उसी (पूर्वोक्त) क्रम से निरन्तर (जारी रखे) गमनों[1] द्वारा प्रत्येक पड़ाव में वृद्धिगत सेना समूह द्वारा (सैनिकों के भार के नीचे) पृथ्वी को कुचलता हुआ,

---

१ प्रयाणकं गमनम्—Journy, march.

आकम्पयन्गिरीन्, उत्सिञ्चन्सरितः, रिक्तीकुर्वन्सरांसि, चूर्णयन्काननानि, समीकुर्वन्विषमाणि, दलयन्दुर्गाणि, पूरयन्निम्नानि, निम्नयन्स्थलानि प्रतिष्ठता शनैः शनैश्च स्वेच्छया परिभ्रमन्, नमयन्नुन्नतान्, उन्नमयन्नवनतान्, आश्वासयन्भीतान्, रक्षञ्छरणागतान्, उन्मूलयन्विटपकान्, उत्सादयन्कण्टकान्, अभिषिञ्चन्स्थानस्थानेषु राजपुत्रान्, समर्जयन्रत्नानि, प्रतीच्छन्नुपायनानि, गृह्णन्करान्, आदिशन्देशव्यवस्थाम्, स्थापयन्स्वचिह्नानि, कुर्वन्कीर्तनानि, लेखयञ्शासनानि, पूजयन्नग्रजन्मनः,

तर्जयञ्छिथिलतामापादयन्। गिरीन्पर्वतानाकम्पयन्तरलता नयन्। सरितो नदीरुत्सिञ्चञ्जलं दूरीकुर्वन्। सरांसि तटाकानि रिक्तीकुर्वञ्छून्यीकुर्वन्। जलेनेति शेष। काननानि वनानि चूर्णयन्क्षोदीकुर्वन्विषमाणि कठिनानि समीकुर्वन्सरलीकुर्वन्। दुर्गाणि कोट्टानि दलयन्खण्डयन्। निम्नानि गभीराणि पूरयन्पूर्णीकुर्वन्। स्थलानि स्थलप्रदेशानि निम्नयन्सगम्भीरतामापादयन्। शनै शनैर्मन्द मन्द स्वेच्छया स्वातन्त्र्येण परिभ्रमन्पर्यटन्। उन्नतानुच्चान्नमयन्नम्रतामापादयन्। अवनतान्प्रणतानुन्नमयन्नुच्चतां प्रापयन्। भीतांस्त्रस्तानाश्वासयन्नाश्वासना कुर्वन्। शरणागतांस्त्राणार्थं प्राप्तान्रक्षन्पालयन्। विटपकान्विटानुन्मूलयन्नुन्मूलना कुर्वन्। कण्टकाञ्छत्रूनुत्सादयन्दूरीकुर्वन्। स्थानस्थानेष्विति। स्थानानि च स्थानानि च स्थानस्थानानि तेषु राजपुत्रान्नृपसुतानभिषिञ्चन्नभिषेक कुर्वन्। रत्नानि स्वस्वजातावुत्कृष्टवस्तूनि समर्जयन्। उपायनानि प्राभृतानि प्रतीच्छन्स्वीकुर्वन्। करान्दण्डान्गृह्णन्ग्रहण कुर्वन्। देशव्यवस्था जनपदमर्यादामादिशन्नाज्ञापयन्। स्वचिह्नानि स्वस्यागमननिमित्तानि स्थापयन्स्थापना कुर्वन्।

पर्वतों को हिलाता हुआ, नदियो के जल को कम करता (नदियो को उथली करता) हुआ (उन्हे पार करने योग्य बनाता) हुआ, झीलो को (जल से) रिक्त करता हुआ, जगलों को विध्वस्त करता हुआ, ऊँचे-नीचे विषम स्थानों को समतल करता हुआ, किलों को तोड़ता हुआ, गड्ढों को भरता हुआ, स्थलों को खोदता हुआ चल पड़ा। और धीरे-धीरे (सरलता से चलता हुआ) अपनी इच्छानुसार घूमते फिरते उसने, अपनी सेनाओं की धूल से सभी तटवर्ती सागरो क जलों को धूसरित करते हुए तथा उनकी वेला (तट) पर स्थित वनों को नष्ट करते हुए सारी पृथ्वी का भ्रमण किया। और भ्रमण करते हुए उसने उद्धतो को आज्ञाकारी बनाया, नम्रों को उच्च पद पर पहुँचाया, डरे हुओं को उत्साहित किया, शरणागतो की रक्षा की, (अपनी सभाओं में) शत्रुओं को सरक्षण देने वालों का (विटपकान्) उन्मूलन किया, काँटों-सरीखे (दुखदायको) को अथवा छोटे शत्रुओं को[1] नष्ट किया। विभिन्न प्रदेशों मे (रिक्त) सिंहासनों पर उसने राजपुत्रों को बैठाया, रत्न एकत्रित किये, भेंट ली,[2] कर लिये, देशों की शासन व्यवस्था के लिये निर्देश दिये, अपनी यात्रा के अपने (स्मारक) चिन्हों (स्तम्भ आदि) की स्थापना की, कीर्तन[3] (स्मारक) बनवाये, राजकीय दानपत्र[4] लिखवाये (और जारी किये), ब्राह्मणों

१. कण्टका-क्षुद्रविद्विष। २. उपायनानि प्रतीच्छन्—भेंटें स्वीकार करता हुआ।
३. कीर्तनम्—(कृत् धातु से) अर्थात् कीर्तिकारक अथवा स्मारक। ४ शासनानि—दान की आज्ञा में।

प्रणमन्मुनीन्, पालयन्नाश्रमान्, जनयञ्जनानुरागं, प्रकाशयन्विक्रमम्, आरोपयन्प्रतापम्, उपचिन्वन्यशः, विस्तारयन्गुणान्, प्रख्यापयन्सच्चरितम्, आमृद्नंश्च वेलावनानि बलरेणुभिराधूसरीकृतसकलसागरसलिलः पृथिवीं विचचार । प्रथम प्राचीम्, ततस्त्रिशङ्कुतिलकाम्, ततो वरुणलाञ्छनाम्, अनन्तर च सप्तर्षिताराशबला दिश जिग्ये । वर्षत्रयेण चात्मीकृताशेषद्वीपान्तर सकलमेव चतुरुदधिखातवलयपरिखाप्रमाण बभ्राम महीमण्डलम् । ततः क्रमेणावजितसकलभुवनतलः प्रदक्षिणीकृत्य वसुधा परिभ्रमन्, कदाचित्कैलाससमीपचारिणा हेमजकूटनाम्ना किराताना सुवर्णपुर नाम निवासस्थान नातिविप्रकृष्टं पूर्वजलनिधेर्जित्वा जग्राह । तत्र च निखिलधरणीतलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतोः कतिपयान्दिवसानतिष्ठत् ।

कीर्तनानि हरिगुणगानानि कुर्वन् । शासनानि ग्रामपट्टकादीनि लेखयल्लिपीकारयन् । अग्रजन्मनो ब्राह्मणान्पूजयन्नर्चयन् । मुनीनृषीन्प्रणमन्नमस्कुर्वन् । आश्रमान्ब्रह्मचारिप्रभृतीन्पालयन्प्रतिपालनां कुर्वन् । जनानामनुरागो यथा स्यादेवभूतं विक्रम पराक्रम प्रकाशयन्प्रकटयन् । प्रताप कोशदण्डज तेज आरोपयन्स्थापयन् । यश सर्वदिग्गामुकमुपचिन्वन्पुष्टीकुर्वन् । गुणाञ्शौर्यादीन्विस्तारयन् प्रथयन् । सच्चरित शोभनं वृत्त लोकेषु प्रख्यापयन्प्रकटीकुर्वन् । वेलावनानि समुद्रतीरोद्भवोपवनान्यामृद्नन्नाभञ्जयन् । किंविशिष्टो बलरेणुभि सैन्यधूलिभिरासमन्ताद्धूसरीकृतमीषत्पाण्डुरीकृतं सकल समग्रो य सागर समुद्रस्तस्य सलिलं पानीयं येन स । पृथिवीं वसुधा विचचार बभ्राम । प्रथम क्व जग्मिवानित्याशयेनाह—प्रथममिति । प्रथममादौ प्राचीं प्राग्दिशम् । तत इति । तत तद्गमनानन्तर त्रिशङ्कुर्नृपतिरेव तिलक यस्या सा तथा ताम् । दक्षिणामित्यर्थः । इद च पुराणे प्रसिद्धम् । ततो वरुण प्रचेता लाञ्छन यस्या सा ताम् । पश्चिमामाशामित्यर्थः ।

की पूजा की, तपस्वियो को प्रणाम किये (चार आश्रमो के कल्याण की देखभाल की, और जनता को स्नेह की प्रेरणा दी । उसने प्रभाव का प्रदर्शन किया, अपने गौरव और यश को बढ़ाया, अपने गुणों का विस्तार किया (उन्हें अधिकाधिक प्रकट किया), और अपने शुभ चरित्रों—कृत्यों को प्रसिद्ध कराकर लोगों को जानने का अवसर दिया । उसने पहले पूर्व दिशा को जीता, फिर त्रिशङ्कु जिसका तिलक (भूषण) है उस (दक्षिण) दिशा को, उसके पश्चात् वरुणलाञ्छना (पश्चिम) दिशा को और उसके पश्चात् सप्तर्षि तारों से रग बिरगी (उत्तर) दिशा को जीता । और तीन वर्ष में सभी विभिन्न महादेशों को अपने अधीन करके उसने चार (मुख्य) समुद्रों की वलयाकार खायी से घिरी सारी पृथ्वी का भ्रमण कर लिया । और फिर क्रमशः सारे लोकों को जीत कर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके घूमते हुए ने, कमी (हेमकूट धाम्ना) हेमकूट पर्वत के निवासी, कैलास पर्वत के समीप विचरण करने वाले किरातों के निवासस्थल पूर्व समुद्र के समीपवर्ती स्वर्णपुर नाम के नगर को जीत कर अपने अधिकार में ले लिया । और वहा वह, सारी पृथ्वी पर भ्रमण करते रहने से थकी हुई अपनी सेना के विश्राम-हेतु कई दिन के लिये ठहर गया ।

एकदा तु तत्रस्थ एवेन्द्रायुधमारुह्य मृगयानिर्गतो विचरन्कानने शैलशिखरादवतीर्णं यदृच्छया किंनरमिथुनमद्राक्षीत्। अपूर्वतया तु समुपजातकुतूहलः कृतग्रहणाभिलाषस्तत्समीपमादरादुपसर्पिततुरगः समुपसर्पन्, अदृष्टपूर्वपुरुषदर्शनत्रासप्रधावित च तत्पलायमानमनुसरन्ननवरतपाणिप्रहारद्विगुणीकृतजवेनेन्द्रायुधेनैकाकी निर्गत्य

अनन्तरं चेति। तत पश्चात्सप्तर्षीणां मरीचिप्रमुखाणां तारा नक्षत्राणि ताभि शबला कर्बुरा दिशमुदीची जिग्ये जितवानित्यर्थः। वर्षेति। वर्षत्रयेणाब्दत्रयेण। सकलेति। सकलमेव समग्रमेव महीमण्डल वसुधावलय बभ्राम भ्रमण चकारेत्यन्वय। अथ महीमण्डलं विशिनष्टि— आत्मीति। आत्मीकृत स्वायत्तीकृतमशेष समग्र द्वीपान्तरमन्तरीपान्तरं यस्मिंस्तत्तथा। चतुरिति। चतुरुदधयश्चतु समुद्रा एव खातवलय तदेव परिखा प्रमाण यस्य तत्। ततस्तज्जयानन्तर क्रमेण परिपाट्या। अवेति। अवजित स्वायत्तीकृत सकलभुवनतल समग्रवसुधातल येन स एवभूत। वसुधा प्रदक्षिणीकृत्य सृष्ट्या प्रदक्षिणां दत्त्वा परिभ्रमन्नितस्तत पर्यटन्। कदाचित्कस्मिंश्चित्समये। कैलासेति। कैलासो रजताद्रिस्तत्समीपचारिणा तत्पार्श्वगामिना हेमजकूट इति नाम येषामेव विधाना किरातानां भिल्लाना म्लेच्छाना वा सुवर्णपुर नाम निवासस्थान जित्वा जय कृत्वा जग्राह गृहीतवान्। कीदृशम्। पूर्वजलनिधे पूर्वसमुद्रान्नातिविप्रकृष्ट नातिदूरम्। तत्र चेति। तस्मिन्स्थले निखिल समग्र यद्धरणीतल पृथ्वीतल तत्र पर्यटन परिभ्रमण तेन खिन्नस्य रीणस्य निजबलस्यात्मीयसैन्यस्य विश्रामहेतो क्लान्तिनिवृत्त्यर्थं कतिपयान्कियतो दिवसान्वासरानतिष्ठदवस्थानमकारयत्।

एकदा त्विति। एकस्मिन्समये तत्रस्थ एव तस्मिन्स्थाने स्थित एवेन्द्रायुधमश्वमारुह्यारोहण कृत्वा। मृगयार्थमाखेटकार्थं निर्गत कानने वने विचरन्गाच्छञ्शैलशिखराद्गिरिश्रृङ्गादवतीर्णमुत्तीर्णं यदृच्छया स्वेच्छया किंनरमिथुन तुरङ्गवदनयुग्ममद्राक्षीदवलोकयाचकार। अपूर्वतयाद्भुततया। तु पुनरर्थक। समुपजातं समुत्पन्न कुतूहलमाश्चर्यं यस्य स। कृतेति। कृतो विहितो ग्रहणे स्वीकारेऽभिलाष इच्छाविशेषो येन स। तदिति। तस्य किंनरमिथुनस्य समीप पार्श्वमादराद्बहुमानादुपसर्पितस्तद्दिशं प्रति प्रेरितस्तुरगो वाहो येन स तथा समुपसर्पन्समीपे गच्छन्। अदृष्टेति। अदृष्टपूर्वमनवलोकितपूर्वं यत्पुरुषदर्शन मानुषेक्षण तस्माद्यस्त्रास आकस्मिक भय तेन

जब अभी वह वहीं था तो उसने, एक बार, इन्द्रायुध पर सवार होकर शिकार के लिये जगल मे घूमते फिरते हुए (समीपस्थ) पर्वत की चोटी से उतरी हुई एक किन्नर-जोड़ी अचानक देखी। फिर पहले कभी न देखे दृश्य के दर्शन से उसके मन में उत्सुकता उत्पन्न हो गयी, और उस जोड़ी को पकड़ने की इच्छा किये हुए उसने जोड़ी के समीप जाने के लिये घोड़े को दृढ़तापूर्वक[1] प्रेरित किया किन्तु जैसे ही वह उसके समीप पहुँचा, वह जोड़ी अनवलोकितपूर्व पुरुष के दर्शन से डरकर दौड़ पड़ी, और दौड़ती हुई उस जोड़ी का पीछा करता हुआ, निरन्तर (पार्ष्णि)— एड़ी के प्रहार से दुगने किये हुए वेग वाले इन्द्रायुध पर सवार हुआ, वह अकेला ही, अपनी

1 आदरात्—अथवा ध्यान से।

बलसमूहात्सुदूरमनुससार । 'अत्र गृह्यते, इद गृहीतम् , इदं गृहीतम्' इत्यतिरभसाकृष्टचेता महाजवतया तुरङ्गमस्य मुहूर्तमात्रेणैकदमिवासहायस्तस्मात्प्रदेशात्पञ्चदशयोजनमात्रमध्वान जगाम । तच्चानुबध्यमालोकयत एवास्य समुखापतितमचलतुङ्गशिखरमारुरोह । आरूढे च तस्मिञ्शनैः शनैस्तदनुसारिणी निवर्त्य दृष्टिम् , अचलशिखरप्रस्तरप्रतिहतगतिप्रसरो विधृततुरङ्गश्चन्द्रापीडस्तस्मिन्काले समुपारूढश्रमस्वेदार्द्रशरीरमिन्द्रायुधमात्मानं चावलोक्य क्षणमिव विचार्य स्वयमेव

प्रधावितं प्रकर्षेण प्रतिष्ठित प्रस्थित यत्किंनरमिथुनं पलायमान पलायनं कुर्वाणमनुसरन्ननुगच्छन् । अनेति । अनवरत निरन्तर य पाणिप्रहारो हस्ताभिघातस्तेन द्विगुणीकृतो द्विभागाधिकीभूतो जवो वेगो यस्यैवविधेनेन्द्रायुधेनाश्वेनैकाक्यसहायो बलसमूहात्सैन्यसदोहान्निर्गत्य निर्गमन कृत्वा सुदूरमतिविप्रकृष्टमनुससार पश्चाद्ययौ । अत्रेति । अत्रास्मिन्स्थले गृह्यते ग्रहणविषयीक्रियते । मयेति शेष । इद किंनरमिथुन गृहीतम् । इद गृहीतमिति पूर्वोक्तप्रकारेणातिरभसादतिवेगेनाकृष्टमाकर्षित चेतो यस्य स तथा च । अथ च तुरंगमस्याश्वस्य महाजवतया महावेगतया मुहूर्तमात्रेण घटिकाद्वयेनैकपदमिवैकवारमिव । अत्र सादृश्य इवशब्द । एकवारसदृशमित्यर्थं । असहायोऽद्वितीयस्तस्मात्प्रदेशात्पञ्चदशयोजनमात्र पञ्चदशयोजनपरिमितमध्वानं मार्ग जगाम ययौ । अस्य राज्ञस्तत्पूर्वोक्तमनुबध्यमानमनुबन्धविषयीक्रियमाण किंनरमिथुनमालोकयत एव विलोकयत एव समुखापतितमभिमुखागतम् । शिखरविशेषणम् । अचलतुङ्गशिखर पर्वतोच्चसानुमारुरोहारोहण चकार । आरूढेति । तस्मिन्किंनरमिथुन आरूढे सति शनै शनैर्मन्द तदनुसारिणीं तत्पृष्ठगामिनीं दृष्टिं चक्षु निवर्त्य निवर्तनविषयीकृत्य । अचलेति । अचलस्य पर्वतस्य शिखराणि सानूनि तेषा प्रस्तरा ग्रावाणस्तै प्रतिहत प्रतिरुद्धो गतप्रसरो गमनप्रचारो यस्य सः । अतएव विधृतो गमनात्प्रतिषिद्धस्तुरङ्ग इन्द्राश्वो येनैवंविधश्चन्द्रापीडस्तस्मिन्काले तस्मिन्समये समुपारूढो व्याप्तो य श्रमस्वेदस्तेनार्द्रं खिन्न शरीर देहो यस्यैवविधमिन्द्रायुधमात्मान चावलोक्य निरीक्ष्य क्षणमिव क्षणसदृशं विचार्य विमर्शन कृत्वा स्वयमेवात्मनैव विहस्य हास्यं विधाया-

---

बड़ी सेना से निकल कर (चलकर) बहुत दूर तक उस जोड़ी के पीछे-पीछे चला गया । 'यह पकड़ा जायगा, यह पकड़ा, यह पकड़ा'—इस प्रकार उसका मन अत्यन्त उत्सुकता से आकर्षित था और घोड़े के अत्यन्त वेग के कारण वह थोड़े ही समय में, मानो एक ही कदम में, अकेला ही, उस प्रदेश से १५ योजन दूरी पर पहुँच गया । और वह जोड़ी पीछा की जाती हुई, इस (चन्द्रापीड) के देखते ही देखते, सामने आये हुए पर्वत की ऊची चोटी पर चढ गयी । जब वह (जोड़ी पर्वत-शिखर पर) चढ़ गयी तो चन्द्रापीड ने धीरे धीरे, उस जोड़ी के पीछे जाती हुई अपनी दृष्टि को लौटा लिया और कारण कि पहाड़ की चोटियों पर की शिलाओं द्वारा उसका चलना रुक गया इसलिये घोड़े (की लगाम) को उसने हाथ में ले लिया और उस समय यह देखकर कि थकावट के कारण आये पसीने से उसका और इन्द्रायुध का दोनों का शरीर गीला हो गया है, चन्द्रापीड कुछ देर कुछ सोच कर स्वय ही हँसकर (मन

विहस्याचिन्तयत्—'किमिति निरर्थकमयमात्मा मया शिशुनेवायासितः। किमनेन गृहीतेनागृहीतेन वा किनरयुगलेन प्रयोजनम्। यदि गृहीतमिद ततः किम्, अथ न गृहीत ततोऽपि किम्। अहो मे मूर्खतायाः प्रकारः। अहो यत्किचनकारितायामादरः। अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेशः। अहो बालिशचरितेष्वासक्तिः। साधुफल कर्म क्रियमाण वृथा जातम्। अवश्यकर्तव्या क्रिया प्रस्तुता विफलीभूता। सुहृत्कार्यमुपपाद्यमानं नोपपन्नम्। राजधर्मः प्रवर्तितो न निष्पन्नः। गुर्वर्थः प्रारब्धो न परिसमाप्तः। विजिगीषुव्यापारप्रयत्नो न सिद्धः। कस्मादहमाविष्ट इवोत्सृष्टनिजपरिवार एतावतीं

चिन्तयच्चिन्तितवान्। किमिति हेतो। अयमात्मा मया शिशुनेव बालकेनेव निरर्थक आयासित. प्रयास प्रापित। किमनेनेति। अनेन किंनरयुगलेन किंनरमिथुनेन गृहीतेनागृहीतेन वा किं प्रयोजन किं फलम्। यदीति चेदर्थे। चेदिद किंनरमिथुन गृहीत तत किम्। न किमपीत्यर्थ। अथ न गृहीत ततोऽपि किम्। न किमपीत्यर्थ। अहो इत्याश्चर्ये। मे मम मूर्खताया मूढताया प्रकारो भेद। अहो इति। यत्किंचन करोतीत्येवंशीलो यत्किंचनकारी तस्य भावस्तत्ता तस्यामादरो बहुमान। अहो इति पूर्ववत्। निरर्थका निष्प्रयोजना ये व्यापारास्तेष्वभिनिवेशो हठ। अहो इति पूर्ववत्। बालिश निन्दित चरित चेष्टित येषामेवविधेषु कृत्येष्वासा तन्मयत्वम्। कर्मधारयो वा। साध्विति। साधु शोभन फल यस्यैवविध कर्म क्रिया क्रियमाण विधीयमानं वृथा जात निष्फल जज्ञे। अवेति अवश्यकर्तव्यावश्यकरणयोग्या क्रिया प्रस्तुता प्रारब्धा विफलीभूता निष्फलीभूता। सुहृदिति। सुहृत्कार्य मित्रकार्यमुपपाद्यमान विधीयमान नोपपन्न न निष्पन्नम्। राजेति। राजधर्मो नीतिधर्म प्रवर्तित सर्वत्र विहितो न निष्पन्नो न सिद्धि गत। गुरोरर्थ पितुरर्थ प्रारब्ध प्रस्तुतो न परिसमाप्तो न परिपूर्णतां गत। विजेतुमिच्छवो

में) सोचने लगा—"क्यों मैंने एक बालक-सरीखे अपने-आप को व्यर्थ ही थकाया? किन्नरों की इस जोड़ी को पकड़ लेने से या न पकड़ने से क्या लाभ होता? यदि यह जोड़ी पकड़ी जाती तो इससे क्या लाभ होता? यदि न पकड़ी गयी तो भी अब क्या होगा? आश्चर्य है, मैंने ऐसी मूर्खता कर डाली! आश्चर्य है, तुच्छ कार्य करने में मेरी उत्सुकता है! निरर्थक कृत्यों से मेरा आश्चर्यजनक हठ है! एक शिशु के से आचरण करने में मेरा इतना लगाव! (अथवा मूढजनों द्वारा किये जाने वाले कृत्यों में ऐसी लगन!) मङ्गलकारी फल (अथवा परिणाम) वाला (अर्थात् दिग्विजय रूपी कर्म) जो कार्य कर रहा था, अथवा मैंने करना आरम्भ किया था, वह (अब) व्यर्थ हो गया। जो कार्य अवश्य करने योग्य था, और जिसका करना आरम्भ कर दिया गया था, वह अब निष्फल हो गया। मित्रों का जो कार्य सम्पादित किया जा रहा था वह पूरा (सम्पन्न) नहीं हुआ है। जिस-जिस राजकीय कर्तव्य को करना आरम्भ किया गया था वह पूरा नहीं हुआ है। जो महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ किया गया था (जिसको करना स्वीकार किया गया था) वह अभी तक पूरा नहीं हुआ। (संक्षेपत.) एक विजिगीषु के कार्य को सिद्ध करने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। और मैं अपने अनुयायियों को छोड़े हुआ, इतनी

भूमिमायात। कस्माच्च मया निष्प्रयोजनमिदमनुसृतमश्वमुखद्वयमिति विचार्यमाणे सत्ययमात्मैव मे पर इव हासमुपजनयति। न जाने कियताध्वना विच्छिन्नमितो बलमनुयायि मे। महाजवो हीन्द्रायुधो निमेषमात्रेणातिदूरमतिक्रामति। न चागच्छता मया तुरगवेगवशात्किन्नरमिथुने बद्धदृष्टिनास्मिन्नविरलतरुशतशाखागुल्मलतासंतानगहने निरन्तरनिपतितशुष्कपर्णावकीर्णतले महावने पन्था निरूपितो येन प्रतिनिवृत्त्य यास्यामि। न चास्मिन्प्रदेशे प्रयत्नेनापि परिभ्रमता मया मर्त्यधर्मा कश्चिदासाद्यते यः

विजिगीषवस्तेषां व्यापारो व्याहृतिस्तस्मिन्प्रयत्न उद्योगो न सिद्धो न निष्पन्न। कुत एतन्न जातमिति पराभिप्रायमाशङ्क्याह—कस्मादिति। कुतो हेतोरित्यर्थः। उत्तर प्रदर्शयन्नाह—अहमिति। अहमाविष्ट इव भूताभिभूत इवोत्सृष्ट उज्झितो निजपरिवार स्वकीयपरिच्छदो येनैवभूत एतावतीमियत्प्रमाणा भूमिं वसुधामायात आगत। कस्माद्धेतोः। मया निष्प्रयोजन निरर्थकमिदमश्वमुखद्वयं किंनरमिथुनमनुसृतमाश्रितमिति। विचार्यमाणे सति विचिन्त्यमाने सत्ययमात्मैव स्वचेतन एव मे मम पर इवान्य इव हास हास्यमुपजनयति निष्पादयति। न जाने नाकलयामि कियताध्वना कियन्मार्गेण विच्छिन्न विच्छेद प्राप्तमितो मत्सकाशाद् बल सैन्यमनुयाय्यनुगमनशीलमित्यर्थः। मे मम। महाजवो महावेग। हि निश्चितम्। इन्द्रायुधो निमेषमात्रेण चक्षुषो निमीलनमात्रेणातिदूरमतिविप्रकृष्टमत्यतिक्रमण करोति। न चेति। अस्मिन्महावने महाविपिन आगच्छतागमन कुर्वता मया पन्था मार्गो न च निरूपितो न ज्ञात। कस्मात्। तुरगस्येन्द्रायुधस्य यो वेगो रयस्तद्वशात्तदनुरोधात्। कीदृशेन मया। बद्धेति। तस्मिन्किंनरमिथुने बद्धा स्थापिता दृष्टिर्येन स तथा तेन। अथ वन विशेषयन्नाह—अविरलेति। अविरलानि निबिडानि। अन्योन्यसबद्धानीत्यर्थः। यानि तरुशतानि वृक्षशतानि, शाखा स्कन्धशाखा, गुल्मा विटपा, लता, शाखाश्च प्रादुर्भूता. शाखा, एतेषां सतान परम्परा तेन गहने कलिले। निरेति। निरन्तर प्रत्यह निपतितानि स्रस्तानि यानि शुष्कपर्णानि शुष्कपत्राणि

भूमि पर—इतनी दूर पर भूताविष्ट व्यक्ति की भाति क्यों आ गया? और मैंने क्यों व्यर्थ ही इस किन्नर जोड़ी का पीछा किया—जब इस बात पर सोचता हूँ तो मेरी यह आत्मा ही, दूसरे व्यक्ति की भाँति, मेरी हँसी उड़ाती है। मेरा अनुयायी सैन्य न जाने यहाँ से कितनी दूर बिछुड़ा हुआ है, निश्चय ही इन्द्रायुध अत्यन्त वेगवान् है, निमिष मात्र में आँख को झपकाने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में यह बहुत-सी दूरी पार कर जाता है। और फिर मैंने घोड़े के वेग के कारण तथा किन्नरों के जोड़े पर आँख लगाये हुए, आते हुए ने, इन सटे (पास पास उगे) हुए सैकड़ों वृक्षों, उनकी शाखाओं, झाड़ियों तथा लताओं की परम्परा (अथवा विस्तृत लताओं) के कारण घने (अगम्य), तथा निरन्तर सूखे पत्तों से व्याप्त (धरा) तल वाले महावन में (उस महावन को पार करते हुए) मार्ग भी नहीं देखा कि जिस मार्ग से कि मैं लौट कर जाऊँगा। और इस प्रान्त में यदि मैं बड़े प्रयासपूर्वक घूमूँ-फिरूं तो भी मुझे किसी उस मरणधर्मा मनुष्य को प्राप्त करने की (आशा ही है) कि जो मुझे सुवर्ण

सुवर्णपुरगामिन पन्थानमुपदेक्ष्यति। श्रुत हि मया बहुशः कथ्यमानमुत्तरेण सुवर्णपुर सीमन्तलेखा पृथिव्याः सर्वजनपदानाम्, ततः परतो निर्मानुषमरण्यम्, तच्चातिक्रम्य कैलासगिरिरिति। अय च कैलासः। तदिदानी प्रतिनिवृत्त्यैकाकिना स्वयमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य दक्षिणामाशा केवलमङ्गीकृत्य गन्तव्यम्। आत्मकृताना हि दोषाणा नियतमनुभवितव्य फलमात्मनैव' इत्यवधार्य वामकरतलचलितरश्मिपाशस्तुरगम व्यावर्तयामास। निवर्तिततुरगमश्च पुनश्चिन्तितवान्—'अयमुद्भासितप्रभाभास्वरो भगवान्भानुरधुना दिवसश्रियो रशनामणिरिव मध्यमलकरोति। परिश्रान्तश्चायमिन्द्रायुधः। तदेन तावदागृही-

---

तैरवकीर्णं व्याप्तं तलमधोभगो यस्य तस्मिन्। येन पथा प्रतिनिवृत्य व्याघुट्य यास्यामि गमिष्यामि। न चेति। अस्मिन्प्रदेशे प्रयत्नेनाप्युद्योगेनापि परिभ्रमता परिभ्रमण कुर्वता मया कश्चित् मर्त्यधर्मा मनुष्यो न चासाद्यते न प्राप्यते य पुमान्सुवर्णपुरगामिन पन्थान मार्गमुपदेक्ष्यत्युपदेश करिष्यति। मया बहुशोऽनेकवार कथ्यमान प्रतिपाद्यमानम्। जनैरिति शेष.। श्रुतमाकर्णितमुत्तरेण सुवर्णपुरम्। तद्विशेषयन्नाह—सर्वेति। सर्वजनपदाना समग्रप्रदेशाना पृथिव्या वसुधाया सीमन्तलेखा सीमन्त केशवेशस्तस्य लेखेव लेखा। तत परतोऽग्रतो निर्मानुष मनुष्यरहितमरण्य काननम्। तदरण्यमतिक्रम्योल्लङ्घ्य कैलासगिरिरिति। अय चेति। अय प्रत्यक्ष कैलास। तदिदानीं प्रतिनिवृत्य व्याघुट्यैकाकिना मया स्वयमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य विलोक्य विलोक्य दक्षिणामपाचीं आशा दिश केवलमङ्गीकृत्य स्वीकृत्य गन्तव्य गमनीयम्। आत्मना कृताना स्वयमाचरिताना दोषाणा दुष्कर्मणा नियत निश्चित फलमात्मनैव स्वयमेवानुभवितव्यमनुभवविषयीकर्तव्यम्। इत्यवधार्येति निश्चित्य। वामेति। वामकरतलेन सव्यपाणितलेन चलित कम्पितो रश्मिपाश खलीन येन स तुरगममिन्द्रायुध व्यावर्तयामास निवर्तयामास। निवर्तिततुरंगमश्चेति। निवर्तित पश्चाद्वलितस्तुरगम इन्द्रायुधो येनैवंभूत पुनस्तदनन्तर

पुर जाने का मार्ग बता देगा। मैंने यह बात कही जाती बहुत बार सुनी है कि सुवर्णपुर[1] से उत्तर दिशा मे पृथिवी के सभी देशों की सीमान्त रेखा है—उससे परे मनुष्यों से रहित—अर्थात् निर्जन जगल है और उसको लाँघ कर—उससे परे कैलासपर्वत है। और यह कैलास पर्वत है ही। इसलिये तो मुझे लौटकर, अकेले ही अकेले, स्वय अनुमान करके, केवल दक्षिण दिशा को पकड़े हुए जाना चाहिये। निश्चय ही अपने-आप स्वय किये हुए दोषों का परिणाम स्वय अपने-आप भुगतना पड़ता है।" यह निश्चय करके बायीं हथेली से मोड़ी गयीं[2] लगामोंवाले चन्द्रापीड ने बायें हाथ से लगामों को खींचकर घोड़े को लौटा लिया।

घोड़े को लौटा लेने के पश्चात् वह फिर सोचने लगा—"अत्यन्त उज्ज्वल काति से चमकता भगवान् सूर्य, अब दिन-श्री के कमरबन्द का रत्न सरीखा बना हुआ सुन्दर दिन के मध्य भाग (अर्थात् कटि-प्रदेश) को सुशोभित कर रहा है और यह इन्द्रायुध थक गया है।

---

१. उत्तरेण सुवर्णपुरम्—सुवर्णपुराद् उत्तर दिशि। 'एनपा द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है। २. वलित।

तकतिपयदूर्वाप्रवालकवलं कस्मिंश्चित्सरसि शिलाप्रस्रवणे वा सरिदम्भसि वा स्नात-पीतोदकमपनीतश्रमं कृत्वा स्वयं च सलिलं पीत्वा कस्यचित्तरोरधश्छायायां मुहूर्तमात्रं विश्रम्य ततो गमिष्यामि' इति चिन्तयित्वा सलिलमन्वेषमाणो मुहुर्मुहुरितस्ततो दत्तदृष्टिः पर्यटन्नलिनीजलावगाहोत्थितस्याचिरादपक्रान्तस्य महतो गिरिचरस्य वनगज-यूथस्य चरणोत्थापितैः पङ्कपटलैरार्द्रीकृतम्, करावकृष्टैश्च समृणालमूलनालैः कमल-कलापैः कल्माषितम्, आर्द्रार्द्रैश्च शैवलप्रवालैः श्यामलितोद्देशम्, उद्दलितैश्च कुमुद-

---

चिन्तितवान्ध्यातवान्। तदेव दर्शयति—अधुनेति। अधुना साम्प्रतमयमुद्भासितातिप्रकटी-भूता या प्रभा कान्तिस्तया भास्वर शोभमानो यो भवानैश्वर्यवान्भानु सूर्यो दिवसश्रियो वासर-लक्ष्म्या रशनामणिरिव मेखलारत्नमिव मध्यमवलग्नम्। सूर्यपक्षे मध्यं मध्यभागम्। अलंकरोति विभूषयति। परिश्रान्तं खिन्नश्चायमिन्द्रायुधं तत्तावदादावेनमश्वम्। आगृहीतेति। आगृहीता आत्ता कतिपये कियन्तो दूर्वाया शतपर्वाया प्रवालकवला पल्लवग्रासा येन स तम्। कस्मिंश्चिदनिर्दिष्टनाम्नि सरसि कासारे शिलाप्रस्रवणे वा निर्झरे वा सरिदम्भसि वा नदी जले वा। स्नात इति। पूर्वं स्नातं पश्चात्पीतमुदकं येन स तम्। अत एवापनीत-श्रमं दूरीभूतक्लमं कृत्वा विधाय स्वयं च सलिलं पानीयं पीत्वा पानं कृत्वा कस्यचित्तरोर-निर्दिष्टनाम्नो वृक्षस्याधश्छायायां मुहूर्तमात्रं विश्रम्य विश्रामं गृहीत्वा ततः पश्चाद्गमिष्यामि गमनं करिष्यामि। इति पूर्वोक्तं चिन्तयित्वा ध्यात्वा सलिलमम्भोऽन्वेषमाणो गवेषमाणो मुहुर्मुहुर्वारंवारमितस्ततो दत्ता दृष्टिर्येनैवंभूतः पर्यटन्परिभ्रमन्मार्गमध्वानमद्राक्षीदपश्यदित्य-न्वयः। अथ मार्गं विशेषयन्नाह—नलिनीति। नलिनी कमलिनी तया संयुक्तं जलं नलि-नीजलं तस्यावगाहं आलोडनं तस्मादुत्थितस्य निःसृतस्याचिरात्स्वल्पकालापक्रान्तस्य पश्चाद्व-लितस्य महतो महीयसो गिरिचरस्य पर्वतचारिणो वनगजयूथस्य हस्तिसमूहस्य चरणोत्थापितैः क्रमोद्धृतैः पङ्कपटलैः कर्दमसमूहैरार्द्रीकृतं समुन्नीकृतम्। तथा करावकृष्टैः करैः शुण्डादण्डैरव-

---

सो पहले इसको दूर्वा घास की कोमल पत्तियों के कई ग्रास खिलाकर किसी झील अथवा पर्वतीय झरने में अथवा किसी नदी के जल में स्नान करवा करके, पानी पिलाकर तथा थकावट दूर करवा कर और स्वयं जल पीकर किसी वृक्ष के नीचे छाया में कुछ देर तक विश्राम करके तब जाऊँगा।" यह सोचकर उसने जल ढूँढना आरम्भ किया, बार बार इधर-उधर दृष्टि डाली और इस प्रकार भटकते हुए उसने पर्वतों में भ्रमण करने वाले, (किसी समीपस्थ) कमलों वाले तालाब के जल में स्नान से (उठे हुए) उठकर आये, अभी ही वहाँ से लौटे हुए बड़े भारी जंगली हाथियों के झुण्ड के पाँवों द्वारा ऊपर लाये हुए कीचड़ के ढेर (ढेर सारे कीचड़) से गीले हुए मार्ग को देखा। यह (मार्ग) (उन हाथियों की) सूँडों द्वारा खींचे गये तन्तुओं, जड़ों तथा डण्डियों सहित कमल-समूहों से रङ्गबिरङ्गा था, इसका प्रदेश (इसकी पंक्ति) गीले गीले शैवल के पत्तों द्वारा काला हुआ था, और इस मार्ग पर बीच-बीच में (जहाँ-तहाँ) कुमुद, कुवलय तथा कह्लार (विभिन्न प्रकार के कमलों)

कुवलयकह्लारकुड्मलैरन्तरान्तरा विच्छुरितम्, उत्खातैश्च सकर्दमैः शालूककन्दैरा-कीर्णम्, आखण्डितैश्च कुसुमस्तबकसारैर्वनपल्लवैराच्छादितम्, आलूनाभिश्च कुसुमोपविष्टोल्लसत्षट्पदाभिर्वनलताभिराकुलितम्, अभिनवकुसुमपरिमलवाहिना च तमालपल्लवसरसश्यामेन मदजलेन सर्वतः सिक्त मार्गमद्राक्षीत्। उपजातजलाशय-शङ्कश्च त प्रतीपमनुसरन्नुद्ग्रीवदृश्यैरुपरिच्छत्रमण्डलाकारैः सरलसालसल्लकीप्रायैर-विरलैरपि निःशाखतया विरलैरिवोपलक्ष्यमाणैः पादपैरुपेतेन, स्थूलकपिलवालुकेन,

---

कृष्टैराकर्षितैर्मृणाल बिस मूलानि च नालानि च तै सहवर्तमानै कमलकलापै कल्माषित चित्रवदाचरितमार्द्राणि चार्द्राणि चार्द्रार्द्राणि तै शैवलप्रवालैर्जलशूककिसलयै श्यामलित कृष्णीभूत उद्देश प्रदेशो यस्य स तम्। उद्दलितैरवकृष्टै कुमुद श्वेतोत्पलम्, कुवलय कुवेलम्, कह्लार सौगन्धितम्, तस्य कुड्मलानि मुकुलानि तैरन्तरान्तरा मध्ये मध्ये विच्छुरित व्याप्तम्। उत्खातैरुत्पाटितै सकर्दमै सहपङ्केन वर्तमानै शालूककन्दैरुत्पलाना कन्दै। 'उत्पलाना तु शालूकम्' इति कोश। आकीर्ण व्याप्तम्। आ समन्तात्खण्डितैश्छिन्नै कुसुमाना पुष्पाणा स्तबकैर्गुच्छकै सारै प्रधानैर्वनपल्लवैररण्यकिसलयैराच्छादितमावृतम्। आलूनाभिश्छिन्नाभि कुसुमोपविष्टा पुष्पमध्यवर्तिन उल्लसन्तो दीप्यमाना षट्पदा भ्रमरा यास्वेवविधाभिर्वनलता-भिररण्यव्रततिभिराकुलितमाकीर्णम्। अभिनवेति। अभिनव प्रत्यग्रो य कुसुमपरिमल पुष्पगन्धस्तद्वाहिना। तमालस्तापिच्छस्तस्य पल्लवा किसलयास्तद्वत्सरसश्यामेन मदजलेन दानवारिणा सर्वतो विश्वक्सिक्त सिञ्चितम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। उपजातेति। उपजाता समुत्पन्ना जलाशयस्य जलाधारस्य शङ्कारेका यस्य स तथा त मार्ग प्रतीपमभिमुखमनुसरन्न-

---

की कलिया बिखरी हुई थीं, और उसपर उखाड़े हुए कीचड़ सहित (कीचड़ मे सने), कमल की जड़े[1] फैली हुई थीं, वह टुकड़े टुकड़े की हुई तथा पुष्प गुच्छो से मिश्रित जङ्गली वृक्षों की टहनियों से ढका हुआ था, झपट कर तोड़ ली गई तथा (उनके) फूलो पर बैठे तथा उनपर मडराते भौरो वाली वन्य लताओ द्वारा खूब ढका हुआ था और ताजे फूलों की गन्ध से युक्त तथा 'तमाल' के पत्ते के रस सरीखा काला (हस्तियों का) मद-जल इस पर सब स्थानों पर छिड़का हुआ था।

(वहाँ समीप ही) जलाशय के होने का सन्देह (मन मे) जिसके उत्पन्न हो गया था ऐसा वह। इसीलिये उस मार्ग पर उल्टा (पीछे की ओर) चलता हुआ, कैलास पर्वत के नीचे नीचे (कैलास तल के साथ साथ) कुछ दूर तक चला। (कैलास पर्वत का वह निचला भाग—कैलास-तल) गर्दन उठाये हुए व्यक्तियों द्वारा ही दिखायी दे सकने वाले, जिनकी चोटियाँ गोल छतरी के आकार की थीं ऐसे, अधिकतर सरल, साल तथा सल्लकी वृक्षो से भरे (घने) हुए भी, शाखाएँ न होने के कारण छोटे प्रतीत होते वृक्षो से युक्त

---

१ शालूकै, उत्पलाना कन्दै।

शिलाबहुलतया विरलतृणोलपेन, वनद्विपदशनदलितमनःशिलाधूलिकपिलेन, आभङ्गिनीभिरुत्कीर्णाभिरिव पत्रभङ्गकुटिलाभिः पाषाणभेदकमञ्जरीभिर्जटिलीकृतशिलान्तरालेन, अनवरतगलद्गुग्गुलुद्रुमद्रवार्द्रीकृतदृषदा, शिखरस्रुतशिलाजतुरसपिच्छिलोपलेन टङ्कनहयखुरखण्डितहरितालक्षोदपांसुलेन, आखुनखरोत्खातबिलावकीर्णकाञ्चनचूर्णेन, सिकतानिमग्नचमरककस्तूरिकामृगीखुरपङ्क्तिना, सशीर्णरङ्कुरल्लकरोमप्रकर-

नुगच्छन् । उद्ग्रीवैरूर्ध्वकंधरै पुरुषैर्दंश्यैर्द्रष्टु योग्यैरुपरि प्रान्ते छत्रमण्डलस्यातपवारणवलयस्याकारो येषा ते । छत्राकारैरित्यर्थ । सरलेति । सरला अवक्रा. साला वृक्षविशेषा. सल्लक्यो गजप्रियास्ता एव प्रायो बाहुल्येन येष्वेवंविधैरविरलैर्निबिडैरपि नि शाखतया स्कन्धशाखाराहित्यतया विरलैरिवानिबिडैरिवोपलक्ष्यमाणैर्दृश्यमानैः पादपैर्वृक्षैरुपेतेन सहितेन । तथा स्थूला स्थविष्ठा कपिला पिङ्गला वालुका सिकता यस्मिंस्तेन । शिलाना बहुलता तया विरलानि स्तोकानि तृणान्युलपाश्च वल्लयो यस्मिंस्तत्तेन । वनेति । वनद्विपानामरण्यदन्तिना दशनैर्दन्तैर्दलिता मर्दिता या मन शिला मनोगुप्ता तस्या धूली रेणुस्तया कपिलेन पीतरक्तेन । आ समन्ताद्भङ्गिनीभिर्द्विधाभवनशीलाभिरुत्कीर्णाभिरिवोत्कीर्य कर्षिताभिरिव पत्रभङ्ग पत्रवल्ली तद्वत्कुटिलाभिर्वक्राभि पाषाणभेदकनाम्न्यो या मञ्जर्यो वल्लर्यस्ताभिरजटिल जटिल क्रियत इति जटिलीकृत शिलयोरन्तराल मध्यभागो यस्य तत्तेन । तथानवरत निरन्तर गलन्त स्रवन्तो ये गुग्गुलुद्रुमा. पिलङ्कषवृक्षास्तेषां द्रवो रसस्तेनार्द्रीकृतानि दृषन्ति प्रस्तरा यस्मिंस्तत्तेन । तथा शिखरेभ्य सानुभ्य स्नुतश्च्युतो य. शिलाजतुरसो गिरिजद्रवस्तेन पिच्छिला विजिला उपला यस्मिंस्तत्तेन । टङ्कनेति । टङ्कन प्रस्तरदारक तल्लक्षणो यो हयखुरोऽश्वशफस्तेन खण्डित शकलीकृत यद्धरिताल गोदन्त तस्य क्षोदश्चूर्णं तेन पांसुलेन पांसुयुक्तेन । तथाखूना वृषाणा नखरैर्नखैरुत्खातान्यवखनितानि यानि बिलानि विवराणि तेभ्योऽवकीर्णमवध्वस्त काञ्चनचूर्णं सुवर्णक्षोदो यस्मिंस्तत्तेन । तथा सिकतासु वालुकासु निमग्ना ब्रुडिताश्चमरकाश्चमर्य , कस्तूरिकामृग्यो नेपालदेशप्रसिद्धा , तेषा खुरपङ्क्तयो यस्मिंस्तत्तेन । तथा सशीर्णो विगलितो

था, मोटी-मोटी पीली पीली कंकणियोंसे युक्त था, शिलाओं की बहुतायत होने के कारण वहाँ घास और बेलें[1] बहुत कम थीं, वन्य हस्तियों द्वारा दलित मनःशिला के चूरे से यह स्थान भूरा हो गया था, उसकी शिलाओंके बीच बीच मे (शिलाओं के बीच के भागों मे) लहराती हुई, मानों उनपर खोदी हुई-सी प्रतीत होतीं, रैखिक चित्रकारियों के समान घुघराली, पाषाणभेदक नाम के वृक्ष की टहनियाँ उगी हुई थीं, इसकी शिलाएँ निरन्तर रिसते (इसपर उगे) गूगलवृक्ष के रस से गीली थीं, इसके पत्थर (कैलास पर्वत की) चोटियों से चूए हुए शिलाजीत के रस से चिकने कर रखे थे, इसपर सर्वत्र टाकी-सरीखे अश्वखुरों से चूर्णित हरिताल के चूरे की धूल फैली हुई थी, चूहों द्वारा अपने नखों से खोदे हुए बिलों पर सोने का चूरा बुरका हुआ था, (वहाँ पर विद्यमान) रेत पर चमर तथा कस्तूरी मृगों के पञ्जों की पंक्तियों की छापें पड़ी हुई थीं, काटकर गिरायी हुई रकु तथा रल्लक नाम के हरिणों की ऊन

१. उलप. लता ।

निचितेन, विषमशिलाच्छेदोपविष्टजीवंजीवकयुगलेन, वनमानुषमिथुनाध्यासिततट-गुहामुखेन गन्धपाषाणपरिमलामोदिना, वेत्रलताप्रतानप्ररूढवेणुना कैलासतलेन कचिदध्वानं गत्वा तस्यैव कैलासशिखरिणः पूर्वोत्तरे दिग्भागे जलभारालस जलधर-व्यूहमिव बहुलक्षपान्धकारमिव पुञ्जीकृतमत्यायत तरुखण्डं ददर्श। तच्च समुखा-गतेन कुसुमरजःकषायामोदिना जलसंसर्गशिशिरेण शीकरिणा चन्दनरससमस्पर्शे-नालिङ्ग्यमान इव जलतरङ्गमारुतेन कमलमधुपानमत्ताना च श्रोत्रहारिभिः कलहंसाना कोलाहलैराहूयमान इव विवेश।

रङ्कुर्मृगविशेष, रल्लक उरभ्रः, एतयोर्यो रोमप्रकरस्तनूरुहसमूहस्तेन निचितेन व्याप्तेन। तथा विषमा असमा ये शिलाच्छेदास्तत्रोपविष्टान्यासीनानि जीवंजीवकयुगलानि विषदर्शनमृत्युक युग्मानि यस्मिंस्तक्केन। मयूराकृतय पक्षिविशेषा जीवजीवका। ते च दक्षिणदेश एतन्ना-म्नैव प्रसिद्धा। वनेति। वनमानुषमिथुनैर्मनुष्याकृतिसदृशाकारैर्वनचारिविशेषैरध्यासिता-न्याश्रितानि तटगुहामुखानि यस्मिंस्तत्तेन। गन्धपाषाण सुगन्धद्रव्यविशेषस्तस्य परिमलो विमर्दजनितो गन्धो विद्यते यस्मिंस्तत्तेन। तथा वेत्रलता वेत्रवल्लयस्तासा प्रताने शाखापत्र-प्रचये प्ररूढा उद्गता वेणवो वशा यस्मिंस्तत्तेन। एवविधेन कैलासतलेन रजताद्रयधोभागेन कचित्कियन्मात्रमध्वान पन्थान गत्वा तस्यैव कैलासशिखरिण पूर्वोत्तरे दिग्भाग ईशान्यामत्या-यतमतिविस्तीर्ण तरुखण्ड वृक्षसमूह ददर्शावलोकयामास। जलभारेण पानीयवीवधेनालस मन्थरम्। कृष्णत्वसाम्यादाह—जलेति। जलधरा मेघास्तेषा व्यूहमिव समूहमिव। बहु लेति। बहुल कृष्णपक्षस्तस्य क्षपा रात्रिस्तस्या पुञ्जीकृत राशीकृतमन्धकारमिव ध्वान्तमिव। अत्र जलान्धकारयोर्नीलगुणसबन्धात्साम्य प्रदर्शितम्। तच्चेति। तत्पूर्वोक्ततरुखण्डं विवेश प्रवेश चकारेत्यन्वय। किं क्रियमाण। समुखागतेनाभिमुखायातेन जलतरङ्गमारुतेन पानीयवी-

---

(रोओ) के गुच्छे वहाँ बिखरे हुए थे, वहाँ ऊँची नीची शिलाओं के टुकड़ों पर जीवजीवक (पक्षी) के जोड़े बैठे थे, तटवर्ती गुफाओं के मुखों पर वनमानुष बैठे थे, (कैलास पर्वत का वह अध प्रदेश) गन्धपाषाण (नाम के पत्थर) की गन्ध से सुगन्धित था, और उसमे बेंत की लता की झाड़ियों[1] के बीच बाँस उगे हुए थे। उसी कैलास पर्वत के पूर्वोत्तरीय प्रदेश में उसने जल के भार से मथर हुए घन समूह के सदृश प्रतीत होता मानो कृष्णपक्ष का अन्धकार ही वहाँ एकत्रित हो गया हो—ऐसे एक बहुत बड़े लम्बे चौड़े (विस्तृत) वृक्ष कुञ्ज को देखा। और वह उस (कुज) मे, सामने से आयी, (सामने बहती हुई), कुसुमों के पराग-कणों की मधुगन्ध से युक्त जल के सम्पर्क से शीतल हुई, जलकणों से भरी, चन्दन के उबटन के समान स्पर्श वाली, जल की लहरों से आये वायु से (स्वागत के चिह्नस्वरूप) आलिंगित किया जाता हुआ सा तथा कमल के रस को पीकर मत्त हुए कलहंसों के कर्णों के लिए रुचिकर कोलाहलों से बुलाया जाता हुआ—आमन्त्रित-सा प्रविष्ट हो गया।

---

१. प्रताने शाखापत्रप्रचये।

प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः स्फटिकभूमिगृहमिव वसुंधरादेव्याः, जलनिर्गमनमार्गमिव सागराणाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अशावतारमिव गगनतलस्य, कैलासमिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतम्, त्रिभुवनपुण्यराशिमिव सरोरूपेणावस्थितम्, वैडूर्यगिरिजालमिव सलिलाकारेण परिणतम्, शरदभ्रवृन्दमिव द्रवीभूयैकत्र निस्यन्दितम्, आदर्शमिव

चीसमीरणेनालिङ्ग्यमान इवाश्लिष्यमाण इव। अथ वायु विशिनष्टि—कुसुमेति। कुसुमरजसा पुष्परागाणा कषायस्तुवर आमोदो मुखवासनो विद्यते यस्मिन्स तेन। जलेति। जलस्य पानीयस्य ससर्ग सबन्धस्तेन शिशिर शीतल शीकरो वातास्त वारि विद्यते यस्मिन्स तेन। अत्रास्त्यर्थे इन्। चन्दनेति। चन्दन मलयज तस्य रसो द्रवस्तस्य सम सदृश. स्पर्शो यस्य स तेन। कमलस्य नलिनस्य मधु रसस्तस्य पानमास्वादस्तेन मत्तानामुत्कटानां कलहसाना कादम्बाना श्रोत्रहारिभि कर्णरुचिरै कोलाहलै कलकलैराहूयमान इवाह्वानविषयीक्रियमाण इव। तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागेऽन्तरालप्रदेशे प्रविश्य च प्रवेश कृत्वाच्छोद नाम यस्यैवभूत सर कासार दृष्टवानालोकितवान्। अथ सरो विशेषयन्नाह—मणीति। त्रैलोक्यलक्ष्म्यास्त्रिभुवनश्रियो मणिदर्पणमिव रत्नादर्शमिव। वसुन्धरादेव्या रत्नगर्भादेव्या स्फटिकभूमिगृहमिव स्फटिकहर्म्यमिव। सागराणा समुद्राणा जलनिर्गमनमार्गमिव वारिबहिर्गमनपन्थानमिव। दिशां ककुभा निस्यन्दमिव रसक्षरणमिव। गगनतलस्य व्योमतलस्याशावतारमिव तद्दर्शनावतीर्णमिव। निर्मलश्वेतरूपत्वादाह—कैलासेति। कैलासमिव रजताद्रिमिव। एतस्य पाषाणमयत्वात्सरसश्च द्रवरूपतया साम्यं न सभवतीत्यत आह—द्रवेति। द्रवता रसतामापन्न प्राप्तम्। हिमजलवत्त्वादाह—तुषारेति। तुषारगिरिमिव हिमाचलमिव। तस्य दृढत्वान्नोपमानत्वमित्यत आह—विलीनेति। विलीनम् विद्रुतमित्यर्थ। अमृतमयत्वादाह—चन्द्रेति। चन्द्रस्य शशिन आतपमिव प्रकाशमिव। तस्य तेजोरूपत्वान्न साम्यमित्याह—रसेति। रसता जलतामुपेत प्राप्तम्। विषवरवलाम्यादाह—हरेति। हरस्येश्वरस्य योऽट्टहासो महाहासस्तमिव। तस्य क्रियारूपत्वा-

---

और प्रविष्ट होकर, उसने, उस वृक्षकुज के मध्य भाग में, एक अत्यन्त सुन्दर तथा आँखो को हर्षित करने वाली अच्छोद नाम की झील देखी। वह झील ऐसी प्रतीत हुई कि मानो तीनों लोकों की सुन्दरता की देवी का मणिमय दर्पण हो, अथवा भूमिदेवता का स्फटिक निर्मित भूमिगत कक्ष हो अथवा महासमुद्रों के जल निकलने का मार्ग हो, अथवा (सभी) दिशाओं से रिसता द्रव (निस्यन्द) हो, अथवा आकाश का आंशिक अवतार हो, अथवा द्रव बना हुआ मानो कैलासपर्वत हो, पिघला हुआ हिम पर्वत हो, अथवा तरल बनी हुई चाँदनी हो, अथवा जल बना हुआ शिवजी का (श्वेत) अट्टहास हो, अथवा तीन भुवनों के पुण्य कर्मों का भंडार वह झील के रूप मे टिका हुआ हो, वैडूर्य (मणि) की कई पहाड़ियाँ वहाँ जल में परिणत हो गयी हों, अथवा मानो शीतऋतु के बादलों का समूह जल रूप में एक ही स्थान पर चू पड़ा

प्रचेतसः स्वच्छतया, मुनिमनोभिरिव सज्जनगुणैरिव हरिणलोचनप्रभाभिरिव मुक्ताफलांशुभिरिव निर्मितम्, आपूर्णपर्यन्तमप्यन्तः स्पष्टदृष्टसकलवृत्तान्ततया रिक्तमिवोपलक्ष्यमाणम्, अनिलोद्धूतजलतरङ्गशीकरधूलिजन्मभिः सर्वतः सस्थितैः सरक्ष्यमाणमिवेन्द्रचापसहस्रैः, प्रतिमानिभेनान्तःप्रविष्टसजलचरकाननशैल-नक्षत्रग्रहचक्रवालं त्रिभुवनमुद्भिन्नपङ्कजेनोदरेण नारायणमिव बिभ्राणम्, आसन्नकैला-

स्साम्य न स्यादित्याशयेनाह—जलीति। जलीभूतमिव डलयोरैक्याज्जडीभूतमिव। सुखजनकत्व-साम्यादाह—त्रिभ्विति। त्रिभुवनस्य त्रिविष्टपस्य पुण्यराशिमिव श्रेय समूहमिव। अस्यामूर्त-त्वात्र साम्यमित्याशयेनाह—सर इति। सरोरूपेण कासाररूपेणावस्थितम्। कृतावस्थानमि-त्यर्थः। नीलत्वसाम्यादाह—वैडूर्येति। वैडूर्यं बालवायजं तन्मयं गिरिजालमिव। अतिकठि-नत्वात्तत्तुल्यताऽनुपपत्तेराह—सलिलेति। सलिलाकारेण जलाकारेण परिणत तद्रूपतामापन्नम्। उज्ज्वलत्वसाम्यादाह—शरद इति। शरत्कालीन घनात्ययसमयसंभव यदभ्रवृन्द मेघपटल तदिव। एतस्याकाशस्थत्वात्तत्साम्यानुपपत्तेराह—द्रवीति। द्रवीभूय रसीभूयैकत्र स्थले निस्यन्दितं निर्गलितम्। स्वच्छप्रतिबिम्बसंक्रान्तिसाम्येनाह—आदर्शेति। प्रचेतसो वरुणस्या-दर्शमिव मुकुरमिव स्वच्छतया। उपमानान्तराण्याह—मुनिरित्यादि। मुनीनां वाचंयमानां मनोभिश्चित्तैरिव, सज्जनानामाप्तानां गुणै शौर्यादिभिरिव, हरिणानां मृगाणां लोचनप्रभाभिर्नेत्र-कान्तिभिरिव मुक्ताफलानां रसोद्भवानामंशुभि किरणैरिव निर्मित निष्पादितम्। चतुर्ष्वप्य-तिनिर्मलत्वमेव नियामकमुत्प्रेक्षायाम्। पुन कीदृशमिवोपलक्ष्यमाणमित्याह—रिक्तमिति। रिक्तमिव शून्यमिव। तत्र हेतुमाह—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये स्पष्टं प्रकट यथा स्यात्तथा दृष्टोऽव-लोकित सकलवृत्तान्त समग्रोदन्तो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया। तर्हि रिक्तमेव भविष्यतीत्याश-येनाह—आपूर्णेति। विचित्रत्वम्। एतद्द्वयमादायैवोत्प्रेक्षते—इन्द्रेति। इन्द्रचापसहस्रैरा-खण्डलधनु.सहस्रै संरक्ष्यमाणमिव त्रायमाणमिव। एतदेव विशेषयन्नाह—अनिलेति। अनि-

हो। वह मानो (जल के स्वामी) वरुण का दर्पण था। अपनी विमलता के कारण वह मानो मुनियों के मनों से अथवा भले आदमियों के गुणों से अथवा हरिणों की आँखों की काति से अथवा मोतियों की उज्ज्वल किरणों से गढ़कर बनाया गया प्रतीत होता था। किनारों तक पूरा-पूरा भरा हुआ होने पर भी, भीतर से स्पष्ट ही सारा वृत्तान्त दिखायी देने के कारण खाली सा दिखायी दे रहा था, वायु से उछाली हुई जल की लहरों की सूक्ष्म (धूलि रूप) फुहारों से उत्पन्न हुए सब स्थानों पर उपस्थित सहस्रों इन्द्रधनुषों द्वारा मानो सरक्षित[1] प्राणियों को अपने में धारण किया हुआ वह सरोवर तीनों भुवनों को धारण किया हुआ प्रतीत होता था, खिले हुए कमल—नाभि कमल—से युक्त उदर द्वारा तीनों भुवनों को धारण किये हुए विष्णु की भाति उस झील ने अपने खिले कमलों वाले मध्य भाग में प्रतिबिम्बों के बहाने अपने भीतर प्रविष्ट जलचरों, वनों, पर्वतों, ताराओं तथा ग्रहमण्डलों को धारण किया हुआ था।

1 लोग भी अपने आप को इन्द्रधनुषों द्वारा सरक्षित समझते हैं।

सावतीर्णस्य च शतशो भगवतः खण्डपरशोर्मज्जनोन्मज्जनक्षोभचलितचूडामणिचन्द्रखण्डच्युतेनामृतरसेन जलक्षालितवामार्धकपोलगलितलावण्यप्रवाहानुकारिणा मिश्रितजलम्, उपकूलतमालवनप्रतिबिम्बान्धकारिताभ्यन्तरैर्दृश्यमानरसातलद्वारैरिव सलिलप्रदेशैर्गभीरतरम्, दिवाऽप्युपजातनिशाशङ्कैश्चक्रवाकमिथुनैः परिह्रियमाणनीलोत्पलवनगहनम्, असकृत्पितामहपरिपूरितकमण्डलुपरिपूतजलम्, अनेकशो बालखिल्यकदम्ब-

---

लेन वायुनोद्धता उत्क्षिप्ता ये जलतरङ्गा पानीयकल्लोलास्तेषा सीकरधूलयस्ताभ्या जन्मोत्पत्तिर्येषा तैः। कीदृशैः। सर्वत समन्तात्संस्थितैः कृतावस्थानैः। अत्र कल्लोलाना वक्रत्वात्सीकरवृलीनामपि तदवस्थत्वाच्च शक्रचापोपमानम्। पुन सरो विशेषयन्नाह—उद्भिन्नेति। उद्भिन्नानि विकसितानि पङ्कजानि कमलानि यस्मिन्नेवंविधेनोदरेण मध्येन। द्वितीयपक्ष उद्भिन्न पङ्कज नाभिकमल यस्मिन्नेवभूतेनोदरेण जठरेण नारायणमिव कृष्णमिव त्रिभुवन त्रिविष्टपं बिभ्राण दधानम्। अथ त्रिभुवन विशेषयन्नाह—प्रतिमेति। प्रतिमा प्रतिबिम्बं तस्य निभेन व्याजेनान्तःप्रविष्ट मध्यप्रविष्ट सह जलचरेण नक्रचक्रादिना वर्तमान यत्कानन वनम्, शैलोऽद्रि, नक्षत्राणि ऋक्षाणि, ग्रहा मङ्गलादय, तेषा चक्रवाल समूहो यस्मिंस्तत्तथा। पुनस्तदेव विशेषयन्नाह—आसन्नेति। आसन्न समीपवर्ती य कैलासो रजताद्रिस्तस्मादवतीर्णस्योत्तरितस्य शतश' शतवार भगवतो माहात्म्यवत खण्डपरशोरीश्वरस्य मज्जनोन्मज्जनाभ्या प्रतीताभ्या य क्षोभश्चित्तचाञ्चल्य तेन चलित कम्पितो यश्चूडामणिभूतश्चन्द्रखण्डस्तस्माच्च्युतेन स्रस्तेनामृतरसेन पीयूषद्रवेण मिश्रितमेकीभूत जल पानीय यस्य तत्तथा। अथ पीयूषरस विशेषयन्नाह—जलेति। जलेन क्षालितौ धौतौ यौ वामार्धकपोलौ पार्वतीगल्लात्परप्रदेशौ ताभ्या गलित च्युत यल्लावण्य सौन्दर्यं तस्य य प्रवाहो रयस्तस्यानुकारिणा। तत्सदृशेनेत्यर्थः। उपेति। उपकूल उपकण्ठे यत्तमालवन तापिच्छवन तस्य प्रतिबिम्ब प्रतिच्छायस्तेनान्धकारवदाचरितान्यभ्यन्तराणि मध्यप्रदेशा येषा तैः। अत्रान्धकारिताभ्यन्तरत्वसाम्येनोत्प्रेक्षते—दृश्यमानेति। दृश्यमानरसातलद्वारै-

---

और समीपस्थ कैलाशपर्वत से उतरे हुए भगवान शिव के सैकड़ों बार इसमे कूदने तथा निकलने से उत्पन्न हल्चल द्वारा जोर से हिले (शिवजी के) मुकुट मणिभूत चन्द्रखण्ड से ही मानो गिरा हुआ अमृत रस उसके जल में मिला हुआ था—वह अमृत रस जल से धोये गये शिवजी के बाएँ अर्धभाग के (अर्थात् पार्वती के) कपोलों से गिरे हुए सौन्दर्य की धारा के समान प्रतीत होता था। वह झील अपने किनारे के समीपस्थ तमाल वनों के प्रतिबिम्बों द्वारा अन्धकारयुक्त किये हुए भीतरी भागो वाले, इसीलिये पाताललोक के प्रवेशद्वार सरीखे प्रतीत होते (अपने) जलीय प्रदेशों के कारण अधिक आतङ्कमय भीतिप्रद, बनी हुई थी। (उस प्रदेश में) दिन में भी रात्रि का सन्देह (जिनके मन में) उत्पन्न हो गया है ऐसे चकवा-चकवी (चक्रवाकों) के जोड़ों द्वारा छोड़े जाते हुए नील कमलों के पौधे उसमें खूब भरे हुए थे। अनेक बार ब्रह्मा के कमण्डलु को इसमें भरने से इसका जल सर्वथा पवित्र हो गया था। अनेक बार बालखिल्य (मुनियों) के समूह (इसके तट पर) सन्ध्योपासना कर

कृतसंध्योपासनम्, बहुशः सलिलावतीर्णसावित्रीभग्नदेवार्चनकमलसहस्रम्, सहस्रशः सप्तर्षिमण्डलस्नानपवित्रीकृतम्, सर्वदा सिद्धवधूधौतकल्पलतावल्कलपुण्योदकम्, उदकक्रीडादोहदागतानां च गुह्यकेश्वरान्तःपुरकामिनीनां मकरकेतुचापचक्राकृतिभिरतिविकटैरावर्तिभिर्नाभिमण्डलैरापीतसलिलम्, क्वचिद्वरुणहंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्, क्वचिद्दिग्गजमज्जनजर्जरितजरन्मृणालदण्डम्, क्वचित्त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखण्डिततटशिलाखण्डम्, क्वचिद्यममहिषशृङ्गशिखर-

---

रिव वीक्ष्यमाणवडवामुखप्रतीहारैरिव। एवंभूतैः सलिलप्रदेशैः पानीयस्थलैर्गम्भीरतरं गम्भीरतरम्। अतएव पूर्वोक्तसाम्यादेवाह—दिवापीति। दिवापि दिवसेऽप्युपजाता समुत्पन्ना निशायास्त्रियामाया शङ्का रेका येषां तैश्चक्रवाकमिथुनैः कोकद्वन्द्वैः परि सामस्त्येन ह्रियमाणं त्यज्यमानं यन्नीलोत्पलवनमिन्दीवरखण्डं तेन गहनं निबिडम्। असकृदिति। असकृन्निरन्तरं पितामहेन ब्रह्मणा परिपूरितो भृतो यः कमण्डलुः कुण्डिका तेन परि सामस्त्येन पूतं पावनं जलं यस्य तत्तथा। अनेकश इति। अनेकशो वारंवारं वालखिल्याः सूर्यपुरःसरा मुनयस्तेषां कदम्बकं समूहस्तेन कृतं विहितं सन्ध्यावन्दनं यस्मिंस्तत्तथा। बहुश इति। अनेकशः सलिले जलेऽवतीर्णोत्तीर्णा या सावित्री हुताशनपत्नी तया भग्नमुन्मूलितं देवार्चनार्थं कमलानां नलिनानां सहस्रं यस्मिंस्तत्। सहस्रश इति। सहस्रवारं सप्तर्षीणां मरीचिप्रभृतीनां मण्डलं समूहस्तस्य स्नानमाप्लवस्तेन पवित्रीकृतम्। सर्वदेति। सर्वदा सर्वकालं सिद्धवधूभिः सिद्धाङ्गनाभिर्धौतानि क्षालितानि यानि कल्पलतायाः मन्दारव्रतत्या वल्कलानि चोचानि तैः पुण्यानि पवित्राण्युदकानि जलानि यस्मिंस्तत्तथा। उदकेति। उदकस्य जलस्य या क्रीडा केलिस्तस्या दोहदोऽभिलाषस्तेनागतानां प्राप्तानां गुह्यकेश्वरस्य कुबेरस्यान्तःपुरकामिनीनामवरोधस्त्रीणां मकरकेतुः कन्दर्पस्तस्य चापचक्रमारोपितं धनुस्तद्वदाकृतिराकारो येषां तैरतिनिकटैरतिविपुलैरावर्ता विद्यन्ते येषु तैरावर्तिभिः। एवंभूतैर्नाभिमण्डलैस्तुन्दकूपिकासमूहैरापीतं ग्रस्तं सलिलं जलं यस्य तत्तथा। इदं च नाभिपर्यन्तजलक्रीडावर्णनम्। क्वचिदिति। कस्मिंश्चित्प्रदेशे वरुणस्य प्रचेतसो हंसेन मरालेनोपात्तो गृहीतः कमलवनस्य नलिनखण्डस्य मकरन्दो मरन्दो यस्मिंस्तत्तथा। क्वचिदिति। दिग्गजानां दिग्दन्तिनां

चुके थे। बहुत बार इसके जलमें प्रविष्ट देवी सावित्री ने देवताओं की पूजा के लिये (इसमें से) हजारों कमल चुने थे। सहस्रों बार सप्तर्षि समूह ने (इसमे) स्नान करके इसको (पवित्र) किया था। सदा ही सिद्ध महिलाओं ने (इसमे) कल्पवृक्ष की छाल के अपने वस्त्र धोकर इसके जल को पवित्र किया था और जल में क्रीड़ाएँ करने की इच्छा से आयी हुई, गुह्यकों के स्वामी कुबेर के अन्तःपुर की स्त्रियों की, मकरकेतु–मदन–के धनुष की आकृति के समान आकृतिवाली, अत्यन्त विशाल, गोल तथा भँवर के समान दिखायी देती नाभियों ने इसके जल को पी लिया था। कुछ स्थानों पर स्वयं वरुण के हंस ने इसके कमलों का मधु पिया था, कहीं दिग्गजों ने स्नान करते हुए (इसके कमलों के) पूर्ण परिपक्व मृणालों तन्तुओं तथा डण्डियों को तोड़ा हुआ था, कहीं शिवजी के वृषभ ने (अपने) सींगों की नोकों से इसकी तटवर्ती शिलाओं को तोड़ा था, कहीं यम देवता के भैंसे ने (अपने) सींगों की नोकों से (इसके जल

विक्षिप्तफेनपिण्डम्, क्वचिदैरावतदशनमुसलखण्डितकुमुदषण्डम्, यौवनमिवोत्कलिकाबहुलम्, उत्कण्ठितमिव मृणालवलयालङ्कृतम्, महापुरुषमिव मीनमकरकूर्मचक्रप्रकटलक्षणम्, षण्मुखचरितमिव श्रूयमाणक्रौञ्चवनिताप्रलापम्, भारतमिव पाण्डुधार्तराष्ट्रकुलपक्षकृतक्षोभम्, अमृतमथनसमयमिव तीरकासारावस्थितशितिकण्ठपीय-

---

मज्जनेनान्तर्विगाहनेन जर्जरिता' शिथिलीभूता जरन्मृणालदण्डा बहुकालीनबिसदण्डा यस्मिंस्तत्तथा। क्वचिदिति। त्र्यम्बकस्येश्वरस्य यो वृषभो बलीवर्दस्तस्य विषाणकोटि शृङ्गाग्रभागस्तया खण्डिता भेदितास्तटस्य तीरस्य शिलाखण्डा यस्य तत्। क्वचिदिति। यमस्य कृतान्तस्य यो महिष कासरस्तस्य शृङ्गं विषाण तस्य शिखरमग्रभागस्तेन विक्षिप्त इतस्तत पर्यस्त फेनपिण्डो डिण्डीरपुञ्जो यस्मिन्। क्वचिदिति। ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य दशना दन्तास्त एव स्थूलत्वखरत्वसाम्यान्मुसलान्ययोग्राणि तै खण्डित पाटित कुमुदखण्डं कैरववन यस्मिन्। अथ प्रकारान्तरेण तदेव विशेषयन्नाह—यौवेति। यौवन तारुण्य तद्वदिव। उभयसाम्य प्रदर्शयन्नाह–उदिति। उत्कलिका तुरङ्गसंततिस्तया बहुल इदम्। 'तुरङ्गे भङ्गवीच्यूर्म्युत्कलिका' इति कोश। पक्ष उत्कलिका हृल्लेख। 'हृल्लेखोत्कलिका च' इति कोश। विविधकामाभिलाषस्तया बहुलम्। व्याप्तमित्यर्थ.। उदिति। उत्कण्ठितमुन्मनसम्। अर्थाद्विरहिजनम्। तदिव। तत्सदृशमित्यर्थं। उभयो साम्यमाह—मृणालेति। मृणालानां तन्तुलाना वलयै समूहैरलंकृतम्। उन्मना अपि दाहज्वरोपशमनार्थं मृणालवलयालंकृत स्यादित्यभङ्गश्लेष। महेति। महाश्चासौ पुरुषश्चेति कर्मधारय। तद्वदिव। उभयोर्विशेषणमाह—मीनेति। मीना मत्स्या, मकरा जलचरविशेषा., कूर्मा कच्छपा'। चक्रा जलचारिविशेषा, प्रकटा बहिर्दृश्य-

---

पर तैरती हुई) फेन राशि को बखेर दिया था, कहीं ऐरावत ने (अपने) मुसल सरीखे दाँतों से कमलवन का उन्मूलन किया था, विविध हृदयाभिलाषाओं[1] से भरी तरुणाई की भाति तरङ्गमालाओं[2] से भरा होने के कारण वह उत्कलिका-बहुल था, (विरह से) उन्मनस्क व्यक्ति जैसे कमल तन्तुओं के ककण से सुशोभित रहता है वैसे ही (अच्छोद सरोवर) कमल तन्तुओं के गुच्छों से अलकृत था, महापुरुष (के शरीर पर) जैसे मत्स्य, नक्र तथा कच्छप के (सामुद्रिक) चिह्न स्पष्ट दिखायी देते हैं, वैसे यह मत्स्य, नक्र तथा कच्छपों के लक्षणो (इसमें इनकी उपस्थिति) से युक्त था, छ मुखों वाले कार्तिकेय के चरित्र मे—उसके कृत्यों मे—जैसे (उस द्वारा खडित) क्रौंच (पर्वताकार दैत्य) की पत्नी का विलाप सुनायी देता है—वैसे यहाँ मादा क्रौञ्च पक्षियों के शब्द सुनायी दे रहे थे; महाभारत (की कथा) में जैसे पाण्डु तथा धृतराष्ट्र के परिवारों के पक्षपातियों द्वारा की गयी गड़बड़ (पढ़ने में) आती है—वैसे इस झील में पाण्डु तथा धृतराष्ट्र जाति के हंसों के समूह के पखो द्वारा की गयी हलचल दिखाई देती थी, (समुद्र से) अमृत का मन्थन करते समय जैसे (समुद्र के) तीर पर स्थित शिवजी (हलाहल)

---

१. उत्कलिका, हृल्लेखा, विविधकामाभिलाष।

२ तरङ्गभङ्गवीच्यूर्म्युत्कलिका'—इतिकोश.

मानविषम्, कृष्णबालचरितमिव तटकदम्बशाखाधिरूढहरिकृतजलप्रपातक्रीडम्, मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, दिव्यमिवानिमिषलोचनरमणीयम्, अरण्यमिव विजृम्भमाणपुण्डरीकम्, उरगकुलमिवानन्तशतपत्रपद्मोद्भासितम्, कसबलमिव मधु-

माना लक्षणाः सारसा सारस्यश्च यस्मिन्। पक्षे मकरादीनि चक्रान्तानि प्रकटानि स्पष्टानि लक्षणानि चिह्नानि यस्मिन्। महापुरुषस्य हस्तपादाद्यवयवेषु मकरादीनि चिह्नानि भवन्तीति सर्वप्रसिद्धम्। ननु 'सारसी लक्ष्मणा सानुसौमित्रौ श्रीमति त्रिषु' इति रुद्रकोषादिदर्शनात्कथमत्र लक्षणाशब्दप्रयोग इति चेन्न। 'लक्षणश्चैव सारस' इत्यमरमालायां निर्मकारस्यापि दर्शनात्। षण्मुखेति। षण्मुख कार्तिकेयस्तस्य चरितमाचरण तद्वदिव। श्रूयेति। श्रूयमाण आकर्ण्य-मानः क्रौञ्च पक्षिविशेषस्तस्य या वनिता स्त्री तस्या प्रलाप प्रकर्षेण शब्दो यस्मिन्। पक्षे कार्तिकेयेन क्रौञ्चदैत्यो हत। अत एव तस्य वनिताया प्रलापो रुदन यस्मिन्। तथा भारत व्यासप्रणीत शास्त्र तद्वदिव। पाण्डुविति। पाण्डव श्वेतवर्णा ये धार्तराष्ट्रा हसविशेषास्तेषां कुल समूहस्तस्य पक्षा वाजास्तै कृतो विहित क्षोभो विग्रहो यस्मिन्। पक्षे पाण्डुरम्बात्मज, धार्तराष्ट्रो दुर्योधन तयो कुले अन्वयौ तयो पक्षौ स्वजनौ ताभ्यां कृत क्षोभश्चित्तवैक्लव्य यस्मिन्। अमृतेति। अमृतार्थं पीयूषार्थं यन्मथनम्। समुद्रस्येति शेष। तस्य य समय. कालस्तमिव। तीरेति। तीर तटम्, कासार प्रान्तदेश तत्रावस्थिता ये शितिकण्ठा बर्हिणस्तै पीयमानमास्वाद्यमान विष जल यस्मिन्। पक्षे तीरे क्षीरोदस्येति शेष। तस्मिन्नवस्थितो य शितिकण्ठो महेश्वरस्तेन पीयमानं भक्ष्यमाण विषं कालकूट यस्मिन्। 'कालकूटाम्भसोर्विषम्' इत्यनेकार्थः। तथा कृष्णेति। कृष्णस्य जनार्दनस्य यद्बालचरित बाल्यावस्थायां क्रीडित तद्वदिव। उभयो. साम्यमाविष्कुर्वन्नाह—तटेति। 'तट तस्यैव सरसः' इति कोष। तस्मिन्ये कदम्बा नीपास्तेषां शाखा शाखास्तामधिरूढो यो हरिर्गोलाङ्गूलस्तेन कृता विहिता जल-प्रपातलक्षणा क्रीडा यस्मिन्। पक्षे तट यमुनाया.। हरि. कृष्ण। शेषं पूर्ववत्। मदेति।

विष पीते रहे थे—वैसे इसके तीर पर बैठे मयूर विष—अर्थात् जल-को पी रहे थे, कृष्ण की बाल्य क्रीडाओं में जैसे (कालिय-मर्दन के समय) तटवर्ती कदम्ब की शाखाओं पर चढ़े कृष्ण द्वारा की गयी जल में कूदने की क्रीडाओं का वर्णन है—वैसे यहाँ इसके तटवर्ती कदम्ब वृक्षों की शाखाओं पर चढ़े हुए बन्दर इसके जलमें कूदने के खेल करते थे, कामदेव की पताका जैसे मकर (की आकृति के चिह्नों) से युक्त है—वैसे मकरों के रहने के कारण वह मकराधिष्ठित था, दिव्य अर्थात् स्वर्गीय व्यक्ति जैसे अपनी न झपकनेवाली आँखों के कारण शोभनीय प्रतीत होता है—वैसे ही यह सरोवर, इसमें स्थित अनिमिष लोचनों अर्थात् मत्स्यों से शोभनीय बना हुआ था, वन में जैसे पुण्डरीक—(व्याघ्र[1]) जम्भाइयाँ ले रहे होते हैं, वैसे इसमें श्वेत कमल खिल रहे थे, (पाताल लोक स्थित) सर्प कुल तो अनन्त, शतपत्र तथा पद्म नाम के सर्पों के कारण प्रसिद्ध है—वैसे यह सरोवर इसमें खिले असख्य, सौ पत्तोंवाले कमलों से सुशोभित था,

1 व्याघ्रोपि पुण्डरीक स्यादित्यमर।

करकुलोपगीयमानकुवलयापीडम्, कद्रूस्तनयुगलमिव नागसहस्रपीतपयोगण्डूषम्, मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, असत्साधनमिवादृष्टान्तम्, अतिमनोहरमाह्लादन दृष्टेरच्छोद नाम सरो दृष्टवान्। आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो दृष्ट्वा मनस्येवमकरोत्—

मदनस्य कन्दर्पस्य यो ध्वजः केतुस्तद्वदिव। उभयो सादृश्यमाह—मकर इति। मकरो जलजन्तुस्तेनाधिष्ठितमाश्रितम्। पक्षे मकराकृतिरूप चिह्नम्। दिव्येति। दिवि भव दिव्य तद्वदिव। उभयो साम्यार्थमाह—अनिमिषेति। अनिमिषास्तिमयस्तेषा लोचनानि नेत्राणि तै रमणीय मनोहरम्। पक्षेऽनिमिषलोचना देवा। शेष पूर्ववत्। अरण्येति। अरण्य कानन तद्वदिव। उभयो. साधर्म्यमाह—विजृम्भेति। विजृम्भमाणानि विनिद्राणि पुण्डरीकानि सिताम्भोजानि यस्मिंस्तत्तथा। पक्षे विजृम्भमाणा सन्त उज्झितनिद्रा पुण्डरीकाश्चित्रकाया। 'चित्रकाय पुण्डरीक' इति कोश। शेष पूर्ववत्। उरगेति। उरगा सर्पास्तेषा कुलमन्वयस्तद्वदिव। उभयो सादृश्यमावि कुर्वन्नाह—अनन्तेति। असख्यानि यानि शतपत्राणि पुष्पविशेषाणि, पद्मानि कमलानि, तैरुद्भासित शोभितम्। पक्षेऽनन्तो नागाधिप, शतपत्रो नाग विशेष, पद्मश्च। शेष पूर्ववत्। कस इति। कसो दैत्यस्तस्य बल सैन्य तद्वदिव। उभय साम्यार्थमाह—मधुविति। मधुकराणा भ्रमराणा कुलानि समूहा तैरुपगीयमानानि गानविषयीक्रियमाणानि कुवलयान्युत्पलानि तान्येवापीड शेखरो यस्मिंस्तत्तथा। पक्षे कुवलयापीडो गज.। शेष पूर्ववत्। कद्रू इति। कद्रुर्नागमाता तस्या स्तनयुगल कुचयुग्म तद्वदिव। उभयो साम्यं प्रदर्शयन्नाह—नागेति। नागसहस्रैर्हस्तिसहस्रै पीता आस्वादिता पयसो गण्डूषाश्चुलुका यस्मिंस्तत्। पक्षे नागा सर्पा, पयो दुग्धम्। शेष पूर्ववत्। मलयेति। मलयो मलयाचलस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—चन्दनेति। चन्दन मलयज तद्वच्छिशिर शीतल वन जल यस्मिन्। 'कीलाल भुवन वन वनरस' इत्यभिधानचिन्तामणि। पक्षे चन्दनानां शिशिराणि वनानि काननानि यस्मिन्। असदिति। असत्साधनमसद्धेतुस्तद्वदिव। शब्दापेक्षया तयो साधर्म्यमाह—नेति। न दृष्टो न वीक्षितोऽन्तोऽवसान यस्य तत्। पक्षे न विद्यते दृष्टान्तो निश्चितसाध्यवान्यस्मिन्। तदभावादसद्धेतुत्वमिति भाव। अतिमनोहरम्। अतिसुन्दरमित्यर्थ। दृष्टेर्नेत्रस्याह्लादनम्। प्रमोदजनकमित्यर्थः। आलोकेति। आलोकमात्रेणैव निरीक्षणमात्रेणैवा

कसकी सेना मे भौंरे कुवलयापीड (कस का हस्ती) के चारों ओर गाते मडराते है यहा गाते हुए भौरे कुवलय अर्थात् नीले कमल के गुच्छों पर मँडरा रहे थे, (नागमाता) कद्रू के स्तनों से सहस्रों सर्प दूध के घूँट पीते हैं—यहाँ से सहस्रों हस्ती जलों के घूँट पीते थे, मलय पर्वत पर उसके वन (वहाँ उगे हुए) चन्दन वृक्षों के कारण ठढे रहते हैं—इस सरोवर का जल चन्दन लेप-सा ठढा था, और जैसे असत् साधन अर्थात् दोषपूर्ण तर्क के लिये कोई दृष्टान्त नहीं दिया जा सकता है इस कारण दोष पूर्ण तर्क अदृष्टात होता है—इस सरोवर की सीमाएँ कहीं नहीं दिखायी देती थीं—इस कारण वह 'अदृष्ट अन्त' था। (उस सरोवर के) देखने मात्र से उसकी थकावट जाती रही तथा देखकर उसने मन मे सोचा—

'अहो निष्फलमपि मे तुरङ्गमुखमिथुनानुसरणमेतदालोकयतः सरः सफलतामुपगतम् । अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः, दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणा सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननाना परिसमाप्तिः, विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः । इदमुत्पाद्य सरःसलिलममृतरसमुत्पादयता वेधसा पुनरुक्ततामिव नीता स्वसृष्टिः । इदमपि खल्वमृतमिव

पगतो दूरीभूत श्रम क्लान्तिर्यस्यैवविधश्चन्द्रापीडस्तद्दृष्ट्वा विलोक्य मनसि चित्त एवमकरोदेवमघटयत् । अहो इति । अहो इत्याश्चर्ये । निष्फलमपि निरर्थकमपि मे मम तुरङ्गमुखमिथुनस्य किनरमिथुनस्यानुसरणमनुगमन सफलता कृतार्थतामुपगतम् । प्राप्तमित्यर्थ । किं कुर्वतो मम । एतत्सर कासारमालोकयतो दृग्विषयीकुर्वत । अद्येति । अद्यास्मिन्दिने परिसमाप्त परिपूर्णम् । सपूर्णं जातमित्यर्थ । कि तदित्याकाङ्क्षायामाह—ईक्षणेति । ईक्षणयुगलस्य द्रष्टव्य दर्शनीय यद्वस्तु तस्य दर्शनमवलोकन तस्य फल व्युष्टि । खल्विति । खलु निश्चितम् । रमणीयाना मनोहराणामन्त प्रान्त आलोकितो वीक्षित । एतदपर रमणीय नास्तीत्यर्थ । दृष्ट इति । आह्लादनीयाना प्रमोदकारिणामवधिर्मर्यादा दृष्टोऽवलोकित । प्रमोदजनकमेतदन्यत्किमपि नास्तीति भाव । वीक्षितेति । मनोहराणा चित्तहारिणां सीमाया अन्तलेखा प्रान्तलेखा वीक्षिता नयनविषयीकृता । अत पर चित्तहृत्किमपि नास्तीति भाव । प्रत्यक्षेति । प्रीतिजननाना प्रीत्युत्पादकाना परि सामस्त्येनाप्ति प्राप्ति परिसमाप्ति प्रत्यक्षीकृतेन्द्रियगोचरीकृता । विलोकितेति । दर्शनीयाना द्रष्टु योग्यानामवसानभूमि प्रान्त भूमिश्चरमकथा वा विलोकिता वीक्षिता । इत पर दर्शनीय नास्तीति भाव । इदमिति । इदम मृत पीयूष तद्वद्रसो यस्यैवविध सरमस्तटाकस्य सलिल पानीयमुत्पाद्य निर्माय वेधसा ब्रह्मणोत्पादयता जगत्सृजता स्वसृष्टि स्वकीयनिर्मिति पुनरुक्ततामिव नीता प्रापिता । एकमेव वस्तु नामान्तरेण विहितमिति भाव । अमृतगुणोपपादनेन पुनरुक्ततां स्पष्टयन्नाह—इदमिति । इदमपि । खलु

"अहा ! यह निष्फल भी मेरा किन्नर जोड़े का पीछा करना इस सरोवर को देखते हुए सफल हो गया । आज मेरी आँखों का फल अर्थात् (अत्यन्त मुख्य) द्रष्टव्य का दर्शन पूरा (प्राप्त) हो गया', सुन्दर वस्तुओं का अन्त, निश्चय ही, देख लिया, (इससे भिन्न दूसरी रमणीय वस्तु कोई नहीं है), चित्त को प्रसन्नता देने वाली सभी वस्तुओं की अधिक से अधिक दूरस्थ सीमा देखली, चित्ताकर्षक वस्तुओं की अन्तिम सीमा देखली हर्षोत्पादक पदार्थों का समाप्ति विन्दु प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया, सभी दर्शन करने योग्य पदार्थों के समाप्त होने के स्थल के दर्शन कर लिये । (मैं समझता हूँ कि) (पहले) इस सरोवरजल को उत्पन्न करके (फिर) अमृतरूपी रस को उत्पन्न करके ब्रह्मा ने मानो अपनी (द्वितीय) रचना को पुनरुक्त ही कर दिया है—एक ही वस्तु को दूसरे नाम से रच दिया है (कारण कि) यह जल भी, अमृत की

---

१ परिसमाप्तम् = सम्पन्नम् ।

सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थमतिविमलतया चक्षुषः प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्याययति, हंसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाह्लादयति। नियतं चास्यैव दर्शनतृष्णया न परित्यजति भगवान्कैलासनिवासव्यसनमुमापतिः। न खलु साम्प्रतमाचरति जलशयनदोहदं देवो रथाङ्गपाणिर्यदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपरुषपयस्युदन्वति स्वपिति। नूनं चेदं न प्रथममासीत्सरो येन प्रलयवराहघोणाभिघातभीता भूतधात्री कलशयोनिपानपरिकलित-

निश्चितम्। इदं प्रत्यक्षोपलभ्यमानमप्यमृतमिव पीयूषमिव सर्वेषामिन्द्रियाणामाह्लादनं प्रीणनं तत्र समर्थं बलिष्ठमतिविमलतयातिस्वच्छतया चक्षुषो नेत्रस्य प्रीतिं स्नेहमुपजनयत्युत्पादयति। तथा शिशिरं शीतलस्तस्य भावस्तत्ता तया करणभूतया स्पर्शसुखमुपहरति करोति। तथा कमलस्य नलिनस्य सुगन्धो यस्मिंस्तस्य भावस्तत्ता तया घ्राणं नासिकामाप्याययति प्रीणयति। तथा हंसैर्मरालैर्मुखरो वाचालस्तस्य भावस्तत्ता तया श्रुतिं श्रोत्रमानन्दयति प्रीणयति। तथा स्वादुतया मिष्टतया रसनां रसज्ञामाह्लादयति प्रीणयति। नियतमिति। नियतं निश्चितम्। अस्यैव सरस एव दर्शनतृष्णयावलोकनलोभेनोमापतिर्भगवानीश्वरः। कैलासेति। कैलासो रजताद्रिस्तत्र यो निवासोऽवस्थानं स एव व्यसनमासक्तिस्तत्र परित्यजति न जहाति। न खल्विति। खलु निश्चितम्। रथाङ्गपाणिश्चक्रपाणिर्देवः कृष्णः सांप्रतमिदानीं जले पानीये शयनं स्वापस्तस्य दोहदमभिलाषं नाचरति न करोति। पूर्वं जलशयनापेक्षाकारणमाह—यदिति। यदिति हेत्वर्थे। इदममृतवत्पीयूषवद्रसो यस्मिन्नेवंविधं यत्सुरभिसलिलं सुगन्धिपानीयं तदपहाय त्यक्त्वा लवणो यो रसस्तेन परुषं रूक्षं पयो यस्मिन्नेवंभूते उदन्वति समुद्रे स्वपिति शयनं करोति। अतो नूनं निश्चितम्। इदं प्रथममादौ नासीन्नाभूत्। एतदभावादेव कृष्णः समुद्रे शयनं करोतीति भावः। कारणान्तरमाह—येनेति। येन कारणेनेदं प्रथमतो नासीदतएव

भाति, सभी (पाचों) इन्द्रियों को प्रसन्न करने की शक्ति रखता है। (इस प्रकार) अत्यन्त स्वच्छता के कारण आँख को हर्ष प्रदान करता है, शीतलता के कारण छूने पर सुख देता है, कमलों से सुगन्धित होने के कारण नासिका को तृप्त करता है, हंसों द्वारा किये गये कोलाहल से मुक्त होने के कारण कान को आनन्द देता है और मधुर होने के कारण जिह्वा को प्रसन्न करता है। और निश्चय ही, इसको (निरन्तर) देखते रहने की लालसा से ही भगवान् पार्वतीपति, शिवजी, कैलास (पर्वत) पर निवास करने में अपनी आसक्ति (रुचि) को नहीं छोड़ते हैं। निश्चय ही, चक्रपाणि भगवान् विष्णु क्योंकि इस अमृत रस के समान सुगन्धित (तथा मधुर) जल वाले सरोवर को छोड़कर—इसकी उपेक्षा करके—नमकीन स्वाद के कारण अप्रिय जलवाले समुद्र पर रहते हैं—इसलिए जल में सोने की अपनी अभिलाषा को उचित रूप में[1] सन्तुष्ट नहीं कर पाते होंगे। और निश्चय ही यह सरोवर पहले विद्यमान नहीं था, क्योंकि, सब प्राणियों का पालन-पोषण करने वाली धाय रूपा (पृथ्वी), प्रलय (के समय) वराह (देवता) की थूथनी की चोटों से डरी हुई, घटजन्मा (अगस्त्यमुनि) के पीने से मपे हुए

१. साम्प्रतं=युक्तम्।

सकलसलिलं सागरमवतीर्णा, अन्यथा यद्यत्रागाधानेकपातालगम्भीराम्भसि निमग्ना भवेन्महासरसि किमेकेन महावराहसहस्रैरपि नासादिता भवेत्। नूनं चास्मादेव सलिललेशमादायादाय महाप्रलयेषु प्रलयपयोदाः प्रलयदुर्दिनान्धकारितदशदिशः प्लावयन्ति भुवनान्तराणि। मन्ये च यत्सृष्टेरर्वाक्सलिलमयं ब्रह्माण्डरूपमादौ भुवनमभूत्तदिदं पिण्डीभूय सरोऽव्यपदेशेनावस्थितम्' इति विचारयन्नेव तस्य शिलाशकल-

---

भूतधात्री भूतानां प्राणिनां धात्री धारणक्षमा। एतदपेक्षया नूनं सागरं समुद्रमवतीर्णा मध्यप्रविष्टा। अथ तां विशेषयन्नाह—प्रलयेति। प्रलये कल्पान्ते योऽवताररूपो वाराहस्तस्य या घोणा नासा। उपलक्षणं चैतत्। तेन दंष्ट्राया ग्रहणम्। तयाभिघातः प्रहारस्तस्माद्भीता त्रस्ता सती। उपर्यागतेति शेषः। सागरं विशेषयन्नाह—कलश इति। कलशयोनिरगस्तिस्तेन पानार्थं परिकलितं चिन्ताविषयीकृतं सकलं समग्रं सलिलं यस्य स तम्। अनेनातिन्यूनत्वमेतस्य ध्वनितम्। यदि सरसः समुद्रो महत्तरः स्यात्तदैकवराहघोणाभिघातमात्रेण भीत उपर्यागतो न भवेदेव। अतएवाग्रे व्यतिरेकमुखेन समर्थयन्नाह—अन्यथेति। पूर्वोक्तविपर्यये। यद्यत्र महासरसि निमग्ना ब्रुडिता भवेत्स्यात्। अगाध इति। अगाधमतलस्पृक् एवंविधानि यान्यनेकानि पातालानि। वडवामुखानीति यावत्। गभीरं गम्भीरमम्भो यस्मिन्। किमिति। एकेन वराहेण किम्। न किमपीत्यर्थः। महेति। महावराहसहस्रैरपि नासादिता न प्राप्ता भवेत्। एतेन कल्पान्तेऽप्येतस्यावस्थानं सूचितमिति भावः। नूनमिति। नूनं निश्चितम्। महाप्रलयेषु कल्पान्तेषु प्रलयपयोदाः कल्पान्तमेघा अस्मादेव सरसः सलिललेशं जललेशमादायादाय गृहीत्वा गृहीत्वा भुवनान्तराणि त्रिभुवनविवराणि प्लावयन्ति जलमयीकुर्वन्ति। अथ प्रलयमेघान्विशेषयन्नाह—प्रलयेति। प्रलयकालीनं यद्दुर्दिनं मेघजं तमस्तेनान्धकारिता अन्धकारवदाचरिता दश दिशो यैस्ते तथा। मन्ये चेति। अहमिति मन्ये जानामि यच्चादौ सृष्टेर्विश्वनिर्मितेरर्वाक्सलिलमयं जलमयं ब्रह्माण्डरूपं भुवनं त्रिविष्टपमभूत्तदिदं पिण्डीभूयैकीभूय सरोऽव्यपदेशेन तटाकमिषेणावस्थितमिति विचारयन्नेव चन्द्रापीडः सरसो दक्षिणतीरं दक्षिणदिग्वर्ति प्रतीरमासाद्य प्राप्य तुरगादश्वादवततारावतीर्णवान्। अथ दक्षिणतीरं विशेषयन्नाह—शिलेति।

(अथवा उसकी केवल एक घूंट जितने ही) सारे पानी वाले समुद्र में ही प्रविष्ट हुई (वहीं जाकर छिपी), नहीं तो यदि वह यहां अनेक पाताल लोकों—(को मिलाकर) जितने गहरे जल वाले, महासरोवर में गोता लगायी होती तो—एक से तो क्या, सहस्रों महावराहों से भी न पकड़ी गयी होती। और निश्चय ही इसी महासरोवर से थोड़ा थोड़ा जल ले-ले कर प्रलयकारी मेघ, महाप्रलयों के अवसर पर, प्रलय की वर्षा से दसों दिशाओं में अन्धेरा करते हुए तीनों लोकों के स्थानों को जल से भर देते हैं। और मैं समझता हूँ कि इस संसार की रचना से पूर्व जो संसार, जलमय ब्रह्माण्ड रूप में विद्यमान था, वही एक गोले के रूप में एकत्रित होकर—पिण्ड बन कर—यहां सरोवर के बहाने पड़ा हुआ है।" इस प्रकार ऊहापोह करता हुआ ही वह उस सरोवर के दक्षिणी तट पर पहुँच कर अपने घोड़े से उतर गया। (उसका वह दक्षिणी किनारा

कर्कशवालुकाप्रायम्, विद्याधरोद्धृतसनालकुमुदकलापार्चितानेकचारुसैकतलिङ्गम्, अरुन्धतीदत्तार्घपयःपर्यस्तरक्तकमलशोभितम्, उपकूलशिलातलोपविष्टजलमानुषनिषेव्यमाणातपम्, अभ्यर्णतया च कैलासस्य स्नानागतमातृमण्डलपदपङ्क्तिमुद्राङ्कितम्, अवकीर्णभस्मसूचितमग्नोत्थितगणकदम्बकोद्धूलनम्, अवगाहावतीर्णगणपतिगण्डस्थलगलितमदप्रस्रवणसिक्तम्, अतिप्रमाणपादानुमीयमानतृषितकात्यायनीसिंहा-

शिलाशकलवच्छिलाखण्डवत्कर्कशा कठिना या वालुका सिकतास्ता प्रायो बाहुल्येन यस्मिंस्तत्। विद्येति। विद्याधरैर्व्योमचारिभिरुद्धृतानि गृहीतानि यानि सनालानि कुमुदानि कैरवाणि तेषां कलापः समूहस्तेनार्चितानि पूजितान्यनेकान्यसंख्यानि चारूणि मनोहराणि जलोज्झितं पुलिनं सैकतं तत्र स्थितानि लिङ्गानीश्वरसंबन्धीनि यस्मिंस्तत्। अरुन्धतीति। अरुन्धत्या वसिष्ठपत्न्या दत्तं यदर्घपयः पूजार्थं जलं तस्मात्पर्यस्तानि पतितानि यानि रक्तकमलानि तैः शोभितं विराजितम्। उपेति। उपकूले तटसमीपे यानि शिलातलानि तत्रोपविष्टानि स्थितानि जलमानुषाणि प्रसिद्धानि तैर्निषेव्यमाणः सेव्यमान आतपः सूर्यालोको यस्मिन्। कैलासस्य रजताद्रेरभ्यर्णतया समीपवर्तितया स्नानार्थमागतं यन्मातृमण्डलं ब्राह्मीप्रभृतीनां सप्तदेवीनां समुदायस्तस्य पदपङ्क्तिश्चरणवीथी तस्या मुद्रा भूमौ तत्प्रतिकृतिरूपा तयाङ्कितं चिह्नितम्। अवकीर्णेति। अवकीर्णमितस्ततः पर्यस्तं यद्भस्म भूतिस्तेन सूचितं प्रकाशितं स्नातुं मग्नं पश्चादुत्थितं यद्गणानां प्रमथानां कदम्बकं समुदायस्तस्य त्रिपुण्ड्रसमयं उद्धूलनं भस्मोद्धूलनं यस्मिंस्तथा। अवगाहेति। अवगाहार्थं जलक्रीडार्थमवतीर्ण उत्तरितो यो गणपतिर्गणेशस्तस्य गण्डस्थलात्करटप्रदेशाद्गलितं च्युतं यन्मदप्रस्रवणं दानक्षरणं तेन सिक्तं सिञ्चितम्। अतीति। अतिप्रमाणमतिदीर्घम्। पादेति। पादैश्चरणन्यासैरनुमीयमानोऽनुमानविषयीक्रियमाणस्तृषितः पिपासितो यः कात्यायनीसिंहो भवस्तालाभिधस्तस्यावतरणमार्गं सरसि समागमन-

ऐसा था कि वहां) पत्थरों के टुकड़ो (के मिलने) से कठोर हुई रेत बहुत अधिक थी, (उस सरोवर से) विद्याधरों द्वारा (तोड़कर) निकाले हुए डंडियों समेत श्वेत कमलों के समूह से पूजित, अनेक, रेत की बनी लिङ्गाकृति शिव प्रतिमाएँ वहां पड़ी हुई थीं, अरुन्धती द्वारा सूर्य को प्रदत्त, पूजार्थ जल में से गिरे–(और इधर उधर बिखरे हुए) लाल कमलों से सुशोभित था। (उस किनारे पर) तट के समीप स्थित शिलातलो पर बैठे हुए जल मानुष–जल निवासी प्राणी–धूप सेक रहे थे, और कैलास पर्वत के समीपवर्ती[1] होने के कारण स्नान के लिये आयी हुई (शिव की सेविका) पवित्र माताओं के पाँवों की पंक्तियों की छाप वहां पड़ी हुई थीं, (वहां) बिखरी हुई राख से डुबकी लगाकर ऊपर आये (शिवजी के) गणसमूह द्वारा राख–पोतना (उद्धूलन) सूचित हो रहा था, (वह किनारा) स्नान करने के लिये उसमे–उतरे हुए प्रविष्ट हुए गणेश जी के कपोलस्थल से गिरे हुए मद की धारा[2] से सिंचित था, और बहुत बड़े-बड़े पाँवो–(अर्थात् पदचिन्हों) से प्यासे पार्वती के सिंह के उसमे उतरने

१ अभ्यर्ण —समीप।

२ प्रस्रवणम्।

वतरणमार्गं दक्षिणतीरमासाद्य तुरगादवततार। अवतीर्य च व्यपनीतपर्याणमिन्द्रायुधमकरोत्। क्षितितललुठितोत्थितं च गृहीतकतिपययवसग्रास सरोऽवतार्य पीतसलिलमिच्छया स्नात चोत्थाप्यान्यतमस्य समीपवर्तिनस्तरोर्मूलशाखायामपगतखलीन हस्तपाशशृङ्खलया कनकमय्या चरणौ बद्ध्वा कृपाणिकावलूनान्क्षिप्त्वा चाग्रतः कतिचित्सरस्तीरदूर्वाप्रवालकवलान्पुनरपि सलिलमवततार। ततश्च प्रक्षालितकरयुगलश्चातक इव कृत्वा जलमयमाहारम्, चक्राह्व इवास्वाद्य मृणालशकलानि शिशिरांशुरिव

पन्था यस्मिंस्तत्तथा। अवतीर्येति। अश्वादवतरण कृत्वेन्द्रायुधनामानमश्वरत्न व्यपनीत दूरीकृत पर्याण पल्ययन यस्मादेवभूतमकरोदसृजत्। अथाश्व विशेषयन्नाह—क्षितीति। पूर्व क्षितितले पृथ्वीतले लुठितमपावृत्त पश्चादुत्थित कृतोत्थानम्। गृहीतेति। गृहीता आत्ता कतिपये कियन्तो यवस तृण तस्य ग्रासा गुडेरका येन स त तत पश्चात्तमश्व सरोवतार्य सरोमध्ये नीत्वा पीत सलिलमिच्छया येन न तु बलात्कारेण स्नात कृताप्लव चोत्थाप्योत्थान कारयित्वा पश्चात्तमानीयान्यतमस्य कस्यचित्समीपवर्तिनस्तरोर्वृक्षस्य मूलशाखाया च स्कन्धशाखाया गले निगरणे बद्ध्वा। कीदृशम्। अपगत दूरीभूत खलीन मुखयन्त्रण यस्यैवभूतम्। कनकमय्या सुवर्णनिर्मितया हस्तपाशशृङ्खलया हस्तबन्धनार्थ य पाशो ग्रन्थिस्तदर्थ या शृङ्खला तया चरणौ पादौ बद्ध्वा नियम्य कृपाणिका क्षुरिका तयावलूनान्कर्तितान्कतिचित्कियत सरस्तीरस्य तटाकप्रतीरस्य दूर्वाया शतपर्विकायाः प्रवालकवलान्किसलयगुडेरकानग्रत क्षिप्त्वा पुरो निधाय। अत्र चकार क्रियासमुच्चयार्थ। पुनरपि द्वितीयवारमपि सलिल नीरमवततारोत्तीर्णवान्। स्वयमिति शेष। ततश्च तदनन्तर प्रक्षालित करयुगल हस्तयुग्मं येनैवभूत. सर-सलिलादुद्गादुदतिष्ठदित्यन्वय। चातक इव तोकक इव जलमय पानीयमयमाहार प्रत्यवसान कृत्वा विधाय। चक्राह्व इव रथाङ्गनामेव मृणालशकलानि बिसखण्डान्यास्वाद्यास्वाद कृत्वा।

(प्रविष्ट होने) के मार्ग का अनुमान हो रहा था।

और घोड़े से उतरकर, उसने (इन्द्रायुध के ऊपर से काठी उतार कर) उसको दूरीकृत काठी वाला कर दिया। फिर धरातल पर लोटकर उठे हुए, तथा घास के कई गस्से खा चुके हुए को सरोवर मे उतार कर (वहा) अपनी इच्छा से (मन भरकर) पानी पिये हुए को वहा से निकाल कर, समीपवर्ती वृक्ष की एक प्रमुख शाखा मे, उस लगाम से रहित किये हुए इन्द्रायुध को सोने की बनी हुई हाथ में पकड़ने के लिये (उसकी लगाम से लगी हुई) साकल से दो पाँवों से बान्ध कर (वृक्ष की मोटी टहनी में उसके दोनों पाव सोने की उस साकल से बाधकर जो कि उसकी लगाम मे इस प्रयोजन से बँधी हुई थी कि इन्द्रायुध को हाथ से भी पकड़ा जा सके), फिर (अपनी) छुरी द्वारा काटे गये सरोवर के तट पर की दूब की कोपलों के कुछ गस्से उसके आगे डालकर वह फिर भी पानी में प्रविष्ट हो गया। और उसके पश्चात् धोये हुए दोनों हाथों वाले ने चातक की भाति केवल जल के बने हुए भोजन को करके, चक्रवाक (पक्षी) की भाति बिसखण्डों का स्वाद लेकर, चन्द्रमा जिस प्रकार अपने किरणों के अग्रभागों

कराग्रैः स्पृष्ट्वा कुमुदानि, फणीवाभिनन्द्य जलतरङ्गवातान्, अनङ्गशरप्रहारातुर इवोरसि निधाय नलिनीदलोत्तरीयम्, अरण्यराज इव शीकरार्द्रपुष्करोपशोभितकरः सरःसलिलादुदगात्। प्रत्यग्रभग्नशिरस्कैश्च समृणालकैर्जलकणिकाचितैः कमलिनीपलाशैर्लतामण्डपपरिक्षिप्ते शिलातले स्रस्तरमास्तीर्य निधाय शिरसि पिण्डीकृतमुत्तरीय निषसाद। मुहूर्तं विश्रान्तश्च तस्य सरस उत्तरे तीरप्रदेशे समुच्चरन्तमुन्मुक्तकवलेन निश्चलश्रवणपुटेन तन्मुखीभूतेनोद्ग्रीवेणेन्द्रायुधेन प्रथममाकर्णितं श्रुतिसुभगं वीणातन्त्रीझंकार-

शिशिरांशुरिव हिमांशुरिव कुमुदानि कैरवाणि कराग्रैर्हस्ताग्रै स्पृष्ट्वा स्पर्शं कृत्वा। फणीव भुजग इव जलतरङ्गवातानम्भ कल्लोलसमीरानभिनन्द्य सस्तूय। अनङ्गशरप्रहारातुर इव कामबाणानुविद्ध इव नलिनीदलोत्तरीय कमलिनीपत्रवैकक्ष्यमुरसि वक्षसि निधाय सस्थाप्य। अरण्यराज इव वनकरीव शीकरेणार्द्रमुन्न पुष्कर कमल शुण्डाग्र च तेनोपशोभित करो हस्त शुण्डा च यस्यैवभूतश्चन्द्रापीड। लतेति। लतालक्षणो यो मण्डपो जनाश्रयस्तेन परिक्षिप्ते वलयिते। 'परिक्षिप्त वलयितम्' इति कोश.। एवभूते शिलातले पृथुप्रस्तरोपरि स्रस्तरमास्तीर्यास्तरण कृत्वा तत पिण्डीकृत पिण्डतां प्रापितं यदुत्तरीय निवसन शिरसि मस्तकस्याधोभागे निधाय सस्थाप्य निषसाद शयन चकारेत्यन्वय। कै स्रस्तर कृतवानित्याकाङ्क्षायामाह—कमलिनीति। कमलिनी नलिनी तस्या पलाशै पत्रै। कीदृशै। प्रत्यग्रं तत्काल भग्नानि खण्डितानि शिरासि प्रान्तानि येषां तै समृणालकै मृतन्तुलै। स्वार्थे कप्रत्यय। जलस्य पानीयस्य या कणिका सूक्ष्मविप्रुषस्ताभिराचितैर्व्याप्तै कियन्मात्र सुप्त इत्याकाङ्क्षायामाह—मुहूर्तेति। मुहूर्तं घटिकाद्वयं विश्रान्त कृतविश्रामः। चकार समुच्चयार्थे। अथ च तस्य सरस उत्तर उत्तरदिक्सबन्धिनि तीरप्रदेशे तटप्रदेशे चन्द्रापीड सम्यक्प्रकारेणोत्प्राबल्येन चरन्तं प्रसरन्त गीतशब्द गेयध्वनिमश्रुणोदाकर्णयत्। एतद्विशेषयन्नाह—उन्मुक्तेति। उत्प्राबल्ये मुक्तस्त्यक्त

से कमलों को छूता है उसी प्रकार अपनी अगुलियों से कमलों को छूकर, सर्प की भांति जल की लहरों (पर से होकर आये) वायु (के झोंकों) का आनन्द लेकर[1] कामदेव के बाणों की चोट से दु खी व्यक्ति की भाति कमल पादप के पत्तों रूपी उत्तरीय वस्त्र को अपने वक्षःस्थल पर रख कर, जल कणों से गीले शुण्डाग्र (पुष्कर) से शोभायमान सूड (कर) वाले जगली हाथी की भाति जल कणों से गीले कमल से सुशोभित हाथ (कर) वाला (अर्थात् हाथ में एक कमल को लिये हुआ) सरोवर के जल मे से निकल आया। और फिर एक लताकुंजों से घिरे शिलातल पर तत्काल (प्रत्यग्र) तोड़े हुए (अर्थात् ताजे) और इसी कारण शीतल, बिसतन्तुओं समेत, जलकी बूदों से व्याप्त कमलपादप के पत्तों के द्वारा बिस्तरा बिछाकर, (पत्तों से ही बनाये बिस्तर को बिछाकर), गोल गेंदसी बनाये (लपेटे हुए) उत्तरीय को सिर पर तकिया बनाकर सिर के नीचे रख कर, वह लेट गया। और कुछ समय तक आराम किये हुए ने, उस सरोवर के उत्तरी तट प्रदेश पर उठता हुआ, कौर छोड़े हुए, कानों को स्थिर किये हुए, गर्दन उठाये हुए उसकी ओर मुँह किये हुए इद्रायुध द्वारा पहले सुना गया, कानों के लिये सुखद सुनने मे

१. अथवा प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करके।

मिश्रममानुष गीतशब्दमश्रृणोत्। श्रुत्वा च कुतोऽत्र विगतमर्त्यसंपाते प्रदेशे गीतध्वनेः सभूतिरिति समुपजातकौतुकः कमलिनीदलसस्तरादुत्थाय तामेव गीतसंपातसूचिता दिशं चक्षुः प्राहिणोत्। अतिदवीयस्तया तु तस्य प्रदेशस्य प्रयत्नव्यापृतलोचनोऽपि विलोकयन्न किञ्चिद्ददर्श। तमेव केवलमनवरत शब्द शुश्राव। कुतूहलवशाच्च गीत-ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिर्दत्तपर्याणमिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितै-

कवलो ग्रासो येन स तेन निश्चल स्थिर श्रवणपुट कर्णपुट यस्य स तेन तन्मुखीभूतेन तद् भिमुखीभूतेनोद्ग्रीवेणोर्ध्वकन्धरेणैवविधेनेन्द्रायुधेन प्रथममादावाकर्णित श्रुतम्। कीदृशम्। श्रुतिसुभग कर्णमनोहरं वीणा वल्लकी तस्यास्तन्त्र्य प्रसिद्धास्तासा झकारोऽव्यक्तशब्दस्तेन मिश्रं संपृक्तम्। अमानुषम्। दिव्यमित्यर्थं। श्रुत्वेति। श्रुत्वाकर्ण्य। चकारः पूर्ववत्। इति समुपजात समुत्पन्न कौतुकमाश्चर्यं यस्य स तथा। इतिशब्दद्योत्यमाह—कुत इति। अत्र विगतमर्त्यसपातेऽमानुषे प्रदेशे गीतध्वने सभूति प्रभव. कुत स्यात्। कमलिनीति। कमलिनी नलिनी तस्या दलै पत्रैर्य. सस्तर प्रस्तरस्तस्मादुत्थायोत्थानं कृत्वा गीतसंपातेन गेयोत्पत्त्या सूचितां ज्ञापिता तामेव दिश ककुभ प्रति चक्षुर्नेत्र प्राहिणोत्प्रेरयामास। तस्येति। पूर्वोक्तप्रदेशस्य गीतस्थलस्यातिदवीयस्तयातिदूरतया प्रयत्नेनात्युद्यमेव व्यापृते व्यापारिते लोचने नेत्रे येनैवभूतोऽपि विलोकयन्पश्यन्न किंचिद्ददर्शालोकयामास। केवलमनवरत निरन्तर तमेव शब्द शुश्रावाकर्णयामास। कुतूहलेति। कुतूहलवशात्कौतुकवशाच्च गीतध्वने प्रभव उत्पत्तिस्तस्य जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा तया कृता विहिता गमने बुद्धिर्येनैवभूत। दत्तेति। दत्तमारोपित पर्याण पल्ययन यस्मिन्नेतादृशमिन्द्रायुधमश्वमारुह्यारोहण कृत्वा तया पश्चिमया वनलेखया। तीरस्येति शेष। त पूर्वोक्त गीतध्वनिं निमित्तीकृत्य निदानीकृत्याभिप्रतस्थे समुख जगाम। किंविशिष्ट। उपेति। उपदिश्यमान कथ्यमानो वर्त्मा मार्गो यस्य स। कै। अप्रार्थितैरध्ययाचितैरपि वनहरिणैरारण्यमृगै। अथ तानेव विशिनष्टि—प्रियेति। प्रियं वल्लभ

अच्छा लगता), वीणा की तान्तों (तारों) की झकार (ध्वनि)[१] से मिला (युक्त), अमानुष अर्थात् जो किसी मनुष्य का गाया हुआ नहीं था अर्थात् दिव्य गीत का शब्द सुना। और सुन कर यहाँ 'मरण धर्मा (किसी भी) जीव के पदन्यास से रहित, इस स्थान में गीत का शब्द कहा से सम्भव[२] हो सकता है' यह सोचकर जिसके मन मे उत्सुकता उत्पन्न हो गयी थी उस चन्द्रापीड ने, कमलिनी के पत्तों के बिस्तर पर से उठकर, उसी, सगीत के सचार द्वारा ससूचित दिशा की ओर अपनी दृष्टि को डाला—(अर्थात् उधर की ओर आँखें उठायीं) परन्तु इस प्रदेश की अत्यन्त दूरवर्तिता के कारण, प्रयत्न करके आँखें फाड़ कर देखते हुए ने भी, कुछ नहीं देखा। केवल वही शब्द उसने लगातार सुना। और उत्सुकता के वशवर्ती हुआ वह, सगीत शब्द के स्रोत को जानने की इच्छा से चल पड़ने का निश्चय किये हुआ, काठी रखे हुए इन्द्रायुध पर सवार होकर, सगीतप्रिय, (उससे) पूर्व ही चल पड़े हुए जगली हरिणों द्वारा बिना प्रार्थना

१ वीणा की सुरीली तान से युक्त।

२. 'अथवा गीतध्वनि का जन्म कहां से हो सकता है' यह सोचकर।

रप्रार्थितैरपि वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा बकुलैलालवङ्गलवलीलतालोलकुसुमसुरभिपरिमलयालिकुलविरुतिमुखरितया तमालनीलया दिङ्नागमदवीथ्येव पश्चिमया वनलेखया निमित्तीकृत्य त गीतध्वनिमभिप्रतस्थे। क्रमेण च संमुखागतै अच्छनिर्झरजलकणजालजनितजडिमभिः, जर्जरितभूर्जवल्कलैः, धूर्जटिवृषरोमन्थफेनबिन्दुवाहिभिः षण्मुखशिखण्डिशिखाचुम्बिभिः अम्बिकाकर्णपूरपल्लवोल्लासनदुर्ल-

---

गीत गान येषां तैरत एव प्रथममादौ प्रस्थिते प्रचलिते। अथ वनलेखा विशेषयन्नाह—बकुलेति। बकुल केसर, एला चन्द्रबाला। 'पृथ्वीका चन्द्रबालैला निष्कुटिर्बहुला' इत्यमर। लवङ्गो देवकुसुमवृक्ष, लवलीनाम्नी लता वल्लीविशेष, ताना लोलानि चञ्चलानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषा सुरभिर्घ्राणतर्पण परिमलो गन्धो यस्या सा तया। अलीति। अलिकुलाना भ्रमरसमूहानां या विरुति शब्दविशेषस्तया मुखरितया वाचालितया। तमालेति। तमालास्तापिच्छास्तैर्नीलयाऽसितया। श्यामत्वसाधर्म्यादाह—दिङ्नागेति। दिशा नागा हस्तिनस्तेषा मदवीथ्येव दानश्रेण्येव। क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्या। चकार. पूर्ववत्। अथ चन्द्रापीड विशिनष्टि—पुण्यैरिति। पुण्यै. पवित्रै कैलासमारुतै रजताद्रिवायुभिरभिनन्द्यमान आनन्द्यमान। अथ मारुतानां विशेषणानि। समुखागतैरभिमुखागतै। अच्छेति। अच्छानि निर्मलानि यानि निर्झरजलानि प्रस्रवणपानीयानि तेषा कणा बिन्दवस्तेषा जाल समूहस्तेन जनित उत्पादितो जडिमा जाड्य यैस्तै। जर्जरितेति। जर्जरितानि शिथिलीकृतानि भूर्जाणा मृदुत्वचां वल्कलानि चोचानि यैस्तै.। धूर्जटीति। धूर्जटिरीश्वरस्तस्य यो वृषो बलीवर्दस्तस्य रोमन्थश्चर्वितचर्वण तस्य फेनो डिण्डीरस्तस्य बिन्दून्वहन्तीत्येवशीला वाहिनस्तै। षण्मुखेति। षण्मुखस्य कार्तिकेयस्य य. शिखण्डी मयूरस्तस्य शिखा चूडा तच्चुम्बिभिस्तत्स्पर्शकारिभि। अम्बि-

---

किये ही मार्ग बताया हुआ, सतच्छद, बकुल, एला तथा लवङ्ग की लताओं के काँपते फूलों की सुगन्धित गन्ध से युक्त, भौंरों के समूह की गुनगुनाहट से गूजती, (इसमें उगे हुए) तमाम वृक्षों से अन्धेरी हुई, और मानो दिग्गजों की कनपटियों से (बह कर आये) मदजल की मद रेखा सरीखी पश्चिमी वनरेखा के साथ साथ, उस गीत शब्द को अपना लक्ष्य बनाकर सगीत शब्द की ओर मुह किये हुआ, चल पड़ा।

और क्रमश उस स्थान पर पहुँचकर, उसने, उस सरोवर के पश्चिमी तट पर स्थित तथा अपनी चाद्नी के समान शुभ्र काति से उस सारे प्रदेश को श्वेत करती हुई, चन्द्रप्रभा नाम की कैलाश पर्वत की एक शाखा के अधोभाग पर स्थित, भगवान् शूलपाणि शिवजी-का एक जनशून्य पवित्र मदिर देखा। (मार्ग में) उस चन्द्रापीड का हर्षपूर्वक स्वागत (सामने से आते हुए व्यक्ति की भाति) सामने से आयी हुई, स्वच्छ झरनों के जलों की बून्दों के समूह से उत्पादित, भारीपन से युक्त, भूर्जवृक्षों की छालों को जर्जरित किये हुई, शिवजी के बलीवर्द की जुगाली की झाग के बिन्दुओं को उड़ाकर लिये हुई, (मार्ग में) षडानन—कार्तिकेय—के मोर की शिखा को छूकर आती हुई, कर्णाभूषणों के रूप में कानों पर धारण किये हुए कोमल पत्तों को

लितैः, उत्तरकुरुकामिनीकर्णोत्पलप्रेङ्खोलनदोहदिभिः, आकम्पितकङ्कोलै नमेरुकुसुमपासुपातिभिः पशुपतिजटाबन्धार्तवासुकिपरिपीतशेषैराह्लादिभिः पुण्यैः कैलासमारुतैरभिनन्द्यमानो गत्वा च त प्रदेश सर्वतो मरकतहरितैः, हारिहारीतरुतिरमणीयैः, भ्रमद्भृङ्गराजनखरजर्जरितजरठकुड्मलैः, उन्मदकोकिलकुलकवलीकृतसहकारकोमलाग्रपल्लवैः, उन्मदषट्चरणचक्रवालवाचालितविकचचूतकलिकैः, अचकितचकोरचुम्बितमरिचाङ्कुरैः, चम्पकपरागपुञ्जपिञ्जरकपिञ्जलजग्धपिप्पलीफलैः फलभरनिकरपीडित-

---

केति। अम्बिकाया पार्वत्या कर्णपूरस्य कर्णावतसस्य य पल्लव किसलय तस्योल्लासनमूर्ध्वीकरण तत्र दुर्ललित दुश्चेष्टितं येषां तै । उत्तरेति। उत्तरदिग्वर्तिना कुरूणा क्षेत्रविशेषाणा या कामिन्य स्त्रियस्तासा कर्णोत्पलानां श्रवणकुवलयाना प्रेङ्खोलन आन्दोलने दोहदोऽभिलाषो विद्यते येषा तै । आकम्पीति। आकम्पिता आधूनिता कक्कोला कोशफला यैस्ते तथा तै । नमेर्विति। नमेरवो वृक्षविशेषास्तेषा कुसुमानि पुष्पाणि तेषां पासवो रजासि पातयन्तीत्येवशीलास्तै । पशुपतिरिति। पशुपतेरीश्वरस्य जटा सटा तस्या बन्धो नियन्त्रण तेनार्त पीडितो यो वासुकिर्नागराजस्तेन परिपीता आस्वादितास्तेभ्य शेषा अवशिष्टास्तैराह्लादिभि प्रमोदकारिभि । त प्रदेश स्थान गत्वा स चन्द्रापीड पादपैर्वृक्षै. परिवृत चन्द्रप्रभनाम्नश्चन्द्रप्रभाभिधानस्य कैलासपादस्य रजताद्रिपर्यन्तपर्वतस्य तलभागनिविष्टमधोदेशस्थित भगवत. शूलपाणे शभो शून्य जनवर्जित भूतलभागे सनिविष्ट स्थापित सिद्धायतन चैत्यमपश्यदित्यन्वय । अथ पादपान्विशेषयन्नाह—सर्वत इति। सर्वत समन्तान्मरकतमश्मगर्भं तद्वद्धरितैर्नीलितै । हारीति। हारिणो मनोहरा ये हारीता मृदङ्कुरास्तेषा रुतय शब्दास्तै रमणीयैर्मनोहरै. । भ्रमदिति। भ्रमन्तश्चलन्तो ये भृङ्गराजा धूम्याटा पक्षिणस्तेषां नखरा नखास्तैर्जर्जरितानि श्लथीकृतानि जरठानि कठिनानि कुड्मलानि येषा तै । उन्मदेति। उन्मदान्यत्युत्कृष्टमदयुक्तानि यानि कोकिलकुलानि पिकसमूहानि तै कवलीकृता भक्षिताः सहकारस्याम्रस्य कोमला मृदवोऽ-

---

हिलाने की (उछालने की) धृष्ट इच्छावाली, उत्तर दिशावर्ती कुरुप्रदेश की स्त्रियों के कानों पर पहने हुए कमलों को झुलाना चाहती हुई, कक्कोल वृक्षों को कम्पाती हुई, 'नमेरू' वृक्ष के फूलों के पराग को (भूमि पर) बखेरती हुई, शिवजी द्वारा (अपनी) जटाओं में बान्ध लेने के कारण दु.खी वासुकि द्वारा पी लेने से (शेष) बची रह गयीं, सुखद, वायुओं द्वारा किया गया था। वह मन्दिर, चारों ओर से हरिन्मणियों के सदृश हरे, हारीत (हरियल) पक्षियों के आकर्षक कूजनों से रमणीय, घूमते-फिरते भौरों (भृङ्गराज पक्षियों) के पंजों द्वारा छिन्न भिन्न की हुई परिपक्व कलियों से युक्त, मदमत्त कोकिलों के झुडों द्वारा कुतरी हुई आमों की नई नई पत्तियों से युक्त मदमत्त भौरों के झुण्डों से गूंजते पूर्णतया विकसित आम्रपुष्पों से युक्त (किसी प्रकार की विघ्नबाधा की) शङ्का से रहित चकोर पक्षियों द्वारा कुतरी हुई मिर्चों के अकुरों वाले, (उनके पत्तों पर गिरी) चम्पक पुष्पों की पराग के ढेर से पीले हुए कपिञ्जल पक्षियों द्वारा खाये हुए पिप्पली के फलों वाले, (अपने) फलों के बोझ (के

दाडिमनीडप्रसूतकलविङ्कैः, प्रक्रीडितकपिकुलकरतलताडनतरलिततालीपुटैः, अन्योन्य-कुपितकपोतपक्षपालीपातितकुसुमैः, कुसुमरजोराशिसारसारिकाश्रितशिखरैः, शुकशतमुख-नखशिखरशकलितफलस्फीतैः जलधरजललुब्धविप्रलब्धमुग्धचातकध्वानमुखरिततमा-लखण्डैः, इभकलभकोल्लुनपल्लववेल्लितलवलीवलयैः, आलीयमाननवयौवनमत्तपारा-वतपक्षक्षेपपर्यस्तकुसुमस्तबकैः, तनुपवनकम्पितकोमलकदलीदलवीजितैः, अविरलफल-

प्रपल्लवा प्रान्तकिसलयानि येषु तै । उन्मदेति । उन्मदा ये षट्चरणा भ्रमरास्तेषां चक्रवालं समूहस्तेन वाचालिता मुखरीकृता विकचा स्फुटाश्चूतकलिका. सहकारकोरका येषु तैः । अचकित इति । अचकिता अत्रस्ता ये चकोरा विषसूचकास्तैश्चुम्बिताश्चर्विता मरिचानां श्वेतशोभाञ्जनानामङ्कुरा प्ररोहा येषु तै । चम्पकेति । चम्पको हेमपुष्पकस्तस्य य. पराग पौष्पं रजस्तस्य पुञ्ज. समूहस्तद्वत्पिञ्जरा पीतरक्ता ये कपिञ्जलास्तित्तिरास्तैर्जग्धानि भक्षितानि पिप्पल्या वैदेह्या फलानि येषु तै । फलेति । फलस्य भरो भारस्तस्य निकर समूहस्तेन पीडिता बाधिता दाडिमा करकारतेषु ये नीडा कुलायास्तेषु प्रसूता जनिता कलविङ्का कुलिङ्गका येषु तै । प्रक्रीति । प्रक्रीडित क्रीडया प्रवृत्तं यत्कपिकुल गोलाङ्गूलसमूहस्तस्य करतलानि पाणितलानि तेषां ताडनेन प्रघातेन तरलितानि कम्पितानि तालीपुटानि येषु तै । अन्योन्येति । अन्योन्य परस्पर कुपिता कोपं प्राप्ता ये कपोता. पारावतास्तेषां पक्षपाल्यो गरुद्वीथ्यस्ताभि पातितानि स्रस्तानि कुसुमानि प्रसूनानि येषां तै । कुसुमेति । कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रज परागस्तस्य राशिः समूहस्तदनुसारिण्यो या' सारिकाः पीतपादास्ताभिरा-श्रितानि व्याप्तानि शिखराणि वृक्षप्रान्तानि येषा तै । शुकेति । शुकानां कीराणां यच्छत तस्य मुखान्याननानि नखा नखराश्च तेषां शिखराण्यग्राणि तै शकलितानि खण्डितानि यानि फलानि तै स्फीतै. स्फारै । जलेति । जलधरो मेघस्तस्य जलं पानीय तत्र लुब्धा आसक्ता अथ च

मारे झुके) से दुखी अनार वृक्षों (के घने कुञ्जों) में बनाये गये घोंसलों में (अण्डे) उत्पन्न किये हुई चिड़ियाओं वाले, (उनपर) खेलते हुए चपल वानर यूथों द्वारा (अपनी) हथेलियाँ मार कर हिलाये हुए ताड़वृक्षों के पत्तों वाले, आपस में क्रोध पूर्वक लड़ते हुए कबूतरों के पखों के किनारों द्वारा गिराये गये फूलों वाले, फूलों की पराग के ढेर द्वारा (उससे ढक जाने के कारण) रङ्ग बिरङ्गी मैनाओं द्वारा अधिकृत चोटियों वाले, सैकड़ों तोतों द्वारा अपनी चोचों तथा पञ्जों के अग्रभागों से टुकड़े-टुकड़े किये हुए फलों से समृद्ध[1] (काले तमाल वृक्षों को भूल से बादल समझ कर) बादलों के जल के लोभी तथा ठगे गये भोले चातक पक्षियों के शब्द से गूँजते तमाल वृक्षों के कुञ्जों वाले, उनमें गजशिशुओं द्वारा (चबाकर) तोड़ी गयी कोपलों के कारण दोलायमान लवलीवल्यों (छल्लों) से युक्त थे, छिप कर बैठे हुए, नई जवानी से मस्त कबूतरों के पङ्खों की (क्षेप) फड़फड़ाहट (अथवा टक्कर) से बिखरे हुए पुष्पों के गुच्छों वाले (तनु) मन्द समीरण द्वारा कम्पाये गये कोमल केले के पत्तों द्वारा

१. स्फीतै —स्फाय + क ।

निकरावनतनालिकेरवनैः, अकठोरपत्रपुटपूगविटपिपरिवृतैः, अनिवारितविहगतुण्डखण्डितपिण्डखर्जूरजालकैः, मदमुखरमयूरीमधुररवविराजितान्तरैः, आकलितकलिकाकलापदन्तुरितैः, अन्तरान्तरा कैलासतरङ्गिणीतरङ्गितसिकतिलतलभूमिभागैः, वनदेवताकरतलनिवहनिभमलक्तकजललवसिक्तमिव किसलयनिकरमतिसुकुमारमुद्वहद्भिः,

---

विप्रलब्धा वञ्चिता ये मुग्धचातका बप्पीहास्तेषा ध्वानेन शब्देन मुखरित वाचालित तमालखण्ड तापिच्छवन येषु तै । एतेन तमालखण्डाना कृष्णवर्णत्वेन जलधरभ्रमान्मुग्धचातकै प्राथ्र्यत इति ध्वनितम् । इभेति । इभाना हस्तिना कलभार्स्त्रिशदब्दका । स्वार्थे क । तैर्लूना खण्डिता पल्लवा किसलयानि येषामेवविधानि वेल्लितान्यान्दोलितानि लवलीवलयानि येषु ते । आलीयेति । आ समन्ताल्लीयमाना अन्त प्रविश्यमाना ये नवयौवनेन प्रत्यग्रतारुण्येन मत्ता उत्कटा पारावता कलरवास्तेषा पक्षक्षेपेण गरुद्विक्षेपेण पर्यस्ता पतिता कुसुमस्तबका पुष्पगुच्छा येषा ते । तन्विति । तनुपवनेन मन्दवायुना कम्पिता धूता या कोमला मृद्व कदल्यो रम्भास्तासा दलानि पत्राणि । 'पर्ण पत्र छद दलम्' इति कोश । तैर्वीजितै कृतवालव्यजनै । अविरलेति । अविरलान्यपेलवानि यानि फलानि तेषा निकर समूहस्तेनावनतानि नमितानि नालिकेरवनानि लाङ्गलीखण्डानि येषु ते । अकठोरेति । अकठोराणि मृदूनि पत्रपुटानि येषामेवविधा ये पूगविटपिन क्रमुकवृक्षास्तै परिवृतै परिवेष्टितै । अनिवेति । अनिवारिता अनिषिद्धा ये विहगा पक्षिणस्तेषा तुण्डानि मुखानि तै खण्डितानि शकलीकृतानि पिण्डखर्जूरजालकानि प्रसिद्धानि येषु ते । मदेति । मदेन गर्वेण ऋतुविशेषजनितबलभरेण वा मुखरा वाचाला या मयूर्यो नीलकण्ठयोषितस्तासा यो मधुरो मिष्टो रव शब्दस्तेन विराजितान्यन्तराणि मध्यानि येषा ते । आकलीति । आकलिता प्रादुर्भूता या कलिका कोरका । 'कलिका कोरकोऽस्त्रियाम्' इति कोश । तस्या कलाप सघातस्तेन दन्तुरितैरुन्नतै । कैलासेति । कैलासस्य रजताद्रेरन्तरान्तरा । मध्ये मध्य इत्यर्थं । तास्तरङ्गिण्यो नद्यस्तासा तरङ्गितेन भङ्गितेन सिकतिलो वालुकितस्तलभूमिभागोऽध प्रदेशो येषा ते । किं कुर्वद्भि पादपैर्वृक्षै । अतिसुकुमारमतिमृदु किसलयनिकर पल्लवसमूहमुद्वहद्भिर्धारयद्भि । रक्तत्वसादृश्यात्तदेव विशेषयन्नाह—वनेति । वनदेवतानामरण्याधिष्ठात्रीणा करतलनिवहनिभमिव हस्ततलसमूहसदृशमिव । अलेति । अलक्तको यावकस्तस्य जललवै सिक्तमिव सिञ्चितमिव ।

पखा किये जाते हुए, घने (उगे हुए) फलों के ढेर से (भार से) झुके हुए नारियल के वृक्षों वाले, (अभी तक पूर्णतया) अपरिपक्व पत्रपुटों (दुहराये हुए पत्तों) वाले सुपारी-वृक्षों से घिरे हुए, न हटाये हुए पक्षियों की चोचो द्वारा खजूरों के गुच्छो वाले, हर्ष से वाचाल हुई मोरनियो के मीठे शोर से गूँजते मध्य स्थानों वाले, (अकलित) अनगिनत कलियों के समूह से ऊँचे नीचे, बीच-बीच में कैलाशपर्वत से आती हुई नदियो द्वारा (तरगित) आप्लावित (अर्थात् धोये गये) रेतीले अपने नीचे के (जड़ प्रदेश के) भूमिभागों वाले, अत्यन्त कोमल, वनदेवताओं की हथेलियों के समूह सरीखी (लाल लाल), द्रव अलक्तक रगसे सींची

ग्रन्थिपर्णग्रासमुदितचमरीकुलनिषेवितमूलैः, कर्पूरागरुप्रायैः, इन्द्रायुधैरिव घनावस्थानैः, कुमुदैरिवादत्तदिनकरप्रवेशशिशिराभ्यन्तरैः, दाशरथिबलैरिवाञ्जननीलनलपरिगतप्रान्तैः, प्रासादैरिव सपारावतैः, भवनतापसैरिव संनिहितवेत्रासनैः, रुद्रैरिव नागलताबद्ध-

ग्रन्थीति। ग्रन्थिपर्णं शुकम्। 'ग्रन्थिपर्णं शुकं बर्हम्' इत्यमर। तस्य ग्रासेन मुदितानि हर्षितानि यानि चमरीकुलानि वनोद्भवगोसमूहानि तैर्निषेवितानि सेवितानि मूलानि बुध्नानि येषा ते। कर्पूरेति। कर्पूरा अन्तर्गर्भितघनसारवृक्षा, अगरवो राजार्हा प्रायो बाहुल्येन विद्यन्ते येषु ते। इन्द्रेति। इन्द्रायुधानीन्द्रधनूंषि तैरिव। उभयो साम्यमाह—घनेति। घन निबिडमवस्थान येषां ते.। पक्षे घनो मेघ। कुमुदैरिति। कुमुदानि कैरवाणि तैरिव। उभयो साम्यमाह—अदत्तेति। न दत्तो यो दिनकराणां सूर्यकिरणानां प्रवेशस्तेन शिशिर शीतलमभ्यन्तरं मध्यभागो येषा तैरित्यभङ्गश्लेष। दाशेति। दाशरथी रामस्तस्य बलानि सैन्यानि तैरिव। अञ्जनेति। अञ्जनवन्नीलानि यानि नलानि तृणानि ते परिगतो व्याप्त प्रान्तो येषा ते। पक्षेऽञ्जननीलनला कपय। शेषं पूर्ववत्। प्रासादेति। प्रासादा देवगृहास्तैरिव। 'प्रासादो देवभूपानाम्' इत्यभिधानचिन्तामणि। भङ्गश्लेषमाह—सेति। सह पारावतैर्मर्कटैर्वर्तमाना सपारावतास्तै। 'पारावत कलरवे गिरौ मर्कटतिन्दुके' इत्यनेकार्थः। पक्षे पारावत कपोत। भवनेति। भवने गृहे स्थिता ये तापसा परिव्राजकास्तैरिव। एतत्साम्यमाह—संनीति। सनिहिता समीपवर्तिनो वेत्रा वृक्षविशेषा असना प्रियका येषां ते, पक्षे सनिहितानि वेत्रासनानि विष्टरविशेषाणि येषामिति बहुव्रीहि। रुद्र इति। रुद्रा ईश्वरा एकादश तैरिव। एतत्साम्यमाह—नागेति। नागलता ताम्बूली। 'ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागपर्यायवल्ल्यपि' इत्यभिधानचिन्तामणि। तया बद्ध परिकर परिधिर्येषां ते। पक्षे नागा

हुई सी प्रतीत होती कोमल पत्रावली को धारण किये हुए, ग्रन्थिपर्ण (एक प्रकार के सुगन्धित वृक्ष, (के पत्तों) के ग्रास करने से—(कौर खाने से) हर्षित चमरियों के झुण्डों से युक्त मूल (प्रदेशों) वाले, अधिकतर कपूर तथा अगरु (प्रकार के वृक्षों) वाले, बादलों के ऊपर स्थित (घनावस्थित) इन्द्रधनुषों की भाति घने-घने (पास पास) उगे हुए (घनावस्थित), सूर्य की किरणों को न घुसने देने के कारण शीतल मध्यभागों वाले श्वेत रात्रि-कमलों की भाति सूर्य की किरणों को भीतर घुसने न देने से शीतल मध्य भागों वाले, (कपि सेनानी) अञ्जन, नील तथा नल द्वारा परिगत-परिरक्षित पार्श्व भाग वाले राम सैन्य की भांति अजन, नील तथा नल नाम वाले वृक्षों से व्याप्त प्रान्त भागों वाले, कबूतरों सहित महलों की भाति बन्दरों से युक्त होने से सपारावत,[१] अपने समीप बेंत के आसन रखे हुए (सन्निहित वेत्रासनै) गृहस्थ तपस्वियों की भाति बेंत तथा असन नाम के वृक्षों को अपने में रखे हुए (सन्निहित-वेत्र-असनै), नाग सरीखी लताओं से कटियों को बांधे हुए (नागबद्धपरिकरै.) रुद्र (११ रुद्र) देवताओं की भाति 'नाग'-लताओं से बन्धे (तने के) मध्यभाग वाले

१. पारावत=मर्कट।

परिकरैः, उदधिकूलपुलिनैरिव निरन्तरोद्भिन्नप्रवाललताङ्कुरजालकैः, अभिषेकसलिलैरिव सर्वौषधिकुसुमफलकिसलयसनाथैः, आलेख्यगृहैरिव बहुवर्णचित्रपत्रशकुनिशतसशोभितैः, कुरुभिरिव भारद्वाजद्विजोपसेवितैः, महासमरमुखैरिव पुनागसमाकृष्टशिलीमुखैः, महाकरिभिरिव प्रलम्बबालपल्लवस्पृष्टभूतलैः, अप्रमत्तपार्थिवैरिव पर्यन्तावस्थि-

---

सर्पा एव लता तया बद्ध, अर्थाज्जटाया परिकरो येषामिति बहुव्रीहि । उदधीति । उदधे समुद्रस्य कूल तट तस्य पुलिनानि जलोज्झितप्रदेशास्तैरिव । 'पुलिन तज्जलोज्झितम्' इति कोश । उभयो. सादृश्यमाविष्कुर्वन्नाह—निरन्तरमिति । निरन्तर सततमुद्भिन्नानि प्रकटितानि प्रवाला नवपल्लवा लताङ्कुरा वल्लीप्ररोहाश्च तेषां जालकानि वृन्दानि येषु तै । पक्षे प्रवाललता विद्रुमलता । शेष पूर्ववत् । अभीति । अभिषेकार्थं यानि सलिलानि जलानि तैरिव । एतत्साम्यमाह—सर्वेति । सर्वा समग्राश्च ता ओषध्य फलपाकान्तास्तासां यानि कुसुमफलकिसलयानि तै सनाथै सहितै । पक्षे मङ्गलकर्मणि सर्वौषधि प्रसिद्धा । आलेख्येति । आलेख्य चित्र तेन युक्ता गृहास्तैरिव । उभयो सादृश्यमाह—बह्विति । बहुवर्णैरनेकरागैश्चित्राणि पत्राणि पिच्छानि येषामेवंभूताना शकुनीना पक्षिणा शतं तेन सशोभितैर्विराजितै । पक्षे बहुवर्णोपेतानि यानि, चित्राण्यालेख्यानि तेषु यानि पत्राणि वाहनानि शकुनय पक्षिण । शेष पूर्ववत् । कुरुभिरिति । कुरव कुरुवंशोद्भवा राजानस्तैरिव । एतयो सादृश्यमाह—भार इति । भारद्वाजा व्याघ्राटा ये द्विजा पक्षिणस्तैरुपसेवितै, पक्षे भारद्वाजो द्रोण । महेति । महान्ति प्रकृष्टानि यानि समरमुखानि सग्रामप्रारम्भास्तैरिव । 'मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेणिनि सरणास्ययो' इत्यनेकार्थं । एतयो साम्यार्थमाह—पुंनागेति । पुनागैर्वृक्षविशेषै समाकृष्टा. समाकर्षिता शिलीमुखा भ्रमरा येषु तै । पक्षे पुनागा प्रकृष्टपुरुषा । शिलीमुखा

(नागबद्धपरिकरै) घने घने (पास पास) उगे हुए मूँगे की बेलो के अकुर समूह वाले समुद्र के रेतीले जलरहित तटों की भाति सघनता से उगे प्रवालों (कोमल पत्तों) के तथा लताओं के अकुरों के गुच्छों से युक्त, सर्वौषधि (के नाम से प्रसिद्ध दस पौधों) के पुष्पों, फलों तथा उनकी कोंपलों से युक्त राज्याभिषेक के जलों की भाति सब प्रकार के वृक्षों के पत्तों, पुष्पों तथा फलो से युक्त, बहुत से रङ्गोंमें बनाये गये चित्रों तथा सैकड़ों आभूषक आकृतियों तथा पक्षियों से शोभित, चित्रयुक्त भवनों की भांति बहुरगी तथा विचित्र, पंखों वाले सैकड़ों पक्षियों से शोभित, भरद्वाजके पुत्र भारद्वाज (कर्ण) नाम के ब्राह्मण द्वारा सेवित कुरुओं की भाति भारद्वाज नाम के वृक्षों से उपसेवित, पुनाग अर्थात् विशिष्ट योद्धा (पुरुषश्रेष्ठ) जिसमें बाण खींचते हैं ऐसे महायुद्ध के प्रारम्भों की भाति, पुनाग (पुन्नग) वृक्षों द्वारा आकर्षित किये गये भौरों वाले, (अपनी) लटकती हुई (पूछ के) बालों के गुच्छों से भूतल को छूए हुए विशाल हाथियों की भाति, (अपनी) नीचे तक लटकती कोंपलों से पृथ्वी को छूते (अथवा बाल नाम के वृक्षों की नीचे तक लटकी कोंपलों वाली अधोभूमि वाले), (अपने राज्य की) सीमाओं पर बहुत सी (सेना की टुकड़ियों को स्थापित किये हुए जागरूक

तबहुगुल्मकैः, दशितैरिव भ्रमरसंघातकवचावृतकायैः, प्रमाणाभिमुखैरिव वानरकराङ्गुलिस्पृष्टगुञ्जैः, अवनिपालशयनैरिव सिंहपादाङ्कितरुतलैः, आरब्धपञ्चतपःक्रियैरिवोच्छिखशिखिमण्डलपरिवृतैः, दीक्षितैरिव कृतकृष्णसारविषाणकण्डूयनै, जर-

---

बाणा । शेष पूर्ववत् । महान्तोऽतिस्थूला ये करिणो हस्तिनस्तैरिव । उभयोस्तुल्यता प्रदर्शयन्नाह—प्रलम्बेति । प्रलम्बा लम्बायमाना ये बालपल्लवा नवीनकिसलयानि तै करणभूतै स्पष्ट सघट्टित भूतलमध प्रदेशो येषा ते । पक्षे बालपल्लवाभ्रमरप्रान्ता । शेष पूर्ववत् । शोभातिशयार्थं हस्तिना चामराणि कर्णे बध्यन्त इति सर्वप्रसिद्धम् । अप्रमत्तेति । अप्रमत्ता सावधाना ये पार्थिवा राजानस्तैरिव । एतयो सादृश्यमाह—पर्यन्त इति । पर्यन्ते प्रान्तेऽवस्थिता बहवोऽनेके गुल्मका गुच्छका येषु ते । पक्षे गुल्मका सेनाविशेषा । 'एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्ति पञ्चपदातिका । सेनामुख गुल्म' इति कोश । दशितेति । दशितैर्वर्मितैरिव । 'दशितो वर्मित सज्ज.' इति कोश । एतयोस्तुल्यत्वमाह—भ्रमेति । भ्रमराणा शिलीमुखाना य सघात समूह स एव कवच वर्म तेनावृत आच्छादित कायो देहो येषा ते । पक्षे भ्रमरा आवर्तास्तेषा सघात समूहो येष्वेवविधानि कवचानि सनाहा । शेष पूर्ववत् । प्रमाणेति । प्रमाण तोलनं तत्राभिमुखा समुखास्तैरिव । उभयो प्रकारान्तरेण भङ्गमाह—वानरेति । वानरा गोलाङ्गूलास्तै कराङ्गुलिभि करशाखाभि स्पृष्टा आश्लिष्टा गुञ्जा येषु ते । पक्षे वेति विकल्पार्थे । नराङ्गुलयो मनुष्याङ्गुलय । शेष पूर्ववत् । सुवर्णपरिमाणे गुञ्जाया एव ग्रहणमिति लोकप्रसिद्धम् । अवनीति । अवनिपाला राजानस्तेषा शयनैस्तल्पैरिव । एतयो सादृश्य प्रदर्शयन्नाह—सिंहेति । सिंहपादैर्हर्यक्षचरणैरङ्कितानि चिह्नितानि तरुतलानि वृक्षाधोभागा येषा ते । पक्षे सिंहपादेष्वङ्किता एतादृशानि तलानि । शेष प्राग्वत् । आरब्धेति । आरब्धा प्रस्तुता पञ्चतप क्रिया पञ्चाग्निसाधनकर्म यैस्तैरिव । एतयो शब्दसादृश्यमाह—उच्छिखेति । उच्छिखमूर्ध्वचूडं यच्छिखिमण्डल मयूरसमूहस्तेन परिवृतै परिवेष्टितै. । पञ्च

राजाओ की भाति, (अपने) किनारों पर स्थित बहुत सी झाड़ियों वाले, भ्रमरों के समूह के समान (काले) कवचों से ढके शरीरों वाले कवच पहने[1] हुए व्यक्तियों की भाति, भ्रमर समूहरूपी कवचो को पहने हुए, वानरों के हाथों की अगुलियो द्वारा छूई हुई रत्तियो वाले होने से, अपने हाथ की अगुलियों से रत्तियों को छूने वाले (सोना आदि) तोलने लगे व्यक्तियों की भाँति प्रतीत होते, सिंहों के पावों की छाप से अकित अधोभागों वाले होने के कारण, सिंह के पावों की आकृति के आधारों (पायो) वाले राजा के पलगों जैसे प्रतीत होते, (प्रसन्नता मे अपनी) शिखाओं को उठाये हुए मयूरों के मण्डलों से घिरे हुए होने के कारण, ऊपर को उठती (प्रज्वलित) ज्वालाओं वाली अग्नियों के मण्डल से घिरे पञ्च (अग्नि) तप के साधन को आरम्भ किये हुए व्यक्तियों से प्रतीत होते, कृष्णसार मृगो द्वारा अपने सींगों से खुजाने के लिये प्रयुक्त होने के कारण, (आवश्यकता पड़ने पर) कृष्णसार मृग के सींग द्वारा

---

१ दशितो वर्मित ।

द्गृहमुनिभिरिव जटालवालकमण्डलधरैः, इन्द्रजालिकैरिव दृष्टिहारिभिः पादपैः परिवृत चन्द्रप्रभनाम्नस्तस्य सरसः पश्चिमे तीरे कैलासपादस्य ज्योत्स्नावदातया प्रभया धवलयतस्त प्रदेश भूतलभागसनिविष्ट भगवतः शूलपाणेः शून्यं सिद्धायतनमपश्यत् । तच्च पवनोद्धूतैरितस्ततः समापतद्भिः केतकीगर्भधूलिभिर्धवलीक्रियमाणकायः पशुपतिदर्शनहेतोर्बलादिव प्रतिपाद्यमानो भस्मव्रतमायतनप्रवेशपुण्यैरिव परिगृह्यमाण प्रविश्याद्राक्षीच्चतुःस्तम्भस्फटिकमण्डपिकातलप्रतिष्ठितम्, अचिरोद्धूतैरार्द्रार्द्रैर्दलशिखर-

---

ऊर्ध्वं शिखा ज्वाला यस्यैवंभूत शिखिमण्डल वह्निमण्डलम् । शेष प्राग्वत् । दीक्षिता यज्ञे गृहीतव्रतास्तैरिव । एतयो साम्यमावि कर्तुमाह—कृतेति । कृत विहितं कृष्णसारैर्मृगैर्विषाणाना शृङ्गाणां कण्डूयन कण्डूया येषु तै । 'कण्डू कण्डूयन खर्जू कण्डूया' इत्यभिधान चिन्तामणि । पक्षे कृष्णसारविषाणेन कण्डूयनम् । शेष प्राग्वत् । दीक्षितानामयमाचारो यन्मृगविषाणै कडूयन विधीयते इति । जरेति । जरन्तो ज्यायासो ये गृहमुनय आश्रमतापसास्तै पञ्चमुनीनामपत्यानि न भवन्तीति गृहपद तेरिव । एतयो सादृश्यप्रदर्शनार्थमाह—जटेति । जटा शिफा, आलवालक आवाप तस्य मण्डल परिवेषस्त धरन्तीति धरै, पक्षे जटायुक्ता ये बाला स्तनधयास्त एव कमण्डलधरा पानीयसमूहधरा येष्विति बहुव्रीहि । इन्द्रेति । इन्द्रजालिका मायिकास्तैरिव । उभयो सादृश्यमाह—दृष्टीति । दृष्टयो नेत्राणि तेषा हारिभिर्हरणशीलै । नेत्राभिरामैरित्यर्थं । पक्षे दृष्टिवञ्चकै. । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । अथ कैलासपाद विशेषयन्नाह—ज्योत्स्नेति । ज्योत्स्ना कौमुदी तद्वदवदातया शुभ्रया प्रभया कान्त्या तं प्रदेश यत्पार्श्ववर्तिभूभाग धवलयतो धवलीकुर्वत. । तच्चेति । तदायतन प्रविश्य तत्र प्रवेश कृत्वा भगवन्त माहात्म्यवन्त त्र्यम्बक गौरीनाथमद्राक्षीददर्शीत्यन्वय ।

अपनी खाज करने वाले व्रतधारियों के समान प्रतीत होते, रेशों वाली जड़ों तथा अनेक आलवालों को धारण किये हुए होने के कारण, (अपने चारों ओर) जटाधारी बालकों के समूह को रखने वाले, बूढ़े गृहस्थ मुनियों-सरीखे प्रतीत होते और (देखने वाले की) दृष्टि को सन्तुष्ट करने वाले अर्थात् सुन्दर होने के कारण, दृष्टि को धोखा देने वाले जादूगरों-सरीखे प्रतीत होते, वृक्षों से घिरा हुआ था।

और उस मदिर में वह, वायु से उड़ायी गयीं तथा इधर-उधर गिरती हुई केतकी पुष्पों के भीतरी स्थानों की पराग धूलियों से श्वेत किये जा रहे शरीर वाला, मानो कि शिवजी के दर्शन करने योग्य होने के लिये बलपूर्वक भस्मव्रत (शरीर पर श्वेत भस्म मल लेने का व्रत) कराया जाता हुआ अथवा मानो कि पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने से उत्पन्न (श्वेत अर्थात् विशुद्ध) पुण्यों द्वारा ही ढका जाता हुआ या प्रविष्ट हो गया। और वहाँ प्रविष्ट करके उसने स्तम्भों वाले स्फटिक निर्मित छोटे मदिर के तल पर स्थापित, सम्पूर्ण तीनो लोकों द्वारा पूजे गये चरणों वाले, चेतन तथा जड़-दोनों प्रकार के पदार्थों के पिता-अर्थात् जनक, चतुर्मुख शिवजी को (उनकी प्रतिमा को) देखा। इस प्रतिमा की पूजा अभी अभी तोड़े हुए, (इसीलिये)

गलज्जलबिन्दुभिरूर्ध्वविपाटितचन्द्रबिम्बदलैरिव निजाट्टहासावयवैरिव शेषफणाशकलै-रिव पाञ्चजन्यसहोदरैरिव क्षीरोदहृदयाकारैरुपपादितमौक्तिकमुकुटविभ्रमैः शुचिभिर्मन्दाकिनीपुण्डरीकैः कृतार्चनम्, अमलमुक्ताशिलाघटितलिङ्गम्, अशेषत्रिभुवनवन्दितचरणम्, चराचरगुरुम्, चतुर्मुखम्, भगवन्तं त्र्यम्बकम्। तस्य च दक्षिणा मूर्तिमाश्रित्याभिमुखीमासीनाम्, उपरचितब्रह्मासनाम्, अतिविस्तारिणा सर्वदिङ्मुखप्लावकेन प्रलयविप्लुतक्षीरपयोधिपूरपाण्डुरेणातिदीर्घकालसंचितेन तपोराशिनेव सर्वतो विसर्पता पादपान्तरैस्त्रिस्रोतोजलनिभेन पिण्डीभूय वहतेव देहप्रभावितानेन

अथ चन्द्रापीड विशेषयन्नाह—पवेति। पवनेन वायुनोद्धूतै कम्पितैरितस्तत समापतद्भिर्यत्रतत्र निपतद्भि केतक्या प्रसिद्धाया गर्भधूलिभिर्मध्यरेणुभिर्धवलीक्रियमाण शुभ्री क्रियमाण कायो देहो यस्य सः। पाण्डुरत्वसाम्येनाह—पशुरिति। पशुपतेरीश्वरस्य यद्दर्शनमवलोकन तस्य हेतो तदर्थमित्यर्थ। बलादिव हठादिव भस्मव्रत विभूतिव्रत प्रतिपाद्यमान इवाङ्गीक्रियमाण इव धूलीना शुचित्वात्पुण्यानामपि तथाविधत्वात्। तत्साम्येनाह—आयेति। आयतन चैत्य तत्र य प्रवेशस्तस्माद्यानि पुण्यानि श्रेयासि तै परिगृह्यमाण इवोपादीयमान इव। अथ सिद्धायतन विशेषयन्नाह—चतुरिति। चत्वार स्तम्भा स्थूणा यस्यामेतादृशी या स्फटिकमण्डपिका चन्द्रकान्तलघुमण्डपस्तस्यास्तलेऽधोभागे प्रतिष्ठितमवस्थितम्। पुन कीदृशम्। शुचिभि. पवित्रैर्मन्दाकिनी स्वर्धुनी तस्या पुण्डरीकै. सिताम्भोजै. कृत विहितमर्चन पूजनं यस्य तत्। अथ पुण्डरीकाणि विशेषयन्नाह—अचिरेति। अचिरोद्भूतै स्वल्पकालोत्खातैरार्द्राणि चार्द्राणि चार्द्रार्द्राणि तैः। जलक्लिन्नैरित्यर्थ। दलेति। दलानां पत्राणां शिखराण्यग्रभागास्तेभ्यो गलन्त स्रवन्तो जलस्याम्भसो बिन्दवो विप्रुषो

अभी तक गीले-गीले, पखुड़ियों के सिरों से गिरते जलबिन्दुओं वाले, विशुद्ध, आकाशगगा के श्वेत कमलों द्वारा की गयी थी, वे श्वेत कमल ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो वे उपरिभाग में चिरे हुए चन्द्र मडल के टुकड़े हों, अथवा (शिवजी के) अपने अट्टहास के अश ही हों, अथवा मानो कि वे (नागराज) शेष की फणा के टुकड़े हों, अथवा (विष्णु के शख) पाचजन्य के सगे भाई हों। आकार उनके दुग्धसागर के हृदय के आकार के सदृश थे। वे मोतियों के मुकुट (धारण करने) की शोभा दे रहे थे। और उस प्रतिमा का लिङ्ग स्वच्छ मुक्ताशिला (स्फटिक शिला) से बना हुआ था।

और वहां उसने शिवजी की दायीं मूर्ति के (दायें भाग के) सम्मुख बैठी हुई, ब्रह्मासन लगाये हुई शिवजी (की पूजा करने) के व्रत को धारण किये हुई, एक कन्या को देखा वह कन्या अपनी अतिविस्तृत, सब दिशाओं को आप्लावित किये हुई, प्रलय के समय आन्दोलित दुग्ध समुद्र की बाढ़ के समान श्वेत, बहुत देर से एकत्रित की हुई (तथा अत्र) सब ओर फैलती हुई तपोराशि सी प्रतीत होती हुई और गगाजल सरीखी वृक्षों के बीच मे से होकर बहती

सगिरिकानन दन्तमयमिव तं प्रदेशं कुर्वतीम्, अन्यथैव धवलयन्ती कैलासगिरिम्, अन्तर्द्रष्टुरपि लोचनपथप्रविष्टेन श्वेतिमानमिव मनो नयन्तीम्, अतिधवलप्रभापरि-

येषु तै। गलज्जलबिन्दुसाम्येनोत्प्रेक्षते—ऊर्ध्वेति। ऊर्ध्वं विपाटित भिन्न यच्चन्द्रबिम्ब शशिमण्डलं तस्य दलै खण्डैरिव। तत्राप्यमृतस्य गलद्बिन्दवो भवन्तीति भाव। अत्र शुक्लत्वसाम्यादाह—निजेति। निज स्वकीयो योऽट्टहासो महान्हासस्तस्यावयवैरिवाप-घनैरिव। शेषेति। शेषस्य नागाधिपते फणा फटास्तासां शकलै खण्डैरिव। अर्धविकसितत्वसाम्यादाह—पाञ्चेति। पञ्चजने पाताले भव पाञ्चजन्यो जनार्दनशङ्खस्तस्य सहोदरैरेकोदरसमुत्पन्नैरिव। हृदयस्य पुण्डरीकाकारत्वात्तत्साम्येनाह—क्षीरेति। क्षीरोदस्य क्षीरसमुद्रस्य यद्धृदय स्वान्त तद्वदाकार आकृतिर्येषां तै। अग्रसङ्कुचितत्वसाम्येनाह—उपेति। उपपादितो विहितो मौक्तिकानां रसोद्भवाना मुकुटविभ्रम उष्णीषभ्रान्तिर्यै। अथ स्थावररूपमधिकृत्य त्र्यम्बक विशेषयन्नाह—अमलेति। अमला निर्मला या मुक्ताशिला मौक्तिकशिला तस्या घटित निर्मित लिङ्ग यस्य स तम्। जङ्गमरूपमधिकृत्याह—अशेषेति। अशेष यत्त्रिभुवन त्रिविष्टप तेन वन्दितौ नमस्कृतौ चरणौ यस्य स तम्। चरेति। चराचरस्य जीवलोकस्य गुरुं हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टारम्। चतुरिति। चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखस्तम्। ननु महादेवस्य पञ्चकत्वात्कथमत्र चतुर्मुखोपवर्णनमिति वाच्यम्। सामान्यतस्तन्निवासिन प्रयोजन वशाच्चतुर्मुखत्वस्यापि सभवात्। तस्य त्र्यम्बकस्य दक्षिणामपसव्या मूर्ति प्रतिमामाश्रित्याश्रयण कृत्वाभिमुखीं सम्मुखीमासीनां निषण्णां प्रतिपन्नं स्वीकृतं पाशुपतमीश्वरसक्त व्रत नियमविशेषो यया तां कन्यका महाश्वेताभिधाना ददर्शेति दूरेणान्वय। इत कन्यकां विशेषयन्नाह—उपेति। उपरचित निर्मित ब्रह्मासनं ध्यानासन यया सा ताम्। पुन किं कुर्वतीम्। सगिरिकानन त प्रदेशं दन्तमयमिव गजदन्तनिर्मितमिव कुर्वतीं प्रणयन्तीम्। केन। देहप्रभावितानेन शरीरकान्तिकलापेन। अथ प्रभावितान विशेषयन्नाह—अतीति। अतिशयेन विस्तारिणा प्रसरणशीलेन। सर्वेति। सर्वदिङ्मुखानां प्लावकेनाच्छादकेन। प्रलयेति। प्रलय कल्पान्तस्तेन विप्लुतो यः क्षीरपयोधिस्तस्य पूरो रयस्तद्वत्पाण्डुरेण शुभ्रेण। उज्ज्वलत्वसाम्यादाह—अतीति। अतिदीर्घोऽत्यायतो य कालोऽनेहा तेन सचितेनैकत्रीकृतेन विसर्पता प्रचलता तपोराशिना तप समूहेनेव। अतिस्वच्छत्वादाह—पादपेति। पादपान्तरैर्वृक्षान्तरै प्रतिबन्धकीभूतै पिण्डीभूय समूहीभूय वहतेव त्रिस्रोतोजलनिभेन गङ्गाम्भ सदृशेन कैलासस्य श्वेतत्वादेतस्य च तदतिशयवत्त्वादाह—अन्यथेति। भिन्नप्रकारेण तेनैव देहप्रभावितानेन कैलासगिरिं रजताद्रिं धवलयन्तीं श्वेतिमानमापादयन्तीमिव। द्रष्टुरिति। तेनैव प्रभावितानेन द्रष्टुरपि

हुई सी अपने शरीर की श्वेत कान्ति के पुज द्वारा पर्वतों तथा वनों समेत उस सारे प्रदेश को गजदन्त से निर्मित सा कर रही थी, मानो कि वह कैलाश पर्वत को किसी दूसरे ही (नये) प्रकार से श्वेत कर रही थी, और आँखों के रास्ते द्रष्टा के भीतर प्रविष्ट हुई अपनी काति के माध्यम से वह द्रष्टा के मन को श्वेत बना रही थी। अत्यन्त श्वेत कान्ति से घिरा अपना देह होने के कारण उसके अग अस्पष्ट रूप से ही दिखायी दे रहे थे, मानो कि वह

गतदेहतया स्फटिकगृहगतामिव दुग्धसलिलमग्नामिव विमलचेलाशुकान्तरितामिव आदर्शतलसक्रान्तामिव शरदभ्रपटलतिरस्कृतामिव अपरिस्फुटविभाव्यमानावयवाम्, पञ्चमहाभूतमयमपहाय द्रव्यात्मकमङ्गनिष्पादनोपकरणकलाप धवलगुणेनेव केवलेनोत्पादिताम्, अध्वरक्रियामिवोद्धतगणकचग्रहभयोपसेवितत्र्यम्बकाम्, रतिमिव

विलोकयितुरप्यन्तर्लोचनपथप्रविष्टेन नेत्रमध्यमार्गगतेन मनश्चित्त श्वेतिमान शुक्लिमान नयन्तीमिव प्रापयन्तीमिव। अतीति। अतिधवलातिशुभ्रा या प्रभा कान्तिस्तया परिगतो व्याप्तो देहो यस्यास्तस्या भावस्तत्ता तया। तथा च देहस्य प्रभारूपस्वच्छद्रव्यान्तरितत्वान्न परिस्फुटं प्रकट विभाव्यमाना ज्ञायमाना अवयवा अपघना यस्या। स्वच्छद्रव्यान्तरितत्वसाम्येनोत्प्रेक्षते—स्फटिकेति। स्फटिकश्चन्द्रकान्तस्तस्य गृह धाम तत्र गतामिव प्राप्तामिव। दुग्धेति। दुग्धसलिले क्षीरोदे मग्नामिव ब्रुडितामिव। विमलेति। विमल निर्मल यच्चेलाशुक वस्त्रविशेषस्तेनान्तरितामिव व्यवहितामिव। आदर्शेति। आदर्शतल मुकुरतल तत्र सक्रान्तामिव प्रतिबिम्बितामिव। शरदिति। शरद्घनात्ययस्तस्या अभ्रपटलानि मेघवृन्दानि तैस्तिरस्कृतामन्तर्हितामिव। अपरिस्फुटावयवत्वादेवाशङ्कते—पञ्चेति। पञ्चमहाभूतमय पृथिव्याद्यात्मक द्रव्यरूपमङ्गनिष्पादनोपकरणकलाप शरीरजनकसामग्रीमपहाय दूरीकृत्य केवलेन धवलगुणेनेवोत्पादिता निर्मिताम्। शौक्ल्यातिशयवत्वादिति भाव। केचिदपहायेत्यस्योभयत्र सबन्धमाहु। तथा—धवलगुणेनेवोत्पादितायास्तस्या पृथिव्याद्यनात्मकत्वे द्रव्यत्वमेव न स्यादित्यत आह—द्रव्येति। द्रव्यात्मक स्वरूपमपहाय। ननु द्रव्यत्वाभावेऽङ्गानि शरीरावयवास्तन्निष्पादने या उपकरणसामग्र्यपेक्षिता सा न स्यात्। तस्याश्च द्रव्यात्मककार्ये जननेऽसामर्थ्यादत आह—अङ्गेति। तदप्यपहाय न चाभाव एव दूषणमलौकिकप्रसिद्धे। दूषणस्यैव भूषणत्वात्। अध्वरक्रियाया. स्त्रीत्वमाश्रित्याह—अध्वर इति। अध्वरो दक्षस्य यज्ञस्तस्य क्रिया कर्म तामिव। उभयसादृश्यमाह—उद्धतेति। उद्धता अनार्या ये गणा मनुष्यवृन्दा पार्षदाश्च तैर्य कचग्रहः केशग्रहस्तस्माद्भय तेनोपसेवित सपर्याविषयीकृतस्त्र्यम्बक ईश्वरो यया सा ताम्। दक्षप्रजापतिनाध्वर ईश्वरो नाहूत., तेन गणा प्रेषिता, तैरध्वरविनाशो विहित इति पुराणप्रसिद्धम्। रतिरिति। रतिर्मनोभवस्य स्त्री तामिव। उभयो साम्य स्पष्टमाह—मदनेति। मदनेन कदर्पेण पीडितो यो देह शरीर तन्निमित्त तदर्थम्। मदनोपशान्त्यर्थमित्यर्थ। सा च हर-

---

किसी स्फटिक से निर्मित घर में बैठी हो अथवा दूध तथा जल के मिश्रण में डूबी हुई हो, अथवा चीनी रेशमी वस्त्र से छिपी हुई—उसके द्वारा पर्दा की हुई हो, दर्पण के पृष्ठ पर प्रतिबिम्बित हो, मानो कि शरद् ऋतु के (श्वेत) मेघसमूह के भीतर छिपी हुई हो। (मानव के शरीर के) अंगों की रचना के लिये आवश्यक अनेक साधनों—द्रव्य रूप पाच भूतों को छोड़कर मानो केवल मात्र श्वेत गुण से ही बनी हुई थी, भीषण गणों द्वारा बालों से पकड़ी जाने के भय से मानो शिवजी के समीप आयी (शरीरधारिणी) यज्ञ क्रिया—सरीखी प्रतीत हो रही थी, मानो कि वह (अपने पति) कामदेव के शरीर के हेतु शिवजी के प्रसाद-

मदनदेहनिमित्त हरप्रसादनार्थमागृहीतहराराधनाम्, क्षीरोदाधिदेवतामिव सहवास-परिचितहरचन्द्रलेखोत्कण्ठाम्, इन्दुमूर्तिमिव स्वर्भानुभयकृतत्रिनयनशरणगमनाम्, ऐरावतदेहच्छविमिव गजाजिनावगुण्ठनोत्कण्ठितचिन्तितोपनताम्, पशुपतिदक्षिण-मुखहासच्छविमिव बहिरागत्य कृतावस्थानाम्, शरीरिणीमिव रुद्रोद्धूलनभूतिम्, आविर्भूता ज्योत्स्नामिव हरकण्ठान्धकारविघट्टनोद्यमप्राप्ताम्, गौरीमनःशुद्धिमिव

प्रसन्नतायां स्यादित्याशयेनाह—हर इति। हरस्येश्वरस्य प्रसादनार्थं प्रसत्त्या आगृहीता स्वीकृता हराराधनेश्वरसपर्या यया सा ताम्। मदनस्य देह इव देहो यस्यैवंविध पुण्डरीकमुनिस्तन्निमित्त तदर्थमित्यर्थो वा। पक्षे मदनदेहनिमित्तम्। शेष पूर्ववत्। ईश्वरेण कदर्पदेहो भस्मसात्कृत, पश्चाद्धरस्येश्वर सेवया प्रसन्नीकृत्य नवीनदेह कारित इति पुराणप्रसिद्धम्। क्षीरोदेति। क्षीरसमुद्रस्याधिदेवताधिष्ठात्री लक्ष्मीस्तामिव। उभय विशेषयन्नाह—सहेति। महादेवस्य निकटे कन्याया महाश्वेतायाश्चन्द्रलेखासहवासात्परिचितिविशेषतो दृष्टाया हरचन्द्रलेखाया-मुत्कण्ठाद्भुतातिशयो यस्या सा ताम्। पक्षे क्षीरोदसमुद्रे य पूर्वंचन्द्रेण सहवासस्तेन परि-चिता निर्णीता हरस्य चन्द्रकला तस्यामुत्कण्ठा रणरणक यस्या इति बहुव्रीहि। इन्दुरिति। इन्दुश्चन्द्रस्तस्य मूर्ति शरीर तामिव। उभयो सादृश्यार्थमाह—स्वर्भानुरिति। स्वर्गतो योऽस्युच्चो भानु सूर्यस्तस्यातपलक्षण भय तस्मात्कृत विहित त्रिनयनस्य शम्भोश्छायावशा-च्छरणे गृह आगमन यया सा ताम्। पक्षे स्वर्भानु सैंहिकेय। शरणार्थं त्राणार्थम्। शेष पूर्ववत्। ऐरावतेति। ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य देहच्छवि शरीरत्वक्तामिव। उभयो साम्य-माह—गजेति। गजाजिनेन हस्तिचर्मणावगुण्ठनमाच्छादन तस्मिन्नुत्कण्ठितो य शिति-कण्ठो महादेवस्तस्य चिन्तित समीहितमुपनत पूरित यया सा ताम्। पक्षे गजाजिना-वगुण्ठनोत्कण्ठितेश्वरस्य चिन्तितेनापेक्षयोपनतां प्राप्ताम्। पशुपेति। पशुपतिरीश्वरस्तस्य

नार्थ शिवजी की पूजा कर रही रति थी। (पहले साथ साथ रहने का कारण परिचित बनी हुई शिवजी (के सिर पर स्थित) चन्द्रकला (के दर्शन के लिये) उद्विग्ना (लालसायुक्त) इसी कारण उस ओर (आने के लिये) आकृष्ट हुई समुद्र की अधिष्ठात्री देवी सी प्रतीत हो रही थी, राहु[1] के भय से (डरकर) शिवजी के शरण में आगमन किये हुई चन्द्रमा की मूर्ति सी प्रतीत हो रही थी। मानो कि वह गजकी खाल में अपने आपको ढाँप लेने के लिये व्यग्र हुई (कृष्ण कण्ठ) महादेव द्वारा स्मरण किये जाने पर वहा उपस्थित हुई ऐरावत गज के शरीर की कान्ति ही हो, मानो कि (मुँह से) बाहर आकर (वहाँ) बैठी हुई शिवजी के दक्षिण मुख की हँसी हो, शिवजी की (शरीर पर) मलने की राख ही सशरीर उपस्थित हो गयी हो, (अथवा शिवजी की शरीर पर राख मलने की क्रिया ही शरीर धारण किये हुई हो), शिवजी के कण्ठ पर से अन्धकार (कालिमा) को दूर करने के कार्य के लिये वहाँ आयी, अपने आपको (शरीरधारिणी आकृति में) प्रकट किये हुई चन्द्रज्योति हो), शरीरधारण किये हुई पार्वती

---

१ स्वर्भानु।

कृतदेहपरिग्रहाम्, कार्तिकेयकौमारव्रतक्रियामिव मूर्तिमतीम्, गिरिशवृषभदेहद्युतिमिव पृथगवस्थिताम्, आयतनतरुकुसुमसमृद्धिमिव शंकराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्, पितामहतपःसिद्धिमिव महीतलमवतीर्णाम्, आदियुगप्रजापतिकीर्तिमिव सप्तलोकभ्रमणखेदविश्रान्ताम्, त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासाम्, आगामिकृत-

---

दक्षिणमुखस्यापसव्याननस्य यो हासो हास्य तस्य छवि शोभा तामिव। अत्र दक्षिणग्रहण प्रायशस्तत्र हास एवेति तदर्थम्। उभयो साम्यमाह—बहिरिति। स्वस्थानान्मुखाच्च बहिरागत्य कृतमवस्थान ययेत्यभङ्गश्लेष.। श्वेतत्वपवित्रत्वसाम्येनाह—शरीरिणीं देहधारिणीं रुद्रस्येश्वरस्योद्धूलनमङ्गमर्दन तस्य भूतिं भस्मेव। प्रकाशरूपत्वसाम्यादाह—ज्योत्स्नेति। आविर्भूता प्रकटीभूता ज्योत्स्ना कौमुदी तामिव। हरेति। हरकण्ठे य कृष्णत्वसाम्यादन्धकारस्तस्य विघट्टन दूरीकरण तत्र य उद्यम प्रयत्नस्तेन प्राप्ता समागताम्। हरसनिधानसाम्येनाह—गौरीति। गौरी पार्वती तस्या मन शुद्धिश्चित्तनैर्मल्य तामिव। अमूर्ताया मूर्तेन कथ साम्यं स्यादित्याह—कृतेति। कृतो विहितो देहस्य परिग्रहः स्वीकारो यया सा ताम्। सातिशयत्वसाम्येनाह—कार्तीति। कार्तिकेयस्य षडाननस्य या कौमारव्रतक्रिया बाल्यावस्थाया यत्तपोनुष्ठानं तामिव। अत्रापि क्रियारूपत्वेन तदसम्भवादाह—मूर्तीति। मूर्तिमतीम्। सशरीरामित्यर्थं। गिरिशेति। गिरिशो महादेवस्तस्य यो वृषभो बलीवर्दस्तस्य देहद्युति शरीरच्छविस्तामिव। तस्या गुणरूपत्वेन तदुपमानाभावादाह—पृथगिति। शरीराद्बहिर्निर्गत्य पृथगवस्थिताम्। सशरीरामित्यर्थं। आयतनेति। आयतनं चैत्य तस्य तरवो वृक्षास्तेषा कुसुमसमृद्धि पुष्पसंपत्तामिव। तस्या आगमने निदानमाह—शंकरेति। शकरस्येश्वरस्याभ्यर्चनं पूजन तदर्थं स्वयमुद्यतामुद्योगयुक्ताम्। पितेति। पितामहस्य ब्रह्मणो या तप सिद्धिस्तामिव। तप सिद्धेरात्मगतत्वेनोपमानाभावादाह—महीतलेऽवतीर्णां कृतावताराम्। आदीति। आदियुगे कृतयुगे य प्रजापतिर्ब्रह्मा मरीच्यादयश्च तस्य तेषा वा कीर्तिर्यशस्तामिव। तस्या एकत्रावस्थाने कारणमाह—सप्तेति। सप्तसु लोकेषु यद्भ्रमण पर्यटन तस्माद्य खेद श्रमस्तेन विश्रान्तामुपविष्टाम्। त्रयीति। ऋग्यजु सामवेदास्त्रयी तामिव। एतस्यास्तत्रागमने हेतुमाह—कलीति। कलियुगेन कलिकालेन ध्वस्तो दूरीकृतो यो धर्मो वृषस्तस्माद्य शोक शुक्रेन गृहीत स्वीकृतो वनवासोऽरण्यनिवासो

के मन की शुद्धता-सरीखी प्रतीत हो रही थी। अथवा कार्तिकेय के विवाह न करने की क्रिया ही मानो शरीरधारण किये हुई हो। शिवजी के बैल की काति ही मानो (उसके शरीर से) पृथक् होकर बैठ गयी हो। उस मदिर (के निकटस्थ) वृक्षों के पुष्पों का वैभव ही मानो शकर की पूजा के लिये स्वय वहाँ उपस्थित हो गया हो। पितामह—ब्रह्मा—के तप की सफल प्राप्ति ही मानो (अपने स्वर्ग भवन से पृथ्वी पर उतर आयी हो। सातों लोकों में भ्रमण करने से थक कर विश्राम कर रही आदियुग—कृतयुग—के प्रजापतियों[1] की (श्वेत अर्थात् विशुद्ध) कीर्ति हो। कलियुग में नष्ट धर्म के शोक से वन निवास स्वीकार किये हुई वेदत्रयी (तीन वेद) हो।

---

१. मरीचि आदि।

युगबीजकलामिव प्रमदारूपेणावस्थिताम्, देहवतीमिव मुनिजनध्यानसंपदम्, अमरगजवीथिमिवाभ्रगङ्गाभ्यागमवेगपतिताम्, कैलासश्रियमिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्, श्वेतद्वीपलक्ष्मीमिवान्यद्वीपावलोकनकुतूहलागताम्, काशकुसुमविकाशकान्तिमिव शरत्समयमुदीक्षमाणाम्, शेषशरीरच्छायामिव रसातलमपहाय निर्गताम्, मुशलायुधदेहप्रभामिव मधुमदविघूर्णनायासविगलिताम्, शुक्लपक्षपरपरामिव

यया सा ताम्। इयमपि ध्वस्तधर्मशोकेन गृहीतवनवासेत्युभयो साम्यम्। धर्मातिशयवचनसाम्येनाह—आगामीति। आगाम्यग्रेभावी य कृतयुगस्तस्य या बीजकला निदानमात्र तामिव प्रमदारूपेण स्त्रीरूपेणावस्थितामासेदुषीम्। देहेति। देहवतीं शरीरधारिणीं मुनिजना वाचयमास्तेषा ध्यान प्राणायामस्तस्य सपत् समृद्धि तामिव। अमरेति। अमरा देवास्तेषा गजा हस्तिनस्तेषा वीथी ततिस्तामिव। गजसमूहस्य तत्रागमने निदानमाह—अभ्रेति। अभ्रगङ्गाकाशगङ्गा तस्यामभ्यागम समुखागमन तत्र यो वेगस्त्वरा तेन पतिता स्ताम्। कैलासेति। कैलासो रजताद्रिस्तस्य श्री शोभा तामिव। कीदृशीम्। दशेति। दशमुखो रावणस्तेन यदुन्मूलन तस्माद्य क्षोभस्त्रासस्तस्मान्निपतिता स्ताम्। इयमपि क्षोभेण निपतिता। श्वैत्यातिशय वर्णयन्नाह—श्वेतेति। यत्र सर्वमेव वस्तु श्वेत तच्छ्वेतद्वीप तस्य या लक्ष्मी श्रीस्तामिव। सा श्वेतद्वीप एव, नास्मिन्प्रदेश इत्याह—अन्येति। इतरद्वीपानां यदवलोकन वीक्षणं तदेव कुतूहलमाश्चर्यं तेनागता प्राप्ताम्। काश इति। काश इति इषीका तस्य कुसुमानि पुष्पाणि तेषा विकाशो विकसनं तस्य कान्ति प्रभा तामिव। कीदृशीम्। शरत्समय घनात्ययकालमुदीक्षमाणां प्रतीक्षमाणाम्। शेषेति। शेषो नागराजस्तस्य यच्छरीर तस्य च्छाया कान्तिस्तामिव। अत्र कथ तस्या आगम इत्याकाङ्क्षायामाह—रसेति। रसातलं भूतलमपहाय त्यक्त्वा निर्गता बहिरागताम्। मुशलेति। मुशलायुधो बलभद्रस्तस्य या देहप्रभा शरीरद्युतिस्तामिव। तस्या अत्रासभवमाशङ्क्याह—मध्विति। मधुमदेन कादम्बरीमदेन यद्विघूर्णन देहभ्रमस्तस्माद्य

भावी कृतयुग की बीजकला (का बीज) ही वहा स्त्रीरूप मे रह रही हो। मुनियों के (आध्यात्मिक) ध्यान की शोभा ही शरीर धारण किये हुई हो। आकाशगङ्गा पर आने के (समय अति) वेग के कारण वहाँ गिरी हुई देवताओं के हस्तियो की पक्ति-सरीखी[1] प्रतीत हो रही थी। रावण (द्वारा किये गये) विध्वस के समय हुए भय से गिरी हुई कैलाश (पर्वत) की शोभा सरीखी प्रतीत हो रही थी। दूसरे देशों को देखने की उत्सुकता के कारण वहाँ आयी हुई श्वेतद्वीपों की शोभा सरीखी प्रतीत हो रही थी। कास के पुष्पों के विकास की शोभा ही मानो (वहा) शरत् (के आगमन) की प्रतीक्षा कर रही थी। शेषनाग के शरीर की प्रभा ही मानो पाताल लोक को छोड़कर (वहा) प्रकट हो गयी थी। मद्य के नशे के समय (अपने शरीर के) चकरा जाने की थकावट के कारण (उस स्थान पर) गिरी हुई, बलराम (मुसलायुध) के शरीर की कान्ति-सरीखी प्रतीत हो रही थी। एक स्थान पर ढेर की हुई शुक्लपक्षों

१ वीथी, पंक्ति।

पुञ्जीकृताम्, सर्वहंसैरिव धवलतया कृतसंविभागाम्, धर्महृदयादिव विनिर्गताम्, शङ्खादिवोत्कीर्णाम्, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्, मृणालैरिव विरचितावयवाम्, दन्तदलैरिव घटिताम्, इन्दुकरकूर्चकैरिवाक्षालिताम्, वर्णसुधाच्छटाभिरिवाच्छुरिताम्, अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्, पारदरसधाराभिरिव धौताम्, रजतद्रवेणेव निर्मृष्टाम्, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दसिन्दुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम्, इयत्तामिव धवलिम्नः, स्कन्धावलम्बिनीभिरुदयतटगतादर्क-

---

आयास खेदस्तेन विगलिता च्युताम्। शुक्लेति। शुक्लपक्षस्तस्य परंपरा संततिस्तामिव। तस्या एकत्रावस्थितेरभावादाह—पुञ्जीति। पुञ्जीकृतामेकत्रीकृताम्। सर्वेति। धवलतया श्वेततया सर्वहंसैः समग्रसितच्छदैः कृतो विहितः संविभागः स्वश्वैत्यार्पणं यस्या सा तामिव। धर्मेति। धर्मो वृषस्तस्य हृदयाद्वक्षसो विनिर्गतामिव। शङ्ख इति। शङ्खाज्जलजादुत्कीर्णामिवोत्कीर्य निर्मितामिव। मुक्तेति। मुक्ताफलाद्रसोद्भवादाकृष्टामिवाकर्षितामिव। मृणालेति। मृणालैस्तन्तुलैर्विरचिता विहिता अवयवा अपघना यस्याः सा तामिव। दन्तेति। दन्ता हस्तिमुखरदनास्तेषां दलैः खण्डैर्घटितामिव निर्मितामिव। इन्दुरिति। इन्दुश्चन्द्रस्तस्य करा अंशवस्त एव कूर्चकाः कुञ्चिकास्तैराक्षालितामिव धौतामिव। वर्णेति। वर्णा शुक्ला। 'वर्णं स्वर्णे मखे स्तुतौ। रूपे द्विजादौ शुक्लादौ कुथायामक्षरे गुणे' इत्यनेकार्थः। एतादृशी या सुधा गृहधवलीकरणद्रव्यं तस्याश्छटाभिः पृषद्भिराच्छुरितामिवाच्छोटितामिव। अमृत इति। अमृतस्य पीयूषस्य ये फेना पिण्डा डिण्डीरसमूहास्तैः पाण्डुरीकृतामिव शुक्लीकृतामिव। पारदेति। पारदो रसेन्द्रस्तस्य रसो द्रवस्तस्य धाराः पङ्क्तयस्ताभिर्धौतामिव क्षालितामिव। रजेति। रजतं रौप्यं तद्द्रवेण तद्रसेन निर्मृष्टामिव निवर्षितामिव। चन्द्र इति। चन्द्रमण्डलं शशिबिम्बं तस्मादुत्कीर्णामिवोत्कीर्य कर्षितामिव। कुटजेति। कुटजो गिरिमल्लिका, कुन्दः प्रसिद्धः, सिन्दुवारो निर्गुण्डी, एतेषां कुसुमानि तेषां छवयः कान्तयस्ताभिरुल्लासितामिव प्रगुणीकृत-

---

की पंक्ति-सरीखी थी। ऐसी प्रतीत होती कि मानो सभी हंसों ने उसको अपनी अपनी श्वेतता (का कुछ भाग) बांट दिया हो। मानो कि वह धर्म के हृदय से निकल कर आयी थी। मानो कि वह शङ्ख से खोदी हुई अथवा किसी मोती से निकाली गयी थी। मानो कि मृणालतन्तुओं से बनाये गये शरीर वाली थी। मानो कि वह गजदन्त की परतों से घड़ी गयी थी। अथवा चन्द्रमा की किरणों की कूचियों से धोयी गयी सी प्रतीत होती थी अथवा श्वेत (करनेवाले) चूने के प्रकाश की किरणों से ढापी गई-सी (अथवा चूने से पुती हुई-सी) प्रतीत होती थी। अमृत फेन के पिण्डों से श्वेत की गयी-सी थी। मानो तरल पारे की धाराओं से धोयी गयी थी। मानो पिघली हुई चान्दी से माजकर साफ की गयी थी। मानो चन्द्रमण्डल में से काटकर बनायी गयी थी। मानो कुटज, कुन्द तथा सिन्धुवार फूलों की चमकीली कांति से सुशोभित थी। (संक्षेप यह है कि) वह श्वेतता की पराकाष्ठा (इयत्ता) ही थी। उसका सिर कन्धे तक लटकती हुई मानो उदयपर्वत के तट पर स्थित सूर्य के मण्डल से ली हुई प्रातःकालीन किरणों

बिम्बादुद्धृत्य बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिर-स्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम्, जटापाशग्रथितमुत्तमाङ्गेन मणिमय नामाङ्कमीश्वरचरणद्वयमुद्वहन्तीम्, रविरथतुरङ्गखुरक्षुण्णनक्षत्रक्षोदविशदेन भस्मना कृतललाटपट्टिकाम्,

---

शोभामिव। धवलिम्नेति। धवलिम्न श्वेतिम्न इयत्तामिवैतावत्त्वमिव। परमावधिमिवेत्यर्थ। अत्र सर्वत्र श्वेतत्वसाम्यादुपमानोपमेयभाव। न तु द्वयर्थता। पुन प्रकारान्तरेण विशेषयन्नाह—जटाभिरिति। जटा' सटास्ताभिरुद्भासित उद्भावल्येन शोभित शिरोभाग उत्तमाङ्गप्रदेशो यस्या सा ताम्। अथ जटा विशेषयन्नाह—स्कन्धेति। स्कन्धो भुजान्तर तत्रावलम्बिनीभिरवलम्बितु शील यासा ताभि। तासामारक्तत्व वर्णयन्नाह—उदयेति। उदय उदयाचलस्तस्य तट प्रस्थं तत्र गतात्प्राप्तादर्कबिम्बात्सूर्यमण्डलादुद्धृत्य निष्कास्य बालरश्मिर्बालातपस्तस्य प्रभाभि कान्तिभिर्निर्मिताभिरिवोत्पादिताभिरिव। उन्मिषदिति। उन्मिषन्ती स्फुरन्ती या तडिद्विद्युत्तस्या यत्तरल चञ्चल तेजस्तद्वत्ताम्राभि इरेतरक्ताभि। अचिरेति। अचिर यत्स्नानमाप्लवस्तेनावस्थिता अभ्यन्तरे लग्ना ये विरला स्तोका वारिकणा जलविप्रुषस्तेषा भासस्तत्ता तया। वारिकणाना श्वेतत्वादाह—प्रणामेति। प्रणामो नमस्कारस्तत्र लग्न पशुपतेरीश्वरस्य चरणभस्म पादविभूतिक्षोदो यास्वेवभूताभिरिव। जटापाशे जटाजूटे ग्रथित गुम्फितम्। मणीति। भक्तिविशेषप्रकटनार्थं मणिनिर्मित रत्नघटित नाम्नो मूलबीजस्याङ्कश्चिह्न यस्मिन्नेवभूतमीश्वरचरणद्वय शम्भुपादयुगलमुत्तमाङ्गेन शिरसोद्वहन्ती धारयन्तीम्। रविरिति। रविरथस्य सूर्यस्यन्दनस्य ये तुरङ्गा अश्वास्तेषा खुरा शफास्तै क्षुण्णानि चूर्णितानि यानि नक्षत्राणि भानि तेषा क्षोदश्चूर्ण तद्वद्विशदेन निर्मलेन भस्मना विभूत्या कृता विहिता ललाटपट्टिका पुण्ड्रविशेषो यया सा ताम्। ललाटस्य दृढत्वेन शिलारूपत्वाल्ललाटपट्टिकायाश्च त्रिपुण्ड्ररूपत्वेनार्धचन्द्राकारत्वादाह—शिखरेति। शिखर शिलाया सानुशिलाया श्लिष्टा लग्ना शशाङ्ककला यस्यामेवभूतां शैलराजमेखलामिव हिमाचल

से बनायी गयी, चमकती बिजली की झिलमिलाती चौंध के समान लाल पीली, अभी अभी (किये गये) स्नान के कारण (उन पर) कहीं-कहीं स्थित (लगे) जलकणों के होने से प्रणाम करते समय लगी हुई शिवजी के चरणो की भस्म की धूलिवाली-सी प्रतीत होती जटाओं से सुशोभित था। उसने अपने सिर पर (सिर से) जटाओं मे गूथा हुआ, मणियों से बना हुआ, नाम से मुद्रित (जिस पर उसका नाम खुदा हुआ था) शिवजी के चरणयुगल का लघुरूप धारण किया हुआ था।[1] सूर्य के रथ के घोड़ों के खुरों से पीसे गये तारो के चूर्ण के समान श्वेत राख से उसका चौड़ा मस्तक (ललाटपट्टिका) सुशोभित था, इस कारण वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो चोटी पर स्थित शिला से चिपटी चन्द्रकला से युक्त हिमालय (शैलराज) की मेखला (कटिभाग) हो। वह अप्रतिम (अत्यधिक) भक्ति से भरी हुई,

---

१ शिवजी की पादुकाएँ धारण की हुई थीं।

शिखरशिलाश्लिष्टशशाङ्ककलामिव शैलराजमेखलाम्, अतुलभक्तिप्रसाधितया लक्ष्यीकृतलिङ्गयापरयेव पुण्डरीकमालया दृष्ट्या सभावयन्तीं भूतनाथम्, अनवरतगीतपरिस्फुरिताधरपुटवशादतिशुचिभिः शुद्धहृदयमयूखैरिव गीतगुणैरिव स्वरैरिव, स्तुति वर्णैरिव मूर्तिमद्भिर्मुखान्निष्पतद्भिर्दशनांशुभिः पुनरपि स्नपयन्ती गौरीनाथम्, अतिविमलैश्च वेदार्थैरिव साक्षात्पितामहमुखादाकृष्टैर्गायत्रीवर्णैरिव ग्रथनस्फीततामुपगतै-

मध्यभागमिव। किं कुर्वतीम्। सभावयन्तीं सभावनाविषयीकुर्वतीम्। कम्। भूतनाथ महादेवम्। कया। दृष्ट्या। श्वेतत्वसाम्यादाह—अपरया भिन्नया पुण्डरीकमालयेव सिताम्भोजपङ्क्त्येव। अथ दृष्टिं विशेषयन्नाह—अतुलेति। अतुला निरुपमा या भक्तिराराध्यत्वेन ज्ञान तया प्रसाधितया प्रसन्नया। लक्ष्यीति। लक्ष्यीकृत ध्यानावलम्बनीकृत लिङ्ग स्थावर यया सा तया। पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—अनवेति। अनवरत निरन्तर यद्गीत गान तेन परिस्फुरित प्रचलितो योऽधरपुट ओष्ठपुटस्तद्वशान्मुखादास्यान्निष्पतद्भि क्षरद्भिर्दशनांशुभिर्दन्तदीप्तिभि। पुनरपि पूजाप्रारम्भे स्नपितत्वाद्द्वितीयवारमपि गौरीनाथ महादेव स्नपयन्तीं स्नपनं कुर्वतीम्। अथ दशनांशून्विशिनष्टि—अतीति। अतिशयेन सर्वाधिक्येन शुचिभि पवित्रै। अतिनैर्मल्यादाह—शुद्धेति। शुद्ध निर्मल यद्धृदय चेतस्तस्य मयूखा किरणास्तैरिव। गीतेति। गीताना गुणा मधुरत्वादयस्तैरिव। स्वरेति। स्वरा षड्जादयस्तैरिव। स्तुतीति। स्तुतिर्नुतिस्तस्या वर्णैरिवाक्षरैरिव। वर्णाना तावत्काल स्थातुमशक्यत्वात्तदभावादाह—मूर्तिरिति। पुनस्ता विशेषयितुमक्षवलयगतमुक्ताफलान्यादौ विशेषयन्नाह—अतीति। अतिविमलैरतिनिर्मलैर्वेदा ऋक्प्रभृतयस्तेषामर्थैरिवाभिधेयैरिव। तत्रां तदसभवमाशङ्क्याह—साक्षादिति। पितामहमुखात्प्रजापतिवदनात्साक्षादव्यवधानादाकृष्टैरिवाकर्षितैरिव। गायत्रीति। गायत्री मन्त्रविशेषस्तस्या वर्णैरक्षरैरिव। वर्णानाममूर्तत्वात्तदसभवादाह—ग्रथनेति। ग्रथनेन रचनाविशेषेण

(अलकृत) लिङ्ग को लक्ष्य बनाये हुई, मानो दूसरी[1] श्वेत कमलों की (मूर्तिपर स्थापित) माला सी प्रतीत होती अपनी दृष्टि से शिवजी का आदर कर रही थी, शिवजी को देख रही थी। वह अपने निरन्तर (गाये जारहे) गीत के समय फड़फड़ाये निचले होठ के कारण मुख से निकलती हुई, मानो शरीरधारिणी शुद्ध हृदय की किरणों-सरीखी अथवा सगीत की श्रेष्ठताओं-सरीखी अथवा (विशुद्ध) स्वरों सरीखी, अथवा स्तुति के (उस मंत्र के) अक्षरों सरीखी प्रतीत होती, उसके दाँतों की अत्यन्त चमकीली किरणों द्वारा मानों (दूसरी बार) पार्वती के पति शिवजी को स्नान करा रही थी। उसके गले में आँवले जितने मोटे मोतियों की माला पड़ी हुई थीं, वे मोती इतने अधिक श्वेत (स्वच्छ) थे कि मानों (उनका उच्चारण करते हुए) ब्रह्मा के मुख से ही लिये गये शरीरधारी वेदों के अर्थ थे, अथवा (पवित्र) गायत्री मन्त्र के उन अक्षरों-सरीखे थे जो गूथने से माला बन गये थे,[2] अथवा वे निकाले गये, विष्णु

१. एक माला तो कमलपुष्पों की पड़ी हुई थी ही, दृष्टि मानो दूसरी माला थी।

२ ग्रथनस्फीततामुपगतैः—इस पाठभेद के अनुसार 'गूंथने से बहुत अधिक प्रतीत होते'=अर्थ होगा।

नारायणनाभिपुण्डरीकबीजैरिवोद्धृतैः सप्तर्षिभिरिव करस्पर्शपूतमात्मानमिच्छद्भिस्तारकारूपेणागतैरामलकीफलस्थूलैर्मुक्ताफलैरुपरचितेनाक्षवलयेनाधिष्ठितकण्ठभागाम् , परिवेषपरिगतचन्द्रमण्डलामिव पौर्णमासीनिशाम्, अधोमुखहरशिरःकपालमण्डलाकारेण मोक्षद्वारनियुक्तकलशकान्तिना स्तनयुगलेनैकहंसमिथुनसनाथामिव गङ्गाम्, गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिबद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम्, अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूख-

---

स्फीतता पुष्टतामुपगतैः प्राप्तैः । अविश्वे तत्त्वसाम्यादाह—नारा इति । नारायणस्य जनार्दनस्य नाभिपुण्डरीकं नाभिकमलं तस्य बीजैरिवोत्पत्तिनिदानैरिव उद्धृतैः । सप्तर्षीति । करस्पर्शेन हस्तसंश्लेषेण पूतं पवित्रमात्मानमिच्छद्भिर्वाञ्छद्भिस्तारकारूपेण नक्षत्रस्वरूपेणागतैः प्राप्तैः सप्तर्षिभिरिव । एतेन मुक्ताफलानां नक्षत्रसाम्यम् । परिमाणविशेषं प्रदर्शयन्नाह—आमेति । आमलकी शिवा तस्याः फलानि तद्वत्स्थूलैः स्थविष्ठैरेवंविधैर्मुक्ताफलैः रसोद्भवैरुपरचितेन निर्मितेनाक्षवलयेन जपमालिकयाधिष्ठित आश्रितः कण्ठभागो निगरणप्रदेशो यस्याः सा ताम् । परीति । परिवेषः परिधिस्तेन परिगतं सहितं चन्द्रमण्डलं शशिबिम्बं यस्यामेतादृशीं पौर्णमासीनिशामिव राकारात्रिमिव । मण्डलाकारत्वेनात्र वलयस्य परिवेषसाम्यम् , तस्या मुखस्य च चन्द्रसाम्यम् , तस्याश्च पौर्णमासीसाम्यम् । अथ पुनस्तत्कुचयुगलं तच्छ्यामत्वपीनत्ववर्णनद्वारा तामेव वर्णयन्नाह—अध इति । ऊर्ध्वंमुखे कपाले श्यामता नास्तीत्यतोऽधोमुखं यद्धरशिरःकपालं तद्वन्मण्डलाकारेण वर्तुलाकृतिना । हरपददानेन स्तने धवलत्वं द्योत्यते । ईश्वरस्य धवलत्वात् । मोक्ष इति । मोक्षो महानन्दस्तस्य द्वारे नियुक्तौ स्थापितौ यौ कलशौ निपौ तद्वत्कान्तिः शोभा यस्य स तेन । एवंविधेन स्तनयुगलेनोपलक्षिताम् । कामिव । एकं यद्धंसमिथुनं चक्राङ्गयुग्मं तेन सनाथा सहिता गङ्गामिव जाह्नवीमिव । पुनः किंविशिष्टाम् । कल्पतरवो मन्दारास्तेषां सरलत्वेन लतोपमानं तस्या वल्कलेन चोचेन कृतमुत्तरीयमुपसंव्यानं तस्य कृत्यं कार्यं यस्याः सा ताम् । अथ वल्कलं विशेषयन्नाह—चामरेति । चामरं वालव्यजन

की नाभि के श्वेत कमल के बीजों सरीखे थे अथवा अपने आपको उसके हाथ के छूने से पवित्र होना चाहनेवाले नक्षत्रों के रूप में आये सप्तर्षियों-सरीखे थे, और इस कारण वह कन्याप्रभामण्डल (परिवेष) से घिरे चन्द्रबिम्ब वाली पूर्णमासी की रात सरीखी प्रतीत हो रही थी। औंधे मुँह शिव के सिर पर स्थित खोपड़ी की आकृति वाले मोक्ष के द्वार पर स्थापित दो कलशों की भाँति चमकते दो स्तनों से वह ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो (अपने जल में) केवल दो हंसों से युक्त (स्वर्गीय) गंगा हो। उसने उत्तरीय वस्त्र का काम कल्पतरु की छाल से निकाल लिया था (कल्पतरु की छाल दुपट्टे के रूप में उत्तरीय वस्त्र के स्थान पर पहनी हुई थी)—यह छाल मानो पार्वती की सटाओं (के बालों) की बनायी गयी थी, चँवरी जैसे सुन्दर आकार की थी, उसकी गाँठ उसने अपने दोनों स्तनों के बीच में लगायी हुई थी, विषमाक्ष (शिव) के समीप से उपहार मे प्राप्त, (शिवजी के) शिरोमुकुट के (रूप मे काम आते) चन्द्रमा की किरणों के जालभूत अर्थात् किरणों की माला सरीखे

जालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्, आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तानचरणतलप्रभापरिष्वङ्गाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रावृतनितम्बाम्, यौवनेनापि स्वकालोपसर्पिणा निर्विकारेण विनीतेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्, लावण्येनापि कृतपुण्येनेव स्वच्छात्मना परिगृहीताम्, रूपेणापि रुचिरलोचनेन विगतचापलेनायतनमृगेणेव सेविताम्, उत्सङ्गगता च स्वसुतामिव सूक्ष्मदन्तखण्डि-

---

तद्वद्रुचिरा मनोहराकृतिराकारो यस्य स तेन। प्रलम्बत्वेन श्वेतत्वेन च तत्साम्यमिति भाव। स्तनेति। स्तनयुगलस्य मध्ये निबद्धो ग्रन्थिर्यः स तेन। उज्ज्वलत्वसाम्यादुत्प्रेक्षते—गौरीति। गौरी पार्वती तस्या सिंहो मनस्तालस्तस्य या सटा जटा तन्मयेनेव तद्विकारेणेव। पुन किंविशिष्टाम्। मण्डलीकृतेन वर्तुलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन पवित्रीकृत पावनीकृत कायो देहो यस्या सा ताम्। अथ ब्रह्मसूत्र विशिनष्टि—अयुग्मेति। अयुग्मलोचन ईश्वरस्तस्य सकाशात्समीपात्प्रसाद प्रसन्नता तेन लब्धेन प्राप्तेन। चूडेति। चूडामणिभूतो यश्चन्द्रस्तस्य मयूखा किरणास्तेषां जालेनेव समूहेनेव। प्रकारान्तरेण तामेव विशेषयन्नाह—दुकूलेति। दुकूलपटेन क्षौमवस्त्रेण प्रावृतावाच्छादितौ नितम्बावारोहौ यस्या सा ताम्। अथ दुकूलपट्ट विशेषयन्नाह—आप्रपदीनेति। आपदव्यापकेन। 'तत्तु स्यादाप्रपदीन व्याप्नोत्याप्रपद हि यत्' इति कोश। तेन स्वभावत. प्रकृत्या सितेनापि शुभ्रेणापि ब्रह्मासन ध्यानासन तस्य बन्धो रचनाविशेषस्तेनोत्तानमूर्ध्वमुख यच्चरणयो पादयोस्तल तस्य प्रभा कान्तिस्तस्या परिष्वङ्गात्संश्लेषाल्लोहितायमानेनारुणायमानेन। एतेन चरणतलयोरारुण्यातिशयो व्यज्ञित। पुन कीदृशीम्। यौवनेनापि तारुण्येनाप्युपास्यमानां सेव्यमानाम्। केनेव। स्वकालोपसर्पिणा निजसमयप्राप्तेन निर्विकारेण विकृतिवर्जितेन विनीतेन प्रसृतेनैवभूतेन शिष्येणेव विनयेनेव। यौवनस्यापि स्वकालोपसर्पित्वादिगुणविशिष्टत्वेन तत्साम्यमिति भाव। लावण्येति। लावण्य चातुर्य तेन परिगृहीता स्वीकृताम्। केनेव। स्वच्छात्मना निर्मलचित्तेन कृतपुण्येनेव सुकृतिनेव। अत्र स्वच्छात्मत्वमेवोभयसाम्यम्। रूपेति। रूपं सौन्दर्यं तेनापि सेवितामाश्रिताम्। केनेव। रुचिरलोचनेन मनोहरनेत्रेण विगत चापल चापल्य यस्मादेवंभूतेनायतनमृगेणेव गृहसारङ्गेणेव। अत्र चारुलोचनत्व विगतचापलत्व

प्रतीत होते ब्रह्मसूत्र (के धारण करने) से उसका शरीर पवित्र हुआ हुआ था। पावों तक लटकते तथा स्वभावत. श्वेत भी परन्तु ब्रह्मासन लगाने के कारण ऊर्ध्वमुख हुए उसके तलुओं की (लाल) चमक के सम्पर्क से लाल लाल दिखायी देते रेशमी वस्त्र से उसके नितम्ब ढके हुए थे। अपने (उचित) समय पर प्रकट आवेगरहित तथा सर्वथा नियन्त्रित यौवन उसकी सेवा ऐसे कर रहा था कि जैसे निश्चित समय पर (गुरु के समीप) आया हुआ आवेगों से रहित विनीत शिष्य सेवा कर रहा हो। पुण्य कार्य किये हुआ सा, देखने मे चमकीला प्यारापन भी उसको आलिंगित किये हुआ था। मनोहर नेत्रों वाले, चपलतारहित (समाज से न भागने वाले) घरेलू हरिणसरीखा मनोहर नेत्रों सहित परन्तु इसकी सहवर्तिनी उद्दण्डता रहित सौन्दर्य भी (उसके शरीर पर) विद्यमान था। और अपनी पुत्री-सरीखी अपनी गोदी में

काङ्गुलीयकापूरिताङ्गुलिना त्रिपुण्ड्रकावशिष्टभस्मपाण्डुरेण प्रकोष्ठबद्धशङ्खखण्डकेन नखमयूखदन्तुरतया गृहीतदन्तकोणेनेव दन्तमयीं दक्षिणकरेण वीणामास्फालयन्तीम्, प्रत्यक्षामिव गन्धर्वविद्या मणिमण्डपिकास्तम्भलग्नाभिरात्मानुरूपाभिः सहचरीभिरिव सवीणाभिर्विलासवतीभिः प्रतिमाभिरुपेताम्, स्नपनार्द्रलिङ्गसङ्क्रान्तप्रतिबिम्बतयाति-प्रबलभक्त्याराधितस्य हृदयमिव प्रविष्टा हरस्य, हारलतयेव प्राप्तकण्ठयोगया प्रह-

---

च्चोभयो साम्यम्। पुन किं कुर्वतीम्। दक्षिणकरेणापसव्यपाणिना दन्तमयीं गजदन्तप्रचुरां वीणा वल्लकीमास्फालयन्तीं वादयन्तीम्। अथ वीणा विशिनष्टि—उत्सङ्गेति। उत्सङ्गगता क्रोडप्राप्तां स्वसुतामिव निजात्मजामिव। अथ दक्षिणकर विशेषयन्नाह—सूक्ष्मेति। सूक्ष्मा स्निग्धा या दन्तखण्डिका नागदन्तशकल तस्य यान्यङ्गुलीयकान्यङ्गुलीभूषणानि तैरापूरिता आकीर्णा व्याप्ता अङ्गुलयो यस्य स तेन। त्रिपुण्ड्रमिति। त्रिपुण्ड्रकास्तिलकविशेषादवशिष्टमुर्वरित यद्भस्म तेन पाण्डुरेण श्वेतेन। प्रकोष्ठेति। प्रकोष्ठ' कलाचिका तत्र बद्धो य शङ्खस्तस्य खण्ड एव खण्डक। स्वार्थे क। जलजशकल यस्मिन्स तेन। श्वेतत्वसाम्यादाह—नखेति। नखा पुनर्भवास्तेषा मयूखा किरणास्ते दन्तुरा उन्नता यस्मिंस्तस्य भावस्तत्ता तया गृहीत आत्तो दन्तस्य कोणो वीणादिवादन येन स तेनैव। 'कोणो वीणादिवादनम्' इति कोश। प्रत्यक्षेति। प्रत्यक्षामिन्द्रियगोचरां गन्धर्वविद्यामिव देवगायनविद्यामिव। मणिमण्डपिकानां स्वच्छतया तेषु प्रतिबिम्बवशादाह—मणीति। मणिमण्डपिका रत्ननिर्मिता चतुष्किका तस्या स्तम्भलग्ना-

---

रखी हुई, हाथी दात की वीणा को वह छोटे छोटे शङ्ख के टुकड़ो से बने छल्लों से भरी अगुलियों वाले, (अपने मस्तकपर) (पवित्र) त्रिपुण्डक चिन्ह (बनाने पर) से बची हुई भस्म मे श्वेत हुए, कलाई पर बाधे हुए शङ्ख के टुकड़ो वाले, और नाखूनो की किरणों से दन्तुरित (किरणरूपी बालों से युक्त) होने के कारण (वीणा बजाने के लिये) हाथी दान्त की बनी हुई (वीणादि) बजाने की छड़ी से युक्त से प्रतीत होते, दाये हाथ से बजा रही थी। मानो वह शरीरधारिणी सगीत विद्या ही थी। वह उस मदिर के मणिनिर्मित खम्भों मे प्रति-बिम्बित वीणा को हाथ में लिये हुई अपनी प्रतिमाओं (प्रतिबिम्बों) से घिरी हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो मणिमय खम्भों के सहारे खड़ी हुई (उम्र, सौन्दर्य आदि में) अपनी-सरीखी सखियों से घिरी हुई हो। (अभिनव) स्नान से गीले लिंग पर पड़े हुए (अपने) प्रतिबिम्ब के कारण वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो अति प्रबल भक्ति द्वारा पूजित शिवजी के हृदय में ही प्रविष्ट हो गयी हो। वह अपनी वीणा के सहायक साज के रूप में गाये गये गीत से विरूपाक्ष (भगवान्) शिव को रिझा रही थी (शिवजी के समीप वीणा बजा रही थी[1])—गले मे सटकर लगी हुई (गले मे पड़ी हुई) मोती माला की भाँति उसके गीत को भी उसके गले का सयोग प्राप्त था अर्थात् उसका वह सगीत गले से

---

१ उपवीण् to play on the Vina 'सत्यापपाश' आदि सूत्र से णिच् तथा नाम-धातुशब्द की रचना बीणा बजाना

पङ्क्त्येव ध्रुवप्रतिबद्धया क्रुद्धयेव रागरक्तमुखवर्णया मत्तयेव घूर्णितमन्द्रतारयोन्मत्तयेवानेककृततालया मीमांसयेवानेकभावनानुविद्धया गीत्या देव विरूपाक्षमुपवर्ण-

---

भिरात्मानुरूपाभिरात्मसदृशीभि । 'यादृशं रूपे तादृशं प्रतिबिम्बे' इत्युक्ते । सखीणाभिः सवल्लकीभि' प्रतिमाभिरात्मच्छायाभि सहचरीभिरिव सपर्याकारिणीभिरिवोपेता सहिताम् । स्नपनेति । स्नपनेन प्रक्षालनेन । एतेनागन्तुकमलनिवृत्ति सूचिता । तेनार्द्रं यल्लिङ्ग तत्र सक्रान्त प्रविष्ट यत्प्रतिबिम्ब तस्य भावस्तत्ता तया । अतीति । अतिप्रबलात्युत्कृष्टा या भक्तिरा राध्यत्वेन ज्ञान तयाराधितस्य सेवितस्य हरस्येश्वरस्य हृदयमिव चित्तमिव प्रविष्टा प्रवेश कृत वतीम् । पुन किं कुर्वतीम् । विरूपाक्ष देवं गीत्या गानेनोपवर्णयन्तीं स्तुवन्तीम् । अथ गीतिं विशेषयन्नाह—हार इति । ग्रास कण्ठयोगो निगरणसबन्धो रागाणामवस्थानविशेषो गीतशास्त्रप्रसिद्धश्च यया सा तया । कयेव । हारलतयेव मुक्तास्रजेव । ग्रहेति । ग्रहाणा नक्षत्राणां पङ्क्ति श्रेणिस्तयेव । उभयो साम्यमाह—ध्रुवेति । ध्रुवो गीतशास्त्रे प्रसिद्धस्तेन प्रतिबद्धया रचितया । पक्षे ध्रुव औत्तानपादि । क्रुद्धयेव कुपितयेव । उभयो साम्यार्थमाह—रागरक्तेति । रागा श्रीरागादयस्तै रक्ता मिश्रिता मुखे प्रारम्भे वर्णा अक्षराणि यस्यां सा तया । पक्षे रक्तो लोहितो मुख आस्ये वर्णो यस्या सा तया । मत्तयेव क्षीबयेव । एतयोस्तुल्यता प्रदर्शयन्नाह—घूर्णितेति । घूर्णिता दोलना प्राप्ता मन्द्रा उर प्रदेशोद्भवास्तारा शिर समुद्भवा' स्वरा यस्या सा तया । पक्षे घूर्णिता प्रचलायिता मन्द्रा अलसास्तारा यस्यामिति विग्रह । उन्मत्तेति । उन्मत्तयेवोन्मादवायुग्रस्तयेव । उभयो शब्दसादृश्यमाह—अनेकेति । अनेके बहव कृता विहितास्ताला कालक्रियामानरूपा यस्यां सा तया । पक्षे ताला हस्तसयोगा । मीमांसेति । मीमांसा विचारणा तयेव । 'मीमांसा तु विचारणा' इति कोश । उभयो सादृश्यार्थमाह—अनेकेति । अनेका विविधप्रकारा या भावना घोलनाविशेषास्तैरनुविद्धया स्यूतया । पक्षे भावना शब्दनिष्ठा, अर्थनिष्ठा यागादिप्रवृत्त्यनुकूलाख्यातार्थरूपा ।

निकल रहा था,[1] (अपनी चूलभूत) ध्रुव से बन्धे ग्रहपरिवार की भाँति उसका सगीत टेक के रूप में एक निश्चित पद्य ध्रुव से बन्धा हुआ था, जैसे कि क्रुद्ध स्त्री के चेहरे का रग लाल हो जाता है वैसे उस गीत के (मुखवर्ण) आरम्भिक अक्षर राग अर्थात् भक्ति पूर्ण थे, जैसे कोई नशे में धुत्त स्त्री अपनी निस्तेज (मन्द्र) अक्षिगोलकों को घुमाये रहती है वैसे ही उस गीत मे मन्द तथा उच्च स्वरों (ताना) को देर से निरूपण किया जा चुका था, प्रलापिनी स्त्री जैसे (अपने हाथों से) अनेक बार ताल दे चुकी होती है वैसे ही वह अनेक (विविध प्रकार के) तालों सहित गाया गया था, और पूर्वमीमासा जैसे (यज्ञादि की प्रेरिका) अनेक भावनाओं से बिंधी हुई (भरपूर) होने के कारण अनेक भावनानुविद्ध है वैसे ही वह गीत अनेक भावनाओं (परिवर्तमान आवेगों) से युक्त था। (उसके अपने) गान

---

१ लेखक की यह शैली है कि वह प्राय अर्थश्लेष के द्वारा ही दो वस्तुओं की समता की उत्प्रेक्षा करता है। उसकी इस शैली के उदाहरणों में से यह भी एक स्थल है।

यन्तीम्, अतिमधुरगीतावकृष्टैर्ध्यानमिवाभ्यस्यद्भिर्निश्चलकर्णपुटैर्मृगवराहवानरवारणशरभसिंहप्रभृतिभिर्वनचरैराबद्धमण्डलैराकर्ण्यमानगीतानुविद्धविपञ्चीनिर्घोषाम्, अमरापगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्, त्रिपुरारिशरशलाकामिव तपोमयीम्, पीतामृतामिव विगततृष्णाम्, ईशानशिरःशशिकलामिवानुपजातरागाम्,

---

पुन प्रकारान्तरेण तामेव विशेषयन्नाह—आकर्ण्येति । आकर्ण्यमान श्रूयमाणो गीतानुविद्धो गानसयुक्तो विपञ्च्या वल्लक्या निर्घोषो निनादो यस्या सा ताम् । कै । वनचरैरण्यचारिभि । अथ वनचरान्विशेषयन्नाह—आबद्धेति । आबद्ध रचित मण्डल वलयाकारेणावस्थितिर्यैं । अतीति । अतिमधुर कर्णसुखदं यद्गीत गान तेनावकृष्टैराकृष्टै । निश्चलेति । निश्चलानि स्तिमितानि कर्णपुटानि येषां तैस्तएव ध्यान चित्तवृत्तिनिरोधमभ्यस्यद्भिरिवाभ्यास कुर्वद्भिरिव । मृगेति । मृगा कुरङ्गा, वराहा क्रोडा, वानरा गोलाङ्गूला, वारणा हस्तिन, शरभा अष्टापदा, सिंहा हर्यक्षा, एते प्रभृतय आद्या येषा तै । तदाश्रितगीतस्य प्रवाहरूपत्वेनाह—अमरेति । अमरापगा गङ्गा तामिव । अत्र कथ तस्या सभव इत्याशङ्क्याह—नभस इति । नभस आकाशादवतीर्णामागताम् । दीक्षित. सोमयाजी तस्य वाग्भारती तामिव । उभयो साम्यमाह—अप्राकृतेति । अप्राकृताममानुषधर्मिणीम्, उत्तमकुलोत्पन्ना वा । पक्षेऽप्राकृतीं साधुशब्दमयीम् । दीक्षितस्य प्राकृतवाङ्निषेधादिति भाव । कान्त्याधिक्यमाशङ्क्याह—त्रिपुरारिरिति । त्रिपुरारिर्महादेवस्तस्य शर शिलीमुखस्तस्य शलाकेषिका तामिव । उभयोस्तुल्यतामाह—तप इति । तपोमयीं तपसस्तेजोरूपत्वात् । पक्षे तेजोमयीं प्रकाशरूपाम् । ईश्वरबाणस्य लोहमयत्वादिति भाव । आन्तरगुणवर्णनद्वारा तामेव विशेषयन्नाह—पीतेति । पीतमास्वादितममृतं पीयूष यया सैवभूतामिव । एतयो साम्यमाविष्कुर्वन्नाह—विगतेति । विगता तृष्णा लोभो यस्या. सा ताम् । पक्षे तृष्णा तृषा । ईशानेति । ईशान ईश्वर. । 'शम्भु. शर्व स्थाणुरीशान ईश' इत्यभिधानचिन्तामणि । तस्य शिर उत्तमाङ्ग तत्र या शशिकला चन्द्रकला तामिव । उभयो सादृश्यमाह—अन्विति । अनुपजातोऽसमुत्पन्नो रागो यस्या

से सयुक्त वीणा के शब्द (सगीत) को अत्यन्त आकर्षक सगीत द्वारा आकर्षित हुए, न हिलते कानों वाले, योगाभ्यास करने से प्रतीत होते, गोले बान्धकर वहाँ एकत्रित आबद्ध मण्डलै) जगली हरिण, सूअर, बन्दर, शरभ, सिंह आदि पशु सुन रहे थे। (वह इतनी श्वेत तथा निर्मल थी कि) मानो आकाश से उतर कर आयी हुई आकाशगगा प्रतीत होती थी। जैसे कि दीक्षित—किसी यज्ञ के लिये प्रस्तुत—व्यक्ति की वाणी प्राकृत (सामान्य व्यक्ति) की वाणी से भिन्न अर्थात् सस्कृत होती है ऐसे वह एक सामान्य मानव से भिन्न—अर्थात् दिव्य प्रतीत होती थी। चमकीली (तपोमयी) त्रिपुरारि—(शिवजी) के बाण की पतली, लम्बी नोक (शलाका) सरीखी तेजस्विनी थी। अमृतपान किये हुआ व्यक्ति जैसे प्यास से रहित होता है—ऐसे ही वह (सासारिक) इच्छाओं से रहित हो चुकी थी। ईशान अर्थात् ईश्वर—(शिवजी) के मस्तक पर की चन्द्रकला मे लालिमा नहीं होती वैसे ही उसमें विषयों के प्रति

अमथितोदधिजलसपदमिवान्तःप्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वन्द्वाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योतिःप्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्ष-हृदयाम्, महीमिव जलभूतदेहाम्, हिमसमयदिनमुखलक्ष्मीमिव परिगृहीतभा-

---

सा ताम्। विरक्तामित्यर्थ। पक्षे राग आरक्तता। आरक्तामित्यर्थ। अमथीति। अमथितो-ऽविलोडितो य उदधि समुद्रस्तस्य जल पानीय तस्य सपत्सम्पत्तिस्तामिव। उभयो. साधर्म्य माह—अन्त इति। अन्तर्मध्ये प्रसन्ना हृष्टचित्ताम्। पक्षेऽन्त प्रसन्नामकलुषिताम्। असमस्त इति। असमस्तासमासगा या पदवृत्ति कैशिक्यादिस्तामिव। 'कैशिक्याद्या पदवृत्तय' इत्य-लकारे प्रसिद्धम्। उभयो साधर्म्यमाह—अद्वन्द्वेति। द्वन्द्वो युद्धं तद्रहितम्। 'द्वन्द्व समाघात' इति कोश। पक्षे द्वन्द्व समास। बौद्ध इति। बौद्ध सुगतस्तस्य बुद्धिर्धिषणा तामिव। एतयोस्तुल्यतामाह—निरेति। आलम्बनमाश्रयस्तद्रहिताम्। स्वतन्त्रामित्यर्थ। पक्षे निरालम्ब नामर्थशून्याम्। तन्मतेऽर्थाना घटपटादीनामभावात्। शून्यवादित्वादित्यर्थ। वैदेहीति। वैदेही जानकी। 'वैदेही मैथिली सीता' इत्यभिधानचिन्तामणि। तामिव। उभयोस्तुल्यत्व निरूपयन्नाह—प्राप्तेति। प्राप्त आसादितो ज्योतिषि परमात्मनि प्रवेशो यस्या. सा ताम्। पक्षे प्राप्तो ज्योतिषि वह्नौ प्रवेशो ययेति बहुव्रीहि। द्यूतेति। द्यूत दुरोदर तस्य कला विज्ञान तत्र कुशला प्रवीणा तामिव। उभयो समानता प्रदर्शयन्नाह—वशीति। वशीकृतान्यक्षानीन्द्रियाणि हृदय चित्त च यया सा ताम्। पक्षे वशीकृतमक्षैः पाशकैर्हृदयं यस्या इति बहुव्रीहि। महीति।

प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ था। (अमृत के लिये) अभी न विलोड़े गये महासमुद्र की जलराशि जैसे भीतर से स्वच्छ (अथवा भीतर प्रसन्ना-शराब से युक्त[1]) थी वैसे वह भी अन्त प्रसन्ना अर्थात् शान्त अन्त करण वाली अथवा हृष्ट हृदया थी। जैसे कि समास रहित पद रचना शैली द्वन्द्व समास रहित (भी) होती है ऐसे ही वह (सुख दुःख हानि लाभ आदि) द्वन्द्वों से रहित थी। जैसे कि बौद्धों का सिद्धान्त आधाररहित होता है अर्थात् किसी भौतिक पदार्थ के (ज्ञान का) आधार स्वीकार नहीं करता है वैसे ही वह आसक्तिरहित (अथवा आश्रय से रहित) थी। सीता ने जैसे अग्नि में प्रवेश प्राप्त कर लिया था (परीक्षार्थ वह अग्नि मे प्रविष्ट हो गयी थी) वैसे ही उसमें परम ज्योति (अर्थात् ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप) का प्रवेश विद्यमान था, जुआ (खेलने) की कला में चतुरा स्त्री जैसे पासो (को दक्षता से चलाने) के रहस्य को जीते हुई होती है अर्थात् उसको भली भाँति जानती है वैसे वह इन्द्रियों को अपने आधीन किये हुए मनवाली (वशीकृताक्षहृदया) थी। पृथ्वी जैसे जल से पुष्ट पिंड वाली (अथवा ठोस पदार्थों से युक्त पिंडवाली) होती है ऐसे ही वह भी जलभृत देह वाली (केवल) जल पीकर देह धारण किये हुई थी। जैसे कि शरत्कालीन प्रात काल की छवि (कुहरे से युक्त होने के कारण) सूर्य के प्रकाश को (आक्रान्त) धूमिल

---

१. प्रसन्ना का अर्थ शराब भी है। अमथित सागर के भीतर शराब थी जो मथने पर उसमे निकली थी।

स्करातपाम्, आर्यामिवोपात्तयतिगणोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलावस्थानाम्, अंशुमयीमिव तनुच्छायानुलिप्तभूतलाम्, निर्ममाम्, निरहङ्काराम्, निर्मत्सराम्, अमानुषाकृतिम्, दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवयःपरिमाणामप्यष्टादशवर्षदेशीयामिवोप-

मही वसुंधरा तामिव। उभयो शब्दसाम्यमाह—जलेति। जलेन नीरेण भृतो धृतो देहो यया सा ताम्। निराहारामित्यर्थं। पक्षे जलेन भृता पोषिता देहा यस्याम्। तदुक्तम्—'वृष्टेरोषधय। ओषधीभ्योऽन्नम्। तद्रसरूपेण शुक्रत्वमधिगच्छति। शुक्राद्दै जरायुजा देहा' इति। हिमेति। हिमसमय शीतकालस्तस्य दिनमुख प्रत्यूषस्तस्य लक्ष्मी श्रीस्तामिव उभयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—परीति। परि सामस्त्येन गृहीतो भास्करस्य सूर्यस्यातप आलोको यया सा ताम्। 'तपस्विना सूर्यातपग्रहण महाफलाय' इति श्रुते। पक्षे परिगृहीतो मुषितो भास्करस्यातप कान्तिप्रकाशो ययेति बहुव्रीहि। आर्येति। आर्या छन्दोविशेषस्तामिव। उभयो साधर्म्यमाह—उपात्तेति। उपात्ता स्वीकृता यतिगणाना मुनिजनाना उचिता योग्या मात्रोपवरण ययेति सा ताम्। पक्ष उपात्ता यतयो विश्रामा गणा मगणादयस्तेषामुचिता मात्रा त्रुटिर्ययेति बहुव्रीहि। आलिखितेति। आलिखिता चित्रिता तामिव। अत एवाचल निश्चलमवस्थानं यस्या सा ताम्। अंशुमयीति। अंशुमयीं तेजोमयीमिव। तन्विति। तनुच्छाया देहकान्तिस्तयानुलिप्तं व्याप्त भूतल यया सा ताम्। अन्याप्यंशुमयी भवति। सापि कान्त्याच्छादितभूतला स्यादित्येतयो साम्यम्। निर्ममामिति। निर्गतो ममत्वभावो यस्या सा ताम्। निरिति। निर्गतोऽहंकारोऽभिमानो यस्या सा ताम्। निरिति। निर्गतो मत्सरो गुणेष्वसूया यस्या सा ताम्। निर्गतेर्ष्यामित्यर्थं। अमेति। न विद्यते मानुषस्य मनुष्यस्याकृतिराकारो यस्या सा ताम्। दिव्याकारामित्यर्थं। दिव्यत्वादिति। दिव्यत्वाद्गान्धर्वपुत्रित्वादपरिज्ञायमानमनिश्चायमान वयोऽवस्थाविशेषस्तस्य परिमाण मानं यस्यामित्थभूतामप्यष्टा-

किये रहती है, वह (पचाग्नि तप के एक अश के रूप में) सूर्य की धूप को पिये हुई थी। जैसे कि आर्या (छन्द) में रचित पद्य यति (विश्राम) तथा गण (पदों) के लिये उचित मात्राओं को ग्रहण किये होता है—ऐसे ही वह भी उपात्तयतिगणोचित मात्रा थी अर्थात् उसने केवल इतनी मात्रा अर्थात् सम्पत्ति ग्रहण की हुई थी जितनी कि मुनियों के लिये उचित होती है[1]। वह इतनी निश्चल (स्थिर) बैठी हुई थी कि मानो आलिखित ही हो—चित्र में बनायी गयी हो। (अपने) शरीर की काति से उसने पृथ्वीतल को ढका हुआ था—(इसलिये) ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो किरणों की बनी हुई थी। वह ममता (आसक्ति) से रहित थी, अभिमान से रहित थी तथा ईर्ष्या से रहित थी। वह अमानुषी, (अर्थात् दैवी) आकृति वाली थी। दिव्य होने के कारण उसकी अवस्था की (ठीक) माप तो नहीं ज्ञात हो रही थी तथापि वह लगभग अठारह वर्ष की ज्ञात हो रही थी।

१ यतियों के लिये उचित मात्रा में सम्पत्ति आदि उपकरण लिये हुई थी। 'मात्रा वित्त परिच्छन्दो वा।'

लक्ष्यमाणाम्, प्रतिपन्नपाशुपतव्रता कन्यका ददर्श। ततोऽवतीर्य तरुशाखाया बद्ध्वा तुरङ्गमुपसृत्य भगवते भक्त्या प्रणम्य त्रिलोचनाय तामेव दिव्ययोषितमनिमिष-पक्ष्मणा निश्चलनिबद्धलक्ष्येण चक्षुषा पुनर्निरूपयामास। उदपादि चास्य रूपसपदा कान्त्या प्रशान्त्या चाविर्भूतविस्मयस्य मनसि—'अहो जगति जन्तूनामसमर्थितो-पनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि। तथाहि। मया मृगयाया यदृच्छया निरर्थक-मनुबध्नता तुरङ्गमुखमिथुनमयमतिमनोहरो मानवानामगम्यो दिव्यजनसचरणोचितः प्रदेशो वीक्षितः। अत्र च सलिलमन्वेषमाणेन हृदयहारि सिद्धजनोपस्पृष्टजल सरो

दशवर्षदेशीयामिव किंचिन्न्यूनाष्टादशवर्षीयामिवोपलक्ष्यमाणा दृश्यमानाम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तत इति। कन्यकादर्शनानन्तर तुरङ्गमादश्वादवतीर्यावरोहण कृत्वा तरुशाखाया तुरङ्गममिन्द्रायुधं बद्ध्वोपसृत्य समीपे गत्वा भक्त्या श्रद्धया भगवते त्रिलोचनाय शभवे प्रणम्य नमस्कृत्य तामेव पूर्वव्यावर्णितस्वरूपामेव दिव्ययोषितममानुषीं स्त्रियम्। अनीति। अनिमिष निमेषोन्मेषरहित पक्ष्म नेत्ररोम यस्मिस्तत्तेन। निश्चलेति। निश्चल यथा स्यात्तथा निबद्ध लक्ष्य वेध्य येनैवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेण। पुनरिति। मण्डपिकाप्रवेशानन्तर निरूपयामास। साकल्येन ददर्शेत्यर्थ। चकार पुनरर्थक। अस्येति। चन्द्रापीडस्य मनस्येवमुदपाद्युत्पन्न बभूव। किंविशिष्टस्य तस्य। आविर्भूत प्रकटीभूतो विस्मय आश्चर्य यस्य स तथा तस्य। कया तस्या रूपसपदा सौन्दर्यसमृद्ध्या कान्त्या देहदीप्त्या प्रशान्त्या प्रशमेन वा। एतदेव विस्मयजनक प्रदर्शयन्नाह—अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये। जगति विश्वस्मिन् जन्तूना प्राणि-नामसमर्पितोपनतान्यतर्कितप्राप्तानि वृत्तान्तान्तराण्युदन्तान्तराण्यापतन्त्यागच्छन्ति। तदेव दर्श-यति—तथाहीति। मया मृगयायामाखेटकवृत्तौ यदृच्छया स्वेच्छया तुरङ्गमुखमिथुन किन्नर-युग्ममनुबध्नतानुव्रजता। अय प्रत्यक्षगतोऽतिमनोहरोऽतिरुचिरो मानवाना मनुष्याणामगम्योऽ-गोचरो दिव्यजनाना विद्याधरप्रभृतीना सचरण भ्रमण तत्रोचितो योग्य प्रदेशो भूभागो वीक्षितोऽवलोकित.। अत्रेति। अस्मिन्देशे सलिल पानीयमन्वेषमाणेन शोध्यमानेन सरस्तटाकं

(कन्यादर्शन के पश्चात्) उसने (घोड़े पर से) उतरकर, घोड़े को एक वृक्ष की शाखा से बाधकर, भगवान् त्रिलोचन (शिवजी) को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके, पलक मारना भूले हुए (अपलक) तथा स्थिररूप से अपने लक्ष्य (अर्थात् महिला) को बाधे हुए नेत्र से फिर उसी कन्या को ध्यान से देखा और उसके सौन्दर्य की विभूति, तेज और गम्भीरता द्वारा चकित हुए चन्द्रापीड के मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुए—"आश्चर्य है! ससार मे प्राणियों के कैसे-कैसे बिना ही विचारे (अर्थात् अनाशकित) वृत्तान्त (घटनाएँ) घटित हो जाते हैं! जैसे कि मैंने शिकार करते हुए, अचानक, व्यर्थ ही उस किन्नर जोड़े का पीछा करते हुए यह अत्यन्त मनोहारी प्रदेश देख लिया जो मनुष्यों की पहुँच से बाहर है और देवलोक के निवासियों के भ्रमण (अथवा निवास) योग्य है। और यहाँ जलकी खोज करते हुए मैंने सिद्ध व्यक्तियों द्वारा आचमन के लिये प्रयुक्त जलवाला मनोहर सरोवर देखा।

दृष्टम्। तत्तीरलेखाविश्रान्तेन चामानुषं गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषदुर्लभदर्शना दिव्यकन्यकेयमालोकिता। न हि मे संशीतिरस्या दिव्यता प्रति आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषताम्। कुतश्च मर्त्यलोके संभूतिरेवंविधाना गान्धर्वध्वनिविशेषाणाम्। तद्यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरम्, नोत्पतति वा गगनतलम्, ततः 'का त्वम्, किमभिधाना वा किमर्थं वा प्रथमे वयसि प्रतिपन्नाव्रतम्' इति सर्वमेवैतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। अतिमहानयमवकाश आश्चर्याणाम्' इत्यवधार्य तस्यामेव स्फटिकमण्डपिकायामन्यतम स्तम्भमाश्रित्य समुपविष्टो गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ।

दृष्ट वीक्षितम्। एतदेव विशिनष्टि—तत्तीरेति। हृदयहारि मनोहरसिद्धजनैरुपसृष्ट सेवितमेतादृश जल पानीय यस्मिन्। तस्याच्छोदस्य सरसस्तीर प्रतीरं तस्य लेखा प्रान्तवीथी तस्यां विश्रान्तेन सुस्थितेन। चकार समुच्चयार्थे। अमानुषं दिव्य गीत गानमाकर्णित श्रुतम्। तच्चेति। तद्गीतमनुसरतामनुगच्छतां मानुषाणां भूस्पृशां दुर्लभ दु प्राप दर्शनमवलोकन यस्या एवंविधेय दिव्यकन्यकालोकिता दृग्विषयीकृता। नहीति। हि निश्चितम्। अस्या कन्यकाया दिव्यता प्रति मे मम संशीतिर्नास्ति संदेहो नास्ति। अस्मिन्नर्थे हेतुमाह—आकृतिरिति। आकृतिराकार एवामानुषतां देवरूपतामनुमापयति। अमानुषताविषयकानुमितिं जनयतीत्यर्थः। अन्यदपि कारणान्तरमाह—कुत इति। एवंविधानामेतादृशानां गान्धर्वा देवगायनास्तेषां ध्वनेर्नादस्य विशेषाणां समूहानां मर्त्यलोके मनुष्यक्षेत्रे कुत सभूतिरुत्पत्ति स्यात्। तदिति हेत्वर्थे। यदि चाक्त। मे मम सहसाकस्माद्दर्शनपथाद्विलोकनमार्गान्नापयाति नापसरति। वेति विकल्पार्थे। तथा कैलासशिखर रजताद्रिशृङ्ग नारोहति नारोहणं करोति।

और उस सरोवर की तट रेखा पर विश्राम लिये हुए मैंने दैवी सगीत सुना। और उस गीत के पीछे चलते हुए यह दिव्य कन्या देखी जो मनुष्य को कठिनता से दिखायी देती है। (अर्थात् कभी ही दिखायी देती है) इसके दिव्य होने के सम्बन्ध में मुझे कोई सशय नहीं है। इसकी आकृति ही इसकी अमानवीयता का अनुमान कराती है। और फिर मर्त्यलोक में ऐसे सांगीतिक-विशेष-स्वरों की (गन्धर्वों के विशेषस्वरों की) उत्पत्ति कहा कैसे हो सकती है। इसलिये यदि वह अचानक ही मेरी दृष्टि के मार्ग से नहीं हटेगी अथवा कैलाश पर्वत की चोटी पर नहीं चढ़ेगी अथवा 'आकाश में नहीं उड़ जायगी तब तो उसके समीप पहुँच कर 'तू कौन है, क्या तेरा नाम है, अथवा क्यों तूने अपनी युवावस्था मे ही व्रत किया है'—आदि सारी बातें पूँछूगा। यह तो बड़ी बड़ी आश्चर्ययुक्त बातों को जानने का अवसर है।''—यह निश्चय करके उसी स्फटिक निर्मित मदिर में खम्भे का आश्रय लेकर बैठा हुआ वह गीत समाप्ति की प्रतीक्षा करता हुआ ठहरा रहा।

---

१ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा—समीपस्थ भविष्य में वर्तमान का प्रयोग हुआ है।

अथ गीतावसाने मूकीभूतवीणा प्रशान्तमधुकरमधुररुतेव कुमुदिनी सा कन्यका समुत्थाय प्रदक्षिणीकृत्य कृतहरप्रणामा परिवृत्य स्वभावधवलया तपःप्रभावप्रगल्भया दृष्ट्या समाश्वासयन्तीव, पुण्यैरिव स्पृशन्ती, तीर्थजलैरिव प्रक्षालयन्ती, तपोभिरिव पावयन्ती, शुद्धिमिव कुर्वाणा, वरप्रदानमिवोपपादयन्ती, पवित्रतामिव नयन्ती, चन्द्रापीडमाबभाषे—'स्वागतमतिथये। कथमिमा भूमिमनुप्राप्तो महाभागः।

गगनतलं व्योमतलं नोत्पतति नोर्ध्वं गच्छति। तत इति। तावत्का त्वम्, किमभिधाना किंनाम्नी, किमर्थं किंप्रयोजनं प्रथमे वयसि बाल्यावस्थायां पाशुपतं व्रतं प्रतिपन्ना स्वीकृतवती। सर्वत्र वाशब्दो विकल्पार्थः। इत्येतत्सर्वमेनां कन्यकामुपसृत्य समीपे गत्वा पृच्छामि प्रश्नं करोमि। अतीति। आश्चर्याणां कौतुकानामयमतिमहानवकाशोऽसंकीर्णंस्थलम्। इति पूर्वोक्तमवधार्य निर्णयं कृत्वा तस्यां पूर्वोक्तायामेव स्फटिकमण्डपिकायामन्यतममन्यतरं स्तम्भं स्थूणामाश्रित्याश्रयणीकृत्य समुपविष्टो निषण्णः। गीतेति। गीतं गानं तस्य समाप्तिं पर्याप्तिस्तस्य अवसरं समयस्तं प्रतीक्षमाणः प्रतीक्षां कुर्वाणस्तस्थौ स्थितवान्।

अथेत्यानन्तर्ये। गीतावसाने गीतपर्यन्ते मूकीभूता मौनमाश्रिता वीणा वल्लकी यस्याः सा तथा। अत्र तत्सादृश्यादाह—प्रशान्तेति। प्रशान्तं शान्तिं प्राप्तो मधुकराणां मधुरं मिष्टं रुतं शब्दो यस्यामेवंभूता कुमुदिनीव। ततस्तत्कालस्थकास्सा कन्यका समुत्थायोत्थानं कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रदक्षिणां दत्त्वा। कृतेति। कृतो विहितो हराय प्रणामो नमस्कारो यया सा। परिवृत्येति। परावर्तनं कृत्वा स्वभावेन न चोपाधिना धवलया शुक्लत्वेन निर्विकारत्वात्। तप इति। तपःप्रभावस्तपोमाहात्म्यं तेन प्रगल्भया प्रौढया दृष्ट्या लोचनेन समाश्वासयन्तीवाश्वासनां कुर्वन्तीव। पुण्यैरिति। पुण्यैर्धर्मैः स्पृशन्तीव स्पर्शं कुर्वन्तीव। तीर्थानि मागधप्रभृतीनि तेषां जलैः पानीयैः प्रक्षालयन्तीव क्षालनां कुर्वन्तीव। तपोभिस्तपस्याभिः पावयन्तीव पवित्रीकुर्वन्तीव। शुद्धिं नैर्मल्यं कुर्वाणेव। वरप्रदानं वाञ्छितदानमुपपादयन्तीव जनयन्तीव। पवित्रतां पावित्र्यं नयन्तीव। प्रापयन्तीव। चन्द्रापीडमाबभाषे आ भाषितवती। किं तदित्याह—

इसके पश्चात् गीत के समाप्त हो जाने पर चुप हुई वीणा वाली शान्त हुए भौरों के गुंजार वाली कमलिनी सी प्रतीत होती हुई प्रदक्षिणा करके शिवजी को नमस्कार किये हुई मुड़कर चन्द्रापीड से बोली—उस समय वह अपनी स्वभावतः श्वेत, तपस्या की शक्ति द्वारा आत्मविश्वस्त (प्रगल्भ) दृष्टि द्वारा आश्वासन देती हुई-सी (प्रोत्साहित करती हुई-सी) मानो अपने पवित्र गुणों द्वारा उसको छूती-हुई सी अथवा तीर्थ के (पवित्र नदियों के) जलों द्वारा उसको धोती हुई सी, मानो अपनी तपस्याओं से (चन्द्रापीड) को पवित्र करती-हुई अथवा उसको शुद्धता प्रदान करती हुई सी, अथवा उसको वरदान देती-हुई-सी और उसको (सब ओर) पवित्रता प्रदान करती हुई सी प्रतीत हो रही थी। उसने कहा—"अथिति का स्वागत करती हूँ। महानुभाव! आप इस प्रदेश में कैसे आपहुँचे हैं? अस्तु,

वदुत्तिष्ठ। आगम्यताम्। अनुभूयतामतिथिसत्कारः' इति। एवमुक्तस्य तया सभाषणमात्रेणैवानुगृहीतमात्मानं मन्यमान उत्थाय भक्त्या कृतप्रणामः 'भगवति, यथाज्ञापयसि' इत्यभिधाय दर्शितविनय शिष्य इव ता व्रजन्तीमनुवव्राज। व्रजश्च समर्थयामास—'हन्त, यावन्नेयं मा दृष्ट्वा तिरोभूता। कृत हि मे कुतूहलेन प्रश्नाशया हृदि पदम्। यथा चेयमस्यास्तपस्विजनदुर्लभदिव्यरूपाया अपि दाक्षिण्यातिशया प्रतिपत्तिरभिजाता विभाव्यते, तथा संभावयामि नियतमियमखिलमात्मोदन्त-

---

स्वागतमिति। अतिथये प्राघूर्णकाय स्वागत सुखेनागतम्। महेति। हे महाभाग हे महानुभाव, इमां भूमिं कथमनुप्राप्त आगत। तदिति। तस्मात्त्वमुत्तिष्ठोत्थान कुरु। आगम्यताम्। मत्पार्श्वं इति शेष। अतिथिसत्कार आतिथ्यमनुभूयतामनुभवविषयीक्रियताम्। इति परिसमाप्तौ। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण तया कन्यकयोक्तो भाषित सभाषणमात्रेणैवानुगृहीत प्रसादपात्रीकृतमात्मान मन्यमानो ज्ञायमानस्ततस्तस्मात्प्रदेशादुत्थाय भक्त्यान्तरप्रीत्या कृतो विहित प्रणामो नतिर्येन स हे भगवति हे स्वामिनि, यथा येन प्रकारेणाज्ञापयस्याज्ञा करोषि तत्तथेत्यभिधायेत्युक्त्वा दर्शित प्रकाशितो विनयो निभृतो येन स शिष्य इव विनेय इव ता कन्यका व्रजन्तीं गच्छन्तीमनुवव्राज पश्चाज्जगाम। व्रजश्चेति। व्रजन्गच्छन्। समर्थेति। प्रस्तुत समर्थयामास। उद्देशस्य निश्चय चकारेत्यर्थ। हन्तेति। हन्तेत्याश्चर्ये। तावदादौ इय मा दृष्ट्वा निरीक्ष्य न तिरोभूता नादृश्यतां गता। हीति निश्चितम्। कुतूहलेन करणभूतेन प्रश्नाशया पृच्छाभिलाषया हृदि चित्ते पर स्थान विहितम्। यथा चेति। यथा येन प्रकारेणास्या

उठिये, आइये, अतिथि के लिये उचित सत्कार (अतिथ्य) प्राप्त कीजिये।'' उस कन्या द्वारा इस प्रकार कहा गया चन्द्रापीड अपने आपको केवल बातचीत के द्वारा भी कृपान्वित मानता हुआ उठकर, खड़ाहोकर, और विनयपूर्वक नमस्कार करके "भगवती ! जो आज्ञा—" यह कहकर (अपनी) नम्रता दिखाकर उसके पीछे पीछे शिष्य की भाति चल पड़ा। और चलते चलते उसने (अपने मन में) इस प्रकार सोच विचार किया[1] "निश्चय ही यह बड़ी प्रसन्नता[2] की बात है कि पहले तो यह मुझको देखकर छिपी नहीं। निश्चय ही प्रश्न करने के उद्देश्य से[3] आश्चर्य से मेरे हृदय में स्थान बना लिया है (अर्थात् इसके विषय में प्रश्न करने के उद्देश्य से मेरे हृदय में कौतूहल उत्पन्न हो गया है)। और क्योंकि[4] तपस्वीजनों में बहुत कम (कठिनता से) पाये जाने वाले दिव्य सौन्दर्य वाली भी इस कन्या का नम्रता की अधिकता से युक्त कुलीन (अभिजाता) सन्मान युक्त व्यवहार (प्रतिपत्ति स्पष्ट दिखायी दे रहा है। इसलिये मैं सोचता हूँ मेरे द्वारा प्रार्थना की गई यह अपना सारा इतिहास अवश्य

---

१ सम्-अर्थ = विचार करना

२ 'हन्त' इति प्रसन्नतायाम्

३ आशा, प्रत्याशंसा, भविष्य में प्राप्तव्यता

४ यथा तथा, क्योंकि, इस कारण।

मभ्यर्थ्यमाना मया कथयिष्यति' इत्येव च कृतमतिः पदशतमात्रमिव गत्वा निरन्तरैर्दिवापि रजनीसमयमिव दर्शयद्भिस्तमालतरुभिरन्धकारितपुरोभागाम्, उत्फुल्लकुसुमेषु लतानिकुञ्जेषु गुञ्जता मन्द्रं मदमत्तमधुलिहां विरुतिभिर्मुखरीकृतपर्यन्ताम्, अतिदूरपातिनीनां च धवलशिलातलप्रतिघातोत्पतनफेनिलानामपां प्रस्रवणैरुत्कोटिग्रावविटङ्कविपाट्यमानैरुच्चरद्ध्वनिभिरवशीर्यमाणतुषारशिशिरशीकरासारैराबध्यमाननीहाराम्, हिमहारहरहासधवलैश्चोभयतः क्षरद्भिर्निर्झरै-

---

प्रत्यक्षगताया। तपस्वीति। तपस्विजनेषु दुर्लभं दुष्प्रापं दिव्यं मनोहरं रूपं यस्या एवंभूताया कन्याया अपि। दाक्षिण्येति। दाक्षिण्यमनुकूलता तस्या अतिशय आधिक्यं तेन प्रतिपत्तिर्मद्विषयिण्युत्कण्ठा विशेषरूपेणेयमभिजातोत्पन्ना विभाव्यते लक्ष्यते। यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह—तथेति। तथा तेन प्रकारेण सम्भावयामि सम्भावनां करोमि। नियतं निश्चितम्। इयं कन्यका मया चन्द्रापीडेनाभ्यर्थ्यमाना प्रार्थ्यमानाखिलं समग्रमात्मनः स्वकीयस्योदन्तं वृत्तान्तं कथयिष्यति प्रतिपादयिष्यति। इत्येवंप्रकारेण कृता मतिर्येनैवंभूतश्चन्द्रापीडः पदशतमात्रमिव गत्वा किंचिदध्वानमतिक्रम्य गुहां दरीमद्राक्षीदपश्यत्। इतो गुहां विशेषयन्नाह—निरन्तरेति। निरन्तरैर्निबिडैर्दिवापि दिवसेऽपि रजनीसमयमिव रात्रिकालमिव दर्शयद्भिः प्रकाशयद्भिरेतादृशैस्तमालतरुभिस्तापिच्छवृक्षैरन्धकारितोऽन्धकारवदाचरितः पुरोभागोऽग्रप्रदेशो यस्यास्ताम्। उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि विकसितानि कुसुमानि पुष्पाणि येष्वेवंभूतेषु लतानिकुञ्जेषु वल्लीकुटकेषु मन्द्रं गुञ्जतां शब्दं कुर्वतां मदेन मत्ताः क्षीबा ये मधुलिहो भ्रमरास्तेषां विरुतिभिः शब्दैर्मुखरीकृतो वाचालीकृतः पर्यन्तः प्रान्तो यस्याः सा ताम्। अतीति। अतिदूरं दविष्ठं पतन्ति एवंशीला अतिदूरपातिन्यस्तासां च। धवलेति। धवलं शुभ्रं यच्छिलातलं प्रस्तरतलं तेन य प्रतिघातः प्रतिस्खलनं तस्माद्यदुत्पतनं तेन फेनिलानां संजातडिण्डीराणामीदृशीनामपामम्भसां प्रस्रवणैर्निर्झरैराबध्यमान आबन्धविषयीक्रियमाणो नीहारो हिम

ही (मुझे) बना देगी।" यह निश्चय करके केवल सौ डग चलकर उसने एक गुफा देखी। उस गुफा का सामने का भाग विना अन्तर छोड़े (पास-पास घने उगे दिन में भी मानो रात का सा समय दिखाते हुए तमाल वृक्षों द्वारा अन्धकारयुक्त हो गया था, उसके चारों ओर का प्रदेश (पर्यन्त) खिले हुए पुष्पों वाले लताकुञ्जों में मधुर गुञ्जार करते हुए मदमस्त भौंरों के सगीत भरे शब्दों से गूँज रहा था, बहुत दूरसे अधिक ऊँचाई से गिरनेवाले तथा श्वेतशिला के तल (के साथ हुई) टक्कर (के पश्चात्) उछलने से झागभरे हुए जल के प्रवाहों (प्रस्रवणै) द्वारा जो कि, ऊपर उठी हुई (तेज) नोकों वाले पत्थर के उभारों (विटङ्क) से विभाजित अर्थात् बिखेरे जा रहे थे (बहुत से धाराओंमें विभक्त किये जा रहे थे) तथा जिन्होंने कोलाहल किया हुआ था (आबध्यमान), तथा इस प्रकार बिखेरी जा रही बर्फ सी ठंढी फुहारों द्वारा उस गुफा पर (उसके चारों ओर) कुहरा बाँधा जा रहा था—(कुहरा फैलाया जा रहा था)। वह गुफा उसके दोनों ओर बहते हुए झरनों से' ऐसी प्रतीत

द्वारावलम्बितचलच्चामरकलापामिवोपलक्ष्यमाणाम्, अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्, एकान्तावलम्बितयोगपट्टिकाम्, विशाखिकानिबद्धनालिकेरीफलवल्कलमयधौतोपानद्युगोपेताम्, अवशीर्णाङ्गभस्मधूसरवल्कलशयनीयसनाथैकदेशाम्, इन्दुमण्डलेनेव टङ्कोत्कीर्णेन शङ्खमयेन भिक्षाकपालेनाधिष्ठिताम्, सनिहितभस्मालाबुका गुहामद्राक्षीत्। तस्याश्च द्वारि शिलातले समुपविष्टो वल्कलशयन-

---

यस्या सा ताम्। अथ प्रस्रवण विशेषयन्नाह—उदिति। उदूर्ध्वं कोटय कोणा येषामेवंभूता ये ग्रावाण प्रस्तरास्तेषा विटङ्का उन्नतप्रदेशास्तैर्विपाट्यमानानि विदार्यमाणानि तै। उच्चरदिति। उच्चरच्छब्द कुर्वन्ध्वनि शब्दो येषा तै। अवेति। अवशीर्यमाणो विशरारुता प्राप्यमाणो यस्तुषारो नीहारस्तस्य शिशिरा शीतला शीकरा वाताहतजलविप्रुषस्तेषामासारो वेगवान्वर्षो येषु तै। हिमेति। हिम तुहिनम्, हारो मुक्ताकलाप, हर ईश्वरस्तस्य हासो हास्य तद्वद्धवलै श्वेतै। उभयत पार्श्वद्वये क्षरद्भि स्रवद्भिर्निर्झरै प्रस्रवणै। द्वारेति। द्वारे प्रतीहारेऽवलम्बितो यश्चलच्चामरकलाप प्रोञ्छलद्वालव्यजनसमूहो यस्यामेवविधामिवोपलक्ष्यमाणा वीक्ष्यमाणाम्। अन्तरिति। अन्तर्मध्ये स्थापित न्यस्त मणिनिर्मित कमण्डलुमण्डल कुण्डिकावलयं यस्यां सा ताम्। एकान्तेति। एकान्ते रहस्यवलम्बिता स्थापिता योगपट्टिका योगसाधनोपकरण यस्या सा ताम्। विशेति। विशाखिका भूमिशुद्ध्यर्थंमाद्रियमाणा लोहयष्टिरूपा तस्या निबद्ध सदानित यन्नालिकेरी लाङ्गली तस्या फल तस्य वल्कलैस्त्वग्भिर्निष्पन्न धौत क्षालितमुपानद्युग पादुकायुगल तेनोपेता सहिताम्। अवेति। अवशीर्णं च्युत यदङ्गभस्म देहविभूतिस्तेन धूसर मलिन यद्वल्कलशयनीय चोचशय्या तेन सनाथ सहित एकदेशो यस्या सा ताम्। टङ्क इति। टङ्क पाषाणदारणस्तेनोत्कीर्णेनोत्कारितेन शङ्खमयेन कम्बुदलनिर्मितेन भिक्षाकपालेन भिक्षाकर्परेणाधिष्ठितामाश्रिताम्। श्वेतत्वसाम्यादाह—इन्दुरिति। इन्दुश्चन्द्रस्तस्य मण्डलेनेव। सनिहितेति। सनिहित समीपवर्ति भस्मालाबुकं विभूतितुम्बकं यस्यां ताम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तस्याश्चेति। तस्या गुहाया द्वारि

हो रही थी कि मानों उसके द्वार पर हिलती हुई चँवरियों का समूह लटका दिया गया हो। इस (गुफा) के भीतर कई मणिनिर्मित कमण्डलु रखे हुए थे, इसके एक प्रदेश (कोने) में योगपट्टिकायें (योगाभ्यास के समय पीठ तथा घुटनों पर बाँधे जाने वाले वस्त्र अथवा पट्टियाँ) लटकायी हुई थीं, यह गुफा विशाखिका अर्थात् झूले अथवा झोंके से अथवा कील से बधी हुई, नारियल के फल की त्वचा से बनी, तथा धोयी हुई जूतोंकी जोड़ी से युक्त थी। उसका एक भाग बिखरी, शरीर पर मली हुई भस्म से मैली हुई, वल्कल की शय्या (बिस्तरे) से युक्त था। वह गुफा छेनी से काट कर (उस आकार में लाये गये) चन्द्रबिम्ब सरीखे प्रतीत होते, शङ्खों से निर्मित, भिक्षापात्र से युक्त थी तथा वहाँ समीप में ही पवित्र भस्म (रखने) की तुम्बी (कमण्डलु अलाबुकम्) रखी हुई थी।

और उसके द्वार पर एक शिला खण्ड पर बैठे हुए चन्द्रापीड ने (अपने) वल्कल

शिरोभागविन्यस्तवीणा ततः पर्णपुटेन निर्झरादागृहीतमर्घजलमादाय ता कन्यकां समुपस्थिताम् 'अलमतियन्त्रणया। कृतमतिप्रसादेन। भगवति, प्रसीद। विमुच्यतामयमत्यादरः। त्वदीयमालोकनमपि सर्वपापप्रशमनमघमर्षणमिव पवित्रीकरणायालम्। आस्यताम्' इत्यब्रवीत्। अनुबध्यमानश्च तया ता सर्वामतिथिसपर्यामतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रय प्रतिजग्राह। कृतातिथ्यया च तया द्वितीयशिलातलोपविष्टया क्षणमिव तूर्ष्णीं स्थित्वा क्रमेण परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरणप्रसङ्गेनागमनमात्मनः सर्वमाचचक्षे। विदितसकलवृत्तान्ता चोत्थाय सा

प्रतीहारप्रदेशे यच्छिलातल तस्मिन्नुपविष्ट आसीनश्चन्द्रापीडो वल्कलशयन तस्य शिरोभागस्तत्र विन्यस्ता स्थापिता वीणा वल्लकी यया सा ताम्। तत इति। वल्लकीस्थापनानन्तर पर्णपुटेन निर्झरात्प्रस्रवणादागृहीत यदर्घजल तदादाय समुपस्थिता समागता ता प्रति चन्द्रापीड इत्यब्रवीदित्युवाच। इतिशब्दार्थमाह—अलमिति। अतियन्त्रणयात्यनुरोधेनाल कृतम्। कृतमिति। अतिप्रसादेनातिप्रसन्नतया कृत स्तम्। हे भगवति हे स्वामिनि, प्रसीद प्रसन्ना भव। अयमत्यादरोऽत्याग्रहो विमुच्यता त्यज्यताम् त्वदीयमालोकनमपि दर्शनमपि सर्वपापप्रशन सर्वैनसा प्रशमनकृत्। अघेति। सर्वैनोध्वंसिजाप्येऽघमर्षण तद्वदिव पवित्रीकरणाय पावनीकरणायाल समर्थम्। अत आस्यतामुपविश्यताम्। भवत्या दर्शनेनैव मम कार्तार्थ्यमभूत्। तत किमातिथ्येनेति भाव। अन्विति। तया कन्यकयानुबध्यमानोऽनुरुध्यमानः। चकार पुनरर्थक। तां सर्वां समग्रातिथिसपर्यामभ्यागतपूजामतिदूरादविष्ठादवनतेन नमितेन शिरसोत्तमाङ्गेन सप्रश्रय सविनय प्रतिजग्राह गृहीतवान्। कृतेति। कृत विहितमातिथ्य यया सा तया। द्वितीयेति। द्वितीयं भिन्न यच्छिलातलं तत्रोपविष्टयासीनया क्षणमिव तूर्ष्णीं स्थित्वा मौन कृत्वा क्रमेण परिपाट्या परिपृष्टोऽनुयुक्तो दिग्विजयादारभ्य किंनरमिथुनस्य यदनुसरण

निर्मित बिस्तर (शयन) के सिर रखने के स्थान पर (सिरहाने) रखी हुई वीणा वाली, तथा बाद मे दोने में (पर्णपुटेन) झरने से लिये हुए, पूजार्थ जल को लाकर (वहाँ) उपस्थित हुई उस कन्या से कहा—आपने जो बहुत-सा कष्ट किया है—वह पर्याप्त हो गया, बहुत सी कृपा को रहने दीजिये। भगवती ! कृपा कीजिये। मेरे प्रति यह अत्यन्त आदर (का दिखावा) छोड़ दीजिये। सब पापों को नष्ट करनेवाला आपका दर्शनमात्र ही अघमर्षण मन्त्र की भाँति (देखने वाले को) पवित्र करने में समर्थ है। कृपया अब बैठ जाइये। और बार बार उस द्वारा अनुरोध किये गये उस चन्द्रापीड ने बहुत दूर (नीचे) झुकाये हुए अपने मस्तक से आदरपूर्वक (उस द्वारा प्रदत्त) वह सारी अतिथिपूजा स्वीकार कर ली। आतिथ्य किये हुई तथा दूसरी शिला पर बैठी हुई उस कन्या द्वारा, कुछ देर चुप रहकर, पूछे गये चन्द्रापीड ने दिग्विजय से आरम्भ करके किन्नर जोड़े का पीछा करने की आकस्मिक घटना द्वारा वहाँ अपना आगमन क्रमश सारा बता दिया। और सारे वृत्तान्त को जान गयी हुई वह कन्या

कन्यका भिक्षाकपालमादाय तेषामायतनतरूणां तलेषु विचचार। अचिरेण च तस्याः स्वयपतितैः फलैरपूर्यत भिक्षाभाजनम्। आगत्य च तेषा फलानामुपयोगाय नियुक्तवती चन्द्रापीडम्। आसीच्च तस्य चेतसि—'नास्ति खल्वसाध्य नाम तपसाम्। किमतः-परमाश्चर्यं यत्र व्यपगतचेतना अपि सचेतना इवास्यै भगवत्यै समतिसृजन्तः फलान्यात्मानुग्रहमुपपादयन्ति वनस्पतय'। चित्रमिदमालोकितमस्माभिरदृष्टपूर्वम्' इत्यधिकतरोपजातविस्मयश्चोत्थाय तमेव प्रदेशमिन्द्रायुधमानीय व्यपनीतपर्याणं नातिदूरे संयम्य 'निर्झरजलनिवर्तितस्नानविधिस्तान्यमृतस्वादून्युपभुज्य फलानि पीत्वा च तुषारशिशिर प्रस्रवणजलमुपस्पृश्य चैकान्ते तावदवतस्थे यावत्तयापि कन्यकया

यदनुगमन तत्प्रसङ्गेन तद्दर्शनेनात्मन स्वकीयस्य सर्वमागमनमाचचक्षेऽकथयत्। विदितेति। विदितो ज्ञात सकल समग्रो वृत्तान्त उदन्तो यया सा। चकार पूर्ववत्। उत्थाय सा कन्यका भिक्षाकपाल भिक्षाभाजनमादाय गृहीत्वा तेषामायतनतरूणा गुहासमीपवर्तिवृक्षाणा तलेष्वधो भागे विचचार पर्यटन चकार। अचिरेणेति। अचिरेण स्वल्पकालेन स्वयपतितै स्वभावतश्च्युतै फलैस्तस्या भिक्षाभाजनमपूर्यत परिपूरितमभूत्। आगत्येति। आगत्यैत्य तेषां फलानामुपयोगा-योपभोगाय चन्द्रापीड नियुक्तवती प्रेरितवती। तस्येति। तस्य चन्द्रापीडस्य चेतसि मनसीत्या-सीदित्यभूत्। इतिशब्दद्योत्य प्रदर्शयन्नाह—खल्विति। खलु निश्चयेन। नामेति कोमला-मन्त्रणे। तपसामसाध्यमशक्य नास्ति तथाप्यत परमेतदन्यत्किमाश्चर्यं चोद्य भवेत्तदेवाह—यत्रेति। यस्मिन्प्रदेशेऽपगना दूरीभूता चेतना चैतन्य येषामेवभूता अपि वनस्पतयो वृक्षा. सचेतना इव सचैतन्या इवास्यै भगवत्यै फलानि समतिशयेन सृजन्तो ददत आत्मानुग्रह निज-साफल्यमुपपादयन्ति निष्पादयन्ति। चित्रमिति। अदृष्टपूर्वमनवीक्षितपूर्वमिद चित्रमाश्चर्य मालोकित वीक्षितम्। अधीति। अधिकतरोऽतिभूयानुपजात समुत्पन्नो विस्मयो यस्य स उत्थाय तमेव प्रदेशमिन्द्रायुधमानीय व्यपनीतपर्याण दूरीकृतपल्ययन नातिदूरे समीपे सयम्य

उठकर, भिक्षापात्र लेकर उन मन्दिर के (समीपस्थ) वृक्षो के नीचे घूम गयी। और शीघ्र ही अपने आप गिरे हुए फलों से उसका भिक्षापात्र भर गया। और उसने आकर उन फलो का उपयोग (उपभोग) करने मे चन्द्रापीड को लगा दिया (कहा)। इस पर चन्द्रापीड के मन मे हुआ (निम्नलिखित विचार उठे) —"वास्तव में, तप द्वारा कौन सी वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती ! (क्योकि) इससे अधिक आश्चर्य की और क्या बात हो सकती है कि चेतनारहित भी वृक्ष चेतनायुक्त प्राणियों की भाँति इस देवी को फल देते हुए उसपर अपनी कृपा को दिखाते हैं। मैंने तो यह एक अद्भुत घटना देखी है जो पहले कभी नहीं देखी थी।" इस प्रकार और अधिक विस्मित हुआ वह उठकर उसी स्थान पर इन्द्रायुध को लाकर, काठी उतारे हुए उसको समीप ही बाँधकर, झरने के जल से स्नान क्रिया किये हुआ, उस अमृत-सरीखे स्वादुफलों को खाकर, और बर्फ सरीखे ठण्डे झरने के जल को पीकर, आचमन करके जितनी देर आराम से बैठा—उतनी ही देर में उस कन्या ने भी जल

कृतो जलफलमूलमयेष्वाहारेषु प्रणयः। इति परिसमापिताहारा निर्वर्तितसन्ध्योचिताचारा शिलातले विश्रब्धमुपविष्टा निभृतमुपसृत्य नातिदूरे समुपविश्य मुहूर्तमिव स्थित्वा चन्द्रापीडः सविनयमवादीत्—'भगवति, त्वत्प्रसादप्राप्तिप्रोत्साहितेन कुतूहलेनाकुलीक्रियमाणो मानुषतासुलभो लघिमा बलादनिच्छन्तमपि मा प्रश्नकर्मणि नियोजयति। उपजनयति हि प्रभुप्रसादलवोऽपि प्रागल्भ्यमधीरप्रकृतेः। स्वल्पाप्येकावस्थाने कालकला परिचयमुत्पादयति। अणुरप्युपचारपरिग्रहः प्रणयमारोपयति।

निबध्य। निर्झरेति। निर्झरजलेन प्रस्रवणपानीयेन निर्वर्तितो निष्पादित स्नानविधिराप्लावविधिर्येन स तान्यमृतवत्स्वादूनि मिष्टानि फलान्युपभुज्यास्वाद्य च तुषारस्य नीहारस्य शिशिर शीतलं प्रस्रवणजलं निर्झराम्भ पीत्वा चोपस्पृश्याचमन कृत्वैकान्ते रहसि तावद्वतस्थे तावत्कालमासेविवान्यावत्तयापि कन्यकया जलफलमूलमयेष्वाहारेषु प्रणय स्नेह कृत। इतीति। इति पूर्वोक्तप्रकारेण परिसमापित पर्याप्तिं नीत आहारो भोजन यया सा ताम्। निर्वेति। निर्वर्तितो विहित. सन्ध्योचिताचार सायंकालयोग्यो विधिर्यया सा तां शिलातले विश्रब्ध सविश्वास यथा स्यात्तथोपविष्टामासीनाम्। निभृत निश्चल यथा स्यात्तथोपसृत्य समीपे गत्वा नातिदूरे समुपविश्यास्थाय मुहूर्तमिव क्षणमात्रमिव स्थित्वा विलम्ब्य चन्द्रापीड सविनयं विनयसंयुक्त यथा स्यात्तथावादीदवोचत्। हे भगवति हे स्वामिनि। त्वदिति। तव प्रसादस्य प्राप्तिर्लब्धिस्तेन प्रोत्साहितेन प्रगुणीकृतेन कुतूहलेन कौतुकेनाकुलीक्रियमाणो व्याकुलतां नीयमान एवंविधो यो लघिमा तुच्छस्वभाव। कीदृश। मानुषता मानवता तत्र सुलभ. सुप्रापो मा बलाद्धठादनिच्छन्तमवाञ्छन्तमपि प्रश्नकर्मणि पृच्छाक्रियायां नियोजयति व्यापारयति। उपजनेति। हीति निश्चितम्। प्रभो' स्वामिन प्रसादलवोऽपि प्रसन्नतालेशोऽप्यधीरप्रकृतेश्चञ्चलस्वभावस्य प्रागल्भ्य धार्ष्ट्यमुपजनयत्युपपादयति। स्वल्पेति। एकावस्थान एकावस्थितौ स्वल्पापि स्तोकापि कालकला पञ्चदशलवात्मिका परिचय संस्तवमुत्पादयति जनयति। अणुरपि परमाणुरप्युपचारपरिग्रह पूजास्वीकार प्रणय स्नेहमारोपयत्यारोपविषयीकरोति। तदिति। तद्यदि

फलमूल का भोजन ग्रहण किया।

इस प्रकार भोजन कर चुकी हुई, सन्ध्या समय किये जाने योग्य रीतियों को कर चुकी हुई, शिला पर आराम से बैठी हुई उस कन्या के समीप शान्तिपूर्वक पहुँच कर, समीप ही बैठकर, क्षणभर प्रतीक्षा करके चन्द्रापीड ने नम्रतापूर्वक कहा—"हे देवि! (हम) मरण धर्माओं के लिये सहज, तथा आपकी कृपा की उपलब्धि द्वारा बढ़ाये गये (मेरे) कौतूहल से क्षुब्ध की गयी मेरी चपलता न चाहते हुए भी मुझको अब आपसे प्रश्न पूछने के काम में बलात् लगा रही है। क्योंकि, स्वामी की कृपा का अल्पभाग ही (उसके) अधीर स्वभाव वाले (सेवक में) व्यक्ति में धृष्टता उत्पन्न कर देता है। (दूसरे व्यक्ति के साथ) उसी स्थान पर स्थित रहने में बिताया हुआ समय का थोड़ा-सा अंश ही (दोनों में) परिचय उत्पन्न कर देता है। (किसी अनजान से) कम से कम आतिथ्य स्वीकार, (परस्पर) सद्भावना को उत्पन्न

तद्यदि नातिखेदकरमिव ततः कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि । अतिमहत्खलु भवद्दर्शनात्प्रभृति मे कौतुकमस्मिन्विषये । कतरन्मरुतामृषीणां गन्धर्वाणां गुह्यकानामप्सरसां वा कुलमनुगृहीत भगवत्या जन्मना । किमर्थं वास्मिन्कुसुमसुकुमारे नवे वयसि व्रतग्रहणम् । क्वेदं वयः, क्वेयमाकृतिः, क्व चायं लावण्यातिशयः, क्वेयमिन्द्रियाणामुपशान्तिः । तदद्भुतमिव मे प्रतिभाति । किं वानेकसिद्धसाध्यसबाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदान्येकाकिनी वनमिदममानुषमधिवससि । कश्चायं प्रकारो यत्तैरेव पञ्चभिर्महाभूतैरारब्धमीदृशं धवलता धत्ते शरीरम् । नेदमस्माभिरन्यत्र

नातिखेदकरमिव नातिप्रयासजनकसदृशमिव तत कथनेन निवेदनेनात्मानमनुग्राह्यमभ्युपपत्तिविषयमिच्छामि समीहे । अतीति । खलु निश्चये । भवद्दर्शनात्प्रभृति तवालोकनादारभ्य मे ममास्मिन्विषये प्रश्नविषयेऽतिमहत्कौतुकमत्याश्चर्यम् । कतरदिति । मरुतां देवानाम् , ऋषीणां मुनीनाम् , गन्धर्वाणां देवगायनानाम्, गुह्यकानां यक्षाणाम् , अप्सरसां तिलोत्तमादीनां मध्ये । निर्धारणे षष्ठी । जन्मना प्रादुर्भावेन भगवत्या स्वामिन्या कतरत्कतमत्कुलमन्वयोऽनुगृहीतमनुग्रहविषयीकृतम् । किमिति । किमर्थं किंप्रयोजनमिति यावत् । वेति विकल्पार्थं अस्मिन्नवे नूतने वयस्यवस्थायां कुसुमं पुष्पं तद्वत्सुकुमारे कोमले व्रतग्रहणं नियमस्वीकार । क्वेति महदन्तरे । इदं प्रत्यक्षोपलभ्यमानं वय क्व । अथ चेयमाकृतिराकारविशेष क्व । तथा लावण्यं चातुर्यं तस्यातिशय आधिक्यं क्व । तथेन्द्रियाणां करणानामियमुपशान्तिर्विषयोपरम क्व । तदिति । मे मम तत्सर्वं पूर्वोक्तमद्भुतमिवाश्चर्यमिव प्रतिभाति प्रतिभासते । अन्यच्च । किमिति पूर्ववत् । अनेकेति । अनेके बहवो ये सिद्धा महायोगिनस्तैः साध्या निष्पाद्या क्रिया इत्यर्थ । ताभि सबाधानि सकीर्णानि सुरलोका देवसमूहास्तेषां सुलभानि सुप्राप्यान्येवंविधानि दिव्याश्रमपदानि महामुनीनां निवासस्थानान्यपहाय विमुच्यैकाकिन्यसहायामानुषं मनुष्यवर्जितमिदं वनमरण्यं कथं

कर देता है। इसलिये, यदि आपके लिये बहुत खेदजनक न हो तो, मैं चाहता हूँ इसको मुझे बताकर आप मुझे अनुगृहीत करें। (क्योंकि) इस विषय में, आपके दर्शन (होने) से लेकर, मेरी उत्सुकता, निश्चय ही, बहुत अधिक रही है। आपने जन्म द्वारा कौन से कुल पर, मरुतों के ऋषियों के, गन्धर्वों के, यक्षों के अथवा अप्सराओं के कुलों मे से किस कुल पर कृपा की है। अथवा इस फूल सी कोमल युवावस्था में ही व्रत धारण किस प्रयोजन से किया है? कहाँ यह (युवा) अवस्था और कहाँ यह (गम्भीर) आकृति ! (अर्थात् ये दोनों कितने बेमेल हैं !) और कहाँ यह भरपूर सौन्दर्य तथा कहाँ यह इन्द्रियों का सयम ! इसलिये मुझे यह सब (कुछ) आश्चर्यजनक ही प्रतीत होता है। अनेक सिद्ध तथा साध्यों से भरे, देवलोक में सरलता से प्राप्तव्य दिव्य आश्रम स्थलों को छोड़कर यहाँ इस मनुष्यों से रहित जगल में आप अकेली किस प्रयोजन से रह रही हैं? यह कैसे हुआ है (अक्षरार्थ—यह कौन सा प्रकार है) कि आपका उन्हीं (सुप्रसिद्ध) पाँच महाभूतों से बनाया गया शरीर ऐसी श्वेतता को धारण किये हुए है (पाँच महाभूतों का बना शरीर भी इतना अधिक श्वेत है)।

दृष्टश्रुतपूर्वं वा। अपनयतु नः कौतुकम्। आवेदयतु भवती सर्वमिदम्' इत्येवमभिहिता सा किमप्यन्तर्ध्यायन्ती तूष्णी मुहूर्तमिव स्थित्वा निःश्वस्य स्थूलस्थूलैरन्तर्गता हृदयशुद्धिमिवादाय निर्गच्छद्भिः, इन्द्रियप्रसादमिव वर्षद्भिः, तपोरसनिःस्यन्दमिव स्रवद्भिः, लोचनविषय धवलिमानमिव द्रवीकृत्य पातयद्भिः, अच्छाच्छैः अमलकपोलस्थलस्खलितैः, अवशीर्णहारमुक्ताफलतरलपातैः अनुबद्धबिन्दुभिः वल्कलावृतकुचशिखरजर्जरितसीकरैरश्रुभिरामीलितलोचना निःशब्द रोदितुमारेभे। ता च प्ररुदिता दृष्ट्वा

स्व भवत्यधिवससि। 'उपान्वध्याङ्वस' इति वनमित्यस्याधिकरणस्य कर्मसज्ञाया द्वितीया। कश्चेति। कश्चानिर्दिष्टस्वरूपोऽय प्रकार प्रभेदो यत्तैरेव सर्वप्रसिद्धैरेव पञ्चभिर्महाभूतै पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशरूपैरारब्ध रचितमीदृश शरीर देह। धवेति। धवलिमान धत्ते दधाति। नेति। इदमेतादृशमस्माभिरैद्युगीनैरन्यस्मिन्देशान्तरे पूर्वं न दृष्ट न वीक्षित नापि पूर्वं कस्यचिन्मुखाच्छ्रुतमाकर्णितम्। अपेति। नोऽस्माक कौतुक महदाश्चर्यमपनयतु दूरीकरोतु। आवेति। भवती स्वामिनी सर्वमिद पूर्वोक्तमावेदयतु निवेदयतु। इतीति। इत्येवप्रकारेणाभिहिता प्रतिपादिता सा किमप्यनिर्वचनीयमन्तश्चित्ते ध्यायन्ती चिन्तयन्ती तूष्णीं जोष मुहूर्तमिव मुहूर्तसदृशम्। अत्र सदृशार्थं इवप्रयोग। नि.श्वस्य नि श्वास मुक्त्वा। पूर्वानुभूतस्य दु खस्य स्मरणादिति भाव। अश्रुभिर्नेत्रजलैरामीलिते सकुचिते लोचने नेत्रे यस्या सा तादृशी नि शब्दं ध्वनिवर्जित यथा स्यात्तथा रोदितु रोदनं कर्तुमारेभ आरम्भ चकार। अथाश्रु विशेषयन्नाह—स्थूलेति। स्थूलानि च स्थूलानि च स्थूलस्थूलानि तै। अतिश्वेतत्वसाम्यादाह—अन्त-

---

और मैंने पहले यह न कहीं देखी है, न कहीं सुनी है। (इसलिये) कृपया मेरी जिज्ञासा को दूर कीजिये। आप यह सब मुझे बताइये।" इस प्रकार कही हुई वह मन ही मन में किसी बात को सोचती प्रतीत होती हुई-सी कुछ देर रुककर, फिर आह भरकर, आँखे बन्द किये हुई चुपचाप मोटे-मोटे आँसुओं द्वारा रोने लगी। वे आँसू मानो उसकी अन्त स्थित हृदय की शुद्धि को साथ लेकर निकल रहे थे, मानो उसकी इन्द्रियों की पवित्रता (प्रसादम्) की वर्षा कर रहे थे, मानो उसके (पवित्र) तप रूप रस की धारा को टपका रहे थे, आँखों की विषयभूत[1] (आँखों से देखने योग्य) श्वेतता को मानो द्रव बनाकर गिरा रहे थे, वे आँसू अतिस्वच्छ अर्थात् अत्यन्त श्वेत थे, वे उसकी निर्मल तथा चौड़ी गालों (पर से नीचे) ढलक रहे थे, किसी टूटे हार से मोतियों के गिरने जैसा उनका गिरना (तरल)—काँपता हुआ गिरना था, उन आँसुओं की बिन्दुएँ (परस्पर) एक के पश्चात् दूसरी निरन्तर बधी हुई थीं (अर्थात् वे आँसू बिन्दुओं की एक सतत धारारूप में बह रहे थे), और वल्कल से ढके उसके कुचों के शिखरों पर टकराकर फुहार बन रहे थे। और उस रोयी हुई को देखकर चन्द्रापीड

---

१ लोचनविषय 'लोचनसबन्धिन' अर्थात् उसकी आँखो की—यह अर्थ भी किया गया है।

चन्द्रापीडस्तत्क्षणमचिन्तयत्—'अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम्, यदीदृशीमप्याकृतिमनभिभवनीयामात्मीया कुर्वन्ति। सर्वथा न न कंचन स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापाः, बलवती हि द्वन्द्वाना प्रवृत्तिः। इदमपरमधिकतर जनितमतिमहन्मनसि मे कौतुकमस्या बाष्पसलिलपातेन। न ह्यल्पीयसा शोककारणेन क्षेत्रीक्रियन्त एवविधा

रिति। अन्तर्गता मध्यप्राप्तां हृदयशुद्धिं चित्तनैर्मल्यमिवादाय गृहीत्वा निर्गच्छद्भिर्बहिरागच्छद्भि। इन्द्रियेति। इन्द्रियाणामक्षाणा प्रसाद प्रसन्नतामिव वर्षद्भिर्वर्षण कुर्वद्भि। तप इति। तपसा चान्द्रायणादीना रसानि स्यन्दमिव द्रवरहस्यमिव स्रवद्भि क्षरद्भि। लोचनेति। लोचनविषय नेत्रसबन्धिन धवलिमान श्वेतिमानमिव द्रवीकृत्य रसीकृत्य पातयद्भि। अच्छेति। अच्छानि चाच्छानि चाच्छाच्छानि तै। अतिस्वच्छैरित्यर्थ.। अमलेति। अमल निर्मल यत्कपोलस्थल तत्र स्खलितै स्खलनां प्राप्तै। अवशीर्णेति। अवशीर्णस्त्रुटितो यो हारो मुक्ताप्रालम्बस्तस्य मुक्ताफलानि रसोद्भवानि तद्वत्तरल कम्पन पातो येषां तै.। एतेनोज्ज्वलत्वसाम्यात्क्षरन्मुक्ताफलसाम्यमश्रूणा ध्वनितम्। अनुबद्धाः परस्परानुविद्धा बिन्दवो विप्रुषो येषा तै। वल्कलेति। वल्कलावृतौ चोचाच्छादितौ यौ कुचौ पयोधरौ तयो शिखरमग्र तेन जर्जरिता शिथिलता प्राप्ता सीकरा कणा येषां तै। एतेन कुचयोरतिकाठिन्य व्यञ्जितम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तामिति। तां कन्यकाम्। चकार पुनरर्थक। प्ररुदितां कृताश्रुपाता दृष्ट्वा विलोक्य चन्द्रापीडस्तत्क्षण तस्मिन्नवसरेऽचिन्तयच्चिन्तितवान्। चिन्ताविषयमाह—अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये। व्यसनानि मद्यपानादीनि तत्रोपनिपाता अत्यासक्तिरूपास्तेषा दुर्निवारता दुर्हेयता। अनल्पायासेन निवारयितु शक्यते, न तु स्वल्पप्रयासेनेति भाव। यदिति हेत्वर्थे। अनभिभवनीया न परैरभिभवितु योग्यामेतादृशीमलौकिकीमप्याकृतिमाकारामात्मीया स्वायत्ता कुर्वन्ति प्रणयन्ति। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेणोपतापा कामाभिलाषा कचन शरीरधर्माण न न स्पृशन्ति न नाश्लिषन्ति। 'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयत' इति न्यायाद्द्विनकारप्रयोग। बलेति। हि निश्चितम्। द्वन्द्वाना सुखदु खाना प्रवृत्ति प्रवर्तन बलवती बलिष्ठा। इदमिति। मे मम मनसि चित्त इदमपरमन्यदधिकतर महत्कौतुक-

ने उसी समय (मन में) इस प्रकार सोचा—"अहो! दुखों का आ पड़ना कितना अपरिहार्य है (दु खों के आने को रोकना कितना कठिन है)! क्योंकि वे (दुख) ऐसी अनाक्रम्य (कठिनता से आक्रम्य) आकृति को भी अपनी कर लेते हैं—(अपने वश में कर लेते हैं)! निश्चय ही यह बात नहीं है कि दुख किसी शरीरधारी को न छूते हों (दुख तो सभी शरीरधारियों को अवश्य सताते हैं)[१] (इस ससारमें सुख दुखादि) द्वन्द्वों का प्रवर्तन, निश्चय ही शक्तिशाली है। इसके आँसुओं के जल के गिरने के कारण (इस द्वारा अपने आँसुओं को बहाने के कारण) यह मेरी दूसरी बड़ी उत्सुकता मेरे मन में उत्पन्न हो गयी है, क्योंकि कोई छोटा-मोटा शोक का कारण ऐसी आकृतियों को अपना क्षेत्र नहीं बनाता है

१ द्वौ नञौ प्रवृत्तमर्थं सूचयत।

मूर्तयः। न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा' इति सवर्धितकुतूहलश्च शोकस्मरणहेतुतामुपगतमपराधिनमिवात्मानमवगच्छन्नुत्थाय प्रस्रवणादञ्जलिना मुखप्रक्षालनोदकमुपनिन्ये। सा तु तदनुरोधादविच्छिन्नबाष्पजलधारासतानापि किंचित्कषायितोदरे प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शनैः शनैः प्रत्यवादीत्—

'राजपुत्र, किमनेनातिनिर्घृणहृदयाया मम मन्दभाग्यायाः पापाया जन्मनः प्रभृति वैराग्यवृत्तान्तेनाश्रवणीयेन श्रुतेन। तथापि यदि महत्कुतूहलं तत्कथयामि।

माश्चर्यं जनितमुत्पादितमस्या कन्यकाया बाष्पसलिलमश्रुजल तस्य पातेन पतनेन। जितेन्द्रियग्रामाया अस्या अश्रुपतनमेव महदाश्चर्यमिति भाव। ननु स्वल्पमेव शोककारणमित्याह—न हीति। हीति निश्चितम्। अल्पीयसा कनीयसा शोककारणेन खेदनिमित्तेनैवंविधा अनिर्वचनीयस्वरूपा मूर्तय शरीराणि न क्षेत्रीक्रियन्ते नाश्रयीक्रियन्ते। अत्रैव हेतुमाह—न हीति। क्षुद्रस्तुच्छो यो निर्घात प्रहारस्तस्य पात पतन तेनाभिहता ताडिता वसुधा पृथ्वी। हीति निश्चितम्। न चलति न कम्पते। सवर्धितमिति। संवर्धित वृद्धिं प्राप्तं कुतूहल कौतुक यस्यैवभूतोऽह शोकस्य खेदस्य स्मरण स्मृतिस्तस्य हेतुता निमित्ततामुपगत प्राप्तमत एवापराधिन सागसमात्मानमवगच्छन्निव जानन्निवोत्थाय प्रस्रवणान्निर्झरान्मुखप्रक्षालनाय वदनशुद्ध्यर्थमुदक पानीयमञ्जलिना पाणिपुटेनोपनिन्य आनीतवान्। सा त्विति। सा कन्यका। तु पुनरर्थक। तस्य चन्द्रापीडस्यानुरोधादाग्रहात्। अविच्छिन्नेति। अविच्छिन्नमत्रुटित बाष्पजलधारासतानमश्रुपानीयधारासमूह यस्या एवविधापि किंचित्कषायित कषायगुणयुक्तमुदर मध्य ययोरेवभूते लोचने नेत्रे प्रक्षाल्य धावना कृत्वा वल्कलोपान्तेन चोचाञ्चलेन वदन मुखमपमृज्य मार्जन कृत्वा दीर्घमायतमुष्ण तप्त च नि.श्वस्य शनै शनैर्मन्द मन्द प्रत्यवादीत्प्रत्यवोचत्।

राजेति। हे राजपुत्र, अतिनिर्घृण निर्दय हृदय स्वान्त यस्या एवविधाया मन्दभाग्याया क्षीणभागधेयाया पापाया पापिष्ठाया जन्मन प्रभृत्युत्पत्तेरारभ्याश्रवणीयेनाकर्णना

(अर्थात् ऐसी आकृतियों के शोक का कारण कोई बड़ा ही होगा)। निश्चय ही तुच्छ (सामान्य) बिजली के गिरने से ढकेली गयी पृथ्वी नहीं हिलती है।" इस प्रकार बढ़ी हुई उत्सुकता वाला वह उसके शोक के स्मरण का कारण बने हुए अपने आपको अपराधी सा मानता हुआ उठकर झरने से, अञ्जलि में मुँह धोने के लिये पानी ले आया। और नहीं टूटा है आँसुओं के जल की धारा का प्रवाह जिसका—ऐसी भी उसने उसके आग्रह से अपने (रोने के कारण) कुछ कुछ लाल हुए मध्य भागों वाली अपनी आँखों को धोकर और फिर अपना मुँह वल्कल वस्त्र के आँचल से पोंछकर लम्बी और गरम आह भरकर धीरे-धीरे (इस प्रकार) उत्तर दिया :—

'राजपुत्र! अत्यन्त निष्ठुर हृदय वाली, जन्म से लेकर ही अभागिनी मुझ पापिनी के इस न सुनने योग्य, वैराग्य वृत्तान्त को सुनने से क्या लाभ है! तो भी यदि (आपकी)

श्रूयताम्। एतत्प्रायेण कल्याणाभिनिवेशिनः श्रुतिविषयमापतितमेव यथा विबुधसद्मन्यप्सरसेना नाम कन्यकाः सन्तीति। तासा चतुर्दश कुलानि—एक भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम्, अन्यद्वेदेभ्य सभूतम्, अन्यदग्नेरुद्भूतम्, अन्यत्पवनात्प्रसूतम्, अन्यदमृतान्मथ्यमानादुत्थितम्, अन्यज्जलाज्जातम्, अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्, अन्यत्सोमरश्मिभ्यो निपतितम्, अन्यद्भूमेरुद्भूतम्, अन्यत्सौदामिनीभ्यः प्रवृत्तम्, अन्यन्मृत्युना निर्मितम्, अपर मकरकेतुना समुत्पादितम्, अन्यत्तु दक्षस्य प्रजापतेरतिप्रभूताना कन्यकाना मध्ये द्वे सुते मुनिररिष्टा च बभूवतुस्ताभ्या गन्धर्वैः सह कुलद्वयं जातम्। एवमेतान्येकत्र चतुर्दश कुलानि। गन्धर्वाणा तु दक्षात्मजाद्वितय-

---

नर्हेण वैराग्यवृत्तान्तेन विरक्तोदन्तेन किमनेन श्रुतेनाकर्णितेन। तथापीति। एव सत्यपि फलाभावे विद्यमानेऽपि यदि महत्कुतूहलं महदाश्चर्यं तस्माद्धेतो कथयामि ब्रुवे। प्रायेण बाहुल्येन कल्याणे श्रेयस्यभिनिविशित इत्येवशीलं नोऽस्माक श्रुतिविषय कर्णगोचरमापतितमागतम्। कुलपरम्परया श्रुतमित्यर्थं। एतदेव श्रूयतामाकर्ण्यताम्। यथेति। विबुधसद्मनि किनरग्रहेऽप्सरसेना। नामेति कोमलामन्त्रणे। कन्यका पुत्र्य सन्ति। तासा कन्यकाना चतुर्दश कुलानि। तत्रैक कमलयोनेर्भगवतो विधातुर्ब्रह्मणो मनस स्वान्तात्समुत्पन्न सजातम्। अन्यद् द्वितीय वेदेभ्य श्रुतिभ्य सभूतमुत्पन्नम्। अन्यत्तृतीयमग्नेर्विभावसोरुद्भूत प्रकटितम्। अन्यच्चतुर्थं पवनाद्वायो प्रसूत जनितम्। अन्यत्पञ्चममृताज्जलान्मथ्यमानाद्विलोड्यमानादुत्थित प्रादुर्भूतम्। अन्यत्षष्ठ जलाज्जातम्। अन्यत्सप्तम कुलमर्ककिरणेभ्य सूर्यदीधितिभ्यो निर्गत बहिरागतम्। अन्यदष्टम सोम कुमुदबान्धवस्तस्य रश्मिभ्य किरणेभ्यो निपतित च्युतम्। अन्यन्नवम कुल पृथिव्या वसुधराया उद्भूत प्रकटितम्। अन्यद्दशम सौदामिनीभ्य ह्लादिनीभ्य प्रवृत्त प्रवर्तितम्। अन्यदेकादश कुल मृत्युना यमेन निर्मित रचितम्। अपरमन्यद्द्वादश मकरकेतुना मनोभवेन समुत्पादितम्। अन्यत्त्विति। दक्षस्य प्रजापतेरतिभूतानामतिबह्वीना

बहुत अधिक उत्सुकता है तो मै कहती हूँ। सुनिये—प्राय (सदा ही) कल्याण करने का आग्रह करने वाले आप के कानो मे यह बात तो सम्भवत आयी ही होगी कि देवलोक मे अप्सरा नाम की कन्यायें है। उनके चौदह परिवार हैं—एक कुल कमलोत्पन्न भगवान् ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुआ था, दूसरा वेदो से उत्पन्न हुआ था, अन्य अग्नि से प्रकट हुआ था, अन्य (चौथा) वायु से जन्मा था। अन्य (पाँचवाँ) विलोडे जाते हुए अमृत से निकला था, अन्य (छठा) जल से जन्मा, अन्य (सातवाँ) सूर्य की किरणों से निकला था, अन्य (आठवाँ) चन्द्रमा की किरणो से बाहर निकला था, अन्य (नौवाँ) पृथ्वी से उत्पन्न हुआ था, अन्य (दसवाँ) बिजलियो से निकला था, अन्य (ग्यारहवे) को मृत्यु ने बनाया था, अन्य (बारहवे को) मकरध्वज (कामदेव) ने बनाया था, दक्षप्रजापति की बहुत सी उत्पन्न कन्याओं में से दो कन्याएँ मुनि तथा अरिष्टा थीं—उनसे गन्धर्वों के साथ (सयोग से) दो परिवार (तेरहवाँ तथा चौदहवाँ) उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ये मिलकर चौदह कुल हैं।

सभव तदेव कुलद्वय जातम्। अत्र मुनेस्तनयः सेनादीना पञ्चदशाना भ्रातॄणामधिको गुणैः षोडशश्चित्ररथो नाम समुत्पन्नः। स किल त्रिभुवनप्रख्यातपराक्रमो भगवता समस्त-सुरमौलिमालालालितचरणनलिनेनाखण्डलेन सुहृच्छब्देनोपबृंहितप्रभावः सर्वेषा गन्धर्वाणामाधिपत्यमसिलतामरीचिनिचयमेचकितेन बाहुना समुपार्जित शैशव एवाप्तवान्। इतश्च नातिदूरे तस्यास्माद्भारतवर्षादुत्तरेणानन्तरे किंपुरुषनाम्नि वर्षे

कन्यकानामात्मजाना मध्ये द्वे सुते द्वे कन्यके मुनिरिष्टा च बभूवतुर्जज्ञाते। ताभ्या कन्यकाभ्या गन्धर्वैर्देवगायनै सह कुलद्वय जातम्। एवमिति पूर्वोक्तप्रकारेण। एकत्रेति। एकस्मिन्प्रदेश एतानि चतुर्दश कुलानि। गन्धर्वाणा तु दक्षात्मजाद्वितयसभवं तदेव पूर्वोक्तमेव कुलद्वयम्। नाधिकमित्यर्थ। अत्रेति। अस्मिन्नेव प्रदेशे मुनेर्दक्षजात्मजाया सेनादीना पञ्चदशाना भ्रातॄणा मध्ये गुणै शौर्यादिभिरधिक षोडशश्चित्ररथो नाम तनय समुत्पन्न। सेति। किलेति सत्ये। स चित्ररथस्त्रिभुवने त्रिविष्टपे प्रख्यात प्रसिद्ध पराक्रम शौर्यवृत्तिर्यस्य स। भगवतेति। भगवता माहात्म्यवता। समस्तेति। समस्ता समग्रा ये सुरा देवास्तेषा मौलिमाला किरीटपङ्क्तयस्ताभिर्लालितं पालित चरणनलिन पादपद्म यस्य स तेन एवविधेनाखण्डलेनेन्द्रेण सुहृच्छब्देन मित्रशब्देनोपबृंहित श्लाघाविषयीकृत प्रभावः कोशदण्डज तेजो यस्य स तथा। सर्वेषामिति। सर्वेषां समग्राणा गन्धर्वाणा देवगायनाना शैशवे बाल्य एवाधिपत्य प्रभुत्व-माप्तवान्प्राप्तवान्। कीदृशमाधिपत्यम्। समुपार्जितमर्जितम्। केन। बाहुना भुजेन। अथ बाहुं विशेषयन्नाह—असीति। असिलता खड्गलता तस्या मरीचिनिचय. कान्तिसमूहस्तेन मेचकितेन श्यामलितेन। इतश्चेति। अर्थान्तरेऽस्मात्स्थानान्नातिदूरे नातिदविष्ठे तस्य राज्ञोऽस्माद्भारतवर्षा-द्भरतक्षेत्रादुत्तरेणानन्तरेऽत्यासन्ने किंपुरुषनाम्नि किंपुरुषाभिधाने वर्षे क्षेत्रे वर्षपर्वत क्षेत्रसीमा-

---

गन्धर्वों के तो दक्ष की दो पुत्रियों (दक्षात्मजा द्वितय) से उत्पन्न वे दो ही कुल हुए। वहाँ मुनि का चित्ररथ नाम का एक पुत्र हुआ, वह अपने चित्रसेन आदि पन्द्रह भाइयों म गुणों के कारण अधिक उत्कृष्ट सोलहवाँ था। ऐसा बताया गया है[1] कि वह तीनों लोकों मे प्रसिद्ध वीरतावाले, सम्पूर्ण देवताओं के अनगिनत मस्तकों द्वारा (प्रणाम करते समय) स्पष्ट चरण कमलों वाले भगवान् इन्द्र द्वारा (उसके प्रति) 'मित्र' शब्द (के व्यवहार) द्वारा बढ़ाये गये यशवाले, उस चित्ररथ ने अपनी लम्बी पतली तलवार (असिलता) से (निकली) किरणों के समूह से श्यामल हुई बाहु द्वारा अर्जित, सभी गन्धर्वों का प्रभुत्व बचपन मे ही प्राप्त कर लिया था। और यहाँ[2] से समीप ही, इस भारत देश से उत्तर की ओर साथ ही लगे हुए किंपुरुष नाम के देश मे हेमकूट नाम

---

१ किल ऐतिह्ये।

२ 'इतश्च' इस पद मे "दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्' सूत्र से षष्ठी तथा पंचमी का विधान है। 'अतिदूरे' में सप्तमी का विधान 'तद्युक्तादध्वन प्रथमासप्तम्यौ' इस वार्तिक मे हे।

वर्षपर्वतो हेमकूटो नाम निवासः। तत्र च तद्भुजयुगपरिपालितान्यनेकानि गन्धर्वशतसहस्राणि प्रतिवसन्ति। तेनैव चेदं चैत्ररथं नामातिमनोहरं काननं निर्मितम्, इदं चाच्छोदाभिधानमतिमहत्सरः खानितम्, अयं च भवानीपतिरुपरचितो भगवान्। अरिष्टायास्तु पुत्रस्तस्मिन्द्वितीये गन्धर्वकुले गन्धर्वराजेन चित्ररथेनैवाभिषिक्तो बाल एव राज्यपदमासादितवान्। अपरिमितगन्धर्वबलपरिवारस्य तस्यापि स एव गिरिरधिवासः। यत्तु तत्सोमपीयूषसभूतानामप्सरसां कुलं तस्मात्किरणजलानुसारगलितेन सकलेनेव रजनिकरकलाकलापलावण्येन निर्मिता त्रिभुवननयनाभिरामा भगवती द्वितीयेव गौरी गौरीति नाम्ना हिमकिरणकिरणावदातवर्णा कन्यका प्रसूता।

कुलगो हेमकूटो नाम हेमकूटाभिधानो निवासो वसतिस्थलं वर्तते। तत्र चेति। तस्मिन्पर्वते। तदिति। तस्य चित्ररथस्य भुजयुगं बाहुयुगं तेन परिपालितानि रक्षितान्यनेकानि गन्धर्वशतसहस्राण्यनेकलक्षाणि प्रतिवसन्ति। तस्योत्कर्षमाह—तेनैवेति। तेनैव राज्ञा चित्ररथेनेदं चैत्ररथं नामातिमनोहरमतिरमणीयं काननं वनं निर्मितं निष्पादितम्। इदमच्छोदाभिधानमतिमहत्सरः खानितं निर्मापितम्। स्थावराभिप्रायेणाह—अयं चेति। अयं प्रत्यक्षो भगवान्भवानीपतिरीश्वर उपरचितो निर्मितः। अथ चारिष्टाया पुत्रः सुतः। तु पुनरर्थकः। तस्मिन्द्वितीये गन्धर्वकुले गन्धर्वराजेनैव चित्ररथेनैवाभिषिक्तो राज्याभिषेकविषयीकृतः। अतएव बाल एव शिशुरेव राज्यपदमाधिपत्यस्थलमासादितवान्प्राप्तवान्। अपेति। अपरिमितमसंख्यं यद्गन्धर्वकुलं तदेव परिवारः परिच्छदो यस्य एः तथा तस्यापि स एव हेमकूटाभिधानो गिरिः पर्वतोऽधिवासो निवासस्थलम्। यत्त्विति। तस्मिन्पर्वते सोमपीयूषसभूतानामप्सरसां कुलं तस्मात्कुलात्। किरणेति। किरणजलममृतं तस्यानुसारोऽनुसरणं तेन गलितेन विलीनेन सकलेन समग्रेण। रजनीति। रजनिकरस्य चन्द्रस्य कलाकलापस्तस्य लावण्येनेवान्तर्गतसारेणेव निर्मिता रचिता।

का वर्ष पर्वत[1] उसका निवास स्थान है और वहाँ उसकी दो भुजाओं द्वारा रक्षित अनेक सैकड़ो-हजारों गन्धर्व रहते हैं। और उसी चित्ररथ ने यह चैत्ररथ नाम का अत्यन्त आकर्षक बनवाया है। (चैत्ररथ नाम का कुंज लगाया) और यह अच्छोद नाम का बहुत बड़ा सरोवर खुदवाया है और पार्वती पति, भगवान् शिव की मूर्ति बनवायी है। अरिष्टा के दूसरे पुत्र, अपने तुम्बरु आदि दूसरे छः भाइयों मे सबसे बड़े संसार प्रसिद्ध हंस ने, उस दूसरे गन्धर्व कुल मे, गन्धर्वों के राजा चित्ररथ द्वारा ही राज्याधिरूढ़ कराये गये ने, बचपन में ही राज्याधिकार प्राप्त किया था। असंख्य गन्धर्वों की सेनारूप परिवारों (अनुयायियों) वाले उस वंश का निवासस्थान भी वही पर्वत है। (इनमें से) जो चन्द्रमा की किरणों से प्रकट हुआ कुल था—उससे चन्द्रमा की जलसरीखी किरणों के साथ साथ नीचे स्रवित, चन्द्रकलाओंके समूह (सारी चन्द्रकलाओं) की समग्र सुन्दरता से घड़ी गयी सी प्रतीत होती, तीनों लोकों के सभी निवासियों की आँखों को आकर्षित करने वाली, दूसरी देवी गौरी (पार्वती) सरीखी प्रतीत होती, चन्द्रमा की किरणों के श्वेत रंग की, गौरी नाम वाली कन्या ने जन्म लिया। जैसे क्षीर समुद्र ने आकाश

---

१ संसार के विभिन्न भागों की सीमाओं की विभाजक पर्वत श्रेणियों में से एक।

ता च द्वितीयकुलाधिपतिर्हंसो मन्दाकिनीमिव क्षीरसागरः प्रणयिनीमकरोत्। सा तु भगवता मकरकेतनेनेव रतिः, शरत्समयेनेव कमलिनी, हंसेन सयोजिता। सदृश-समागमोपजनितामतिमहती मुदमुपगतवती निखिलान्तःपुरस्वामिनी च तस्याभवत्। तयोश्च तादृशयोर्महात्मनोरहमीदृशी विगतलक्षणा शोकाय केवलमनेकदुःखसहस्र-भाजनमेकैवात्मजा समुत्पन्ना। तातस्त्वनपत्यतया सुतजन्मातिरिक्तेन महोत्सवेन मम जन्माभिनन्दितवान्। अवाप्ते च दशमेऽहनि कृतयथोचितसमाचारो महाश्वेतेति

त्रिभुवनेति। त्रिभुवनस्य त्रिविष्टपस्य नयनानि लोचनानि तेषामभिरामा मनोहरा भगवती माहात्म्यवती द्वितीयेव गौरी गौरीति नाम्ना। हिमेति। हिमकिरणस्य किरणा रश्मयस्तद्वदव दातो निर्मलो वर्णो देहच्छविर्यस्या सैवविधा कन्यका प्रसूता जनिता। ता चेति। ता गौरी द्वितीयकुलाधिपतिर्हंसो मन्दाकिनीं स्वर्धुनी क्षीरसागर इव प्रणयिनीं वल्लभामकरोत्। सा त्विति। सा गौरी भगवता मकरकेतनेन कदर्पेण रतिरिव। शरत्समयेन घनात्ययकालेन कमलिनीव नलिनीव। एव हसेन गन्धर्वाधिपतिना सयोजिता सबन्ध प्रापिता। सदृशेति। सदृश उचितो य समागमः सबन्ध उपजनितां विहितामतिमहती गरीयसी मुद हर्षमुपगतवती प्राप्तवती तस्य राज्ञो निखिल समग्र यदन्त पुरमवरोधस्तत्र स्वामिनी मुख्या चाभवत्। तयोश्चेति। तयोर्हंसगौर्योर्महात्मनोरहमीदृश्येकात्मजैका पुत्री केवल शोकाय समुत्पन्ना। कीदृशी। विगतानि दूरीभूतानि लक्षणानि श्रेयोजनकानि मषीतिलकादीनि यस्या सा तथा। पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—अनेकेति। अनेकानि विविधानि यानि दु खानि कष्टानि तेषा सहस्राणि तेषा भाजन पात्रम्। आविष्टलिङ्गत्वात् 'वेदा प्रमाणम्' इतिवन्नपुसकत्वम्। तातस्त्विति। तात पितानपत्यतयाऽसतानत्वेन सुतजन्मातिरिक्तेन पुत्रजन्माधिकेन महोत्सवेन महामहेन मम जन्म मज्जन्माभिनन्दितवानतिस्तुतवान्। अवाप्तेति। अवाप्ते प्राप्ते दशमेऽहनि दिने। कृत इति। कृतो विहितो यथोचितो यथायोग्य समाचारो वेदोक्तक्रियाकलापो येन स। महाश्वेतवर्णत्वान्महाश्वेतेति यथार्थमेव नाम कृतवान्। सेति। साह पितृभवने जनक-

---

गगा को अपनी प्रेमिका बनाया था, वैसे ही गन्धर्वों के दूसरे कुल के राजा हस ने उसको अपनी प्रिय पत्नी बनाया। और वह जैसे कि मकरध्वज कामदेव के साथ सयुक्त हुई रति, अथवा शरत् समय के साथ सयुक्त हुई कमलिनी उचित सयोग (उपयुक्त साथ के साथ सयोग) हो जाने के कारण बहुत प्रसन्न होती है वैसे ही वह हस के साथ सयुक्त होकर (उपयुक्त साथी मिल जाने के कारण) अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और उसके सारे अन्त पुर (की स्त्रियों) की स्वामिनी बन गयी। और उन ऐसे महात्माओं की अकेली ही पुत्री मैं ऐसी सब प्रकार के मागलिक (शारीरिक) चिह्नों से वचिता और कई सहस्र दुखों की निवास भूमि, (उनके लिये) केवल शोक की ही कारणभूत उत्पन्न हुई हूँ। पिता ने तो, सन्तान न होने के कारण, पुत्र जन्म के समय किये जाने वाले महोत्सव से भी अधिक शानदार महोत्सव से मेरे जन्म का स्वागत किया। और दसवें दिन (प्राप्त) होने पर सामान्य रीतियाँ किये हुए ने, 'महाश्वेता' यह अर्थ के अनु

यथार्थमेव नाम कृतवान्। साहं पितृभवने बालतया कलमधुरप्रलापिनी वीणेव गन्धर्वाणामङ्कादङ्कं सचरन्त्यविदितस्नेहशोकायास शैशवमतिनीतवती। क्रमेण च कृत मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

अथ विजृम्भमाणनवनलिनवनेषु, अकठोरचूतकलिकाकलापकृतकामुकोत्कलिकेषु कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मदकलितकामिनीगण्डूषसीधु-

---

सद्मनि बालतया शिशुत्वेन कलमधुरप्रलापिनी कल मनोज्ञ मधुर मिष्ट प्रलपतीत्येवशीला सा तथा केवल वीणेव वल्लकीव गन्धर्वाणा देवगायनानामङ्कादङ्क क्रोडात्क्रोड सचरन्ती गच्छन्ती। अवीति। अविदितोऽज्ञात स्नेह प्रीति, शोक शुक्, तयोरायास प्रयासो येनैवविध शैशव बाल्यमतिनीतवत्यतिक्रान्तवती। तदनन्तर मे मम वपुषि शरीरे नवयौवनेन प्रत्यग्रतारुण्येन पद स्थान कृत विहितम्। कस्मिन्क इव। वसन्ते पुष्पकाले मधुमासेनेव चैत्रेणेव। तथा मधुमासे नवपल्लवेनेव प्रत्यग्रकिसलयेनेव। तथा नवपल्लवे कुसुमेनेव सूनेनेव। तथा कुसुमे मधुकरेणेव भ्रमरेणेव। तथा मधुकरे मदेनेव।

अथेत्यानन्तर्ये। एकदेति। एकस्मिन्समयेऽहं मधुमासदिवसेषु वसन्तवासरेष्वम्बया मात्रा सहेदमच्छोद सर स्नातुमभ्यपतमगच्छमिति दूरेणान्वय। अथ मधुमासदिवसान्विशेषयन्नाह—विजृम्भेति। विजृम्भमाणानि विकसमानानि नवनलिनवनानि प्रत्यग्रपद्मखण्डानि येषु। अकठोरेति। अकठोरा सुकुमारा या चूतकलिका आम्रकोरकास्तासा कलाप समूहस्तेन कृता विहिता कामुकाना कामिजनानामुत्कलिकोत्कण्ठा येषु। उद्दीपकत्वादिति भाव। कोमलेति। कोमलो

कूल ही (अत्यन्त श्वेत) नाम रखा। तब मैंने स्नेह तथा शोक के दुखों के ज्ञान से रहित अपना बचपन, बालक होने के कारण बीणा की भाँति अस्पष्ट तथा मीठा बोलते हुए गन्धर्वों की एक गोद से दूसरे की गोद में जाते हुए पिता के घर मे ही बिता दिया और क्रमश. नयी जवानी ने मेरे शरीर मे ऐसे पदार्पण किया जैसे कि वसन्त ऋतु मे चैत्र महीना आता है, चैत्र मास में नयी कोंपल आती है, नयी कोंपल में फूल आता है, फूल पर भौंरा आता है और भौंरे पर नशा आता है।

अब आगे सुनिये, एक बार मैं अपनी माता के साथ वसन्त ऋतु के दिनों मे स्नान के लिये इस अच्छोद झील पर आयी। उस समय इस झील का सौन्दर्य चैत्रमास द्वारा विस्तृत हो गया था—बढ गया था। इसमें नये (ताजे) नलिन, कुमुद, कुवलय, कह्लार प्रकार के कमल खिल रहे थे। वसन्त के उन दिनों में मैं स्नान करने के लिये आयी, जब ताजे कमलों की क्यारियाँ खिल रही होती हैं, जब कोमल आम्रकलियाँ कामियों (प्रेमियों) में उत्कण्ठा उत्पन्न करती हैं, जब मन्दमलय वायु के उतरने से (मलयपर्वत से चलकर आयी मन्द वायु मे) कामदेव की ध्वजा का वस्त्र फड़ फड़ाता है, जब नशे मे भरी हुई महिलाओं के कौर की

सेकपुलकितबकुलेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, अशोकतरुताडनरणितरमणीयमणिनूपुरझंकारसहस्रमुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुसिञ्जितसुभगसहकारेषु, अविरलकुसुमधूलिवालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदविडम्बितमधुकरकदम्बकसवाह्यमानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्लासितमधुशीकरोद्दामदुर्दिनेषु, प्रोषितजनजायाजीवोपहारहृष्टमन्मथास्फालितचापरवभयस्फुटितपथिकहृदयरुधिरार्द्रीकृतमार्गेषु, अविरतपतत्कुसुम-

---

मृदुर्यो मलयमारुतो मलयानिलस्तस्यावतार इतस्तत प्रसरण तेन तरङ्गितानि भङ्गितान्यनङ्गध्वजांशुकानि मदनवैजयन्तीवसनानि येषु। मलयमारुतस्योद्दीपकत्वात्। अनङ्गध्वजकम्पनेनानङ्गस्य प्रोत्साहन सूचितम्। मदेति। मदेनाहङ्कारेण कलिता व्याप्ता या कामिन्य स्त्रियस्तासा गण्डूषसीधुश्चुलुकमद्यं तेन सेक सिञ्चन तेन पुलकिता रोमाञ्चिता बकुला केसरा येषु। इद च बकुलतरुच्छायायाँ कामिनीना मधुपानवर्णनम्। मधुकरेति। मधुकरस्य भ्रमरस्य कुलानि सजातीयवृन्दानि तान्येव कलङ्कोऽभिज्ञान तेन कालीकृतानि श्यामीकृतानि कालेयकाना जापकाना कुसुमानि पुष्पाणि कुड्मलानि मुकुलानि च येषु। अशोकेति। अशोक कङ्केलिर्यस्तरुर्वृक्षस्तस्य ताडनेनाघातेन रणितानि शब्दितानि रमणीनां कामिनीनां मणिनूपुराणि रत्नपादकटकानि तेषां झकारा अव्यक्तशब्दास्तेषा सहस्रेण मुखरा वाचाला येषु। विकसदिति। विकसन्ति स्मेरता प्राप्नुवन्ति यानि मुकुलानि गुच्छा। पुष्पाणामिति शेष। तेषा य' परिमल आमोदस्तेन पुञ्जिता समूहिता येऽलयो भ्रमरास्तेषा जाल समूहस्तस्य मञ्जु मनोहर यत्सिञ्जित शब्दित तेन सुभगा सुन्दरा एतादृशा सहकारा आम्रा येषु। अविरलेति। अविरलानि निबिडानि यानि कुसुमानि सूनानि तेषां धूलि पराग। श्वेतत्वसाम्यात्। सैव वालुकापुलिन सिकतातटं तेन धवलितं श्वेतीकृत धरातल पृथ्वीतल येषु। मध्विति। मधु रसस्तस्य मदेन

शराब के अवसिंचन से बकुलवृक्ष पुलकित हो जाते हैं—उनपर कलियाँ प्रकट हो जाती हैं, उन दिनों जब कि भौरों के झुण्ड के कलङ्क से कालेय वृक्षों के फूलों की कलियाँ काली हो जाती हैं, जब कि अशोकवृक्ष को (पाँव से) आघात करते समय सुन्दर मणिमय नूपुरों की सहस्रों झंकारों से दिन गूँजते हैं, उन दिनों जब कि खिलती हुई कलियों की सुगन्ध से (आकृष्ट होकर वहाँ) एकत्रित भ्रमरसमूह की मधुर गुंजार से आम्रवृक्ष सुन्दर प्रतीत होते हैं, उन दिनों जब कि बिना अन्तर छोड़े पुष्प पराग द्वारा रचित रेतीले किनारों (फैली रेत) से धरातल श्वेत हो जाते हैं, जब कि शहद के नशे से पागल हुए भौरों के समूहों द्वारा लतारूप झूले झुलाये जा रहे होते हैं, उन दिनों, जब पूर्णतया विकसित कोंपलों वाली लवली लताओं में छिपती मस्त कोकिलों द्वारा फेंके गये मधु की भारी बौछारों से वर्षाऋतु सी उत्पन्न हो जाती है; उन दिनों जब प्रोषित अर्थात् देशान्तरगत (अतएव यात्रा पर गये) मनुष्य की स्त्री के जीवन की भेंट (भेंट रूप में प्राप्त जीवन) से प्रसन्न हुए कामदेव द्वारा खींची गयी प्रत्यचा वाले धनुष की टंकार के भय से टूटे पथिक हृदय के रक्त से मार्ग गीले हुए रहते हैं, उन दिनों जब, निरन्तर

शरपतत्रिपत्रसूत्कारबधिरीकृतदिङ्मुखेषु, दिवापि प्रवृत्तमदनरागान्धाभिसारिकासार्थसंकुलेषु, उद्वेलरतिरससागरपूरप्लावितेषु, सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु मधुमासदिवसेष्वेकदाहमम्बया सह मधुमासविस्तारितशोभ प्रोत्फुल्लनवनलिनकुमुदकुवलयकह्लारमिदमच्छोदं सरः स्नातुमभ्यपतम्। अत्र च स्नानार्थमागतया भगवत्या पार्वत्या तटशिलातलेषु विलिखितानि सभृङ्गिरिटीनि पांशुनिमग्नक्षुद्रपदमण्डलानुमितमुनि-

विडम्बिता विह्वलीकृता ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां कदम्बक समूहस्तेन सवाह्यमाना इतस्ततो विक्षिप्यमाणा या लता वल्लयस्ता एव दोला प्रेङ्खा येषु। उत्फुल्लेति। उत्फुल्ला विजृम्भिता पल्लवा किसलयानि यासामेवंविधा लवल्यो लताविशेषास्तासु लीयमाना अन्तर्धानता प्राप्यमाणा या मत्तकोकिला पिकास्ताभिरुल्लासित बहिरानीत यन्मधु रसस्तस्य शीकराः कणास्तैरुद्दामदुर्दिनमस्युप्रवादं ल येषु। प्रोषितेति। प्रोषिता अन्यदेशे गता ये जना लोकास्तेषा जाया स्त्रियस्तासां जीवा असुमन्तस्तेषामुपहार उपहरण तेन हृष्ट प्रमुदितो यो मन्मथ कदर्पस्तेनास्फालितमास्फोटित यच्चाप धनुस्तस्य यो रव शब्दस्तस्माद्भय भीतिस्तेन स्फुटितानि विभिन्नानि यानि पथिकहृदयानि पान्थजनचित्तानि तेषा रुधिरेण रक्तेनार्द्रीकृतो मार्गं पन्था येषु। अविरतेति। अविरतं निरन्तर पतन्त उपविशन्त कुसुमशयेषु पुष्पकाण्डेषु। 'शर काण्डतेजनयो' इत्यनेकार्थः। एतादृशा ये पतत्रय पक्षिणस्तेषा पत्रसूत्कारेण पक्षाव्यक्तशब्देन बधिरीकृतमेडीकृत दिङ्मुख येषु। दिवापीति। दिवसेऽपि प्रवृत्त प्रसृतो यो मदन कदर्पस्तस्य रागेण तदासक्त्यान्धा उत्पश्या या अभिसारिका नायिकाविशेषास्तासां सार्थं समूहस्तेन सकुलेष्वाकीर्णेषु। उद्वेलेति। उद्वेल प्रवर्धितजलो यो रतिरस शृङ्गारोऽगाधत्वसाम्यात्स एव सागर समुद्रस्तस्य पूर प्लवस्तेन प्लावितेष्वाच्छादितेषु। सकलेति। सकलाना समग्राणा जीवलोकाना हृदयानि चित्तानि तेषामानन्ददायकेषु प्रमोदजनकेषु। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। अथाच्छोद सरो विशेषयन्नाह—मध्विति। मधुमासेन विस्तारिता विस्तारतां नीता शोभा कान्तिर्यस्मिंस्तत्। प्रोत्फुल्लेति। प्रोत्फुल्लानि विकसितानि नवानि प्रत्यग्राणि यानि नलिनानि कमलानि, कुमुदानि कैरवाणि, कुवलयान्युत्पलानि, कह्लार सौगन्धिकम्, एतानि विद्यन्ते यस्मिंस्तत्। अत्रेति। अस्मिन्स्थले स्नानार्थमाप्लवार्थमागतया प्राप्तया भगवत्या माहात्म्यवत्या पार्वत्या गौर्या। तटेति। तट तीर तस्मिन्यानि

उड़ते कुसुमशर—कामदेव के—बाणों के पक्षों (पुखों) के सूत्कार से—सरसराहट से—सभी दिशाओं के अन्तराल (मुख) बहरे हो रहे होते हैं (सरसराहट के कारण कहीं कुछ सुनायी नहीं देता है), दिन में भी (उनके हृदयों में) जागृत (प्रवृत्त) हुए प्रेमाधिक्य से अन्धी हुई अभिसारिका स्त्रियों के झुण्डों की जब भीड़ लग जाती है, मर्यादा (वेला) छोड़कर बहने वाले अनियन्त्रित अथवा उन्मर्याद रतिरसरूपी समुद्र की बाढ से जब दिन मानों आप्लावित रहते हैं, और संसार के सभी जीवों के हृदयों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। और यहाँ मैं, स्नान के लिये आयी देवी पार्वती द्वारा (झील के) तटपर की शिलाओं के तलों पर खींची हुई, (शिवजी के गणों)—भृङ्गी तथा रिटी (की प्रतिमाओं) समेत, धूल मे अंकित (निमग्न) छोटे पदचिह्नों के वृत्तों (मण्डलों) से अनुमित (अनुमान द्वारा ज्ञात) मुनिजनों के प्रणामसहित प्रदक्षिणा वाली (अर्थात् धूल में अंकित पदचिह्नों से यह ज्ञात होता

जनप्रणामप्रदक्षिणानि त्र्यम्बकप्रतिबिम्बकानि वन्दमाना "भ्रमरभरभुग्नगर्भकेसरजर्जरकुसुमोपहाररम्योऽयं लतामण्डपः, परभृतनखकोटिपाटितकुड्मलनालविवरविगलितमधुनिकरधारः सुपुष्पितोऽयं सहकारतरुः, उन्मदमयूरकुलकलकलभीतभुजङ्गमुक्ततला शिशिरेयं चन्दनवीथिका, विकचकुसुमपुञ्जपातसूचितवनदेवताप्रेङ्खोलनशोभनेयं लतादोला, बहलकुसुमरजःपटलमग्नकलहंसपदलेखमतिरमणीयमिदं तीरतरुतलम्" इति स्निग्धमनोहरतरोद्देशदर्शनलोभाक्षिप्तहृदया सह सखीजनेन

शिलातलानि तेषु विलिखितान्यालेखितानि यानि त्र्यम्बकस्य महादेवस्य प्रतिबिम्बकानि प्रतिच्छायानि तानि वन्दमाना नमस्कुर्वाणा। कीदृशानि। भृङ्गिरिटिर्गणविशेषस्तेन सहितानि तत्सहवर्तमानानि। पांश्विति। पांशौ सिकतासमूहे निमग्नानि मुद्रितानि कृशपदमण्डलान्यस्थूलचरणप्रतिबिम्बानि तैरनुमितेऽनुमानविषयीकृते मुनिजनानामृषिवर्गाणां प्रणामप्रदक्षिणे नमस्कृतिपरिभ्रमणक्रिये येषु तानि। इतीति। स्निग्ध सघनोऽतएव सुच्छायो मनोहरतरोऽतिशयेन चित्तहारी यं उद्देशो वनैकप्रदेशस्तस्य दर्शनमवलोकन तस्य लोभस्तृष्णा तेनाक्षिप्त हृदय स्वान्त यस्या सैवविधाह सह सखीजनेन वयस्याभि सम व्यचरमभ्रमम्। इतिशब्दार्थ व्याख्यायन्नाह—भ्रमरेति। भ्रमरभरेण मधुकरसमुदायेन भुग्नो भङ्गुरो गर्भो मध्यभागो यस्यैवभूत। तथा केसरै किजल्कैर्जर्जर कुसुमाना पुष्पाणामुपहार समूहस्तेन रम्यो मनोहर। अयमित्यस्य प्रत्येकमभिसबन्ध। लतेति। लता व्रततिस्तस्या मण्डपो जनाश्रय। परेति। परभृता कोकिलास्तेषा नखकोट्या नखराग्रेण पाटितानि विदारितानि कुड्मलाना मुकुलाना नालानि काण्डास्तेषा विवराणि छिद्राणि तेभ्यो विगलिता विद्रुता मधुनिकरधारा रससमूहलेखा यस्मिन्नेवभूत सुपुष्पितोऽय सहकारतरुराम्रवृक्ष। उन्मदेति। उन्मदा मदोन्मत्ता ये मयूरा केकिनस्तेषा कुलानि सजातीयसमूहास्तेषा कलकल कोलाहलस्तेन भीतास्त्रस्ता ये भुजङ्गा भोगिनस्तैर्मुक्त त्यक्त तल यस्या एतादृशी शिशिरा शीतलेय चन्दनवीथिका मलयजखण्डश्रेणी। विकचेति। विकचो विकस्वरो य कुसुमाना पुष्पाणा पुञ्ज समूहस्तेन सूचित ज्ञापित यद्वनदेवतारण्याधिष्ठात्री तस्या प्रेङ्खोलनमान्दोलन तेन शोभना मनोज्ञेय लतादोला वल्लीप्रेङ्खा। बहलेति। बहलानि बहूनि यानि कुसुमरजांसि तेषा पटलं वृन्द तस्मिन्मग्नानि यानि कलहसपदानि कादम्बचरणानि तेषां लेखा वीथी यस्मिन्नेवभूतमतिरमणीयमतिमनोहरमिद तीरतरुतलं

है कि मुनिजनों ने इनको प्रणाम किया है तथा इनकी प्रदक्षिणा की है) शिवजी की प्रतिमूर्तियों को प्रणाम करती हुई—"(उन पर बैठे हुए) भौरों के भार से पिसे हुए भीतरी तन्तुओं के कारण छिन्न भिन्न पुष्पों की (आगन्तुकों को दी गयी) भेंट से आकर्षक बना हुआ यह लताकुञ्ज है, कोयल द्वारा (अपने) नखों की नोको (अथवा पैने नखों) से फोड़ी हुई कलियो की डडियों मे के छिद्रों द्वारा टपकते मधु के ढेर की धारा से युक्त, भलीभाँति फूलों से ल्दा यह आम का पेड़ है, मदमत्त मोरों के परिवार की कलकल से डरे साप द्वारा छोड़े तलवाला, ठढा यह चन्दन मार्ग है, खिले ढेरों पुष्पों के गिरने से सूचित जो वनदेवताओं का झूलना—उससे रमणीक बना हुआ यह ल्ताओ का झूला है, और बहुत सारी (गाढी) पुष्प पराग के ढेर मे अकित हसपदरेखा से युक्त, अत्यन्त आकर्षक यह तीरवर्ती वृक्ष का मूल स्थान है"—इस प्रकार कहती हुई (विविध) प्यारे-प्यारे तथा अधिक आकर्षक

व्यचरम् । एकस्मिश्च प्रदेशे झटिति वनानिलेनोपनीतं निर्भरविकसितेऽपि काननेऽभिभूतान्यकुसुमपरिमलम्, विसर्पन्तम्, अतिसुरभितयानुलिम्पन्तमिव तर्पयन्तमिव पूरयन्तमिव घ्राणेन्द्रियम्, अहमहमिकया मधुकरकुलैरनुबध्यमानम्, अनाघ्रातपूर्वम्, अमानुषलोकोचित कुसुमगन्धमभ्यजिघ्रम् । कुतोऽयमित्युपारूढकुतूहला चाहं मुकुलितलोचना तेन कुसुमगन्धेन मधुकरीवावकृष्यमाणा कौतुकतरलाभ्यधिक-

---

तटवृक्षाधोभाग । एकस्मिंश्चेति । एकस्मिन्प्रदेशे कुसुमगन्ध पुष्पजनमनोहारिणमभ्यजिघ्र घ्राणविषयतामनयम् । अथ च गन्ध विशेषयन्नाह—झटिति शीघ्र वनानिलेनारण्यपवनेनोपनीतमानीत निर्भर नितान्त विकसिते विकस्वरे कानने वनेऽपि सति । अभीति । अभिभूत आत्तगन्धोऽन्यकुसुमाना विजातीयसजातीयप्रसूनाना परिमलो येन स तम् । अस्मिन्नर्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—अतीति । अतिसुरभेर्भावस्तत्ता तया । एतस्मादुत्कृष्ट कोऽपि परिमलो नास्तीति भाव । पुन किं कुर्वन्तम् । विसर्पन्त प्रसरन्तम् । अथ गन्धाधिक्य प्रदर्शयन्नाह—घ्राणेति । घ्राणेन्द्रिय विकूणिकाकरणमनुलिम्पन्तमिव दृढसबन्ध कुर्वन्तमिव । तर्पयन्तमिव तृप्ति जनयन्तमिव । पूरयन्तमिव परिपूर्णीकुर्वन्तमिव । अहमिति । मिथो यो गर्व साहमहमिका तया मधुकरकुलैर्भ्रमरसमूहैरनुबध्यमानमनुरुध्यमानम् । अनाघ्रातपूर्वमनाजिघ्रितपूर्वम् । अमानुष इति । अमानुषलोको देवलोकस्तस्योचित योग्यम् । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । कुत इति । कस्मात्प्रदेशादय गन्ध इत्युपारूढ प्रादुर्भूत कुतूहल कौतुक यस्या सैवविधाह स्नानार्थमागत मुनिकुमारक तापसपुत्रमपश्यमद्राक्षमित्यन्वय । अथैतस्या विशेषणानि—मुकुलितेति । मुकुलिते कुड्मलिते लोचने नेत्रे यस्या सा । तेनेति । तेन पूर्वोक्तेन कुसुमगन्धेन पुष्पामोदेन मधुकरीवदवकृष्यमाणा बलात्कारेण नीयमाना । कौतुकेति । कौतुकेन कुतूहलेन तरला कम्प्रा । किं कृत्वा । कतिचित्कियन्ति पदानि गत्वा । अथ पदानि विशेषयन्नाह—अभ्यधिकेति । त्वरितगमनादभ्यधिकतर पूर्वस्मादतिशायी य उपजात उत्पन्नो मणिनूपुराणा रत्नखचिततुलाकोटीना झकार शब्दविशेषस्तेनाकृष्टा आकर्षिता सर कलहसा कासारकादम्बा

(मनोहरतर) स्थानों को देखने की इच्छा से ललचायी हुई, सखियों के साथ घूमती रही।

और एक स्थान पर मैंने, अचानक वनसमीर द्वारा (मेरे समीप) लायी गयी सम्पूर्ण वन के (फूलों से) खूब विकसित होने पर भी दूसरे फूलों की सुगन्ध को पराजित करके आती हुई, अपनी अत्यन्त सुगन्ध के कारण नासिका को मानो लीपती हुई-सी अथवा तृप्त करती हुई सी, अथवा भरती हुई सी, मैं पहले, मै पहले करते हुए भ्रमर समूहों द्वारा अनुसृत, पहले कभी न सूँघी हुई, मानवलोक के अयोग्य, पुष्प गन्ध सूँघी। और 'यह गध कहाँ से आयी' (आ सकती है) इस प्रकार की उत्पन्न उत्सुकता वाली मैं (इस उत्सुकता से भरी मैं), (अत्यानन्द मे) आँखें बन्द किये हुई भौंरी की भाँति उस पुष्पगन्ध से खींची जाती हुई, उत्सुकता से काम्पती हुई, (शीघ्रता करने के कारण) और अधिक उत्पन्न हुई मणिमय नूपुरों की झङ्कार द्वारा सरोवर के सुन्दर हसों को अपनी ओर आकृष्ट करते कुछ कदम चली और (कुछ कदम चलकर ही) मैंने स्नान के लिये आये एक अत्यन्त सुन्दर मुनिकुमार को देखा। वह मानो वसन्त (ऋतु) था जो शिवजी

तरोपजातमणिनूपुरझङ्काराकृष्टसरःकलहंसानि कतिचित्पदानि गत्वा हरहुताशनेन्धनीकृतमदनशोकविधुर वसन्तमिव तपस्यन्तम्, अखिलमण्डलप्राप्त्यर्थमीशानशिरःशशाङ्कमिव धृतव्रतम्, अयुग्मलोचन वशीकर्तुकाम काममिव सनियमम्, अतितेजस्वितया प्रचलतडिल्लतापञ्जरमध्यगतमिव ग्रीष्मदिवसदिवसकरमण्डलोदरप्रविष्टमिव ज्वलनज्वालाकलापमध्यस्थितमिव विभाव्यमानम्, उन्मिषन्त्या बहुलबहुलया दीपिकालोकपिङ्गलया देहप्रभया कपिलीकृतकानन कनकमयमिव त प्रदेशं कुर्वाणम्, रोचनारसलुलितप्रतिसरसमानसुकुमारपिङ्गलजटम्, पुण्यपताकायमानया सरस्वती-

---

यैस्तानि। इतो मुनिकुमार विशेषयन्नाह—हरेति। हरेणेश्वरेण हुताशने नेत्रसमुत्थिते वह्नाविन्धनीकृतो यो मदन कामस्तस्य शोक खेदस्तेन विधुर व्याकुलमतएव तपस्यन्त तपस्या कुर्वन्त वसन्तमिव सुरभिमिव। इयं च सुरभिगन्धसाम्यादुत्प्रेक्षा। अखिलमिति। अखिल समग्र यन्मण्डल भूमण्डलं षोडशकलात्मक च तस्य प्राप्तिरुपलब्धिस्तदर्थं धृत व्रत नियमो येनैवंभूतमीशानशिर शशाङ्कमिवेश्वरोत्तमाङ्गचन्द्रमिव। रूपातिशयसाम्येनाह—अयुग्मलोचनमीश्वर वशीकर्तुकाम सनियम काममिव। अतीति। अतितेजो विद्यते यस्यासावतितेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया प्रचला चञ्चला तडिल्लता विद्युल्लता तस्या पञ्जर पक्षिरक्षणस्थलं तस्य मध्यगतमिव। ग्रीष्मेति। ग्रीष्मदिवसस्य निदाघवासरस्य यो दिवसकर सूर्यस्तस्य मण्डल बिम्ब तस्योदर मध्यभागस्तत्र प्रविष्टमिव। ज्वलनेति। ज्वलनस्य वह्नेर्यो ज्वालाकलापोऽर्चिषां समूहस्तस्य मध्यस्थितमिवान्तर्गतमिव विभाव्यमान ज्ञायमानम्। देहेति। देहप्रभया शरीरकान्त्या कपिलीकृत पिङ्गलीकृतं कानन वन येन स तम्। अथ देहप्रभा विशेषयन्नाह—उन्मिषेति। उन्मिषन्त्या विकसन्त्या बहुला च बहुला च बहुलबहुला तया। दीपिकेति। दीपिकाया प्रसिद्धाया य आलोक प्रकाशस्तद्वत्पिङ्गलया पिञ्जरया। पुनर्मुनिकुमार विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकमयमिव सुवर्णमयमिव त प्रदेश कुर्वाण विदधानम्। रोचनेति। रोचना गोरोचना तस्या रसो द्रवस्तेन लुलित एकीभूतो य प्रतिसरो हस्तसूत्र तद्वत्समाना

(के तीसरे नेत्र) की अग्नि के ईंधन हुए (अग्नि में जले हुए) कामदेव के शोक से पीड़ित होकर तपस्या कर रहा हो, अथवा शिवजी के सिर पर का चन्द्रमा अपने पूरे बिम्ब की प्राप्ति के लिये व्रत धारण किये हुआ हो, अथवा मानो कामदेव विषमनेत्र शिवजी को (प्रसन्न करके) वश में करने के लिये (कठोर) नियम पालन कर रहा हो। अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो चौंधियाती विद्युल्लता—(बिजली की लता सरीखी लम्बी लम्बी धारियों) के (बने) पिंजरे मे बैठा हो, अथवा गर्मी की ऋतु के सूर्य के बिम्ब के बीच में प्रविष्ट हो गया हो अथवा अग्नि की लपटों के ढेर के बीच में स्थित हो। चौंधियाती, अत्यन्त प्रबल दीपक के प्रकाश सरीखी पीली अपनी देहकाति से पीले किये हुए वनों वाले उस प्रदेश को मानो वह सुवर्णमय कर रहा था। गोरोचना के (पीले) द्रव

समागमोत्कण्ठाकृतचन्दनरेखयेव भस्मललाटिकया बालपुलिनरेखयेव गङ्गाप्रवाह-मुद्वासमानम्, अनेकशापभ्रूकुटिभवनतोरणेन भ्रूलताद्वयेन विराजितम्, अत्यायततया लोचनमयीं मालामिव ग्रथितामुद्वहन्तम्, सर्वहरिणैरिव दत्तलोचनशोभासंविभागम्, आयतोत्तुङ्गघ्राणवशम्, अप्राप्तहृदयप्रवेशेन नवयौवनरागेणेव सर्वात्मना

सदृशी सुकुमारा सुकोमला पिङ्गला पिञ्जरा च जटा सटा यस्य स तम्। भस्मेति। भस्म विभूतिस्तस्य ललाटिका पुण्ड्रविशेषस्तयोद्भासमानमुत्प्राबल्येन दीप्यमानम्। अतिश्वेतत्वसाम्येनाह—पुण्येति। पुण्यस्य धर्मस्य पताकायमानया वैजयन्तीवदाचरमाणया। रेखामधिकृत्याह—सर इति। सरस्वत्या भारत्या य समागम सगमस्तज्जनिता या उत्कण्ठोत्कलिका तया कृता विहिता चन्दनरेखा मलयजरेखा तयेव। अन्यस्यागमने गृहधवलीकरण सरस्वत्यास्तु मुखमेव निवासो निलयमतस्तदुपरि चन्दनलेखाकरणमिति भाव। कयेव कमित्याकाङ्क्षायामाह—बालेति। बाल सूक्ष्म यत्पुलिनं जलोज्झित तीर तस्य रेखा लेखा तयेवोद्भाव्यमान ज्ञायमान गङ्गाप्रवाहमिव स्वर्धुनीवेणीमिव। अनेकेति। अनेकानामसख्याना शापभ्रूकुटीना यद्भवन गृह तस्य तोरणेन बहिर्द्वारेणैवविधेन भ्रूलताद्वयेन विराजित शोभितम्। एतेन सर्वेषा शापप्रदाने क्षम इति ध्वनितम्। अतीति। अत्यायततयातिविस्तीर्णतया लोचनमयीं नेत्रमयी ग्रथिता गुम्फिता मालामिव जपमालिकामिवोद्वहन्तम्। सर्वेति। सर्वहरिणै समग्रमृगैरिव दत्तो लोचनशोभाया सविभागो यस्मै स तम्। आयत इति। आयतो विस्तीर्ण उत्तुङ्ग उच्चैस्तरो घ्राणवशो यस्य स तम्। अप्राप्त इति। अप्राप्तोऽनुपलब्धो हृदये चित्ते प्रवेशो येनैवविधेन नव प्रत्यग्र यद्यौवनं तारुण्य तस्य रागेणेव सर्वात्मना सर्वप्रकारेण पाटलीकृत श्वेतरक्तीकृतोऽधर एव रुचक बीजपूरो यस्य स तम्। 'रुचक तु बीजपूरे निष्केऽसौवर्चलेऽपि च' इत्यनेकार्थ। यद्वा अधर एव रुचक स्वस्तिकद्रव्य यस्य स तम्। 'रुचक स्वस्तिकद्रव्ये' इति विश्व.। पुन किं कुर्वाणम्। दधानम्। किम्। आनन मुखम्।

में घुमाये गये (रगे हुए) हस्तसूत्र के सदृश कोमल तथा पीली जटाओं वाला था। (अपने सचित) पुण्यों की (श्वेत) विजयध्वजा सरीखी बनी हुई, (वाग्देवी) सरस्वती से सयुक्त होने की लालसा से (मस्तक पर) बनायी गयी चन्दन रेखा सी प्रतीत होती, (मस्तक पर) अकित भस्म से बनाये गये विशेष चिह्न द्वारा वह ऐसा शोभायमान था जैसा कि गङ्गा का प्रवाह अपने श्वेत रेतीले किनारे की बाल रेखा—पतली रेखा से सुशोभित होता है। (तपस्वी के रूप में दिये गये) अनेक शापों के अवसर पर चढ़ायी हुई त्यौरियों रूपी भवन की तोरण सरीखी दो पतली लम्बी भौंहों से सुशोभित था। अत्यन्त फैली हुई (बड़ी बड़ी) आँखें होने के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो उसने आँखों की बनी एक गुँथी हुई माला पहन रखी हो। ऐसा प्रतीत होता था कि (जगल के) सभी हिरणों ने उसको (अपनी अपनी) आँखो की शोभा का कुछ भाग दिया हुआ हो। उसकी नाक लम्बी तथा ऊँची थी। हृदय मे प्रवेश न पाये हुए नवयौवन के रग से (आवेगरूपी

पाटलीकृताधररुचकम्, अनुद्भिन्नश्मश्रुत्वादनासादितमधुकरावलीवलयपरिक्षेपविलासमिव बालकमलमाननं दधानम्, अनङ्गकार्मुकस्य गुणेनेव कुण्डलीकृतेन तपस्तटाककमलिनीमृणालेनेव यज्ञोपवीतेनालङ्कृतम्, एकेन सनालबकुलफलाकारं कमण्डलुमपरेण मकरकेतुविनाशशोकरुदिताया रतेरिव बाष्पजलबिन्दुभिरारचितां स्फटिकाक्षमालिकां करेण कलयन्तम्, अनेकविद्यापगासगमावर्तनिभया नाभिमुद्रयोपशोभमानम्, अन्तर्ज्ञाननिराकृतस्य मोहान्धकारस्यापयानपदवीमिवाञ्जनरजोलेखाश्यामलां रोमराजिमुदरेण तनीयसीं बिभ्राणम्, आत्मतेजसा विजित्य

अन्विति। अनुद्भिन्नान्यप्रकटितानि श्मश्रूणि यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। अनासादीति। अनासादितोऽप्राप्तो मधुकरावल्या भृङ्गपङ्क्त्या वलयाकारेण य परिक्षेप परिवेष्टन तल्लक्षणो विलासो येनैवभूत बालकमलमिव नवीननलिनमिव। अनङ्गेति। अनङ्गस्य कदर्पस्य यत्कार्मुक धनुस्तस्य कुण्डलीकृतेन गुणेनेव ज्ययेव। तप इति। तप एव तटाक कासारस्तस्य कमलिनी मृणालिनी तस्या मृणालेनेव बिसेनैवभूतेन यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेणालङ्कृत विभूषितम्। एकेनेति। एकेन करेण हस्तेन। सनालेति। सनाल यद्बकुलफल केसरफल तद्वदाकारो यस्यैवभूत कमण्डलुम्। अपरेण तदितरेण करेण। मकरेति। मकरकेतु कदर्पस्तस्य विनाशो नाशस्तस्माद्य शोकस्तेन रुदिताया कृताश्रुपाताया रतेर्मदनस्त्रियो बाष्पजलबिन्दुभिर्नेत्रवारिपृषद्भिरारचितामिव निर्मितामिव। स्फटिकाक्षमालिका श्वेतजपमालिका कलयन्त दधानम्। अनेकेति। अनेकाश्च ता विद्याश्चानेकविद्या। प्रसरणसाम्यात्ता एवापगा नद्यस्तासा सगम सश्लेषस्तत्र य आवर्त पयसा भ्रमस्तन्निभया तत्सदृशया नाभिमुद्रया तुन्दकूपिकयोपशोभमान विराजमानम्। अन्तरिति। अन्तर्ज्ञानेन तत्त्वज्ञानेन निराकृतस्य दूरीकृतस्य मोहान्धकारस्याज्ञानतिमिरस्यापयानपदवीमिव निःसरणमार्गमिव। अञ्जनमिति। अञ्जन कज्जल तस्य रज कणस्तस्य लेखा राजिस्तद्वच्छ्यामला कृष्णामेतादृशी तनीयसीमतितुच्छामुदरेण जठरेण रोमराजिं तनूरुहश्रेणिं बिभ्राण दधानम्।

रग से) ही मानो उसका 'रुचक' (एक आभूषण)—सरीखा निचला होठ, सारा बल लगाकर, लाल किया हुआ था। (उसके चेहरे पर) अभी मूछें नहीं उगने के कारण वह ऐसे चेहरे को धारण किये हुआ था कि मानो (वह चेहरा) भौंरों की पक्तियों के चक्र से घिरने की शोभा को न प्राप्त किया हुआ ताजा कमल हो। कामदेव के धनुष की (उस रूप मे) लिपटी हुई प्रत्यञ्चा से प्रतीत होते अथवा उसकी तपस्या के सरोवर (मे उगी) नलिनी के बिसतन्तु सरीखे यज्ञोपवीत से सुशोभित था। एक हाथ से (मे) डडी समेत बकुल फल के आकार वाले कमण्डलु को तथा दूसरे हाथ में (अपने पति) मकरध्वज कामदेव के नष्ट होने पर हुए शोक के कारण रति के (श्वेत) अश्रुकणो से बनी (वाष्प बिन्दुओं को गूँथकर बनायी गयी प्रतीत होती अक्षमाला को पकड़े (लिये) हुआ था। नाना विद्याओं रूप नदियों के मिलने से बनी भँवर-सरीखी प्रतीत होती गहरी नाभि (नाभिमुद्रा) से सुशोभित था। अपने उदर भाग पर (एकत्रित) ज्ञान द्वारा दूर भगाये गये अज्ञानान्धकार के भागने के मार्ग सरीखी, अञ्जन कणों की रेखा के सदृश काली-काली बारीक केशपक्ति को धारण किये हुआ था। अपनी चमक से सूर्य को हराकर अपने अधिकार मे ले लिये गये प्रभामण्डल

सवितारं परिगृहीतेन परिवेषमण्डलेनेव मौञ्जमेखलागुणेन परिक्षिप्तजघनभागम्, अभ्रगङ्गास्रोतोजलप्रक्षालितेन जरच्चकोरलोचनपुटपाटलकान्तिना मन्दारवल्कलेनोपपादिताम्बरप्रयोजनम्, अलंकारमिव ब्रह्मचर्यस्य, यौवनमिव धर्मस्य, विलासमिव सरस्वत्याः, स्वयवरपतिमिव सर्वविद्यानाम्, सकेतस्थानमिव सर्वश्रुतीनाम्, निदाघकालमिव साषाढम्, हिमसमयकाननमिव स्फुटितप्रियङ्गुमञ्जरीगौरम्, मधुमासमिव कुसुमधवलतिलकभूतिविभूषितमुखम्, आत्मानुरूपेण सवयसा परेण

आत्मेति। आत्मतेजसा स्वकीयकान्त्या सवितार सूर्य विजित्य पराभूय परिगृहीतेनात्तेन परिवेषमण्डलेनेव परिधिवलयेनेव। मौञ्जेति। मुञ्जस्तेजनस्तत्सबन्धिनी मौञ्जी या मेखला रशना तस्या गुणेन दवरकेण परिक्षिप्तो वलयितो जघनभागोऽग्रप्रदेशो यस्य स तम्। अभ्रेति। अभ्रगङ्गा व्योमनदी तस्या स्रोत प्रवाहस्तस्य जलमम्भस्तेन प्रक्षालितेन धौतेन। जरदिति। जरज्ज्यायान्यश्चकोरो विषसूचकस्तस्य लोचने नेत्रे तयो पुट तद्वत्पाटला श्वेतरक्ता कान्तिद्युतिर्यस्य स तेनैवभूतेन मन्दारवल्केन देवतरुवल्केनोपपादित विहितमम्बरप्रयोजन वस्त्रकृत्य येन स तम्। अलमिति। ब्रह्मचर्यस्य सर्वथा स्त्रीपरित्यागलक्षणस्यालकारमिव भूषणमिव। धर्मेति। धर्मस्य सुकृतस्य यौवनमिव तारुण्यमिव। सर इति। सरस्वत्या भारत्या विलासमिव विभ्रममिव। स्वयमिति। सर्वविद्याना समग्रकलाना स्वयवरपतिर्भर्ता तमिव। एतेन सर्वाभिर्विद्याभिरयमागत्य वृत, न त्वनेन विद्यार्थ प्रयत्न कृत इत्यावेदितम्। सकेतेति। सर्वश्रुतीना समग्रशास्त्राणा सकेतस्य स्थान पद तद्वदिव। अन्योऽपि जन सकेतित स्थान गच्छति तद्वत्सर्व श्रुतमेतस्मिन्समागतमिति भाव। निदाघेति। निदाघो ग्रीष्मकालस्तमिव। उभयो सादृश्य प्रदर्शयन्नाह—सेति। सहाषाढेन पलाशदण्डेन वर्तमानम्। 'पालाशो दण्ड आषाढ' इति कोश। पक्ष आषाढ शुचिमास। हिमेति। हिमसमय शीतकालस्तस्मिन्कानन वन तद्वदिव। उभयो सादृश्यार्थमाह—स्फुटितेति। स्फुटिता प्रफुल्ला या प्रियङ्गुमञ्जरी फलिनीवल्लरी तद्वद्गौर शुभ्रवर्णम्। पक्षे प्रियङ्गुमञ्जर्या गौरम्। मध्विति। मधुमासो वसन्तमासस्तमिव। उभयो साम्यमाह—कुसुमेति। कुसुम पुष्पं तद्वद्धवला शुभ्रा या तिलकार्थ भूतिर्भस्म तया

के सदृश प्रतीत होती मेखला की रस्सी से उसका कटिप्रदेश घिरा हुआ था। उसने अपनी पोशाक का प्रयोजन, आकाशगङ्गा की जलधारा के जल से धोई हुई बूढे चकोर (पक्षी) की आँखो की सी लाल छवि वाली (लाल सी दिखायी पड़ती) मन्दार वृक्ष की छाल से सिद्ध किया हुआ था। वह मानो ब्रह्मचर्य का आभूषण था अथवा धर्म का यौवन था, सरस्वती देवी की शोभा था, समग्र विद्याओ का स्वय चुना हुआ भर्ता था, सभी पवित्र शास्त्रों का (सकेतित) सभास्थल था। अपने भीतर स्थित आषाढ महीने से युक्त ग्रीष्म ऋतु की भाँति वह साषाढ था अर्थात् पलाश की बेत लिये हुए था। पूर्णतया विकसित प्रियङ्गुलताओ से युक्त होने के कारण गौर (श्वेत) शरदकालीन जगल की भाँति वह (चेहरे से) प्रियङ्गुलताओं के पूर्णतया विकसित फूलों सरीखा गौर (श्वेत) था। (नये) फूलों से युक्त (अतएव) धवल (श्वेत) तिलक पौधों की छवि से विभूषित (मुख) आरम्भिक भाग वाले वसन्तकाल की भाँति उसका मुख पुष्पो सरीखे श्वेत तिलक चिह्न की भस्म से विभूषित था। और वह अपने ही जैसे, समान अवस्था वाले

देवतार्चनकुसुमान्युच्चिन्वता तापसकुमारेणानुगतम् , अतिमनोहरम् , स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम् । तेन च कर्णावतंसीकृता वसन्तदर्शनानन्दितायाः स्मितप्रभामिव वनश्रियः, मलयमारुतागमनार्थलाजाञ्जलिमिव मधुमासस्य, यौवनलीलामिव कुसुमलक्ष्म्याः, सुरतपरिश्रमस्वेदजलकणजालकावलीमिव रतेः, ध्वजचिह्नचामरपिच्छिकामिव मनोभवगजस्य, मधुकरकामुकाभिसारिकाम् , कृत्तिकातारास्तबकानुकारिणीम् , अमृतबिन्दुनिस्यन्दिनीम् , अदृष्टपूर्वां कुसुममञ्जरीमद्राक्षम् ।

विभूषितमलकृत मुखमानन यस्य स तम् । पक्षे कुसुमैर्धवला शुभ्रा ये तिलका वृक्षविशेषास्तेषा भूत्या समृद्ध्या विभूषितं मुखमग्रभागो यस्येति बहुव्रीहि । वसन्तप्रारम्भ एव तिलकवृक्षाणा पुष्पोद्गमसम्भवादिति भावः । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त । अथ प्रकारान्तरेण तमेव मुनिकुमारक विशेषयन्नाह— आत्मेति । आत्मानुरूपेणात्मसदृशेन सवयसा मित्रेण परेण भिन्नेन देवतानामर्चन पूजन तदर्थं कुसुमानि पुष्पाण्युच्चिन्वतावचय कुर्वता । एवविधेन तापसकुमारेण परिव्राजकबालकेनानुगत सहितम् । अतीति । अतिमनोहरमतिरुचिरम् । स्नानेनेति । स्नानार्थमाप्लवनार्थमागत प्राप्तम् । तेनेति । चकार पुनरर्थक । तेन कुमारेण कर्णावतसीकृता श्रवणशेखरीकृता कुसुम मञ्जरीमद्राक्षमपश्यमित्यन्वय । कामिव । वसन्तदर्शनेनावलोकनेनानन्दिताया प्रमुदिताया वनश्रिय काननलक्ष्म्या स्मित हास्य तस्य प्रभामिव । मलयेति । मधुमासस्य वसन्तमासस्य मलयमारुतो मलयानिलस्तस्य आगमनार्थमागमननिमित्त लाजाञ्जलिमिवाक्षताञ्जलिमिव । यौवनेति । कुसुमलक्ष्म्या. पुष्पश्रियो यौवनलीलामिव तारुण्यक्रीडामिव । सुरतेति । रते कामस्त्रिय सुरत मैथुन तस्य परिश्रम खेदस्तस्माद्यः स्वेदजल तस्य कणा पृषतास्तेषा जालक समूहस्तस्यावलीमिव पङ्क्तिमिव । ध्वजेति । मनोभवगजस्य मदनहस्तिनो ध्वजो वैजयन्ती तस्य चिह्नभूता चामरपिच्छिका तामिव । मधुकरेति । मधुकरा भ्रमरास्त एव कामुका कामाभिलाषिणस्तेषामभिसारिका कामिजनानयनकर्त्रीम् , सङ्केतितस्थलगामिनीं वा । कृत्तिकेति । कृत्तिकाग्निदेवता तस्य ताराणा स्तबको गुच्छकस्तस्यानुकारिणीम् । तत्सदृशीमित्यर्थ । अत्र केशानामतिकृष्णत्वेन मञ्जर्याश्च शुक्लत्वेनैतदुपमानद्वयमिति भाव. । अमृतेति । अमृत

देवताओं की पूजा के लिये फूलों को तोड़ते हुए एक दूसरे तपस्विपुत्र से अनुसृत था—(एक दूसरा मुनिकुमार उसके पीछे पीछे आ रहा था) । और मैंने उस तपस्वि कुमार द्वारा कान का आभूषण बनायी हुई (कानों मे पहनी हुई), वसन्त के दर्शन से प्रसन्न हुई वनश्री के हास्य की चमक सरीखी, चैत्र महीने की मलयपर्वत की वायु के आगमन के लिये (उसके आगमन का अभिनन्दन करने के लिये) मुट्ठी भर (श्वेत) लाजाओं-सरीखी, पुष्पों की शोभा की यौवन (से भरपूर) लीला सरीखी, रति की सुरत भोग से हुई थकावट के कारण निकले पसीने के पुञ्जीभूत बिन्दुओं की पक्ति सरीखी, मनोजन्मा कामदेव रूप हस्ती की, (विजय) पताका पर बनी चिह्नरूपा पूछ सरीखी लम्बी चॅवरी के सदृश, (अपने ऊपर मडराते भौंरों रूप प्रेमियों की अभिसारिका सी, कृत्तिका (आदि छ) तारों के पुञ्ज के आकार की अमृत के बिन्दुओं को टपकाती पहले कभी न देखी पुष्प गुच्छिका को देखा ।

'अस्याः परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वय परिमलः' इति मनसा निश्चित्य तं तपोधनयुवानमीक्षमाणाहमचिन्तयम्—'अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोशस्याक्षीणता विधातुः, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसंभारं भगवन्त कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपातिशयराशिरयमपरो मुनिमायामयो मकरकेतुरुत्पादितः। मन्ये च सकलजगन्नयनानन्दकरं शशिबिम्ब विरचयता लक्ष्मीलीलावासभवनानि कमलानि सृजता ब्रह्मणैतदाननाकारकरणकौशल्याभ्यास एव कृतः, अन्यथा किमिव हि

पीयूष तस्य बिन्दव कणास्तेषां निष्यन्दिनीं स्राविणीम्। अदृष्टेति। अदृष्टपूर्वामनवलोकितपूर्वाम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

अस्या इति। ननु वितर्के। अस्या मञ्जर्या अय परिमल। परीति। परिभूतोऽभिभूतोऽन्यकुसुमानां स्वेतरपुष्पाणामामोद परिमलो येन स इति मनसा स्वान्तेन निश्चित्य निर्णीय तं तपोधनयुवानमृषिकुमारकमीक्षमाणा वीक्षमाणाहमचिन्तयमध्यायम्। अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये। विधातुर्ब्रह्मणो रूपातिशयस्य सौन्दर्यातिशयस्य निष्पादने निर्माणे य उपकरणकोश उपस्करभाण्डागारस्तस्याक्षीणताक्षयत्वम्। 'कौशलम्' इति पाठे तु निष्पादने यदुपकरणं व्यापारविशेषस्तत्र कौशल दक्षता तस्याक्षीणता तादवस्थ्यमिति भाव। अतिशयपदव्यङ्ग्यमाह—यत्त्रिभुवनेति। यदिति हेत्वर्थे। त्रिभुवनात्त्रिविष्टपादद्भुतोऽतिशायी रूपसभार सौन्दर्यसमूहो यस्मिन्नेवभूत भगवन्त कुसुमायुध कंदर्पमुत्पाद्य निर्माय तदाकारात् कुसुमायुधाकृतेरतिरिक्तोऽधिको रूपातिशय सौन्दर्योत्कर्षस्तस्य राशि समूहो मायामयो मोहरूपो मकरकेतुरयमपरो मुनिरुत्पादित। उत्तरोत्तरमतिशयवत्त्वादय मकरकेतुस्तदपेक्षयाप्युत्कृष्ट इति भाव। उत्तरोत्तरमतिशयमेव भङ्ग्यन्तरेण निरूपयन्नाह—मन्ये इति। अहमिति मन्ये जाने। इतिशब्दार्थमाह—सकलेति। सकल समग्र यज्जगत्तस्य नयनानन्दकर प्रमोदजनकमेतादृश शशिबिम्ब चन्द्रमण्डल विरचयता रचना कुर्वता। लक्ष्म्या पद्माया लीलावासभवनानि क्रीडानिवासस्थानान्येवभूतानि कमलानि सरोजानि सृजता कुर्वता ब्रह्मणा हिरण्यगर्भेणैतस्य मुनिकुमारकस्यानन मुख तस्याकार आकृतिस्तस्य करण निर्माण तत्र कौशल

'यह सुगन्ध दूसरे सभी फूलों की सुगन्ध को मात करने वाली निश्चय ही इसी की है'—यह बात अपने मन से निश्चित करके उस तपस्विकुमार को देखती हुई मैंने इस प्रकार विचार किया—"आश्चर्य है, सौन्दर्य की पूर्णता (रूपातिशय) की रचना के लिये (आवश्यक) साधन सामग्री के विधाता के खजाने की अविनाशिता कितनी अधिक है कि उसने उस पुष्पायुध कामदेव को रचकर जिसकी सर्वांगपूर्ण रूपसम्पदा तीनों लोकों को आश्चर्य में डाल देती है (अब) यह दूसरा मुनिवेशधारी कामदेव बनाया है जो उस आकारवाले (पहले) कामदेव से अधिक सौन्दर्योत्कर्ष के समूह वाला है। मैं तो यह सोचती हूँ कि समूचे जगत् (इसके निवासी जीवों) की आँखों को आनन्द देने वाले चन्द्रमण्डल की रचना करते हुए तथा (सौन्दर्य की देवी) लक्ष्मी के सुन्दर निवासस्थान कमलों को बनाते हुए ब्रह्मा ने इसके (सुन्दर) चेहरे की आकृति को बनाने के लिए (आवश्यक) कुशलता की प्राप्ति का

सदृशवस्तुविरचनायां कारणम्। अलीक चेद् यथा किल सकलाः कलाः कलावतो बहुलपक्षे क्षीयमाणस्य सुषुम्नानाम्ना रश्मिना रविरापिबतीति, ताः खल्वस्य गभस्तयः समस्ता वपुरिदमाविशन्तीति। कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशबहुले तपसि वर्तमानस्येदं लावण्यम्' इति चिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरीं परवशामकरो-

---

चातुर्यं तदर्थमभ्यास पौन पुन्येन प्रवृत्तिरेव कृतो विहित । एतत्समर्थयन्नाह—अन्यथेति। अन्यथोक्तवैपरीत्ये सदृशवस्तुविरचनायां तुल्यपदार्थोत्पादने किमिव कारण नियामकम्। न किमपीत्यर्थं । अतो ज्ञायतेऽभ्यासार्थमेतन्निर्माणमिति भाव । अलीकं चेति। अग्रे इतिवक्ष्यमाणमिदमलीक मिथ्या । इतिशब्दार्थमाह—यथेति । किलेत्याप्तवाक्ये। बहुलपक्षे कृष्णपक्षे क्षीयमाणस्य कृशता प्राप्यमाणस्य कलावतश्चन्द्रस्य सकला समग्रा कला षोडशांशा रवि सूर्य सुषुम्नानाम्ना रश्मिना नाडीविशेषेणापिबति पान करोति। तर्हि किं सत्यमित्याशयेनाह—इतीति। ता समग्राः गभस्तय कान्तयोऽस्य मुनेरिद वपु शरीरमाविशन्ति प्रविशन्ति। तथा च 'यदेकस्माद्विनिर्गत तत्स्वाश्रयसदृशमुपयाति' इति न्यायेन बहुलपक्षेणोपक्षीयमाणाश्चन्द्रमसो निर्गता गभस्तयस्तप क्लेशातिशयक्षीणे मुनौ संक्रान्ता इत्यर्थं । उक्तवैपरीत्ये दूषणमाह—कुत इति। अन्यथोक्तान्यथात्वे रूपं सौन्दर्यं तस्यापहारिणि निराकारिणि क्लेश परिश्रमस्तेन बहुले दृढे। एवविधे तपसि तपस्याया वर्तमानस्य स्थितस्येद लावण्यं सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यं कुतः स्यात्। कारणव्यतिरेकेण कार्यानुदयादिति भाव । इति चिन्तयन्तीमेवेति ध्यायन्तीमेव मां कुसुमायुधोऽनङ्गो मधुकरीं भ्रमरीं कुसुमसमयमद इव वसन्तकालमद इवोच्छ्वसितैर्निश्वसितै सह परवशा पराधीनामकरोद्व्यधात्। अथ च कुसुमायुध विशेषयन्नाह—अवीति। अविचारितोऽनालोचितो गुणदोषयोर्विशेषो बलाबल येन स तथा। रूपेति। रूपस्य सौन्दर्यस्यैकोऽद्वितीय पक्षपाती तत्पुष्टिकारी। नवेति। नवं प्रत्यग्र यद्यौवन तत्र सुलभ सुप्राप । तारुण्य एवं तदुत्पत्तिसभवात्। पुन किं कुर्वन्ती। दक्षिणेनापसव्येन

केवल अभ्यास ही किया होगा। नहीं तो इतनी एक-सी वस्तुओं की रचना करने का क्या कारण हो सकता है। और यह कथन तो असत्य ही है कि सूर्य (अपनी) सुषुम्ना नाम की किरण द्वारा, कृष्ण पक्ष मे, कृश हो रहे होते चन्द्रमा की सारी कलायें पी जाता है, क्यों कि चन्द्रमा की वे किरणें तो सारी की सारी ही इसके शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं। नहीं तो, सौन्दर्य को नष्ट कर देने वाली शारीरिक यातना से भरी हुई तपस्या करते हुए का यह सौन्दर्य कहाँ से होता।" ठीक तभी, जब कि मैं इस प्रकार चिन्ता में लीन थी, किसी गुण और दोष के भेदभाव का विचार न करने वाले, केवल सौन्दर्य का ही पक्ष लेने वाले नव यौवन में सुगमता से प्राप्त होने वाले (नई जवानी में सदा समीप वर्तमान) पुष्पायुध कामदेव ने मुझको ऐसे पराधीन बना लिया जैसे कि वसन्त ऋतु का नशा भ्रमरी को वश में कर लेता है। लम्बे और गहरे साँसों के साथ (उच्छ्वास लेती हुई मैंने) झपकना भूले हुई कुछ बन्द हुई पलकों वाली, अधिक तिरछी तथा चञ्चल हुई कनीनिका के कारण रग बिरगे मध्य

दुच्छ्वसितैः सह। विस्मृतनिमेषेण किञ्चिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मिततरलतरतार-शारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिबन्तीव, किमपि याचमानेव, 'त्वदायत्तास्मि' इति वदन्तीव, अभिमुख हृदयमर्पयन्तीव, सर्वात्मनानुप्रविशन्तीव, तन्मयतामिव गन्तुमीहमाना, 'मनोभवाभिभूतां त्रायस्व' इति शरणमिवोपयान्ती, 'देहि हृदयेऽवकाशम्' इत्यर्थितामिव दर्शयन्ती, 'हाहा, किमिदमसाम्प्रतमतिह्रेपणमकुलकुमारीजनोचितमिद मया प्रस्तुतम्' इति जानानाप्यप्रभवन्ती करणानाम्, स्तम्भितेव,

चक्षुषा नेत्रेण सस्पृह साभिलाष यथा स्यात्तथापिबन्त्यत्यादरेण विलोकयन्तीव। अत्यादरेण विलोकन पानमुच्यते। अथ चक्षुर्विलोकयन्नाह—विस्मृतेति। विस्मृतो विस्मृतिं प्राप्तो निमेषो निमीलन यस्य तत्तथा तेन। किंचिदिति। किंचिदीषदामुकुलितमाकुड्मलितं पक्ष्म नेत्ररोम यस्मिंस्तत्तथा तेन। जिह्मितेति। जिह्मिता कुटिलिता तरलतरातिचञ्चला तारा कनीनिका यस्मिन्नेवभूत शार कल्मषमुदर मध्यभागो यस्येति चेति द्वन्द्व। अथ च प्रकारान्तरेण तामेव विशेषयन्नाह—किमपीति। किमप्यनिर्वचनीयस्वरूपं याचमानेव प्रार्थ्यमानेव। याचनाकर्तुरेतादृशाकारवत्त्वादुपमानम्। त्वदिति। त्वदायत्ता त्वदधीनाहमस्मीति वदन्तीव ब्रुवन्तीव। एतेनावलोकने सातिशयत्व सूचितम्। अभीति। अभिमुखं समुखं हृदय स्वान्तमर्पयन्तीव वितरण कुर्वन्तीव। मुनीना व्यामोहजननादिति भाव सर्वेति। सर्वात्मना सर्वप्रकारेणानुप्रविशन्तीवानुप्रवेश कुर्वन्तीव। तन्मयेति। तन्मयता तद्रूपता गन्तु प्राप्तुमीहमानेव स्पृहमानेव। मनोभवेनेति। मनोभवेन कदर्पेणाभिभूतां पराभूतां त्रायस्व पाहीति हेतो. शरणं त्राणमुपयान्तीव गच्छन्तीव। देहीति। हृदये चित्तेऽवकाश प्रवेश देहीत्यर्थिता याचकता दर्शयन्तीवावलोकन कारयन्तीव। विरोधिना विवेकेनाप्यभिवर्त्यमानाह—हाहेति। हा इति खेदे। किमिदमसाम्प्रतमयुक्तमतिह्रेपणमतिलज्जाकरमकुलोद्भवो यो कुमारीजनस्तस्योचित योग्यम्। कुलवत्यास्तु सर्वथा नोचितमिति भाव। इदमेतादृश कर्म मया प्रस्तुत प्रारब्धमिति जानानाप्येतादृशज्ञानवत्यपि करणानामिन्द्रियाणामवरोधनेऽप्रभवन्त्यसमर्था। व्यामोहं प्रतिपादयन्नाह—स्तम्भितेव जडीकृतेव, लिखितेव, चित्रितेव, उत्कीर्णेवोत्कोरितेव, सप्तेव सदानितेव,

भाग वाली दायीं आँख से उसको लालसापूर्वक पीती हुई सी ने बहुत देर तक टकटकी बाँधकर ऐसे देखा कि मानो मैं उससे कुछ माग रही थी, अथवा 'मैं तेरे अधीन हूँ'—यह उसको बता रही थी, अथवा उसकी ओर जा रहे अपने हृदय को उसे सौंप रही थी, अथवा अपनी शक्ति से (सारी शक्ति लगाकर) उसके भीतर प्रविष्ट हो रही थी, अथवा उसके साथ (मिलकर) एक होना चाह रही थी, अथवा 'मैं काम (प्रेम) से पीड़ित हूँ, मेरी रक्षा करो' (यह कहती हुई) उसकी शरण लेना चाहती थी, अथवा 'मुझे अपने हृदय में स्थान दो'—यह कहती हुई मानो अपनी याचकता को (भिक्षुक के गुण को) प्रकट कर रही थी। 'उफ! मैंने यह कौन सा अनुचित, अत्यन्त लज्जाजनक, कुलीन कुमारियों के न करने योग्य कार्य करना आरम्भ किया है'—यह समझती हुई भी अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने की शक्ति का खो बैठी हुई, उस समय अपने ऊपर प्रकट हुई एक प्रकार की

लिखितेव, उत्कीर्णेव, संयतेव, मूर्च्छितेव, केनापि विधृतेव, निस्पन्दसकलावयवा तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसपदा कि मनसा कि मनसिजेन किमभिनवयौवनेन किमनुरागेणेवोपदिश्यमान किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अह न जानामि कथकथमिति तमतिचिर व्यलोकयम्। उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्यमाणेव

मूर्च्छितेव मूर्च्छा प्राप्तेव, केनाप्यनिर्वचनीयस्वरूपेण विधृतेव गृहीतेव तत्कालाविर्भूतेन तदात्व प्रादुर्भूतेनावष्टम्भेन व्यामोहातिशयेन निस्पन्दा निश्चेष्टा सकलावयवा यस्या सैवभूता सती कथकथमिति महता कष्टेन त मुनिकुमारकमतिचिर बहुकालं व्यलोकयमद्राक्षमिति दूरेणान्वय । प्रस्तुतस्य दोषरूपतया तन्निदान दुर्ज्ञेयमिति निरूपयन्नाह—अकथितेति । यदनुचित प्रस्तुत कर्म तत्केन निमित्तेनोपदिश्यमानमुपदेशविषयीक्रियमाणमिति न विभाव्यते न निश्चीयत इत्यन्वय । अनिश्चय प्रदर्शयन्नाह—किं तद्रूपेति । किमिति वितर्के । तस्य मुनिकुमारस्य रूप सपदा सौन्दर्यसमृद्धया । किं मनसा चित्तेन । किं वा मनसिजेन कदर्पेण । किं वाभिनवयौवनेन प्रत्यग्रतारुण्येन । किं वानुरागेणान्तर्गतप्रीत्या । किमन्येनैव पूर्वोक्तभिन्नेनैव केनापि प्रकारेण किमिति सर्वत्र वितर्कार्थे । तर्हि स्वसवेद्येन स्वमात्रसाक्षिणा अनुभवेनैव विभाव्यतामित्यत आह—स्वसवेद्येति । स्वानुभवेनेत्यर्थ । तस्मिन्ननुभवेऽप्रमाणत्वं निराकरोति—अकथितेति । न कथित शिक्षित वा यस्मिन्नेवभूतेन । कथिते शिक्षिते ह्यर्थेऽसभावना विपरीतभावना चोत्प द्यते । तर्हि स्वसवेद्येन स्वमात्रसाक्षिणा शब्दजन्य एवानुभवो भवतु । तथा सभवनात्मकेन तेन कथ निर्णय इत्यत आह—अनाख्यायेति । स्वमात्रसाक्षिणा तेनाप्यह न जानामीति सबन्ध । ऽन्वयस्तु प्रागेवोक्त । मुनिकुमारदर्शनानन्तरमुत्कण्ठाद्युत्पत्त्यादीनि वक्तु प्रथममुत्कण्ठातिशयमाह—उत्क्षिप्येति । तदुक्तम्—'दर्शनस्पर्शनालापैर्व्यक्तास्ते सहकारिण'। इन्द्रियै करणैरुत्क्षि-

---

मूर्च्छा से गतिहीन हुए अगों वाली मैं मानो शक्तिहीन हो गयी थी, अथवा चित्रित (चित्र रूप में खैंची गयी) हो गयी थी, अथवा (किसी स्मारक की भाँति) खोदकर बनायी गयी थी, अथवा बाध दी गयी थी (मेरे हाथ पाँव मानो बाध दिये गये थे), अथवा मूर्छित हो गयी थी, अथवा किसी द्वारा कसकर पकड़ ली गयी थी। उस समय मैं इस प्रकार उसको टकटकी बाध कर देखती रही कि मानो मैं बिना (किसी से) कहे ही (अपने काम के लिये) शिक्षित किसी ऐसे आवेग द्वारा सिखायी जा रही थी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता (जिसको मुँह से नहीं कहा जा सकता था) जिसको केवल स्वय अनुभव ही किया जा सकता था, यह तो ठीक नहीं जाना जा सका (या जा सकता था) कि क्या मैं उसके सर्वांगपूर्ण सौन्दर्य द्वारा सिखायी जा रही थी अथवा (अपने ही) मन द्वारा सिखायी जा रही थी अथवा कामदेव द्वारा सिखायी जा रही थी अथवा (अपने ही) नवयौवन द्वारा सिखायी जा रही थी अथवा (उस समय अनुभव किये जा रहे) प्रेम द्वारा सिखायी जा रही थी अथवा किसी और ही प्रकार द्वारा सिखायी जा रही थी। वस्तुत मैं नहीं जानती कि किस किस प्रकार यह सब हुआ।

हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम्। अनन्तरं च मेऽन्तर्मदनेनावकाशमिव दातुमाहितसताना निरीयुः श्वासमरुतः। साभिलाष हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुचयुगलम्। खेदलवलेखाक्षालितेवागलल्लज्जा। मकरध्वजनिशितशरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः। तद्रूपातिशय द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगाद्रोमाञ्चजालकम्। अशेषतः

प्योत्पाद्य तत्समीप मुनिसविध नीयमाना प्राप्यमाणेव। हृदयेन स्वान्तेन पुरस्तादग्र आकृष्यमाणेव। पुष्पधन्वना मकरध्वजेन पृष्ठत प्रेर्यमाणा नोद्यमानेव। धृतिमाह—कथमपीति। एतादृश्यहं कथमपि महता क्लेशेन मुक्तप्रयत्न यथा स्यात्तथात्मानमपि प्राणिनमप्यधारय धारितवती। निरोधश्च धृतिकार्यम्। चिन्तामाह—अनन्तरमिति। चिन्तावशात्कुत्रचिदेकान्ते सचिन्तस्तिष्ठति। एव सति मे ममान्तरभ्यन्तरे मदनेनावकाश दातुमाहितसताना रचितपरंपरा श्वासमरुत श्वसितवायवो निरीयुर्निष्कासिता। तथा च श्वासावष्टम्भेन सकोचात्तन्निर्गमे सावकाशमिति भाव। अभिलाषमाह—सेति। साभिलाषमभिलाषयुक्त हृदय मन आख्यातुकाममिव वक्तुकाममिव कुचयुगल स्तनयुग्म स्फुरितमुखं स्पन्दिताननमभूद् बभूव। स्वेदेति। स्वेद श्रमोत्थ वारि तस्य लवलेखाभि क्षालितेव धौतेव लज्जा त्रपागलद्स्रवत्। अत्र मुखस्फुरणमभिलाषकार्यं स्वेद श्रमकार्यं लब्धा च्युतिश्चोन्मादकार्यमिति यथाक्रम ज्ञेयम्। त्रासमाह—मकरेति। मकरध्वजस्य कदर्पस्य ये निशितास्तीक्ष्णा शरा बाणास्तेषा निकर समूहस्तस्य निपात पतन तेन त्रस्तेव भीतेव गात्रयष्टिर्देहयष्टिरकम्पत चकम्पे। कम्पस्त्रासकार्यम्। एवम ग्रेऽपि रोमाञ्चनिर्गमसात्त्विकभाव प्रतिपादयन्नाह—तद्रूपेति। तस्य मुने रूपातिशय सौन्दर्योत्कर्ष द्रष्टुमिव वीक्षितुमिव कुतूहलात्कौतुकादालिङ्गनमुपगूहन तत्र लालसेभ्य सस्पृहेभ्योऽङ्गेभ्यो हस्तपादादिभ्यो रोमाञ्चजालक रोमहर्षणसमूहो निरगान्निर्गत बभूव। स्थायिभाव प्रदर्शयन्नाह—अशेषत इति। स्वेदाम्भसा श्रमोत्थवारिणा चरणयुगलादङ्घ्रियुग्मादशेषत सामस्त्येन

(अपनी) इन्द्रियों द्वारा मानो उठाकर उसके समीप ले जाई जाती हुई सी, (अपने) हृदय द्वारा आगे को खींची जाती हुई सी और कामदेव द्वारा पीछे से (प्रेरित की जाती हुई सी) धकियायी गयी सी मैं निश्चेष्ट अपने आपको किसी प्रकार (अपने स्थान पर ही) थाम्भे रही। और इसके पश्चात् मेरे (रुके हुए) सास की वायुएँ, मानो कामदेव को मेरे भीतर (रहने का) स्थान देने के लिये ही, लम्बे तथा सतत प्रवाह के रूप मे बाहर निकलीं। मेरा हृदय प्रेम से भरा हुआ है मानो इस बात की घोषणा करने के लिये ही मेरे दोनों स्तन धड़कते मुख वाले हो गये (मेरे दोनों स्तनों के चूचुक धड़कने लगे)। मेरी लाजशर्म ऐसे बह गयी मानो पसीने के जल की बिन्दुओं की पंक्ति से धुल कर बह गयी हो। मेरा शरीर मानो कि कामदेव के तेज बाणों के गिरने से डरा हुआ सा कॉप उठा। उसका आलिंगन करने की लालसा प्रबल इच्छावाले अंगों से रोमाञ्चसमूह ऐसे निकल पड़ा (सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया) मानो वह उसके अत्यधिक सौन्दर्य को

स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः। आसीच्च मम मनसि—शान्तात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिञ्जने मा निक्षिपता किमिदमनार्येणासदृशमारब्धं मनसिजेन। एवं च नामातिमूढं हृदयमङ्गनाजनस्य, यदनुरागविषययोग्यतामपि विचारयितुं नालम्। क्वेदमतिभास्वरं धाम तेजसां तपसां च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरस्पन्दितानि। नियतमयं मामेवं मकरलाञ्छनेन विडम्ब्यमानामुपहसति मनसा। चित्रं चेदं यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसंहर्तुम्।

धौतं क्षालितो रागो रतिरारुण्यं च हृदयमिवाविशत्प्रवेशमकरोत्। आसीच्चेति। मे मम मनसि मच्चित्ते इदमासीद्बभूव। तदेव प्रकटयन्नाह—शान्तात्मनीति। अनार्येण दुष्टेन मनसिजेन कन्दर्पेण शान्तात्मनि दूरीकृतो दूरोज्झितः सुरतव्यतिकरो मैथुनवृत्तान्तो येनैवंभूते जनेऽस्मिन्मां निक्षिपता निक्षेपं कुर्वतासदृशमसाधुजनोचितमारब्धं प्रारब्धं पूर्वोक्तप्रकारेण। नामेति कोमलामन्त्रणे। अङ्गनाजनस्य स्त्रीजनस्यातिमूढमतिमुग्धं हृदयं चित्तम्। यदिति हेत्वर्थे। अनुरागविषययोग्यतामप्यस्मिन्स्थलेऽनुरागो युक्तः, अस्मिन्स्थले न युक्तः, इति विषयविभागमपि विचारयितुं नालं समर्थम्। वैराग्यतपःसिद्धियुक्ते मुनिजने प्रमदाजनानुसरणप्रयासो वृथेत्यर्थः। अतो हेतोरस्मात्प्रदेशादपसर्पणं दूरीभवनं श्रेय इति प्रत्येकवाक्यपरिसमाप्तौ बोद्धव्यम्। क्वेति महदन्तरे। तेजसां तपसां चातिभास्वरमतिशोभनं क्वेदं धाम गृहम्। प्राकृतेति। प्राकृतजनैर्नीचजनैरभिनन्दितान्यनुमोदितानि मन्मथपराणि मनोभवप्रतिपाद्यानि स्पन्दितानि चेष्टितानि क्व। नियतमिति। नियतं निश्चितं मकरलाञ्छनेन कंदर्पेणैवं पूर्वोक्तप्रकारेण विडम्ब्यमाना कदर्थ्यमाना मामयं मुनिर्मनसा चित्तेनोपहसत्युपहासं करोति। चित्रमिति। इदमग्रे वक्ष्यमाणं चित्रमाश्चर्यम्। तदेव प्रदर्शयन्नाह—यदिति। यद्यस्मात्कारणादहमेवं पूर्वोक्तप्रकारेणावगच्छन्त्यपि जानन्त्यप्यात्मनः स्वस्य विकारं विकृतिमुपसंहर्तुं दूरीकर्तुं न शक्नोमि न समर्था भवामि।

देखने के लिये निकला हो। और मेरे हृदय में राग (उसके प्रति अनुराग) ऐसे प्रविष्ट हो गया कि मानो वह पसीने के जल से चारों ओर से सब स्थानों पर दोनों पाओं से धुलकर बहा हुआ लाल रंग हो। और मन में यह हुआ—इस प्रकार के विचार उठे—कि छोड़ दिया है सभी प्रकार का (सुरत) मैथुन अथवा प्रेम सम्पर्क (व्यतिकर) जिसने ऐसे इस शान्तात्मा व्यक्ति पर मुझे फेंकते हुए (इसके प्रेम में फसाते हुए) दुष्ट कामदेव ने यह कितना अनुचित (असदृश) काम शुरू किया है। और इस प्रकार स्त्रियों का हृदय निश्चय ही बहुत ही मूर्ख होता है कि वह अपने प्रेम के लक्ष्यभूत (विषय) की योग्यता—उपयुक्तता (अथवा अनुपयुक्तता) का विचार भी नहीं कर पाता है। कहाँ[1] तो यह (ऋषिकुमार है) जो तेज तथा तपस्याओं का अत्यन्त चमकीला निवास स्थान है और कहाँ केवल सामान्य व्यक्तियों द्वारा अभिनन्दित प्रेमावेग के कृत्य हैं। (इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है) निश्चय ही यह (कुमार) मन ही मन काम से पीडित (प्रेम से व्याकुल) मुझ कन्या की ही हँसी उड़ा रहा है। और यह बड़ी विचित्र बात है कि मैं इस बात को

१. क्व इति महदन्तरे।

अन्या अपि कन्यकास्त्रपा विहाय स्वयमुपयाताः पतीन्, अन्या अप्यनेन दुर्विनीतेन मन्मथेनोन्मत्तता नीता नार्यः, न पुनरहमेका यथा। कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुलीभूतमेवमस्वतन्त्रतामुपैत्यन्तःकरणम्। कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुटमनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्रदेशादपसर्पणं श्रेयः। कदाचिदनभिमत-

---

पुनर्विचारणान्तरमाह—अन्या इति। मत्सहचरीषु मध्ये याः कामनातिकामुकास्त्रपां लज्जां विहाय त्यक्त्वा स्वयमात्मनान्यान्पतीनुपयाता स्वयमेवोपगता। यास्तु नोपयातास्तासां मध्येऽन्या मद्व्यतिरिक्ता नार्योऽनेन दुर्विनीतेन शूकलेन मन्मथेन कदर्पेणोन्मत्तता सविकारतां तथा न नीता यथाहमेका। अनेनेति। अनेन क्षणेन मुनिकुमारदर्शनाविर्भूतमदनावेशलक्षणेनोन्मत्ततां प्रापिता। तदेव स्पष्टीकुर्वन्नाह—आकारेति। आकारमात्रस्याकृतिमात्रस्यालोकनं वीक्षणं तेनाकुलीभूतं व्याकुलीकृतमन्तःकरणमन्तरिन्द्रियमेवं पूर्वोक्तप्रकारेणास्वतन्त्रतां पराधीनतामुपैति प्राप्नोति। काल इति। कालो विवेककालो गुणा कुलीनत्वादयश्च मदनस्य सर्वथा सर्वप्रकारेण दु खेन निवारयितु शक्यो दुर्निवारस्तस्य भावस्तत्ता तामारोपयन्ति व्यवस्थापयन्ति। अतो हेतोरपीति पूर्ववत्। पुनर्विचारणान्तरमाह—यावदिति। यावदेव यावत्कालमहं सचेतना चैतन्ययुक्तास्मि। यावदेवेति पूर्ववत्। मे ममैतन्मदनदुश्चेष्टितलाघवमनेन मुनिना विभाव्यते न निश्चीयते। तावदेवेति। तावत्कालमस्मात्प्रदेशादपसर्पणं दूरीभवनं श्रेय. कल्याणकृदिति भाव। अन्यथा बाधकमाह—कदाचिदिति। सभावनायामनभिमतोऽनभीष्टो य स्मरविकारो मनोभवविकृतिस्तस्य दर्शनेनावलोकनेन कुपित कोपं प्राप्तो मा शापस्याभिज्ञामाद्यज्ञानविषयाम्। 'अभिज्ञा ज्ञानमाद्य स्यात्' इति कोश। करोति प्रणयति।

जानती हुई भी अपने (अपने भीतर होते हुए) इस (भाव के) नये परिवर्तन को (नष्ट करने में) रोकने में असमर्थ हूँ। दूसरी कन्यायें भी लज्जा को छोड़कर स्वय ही, स्वेच्छा से ही, अपने पतियों (प्रेमियों) के समीप पहुँची हैं। इस दुःशील कामदेव ने दूसरी नारियों को (कुमारियों को) भी पागल बनाया है, किन्तु जैसे मुझ अकेली को इसने पागल बनाया है, वैसे नहीं। केवल उसकी (सुन्दर) आकृति को देखकर ही क्षुब्ध हुआ यह मेरा मन किस प्रकार इस समय अपना वश छोड़ बैठा है—पराधीन हो गया है। क्योंकि (सामान्य नियम तो यह है कि) काल (अर्थात् पर्याप्त दीर्घकालीन परिचय) तथा गुण (प्रिय के गुण) ही कामदेव में (ऐसी) अनिवार्यता आरोपित करते हैं (पर्याप्त लम्बे परिचय से जाने हुए गुणों के कारण ही प्रिय के प्रति प्रेम अनिवार्य होता है)। (अस्तु) जब तक मैं अभी होश मे हूँ और जब तक यह (युवा) मदन की बुरी चेष्टाओं (के आगे घुटने टेक देने) की मेरी इस चञ्चलता को स्पष्टरूप से नहीं देख पाता है तभी तक इस स्थान से खिसक जाना ही (मेरे लिये) कल्याणकारी है। (क्योंकि) शायद (मुझ में) अनभीष्ट मदन-(जनित) परिवर्तन को देखकर क्रुद्ध हुआ यह मुझको शाप दे दे। क्योंकि मुनियों का स्वभाव ऐसा होता है कि क्रोध उनसे कभी दूर नहीं होता (मुनिजन शीघ्र ही क्रुद्ध हो

स्मरविकारदर्शनकुपितोऽयं शापाभिज्ञा करोति माम्। अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः इत्यवधार्यापसर्पणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजनपूजनीया चेय जातिरितिकृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्, उल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतसम्, असदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

अथ कृतप्रणामायामपि दुर्लङ्घ्यशासनतया मनोभुवः, मदजननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्य, अविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य,

---

मुनीना कोप कुत इत्याशयेनाह—अदूरेति। हि निश्चितम्। मुनिजनप्रकृतिस्तापसलोकस्वभावोऽदूरे समीपे कोपो यस्या एवंविधा स्यादित्यवधार्य निश्चित्याहमपसर्पणेऽभिलाष स्पृहा यस्या एवंभूताभव जज्ञे। अशेषेति। अशेषै समग्रैर्जनै पूजनीयार्चनीयेय जाति। न तु कोपनीयेति भाव। इतिकृत्वास्मै प्रणामं नमस्कारमकरवमसृजम्। अथ नमस्कार विशेषयन्नाह—तद्वदनेति। तद्वदनान्मुनिमुखादाकृष्ट आकर्षितो दृष्टिप्रसरो यस्मिंस्तत्। क्रियाविशेषणं वा। अनेन भावातिशयो द्योतित। एवमग्रेऽपि ज्ञेयम्। अचलितेति। अचलिताऽकम्पिता पक्ष्मणा नेत्ररोम्णा माला पङ्क्तिर्यस्मिन्। अदृष्टेति। अदृष्टमवीक्षित भूतल पृथ्वीतलं यस्मिन्। उल्लसितेति। उल्लसिता उल्लास प्राप्ता कर्णपल्लवा श्रवणकिसलयानि तैरुन्मुक्तं त्यक्त कपोलमण्डलं यस्मिन्। आलोलेति। आलोला चपलालकलता केशराजिस्तस्यां लसत्कुसुमावतसो यस्मिन्। असेति। असदेशे स्कन्धप्रदेशे दोलायित मणिकुण्डल यस्मिन्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

अथेति। मद्विकारेणापहृत दूरीकृत धैर्यं यस्यैवंभूत मुनिकुमारक कृतप्रणामायामपि तस्यां तमपि पवन प्रदीपमिवानङ्ग कंदर्पस्सरलता चञ्चलतामनयत्। तत्र हेतुमाह—दुर्लङ्घ्येति। मनोभुवो मदनस्य दुर्लङ्घ्य दुर्लङ्घनीयं शासनमाज्ञा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया। मधुमासस्य वसन्तमासस्य मदजननतया मदोत्पादकत्वेन च। तस्य पूर्वोक्तस्य प्रदेशस्यातिरमणीयतयातिमनोहरतया। अभीति। अभिनवं नूतन यद्यौवन तारुण्यं तस्याविनय शठता तद्बहुल-

---

जाया करते हैं)।"—यह सोचकर (निश्चय करके) मैंने चाहा कि मैं उस स्थान से खिसक जाऊ। और यह सोचकर कि यह वर्ग सभी द्वारा पूजा के योग्य है, मैंने उसको इस रीति से (अथवा ऐसा) प्रणाम किया कि उसके चेहरे पर से मेरी दृष्टि का विस्तार नहीं खिंचा (मेरी आँख उसके चेहरे पर से नहीं हटी), (प्रणाम करते समय) मेरी पलकें हिली नहीं, धरातल नहीं देखा गया, कुछ ऊपर को उठी हुई, कान पर पहनी हुई कोंपलों ने मेरे गालों को छोड़ दिया, मेरे लहराते लम्बे बालों में आभूषणों के रूप में पहने हुए पुष्प (कुसुमावतस) लटक रहे (उल्लसत्) थे, मेरे स्कन्ध प्रदेश पर मणिमय कुण्डल झूल रहे थे।

इसके पश्चात् जब मैं प्रणाम कर चुकी तब कामदेव का आदेश अनिवार्य होने के कारण चैत्र मास की, प्रेमोन्माद को उत्पन्न करने की अवस्था के कारण, उस प्रदेश की अतीव आकर्षकता के कारण, नई जवानी की अशिष्टता के आधिक्य के कारण, इन्द्रियों के चञ्चल स्वभाव

चञ्चलप्रकृतितया चेन्द्रियाणाम्, दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्तेः, तथाभवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः, किं बहुना मम मन्दभाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्तमपि मद्विकारापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयदनङ्गः।

तदा तस्याप्यभिनवागतमदनं प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभङ्गभीतेवाकम्पत करतलगताक्षमाला द्वितीयेव कर्णावसक्तकुसुममञ्जरी कपोल-

तया तद्बाहुल्यतया। इन्द्रियेति। इन्द्रियाणां करणानां चञ्चलप्रकृतितया लोलस्वभावतया। विषयेति। विषया इन्द्रियार्थास्तेषामभिलाषा अध्यवसायास्तेषां दुर्निवारतया दुःखेन दूरीकर्तुं शक्यतया। मनोवृत्तेश्चित्तवृत्तेश्चपलतया चञ्चलतया। तस्य तस्य वस्तुनस्तत्तत्पदार्थस्य तथा भवति भवितव्यतया तथाभाव्यतया। चकारः सर्वत्र समुच्चयार्थः। किमिति। किं बहूक्तेन। मम मन्दभाग्यं क्षीणभागधेयं तस्य दौरात्म्याद्दुष्टत्वेनास्य मुनेरीदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्कृतत्वात्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

तदेति। तस्मिन्काले तस्यापि मुनिकुमारस्याप्यभिनवो नूतन आगतो यो मदनः कंदर्पस्तं प्रत्युद्गच्छन्निव संमुखं व्रजन्निव रोमोद्गमो रोमाञ्चः प्रादुरभवत्प्रकटीबभूव। मदिति। मत्सकाशं मत्समीपमभिप्रस्थितस्य संमुखं चलितस्य मनसो हृदयस्य मार्गं पन्थानमुपदिशद्भिरिवोपदर्शयद्भिरिव श्वासैः श्वसितैः पुरोऽग्रे प्रवृत्तमग्रे प्रस्थितम्। वेपथुरिति। व्रतस्य नियमस्य भङ्गः खण्डनं तेन भीतेव त्रस्तेव वेपथुः कम्पस्तेन गृहीता करतलगता हस्तगताक्षमाला जपमालाकम्पताचलत। द्वितीयेति। कपोलतलासङ्गिनी गल्लात्परप्रदेशाश्लेषिणी स्वेदसलिलस्य श्रमजलस्य सीकराः कणास्तेषां जालिका समदृश्यन्त समालोक्यन्त। द्वितीयान्या कर्णा-

के कारण, विषयों की लालसाओं की (मौज मनाने की) अनिवार्यता के कारण, मनकी चञ्चलता के कारण और उस उस वस्तु का उसी-उसी प्रकार (जैसी कि वह हुई) घटित होना पूर्व निश्चित होनेके कारण, सक्षेपत,[1] मेरे अभाग्य की दुष्टता के कारण तथा मेरे ऐसे क्लेश की (तपस्या करने के क्लेश की) (विधि द्वारा) विहितता अथवा निर्दिष्टता के होने के कारण, कामदेव ने, मेरे आवेग के दर्शन से दूरीकृत धीरज वाले उस कुमार को भी ऐसे चञ्चल (अर्थात् क्षुब्ध) बना दिया जैसे कि वायु दीपक को चञ्चल कर देती है।

तब उस मुनिकुमार का भी (उसके शरीर में भी) रोमाञ्च प्रकट हो गया मानो कि वह (रोमाञ्च) उस समय अभी-अभी आये (पहली बार उसमे प्रकट हुए) कामदेव का स्वागत कर रहा था।[2] मानो मेरे समीप (आने के लिये) मेरी ओर चले (अपने) मन को मार्ग दिखाते चलते, निश्वास उसके आगे आगे चलने लगे (उसके उच्छ्वास जारी हो गये)। उसके हाथ में पड़ी हुई, अक्षमाला, मानो (उसके द्वारा किये जाने वाले) नियमभंग से डरी

१ किं बहुना।

२ प्रत्युद्गच्छन् इव=कामदेव के प्रति (स्वागतार्थ) जाता हुआ सा।

तलासङ्गिनी समदृश्यत स्वेदसलिलसीकरजालिका। मद्दर्शनप्रीतिविस्तारितस्य चोत्तानतारकस्य पुण्डरीकमयमिव तमुद्देशमुपदर्शयतो लोचनयुगलस्य विसर्पिभिरंशुसंतानैर्यदृच्छयाच्छोदसलिलमपहाय विकचकुवलयवनैरिव गगनतलसमुत्पतितैररुध्यन्त दश दिशः। तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणीकृतमदनावेशा तत्क्षणमहमवर्णनयोग्या कामप्यवस्थामन्वभवम्। इद च मनस्यकरवम्—'अनेकसुरतसमागमलास्यलीलोपदेशोपाध्यायो मकरकेतुरेव विलासानुपदिशति, अन्यथा विविधरसासङ्ग-

---

वतसकुसुममञ्जरीव श्रवणसलग्नपुष्पवल्लरीव। एते सात्त्विका भावा प्रदर्शिता। मद्दर्शनेति। मद्दर्शनमालोकन तस्मात्प्रीति स्नेहस्तेन विस्तारितस्य प्रसारितस्य। उत्तानेति। उत्तानोर्ध्वमुखा तारका कनीनिका यस्य स तथा तस्य तमुद्देश त प्रदेश पुण्डरीकमय सिताम्भोजनिर्मितमिवोपदर्शयतोऽन्येभ्यो ज्ञापयतो लोचनयुगलस्य नेत्रयुग्मस्य विसर्पिभि प्रसरणशीलैरंशुसतानै. किरणसमूहैर्दश दिशोऽरुध्यन्त रुद्धा। कमलसादृश्यादाह—यदृच्छयेति। यदृच्छया स्वेच्छयाच्छोदनाम्न सरस सलिल पानीयमपहाय त्यक्त्वा गगनतलसमुत्पतितैराकाशतलोत्पातिभिर्विकचकुवलयवनैरिव विकस्वरोत्पलखण्डैरिव। एतेन नयनयोश्चाञ्चल्यमितस्ततोऽवलोकन च ध्वनितम्। तु पुनरर्थक। तस्य मुनिकुमारस्यातिप्रकटयातिस्पष्टया तथा विकृत्या द्विगुणीकृतो द्विगुणतां नीतो मदनस्यावेशो यस्या एवभूताहं तत्क्षण तत्कालमवर्णनयोग्यामकथनीयां कामप्यवस्था दशामन्वभवमनुभूतवती। इदमिति। मनसि चित्त इद चाकरवमप्रणयम्। अचिन्तयमित्यर्थं। अनेकेति। अनेकेऽसख्या सुरत मैथुन तस्य समागम सबन्ध स एव लास्यलीला नृत्यक्रीडा तस्यामुपदेशा. शिक्षारूपास्तत्रोपाध्याय पाठक एवंविधो मकरकेतुरेव कदर्प एव विलासान्नेत्रविकारानुपदिशत्युपदेश करोति। उक्तवैपरीत्ये बाधकमाह—अन्यथेति। विविधा अनेके ये रसा श्रृङ्गारादयस्तेषामासङ्ग सश्लेषस्तेन ललितेषु मनोहरेष्वीदृशेषु व्यतिकरेषु सबन्धेष्वप्रविष्टा प्रवेशमप्राप्ता बुद्धि प्रतिभा यस्य स तथा

हुई सी, थर्राहट के वश हुई (थर्राती हुई) काँप उठी। पसीने के जल की छोटी-छोटी बूँदों की एक आली (पक्ति) उसके कान पर लगी हुई दूसरी पुष्पमाला सरीखी उसके कपोल पर चिपटी हुई दिखायी दी। मेरे दर्शन से हुई प्रसन्नता से फैली हुई ऊपर उठी हुई पुतलियों वाली तथा उस प्रदेश को श्वेत कमलों से युक्त सा दिखलाती हुई उसकी दो आँखों से निकली हुई) फैलती हुई किरणों के सतत प्रवाह से दसों दिशायें ऐसे रुक गयीं (भर गयीं) कि मानो, स्वय अपनी इच्छा से अच्छोद सरोवर को छोड़कर आकाश की ओर उड़ कर गये पूर्ण तथा खिले नील कमलके समूहों से भर गयीं हों। और उसके उस अत्यन्त स्पष्ट परिवर्तन के द्वारा दुगने हुए (प्रेम मोह) वाली मैंने तत्काल ही कोई वर्णन न की जा सकने वाली (चेतना की) अद्भुत अवस्था का अनुभव किया।

और मैंने मन में यह सोचा कि "अनेक, मैथुन (सुख) से सम्बद्ध नृत्य क्रीडाओं (सुन्दर क्रीडाओं) को सिखाने वाला (प्रसिद्ध) गुरु कामदेव ही सुन्दर नेत्र विकारों (विलासों) को सिखा देता है, नहीं तो विविध प्रकार की भावनाओं (रसों)

ललितेष्वीदृशेषु व्यतिकरेष्वप्रविष्टबुद्धेरस्य जनस्य कुत इयमनभ्यस्ताकृती रतिरस-निःस्यन्दमिव क्षरन्ती, अमृतमिव वर्षन्ती, मदमुकुलितेव, खेदालसेव, निद्राजडेव, आनन्दभरमन्थरतरत्तारसचारिणी, अनिभृतभ्रूलतोल्लासिनी दृष्टिः। कुतश्चेदमतिनैपुण्यम्, यच्चक्षुषैवानक्षरमेवमन्तर्गतो हृदयाभिलाषः कथ्यते।' प्राप्तप्रसरा चोपसृत्य तं द्वितीयमस्य सहचरं मुनिबालकं प्रणामपूर्वकमपृच्छम्—'भगवान्किमभिधानः। कस्य वायं तपोधनस्य युवा। किंनाम्नश्च तरोरियमवतसीकृता कुसुममञ्जरी।

तस्यैवभूतस्यास्य मुनिजनस्येय दृष्टि कुत. स्यात्। अथ च दृष्टिं विशिनष्टि—अनभ्यस्तेति। अनभ्यस्तापरिचिताकृतिराकारो यया सा तथा। रतिरस शृङ्काररसस्तस्य नि स्यन्द सार क्षरन्तीव स्रवन्तीव। अमृत पीयूष वर्षन्तीव वृष्टि कुर्वन्तीव। मदो मुन्मोहसभेदस्तेन मुकुलितेव कुड्मलितेव। स्वेद. श्रमस्तेनालसेव मन्थरेव। निद्रा प्रमीला तया जडेव स्तम्भितेव। आनन्देति। आनन्दस्य प्रमोदस्य यो भरस्तेन मन्थरालसा, एवंविधा तरन्ती या तारा कनीनिका यस्मिन्नेतादृश सचारो विद्यते यस्या. सा तथा। अनीति। अनिभृता चञ्चला या भ्रूलता तस्या उल्लासो विद्यते यस्यां सा तथा। कुत इति। इदमतिनैपुण्यम तिशयेन दक्षत्व कुत स्यात्। तदेव व्यनक्ति—यदिति। यद्यस्मात्कारणादन्तर्गतो हृदयाभिलाषश्चित्ताभिप्रायोऽनक्षर यथा स्यात्तथा चक्षुषैव नेत्रेणैव कथ्यत उच्यते। प्राप्त इति। तादृशविचारणया कुमारस्य सविकार हृदयमिति निश्चित्य प्राप्त प्रसरोऽवकाशो यया सैवविधेवोपसृत्य समीप समागत्यास्य मुनिकुमारस्य त द्वितीय सहचर मुनिबालकं प्रणामपूर्वकमपृच्छमवोचम्। किं तदित्याह—भगवानिति। किमभिधानो भगवान्। कस्य तपोधनस्याय युवा। इयं किनाम्न किमभिधानस्य तरोर्वृक्षस्य कुसुममञ्जर्यवतंसीकृतोत्तसीकृता। अस्या मञ्जर्या समुत्सर्पन्प्रसरन्नसाधारण सौरभ यस्मिन्नेवविधोऽनाघ्रातपूर्वो नासिकयागृहीतपूर्वोऽयं गन्धो मे मम मनसि चित्ते महत्कौतुकं महदाश्चर्यं जनयति निष्पादयति।

के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही आकर्षक बनी हुई घटनाओं (व्यतिकरेषु) मे न प्रविष्ट हुई बुद्धि वाले (ऐसी घटनाओं से अभी तक अपरिचित) व्यक्ति की यह (अब तक अनभ्यस्त) दृष्टि कहा से आती ? ऐसी दृष्टि मानो प्रेमभावना (रतिरस) के फौव्वारे छोड़ रही है, अथवा अमृत बरसा रही है, जो मानो नशे से ही बन्द है, जो मानो थकावट से ही सुस्त हो गयी है, जो मानो नींद से निश्चेष्ट हो गयी है, जो मानो आनन्द के भार से (आनन्द की अतिशयता के कारण) शिथिल हुई (सामान्यत.) चञ्चल पुतलियों सहित विचरण करती है और जो सदा चलती भौहों से शोभायमान प्रतीत होती है। और कहां से (इसमें) यह इतनी अधिक चातुरी आती कि केवल दृष्टिक्षेप द्वारा ही वह अक्षरों के बिना ही (कुछ बोले बिना ही) अपने हृदय की लालसा को कह रहा है।" फिर एक (उचित) अवसर (प्रसर) को प्राप्त किये हुई मैंने आगे बढ़कर इसके उस दूसरे साथी मुनिबालक से, प्रणाम करके पूछा—'भगवन्! यह तपस्वी युवा किस नाम का है, किसका पुत्र है ? और (कान की) आभूषण बनायी गई यह फूलों की माला किस नाम के वृक्ष की है ? क्योंकि

जनयति हि मे मनसि महत्कौतुकमस्याः समुत्सर्पन्नसाधारणसौरभोऽयमनाघ्रातपूर्वो गन्धः' इति। स तु मामीषद्विहस्याब्रवीत्—'बाले, किमनेन पृष्टेन प्रयोजनम्। अथ कौतुकमावेदयामि। श्रूयताम्—

अस्ति त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तिरत्युदारतया सुरासुरसिद्धवृन्दवन्दितचरणयुगलो महामुनिर्दिव्यलोकनिवासी श्वेतकेतुर्नाम। तस्य च भगवतः सुरलोकसुन्दरीहृदयानन्दकरम्, अशेषत्रिभुवनसुन्दरम्, अतिशयितनलकूबर रूपमासीत्। स कदाचिद्देवतार्चनकमलान्युद्धर्तुमैरावतमदजलबिन्दुबद्धचन्द्रकशतखचितजला हरहसितसितस्रोतस

स त्विति। स मा प्रतीषद्विहस्य किंचित्स्मित कृत्वाब्रवीदवोचत्। बाले इति। हे बाले हे कुमारिके, अनेन पृष्टेन किं प्रयोजन कोऽर्थ। अथेति। चेदर्थे। कौतुकमाश्चर्यं तदावेदयामि कथयामि। श्रूयतामाकर्ण्यताम्।

अस्तीति। नामेति कोमलामन्त्रणे। दिव्यलोकनिवासी स्वर्गलोकवसनशील श्वेतकेतुर्महामुनिरस्ति। त्रिभुवनेति। त्रिभुवने त्रिविष्टपे प्रख्याता विख्याता कीर्तिर्यशो यस्य स तथा। अत्युदारेति। अत्युदारतयात्युत्कृष्टतया। सुरेति। सुरा देवा, असुरा दैत्या, सिद्धा योगमन्त्रादिसामर्थ्ययुक्तास्तेषा वृन्द समूहस्तेन वन्दितं नमस्कृत चरणयुगल पादयुग्म यस्य स तथा। तस्येति। तस्य श्वेतकेतोर्भगवत। सुरेति। सुरलोकस्य या सुन्दर्यः स्त्रियस्तासा हृदयानि चित्तानि तेषामानन्दकर प्रमोदोत्पादकम्। अशेषेति। अशेष यत्त्रिभुवन त्रिविष्टपं तस्मात्सुन्दर हृद्यम्। अतीति। नलकूलबरात्कुबेरपुत्रादतिशयितमतिशयितनलकूबरम्। 'सुतोऽस्य नलकूबर' इति कोश। 'क्वचिदमाद्यन्तस्य परत्वम्' इति नलकूबरस्य परप्रयोग। अतिशयितोऽतिक्रान्तो नलकूबरो येनेति बहुव्रीहिर्वा। नलकूबररूपापेक्षयात्युत्कृष्टरूपमित्यर्थः। एवविधं रूपं सौन्दर्यमासीदभूत्। स इति। कदाचित्कस्मिंश्चित्समये स श्वेतकेतुर्देवतानामर्चनं पूजन तदर्थं कमलानि नलिनान्युद्धर्तुमुत्पाटयितु मन्दाकिनी स्वर्धुनीमवततारावतीर्णवान्। अथ मन्दाकिनी विशेषयन्नाह—ऐरावतेति। ऐरावतो हस्ति-

इसकी यह फैलती हुई सुगन्ध, जो (मुझसे) पहले कभी नहीं सूँघी गयी है, मेरे मनमें, निश्चय ही, बड़ी उत्सुकता उत्पन्न कर रही है।" और उसने थोड़ा हसकर मुझसे कहा—"(तुम्हारे द्वारा) पूछी गयी इस बात से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? (अर्थात् कोई नहीं)। फिर भी यदि उत्सुकता है तो मैं बताता हूँ। सुनिये—

स्वर्गीय प्रदेशों के निवासी, तीनों लोकों में ख्यात यशवाले, अपने हृदय की विशालता के कारण देवताओं तथा राक्षसों के समूह द्वारा पूजित पाँवों वाले, एक महामुनि श्वेतकेतु हैं और उन भगवान् का (शारीरिक) सौन्दर्य, देवताओं तथा राक्षसों (दोनों ही) के लोकों की सुन्दरी स्त्रियों के हृदयों को आनन्द देने वाला, सम्पूर्ण तीनों भुवनों (की सुन्दरता) से अधिक सुन्दर तथा (कुबेर के पुत्र) नल्कूबर (के रूप) से भी बढा हुआ था। एक बार (यह हुआ कि) वे देवताओं की पूजा करने के लिये (कुछ) कमलों को तोड़ने के लिये ऐरावत के मदजल की बूँदों से बने हुए सैकड़ों चन्द्रकों[1] (चकत्तों) से व्याप्त जलवाली, शिवजी

१. मयूर की पूँछ पर बने विविध रंगों के चकत्तों के सदृश चकत्ते। जल पर चिकनाई पड़ जाने पर विविध रगो के चमकीले गोल गोल चकत्ते दिखाई देने लगते हैं।

मन्दाकिनीमवततार। अवतरन्तं च तं तदा कमलवनेषु संततसंनिहितविकचसहस्र-पत्रपुण्डरीकोपविष्टा देवी लक्ष्मीर्ददर्श। तस्यास्तु तमवलोकयन्त्याः प्रेममदमुकुलितेनानन्दबाष्पभरतरङ्गतरलतारेण लोचनयुगलेन रूपमास्वादयन्त्या जृम्भिकारम्भमन्थर-मुखविन्यस्तहस्तपल्लवाया मन्मथविकृतं मन आसीत्। आलोकनमात्रेण च समासादितसुरतसमागमसुखायास्तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके कृतार्थतासीत्। तस्माच्च कुमारः समुदपादि। ततस्तमुत्सङ्गे आदाय सा 'भगवन्, गृहाण तवायमात्मजः'

मल्लस्तस्य मदजल दानवारि तस्य बिन्दव पृषतास्तैर्बद्ध यच्चन्द्रकशत मेचकशत तेन खचित व्याप्त जल यस्या सा तथा ताम्। हरेति। हर शभुस्तस्य हसित स्मित तद्वत्सित शुभ्र स्रोत. प्रवाहो यस्या सा ताम्। अवेति। तदा तस्मिन्कालेऽवतरन्तमम्बरादागच्छन्त श्वेत केतु मुनि कमलवनेषु नलिनखण्डेषु सतत निरन्तर सनिहिता समीपवर्तिनी विकचानि विकस्वराणि सहस्रपत्राणि यस्मिन्नेवभूत पुण्डरीक सिताम्भोज तत्रोपविष्टासीना लक्ष्मीर्देवी ददर्श दृष्टवती। तस्या इति। तस्या लक्ष्म्यास्त मुनिमवलोकयन्त्या ईक्षण कुर्वन्त्या । तु पुनरर्थक । मन्मथेन कदर्पेण विकृत सविकार मनश्चित्तमासीदभूत्। अथ लक्ष्मीं विशेषयन्नाह—प्रेमेति। प्रेममद प्रीतिमदस्तेन मुकुलितेन कुड्मलितेन। आनन्देति। आनन्देन प्रमोदेन यो बाष्पभरो हर्षनेत्राम्बुसमूह स एव तरङ्ग कल्लोलस्तेन तरला कम्पना तारा कनीनिका यस्मिन्नेवविधेन लोचनयुगलेन नेत्रयुग्मेन रूप सौन्दर्यमास्वादयन्त्या पिबन्त्या । जृम्भकेति। जृम्भिका जृम्भण तस्या आरम्भ आरम्भण तेन यन्मन्थर मुख तस्मिन्विन्यस्त स्थापितो हस्तपल्लवो यया सा तस्या । आलोकनेति। आलोकनमात्रेण केवल निरीक्षणेनैव समासादित प्राप्त सुरतसमागमसुख मैथुनसगमसात यया सा तस्या । तस्मिन्नेवासनीकृते विष्टरता नीते पुण्डरीके कृतार्थता सफलतासीत्। तस्मात्पुण्डरीकात्कुमार समुदपाद्युत्पन्न । तत इति। ततः कुमारोत्पत्तेरनन्तर कुमारकमुत्सङ्गे क्रोड आदाय गृहीत्वा सा लक्ष्मी हे भगवन् हे स्वामिन्, गृहाणाय तवात्मजस्त्वदङ्गज इत्युक्त्वा प्रतिपाद्य तस्मै श्वेतकेतवे त

की हँसी के समान श्वेत जलधारा वाली स्वर्ग गगा में उतरे और उतरते हुए उनको, उस समय कमलसमूहों में निरन्तर समीप (विद्यमान) रहने वाली, पूर्णतया खिले हुए तथा सहस्रों पखुड़ियों वाले श्वेत कमलमे बैठी हुई लक्ष्मी ने देख लिया। किन्तु उसको देखती हुई का, प्रेम (से उत्पन्न) आत्मानन्द के कारण आधी बन्द हुई, आनन्द के आँसुओं की बाढ़ से उठी लहरोंसी चचल पुतलियों वाली दोनों आँखों से उसके सौन्दर्य का पान करती हुई का, जम्हाइयों के शुरू हो जाने से अलसाये मुह पर (अपने) पत्ते-सरीखे (अर्थात् कोमल) हाथ को रखे हुई का मन काम से विकृत हो गया। और केवल देखने से ही, मैथुन कालीन सयोग सुख को प्राप्त किये हुई की सफलता[1] उसी आसन बनाये हुए श्वेत कमल पर ही हो गयी। और उस पुण्डरीक से एक कुमार उत्पन्न हो गया। इसके पश्चात् उसको गोदी में

---

1 कृतार्थता = इच्छाप्राप्तिरूपा सफलता।

इत्युक्त्वा तस्मै श्वेतकेतवे ददौ। असावपि बालजनोचिताः सर्वाः क्रियाः कृत्वा तस्य पुण्डरीकसंभवतया तदेव पुण्डरीक इति नाम चक्रे। प्रतिपादितव्रतं च तमागृहीतसकलविद्याकलापमकार्षीत्। सोऽयम्। इयं च सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरसागरादुद्गतः पारिजातनामा पादपस्तस्य मञ्जरी। यथा चैषा व्रतविरुद्धमस्य श्रवणसंसर्गमासादितवती तदपि कथयामि। अद्य चतुर्दशीति भगवन्तमम्बिकापतिं कैलासगतमुपासितुममरलोकान्मया सह नन्दनवनसमीपेनायमनुसरन्निर्गत्य साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिः

कुमारकं ददौ दत्तवती। असावपि श्वेतकेतुरपि बालजनोचिता शिशुजनयोग्याः सर्वा क्रिया प्रसवनादिका कृत्वा विधाय। तस्येति। तस्य कुमारस्य पुण्डरीकं सिताम्भोजं तस्मात्संभव उत्पत्तिस्तस्य भावस्तत्ता तया तस्माद्धेतोरेव निश्चयेन पुण्डरीक इति नाम चक्रेऽभिधानं विदधे। कियत्कालानन्तरं स एवं श्वेतकेतु प्रतिपादितव्रतं दत्तदीक्षमागृहीतसकलविद्याकलापं च तं कुमारमकार्षीत्कृतवान्। स कुमारोऽयं पुरोवर्ती दृश्यमानः। इयं चेति। सुरासुरैर्मथ्यमानद्विलोड्यमानात्क्षीरसागराद् दुग्धाम्बुधेः पारिजातनामा पादपो वृक्ष उद्गतो निर्गतस्तस्यैव कर्णावतंसीकृता मञ्जरी। यथेति। येन प्रकारेणैषा मञ्जरी व्रतविरुद्धं नियमविरोध्यस्य श्रवणसंसर्गं कर्णसंबन्धमासादितवती प्राप्तवती तदपि वृत्तान्तं कथयामि निवेदयामि। अद्येति। चतुर्दशी शिवतिथिरिति हेतोरमरलोकात्स्वर्गलोकात्कैलासगतं रजताद्रिप्राप्तं भगवन्तं माहात्म्यवन्तमम्बिकापतिं गौरीनाथमुपासितुं सेवितुं मया सह मत्सार्धम्। प्राप्तौ ल्योत्यायां 'क्रोशेन क्रोशं वानुवाकोऽधीत' इतिवत्। नन्दनवनस्य समीपं समीपेन वानुसरन्गच्छन्निर्गत्य स्वस्थानाद्बहिरागत्य साक्षाद्वनदेवतयारण्याधिष्ठात्र्येमां मञ्जरीमादाय गृहीत्वा प्रणम्य नमस्कृत्याभिहित उक्तः। अथ वनदेवतां विशिनष्टि—मध्विति। मधुमासो वसन्तमासस्तस्य लक्ष्मीः श्रीस्तया दत्तो ललितो मनोहरो हस्तस्तस्यावलम्बो यस्याः सा तया। बकुलेति। बकुल

लेकर उसने 'भगवन्! लीजिये, यह आपका पुत्र है'—यह कहकर उस श्वेतकेतु को दे दिया। उसने भी बालकों के लिये उचित सारे कृत्य (उसके लिये) करके पुण्डरीकसे जन्म होने के कारण उसका नाम वही—पुण्डरीक—रख दिया। और (ब्रह्मचर्य)—व्रत धारण किये हुए उसको सम्पूर्ण विद्याओं तथा कलाओं से अवगत करा दिया—(सारी विद्याएँ तथा कलाएँ सिखा दीं) वही यह है। और देव तथा दानवों से बिलोड़े जा रहे समुद्र से निकला पारिजात नाम का एक वृक्ष है, यह (कान में आभूषण की भाति पहनी हुई) उस वृक्ष के बौर की माला है। और यह जिस प्रकार व्रत के विरुद्ध इसके कान के सम्पर्क को प्राप्त हुई वह भी कहता हूँ। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है—इस लिये कैलास पर्वत पर स्थित (कैलाशपर्वत निवासी) भगवान् शिव की पूजा करने के लिये देवलोक से मेरे साथ नन्दन वन के छोर पर चलते हुए इसको (वन से) निकलकर (उस समय) साक्षात्—शरीरधारिणी—वसन्त शोभा द्वारा हाथ का सहारा दी गयी, बकुल पुष्पों की माला की मेखला बनाये हुई, पुष्पों और कोंपलों को गूंथकर

कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादितविग्रहया नवचूताङ्कुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया वनदेवतया पारिजातकुसुममञ्जरीमिमामादाय प्रणम्याभिहितः—'भगवन्, सकलत्रिभुवनदर्शनाभिरामायास्तवाकृतेरस्याः सदृशोऽयमलंकारः प्रसीद क्रियताम्। इयमवतसविलासदुर्ललितारोप्यता श्रवणशिखरम्। व्रजतु सफलता जन्म पारिजातस्य' इत्येवमभिदधाना चायमात्मरूपस्तुतिवादत्रपावनमितलोचनस्तामनादृत्यैव गन्तुं प्रवृत्तः। मया तु तामनुयान्तीमालोक्य 'को दोषः सखे, क्रियतामस्याः प्रणयपरिग्रहः' इत्यभिधाय बलादियमनिच्छतोऽप्यस्य कर्णपूरीकृता। तदेतत्कात्स्न्येंन योऽयम्,

केसरस्तस्य मालिका स्रक्सैव मेखला रशना यस्या सा तया। कुसुमेति। कुसुमैश्च पल्लवैश्च ग्रथिताभिर्गुम्फिताभिराजानु आ नळकील यावल्लम्बिनीभि कण्ठमालिकाभिर्निगरणस्रग्भिर्निरन्तरमाच्छादित आवृतो विग्रहो यस्या सा तया। नवेति। नव प्रत्यग्रो यश्चूताङ्कुर आम्राङ्कुरस्तस्य कर्णपूरो यस्या सा तया। पुष्पेति। पुष्पाणां कुसुमानां य आसवो माधवकस्तस्य पान तेन मत्तया क्षीबया। किमभिहित इत्याशयेनाह—भगवन्निति। हे भगवन् स्वामिन्, प्रसीद प्रसन्नो भव। सकलेति। सकल समग्रं यत् त्रिभुवन तस्य दर्शनेऽवलोकनेऽभिरामाया बन्धुराया अस्यास्तवाकृतेराकारस्य सदृशोऽनुरूपोऽलंकार क्रियता विधीयताम्। इयमिति। इयमवतसविलास एव दुरधिगम दुर्ललित क्रीडित यस्या. सैवंविधा मञ्जरी श्रवणशिखर कर्णप्रान्तमारोप्यता स्थाप्यताम्। पारिजातस्य जन्मोत्पत्ति सफलतां सार्थकता व्रजतु गच्छतु। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेणाभिदधाना कथयन्तीम्। अयमिति। पुण्डरीक। आत्मेति। आत्मनो यद्रूप सौन्दर्यं तस्य स्तुतिवाद प्रशसन तस्माद्या त्रपा लज्जा तयावनमिते नम्रीकृते लोचने नेत्रे येनैवंभूतस्तामनादृत्यैवानादर कृत्वैव गन्तु प्रवृत्तो गमनायोद्यतोऽभूत्। मयेति। तां वनदेवतामनुयान्तीमनुव्रजन्तीमालोक्य निरीक्ष्य हे सखे हे मित्र, अस्या मञ्जर्या को दोष। प्रणयेन स्नेहेन परिग्रह स्वीकार क्रियता विधीयतामिति मयाभिधायोक्त्वानिच्छतोऽप्यवाञ्छतोऽपीयम् अस्य कर्णपूरीकृता श्रवणभरणीकृता। तदिति। तस्माद्धेतोस्तदेतत्पृच्छाविषयीकृतं कात्स्न्येंन साकल्येन मया सर्वमावेदित कथितम्। तदेतत्किमित्यभिप्रायेणाह—

बनायी हुए एव घुटनों तक लटक रहे कण्ठहारों द्वारा सर्वथा ढके शरीर वाली, नयी आम की मजरी को कर्णभूषण बनाये हुई, फूलों की मदिरा के पान से मस्त हुई वनकी अधिष्ठात्री देवी ने इस पारिजात पुष्पों के गुच्छे को लेकर प्रणाम करके कहा—"भगवान्! समूचे त्रिभुवन में देखने में आकर्षक इस तुम्हारी आकृति के सर्वथा अनुरूप, इसको आप आभूषण बना लें (आभूषण रूप में पहन लें)। कर्णाभूषण की शोभा (की प्राप्ति) के लिये हठी बनी हुई, (कर्णाभूषण बनने के लिये 'सिर चढ़ी') इस माला को आप अपने कर्ण प्रदेश पर रख लीजिये। पारिजात का जन्म (आज) सफल हो।" और यह मुनिकुमार अपने सौन्दर्य की प्रशसा से (को सुन कर) उत्पन्न लज्जा के कारण नीचे की हुई आंखों वाला, इस प्रकार कहती हुई उसकी उपेक्षा करके ही चलने लगा। किन्तु मैंने उसको पीछे पीछे आती हुई को देखकर कहा—'मित्र! क्या हानि है? आप इसकी इस प्रार्थना को स्वीकार करलें' यह कहकर मैंने इस माला को न चाहते हुए भी इसका कर्णभूषण बना दिया। इस प्रकार मैंने 'यह कौन

यस्य चायम्, या चेयम्, यथा चास्य श्रवणशिखरं समारूढा तत्सर्वमावेदितम्। इत्युक्तवति तस्मिन्स तपोधनयुवा किंचिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्—'अयि कुतूहलिनि, किमनेन प्रश्नायासेन। यदि रुचितसुरभिपरिमला गृह्यतामियम्' इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय कलैरलिकुलक्कणितैः प्रारब्धरतिसमागमप्रार्थनामिव मदीये श्रवणपुटे तामकरोत्। मम तु तत्करतलस्पर्शलोभेन तत्क्षणमपरमिव पारिजातकुसुममवतंसस्थाने पुलकमासीत्। स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृताङ्गुलिजालकात् करतलादक्षमाला लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्। अथाह तामसप्राप्तामेव

योऽयमित्यादि। योऽयं कुमार, येयं मञ्जरी, यथा येन प्रकारेणास्य श्रवणशिखरं कर्णप्रान्तं समारूढा प्राप्ता। इतीति। तस्मिन्मुनावित्युक्तवति कथितवति सति। स इति। स पुण्डरीकस्तपोधनयुवा किंचीदीषदुपदर्शितं स्मितमदृष्टरदं हास्यं येनैवभूतो मामवादीत्प्रत्यवोचत्। अयीति सम्बोधने। अयि कुतूहलिनि, अनेन प्रश्नायासेन पृच्छापरिश्रमेण किम्। यदीति। यदि रुचितो रुचिविषयीभूतः सुरभिपरिमलो यस्या एवंविधेयं तदा गृह्यतां ग्रहणविषयीक्रियताम्। इति पूर्वोक्तमुक्त्वा समुपसृत्य समीपमागत्यात्मीयात्स्वकीयाच्छ्रवणात्कर्णादपनीय दूरीकृत्य मदीये श्रवणपुटे तां मञ्जरीमकरोदघटयत्। कलैरिति। कलैर्मनोज्ञैरलिकुलक्कणितैर्मधुकरकुलशब्दितैः। प्रारब्धेति। प्रारब्धा प्रस्तुता रतिसमागमस्य सम्भोगसमागमस्य प्रार्थना याचना ययैवंभूतामिव। एतेन स्वानुरक्ति प्रदर्शिता। मम त्विति। मम तु पुनरर्थकं। तस्य यत्करतलं तत्स्पर्शलोभेन तत्तृष्णया तत्क्षणमवतंसस्थानं उक्तं पुलकं अपरं पारिजातकुसुममिवासीत्। एतेन द्वितीयकर्णेऽपि तच्छोभा सूचिता। स चेति। स पुण्डरीको मत्कपोलस्पर्शसुखेन गल्लास्परप्रदेशाश्लेषसातेन तरलीकृतं कम्पनीकृतमङ्गुलिजालकं यस्यैवंभूतात्करतलाद्धस्ततलाल्लज्जया त्रपया सह गलितां च्युतामप्यक्षमालां जपमालां नाज्ञासीन्न ज्ञातवान्। तदनुरक्तं ज्ञात्वा तस्य पुण्डरीकस्य यो भुजपाशो बाहुपाशस्तेन संदानित. सयतो य. कण्ठग्रह कण्ठालिङ्गनं तज्जनितं यत्सुखं तत्सदृशमिव। अत्रेवशब्दः सादृश्यार्थः। तदुक्तमलंकार-

है? यह किसका (पुत्र) है? यह माला क्या है? और यह कैसे इसके कर्णप्रदेश पर आ पहुँची है' यह सब कुछ पूरा पूरा वर्णन कर दिया है।"—उसके यह कह चुकने पर उस तपस्वी युवक ने कुछ कुछ मुस्कान दिखाकर मुझ से कहा—"अरी! उत्सुकमना कुमारिके! प्रश्न पूछने का कष्ट करने से क्या लाभ है! यदि इसकी भीनी सुगन्ध तुम्हें अच्छी लगती है तो इसको ले लो'—यह कहकर मेरे समीप सरककर अपने कान से (उतार कर उसने वह माला, जिसने अपने ऊपर मडराते भौंरों के मनोहारी शब्दों द्वारा मानो प्रणयसयोग की याचना शुरू कर रखी थी) मेरे कान पर रख दी। किन्तु मेरे कर्णाभूषण के स्थान पर उसके हाथ का स्पर्श प्राप्त करने के लोभ के कारण उसी समय रोमाच हो आया—वह मानो दूसरा पारिजात फूल ही था। और वह मेरे गाल को छू कर प्राप्त हुए सुख के कारण काप गयी सारी अगुलियों वाले हाथ से लज्जा के साथ साथ खिसक कर गिरी हुई अपनी अक्षमाला को नहीं जान पाया। तब मैंने उस अक्षमाला को, पृथ्वी तक न पहुँचती हुई ही को लेकर, अपने

भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलीलं तद्भुजपाशसदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शितापूर्वहारलतालीला कण्ठाभरणतामनयम् ।

इत्थंभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृदारिके, स्नाता देवी । प्रत्यासीदति गृहगमनकालः । तत्क्रियता मज्जनविधिः' इति । अहं तु तेन तस्या वचनेन नवग्रहा करिणीव प्रथमाङ्कुशपातेनानिच्छया कथंकथमपि समाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपङ्कमग्नामिव कपोलपुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकीलितामिव सौभाग्यगुणस्यूतामिव अतिकृच्छ्रेण दृष्टि समाकृष्य स्नातुमुदचलम् । उच्चलि-

शेखरे—'भवन्तीवादिशब्दाश्च सादृश्यप्रतिपत्तये' । अनुभवन्त्यनुभवविषयीकुर्वन्ती कण्ठाभरणता निगरणभूषणतामनयमानीतवती । कीदृशीम् । दर्शिता प्रकटीकृतापूर्वहारलताया लीला यस्या सा ताम् ।

इत्थमिति । इत्थभूत एतादृशे व्यतिकरे परम्परानुरागातिशये छत्रग्राहिण्यातपत्रधारिणी मामवोचदब्रवीत् । किमुवाचेत्याह—भर्त्रिति । हे भर्तृदारिके हे राजपुत्रि, स्नाता कृतस्नाना देवी त्वन्माता वर्तते ।

अथ च गृहगमनकाल सद्मव्रजनसमय प्रत्यासीदति विध्नितो भवति । अतो मज्जनविधि स्नानविधि क्रियता विधीयताम् । अहं त्विति । अह तस्याश्छत्रधारिण्यास्तेन वचनेन प्रथमाङ्कुशपातेनाद्यसृणिप्रहारेण नव प्रत्यग्रो यस्या एवविधा करिणी हस्तिनी तद्वदिव कथंकथमपि महता कष्टेनानिच्छयानीहया समाकृष्यमाणा दृष्टि चक्षुरतिकृच्छ्रेणातिकष्टेन समाकृष्य स्नातुमुदचलमुदव्रजम् । कीदृशीमिव । लावण्यामृतमेव पङ्क कर्दमस्तत्र मग्नामिव । कपोलेति । कपोलयो पुलकलक्षणा ये कण्टकास्तेषा जालक तत्र लग्नामिव । मदनेनेति । मदनस्य कदर्पस्य शरा बाणास्तेषा शलाका ईषिकास्ताभि कीलितामिव यन्त्रितामिव । सौभाग्येति । सुभगस्य भाव सौभाग्य तल्लक्षणो यो गुणस्तेन स्यूतामिवान्योन्यश्लिष्टामिव । उच्चलितायामिति । मध्यु

कण्ठ का अलङ्कार बना लिया, उस समय उस अक्षमाला ने पहले कभी न दिखायी हुई, हार की शोभा को दिखाया और मैंने उस (पुडरीक) के बाहुपाश द्वारा जकड़े हुए कण्ठ के आलिंगन सुख सा अनुभव किया ।

जब इस प्रकार का घटनाजाल हो गया तो मेरी छत्रग्राहिणी मुझ से बोली—'राजपुत्री ! रानी स्नान कर चुकी है ! घर जाने का समय निकट आ रहा है, इसलिये आप स्नानविधि पूरी कर लें' किन्तु मैं उसके (इस) कथन से जैसे-तैसे विना इच्छा के ही, नयी पकड़ी गयी हथिनी पहले अकुश प्रहार से बिना चाहे हुए ही जैसे खिंचती चली जाती है वैसे ही खिंचती हुई, बड़ी कठिनाई से उसके मुख पर से अपनी आँखों (दृष्टि) को हटाकर स्नान के लिये चली । मेरी आँखें उस समय ऐसी थीं कि मानो (उसके) सौन्दर्य रूपी कीचड़ मे धँस गयी थीं, मानो (उसके) गाल पर के रोमाचरूपी काँटों में फँस गयी थीं, मानो कामदेव के बाणरूपी शलाकाओं द्वारा बिंध गयी थीं, और मानो उसकी सुन्दरता रूपी रस्सी द्वारा (उसके शरीर से) सिल गयी थीं । (इसीलिये मानो

तायां च मयि द्वितीयो मुनिदारकस्तथाविधस्तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचित्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत्—'सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्णः क एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मान न रुणत्सि। कुतस्तवापूर्वोऽयमाद्येन्द्रियोपप्लवः, येनास्येव कृतः, क ते तद्धैर्यम्, कासाविन्द्रियजयः, क तद्वशित्वम्, चेतसः क सा प्रशान्तिः, क तत्कुलक्रमागत ब्रह्मचर्यम्, क सा सर्वविषयनिरुत्सुकता, क ते गुरूपदेशाः, क तानि श्रुतानि, क ता वैराग्यबुद्धयः, क तदुपभोगविद्वेषित्वम्, क सा सुखपराङ्मुखता, कासौ तपस्यभिनिवेशः, क सा

चालितायां प्रचलितायां सत्याम्। चकार समुच्चयार्थं। द्वितीय कपिञ्जलो मुनिदारकस्तथाविधस्तादृशस्तस्य पुण्डरीकस्य धैर्यस्खलित सत्वस्खलनामालोक्य वीक्ष्य किंचिदीषत्प्रकटित आविष्कृत. प्रणयकोप स्नेहकोपो येन तत्सदृश इवावादीदवोचत्। रोषोक्तावतीव वैरस्य स्यादिति भाव। किं तदित्याह—सखे इति। हे सखे पुण्डरीक, भवतस्तव नैतदनुरूपं योग्यम्। क्षुद्रजना नीचलोकास्तै क्षुण्ण आचीर्णं क एष मार्गं पन्था। भवत इत्यत्रापि सबध्यते। हि यस्मात्कारणात्साधवो मुनयो धैर्यमेव धन द्रव्य येषामेवविधा भवन्ति। य कश्चनानिर्दिष्टाभिधान प्राकृत पामरस्तद्वदिव विक्लवीभवन्त विह्वलीभवन्तमात्मानं क्षेत्रज्ञ किं न रुणत्सि किं न निरोध करोषि। अपूर्वोऽननुभूत आद्य प्रथम इन्द्रियोपप्लव करणोपद्रवोऽय प्रत्यक्षोपलभ्यमानस्तव भवत. कुत। किंनिमित्तक इत्यर्थ। येनेति। येनेन्द्रियोपप्लवेनैवं कृत. शिथिलतां नीतोऽसि। त्वमिति शेष। तदेव दर्शयन्नाह—क्वेत्यादि। ते तव तद्धैर्यं क। तथेन्द्रियाणा करणानामसौ जयो निरोध क। तथा तदनिर्वचनीयस्वरूपं वशित्व स्वतन्त्रत्व क। तथा चेतसश्चित्तस्य सा प्रशान्ति क। तथा तत्कुलक्रमागत कुलपरिपाट्यागत ब्रह्मचर्यं कामविरति क। तथा सा सर्वविषयेषु समग्रेन्द्रियार्थेषु निरुत्सुकता निरुत्साहता क। तथा गुरूणां हिताहितोपदेशदेष्टृणामुपदेशा हितशिक्षा क। तथा तानि पूर्वोक्तानि श्रुतानि ज्ञानानि क। तथा ता सर्वाधिका वैराग्य विरक्तता तस्या बुद्धय' प्रतिभा क। तथा तासामङ्गनानां स्त्रीणामुपभोग

बड़ी कठिनता से उसके शरीर पर से हटायी जा रही थीं)। और मेरे चल पड़ने पर दूसरा मुनिकुमार उसके वैसे धीरज छूटने को देखकर, कुछ प्रणय-कोप प्रकट किये हुआ सा बोला—'मित्र, पुण्डरीक! यह बात तुम्हारे लिये उचित नहीं है। यह नीच (अथवा सामान्य) जनों द्वारा चला गया मार्ग है। तपस्वी (साधव.) तो वास्तव में धीरजरूपी धन वाले होते हैं। जिस किसी सामान्य जन की भाँति (आवेग के द्वारा) क्षुब्ध होते हुए अपने आपको तुम क्यों नहीं रोकते हो? आज यह अभूतपूर्व इन्द्रियों की क्षुब्धता तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई है कि जिसने तुम्हारी यह दशा कर दी है? तुम्हारी वह दृढ़ता कहाँ है? इन्द्रियों का वह सयम कहाँ है? मनका वह नियन्त्रण कहाँ है? चित्त की वह शांति कहाँ है? (अपनी) वंशपरम्परा से प्राप्त हुआ वह ब्रह्मचर्य कहाँ है? विषयमात्र के प्रति वह उपेक्षावृत्ति कहाँ है? वे गुरुओं द्वारा दिये गये उपदेश कहाँ हैं? वे ज्ञान कहाँ हैं? वे वैराग्यविचार कहाँ है? विषय भोग के प्रति वह घृणा कहाँ है? विषय सुख के प्रति वह उपेक्षावृत्ति कहाँ है?

भोगानामुपर्यरुचिः, क्व तद्यौवनानुशासनम्। सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेशविवेकः, निःप्रयोजना प्रबुद्धता, निःकारणं ज्ञानम्, यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषीक्रियन्ते, प्रमादैश्चाभिभूयन्ते। कथं करतलाद्गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि। अहो विगतचेतनत्वमपहृतानामेवम्। इदमपि तावद्ध्रियमाणमनयानार्यया निवार्यतां हृदयम्' इत्येवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इव प्रत्यवादीत्—'सखे कपिञ्जल,

पुनरासेवन तस्मिन्विद्वेषित्वं वैरित्वं क्व। तथा सुखात्सौख्यात्पराङ्मुखता पराचीनता क्व। तथा तपसि व्रतविशेषेऽसावभिनिवेश आग्रह क्व। तथा भोगानां विषयाणामुपरि साऽरुचिरस्पृहा क्व। तथा तदनिर्वचनीयस्वरूप यौवनस्य तारुण्यस्यानुशासनं नियन्त्रण क्व। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेण प्रज्ञा प्रतिभा निष्फला नि प्रयोजना। निर्गुण इति। धर्मशास्त्राणा स्मृत्यादीनामभ्यासो भूयोभूयस्तदभ्यसन स एव निर्गुण। जाड्यापहारलक्षणगुणरहित इत्यर्थ। निरर्थकेति। संस्कारो ब्राह्मण्यापादनविधि स एव निरर्थक यदुद्दिश्य क्रियते तदनाप्ते। निरूपेति। गुरुपदेशाद्यो विवेक पृथगात्मता स निरर्थक इत्यर्थ। निरिति। प्रबुद्धता प्रेक्षावत्ता नि प्रयोजना निर्हेतुका। निरिति। ज्ञान श्रुतादि नि कारणं निर्निमित्तकम्। यदत्रेति। यदिति हेत्वर्थे। अत्रेति। अस्मिन्नवसरे रागाभिषङ्गैर्भवादृशा अपि त्वत्सदृशा अपि कलुषीक्रियन्ते मलिनीक्रियन्ते। प्रमादैश्चेति। प्रमादैर्विषयादिभिरभिभूयन्ते पराभूयन्ते। चकार' समुच्चयार्थे। तदेव दर्शयति—कथमिति। करतलाद्धस्ततलाद्गलितां च्युतां तथा तयापहृतां गृहीतामक्षमालामपि कथं न लक्षयसि कथं न जानासि। अहो इत्याश्चर्ये। अपहृताना कामपीडितानामेवं पूर्वोक्तप्रदर्शितरीत्या विगतचेतनत्व नष्टचेतनत्वम्। इदमिति। तावदादाविदमपि हृदय चित्तमनयानार्यया ह्रियमाणमाकृष्यमाणं निवार्यतां दूरीक्रियतामित्येवं तेन कपिञ्जलेनाभिधीयमान कथ्यमान किंचिदीषदुपजाता प्रादुर्भूता लज्जा त्रपा यस्य स इव प्रत्यवादीत्प्रत्यवोचत्। सखे

तप के लिये वह उत्कट अभिलाषा कहाँ है? भोगो (विषयभोग) के प्रति वह अरुचि (अप्रीति) कहाँ है? जवानी पर (रखा गया) (अर्थात् जवानी में उठने वाले आवेगों पर रखा गया) वह नियंत्रण कहाँ है? इस ससार में जब आप सरीखों को भी कामनाओं के स्पर्श मैला कर देते हैं और जब आप सरीखे (अपने ही) मूर्खतापूर्ण कृत्यों (प्रमादों) के अधीन हो जाते हैं तो फिर प्रतिभा तो यहाँ सब प्रकार से निष्प्रयोजन ही (सिद्ध हुई) है, व्यक्ति को धर्म-कर्त्तव्य की शिक्षा देने वाले शास्त्रों का स्वाध्याय व्यर्थ (मूर्खता को दूर करना रूप गुण से रहित) सिद्ध हुआ, सस्कार (प्रशिक्षण) व्यर्थ हुआ, वृद्धजनों के उपदेशों द्वारा उत्पादित (हिताहित) विवेक किसी लाभ का सिद्ध नहीं हुआ, प्रबुद्धता निष्फल सिद्ध हुई और ज्ञान निष्प्रयोजन सिद्ध हुआ। यह क्या बात है कि तुम यह भी नहीं देखते कि अक्षमाला हाथ से गिर पड़ी और (उसको कोई) ले गया। आश्चर्य है कि तुम्हारी चेतना कितनी नष्ट हो गयी है। अस्तु, वह (अक्षमाला) तो पहले ही चुरा ली गयी, परन्तु इस दुष्टा कन्या द्वारा चुराकर लिये जाते हुए अपने हृदय को भी तो पहले रोको।" और इस प्रकार कहे

किं मामन्यथा सभावयसि। नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मर्षयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम्' इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्नविरचितभीषणभ्रूकुटिभूषणेन चुम्बनाभिलाषस्फुरिताधरेण मुखेन्दुना मामवदत्—'चञ्चले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्त्वा पदात्पदमपि न गन्तव्यम्' इति। तच्च श्रुत्वाहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजलास्यारम्भलीलापुष्पाञ्जलिमेकावलीम् 'भगवन्, गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टेः शून्यहृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुम-

इति। हे सखे कपिञ्जल, किमिति प्रश्ने। मामन्यथा तन्मनस्कत्वेन सभावयसि सभावना विषयीकरोषि परमेतस्यां मन्मनोविकृतिर्नास्ति, तथाक्षमालाग्रहणनिमित्तकरोषोऽप्यन्यथा मुनीनां समदर्शित्व न स्यादिति भाव। अथ चेत्कपिञ्जल, तव शङ्कित मनस्तदेतस्या दुर्विनीत कन्यकाया इममक्षमालाग्रहणापराध जपमालास्वीकरणागस नाह मर्षयामि सहिष्ये। इति पूर्वोक्तमभिधायोक्त्वा मुखेन्दुना वक्त्रलक्षणचन्द्रेण मामिति प्रत्यवोचत्प्रत्यब्रवीत्, अथ मुखेन्दु विशेषयन्नाह—अलीकेति। अलीको मिथ्या न तु वास्तव। एवंविधो य कोप क्रोधस्तेन कान्तेन मनोहरेण। प्रयत्नेति। प्रयत्नेन बलात्कारेण। कोपाभावादिति भाव। विरचिता निर्मिता भीषणा भैरवा भ्रूकुटि सकोपभ्रूविकृति सैव भूषण यस्मिन् तेन। चुम्बनेति। चुम्बनं सबन्धविशेषस्तस्याभिलाष इच्छाविशेषस्तेन स्फुरित कम्पितोऽधर ओष्ठो यस्मिन्। किमुवाचेत्याह—चञ्चलेति। हे चञ्चले, अस्मात्प्रदेशादिमामक्षमालामदत्त्वासमर्प्य पदात्पदमपि न गन्तव्यम्। तच्चेति। तत्पूर्वोक्त श्रुत्वाकर्ण्यात्मकण्ठात्स्वकीयनिगरणादह मकरध्वजस्य कदर्पस्य लास्यारम्भलीला नाट्यप्रारम्भक्रीडा तस्या पुष्पाञ्जलिरेवभूतामेकावली मुक्ताप्रालम्बमक्षमालेति कृत्वा हे भगवन्, गृह्यतामुपादीयता इति अस्य मुने प्रसारिते विसारिते पाणौ ता निधाय सस्थाप्य स्वेदसलिलेन श्रमवारिणा स्नातापि कृतस्नानापि पुन पुन स्नातुमवातरमवती

जाते (सचेतन किये जाते) हुए (पुण्डरीक) ने कुछ कुछ लज्जित होकर उत्तर दिया—"मित्र कपिञ्जल! क्यों तुम मुझको गलत समझ रहे हो? (मेरे प्रति गलत आशका क्यों कर रहे हो?)। मै इस दुःशील कन्या के इस अक्षमाला लेने के अपराध को नहीं सहन करूँगा"[1]—यह कहकर उसने अपने कृत्रिम क्रोध द्वारा चमकते, प्रयत्न (करके) बनायी गयी भयानक भौंह से शोभित तथा चुम्बन लेने की इच्छा के कारण फड़फड़ाते निचले होंठ वाले (अपने) चन्द्र-सदृश मुह से कहा—"चञ्चले! (शरारती लड़की!) इस अक्षमाला को न देकर (दिये बिना) इस स्थान ने एक डग भी मत जाना।" और मैंने यह सुनकर कामदेव (के सम्मानार्थ) किये गये नृत्य के आरम्भ में (समर्पित) पुष्पाञ्जलिसरीखी मोतियों की लड़ी को अपने गले से उतारकर "भगवन् अक्षमाला को ले लीजिये' यह (कहते हुए) मेरे मुँह पर लगायी हुई (स्थिर की हुई) आँखों वाले, शून्यहृदय (कुछ भी न सोचते हुए), इस मुनिकुमार के फैलाये हुए हाथ पर मोतियों की माला को रखकर मैं, पसीने में स्नान किये हुई भी पुन. स्नान के लिये सरोवर में उतर गयी। और (सरोवर

१. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा।

वातरम्। उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीप नीयमाना सखीजनेन बलाद्-म्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम्। गत्वा च प्रविश्य कन्यान्तःपुर ततः प्रभृति तद्विरहविधुरा किमागतास्मि, किं तत्रैव स्थितास्मि, किमेकाकिन्यस्मि, कि परिवृत्तास्मि, कि तूष्णीमस्मि, कि प्रस्तुतालापास्मि, कि जागर्मि, कि सुप्तास्मि, कि रोदिमि, कि न रोदिमि, कि दुःखमिदम्, कि सातमिदम्, किमुत्कण्ठेयम्, कि व्याधिरयम्, कि व्यसनमिदम्, किमुत्सवोऽयम्, कि दिवस एषः, कि निशेयम्, कानि रम्याणि, कान्यरम्याणीति सर्वं नावागच्छम्। अविज्ञातमदनवृत्तान्ता च क

र्णवती। अथ मुनिं विशेषयन्नाह—शून्येति। शून्य हृदय चेतो यस्य स तथा तस्य। तत्र हेतुमाह—मन्मुखेति। मदानने आसक्ता कग्ना दृष्टिर्यस्य स तथा तस्य। उत्थायेति। उत्थान कृत्वा कथमपि महता प्रयत्नेन सखीजनेन वयस्याजनेन बलाद्धठात्प्रतीप पश्चान्नीयमाना प्राप्यमाणा। तत्र दृष्टान्तमाह—निम्नगेति। यथा निम्नगा नदी महाप्रयत्नेनैव पश्चान्नीयते, एवंविधाहमम्बया जनन्या सह सार्धं तमेव मुनिकुमारक चिन्तयन्ती ध्यायन्ती। अत्रैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थं। तदुक्तम्—'अयोग योगमपरैरत्यन्तायोगमेव च। व्यवच्छिनत्ति धर्मस्य निपातो व्यतिरेचक' इति। स्वभवन निजसद्मायासिषमागतवती। गत्वेति। गत्वैत्य। स्वभवनमिति शेष। कन्यान्त पुर कन्यावरोध प्रविश्य प्रवेश कृत्वा। चकार पुनरर्थक। तत प्रभृति तद्दिनादारभ्य तस्य पुण्डरीकस्य विरहेण वियोगेन विधुरा व्याकुला सत्यहमिति सर्वं नावगच्छ नावगममिति दूरेणान्वय। इतिशब्दार्थमाह—किमाग-तेति। किमित सर्वत्र वितर्कार्थे। अहमागतास्मि गृह समायातास्मि। किमिति पूर्ववत्। तत्रै-वाच्छोदसरस्तीरे स्थितास्मि। किमेकाकिन्यसहायास्मि किं परिवृता परिवारान्वितास्मि। किं तूष्णीमस्मि किं प्रस्तुत प्रारब्ध आलाप सलापो ययैवविधास्मि। किं जागर्मि निद्राक्षय-युक्तास्मि। किं सुप्तास्मि कृतनिद्रास्मि। किं रोदिमि। किं न रोदिमि। किं दु खमिदम्। किं सातमिद सौख्यमिदम्। किमुत्कण्ठेयम्। किमय व्याधिरामय। किमिद व्यसनमत्यासक्ति। किमयमुत्सवो मह। किमेष दिवसो दिनम्। किमिय निशा रात्रि। कानि वस्तूनि रम्याणि

मे से) उठकर (निकल कर) जैसे तैसे बलपूर्वक सखियों द्वारा ले जायी गयी, अपने प्रवाह के विपरीत उल्टी ले जायी गयी नदी की भाँति, उसी (युवा तपस्विकुमार) का ही ध्यान करती हुई माता के साथ अपने घर चली गयी।

घर जाकर कन्याओं के अन्त·कक्ष में प्रविष्ट होकर उसके वियोगसे दु खिता मैंने यह सब कुछ भी नहीं जाना कि क्या मैं आ गयी हूँ अथवा वहीं पर ठहरी हुई हूँ, क्या अकेली हूँ अथवा घिरी हुई हूँ, क्या मैं चुप हूँ अथवा बातचीत कर रही हूँ क्या मैं जाग रही हूँ अथवा सोरही हूँ, क्या मैं रो रही हूँ अथवा नहीं रो रही हूँ, क्या (यह सब) दुख है अथवा सुख है; क्या यह प्रणय के लिये व्यग्रता है अथवा कोई रोग है, क्या यह कोई आपत्ति है अथवा कोई उत्सव है, क्या यह दिन है अथवा रात है, कौन सी वस्तुएँ आकर्षक हैं अथवा कौन सी अना-कर्षक हैं इत्यादि। और (अभीतक) कामदेव के वृत्तान्त से अपरिचित होने के कारण—मुझे कहाँ

गच्छामि, किं करोमि, किं शृणोमि, किं पश्यामि, किमालपामि, कस्य कथयामि, कोऽस्य प्रतीकार इति सर्वं च नाज्ञासिषम्। केवलमारुह्य कुमारीपुरप्रासादं विसर्ज्य च सखीजनं द्वारि निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा, सर्वव्यापारानुत्सृज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी, तामेव दिशं तत्सनाथतया प्रसाधितामिव महारत्ननिधानाधिष्ठितामिव अमृतरससारसागरपूरप्लावितामिव पूर्णचन्द्रोदयालङ्कृतामिव दर्शनसुभगामीक्षमाणा, तस्माद्दिगन्तरादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनि-

शोभनानि। कानि च तद्विपरीतानि। अरम्याणीत्यर्थं। अवीति। अविज्ञातोऽनाकलितो मदनस्य कदर्पस्य वृत्तान्त उदन्तो यया सैवभूताहमिति सर्वं नाज्ञासिषं न ज्ञातवती। इति शब्दार्थमाह—क्वेति। क्व गच्छामि व्रजामि। किं करोम्यनुतिष्ठामि। किं शृणोम्याकर्णयामि। किं पश्यामि विलोकयामि किं वदामि। कस्य कथयामि निवेदयामि। कोऽस्य प्रतीकार प्रतिक्रिया। अथ विरहेण विप्रलम्भपुष्टिं प्रदर्शयन्नाह—केवलेति। केवलमन्यनिरपेक्षम्। कुमारीणां पुर इति। पदैकदेशे पदसमुदायोपचारादन्त पुरप्रासादमवरोधगृहमारुह्यारोहण कृत्वा सखीजन सध्रीजन विसर्ज्य दूरीकृत्य द्वारि प्रतोल्यां निवारितो निषिद्धोऽशेष. समग्रः परिजनस्य परिच्छदस्य प्रवेश आगमन यया सा। तथा सर्वव्यापारान्समग्रकृत्यान्युत्सृज्य विमुच्यैकाकिन्यद्वितीया मणिनिर्मितानि जालानि यस्मिन्नेवभूतो यो गवाक्षो वातायनस्तत्र निक्षिप्त स्थापित मुखमानन यया सैवभूता। तामेव मुनिकुमारकाधिष्ठिता दिशं ककुभमीक्षमाणा विलोकमाना। अथ तद्वस्तुजन्यसतोषजनकत्वसाम्येन तामेव दिशमुत्प्रेक्षते—तत्सनाथेति। तत्सहिततयेत्यर्थं। प्रसाधितामिव भूषितामिव। महान्ति रत्नानि यस्मिन्नेवभूत यन्निधान कुनाभिस्तेनाधिष्ठितामाश्रितामिव। अमृतरसेन पीयूषरसेन सार प्रधानो य. सागर समुद्रस्तस्य पूर. प्लवस्तेन प्लावितामिवाकीर्णामिव। पूर्ण समग्रो यश्चन्द्र शशाङ्कस्तस्योदय उद्गमस्तेनालङ्कृतामिव भूषितामिव। दर्शनेऽवलोकने सुभगा मनोहराम्। कामाभिभूतस्य चेतनाचेतनसाधारण्य प्रदर्शयन्नाह—तस्मादिति। तस्मान्मुनिकुमारकाधिष्ठिताद्दिगन्तरादागच्छन्तमायान्तमनिलमपि तथा वनकुसुमपरिमलमप्यरण्यपुष्पगन्धमपि, तथा शकुनि-

जाना चाहिये, मुझे क्या करना चाहिये, क्या सुनना चाहिये, क्या देखना चाहिये, कौन सी बात चीत करनी चाहिये, (अपना रहस्य विश्वासपूर्वक) किसको बताना चाहिये, और इसका क्या उपाय है—आदि यह सब नहीं जाना। केवल कुमारियों के निवासस्थानों वाले महल पर चढ़कर और सहेलियों को द्वार पर छोड़ कर, सभी सेवकों के प्रवेश का निषेध किये हुई, अपने (सामान्य) कर्त्तव्यों को छोड़कर, अकेली, मणियों की जालीवाली खिड़की से मुँह बाहर निकाले हुई उसी दिशा को (जहा वह कुमार था उसी ओर) देखती हुई खड़ी रह गयी जो दिशा उसके सहित होने के कारण मानों भूषित थी, अथव मानो बहुमूल्य मणियों के भण्डार को धारण किये हुई थी, अथवा मानो तरल अमृत (अमृतरस) के महासमुद्र की बाढ़ से युक्त थी, अथवा मानो (पूर्णिमा के) पूर्ण चन्द्र के उदय से सुशोभित थी और (मुझे) देखने में मनोहर प्रतीत होरही थी। उसी प्रदेश से आती हुई वायु से भी, अथवा किसी जगली फूल की सुगन्ध से भी, अथवा किसी

मपि तद्वार्तां प्रष्टुमीहमाना तद्वल्लभतया तपःक्लेशायापि स्पृहयन्ती, तत्प्रीत्येव गृहीतमौनव्रता स्मरजनितपक्षपाता च तत्परिग्रहान्मुनिवेषस्याग्राम्यता तदास्पदतया यौवनस्य चारुता तच्छ्रवणसंपर्कात्पारिजातकुसुमस्य मनोहरतां तन्निवासात्सुरलोकस्य रम्यता तद्रूपसंपदा कुसुमायुधस्य दुर्जयतामध्यारोपयन्ती दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितुः सागरवेलेव चन्द्रमसः मयूरीव जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी, तथैव ता तद्विरहातुरजीवितोद्गमरक्षावलीमिवाक्षावलीं कण्ठेनोद्वहन्ती, तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्या-

---

ध्वनिमपि पतत्रिरुतमपि तस्य पुण्डरीकस्य वार्तां प्रवृत्तिं प्रष्टु प्रश्नविषयीकर्तुमीहमाना वाञ्छमाना तस्य मुनेर्वल्लभतया तप क्लेशायापि स्पृहयन्ती वाञ्छन्ती। अपिशब्द प्रतिकूल्यं निराकरोति। तदायत्ततया प्रतिकूलमप्यनुकूलम्, नुकूलमपि न स्वत, किंतु तदायत्तत्वादित्याह—स्मरेणेति। मुनित्वेन ज्ञातेऽपि स्मरेण कदर्पेण जनितो विहित पक्षपातोऽङ्गीकारो यस्यां सा तथा तस्य मुने प्रीत्या स्नेहेन गृहीतमात्तं मौनव्रत यया सा तेन मुनिना परिग्रह स्वीकारस्तस्मान्मुनिवेषस्य तापसनेपथ्यस्याग्राम्यतां साधुताम्। स एवास्पद यस्य तस्य भावस्तत्ता तया यौवनस्य तारुण्यस्य चारुता मनोहरताम्। तस्य मुनेर्यं श्रवणसंपर्क. कर्णसबन्धस्तस्मात्पारिजातकुसुमस्य कल्पतरुपुष्पस्य मनोहरता मञ्जुलताम्। तस्य मुनेर्निवासस्तस्मात्सुरलोकस्य देवलोकस्य रम्यता चारताम्। तस्य मुनेर्या रूपसपत्सौन्दर्यसमृद्धिस्तया कुसुमायुधस्य दुर्जयतां दुर्जेयतामध्यारोपयन्त्यध्यारोपं कुर्वती। दूरस्थस्यापि दविष्ठस्यापि तस्यैव मुनिकुमारस्याभिमुखी सम्मुखी। कस्य केव। सवितु सूर्यस्य कमलिनीव। तथा चन्द्रमस कुमुदबान्धवस्य सागरवेलेव समुद्रस्याम्भसो वृद्धिरिव। तथा जलधरस्य मेघस्य मयूरीव नीलकण्ठपत्नीव। तथैवेति। तथा तेन कुमारेण कण्ठे न्यस्ता तथैव तस्य विरहेण वियोगेनातुर पीडित यज्जीवित प्राणितं तस्योद्गमो निर्गमस्तस्य रक्षावलीमिवाक्षावलीं जपमाला कण्ठेन निगरणेनोद्वहन्ती धारयन्ती। तथैवेति। तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण तया कर्णलग्नया श्रवणप्राप्तया प्रस्तुत. प्रारब्धस्तस्या रहस्या-

---

पक्षी की ध्वनि तक से भी उसका समाचार पूछना चाहती हुई, उसका प्रिय होने के कारण तपस्या के दु ख को भी चाहती हुई, उसकी (मौन व्रत में) प्रीति के कारण ही मानो मौन व्रत धारण किये हुई, कामदेव द्वारा (उस कुमार से सम्बद्ध सभी वस्तुओं में) पक्षपात (प्रबल रुचि) उत्पन्न किये हुई, उस (कुमार द्वारा) अंगीकार (धारण) किये रहने के कारण तपस्विवेष को अग्राम्य (सभ्य) मानती हुई, उसका निवासस्थान (आस्पद) होने के कारण यौवन में सुन्दरता का अध्यारोप करती हुई, उसके कान के साथ सम्पर्क होने के कारण पारिजात के फूल में सुन्दरता का, उसका निवासस्थान होने के कारण देवलोक में रमणीयता का, और उसके सौन्दर्य सम्पत्ति के कारण ही कामदेव में अजेयता का अध्यारोप करती हुई मैं वहाँ खड़ी रही, सुदूर स्थित भी उसी की ओर ऐसी मुँह किये हुई खड़ी थी जैसे कि कमल पादप सूर्य की ओर मुंह किये रहता है, सागर का ज्वार चन्द्रमा की ओर और मोरनी बादल की ओर मुँह किये रहती है वह अक्ष माला मैंने अपने गले में पहले की भाँति ही पहनी हुई थी, मानो कि वह उसके वियोग में आतुर प्राणों को निकलने से बचानेवाला तावीज (रक्षावली) हो, और (इस पर गुंजार करते मडराते

लापयेव कर्णलग्नया पारिजातमञ्जर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पर्शसुखजन्मना कदम्बमुकुलकर्णपूरायमाणेन रोमाञ्चजालेन कण्टकितैककपोलफलका निष्पन्दमतिष्ठम्।

अथ ताम्बूलकरङ्कवाहिनी मदीया तरलिका नाम मयैव सहागता स्नातुमासीत् सा च पश्चाच्चिरादिवागत्य तथावस्थिता शनैःशनैर्मामवादीत्—भर्तृदारिके, यौ तौ तापसकुमारकौ दिव्याकारावस्माभिरच्छोदसरस्तीरे दृष्टौ, तयोरेको येन भर्तृदुहितुरियं कर्णावतसीकृता सुरतरुमञ्जरी स तस्माद् द्वितीयादात्मनो रक्षन्दर्शनमतिनिभृतपदः

लापो यथैवंविधयैव पारिजातमञ्जर्या। तथैव च तेन पूर्वोक्तप्रकारेण तस्य यत्करतलस्पर्शं तस्मादुत्सुखं सात तेन जन्मोत्पत्तिर्यस्यैवंभूतेन कदम्बस्य नीपस्य मुकुलं कुड्मलं तस्य कर्णं पूरायमाणेन कर्णपूरवदाचरणमाणेन रोमाञ्चजालेन रोमहर्षणसमूहेन कण्टकितं कण्टकवदाचरितमेकमद्वितीयं कपोलफलकं यस्याः सा तथा निष्पन्दं निश्चलमतिष्ठं स्थितवती।

अथेत्यानन्तर्ये। मदीया तरलिका। नामेति कोमलामन्त्रणे। ताम्बूलकरङ्कवाहिनी मयैव सह स्नातुमाप्लवं कर्तुमागता समायातासीत्। सा चेति। सा ताम्बूलकरङ्कवाहिनी पश्चान्मद्गृहागमनानन्तरं चिरादिव चिरसदृशादिवागत्यैत्य तथावस्थिताम्। विरहातुरामित्यर्थः। मा शनैः शनैर्मन्दमन्दमवादीदवोचत्। किमुवाचेत्याह—भर्तृ इति। हे भर्तृदारिके हे राजपुत्रि। ताविति। एकः पुण्डरीकस्तस्सहानुगतश्च कपिञ्जल इमौ द्वौ तापसकुमारकौ दिव्याकारौ मनोहराकृती अस्माभिरच्छोदसरस्तीरे यौ दृष्टाववलोकितौ, तयोर्मध्य एकः कपिञ्जलं निराकुर्वन्नाह—येनेति। येन कुमारकेण भर्तृदुहितुर्भवत्या इयं सुरतरुमञ्जरी पारिजातवल्लरी कर्णावतसीकृता श्रवणोत्तंसीकृता। स इति। स मुनिः पुण्डरीकस्तस्मात्कपिञ्जलादात्मनः स्वस्य दर्शनं वीक्षणं रक्षन्गोपयन्नतिनिभृतान्यतिनिश्चलानि पदानि यस्यैवंभूतः कुसुमिताः पुष्पिता या लता वल्लयस्तासां संतानं परम्परा तेन गहनं

भौरों के कारण) मानो उसकी गोपनीय बातों को मुझे बताती सी प्रतीत होती पारिजात मञ्जरी को उसी प्रकार कान पर लगाये निश्चेष्ट खड़ी रही, और उसकी हथेली के छूजाने से उत्पन्न हुए, कदम्ब वृक्ष के खिलती कलियों के बन कर्णाभूषण से प्रतीत होते रोमाञ्चों द्वारा उसी प्रकार रोमाञ्चित, एक चौड़े कपोलवाली मैं निश्चेष्ट खड़ी रह गयी।

आगे सुनिये। मेरी पान की पेटी को उठाने वाली तरलिका नाम वाली मेरे साथ ही स्नान करने के लिये आयी थी। और उसने पीछे से (मेरी दृष्टि में) मानो बहुत देरमे आकर उस दशामें स्थित मुझको धीरे धीरे कहा—'कुमारी! वे जो दो दिव्याकृति तपस्वी युवक हमने अच्छोद झील के किनारे पर देखे थे, उनमें से एकने, जिसने यह कल्पवृक्ष की मञ्जरी आपके कान की आभूषण बनायी थी, अपने आपको उस दूसरे से अपने देखे जाने से बचाते हुए ने, अत्यन्त निश्चल तथा निःशब्द डगवाले ने (अर्थात् बड़ी सावधानता से पैर रखते हुए ने) पुष्पों से युक्त लतापरम्पराद्वारा अगम्य बने मार्ग में से (निकालकर) (मेरे) समीप पहुँचकर आती हुई मुझको पीछे से आपके विषय में पूछा—'बालिके! यह कन्या कौन है? किसकी सन्तान है?

कुसुमितलतासतानगहनान्तरेणोपसृत्य मामागच्छन्ती पृष्ठतो भर्तृदारिकामुद्दिश्याप्राक्षीत्—'बालिके, केयं कन्यका, कस्य वापत्यम्, किमभिधाना, क्व वा गच्छति' इति। मयोक्तम्—'एषा खलु भगवतः श्वेतभानोरंशुसंभूतायामप्सरसि गौर्यां समुत्पन्ना देवस्य सकलगन्धर्वमुकुटमणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृणितचरणनखचक्रस्य प्रणयप्रसुप्तगन्धर्वकामिनीकपोलपत्रलतालाञ्छितभुजतरुशिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता महाश्वेता नाम गन्धर्वाधिवास हेमकूटाचलमभिप्रस्थिता' इति। कथिते च मया किमपि चिन्तयन्मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा विगतनिमेषेण चक्षुषा चिर-

निबिड यदन्तर विचाल तेन मामागच्छन्ती पृष्ठत पश्चाद्भाग उपसृत्य समीपमागत्य भर्तृदारिकामुद्दिश्याश्रित्येत्यप्राक्षीत्प्रश्नमकार्षीत्। कि प्रश्न कृतवानित्याह—बालिके इति। हे बालिके हे कन्यके, केय कन्यका, कस्य वापत्य प्रजा। किमभिधाना किंनाम्नी। क्व वा गच्छति व्रजति। त्वया किमुक्तमित्याह—मयेति। मयेत्युक्त कथितम्। इतिवक्तव्यतामाह—एषेति। एषा खलु निश्चयेन भगवत श्वेतभानोर्गन्धर्वाधिपतेरंशुसभूताया सोममयूखसभूतायामप्सरसि गौर्यां समुत्पन्ना सजाता गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहितात्मजा। अथ हस विशिनष्टि—सकलेति। सकला समग्रा ये गन्धर्वा देवगायनास्तेषा मुकुटेषु मणिदृढबन्धार्थं शलाका स्वर्णमय्यस्तासा शिखराण्यग्राणि तेभ्यो य उल्लेख सघर्षस्तेन मसृणितं श्लक्ष्णीकृत चरणयोर्नखचक्र पुनर्भवसमूहो यस्य स तथा तस्य। प्रणयेति। प्रणयेन स्नेहेन प्रसुप्ता कृतनिद्रा या गन्धर्वकामिन्यस्तासा कपोलपत्रलताभिर्लाञ्छित चिह्नित भुजा एव तरवो वृक्षास्तेषा शिखरमग्र यस्य स तथा तस्य। अनेन सुरतविशेषो द्योतित। पादेति। पादपीठीकृत पदासनीकृत लक्ष्म्या श्रिय करकमल यस्य स तथा तस्य। एतेन दानशौण्डत्व सूचितम्। तस्या यथार्थमभिधानमाह—नामेति कोमलामन्त्रणे। महाश्वेता इति। साम्प्रत क्व गतेति तदाशयमभिप्रेत्याह—गन्धर्वेति। गन्धर्वाणामधिवासो यस्मिन्नेवभूत हेमकूटाचलमभिप्रस्थिता। तदभिमुख चलितेत्यर्थ। इति मया कथित उक्ते सति किमप्यनाकलनीय चिन्तयन्ध्यायन्मुहूर्तमिव घटिकाद्वयसदृशमिव। अत्रापीवशब्द सदृशार्थं। तूष्णीं जोष स्थित्वा विगतनिमेषेण मेषोन्मेषरहितेन चक्षुषा नेत्रेण चिर चिरकाल यावदभिसमुख वीक्षमाणो मा प्रति सानुनय सस्नेहमर्थितामिव

किस नामवाली है? और कहा जाती है?' मैंने कहा—"निश्चय ही यह भगवान् चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न हुई अप्सरा गौरी में समुत्पन्न गन्धर्वराज महाराज हस की पुत्री है, उस गन्धर्वराज की पुत्री है जो कि सारे (अधीनस्थ) गन्धर्वों के मुकुटों की मणियों के अशों की नोकों द्वारा खरोंचे जाने से चिकने हुए चरण नख-मण्डल वाला है, प्रेमपूर्वक (सटकर) सोई हुई गन्धर्वस्त्रियों के गलों पर बनी हुई पत्राकृतियों से चिह्नित (शोभित) वृक्ष-सदृश (मजबूत) भुजाओ के शिखर प्रदेशवाला है, और जिसने लक्ष्मी के कमल सदृश हाथ को अपना पीढा बनाया हुआ है, उस गन्धर्वराज की पुत्री महाश्वेता गन्धर्वों के निवासस्थान हेमकूट पर्वत की ओर चली है।"—'और जब मैंने यह बात कह दी तो कुछ देर तक चुप रहकर, कुछ सोचते हुए से ने, अपलक दृष्टि से मुझ को देर तक घूरते हुए ने, शिष्टतापूर्वक कृपाकाङ्क्षिता-सी दिखाते हुए ने

मभिवीक्षमाणो मां सानुनयमर्थितामिव दर्शयन्पुनराह—'बालिके कल्याणिनि तवाविसंवादिन्यचपला बालभावेऽप्याकृतिरियम्। तत्करोषि मे वचनमेकमभ्यर्थ्यमाना' इति। ततो मया सविनयमुपरचिताञ्जलिपुटया दर्शितादरमभिहितः—'भगवन्, कस्मादेवमभिधत्से। काहम्। महात्मानः सकलत्रिभुवनपूजनीयास्त्वादृशाः पुण्यैर्विना निखिलकल्मषापहारिणीमस्मद्विधेषु दृष्टिमपि न पातयन्ति, किं पुनराज्ञाम्। तद्विश्रब्धमादिश्यतां कर्तव्यम्। अनुगृह्यतामयं जनः' इति। एवमुक्तश्च मया सस्नेहया सखीमिवोपकारिणीमिव प्राणप्रदामिव दृष्ट्या मामभिनन्द्य निकटवर्तिनस्तमालपादपात्पल्लव-

---

मार्गणसदृशमिव दर्शयन्पुनर्द्वितीयवारमित्याह। उवाचेत्यर्थः। इतिवाच्यमाह—बालिके इति। हे बालिके, कल्याणिनी कल्याणं श्रेयो विद्यते यस्या यस्यां वा सैवभूताविसंवादिन्यव्यभिचारिणी। 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति' इत्युक्ते। बालभावेऽपि बालस्वभावेऽप्यचपला स्थिरा तवेयमाकृतिराकारः। तदिति हेत्वर्थे। अभ्यर्थ्यमाना प्रार्थ्यमानैकं मे मम वचनं करोषि प्रणयसि। ततः इति। ततोऽनन्तरं सविनयं सप्रश्रयमुपरचितं बद्धमञ्जलिपुटं ययैवभूतया मया दर्शितादरं यथा स्यात्तथेत्यभिहित उक्तः। इतिशब्दवाच्यमाह—भगवन्निति। हे भगवन् हे स्वामिन्, तस्मात्केन हेतुनैव पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधत्से कथयसि। काहं बालव्यजनधारिणी। सकलत्रिभुवनपूजनीया समग्रविश्वार्चनीया महात्मानस्त्वादृशा भवादृशा क्व। पुण्यैर्विना धर्मव्यतिरेकेणास्मद्विधेष्वस्मादृशेषु निखिलकल्मषापहारिणीं दृष्टिं न पातयन्ति चक्षुषा नावलोकयन्ति। किं पुनराज्ञामादेशप्रदानम्। दूरापास्तमिति भाव। तत्तस्माद्धेतोर्विश्रब्धं सविश्वासं कर्तव्यं कृत्यमादिश्यतामादेशं दीयताम्। अथ चायं मल्लक्षणो जनोऽनुगृह्यतामनुग्रहविषयीक्रियताम्। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सस्नेहया सप्रेम्णा मयोक्तश्च स मुनिः सखीमिव वयस्यामिवोपकारिणीमिवोपकृतिकर्त्रीमिव प्राणप्रदामिव जीवितदात्रीमिव मां दृशा चक्षुषाभिनन्द्य प्रमोदं जनयित्वैव निकटवर्तिनः समीपस्थात्तमालपादपात्तापिच्छवृक्षात्पल्लवं किसलयमादाय गृहीत्वा तटशि-

---

मुझसे फिर कहा—'बालिके! तेरी यह कल्याणदायिनी आकृति झूठी न ठहरने वाली है तथा बचपन मे भी चञ्चल नहीं प्रतीत हो रही है, तो फिर मुझसे प्रार्थना की गयी तू (यदि मैं तुझसे प्रार्थना करूँ तो) क्या मेरा एक कहा मानेगी?"—इसके पश्चात् विनय पूर्वक हाथ जोड़े हुई मैंने आदर दिखाते हुए (सादर) कहा—"भगवन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं, मैं भला क्या हूँ? (मैं तो एक तुच्छ व्यक्ति हूँ) आप सरीखे तीनों लोकों में पूजनीय महापुरुष तो, हमारे सरीखों पर, (हमारे) पुण्यों के विना, सब पापों को दूर करने वाली अपनी दृष्टि को भी नहीं डालते हैं—(हमारे जैसों को देखते तक नहीं हैं) आज्ञा देने का तो कहना ही क्या है। इसलिये आप निश्चिन्त होकर कर्त्तव्य की आज्ञा दीजिये। इस व्यक्ति पर कृपा कीजिये।" इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गये उस मुनिकुमार ने स्नेहयुक्त दृष्टि से मेरा ऐसे अभिनन्दन किया कि मानो मैं उसकी मित्र थी, अथवा उसका मैंने कोई उपकार किया हो, अथवा उसको जीवन प्रदान किया हो। अभिनन्दन करने के पश्चात् उसने समीपवर्ती किसी तमाल वृक्ष से पत्ता लेकर उसको तटवर्ती शिला के तल पर छेदकर (इस

मादाय निष्पीड्य तटशिलातले तेन गन्धगजमदसुरभिपरिमलेन रसेनोत्तरीयवल्कलैक-देशाद्विपाट्य पट्टिका स्वहस्तकमलकनिष्ठिकानखशिखरेणाभिलिख्येयं पत्रिका 'त्वया तस्यै कन्यकायै प्रच्छन्नमेकाकिन्यै देया' इत्यभिधायार्पितवान् इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलभाजनादाकृष्य तामदर्शयत्। अहं तु तेन तत्सम्बन्धिनालापेन शब्दमयेनापि स्पर्शसुखमिवान्तर्जनयता श्रोत्रविषयेणापि रोमोद्गमानुमितसर्वाङ्गानुप्रवेशेन मदनावेशमन्त्रेणेवावेश्यमाना तस्याः करतलादादाय तां वल्कलपत्रिकां तस्यामिमामभिलिखितामार्यामपश्यम्—

लातले तीरप्रस्तरे निष्पीड्य समर्थं तेन निष्पीडनोद्भूतेन गन्धगजा गन्धेभास्तेषां मदो दानं तद्वत्सुरभिः सुगन्धः परिमलो यस्यैवंविधेन रसेनोत्तरीयं यद्वल्कलं तस्यैकदेशादेकप्रदेशात्पट्टिकां प्रसिद्धां विपाट्य द्वैधीकृत्य स्वकीय आत्मीयो यो हस्तः पाणिः स एव कमलं नलिनं तस्य कनिष्ठिका कनीनिका तस्य नखशिखरेण नखराग्रेणेयं पत्रिकाभिलिख्य लिपीकृत्येत्यभिधायेत्युक्त्वार्पितवान्दत्तवान्। इतिशब्दाभिधेयमाह— त्वयेति। त्वया भवत्या तस्यै कन्यकायै महाश्वेतायै एकाकिन्यै अद्वितीयायै प्रच्छन्नं गुप्तं देयार्पणीया। अथ सा च ताम्बूलकरङ्कवाहिनी तरलिका ताम्बूलभाजनात् तां पत्रिकामाकृष्य निष्कास्यादर्शयत् दर्शितवती। अहं त्विति। तु पुनरर्थे। अहमित्यात्मनिर्देशः। तस्यास्तरलिकायाः करतलाद्धस्ततलात्तां वल्कलपत्रिकामादाय गृहीत्वा तस्यामिमामभिलिखितामार्यामपश्यमद्राक्षमित्यन्वयः। कीदृश्यहम्। आवेश्यमानावेशविषयीक्रियमाणा। केन। तस्य पुण्डरीकस्य सम्बन्धिना सम्बद्धेनालापेन संलापेन। किं कुर्वता। शब्दमयेन शब्दात्मकेनापि स्पर्शसुखमिव सश्लेषसातसदृशमिवान्तर्मध्ये जनयता उत्पादयता। अत्रापिशब्दो विरोधद्योतनार्थः। श्रोत्रविषयेणापि कर्णगोचरेणापि रोमोद्गमेन पुलकेनानुमितोऽनुमितिविषयीकृतः सर्वाङ्गेष्वनुप्रवेशो यस्य स तेन। अत्रापिशब्दः पूर्ववत्। वैक्लव्यसादृश्यादाह— मदनावेशमन्त्रेणेव मदनस्य कन्दर्पस्यावेशः प्रवेशस्तदुत्पादकमन्त्रेणेव। अथ तामार्यामाह—

प्रकार निकले) उस गन्धहस्ती के मद की सुगन्ध के सदृश (मधुर) गन्ध वाले रस द्वारा उत्तरीय के रूप में पहने हुए वल्कल (छाल) के एक भाग में से एक पट्टी फाड़ कर (उसका) अपने कमल सदृश हाथ की कनिष्ठिका अंगुली के नखाग्र से लिखकर 'यह पत्रिका तू उस कन्या को छिपे छिपे अकेली को (जब वह अकेली हो तब) देना'—यह कहकर मुझे दे दी। और यह कहकर उसने वह पत्रिका पानपात्र में से खींचकर दिखा दी। किन्तु मैंने उसे मुनिकुमार विषयक वार्तालाप से जो शब्दमय होते हुए भी हृदय के भीतर मानो स्पर्शसुख के सदृश सुख उत्पन्न कर रहा था, कान का विषय होते हुए भी जिसका मेरे सब अंगों में अनुप्रवेश (प्रभाव) (मेरे शरीर पर) प्रकट हुए रोमाच से अनुमित हो रहा था, उस आलाप के द्वारा मानो कामोन्माद के प्रवर्तक मंत्र से प्रभावित होती हुई मैंने उस वल्कल पत्रिका को उस (ताम्बूलवाहिनी) की हथेली पर से लेकर उस (पत्रिका) पर लिखा हुआ निम्न आर्याछन्द देखा—

दूर मुक्तालतया बिससितया विप्रलोभ्यमानो मे ।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः ॥

अनया च मे दृष्ट्या दिङ्मोहभ्रान्त्येव प्रणष्टवर्त्मनः, बहुलनिशयेवान्धस्य, जिह्वोच्छित्त्येव मूकस्य, इन्द्रजालिकपिच्छिकयेवातत्त्वदर्शिनः, ज्वरप्रलापप्रवृत्त्येवासबद्धभाषिणः, दुष्टनिद्रयेव विपविह्वलस्य, लोकायतिकविद्ययेवाधर्मरुचेः, मदिरयेवोन्मत्तस्य, दुष्टावे-

दूरेति । मानसे मनसि जन्म यस्यैवभूतो मनोरथोऽभिलाषो मुक्तालतयैकावल्ल्या विप्रलोभ्यमानो लोभ प्राप्यमाणो दर्शिताशा फलप्राप्तिर्यस्यैवभूतस्त्वया नीतः तदैव समीपे तिष्ठति । त्वामेव विषयीकरोतीति भाव । मानसजन्मत्वसाम्याद्गुत्प्रेक्षते—हंस इवेति । यथा मानसजन्मा हंसो मुक्तावन्निर्मला या लता प्रतत्यस्ताभि प्रकर्षेण लोभ्यमानो दर्शिताशागमनार्थे दिग्यस्यैवभूतोऽन्यत्र नीयते । अथ लता विशेषयन्नाह—बिसेति । बिस मृणाल तद्वच्छुभ्रया धवलयेत्युभयोर्विशेषणम् । अनयेति । अनया पत्रिकया मे मम दृष्ट्या विलोकितया सत्या स्मरातुरस्य मदनातुरस्य मे मम मनसो दोषविकारस्योपचय पुष्टि सुतरामत्यर्थम- क्रियत व्यधीयतेत्यन्वयः । अत्रार्थ उपमानान्तराणि प्रदर्शयन्नाह—दिगिति । दिङ्मोह भ्रान्त्या करणभूतया प्रणष्टवर्त्मन उत्पथगामिन इव । बहुलेति । बहुलनिशया कृष्णपक्षरात्र्यान्धस्येव गताक्षस्यैव । जिह्वेति । जिह्वोच्छित्त्या रसनाकर्तनया मूकस्येव । इन्द्रेति । इन्द्रजालिकस्य मायिकस्य या पिच्छिका यया लोकाना दृग्बन्ध क्रियते, तया अतत्त्वदर्शिन इव यथाजातस्येव । ज्वरेण तापेन य प्रलापस्तद्भाषण तस्य प्रवृत्ति प्रवर्तन तस्यासबद्धभाषिण इव कद्वदस्येव । दुष्टेति । दुष्टनिद्रयानुचितप्रमीलया विषविह्वलस्येव विषार्तस्येव । निद्राया दुष्टत्व च दोषजनकत्वादिति भाव । लोकेति । लोकायतिका नास्तिकास्तेषा विद्यया शास्त्रेणा-

"मृणालतन्तु की भाँति श्वेत मोतियों के हार द्वारा लुभाया जाता हुआ मेरा मानस जन्मा प्रणयावेग, (सयोग की) आशा दिखाया जाता हुआ, तूने ऐसे दूर भगा लिया है—जैसे कि मानस सर मे उत्पन्न हस, कमलतन्तु सरीखी श्वेत मणिलता द्वारा लुभाया गया (जाने की) दिशा दिखाया जाता हुआ (अथवा भोजन की आशा से युक्त) दूर ले जाया जाता है।"

और देखी हुई (पढी हुई) इस आर्या ने कामप्रपीडित मेरे मन के रोग के दुष्परिणामों को ऐसे बढा दिया जैसे कि मार्ग भूले हुए (भटके हुए) का दोष दिशाओं के ज्ञान के अभाव से हुई अनिश्चितता से बढ जाता है अथवा अन्धे के मन के दोष कृष्णपक्ष की रात्रि से बढ़ जाते हैं, अथवा, गूगे का दुख जीभ के कटने से बढ़ जाता है, अथवा (स्वभावत) अतत्त्वदर्शी-वस्तुओं को उनके वास्तविकरूप मे न देखने वाले का दुख इन्द्रजालिक के मयूर के पखों के गट्ठे (को दृष्टिबन्धार्थ हिलाने) से बढ जाता है, अथवा सामान्यत. असम्बद्ध बातें करने वाले का दुख बुखार के समय की बकवास की भड़ाँस से बढ़ जाता है, अथवा, विष से दुखी का (दोष) क्षुब्ध मनोभावों से लायी गयी—दुष्ट निद्रा से बढ़ जाता है, अथवा (पहले ही) धर्म मे रुचि न रखने वाले का (दोष) नास्तिक के

शक्रियमेव पिशाचग्रहस्य, दोषविकारोपचयः सुतरामक्रियत स्मरातुरस्य मे मनसः, येनाकुलीक्रियमाणा सरिदिव पूरेण विह्वलतामभ्यगमम्। ता च द्वितीयदर्शनेन कृतमहापुण्यामिवानुभूतसुरलोकवासामिव देवताधिष्ठितामिव लब्धवरामिव पीतामृतामिव समासादितत्रैलोक्यराज्याभिषेकामिव मन्यमाना, सततसन्निहितामपि, दुर्लभदर्शनामिवातिपरिचितामप्यपूर्वामिव सादरमाभाषमाणा पार्श्वावस्थितामपि सर्वलोकस्योपर्येव-

धर्मरुचेरिव पापस्येव। मदिरेति। मदिरया गन्धोत्तमयोन्मत्तस्येव क्षीबस्येव। दुष्टेति। दुष्टो य आवेशोऽभिनिवेशस्तस्य क्रिया कर्म तया पिशाचग्रहस्येव ग्रथिलस्येव। येनेति। येन दोषोपचयेन आकुलीक्रियमाणा पूरेण जलवृद्ध्या सरिदिव तटिनीवाहं विह्वलता व्याकुलतामभ्यगमम-प्रापम्। ता चेति। ता तरलिका पुन पुनर्भूयोभूयोऽहमिति पर्यपृच्छमित्यप्राक्षमिति दूरेणान्वय। इतिशब्दद्योत्यमाह—तरलिकेति। हे तरलिके, कथय निवेदय। स पुण्डरीक कथ केन प्रकारेण त्वया दृष्टोऽवलोकित। किमभिहितासि कथितासि तेन पुण्डरीकेण। कियन्त कालमवस्थितासि विलम्बितासि। तत्र तस्मिन्वने अस्माननुसरन्पृष्ठेऽनुव्रजन्कियत्पन्थानमसौ पुण्डरीक आगत। कीदृश्यहम्। द्वितीयवार मुनेर्दर्शनेनावलोकनेन कृत महत्पुण्य ययैतादृशीमिव। 'आन्महत समानाधिकरणजातीययो' इति महच्छब्दस्यात्वम्। अनुभूत इति। अनुभूतोऽनुभवविषयीकृत सुरलोकवास स्वर्गे निवासो यया तादृशीमिव। देवतयाधिष्ठिताश्रिता तादृशीमिव। लब्धेति। लब्धो वरो देवप्रसादो ययैतादृशीमिव। पीतमिति। पीतमास्वादितममृत पीयूष ययैवभूतामिव। समेति। समासादित प्राप्तत्रैलोक्यस्य राज्यमाधिपत्य तस्याभिषेकोऽभिषिञ्चन ययैवविधामिव ता मन्यमाना चेतसि ज्ञायमाना। पुनरह किं कुर्वाणा। सततमिति। सतत निरन्तर सन्निहितामपि पार्श्ववर्तिनीमपि दुर्लभ दु प्राप दर्शनमवलोकन यस्या एवंविधामिवातिपरिचितामप्यतिसस्तवगोचरीकृतामप्यपूर्वामिवाभिनवामिव सादरमाभाषमाणा जल्पमाना। पुन किं कुर्वन्त्यहम्। पार्श्वे समीपेऽवस्थितामप्यासीनामपि सर्वलोकस्य

सिद्धान्तों के ज्ञान से बढ़ जाता है, अथवा, पागल का पागलपन शराब से बढ़ जाता है अथवा (पहले ही) भूताविष्ट का (दोष) दुष्ट (प्रभाव) को डालने की क्रिया से बढ जाता है।[1] और उस (मानसिक दुख) की वृद्धि से दु:खी की गयी मै ऐसी क्षुब्ध हो गयी जैसे कि बाढ से नदी क्षुब्ध हो जाती है। और मैंने उस (तरलिका) को दूसरी बार (पुण्डरीक के) दर्शन कर लेने के कारण (भविष्य के लिए) पुण्यों का भारी भण्डार सचित किये हुई सी, अथवा देवलोक मे निवास करने के सुख का अनुभव किये हुई-सरीखी, अथवा देवता से अधिष्ठिता सरीखी, वर प्राप्त किये हुई सरीखी, अमृत पिये हुई-सरीखी, तीनों लोकों का राज्याभिषेक प्राप्त किये हुई सरीखी मानती हुई मैंने, निरन्तर समीप स्थित भी उसको दुर्लभ दर्शन वाली समझती हुई ने, अत्यन्त परिचिता को भी अपूर्वा—पूर्वापरिचिता-सी मानती हुई ने, उसके साथ बड़े आदर से बातचीत करती हुई ने (वस्तुत) मेरे बराबर मे स्थित भी उसको सारे ससार के ऊपर ऊँचाई पर स्थित देखती ने, उसको गालो पर तथा लम्बे घुघराले बालों को

१ जन्मनक्षत्र में पापग्रहों के प्रवेश से भूताविष्ट का दोष बढ़ जाता है।

स्थितामिव पश्यन्ती, कपोलयोरलकलताभङ्गेषु च सोपग्रहं स्पृशन्ती, विपरीतमिव परिजनस्वामिसबन्धमुपदर्शयन्ती, 'तरलिके, कथय कथ स त्वया दृष्टः, किमभिहितासि तेन, कियन्त कालमवस्थितासि तत्र, कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम्। अनयैव च कथया तया सह तस्मिन्नेव प्रासादे तथैव प्रतिषिद्धाशेषपरिजनप्रवेशा दिवसमत्यवाहयम्।

अथ मदीयेनेव हृदयेन कृतरागसविभागे लोहितायति गगनतलावलम्बिनि रविबिम्बे, सरागदिवसकरदर्शनानुरक्ताया कृतकमलशयनायामनङ्गातुरायामिव पाण्डुता

समप्रविम्बस्योपर्यवस्थितामिव पश्यन्त्यवलोकयन्ती। कपोलयोर्गल्लात्परप्रदेशयोरलकलताभङ्गेषु सोपग्रहं सानुकूल यथा स्यात्तथा स्पृशन्ती स्पर्शं कुर्वन्ती। विपरीतमिति। मत्समीहितकरणात्व तु स्वामिनी, अहं तु तव परिजन, इति विपरीत संबन्ध। तमिवोपदर्शयन्ती बहिर्वृत्त्या प्रकाशयन्ती। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। अनयैवेति। अनयैव पूर्वोक्तयैव कथया वार्तया तया सह तरलिकया सम तस्मिन्नेव प्रासादे सौधे प्रतिषिद्धो निवारितोऽशेषपरिजनस्य प्रवेश आगमन ययैवभूता दिवस दिनमत्यवाहयमत्यक्रामम्।

अथेत्यानन्तर्ये। सा छत्रग्राहिण्यागत्याकथयदित्यग्रिमग्रन्थसबन्ध। तत्र 'मदीय—' इत्यारभ्य 'युगलेषु' इति पर्यन्त सत्यन्तै सायसमयवर्णनमाह—मदीयेति। मदीयेनेव हृदयेन कृतो रागस्य संविभागो यस्यैवभूते लोहितायति लोहितवदाचरति गगनतलं व्योमतल तत्रावलम्बिनि लम्बायमाने रविबिम्बे सूर्यबिम्बे सति। पुन कस्याम्। आतपलक्ष्म्याम्। किंविशिष्टायाम्। सरागेति। राग आरुण्य रतिश्च तेन सह वर्तमानो यो दिवसकर सूर्यस्तस्य दर्शनेनावलोकनेन तस्मिन्वानुरक्ता तस्यामत एव कृत कमलाना शयन कमलेषु शयन वा यया सा तस्याम्। आरुण्यवशादाह—अनङ्गेति। अनङ्गेन कंदर्पेणातुरामिव पीडितामिव पाण्डुतां श्वेततां व्रजन्त्यामिव। पुन केषु भास्करकिरणेषु रविभानुषु सत्सु। तानेव विशेषयन्नाह—गैरिको धातुमयो

उत्साह से (अथवा प्यार से) (सोपग्रहम्[1]) छूती हुई ने, आपसी सेविका-स्वामिनी सबध को (उस समय) इससे उल्टा दिखाती हुई ने, बार बार पूछा—'तरलिके! बता, तूने उसको कैसे देखा? उसने तुझसे क्या-कुछ कहा? वहाँ तू कितनी देर तक रही? हमारे पीछे-पीछे चलता हुआ वह कितनी दूर तक आया?—इत्यादि। और इसी (इसी प्रकार की) बातचीत में, उसके साथ, उसी महल मे, वैसे ही (पहले की भाति) सभी सेवकों के प्रवेश का निषेध किये हुई मैंने सारा दिन बिता दिया।

इसके पश्चात् मानो मेरे हृदय के साथ राग अर्थात् लाल रग और प्रेमोन्माद का बँटवारा किये हुए मानो इसी कारण लाल पड़ते हुए सूर्य बिम्ब के द्वारा क्षितिज का अवलम्बन कर लेने पर (अर्थात् उस समय जब सूर्य अस्त होने लगा) जब धूप की शोभा राग (लाल रग) सहित सूर्य के दर्शन से प्रेमोन्मत्त अथवा लाल होकर कमल पर शयन करने लगी और कामप्रपीडिता की भाँति अधिकाधिक पीली पड़ने लगी, जब सूर्य की किरणें, गेरु पर्वत के जल के

---

१. उपग्रहः=अनुकूलाचरणम।

भ्रजन्त्यामातपलक्ष्म्या गैरिकगिरिसलिलप्रपातपाटलेषु कमलवनेभ्य उत्थाय वनगजयूथेष्विव पुञ्जीभवत्सु भास्करकिरणेषु, गगनावतारविश्रामलालसाना रविरथवाजिनां हर्षहेषारवप्रतिशब्दकेन सह विशति मेरुगिरिगह्वर वासरे, मुकुलितरक्तपङ्कजपुटप्रविष्टमधुकर्यावलीषु विरहमूर्च्छान्धकारिहृदयास्विव प्रारब्धनिमीलनासु पद्मिनीषु, ग्रासीकृतसामान्यमृणाललताविवरसङ्क्रामितानीव परस्परहृदयान्यादाय विघटमानेषु रथाङ्गनाम्ना युगलेषु सा छत्रग्राहिण्यागत्याकथयत्—'भर्तृदारिके, तयोर्मुनिकुमारयोरन्यतरो द्वारि तिष्ठति। कथयति चाक्षमालामुपयाचितुमागतोऽस्मि'

गिरि पर्वतस्तस्य सलिलमम्भस्तस्मिन्प्रपात' पतन तेन पाटलेषु श्वेतरक्तेषु। कमलवनेभ्यो नलिनखण्डेभ्य उत्थायोत्थान कृत्वा वनगजयूथेष्विवारण्यहस्तिसमूहेष्विव पुञ्जीभवत्स्वेकीभवत्सु। पुन कस्मिन्सति। वासरे दिवसे मेरुगिरिगह्वर निकुञ्ज विशति प्रविशति सति। कथ सह केनेत्यभिप्रायेणाह—गगनेति। गगन आकाशेऽवतार परिभ्रमण तस्माद्यो विश्रामो विश्रान्तिस्तस्मिल्लालसाना सस्पृहाणा रविरथवाजिनां सूर्यस्यन्दनाश्वाना हर्ष प्रमोदस्तेन हेषारवस्तस्य प्रतिशब्द प्रतिच्छन्दस्तेन सह। सार्धमित्यर्थं। तथा च रविकिरणानामध स्थल परित्यज्योर्ध्वगमनान्मध्यावस्थाचरणमाह—पद्मिनीष्विति। मुकुलितानि कुड्मलितानि यानि रक्तपङ्कजानि कोकनदानि तेषा पुटानि तत्र प्रविष्टा कृतप्रवेशा मधुकरीणा भ्रमरीणामावल्य श्रेण्यो यास्वेवंविधासु पद्मिनीषु नलिनीषु सत्सु। कृष्णत्वसाम्यादाह—विरहेति। विरहो वियोग। रवेरिति शेष। तेन या मूर्च्छा तयान्धकारित सजातान्धकार हृदय यासामेवविधास्विव। अत एव प्रारब्ध निमीलनं याभिस्तासु। पुन केषु। रथाङ्गनाम्ना चक्रवाकानां युगलेषु घटमानेषु भिन्नतां प्राप्यमाणेषु। किं कृत्वा। परस्परहृदयान्यन्योन्यानुरागलक्षणान्यादाय गृहीत्वेत्यर्थं। रक्तत्वसाम्यादुत्प्रेक्षामाह—ग्रासीति। ग्रासीकृतार्धंजग्धा या सामान्यमृणाललता बिसलतास्तासा विवराणि छिद्राणि तेषु सङ्क्रामितानीव क्षिप्तानीव। किं कथितवतीत्याशयेनाह—भर्तृ इति।

झरनों के समान लाल हुई, कमल क्यारियों से उठकर (सायकाल) घब्बों के गुच्छों में एकत्रित होने लगीं (गुच्छे बनने लगीं) जैसे कि गेरु मिश्रित जल के गिरने से (उसमें डुबकी लगाने से) लाल हुए वन्य हस्ती (अपने क्रीडास्थलों) कमल वनों से उठकर एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं, जब दिन भर आकाश से उतरने में हुई थकावट के पश्चात् विश्राम चाहने वाले सूर्य के रथ के घोड़ों के हर्षयुक्त हिनहिनाहट की गूंज के साथ साथ दिन मेरु पर्वत की गुफामें प्रविष्ट होने लगा, जब (अब) मुदे हुए लाल कमलों की पोलों में घुसे हुए (काले भौंरों वाली कमलिनियों ने ऐसे बन्द होना आरम्भ कर दिया कि मानो वे (अपने पति सूर्य से) होरहे (वियोग के कारण हुई मूर्छा द्वारा काले (अर्थात् टूटे) हुए हृदय वाली हों, और जब चक्रवाक पक्षियों के जोड़े, (प्रत्येक द्वारा एक एक सिर से) खाये हुए एक ही (सामान्य) लम्बे बिसतन्तु के पोले मार्ग में हस्तातरित (प्रविष्ट) एक-दूसरे के हृदयों को लेकर वियुक्त होने लगे—तब (अर्थात् सायकाल के समय) वह छत्रग्राहिणी आकर बोली—"हे राजकुमारी! उन दो राजकुमारों में से एक द्वार पर आगया है, और कहता है कि मैं अक्षमाला को (वापस) मागने के लिये आया

इति । अह तु मुनिकुमारनामग्रहणादेव स्थानस्थितापि गतेव द्वारदेशं समुपजाततदागमनाशङ्का समाहूयान्यतम कञ्चुकिनम् 'गच्छ, प्रवेश्यताम्' इत्यादिश्य प्राहिणवम्। अथ मुहूर्तादिव त तस्य रूपस्येव यौवनम्, यौवनस्येव मकरकेतनम्, मकरकेतनस्येव वसन्तसमयम्, वसन्तसमयस्येव दक्षिणानिलमनुरूप सखायं मुनिकुमारकं कपिञ्जलनामान जराधवलितस्य कञ्चुकिनोऽनुमार्गेण चन्द्रातपस्येव बालातपमनुयायिनमपश्यम्। अन्तिकमुपागतस्य चास्य पर्याकुलमिव सविषादमिव शून्यमिवार्थिनमिवानु-

हे भर्तृदारिके हे राजसुते, तयोर्मुनिकुमारयोरिति निर्धारणे षष्ठी। अन्यतर एक कश्चिद् द्वारि प्रतोल्या तिष्ठति स्थितोऽस्तीति। कथयति वक्ति च। तदेवाह—अक्षमालेति। अक्षमाला जपमालामुपयाचितु प्रार्थितुमागतः प्राप्तोऽस्मि। अह त्विति। मुनिकुमारस्य नामग्रहणादेवाभिधानमात्रश्रवणादेव। उत्कण्ठातिशयमाह—स्थानेति। स्थानस्थितापि स्वस्थानस्थापि द्वारदेश प्राप्तेव समुपजाता समुत्पन्ना तस्य पुण्डरीकस्यागमने आशङ्कारेका यस्या एवभूता सत्यन्यतम कञ्चुकिन सौविदल्ल समाहूयाह्वान कृत्वा गच्छ व्रज, स प्रवेश्यता मध्ये प्रवेश कार्यतामिति शेष। इति पूर्वोक्तमादिश्य कथयित्वा प्राहिणव प्रेषितवती। अथेति। तत्प्रेषणानन्तर मुहूर्तादिव। अत्रेवशब्द सदृशार्थे। मुहूर्तसदृशादित्यर्थ। तदुक्तमलकारशेखरे—'इवाद्यै. प्रतिमाद्यै समानार्थैर्निभादिभि। बन्धबोरादिवंशाद्यै (?) सादृश्यप्रतिपत्तय' इति। तमिति। तस्य पुण्डरीकस्यानुरूप सखाय मित्रम्। अनुरूपमित्रसबन्धप्रदर्शनार्थमुपमानान्तराण्याह—रूपस्येति। रूपस्य सौन्दर्यस्य यौवनमिव तारुण्यमिव। यौवनस्य तारुण्यस्य मकरकेतनमिव कदर्पमिव। मकरकेतनस्य वसन्तसमयमिव सुरभिकालमिव। वसन्तसमयस्य दक्षिणानिलमिवापाचीपवनमिव मुनिकुमारक तापसबालकं कपिञ्जलनामान जरा विस्रसा तया धवलितस्य शुभ्रीकृतस्य कञ्चुकिन सौविदल्लस्यानुमार्गेण पश्चाद्भागेन चन्द्रातपस्य शीतांशुप्रकाशस्यानुयायिनं पश्चाद्गामिन बालातपमिव तमपश्यमवालोकयम्। एतेन कञ्चुकिकपिञ्जलयोस्तत्समीपावधि सहागमनेऽपि वैलक्षण्यं द्योतितम्। अन्तिकमिति। अन्तिक समीपमुपागतस्य प्राप्तस्य चास्य कपिञ्जलस्य पर्याकुलमिवात्यन्तम्याकुलमिव सविषाद-

हूँ।"—किन्तु मैं 'मुनिकुमार' इस शब्द के उच्चारण मात्र से ही ऐसी हो गयी कि अपने स्थान पर बैठी हुई भी मानो द्वार पर पहुँच गयी हूँ, और उसके आने की सम्भावना उत्पन्न किये हुई मैंने अपने एक कञ्चुकी को बुलाकर—'जा, उसको ले आ'—यह आज्ञा देकर भेज दिया। इसके पश्चात् लगभग मुहूर्तभर मे (लगभग आधे घटे में) मैंने कपिञ्जल नाम के मुनिकुमार को देखा—यह कपिञ्जल (पुण्डरीक का) ऐसा योग्य मित्र था जैसा कि सौन्दर्य का यौवन होता है, अथवा यौवन का कामदेव होता है, अथवा कामदेव का वसन्त होता है, अथवा वसन्त का दक्षिणी पवन होता है। वह बुढ़ापे से श्वेत बालों वाले कञ्चुकी के मार्ग का अनुसरण करता हुआ ऐसे चला आ रहा था जैसे कि (श्वेत) चाँदनी के मार्ग का अनुसरण करती हुई प्रात.कालीन धूप (बालातप) आती है। और समीप आये हुए इसकी आकृति मैंने ऐसी देखी कि मानो वह परेशान थी, शोक से युक्त थी, शून्य (नष्टचैतन्य) थी, कुछ

परताभिप्रेतमाकारमलक्षयम्। उत्थाय च कृतप्रणामा सादरं स्वयमासनमुपाहरम्। उपविष्टस्य च बलादनिच्छतोऽपि प्रक्षाल्य चरणावुपमृज्य चोत्तरीयांशुकपल्लवेनाव्यवधानायां भूमावेव तस्यान्तिके समुपाविशम्। अथ मुहूर्तमिव स्थित्वा किमपि विवक्षुरिव स तस्यां समीपोपविष्टायां तरलिकायां चक्षुरपातयत्। अहं तु विदिताभिप्राया दृष्ट्यैव 'भगवन्, अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात्। अशङ्कितमभिधीयताम्' इत्यवोचम्। एवमुक्तश्च मया कपिञ्जलः प्रत्यवादीत्—'राजपुत्रि, किं ब्रवीमि। वागेव मे नाभिधेयविषयमवतरति त्रपया। क्व कन्दमूलाशी शान्तो वननिरतो मुनि-

मिव सखेदमिव शून्यमिव नष्टचैतन्यमिवार्थिनमिव मार्गणमिवालुपरतमपरिपूर्णमभिप्रेत वाञ्छित यस्मिन्नेताद्दशमाकारमाकृतिमलक्षयमाकलयम्। उत्थाय च कृत प्रणामो नमस्कारो ययैवभूताह सादरं सबहुमान स्वयमात्मनासन विष्टरमुपाहरमनयम्। तत्रोपविष्टस्यासीनस्य च बलाद्धठाद-निच्छतोऽप्यवाञ्छतोऽपि चरणौ पादौ प्रक्षाल्य धावन कृत्वोत्तरीयांशुकमुपसंव्यानांशुक तस्य पल्लवेनांशुकेनोपमृज्य मार्जन कृत्वा तस्यान्तिके तत्समीपेऽव्यवधानाया केवलाया भूमावेव समुपाविशमतिष्ठम्। अथेत्यानन्तर्ये। मुहूर्तमिव स्थित्वा किमपि विवक्षुरिव वक्तुमिच्छुरिव स कपिञ्जलस्तस्यां समीपोपविष्टाया तरलिकाया चक्षुर्नेत्रमपातयत्पातितवान्। अहं त्विति। तु पुनरर्थक। दृष्ट्यैव दृशैव विदितो ज्ञातोऽभिप्राय आशयो यया सैवभूताहमित्यवोचमित्य-कथयम्। इतिवाच्यमाह—भगवन्निति। हे भगवन् हे स्वामिन्, अस्मच्छरीरादिय तरलिका-ऽव्यतिरिक्ता अभिन्ना, अतोऽशङ्कित शङ्कारहितं यथा स्यात्तथाभिधीयता कथ्यताम्। एव पूर्वोक्तप्रकारेण मयोक्तश्च कपिञ्जल प्रत्यवादीत्प्रत्यवोचत्। किमुवाचेत्याह—राजपुत्रीति। हे राजपुत्रि, कि ब्रवीमि किं कथयामि। वागेव वचनमेव त्रपया लज्जयाभिधेयं विषय वाच्य-गोचर नावतरति नायाति। क्वेति। कन्दमूलाशी शान्तो वननिरतोऽरण्यासक्तो मुनिजन क्व।

प्रार्थना कर रही थी, अथवा उसके हृदय के भीतर कोई अभिप्राय विद्यमान था, जो प्रकट नहीं था। और उठकर प्रणाम किये हुई मैंने स्वय आदरपूर्वक आसन लाकर दिया। बैठ गये हुए उसके न चाहते हुए के भी पाँवों को हठात् धोकर तथा उत्तरीय के आचल से पोंछ कर उसके समीप ही खाली[1] जमीन पर ही बैठ गयी। फिर कुछ देर तक मौन रहकर कुछ कहना चाहते हुए-से उसने उस मेरे समीप बैठी हुई तरलिका पर दृष्टि डाली। और मैं (उसकी) दृष्टि से ही (उसका) आशय जान गयी और कहा भगवन्! यह तो मेरे अपने शरीर से पृथक् नहीं है, आप निर्भय होकर (अथवा हिचकिचाहट के विना ही) कहिये"—

मेरे द्वारा ऐसा कहे गये कपिञ्जल ने उत्तर दिया—"राजपुत्री! क्या कहूँ! लज्जा के कारण मेरी वाणी ही कथनीय विषय पर नहीं उतरती (अर्थात् मुझे कहते हुए लज्जा आती है) कहाँ तो हम कन्द मूल, और फलों को खाकर जीवन निर्वाह करने वाले, आत्मनियन्त्रक तथा वनों में रहने के अभ्यासी (वन में रहकर प्रसन्न रहने वाले) मुनिलोग हैं और कहाँ यह इन्द्रिय-

१. अव्यवधानायाम् = भूमि तथा मेरे बीच किसी भी वस्तु आसन आदि से रहित अर्थात् नंगी जमीन पर।

जनः, क वायमनुपशान्तजनोचितो विषयोपभोगाभिलाषकलुषो मन्मथविविधविलास-संकटो रागप्रायः प्रपञ्चः। सर्वमेवानुपपन्नमालोकय। किमारब्धं दैवेन। अयत्नेनैव खलूपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनम्। न जाने किमिद वल्कलाना सदृशम्, उताहो जटाना समुचितम्, कि तपसोऽनुरूपम्, आहोस्विद्धर्मोपदेशाङ्गमिदम्। अपूर्वेयं विडम्बना केवलम्। अवश्यकथनीयमिदम्। अपर उपायो न दृश्यते। अन्या प्रतिक्रिया नोपलभ्यते। अन्यच्छरणं नालोक्यते। अन्या गतिर्नास्ति। अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते। प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि।

अथ च रागप्रायो रागबहुल प्रपञ्चो मायाविस्तार क्व। प्रपञ्चं विशेषयन्नाह—अनुपशान्तेति। अनुपशान्तो रोषाद्युपयुक्तो यो जनो मनुष्यस्तस्योचितो योग्यो विषय स्रक्चन्दनादिस्तस्योपभोग पुन पुनस्तदासेवन तस्याभिलाष स्पृहा तेन कलुषो मलिनो मन्मथस्य कंदर्पस्य ये विविधा अनेकप्रकारा विलासा विभ्रमास्तै सकट संकीर्णं। सर्वमेव समग्रमेव अनुपपन्नमयुक्तमालोकय पश्य। दैवेनादृष्टेन किमकथ्यस्वरूपमारब्ध प्रारब्धम्। खलु निश्चयेन। अयत्नेनैव प्रयास विनैवेश्वरो भगवाञ्जनमुपहासास्पदता परिहासधामतां नयति प्रापयति। न जाने इति। नाह जानामि इद कि वल्कलाना सदृशं योग्यम्। उताहो अथवा जटानां सटानां समुचित योग्यम्। किं तपसो नियमविशेषस्यानुरूप सदृशम्। आहोस्विदिति तर्के। इदं धर्मोपदेशस्याङ्गं कारणम्। केवलमपूर्वाभिनवा विडम्बना कदर्थना। अवश्य निश्चयेनेद कथनीयं प्रतिपादनीयम्। एतस्मिन्नर्थे हेतुमाह—अपर इति। अपर एतद्व्यतिरिक्त उपाय कारण न दृश्यते नेक्ष्यते। अन्या प्रतिक्रिया चिकित्सा नोपलभ्यते न प्राप्यते। अन्यदेतद्व्यतिरिक्तं शरणमाश्रयणस्थल नालोक्यते न विलोक्यते। अन्यैतद्भिन्ना गति प्रकारान्तर नास्तीत्यर्थः। उक्तवैपरीत्यदूषणमाह—अकथ्येति। तस्मिन्नप्रतिपाद्यमाने महाननर्थस्योपनिपातोऽकस्मात्पतन जायते निष्पद्यते। भवतु, का न क्षतिरित्याशयेनाह—प्राणेति। प्राणपरित्यागेनापि जीवितव्यावरोपणेनापि सुहृदां

जय से रहित—अशान्त—लोगों के योग्य, इन्द्रियसुखों (विषयों) का उपभोग करने की प्रबल इच्छा से मलिन हुआ, कामदेव की विविध क्रीडाओं से ठसाठस भरा हुआ,[1] अधिकतर प्रेमावेग से प्रभावित यह प्रपञ्च है—विस्तार है (सासारिक अस्तित्व की सत्ता है)। देखो, भाग्य ने यह क्या करनो आरम्भ कर दिया है, सभी सर्वथा अनुचित है! निश्चय ही, परमात्मा, सरलता से ही मनुष्य को उपहास का विषय बना देता है! पता नहीं, यह वल्कल वस्त्रों के योग्य है, अथवा जटाओं के लिये उचित है, क्या तपस्या के अनुकूल है अथवा किसी धार्मिक उपदेश का अंश है! यह तो निरी कोई नयी दिल्लगी है! किन्तु यह कुछ ऐसी बात है कि इस को कहना ही होगा। इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसकी कोई दूसरी चिकित्सा[2] नहीं है। कोई दूसरा आश्रयस्थल नहीं दिखायी देता। कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। यदि इसको न कहा जाय तो एक बड़ी आपत्ति आ पड़ेगी। मित्र के प्राणों की रक्षा तो अपने प्राण देकर भी

---

१ सकट = संकीर्णं। २ प्रतिक्रिया = चिकित्सा।

'अस्ति भवत्याः समक्षमेव स मया तथा निष्ठुरमुपदर्शितकोपेनाभिहितः। तथा चाभिधाय परित्यज्य तं तस्मात्प्रदेशादुपजातमन्युरुत्सृष्टकुसुमावचयोऽन्यप्रदेशमगमम्। अपयातायां च भवत्यां मुहूर्तमिव स्थित्वैकाकी किमयमिदानीमाचरतीति सजातवितर्कः प्रतिनिवृत्त्य विटपान्तरितविग्रहस्त प्रदेश व्यलोकयम्। यावत्तत्र त नाद्राक्षम्। आसीच्च मे मनस्येवम्—'किं नु मदनपरायत्तचित्तवृत्तिस्तामेवानुसरन्गतो भवेत्। गतायां च तस्यां लब्धचेतनो लज्जमानो न शक्नोति मे दर्शनपथमुपगन्तुम्। आहोस्वित्कुपितः परित्यज्य मां गतः। उतान्वेषमाणो मामेव प्रदेशमन्यमितः

मित्राणामसव प्राणा रक्षणीया रक्ष्या इति हेतो कथयामि ब्रवीमि। अस्तीति। भवत्यास्तव समक्षमेव प्रत्यक्षमेव। यदा कुमारेण पारिजातमञ्जरी तव कर्णावतंसीकृता तदा त्वदायत्तत्वात्पतितामक्षमालामपि नाज्ञासीत्। तस्मिन्व्यामोहावसरे स पुण्डरीक उपदर्शित कोपो येनैवभूतेन मया तथा निष्ठुर रूक्षमभिहित कथितमस्ति। तथा च तेन प्रकारेण चाभिधाय कथयित्वा त पुण्डरीक परित्यज्य तस्मात्प्रदेशात्। उपेति। उपजात उत्पन्नो मन्यु कोपो यस्य स। उत्सृष्टेति। उत्सृष्टस्त्यक्त कुसुमानां पुष्पाणामवचयो ग्रहण येन स। समित्कुशकुसुमावचयनिमित्तमागत तदपि प्रयोजन कोपेन परित्यक्तमिति भाव। एवविधोऽहमन्यप्रदेश तदितरवनविभागमगममव्रजम्। अथ च भवत्यामपयातायां गतायां मुहूर्तमिव स्थित्वैकाक्यद्वितीयोऽय पुण्डरीक इदानीं साप्रत किमाचरति किमाचरण करोतीति सजातो वितर्को विकल्पो यस्य सोऽह प्रतिनिवृत्य व्याघुट्य विटपैर्वृक्षैरन्तरितस्तिरोहितो विग्रहो यस्यैवभूतस्त प्रदेश व्यलोकयमपश्यम्। यावत्काल तत्र तस्मिन्प्रदेशे त पुण्डरीक नाद्राक्ष न व्यलोकिषम्, तदा मे मम मनसि चित्त एवमग्रे प्रतिपाद्यमानमासीदभूत्। किं तदित्याह—किं न्विति। अव्ययानामनेकार्थत्वात् किं नु कदाचिन्मदनेनानङ्गेन परायत्ता पराधीना चित्तवृत्तिर्यस्यैवभूतस्तामेव गन्धर्वकन्यकामेवानुसरन्ननुव्रजन्गतो भवेत्। तस्यां गतायां च सत्यां लब्धा चेतना चैतन्य येन स। विशेषेण लज्जमानस्त्रपा कुर्वाणो मे मम दर्शनपथमालोकनमार्गमुपगन्तु प्राप्तुं न शक्नोति न समर्थो भवति। आहोस्विदिति। आहोस्विद्वितर्के। कुपित कोप प्राप्त सन्मा परित्यज्य विहाय गत प्रस्थित। उतेति। उताथवा मामेवान्वेषमाणो वीक्षमाण इतोऽन्य प्रदेश समाश्रित स्यात्। इत्येव विकल्प-

करनी चाहिये—इसलिये कहता हूँ। आपकी उपस्थिति मे ही क्रोध प्रदर्शित करने वाले मैंने उसको उस कठोरता के साथ कहा था। और उस प्रकार उसको कहकर क्रोधित मैं फूल चुनना छोड़कर उस स्थान से दूसरे स्थान पर चला गया। और आपके चले आने पर, कुछ कर रहा होगा इस प्रकार की उत्कण्ठा से युक्त हुआ लौट आया। अपने आप को वृक्षकी ओट मे करके मैंने उस स्थान पर दृष्टि डाली। और जब मैंने उसको वहाँ नहीं देखा तो मन मे ऐसे विचार उठे—हो सकता है कि कामदेव के अधीन मानसिक व्यापारों वाला वह उसी के पीछे पीछे चला गया होगा! और उसके चले जाने पर होश मे आया हुआ तथा लज्जित हुआ अब मेरी दृष्टि की पहुँच मे नहीं आ सकता हो। अथवा क्रुद्ध होकर मुझे त्यागकर चला गया हो अथवा मुझे ही ढूढता हुआ यहाँ से किसी दूसरे स्थान पर पहुँच गया हो।"—ऐसी विविध प्रकार की

समाश्रितः स्यात्' इत्येवं विकल्पयन्कचित्कालमतिष्ठम्। तेन तु जन्मनः प्रभृत्यनभ्यस्तेन तस्य क्षणमप्यदर्शनेन दूयमानः पुनरचिन्तयम्—'स कदाचिद्धैर्यस्खलनविलक्षः किंचिदनिष्टमपि समाचरेत्। न हि किंचिन्न क्रियते ह्रिया। तन्न युक्तमेनमेकाकिनं कर्तुम्' इत्यवधार्यान्वेष्टुमादरमकरवम्। अन्वेषमाणश्च यथायथा नापश्यं त तथातथा सुहृत्स्नेहकातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशङ्कमानस्तरुलतागहनानि चन्दनवीथिकालतामण्डपान्सरःकूलानि च वीक्षमाणो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिरं व्यचरम्। अथैकस्मिन्सरःसमीपवर्तिनि निरन्तरतया कुसुममय इव मधुकरमय इव परभृत-

यन्विकल्पना कुर्वन्कचित्कालमतिष्ठं स्थितवान्। तेन त्विति। जन्मनः प्रभृति जन्म मर्यादीकृत्यानभ्यस्तेनापरिचितेन तस्य पुण्डरीकस्य क्षणमप्यदर्शनेनानवलोकनेन दूयमानो दुःखं कुर्वाणः। पुनरहमचिन्तयं चिन्तितवान्। क्षणमपीत्यनेन कदाचिदपि तेन सह नाहं वियुक्तः, इदानीं भूयान्कालमादाय विलम्बित इति खेदातिशयप्रदर्शनमिति भावः। कदाचिदिति। कदाचित्संभावनामात्रमेतत्। धैर्यस्य स्खलनं भ्रंशस्तेन विलक्षो वीक्षापन्नः किंचिदनिर्दिष्टनामकमनिष्टमप्यसमीहितमपि समाचरेत्समाचरणं कुर्यात्। हि निश्चितम्। ह्रिया लज्जया किंचिन्न न क्रियते। अपि तु क्रियत एवेत्यर्थः। 'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयतः' इति न्यायात्। तत्तस्माद्धेतोरेकाकिनमद्वितीयं कर्तुं विधातुं न युक्तं नोचितमिति पूर्वोक्तप्रकारेणावधार्य निश्चित्यान्वेष्टुमन्वेषणां कर्तुमादरमुद्योगमकरवमघटयम्। अहमन्वेषमाणो यथातथा सुहृन्मित्रं तस्य स्नेहः प्रीतिस्तेन कातरेण भीरुणा मनसा तत्तदशोभनममङ्गलमाशङ्कमानः आरेक्यविषयीक्रियमाणस्तरुषु वृक्षेषु यानि लतागहनानि गह्वराणि चन्दनवीथिकासु ये लतामण्डपा जनाश्रयास्तान्सरःकूलानि च कासारतीराणि च निपुणमेकतानं वीक्षमाणो विलोक्यमान इतस्ततो दत्ता दृष्टिर्येन सोऽहं सुचिरं चिरकालं व्यचरमभ्रमम्।

अथेति। इतस्ततो विचरणानन्तरमेकस्मिन्वसन्तजन्मभूमिभूते लतागहने कृतावस्थान

कल्पनाएँ करता हुआ मैं (वहाँ) कुछ देर बैठा रहा। किन्तु जन्म से लेकर अभीतक कभी अनुभव में न आये हुए, क्षणभर के लिये भी उसके उस दर्शनाभाव से पीड़ित होते मैंने फिर सोचा—"अपने धैर्य (धीरज, स्थिरता) के छूट जाने के कारण लज्जित हुआ वह, कहीं किसी अरुचिकर बात को तो नहीं कर लेगा। क्योंकि कोई ऐसा काम नहीं है जिसको लज्जा से नहीं किया जाता। इसलिये उसको अकेला छोड़ देना उचित नहीं है, यह निश्चय करके मैंने उसको ढूढने पर ध्यान दिया और ढूँढ़ते हुए मैंने, जितना जितना उसको नहीं देखा उतना ही अधिक अपने मित्र स्नेह-से भयभीत मन से (उसके लिये) नाना प्रकार के अमगलों की आशका करता हुआ, वृक्षों तथा बेलों की झाड़ियों को, चन्दन वृक्षों से ढके मार्गों में बने लताकुञ्जों को तथा तालाबों के तटों को खूब ध्यान से देखता हुआ इधर-उधर अपनी दृष्टि को डालते हुए बहुत देर तक घूमता रहा।

और कुछ समय पश्चात् एक सरोवर के समीप स्थित (समीप उगे हुए) (घने) होने के कारण सर्वथा फूलों का बना अथवा भौंरों का बना अथवा कबूतरों का बना अथवा मोरों का

मय इव मयूरमय इवातिमनोहरे वसन्तजन्मभूमिभूते लतागहने कृतावस्थानम्, उत्सृष्ट-सकलव्यापारतया लिखितमिवोत्कीर्णमिव स्तम्भितमिवोपरतमिव प्रसुप्तमिव योग-समाधिस्थमिव, निश्चलमपि स्ववृत्ताच्चलितम्, एकाकिनमपि मन्मथाधिष्ठितम्, सानु-रागमपि पाण्डुतामावहन्तम्, शून्यान्तःकरणमपि हृदयनिवासिदयितम्, तूष्णी-कमपि कथितमदनवेदनातिशयम्, शिलातलोपविष्टमपि मरणे व्यवस्थितम्, शाप-

तं कुमार पुण्डरीकमद्राक्षमपश्यमित्यन्वय.। लतागहन विशेषयन्नाह—सर इति। सरस कासारस्य समीपवर्तिनि पार्श्वस्थायिनि निरन्तरतया निबिडतया कुसुममय इव पुष्पमय इव, मधुकरमय इव भ्रमरमय इव। एतेन पुष्पाणामतिसुरभित्व सूचितम्। तेन भ्रमराणा बाहुल्यमिति भाव। परेति। परभृता कोकिलास्तन्मय इव। एतेन सहकारोद्रेक सूचित। स्वतलादीना योगे पूर्वस्य पुंवद्भाव। यद्वा अत्र पुरुषस्यैव ग्रहणम्। मयूरा कलापिनस्तन्मय इव। एतेनातिरमणीयत्वं सूचितम्। अत एवातिमनोहरेऽत्यभिरामे। अथ पुण्डरीक विशेष-यन्नाह—उत्सृष्ट इति। तदायत्तत्वादुत्सृष्टस्त्यक्त सकलव्यापारो येन तस्य भावस्तत्ता तया लिखितमिव। चित्रितमिव, उत्कीर्णमिवोत्कोरितमिव, स्तम्भितमिव कीलितमिव, उपरतमिव, मृतमिव, प्रसुप्तमिव शयितमिव। योगेति। योगस्य चित्तवृत्तिनिरोधस्य य समाधिरर्थमात्रा-वभासनरूपस्तत्रस्थमिव। अथ विरोधालकारप्रदर्शनपूर्वक तमेव विशेषयन्नाह—निश्चलमिति। निश्चल नि प्रकम्पमपि स्ववृत्तात्स्वाचाराच्चलितमिति विरोध। तत्परिहारपक्षे चलितं भ्रष्ट-मित्यर्थ.। एवमग्रेऽपि स्वबुद्ध्या ज्ञेयम्। एकाकिनमप्यद्वितीयमपि मन्मथेन मनोभवेनाधि-ष्ठितमाश्रितमिति विरोध, द्वितीयाधिष्ठितत्वेनैकाकित्वाभावात्। सानुरागमिति। अत्रानुरागो रक्तिमा रक्तत्वं तेन सहितमपि पाण्डुता श्वेततामावहन्तमादधानमिति विरोध। रक्तश्वेतयो स्वारसिकविरोधात्। शून्येति। शून्यमन्यकर्तव्यतेच्छारहितमन्त करण यस्यैवंविधमपि हृदये निवासिनी निवसनशीला दयिता यस्येति विरोध। कस्यचित्सद्भावे शून्यत्वाभावात्। तत्प-रिहारस्तु शून्य ध्यानान्तरवर्जित केवल तदासक्तचित्तत्वादिति भाव। तूष्णीति। तूष्णी-

बना प्रतीत होते अत्यन्त आकर्षक, वसन्त के जन्म स्थान-सरीखे प्रतीत होते एक लताकुञ्ज में आसन लगाये हुए (बैठे हुए) उस पुण्डरीक को मैंने देखा। वह पुण्डरीक सब प्रकार की चेष्टाओं को छोड़ देने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो (चित्र में) बना हुआ हो, अथवा (स्तम्भ पर) खोद दिया गया हो, अथवा (पक्षाघात से) शक्तिहीन कर दिया गया हो, अथवा मर गया हो, गहरी नींद मे स्थित हो, अथवा योगसमाधि लगाकर बैठा हो, यद्यपि वह गतिरहित था, तो भी, अपने शुभ शील से भटक गया था, यद्यपि वह अकेला था तो भी वह कामदेव से युक्त था (अर्थात् कामदेव के वश में था), यद्यपि वह प्रम से भरा हुआ था (साथ ही लालिमा से युक्त था) तो भी वह पीलेपन को धारण किये हुये था (पीला पड़ चुका था), यद्यपि उसका मन विचार-शून्य (खाली) था तो भी हृदय में रहने वाली है प्रिया जिसके ऐसा था (उसके हृदय में उसकी प्रिया स्त्री बसी हुई थी), यद्यपि वह मौन था

प्रदानभयादिवादत्तदर्शनेन कुसुमायुधेन सन्ताप्यमानम्, अतिनिःस्पन्दतया हृदयनिवासिनी प्रिया द्रष्टुमन्तःप्रविष्टैरिवासह्यसंतापसत्रासप्रलीनैरिव मनःक्षोभप्रकुपितैरिवोन्मुच्य गतैरिन्द्रियैः शून्यीकृतशरीरम्, निःस्पन्दनिमीलितेनान्तर्ज्वलन्मदनदहनधूमाकुलिताभ्यन्तरेणेवाक्षिपक्ष्मान्तरविवरवान्तानेकधारमनवरतमीक्षणयुगलेन बाष्पजलदुर्दिनमुत्सृजन्तम्, आलोहिनीमधरप्रभामनङ्गाग्नेः प्रदहतो हृदयादूर्ध्व-

कमपि मौनावलम्बिनमपि कथितो निवेदितो मदनवेदनाया अतिशय उत्कर्षो येनेति विरोध । मौनकथनत्वयोर्विरुद्धधर्मत्वात् । शिलेति । शापेति । शिलातल उपविष्टमासीनमपि मरणे व्यवस्थित चलितमिति विरोध । आसीनचलितत्वयोर्विरोधात् । शापेति । शापप्रदानस्य यद्भय भीतिस्तस्मादिवादत्त स्वस्य दर्शन येनैवभूतेन कुसुमायुधेन कदर्पेण सताप्यमान पीड्यमानम् । अतीति । अतिशयेन यो नि स्पन्दो नि क्रियत्व तस्य भावस्तत्ता तया हृदयवासिनीं प्रियां द्रष्टु विलोकयितुमन्त प्रविष्टैरिवान्तर्गतैरिव । असह्येति । असह्य. सोढुमशक्यो य. सताप सज्वरस्तस्य सत्रासाद्भयात्प्रलीनैरिव नष्टैरिव । मनस इति । मनसो हृदयस्य क्षोभोऽन्यथाप्रवर्तनं तेन प्रकुपितैरिव कोपं प्राप्तैरिव । अत एवोन्मुच्य त्यक्त्वा गतैरेवंभूतैरिन्द्रियै. करणैः शून्यीकृत शरीरं यस्य स तम् । इन्द्रियाणां तत्कार्यकारित्वादेवेन्द्रियवत्ता तदभावाच्छून्यीकृतमित्यर्थं । पुन किं कुर्वन्तम् । अनवरत निरन्तरमीक्षणयुगलेन नेत्रयुग्मेन बाष्पजलदुर्दिनमुत्सृजन्त त्यजन्तम् । नेत्रयुग्म विशेषयन्नाह—अन्तरिति । अन्तर्मध्ये ज्वलन्प्रज्वलन्यो मदनदहन कामाग्निस्तस्य धूमो दहनकेतन तेनाकुलित व्याप्तमभ्यन्तर मध्य यस्यैवंभूतेनेव । अत एव नि स्पन्द यथा स्यात्तथा निमीलितेन मुद्रितेन । अथ वाष्पजलदुर्दिनं विशेषयन्नाह—अक्षीति । अक्षिपक्ष्मणां नेत्ररोम्णा यानि विवराणि छिद्राणि तेभ्यो वान्ता उद्गीर्णा अनेकधारा यस्मिन् । आलोहिनीति । हृदय प्रदहतोऽनङ्गाग्नेरूर्ध्वंसर्पिणीमुपरिगामिनीं शिखामिव ज्वालामिवालोहिनीं रक्तामधरप्रभां दन्तच्छदरुचमादाय गृहीत्वा निष्प-

तो भी उसने कामपीड़ा की अतिशयिता को कह दिया था, यद्यपि वह एक चट्टान पर बैठा था तो भी उसने अपना स्थितिस्थान मरण में किया हुआ था—(मरने का निश्चय किया हुआ था,) शाप दिये जाने के भय के कारण दर्शन न देत हुए कामदेव द्वारा दु:खी किया जा रहा था, अत्यन्त निश्चेष्ट होने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कि हृदय मे बसी हुई प्रिया को देखने के लिये भीतर घुस गयी हुई, मानो असह्य यातनाओं के डर से ही छिप गयी हुई, उसके मन के क्षोभ को देखकर क्रुद्ध होकर छोड़कर गयी हुई इन्द्रियों ने उसका शरीर (अपने से) रहित कर दिया था; अपनी निश्चल तथा मुँदी हुई, मानो भीतर जलती हुई कामदेव रूप अग्नि के धुँए से व्याकुल भीतरी भागों वाली, दोनों आँखों से वह निरन्तर आँखों की बरौनियों के भीतर विद्यमान खाली स्थानों में से अनेक धाराओं में बहाये हुए आसुओं से निरन्तर वर्षा काल को उत्पन्न कर रहा था मानो कि उसकी आँखें धुँए से दुखी हों, वह समीपवर्तिनी बेलों के पुष्पों के केसर को अपने उन उच्छ्वासों से चञ्चल कर रहा था जो भीतर धधक रही प्रेमाग्नि की ऊपर को उठती हुई ज्वाला सरीखी अपने अधरों की सर्वथा लाल कान्ति को लेकर मुख से

संसर्पिणीं शिखामिवादाय निष्पतद्भिरुच्छ्वासैश्चरलीकृतासन्नलताकुसुमकेशरम् , वामकपोलशयनीकृतकरतलतया समुत्सर्पद्भिरमलैर्नखांशुभिर्विमलीकृतमच्छाच्छचन्दनरसरचितललाटिकमिव ललाटदेशमुद्वहन्तम् , अचिरापनीतपारिजातकुसुमकर्णपूरतया सशेषपरिमलामोदलोभोपसर्पिणा कलविरुतच्छलेन मदनसंमोहनमन्त्रमिव जपता मधुकरकुलेन सनीलोत्पलमिव सतमालपल्लवमिव श्रवणदेशं दधानम् , उत्कण्ठाज्वररोमाञ्चव्याजेन प्रतिरोमकूपमिपतितानां मदनशराणां मध्ये कुसुम-

निष्पतद्भिर्निर्गच्छद्भिरुच्छ्वासैश्चरलीकृतानि कम्पनीकृतान्यासन्नलताकुसुमकेसराणि समीपस्थवल्लीपुष्पकिंजल्कानि येन स तथा तम् । वामेति । वामकपोलस्य शयनीकृतं तल्पीकृतं यत्करतलं तस्य भावस्तत्ता तया समुत्सर्पद्भिरूर्ध्वं प्रसरद्भिर्नखांशुभिर्नखमयूखैर्विमलीकृतं श्वेतीकृतमत एव । अच्छाच्छेति । निर्मलो यश्चन्दनरसस्तेन रचिता निर्मिता ललाटिका तिलकविशेषो यस्मिन्नेवंभूतमिव ललाटदेशमलिकप्रदेशमुद्वहन्तं धारयन्तम् । अचिरेति । अचिरापनीत सद्योनीत यत्पारिजातकुसुम मन्दारपुष्प तस्य यत्कर्णपूरं तस्य भावस्तत्ता तया मधुकरकुलेन भ्रमरसमूहेन सनीलोत्पलमिव सेन्दीवरमिव, सतमालपल्लवमिव तापिच्छकिसलयमिव, श्रवणदेशं कर्णप्रदेशं दधान धारयन्तम् । अथ मधुकरकुल विशेषयन्नाह—सशेषेति । सशेषौ समग्रौ यावामोदपरिमलौ तत्र विदूरग सुरभिरामोदो विमर्दोत्थ पुन. सुरभि परिमलः । 'स आमोदो विदूरग । विमर्दोत्थ परिमल ' इति कोश । तयोर्यो लोभस्तृष्णा तेनोपसर्पिणा समीपागमनशीलेन । किं कुर्वता तेन । कल मधुर यद्विरुत झंकारस्तस्य छलेन मिषेण मदनस्य संमोहनमन्त्र वशीकरणमन्त्र जपतेव जाप कुर्वतेव । पुन. किं कुर्वन्तम् । उत्कण्ठेति । उत्कण्ठोत्कलिका तया यो ज्वरस्तापस्तेन यो रोमाञ्चो रोमोद्गमस्तस्य व्याजेन व्यपदेशेन प्रतिरोमकूपं निपतितानां लग्नानां मदनशराणां कामबाणानां मध्ये कुसुमलक्षणा ये शरा बाणास्तेषां शल्यशकलानि त्रुटितबाणखण्डानि मध्ये प्रविष्टानि किंचिद्बहिर्दृश्यमानानि तेषा निकरं समूहमिवाङ्गलग्न बिभ्राणं दधानम् । पुन किं कुर्वाणम् । दक्षिणकरेणेतस्तत पर्यस्तां मुक्तावलीमेकावलीमुरसि हृदये धारयन्त बिभ्राणम् । कीदृशीम् ।

निकल रहे थे, वह ऐसे मस्तक को धारण किये हुए था जो बाँयी गाल का आश्रय बनाये हुई हथेली होने के कारण ऊपर को उठती हुई स्वच्छ नख किरणों से श्वेत किया हुआ था, और मानो उसपर अत्यन्त विशुद्ध चन्दन के लेप से श्वेतचिह्न (ललाटिका) बनाया हुआ था, वह ऐसे कर्णप्रदेश को धारण किये हुए था कि जो अभी-अभी उतारे हुए पारिजात पुष्प-रूपी कर्णाभरण के कारण अब तक बची हुई परिमल की गन्ध के लोभ से मडराते हुए, अपनी मधुर गुंजार के बहाने मानो प्रेम मूर्छा को उत्पन्न करने वाले मंत्र का जाप करते हुए, भ्रमरसमूह के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह मानो नीले कमल से सुशोभित हो अथवा तमाल के पत्तों से सुशोभित हो; वह उत्कण्ठा-भिवा की अभिलाषा से बढ़े हुए ज्वर के कारण हुए रोमाञ्च के बहाने मानो (उसकी त्वचा के) एक एक रोमछिद्र पर गिरे हुए कामदेव के बाणों के टुकड़ों शरीर में घसे हुए टुकड़ों को धारण किये हुए था, (रोमाञ्च नहीं थे अपितु प्रत्येक रोमछिद्र में

शरशल्यशकलनिकरमिवाङ्गलग्नं बिभ्राणम्, दक्षिणकरेण च स्फुरितनखकिरण-निकरां करतलस्पर्शसुखकण्टकितामिव मुक्तावलीमविनयपताकामुरसि धारयन्तम्, मदनवशीकरणचूर्णेनेव कुसुमरेणुना तरुभिराहन्यमानम्, आत्मरागमिव संक्रामयद्भि-रासन्नैरनिलचलितैरशोकपल्लवैः स्पृश्यमानम्, सुरताभिषेकसलिलैरिवाभिनवपुष्पस्त-बकमधुशीकरैर्वनश्रियाभिषिच्यमानम्, अलिनिवहनिपीयमानपरिमलैरुपरिपतद्भिश्च-म्पककुड्मलैस्तप्तशरशल्यकैरिव सधूमैः कुसुमशरेण ताड्यमानम्, अतिबहलवनामोद-

---

स्फुरित प्रद्युतितो नखकिरणानां निकर समूहो यस्या सा ताम्। नखकिरणानां दीर्घतीक्ष्णत्व-रूपकण्टकसाम्यादुत्प्रेक्षते—करतलेति। करतलस्य यस्स्पर्शसुखं तेन कण्टकितामिव। श्वेतत्व-साम्यादाह—अविनयेति। अविनयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमस्तस्य पताका ध्वजामिव। पुन प्रकारान्तरेण तमेव विशिनष्टि—मदनेति। कुसुमरेणुना पुष्पधूल्या तरुभिर्वृक्षैराहन्यमान ताड्यमानम्। शुक्लत्वसाम्यादाह—मदनस्य यद्वशीकरणचूर्णं तेनेव। आत्मेति। आत्मनो राग आरुण्यमनुरागरूपा रतिश्च तं सङ्क्रामयद्भिरिव संक्रमण कारयद्भिरिवासन्नैः समीपस्थैरनिलचलि-तैर्वायुना कम्पितैरेवविधैरशोकपल्लवै स्पृश्यमान स्पृश्यमानम्। वनश्रिया काननलक्ष्म्या अभिनवो नूतनो य पुष्पाणां कुसुमानां स्तबको गुच्छकस्तस्य शीकरै कणैरभिषिच्यमानमभिषेक-विषयीक्रियमाणम्। तत्रोद्दीपकत्वसाम्येनाह—सुरतेति। सुरतलक्षण यद्राज्य तदर्थमभिषे-कसलिलैरिव। अत्राभिषेकपदसामर्थ्यादेव सुरते राज्यत्वं द्योत्यते—अलीति। अलिनिवहैर्भ्रमर-समूहैर्निपीयमान आस्वाद्यमान परिमलो येषा ते। उपरिपतद्भिरुपरिष्टात्क्षरद्भिरेवभूतैश्चम्पका हेमपुष्पकास्तेषा कुड्मलैर्मुकुलै कृत्वा कुसुमशरेण कदर्पेण ताड्यमानम्। चम्पककुड्मलानां स्वत एव पीतत्वाद् भ्रमराणां च कृष्णत्वादुत्प्रेक्षामाह—सधूमैस्तप्तशरशल्यकैरिव। अत्र शल्यकानि शरप्रान्तवर्तिलोहरूपाणीत्यर्थं। अतीति। अतिबहलोऽतिनिबिडो यो वनामोदो वनपरिमलस्तेनो-

---

गिराये हुए बाण ही निकल आये थे, किन्तु उनके अग्रभाग रोमछिद्रों में ही लगे रह गये थे), और अपने दायें हाथ से वह अपनी छाती पर एक मोतियों का हार थामे हुए था—उस हार पर नख की किरणों का समूह झिलमिल कर रहा था इस कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो हथेली छूने पर उत्पन्न सुख से रोमाञ्चित हो गया था और वह हार मानो उसकी मूर्खता की (सूचक) ध्वजा बना हुआ था, उस पुण्डरीक पर वृक्ष मानो कि कामदेव (प्रणय) के वश मे लाने के चूर्णभूत (ऐन्द्रजालिक चूर्ण सरीखे) पुष्पपराग से आघात कर रहे थे, उस पुण्ड-रीक को मानो अपना लाल रग (तथा प्रणयोन्माद) हस्तान्तरित करते हुए समीपस्थ तथा वायु द्वारा हिलाये गये अशोक-पत्र छू रहे थे, वनश्री उसको मानो प्रणयलीला (सुरत) की तय्यारी के लिये जाने वाले स्नान के लिये प्रयुक्त जलो सरीखे नये नये फूलों के गुच्छों के मधु कणों से स्नान करा रही थी, भ्रमरसमूहों द्वारा पी जाती हुई (उपभोग में लायी जाती हुई) गन्धवाली तथा उसके ऊपर गिरती हुई चम्पक पुष्प की कलियों के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो कामदेव उसको धुँए समेत तपायी हुई शलाकाओं से पीट रहा हो, अत्यन्त घनी वनगन्ध से मदमत्त भौरों की झकार के शब्द से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो दक्षिण पवन

मत्तमधुकरनिकरझंकारनिःस्वनैर्हुंकारैरिव दक्षिणानिलेन निर्भर्त्स्यमानम्, मदकलकोकिलकुलकोलाहलैर्वसन्तजयशब्दकलकलैरिव मधुमासेनाकुलीक्रियमाणम्, प्रभातचन्द्रमिव पाण्डुतया परिगृहीतम्, निदाघगङ्गाप्रवाहमिव कृशिमानमागतम्, अन्तर्गतानलं चन्दनविटपमिव म्लायन्तम्, अन्यमिवादृष्टपूर्वमिवापरिचितमिव जन्मान्तरमिवोपनतम्, रूपान्तरेणेव परिणतम्, आविष्टमिव महाभूताधिष्ठितमिव ग्रहगृहीतमिवोन्मत्तमिव छलितमिवान्धमिव बधिरमिव मूकमिव विलासमयमिव मदनमयमिव

न्मत्ता ये मधुकरा भ्रमरास्तेषा निकर समूहस्तस्य झकारलक्षणा निस्वना शब्दास्तै कृत्वा दक्षिणानिलेन निर्भर्त्स्यमानं तिरस्क्रियमाणम्। शब्दत्वसाम्यादाह—हुकारैरिव। मादृश उद्दीपके विद्यमानेऽपि तव किं सुरतप्रारम्भो न भविष्यत्येवेति साभिमानैरित्यर्थं । मदेति। मदेन हर्षेण कला मनोहरा ये कोकिला पिकास्तेषा कुल तस्य कोलाहलै कलकलै. कृत्वा मधुमासेन चैत्रमासेनाकुलीक्रियमाण व्याकुलीक्रियमाणम्। कोलाहलस्योद्दीपकत्वात्प्रोत्साहकत्वसाम्येनाह—वसन्तेति। वसन्तस्य पुष्पकालस्य जयशब्दास्तेषा कलकलैरिव। प्रभातेति। प्रभातस्य प्रत्यूषस्य यश्चन्द्र कुमुदबान्धवस्तमिव। उभयो साम्यमाह—पाण्डुतेति। पाण्डुतया पाण्डुरत्वेन परिगृहीत स्वीकृतम्। निदाघेति। निदाघो ग्रीष्मकालस्तस्मिन्यो गङ्गाप्रवाह स्वर्धुनीरयस्तद्वदिव कृशिमान कृशत्वमागतं प्राप्तम्। अन्तरिति। अन्तर्गतो मध्यगतोऽनलो वह्निर्यस्मिन्नेवभूतश्चन्दनविटपो मलयजतरुस्तद्वदिव म्लायन्त म्लानता गच्छन्तम्। पूर्वदृष्टावस्थाशून्यत्वादाह—अन्येति। अन्यमिव पूर्वस्माद्भिन्नमिव। असभावितविकारवत्त्वादाह—अदृष्टेति। अदृष्टपूर्वमिवानवलोकितपूर्वमिव। अपरीति। अपरिचितमिवासंस्तवमिव। जन्मेति। जन्मान्तर भवान्तरमुपगतमिव प्राप्तमिव। रूपेति। प्रशमलक्षण परित्यज्य सानुरागलक्षणेन रूपान्तरेण परिणतमिव तन्मयता गतमिव। आविष्टमिव भूतोन्मादवातरोगाभिभूतमिव। महेति। महाभूतानि वेतालास्तैरधिष्ठितमिवाश्रितमिव। ग्रहेति। ग्रहा पिशाचादयस्तैर्गृहीतमिवाधिष्ठितमिव, उन्मत्तमिव क्षीबमिव, छलितमिव छलना प्राप्तमिव, अन्धमिव गताक्षमिव, बधिरमिवाकर्णमिव, मूकमिवास्फुटवाचमिव, विलासमयमिवानन्दमयमिव, मदनमयमिव कदर्पमय-

---

ही हुकारों से उसको झिड़क रहा था, मदोन्मत्त कोयलसमूह के कोलाहलों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो 'वसन्त की जय-कारों से चैत्र महीना उसको क्षुब्ध कर रहा था, प्रात कालीन चन्द्रबिम्ब की भाँति (प्रात काल मे चन्द्रमा की भाँति) पीलेपन ने उसको पकड़ लिया था (वह पीला हो गया था), ग्रीष्मकाल में गङ्गा की धारा की भाँति वह दुर्बल (पतला) हो गया था, भीतर गयी हुई (लगी हुई) आग वाले चन्दन की शाखा की भाँति वह मुरझा रहा था, वह एक भिन्न व्यक्ति-सरीखा अथवा पहले कभी न देखा हुआ सा, अथवा अपरिचित व्यक्ति-सरीखा, अथवा दूसरे जन्म में आया हुआ सरीखा दूसरी आकृति में परिणत हुआ सा प्रतीत हो रहा था। मानों उसपर कोई भूत सवार हो गया हो, अथवा किसी महाराक्षस ने उसको दबा लिया हो, अथवा किसी (अनिष्ट) ग्रह ने पकड़ लिया हो, मानो कि पागल सरीखा, भेष बदले

परायत्तचित्तवृत्तिं परां कोटिमधिरूढं मदनावेशस्य, अनभिज्ञेयपूर्वाकारं तमहमद्राक्षम्। अपगतनिमेषेण चक्षुषा तदवस्थं चिरमुद्वीक्ष्य समुपजातविषादो वेपमानेन हृदयेनाचिन्तयम्—'एवं नामायमतिदुर्विषहवेगो मकरकेतुः, येनानेन क्षणेनायमीदृशमवस्थान्तरप्रकारमप्रतीकारमुपनीतः। कथमेवमेकपदे व्यर्थीभवेदेवंविधो ज्ञानराशिः। अहो बत महच्चित्रम्, तथा नामायमाशैशवाद्धीरप्रकृतिरस्खलितवृत्तिर्मम चान्येषां च मुनिकुमारकाणां स्पृहणीयचरित आसीत्। अत्र त्वितर इव परिभूय ज्ञानमवगणय्य

मिव। परेति। परस्यां महाश्वेतायामायत्ता लग्ना चित्तवृत्तिर्यस्यैवंभूतम्। मदनं कदर्पस्तस्यावेशोऽभ्यासस्तस्य परामुत्कृष्टां कोटिमवस्थामधिरूढमारूढम्। अनेति। अनभिज्ञेयोऽनवसेयः पूर्वाकार आद्याकृतिर्यस्य स तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। अपेति। अपगतो निमेषो निमीलनं यस्यैवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेण तदवस्थं पूर्वावस्थं चिरं चिरकालमुद्वीक्ष्य विलोक्य समुपजात समुत्पन्नो विषादः खेदो यस्य स। वेपेति। वेपमानेन कम्पमानेन हृदयेन चित्तेन अचिन्तयम ध्यायम्। एवमिति। एवममुना प्रकारेण। नामेति कोमलामन्त्रणे। अयमतिशयेन दुर्विषहो दुःसहो वेगो यस्यैतादृशो मकरकेतुः कदर्पो येन कारणेनानेनानङ्गेन क्षणेनायमीदृशमप्रतीकारम प्रतिक्रियमवस्थान्तरप्रकारं दशान्तरप्रकारमुपनीतः प्रापितः। उक्तविपर्यये दूषणमाह—कथमिति। एवंविधो ज्ञानराशिरेतादृशज्ञानसमूह एकपदे युगपत्कथमेव व्यर्थीभवेत्। अत्र वितर्के प्रार्थनाया लिङ्। अहो इत्याश्चर्ये। बतेति खेदे। इदं महच्चित्रं महदाश्चर्यम्। तथा नाम तेन प्रकारेणायमा शैशवादा बाल्यान्मम चान्येषां च मुनिकुमारकाणां स्पृहणीयमभिलषणीयं चरितं यस्यैवंविध आसीदभूत्। अथैनं विशिनष्टि—धीरेति। धीरा स्थिरा प्रकृतिः स्वभावो यस्य स तम्। अस्खलितेति। अस्खलिता अखण्डिता वृत्तिर्यस्य स तम्। अत्र त्विति। अस्मिन्प्रदेश इतर इवान्य इव ज्ञानं परिभूय तिरस्कृत्य तपःप्रभावं तपोमाहात्म्यमवगणय्यावगणनां कृत्वा

हुआ-सा, अन्धा, बहरा अथवा गूँगा सरीखा हो गया था, वह मानो सर्वथा सुललित क्रीडाओं का अथवा प्रेमका बना हुआ हो गया था, दूसरे के अधीन मनोव्यापार वाला था (अपने मन का स्वामी नहीं रहा था), प्रेम के प्रबल प्रभाव की परम सीमा तक पहुँच गया था और उसकी पहली (मूल) आकृति पहचानी अथवा जानी नहीं जा सकती थी।

पलकरहित दृष्टि से उस अवस्था वाले (पुण्डरीक) को बहुत देर तक देख लेने के पश्चात् खिन्न हुए मैंने काँपते हृदय से सोचा—"इस प्रकार यह कामदेव निश्चय ही अत्यन्त असह्य शक्ति वाला है! क्योंकि इसीने इस (पुण्डरीक) को एक ही क्षण मे ऐसी उपायरहित दूसरी प्रकारकी अवस्था में पहुँचा दिया है! (नहीं तो), ऐसा (इतना बड़ा) ज्ञानभंडार क्यों अचानक ही व्यर्थ हो जाता! अहो! दुख है; यह बड़ी अद्भुत बात है! यह (पुण्डरीक) बचपन से ही स्वभाव से स्थिर तथा कभी विचलित न हुए (उचित) आचरण वाला, मेरे तथा दूसरे तपस्विकुमारों के लिये उस (प्रसिद्ध) रीति से ईर्ष्योत्पादक चरित्र वाला था। परन्तु आज सामान्य व्यक्ति की भाँति, अपने ज्ञान का तिरस्कार करके, तपस्याओं के प्रभाव को तुच्छ

तपःप्रभावमुन्मूल्य गाम्भीर्यं मन्मथेन जडीकृतः। सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम्' इति। उपसृत्य च तस्मिन्नेव शिलातलैकपार्श्वे समुपविश्यासावसक्तपाणिस्तमनुन्मीलितलोचनमेव 'सखे पुण्डरीक, कथय किमिदम्' इत्यपृच्छम्। अथ सुचिरसमीलनालग्नमिव कथमपि प्रयत्नेनानवरतरोदनवशात्समुपजातारुणभावमश्रुजलपटलपूरप्लावितमुत्कम्पितमिव सवेदनमिव स्वच्छांशुकान्तरितरक्तकमलवनच्छाय चक्षुरुन्मील्य मन्थरमन्थरया दृष्ट्या सुचिरं विलोक्य मामायततरं निश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणाक्षरम् 'सखे कपिञ्जल, विदितवृत्तान्वोऽपि किं मां पृच्छसि' इति कृच्छ्रेण शनैः शनैरवदत्।

गाम्भीर्यं गम्भीरतामुन्मूल्योच्छेद्य मन्मथेन कदर्पेण जडीकृतो जडतां नीत । सर्वथेति। सर्वप्रकारेणास्खलितमखण्डितं यौवनं तारुण्यं दुर्लभं दुःप्रापम्। उपेति। उपसृत्य समीपमागत्य तस्मिन्नेव शिलातलैकपार्श्वे समुपविश्यासे स्कन्धेऽवसक्तः स्थापितः पाणिः करो येन स तमनुन्मीलितलोचनमेव मुद्रितनेत्रमेवेत्यपृच्छम् इत्यवोचम्। इतिघोत्यमाह—सखे इति। हे सखे पुण्डरीक, कथय निवेदय किमिदम्। अथेति प्रश्नानन्तरम्। मन्थरमन्थरयालसालसया दृष्ट्या सुचिरं चिरकालं यावत् मां विलोक्य निरीक्ष्यायततरं नि.श्वस्य चक्षुरुन्मील्य विमुद्रय कथमपि महता कष्टेन। लज्जेति। लज्जया त्रपया विशीर्यमाणानि विदीर्यमाणान्यक्षराणि यस्मिन्निति क्रियाविशेषणम्। इति शनैः शनैर्मन्दं मन्दमवददवोचदित्यन्वयः। अथ चक्षुर्विशेषयन्नाह—सुचिरेति। सुचिरं चिरकालं यत्समीलनं निमीलनं तेनालग्नमिवान्योन्यसंपृक्तमिव। प्रयत्नेन बलात्कारेणानवरतं निरन्तरं यद्रोदनमश्रुपातस्तद्वशात्समुपजातः समुत्पन्नोऽरुणभावो रक्तता यस्मिन्। अश्विति। अश्रुजलस्य नेत्राम्भसो यत्पटलं वृन्दं तस्य पूरो वृद्धिस्तेन प्लावितं व्याप्तमुत्कम्पितमिवोद्धूतमिव सवेदनमिव सव्यथमिव। अश्रूणा श्वेतत्वसाम्येनाह—स्वच्छेति। स्वच्छमतिनिर्मलं यदंशुकं वस्त्रं तेनान्तरितं व्यवहितं यद्रक्तकमलवनं तद्वच्छाया शोभा यस्मिन्। इतिवाच्यमाह—सखे इति। हे सखे कपिञ्जल, विदितवृत्तान्वोऽपि ज्ञातोदन्तोऽपि। विकारदर्शनादिति भाव। किं मां पृच्छसि किं प्रश्नं करोषि। अहं तु तदाकर्ण्य

समझकर कामदेव द्वारा शक्तिहीन (चेतनाहीन) कर दिया गया है। वस्तुत. यह सर्वथा असम्भव है कि भूलों से रहित युवावस्था मिल जाय।"—फिर उसके समीप पहुँचकर और उसी शिला के एक (कोने, भाग) पर बैठकर, उसके कन्धे पर हाथ रखकर आँखे बन्द किये हुए ही उससे पूछा—"मित्र, पुण्डरीक! बताओ, यह क्या है?" इसके पश्चात् बहुत देर तक बन्द रहने से आपस में चिपके हुए-से, निरन्तर रोते रहने के कारण जिनमे लालिमा उत्पन्न हो गयी थी तथा आँसुओं के समूह की बाढ़ से भरी हुई उन आँखों को जो दुखने आ गयी सी प्रतीत हो रही थीं अथवा दर्द करती प्रतीत हो रही थीं और स्वच्छ (श्वेत) रेशमी वस्त्र से ढके लाल कमल वन की कान्ति वाली प्रतीत होती थीं, किसी प्रकार प्रयत्न से खोलकर उसने मुझको अलस दृष्टि से देर तक देखकर, लम्बी आह भरकर लज्जा के कारण टूटे फूटे अक्षरों में बड़ी कठिनता से धीरे धीरे इतना ही कहा—"मित्र, कपिञ्जल तुम सारी बात को जानते हुए भी मुझ से क्यों पूछते हो?"

अह तु तदाकर्ण्य तदवस्थयैवाप्रतीकारोऽय तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितः सर्वात्मना निवारणीय इति मनसावधार्याब्रुवम्—'सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि, यदेतदारब्ध भवता किमिद गुरुभिरुपदिष्टम्, उत धर्मशास्त्रेषु पठितम्, उत धर्मार्जनोपायोऽयम्, उतापरस्तपसा प्रकारः, उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम्, उत व्रतरहस्यमिदम्, उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम्, आहोस्विदन्यो नियमप्रकारः। कथमेतद्युक्तं भवतो मनसापि चिन्तयितुम्, किं पुनराख्यातुमीक्षितु वा। अप्रबुद्ध इवानेन मन्मथहतकेनोपहासास्पदता नीयमानमात्मान नावबुध्यसे। मूढो हि

निशम्य तदवस्थयैव पूर्वोक्तरीत्यैवाय पुण्डरीकोऽप्रतीकारविकारोऽप्रतिक्रियविकृतिस्तथापि सुहृदा मित्रेणासन्मार्गप्रवृत्तोऽसाधुपथानुग सुहृद्यावच्छक्तितो यावद्बलत सर्वात्मना सर्वप्रकारेण निवारणीयो वर्जनीय इति मनसा चित्तेनावधार्य निश्चित्याब्रुवमवोचम्। हे सखे पुण्डरीक, एतन्मम सुविदित सुज्ञातम्। तथापि केवलमिदमेव पृच्छामि प्रश्नविषयीकरोमि। तदेवाह—यदिति। भवता त्वया यदेतदारब्ध प्रस्तुत तत्किमिदं गुरुभिर्हिताप्राप्तिपरिहारोपदेशकैरुपदिष्टं कथितम्, उत धर्मशास्त्रेषु स्मृत्यादिषु पठित भणितम्, उताथवाय धर्मार्जनोपाय सुकृतोपार्जनप्रकारः, उत तपसामपरो भिन्न प्रकारो भेद, उत स्वर्गगमनस्याय मार्ग पन्था, उतेद व्रतस्य दीक्षाया रहस्यमुपनिषत्, उत मोक्षस्य महानन्दस्येय प्राप्तियुक्तिरधिगमसमर्थनम्। आहो इति। आहोस्विदितिवितर्के। अन्यो विलक्षणो नियमप्रकारोऽभिग्रहविशेष। भवतस्तव कथमेतद्युक्तमुचित मनसापि चित्तेनापि चिन्तयितु विचारयितुम्। किं पुनरिति। आख्यातु कथयितुमीक्षितु विलोकयितु वा किं पुनर्भण्यते। सर्वथा न युक्तमिति भाव। अप्रेति। अप्रबुद्ध इवाज्ञानीवानेन मन्मथहतकेन पापकारिणा कदर्पेणात्मान स्वमुपहासास्पदतां परिहासधामतां नीयमान प्राप्यमाणं नावबुद्ध्यसे न जानासि। हीति निश्चितम्। मूढो मन्दो मदनेन कंदर्पेणायास्यते

किन्तु मैंने उसका वह कथन सुनकर उसकी उस हालत से ही (मन मे जान लिया) कि यह पुण्डरीक असाध्य रोग वाला है, तो भी बुरे मार्गपर चला हुआ मित्र, मित्र द्वारा, जहा तक सम्भव हो पूरी शक्ति लगाकर हटाया जाना चाहिये—मन मे यह निश्चय करके मैंने कहा—'मित्र, पुण्डरीक! यह बात, निश्चय ही, मुझे भलीभॉति ज्ञात है। केवल इतना ही पूछता हूँ—जो यह तुमने करना आरम्भ किया क्या (तुम्हारे) बड़े बूढ़ों ने सिखाया था? अथवा (तुमने) धर्म ग्रन्थों मे पढ़ा था? अथवा धार्मिक गुणों की प्राप्ति का यह (नया) मार्ग है? अथवा दूसरा तप करने का मार्ग है? अथवा स्वर्ग में जाने का मार्ग है? अथवा किसी (नये) व्रत का रहस्य है? अथवा मुक्ति प्राप्त करने का कोई चालाकी से युक्त प्रकार है? अथवा कोई दूसरा भिन्न व्रतानुष्ठान है? तुम्हारे लिये इसको मन से सोचना भी कैसे उचित है? इसको बताना अथवा देखना तो फिर उचित हो ही कैसे सकता है? एक (सामान्य) अशिक्षित व्यक्ति की भाँति इस दुष्ट कामदेवद्वारा अपने आप को हँसी का पात्र बनाये जाते हुए अज्ञानी के समान अपने आपको तुम जान नहीं पा रहे हो! क्योकि केवल मूर्ख ही कामदेव द्वारा दुःखी किया जाता है। सज्जनों से तिरस्कृत तथा

मदनेनायास्यते। का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः। स खलु धर्मबुद्ध्या विषलता सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति। अधिगतविषयतत्त्वोऽपि कस्मात्खद्योत इव ज्योतिर्निवार्यमिदं ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि प्रबलरजःप्रसरकलुषितानि स्रोतांसीवोन्मार्गप्रस्थिता-

---

पीड्यते। साध्विति। साधुजनाः सज्जनास्तैर्निन्दितेषु गर्हितेषु प्राकृता पामरा ये जना लोकास्तैर्बहुमतेषु समतेष्वेवविधेष्वेतादृशेषु विषयेष्विन्द्रियार्थेषु भवतस्तव का सुखाशा वाञ्छा। स इति। स मूढो धर्मबुद्ध्या पुण्यमिति कृत्वा विषलता विषवल्लीं सिञ्चति सेकं करोति। कुवलेति। कुवलयमालोत्पलस्रगिति कृत्वा निस्त्रिंशलता खड्गलतामालिङ्गत्याश्लिषति। कृष्णेति। कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य धूमलेखा दहनकेतनपङ्क्तिरिति कृत्वा कृष्णसर्पमवगूहति परिष्वजते। रत्नेति। रत्नमिति मणिरिति कृत्वा ज्वलन्तमङ्गारं प्रसिद्धमभिस्पृशति स्पर्शं करोति। मृणालेति। मृणालमिति तन्तुलमिति कृत्वा दुष्टो यो वारणो गजस्तस्य दन्तमुसलं दशनायोग्रमुन्मूलयत्युच्छिनत्ति। तच्छब्दस्य यच्छब्दसापेक्षत्वादाह—य इति। य पुमाननिष्टाना दुःखानामनुबन्ध परम्परा विद्यते येष्वेवविधेषु विषयोपभोगेष्विन्द्रियार्थोपभोगेषु सुखबुद्धिमिदं सुखजनकमिति धियमारोपयति स्थापयति। एतेन सर्वथा सुखजनकत्वं नास्तीति ध्वनितम्। अधीति। अधिगतं ज्ञातं विषयाणां तत्त्वं स्वरूपं येनैवंविधोऽपि कस्मात्केन हेतुना खद्योत इव ज्योतिरिङ्गण इव ज्योतिस्तत्त्वज्ञानं प्रकाशश्च तेन निवार्यं दूरीकरणार्हं ज्ञानमुद्वहसि धारयसि। अस्य दिवाप्रनष्टचैतन्यत्वेन तादृशधर्मवत्त्वमाधर्म्यात्खद्योतस्योपमानमिति भावः। एतस्मिन्नर्थे हेतुमाह—यत इति। यस्माद्धेतोः प्रबलो यो रजःप्रसरः पापकर्मविस्तारो धूलिश्च तेन कलुषितानि मलिनीकृतानि स्वतोऽम्भःप्रसरणानि स्रोतांसि तानीवोन्मार्गप्रस्थितान्युत्पथवृत्तानीन्द्रियाणि

सामान्य जनों द्वारा बहुधा आदृत इन विषयों (सुखों) मे सुख (मिलने) की आशा क्या हो सकती है ? वह मूर्ख जो सदा दुख परम्परा वाले (अपने पीछे दुःख छोड़ जाने वाले) ऐन्द्रियिक सुखों को सुख मानता है वह निश्चय ही, (इसको) धर्म समझता हुआ विष बेल को सींचता है, नील कमलों की माला समझकर पतली लम्बी तलवार को चूमता है, काले अगरु की धूमपक्ति समझकर काले साँप को पकड़ता है, रत्न समझकर जलते हुए अगारे को छूता है, बिसतन्तु मानकर मदमत्त दुष्ट हाथी के मूसल सरीखे दान्त को उखाड़ता है। ऐन्द्रियिक सुखो के सच्चे स्वरूप को जानते हुए भी तुम क्यों इस निर्वीर्य (अशक्त) ज्ञान को ऐसे धारण किये हो जैसे कि जुगनू निर्वीर्य प्रकाश को धारण करता है—क्योंकि तुम शक्तिशाली विषयोन्माद के आक्रमण (प्रसाद) से कलुषित भटकी हुई अपनी इन इन्द्रियो को ऐसे ही नहीं रोक पाते हो जैसे कि बहुत सारी मिट्टी के गिरने से पङ्किल हुई नदियों को भटकने से नहीं रोका जा सकता है, तुम अपने क्षुब्ध मन को नियन्त्रित नहीं

नीन्द्रियाणि, न नियमयसि वा क्षुभित मनः। कोऽयमनङ्गो नाम। धैर्यमवलम्ब्य निर्भर्त्स्यैतामय दुराचारः' इत्येव वदत एव मे प्रवचनमाक्षिप्य प्रतिपक्ष्मान्तरालप्रवृत्त-बाष्पवेणिक प्रमृज्य चक्षु करतलेन मामवलम्ब्यावोचत्—'सखे, किं बहूक्तेन। सर्वथा स्वस्थोऽसि। आशीविषविषवेगविषमाणामेतेषा कुसुमचापसायकाना पतितोऽसि न गोचरे, सुखमुपदिश्यते परस्य। परस्य यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति मनो वा वर्तते, यः पश्यति वा, शृणोति वा, श्रुतमवधारयति वा, यो वा शुभमिद न शुभमिदमिति विवेक्तुमल स खलूपदेशमर्हति। मम तु सर्वमेवेदमतिदूरापेतम्। अवष्टम्भो ज्ञान धैर्यं

करणानि न निवारयसि न निवारण करोषि। क्षुभितं क्षोभ प्राप्त मनश्चित्त न नियमयसि न नियन्त्रयसि। नामेति कोमलामन्त्रणे। कोऽयमनङ्ग काम। धैर्य धीरिमामवलम्ब्याश्रित्याह दुराचारो दुष्टाचरणो निर्भर्त्स्यैता तिरस्क्रियताम्। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेण वदत एव कथयत एव मे मम वचन वच आक्षिप्यावगणय्य। प्रतीति। प्रति प्रत्येक यत्पक्ष्मणोऽन्तराल विचाल तत्र प्रवृत्ता बाष्पवेणिका यस्मिन्नेवभूत चक्षु। अत्र वेणी प्रवाह। 'वेणी धारा रयश्च स' इति कोश.। स्वार्थे कप्रत्यये 'केऽण' इति ह्रस्वत्वम्। प्रमृज्येति। प्रमार्जना कृत्वा करतलेन हस्ततलेन मामवलम्ब्यालम्बनीकृत्यावोचदब्रवीत्। कि तदित्याह—सख इति। हे सखे, बहूक्तेन बहुभाषितेन किम्। सर्वथा त्व स्वस्थो निरुपद्रवोऽसि। तत्र हेतुमाह—आशीति। आशीविषा सर्पास्तेषा विषवेगो गरलप्रसरस्तद्वद्विषमाणा कठिनानामेतेषा कुसुमचापसायकाना मन्मथबाणाना गोचरे विषये न पतितोऽसि, तेन त्वया परस्य सुखमुपदिश्यत उपदेश क्रियते। स्वस्योपदेशानर्हत्व प्रतिपादयन्नाह—परेति। परस्य मद्व्यतिरिक्तस्य यस्य पुस इन्द्रियाणि करणानि सन्ति। वेति सर्वत्र विकल्पार्थ। यस्य मनो वर्तते य पुमान्पश्यतीक्षते शृणोत्याकर्णयति वा। श्रुतमाकर्णित चावधारयति जानाति। तदभिप्रायावधारण करोतीत्यर्थ। य पुमानिद शुभमिदमशुभमिति विवेक्तुं विवेचना कर्तुमल समर्थ। यत्तदोर्नित्याभिसबन्धात्स पुमानुपदेश हितशिक्षामर्हति योग्यो भवति। मम तु सर्वमेवेद पूर्वोक्त दूरापेत दूरापास्तम्।

करते हो। और यह तो बताओ कामदेव है क्या? धीरज धरकर इस दुष्ट को झिड़क दो।" यह कहते हुए ही मेरे कथन को (बीच में ही) काटकर एक बरौनी के बीच मे से निकल रहे आँसुओं की धारावाली अपनी आँखों को पोंछकर, अपनी हथेली मे मेरा हाथ लेकर बोला—

"मित्र! बहुत कहने से क्या लाभ है? इन सर्पविष के प्रवाह से भयानक बने हुए कामदेव के बाणों के क्षेत्र में अभी तक तुम नहीं पड़े हो, दूसरे को सरलता से उपदेश दिया जाता है। और जिस दूसरे की इन्द्रियाँ (सशक्त) हैं, अथवा मन (सुव्यवस्थित) है जो सुन (सकता) है अथवा देख सकता है, अथवा सुने हुए को धारण कर सकता है, अथवा जो यह विवेक (पहचान) कर सकता है कि यह बात शुभ है अथवा अशुभ है—उस ही को उपदेश देना योग्य है। किन्तु (जहाँ तक) मेरा (सम्बन्ध है), ये सब बातें बहुत दूर चली गई हैं। दृढ़ता, बुद्धिमत्ता, उत्साह तथा विचारशक्ति—ऐसी सब बातें (जहाँ

प्रतिसंख्यानमित्यस्तमितैषा कथा। कथमप्येव मेऽयत्नविधृतास्तिष्ठन्त्यसवः। दूरातीतः खलूपदेशकालः। समतिक्रान्तो धैर्यावसरः। गता प्रतिसंख्यानवेला। अतीतो ज्ञानावष्टम्भसमयः। केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहायोपदेष्टव्यम्, उन्मार्गप्रवृत्तिनिवारणं वा करणीयम्। कस्यान्यस्य वा वचसि मया स्थातव्यम्। को वापरस्त्वत्समो मे जगति बन्धुः। किं करोमि, यन्न शक्नोमि निवारयितुमात्मानम्। इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुष्टावस्था। तद्गत इदानीमुपदेशकालः। यावत्प्राणिमि तावदस्य कल्पान्तोदितद्वादशदिनकरकिरणातपतीव्रस्य मदनसंतापस्य प्रतिक्रियां क्रियमाणामिच्छामि। पच्यन्त

इत्येषा कथा वार्तास्तमितास्त प्राप्ता। इतिशब्दद्योत्यमाह—अवेति। अवष्टम्भश्चित्तवृत्तिनिरोध, ज्ञान विवेक, धैर्यं बाह्येन्द्रियनिरोधः, प्रतिसंख्यानमध्यात्मज्ञानम्। कथमिति। मे ममासव प्राणा अयत्नेनाप्रयामेन विधृता कथमप्येव तिष्ठन्ति। यतो दु.सहमदनबाणैराक्रान्तस्य मम प्राणेष्वप्युपेक्षेति भाव। अत उपदेशो हितशिक्षाप्रदानसमय. खलु निश्चयेन दूरातीतो दूरेऽतिक्रान्त। तथा धैर्यस्य धीरिमाया अवसर समय समतिक्रान्तो व्यतीत। प्रतिसंख्यानवेलाध्यात्मक्षणो गता दूरीभूता। ज्ञानेन कृतो योऽवष्टम्भश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तस्य समयोऽवसर दूरम् अतीतो व्यतिक्रान्त'। केनेति। अस्मिन्समये भवन्तमपहायान्येन केन वोपदेष्टव्यमुपदेशो दातव्य। उन्मार्गेति। वाथवोन्मार्गेऽसाधुमार्गे या प्रवृत्ति प्रवर्तन तस्या निवारण करणीय कर्तव्यम्। कस्येति। अन्यस्य तद्व्यतिरिक्तस्य कस्य वा वचसि वचने मया स्थातव्यम्। न कस्यापीत्यर्थं। को वेति। अपरोऽन्य को वा त्वत्समो मे मम जगति विश्वे बन्धुर्भ्राता। आविष्कृतं भावमुपसंहरति—किमिति। किं करोमि किं कुर्वे। यदिति हेतौ। आत्मान स्व निवारयितु दुष्टप्रवृत्तेर्दूरीकर्तुं न शक्नोमि न समर्थो भवामि। अनेनेति। अनेनैव क्षणेन समयेनेय दुष्टा दु.खदायिन्यवस्था दशा भवता त्वया दृष्टावलोकिता। तदिति। तस्माद्धेतोरिदानी साम्प्रतमुपदेशकाल शिक्षाप्रदानसमयो गतो व्यतिक्रान्त। अन्यस्मिन्शमदमादिरूपनिवृत्तिकरणाभावे हेतुमाह—यावदिति। यावत्कालमह प्राणिमि जीवामि तावत्पर्यन्तम्। कल्पेति। कल्पान्तो युगान्तस्तत्रोदिता उदय प्राप्ता ये द्वादशदिनकरकिरणास्तेषा य आतप प्रकाशस्तद्वत्तीव्रस्य कठिनस्य। दु सहस्येति यावत्। एवंविधस्य मदनसंतापस्य

तक मेरा सम्बन्ध है) समाप्त हो चुकी हैं। किसी भी प्रकार विना किसी प्रयत्न के रुके हुए प्राण मेरे साथ हैं। निश्चय ही उपदेश देने का समय बहुत दूर (बहुत पहले ही) चला गया है। धैर्य धारण करने का अवसर भी बीत गया है। विचार करने की घड़ी नहीं रही। ज्ञान द्वारा मन को स्थिर करने का समय भी बीत गया है। इस समय तुम्हारे अतिरिक्त (तुमको छोड़कर) और कौन मुझे उपदेश दे, अथवा कुमार्गपर मेरे चलने को रोके। अथवा (तुम्हारे अतिरिक्त) दूसरे किसके कहने में मैं रहूँ। अथवा इस संसार में तुम्हारे समान कौन दूसरा मेरा भाई है। (किन्तु) मैं क्या कर सकता हूँ! क्योंकि मैं अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रख सकता हूँ। इसी समय तुमने (मेरे मन की) यह बुरी (भयानक) अवस्था देखी है। इसलिये उपदेश देने का समय तो बीत गया। जब तक सांस लेता हूँ, प्रलय काल मे उदय हुए बारह सूर्यों की किरणों की ऊष्मा के समान कठोर ऊर्जा वाली

इव मेऽङ्गानि, उत्क्वथ्यत इव हृदयम्, प्लुष्यत इव दृष्टिः, ज्वलतीव शरीरम्। अत्र यत्प्राप्तकालं तत्करोतु भवान्' इत्यभिधाय तूष्णीमभवत्। एवमुक्तेऽप्यहमेनं प्राबोधयं पुनः पुनः। यदा शास्त्रोपदेशविशदैः सनिदर्शनैः सेतिहासैश्च वचोभिः सानुनयं सोपग्रहं चाभिधीयमानोऽपि नाकरोत्कर्णे, तदाहमचिन्तयम्—'अतिभूमिमयं गतः, न शक्यते निवर्तयितुम्। इदानी निरर्थकाः खलूपदेशाः। तत्प्राणपरिरक्षणेऽपि तावदस्य यत्नमाचरामि' इति कृतमतिरुत्थाय गत्वा तस्मात्सरसः सरसा मृणालिकाः समुद्धृत्य

कदर्पज्वरस्य प्रतिक्रिया चिकित्सा तल्लक्षणा क्रियां क्रियमाणा विधीयमानामिच्छामि समीहे। विवेकादिप्रतिक्रियाया अभावे प्राकृतप्रतिक्रिया तया सह सगमरूपैवेति भाव। सतापमेव प्रकटयन्नाह—पच्यन्त इति। मे ममाङ्गानि हस्तपादादीनि पच्यन्त इव पाकविषयीक्रियन्त इव। हृदय स्वान्तमुत्क्वथ्यत इवोत्क्वाथ्यत इव। दृष्टिर्लोचनं प्लुष्यत इव दह्यत इव। शरीर देह ज्वलतीव भस्मीभवतीव। अत्र यत्प्राप्तकाल यदेतत्समयोचितम्। तया सह सगमरूपमित्यर्थ। भवास्तत्करोत्विति पूर्वोक्तमभिधायोक्त्वा तूष्णीमभवन्मौनमकरोत्। एवमिति। एवममुना प्रकारेणोक्तेऽपि कथितेऽप्यहमेन पुण्डरीक प्राबोधय प्रबोध कृतवान्। यदेति। यदा पुन पुनर्भूयोभूय शास्त्रस्य धर्मप्रतिपादकस्य ग्रन्थस्योपदेश शिक्षा तेन विशदैर्निर्मलै सनिदर्शनै सोदाहरणै सेतिहासैरितिहास पुरावृत्त तेन सहितैर्वचोभि सानुनय सप्रणयम्। 'प्रणति प्रणिपातेऽनुनये' इति कोश.। सोपग्रह सानुकूलनम्। 'उपग्रहोऽनुकूलने' इति विश्व। यथा स्यात्तथाभिधीयमान उपदिश्यमानोऽपि कर्णे श्रवणे नाकरोत्। अश्रुतमिव मदुक्तमकार्षीदित्यर्थ। तदेति। तदा तस्मिन्कालेऽहमचिन्तयमध्यायम्। इतिशब्दवाच्यमाह—अतीति। अयमतिभूमिमतिदूर गतः प्राप्त। कामस्य दशमीमवस्था प्राप्त इत्यर्थ। निवर्तयितु ततो व्यावर्तयितुं न शक्यते न पार्यते। तेनेदानीं साम्प्रतम्। खलु निश्चयेन। उपदेशा निरर्थका नि प्रयोजना। तदिति हेत्वर्थे। तावदादावस्य पुण्डरीकस्य प्राणपरिरक्षणेऽपि जीवितपरित्राणेऽपि यत्नमुद्योगमाचरामि करोमीति कृता मतिर्येन स उत्थाय गत्वा च। अच्छोदाभिध सर इति शेष। तस्मात्सरस. कासारात्सरसा रसोपयुक्ता मृणालिका कमलिन्य समुद्धृत्योत्पाट्य

कामदेव-पीड़ा का उपाय किया जाना चाहता हूँ। मेरे अङ्ग मानों पकाये जा रहे हैं, हृदय मानो उबल रहा है, मेरी आँखें झुलस रही हैं, मेरा शरीर लपटों मे जल रहा है। इस मामले में वर्तमान समय के अनुसार जो उचित हो वह करो"—यह कहकर वह चुप हो गया।

उसके ऐसा कहने पर भी मैंने उसको समझाया। किन्तु जब बार बार शास्त्रों की शिक्षा द्वारा व्याख्यात, उदाहरणों से भरे हुए तथा भूतकाल की घटनाओं समेत युक्तियों (वचनों) द्वारा सान्त्वना देते हुए (ललचाते हुए) तथा प्रोत्साहित करते हुए (प्यार से) कहे जाते हुए ने भी उसने (मेरा कथन) नहीं सुना तब मैंने सोचा—'वह बहुत दूर चला गया है (प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है), इसको लौटाया नहीं जा सकता। निश्चय अब उपदेश किसी भी काम के नहीं हैं। इसलिये इसके प्राणों की रक्षा के लिये ही यत्न करता हूँ'—यह विचार किये हुए मैंने उठकर, जाकर, उस सरोवर से गीले-गीले कमल तन्तुओं को निकालकर

कमलिनीपलाशानि जललवलाञ्छितान्यादाय गर्भधूलिकषायपरिमलमनोहराणि च कुमुदकुवलयकमलानि गृहीत्वागत्य तस्मिन्नेव लतागृहशिलातले शयनमस्याकल्पयम्। तत्र च सुखनिषण्णस्य प्रत्यासन्नवर्तिना चन्दनविटपादीना मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य तेन स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्, आ चरणतलादङ्गचर्चां चारचयम्। अभ्यर्णपादपस्फुटितवल्कलविवरशीर्णेन च करसंचूर्णितेन कर्पूररेणुना स्वेदप्रतिक्रियामकरवम्। उरोनिहितचन्दनद्रवार्द्रवल्कलस्य स्वच्छसलिलसीकरनिकरस्राविणा कदलीदलेन व्यजनक्रियामन्वतिष्ठम्। एव च मुहुर्मुहुरन्यदन्यन्नलिनी-

---

ताभ्यो जललवेनाम्भोलेशेन लाञ्छितानि सहितानि कमलिनीपलाशानि नलिनीपत्राण्यादाय गृहीत्वा। गर्भेति। गर्भधूलिर्मध्यपरागस्तस्य य कषायस्तुम्बर परिमलस्तेन मनोहराणि शोभनान्येवविधानि कुमुदानि श्वेतकमलानि कुवलयान्युत्पलानि कमलान्येभ्यो व्यतिरिक्तानि कुमुदकुवलयाना कमलानि पुष्पाणि वा गृहीत्वादायागत्य च तस्मिन्नेव लतागृहशिलातलेऽस्य पुण्डरीकस्य शयन शय्यामकल्पयमकरवम्। तत्र चेति। तस्मिन्नेव स्थले सुखेन निषण्ण स्योपविष्टस्य प्रत्यासन्नवर्तिना समीपस्थाना चन्दनविटपादीना मलयजवृक्षप्रभृतीना मृदूनि सुकुराणि किसलयानि किसलयानि निष्पीड्य समद्य तेनानिर्वचनीयेन स्वभावसुरभिणा स्वारसिकसुगन्धेन तुषारो हिम तद्वच्छिशिरेण शीतलेनैवविधेन रसेन द्रवेण ललाटिकां लोके 'भाळी' इति प्रसिद्धामकल्पयमकरवम्। चरणतलं मर्यादीकृत्याचरणतल तस्मात्। आङादियोगे पञ्चमी। अङ्गचर्चां शरीरभूषां चारचय रचितवान्। अभ्यर्णेति। अभ्यर्णा आसन्ना ये पादपा वृक्षास्तेषा स्फुटितानि स्फोट प्राप्तानि यानि वल्कलानि चोचानि तेषा विवराणि छिद्राणि तेभ्य शीर्णेन गलितेन च तथा करेण कृत्वा सचूर्णितेन क्षोदीकृतेन कर्पूररेणुना हिमवालुकाधूल्या स्वेदस्य घर्मजलस्य प्रतिक्रियां चिकित्सामकरवमकल्पयम्। उर इति। उरसि वक्षःस्थले निहित स्थापित चन्दनद्रवेण मलयजरसेनार्द्रं क्लिन्न वल्कल यस्य स तथा तस्य। स्वच्छेति। स्वच्छा निर्मला सलिलसीकरा वातास्तवारिकणास्तेषां निकर समूहस्तस्य स्राविणा स्यन्दि

(तोड़कर), (उसमें चिपटी हुई) पानी के बूँदों से चिह्नित (गीले) कमल पत्रों को लेकर, और मध्यभाग में (भरी) पराग की गन्ध से आकर्षक बने हुए, कुमुद, कुवलय और कमलों को लेकर, आकर, उसी लताकुञ्ज में स्थित शिलातल पर इसके लिए बिस्तर बना दिया और उस बिस्तरे पर आराम से बैठे हुए उसकी ललाटिका—(उसके मस्तक पर टीका) समीपस्थित चन्दन वृक्ष के कोमल पत्तों को निचोड़ कर, उस स्वभावत सुगन्धित तथा हिमसदृश शीतल रस से, कर दी और उसके पाँव की नली से लेकर (ऊपर तक), शरीर की भूषा-सज्जा कर दी—(शरीर पर उसी रस का लेप कर दिया)। और पड़ोस के (कपूर के) वृक्ष की ढीली पड़ी हुई छाल की पोलों में से झड़कर गिरे हुए तथा (अपने) हाथ से चूरा किये हुए कपूर के चूरे से मैंने उसके पसीने का उपाय किया (पसीना रोका) और उसके वक्षस्थल पर चन्दन के पानी से गीली वृक्षत्वचा को रखे हुए (उस) की, शुद्ध जल की फौहार छोड़ते हुए केले के पत्ते से हवा की। और इस प्रकार बार-बार दूसरी दूसरी (नयी) कमल पत्र की शय्या बनाते

दलशयनमुपकल्पयतः मुहुर्मुहुश्चन्दनचर्चामारचयतः, मुहुर्मुहुश्च स्वेदप्रतिक्रिया कुर्वतः, कदलीदलेन चानवरत वीजयतः समुदभून्मे मनसि चिन्ता—'नास्ति खल्वसाध्य नाम भगवतो मनोभुवः। कायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः, क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता। सर्वथा नहि किंचिदस्य दुर्घटं दुष्करमनायत्तमकर्तव्य वा जगति। दुरुपपादेष्वर्थेष्वप्ययमवज्ञया विचरति। न चाय प्रतिकूलयितु शक्यते। का वा गणना सचेतनेषु, अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलं

नैताद्दशेन कदलीदलेन रम्भापत्रेण व्यजनक्रियां तालवृन्तकृत्यम्। 'व्यजन तालवृन्त तत्' इति कोश। अन्वतिष्ठमकरवम्। एवं चेति। एवममुना प्रकारेण मुहुर्मुहुर्वारंवारमन्यदन्यदन्यतरदन्यतरन्नलिनीदलशयन कमलिनीपत्रशय्यामुपकल्पयत कुर्वत मुहुर्मुहुर्भूयोभूयश्चन्दनचर्चा मलयजमण्डनमारचयतो विदधत, मुहुर्मुहुश्च वारंवारं स्वेदप्रतिक्रिया श्रमजलप्रतीकार कुर्वत प्रणयत, कदलीदलेन चानवरत निरन्तर वीजयत पवन प्रक्षिपतो मे मम मनसि चिन्ता समुदभूत्प्रादुरभूत्। यत —नास्तीति। नामेति कोमलामन्त्रणे। खलु निश्चये। भगवतो मनोभुव कंदर्पस्य किमप्यसाध्यमनिष्पाद्य नास्ति न विद्यते। एतदर्थं स्पष्टीकुर्वन्नाह—क्वेति महदन्तरे। अय पुण्डरीको हरिण इव मृग इव वनवासेऽरण्यावस्थाने निरतस्तत्पर स्वभावेन प्रकृत्या मुग्धोऽविदग्धो जन क्व। तथा विविधानां नानाप्रकाराणां विलासानां विभ्रमादीना यो रसस्तात्पर्यं तस्य राशि समूह एताद्दशी गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता क्व। विदग्धाविदग्धयो संगम कथ भविष्यतीत्याशयेनाह—सर्वथेति। सर्वप्रकारेणास्य कदर्पस्य जगति लोके दुर्घट दु साध्य तथा दुष्कर दु खेन कर्तुं शक्यमनायत्तमन धीनमकर्तव्य कर्तव्यविरोधि वा नहि किंचिदस्ति। अस्य सर्वं सुसाध्यमित्यर्थं। दुरुपपादेष्वयोग्येष्वर्थेषु कार्येष्वप्यय कामोऽवज्ञया बलात्कारेण विचरति प्रवर्तते। न चाय केनापि पुसा प्रतिकूलयितु प्रतिरोद्धु शक्यते पार्यते। का वेति। यथस्मै कदर्पाय

हुए, बार-बार चन्दन का लेप करते हुए और बार-बार पसीने का उपाय करते हुए तथा केले के पत्ते से पखा करते हुए मेरे मन में चिन्ता उत्पन्न हुई (निम्नलिखित विचार उत्पन्न हुए)—मानसजन्मा भगवान् कामदेव के लिये सचमुच ही कुछ भी असाध्य नहीं है (वह जो चाहे कर सकता है)। कहाँ तो यह हरिण की भाति वन मे रहने से प्रसन्न रहने वाला स्वभाव से सरल (सीधा) मनुष्य है और कहाँ नाना प्रकार के बनाव श्रृंगारों (विलास) तथा रसानुभूतियों (रस) की मूर्ति (राशि), गन्धर्वराज की पुत्री महाश्वेता। निश्चय ही ससार में ऐसी कोई बात नहीं है जो इस कामदेव के लिये असाध्य हो, अथवा जिसका करना इसके लिये कठिन हो, जो इसके वश में न (शक्ति से बाहर) हो, अथवा इसके किये न किया जा सके। जो कार्य (सामान्य व्यक्ति द्वारा) कठिनता से सम्पन्न हो सकते हैं उनमें यह उपेक्षा[1] से काम करता है और (किसी द्वारा) इसका प्रतिरोध भी नहीं किया जा सकता। ज्ञानवानों में गिनाने की तो बात ही क्या है, यदि इसको रुचे—(इसका

१. अवज्ञा=लापरवाही।

यद्यस्मै रोचते। कुमुदिन्यपि दिनकरकरानुरागिणी भवति, कमलिन्यपि शशिकरद्वेषमुज्झति, निशापि वासरेण सह मिश्रतामेति, ज्योत्स्नाप्यन्धकारमनुवर्तते, छायापि प्रदीपाभिमुखमवतिष्ठते, तडिदपि जलदे स्थिरता व्रजति, जरा पि यौवनेन संचारिणी भवति। किं वा तस्य दुःसाध्यमपरम्, एवविधो येनायमगाधगाम्भीर्यसागरस्तृणवल्लघुतामपनीतः।

रोचते रुचिर्भवति तदापगतचेतनानि मन्दान्त करणान्यपि परस्परविरुद्धान्यपि संघट्टयितु सयोजयितुमलं समर्थं, तस्य सचेतनेषु दशदशावर्तिषु सबन्ध कर्तु का गणना। एतदेव स्पष्टयन्नाह—कुमुदिनीति। कुमुदिन्यपि कैरविण्यपि। दिनकरेति। दिनकरस्य सूर्यस्य करा किरणा। तत्कार्यकारित्वाद्दिनकरत्व चन्द्रस्य। तस्मिन्ननुरागो विद्यते यस्या एवविधा भवति। तदुक्तम्—'चन्द्रश्चण्डकरायते मलयजो लेप स्फुलिङ्गायते, माल्य सूचिकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते' इति। कमलिनीति। कमलिन्यपि पद्मिन्यपि। शशिकरकार्यकारित्वात्सूर्यकिरणाना शशिकरत्वम्। तेषु यो द्वेषस्तमुज्झति त्यजति। तदुक्तम्—'आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन। सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दु खिते मनसि सर्वमसह्यम्' इति। निशेति। निशापि रात्रिरपि दिवसकार्यकारित्वाद्वासरेण मिश्रतामेकतामेति गच्छति। यथा—चित्रन्यस्तादपि विषधराद्भीतिभाजां निशाया, किं तद्ब्रूमस्त्वद भिसरणे साहस नाथ तस्या' इति। ज्योत्स्नेति। ज्योत्स्नापि कौमुद्यप्यन्धकारकार्यकारित्वात्तमनुवर्तते। तद्रूपतां भजतीत्यर्थः। यथा—'ज्योत्स्ना श्यामलतामुपैत्ययम्' इति। छायेति। छायापि प्रदीपस्य गृहमणेरभिमुखमवतिष्ठते सतिष्ठति। अत्र प्रदीपाधोभागे छायाया सत्वाच्च चित्रमित्यभिमुखग्रहणम्। तदुक्तम्—'आलोकस्तिमिरायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते, हा हन्त प्रमदावियोगसमये किं किं न दु खायते'। तडिदिति। तडिदपि विद्युदपि जलदे स्थिरता स्थैर्यं व्रजति गच्छति। अत्र तडित उद्दीपकत्वाद्विरहदु खितस्य तस्या निमेषावस्थानमपि कल्पकल्पमित्यभिसधि। जरेति। जरापि विस्रसापि यौवनेन तारुण्येन सह सचारिणी सार्धं सचरणशीला स्यात्। जराया अपि तत्कार्यकारित्वात्तदनुगामित्वमित्यर्थं। अत्रापिशब्द सर्वत्र विरोधद्योतक। किं वेति। वेति विकल्पार्थं। तस्य कदर्पस्य। किमिति प्रश्ने। अपर किं दु साध्य दुष्करम्। एवमिति। येन कंदर्पेण एवविधस्तपस्व्यय पुण्डरीक। अगाधेति। अगाधमक-

मन हो) तो यह चेतनारहितों अचेतनों को भी जोड़ सकता है—(वियुक्त हुए अचेतनों का भी सयोग करा सकता है)। (इस प्रकार) कुमुद (कमल) का पौधा भी सूर्य की किरणों से प्रीति करने लगता है, कमल का पौधा भी चन्द्रकिरणों से द्वेष (घृणा) करना छोड़ देता है, रात भी दिन से मिश्रित हो जाती है, चाँदनी भी अन्धकार के पीछे-पीछे लग जाती है, छाया भी दीपक के सामने आ जाती है (अर्थात् उससे निकट सम्पर्क स्थापित कर लेती है), बिजली भी बादल में स्थिर हो जाती है (अर्थात् बादल में विश्राम करती है), बुढ़ापा भी जवानी के साथ साथ चलने वाला हो जाता है (अर्थात् जवानी के पीछे-पीछे चलने लगता है)। अथवा दूसरी कौन सी बात इसके लिये न करने योग्य रह गयी कि जिसने अथाह गम्भीरता के समुद्र रूप इस (पुण्डरीक) को इतना नीचे (अर्थात् पराजित) कर दिया कि मानो वह एक तिनका

क तत्तपः, क्वेयमवस्था। सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यम्, किं वा चेष्टितव्यम्, क देशं गन्तव्यम्, किं शरणम्, को वोपायः, कः सहायः, कः प्रकारः, का युक्तिः, कः समाश्रयो येनास्यासवो धार्यन्ते। केन वा कौशलेन, कतमया वा युक्त्या, कतरेण वा प्रकारेण, केन वावष्टम्भेन, कया वा प्रज्ञया, कतमेन वा समाश्वासनेनायं जीवेत्' इत्येते चान्ये च मे विषण्णहृदयस्य सकल्पाः प्रादुरासन्। पुनश्चाचिन्तयम्—'किमनया ध्यातया निष्प्रयोजनया चिन्तया। प्राणास्तावदस्य येन केनचिदुपायेन शुभेनाशुभेन वा रक्षणीयाः। तेषां च तत्समागममेकमपहाय नास्त्यपरः सरक्षणोपायः। बालभावादप्रगल्भतया च तपोविरुद्धमनुचितमुपहासमिवात्मनो मदनव्यतिकरं मन्य

स्वतक गाम्भीर्यं गम्भीरता तस्य सागर समुद्रस्तृणवल्लघुतां लघीयस्त्वमुपनीत प्रापित। क्वेति। तदनिर्वचनीयस्वरूपं तप क। तथा चेयं परिदृश्यमानावस्था क। सर्वथेति। सर्वप्रकारेण निष्प्रतीकारासाध्येयमापद्विपदुपस्थिता प्राप्ता। किमिति। इदानीं सांप्रत किं कर्तव्यम्। किं वा चेष्टितव्यमाचरितव्यम्। क देशं क स्थान प्रति गन्तव्य गमनीयम्। किं वा शरणं त्राणम्। को वोपाय क. प्रतीकार। क सहाय साहाय्यकृत्। क प्रकारस्तदुपशामकविधि। का युक्तिस्तत्प्रक्रियाबुद्धि। क. समाश्रय को निवासो येन कृत्वास्य मुनेरसव प्राणा धार्यन्ते गच्छन्तो रक्ष्यन्ते। केन वा कौशलेन चातुर्येण, कतमया वा युक्त्या, कतरेण वा प्रकारेण, केन वा वावष्टम्भेनालम्बनेन कया वा प्रज्ञया प्रतिभया, कतमेन वा समाश्वासनेन सान्त्वनेन वाय जीवेदिति। एते चेति। विषण्णहृदयस्य खिन्नचित्तस्य मे ममैते चान्ये च सकल्पा विकल्पा प्रादुरासन्प्रकटी बभूवु। पुनश्चेति। पुनस्तदनन्तरमहमचिन्तय चिन्तितवान्। किं तदित्याह—किमनयेति। अनया निष्प्रयोजनया निरर्थकया चिन्तया ध्यातया किम्। तावदादौ अस्य पुण्डरीकस्य शुभेनाशुभेन वा येन केनचिदुपायेन प्राणा असवो रक्षणीया। तेषां चेति। तेषां प्राणानामेक तस्या समागममपहाय विहायापरो भिन्न सरक्षणोपायो नास्ति। बालभावाच्छिशुस्वभावाद् प्रगल्भतयाप्रतिभान्वितया च तपोविरुद्ध व्रतविरोध्यनुचितमयोग्यमात्मन. स्वस्योपहासमिव

ही हो, कहाँ तो (इसका) वह तप तथा कहाँ (इसकी) यह अवस्था ? निश्चय ही यह एक ऐसी विपत्ति आ पड़ी है जिसका कोई उपाय नहीं है। अब क्या करना चाहिये, किस देश या स्थान पर जाना चाहिये (अथवा मैं किधर जाऊँ) ? कौन रक्षक है ? क्या उपाय है ? कौन सहायक है ? क्या विधि है ? क्या युक्ति है ? किसका आश्रय लिया जाय जिससे इसके जीवन को सहारा दिया जा सके ? किसी प्रकार की चतुराई से, अथवा कौन-सी युक्ति से, कौन सी विधि से, किस सहारे से, किस बुद्धि से अथवा कौन-से समाधान से, इसके जीते रहने की सम्भावना हो सकती है—इस प्रकार के ये तथा अन्य विचार (सकल्प), दुःखी हृदय वाले मेरे मन में प्रकट हुए और मैंने फिर सोचा—"ऐसी निष्फल विचारपरम्परा (चिन्ता) को ध्यान में लाने से भला क्या लाभ है ! पहले तो इसके प्राणों की किसी भले अथवा बुरे उपाय से रक्षा करनी होगी और उनकी रक्षा का उपाय, उस (कन्या) के साथ सयोग के अतिरिक्त और कोई नहीं है। और शिशु-सरीखे स्वभाव के कारण (अथवा यौवनके कारण) तथा अपरिपक्व

मानो नियतमेकोच्छ्वासावशेषजीवितोऽपि नाय तस्याः स्वयमभिगमनेन पूरयति मनोरथम्। अकालान्तरक्षमश्चायमस्य मदनविकारः। सततमतिगर्हितेन कृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून् साधवः। तदतिह्रेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम्। किं चान्यत्क्रियते। का चान्या गतिः। सर्वथा प्रयामि तस्याः सकाशम्। आवेदयाम्येतामवस्थाम्' इति चिन्तयित्वा कदाचिदनुचितव्यापारप्रवृत्त मा विज्ञाय

मदनव्यतिकर कदर्पवृत्तान्त मन्यमानो ज्ञायमानो नियत निश्चितमेक एवोच्छ्वास आहरो(?)ऽव शेषोऽवशिष्टो यस्मिन्नेतादृश जीवित प्राणित यस्यैवभूतोऽप्यय पूर्वोक्तानौचित्यवशात्तस्या महाश्वेताया स्वयभिगमनेनात्मनागमनेन मनोरथ चित्ताभिलाष न पूरयति न पूरयिष्यति। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यत्यर्थे वर्तमान। यथाश्रुतमेव वा किं त्वन्यस्य गमनेन तस्या सगमो भविष्यति तथाप्यन्यस्याप्यभिगमनेन का त्वरेत्यत आह—अकालेति। अस्य पुण्डरीकस्याय मदनविकारो न कालान्तर क्षमते। चिरकाल न तिष्ठतीत्यर्थ। अन्यस्य तदभिगमनप्रयासेन किं प्रयोजनमित्यत आह—सततमिति। सतत निरन्तरमतिगर्हितेन निन्दितेन कृत्येनापि कार्येणापि साधव सन्त सुहृदसून्मित्रप्राणान्रक्षणीयान्मन्यन्ते जानन्ति। तदतीति। तदेतदतिह्रेपणमत्यतिलज्जावहमप्यकर्तव्यमप्यनाचरणीयमप्यस्माक पुण्डरीकमार्गानुवर्तिनामवश्यकर्तव्यतां नियतविधेयतामापतितमुपस्थितम्। चिन्तितमुपसहरन्नाह—किंचेति। एतद्व्यतिरिक्तमन्यत्किं क्रियत इत्यर्थ। अन्या एतद्व्यतिरिक्ता का गति। न कापीत्यर्थ। अत -सर्वथैव सर्वप्रकारेण तस्या महाश्वेताया सकाश समीप प्रयामि गच्छामि। एता प्रत्यक्षामवस्थां दशामावेदयामि कथयामि। इति चिन्तयित्वेति विचिन्त्य। इतिशब्दद्योत्यमाह—कदाचिदिति। अनुचितोऽयोग्यो यो व्यापारो व्याप्रतिस्तत्र प्रवृत्त विज्ञाय सजातलज्ज

विचारों के कारण यह (पुण्डरीक) इस प्रेम वृत्तान्त को (मदनव्यतिकरम्) अपने तप के विरुद्ध, अनुचित तथा अपनी हँसी समझता हुआ, निश्चय ही, एक साँस जीवन शेष वाला होते हुए भी (अर्थात् मृत्यु उपस्थित होने के अन्तिम क्षण मे भी) स्वय उसके पास जाने से (स्वय उसके पास जाकर) अपनी मनोभिलाषाको पूरा नहीं करेगा! और कामदेव अथवा प्रेम से उत्पादित इसकी यह व्याधि ऐसी है कि अन्य (अधिक) देरी को सहन नहीं कर सकती (अर्थात् अब उपाय करनेमे देरी नहीं करनी चाहिये)। साधु (सज्जन अथवा बुद्धिमान्) जन, मित्र के जीवन को किसी अत्यन्त निंदित कार्य के द्वारा भी आवश्यक रूप से रक्षा करने योग्य मानते हैं (सज्जनों की धारणा है कि मित्र का जीवन अनुचित तथा दुष्कृत्य का आश्रय लेकर भी बचाना चाहिये)। इसलिये यह काम यद्यपि अत्यन्त लज्जाकर तथा न करने योग्य है तो भी हमारे लिये आवश्यक रूप से कर्त्तव्य हो गया है। और किया भी क्या जाय? अथवा दूसरा (वैकल्पिक) मार्ग ही कौनसा है? अवश्य ही, उसके पास जाऊगा और (इसकी) इस अवस्था को बतलाऊगा"—यह सोचकर और कहीं ऐसा न हो कि मुझ को ऐसे अनुचित (अभद्र) कार्य मे प्रवृत्त जानकर लज्जित हुआ (जाने से) रोक दे, इसलिये उसको विना

सजातलज्जो निवारयेदित्यनिवेद्यैव तस्मै तत्प्रदेशात्सव्याजमुत्थायागतोऽहम्। तदेवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तम्, ईदृशस्य चानुरागस्य सदृशम्, अस्मदागमनस्य चानुरूपम्, आत्मनो वा समुचितं तत्रभवती प्रभवति' इत्यभिधाय किमियं वक्ष्यतीति मन्मुखासक्तदृष्टिस्तूष्णीमासीत्। अहं तु तदाकर्ण्य सुखामृतमये ह्रद इव निमग्ना, रतिरसमयमुदधिमिवावतीर्णा, सर्वानन्दानामुपरि वर्तमाना, सर्वमनोरथानामग्रमिवाधिरूढा, सर्वोत्सवानामतिभूमिमिवाधिशयाना, तत्कालोपजातया लज्जया किंचिदवनम्यमानवदनत्वादस्पृष्टकपोलोदरैः ग्रथितैरिवोपर्युपरिपतनानुबन्धदर्शितमालाक्रमैः, अप्राप्तपक्ष्म-

---

समुत्पन्नत्रप कदाचिज्जातुचिन्मा निवारयेत्प्रतिषेधयेत्तस्मै पुण्डरीकायेति पूर्वोक्तमनिवेद्यैवाकथयित्वैव तत्प्रदेशात्तत्स्थानात्सव्याजं समिषमुत्थायाहमागत तत्तस्मात्कारणादेवममुना प्रकारेणावस्थिते सति यदत्रावसरप्राप्त प्रस्तावागतम्, ईदृशस्य अनुरागस्य स्नेहस्य च सदृश तुल्यम्, अस्मदागमनस्य च मदीयागमनस्य चानुरूपमनुकूलम् आत्मनो भवत्या समुचित योग्य तत्र भवती प्रभवति समर्था भवतीत्यभिधायोक्त्वेय किं वक्ष्यति किं कथयिष्यतीति कृत्वा मन्मुख आसक्ता दृष्टिर्यस्य स तूष्णीमासीत्। अह तु तत्पूर्वोक्तमाकर्ण्य श्रुत्वा सुखमेवामृत पीयूष तन्मये ह्रदे डोहे निमग्ना ब्रुडितेव रतिरस शृङ्गाररसस्तन्मयमुदधि समुद्रमवतीर्णेव मध्यप्रविष्टेव सर्वानन्दाना समग्रप्रमोदानामुपरि वर्तमाना सर्वमनोरथाना सकलचिन्तितानामग्र प्रान्तमधिरूढेवोपर्याश्रितेव, सर्वोत्सवाना समग्रक्षणानामतिभूमिमधिस्यकामधिशयानेव प्रसुप्तेव, तत्कालोपजातया तत्समयोत्पन्नया लज्जया त्रपया किंचिदीषदवनम्यमान प्रह्वीभूयमान यद्वदनमानन तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्। अत एवास्पृष्ट कपोलयोर्गल्लात्परप्रदेशयोरुदर यैरेवंविधै आनन्दबाष्पजलबिन्दुभि अश्रुभि स्रवद्भि क्षरद्भिरावेद्यमानो निवेद्यमान प्रहर्षस्य प्रमोदस्य प्रसर प्रसङ्गो यस्या सैवंविधाह तत्क्षण तत्कालमचिन्तयमध्यायमित्यन्वय। अथाश्रु विशेषयन्नाह—अमलैरिति। अमलैर्निर्मलैरञ्जनाभावात्। ग्रथितैरिव गुम्फितैरिव। अविच्छिन्न-

---

बताये ही, उस स्थान से, बहाना करके, उठ कर मैं आ गया हूँ। इस लिये जब ऐसी स्थिति हो गयी है तो आप वह कीजिये जो इस अवसर (स्थिति) पर अपेक्षित हो, अथवा ऐसे अनुराग के अनुरूप हो अथवा हमारे (मेरे) आगमन के योग्य हो अथवा आपको अपने लिये जो उचित हो।' यह कह कर 'यह क्या कहेगी'—(यह सोचता हुआ) मेरे मुह पर दृष्टि लगाये हुए वह चुप हो गया।

किन्तु मैंने वह सब सुन कर मानो सुख रूपी अमृत के तालाब में डूबी हुई ने, मानो प्रेम के रसीले द्रव से भरे समुद्र मे उतरी हुई ने, सब प्रकार की प्रसन्नताओं के ऊपर वर्तमान (उनके ऊपर तैरती हुई ने, मानो सारी खुशियों के दूरतम प्रदेश (अन्तिम सीमा) तक विश्राम करती हुई) ने, (ठीक) उस समय उत्पन्न हुई लज्जा के कारण तथा कुछ झुके हुए (मेरे) चेहरे के कारण मेरे कपोलों गर्दो (उदर) को न छूते हुए, मानो कि गुथे हुए होने के कारण, (एक दूसरे के) ऊपर ऊपर लगातार गिरने के कारण माला की रचना दिखलाये हुए, (मेरी) बरौनियों के सम्पर्क को प्राप्त

संश्लेषतयोपजातप्रथिमभरैरमलैरानन्दबाष्पजलबिन्दुभिः स्रवद्भिरावेद्यमानप्रहर्षप्रसरा तत्क्षणमचिन्तयम्। दिष्ट्या तावदयमनङ्गो मामिव तमप्यनुबध्नाति, यत्सत्यमेतेन मे सतापयताप्यशेन दर्शितोनुकूलता। यदि च सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते, ततः किमिव नोपकृतमनेन, कि वा नोपपादितम्, को वानेनापरः समानो बन्धुः, कथ वा कपिञ्जलस्य स्वप्नेऽपि वितथा भारती प्रशान्ताकृतेरस्माद्वदनान्निष्क्रामति। इत्थभूते कि मयापि प्रतिपत्तव्यम्, तस्य वा पुरः किमभिधातव्यम्' इत्येवं विचारयन्त्यैव प्रविश्य ससंभ्रमा प्रतीहारी मामकथयत्—'भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थशरीरेति परिजना-दुपलभ्य महादेवी प्राप्ता' इति। तच्च श्रुत्वा कपिञ्जलो महाजनसमर्दभीरुः सत्वर

पतनादिति भाव। उपर्युपरि यत्पतनं तस्य योऽनुबन्ध' परम्परा तेन दर्शित प्रकाशितो माला-क्रम स्रक्परिपाटी यै। अप्राप्तेति। अप्राप्तोऽमिलितो य पक्ष्मसश्लेषो नेत्ररोमसबन्धस्तस्य भावस्तत्ता तयोपजात समुत्पन्न प्रथिमभर पृथुत्वभरो येषु तै दिष्ट्या भाग्येन तावदादावय मनङ्गो मामिव तमपि पुण्डरीकमप्यनुबध्नाति पीडयति। यत्सत्यमिति। तदेतेन मदनेन मा सतापयता अप्यशेन तत्सतापेन मे मम सत्यमनुकूलता दर्शिता। एवं सति मदनेन ममार्थ कुमारस्य सताप क्रियत इत्यर्थ। कुमारस्यानुकूलत्व विवादयन्नाह—यदि चेति। यदि सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते, ततोऽनेन मदनेन किमिव न उपकृत किमुपकारो न कृत। किं वा नोपपादित किं वा न निष्पादितम्। को वेति। अनेन समानोऽपर को वा बन्धु। कपिञ्जल वचसि सत्यतां दृढीकुर्वन्नाह—कथ वेति। प्रशान्ताकृते कपिञ्जलस्यास्माद्वदनात्कथ वितथा-सत्या भारती स्वप्नेऽपि निष्क्रामति। इत्थभूते सति किं मयापि प्रतिपत्तव्य किमङ्गीकर्तव्यम्। तस्य कपिञ्जलस्य वा पुरोऽग्रे किमभिधातव्य किमु कथनीयम्। एव विचारयन्त्येव ससभ्रमा प्रतीहारी प्रविश्य प्रवेश कृत्वा। गृहमिति शेष। ममेत्यकथयदवोचत्। किं तदित्याह—भर्त्रिति। हे भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थमपाटव शरीर यस्या सेति परिजनात्परिच्छदलोकादुपलभ्य प्राप्य महादेवी गौर्यभिधाना त्वदम्बा प्राप्तागता। तच्चेति। तत्पूर्वोक्त श्रुत्वाकर्ण्य कपिञ्जलो

न करने से उत्पन्न हुई स्थूलता के कारण भारी हुए, स्वच्छ, आनन्दाश्रु के जलबिन्दुओं से प्रकट किये जा रहे हर्ष के प्रवाह वाली ने उसी समय सोचा—सौभाग्यसे, सचमुच ही यह अशरीरी (कामदेव) जैसे मेरा पीछा करता है, वैसे उसका भी पीछा कर रहा है। निश्चय ही, मुझको सताते हुए भी इस (कामदेव) ने, अशत मेरी (मेरे प्रति अपनी) अनुकूलता दिखला दी है। और यदि सचमुच ही पुण्डरीक की ऐसी हालत है तो फिर इस (कामदेव) ने मेरा क्या उपकार नहीं किया, अथवा (मेरे लिये) क्या कुछ नहीं किया अथवा कौन दूसरा इसके बराबर मेरा मित्र है? अथवा ऐसे प्रशान्त आकृति वाले कपिञ्जल के मुँह से झूठी वाणी स्वप्न मे भी कैसे निकल सकती है। ऐसा हो जाने पर मुझे भी, इसके बदले में क्या करना अथवा इसके सामने क्या कहना चाहिये—इस प्रकार मैं सोच ही रही थी कि एक द्वारपाल ने आकर मुझ से कहा—'राजपुत्रि! 'तुम अस्वस्थ हो', सेवकवर्ग से यह जान कर महारानी पधारी हैं।' और उस बात को सुन कर बहुत से लोगों की भीड़ (भारी भीड़) से डरने वाला

मुत्थाय—'राजपुत्रि, महानयमुपस्थितः कालातिपातः। भगवांश्च भुवनत्रयचूडामणिरस्तमुपगच्छति दिवसकरः। तद्गच्छामि। सर्वथाभिमतसुहृत्प्राणरक्षादक्षिणार्थमयमुपरचितोऽञ्जलिः। एष मे परमो विभवः' इत्यभिधाय प्रतिवचनकालमप्रतीक्ष्यैव पुरोयायिनाम्बायाः प्रविशता कनकवेत्रलताकरेण प्रतीहारिजनेन कञ्चुकिलोकेनागृहीतताम्बूलकुसुमपटवासाङ्गरागेण चामरव्यग्रपाणिना कुब्जकिरातबधिरवामनवर्षवरकलमूकानुवीतेन परिजनेन सर्वतः सरुद्धे द्वारदेशे कथमप्यवाप्तनिर्गमः प्रययौ।

महानत्युत्कृष्टो यो जनाना समर्दोऽन्योन्यसघट्टस्तस्माद्भीरु. सत्वर शीघ्रमुत्थाय। हे राजपुत्रि, अय कालातिपात कालविलम्बो महान्भूयानुपस्थित प्राप्त। भगवांश्चेति। भुवनत्रयस्य विष्टपत्रयस्य चूडामणिरिव चूडामणि शोभाकारित्वाद्भगवान्दिवसकर श्रीसूर्योऽस्तमुपगच्छत्यस्तमन प्रयाति। तदिति। तत्तस्मात्कारणाद्गच्छामि व्रजामि। सर्वथेति। सर्वप्रकारेणाभिमतो वाञ्छितो य सुहृन्मित्त्र तस्य प्राणा असवस्तेषा रक्षा त्राण सैव दक्षिणा मदागमनपूजा तदर्थं मयमञ्जलि पाणिसयोजनरूप उपरचितो निबद्ध। एष इति। एष सुहृत्प्राणरक्षात्मको मम मे परम उत्कृष्टो विभव ऐश्वर्यमित्यभिधाय प्रतिवचनकाल प्रत्युत्तरसमयमप्रतीक्ष्यैव प्रतीक्षामकृत्वैवाम्बाया गौर्यभिधानाया पुरोयायिनाग्रगामिना प्रविशता प्रवेश कुर्वता परिजनेन परिच्छदेन सर्वत समन्तात्सरुद्धे आवृते द्वारदेशे प्रतोलीदेशे कथमपि महता कष्टेनावाप्तनिर्गम प्राप्तबहिर्गमन प्रययावित्यन्वय। अथ परिजन विशिनष्टि—प्रतीति। प्रतीहारिणा द्वारनियुक्त स्त्रीणां जनो लोको यस्मिन्स तेन। कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य वेत्रलता यष्टिविशेष सा करे पाणौ यस्य स तेन। पद्मपाणिरित्यादिप्रयोगदर्शनात् 'न बहुव्रीहौ' इत्यनेन सप्तम्यन्तस्य पूर्वनिपात। कञ्चुकीति। कञ्चुकिनां सौविदल्लाना लोको जनो यस्मिन्स तेन। 'लोको विश्वजन' इत्यनेकार्थे। आगृहीतेति। आ समन्ताद्गृहीता आत्तास्ताम्बूलकुसुमपटवासाङ्गरागा येन स तेन। तत्र ताम्बूल नागवल्ली, कुसुमानि पुष्पाणि, पटवास पिष्टात, अङ्गरागो विलेपनम्। चामर इति। चामरैर्वालव्यजनैर्व्यग्र आकुल पाणिर्हस्तो यस्य स तेन। कुब्ज इति। कुब्ज खर्व, किरात स्वल्पतनु, बधिरोऽकर्ण, वामन प्रसिद्धः, वर्षवर षण्ढ। 'कलमूकोऽवाक्श्रुति' इति हलायुध। एतैरनुवीतेनावृतेन। 'सवीते रुद्धमावृते' इति कोश., क्वचित्

कपिञ्जल, शीघ्र ही उठ कर 'राजकुमारि! यह तो बहुत सा काल-विलम्ब उपस्थित हो गया है। अब तो बहुत देरी हो जायगी। और भगवान, तीनों भुवनों के मणिभूत सूर्यदेव अब अस्त होने वाले हैं। इस लिये मैं जाता हूँ (मैं अब विदा लूँगा), सब प्रकार से (अपने) इष्ट मित्र के प्राणरक्षा रूप उपहार (दक्षिणा) के लिये मैं हाथ जोड़ता हूँ—यही मेरी उत्कृष्ट सामर्थ्य है (मैं उसके लिये अधिक से अधिक इतना ही कर सकता हूँ)"—यह कहकर और मुझे प्रत्युत्तर देने के समय की प्रतीक्षा किये विना ही, मेरी माता के आगे आगे चलते, सोने की बेंतें हाथ मे लिये हुए, प्रविष्ट होते द्वारपालो द्वारा, पान, फूल, सुगन्धित चूर्ण तथा विलेपन पदार्थ लिये हुए कञ्चुकियों द्वारा, तथा कुबड़ों, किरातों, बहरों, वामनों, नपुंसकों और बहरे गूंगों द्वारा अनुगत चँवरिया हिलानेमें व्यस्त हाथों वाले सेवकों द्वारा सब ओर प्रवेशस्थल के रुके होने पर

अम्बा तु मत्समीपमागत्य सुचिरं स्थित्वा स्वभवनमयासीत्। तया तु तत्रागत्य किं कृत किमभिहित किमाचेष्टितमिति शून्यहृदया सर्वं नालक्षयम्। गताया च तस्यामस्तमुपगते भगवति हारीतहरितवाजिनि सरोजिनीजीवितेश्वरे चक्रवाकसुहृदि सवितरि, लोहितायमाने पश्चिमाशामुखे, हरितायमानेषु कमलवनेषु, नीलायमाने पूर्वदिग्भागे, पातालपङ्ककलुषेण महाप्रलयजलधिपयःपूरेणेव तिमिरेणावष्टभ्यमाने जीवलोके किंकर्तव्यतामूढा तामेव तरलिकामपृच्छम्—'अयि तरलिके, कथ न पश्यसि दृढमाकुल मे हृदयम्। अप्रतिपत्तिविह्वलानि चेन्द्रियाणि। न स्वयमण्वपि

'अनुमत' इति पाठ। तत्रानुमतेनेत्यभिमतेनेत्यर्थं। अम्बा त्विति। अम्बा तु जननी तु मत्स मीपं मदन्तिकमागत्यैत्य सुचिरं चिरकाल स्थित्वा स्वजन निजगृहमयासीदगात्। तया तु मज्जनन्या तु तत्र मद्गृह आगत्य किं कृत किं विहितम्, किमभिहित किं कथितम्, किमाचेष्टितं किमाचरितम्, इति सर्वमह शून्यहृदयोद्वसचित्ता नालक्षयं न ज्ञातवती। तस्यामम्बाया गताया च सत्या भगवति माहात्म्यवति सवितरि सूर्येऽस्तमुपगते प्राप्ते सति किंकर्तव्यतामूढाह तामेव तरलिकामपृच्छ पृष्टवतीत्यन्वय। अथ सूर्यं विशेषयन्नाह—हारीतेति। हारीतो मृदङ्कुर 'हारिल' इति लोकप्रसिद्ध। तद्वद्धरिता नीला वाजिनोऽश्वा यस्य स तस्मिन्। सर इति। सरोजिनी कमलिनी तस्या जीवितेश्वर प्राणनाथस्तस्मिन्। चक्रेति। चक्रवाकस्य द्वन्द्वचरस्य सुहृदि। पुन कस्मिन्सति। पश्चिमाशामुखे लोहितायमाने रक्तायमाने सति। पुन केषु सत्सु। कमलवनेषु नलिनकाननेषु हरितायमानेषु नीलायमानेषु सत्सु। पुन कस्मिन्। पूर्वदिग्भागे नीलायमाने सति। पुन कस्मिन्। तिमिरेणान्धकारेण जीवलोकेऽवष्टभ्यमान आश्लिष्यमाने। केनेव। महाप्रलयस्य यो जलधि समुद्रस्तस्य पय पूरेणेव। पय पूरस्य श्वेतत्वादुत्प्रेक्षा न सभवतीत्याह—पातालेति। पाताल वडवामुखं तस्य पङ्क कर्दमस्तेन कलुषेण मलिनीकृतेन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। अयीति कोमलामन्त्रणे। हे तरलिके, मे मम हृदयं कथं न पश्यसि नावलोकयसि। कीदृशम्। दृढमत्यर्थमाकुल व्याकुलम्। तथा अप्रतिपत्ति सर्वस्मिन्विषयेऽरुचिरनिश्चयो वा तेन विह्वलानि व्याकुलानि चेन्द्रियाणि करणानि।

किसी प्रकार बड़ी कठिनतासे निकास को प्राप्त करके चला गया। किन्तु मेरी माता मेरे समीप आकर बहुत देर तक बैठ कर अपने महल में चली गयी। उसने वहाँ आकर क्या किया, क्या कहा, क्या हाव भाव दिखाये—यह सब अन्यमनस्का मैंने कुछ नहीं देखा।

उसके चले जाने पर हारीत (कबूतरों) सरीखे हरे घोड़ों वाले, कमलिनी के प्राण पति, चक्रवाक पक्षियों के चित्र भगवान् सूर्यदेव क अस्त हो जाने पर, जब पश्चिम दिशा (रूपी देवी) लाल होने लगी, जब कमलक्यारियाँ हरी भरी होने लगीं, पूर्व दिशा का प्रदेश अन्धेरे से युक्त होने लगा, जब मर्त्यलोक, पाताललोक के कीचड़ के समान मैले, बड़ी प्रलय के समय के बादलों की जल बाढ़ जैसे अन्धकार से घिरने लगा तब मैंने मुझे क्या करना चाहिये—यह न जानती हुई ने उसी तरलिका से पूछा—'प्रिय तरलिके! तू क्यों नहीं देखती कि मेरा हृदय खूब परेशान है और इन्द्रियाँ विषयों के प्रति अरुचि के कारण परेशान

कर्तव्यमलमस्मिन्ज्ञातुम्। उपदिशतु मे भवती यदत्र साम्प्रतमयमेव त्वत्समक्षमेवाभिधाय गतः कपिञ्जलः। यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्यम्, अवमुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम्, अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लङ्घ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अङ्गीकृत्यायशो रागान्धवृत्तिः, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता मात्रा, स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्। एवं गुरुजनातिक्रमादधर्मो महान्। अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमङ्गीकरोम्येवमपि प्रथमं तावत्स्वय-

---

अतोऽस्मिन्विषये पुण्डरीकविषयेऽण्वपि कर्तव्य कृत्य स्वय ज्ञातुमह नाल न समर्था, यतोऽय कपिञ्जलस्त्वत्समक्षमेव त्वत्प्रत्यक्षमेवैवममुना प्रकारेणाभिधाय कथयित्वा गत । अतोऽस्मिन्नर्थे यत्साम्प्रत योग्य तद्भवत्युपदिशतु कथयतु। अथोपदेशप्रकारमाह—यदीति। यदि तावत्स्वयमेव। कुमारानुसरणमननुसरणं चेति कोटिद्वयम्, तृतीय पुनरपरमिति किञ्चिद् द्वारमाश्रित्य गूढाभिसधि । आद्ये त्वाह—इतरेति। इतरकन्यकेव नीचकुलोत्पन्नकन्येव लज्जां त्रपा विहाय, धैर्यं साहसमुत्सृज्य दूरीकृत्य, विनय यथोचितव्यापारमवमुच्य त्यक्त्वा, जनापवाद कौलीनमचिन्तयित्वाऽध्यात्वा, सदाचार शोभनानुष्ठानमतिक्रम्योल्लङ्घ्य, शील परपुरुषेष्वनभिरतिस्वभावम्। 'शील साधुवृत्तस्वभावयो' इत्यनेकार्थ । तदुल्लङ्घ्यातिक्रम्य, कुलमभिजनस्तदवगणय्यावगणना कृत्वा, अयशोऽकीर्तिमङ्गीकृत्य स्वीकृत्य रागेण कामरागेणान्धा वृत्तिर्वर्तन यस्या सैवविधाह पित्रा जनकेनाननुज्ञाताऽदत्तानुशासना, मात्रा चाननुमोदिताऽश्लाघिता स्वयमात्मनोपगम्य समीपे गत्वा पाणिं ग्राहयामि हस्तग्रहण करोमि। एवममुना प्रकारेण गुरुजनाः पूज्यजना मातृपित्रादयस्तेषामतिक्रमादुल्लङ्घनान्महानधर्म स्यात्। स त्वनुचित इति शेष । अननुसरणमभिप्रेत्याह—अथेति। अथ धर्मानुरोधादितर पक्षोऽननुसरणात्मकस्तस्यावलम्बनमाश्रयण तद्द्वारेण प्रथम मृत्यु व्यवरोपणमङ्गीकरोमि स्वीकरोमि। एवमपि प्राणविमोचनेऽपि तावदादौ स्वयमागतस्य प्रथमप्रणयिन आद्यस्नेहवतस्तत्रभवत पूज्यस्य कपिञ्जलस्य

हैं। मैं अपने आप तो थोड़ा सा भी यह नहीं जान सकती हूँ कि क्या कर्तव्य है। इसलिये इस विषय में जो करना उचित है—मुझे बता। तेरे सामने ही ऐसा ऐसा कहकर कपिञ्जल अभी अभी गया है। यदि, पहले एक एक सामान्य (अकुलीन) कन्या की भांति, लज्जा को छोड़कर मन की दृढ़ता (धैर्य) को त्यागकर, नम्रता को परे फेंककर, लोकनिन्दा का विचार न करके, सद्‌व्यवहार को लाधकर, सच्चरित्र (शील) को उल्लाँघ कर, कुल की परवाह न करके, अकीर्ति को स्वीकार कर, प्रेम म अन्धी हुई, पिता की अनुमति के बिना ही, माता से न अनुज्ञात ही अपने आप उसके समीप जाकर अपना हाथ पकड़वा दूँगी तो इस प्रकार तो बड़े बूढ़ों का उल्लघन करने के कारण बड़ा अधर्म होगा। किन्तु यदि कर्त्तव्य का बन्धन मानती हुई (कर्त्तव्य का आदर करती हुई) दूसरे विकल्प (पक्ष) का आश्रय लेकर मृत्यु को स्वीकार करती हूँ तो इस प्रकार भी पहले तो स्वयं (व्यक्तिगत रूप में आये) पूर्वाधिकार प्राप्त प्रार्थी आदरणीय कपिञ्जल की प्रथम प्रार्थना का निरादर (अक्षरार्थ भग)

मागतस्य प्रथमप्रणयिनस्तत्रभवतः कपिञ्जलस्य प्रणयप्रसरभङ्गः। पुनरपरं यदि कदाचित्तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभङ्गात्प्राणविपत्तिरुपजायते, तदपि मुनिजनवधजनित महदेनो भवेत्' इत्येवमुच्चारयन्त्यामेव मयि चन्द्रोदयजन्मना विरलविरलेनालोकेन वसन्तवनराजिरिव कुसुमरजसा धूसरतां वासवी दिगयासीत्।

ततः शशिकेसरिविदार्यमाणतमःकरिकुम्भसंभवेन मुक्ताफलक्षोदेनेव धवलतामुपनीयमानम्, उदयगिरिसिद्धसुन्दरीकुचच्युतेन चन्दनचूर्णराशिनेव पाण्डुरीक्रियमाणम्, चलितजलधिजलकल्लोलानिलोल्लासितेन वेलापुलिनसिकतोद्गमेनेव पाण्डु-

---

प्रणयप्रसरस्य स्नेहवृद्धेर्भङ्गो नाश स्यात्। पुनरपरमपि दूषण वक्तुमाह—यदीति। यदि कदाचित्तस्य जनस्य पुण्डरीकस्य मत्कृतादाशाभङ्गात्प्राणविपत्तिर्जीवितनाश उपजायते भवेत्, मुनिजनवधजनित तदपि महदेन पातक भवेदित्येवमुच्चारयन्त्या वदन्त्यामेव मयि चन्द्रस्य शशाङ्कस्योदय उद्गमस्तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तेन। विरलं च विरलं च विरलविरल तेन। तुच्छतुच्छेनेत्यर्थ। एवविधेनालोकेन प्रकाशेन। केन केव। कुसुमेति। कुसुमरजसा पुष्परागेण वसन्तवनराजिरिव काननलेखेव वासवी दिक्प्राक्ककुब्धूसरतामीषत्पाण्डुताम्। 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसर' इति कोश। अयासीत् प्रापत्।

तत इति। ततो दिङ्मुखधूसरणानन्तरमिन्दुधाम्ना शशाङ्कतेजसा पाण्डुतां श्वेततामापाद्यमानं विधीयमान पश्चिमेतर दिगन्तर पौर्व दिग्विभागमदृश्यतालोक्यत। जनैरिति शेष। पाण्डुत्वसाम्येनाह—शशीति। शश्येव विदारणकर्तृत्वात्केसरी तेन विदार्यमाणो भिद्यमानो य कृष्णत्वसाम्यात्तम एव करी तस्य कुम्भौ शिरसः पिण्डौ तयो सभव उत्पत्तिर्यस्यैवभूतेन मुक्ताफलाना मौक्तिकानां क्षोदेनेव चूर्णेनेव धवलतां शुभ्रतामुपनीयमान प्राप्यमाणम्। उदयगिरिसबन्धिनो ये सिद्धा गन्धर्वविशेषा विद्यासिद्धा वा तेषा या सुन्दर्य॰ स्त्रियस्तासां कुचा पयोधरास्तेभ्यश्च्युतेन गलितेन चन्दनचूर्णराशिनेव मलयजक्षोदसमूहेनेव पाण्डुरीक्रियमाण शुभ्रतामापाद्यमानम्। चलितेति। चलित कम्पितं यज्जलधिजल समुद्राम्भस्तस्य कल्लोलामि-

---

होगा। फिर दूसरी बात यह है कि यदि कहीं, मेरे किये हुए नैराश्य के कारण उस व्यक्ति का जीवन नाश हो गया तो भी मुनिजन की हत्या से उत्पन्न हुआ महान् पाप होगा मेरे इतना कहते ही (अभी होने वाले चन्द्रोदयद्वारा उत्पन्न हुए धीमे धीमे प्रकाश से पूर्व दिशा ऐसी धूसर हो गयी जैसी कि वसन्तकालीन वृक्षों की पंक्ति पुष्पों के पराग से धूसर हो जाती है।

इसके पश्चात् (लोगों ने) पूर्वी दिक् प्रदेश को चन्द्रमा के प्रकाश से ऐसा होता देखा कि मानो चन्द्रमारूपी सिंह के करों (क्रमश किरणों—और हाथों) से फाड़े जाते अन्धकाररूप हाथी के मस्तक से उत्पन्न हुए मोतियों के चूर्ण से (वह पूर्वी प्रदेश) सफेदी को प्राप्त कर रहा हो, अथवा मानो उदयपर्वत की सिद्ध सुन्दरियों के स्तनों पर से झड़े हुए चन्दन के चूरे से वह दिग्भाग पीला पड़ रहा हो, मानो (सदा के) चञ्चल समुद्र की लहरों से उठी वायु द्वारा उछाले हुए रेतीले तट की रेत के ऊपर उठने से (वह पूर्वी दिग्भाग)

तामापाद्यमान पश्चिमेतरमिन्दुधाम्ना दिगन्तरमदृश्यत। शनैः शनैश्चन्द्रदर्शनान्मन्द-मन्दस्मिताया दशनप्रभेव ज्योत्स्ना निःपतन्ती निशाया मुखशोभामकरोत्। तदनु रसातलादवनीमवदीर्योद्गच्छता शेषफणामण्डलेनेव रजनीकरबिम्बेनाराजत रजनी। क्रमेण च सकलजीवलोकानन्दकेन कामिनीजनवल्लभेन किंचिदुन्मुक्तबालभावेन मकरध्वजबन्धुभूतेन समुपारूढरागेण सुरतोत्सवोपभोगैकयोग्येनामृतमयेन यौवनेनेवा-रोहता शशिना रमणीयतामनीयत यामिनी। अथ त प्रत्यासन्नसमुद्रविद्रुमप्रभा-

लैस्तरङ्गवायुभिरुल्लासितेनोल्लास प्रापितेन वेलाम्भसो वृद्धिस्तस्या पुलिनं जलोज्झितं तट तस्य सिकता वालुका तस्या उद्गमेनेव प्रकटनेनेव शनै शनैर्मन्दमन्द ज्योत्स्ना नि पतन्ती निशाया मुखशोभामकरोत्। विशदत्वसाम्येनाह—दशनेति। चन्द्रदर्शनात्स्वकीयनाथनिरीक्षणान्मन्द मन्द स्मिताया दशनप्रभेव दन्तकान्तिरिव। तदन्विति। तदनु पश्चाद्रसातलान्नागलोकादवनीं पृथ्वीमवदीर्य विदारण कृत्वोद्गच्छता प्रादुर्भवता। श्वेतत्ववर्तुलत्वसाम्येनाह—शेषेति। शेषस्य नागाधिपते फणामण्डलेनेव फणासमूहेनेव रजनीकरबिम्बेन रजनी त्रियामाऽराजताशोभत। अत्र रजनीकरबिम्बमात्रग्रहणेन चन्द्रस्य बालभावप्रकटीकरणात्समुपारूढातिरागिणेति पूरणीयम्। ततश्च चन्द्रोदयकालेऽतीवारुण्य बालत्वात्। तदनन्तर च तरुणावस्थायामारुण्यमात्रम्। अत एव समुपारूढरागेणेत्येवाग्रे विशेषणम्। तथा शेषफणेत्यत्रानवरतकमलाकरकमलतललालित हरिपदाम्बुजप्रभारुणाभेति पूरणीयम्। तेन सर्वं साम्यमुपपद्यते। ततः क्रमेण परिपाट्या शशिना चन्द्रेण यामिनी रात्री रमणीयता शोभनीयतामनीयत प्रापिताभूत्। 'नी प्रापणे' धातु॰। अथ च शशिन विशेषयन्नाह—सकलेति। सकल समग्रो यो जीवलोको मनुष्यलोकस्तस्यानन्दकेन प्रमोदोत्पादकेन कामिनीजन स्त्रीलोकस्तस्य वल्लभेन प्रियेण। किंचिदिति। किंचिदीषदुन्मुक्तस्त्यक्तो बालभाव शिशुत्व येन स तेन। मकरेति। मकरध्वजस्य कंदर्पस्य बन्धुभूतेन स्वजनभूतेन। समेति। समुपारूढोऽध्यासितो रागो रक्तता येन स तेन। सुरतेति। सुरतोत्सवे

पीला पड़ रहा था। धीरे धीरे (क्रमशः) नीचे सरककर आती हुई चन्द्रमा की चान्दनी ने रात्रिरूपी सुन्दरी के मुख की शोभा को ऐसे बढ़ा दिया कि मानो चन्द्रमा के दर्शन के कारण धीरे धीरे मुस्कराती हुई (नारी) के मुख की शोभा को उसके दाँतों की काति ने बढ़ा दिया हो। इसके पश्चात् रात्रि पाताल लोक से, पृथ्वी को फाड़कर ऊपर उठते हुए शेष नाग के फणाचक्र सरीखे चन्द्रबिम्ब से सुशोभित हो गयी। और धीरे-धीरे रात्रि सारे मर्त्यलोक को आनन्दित करने वाले, कामुक स्त्रियों के प्रियपात्र, अपने शैशव को (अर्थात् उदयकालीन लालिमा को) कुछ कुछ छोड़े हुए, कामदेव (प्रेम के देवता) के साथी जिसपर लाल रग की आभा चढ़ी हुई थी, जो उस समय केवल प्रेम सुख के उपभोग योग्य था तथा जो अमृतमय था ऐसे उदय होते हुए चन्द्रमा से ऐसे आकर्षक बन गयी जैसे कि सारे मर्त्य लोगों को आनन्दित करने वाले, सभी कामिनियों द्वारा अभिलषित, थोड़ा-थोड़ा बाल भाव छोड़े हुए, कामदेव के सहायक, अनुराग को उत्पन्न कराने वाले, एकमात्र प्रेम-क्रीडाओं के उपभोग के योग्य तथा सर्वथा दिव्य चढ़ते हुए यौवन से सुशोभित हो गयी हो।

पाटलितमिव, उदयगिरिसिंहकरतलाहतहरिणशोणितशोणीकृतमिव, रतिकलहकुपित-रोहिणीचरणालक्तरसलाञ्छितमिवाभिनवोदयरागलोहितं रजनीकरमुदितं विलोक्या-न्तर्ज्वलितमदनानलाप्यन्धकारितहृदया तरलिकोत्सङ्गविधृतशरीरापि मन्मथहस्तवर्तिनी चन्द्रगतनयनापि मृत्युमालोकयन्ती तत्क्षणमचिन्तयम्—'एकत्र खलु मधुमासमलय-मारुतप्रभृतयः समस्ताः, एकत्र चायं पापकारी चन्द्रहतको न शक्यते सोढुम्। इदमतिदुर्विषहं मे हृदयम्। अस्य चोद्गमनमिदं सदाहज्वरग्रस्तस्याङ्गारवर्षः, शीतार्तस्य

निधुवनक्षणे य उपभोगस्तत्रैकयोग्येन। सर्वथोचितेनेत्यर्थः। अमृतमयेन पीयूषात्मकेन। किं कुर्वता। आरोहतारोहणं कुर्वता। गगनमिति शेषः। सकलानन्दकारित्वादिसाधर्म्यादुत्प्रेक्षते—यौवनेनेव तारुण्येनेव। अथ चन्द्रस्य तरुणभावं वर्णयन्नाह—अथेति। आरोहणानन्तरं त रजनीकरं चन्द्रमुदितं विलोक्य निरीक्ष्याहं तत्क्षणं तत्कालमचिन्तयं चिन्तितवतीत्यन्वयः। अथ रजनीकरं विशिनष्टि—अभीति। अभिनवः प्रत्यग्रो य उदयरागस्तेन लोहितं रक्तम्। अत एव कीदृशमिव। प्रत्यासन्नः समीपवर्ती यः समुद्रः पयोधिस्तस्मिन्विद्रुमा रक्तकन्दास्तेषां प्रभा कान्तयस्ताभिः पाटलितमिव श्वेतरक्तीकृतमिव। उदयेति। उदयगिरेः पूर्वाद्रेः सिंहो हर्यक्षस्तस्य करतलेन चपेटयाहतस्ताडितो यो हरिणस्तस्य शोणितं रुधिरं तेन शोणीकृतमिव रक्तीकृतमिव। रतिकलहेन कामकलहेन कुपिता कोपं प्राप्ता या रोहिणी चन्द्रस्त्री तस्याश्चरणौ पादौ तयोरलक्त-रसो यावकद्रवस्तेन लाञ्छितमिव चिह्नितमिव। अथ महाश्वेतां विशेषयन्नाह—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये ज्वलितो मदनानलः कामवह्निर्यस्यामेवंविधाप्यन्धकारितं हृदयं यस्या इति। अन्धकारप्रज्वलनयोर्मिथो विरोधात्। तरलिकेति। तरलिकाया उत्सङ्गः क्रोडस्तत्र विधृतं स्थापितं शरीरं देहो यया एवंविधापि मन्मथहस्तवर्तिनी कदर्पकरगतेति विरोधः। चन्द्रेति। चन्द्रे शशाङ्के गते प्राप्ते नयने लोचने यस्या एवंविधापि मृत्युं मरणमालोकयन्तीति विरोधः। अत्र सर्वत्रापिशब्दो विरोधालंकारद्योतकः। एतत्परिहारश्चार्थभेदेन स्वयमूह्यः। स्वस्य संकटप्रविष्टतामा-वेदयन्त्याह—एकत्रेति। खलु निश्चयेन। एकत्रैकस्मिन्स्थले मधुमासमलयमारुतप्रभृतयः समस्ताः। एतेषामुद्दीपकत्वादेवोपादानम्। एकत्रेति। एकस्मिन्स्थले पापकारी पापिष्ठश्चन्द्र एव हतको हत्या-

इसके पश्चात् मानो समीपवर्ती समुद्र के मूँगों की कांति से लाल हुए, अथवा मानो उदयपर्वत पर स्थित सिंह के पंजे से प्रताडित हरिण के रक्त से लाल किये गये, अथवा मानो प्रेम कलह में क्रुद्ध हुई रोहिणी के पाँव की महावर से चिह्नित हुए, ताजे उदय की आभा से लाल हुए चन्द्रमा को उदय हुआ देखकर, (हृदय के) भीतर जली हुई कामाग्नि से युक्त भी काले हृदय वाली (अर्थात् चित्त परेशान होने के कारण—क्या करना है यह न जानती हुई), तरलिका की गोदी में शरीर को रखे हुए भी कामदेव के हाथों में (निस्सहाय) पड़ी हुई, चन्द्रमा पर आँखें टिकाये हुई भी मृत्यु को देखती हुई उस समय (निम्नलिखित) विचार करने लगी—"एक स्थान पर तो, निश्चय ही वसन्त का महीना, मलय पर्वत पर से आयी वायु आदि सब एकत्रित हैं, और एक स्थान पर (दूसरी ओर) इस पापकारी, पापी चन्द्रमा को सहन कर लेना सामर्थ्य से बाहर है। यह मेरा हृदय प्रेम की असह्य पीडा से दुःखी है। और, साथ ही, इस चन्द्रमा का यह उदय जलन युक्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति के लिये अङ्गारों की

तुषारपातः, विषविस्फोटमूर्च्छितस्य कृष्णसर्पदंशः' इत्येवं चिन्तयन्तीमेव चन्द्रोदयोपनीता कमलवनम्लानिनिद्रेव मूर्च्छा मा निमीलितलोचनामकार्षीत्। अचिरेण च सम्भ्रान्ततरलिकोपनीताभिश्चन्दनचर्चाभिस्तालवृन्तानिलैश्चोपलब्धसञ्ज्ञा तामेवाकुलाकुला मूर्तेनेवाधिष्ठिता विषादेन मल्ललाटविधृतस्रवच्चन्द्रकान्तमणिशलाकामविच्छिन्नबाष्पजलधारान्धकारितमुखीं रुदन्तीं तरलिकामपश्यम्। उन्मीलितलोचनां च मा सा कृतपादप्रणामा चन्दनपङ्कार्द्रेण करयुगलेन बद्धाञ्जलिरवादीत्—'भर्तृदारिके, किं

कृत्सोढु न शक्यते न पार्यते। विरहिणीहृदयस्य दु खासहिष्णुक्षमत्वमावि कुर्वन्नाह—इदमिति। अतिदु खेन विषहत इति दुर्विषहं हृदय तथा। अस्य चन्द्रस्येदमुद्गमन सदाहेन वर्तमानो यो ज्वरस्तापस्तेन ग्रस्तस्य। अङ्गारेति। अङ्गारवर्ष उल्मुकवृष्टिः। अङ्गार साग्निर्निरग्निश्च द्विविधो वर्ण्यते। साग्नौ यथा—'अङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते', निरग्नौ यथा—'कलङ्कस्तत्रत्यो व्रजति मलिनाङ्गारतुलनाम्' इत्यादि प्रयोग। शीतेति। शीतार्तस्य शीतपीडितस्य तुषारो हिम तस्य पात पतनम्। विषेति। विष गरल तस्य विस्फोटकेन मूर्च्छितस्य मूर्च्छां प्राप्तस्य कृष्णसर्पस्य दंशो दशनम्। एतादृशमुद्गमनम्। इत्येव चिन्तयन्ती ध्यायन्तीमेव मूर्च्छा मा निमीलिते लोचने नेत्रे यस्या एवविधामकार्षीत्। केव। चन्द्रोदयेन शशाङ्कोद्गमनेनोपनीता प्रापिता कमलवनस्य म्लानि. संकोचस्तस्मिन्या निद्रा सेव। अचिरेणेति। अल्पकालेन संभ्रान्ता व्यामोह प्राप्ता या तरलिका तयोपनीताभिरानीताभिश्चन्दनचर्चाभिर्मलयजसमालम्बनैस्तालवृन्तानिलैश्च व्यजनवातैश्चोपलब्धा सञ्ज्ञा चैतन्य यया सा तामेव तरलिकामाकुलाकुलामुत्पिञ्जला मूर्तेनेव विषादेनाधिष्ठितामाश्रिताम्। मदिति। मम ललाटे मदलीके विधृता स्थापिता स्रवन्ती जल क्षरन्ती चन्द्रकान्तमणिशलाका यया सा ताम्। अस्या जलस्यातिशीतलत्वात्तस्स्थापनमुचितमेवेति भाव। अवीति। अविच्छिन्नात्रुटिता बाष्पजलधारा नेत्रवारिसततिस्तयान्धकारित विच्छायित मुख यस्या सा ता रुदन्तीं रोदन कुर्वन्तीं तामेव तरलिकामपश्यमवलोकयम्। उन्मीलितेति। उन्मीलिते विकसिते लोचने नेत्रे यस्याः सा ताम्। एवविधा मां सा तरलिका। कृतेति। कृतो विहित पादयोश्चरणयोः प्रणामो नतिर्यया सा। चन्दनेति। चन्दनस्य मलयजस्य पङ्क कर्दमस्तेनार्द्रेण विलन्नेन करयुगलेन हस्तयुग्मेन बद्धोऽञ्जलिर्यया सैवंविधावादीदवोचत्। किं

वर्षा है, शीत से पीडित पर मानो हिम की वर्षा है, विष से उत्पादित फोड़े से मूर्छित व्यक्ति के लिये काले साँप का काटना है। मैं अभी इस प्रकार सोच ही रही थी कि चन्द्रोदय द्वारा लायी गयी कमलों के मुरझाने रूपी निद्रा सरीखी मूर्छा ने मुझको बन्द आँखों वाली कर दिया। और, शीघ्र ही, सहमी हुई तरलिका द्वारा मले हुए चन्दन लेपों से तथा ताड़ के पत्तों द्वारा पहुँचायी गयी वायु से सचेत हुई मैंने उसी अत्यन्त दु खी, मानो शरीरधारी विषाद से युक्त जल चुआती हुई चन्द्रकान्त मणि को मेरे मस्तक पर रखे हुई, निरन्तर बह रही जलधार से धुंधले किये गये मुह वाली रोती हुई तरलिका को देखा। और आँखें खोले हुई मुझ से, पाँव में प्रणाम करके चन्दन लेप से, गीले दोनों हाथों से अञ्जलि बाँध कर कहा—'राजपुत्रि! अब

लज्जया गुरुजनापेक्षया वा। प्रसीद। प्रेषय माम्। आनयामि ते हृदयदयितं जनम्। उत्तिष्ठ। स्वयं वा तत्र गम्यताम्। अतः परमसमर्थासि सोढुमिमं प्रबलचन्द्रोदय-विजृम्भमाणोत्कलिकाशतमुदधिमिव मकरचिह्नम्' इत्येववादिनी तामवोचम्—'उन्मत्ते, किं मन्मथेन। नन्वयं सर्वविकल्पानपाहरन्, सर्वोपायदर्शनान्युत्सारयन्, अन्तरायानन्तरयन्, सर्वसंदेहानपनयन्, सर्वशङ्कास्तिरस्कुर्वन्, लज्जामुन्मूलयन्, स्वयमभिगमनलाघवदोषमावृण्वन्, कालातिपातं परिहरन्, आगत एव मृत्योस्तस्यैव

तदित्याह—भर्त्रिति। हे भर्तृदारिके, किं लज्जया त्रपया। गुरुजनानां मातृपित्रादीनामपेक्षया वा किम्। प्रसीद प्रसन्ना भव। मां तत्र प्रेषय प्रेषणं कुरु। ते तव हृदयदयितं प्राणप्रियमेतादृशं जनमानयाम्यानयनं करोमि। वेति पक्षान्तरे। उत्तिष्ठोत्थानं कुरु। तत्र तस्मिन्स्थले गम्यतां गमनं क्रियताम्। इत परं मकरचिह्नं मन्मथं सोढुमसमर्थात्वमासि। कमिव। उदधिमिव समुद्रमिव। तत्र मकरा मत्स्याश्चिह्नानि यस्य। एतादृशसाम्येऽपि साम्यान्तरमाह—प्रबलेति। प्रबलः प्रकृष्टो यश्चन्द्रोदयस्तेन विजृम्भमाणा वृद्धिं प्राप्ता उत्कलिका उत्कण्ठास्तासां शतं यस्मात्। अथ तरङ्गाणामुत्कलिका आरोहावरोहरूपास्तासां शतं यस्मिन्निस्येववादिनीं ता तरलिकामवोचमवदम्। किं तदित्याह—उन्मत्त इति। हे उन्मत्तिके परवेदनाया. स्वानुभव-वदनभिज्ञे तरलिके, मन्मथेन कदर्पेणैकेन किं स्यात्। नन्वाक्षेपमय मृत्योर्मरणस्य तस्यैव वा कुमारस्य सकाशं समीपं नेता प्रापक कुमुदबान्धवश्चन्द्र आगत एव प्राप्त एव। एतेन चन्द्रस्यो-द्दीपकत्वाद्विरहवेदनायास्तीव्रत्वात्कुमारनिकटेऽपि समागमनमशक्यमित्युत्कण्ठातिशयो दर्शित। किं कुर्वन्। सर्वेति। सर्वविकल्पान्समग्रचिन्तितानपाहरन्नपहरणं कुर्वन्। सर्वेति। सर्वे समग्रा ये उपायाश्चन्दनवासप्रक्षेपादयस्तेषां दर्शनानि विलोकनान्युत्सारयन्दूरीकुर्वन्। अन्तरायेति। अन्तराया अयं मुनिकुमारोऽहं च राजकुलोत्पन्नेत्युभयोर्विलक्षणकुलशीलस्वभाव-लोकगर्हारूपास्तानन्तरयन्व्यवधानं कुर्वन्। सर्वेति। एतदनुसरणे किंचिदनिष्टं स्यादित्येवंरूपा. सर्वे ये संदेहा द्वापरास्तानपनयन्दूरीकुर्वन्। सर्वेति। सर्वाश्च ता शङ्का मातृपितृवर्गात्समुद्भूता आरेकास्तास्तिरस्कुर्वन्न्यक्कुर्वन्। लज्जेति। लज्जां त्रपामुन्मूलयन्नुच्छिन्दन्। स्वयमिति।

लज्जा करने से अथवा बड़े बूढ़ों का ध्यान रखने से क्या लाभ हो सकता है! प्रसन्न हो, मुझे भेज दो, मैं तेरे हृदय के प्यारे व्यक्ति को ले आऊँगी। उठ, अथवा स्वयं वहाँ जा। इसके पश्चात् तू अब इस योग्य नहीं रही है कि शक्तिशाली चन्द्रमा के उदय के समय उठती हुई सैकड़ों लहरों वाले, समुद्र की भाँति, इस प्रबल चन्द्रमा के उदय के समय उठती सैकड़ों लालसाओं से युक्त इस कामदेव के प्रभाव को सहन कर सके'—इस प्रकार कह रही उस तरलिका से मैंने कहा—"पागल लड़की! मदन (की बात करने) से क्या (लाभ) है! निश्चय ही यह सारे विकल्पों—सकोचों—को दूर करता हुआ, उपायों को देखने (सोचने) के सभी विचारों को भगाता हुआ, सभी विघ्नों को आँखों से ओझल करता हुआ, सभी सन्देहों को मिटाता हुआ, सारी शङ्काओं का निरादर करता हुआ, लज्जा को जड़ से उखाड़ता हुआ, अपने आप (अपने प्रियतम) के समीप पहुँचने में होने वाली चपलता के दोष पर पर्दा

वा सकाशं नेता कुमुदबान्धवः। तदुत्तिष्ठ। यथाकथंचिदनुगमनेन जीविता संभावयामि हृदयदयितमायासकारिणं जनम्' इत्यभिदधाना मदनमूर्च्छास्वेदविह्वलैरङ्गैः कथंचिदवलम्ब्य तामेवोदतिष्ठम्। उच्चलितायाश्च मे दुर्निमित्तनिवेदकमस्पन्दत दक्षिणं लोचनम्। उपजातशङ्का चाचिन्तयम्—'इदमपरं किमप्युपक्षिप्तं दैवेन' इति।

अथ नातिदूरोद्गतेन त्रिभुवनप्रासादमहाप्रणालानुकारिणा सुधासलिलप्लवानिव

स्वयमात्मनाभिगमने तदनुसरणे लाघवदोषं लघुतादूषणमावृण्वन्नाच्छादयन्। कालेति। कालस्य समयस्यातिपातमविलम्बं परिहरन्परित्यजन् तत्तस्मात्कारणादुत्तिष्ठोत्थानं कुरु। अतित्वरयेति शेषः। एतेनानुसरण आदरातिशयः सूचितः। अनुगमनेन यथाकथंचिद्यदि जीविता श्वसिता तदा यन्निमित्तमायासोऽनुभूयते तमायासकारिणं हृदयदयितं जनं संभावयामि। अनुसरणफलीभूतेन सह संगमरूपेण समाधानं करिष्यामीत्याशयः। इत्यभिदधानेति ब्रुवाणा। मदनेति। मदनमूर्च्छया जनितो यः स्वेदस्तेन विह्वलैर्व्याकुलैरङ्गैर्हस्तपादादिभिः कथंचिन्महता कष्टेन तामेव तरलिकामवलम्ब्यालम्बनीकृत्योदतिष्ठमुत्थितवती। उच्चेति। उच्चलिताया उत्प्राबल्येन प्रस्थितायाः मे मम दुर्निमित्तं कुमारस्य विगतजीवितत्वादिकं तस्य निवेदकं ज्ञापकं दक्षिणं सव्येतरं लोचनं नयनमस्पन्दतास्फुरत्। उपेति। उपजाता समुत्पन्ना शङ्कानिष्टोत्प्रेक्षणं यस्या एवंविधा चाहमित्यचिन्तयमित्यध्यायम्। इतिप्रतिपाद्यमाह—इदमिति। दैवेन विधिना-परमिदं किमुपक्षिप्तं निक्षिप्तम्।

अथेति। दुर्निमित्तोपागमानन्तरं प्रदोषसमय एव यामिनीमुख एव तस्मात्प्रासादशिखरात्पूर्वोक्तसौधप्रान्तादवातरमुत्तीर्णा। उत्तीर्य च प्रमदवनपक्षद्वारेण पक्षकेण निर्गत्य निर्गमनं कृत्वाहं महाश्वेता एव तत्समीपं पुण्डरीकाभ्यर्णमुदचलमुदगच्छमिति दूरेणान्वयः। कस्मिन्सति। चन्द्रमण्डलेन शशिबिम्बेन ज्योत्स्नया कौमुद्या भुवनान्तराले विष्टपविशाले प्लाव्यमाने पूर्यमाणे सतीत्यर्थः। कीदृशेन चन्द्रमण्डलेन। नातिदूरोद्गतेनातिविप्रकृष्टोदितेन। अत्र च ज्योत्स्नायाः श्वेतत्वसंतोषजनकत्वस्वभावतया सुधासाम्येन तां वर्णयितुं चन्द्रमण्डलविशेषणमाह—सुधेति।

डालता हुआ, सारे विलम्ब (कालातिपात) को दूर करता हुआ, मृत्यु के अथवा उसके समीप पहुँचाने वाला कुमुद बन्धु चन्द्रमा आ ही गया है। इसलिये उठ। जिस भी किसी प्रकार से जीवित रहती हुई मैं उस अपने हृदय के प्यारे तथा परेशान करने वाले व्यक्ति का, उसके पीछे चलकर, आदर करूगी।" यह कहती हुई, प्रेम द्वारा लायी गयी मूर्छा (विक्षोभ) के कारण हुई थकावट से हतोत्साह हुए अपने अंगों द्वारा किसी प्रकार उसी तरलिका का आश्रय लेकर उठकर खड़ी हो गयी और चल पड़ी तब मेरी, दुष्टनिमित्त की सूचिका दाहिनी आख फड़फडायी। और शङ्का उत्पन्न किये हुए मैंने सोचा—"दैव ने यह दूसरी बात भी आरम्भ कर दी है।"

इसके पश्चात् अभी दूर तक ऊपर न उठे हुए (अपनी उठती हुई किरणों के कारण) त्रिभुवन रूपी महल के एक बड़े नल के सदृश प्रतीत होते, चूने रूपी जल की बाढ़ों को बहा कर ले जाते हुए-से प्रतीत होते, चन्दन रस की धाराओं को चुवाते से प्रतीत होते,

वहता चन्दनरसनिर्झरनिकरानिव क्षरतामृतसागरपूरानिवोद्गिरता श्वेतगङ्गाप्रवाह-सहस्राणीव वमता चन्द्रमण्डलेन प्लाव्यमाने ज्योत्स्नया भुवनान्तराले, श्वेतद्वीप-निवासमिव सोमलोकदर्शनसुखमिवानुभवति जने, महावराहदंष्ट्रामण्डलनिभेन शशिना क्षीरसागरोदरादिवोद्ध्रियमाणे महीमण्डले, प्रतिभवनमङ्गनाजनेन विकच-कुमुदगन्धैश्चन्दनोदकैरुपह्रियमाणेषु चन्द्रोदयार्घेषु, कामिनीप्रहितसुरतदूतीसहस्रसंकुलेषु राजमार्गेषु, नीलांशुकरचितावगुण्ठनासु चन्द्रालोकभयचकितासु, कमलवनलक्ष्मीष्विव

सुधा पीयूषं तृषोपशामकत्वात्, तदेव सलिलं तस्य प्लवा पूरास्तानिव वहता दधता। सलिलं गेहप्रणालेन गच्छतीत्याशयेनाह—त्रिभुवनेति। त्रिभुवनमेव प्रासादो देवगृहं तस्य महा-प्रणालानुकारिणा जलमार्गसादृश्यधारिणा। पुनस्तेनैव साम्येन द्विधा वर्णयन्नाह—चन्दनेति। चन्दनरसस्य मलयजद्रवस्य यो निर्झरो झरस्तस्य निकरानिव समूहानिव क्षरता क्षरणं कुर्वता। अमृतेति। अमृतमयस्य य सागर समुद्रस्तस्य पूरानिव प्लवानिवोद्गिरता वमता। श्वेतेति। श्वेतगङ्गाया· श्वेतजाह्नव्या प्रवाहाणामोघानां सहस्राणीव वमतोद्गिरता। श्वेतेति। श्वेतद्वीपे यो निवासस्तमिव सोमलोकस्य यद्दर्शनसुखं तमिव जनेऽनुभवति साक्षात्कुर्वति सति। महेति। महावराहस्यादिवराहस्य यद्दंष्ट्रामण्डलं तस्य निभेन सदृशेन शशिना चन्द्रेण। इदं च शशिन किंचित्कालहीनत्वमादायेत्युक्तम्। अन्यथा दंष्ट्राया वक्रत्वेन चन्द्रमण्डलस्य वर्तुलत्वेन साम्यं न स्यात्। क्षीरेति। क्षीरसागरोदराद् दुग्धोदधिमध्यान्महीमण्डल उद्ध्रियमाण इव बहि-र्निष्काश्यमान इव। परमेश्वरेण महावराहरूपं धृत्वा मही समुद्रे मज्जन्ती दंष्ट्रायां धृतेति पुराणप्रसिद्धि·। प्रतीति। प्रतिभवनं प्रतिगृहमङ्गनाजनेन स्त्रीजनेन विकचकुमुदानां विकस्वर-कैरवाणां गन्धो येष्वेवंविधैश्चन्दनोदकैश्चन्द्रोदयार्घेषु शशाङ्कोद्गमनपूजासूपह्रियमाणेषु क्रियमाणेषु सत्सु। कामिनीति। कामिनीभि स्त्रीभि प्रहिता प्रेषिता या सुरतार्थं दूत्य सञ्चारिकास्तासा सहस्रं तेन संकुलेषु व्याप्तेषु राजमार्गेषु श्रीपथेषु सत्सु। पुन कासु। अभिसारिकासु सत्सु। संकेतित स्थान या अभिगच्छन्ति ता अभिसारिका· स्त्रिय कथ्यन्ते। अथ चाभिसारिकां विशेषयन्नाह—नीलेति। नीलांशुकेन श्यामवस्त्रेण रचित निर्मितमवगुण्ठन शिरोंशुक यासां

अमृत के समुद्र की बाढ़ों को उगलते-से प्रतीत होते, सहस्रों श्वेत गङ्गा-धाराओं की उल्टी करते-से प्रतीत होते चन्द्रबिम्ब द्वारा अपनी चांदनी से सब लोकों के मध्यवर्ती शून्य स्थानों को भर देने पर, जब लोग यह अनुभव करने लगे कि मानो वे किसी श्वेत द्वीप में रह रहे हैं अथवा चन्द्रलोक के दर्शन के सुख का उपभोग कर रहे हैं, जब महावराह के दंष्ट्रामण्डल के समान प्रतीत होते चन्द्र द्वारा मानो कि दुग्ध सागर के पेट (गह्वर) में से ही पृथ्वी को निकाला जाने लगा, जब प्रत्येक घर में (घर-घर में) चन्द्रोदय की पूजायें स्त्रियों द्वारा, खिले हुए कुमुद की गन्ध से सुगन्धित, चन्दन-जलों द्वारा उपस्थापित (अर्पित) की जाने लगीं, जब कि राजमार्ग स्त्रियों द्वारा भेजे गये सहस्रों दूतों से भर गये, जब नीले रेशमी वस्त्रों को अपना पर्दा बनाये हुई अभिसारिकायें चन्द्रमा की चान्दनी के डर से डरी हुई इधर उधर ऐसे भागने लगीं कि मानो वे नीले कमल की कान्ति से ढकी हुईं, (दिन के श्वेत) कमलों की क्यारियों

नीलोत्पलप्रभापिहितास्वितस्ततः पलायमानास्वभिसारिकासु, प्रतिकुमुदमाबद्धमधुकर-मण्डलासु प्रबुध्यमानासु भवनदीर्घिकाकुमुदिनीषु स्फुटितकुमुदवनबहलधूलिधवलि-तोदरे निशानदीपुलिनायमानेऽन्तरिक्षे, चन्द्रोदयानन्दनिर्भरे महोदधाविव रतिरसमय इव उत्सवमय इव विलासमय इव प्रीतिमय इव जीवलोके, शशिमणिप्रणालनिर्झरे प्रमोदमुखरमयूररवरम्ये प्रदोषसमये, गृहीतविविधकुसुमताम्बूलाङ्गरागपटवासचूर्णया

तासु । नीलवस्त्रावृतत्वेन कैश्चिज्ज्ञातु न शक्यन्त इति भाव । चन्द्रेति । चन्द्रस्य शशिनो य आलोक प्रकाशस्तस्माद्भय तेन चकितासु । त्रस्तासु नीलावगुण्ठनविशिष्टाभिसारिकोपमान-माह—कमलेति । कमलवनानां नलिनखण्डाना लक्ष्म्य स्त्रियस्तास्विव । कीदृशीषु । नीलेति । नीलोत्पलानामिन्दीवराणा प्रभा कान्तयस्ताभि पिहितासु स्थगितासु । भयचकितत्वादाह—इतेति । इतस्तत समन्तात्पलायमानासु धावमानासु । प्रबुध्येति । प्रबुध्यमानासु प्रबोधं प्राप्यमाणासु । पुन कस्मिन्सति । अन्तरिक्ष आकाशे सति । अथाकाश विशिनष्टि—स्फुटितेति । स्फुटितं विकसित यत्कुमुदवन कैरवखण्डं तस्य बहला निबिडा या धूलि परागस्तया धवलितं शुभ्रितमुदरं मध्यं यस्य स तथा तस्मिन् । अन्तरिक्षस्य धवलितत्वसाम्येनाह—निशा रात्रिरेव नदी तटिनी तस्या पुलिनायमाने जलोज्झितप्रतीरायमाणे । पुन कस्मिन्सति । जीवलोके सति विश्वे सति । कीदृशे । चन्द्रोदयलक्षणो य आनन्द प्रमोदस्तस्य निर्भरोऽतिशयो यस्मिन् । तस्य निरवधित्वादुत्प्रेक्षते—महोदधाविव महाम्भोधाविव । रसादीनां चतुर्णां जनकत्वाच्चतु-र्भिरुत्प्रेक्षते—रतीति । रतिरस. श्रृङ्गारस्तन्मय इव । उत्सवो मदस्तन्मय इव, विलासो लीला तन्मय इव, प्रीति स्नेहस्तन्मय इव । सर्वत्र यकारलोप. । समयाअनुसरणमाह—प्रदोषेति । प्रदोषो यामिनीमुख स एव समय क्षणस्तस्मिन् । प्रदोषलक्षण विशेषयन्नाह—शशीति । शशिमणयश्चन्द्रकान्तास्तैर्निबद्धा प्रणाला जलमार्गास्तेषां निर्झरा घनगर्जनानुकारिणस्तेभ्यो य. प्रमोदस्तेन मुखरा वाचाला ये मयूरा बर्हिणस्तेषां रव शब्दस्तेन रम्ये मनोहरे । गृहीतेति । गृहीतान्यात्तानि विविधकुसुमताम्बूलाङ्गरागपटवासचूर्णानि ययैवंविधया तरलिकया पूर्वोक्तयानु-

---

की देवताएँ हों, जब कि प्रत्येक कुमुद (पुष्प) में बन्धे हुए (सलग्न अथवा उसके भीतर कैद) भ्रमरसमूहों वाली, भवन में स्थित वापियों की कुमुदिनियाँ खिलने लगीं, जब खिले हुए कुमुदों (रात्रि-कमलों) के समूह (से गिरी) ढेर सारी पराग से श्वेत हुई तोरण (उदर) वाला आकाश, रात्रिनदी के (पाट में स्थित) एक पुलिन—अर्थात् बालू का बना द्वीप—सरीखा दिखायी देने लगा, जब कि चन्द्रोदय हो जाने पर हर्ष के अतिशय (आधिक्य) से युक्त मर्त्यलोक ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो वह महासमुद्र हो अथवा प्रेम रस (प्रेम भावना) का बना हुआ हो, अथवा चहल-पहल का बना हुआ हो अथवा क्रीडा-कौतुक का ही बना हो, अथवा हर्ष का ही बना हो, जब कि आरम्भिक रात्रि का समय, (चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघली हुई) चन्द्रकान्त मणियों रूप नालों के प्रपातों से युक्त हो गया और इन प्रपातों के घनगर्जन-सरीखे शब्द को सुनकर) हर्ष के कारण शब्द करते मयूरों से (वह समय) आकर्षक प्रतीत होने लगा, तब मैं नाना प्रकार के फूलों, पानों

तरलिकयानुगम्यमाना तेनैव मूर्च्छानिहितेन किंचिदाश्यानचन्दनललाटिकालग्नधूसराकुलालकेन चन्दनरसचर्चाङ्गरागवेषेणार्द्रेण तथैव च तया कण्ठस्थितयाक्षमालया श्रवणशिखरचुम्बिन्या च पारिजातमञ्जर्या पद्मरागरश्मिविनिर्मितेनेव रक्तांशुकेन कृतशिरोवगुण्ठना केनचिदात्मीयेनापि परिजनेनानुपलक्ष्यमाणा तस्मात्प्रासादशिखरादवातरम्। अवतीर्य च पारिजातकुसुममञ्जरीपरिमलाकृष्टेन रिक्तीकृतोपवनेन कुमुदवनान्यपहाय धावता मधुकरजालेन नीलपटावगुण्ठनविभ्रममिव सपादयता-

---

गम्यमानानुव्रज्यमाना। पुन कीदृशी। तेनैवेति। तेनैव मूर्च्छाकालनिहितेन स्थापितेन चन्दनरसेन चर्चा मण्डनमङ्गरागो विलेपन यस्मिन्नेवंविधो यो वेषो नेपथ्यं तेन। कीदृशेन। किंचिदाश्यानाशुष्का चन्दनललाटिका तिलकविशेषस्तस्यां लग्ना धूसराः किंचित्पाण्डुरा आकुला विकीर्णा अलका केशा यस्मिंस्तेन। पुन कीदृशेन। आर्द्रेण। अशुष्केणेत्यर्थं। तथेति। तथैव पूर्वोक्तप्रकारेणैव कण्ठस्थितया निगरणस्थापितयाक्षमालया जपमालया तथा पारिजातमञ्जर्या च। कीदृश्या। श्रवणयो कर्णयो शिखरमग्र चुम्बतीत्येवंशीला सा तया। एतेन विरहव्याकुलतया नवीन किंचिन्न कृतमिति सूचितम्। पुन' कीदृशी। रक्तेति। रक्तांशुकेन लोहितवस्त्रेण कृत शिरोऽवगुण्ठन यया सा। रक्तत्वसाम्यादाह—पद्मेति। पद्मरागो लोहितको रत्न तस्य रश्मिभि कान्तिभिर्विनिर्मितेनेव रचितेनेव। केनेति। केनचिदात्मीयेनापि स्वकीयेनापि परिजनेन परिच्छदेनानुपलक्ष्यमाणाज्ञायमाना। प्रकारान्तरेण तामेव विशेषयन्नाह—मधुवेति। मधुकरा भ्रमरास्तेषां जालेन समूहेनानुबध्यमाना निरुध्यमाना। अथ मधुकरसमूहं वर्णयन्नाह—पारीति। पारिजातस्य मन्दारस्य या कुसुममञ्जरी तस्या परिमलस्तेनाकृष्टेनाकर्षितेन। अतएव रिक्तीकृतोपवनेन। सर्वस्य मधुकरस्य तत्रैव गमनादुपवनं रिक्तीभूतमिति भाव। किं कुर्वता मधुकरकुलेन। कुमुदवनानि कैरवखण्डान्यपहाय त्यक्त्वा धावता त्वरया गच्छता। पुन किं कुर्वता। नीलेति। नीलपटः कृष्णांशुक तस्यावगुण्ठनविभ्रममिव शिरो-

---

अनुलेपनों तथा सुगन्धित चूर्णों को लिये हुई, तरलिका से अनुगम्यमान, उस (तरलिका) के द्वारा ही (मेरी) मूर्छा (के समय) में लगायी गयी, कुछ-कुछ सूखी हुई चन्दन ललाटिका (मस्तक पर चन्दन लेप से बनाया गया चिह्न) में लगे हुए—चिपके हुए—धूसर तथा बिखरे हुए बालों के साथ, तथा चन्दनलेप रूपी अंगराग से आर्द्रवेष के साथ और वैसे ही कण्ठस्थित अक्षमाला के साथ, और कान के सिरे को चूमने वाली पारिजात की पुष्पपत्रयुक्त शाखा के साथ (अर्थात् गले में अक्षमाला को तथा कान पर पारिजातमञ्जरी को पहले की भांति धारण किये हुई) पद्मरागमणि की किरणों से बने प्रतीत होते लाल रेशमी वस्त्र का शिरोवगुंठन किये हुई (सिर पर लाल कपड़ा लपेटे हुई) किसी अपने भी सेवक से न देखी जाती हुई उस भवन के शिखर से उतर गयी। और उतर कर पारिजात पुष्प की सुगन्ध से खिंच कर आये, बाग को खाली किये हुए (छोड़कर आये हुए) तथा रात्रि कमल की क्यारियों को छोड़कर भागते हुए और इस प्रकार (मेरे चारों ओर) नीले वस्त्र के बने परदे का भ्रम उत्पन्न करते से प्रतीत होते भ्रमर समूह द्वारा निरन्तर अनुगम्यमान (अर्थात् भौंरे लगातार पंक्ति बांधे मेरे

नुबध्यमाना प्रमदवनपक्षद्वारेण निर्गत्य तत्समीपमुदचलम्। प्रयान्ती च तरलिका-द्वितीयपरिजनमात्मानमवलोक्याचिन्तयम्—'प्रियतमाभिसरणप्रवृत्तस्य जनस्य किमिव कृत्यं बाह्येन परिजनेन। नन्वेत एव परिजनलीलामुपदर्शयन्ति। तथा हि—समारोपितशरासनासक्तसायकोऽनुसरति कुसुमायुधः। दूरप्रसारितकरः करमिव कर्षति शशी। प्रस्खलनभयात् पदे पदेऽवलम्बते रागः। लज्जा पृष्ठतः कृत्वा पुरः सहेन्द्रियैर्धावति हृदयम्। निश्चयमारोप्य नयत्युत्कण्ठा' इति। प्रकाश चावदम्—'अयि

वेष्टनविलासमिव संपादयता निष्पादयता। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। प्रयान्तीति। प्रयान्ती गच्छन्ती। तर इति। तरलिकैव द्वितीय परिजनो यस्यैवंभूतमात्मानमवलोक्य निरीक्ष्याह महाश्वेताचिन्तयमध्यायम्। किं तदित्याह—प्रियेति। अतिशयेन प्रिय प्रियतमस्तस्याभिसरणमनुगमन तत्र प्रवृत्तस्यायुक्तस्य जनस्य बाह्येन बहिर्भूतेन परिजनेन किमिव कृत्यम्। न किमपीत्यर्थं। प्रस्तुतस्य कुमारेण सह सगमरूपस्य कार्यस्य स्वनिकटवर्तिपरिचारिकास्वप्यन्तरङ्गत्वात्तरलिकायास्ततोऽपि सगोप्यमानत्वादिति भाव। परिजनराहित्येऽपि तद्युक्ततां प्रदर्शयन्नाह—नन्वेति। ननु निश्चयेन। एते एवाग्रे वक्ष्यमाणा परिजनलीलामुपदर्शयन्ति। तत्कृत्यतां प्रकटीकुर्वन्तीत्यर्थः। तदेव प्रकटयन्नाह—तथा हीति। समारोपितमधिज्यीकृत पञ्चशरासन धनुस्तत्रासक्त आयुक्त सायको बाणो येनैवम्भूत कुसुमायुधो मदनोऽनुसरत्यनुगच्छति। उद्दीपकत्वात्। दूरं प्रसारिता विस्तारिता करा हस्ता येनैवंविध शशी चन्द्र करमिव हस्तमिव मां कर्षत्याकर्षण करोति। प्रस्खलनेति। प्रस्खलनभयात्पतनभीते पदे पदे रागोऽवलम्बतेऽवलम्बनं करोति। अथ चान्योऽपि सेवक प्रस्खलनभयात्स्वामिनोऽवलम्बन करोति। लज्जामिति। लज्जां त्रपां पृष्ठत. पश्चाद्भागे कृत्वेन्द्रियैः करणै. सह हृदय चेत पुरोऽग्रे धावति त्वरया व्रजति। निश्चयमिति। कुमारविषयिण्युत्कण्ठोत्कलिका निश्चयमारोप्यायं निश्चयेन प्रियसंगमो भविष्यतीति कृत्वा मां नयति प्रापयति। अन्योऽपि सेवको निश्चयमध्यवसायमारोप्याय मदीयस्वामीति निश्चित्य नयति। अभिलषितस्थलमिति शेषः। प्रकाशं प्रकटं यथा

पीछे-पीछे उड़े आ रहे थे); महिलाओं के उपवन के बगल के दरवाजे से निकल कर उसके समीप (पहुँचने के लिये) अर्थात् उससे मिलने के लिये चल पड़ी।

चलती हुई मैंने केवल तरलिका ही जिसकी दूसरी सेविका थी ऐसा अपने को देखा और सोचा—'अपने प्रियतम की ओर (उसको मिलने के लिये) चले हुए व्यक्ति के लिये किसी बाह्य सेवक का क्या लाभ है? निश्चय ही ये ही (वस्तुएँ) सेवकों के खेल दिखाती हैं—सेवकों का अभिनय करती हैं। उदाहरणतया—प्रत्यञ्चा चढ़ाये हुए धनुष पर रखे हुए बाण वाला कामदेव पीछे-पीछे चल रहा है। अपने 'कर' (अर्थात् किरण) को दूर दूर तक फैलाये हुआ चन्द्रमा मानो मेरे हाथ को खींच रहा है। मेरे लड़खड़ा जाने के भय से प्रणयावेग मुझे पद-पद पर सहारा देता है। लज्जा (की सारी भावना) को पीछे की ओर करके (दूर फेंक कर) मेरा हृदय इन्द्रियों के साथ आगे-आगे दौड़ रहा है। और (मुझसे) निश्चय कराकर (कुमारविषयिणी) उत्कण्ठा-लालसा मेरा नेतृत्व कर रही है।' और मैंने

तरलिके, अपि नाम मामिवायमिन्दुहतकस्तमपि किरणकचग्रहाकृष्टमभिमुखमानयेत्' इत्येववादिनीं च मामसौ विहस्याब्रवीत्—'भर्तृदारिके, मुग्धासि। किमस्य तेन जनेन। अयमात्मनैव तावन्मदनातुर इव भर्तृदारिकायास्तास्ताश्चेष्टाः करोति। तथा हि—प्रतिबिम्बच्छलेन स्वेदसलिलकणिकाञ्चितं चुम्बति कपोलयुगलम्। लावण्यवति पयोधरभारे निपतति प्रस्फुरितकरः। स्पृशति रशनामणीन्। निर्मलनखलग्नमूर्तिः पादयोः पतति। किं चास्य मदनातुरस्येव वपुस्तापाच्छुष्कचन्दनानु-

---

स्यात्तथाहमित्यवदमवोचम्। किं तदित्याह—अयीति। अयि कोमलामन्त्रणे। हे तरलिके, अपिनाम प्रश्ने। अयमिन्दुहतको मामिव तमपि पुण्डरीकमप्यभिमुख सम्मुखमानयेत्प्रापयेत्। कीदृशम्। किरणै पादैर्य कचग्रह केशग्रहस्तेनाकृष्टमाकर्षितम्। एववादिनीमेवब्रुवाणां च मामसौ तरलिका विहस्य हास्य कृत्वाब्रवीदवोचत्। हे भर्तृदारिके, त्व मुग्धासि। अस्य चन्द्रहतकस्य तेन जनेन पुण्डरीकाख्येन किम्। कृत्यमिति शेषः। अयं चन्द्रहतक आत्मनैव स्वयमेव मदनातुर इव कदर्पपीडित इव भर्तृदारिकाया भवत्यास्तास्ताश्चेष्टा. कायव्यापारान्करोति विदधाति। एतदेव दर्शयति—तथा हीति। प्रतीति। प्रतिबिम्बच्छलेन प्रतिच्छायामिषेण कपोलयुगल चुम्बति चुम्बन करोति। तदेव विशिनष्टि—स्वेदेति। स्वेदसलिलस्य घर्मजलस्य कणिका विप्रुषस्ताभिरञ्चित व्याप्तम्। एतेन कपोलयो स्वच्छता विरहतृप्तिश्च व्यज्यते। लावण्येति। लावण्य लवणिमा विद्यते यस्मिन्नेवभूते पयोधरभारे प्रस्फुरित प्रकम्पित करो येनैवविधो निपतति। एतेन पयोधरयोर्जडत्व परिणाहविशेषश्च द्योत्यते। स्पृशतीति। रशना कटिमेखला तस्या मणीन्रत्नानि स्पृशत्याश्लिषति। निर्मलेति। निर्मला स्वच्छा ये नखास्तत्र लग्ना मूर्तिर्यस्यैवभूत सन्पादयो पतति। चन्द्रस्य कामुकत्वाभिव्यञ्जकत्वमाह—किं चेति। अस्य चन्द्रस्य मदनातुरस्येव वपुः शरीर तापाच्छुष्को

प्रकट रूप से कहा—'अरी तरलिका! क्या यह सम्भव है कि यह दुष्ट चन्द्रमा जैसे मुझको लाया है वैसे, उसको भी अपने करों (किरणों) से बाल पकड़ कर खींचे हुए को, मेरे सम्मुख ले आवे'—और इस प्रकार कहने वाली मुझसे उसने हँसकर कहा—"राजपुत्रि! अभी तू (इन बातों में) अनाड़ी है। इस चन्द्रमा का उस (पुण्डरीक) से क्या काम? यह (चन्द्रमा) तो स्वय ही प्रेमपीड़ित की भाति राजपुत्री के प्रति वे-वे (विधि काम) चेष्टायें करता है। उदाहरणतः—अपने प्रतिबिम्ब (परछाईं) के बहाने पसीने के जल के कणों से ढके हुए तुम्हारे दोनों कपोलों को मानों चूम रहा है, तुम्हारे सौन्दर्ययुक्त भारी वक्षस्थल पर काँपती हुई किरणों वाला—मानों अपने कर्मशील हाथों से गिरता है, तुम्हारी मेखला की मणियों को छू रहा है, स्वच्छ नखों में प्रतिबिम्बित हुआ तुम्हारे पावों में गिर रहा है। इसके अतिरिक्त, इसका शरीर, जैसा कि किसी प्रणयपीडा से व्याकुल है, वैसे ही, गर्मी से (तापज्वर की ऊष्मा से) सूखे हुए चन्दनलेप के-से पीलेपन को धारण किये हुए है, यह कमल के बिसतन्तुओं से बने कपड़े (के समान) से श्वेत हुए हाथों को (किरणों को) धारण किये

लेपपाण्डुता वहति। मृणालवलयधवलान्करान्धत्ते। प्रतिमाव्याजेन स्फटिकमणिकुट्टिमेषु निपतति। केतकीगर्भकेसरधूलिधूसरपादः कुमुदसरास्यवगाहते। सलिलसीकरार्द्राञ्शशिमणीन्करैरामृशति। द्वेष्टि विघटितचक्रवाकमिथुनानि कमलवनानि। एतैश्चान्यैश्च तत्कालोचितैरालापैस्तया सह तमुद्देशमभ्युपागमम्। तत्र च मार्गलताकुसुमरजोधूसरं चरणयुगलं कैलासतटाच्चन्द्रोदयप्रसृतचन्द्रकान्तमणिप्रस्रवणे क्षालयन्ती यस्मिन्प्रदेशे स आस्ते तस्मिन्नेव चास्य सरसः पश्चिमे तटे पुरुषस्येव रुदितध्वनिं विप्रकर्षान्नातिव्यक्तमुपालक्षयम्। दक्षिणेक्षणस्फुरणेन च प्रथममेव

यश्चन्दनानुलेपस्तद्वत्पाण्डुतां शुभ्रतां वहति। मृणालेति। मृणालानि बिसानि तेषां वलयानि तद्वद्धवलान्करान्हस्तान्धत्ते धारयति। प्रतिमेति। प्रतिमाव्याजेन प्रतिबिम्बच्छलेन स्फटिकमणीनां कुट्टिमानि तेषु निपतति। केतकीति। केतक्या प्रसिद्धाया या गर्भकेसरधूलिस्तद्वद्धूसरौ पादौ यस्यैवंभूतः कुमुदसरांसि केरवोपलक्षिततडागान्यवगाहते। सलिलेति। सलिलस्य जलस्य सीकरा वाताहतकणास्तैरार्द्राञ्शशिमणींश्चन्द्रकान्तान्करैर्हस्तैर्मृशति परामृशति। विघटितेति। विघटितानि भिन्नीभूतानि चक्रवाकमिथुनानि येभ्य एतादृशानि कमलवनानि द्वेष्टि द्वेषं करोति। तयेति। तया तरलिकया सहैतैः पूर्वोक्तैरन्यैश्चैतद्भिन्नैस्तत्कालोचितैस्तत्समययोग्यैरालापैः संभाषणैः करणभूतैस्तमुद्देशं पूर्वोक्तभूविभागमभ्युपागमं समागमम्। तत्र चेति। तत्र तस्मिन् प्रदेशे कैलासतटाद्रजताद्रिशिखराच्चन्द्रोदयेन शशिप्रकाशेन प्रसृतं च्युतं यच्चन्द्रकान्तमणिप्रस्रवणं चन्द्राश्मनिर्झरणं तस्मिन्। मार्गेति। मार्गलतानामध्ववल्लीनां कुसुमरजोभिः पुष्पपरागैर्धूसरमीषत्पाण्डुरं चरणयुगलं पादयुग्मं क्षालयन्ती धावनं कुर्वन्ती यस्मिन्प्रदेशे स कपिञ्जल आस्ते तिष्ठति तस्मिन्नेव स्थलेऽस्याच्छोदाभिधानस्य सरसः पश्चिमे तटे पश्चिमदिग्वर्तितीरे पुरुषस्येव पुरुषसदृशस्य विप्रकर्षाद् दूरान्नातिव्यक्तं नातिस्पष्टं रुदितध्वनिं क्रन्दितशब्दमुपालक्षयमुपलक्षितवती। दक्षिणेति। दक्षिणमपसव्यमीक्षणं लोचनं तस्य स्फुरणं स्पन्दनं तेन च प्रथममेवादावेव मनसि चित्त आहिता स्थापिता शङ्कारेका यया

हुये है, अपने प्रतिबिम्ब के बहाने स्फटिक मणिनिर्मित फर्शों पर गिरता है, केतकी के मध्यभाग में स्थित केसर धूलि से धूसर पाँवों (किरणों) वाला कुमुद सरोवरों में गोते लगा रहा है, जल की फुहारों से गीली चन्द्रकान्तमणियों को अपने हाथों (किरणों) से छू रहा है, और चक्रवाक पक्षियों के जोड़ों को एक दूसरे से वियुक्त करने वाली कमल की क्यारियों से द्वेष कर रहा है।" ऐसी तथा उस अवसर के योग्य दूसरी बातों के साथ साथ मैं उस तरलिका के साथ उस स्थान पर पहुँच गयी। और वहां रास्ते में उगी हुई बेलों के पुष्पों की पराग से धूसर अपने पाँवों को, कैलाश की ढाल भूमि से चद्रोदय होने पर बहती हुई चंद्रकान्तमणियों के झरने में धोती हुई मैंने जिस स्थान पर वह बैठा था वहीं पर और इस सरोवर के पश्चिमी किनारे पर, किसी मनुष्य की रोदन ध्वनि को सुना जो दूरी के कारण बहुत स्पष्ट नहीं थी। और दायीं आँख के फड़कने से पहले ही मन में डरी हुई, और उस (शब्द) से मानो अतिशय (अत्य-

मनस्याहितशङ्का तेन सुतरां विदीर्णहृदयेव किमप्यनिष्टमन्तःकथयतेव विषण्णेनान्तरात्मना 'तरलिके, किमिदम्' इति सभयमभिदधाना वेपमानगात्रयष्टिरभिमुखमतित्वरितमगच्छम् ।

अथ निशीथप्रभावाद् दूरादेव विभाव्यमानस्वरमुन्मुक्तार्तनादम् 'हा हतोऽस्मि । हा दग्धोऽस्मि । हा वञ्चितोऽस्मि । हा किमिदमापतितम् । किं वृत्तम् । उत्सन्नोऽस्मि । दुरात्मन् मदनपिशाच पाप निर्घृण, किमिदमकृत्यमनुष्ठितम् । आः पापे दुष्कृतकारिणि दुर्विनीते महाश्वेते, किमनेन तेऽपकृतम् । आः पाप दुश्चरित चन्द्र

सैवविधाइ तदुपलक्षणानन्तरं तेन हृदितेन सुतरामतिशयेन विदीर्णहृदयेव विशीर्णस्वान्तेव किमप्यनिष्टमशुभमन्तर्मध्ये कथयतेव ब्रुवतेव विषण्णेन विषादवतान्तरात्मना सता हे तरलिके, सभय यथा स्यात्तथा किमिदमित्यभिदधाना ब्रुवाणा वेपमाना गात्रयष्टि शरीरयष्टि सैवविधातित्वरितमतिशीघ्रमभिमुख सम्मुखमगच्छमव्रजम् ।

अथेति । आगमनानन्तरमित्येतान्यन्यानि वाक्यानि च विलपन्त विलापं कुर्वन्तं कपिञ्जलमश्रौषमाकर्णय तादृशविलापवाक्येनाय कपिञ्जल एवेति निश्चितवती । इतिशब्दार्थमाह—निशीथेति । निशीथोऽर्धरात्र तस्य प्रभावान्माहात्म्याद् दूरादेव विप्रकृष्टादेव विभाव्यमानो ज्ञायमान स्वरो यस्य स तम् । दिवा कोलाहलेन शब्द श्रोतु न शक्यत इति भाव । पुनः कीदृशम् । उन्मुक्तेति । उन्मुक्त आर्तनादो येन स तम् । अथार्तस्वरान्विविच्य प्रदर्शयन्नाह—हा हत इति । हा इति खेदे । अह हतस्ताडितोऽस्मि । हेति पूर्ववत् । दग्धो ज्वलितोऽस्मि । हा वञ्चितो विप्रतारितोऽस्मि । हेति । किमिदमतर्कितमापतितम् । मच्छिरसीति शेष । किमिद वृत्त निष्पन्नम् । उत्सन्नो मूलात्कल्पितोऽस्मि । अहमिति शेष । हे दुरात्मन् हे मदनपिशाच, हे पाप हे पापिन् , हे निर्घृण हे निर्दय, किमिदमकृत्यमनुष्ठितमाचरितम् । आ पापे दुष्कृतकारिणि, दुर्विनीते शूकले हे महाश्वेते, ते तवानेन पुण्डरीकेण किमपकृतम् । कोऽयमनुपकार कृत । आ· आक्रोशे । हे पाप पाप्मन् , हे दुश्चरित दुराचार, हे चन्द्र चाण्डाल, त्व कृतार्थ कृतकृत्योऽसि इदानीं साम्प्रत हे अपगतदाक्षिण्य दूरीभूतानुकूल्य, हे

चिक) फटे हुए हृदय वाली, भीतर ही भीतर किसी अशुभ (घटना) को कहती हुई तथा दुःखी अन्तरात्मा वाली मैं 'तरलिका, "यह क्या (हो सकता) है ?" भय के साथ यह कहती हुई अपने कांपते हुए शरीर के ढाँचे वाली मैं बड़े वेग से सामने की ओर बढ़ी ।

इसके पश्चात् अर्धरात्रि के प्रभाव (पूर्ण शान्ति) के कारण दूर से ही पहचाने जाते हुए स्वर वाले खुला आर्तनाद (कटु रुदन) करते हुए कपिंजल को निम्नलिखित शब्दों में तथा दूसरे शब्दों में विलाप करते हुए सुना—"हा ! मैं मारा गया हूँ । अरे ! मै जल गया हूँ । दुःख है कि मुझे धोखा दिया गया है ! अरे ! यह मुझ पर क्या आ पड़ा ! क्या हो गया ! मैं तो नष्ट हो गया हूँ ! अरे ! दुष्ट, मदनराक्षस ! पापी ! निर्दय ! यह क्या दुष्कृत्य तूने किया है ! अरी, ओ ! पाप करने वाली, दुःशीला, महाश्वेता ! तेरी इसने क्या बुराई की थी ! अरे ! पापी, दुराचारी, नीच चन्द्रमा ! तू तो कृतकृत्य हो गया है (अपनी इच्छा तूने पूरी

चाण्डाल, कृतार्थोऽसि। इदानीमपगतदाक्षिण्य दक्षिणानिलहतक, पूर्णास्ते मनोरथाः। कृत यत्कर्तव्यम्। वहेदानीं यथेष्टम्। हा भगवन् श्वेतकेतो पुत्रवत्सल, न वेत्सि मुषितमात्मानम्। हा धर्म, निष्परिग्रहोऽसि। हा तपः, निराश्रयमसि। हा सरस्वति, विधवासि। हा सत्य, अनाथमसि। हा सुरलोक, शून्योऽसि। सखे, प्रतिपालय माम्। अहमपि भवन्तमनुयास्यामि। न शक्नोमि भवन्त विना क्षणमप्यवस्थातुमेकाकी। कथमपरिचित इवादृष्टपूर्व इवाद्य मामेकपदे उत्सृज्य प्रयासि। कुतस्तवेयमतिनिष्ठुरता। कथय त्वदृते क गच्छामि। कं याचे। क शरण-

---

दक्षिणानिलहतक, ते तव मनोरथा पूर्णा परिपूर्णीभूता। हतक इति हीनोक्ति। यदिति। यत्कर्तव्य तत्कृतम्। इदानीं सांप्रत यथेष्ट यथेच्छया वह सचर। हा भगवन् हा स्वामिन् श्वेतकेतो, पुत्रवत्सल सुतहितकारक, आत्मान त्वं मुषितमपहृतसर्वस्व न वेत्सि न जानासि। हेति पूर्ववत्। हे धर्म हे वृष, त्व निर्गत परिग्रह स्वीकारो यस्यैवंभूतोऽसि। अस्य कामविह्वलत्वे तव स्वीकारो नास्तीत्यर्थ.। यद्वायमेव तव स्थानपरिग्रहस्तस्य कामव्याकुलत्वे तव स्थान नास्तीत्यर्थ। हा तप, त्वं निराश्रय निर्गतस्थानमसि। हा सरस्वति हा भारति, त्व विधवा मृतभर्तृकासि। हा सत्य हा तथ्य, त्वमनाथं स्वामिरहितमसि। हा सुरलोक हा सुरालय, त्वं शून्य उद्वसोऽसि। तेन विनेत्यर्थ। हे सखे पुण्डरीक, मा कपिञ्जल प्रतिपालय प्रतिपालनां कुरु। अहमिति। अहमपि भवन्त त्वामनुयास्याम्यनुगमिष्यामि। न शक्नोमि न समर्थो भवामि भवन्त त्वां विनैकाक्यसहाय. क्षणमपि क्षणमात्रमप्यवस्थातुम्। अपरिचित इवासजातसस्तव इव, अदृष्टपूर्व इवानवलोकितपूर्व इव, अद्य मा कपिञ्जलमेकपदे सहसोत्सृज्य त्यक्त्वा कथ प्रयासि गच्छसि। तवेयमति निष्ठुरतातिकठिनता कुत॰। त्व कथय प्रतिपादय। त्वदृते त्वद्व्यतिरेकेण क गच्छामि क व्रजामि। कं याचे क प्रार्थये। कं शरण त्राणमुपैमि गच्छामि। अहमन्ध॰ सवृत्तोऽस्मि चक्षुर्विकलो

कर ली)! इस समय अनुकूलता से रहित (अर्थात् निर्दय), दुष्ट दक्षिण पवन! तेरी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं, तू जो कुछ कर सकता था, वह, तूने कर लिया! अब तो तू अपनी इच्छानुसार चलता रह! हे, पुत्र को प्यार करने वाले भगवन् श्वेतकेतु! आप नहीं जानते कि आप लुट गये हैं। हे धर्म! अब आपको स्वीकार करने वाला (आपका अनुयायी) नहीं रहा! कष्ट है! हे तप! तू आश्रय विहीन हो गया है! हा! सरस्वती! तू विधवा हो गयी है! कष्ट है कि हे सत्य, तू स्वामिरहित हो गया है! हा! देवलोक! तू सूना हो गया है! मित्र! मेरी प्रतीक्षा कर, मैं भी तेरे पीछे-पीछे आऊँगा! तेरे बिना यहाँ अकेला, एक क्षण भर के लिये भी नहीं ठहर सकता हूँ।

जैसे कोई अपरिचित अथवा पहले कभी न देखा हुआ व्यक्ति एकदम छोड़कर भाग जाता है वैसे ही तुम आज एकदम ही मुझ को छोड़कर कहाँ जा रहे हो? तुम्हारी (तुम्हारी ओर से) यह अतिशय कठोरता कहाँ से आयी? बताओ तो सही! तुम्हारे बिना मैं किस के पास पहुँचूँ? किस से माँगू (प्रार्थना करूँ)! आश्रय (माँगने) के लिये किसके समीप जाऊँ! मैं तो अन्धा हो गया हूँ! मेरी दिशायें खाली हो गयी है! जीवन निरुद्देश्य (व्यर्थ) हो गया

मुपैमि । अन्धोऽस्मि संवृत्तः । शून्या मे दिशो जाताः । निरर्थकं जीवितम्, अप्रयोजनं तपः, निःसुखाश्च लोकाः । केन सह परिभ्रमामि । कमालपामि । केन वार्तां करोमि । उत्तिष्ठ त्वम् । देहि मे प्रतिवचनम् । क्व तन्ममोपरि सुहृत्प्रेम । क्व सा स्मितपूर्वाभिभाषिता च' इत्येतानि चान्यानि च विलपन्त कपिञ्जलमश्रौषम् । तच्च श्रुत्वा पतितैरिव प्राणैर्दूरादेव मुक्तैकताराक्रन्दा, सरस्तीरलतासक्तित्रुट्यमानांशुकोत्तरीया, यथाशक्तित्वरितैरज्ञातसमविषमभूमिभागविन्यस्तैः पादप्रक्षेपैः प्रस्खलन्ती पदे पदे, केनाप्युत्क्षिप्य नीयमानेव त प्रदेश गत्वा सरस्तीरसमीपवर्तिनि शिशिरशीकरासार-

---

जातोऽस्मि । मे मम दिश ककुभ शून्या उद्वसिता जाता. । त्वां विनेति शेष । निरिति । निरर्थक निष्फल जीवितं प्राणधारणम् । तपोऽप्रयोजन कृत्यरहितम् । लोका इति । लोका भुवनानि नि सुखा सातवर्जिता । केनेति । केन सह परिभ्रमामि परिभ्रमण करोमि । कमिति । क पुमांसमनिर्दिष्टनामकमालपाम्यालाप करोमि । केनेति । केन सह वार्तां प्रवृत्तिं करोमि । त्वमिति । त्वं भवानुत्तिष्ठोत्थान कुरु । मे मम प्रतिवचन प्रत्युत्तर देहि । हे सुहृत् हे मित्र, ममोपरि तत्पूर्वसबन्धि प्रेम स्नेह क्व । स्मितपूर्वा हास्यपूर्विकाभिभाषिताभिवादिता सा क्व । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त. । तच्चेति । तत्पूर्वोक्त विलपित श्रुत्वाकर्ण्य त प्रदेश गत्वाह पापकारिणी मन्दभाग्या त पुण्डरीक महाभागमद्राक्षमपश्यमिति दूरेणान्वय । अथ तां विशेषयन्नाह—दूरेति । दूरादेव दविष्ठादेव मुक्त एकतारोऽत्युच्च आक्रन्द पूत्कारो यया सा । सर इति । सरसोऽच्छोदनाम्नो यास्तीरलता प्रतीरवल्लयस्तासु सक्ति संबन्धस्तया त्रुट्यमानमंशुकेषूत्तरीय निवसन यस्या सा तथा । पुन किंकुर्वन्ती । पदे पदे पादप्रक्षेपैरङ्घ्रिन्यासै करणभूतै प्रस्खलन्ती स्खलना प्राप्नुवन्ती । कैरिव । पतितै. प्राणैरिव । कीदृशैः । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति । तेन त्वरितैस्त्वरायुक्तै । अज्ञेति । अज्ञातोऽविदितो य समविषमभूमिभागो भूप्रदेशस्तत्र विन्यस्तै स्थापितै. । तानेव विशेषयन्नाह—केनेति । केनाप्यनिर्दिष्टनाम्नोत्क्षिप्योत्पाट्य नीयमानेव प्राप्यमाणेव सरसोऽच्छोदनाम्नस्तीर प्रतीरं तस्य समीपवर्तिनि निकटस्थायिनि । शिशिरेति । शिशिरा शीतला ये शीकरास्तेषामासारो वेगवान्वृष्टिस्तस्य

है । तप का कोई प्रयोजन नहीं रहा । और सारे लोक सुख से रहित हो गये हैं । किस के साथ (अब) घूमूँगा ! किस से बात करूँगा ! तुम उठो ! मेरी बातों का प्रत्युत्तर दो, मेरे प्रति तुम्हारा जो मित्र प्रेम था, वह अब कहाँ है और मुस्कान के साथ तुम्हारी बोलने की जो आदत थी, वह कहाँ गयी !"

उस (विलाप) को सुनकर मानो अपने गिरे हुए प्राणों (जीवन) द्वारा दूर से ही एक ऊँची चीत्कार छोड़े हुई (किये हुई), सरोवर के तट पर उगी हुई बेलों में उलझ कर फटते हुए रेशमी उत्तरीय वस्त्र वाली, अपनी सामर्थ्य के अनुसार वेगवान् तथा सम अथवा विषम भूमि भागों पर बिना जाने ही (इसका ध्यान न करते हुए) रखे गये पगों से कदम-कदम पर लड़खड़ाती हुई, मानो किसी द्वारा उठाकर ले जायी जाती हुई पापिनी, अभागी मैंने उस स्थान पर पहुँच कर उसी समय जीवन से रहित हुए उस महानुभाव को देखा । उस समय वह

स्राविणि शशिमणिशिलातले विरचितं कुमुदकुवलयकमलविविधवनकुसुमसुकुमार-मालामयमिव मृणालमयम्, कुसुमशरसायकमयमिव शयनमधिशयानम्, अति-निष्पन्दतया मत्पदशब्दमिवाकर्णयन्तम्, अन्तःक्रोधशमितमदनसन्तापतया तत्क्षण-लब्धसुखप्रसुप्तमिव मुनिक्षोभप्रायश्चित्तप्राणायामावस्थितमिवातिप्रस्फुरितप्रभेण त्वत्कृते ममेयमवस्थेति कथयन्तमिवाधरेण, इन्दुद्वेषिपरिवर्तितदेहतया पृष्ठभागनिपतितै-र्मदनदहनविह्वलहृदयन्यस्तहस्तनखमयूखच्छलेन छिद्रितमिव शशिकिरणैः, उच्छुष्क-

स्राविणि प्रक्षारिणि । एवंविधे शशिमणिशिलातले चन्द्रकान्तप्रस्तरे विरचितं निर्मितम् । कुमुदेति । कुमुदानि श्वेतकमलानि, कुवलयान्युत्पलानि, कमलानि, नलिनानि, विविधान्य-नेकप्रकाराणि वनकुसुमान्यरण्यपुष्पाणि तेषां या सुकुमारा माला स्रक् तन्मयमिव मृणालमयं बिसनिष्पन्नम् । उद्दीपकत्वादाह—कुसुमेति । कुसुमशरः कदर्पस्तस्य सायका बाणास्तन्मयमिव । एवंविधं शयनं शयनीयमधिशयानं शयनं कुर्वाणम् । मम पदे मत्पदे तयोः शब्दमाकर्णयन्तमिव शृण्वन्तमिव । यत्र स मद्विषय उत्कण्ठितस्तत्र हेतुमाह—अतीति । अतिनिष्पन्दतयाति-निश्चलतया । इयं नागतेति ममोपर्यन्तः क्रोधस्तेन शमितो मदनसंतापो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया तया तत्क्षणं लब्धं यत्सुखं तेन प्रसुप्तमिव । ममोपरि क्रोधकरणात् । मदनेन संतापो दूरीकृत इति भावः । मुनेर्मम क्षोभस्त्वनुचित इत्यतस्तत्प्रायश्चित्तरूपो यः प्राणायामः प्राणयमस्तत्रा-वस्थितमिव कृतावस्थानमिव । स चातिनिःस्पन्दनतया क्रियत इति भावः । अतीति । अति-प्रस्फुरिता दीप्ता प्रभा कान्तिर्यस्यैवंविधेनाधरेण रदनच्छदेन त्वत्कृते त्वन्निमित्तं ममेयं प्रत्यक्षोप-लभ्यमानावस्था दशा जाता इति कथयन्तमिव प्रतिपादयन्तमिव । इन्द्विति । इन्दुद्वेषेण चन्द्रद्विषा परिवर्तितं प्रत्यङ्मुखीकृतो यो देहस्तस्य भावस्तत्ता तया पृष्ठभागे पश्चाद्भागे निपतितैः शशिकिरणैश्चन्द्रालोकैः पृष्ठं भित्त्वा हृदयभागे गमनाभावेऽपि मदनलक्षणो यो दहनो वह्निस्तेन विह्वलं यद्धृदयं स्वान्तं तत्र न्यस्तः स्थापितो यो हस्तः पाणिस्तस्य नखमयूखाः पुनर्नखकिरणास्तेषां छलेन मिषेण छिद्रितमिव सञ्जातविवरमिव । अनेन देहस्य स्वच्छत्वं नख-किरणानामुदितारुणचन्द्रकिरणसादृश्यं व्यज्यते । मुनिकुमारं विशेषयन्नाह—उच्छुष्केति ।

सरोवर के किनारे समीप स्थित, ठंढी फुहारों की वर्षा कर रही, चन्द्रकान्तमणि की शिला पर बनायी गयी, कुमुद, कुवलय, कमल तथा नाना प्रकार के फूलों की मालाओं से बनी हुई, बिस-तन्तुओं की बनी हुई तथा मानो कामदेव के बाणों की बनी हुई सी शय्या पर सो रहा था, अपनी अत्यन्त निश्चलता के कारण, मानो वह मेरे पाँवों की आहट ले रहा था, (मेरे न पहुँचने के कारण उत्पन्न हुए) भीतरी क्रोध द्वारा उसकी कामदेवजनित अग्नि शान्त हो जाने के कारण उसी समय प्राप्त हुए सुख के कारण ही मानो सो गया था, मानो मन की क्षुब्धता के लिये (किये जाने वाले) प्रायश्चित्तरूप प्राणायाम में अवस्थित था; अत्यन्त दीप्त कांति वाले होठ से मानो वह यह कह रहा था कि तेरे लिये ही मेरी यह अवस्था हुई है, कामाग्नि से परेशान हृदय पर रखे हुए हाथ के नखों की किरणों के बहाने, चन्द्रमा के प्रति द्वेष होने से परिवर्तित शरीर होने के कारण (चन्द्रमा की ओर पीठ करके लेटे होने के कारण) मानो पीठ पर गिरती हुई

पाण्डुरया स्वविनाशोत्पातोत्पन्नया मदनचन्द्रकलयेव चन्दनलेखिकया रचितललाटिकम्, ईषदालक्ष्यपरिवृत्ततारकेणानवरतरोदनताम्रेण प्राणोत्सर्गोपजाताश्रुक्षयतया रुधिरमिव क्षरता मदनशरशल्यवेदनाकूणितत्रिभागेन नातिनिमीलितेन लोचनयुगलेन 'मत्तोऽतिप्रियतरस्तवापरो जनो जातः' इति कुपितेनेव जीवितेन परित्यक्तम्, मन्मथव्यथया सहैतानसूंस्वयमिवोत्सृज्य निश्चेतनासुखमनुभवन्तम्, अनङ्गयोगविद्यामिव ध्यायन्तम्,

---

चन्दनलेखिकया मलयजलेखया रचिता निर्मिता ललाटिका यस्य स तम्। कीदृशया। उच्छुष्का चासौ पाण्डुरा चोच्छुष्कपाण्डुरा तया। अतएव शुष्कत्ववक्रत्वसाम्यादाह—मदनेति। मदनो मन्मथ स एव चन्द्रस्तस्य कलयेव। कीदृशया। स्वस्य यो विनाशस्तल्लक्षण उत्पातस्तेनोत्पन्नया प्रकटीभूतया। पुन कीदृशम्। एवंविधेन लोचनयुगलेन नेत्रयुग्मेन। उपलक्षितमिति शेष। अथ च लोचनयुगल विशेषयन्नाह—ईषदिति। ईषत्किंचिदालक्ष्या दृश्या परिवृत्ता भ्रमन्त्यस्तारका. कनीनिका यस्मिन्। अनवरत निरन्तर रोदनमश्रुपातस्तेनाताम्रेणेषत्ताम्रवर्णेन। प्राणेति। प्राणस्य य उत्सर्ग परित्यागस्तस्मोपजात समुत्पन्नो योऽश्रुक्षयस्तस्य भावस्तत्ता तया रुधिरमिव रक्तमिव क्षरता प्रस्रवता। मदनेति। मदनशराणा कन्दर्पबाणाना शल्यमन्त स्थितशराग्र भागस्तस्य या वेदना पीडा तया कूणित ईषद्वक्रीकृतस्त्रिभागो यस्मिन्। नेत्रस्येति शेष। नेति। नातिनिमीलितेन नातिमुद्रितेन। मत्त इति। मदिति मत्त। सार्वविभक्तिकस्तस्। जीवितादपि तव कुमारस्यापरो जनो महाश्वेतारूपोऽतिप्रियतरोऽतिवल्लभो जात इति हेतो कुपितेन कोप प्राप्तेन जीवितेन प्राणितेन परित्यक्तमुज्झितम्। मन्मथेति। मन्मथस्य कन्दर्पस्य या व्यथा पीडा तया सह स्वयमिवाकस्मादिवैतानसून्प्राणानुत्सृज्य त्यक्त्वा निश्चेतना सुख सात तदनुभवन्तमनुभवविषयीकुर्वन्तम्। अनङ्गेति। अनङ्गस्य मनोभुवो अयार्थं या योगविद्या तां ध्यायन्तमिव

चन्द्रमा की किरणों से ही छेदा गया था—(पीठ के बल लेटे हुए पुण्डरीक के हाथ के नखों की किरणें इस प्रकार फैल रही थीं कि मानो चन्द्रमा की ओर पीठ करके सोये हुए उसकी पीठ को भेद कर चन्द्रमा की किरणें ही निकल रही हों), सूखी तथा पीले रंग की अपने (पुण्डरीक के) विनाश रूपी अपशकुन के रूप में उत्पन्न हुई, कामदेव की चन्द्रकला सरीखी प्रतीत होती चन्दनरेखा से उसके मस्तक पर रचा था, कुछ कुछ दृश्य तथा घूमती हुई पुतलियों वाली, निरन्तर रोनेसे लाल हुई, प्राणत्याग से आसुओं के नष्ट हो जाने के कारण मानो रक्त को बहाती हुई, कामदेव के बाणों के (भीतर धँसे हुए) अग्रभाग से उत्पन्न पीड़ा द्वारा कुछ तिरछे हुए[1] त्रिभाग वाली दो आँखों से मुझ को मानो ईर्ष्या से देख रहा था, 'मुझसे अधिक प्यारा तेरा दूसरा व्यक्ति उत्पन्न हो गया है'—इस कारण मानो क्रुद्ध हुए उसके जीवन ने उसको छोड़ दिया था, कामदेव की पीड़ा के साथ-साथ (अपने) प्राणों को भी मानो स्वयं ही छोड़कर वह निश्चेतनता के आनन्द का उपभोग कर रहा था, मानो कि वह कामदेव की (कामदेव द्वारा प्रचारित) योगविद्या का ध्यान लगा रहा था, एक अपूर्व (पूरक एवं रेचक

---

१. कूणित. । २. त्रिभाग अर्थात् कुछ भाग वाली ।

अपूर्वप्राणायाममिवाभ्यस्यन्तम्, उपपादितास्मदागमनेन प्रणयादिवापहृतप्राणपूर्णपात्रमनङ्गेन, रचितचन्दनललाटिकात्रिपुण्ड्रकम्, धृतसरसबिससूत्रयज्ञोपवीतम्, असावसक्तकदलीगर्भपत्रचारुचीरम्, एकावलीविशालाक्षमालम्, अविरलामलकर्पूरक्षोदभस्मधवलम्, आबद्धमृणालरक्षाप्रतिसरमनोहरम्, मनोभवव्रतवेषमास्थाय मत्समागममन्त्रमिव साधयन्तम्, 'भोः कठिनहृदये, दर्शनमात्रकेणापि न पुनरनुगृहीतोऽयमनुगतो जनः' इति सप्रणय मामुपलभमानमिव चक्षुषा, किंचिद्विवृताधरतया

ध्यानविषयीकुर्वन्तमिव। अपूर्वेति। पूरकाभावादिति भाव। एवंविध प्राणायामं प्राणयममभ्यस्यन्तमिवाभ्यास कुर्वन्तमिव। पूर्वं नि शब्दतया प्राणायामावस्थितत्वम्, इदानीं तु पूरकाभावादिति भेद। उपेति। उपपादित निष्पादितमस्मदागमन येनैव भूतेनानङ्गेन प्रणयादिव स्नेहादिवापहृतमाकर्षितं प्राणलक्षण पूर्णपात्र यस्मात्स तम्। 'उत्सवेषु सुहृद्भिर्यद्बलादाकृष्य गृह्यते। तत्पूर्णपात्रम्' इति वृद्धा। रचितेति। रचित निर्मित चन्दनेन ललाटिकासु त्रिपुण्ड्रक येन तम्। पूर्वमर्धचन्द्राकारललाटिकावर्णनम्, इदानीमर्धचन्द्रोपरि त्रिपुण्ड्रवर्णनमिति भेद। धृतेति। धृत धारित सरसबिससूत्ररूपं यज्ञोपवीत यज्ञसूत्र येन स तम्। असेति। असे स्कन्धेऽवसक्त स्थापित कदलीगर्भपत्रवच्चारु मनोहरं चीर येन स तम्। विशालेति। एकावल्येव विशाला विस्तीर्णाक्षमाला जपमाला यस्य स तम्। अविरलेति। अविरलो घनोऽमलो निर्मल एवंविधो य कर्पूरक्षोदो घनसारचूर्ण तदेव भस्म विभूतिस्तेन धवल शुभ्रम्। आबद्धेति। आबद्धा मृणालस्य तन्तुलस्य रक्षार्थं प्रतिसरो हस्तसूत्र तेन मनोहर शोभनम्। मनो इति। मनोभवव्रतवेषमास्थाय परिधाय मदीयो य समागमस्तत्साधको मन्त्रस्त साधयन्तमिवाराधयन्तमिव। इति मा सप्रणय सस्नेहम्। चक्षुषा इति। उपलभमानमिवोपलम्भ ददानमिव। इतिशब्दद्योत्यमाह—भो इति। भो कठिनहृदये, दर्शनमात्रकेणाप्ययमनुगतोऽनुरक्तो जनो न पुनरनुगृहीतो न स्वीकृत। किंचिदिति। किंचिद्विवृतो योऽधर ओष्ठस्तस्य भावस्तया। तया जीवितमपहर्तुं दूरीकर्तुमन्त प्रविष्टैरिन्दुकिरणैश्चन्द्रकरैरिव निर्गच्छद्भिर्बहिरागच्छ

क्रियाओं के अभाव में केवलमात्र कुम्भक होने से अपूर्व) प्राणायाम का अभ्यास कर रहा था, हमारे (मेरे) आगमनरूपी कार्य को पूरा किये हुए कामदेव द्वारा मानो उसका जीवनरूपी पूर्णपात्र (प्रेमवश) छीन लिया गया था, वह प्रेम के व्रत के अनुकूल वेष को पहन कर मानो मेरे साथ समागम के लिये मन्त्र की साधना कर रहा था—इस वेष में उसने (मस्तकस्थ) ललाटिका (के ऊपर) त्रिपुण्ड्रक बनाया हुआ था, रसीले बिसतन्तुओं का यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था, कन्धे पर केले के वृक्ष के अन्तःस्थित सुन्दर पत्ते के आकार में वल्कल वस्त्र लटकाया हुआ था, (मेरी दी हुई) एकावली को ही बड़े बड़े अक्षों की माला के रूप में धारण किया हुआ था, घनी (रमायी हुई), निर्मल कपूर के चूरे रूपी भस्म से वह श्वेत था और बांधे हुए बिसतन्तुओं के रक्षासूत्र से रमणीय था, 'हे कठोर हृदयवाली! अपने अनुरक्त इस व्यक्ति को तूने केवल दर्शन से भी अनुगृहीत नहीं किया'—मानों इन शब्दों में वह स्नेह से मुझे डाँट रहा था, कुछ कुछ खुले होठों के कारण, (उसके शरीर का) सामने का भाग मानो

जीवितमपहर्तुमन्तःप्रविष्टैरिवेन्दुकिरणैर्निर्गच्छद्भिर्दशनांशुभिर्धवलितपुरोभागम्, मन्मथव्यथाविघटमानहृदयनिहितेन वामेन पाणिना 'प्रसीद। प्राणैः समं प्राणसमे, न गन्तव्यम्' इति हृदयस्थिता मामिव धारयन्तम्, इतरेण च नखमयूखदन्तुरतया चन्दनमिव स्रवतोत्तानीकृतेन चन्द्रातपमिव निवारयन्तम्, अन्तिकस्थितेन चाचिरोद्गतजीवितमार्गमिवोद्ग्रीवेण विलोकयता तपःसुहृदा कमण्डलुना समुपेतम्, कण्ठाभरणीकृतेन च मृणालवलयेन रजनीकरकिरणपाशेनेव सयम्य लोकान्तरं नीयमानम्, कपिञ्जलेन मद्दर्शनात् 'अब्रह्मण्यम्' इत्यूर्ध्वहस्तेन द्विगुणीभूतबाष्पोद्गमेनाक्रोशता

द्भिर्दशनांशुभिर्दन्तकिरणैर्धवलितपुरोभाग शुभ्रीकृताग्रप्रदेशम्। मन्मथेति। मन्मथस्य कन्दर्पस्य व्यथा पीडा तया विघटमान भिद्यमान यद्धृदय तत्र निहितेन स्थापितेन वामेन सव्येन पाणिना हस्तेन कृत्वा इति हृदयस्थितां मामिव धारयन्तं रक्षन्तम्। इतिवाच्यमाह—प्रसीदेति। हे प्राणसमे, त्व प्रसीद प्रसन्ना भव। अथ च प्राणै सम न गन्तव्यम्। प्राणा गच्छन्तु, पर त्वया न गन्तव्यमिति भाव। एतेन प्राणेभ्योऽप्यतिवल्लभा त्वमसीति ध्वनितम्। इतरेणेति। इतरेण दक्षिणपाणिनोत्तानीकृतेनोर्ध्वीकृतेन चन्द्रातप कौमुदीं निवारयन्तमिव निषेधयन्तमिव। किं कुर्वन्ती। चन्दन मलयज स्रवतेव क्षरतेव। कया। नखानां मयूखा किरणास्तैर्दन्तुरतया विषमोन्नततया। अन्तिकेति। अन्तिकस्थितेन समीपवर्तिनोद्ग्रीवेणाचिरोद्गतमचिर तत्काल गत यज्जीवित तस्य मार्ग पन्थान विलोकयतेव पश्यतेव एवंविधेन तप सुहृदा तपस्यामित्रेण कमण्डलुना कुण्डिकया समुपेत सहितम्। कण्ठे आभरणीकृतेन च विभूषणीभूतेन च मृणालवलयेन बिसकण्टकेन। श्वेतत्वसाम्यादाह—रजनीति। रजनीकरश्चन्द्रस्तस्य किरणास्तल्लक्षण पाशो बन्धनग्रन्थिस्तेनेव सयम्य बद्ध्वा लोकान्तरमन्यलोक नीयमानं प्राप्यमाणम्। अत्रान्य प्राकृतो जनो यमेन पाशेन बद्ध्वा लोकान्तर नीयते। अय मुनिकुमार इति तदसभवात्कण्ठेत्युक्तमिति भाव। मदिति। तदानीं मद्दर्शनादब्रह्मण्यमनुचितमित्यूर्ध्वहस्तेन कपिञ्जलेनाक्रोशता पूत्कुर्वता कण्ठे परिष्वक्तमालिङ्गितम्। कीदृशेन कपिञ्जलेन। द्विगुणीभूत पूर्वस्मादधिकीभूतो बाष्पस्य रोदनस्योद्गम प्रादुर्भावो यस्मिन्स तेन। पुन कीदृशम्। तत्क्षणे तत्काले विगत प्रनष्ट जीवितं

जीवन को चुराने के लिये भीतर घुसीं तथा अब बाहर निकलती हुई चन्द्रकिरणों द्वारा श्वेत हो गया था, कामपीड़ा से फटते हृदय पर रखे हुए बायें हाथ से मानो अपने हृदय में स्थित मुझको यह कहता हुआ धारण कर रहा था—'दया कर, जीवन के समान (प्यारी) मेरे जीवन के साथ साथ मत जा', और नाखूनों की किरणों से दन्तुर हो जाने के कारण मानो चन्दन को चुवा रहे तथा हथेली को फैला कर ऊपर को उठाये हुए दूसरे (दायें) हाथ से मानो वह धूप को हटा रहा था, वह अपने तपस्याकालीन मित्र, समीपस्थित तथा गर्दन को ऊपर उठाये हुए अतएव मानो अभी अभी निकले प्राणों के (जाने के) मार्ग को दिखलाते हुए कमण्डलु से युक्त था, कण्ठाभूषण बनायी हुई बिसतन्तुओं की माला द्वारा वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो चन्द्रमा की किरणों के बने फन्दे से बाँधा हुआ परलोक को ले जाया जा रहा था, मुझको देखकर 'ओह! कितनी निन्दनीय घटना हुई है!' यह कहकर ऊपर को हाथ

कण्ठे परिष्वक्तं तत्क्षणविगतजीवित तमहं पापकारिणी मन्दभाग्या महाभागमद्राक्षम्। उद्भूतमूर्च्छान्धकारा च पातालतलमिवावतीर्णा तदा 'काहमगमम्, किमकरवम्, किं व्यलपम्' इति सर्वमेव नाज्ञासिषम्। असवश्च मे तस्मिन्क्षणे किमतिकठिनतयास्य मूढहृदयस्य, किमनेकदुःखसहस्रसहिष्णुतया हतशरीरकस्य, किं विहिततया दीर्घशोकस्य, किं भाजनतया जन्मान्तरोपात्तस्य दुष्कृतस्य, किं दुःखदाननिपुणतया दग्धदैवस्य, किमेकान्तवामतया दुरात्मनो मन्मथहतकस्य, केन हेतुना नोद्गच्छन्ति स्म तदपि न ज्ञातवती। केवलमतिचिराल्लब्धचेतना दुःखभागिनी वह्नाविव पतितमसह्यशोकदह्यमानमात्मानमवनौ विचेष्टमानमपश्यम्। अश्रद्दधाना चासम्भावनीयं तत्तस्य

प्राणित यस्य स तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तदिति। तदा तस्मिन्क्षणे सर्वमेवेति नाज्ञासिष नाबोधिषम्। इतिद्योत्यमाह—उद्भूतेति। काहमगममव्रजम्, किमकरवमघटयम्, किं व्यलप किमवोचम्। कीदृशीहम्। उद्भूत प्रकटीभूत मूर्च्छा एवान्धकार यस्या सा तथा पातालतल रसातलमवतीर्णेव। असवश्चेति। तस्मिन्क्षणे मे ममासव प्राणा अस्य मूढहृदयस्य किमतिकठिनतयातिकाठिन्यतया। किं हतशरीरकस्य नि प्रयोजनदेहस्यानेकेषां दु खसहस्राणां सहिष्णुतया सहनतया। किं दीर्घशोकस्य चिरकालीनशुचो विहिततयावश्यभोक्तव्यतया। किं जन्मान्तरोपात्तस्य भवार्जितस्य दुष्कृतस्य पापस्य भाजनतया पात्रतया। किं दग्धदैवस्य ज्वलितभाग्यस्य दु खदाने कृच्छ्रप्रदाने निपुणतया दक्षतया। किं दुरात्मन पापिष्ठस्य मन्मथहतकस्यैकान्तवामतयात्यन्तप्रतिकूलतया। एतेषां मध्ये केन हेतुना नोद्गच्छन्ति स्म न बहि प्रयान्ति स्म तदपि न ज्ञातवती। केवलमतिचिराच्चिरकालेन लब्धा प्राप्ता चेतना चैतन्य यया सैवंविधा दु खभागिनी वह्नाविवाग्नाविव पतितमसह्यो य शोक शुक् तेन दह्यमान ज्वलन्तमवनौ पृथिव्या विचेष्टमान लुठमानमात्मानमपश्यमवलोकयम्। तस्य मुनिकुमारस्य तन्मरणमात्मनश्च स्वकी-

---

उठाये हुआ तथा दुगुना अश्रुप्रवाह करके रोता हुआ कपिञ्जल उसकी गर्दन का आलिंगन कर रहा था।

उस समय (अपने में) प्रकट हुए मूर्छा रूपी अन्धेरे वाली और मानो पाताल लोक की तलहटी में उतरी हुई मैंने, 'मैं कहाँ चली गयी, मैंने क्या किया और क्या विलाप किया'—यह सब कुछ भी नहीं जाना। और उस समय मेरे प्राण, या तो मेरे इस अचेत हृदय की अत्यन्त कठोरता के कारण, अथवा नीच शरीर की सहस्रों दुःख सहने की क्षमता के कारण, अथवा मेरे लिये लम्बा शोक विहित होने के कारण (अर्थात् मेरे भाग्य में लम्बा शोक लिखा होने के कारण), अथवा दूसरे (पूर्व) जन्म में ग्रहण किये गये पापों की मेरी पात्रता के कारण, अथवा दुष्ट दैव की दुःख देने में निपुणता के कारण, अथवा दुष्टात्मा कामदेव की अत्यन्त प्रतिकूलता के कारण—किस कारण नहीं निकल रहे थे—यह भी मैंने नहीं जाना। बहुत देर के पश्चात् होश में आयी हुई, दुखिया मैंने अपने आपको मानो अग्नि में गिरी हुई को तथा असह्य शोक से जलती हुई को, पृथ्वी पर लोट पोट होती हुई को, देखा। और उसकी उस

मरणमात्मनश्च जीवितमुत्थाय, 'हा, किमिदमुपनतम्' इति मुक्तार्तनादा, 'हा अम्ब, हा तात, हा सख्यः' इति व्याहरन्ती 'हा नाथ जीवितनिबन्धन, आचक्ष्व। क मामेकाकिनीमशरणामकरुण विमुच्य यासि। पृच्छ तरलिका त्वत्कृते मया यानुभूतावस्था। युगसहस्रायमाणः कृच्छ्रेण नीतो दिवसः। प्रसीद। सकृदप्यालप। दर्शय भक्तवत्सलताम्। ईषदपि विलोकय। पूरय मे मनोरथम्। आर्तास्मि। भक्तास्मि। अनाथास्मि। बालास्मि। अगतिकास्मि। दुःखितास्मि। अनन्यशरणास्मि। मदनपरिभूतास्मि। किमिति न करोषि दयाम्। कथय किमपराद्धम्, किं वा नानुष्ठितं मया, कस्या वा नाज्ञायामादृतम्, कस्मिन्वा त्वदनुकूले नाभिरतम्, येन कुपितोऽसि।

यस्य च जीवितमसम्भावनीयमश्रद्दधानमश्रद्धाविषयीकुर्वाणमुत्थाय। हेति खेदे। किमिदमुपनतमागतमिति मुक्त आर्तनाद आक्रन्द आक्रन्दशब्दो यया सा तथा। हा अम्ब मात, हा तात हा पित, हा सख्य हा आल्य, इति पूर्वोक्त व्याहरन्ती कथयन्ती। हा नाथ हा स्वामिन्, जीवितनिबन्धनं जीवितकारणमाचक्ष्व कथय। मामेकाकिनीमसहायामशरणामत्राणामकरुण निर्दयं यथा स्यात्तथा विमुच्य त्यक्त्वा क यासि क व्रजसि। तरलिकां पृच्छ प्रश्न कुरु, त्वत्कृते त्वदर्थं मया महाश्वेताभिधानया यानिर्वचनीयावस्था दशानुभूतानुभवविषयीकृता। युगसहस्रवदाचरमाणो दिवसो वासर कृच्छ्रेण कष्टेन नीत प्रापित। प्रसीद प्रसन्नो भव। सकृदप्येकवारमप्यालप ब्रूहि। भक्तवत्सलतां हितकारितां दर्शय प्रकाशय। ईषदपि किंचिदपि विलोकय निरीक्षणं कुरु। मे मम मनोरथ चिन्तित पूरय पूर्णीकुरु। अहमार्तास्मि दुःखितास्मीति स्पष्टम्। अनन्येति। न विद्यतेऽन्यं शरण त्राण यस्या सैवंविधास्मि। मदनेन कन्दर्पेण परिभूता पराजितास्मि। किमिति हेतो। त्व दयां कृपा न करोषि न प्रणयसि। कथय ब्रूहि। किमपराद्ध कोऽयमपराध कृत। मयेति शेष। किं मया नानुष्ठित नाचरित वा। कस्या वाज्ञायां निर्देशे नादृत नादर कृत'। त्वदनुकूले कस्मिन्वा मया नाभिरतं रागो न कृत येन

अकल्पनीय मृत्यु में तथा अपने जीवित रहने में विश्वास न करती हुई मैं उठकर 'अरे! यह क्या आ पड़ा है!—इन शब्दों मे रोना रोती हुई 'हा! माता, हा! पिता, हा सखियो'—यह कहती हुई, 'हा! स्वामिन्! मेरे जीवन के बन्धन (मुख्य आधार)! बता, अरे निर्दय! मुझको अकेली तथा आश्रय (अथवा रक्षक) से रहित छोड़ कर तू कहाँ जा रहा है? तेरे लिये मैंने कितनी (दुःखदायिनी) अवस्था भोगी है, उसको तरलिका से पूछ! (मेरे लिये) सहस्रों युगों जितना होता हुआ दिन मैंने बड़ी कठिनता से बिताया है। कृपा कर! केवल एक बार ही मुझसे बात कर ले। (तुमसे प्रेम करने के लिये मैं जो तुम्हारी भक्त हूँ उसको अपनी भक्त प्रियता दिखला दे) मुझे तू थोड़ा-सा ही देख ले। मेरी मनोभिलाषा को पूरा कर। मैं दुःखिता हूँ। भक्त हूँ। मैं तुममें अनुरक्त हूँ। मैं छोड़ी हुई (अनाथ) हूँ। मैं एक लड़की हूँ। मेरा कोई सहारा नहीं है। मैं दुःखी हूँ। मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं है। मैं कामदेव के वशीभूत हूँ, तू क्यों दया नहीं करता है! कह (बता) मैंने क्या अपराध किया है! मैंने (तेरे लिये) क्या नहीं किया! अथवा (तेरी) कौन सी आज्ञा में आदर नहीं रखा (आदर-

दासजनमकारणात्परित्यज्य व्रजन्न बिभेषि कौलीनात्। अलीकानुरागविप्रतारणकुशलया किं वा मया वामया पापया। आः, अहमद्यापि प्राणिमि। हा, हतास्मि मन्दभागिनी। कथं न त्वं जातः, न विनयः, न बन्धुवर्गः, न परलोकः। धिङ्मा दुष्कृतकारिणीम्, यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते। नास्ति मत्सदृशी नृशंसहृदया, याहमेवंविधं भवन्तमुत्सृज्य गृह गतवती। किं मे गृहेण, किमम्बया, किं वा तातेन, किं बन्धुभिः, किं परिजनेन। हा, कमुपयामि शरणम्। मयि दैव, दर्शय दयाम्। विज्ञापयामि त्वाम्। देहि दयितदक्षिणा भगवति भवितव्यते। कुरु कृपाम्। पाहि वनिता-

---

कारणेन कुपितः कोपं प्राप्त'। अकारणान्निमित्तमन्तरेण दासजनं भृत्यलोक परित्यज्य विहाय व्रजन्गच्छन्कौलीनाज्जनापवादाच्च बिभेषि भयं प्राप्नोषि। अलीकेति। अलीको मिथ्या योऽनुरागस्तेन यद्विप्रतारण वञ्चन तत्र कुशलया दक्षया वामया प्रतिकूलया पापया दुष्टकर्मकारिण्या मया किं वा स्यात्। आ इति ज्ञातम्। अहमद्याप्येतावत्कालमपि प्राणिमि जीवामि। हा हतास्मि। दैवेन ताडितास्मीति भाव'। अतएव मन्दभागिनी। तदेव दर्शयति—कथमिति। न त्व भवान् जातः। पतिरिति शेषः। अतश्च न विनयो न मर्यादा, न वा बन्धुवर्गो न स्वजन लोक, न परलोको न प्रेत्यभाव। मां धिगस्तु धिक्कारोऽस्तु। मां कीदृशम्। दुष्कृतकारिणीं दुष्कर्मैकरणशीलाम्। यस्या पापकारिण्या कृते तव भवत इयं परित्यक्तजीवितरूपा दशावस्था वर्तते। मत्सदृशी मत्समा नृशंसहृदया क्रूरचित्ता नास्ति न विद्यते, याहमेवंविध भवन्तमुत्सृज्य त्यक्त्वा गृह धाम गतवती। मे मम किं गृहेण सदनेन, किमम्बया मात्रा, किं वा तातेन पित्रा, किं वा बन्धुभि स्वजनै, किं परिजनेन परिच्छदेन। हेति खेदे। क शरणमुपयामि गच्छामि। हे दैव हे भाग्य, मयि विषये दयां कृपां दर्शय। त्वां प्रति विज्ञापयामि विज्ञप्तिं करोमि। हे भवितव्यते भगवति, दयितदक्षिणां देहि। कृपां दयां कुरु। अनाथां वनितां स्त्रिय पाहि रक्ष।

पूर्वक कौन-सी आज्ञा का पालन नहीं किया)। अथवा किस तेरी अनुकूल वस्तु में अनुराग नहीं दिखाया कि जिसके कारण क्रुद्ध है और निष्कारण ही इस दासी को छोड़कर जाता हुआ लोकापवाद[1] से नहीं डरता है। अथवा झूठा प्रेम (दिखाकर) ठगने में चतुरा मुझ वामाचारिणी पतिता से तुमको क्या करना है। हा धिक्! मैं आज भी जी रही हूँ! मैं अभागिनी मारी गयी! न जाने क्यों न तो तू मेरा हुआ, न नम्रता (मेरी हुई), न बन्धु-बान्धव (मेरे) हुए, और न परलोक ही (मेरा) हुआ। पाप करने वाली मुझे धिक्कार है जिसके लिये तेरी यह अवस्था हो गयी है। मेरे समान तो कोई कठोरहृदय नहीं होगा कि जो मैं ऐसे तुझको छोड़कर घर चली गयी। (अब मुझे) घर का क्या करना है, माता का, अथवा पिता का, बन्धुओं का अथवा सेवकों का क्या करना है! हा! मैं किसकी शरण में जाऊँ? हे भाग्य देवता! मुझ पर दया करो, मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे मेरे प्यारे का उपहार (दक्षिणा) दो, पूजनीय होनहार! मुझ पर अनुग्रह कर, निराश्रया स्त्री की रक्षा कर। आदरणीय

---

१. कौलीनं a scandal,

मनाथाम्। भगवत्यो वनदेवताः, प्रसीदत। प्रयच्छतास्य प्राणान्। अव वसुंधरे, सकललोकानुग्रहजननि। रजनि, नानुकम्पसे। तात कैलास, शरणागतास्मि ते। दर्शय दयालुताम्, इत्येतानि चान्यानि च व्याक्रोशन्ती, कियद्वा स्मरामि, ग्रहगृहीतेवाविष्टेवोन्मत्तेव भूतोपहतेव व्यलपम्। उपर्युपरिपतितनयनजलधारानिकरच्छलेन विलीयमानेव, द्रवतामिव नीयमाना, जलाकारेणेवात्मीक्रियमाणा, प्रलापाक्षरैरपि दशनमयूखशिखानुगततया साश्रुधारैरिव निष्पतद्भिः शिरोरुहैरप्यविरलविगलत्कुसुमतया मुक्त-

---

हे भगवत्यो वनदेवता, यूय प्रसीदत प्रसन्ना भवत। अस्य मुनिकुमारस्य प्राणान्प्रयच्छत ददत। हे सकललोकानुग्रहजननि वसुधरे, अव रक्ष। हे रजनि हे रात्रि, नानुकम्पसे नानुकम्पा करोषि। हे तात कैलास, ते तव शरणागतास्मि। दयालुता कृपालुता दर्शय प्रकटय। इत्येतानि च ग्रन्थकर्त्रा प्रदर्शितान्यन्यानि चाप्रदर्शितानि च वचनानि व्याक्रोशन्ती पूत्कुर्वन्ती। कियद्वेति। कियन्मात्र परिदेवन स्मरामि स्मरणविषयीकुर्वे। ग्रहगृहीतेव ग्रथिलेव, आविष्टेवावेशविषयीकृतेव, उन्मत्तेवोन्मत्तवायुव्यथितेव, भूतेन व्यन्तरेणोपहतेव व्यलप विलापमकरवम्। अथ नयनाश्रुधाराणा सान्द्रातिशय वर्णयितु त्रिभिरुत्प्रेक्षते—उपरीति। उपर्युपरि पतिता या नयनजलधारा अश्रुश्रेण्यस्तासां निकरच्छलेन समूहव्याजेन विलीयमानेव द्रुततामापद्यमानेव द्रवतां द्रवगुणोपयुक्ततां नीयमानेव प्राप्यमाणेव। द्रवत्ववत्त्वादेवाह—जलाकारेणेति। जलाकारेण जलस्वभावेनात्मीक्रियमाणेव। अथ च रोदनाश्रुमुखेन शोकातिशय व्यञ्जयितुमश्रुवर्णन त्रिभिरुत्प्रेक्षाभिराह—प्रेति। दशना दन्तास्तेषां मयूखाः किरणास्तेषा शिखा प्रान्तभागास्तत्रानुगततया प्राप्ततया प्रलापाक्षरैरपि परिदेवनवर्णैरपि साश्रुधारैर्निष्पतद्भिरिव स्रवद्भिरिव। अत्र श्वेतत्वसाम्याद्दशनमयूखनेत्रजलयोरुपमानोपमेयभाव। अविरलेति। अविरलानि घनानि विगलन्ति स्रवन्ति कुसुमानि पुष्पाणि येषु तेषा भावस्तत्ता तया शिरोरुहैरपि केशैरपि। मुक्तेति। मुक्ता बाष्पजलबिन्दवो यैरेवंविधैरिव। अत्रापि पुष्पनेत्रजलयो श्वेतत्वसाम्यादुप-

---

वनदेवताओं! कृपा करो, इसका जीवन इसको (लौटा) दो। सब पर कृपा करनेवाली, पृथ्वी! बचा। हे रात्रि! तू (मुझ पर) दया क्यों नहीं दिखाती। हे पिता कैलास! मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ (तुमसे अपनी रक्षा करवाना चाहती हूँ), अपनी दयालुता को दिखा'। ये तथा ऐसे ही दूसरे वाक्यों को दुःख से चिल्लाती हुई मैंने अथवा कितने विलाप को याद कर सकती हूँ, ग्रह (अथवा पिशाच) से पकड़ी हुई की भाँति अथवा किसी भूत से आविष्ट व्यक्ति की भाँति अथवा पागल हुए की भाँति अथवा भूत से आहत की भाँति विलाप किया। एक दूसरे के ऊपर ऊपर (अर्थात् घनिष्ठ क्रमिक अनुगमन से) गिरी अश्रुधाराओं के बहाने मानो पिघलायी जाती हुई अथवा मानो द्रव अवस्था में लायी जाती हुई अथवा जलके आकार में मानो छपायी जाती हुई, दाँतों की किरणों के सिरों (शिखरों) द्वारा अनुगत होने के कारण मानो आँसुओं की धाराओं के साथ गिर रहे अपने प्रलाप के अक्षरों (वाक्यखण्डों) से युक्त थी, (वेणी से) निरन्तर खिसकते हुए फूलों के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरे बाल आँसुओं की बूँदें छोड़ रहे थे, चमकती मणियों से निकली (उत्पन्न) किरणोंरूपी आँसुओं

बाष्पजलबिन्दुभिरिवाभरणैरपि प्रसूतविमलमणिकिरणाश्रुतया प्ररुदितैरिवोपेता, तज्जीवितायेवात्ममरणाय स्पृहयन्ती, मृतस्यापि सर्वात्मना हृदयं प्रवेष्टुमिवेच्छन्ती, करतलेन कपोलयोराश्यानचन्दनश्वेतजटामूले च ललाटे निहितसरसबिसयोरंसयोर्मलयजरसलवलुलितकमलिनीपलाशावगुण्ठिते च हृदये स्पृशन्ती, 'पुण्डरीक, निष्ठुरोऽसि। एवमप्यार्तां न गणयसि माम्' इत्युपालभमाना मुहुरेनमन्वनयम्, मुहुः पर्यचुम्बम्, मुहुर्मुहुः कण्ठे गृहीत्वा व्याक्रोशम्। 'आः पापे, त्वयापि मत्प्रत्यागमनकालं यावदस्यासवो न रक्षिताः' इति तामेकावलीमगर्हयम्। 'अयि भगवन्, प्रसीद। प्रत्युज्जीवयै

मानोपमेयभाव। प्रसूतेति। प्रसूतानि जनितानि विमलानि निर्मलानि मणिकिरणान्येवाश्रूणि येषु तेषां भावस्तत्ता तया आभरणैरपि विभूषणैरपि प्ररुदितैरिव कृताश्रुपातैरिव। उपेतेति। तस्त्रिभिरन्विता। तज्जीवितेति। तस्य मुनिकुमारस्य जीवितं तद्वदिवात्ममरणाय स्वनिधनाय स्पृहयन्ती वाञ्छां कुर्वन्ती। मृतस्यापि गतप्राणस्यापि सर्वात्मना सर्वप्रकारेण हृदयं प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुमिच्छन्तीव। करतलेन पाणितलेन स्वेन मुनिकपोलयोर्गल्लात्परप्रदेशयोर्ललाटे च कीदृशे। आश्यानं शुष्कं चन्दनं मलयजं तेन श्वेतं शुभ्रं जटामूलं सटापीठं यस्मिन्। अंसयोश्च स्कन्धयोश्च। कीदृशयोः। निहितेति। निहितानि स्थापितानि सरसानि रसो जलं तद्युक्तानि बिसानि तन्तुलानि ययो। अथ हृदयं विशेषयन्नाह—मलयेति। मलयजस्य चन्दनस्य रसो द्रवस्तस्य लवो लेशस्तेन लुलितानि मिलितानि यानि कमलिनीपलाशानि पत्राणि तैरवगुण्ठिते व्याप्ते स्पृशन्ती स्पर्शं कुर्वन्ती। पुण्डरीकेति। हे पुण्डरीक, त्वं निष्ठुर क्रूरोऽसि। एवमपि पूर्वोक्तप्रकारेणापि मामार्तां न गणयसि न गणनां करोषि। इत्युपालभमानोपालम्भं ददाना मुहुर्वारंवारमेवमन्वनयमनुनीतवती मुहुर्वारंवारं पर्यचुम्बं चुम्बितवती। मुहुर्वारंवारं कण्ठे गृहीत्वा व्याक्रोशमाक्रोशितवती। आः पापे, त्वयापि भवत्यापि मम प्रत्यागमनकालं मदीयागमनसमयं यावत्। अस्य पुण्डरीकस्यासवः प्राणा न रक्षिता न त्राता। इति तामेकावलीमगर्हयं गर्हितवती। अयीति। अयि कोमलामन्त्रणे। हे भगवन्, प्रसीद प्रसन्नो भव। एनं पुण्डरीकं

के होने के कारण मैं मानो रोते हुए आभूषणों से युक्त थी, जैसे मैं उसका जीवन (जीवित हो उठना) चाहती थी वैसे ही अपना मरण चाह रही थी; मरे हुए के भी हृदय में पूरी तरह प्रविष्ट होना चाहती थी, अपनी हथेली से (उसके) दोनों गालों पर और कुछ-कुछ सूखे हुए चन्दन से श्वेत हुई जटाओं की जड़ों वाले मस्तक पर तथा रसयुक्त (न सूखे हुए) बिसतन्तु जिन पर रखे हैं ऐसे कन्धों पर और चन्दन द्रव जिन पर छिड़का हुआ है ऐसे कमलिनी के पत्तों से ढँके उसके वक्षःस्थल पर स्पर्श करती हुई मैंने—"पुण्डरीक, तू तो बड़ा कठोर हृदय वाला है, इस प्रकार दुःखिता भी मुझको कुछ नहीं समझता (मेरी तू परवाह नहीं करता है) इन शब्दों में उसको बुरा-भला कहती हुई मैंने बार-बार उसको मनाया, बार बार चूमा और बार-बार उसको कण्ठ से पकड़ा तथा रुदन किया, "अरी! पापिनी! तूने भी मेरे लौट आने के समय तक इसके प्राणों की रक्षा नहीं की"—इन शब्दों में उस एकावली (एक लड़ी) को डाँटा। 'हे भगवन! कृपा कर। इसको पुनः जीवित कर दे'—यह कह कर कपि-

नम्' इति मुहुः कपिञ्जलस्य पादयोरपतम्, मुहुश्च तरलिकां कण्ठे गृहीत्वा आरुदम्। अद्यापि चिन्तयन्ती न जानामि तस्मिन्काले कुतस्तान्यचिन्तितान्यशिक्षितान्यनुपदिष्टान्यदृष्टपूर्वाणि मे हतपुण्यायाः कृपणानि चाटुसहस्राणि प्रादुरभवन्, कुतस्ते संलापाः, कुतस्तान्यतिकरुणानि वैक्लव्यरुदितानि। अन्य एव स प्रकारः। प्रलयोर्मय इवोद्गतिभिरन्तर्बाष्पवेगानाम्, जलयन्त्राणीवामुच्यन्ताश्रुप्रवाहाणाम्, प्ररोहा इव निरगच्छन्प्रलापानाम्, शिखरसहस्राणीवावर्धन्त दुःखानाम्, प्रसूतय इवोदपाद्यन्त मूर्च्छानाम्' इत्येवमात्मवृत्तान्तं निवेदयन्त्या एव तस्याः समतिक्रान्तं कथमप्यतिकष्टमवस्थान्तरमनु-

---

प्रत्युज्जीवय संजीवितं कुरु' इति मुहुर्वारंवारं कपिञ्जलस्य मुनेः पादयोश्चरणयोरपतं पतितवती। मुहुश्चेति। वारंवारं तरलिकां कण्ठे गृहीत्वा प्ररुदं रुदनमकार्षम्। तस्मिन्निति। तस्मिन्काले रोदनदशायां मान्यचिन्तितान्यतर्कितानि, अशिक्षितान्यपठितानि, अनुपदिष्टानि केनापि नोपदेशीकृतानि, अदृष्टपूर्वाण्यनवलोकितपूर्वाणि, हतपुण्याया मे मम कृपणानि दीनानि चाटुसहस्राणि प्रियप्रायवचनसहस्राणि कुत प्रादुरभवन्कुत प्रकटीबभूवुरित्यद्याप्येतद्दिनपर्यन्त चिन्तयन्ती न जानामि न सम्यक्कथयितुं शक्नोमि। कुतस्ते पूर्वोक्ताः संलापाः। कुतस्तानि हृदि स्थान्यतिकरुणान्यतिदीनानि विक्लवो विह्वलस्तस्य भावो वैक्लव्यं तस्य रुदितानि क्रन्दितानि। अन्य एव भिन्न एव स प्रकारो भेदः। तान्युत्प्रेक्षते चतुर्भिः—प्रलयेति। अन्तर्बाष्पस्य मध्यनेत्राम्बुनो वेगानां रंहसां प्रलयोर्मय इव कल्पान्ततरंगा इवोद्गतिभिरुत्थिता बभूवुः। अश्रुप्रवाहाणां नेत्राम्बुधाराणां जलयन्त्राणीवामुच्यन्त मुक्ताः। प्रलापानां विलापानां प्ररोहा इवाङ्कुरा इव निरगच्छन्निर्गता बभूवुः। दुःखानां कष्टानां शिखरसहस्राणीव शृङ्गसहस्राणीवावर्धन्तैधन्त। मूर्च्छानां मोहानां प्रसूतय इवानवरतसंततयोऽभीवोदपाद्यन्ताभिव्यन्त। इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेणात्मवृत्तान्तं स्वकीयोदन्तं निवेदयन्त्या एव कथयन्त्या एव तस्या महाश्वेतायाः। अतिक्रान्तानिरुद्धेऽतस्तथा वेदना नासीत्यत आह—समतीति। कथमपि महता कष्टेन समतिक्रान्तं व्यतीतमतिकष्टं न यस्मिन्नेवंभूतमवस्थान्तरं मुनिकुमारमृत्युलक्षणमनुभवन्त्या इवानुभवविषयीकुर्वन्त्या इव तस्या महाश्वेताया मूर्च्छा मोहश्चेतनां चैतन्यं जहाराहरत्। मूर्च्छावेगान्मोहरंहसः शिलातले निष्प-

---

ञ्जल के पाँवों में गिरी। और बार-बार तरलिका को कण्ठ से आलिंगन कर रोई। इन सब बातों पर विचार करती हुई, आज भी यह नहीं जान पाती हूँ कि वे सब न सोचे हुए, न सीखे हुए, न बताये हुए, पहले न देखे हुए—हजारों दीन चापलूसी भरे वचन मुझ भाग्यहीना (अक्षरार्थ-क्षीणपुण्या) के अधरों पर कहाँ से उत्पन्न हो गये थे। कहाँ से वे उक्तियाँ और कहाँ से वे अत्यन्त करुण (बहुत अधिक हृदय के भेदक) पीड़ा के रोदन आ गये थे! (उस समय घटनायें जैसे घटीं) उनका प्रकार कुछ भिन्न (विचित्र) ही था! (प्रलयकालीन लहरों-सरीखी) भीतर स्थित आँसुओं की बाढ़ें ऊपर उठीं (बढ़ गयीं), आँसुओं के प्रवाह जलयन्त्रों (फव्वारों) की भाँति उन्मुक्त हो गये, स्वतन्त्रतापूर्वक बह चले; प्रलापों की मानो शाखायें—तथा प्रशाखायें निकल चलीं, दुःखों के तो मानो सैकड़ों शिखर ही बढ़ गये, मूर्च्छाओं की सन्ततियाँ ही उत्पन्न हो गयीं।

भवन्त्या इव चेतना जहार मूर्च्छा। मूर्च्छावेगान्निष्पतन्तीं च शिलातले ता ससंभ्रमं प्रसारितकरः परिजन इव जातपीडश्चन्द्रापीडो विधृतवान्। अश्रुजलार्द्रेण च तदीयेनैवोत्तरीयवल्कलप्रान्तेन शनैःशनैर्वीजयन्सञ्ज्ञा ग्राहितवान्। उपजातकारुण्यश्च वाष्पसलिलोत्पीडनेन प्रक्षाल्यमानकपोलो लब्धचेतनामवादीत्—'भगवति, मया पापेन तवाय पुनरभिनवता नीतः शोकः, येनेदृशीं दशामुपनीतासि। तदलमनया कथया। सह्रियतामियम्। अहमप्यसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि हि संकीर्त्यमानानि प्रियजनविश्वासवचनान्यनुभवसमा वेदनामुपजनयन्ति सुहृज्जनस्य दु खानि। तन्नार्हसि

तन्तीमध सयोगफलिका क्रियां कुर्वन्तीं तां महाश्वेतां ससभ्रम प्रसारितो विस्तारित करो येनैवभूतो जातपीडश्चन्द्रापीड परिजन इव परिच्छद इव विधृतवान्धारितवान्। अश्रुजलार्द्रेण नेत्रवारिक्लिन्नेन च तदीयेनैव। महाश्वेतास्वीकृतेनैवेत्यर्थः। उत्तरीय यद्वल्कल तस्य प्रान्तेन शनै शनैर्मन्दमन्द वीजयन्वात कुर्वन्सञ्ज्ञां चेतनां ग्राहितवान्। आनीतवानित्यर्थः। उपेति। उपजात समुत्पन्न कारुण्य यस्य स वाष्पसलिलस्योत्पीडन प्रवाहस्तेन प्रक्षाल्यमानौ कपोलौ यस्य स लब्धचेतना प्राप्तचैतन्यामवादीदवोचत्। हे भगवति महाश्वेते, मया पापेन पापात्मना तवाय शोकः पुनर्द्वितीयवारमभिनवतां प्रत्यग्रतां नीतः प्रापित, येन कारणेनेदृशीं दशामवस्थामुपनीतासि प्रापितासि। तदिति। तस्माद्धेतोरनया कथयाल कृतम्। इयं कथा सह्रियतां संक्षिप्यताम्। हि यस्मादतिक्रान्तान्यपि व्यतीतान्यपि संकीर्त्यमानानि वाच्यमानानि प्रियजनस्येष्टलोकस्य विश्वासवचनानि विश्रम्भभाषितान्यहमपि श्रोतुमसमर्थोऽक्षम। तत्र हेतुमाह—अनुभवेति। सुहृज्जनस्य मित्रलोकस्य दु खान्यनुभवसमां विपाकतुल्यां वेदनां व्यथामुपजनयन्ति निष्पादयन्ति। तदिति हेत्वर्थे। कथकथमपि महता कष्टेन विधृतानिमानसुलभान्दु प्रापानसून्प्राणान्पुन शोकानले शुग्वह्नाविन्धनतामिध्मतामुपनेतुं प्रापयितु त्वं नार्हसि न योग्या

इस प्रकार अपनी कहानी का वर्णन करती हुई तथा बीती हुई अत्यन्त कष्टदायक दूसरी अवस्था को अनुभव करती हुई-सी महाश्वेता की चेतना को मूर्छा ने हर लिया। और मूर्छा के वेग (प्रभाव) से शिला पर गिरती हुई उसको अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक हाथ फैलाये हुए, दु खी चन्द्रापीड ने एक सेवक की भाँति सम्भाल लिया, और आँसुओं के जल से गीले उसी (महाश्वेता) के उत्तरीय वल्कल वस्त्र के अचलसे धीरे धीरे पखा करते हुए उसने सुध दिलवायी—(चन्द्रापीड उसे होश में लाया)। और उत्पन्न हुई करुणा वाला (सहानुभूति से भरा हुआ) तथा आँसुओं के जल की बाढ़ अथवा प्रवाह से धोये जा रहे गालों वाला चन्द्रापीड चेतना प्राप्त की हुई उस से यों बोला—"भगवती! मुझ दुष्ट व्यक्ति ने तुम्हारा दुःख फिर से नया कर दिया है, जिसके कारण तुम इस दशा में पहुँच गयी हो, इस लिये इस कहानी को समाप्त करो, मैं भी इसको (आगे) नहीं सुन सकता हूँ। मित्र के दुःख, बीते हुए भी पुन वर्णन किये जाते हुए, ऐसा दुःख उत्पन्न कर देते हैं जैसा कि उनको वस्तुत. भोगते हुए होता है। इस लिये जैसे तैसे अर्थात् बड़ी कठिनता से धारण किये हुए, इतने असुलभ प्राणों को फिर से शोक रूपी अग्नि का ईंधन बनाना तुम्हारे योग्य नहीं है।"—इस प्रकार कही गयी तथा लम्बी और गर्म

कथंकथमपि विधृतानिमानसुलभानसून्पुनः शोकानल इन्धनतामुपनेतुम्' इत्येवमुक्त्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य बाष्पायमाणलोचना सनिर्वेदमवादीत्—'राजपुत्र, या तदा तस्यामतिदारुणायां हतनिशायामेभिरतिनृशंसैरसुभिर्न परित्यक्ता ते मामिदानीं परित्यजन्तीति दूरापेतम्। नूनमपुण्योपहतायाः पापाया मम भगवानन्तकोऽपि परिहरति दर्शनम्। कुतश्च मे कठिनहृदयायाः शोकः। सर्वमिदमलीकमस्य शठहृदयस्य। सर्वथाहमनेन त्यक्तत्रपेण निरपत्रपाणामग्रेसरीकृता। यया चाविष्कृतमदनतया वज्रमय्येवेदमनुभूतम्, वा का गणना कथन प्रति। किं वा परमतः कष्टतरमाख्येयमन्यद्भविष्यति यन्न शक्यते श्रोतुमाख्यातुं वा। केवलमस्य वज्रपातस्यानन्तरमाश्चर्यं यद्भू-

भवसि। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेणोक्त्वा दीर्घमायतमुष्णं च निःश्वस्य निःश्वासं मुक्त्वा बाष्पायमाणे लोचने नेत्रे यस्याः सैवंविधा निर्वेदः स्वावमानः तत्सहितं यथा स्यात्तथावादीदवोचत्। किं तदित्याह—हे राजेति। हे राजपुत्र हे नृपसूनो, याहं तदा तस्मिन्काले तस्यामतिदारुणायामतिभीषणायां हतनिशायामशुभरजन्यामेभिरतिनृशंसैरतिक्रूरैरसुभिः प्राणैर्न परित्यक्ता नोज्झिता तेऽसव इदानीं सांप्रतं मां परित्यजन्ति मुञ्चन्तीति दूरापेतं दूरे स्थितम्। नूनं निश्चितमपुण्योपहताया अधर्मोपहताया पापाया पापिष्ठाया मम दर्शनं निरीक्षणं भगवानन्तकोऽपि यमोऽपि परिहरति परित्यजति। कुतश्चेति। मे मम कठिनहृदयाया शोकः शुक् कुतः स्यात्। अस्य शठहृदयस्य सर्वं पूर्वोक्तमिदमलीकं मिथ्या। सर्वथेति। सर्वप्रकारेणाहमनेन हृदयेन त्यक्तत्रपेणोज्झितलज्जागुणेन निरपत्रपाणां निर्लज्जानामग्रेसरी पुरोगामिनी कृता विहिता। यथा चेति। यया मयाविष्कृतमदनया प्रकटितकन्दर्पया वज्रमय्येव शतकोटिमय्येवेदं पूर्वोक्तमनुभूतमनुभवविषयीकृतम्। का गणना कथनं प्रति चेदनुभूतं वर्तते। तर्हि कथने किं काठिन्यमिति भावः। वेति पक्षान्तरे। अतः परमस्मादन्यत्कष्टतरमतिकृच्छ्रमाख्येयं कथनीयम्। अन्यत्किं भविष्यति यच्छ्रोतुमाकर्णयितुमाख्यातुं कथयितुं वा न शक्यते न पार्यते। केवलेति। केवलमसहायमेकमस्य वज्रपातसदृशादुःखस्यानन्तरं पश्चात् यत् आश्चर्यं चित्रमभूत्तदावेदयामि कथयामि।

आह भर कर आँसू बहाती आँखों वाली उसने निराशा से कहा—'राजपुत्र! जिसको तब भयानक दुष्ट रात्रिमें इन अति निर्दय प्राणों ने नहीं छोड़ा उस मुझको ये अब छोड़ देंगे यह बात तो दूर चली गयी है (अर्थात् असम्भव है)। निश्चय ही, पुण्याभाव से प्रताड़ित मुझ पापिनी के दर्शन से तो भगवान् यम भी बचते हैं—और कठोर हृदय वाली मुझको शोक कहाँ से होगा? इस मेरे दुरात्मा तथा शरारती हृदय के मामले में यह सब एक झूठा (दिखावा) है! निस्सन्देह, निर्लज्ज हुए इस हृदय ने तो मुझे निर्लज्जों में अग्रणी बना दिया है! और कामदेव की पीड़ा को साक्षात् अनुभव किये हुई जिस मैंने मानो वज्र से बनी हुई ने यह सब अनुभव किया था उसके दुःख की गिनती इस वर्णन में कितनी है (उसको इस कथा के वर्णन करने में क्या लगता है)। अथवा इससे अधिक कष्टप्रद वर्णन करने को अब क्या होगा जिसको नहीं सुना अथवा कहा जा सकता है। केवल मैं तुम को वह आश्चर्यजनक घटना ही बताऊँगी जो इस वज्रपात के पश्चात् हुई और अपने जीवन को धारण करने के कारण का एक धुंधला (अव्यक्त)

त्तदावेदयामि। आत्मनश्च प्राणधारणकारणलव इवाव्यक्तो यः समुत्पन्नः, तं च कथयामि। यया दुराशामृगतृष्णिकया गृहीताहमिदमुपरतकल्प परकीयमिव भारभूतमप्रयोजनमकृतज्ञ च हतशरीर वहामि तदल श्रूयताम्'। ततश्च तथाभूते तस्मिन्नवस्थान्ते मरणैकनिश्चयात्तत्तद्बहु विलप्य तरलिकामब्रुवम्—'अयि उत्तिष्ठ निष्ठुरहृदये, कियद्रोदिषि। काष्ठान्याहृत्य विरचय चिताम्। अनुसरामि जीवितेश्वरम्' इति।

अत्रान्तरे झटिति चन्द्रमण्डलनिर्गतो गगनादवतीर्य केयूरकोटिलग्नममृतफेनपिण्डपाण्डुर पवनतरलमंशुकोत्तरीयमाकर्षन्, उभयकर्णान्दोलितकुण्डलमणिप्रभानु-

---

आत्मनश्चेति। आत्मन स्वस्य च प्राणधारण तत्र कारणलव इव हेतुलेशसदृशमव्यक्तोऽस्फुटो य समुत्पन्न प्रादुर्भूतस्त च कथयामि ब्रवीमि। ययेति। यया दुराशैव मृगतृष्णिका मरुमरीचिका तया गृहीता स्वीकृताह महाश्वेता इदमुपरतकल्पमवस्तुप्रायम्। अवस्तुत्वादेव न स्वसत्ताकमित्याह—परेति। परकीयमिवान्यदीयमिवात एव भारभूतमप्रयोजन निरर्थक न कृत जानातीत्यकृतज्ञ हतशरीर वहामि धारयामि। तत्पूर्वोक्तमलंकृतमेतद्व्यतिरिक्त श्रूयतामाकर्ण्यताम्। ततश्चेति। तदनन्तरे तथाभूते तादृशे तस्मिन्पूर्वप्रतिपादितेऽवस्थान्ते दशान्ते मरणस्य निमीलनस्यैकनिश्चयादद्वितीयनिर्णयात् तत्पूर्वोक्त बहु प्रचुरं विलप्य बहुविलापान् कृत्वा तरलिकामित्यब्रुवमकथयम्। इतिशब्दद्योत्यमाह—अयीति। अयि कोमलामन्त्रणे। हे निष्ठुरहृदये कठिनचित्ते, उत्तिष्ठोत्थान कुरु। कियद्रोदिषि कियदपरिमित रोदन लोकप्रसिद्धं करोषि प्रणयसि। काष्ठान्येधास्याहृत्यानीय चितां चित्या विरचय निष्पादय। जीवितेश्वर प्राणनाथमनुसराम्यनुगच्छामि।

अत्रान्तरेऽस्मिन्समये झटिति शीघ्र चन्द्रमण्डलाच्छशिबिम्बाद्विनिर्गतो नि सृतो गगनादाकाशादवतीर्योत्तीर्य केयूरकोटिलग्न किरीटाश्रिविलग्नममृतस्य पीयूषस्य फेनपिण्डो डिण्डीरचयस्तद्वत्पाण्डुर श्वेतम्। पवनेन वायुना तरल कम्पनमुत्तरीय च तदंशुक चांशुकोत्तरीयम्। राजादिषु पाठात्पूर्वप्रयोग। आकर्षन्नाकर्षण कुर्वन्। इतो द्विजमण्डलविनिर्गतनरविशेषणानि।

छोटा कारण सरीखा जो उत्पन्न हुआ, उसको भी बताऊँगी। झूठी आशा की जिस मृगतृष्णा मे फसी हुई मैं इस लगभग मरे हुए, मेरे लिये पराये-से, केवल भार बने हुए, निष्प्रयोजन तथा कृतघ्न इस घृणित शरीर को धारण किये हुई हूँ—उसको पूरा पूरा सुनिये।

आगे सुनिये—'उस अवस्थापरिवर्तन के वैसे हो जाने पर, एक मात्र मरने का निश्चय किये हुई मैं विभिन्न प्रकारसे बहुत सा विलाप करने के पश्चात्, तरलिका से बोली—'अरी! कठोर हृदय वाली, उठ, तू कब तक (कितना) रोती रहेगी? लकड़ियों को एकत्रित करके चिता बना, मैं अपने जीवन स्वामी का अनुगमन करूँगी।''

इसी समय, शीघ्र ही चन्द्रमण्डलमे से निकला हुआ, कुमुद के समान श्वेत शरीर का, महापुरुष के चिन्हों से युक्त खूब लम्बा चौड़ा (तगड़ा) दिव्य आकृति वाला पुरुष, आकाश से उतर कर, (अपने) केयूर की नोकों पर लगे हुए, अमृत की झाग के ढेर के समान श्वेत, वायु से हिलते हुए रेशमी उत्तरीय को अपने पीछे-पीछे घसीट कर लाता हुआ, (अपने) दोनों

रक्तगण्डस्थलः, स्थूलमुक्ताफलतया तारागणमिव प्रथितमतितारं हारमुरसा दधानः, धवलदुकूलपल्लवकल्पितोष्णीषग्रन्थिः, अलिकुलनीलकुटिलकुन्तलनिकरविकटमौलिः, उत्फुल्लकुमुदकर्णपूरः, कामिनीकुचकुङ्कुमपत्त्रलतालाञ्छितांसदेशः कुमुदधवलदेहः, महाप्रमाणः पुरुषः महापुरुषलक्षणोपेतः, दिव्याकृतिः, स्वच्छवारिधवलेन देहप्रभावितानेन क्षालयन्निव दिगन्तराणि, आमोदिना च शरीरतः क्षरता शिशिरेण शीतज्वरमिव जनयतामृतशीकरवर्षेण तुषारपटलेनेवानुलिम्पन्, गोशीर्षचन्दनरसच्छटाभिरिवासि-

उभयेति। उभौ च तौ कर्णौ चेति कर्मधारय। वृत्तिविशेष उभशब्दस्योभयादेश। तयोरान्दोलिते वेल्लिते कुण्डले कर्णभूषणे तयोर्मणिप्रभा रत्नकान्तिस्तयानुरक्त गण्डस्थल यस्य स। स्थूलेति। स्थूलानि मुक्ताफलानि यत्र तस्य भावस्तत्ता तया। श्वेतत्ववर्तुलत्वसाम्यादाह— तारेति। प्रथित गुम्फित तारागणमिव नक्षत्रवृन्दमिवातितारमतिमनोहर हार मुक्ताप्रालम्बमुरसा वक्ष.स्थलेन दधाना बिभ्राणा। धवलेति। धवल श्वेत यद् दुकूल दुगूलं तस्य पल्लवेन प्रान्तदेशेन कल्पितो विहित उष्णीषग्रन्थिर्मूर्धवेष्टनग्रन्थिर्येन स। अलीति। अलिकुलवद्भ्रमरसमूहवन्नीला श्यामा कुटिलवक्रा कुन्तला केशास्तेषा निकर समूहस्तेन विकटो विपुलो मौलिर्यस्य स। उत्फुल्लेति। उत्फुल्ल विकसित यत्कुमुद कैरवं तस्य कर्णपूरं कर्णाभरण यस्य स। कामिनीति। कामिन्या योषित कुचयो स्तनयो कुङ्कुमपत्त्रकता केसरपत्त्रभङ्गिस्तया लाञ्छितश्चिह्नितोंऽसदेश स्कन्धप्रदेशो यस्य स। कुमुदेति। कुमुदवच्छ्वेतकमलवद्धवल शुभ्रो देह शरीर यस्य स। महाप्रमाणोऽतिदीर्घ एवंविध पुरुषो नर.। महेति। महापुरुषा उत्तमपुमांसस्तेषां लक्षणै सामुद्रिकशास्त्रोक्तैर्ध्वजादिभिश्चिह्नैरुपेत सहित। दिव्येति। दिव्या मनोहराकृतिराकारो तस्य स। स्वच्छेति। स्वच्छ निर्मल यद्वारि जल तद्वद्धवलेन शुभ्रेण। देहेति। देहप्रभाया शरीरद्युतेर्वितानेन समूहेन दिगन्तराणि दिग्विवराणि क्षालयन्निव निर्मलानि कुर्वन्निव। आमोदीति। आमोदिना परिमलवता तस्य देवस्यामृतमयत्वात्। शरीरतो देहत क्षरता प्रस्रवता। शिशिरेति। शिशिरेण शीतलेन शीतज्वरमिव जनयतोत्पादयता एवंविधेनामृतशीकरवर्षेण पीयूषशीकरवृष्ट्या तुषारपटलेनेव हिमसमूहेनेवानुलिम्पन्विलेपयन्।

कानों पर झूलते हुए कुण्डलों की मणियों की आभा से लाल हुए गालों वाला, मोटे मोतियों के होने के कारण गुथे हुए तारों वाले सरीखे एक बहुत सुन्दर (चमकीले) हार को वक्षःस्थल पर पहने हुआ, श्वेत रेशमी वस्त्र की गोट से बनायी गयी पगड़ी वाला, भ्रमर समूह के सदृश काले तथा घुँघराले बालों के समूहसे भयकर प्रतीत होते सिर वाला, पूर्णतया विकसित कुमुद को कर्णाभूषण बनाये हुआ, अपनी स्त्रियों (पत्नियों) के कुचो (छातियों) पर की केसर से चित्रित पत्तों तथा लताओं से चिन्हित कधों वाला, स्वच्छजल के सदृश श्वेत (अपने) शरीर की कांति से मानो दिशाओं के मध्य भागों को धोता हुआ सा और सुगन्धित तथा उसके शरीर से चूते हुए, ठडे अमृत फुहार की वर्षा करते तथा शीतज्वर (कँपकपी) उत्पन्न करते तुषार के ढेर से मानो उसको चुपड़ता हुआ, गोशीर्ष[1] नाम के चन्दन के रस की धाराओं

[1] गोशीर्ष के आकार के मलय पर्वत के एक भाग पर उत्पन्न चन्दन वृक्ष।

ञ्चन्, ऐरावतकरपीवराभ्यां मृणालधवलाङ्गुलिभ्या शीतलस्पर्शाभ्यां तमुपरतमुत्क्षिपन्, दुन्दुभिगम्भीरेण स्वरेण 'वत्से महाश्वेते, न त्याज्यास्त्वया प्राणाः। पुनरपि तवानेन सह भविष्यति समागमः' इत्येव पितेवाभिधाय सहैवानेन गगनतलमुदपतत्। अह तु तेन व्यतिकरेण सभया सविस्मया सकौतुका चोन्मुखी किमिदमिति कपिञ्जलमपृच्छम्। असौ तु ससम्भ्रममदत्त्वैवोत्तरमुदतिष्ठत्। 'दुरात्मन्, क मे वयस्यमपहृत्य गच्छसि' इत्यभिधायोन्मुखः सजातकोपो बध्नन्सावेगमुत्तरीयवल्कलेन परिकरम्, उत्पत्योत्पतन्त तमेवानुसरन्नन्तरिक्षमुदगात्। पश्यन्त्या एव च मे सर्वं एव ते तारा-

---

दिगन्तराणीति शेष । गो इति । गोशीर्षाभिधानं यच्चन्दनं तस्य रसो द्रवस्तस्य छटाभिरिवासिञ्चन्नासेक कुर्वन्। ऐरावतेति। ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य कर शुण्डादण्डस्तद्वत्पीवराभ्या पुष्टाभ्यां बाहुभ्या भुजाभ्याम्। मृणालेति। मृणाल बिस तद्वद्धवला श्वेता अङ्गुल्य. करशाखा ययो । शीतलेति। शीतल शिशिर स्पर्शो ययोस्ताभ्या बाहुभ्यां तमुपरत मृतमुत्क्षिपन्नुत्पाटयन्। इत्येवप्रकारेण पितेव जनक इवाभिधायेत्युक्त्वानेन मृतकेन सहैव गगनतलमाकाशतलमुदपतदुत्पपात । इतिशब्दोत्थमाह—दुन्दुभीति। दुन्दुभि पटहस्तद्वद्गम्भीरेण स्वरेण शब्देन। हे वत्से महाश्वेते, त्वया प्राणा असवो न त्याज्या न हेया । अनेन पुण्डरीकेण सह पुनरपि तव समागमो भविष्यति। अह त्विति। अह तु तेन व्यतिकरेण तेन वृत्तान्तेन सभया सातङ्का, सविस्मया साश्चर्या, सकौतुका सकुतूहला चोन्मुख्यूर्ध्ववदना किमिदमिति कपिञ्जलमपृच्छमप्राक्षम्। असौ कपिञ्जलोऽदत्त्वैवानुक्त्वैवोत्तर प्रतिवच ससम्भ्रम सत्वरम्। 'सम्भ्रमस्त्वरिते भये' इति कोश । उदतिष्ठदुत्थितो बभूव। हे दुरात्मन्, मे मम वयस्य मित्रमपहृत्यापहरण कृत्वा क गच्छसीत्यभिधायोक्त्वोन्मुख ऊर्ध्ववदन. सजातकोप समुत्पन्न रोष सावेगमुत्तरीयवल्कलेन परिकर कटिभागं बध्नन्बन्धन कुर्वन्। उत्पत्योत्पतन कृत्वा तमेवोत्पतन्त शशिमण्डलविनिर्गतपुरुषमेवानुसरन्ननुगच्छन्नन्तरिक्षमाकाशमुदगादूर्ध्वमगात्। मे मम पश्यन्त्या विलोकयन्त्या एव च सर्व एव तारागणमध्य नक्षत्रवृन्दमध्यमविशन्प्रवेश

से मानो उसको स्नान कराता हुआ, ऐरावत की सूँड के समान परिपुष्ट (अपनी) बाहुओं से तथा बिसतन्तु के समान श्वेत (लम्बी पतली) तथा ठढे स्पर्श वाली (छूने में शीतल लगती) अगुलियों से उस मरे हुए को ऊपर को उठाता हुआ अपने दुन्दुभि के से गम्भीर स्वर से 'पुत्रि, महाश्वेता, तुझे अपने प्राण नहीं छोड़ने चाहियें, तेरा इसके साथ समागम (सयोग) फिर भी होगा"—पिता की भाँति यह कह कर इसके साथ (इसको साथ लिये हुए) आकाश में उड़ गया। परन्तु मैंने उस घटना से डरी हुई ने, आश्चर्यचकित तथा उत्सुक हुई ने ऊपर को मुँह उठाये हुई ने कपिञ्जल से पूछा—यह क्या है। परन्तु वह मुझे उत्तर दिये बिना ही जल्दी जल्दी उठा और 'दुष्ट, मेरे मित्र को छीन कर तू कहाँ जायगा'—यह कह कर ऊपर को मुँह उठाये हुआ, क्रोधयुक्त हुआ, शीघ्रता में उत्तरीय वल्कल से फेंट बाँधे हुआ (कमर कस कर) उसी उड़ते हुए महापुरुष का पीछा करता हुआ उछलकर आकाश में उड़ गया। और मेरे देखते ही देखते वे सब नक्षत्रों के मध्य में प्रविष्ट हो गये।

गणमध्यमविशन्। मम तु तेन द्वितीयेनेव प्रियतममरणेन कपिञ्जलगमनेन द्विगुणीकृतशोकायाः सुतरामदीर्यत हृदयम्। किंकर्तव्यतामूढा च तरलिकामब्रुवम्—'अयि, न जानासि। कथय किमेतत्' इति। सा तु तदवलोक्य स्त्रीस्वभावकातरा तस्मिन्क्षणे शोकाभिभाविना भयेनाभिभूता वेपमानाङ्गयष्टिर्मम मरणशङ्कया च वराकी विषण्णहृदया सकरुणमवादीत्—'भर्तृदारिके, न जानामि पापकारिणी। किंतु महदिदमाश्चर्यम्। अमानुषाकृतिरेष पुरुषः। समाश्वासिता चानेन गच्छता सानुकम्प पित्रेव भर्तृदारिका। प्रायेण चैवंविधा दिव्याः स्वप्नेऽप्यविसंवादिन्यो भवन्त्याकृतयः, किमुत साक्षात्। न चाल्पमपि विचारयन्ती कारणमस्य मिथ्याभिधाने पश्यामि। अतो युक्तं

चक्रु। मम त्विति। तेन कपिञ्जलगमनेन द्वितीयेन द्वितीयप्रियतममरणेनेव द्विगुणीकृत शोको यस्या एवंविधाया मम सुतरामत्यर्थं हृदयमदीर्यत विदीर्णं बभूव। किंकर्तव्यतामूढाह महाश्वेता तरलिकामब्रुवम्। किं तदित्याह—अयीति। अयि कोमलामन्त्रणे। न जानासि नावबुध्यसे। एतत्पूर्वोक्त किमिति कथय निवेदय। ममेति शेष। सा त्विति। सा तरलिका तत् पूर्वोक्तमवलोक्य निरीक्ष्य स्त्रीस्वभावेन कातरा भीरुस्तस्मिन्क्षणे शोकाभिभाविना शुग्नाशिना। शोकमभिभवतीत्येवशीलेनेति। भयविशेषण वा। भयेन भीत्याभिभूता पराभूता वेपमाना कम्पमानाङ्गयष्टिर्यस्या सैवंविधा मम मरणशङ्कया च विषण्णहृदया खेदखिन्नचित्ता वराकी दीना सकरुण सदयमित्यवादीदवोचत्। इतिशब्दाभिधेयमाह—भर्तृ इति। हे भर्तृदारिके, अह पापकारिणी न जानामि। अपि तु जानामि। किं त्विद महदाश्चर्यं महत्कौतुकम्। एष पुरुषोऽमानुषाकृतिर्दिव्याकृति। अनेन पुरुषेण गच्छता व्रजता पित्रेव जनकेनेव सानुकम्प सदय भर्तृदारिका राजदुहिता समाश्वासिता स्वस्थीकृता। प्रायेण बाहुल्येनैवंविधा दिव्या आकृतय स्वप्नेऽप्यविसवादिन्योऽव्यभिचारिण्यो भवन्ति। साक्षात्प्रत्यक्षेण किमुत भण्यते। अस्य पुरुषस्य मिथ्याभिधानेऽसत्यभाषणे विचारयन्ती विमर्श कुर्वन्त्यल्पमपि स्तोकमपि कारणं निदानमह न च पश्यामि नावलोकयामि। अतो हेतोर्विचार्य विमृश्यात्मानमस्मात्प्राणपरित्याग-

---

परन्तु मानो उस दूसरी प्रियतम की मृत्यु रूप कपिञ्जल के चले जाने से दुगने किये गये शोक वाली का मेरा हृदय तो और भी अधिक विदीर्ण हो गया। और किंकर्त्तव्यविमूढ हुई मैं तरलिका से बोली—"अरी! क्या तू नहीं जानती, बता यह सब क्या है।" किन्तु वह सब देखकर स्त्रियों के लिये स्वाभाविक कातरता के साथ, उस समय शोक को दबा देने वाले डर के वशीभूत तथा इसी लिये कम्पित देह वाली उस बेचारी ने तथा मेरी मृत्यु की आशका से दु खी हृदय वाली होते हुए करुणा के साथ कहा—"राजपुत्रि! पापिनी मै तो नहीं जानती। किन्तु यह महान् आश्चर्य है, यह मनुष्य तो मानुषी आकृति का नहीं है। और इसने जाते हुए राजपुत्री को एक पिता की भाँति आश्वासन दिया है और प्राय ऐसी दिव्य आकृतियाँ स्वप्न मे भी अपने वचनों की झूठी नहीं होती—और फिर प्रत्यक्ष मे तो झूठ बोलती ही नहीं है। और विचार करती हुई मै इसके झूठ बोलने का कोई थोड़ा सा भी कारण नहीं समझ पाती हूँ। इस कारण सोच समझ कर, इस प्राणत्याग के कार्य से अपने आप को हटा लेना ही उचित है। वस्तुत. इस अवस्था में

विचार्यात्मानमस्मात्प्राणपरित्यागव्यवसायान्निवर्तयितुम्। अतिमहत्खल्विदमाश्वासस्थानमस्यामवस्थायाम्। अपि च तमनुसरन्गत एव कपिञ्जलः। तस्माच्च 'कुतोऽयम्, को वायम्, किमर्थं वानेनायमपगतासुरुत्क्षिप्य नीतः, क्व वा नीतः, कस्माद्वासंभावनीयेनामुना पुनः समागमाशाप्रदानेन भर्तृदारिका समाश्वासिता' इति सर्वमुपलभ्य जीवितं वा मरणं वा समाचरिष्यसि। अदुर्लभं हि मरणमध्यासितम्। पश्चादप्येतद्भविष्यति। नच जीवन्कपिञ्जलो भर्तृदारिकामदृष्ट्वा स्थास्यति, तेन तत्प्रत्यागमनकालावधयोऽपि तावद्ध्रियन्ताममी प्राणाः' इत्यभिदधाना पादयोर्मे न्यपतत्। अहं तु सकललोकदुर्लङ्घ्यतया जीविततृष्णायाः, क्षुद्रतया च स्त्रीस्वभावस्य, तया च तद्वचनोपनीतया दुराशा-

---

लक्षणो यो व्यवसायो व्यापारस्तस्मान्निवर्तयितुं युक्तं न्याय्यम्। अतीति। खलु निश्चयेन। अतिमहदिदं पूर्वोक्तमाश्वासस्थानमाश्वासनस्थलमस्यामवस्थायाम्। अपि च तं पुण्डरीकमनुसरन्ननुगच्छन्गत एव कपिञ्जलः। तस्माच्चेति। तस्माद्धेतोः कुतः स्थानादयं समागतः, को वायम्, किमर्थमनेन पुंसायमपगतासुर्गतप्राण उत्क्षिप्योत्पाट्य नीतः, क्व वा कस्मिन्स्थाने वा नीतः प्रापितः, कस्माच्चासंभावनीयेनाचिन्तनीयेन समागमस्याशा तस्याः प्रदानेन पुनरमुना पुरुषेण भर्तृदारिका समाश्वासिता। इति सर्वमुपलभ्य प्राप्य जीवितं मरणं वा समाचरिष्यसि विधास्यसि। हीति निश्चये। अध्यासितं चिन्तितं मरणमदुर्लभं सुलभम्। स्वायत्तत्वादिति भावः। पश्चादपि वृत्तान्तोपलब्ध्यनन्तरमप्येतन्मरणं भविष्यति। नचेति। जीवञ्छ्वसन् कपिञ्जलो भर्तृदारिकामदृष्ट्वा न वीक्ष्य न च स्थास्यति, तेन कारणेन तस्य कपिञ्जलस्य यावत्प्रत्यागमनकालस्तावदवधयो मर्यादास्तावदमी प्राणा ध्रियन्ता धार्यन्ताम्। तत्प्रत्यागमनकाल एवावधिर्येषामिति प्राणविशेषणं वा। इत्यभिदधानेति ब्रुवाणा मे मम पादयोश्चरणयोर्न्यपतत्पपात। अहं त्विति। तस्मिन्काले तदेव तरलिकोक्तमेव युक्तं न्याय्यं मन्यमाना ज्ञायमाना जीवितं प्राणितं नोत्सृष्टवती न त्यक्तवती। तत्र हेतुचतुष्टयं प्रदर्शयन्नाह—सकलेति। जीविततृष्णाया प्राणधारणगर्धाया सकललोके समग्रजनैर्दुर्लङ्घ्यतया दुरतिक्रम्यतया स्त्रीस्वभावस्य प्रमदानिसर्गस्य क्षुद्रतया तुच्छतया च। तया चेति। तया पूर्वोक्तया तस्य महापुरुषस्य वचनेनोपनीतया प्रापितया दुराशा दुष्टा स्पृहा सैव मृगतृष्णिका मरी-

---

यह एक महान् आश्वासन का कारण (विश्वासस्थान) है। फिर, कपिञ्जल उसके पीछे पीछे गया ही है। और उस (कपिञ्जल) से 'यह कहाँ से आया अथवा यह कौन है, अथवा वह इस मृतक को उठा कर किस प्रयोजन से ले गया, कहाँ ले गया, और क्यों उसने उस असम्भव समागम की आशा के प्रदान द्वारा राजपुत्री को आश्वासन दिया'—यह सब जान कर तुम अपने आप को जीवन अथवा मृत्यु में लगा दोगी। जब निश्चय कर लिया जाय तो, वस्तुतः मृत्यु तो दुर्लभ नहीं रहती, यह तो बाद में भी होगी ही और कपिञ्जल यदि जीता होगा तो वह, तुम्हें देखे बिना चैन नहीं लेगा, इस लिये उसके लौट आने के समय तक तो इन प्राणों को धारण रखो ही"—यह कहती हुई वह मेरे पाँवों में गिर पड़ी। किन्तु मैंने जीवनतृष्णा के सारे संसार द्वारा अलङ्घ्य होने के कारण, तथा स्त्रीस्वभाव के ओछेपन के कारण और उसके कथन से उत्पा-

मृगतृष्णिकया, कपिञ्जलस्य प्रत्यागमनकाङ्क्षया च, तस्मिन्काले तदेव युक्त मन्यमाना नोत्सृष्टवती जीवितम्। आशया हि किमिव न क्रियते। ता च पापकारिणी कालरात्रिप्रतिमा वर्षसहस्रायमाणा यातनामयीमिव दुःखमयीमिव नरकमयीमिवाग्निमयीमिवोत्सन्ननिद्रा तथैव क्षितितले विचेष्टमाना रेणुकणधूसरैरश्रुजलार्द्रकपोलसदानितैर्विमुक्तव्याकुलैः शिरोरुहैरुपरुद्धमुखी निर्दयाक्रन्दजर्जरस्वरक्षयक्षामेन कण्ठेन तस्मिन्नेव सरस्तीरे तरलिकाद्वितीया क्षपा क्षपितवती।

चिका तया, तथा कपिञ्जलस्य प्रत्यागमन पश्चादागमन तस्य काङ्क्षा वाञ्छा तया। आशाया बलीयस्त्व प्रदर्शयन्नाह—आशया हीति। हि निश्चितम्। आशया स्पृहया किमिव न क्रियते किं न विधीयते। ततश्च तस्मिन्नेव सरस्तीरे तरलिका द्वितीया यस्या एवविधा पापकारिण्यहं ता क्षपा रजनी क्षपितवती क्षय नीतवती। इतो रात्रेर्विशेषणानि—प्रतिकूलकारित्वात्कालरात्रिस्तत्प्रतिमा तत्सदृशीम्। दु खस्य दु सहत्वाद्वर्षाणा सहस्र तद्वदाचरमाणामित्यर्थ। यातनेति। यातना तीव्रवेदना तन्मयीमिव अत्यन्तदु खजनकत्वात्। दु खेति। दु ख कृच्छ्र तन्मयी मिव। स्वजनविरहेण शरीरदु खस्यैवानुभूयमानत्वात्। नरकेति। नरक दुर्गतिस्तन्मयीमिव। निन्दितात्यन्तदु खोत्पादकत्वात्। अग्नीति। अग्निर्वह्निस्तन्मयीमिव। तीव्रदीर्घज्वराक्रान्तत्वात्। पुन कीदृशी। उत्सन्नेति। उत्सन्ना मूलत उच्छिन्ना निद्रा प्रमीला यस्या सा। तथैवेति। तथैव पूर्वोक्तप्रकारेणैव क्षितितले पृथ्वीतले विचेष्टमाना विलुठमाना। रेण्विति। रेणूनां रजसा कणास्तैर्धूसरैरीषत्पाण्डुरैरश्रुजलैर्नेत्रवारिभिरार्द्रौ स्विन्नौ कपोलौ तत्र सदानिते सयतै विरहवशात्। विमुक्तत्वेनानियन्त्रितत्वेन व्याकुलैर्विसस्थुलै शिरोरुहै केशैरुपरुद्धमाच्छादित मुखमास्य यस्याः सा। निर्दयमिति। निर्दय नि करुण य आक्रन्द पूत्कारस्तेन जर्जर शिथिलो य स्वरो ध्वनिस्तस्य क्षयो विनाशस्तेन क्षामेण कृशेनैवविधेन कण्ठेन करणभूतेन निर्दयाक्रन्देनैव क्षपां क्षपितवतीति भाव॰।

दित (प्राप्त करायी हुई) उस व्यर्थ की आशारूपी मृग तृष्णा के कारण तथा कपिञ्जल के लौट आने की अपनी इच्छा के कारण, उस समय उसको ही उचित समझती हुई ने अपना जीवन नहीं छोड़ा। क्यों कि (ससार में) आशा से क्या कुछ नहीं किया जाता! और पापिनी मैंने उस कालरात्रि सरीखी, हजारों वर्षों जितनी लम्बी होती जा रही और मानो मानसिक पीड़ा, दु ख, नरक तथा अग्नि की बनी हुई रात्रि को सर्वथा नष्ट हुई निद्रा वाली ने उसी प्रकार भूतल पर लोटती हुई ने, धूलि के कणो से धूसर रग हो गये हुए, आँसुओं के जल से गीले गालों पर चिपके हुए[1] बालों से रुके हुए (ढके हुए) मुखवाली तथा निर्दयता से अर्थात् खूब जोर से रोने के कारण भग्न (फटी) आवाज के क्षय के कारण सूखे कण्ठ वाली मैंने उसी सरोवर के तट पर तरलिकाके साथ ही वह रात्रि बितायी।

---

1 सदानिते सलग्नै।

प्रत्युषसि तूत्थाय तस्मिन्नेव सरसि स्नात्वा कृतनिश्चया, तत्प्रीत्या तमेव कमण्डलुमादाय, तान्येव च वल्कलानि तामेवाक्षमाला गृहीत्वा बुद्ध्वा निःसारता ससारस्य, ज्ञात्वा च मन्दपुण्यतामात्मनः, निरूप्य चाप्रतीकारदारुणता व्यसनोपनिपातानाम्, आकलय्य दुर्निवारता शोकस्य, दृष्ट्वा च निष्ठुरता दैवस्य, चिन्तयित्वा चातिबहुलदुःखता स्नेहस्य, भावयित्वा चानित्यता सर्वभावानाम्, अवधार्य चाकाण्डभङ्गुरता सर्वसुखानाम्, अविगणय्य तातमम्बा च परित्यज्य सह परिजनेन सकलबन्धुवर्गम्, निवर्त्य विषयसुखेभ्यो मनः, सयम्येन्द्रियाणि गृहीतब्रह्मचर्या देव त्रैलोक्यनाथमनाथशरणमिम शरणार्थिनी स्थाणुमाश्रिता। अपरेद्युश्च कुतोऽपि समुपलब्धवृत्तान्तस्तातः

प्रत्युषसीति। प्रत्युषसि प्रभात उत्थाय तस्मिन्नेव सरसि कासारे स्नात्वाप्लव विधाय कृतो विहितो निश्चयो यया सा। तत्प्रीत्या तत्स्नेहेन तमेव कमण्डलुं तत्करकुण्डिकामादाय गृहीत्वा तान्येव तद्देहलग्नान्येव वल्कलानि चोचानि, तामेव तदीयामेवाक्षमालां गृहीत्वा। ससारस्य ससृतेर्निःसारतामसारता बुद्ध्वावगम्य। आत्मन स्वस्य मन्दपुण्यता ज्ञात्वा च। व्यसनोपनिपाताना कष्टोपनिपातानामप्रतीकार च तद्दारुण चाप्रतीकारदारुण तस्य भावस्तत्ता तां निरूप्य च कथयित्वा। शोकस्य शुचो दुर्निवारतामाकलय्याकलना कृत्वा। दैवस्य भाग्यस्य निष्ठुरता कर्कशता दृष्ट्वा विलोक्य। स्नेहस्य प्रेम्णोऽतिबहुलमतिदृढ दु ख यस्मिंस्तस्य भावस्तत्ता ता चिन्तयित्वा विचार्य। सर्वभावाना समग्रपदार्थानामनित्यता विनाशिता भावयित्वा भावना विषयीकृत्य च। सर्वसुखानां समग्रसौख्यानामकाण्डेऽनवसरे भङ्गुरतां भङ्गशीलतामवधार्य निश्चित्य। तात पितरमविगणय्यानादृत्य। परिजनेन परिवारेण सह सकलं समग्रं बन्धुवर्गं स्वजन लोक परित्यज्य दूरीकृत्य। विषयसुखेभ्य इन्द्रियसातेभ्यो मनश्चित्तं निवर्त्य पराङ्मुखीकृत्य। इन्द्रियाणि करणानि सयम्य नियम्य। गृहीत स्वीकृत ब्रह्मचर्यं यया सा देवं त्रैलोक्यनाथमिममनाथाना शरणं स्थाणुमीश्वर शरणार्थिनी त्राणाभिलाषिण्यहमाश्रिताश्रयणं कृतवती। अपरेद्युरिति। अपरेद्युरन्येद्युः कुतोऽपि कस्मादपि समुपलब्ध प्राप्तो वृत्तान्त उदन्तो येनैवंभूतस्तात

प्रभात में उठकर, उसी सरोवर में स्नान करके, निश्चय किये हुई उस के लिये अपने प्रेम के कारण उसी कमण्डलु को लेकर, और उन्हीं वल्कल वस्त्रों को तथा उसी अक्षमाला को धारण करके, ससार की असारता को और अपने पुण्यों की अल्पता को जानकर और कष्टों के आकस्मिक आक्रमणों की प्रतिकारहीन कठोरता का निर्णय करके, शोक की अनिवार्यता का अनुमान करके, तथा भाग्य की निष्ठुरता को देखकर, स्नेह की अत्यन्त घनी दुःख देने की शक्ति को सोचकर और सब वस्तुओं की अस्थिरता को समझ कर सभी सुखों की परम (शब्दार्थ-आकस्मिक) नश्वरता को निश्चयपूर्वक जान कर पिता तथा माता की उपेक्षा करके, अपने सेवक वर्ग के साथ साथ सारे सम्बन्धियों को छोड़ कर, ऐन्द्रियिक सुखों से मन को हटा कर, इन्द्रियों का नियन्त्रण करके, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किये हुई, त्रिलोकी के स्वामी तथा असहायों के सहायक भगवान् शिव की शरण प्राप्त करना चाहती हुई इस शिव के आश्रम में पहुँच गयी।

और अगले दिन मेरे समाचार को प्राप्त किये हुए मेरे पिताने, माता तथा सम्बन्धियों के

सहाम्बया सह बन्धुवर्गेणागत्य सुचिरं कृताक्रन्दस्तैस्तैरुपायैः अभ्यर्थनाभिश्च बह्वीभिः, उपदेशैश्चानेकप्रकारैः, सान्त्वनैश्च नानाविधैः, गृहागमनाय मे महान्तं यत्नमकरोत्। यदा च नेयमस्माद्व्यवसायात्कथंचिदपि शक्यते व्यावर्तयितुमिति निश्चयमधिगतवान्, तदा निराशोऽपि दुस्त्यजतया दुहितृस्नेहस्य पुनः पुनर्मया विसृज्यमानोऽपि बहून्दिवसान्स्थित्वा सशोक एवान्तर्दह्यमानहृदयो गृहानयासीत्। गते च ताते ततःप्रभृति तस्य जनस्याश्रुमोक्षमात्रेण कृतज्ञता दर्शयन्ती, तदनुरागकृशमिदमपुण्यबहुलमस्तमितलज्जम-

---

पिताम्बया मात्रा च सह तथा बन्धुवर्गेण स्वजनवर्गेण सहागत्यैत्य सुचिरं चिरकालं यावत्कृतो विहित आक्रन्दो येन स तैस्तैरुपायैः प्रपञ्चैः, ताभिर्बह्वीभिरभ्यर्थनाभिः प्रार्थनाभिः, अनेकैरुपदेशैर्हितवाक्यैः, नानाविधैः सान्त्वनैः सामभिः, एभिः कृत्वा मे मम गृहागमनाय महान्तं यत्नमुद्योगमकरोदसृजत्। यदा चेति। यदा यस्मिन्काले इयं महाश्वेतास्माद्व्यवसायाद्व्यापृते कथंचिदपि कष्टेनापि व्यावर्तयितुं निवर्तयितुं न शक्यते न पार्यते इति निश्चयं निर्णयमधिगतवाञ्ज्ञातवान्। तदेति। तस्मिन्काले निराशोऽपि निर्गतसमीहितोऽपि। गृहं न गत इत्यत्र हेतुमाह— दुहित्रिति। दुहिता पुत्री तस्याः स्नेहस्य प्रेम्णो दुस्त्यजतया दुर्निवारतया। स्नेहाधिक्यं प्रदर्शयन्नाह—पुनरिति। पुनः पुनर्वारंवारं मया विसृज्यमानोऽपि गृहे गम्यतामिति काम्यमानोऽपि बहूननेकान्दिवसान्दिनान्स्थित्वा सशोकः शुचा सह वर्तमानोऽन्तर्मध्ये दह्यमानं प्रज्वलमानं हृदयं चेतो यस्यैवंविध एव गृहानयासीदगमत्। 'गृहाः पुंसि' इति पुंस्त्वम्। गते चेति। ताते पितरि गते च सति ततःप्रभृति तद्दिनादारभ्य तस्य जनस्य पुण्डरीकस्याश्रुमोक्षमात्रेण नेत्रवारिमोचनेनैव कृतं जानातीति कृतज्ञस्तस्य भावस्तत्ता तां दर्शयन्ती प्रकाशयन्ती। पुनः किं कुर्वन्ती। दग्धशरीमेव दग्धशरीरकम्। स्वार्थे कः। तच्छोषयन्ती कृशतां प्रापयन्ती। अथ शरीरकं विशेषयन्नाह—तदिति। तस्मिन्कुमारे पुण्डरीके योऽनुरागः स्नेहस्तेन कृशं सूक्ष्ममपुण्यबहुलं पापबहुलम्। अस्तेति। अस्तमितास्तं प्राप्ता लज्जा त्रपा यस्मिंस्तदमङ्गलभूतमशिवरूपम्। अनेकेति।

साथ आकर, बहुत देर तक ऊँचे ऊँचे रुदन करते हुए ने, प्रत्येक प्रकार के उपायों से, बहुत सी चिरौरियों-मिन्नतों द्वारा, विविध प्रकार से समझा बुझाकर और प्रत्येक प्रकार के सान्त्वना वचनों के द्वारा मेरे घर लौट चलने के लिये बहुत अधिक यत्न किया। और जब उसने 'इस निश्चित संकल्प से इसका मन किसी भी प्रकार नहीं फेरा जा सकता' यह मेरा निश्चय जान लिया, तब निराश हुआ भी, पुत्री के प्रति स्नेह को छोड़ देने की कठिनाई के कारण, लौट जाने के लिये बार-बार मेरे कह देने पर भी बहुत दिनों तक ठहर कर, शोक से युक्त तथा भीतर ही भीतर जलते हुए हृदय वाला, घर चला गया। और पिता के चले जाने पर, उसी समय से केवल आँसुओं को बहा कर ही उस (पुण्डरीक) के प्रति (अपनी) कृतज्ञता को प्रदर्शित करती हुई, उसके प्रति प्रेम के कारण दुर्बल हुए, पापों से लगभग भरे हुए, अस्त हुई लज्जा वाले (सर्वथा निर्लज्ज हुए), अशुभ बने हुए, हजारों क्लेशों तथा दुःखों के निवासस्थान बने हुए, इस निन्दनीय शरीर को बहुत प्रकार के सैंकड़ों नियमों अर्थात् कठोर व्रतों द्वारा सुखाती (खपाती) हुई, जंगली फल, मूल तथा जल द्वारा जीवन निर्वाह करती हुई, जप के बहाने (अपनी माला

मङ्गलभूतमनेकक्लेशायाससहस्रनिवासं दग्धशरीरक बहुविधैर्नियमशतैः शोषयन्ती वन्यैश्च फलमूलवारिभिर्वर्तमाना जपव्याजेन तद्गुणगणानिव गणयन्ती, त्रिसध्यमत्र सरसि स्नानमुपस्पृशन्ती, प्रतिदिनमर्चयन्ती देवं त्र्यम्बकम्, अस्यामेव गुहाया तरलिकया सह दीर्घं शोकमनुभवन्त्यवसम्। साहमेवविधा पापकारिणी निर्लक्षणा निर्लज्जा क्रूरा निःस्नेहा नृशंसा गर्हणीया निःप्रयोजनोत्पन्ना निःफलजीविता निरवलम्बना निःसुखा च। 'किं मया दृष्टया पृष्टया वा कृतब्राह्मणवधमहापातकया करोति महाभाग' इत्युक्त्वा पाण्डुना वल्कलोपान्तेन शशिनमिव शरन्मेघशकलेनाच्छाद्य वदन दुर्निवारबा-

---

अनेकेऽसख्या ये क्लेशा दु खानि तेषामायासा परिश्रमास्तेषां सहस्र तस्य निवासो गृहस्तम्। कै। बहुविधै नानाप्रकारैर्नियमशतैर्व्रतशतै। वन्यैश्चेति। वनसबन्धिभि। फलेति। फलानि सस्यानि, मूलानि बुध्ना, वारीणि जलानि, तै कृत्वा वर्तमाना प्रवर्तमाना। कृतप्राणधारणेत्यर्थ। जप इति। जपो जापस्तस्य व्याजेन मिषेण तस्य पुण्डरीकस्य गुणा शौर्यादयस्तेषा गणा समूहास्तानिव गणयन्ती गणनां कुर्वन्ती त्रिसंध्यं त्रिसायम्। अत्र सरस्यच्छोदनाम्नि तटाके स्नानमाप्लवमुपस्पृश कुर्वन्ती। प्रतीति। प्रतिदिन प्रतिवासर त्र्यम्बक देवमीश्वरमर्चयन्ती पूजयन्ती। अस्यामिति। अस्यां प्रत्यक्षगताया-मेव गुहायां कन्दरायां तरलिकया सह दीर्घं शोकमनुभवन्ती साक्षात्कुर्वन्त्यवस निवासमकरवम्। यत्तदोर्नित्याभिसबन्धात्या पूर्वोक्ता सैवंविधाहं नान्या। इतस्तस्या किञ्चिद् विशेषणानि प्रदर्शयन्नाह—पापेति। पाप कलुषं करोतीत्येवंशीला सा, निर्लक्षणा पाण्डुरपृष्ठा, निर्लज्जा निस्त्रपा, क्रूरा, दुष्टा, नि स्नेहा नि प्रेमा, नृशसा निस्त्रिंशा, गर्हणीया निन्दनीया, नि प्रयोजन निरर्थकमुत्पन्ना प्रादुर्भूता, नि फलमवकेशि जीवित प्राणित यस्या. सा तथा, निर्गतमवलम्ब-माश्रयो यस्या सा तथा, निर्गत सुख सातं यस्या सा तथा। चकारः समुच्चयार्थः। स्वस्य निन्दां कुर्वत्याह—किमिति। हे महाभाग हे सत्पुरुष, कृत ब्राह्मणवधलक्षण महापातकं ययैवंविधया मया दृष्टयावलोकितया पृष्टया पृच्छाविषयीकृतया वा मया किं करोति किं करिष्यति। अत्र भविष्यत्यर्थे वर्तमाना। इति पूर्वोक्तमुक्त्वा कथयित्वा पाण्डुना शुक्लेन वल्कलोपान्तेन चोचाञ्चलेन वदनं मुखमाच्छाद्य। अत्र शुक्लत्वसाधर्म्यादुत्प्रेक्षते—शरदिति।

को फेरने के बहाने) मानो उसके गुणों को ही गिनती हुई, दिन की तीनों सन्ध्याओं के समय (अर्थात् प्रात मध्याह्न तथा साय) इस सरोवर मे स्नान करती हुई, प्रतिदिन भगवान् शिव की पूजा करती हुई, इसी गुफा में तरलिका के साथ, लम्बे शोक को अनुभव करती हुई रहती आयी हूँ। सो इस प्रकार की मैं पापिनी, सभी शुभ चिन्हों से विहीन, निर्लज्ज, निर्दय, स्नेहहीन, निष्ठुर, निन्दनीय, निष्प्रयोजन उत्पन्न हुई, निष्फल जीवन वाली, निराश्रय तथा सुखरहित हूँ। आप महानुभाव को ब्राह्मण की हत्या रूप महापातक की हुई मुझको देखकर और मुझसे पूछ कर क्या प्रयोजन? (अर्थात् ब्राह्मण-वध का महापाप की हुई मुझको देखकर अथवा मुझसे पूछ कर आप क्या करेंगे?)। यह कहकर (अपने) वल्कल के श्वेत आंचल से अपने मुँह को ऐसे ढक कर, जैसे कि शारदी बादल के टुकड़े से चन्द्रमा को ढका जाता है, तथा

ष्पवेगमपारयन्ती निवारयितुमुन्मुक्तकण्ठमतिचिरमुच्चैः प्रारोदीत् ।

चन्द्रापीडस्तु प्रथममेव तस्या रूपेण विनयेन दाक्षिण्येन मधुरालापतया निःसङ्गतया तपस्वितया च प्रशान्तत्वेन च निरभिमानतया च महानुभावत्वेन च शुचितया चोपारूढगौरवोऽभूत् । तदानीं तु तेनापरेण दर्शितसद्भावेन स्ववृत्तान्तकथनेन तया च कृतज्ञतया हृतहृदयः सुतरामारोपितप्रीतिरभवत् । आर्द्रीकृतहृदयश्च शनैःशनैरेनामभाषत—'भगवति, क्लेशभीरुरकृतज्ञः सुखासङ्गलुब्धो लोकः स्नेहसदृशं कर्मानुष्ठातुम-

---

शरद्घनालयस्तस्या मेघशकलेन जलधरखण्डेन शशिनमिव चन्द्रमिव । अत्र वदनस्य चन्द्रसादृश्यम्, वल्ककोपान्तस्य च शरन्मेघशकलसादृश्यमिति भाव । दुरिति । दुर्निवार बाष्पो नेत्राम्बु तस्य वेग रयो निवारयितु दूरीकर्तुमपारयन्त्यशक्नुवत्युन्मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथातिचिरं चिरकालमुच्चैस्तारस्वरेण प्रारोदीद्रुदनमकार्षीत् ।

चन्द्रापीडस्त्विति । प्रथममेवादावेव तस्या महाश्वेताया रूपेण सौन्दर्येण, विनयेन प्रणिपत्यादिना, दाक्षिण्येनानुकूल्येन, मधुरो मिष्टो य आलाप सलापस्तस्य भावस्तत्ता तया, तथा निर्गतो य. सङ्गोऽभिष्वङ्गस्तस्य भावस्तत्ता तया । तपेति । तपस्विन्या भावस्तत्ता तया । तथा प्रशान्तत्वेन सौम्यप्रकृतित्वेन च । तथा निरभिमानतया निरहङ्कारतया च । तथा महानुभावत्वेन महाप्रभावत्वेन । तथा शुचितया पवित्रतया चोपारूढमाश्रित गौरव यस्मिन्नेवंविधश्चन्द्रापीडोऽभूत् । तदानीं त्विति । तदानीं तस्मिन्कालेऽपरेण दर्शित प्रकटित सद्भाव स्वभावो येनैवविधेन स्ववृत्तान्तकथनेन निजोदन्तनिवेदनेन तया च कृतज्ञतया कृतवेतृतया च हृत हृदय चित्त यस्य स सुतरामत्यर्थमारोपिता स्थापिता प्रीतिर्यस्यामेवविधश्चन्द्रापीडोऽभवदासीत् । आर्द्रीति । आर्द्रीकृत हृदय यस्य स शनै शनैर्मन्दंमन्दमेना महाश्वेतामभाषतावोचत् । तदेवाह—भगवतीति । हे भगवति हे स्वामिनि, अन्यो लोक क्लेशभीरुरकृतज्ञ सुखार्थं य आसङ्ग स्त्र्यादीनामभिषङ्गस्तत्र लुब्धो लिप्सु स्नेहसदृश प्रीतियोग्यं कर्म तत्सुखेन सुख तद्दुःखेन दु खमनुष्ठातु विधातुमशक्तोऽसमर्थो निष्फलेन निष्प्रयोजनेनाश्रुपातमात्रेण

बेरोक अश्रुवेग को रोकने में असमर्थ हुई मैं सुबकियों को पूरा निकास देती हुई (उन्मुक्त कण्ठ), ऊँचे ऊँचे तथा बहुत देर तक रोई ।

चन्द्रापीड तो पहले से ही उसके सौन्दर्य से, उसकी नम्रता से, उसके शील से, (सांसारिक सुखों के प्रति) उसके अलगाव से, उसकी भारी तपस्विता से, उसकी गम्भीरता से, गर्वहीनता से, उसकी विशाल हृदयता से तथा उसकी पवित्रता से, उसके लिये गौरव भाव से युक्त हो गया था (उन-उन कारणों से चन्द्रापीड के मन में उसके लिये आदर भाव उत्पन्न हो चुका था)। अब वह उस दूसरी उसकी सद्भावनाओं को प्रकट किये हुई अपनी कथा कहने की घटना से और उस प्रकार अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शन से आकर्षित हृदय वाला होकर (उसमें) अत्यन्त प्रीति युक्त हो गया उसकी प्रीति और अधिक मात्रामें हो गयी । और फिर वह (अनुकम्पा से) अपने हृदय को गीला किये हुआ धीरे-धीरे बोला—"मान्य देवि ! यन्त्रणा से डरने वाला, कृतघ्न, सुखासक्ति का लालची मनुष्य, जिस प्रेम को अनुभव करता है उसके योग्य कार्य करने

शक्तो निष्फलेनाश्रुपातमात्रेण स्नेहमुपदर्शयन्रोदिति । त्वया तु कर्मणैव सर्वमाचरन्त्या किमिव न प्रेमोचितमाचेष्टितम्, येन रोदिषि । तदर्थमाजन्मतः प्रभृति समुचितपरिचयः प्रेयानसंस्तुत इव परित्यक्तो बान्धवजनः । संनिहिता अपि तृणावज्ञयावधीरिता विषयाः । मुक्तान्यतिशयितशुनासीरसमृद्धान्यैश्वर्यसुखानि । मृणालिनीवातितनीयस्यपि नितरां तनिमानमनुचितैः सक्लेशैरुपनीता तनुः । गृहीतं ब्रह्मचर्यम् । आयोजितस्तपसि महत्यात्मा । वनिताजनदुष्करमपि कृतमरण्यावस्थानम् । अपि चानायासेनैवात्मा दुःखाभिभूतैः परित्यज्यते । महीयसा न तु यत्नेन गरीयसि क्लेशे निक्षिप्यते केवलम् ।

स्नेह प्रीतिमुपदर्शयन्बाह्यवृत्त्या प्रकाशयन्रोदिति रोदन करोति । लोकेभ्यस्तस्या वैपरीत्य प्रदर्शयन्नाह—त्वया त्विति । त्वया भवत्या कर्मणैव कर्तव्यरूपेणैव सर्वं समग्रमाचरन्त्या कुर्वन्त्या प्रेमोचित स्नेहयोग्य किमिव नाचेष्टितम् । अपि तु सर्वमेव विहितमिति भाव । येन कारणेन त्व रोदिष्यश्रुपात करोषि तदर्थं पुण्डरीकार्थमाजन्मत प्रभृत्याजन्म मर्यादीकृत्य समुचितो योग्य. परिचय सगतिर्यस्यैवविध प्रेयानतिप्रियोऽसस्तुत इवासंस्तुतोऽपरिचितस्तद्वदिव बान्धवजन स्वजनवर्ग परित्यक्त उज्झित । सनिहितेति । सनिहिता अपि समीपवर्तिनोऽपि तृणवद्यावज्ञावगणना तया विषया इन्द्रियार्था अवधीरिता अवगणिता । अतीति । अतिशयिता तिरस्कृता शुनासीरस्येन्द्रस्य समृद्धि. सपद्यैरेवंविधान्यैश्वर्यसुखानि विभवसौख्यानि मुक्तानि त्यक्तानि । मृणालिनीति । अतितनीयस्यप्यतिकृशापि तनु शरीरमनुचितैरयोग्यै. सक्लेशै र्व्रतग्रहणरूपैर्नितरामत्यर्थं तनिमानं कृशत्वमुपनीता प्रापिता । केव । मृणालिनीव कमलिनीव । गृहीतेति । गृहीत स्वीकृत ब्रह्मचर्यं ब्रह्मव्रतम् । आयोजितेति । महति गरिष्ठे तपस्यात्मा योजित स्थापित । वनितेति । अत्रापिशब्दो भिन्नक्रम । तेन वनिताजनस्य स्त्रीजनस्य दुष्करमपि दु साध्यमप्यरण्यावस्थानं कृत विहितम् । अनेति । दु खाभिभूतैरनायासेनैव परिश्रममन्तरेणैवात्मा परित्यज्यते । शरीरत्याग क्रियत इति भाव । न त्विति । तु पुनरर्थक ।

में असमर्थ होकर निष्फल आँसू बहाकर ही अपने प्रेम को दिखाता हुआ रोता है किन्तु अपने कर्म से ही सारा आचरण करती हुई तुमने प्रेम के योग्य क्या सम्भव आचरण नहीं किया, फिर आप क्यों रोती हैं, आपके जन्म से लेकर ही जिनकी घनिष्ठता आपसे बढ़ी थी उन सम्बन्धियों को आपने उस (पुण्डरीक) के लिये ऐसे छोड़ दिया जैसे कि वे अपरिचित हों, आपकी पहुँच में—आपके समीप (आपके अधिकार मे) विद्यमान भी सासारिक सुखों की तिनके के समान उपेक्षा कर दी, इन्द्र के ऐश्वर्य से अधिक ऐश्वर्य के सुख छोड़ दिये, कमलपादप की डडी-सरीसी अत्यन्त पतली भी अपनी देह (इसके) अयोग्य कष्टों द्वारा चरम पतली करली, ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया, तुम ने अपनी आत्मा को एक महान् तप में लगा लिया है । तुमने जगलमें निवास करना स्वीकार कर लिया है, यद्यपि ऐसा करना एक महिला के लिए कठिन है । इसके अतिरिक्त, दु.खों से आक्रान्तों द्वारा तो विना किसी प्रयत्न के ही आत्मा—जीवन—का त्याग कर दिया जाता है, (ऐसे लोग सरलता से ही आत्मघात कर लेते हैं) किन्तु किसी बड़े (गौरव पूर्ण) क्लेश (तपस्या आदि में) इसको (आत्मा को) केवल महान् प्रयत्न से ही लगाया जाता है ।

यदेतदनुमरणं नाम तदतिनिष्फलम्। अविद्वज्जनाचरित एष मार्गः। मोहविलसितमेतत्, अज्ञानपद्धतिरियम्, रभसाचरितमिदम्, क्षुद्रदृष्टिरेषा, अतिप्रमादोऽयम्, मौर्ख्यस्खलितमिदम्, यदुपरते पितरि भ्रातरि सुहृदि भर्तरि वा प्राणाः परित्यज्यन्ते। स्वयं चेन्न जहति न परित्याज्याः। अत्र हि विचार्यमाणे स्वार्थ एव प्राणपरित्यागोऽयमसह्यशोकवेदनाप्रतीकारत्वादात्मन। उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति। न तावत्तस्याय प्रत्युज्जीवनोपायः, न धर्मोपचयकारणम्, न शुभलोकोपार्जनहेतुः, न निरयपात-

---

न केवल पर महीयसा गरिष्ठेन यत्नेन प्रयासेन गरीयसि महीयसि क्लेशे पूर्वोक्तस्वरूपे निक्षिप्यते। एतेन प्राणप्रियवियोग आत्मपरित्यागात्तस्यात्मनो गरिष्ठक्लेशे परिक्षेपण महीयानिति ध्वनितम्। यदेतदिति। नामेति कोमलामन्त्रणे। यदेतदनुमरणमन्वारोहण तदतिनिष्फल निरर्थकम्। यत कुमार प्रिय नतु विहित पतिर्येनान्वारोहण किं तु मृतानुमरणमात्रं तदतिनिष्प्रयोजनमिति भाव। अथ च निष्फलत्व प्रदर्शयन्नाह—अविद्वज्जनेति। एषोऽन्वारोहणलक्षणो मार्गः पन्था अविद्वज्जना अपण्डितलोकास्तैराचरित सेवित। एतदिति। पूर्वोक्त मोहविलसितमज्ञानविजृम्भितम्। अज्ञानेति। इयमन्वारोहणे प्रवृत्तिरज्ञानपद्धतिरज्ञानमार्गं। रभसेति। इदमन्वारोहणं रभसाविचारपूर्वकमाचरितमासेवितम्। क्षुद्रेति। एषान्वारोहणलक्षणा प्रवृत्ति क्षुद्रास्तुच्छबुद्धयस्तेषां दृष्टिर्ज्ञानम्। अतीति। अयमनुमरणलक्षणोऽतिप्रमादोऽतिशयेनानवधानता। मौर्ख्यमिति। इद पूर्वोक्तं मौर्ख्यस्खलितं विहितच्युति। यत्सदोर्नित्याभिसबन्धादाह—यदिति। यत्पितरि ताते, भ्रातरि सहोदरे, सुहृदि मित्रे, भर्तरि प्राणनाथे वोपरते मृते सति प्राणा परित्यज्यन्ते परिमुच्यन्त इति कर्मकर्तृक्ति। तस्या लक्षणम्—'यत्र कर्मैव कर्तृत्व याति कर्ता तु नोच्यते। सुकरै स्वैर्गुणैर्योगात्कर्मकर्त्रेति तद्विदु' इति। स्वयमिति। चेद्यदि स्वय न जहति न परित्यजन्ति तदा प्राणा न परित्याज्या बलान्न निष्कासनीया इत्यर्थ। किमर्थं तर्हि लोकानां मरणे प्रवृत्तिरित्यत आह—अत्र हीति। हीति निश्चये। अस्मिन्ननुमरणे विचार्यमाणे विचारणाविषयीक्रियमाणेऽय प्राणपरित्याग स्वार्थ एवात्मीयकृत्यमेव। तत्र हेतुमाह—असह्येति। आत्मनो जीवस्य न सोढुमशक्यासह्या या शोकवेदना शुग्व्यथा तस्या. प्रतीकारो निवृत्त्युपायस्तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्। उपेति। उपरतस्य मृतस्य तु न कमपि गुणं हितमावहत्याददधाति। एतदर्थं स्पष्टयन्नाह—

यह जो (किसी के) मरने के पश्चात् मरना है वह तो अत्यन्त व्यर्थ है। यह वह मार्ग है जिस पर अनपढ़ चलते हैं, यह दीवानेपन का आमोद प्रमोद है, यह अज्ञान का मार्ग है, यह अविमर्श का काम (अविमृश्यकारिता) है, यह सकुचित (अनुदार) दृष्टिकोण है, यह एक बड़ी लापरवाही है, यह मूर्खता के कारण हुई बड़ी भूल है कि पिता, भाई, मित्र अथवा पति के मरने पर (दुखियों द्वारा) प्राण छोड़ दिये जाते हैं। यदि प्राण किसी को स्वय नहीं छोड़ते हैं तो उन्हें नहीं छोड़ना चाहिये। इस विषय में विचार करने पर यह प्राणपरित्याग स्वार्थ ही सिद्ध होता है, क्यों कि यह आत्मघात प्राणपरित्याग मरने वाले के स्वय की असह्य शोक पीड़ा की औषध है! मरे हुए का तो यह कोई भी हित नहीं करता। पहले तो यह उसको पुनरुज्जीवित

प्रतीकारः, न दर्शनोपायः, न परस्परसमागमनिमित्तम्। अन्यामेव स्वकर्मफलपाकोपचितामसाववशो नीयते भूमिम्। असावप्यात्मघातिनः केवलमेनसा संयुज्यते। जीवस्तु जलाञ्जलिदानादिना बहूपकरोत्युपरतस्यात्मनश्च, मृतस्तु नोभयस्यापि। स्मर तावत्प्रियामेकपत्नीं रतिं भगवति भर्तरि मकरकेतौ सकलाबलाजनहृदयहारिणि हरहुतभुग्दग्धेऽप्यविरहितामसुभिः। पृथा च वार्ष्णेयी शूरसेनसुतामभिरूपे सावज्ञविजितसकलराजकमौलिकुसुमवासिताशेषपादपीठे पत्यावखिलभुवनबलिभागभुजि पाण्डौ

न तावदिति। तावदादौ तस्योपरतस्य प्रत्युज्जीवनोपाय पुन प्राणधारणप्रतिक्रिया न भवति। **नेति**। धर्मस्य पुण्यस्योपचय पुष्टिस्तस्य कारण निमित्त न भवति। **नेति**। शुभलोकस्य स्वर्गलोकस्योपार्जनमर्जन तस्य हेतुर्निदानम्। **निरयेति**। निरये दुर्गतौ पात पतन तस्य प्रतीकार प्रतिक्रिया न। **नेति**। दर्शनस्यावलोकनस्याप्युपायो न। **नेति**। परस्परमन्योन्य य समागम सबन्धस्तस्य निमित्त कारण न भवति। तत्र हेतुमाह—**अन्यामिति**। असौ मृतोऽवश पराधीन स्वस्य कर्मणो स्वकृतपापपुण्ययोर्य फलपाकस्तेनोपचिता पुष्टामन्यामेव कर्मभूमिं नीयते प्राप्यते। अन्यदप्यनुमरणेनानिष्टमाह—**असाविति**। असौ पूर्वं मृत आत्मघातिनोऽनुमृतस्यैनसा पापेन केवल सयुज्यते संयुक्तो भवति। अनुमरणाभावे गुणानाह—**जीवस्त्विति**। जीवञ्श्वसन्नुपरतस्य मृतस्यात्मनो जीवस्य जलाञ्जलिदानादिना बहूपकरोत्यनेकामुपकृतिं कुरुते। मृतस्तूभयस्यापि स्वस्य परस्य च न किमप्युपकरोति। दृष्टान्तद्वारा एनमर्थं दृढीकुर्वन्नाह—**स्मरेति**। तावदादौ सकल समग्रो योऽबलाजन स्त्रीलोकस्तस्य हृदयहारिणि भगवति माहात्म्यवति भर्तरि प्राणवल्लभे मकरकेतौ श्रीमदने हरस्य महादेवस्य यो हुतभुग्नेत्राग्निस्तेन दग्धे भस्मीभूते सत्यपि, एक एव पतिर्यस्यास्तामेकपत्नीं प्रियां वल्लभां रतिमसुभि प्राणैर्विरहिता सयुक्तां स्मर स्मृतिगोचरीकुरु। यथा तया प्राणा नोज्झिता, स्वभर्तुं कृत्य च कृतम्, तथा त्वयापि विधेयमिति भाव। अन्यासामपि निदर्शनद्वारा पूर्वोक्तमर्थं दृढीकुर्वन्नाह—**पृथामिति**। पाण्डौ

करने का कोई उपाय नहीं है, न उसके धर्म की वृद्धि का (उसकी धार्मिक विशेषता में किसी प्रकार की वृद्धि का ही) कारण है, न उसके लिये किसी शुभलोक-सुखलोक-के कमाने का ही कारण है, न उसके नरक में गिरने को रोकने का उपाय है, न उसको देखने का मार्ग है, न उनके आपसी सयोग का कारण है। यह (मृत व्यक्ति) तो, विवश हुआ-हुआ, दूसरे ही, सर्वथा भिन्न, उस स्थान को ले जाया जाता है जो कि उसके अपने कर्मों के फलों के परिपाक (परिपक्व होने पर) से उसके लिए सञ्चित होता है और वह आत्मघाती भी केवल आत्म हत्या के निरे पाप से ही सयुक्त होता है। किन्तु जीवित रहता हुआ जलाञ्जलिदान आदि कर्मों से मृतक का तथा अपना बहुत सा उपकार करता है किन्तु मरा हुआ तो दोनों का ही कोई उपकार नहीं करता। थोड़ी देर के लिये (मदन की) एकमात्र पत्नी प्रिय रति को ही स्मरण कीजिये, जिसने सभी स्त्रियों के हृदयों को आकर्षित करनेवाले अपने पति भगवान् कामदेव के शिवजी की अग्नि द्वारा जल जाने पर भी अपने आप को प्राणों से वियुक्त नहीं किया। और वृष्णि वंश की, शूरसेन पुत्री पृथा को याद कीजिये कि जो अपने सुन्दर (अथवा योग्य), सर

किंदममुनिशापानलेन्धनतामुपगतेऽप्यपरित्यक्तजीविताम्। उत्तरा च विराटदुहितरं बाला बालशशिनीव नयनानन्दहेतौ विनयवति विक्रान्ते च पञ्चत्वमभिमन्यावागतेऽपि धृतदेहाम्। दुःशल्यां च धृतराष्ट्रदुहितरं भ्रातृशतोत्सङ्गलालितामतिमनोहरे हरवरप्रदानवर्धितमहिम्नि सिन्धुराजे जयद्रथेऽर्जुनेन लोकान्तरमुपनीतेऽप्यकृतप्राणपरित्यागाम्। अन्याश्च रक्षःसुरासुरमुनिमनुजसिद्धगन्धर्वकन्यका भर्तृरहिताः श्रूयन्ते सहस्रशो

भर्तरि किंदम इत्यभिधया प्रसिद्धो यो मुनिस्तस्य शाप एवानलो वह्निस्तस्मिन्निन्धनतामिध्मता मुपगतेऽपि प्राप्तेऽप्यपरित्यक्तजीवितामनुज्झितप्राणा वार्ष्णेयीमन्धकवृष्णिकुलोत्पन्ना शूरसेनस्य राज्ञः सुता पुत्रीं पृथां कुन्तीम्। स्मरेत्यस्य सर्वत्रापि सबन्ध। अथ भर्तारं विशेषयन्नाह—सावज्ञयेति। सावज्ञैवानिच्छयैव विजित स्वायत्तीकृत यत्सकलं समग्र राज्ञां समूहो राजक तस्य मौलय शिरांसि तेषां कुसुमानि पुष्पाणि तैर्वासित भावितमशेष पादपीठ समग्रपदासन यस्य स तस्मिन्। अखिलेति। अखिलं समग्र यद्भुवन विश्व तस्य यो बलिभागो भागधेयस्त भुनक्तीति स तस्मिन्। अभिरूपे पण्डिते। तथा बालशशिनीव नवोदितचन्द्र इव नयनानन्दहेतौ नेत्राह्लादनिमित्ते विनयवति मर्यादावति विक्रान्ते शूरेऽभिमन्यावर्जुनसुते पञ्चत्वमागतेऽपि प्राप्तेऽपि धृतो देहो ययैवभूतां बालामप्राप्तयौवनां विराटराज्ञो दुहितर पुत्रीमुत्तरानाम्नीं स्मरेति सबन्ध। तथातिमनोहरेऽत्यभिरामे। हरेणेश्वरेण वरप्रदानेन वर्धितो वृद्धिं नीतो महिमा माहात्म्य यस्य स तस्मिन्। सिन्धुराजे सिन्धुदेशनाथे जयद्रथाभिधानेऽर्जुनेन पार्थेन लोकान्तर भवान्तरमुपनीते प्रापितेऽपि धृतराष्ट्रस्य राज्ञो दुहितरं सुतां भ्रातृणां यच्छत तस्योत्सङ्ग क्रोडस्तेन लालितां पालितामकृतप्राणपरित्यागामेवंविधां दुःशल्यां स्मरेति सबन्ध। अमुमेवार्थं पुनर्द्रढयन्नाह—अन्याश्चेति। रक्षसो राक्षसा, सुरा देवाः, असुरा दैत्याः, मुनयस्तापसा, मनुजा मनुष्या, सिद्धा विद्यासिद्धा, गन्धर्वा देवगायना, एतेषां कन्यका पुत्र्यो भर्तृरहिता सत्यो विधृतजीविता अकृतप्राणपरित्यागा अन्या पूर्वोक्तव्यतिरिक्ता सहस्रश श्रूयन्त आकर्ण्यन्ते। यदनुमरणेनापि न प्राप्स्यसे तदपीष्टं त्वया प्राप्तव्यमेवेत्याह—प्रोन्मुच्येतापीति। तदा जीवितं

ज्ञता से (उपेक्षा से, विना विशेष ध्यान दिये ही) जीते हुए सारे राजमण्डल के मुकुटों में के फूलों से सुगन्धित पीढ़े वाले, सारे संसार से भेंट का अंश भोगने वाले पति पाण्डु के किंदम मुनि के शाप की अग्नि का ईंधन बन जाने पर भी अपने जीवन को न छोड़े हुए थी (जीवित रही थी), और विराट की कन्या अभी नवयुवती उत्तरा को याद कीजिये कि जो अभिनव चन्द्रमा सरीखे, आँखों के आनन्द के कारणभूत, विनयी तथा वीर अभिमन्यु के मर जाने पर भी शरीर को धारण किये रही। और भी, धृतराष्ट्र की पुत्री अपने सौ भाइयों द्वारा गोद में दुलारी गयी दुःशला को याद कीजिये जिसने अत्यन्त सुन्दर, शिवजी द्वारा वरप्रदान से बढ़े हुए महत्त्व वाले, सिन्धुराज जयद्रथ को अर्जुन द्वारा परलोक में ले जाये जाने पर भी (मार देने पर भी) प्राण-परित्याग नहीं किया था। और दूसरी भी राक्षसों, देवताओं, असुरों, मुनियों, मनुष्यों, सिद्धों तथा गन्धर्वों की कन्यायें हजारों ही पतिरहित सुनी जाती हैं और उन्होंने

विधृतजीविताः। प्रोन्मुच्येतापि जीवितं संदिग्धोऽप्यस्य समागमो यदि स्यात्। भगवत्या तु ततः पुनः स्वयमेव समागमसरस्वती समाकर्णिता। अनुभवे च को विकल्पः, कथं च तादृशानामप्राकृताकृतीनां महात्मनामवितथगिरां गरीयसापि कारणेन गिरि वैतथ्यमास्पदं कुर्यात्। उपरतेन च सह जीवन्त्याः, कीदृशी समागतिः। अतो निःसंशयमसावुपजातकारुण्यो महात्मा पुनः प्रत्युज्जीवनार्थमेवैनमुत्क्षिप्य सुरलोकं नीतवान्। अचिन्त्यो हि महात्मनां प्रभावः। बहुप्रकाराश्च संसारवृत्तयः। चित्रं च दैवम्। आश्चर्यातिशययुक्ताश्च तपःसिद्धयः। अनेकविधाश्च कर्मणां शक्तयः। अपि

प्रोन्मुच्येत त्यजेत यद्यस्य मृतस्य संदिग्धोऽपि समागमः स्यात्। तच्च नास्त्येवेति भावः। प्राप्यमिष्टं कथं स्यादित्याह—भगवत्येति। भगवत्या त्वया ततस्तस्मान्महापुरुषात्पुनः स्वयमेवात्मनैव समागमः कुमारेण सह संगतिस्तत्प्रतिपादिका सरस्वती वाणी समाकर्णिता श्रुता। तथापि तदर्थं न निश्चिनोमीत्यत आह—अनुभवेति। अनुभवेऽनुभूते वस्तुनि को विकल्पः कः संदेहः। अत्रोपपादकमाह—कथं चेति। तादृशानां न विद्यते प्राकृता इतरजनसाधारणाकृतिराकारो येषामेवंविधानामवितथगिरां यथार्थवचसां महात्मनां महापुरुषाणां गरीयसापि कारणेनोत्कृष्टेनापि हेतुना गिरि वाण्यां कथं वैतथ्यमनृतत्वमास्पदं स्थानं कुर्यात्। नन्वियं सरस्वती वितथैव मृतकुमारेण सह समागमस्य बाधितत्वादित्यत आह—उपरतेति। उपरतेन मृतेन सह जीवन्त्याः कीदृशी समागतिः संगतिः। तर्हि सरस्वती वितथैवेत्यत आह—अत इति। अतः कारणात्। निःसंशयं निश्चितमुपजातः समुत्पन्नः कारुण्यं घृणा यस्मिन्नेवंविधो महात्मासौ पुरुषः पुनः प्रत्युज्जीवनार्थं पुनःसञ्जीकरणार्थमेवैनं पुण्डरीकमुत्क्षिप्योत्पाट्य सुरलोकं देवलोकं नीतवान्प्रापितवान्। अत्रानुकूलमाह—अचिन्त्य इति। हीति निश्चितम्। महात्मनां महानुभावानां प्रभावो महिमाचिन्त्योऽनाकलनीयः। नन्वश्रुतपूर्वमिदं कथं स्यादित्यत आह—बह्विति। संसारवृत्तयः संसृतेः प्रवृत्तयो बहुप्रकारा अनेकभेदभिन्नाश्चेत्यर्थः। एतादृशं मम भाग्यं क्व स्यादित्याह—चित्रं चेति। दैवं भाग्यं चित्रं विविधप्रकारम्। न तु सर्वेषामेकविधम्। ननु तस्य कुमारप्रत्युज्जीवने कुतः सामर्थ्यमित्यत आह—आश्चर्येति। आश्चर्यमद्भुतं तस्यातिशय

अपना जीवन धारण किये रखा। जीवन छोड़ भी दिया जाय, यदि इसका संयोग संदिग्ध हो। आपने तो उस महापुरुष से स्वयं ही समागम वाणी (समागम होगा यह घोषणा) सुन ली है। और वास्तविक अनुभव की बात में विकल्प अर्थात् सन्देह ही क्या किया जा सकता है! और फिर वैसे उस प्रकार के असाधारण आकृति वाले (प्रभावशील), कभी झूठी न होने वाली वाणी वाले महात्माओं की वाणी में, बड़े भारी कारण से भी, कैसे कभी झूठ अपना स्थान बना सकता है! और किसी मरे हुए व्यक्ति से जीती हुई का समागम किस प्रकार सम्भव है! इस लिये इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जाग्रत (उत्पन्न हुई) करुणा दया वाला वह महात्मा फिर जिलाने के लिये ही इसको उठा कर देवलोक को ले गया। क्योंकि निश्चय ही महात्माओं की शक्ति समझमें आ ही नहीं सकती। संसार की वृत्तियां बहुत प्रकार की हैं, दैव की कार्यशैली बड़ी विचित्र है। और तपस्या द्वारा प्राप्त की गयीं सिद्धियाँ अत्यधिक आश्चर्य से युक्त होती

च सुनिपुणमपि विमृशद्भिः किमिवान्यत्तदपहरणे कारणमाशङ्क्येत जीवितप्रदानादृते । न चासम्भाव्यमिदमवगन्तव्यं भगवत्या । चिरप्रवृत्त एष पन्थाः । तथा हि—विश्वावसुना गन्धर्वराजेन मेनकायामुत्पन्नां प्रमद्वरा नाम कन्यकामाशीविषविलुप्तजीविता स्थूलकेशाश्रमे भार्गवस्य च्यवनस्य नप्ता प्रमतितनयो मुनिकुमारको रुरुर्नाम स्वायुषोऽर्धेन योजितवान् । अर्जुनं चाश्वमेधतुरगानुगामिनम्, आत्मजेन बभ्रुवाहननाम्ना समरशिरसि शरापहृतप्राणम्, उलूपी नागकन्यका सोच्छ्वासमकरोत् । अभिमन्युतनयं

आधिक्य तेन युक्ता सहितास्तप सिद्धयो भवन्ति । ननु पुण्डरीकस्यैतादृश कर्म कथं स्यात्, येन प्रत्युज्जीवन स्यादित्याह—अनेकेति। कर्मणां पूर्वोपार्जितशुभाशुभाना शक्तय सामर्थ्यान्यनेकविधा असख्यप्रकाराः। युक्त्यन्तर प्रदर्शयन्नाह—अपि चेति। अपि च युक्त्यन्तरे। सुनिपुणं सुदक्ष यथा स्यात्तथा विमृशद्भिर्विचारयद्भिस्तदपहरणे मृतकुमारापहरणे जीवितप्रदानादृतेऽन्यत्किमिव कारण निमित्तमाशङ्क्यत आशङ्काविषयीक्रियते । न च सर्वथा मृतस्य पुनर्जीवन क्वापि दृष्टमित्यत आह—नचेति। भगवत्या त्वयेद प्रत्युज्जीवनमसम्भाव्यमघटमानमिति न चावगन्तव्य न ज्ञातव्यम् । अस्य प्राचीनत्वं प्रदर्शयन्नाह—चिरमिति। एष प्रत्युज्जीवनलक्षण पन्था मार्गश्चिरप्रवृत्तो बहुकालीन । तदेव दर्शयति—तथा हीति । विश्वावसुनाम्ना गन्धर्वराजेन करणभूतेन मेनकायामुत्पन्ना प्रादुर्भूता प्रमद्वरेति नाम्नीं कन्यकामाशीविषेण सर्पेण विलुप्त ध्वस्त जीवितं श्वसित यस्या एवविधा स्थूलकेशमुनेराश्रमे मठे भार्गवस्य भृगुवंशोत्पन्नस्य च्यवननाम्नो मुनेर्नप्ता प्रपौत्र. प्रमतेस्तनय पुत्रो मुनिकुमारको रुरु स्वायुष स्वजीवितस्यार्धेन योजितवान्सबन्धितवान् । अर्जुन चेति । अश्वमेधस्य यस्तुरगोऽश्वस्तदनुगामिन तत्पृष्ठयायिन बभ्रुवाहननाम्नात्मजेन सुतेन समरशिरसि सङ्ग्रामशिरसि शरेण बाणेनापहृता आकर्षिता प्राणा यस्यैवविधमर्जुनं पार्थम् । नामेति कोमलामन्त्रणे । उलूपीनाम्नी नागकन्यका सोच्छ्वास सजीवितमकरोदसृजत् । अभीति । अश्वत्थाम्नो द्रोणाचार्यसुतस्य योऽस्त्रपावक शस्त्राग्निस्तेन परिप्लुष्ट दग्धम्।

हैं। और (पूर्व जन्म में किये गये) कृत्यों की शक्तिया अनेक प्रकार की होती हैं। इसके अतिरिक्त बहुत ही निपुणता से—सावधान होकर—भी यदि हम विचार करें तो उसको उठा ले जाने का, जीवनदान के बिना दूसरा कौन सा कारण हम सोच सकते हैं, कोई नहीं। और आप को यह (पुनरुज्जीवन) असम्भव नहीं समझना चाहिये। यह मार्ग (पुनरुज्जीवन का कार्यक्रम) बहुत काल से चला आ रहा है। उदाहरणतया—गन्धर्वराज विश्वावसु द्वारा मेनका में उत्पन्न हुई प्रमद्वरा नाम की कन्या को, जो साप के विष से मर गई थी स्थूलकेश के आश्रम मे, भृगुवंशीय च्यवन के नाती, प्रमति के पुत्र, रुरु नाम के मुनि कुमार ने अपने जीवन का आधा भाग समर्पित कर दिया था। और अश्वमेध के घोड़े के पीछे-पीछे गये हुए अर्जुन को जिसे अपने पुत्र बभ्रुवाहन ने युद्ध में बाण द्वारा मारा था नागकन्या उलूपी ने सप्राण (अर्थात् जीवित) कर दिया था। और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को, जो अश्वत्थामा के अस्त्र की अग्नि से झुलस गया था तथा पेट से मरा हुआ ही निकला था, उत्तरा के विलाप द्वारा उत्पन्न दया वाले भगवान् वासुदेव ने दुर्लभ प्राण प्राप्त कराये थे। और उज्जयिनी मे सदीपनि ब्राह्मण

च परीक्षितमश्वत्थामास्त्रपावकपरिप्लुष्टम्, उदरादुपरतमेव विनिर्गतम्, उत्तराप्रलापोपजनितकृपो भगवान्वासुदेवो दुर्लभानसून्प्रापितवान्। उज्जयिन्या च सदीपनिद्विजतनयमन्तकपुरादपहृत्य त्रिभुवनवन्दितचरणः स एवानीतवान्। अत्रापि कथचिदेवमेव भविष्यति। तथापि कि क्रियते, कि वा लभ्यते। प्रभवति हि भगवान्विधिः। बलवती च नियतिः। आत्मेच्छया न शक्यमुच्छ्वसितुमपि। अतिपिशुनानि चास्यैकान्तनिष्ठुरस्य दैवहतकस्य विलसितानि। न क्षमते दीर्घकालमव्याजरमणीय प्रेम। प्रायेण च

उदरेति। उदराद्गर्भाशयादुपरतमेव मृतमेव विनिर्गत निःसृतम्। ईदृशमभिमन्युतनयमर्जुनपौत्र परीक्षिताभिधानमुत्तराया प्रलापेन विलापेनोपजनितोत्पादिता कृपा करुणा यस्यैवविधो भगवान्वासुदेवो नारायणो दुर्लभान्दुष्प्रापानसून्प्राणान्प्रापितवान्प्रदत्तवान्। उज्जयिन्या चेति। उज्जयिन्या विशालाया सदीपनिनाम्नो द्विजस्य तनय सुतमन्तकपुरात्सयमन्या अपहृत्यापहरण कृत्वा त्रिभुवनेन वन्दितौ नमस्कृतौ चरणौ यस्यैवभूत स एव भगवान्वासुदेव आनीतवानानयन कृतवान्। अत्रापीति। कथचित्प्रकारेणैवमेव पुनर्जीवनवज्जीवन भविष्यति। अनेनोत्कटकोटि प्रदर्शिता। सभावनारूपत्वात्। अनुत्कटकोटावप्रतिकार्यत्व स्वस्याह—तथापीति। अपि अनास्थायाम्। तथापि तव शोकमात्रेण किं जीवित क्रियते, किमथवा लभ्यते प्राप्यते। तत्र हेतुमाह—प्रभवतीति। भगवान्विधि प्रभवति समर्थो भवति। नियतिर्भाग्यर्थ अदृष्टविशेषो ब्रह्मलिखितपद्धतिर्वा, बलवती वीर्यवती। उपसहरति—आत्मेच्छेति। आत्मेच्छया स्वेच्छयोच्छ्वसितुमपि न शक्यम्। उच्छ्वास स्वायत्त सोऽपि स्वेच्छया कर्तु न शक्यते। किमुतान्यदित्यर्थ। एवं सति सर्वं देवाधीन प्रेमसैम्यादिकम्। तद्विहीनस्य तत्रास्थैवेत्याह—अतीति। अस्यैकान्तनिष्ठुरस्यात्यन्तनिर्दयस्य दैवहतकस्य विलसितानि चेष्टितान्यतिपिशुनान्यतिदु खकारीणि भवन्ति। अव्याजेति। अव्याज निष्कपट तेन रमणीय मनोहर प्रेम दीर्घकालं चिरकाल न क्षमते न सहते। भवतु। तर्हि दैववशाद्देवानवरत जन्मान्तरपर्यन्त प्रेम कुतो न निर्वहतीत्यत आह—प्रायेणेति। प्रायेण बाहुबल्येन निसर्गत एव स्वभावत एवानायतस्वभाव भङ्गुराणि सुखानि, आयतस्वभावानि च दु खानि। अत्राय भाव —कार्येण कारणानुमानम्, कार्ये च दैवादैवयो सुखदु खे। तत्र सुखस्यानायतस्वभावोऽविस्तृतिस्वभाव क्षणभङ्गुरत्व च, दु खस्य त्वायतस्वभावो विस्तरणप्रकृति। तद्विपर्ययादभङ्गुरत्वमपि। तत्कारणयोरप्येवमेवेति।

के पुत्र को वही तीनों लोकों म पूजे गये चरणों वाला (भगवान् कृष्ण) यम लोक से उठाकर ले आया था। इस मामले मे भी किसी प्रकार ऐसी ही बात हो जायगी। तो भी क्या किया जाय ? किस को दोष दिया जाय ? दैव सर्वशक्तिमान् है, तथा अदृष्ट बलवान् है। अपनी इच्छा से तो साँस भी नहीं लिया जा सकता है। और इस अत्यन्त निर्दय, दुष्ट दैव की मनमानी चेष्टायें अत्यन्त खोटी हैं। यह (दैव) निष्कपट तथा इसीलिये आकर्षक प्रेम को देर तक सहन नहीं करता है (निष्कपट प्रेम को देर तक नहीं करने देता है)। और साधारणतया सुख

निसर्गत एवानायतस्वभावभङ्गुराणि सुखानि, आयतस्वभावानि च दुःखानि। तथा हि—कथमप्येकस्मिञ्जन्मनि समागमः, जन्मान्तरसहस्राणि च विरहः प्राणिनाम्। अतो नार्हस्यनिन्द्यमात्मान निन्दितुम्। आपतन्ति हि ससारपथमतिगहनमवतीर्णानामेते वृत्तान्ताः। धीरा हि तरन्त्यापदम्' इत्येवविधैरन्यैश्च मृदुभिरुपसान्त्वनैः सस्थाप्य ता पुनरपि निर्झरजलेनाञ्जलिपुटोपनीतेनानिच्छन्तीमपि बलात्प्रक्षालितमुखीमकारयत्।

अत्रान्तरे च श्रुतमहाश्वेतावृत्तान्तोपजातशोक इव समुत्सृष्टदिवसव्यापारो

यावत्पर्यन्त देव तावत्पर्यन्तमेव येनकेनचिद्वस्तुना प्रीतिरुपभोगो मैत्री तस्माद्विषयकाभस्तदनुबन्धादय। एतद्विपर्यये प्रीत्याद्यभावा। एतदेव विवृणोति—तथा हीति। प्राणिनां संसारवर्तिना कथमपि महता कष्टेनैकस्मिञ्जन्मनि समागम संबन्ध। जन्मान्तरसहस्राणि च यावद्विरहो वियोग। प्रकृतमुपसहरति—अत इति। अतो हेतोरनिन्द्य अग्रारूपमात्मान क्षेत्रज्ञ निन्दितु गर्हितु नार्हसि न योग्या भवसि। यतो धीरा सर्वमेवेद दैवकृत मन्यन्ते, न स्वात्मकृतम्, एव च धीरत्वेऽवलम्बिते नात्मान निन्दन्तीत्यर्थं। अधीरत्वेऽनिष्टतामाह—आपतन्तीति। अतिगहनमतिघोर ससारपथ ससृतिमार्गमवतीर्णाना गृहीतावताराणामेते वृत्तान्ता उदन्ता आपद्रूपा आपतन्त्यापद्यन्ते। मग्ना भवन्तीत्यर्थं। धीरत्वे इष्टमाह—धीरा इति। धीरा सात्त्विका पुरुषा। हीति निश्चितम्। आपद कष्ट तरन्ति तत्पार प्राप्नुवन्ति। इत्येवमिति। इति पूर्वोक्तप्रकारेणैव विधैरपूर्वप्रतिपादितैरन्यैश्च मृदुभि सुकुमारैरुपसान्त्वनैर्दृष्टान्तोपदर्शनैस्तां सस्थाप्य स्वस्थीकृत्य पुनरपि द्वितीयवारमप्यञ्जलिपुटोपनीतेन निर्झरजलेनानिच्छन्तीमस्पृहयन्तीमपि बलाद्धठात्प्रक्षालितमुखीं धौतवक्त्रामकारयद् व्यधापयत्।

अत्रान्तरे चेति। अस्मिन्नवसरे। श्रुतेति। श्रुत आकर्णितो यो महाश्वेताया वृत्तान्त

स्वभाव से ही अनायत—अदीर्घ—स्वभाव अर्थात् सक्षिप्त तथा भङ्गुर (नश्वर) होते हैं तथा दु.ख लम्बी अवधि तक रहने के स्वभाव के होते हैं। देखिये तो सही—प्राणियों का सयोग तो क्यों एक ही जन्म मे रहता है और वियोग हजारो भिन्न-भिन्न जन्मों तक रहता है। इस लिये आपके लिये यह उचित नहीं है कि अनिन्द्य होते हुए आप अपनी निन्दा करें। निश्चय ही, बहुत ही गहन सासारिक जीवन के मार्ग पर उतरे हुओं (चलने वाले) क साथ ये घटनायें होती हैं (उन पर ऐसी बातें बीतती है), केवल दृढ़मति (धीर) पुरुष ही आपत्ति पर विजयी होते है।"—इस प्रकार के तथा दूसरे कोमल और सान्त्वना देने वाले वचनो से उसको स्वस्थ करके,[१] अजलि मे लाये हुए झरन क पानी से न चाहती हुई को भी हठात् धोये हुए मुखवाल करवाया (जबर्दस्ती उसका मुँह धुलवाया)।

और इसी समय भगवान् सूय भी मानो महाश्वेता की कहानी से उत्पन्न हुए शोक वाला दिन के अपने कर्त्तव्य[२] को छाड़ कर अधोमुख हो गया। फिर, दिन धुँधला पड़ जाने पर, पूर्णतया

---

१ सस्थाप्य। २ प्रकाश करने के कर्त्तव्य को।

रविरपि भगवानधोमुखतामयासीत्। अथ क्षीणे दिवसे, परिणतप्रियङ्गुमञ्जरीरजोनिभे पिञ्जरिम्णा रज्यमाने विलम्बिनि ब्रध्नमण्डले, अविरलकुसुम्भकुसुमरसरक्तदुकूल-कोमलेन चास्तातपेन मुच्यमानेषु दिङ्मुखेषु, चकोरनयनतारकाकान्तिना च पिङ्गलिम्ना विलिप्यमाने तिरोहितनीलिम्नि व्योम्नि, कोकिलविलोचनच्छविबभ्रूणि चारुणयति सांध्ये भुवनमर्चिषि, यथाप्रधानमुन्मिषत्सु ग्रहग्रामेषु, वनमहिषमलीमसवपुषि च

उदन्तस्तेनोपजात समुत्पन्न शोको यस्यैतादृश इव समुत्सृष्ट उज्झितो दिवसव्यापारो येनैव-विधो भगवान्रविरपि सहस्रांशुरप्यधोमुखतामवाङ्मुखतामयासीदगात्। अथेति। प्रियामामुखे सा महाश्वेता मन्दंमन्दं शनै शनैरुत्थाय पश्चिमां भगवतीं सध्यामुपास्योपासना कृत्वा कमण्डलु-जलेन कुण्डिकानीरेण प्रक्षालितचरणा धौताङ्घ्रिर्वल्कलशयनीये वल्कलशय्याया सखेदमुष्णं च नि श्वस्य नि श्वास मुक्त्वा निषसाद तस्थाविति दूरेणान्वय । कस्मिन्सति। दिवसे वासरे क्षीणे सति। पुन कस्मिन्। दिक्प्रान्ते विलम्बिनि विलम्बायमाने ब्रध्नमण्डले सूर्यबिम्बे सति। कीदृशे। परिणतेति। परिणता पक्वा या प्रियङ्गुमञ्जरी फलिनीवल्लरी तस्या रज परागस्तेन निभे सदृशे। पिञ्जरिम्णेति। पीतरक्तस्तु पिञ्जरस्तस्य भाव पिञ्जरिमा तेन रज्यमाने पिञ्जरता नीयमाने। पुन केषु सत्सु। अस्तातपेन दिङ्मुखेन मुच्यमानेषु सत्सु। अस्तातपं विशेषयन्नाह—अविरलेति। अविरलानि निबिडानि कुसुम्भानां कमलोत्तराणां कुसुमानि तेषा रसस्तेन रक्त यद्दुकूल तद्वत्कोमलेन मृदुना। पुन कस्मिन्सति। व्योम्न्याकाशे सति। अथ व्योम विशेषयन्नाह— विलिप्येति। पिङ्गलिम्ना पिञ्जरिम्णा विलिप्यमाने विलेपनविषयीक्रियमाणे। कीदृशेन पिङ्गलिम्ना। चकोरो विषसूचकस्तस्य नयनयोस्तारका तद्वत्कान्तिर्यस्मिन्स तेन। तिरोहितेति। तिरोहिताच्छादिता नीलिमा यस्मिन्निति व्योमविशेषणम्। पुन कस्मिन्सति। सांध्ये सायकाल सबन्धिन्यर्चिषि दीधितौ भुवनं विष्टपमरुणयति रक्तां नयति सति। अर्चिष विशेषयन्नाह— कोकिलेति। कोकिला वनप्रियास्तेषां विलोचनानि नेत्राणि तेषा छवि कान्तिस्तद्वद् बभ्रूणि कद्रूणि। पुन केषु। ग्रहग्रामेषूडुसमूहेषु यथाप्रधानं यथामुख्यमुन्मिषत्सु विकसत्सु। पुन

बढ़ी हुई (अथवा परिपक्व) प्रियङ्गु मजरी के पराग सरीखे (लाल पीले) तथा पीलीसी लाली से रगे हुए लटकते सूर्य मण्डल के होने पर (अर्थात् जब सूर्य लाल-पीला सा होने लगा), जब गाढ़े कुसुम्भ पुष्पों के रस से लाल रगे हुए रेशमी वस्त्र की भाँति कोमल, अस्तकालीन सूर्य की धूप के द्वारा दिशाओं के अन्तराल (अक्षरार्थ-मुख) छोड़े जाने लगे, छिपी हुई नीलिमा वाला आकाश जब चकोर की आँखों की पुतलियों की आभा वाले लाल भूरेपन से लीपा जाने लगा (हल्का-हल्का रगा जाने लगा), जब कोकिला की आँख की काँति के समान लाल सा भूरा सन्ध्या कालीन प्रकाश ससार को लाल करने लगा, जब नक्षत्रसमूह अपने फैलाव के अनुसार (यथा-प्रधान) आँख खोलने लगे—चमकने लगे—अर्थात् उदित होने लगे, जब जंगली भैंसे के समान मैले (अर्थात् काले) शरीर (रूप) वाला तथा आकाश-मार्ग के विस्तार को चुराये हुआ—विस्तार को कम किये हुआ रात्रि का अन्धकार अपने कालेपन को फैलाने लगा, जब घने (अतनु) अधकार से छिपाई हुई हरीतिमा वाली वनावलियाँ गहरी होने लगीं, जब रात्रि के

मुषिततारकापथप्रथिम्नि कालिमानमातन्वति शार्वरे तमसि, अतनुतिमिरतिरोहित-हरिततासु गहनतां यान्तीषु वनराजिषु, रजनिजलजालबिन्दुजनितजडिम्नि बहल-वनकुसुमपरिमलानुमितगमने चलितलताविटपगहने प्रवृत्ते च पवने, निद्रानिभृतपत-त्रिणि त्रियामामुखे महाश्वेता मन्दमन्दमुत्थाय भगवतीमुपास्य पश्चिमा संध्यां कमण्डलुजलेन प्रक्षालितचरणा वल्कलशयनीये सखेदमुष्ण च निःश्वस्य निषसाद। चन्द्रापीडोऽप्युत्थाय सकुसुम प्रस्रवणजलाञ्जलिमवकीर्य कृतसध्याप्रणामस्तस्मिन् द्वितीये शिलातले मृदुभिर्लतापल्लवैः शय्यामकल्पयत्। उपविष्टश्च तस्यां पुनस्तमेव मनसा

कस्मिन्। शार्वरे शर्वरीसबन्धिनि तमस्यन्धकारे कालिमान श्यामलिमानमातन्वति विस्तारयति सति। अथ तमो विशिनष्टि—वनेति। वनस्यारण्यस्य यो महिषो रक्ताक्षस्तद्वन्मलीमस वपुर्यस्य तत्तस्मिन्। अत एव मुषितस्तारकापथस्याकाशमार्गस्य प्रथिमा विस्तारो येन तत्तस्मिन्। पुन कासु। वनराजिष्वरण्यश्रेणीषु गहनतामकलनीयता यान्तीषु गच्छन्तीषु सत्सु। अतनु यत्तिमिर तमस्तेन तिरोहिताच्छादिता हरितता नीलिमा यासु। पुन कस्मिन्। पवने वायौ प्रवृत्ते वहमाने च सति। अथ पवनस्य शीतत्वमन्दत्वसुगन्धित्वानि वर्णयितुमाह—रजनीति। रजन्येवानवरतप्रचकनरूपप्रवाहवत्त्वाज्जलजाल समूहस्तस्य बिन्दुभि पृषतैरत्यर्थं वा जनितो जडिमा यस्य स तस्मिन्। बहलेति। बहलान्यविरलानि यानि वनकुसुमानि तेषां परिमले-नानुमितमनुमानविषयीकृत गमन यस्य स तस्मिन्। चलितेति। चलित कम्पित लतोपयुक्ता विटपा वृक्षास्तेषा गहन येन स तस्मिन्। अथ त्रियामामुखं विशेषयन्नाह—निद्रेति। निद्रा प्रमीला तया निभृता निश्चला पतत्रिण पक्षिणो यस्मिन्। तदनन्तर चन्द्रापीडोऽप्युत्थाय सकुसुम कुसुमै सह वर्तमान प्रस्रवणस्य निर्झरस्य जलाञ्जलिमवकीर्य विक्षिप्य। कृतेति। कृतो विहित सध्याप्रणामो येन स तस्मिन्मण्डपिकास्थले द्वितीये तदङ्गीकृतादन्यस्मिञ्शिलातले मृदुभि सुकुमारैर्लतापल्लवैर्वल्लीप्रवालै शय्या शयनीयमकल्पयदकरोत्। उपविष्टश्चेति। तस्यां शिलायामुपविष्ट आसेदिवान्पुनस्तमेव पूर्वोक्तमेव महाश्वेतावृत्तान्त मनसा चित्तेनान्व-भावयत्पुनरचिन्तयत्। आसीच्चेति। अस्य चन्द्रापीडस्य मनसि चित्त एवमासीत्। एवपदार्थ-

जल जाल से अर्थात् ओस की बिन्दुओं से उत्पादित शीतलता वाली, जगली फूलों की प्रबल सुगन्ध से अनुमित है गमन (बहना) जिसका ऐसी, तथा बेलों की प्रशाखाओं के सघन समूह को कँपाती हुई वायु बहने लगी, और जब रात्रि के मुख—आरम्भिक—भाग मे पक्षी नींद से निश्चल हो गये तब महाश्वेता धीरे-धीरे उठकर भगवती सायकालीन सध्या की उपासना करके (सायकाल करने योग्य कृत्यों को करके), कमण्डलु के जल से पाँवों को धोकर वल्कल निर्मित शय्या पर कष्टपूर्ण, गर्म आह भर के बैठ गयी। चन्द्रापीड ने भी उठकर फूलों से युक्त झरने के जल की अञ्जली को बिखेर कर (अञ्जलिभर झरने का जल समर्पित करके) सन्ध्या को प्रणाम करके दूसरी शिला पर कोमल लता पत्रों से शय्या बना ली। और उस (शय्या) पर बैठे हुए उसने पुन. महाश्वेता वृत्तान्त को बार बार मन मे सोचा और उसके मन में इस प्रकार विचार उठे—वस्तुत. यह पुष्पायुध कामदेव उपाय-रहित होने के कारण भयानक है, यह कष्ट से

महाश्वेतावृत्तान्तमन्वभावयत्। आसीच्चास्य मनस्येवम्—'अयमप्रतीकारदारुणो दुर्विषहवेगः कष्टः कुसुमायुधः, यदनेनाभिभूता महान्तोऽप्येवमनपेक्षितकालक्रमाः समुत्सारितधैर्याः सद्यो जीवितं जहति। सर्वथा नमो भगवते त्रिभुवनाभ्यर्चितशासनाय मकरकेतनाय' इति। पुनः पप्रच्छ चैनाम्—'भगवति, सा तव परिचारिका वनवासव्यसनमित्र दुःखसब्रह्मचारिणी तरलिका क्व गता' इति। अथ साकथयत्—'महाभाग, यत्तन्मया कथितममृतसंभवमप्सरसां कुलम्, तस्मान्मदिरेति नाम्ना मदिरायतेक्षणा कन्यकाभूत्। तस्याश्चासौ सकलगन्धर्वकुलमुकुटकुड्मलपीठप्रतिष्ठितचरणो देवश्चित्ररथः पाणिमग्रहीत्। अपरिमितगुणाकृष्टहृदयश्च वनितादुर्लभेनाधःकृताशेषान्तःपुरेण

माह—अयमिति। अयं कुसुमायुधः कंदर्पः कष्टोऽनर्थकृत्। अथ कुसुमायुधं विशिनष्टि—अप्रतीति। अप्रतीकारेणाप्रतिक्रियया दारुणो भीषणः। दुरिति। दुःखेन विषहः सोढुं शक्यो वेगो यस्य सः। यदिति हेत्वर्थे। अनेन कंदर्पेणाभिभूतोऽन्यानपेक्षितः कालक्रमो देहविसर्जनक्रमो यैस्ते, तथा समुत्सारितं धैर्यं येषामेवंविधा महान्तोऽपि पुण्डरीकप्रभृतयः सद्यस्तत्कालं जीवितं जहति त्यजन्ति। अतः सर्वथा सर्वप्रकारेण भगवते त्रिभुवनेनाभ्यर्चितं पूजितं शासनमाज्ञा यस्य स तस्मै मकरकेतनायानङ्गाय नमोऽस्तु। एनामिति। एनां महाश्वेतामिति पुनः पप्रच्छ प्रश्नमकार्षीत्। इतिवाच्यमाह—हे भगवति, सा तव परिचारिका सपर्याकारिणी। कीदृशी। वनवासलक्षणं यत् व्यसनं कष्टं तत्र मित्रं सुहृत्। आविष्टलिङ्गत्वान्नपुंसकत्वम्। दुःखेति। दुःखे कृच्छ्रे सब्रह्मचारिणी। 'एकब्रह्मव्रताचारा मिथः सब्रह्मचारिणः' इति कोषः। एवंविधा सा तरलिका क्व गता। अथेति। तत्प्रश्नानन्तरं सा महाश्वेताकथयदवोचत्। किं तदित्याह—महाभागेति। हे सत्पुरुष, अमृतसंभवमप्सरसां कुलं यच्च मया पूर्वमुक्तम्, तस्मात्कुलात्। मदिरेति। मदिरा इति नाम्ना कन्यकाभूत्। तां विशिनष्टि—मदिरेति। मदिरायत्ते घूर्णिते लोचने यस्याः सा तथा। मदिरया नयनयोः कश्चन विस्तारो जायत इति। विस्तीर्णनयनेति यावत्। तस्याश्चेति। तस्या मदिराया देवोऽसौ चित्ररथः पाणिं हस्तमग्रहीत्। पाणिपीडनमकरोदित्यर्थः। चित्ररथं विशेषयन्नाह—सकलेति। सकलं समग्रं यद्गन्धर्वकुलं

सह्य प्रभाव वाला तथा कष्टकर है, क्योंकि इससे आक्रान्त बड़े आदमी भी, इस प्रकार से कालक्रम की अपेक्षा न करके धैर्य का त्याग करके अपने जीवन को तत्काल छोड़ देते हैं। सब बातों को सोचने पर (सर्वथा) तीनों भुवनों में माने गये (पालन किये) आदर्शों वाले भगवान् मकराकित पताका वाले—काम के लिये नमस्कार है।

और उसने उससे फिर पूछा—देवी! वह आपकी सेविका वनवास के दुःख की साथिन, आपके दुःख में समान हिस्सेदार, तरलिका कहाँ चली गयी?

इस प्रश्न के पश्चात् उसने कहा—"महानुभाव! मैंने जो अमृत से उत्पन्न अप्सराओं का कुल बताया था, उस कुल से मदिरा नाम की, आकर्षक तथा बड़ी-बड़ी आँखों वाली, लड़की उत्पन्न हुई थी। और उसके हाथ को उस, गन्धर्वों के समग्र कुल के शुण्डाकार मुकुट रूपी कलिकाओं के बने पीढे पर पाँवों को स्थापित किये हुए महाराज चित्ररथ ने ग्रहण किया था—

हेमपट्टलाञ्छनेन छत्रवेत्रचामरचिह्नेन महादेवीशब्देन परं प्रीतः प्रसादमकरोत्। अन्योन्यप्रेमसंवर्धनपरयोश्च तयोर्यौवनसुखानि सेवमानयोः कालेनाश्चर्यभूतमेकजीवितमिव पित्रोः, अथवा सर्वस्यैव गन्धर्वकुलस्य वा जीवलोकस्य, दुहितृरत्नमुदपादि कादम्बरीति नाम्ना। सा च मे जन्मनः प्रभृत्येकाशनशयनपानासना परं प्रेमस्थानमखिलविस्रम्भधाम द्वितीयमिव हृदयं बालमित्रम्। एकत्र तया मया च गीतनृत्यकलासु कृताः परिचयाः। शिशुजनोचिताभिश्च

देवगायनवशस्तस्य मुकुटानि किरीटानि तान्येव कुड्मलाकारं पीठं पदासनं तत्र प्रतिष्ठितौ चरणौ स्थापितौ येन स। अपरीति। अपरिमिता असंख्या ये गुणादयो लज्जादयस्तैराकृष्टमाकर्षितं हृदयं चेतो यस्य स प्रीतं संतुष्टो महादेवीशब्देन परमुत्कृष्टं प्रसादमनुग्रहमकरोदन्वतिष्ठत्। अथ च महादेवीशब्दं विशेषयन्नाह—वनितेति। वनिताभ्यः स्त्रियो दुर्लभेन दुष्प्रापेण। अध इति। अध कृतमधरीकृतमशेषं समग्रमन्तःपुरं येन स तेन। हेमेति। हेमपट्टस्य सुवर्णपट्टस्य लाञ्छनं चिह्नं यस्मिन्स तेन। छत्रेति। छत्रमातपत्रम्, वेत्रं यष्टिः, चामरं वालव्यजनम्, एतानि चिह्नानि यस्मिन्। अन्योन्येति। अन्योन्यं मिथो यत्प्रेमसंवर्धनं स्नेहोत्पादकं तत्र परयोः सप्रयत्नयोश्च तयोर्यौवनसुखानि तारुण्यसातानि सेवमानयोर्भुञ्जानयोः कालेनानुक्रमेणाऽश्चर्यभूतं चित्रभूतं पित्रोर्मातृजनकयोरेकजीवितमद्वितीयप्राणितमिव। अथवा सर्वस्यैव गन्धर्वकुलस्य जीवलोकस्य वैकजीवितं कादम्बरीनाम्ना दुहितृरत्नमुदपाद्युत्पन्नमभूत्। सा चेति। सा कादम्बरी मे मम जन्मनः प्रभृत्युत्पत्तिदिनादारभ्यैकान्यभिन्नान्यशनशयनपानासनानि यस्याः सा। तत्राशनं भोजनम्, शयनं शय्या, पानं मद्यादि, आसनं चतुष्किकादि। एतेन प्रीत्युत्कर्षः सूचितः। परमुत्कृष्टं प्रेमस्थानं स्नेहस्थानमखिलानां समग्राणां विस्रम्भाणां विश्वासानां धाम द्वितीयमपरं हृदयमिव स्वान्तमिव बालमित्रम्। एकत्रेति। एकस्मिन्स्थले तया मया च गीतनृत्यकलासु कृताः परिचया अभ्यासाः। शिश्विति। शिशुजनोचिताभिर्बालजनयोग्याभि

उसको अपनी पत्नी बनाया था। और (उसके) अनगिनत गुणों के समूह से आकर्षित हुए हृदय वाले उस राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको दूसरी किसी सुन्दरी से दुर्लभ—अप्राप्तव्य, सम्पूर्ण अन्तःपुर (अन्तःपुर की स्त्रियों) को उसके अधीन कर देने वाला, सोने के मुकुट के चिह्न वाला तथा (राजसी) छत्र, बेत और चँवरी चिह्नों वाला 'महादेवी'—पटरानी यह पद देने की कृपा की। जब कि वे दोनों आपसमें पारस्परिक प्रेम को बढाने मे व्यस्त थे, यौवन के सुखों का उपभोग कर रहे थे तब, समयानुसार उनकी (एक स्थायी) आश्चर्य सी ही, माता-पिता की मानो एक जीवन ही, अथवा सारे गन्धर्व कुल की अथवा वस्तुतः सारे जीवों की ही प्राण सरीखी, एक श्रेष्ठ कन्या 'कादम्बरी' नाम वाली उत्पन्न हुई। और वह जन्म से ही मेरी एक साथ खानपान शयन तथा आसन वाली थी (इस लिये) अत्यन्त प्रेम की स्थान, मेरे सारे विश्वास की घर, मानो कि मेरा दूसरा हृदय हो, बालपन की सखी थी। और उसने तथा मैने एक साथ ही नृत्य, संगीत आदि कलाएँ सीखीं। और हमने स्वच्छन्द रूप से रहते हुए अपनी इच्छानुसार बालोचित क्रीडाओं द्वारा (बालकोचित खेल खेलती हुई हमने) अपना

क्रीडाभिरनियन्त्रणनिर्भरमपनीतो बालभावः। सा चामुनैव मदीयेन हतवृत्तान्तेन समुपजातशोका निश्चयमकार्षीत्—'नाहं कथंचिदपि सशोकायां महाश्वेतायामात्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि' इति। सखीजनस्य पुरतः सशपथमभिहितवती च—'यदि कथमपि मामनिच्छन्तीमपि बलात्तातः कदाचित्कस्मैचिद्दातुमिच्छति तदाहमनशनेन वा हुताशनेन वा रज्ज्वा वा विषेण वा नियतमात्मानमुत्स्रक्ष्यामि' इति। सर्वं च तदात्मदुहितुः कृतनिश्चयं निश्चलभाषितं कर्णपरम्परया परिजनसकाशाद्गन्धर्वराजश्चित्ररथः स्वयमशृणोत्। गच्छति काले समुपारूढनिर्भरयौवनामालोक्य स तां बलवदुपतापपरवशः क्षणमपि न धृतिमलभत, एकापत्यतया च न शक्तः किंचिदपि तामभिधातुमित्यपश्यंश्चान्यदुपायान्तरम्। इदमत्र प्राप्तकालमिति

क्रीडाभिरनियन्त्रणं स्वेच्छाविचरणं तेन निर्भरं यथा स्यात्तथा बालभावः शिशुभावोऽपनीतो दूरीकृतः। सा चेति। सा कादम्बर्यमुनैव मदीयेन हतवृत्तान्तेन समुपजातः शोको यस्याः सा तथा। इति निश्चयं निर्णयमकार्षीत्। सखीजनस्यालीजनस्य पुरतोऽग्रतः सशपथं शपथपूर्वकमित्यभिहितवती कथितवती च। इतिद्योत्यमाह—नाहमिति। कथञ्चिदपि केनचित्प्रकारेणापि सशोकायां महाश्वेतायामात्मनः स्वस्य पाणिं नाहं ग्राहयिष्यामि। उद्वाहं न करिष्यामीत्यर्थः। यदीति। यदि कथमपि महता कष्टेन मामनिच्छन्तीमप्यवाञ्छन्तीमपि बलाद्धठात्तातः पिता कदाचित्कस्मैचित्पुरुषाय दातुमिच्छति वाञ्छति तदाहमनशनेन प्रायसा वा, हुताशनेन वह्निना वा, रज्ज्वा रश्मिना वा, विषेण गरलेन वा। सर्वत्र वाशब्दो विकल्पार्थः। नियतं निश्चितमात्मानमुत्स्रक्ष्यामि त्यजिष्यामि। इति तदात्मदुहितुर्निजसुतायाः सर्वं समग्रं कृतो निश्चयो यस्मिन्नेतादृशं निश्चलभाषितं स्थिरजल्पितं परिजनसकाशात्परिच्छदसमीपात्कर्णपरम्परया श्रोत्रप्रणालिकया गन्धर्वराजश्चित्ररथः स्वयमशृणोदाकर्णयत्। गच्छति व्रजति काले समये सति स चित्ररथः समुपारूढं प्राप्तं निर्भरमतिशायि यौवनं तारुण्यं यस्यामेतादृशीं तां कादम्बरीमालोक्य निरीक्ष्य बलवाननुपतापः संतापस्तेन परवशः परायत्तः क्षणमपि धृतिं संतोषं नालभत नाप्तवान्। एकेति। एकापत्यतयैकसंततितयातिप्रियतया च किंचिदपि तां कादम्बरीमभिधातुं कथयितुं न

बचपन बिताया और उसने इसी मेरे शोचनीय वृत्तान्त से (इस मेरी शोचनीय कहानी को सुनकर) शोकयुक्त होकर यह निश्चय कर लिया कि 'मैं महाश्वेता के शोकयुक्त रहते हुए अपना विवाह किसी प्रकार भी नहीं कराऊँगी।' और सखियों के सामने उसने सौगंध खाकर यह कहा—'यदि किसी प्रकार न चाहती हुई भी मुझ को पिता हठपूर्वक किसी को देना चाहेंगे तो मैं अनशन द्वारा, अथवा अग्नि द्वारा, अथवा रस्सी द्वारा, अथवा विष द्वारा अपना जीवन त्याग दूँगी।' और अपनी पुत्री का वह सब अटल कथन, कानों कान, सेवकों द्वारा स्वयं गन्धर्वराज चित्ररथ ने सुन लिया। समय बीतने पर वह अत्यधिक यौवन प्राप्त उस को देखकर, एक भारी चिन्ता का शिकार बना हुआ, क्षणभर भी धैर्य धारण न कर सका (सदा बेचैन रहने लगा)। और एकमात्र सन्तान होने के कारण तथा उसके प्रति अति प्रेम होने के कारण वह उसको कुछ भी कह नहीं सकता था। इस प्रकार (समस्या के समाधान का) कोई दूसरा उपाय

मत्वा तया महादेव्या मदिरया सहावधार्य क्षीरोदनामानं कञ्चुकिनम् 'वत्से महाश्वेते, त्वद्व्यतिरेकेणैव दग्धहृदयाणामिदमपरमस्माकमुपस्थितम्'। 'इदानीं तु कादम्बरीमनुनेतु त्व शरणम्' इति संदिश्य मत्समीप प्रत्युषसि प्रेषितवान्, ततो मया गुरुवचनगौरवेण सखीप्रेम्णा च क्षीरोदेण सार्धं सा तरलिका 'सखि कादम्बरि, क दुःखितमपि जनमतितरा दुःखयसि। जीवन्तीमिच्छसि चेन्मा तत्कुरु गुरुवचनमवितथम्' इति संदिश्य विसर्जिता। नातिचरं गताया च तस्यामनन्तरमेवेमा भूमिमनुप्राप्तो महाभागः' इत्यभिधाय तूष्णीमभवत्।

अत्रान्तरे लाञ्छनच्छलेन विडम्बयन्निव शोकानलदग्धमध्यं महाश्वेताहृदयम्,

---

शक्तो न समर्थं इति हेतोरन्यदुपायान्तर कार्यसाधकप्रकारान्तरमपश्यन्ननवलोकयश्च। इदं कुमारीलक्षणमत्र प्राप्तकालं प्राप्तसमयमिति मत्वा ज्ञात्वा तया मदिरया महादेव्या सहावधार्य निश्चित्य क्षीरोदनामान कञ्चुकिन सौविदल्लमिति सदिश्येत्युक्त्या मत्समीप मदुपान्त प्रत्युषसि प्रभाते प्रेषितवान्प्राहिणोत्। इतिद्योत्यमाह—वत्से इति। हे वत्से महाश्वेते, त्वद्व्यतिरेकेणैव त्वद्वृत्तान्तेनैव दग्धं ज्वलित हृदय येषामेवविधानामस्माकमिद कादम्बरीलक्षणमपर दु खमुपस्थित प्रादुर्भूतम्। इदानीं तु सांप्रत कादम्बरीमनुनेतुमनुनय कर्तुं त्व शरण त्वमेवाश्रय। ततो मया गुरुवचनं पूज्यवचस्तस्य गौरवेणानुल्लङ्घ्यतया सखी आली तस्या प्रेम्णा स्नेहेन च क्षीरोदेन कञ्चुकिना सार्धं सा तरलिका इति सदिश्य कथयित्वा विसर्जिता प्रहिता। इतिद्योत्यमाह—हे सखि कादम्बरि, कं दु खितमपि पीडितमपि जनमतितरामतिशयेन दु खयस्यतितरां पीडयसि। चेन्मां जीवन्तीं श्वसन्तीमिच्छसि वाञ्छसि। तदिति हेत्वर्थे वचनम्। गुरुवचनम् अवितथ सत्य कुरु विधेहि। तस्यां नातिचिरगतायां स्तोककालप्रस्थितायां च तस्यामनन्तरमेवेमा भूमिं महाभाग सत्पुरुष त्वमनुप्राप्तोऽभ्यागत.। इत्यभिधायेत्युक्त्वा तूष्णीं जोषमभवत्।

अत्रान्तरेऽस्मिन्समये शोकानलेन शुग्वह्निना दग्ध मध्य यस्यैतादृश महाश्वेताहृदय लाञ्छनच्छलेनाङ्कमिषेण विडम्बयन्निव सादृश्य कुर्वन्निव। धर्म उज्ज्वल, पातक श्याममिति

न देखते हुए उसने और 'यही यहाँ समयोचित है'—यह समझ कर पटरानी मदिरा के साथ (निश्चय) करके क्षीरोद नाम के कञ्चुकी को यह सन्देश देकर कि 'पुत्रि! महाश्वेते! तेरे ही वृत्तान्त से जले हुए हृदय वाले हमारा यह दूसरा (दुर्भाग्य) उपस्थित हो गया है—अब तो कादम्बरी को (उसका निश्चय छोड़ने को) मनाने के लिये तू ही हमारा आश्रय है'—मेरे समीप प्रातःकाल भेजा था। इस पर मैंने बड़ों के कथन का आदर करते हुये तथा अपनी सखी के प्रति प्रेम के कारण क्षीरोद के साथ उस तरलिका को यह सदेश देकर भेज दिया कि 'सखि, कादम्बरी, पहले से ही दुःखित इस व्यक्ति को क्यों और अधिक दु खी कर रही है! यदि तू मुझे जीती हुई चाहती हो तो अपने माता पिता (गुरु) के वचन को सत्य करो—मान लो।' जब कि तरलिका को गये हुए बहुत देर नहीं हुई थी आप महानुभाव इस स्थान पर आ गये।" यह कह कर महाश्वेता चुप हो गयी।

लगभग इसी समय (अपने भीतर लगे हुए) कलङ्क के बहाने शोक की आग से जले हुए

उद्वहन्निव मुनिकुमारवधमहापातकम्, दर्शयन्निव चिरकाललग्नं दक्षशापानलदाहचिह्नम्, अविरलभस्माङ्गरागधवलो मृगाजिनप्रावृतार्धो वामस्तन इवाम्बिकाया धूर्जटिजटामण्डल-चूडामणिर्भगवानुदगात्तारकाराजः। क्रमेण चोद्गते गगनमहापयोधिपुलिने सप्तलोक-निद्रामङ्गलकलशे कुमुदबान्धवे विघटितकुमुदवने धवलितदशदिशि शङ्खश्वेते श्वेतिमा-नमातन्वति मानिनीमानदस्यौ शशाङ्कमण्डले, शशिकरकलापाकलितास्वातन्वतीषु कृशि-

तेनैव साम्येनाह—उद्वहन्निव धारयन्निव मुनिकुमारवधलक्षणं महापातकं महापापम्। दक्षेति। दक्षप्रजापतेर्यः शापानलः शापवह्निस्तेन दाहस्तस्य चिह्नं चिरकाललग्नं चिरकालीनं दर्शयन्निव प्रकट-यन्निव। पाण्डुरत्वकृष्णत्वसाम्येनोपमानान्तरमाह—अविरलेति। अविरलो निबिडो भस्माङ्गरा-गस्तेन धवलः शुभ्रः। तथा मृगस्याजिनं चर्म तेन प्रावृतमाच्छादितमर्धं यस्यैवंविधोऽम्बिकाया. पार्वत्या वामो दक्षिणेतरः स्तनः कुच इव। धूर्जटिरिति। धूर्जटिरीश्वरस्तस्य जटामण्डलं तस्य चूडामणिर्भगवान्माहात्म्यवांस्तारकाराजश्चन्द्रः उदगादुदितवान्। क्रमेण परिपाट्या शशाङ्कमण्डल उद्गत उदिते सति चन्द्रापीडो महाश्वेतां सुप्तां शयितामालोक्य निरीक्ष्य शनैः शनैर्मन्दं मन्दं पल्लवशयने किसलयशय्यायां समुपाविशदधितस्थौ। अथ च शशाङ्कमण्डलं विशेषयन्नाह—गग-नेति। गगनमपारत्वान्महापयोधिर्जलधिस्तस्य पाण्डुरत्वसाम्यात्पुलिन इव पुलिने जलोज्झितसै-कतरूपे सप्तलोकेषु निद्रायाः प्रमीलाया मङ्गलकलश इव कुमुदस्य कैरवस्य बान्धवे बन्धुसदृशे। विघटितेति। विघटितानि विमुद्रितानि कुमुदवनानि येन स तस्मिन्। धवलितेति। धवलिता. शुभ्रीकृता दश दिशो येन स तस्मिन्। शङ्खवज्जलजवच्छ्वेते शुभ्रे। किं कुर्वति। श्वेतिमानं श्वेतातिशयमातन्वति विस्तारयति सति। अथवा शङ्खस्य श्वेतो गुणस्तस्मिञ्श्वेतिमानं वाक्यवक्यरूपं यथार्थं विस्तारयति सति। इदं च शङ्खे चन्द्रकिरणसंपर्कवशाद्विलक्षणा स्वच्छता दृश्यते तद्वदिवेति केचित्। मानिनीति। मानिन्या मानवत्याः स्त्रियो यो मानः स्मयस्तस्य दस्यौ विपक्षे। मानिनीमानापहारकत्वा-दस्युसादृश्यमिति। पुनः कासु। शशिकराणां चन्द्रकिरणानां कलापेन समूहेन कलितासु सहितास्वौ-षधीषु ग्रहसबन्धिनीषु प्रभासु कान्तिषु कृशिमानं कृशत्वमातन्वतीषु विस्तारयन्तीषु। पुनः केषु।

मध्यभाग वाले महाश्वेता के हृदय से मानो समता करता हुआ, मानो मुनिकुमार की हत्या के के महान् पाप को धारण करता हुआ तथा चिरकाल से लगे हुए दक्षकी शापाग्नि से जलने के कारण पड़े दाग को मानो दिखलाता हुआ और गाढे भस्मलेप से श्वेत हुए तथा मृगचर्म से ढके हुए अर्धभाग वाले पार्वती के बायें स्तन के समान प्रतीत होता हुआ शिवजी के जटाजूट का भूषणभूत भगवान् नक्षत्राधिपति चन्द्रमा उदित हो गया। और आकाश रूपी महासमुद्र में छोटे टापू सरीखे, सातों लोकों की निद्रा के लिये (जलपूर्ण) मगल घट सरीखे, रात्रि-कमलों के मित्र, कुमुदसमूह को विकसित किये हुए, दसों दिशाओं को श्वेत किये हुए, शङ्ख के सदृश, श्वेत (चारों ओर) धवलता को फैलाते हुए, गर्वीली स्त्रियों के गर्व को नष्ट करने वाले (गर्व के शत्रु), चन्द्रमण्डल के क्रमशः ऊपर आजाने पर और जब चन्द्र किरणों के समूह (प्रवाह) से आक्रान्त[1] (अथवा ग्रस्त), नक्षत्रों की चमक दुर्बल होने लगी, और कैलाश पर स्थित चन्द्र-

१, आकलितासु।

मानमौडवीषु प्रभासु, प्रस्रवत्सु च कैलासशशिमणिशिलाना सर्वतः स्रोतःस्राविषु प्रस्रवणेषु, मृणालकन्दलिनि चावस्कन्दपतितचन्द्रकर इव विलुप्तकमलवनशोभे भात्यच्छोदसरःपयसि, समुपोढमोहनिद्रे च द्राघीयोवीचिविचलितवपुषि विरुवति विरहिणि चक्रवाकचक्रवाले निवृत्ते च चन्द्रोदये विद्रुते हर्षनयनजलकणनीहारिणि वियद्विहारिणि मनोहारिणि विद्याधराभिसारिकाजने, चन्द्रापीडः सुप्तामालोक्य महाश्वेता पल्लवशयने शनैः शनैः समुपाविशत्। 'अस्या वेलाया किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायनः, किं वा वराकी पत्रलेखा, कि वा राजपुत्रलोकः' इति चिन्तयन्नेव निद्रा ययौ।

कैलासस्य शिलामणयश्चन्द्रकान्तास्तेषां शिलास्तासा सर्वतोऽभित स्वतोम्भ सरण स्रोतस्तत्स्रवन्तीत्येवशीलेषु प्रस्रवणेषूत्सेषु प्रस्रवत्सु चरत्सु। पुन कस्मिन्सति। अच्छोदाभिधानस्य सरस पयसि पानीये भाति राजति सति। कीदृशे। मृणालाना कन्दला विद्यन्ते यस्मिन्। विलुप्तेति। विलुप्ता विलोप प्राप्ता कमलवनस्य पद्मखण्डस्य शोभा श्रीर्यस्मिन्। अतएव श्वेतत्वसाम्येनोत्प्रेक्षते—अवेति। अवस्कन्दार्थं हननार्थं पतिता प्रविष्टाश्चन्द्रकरा यस्मिन्नेवंविध इव। पुन कस्मिन्सति। विरहिणीविप्रलम्भिनि चक्रवाका द्वन्द्वचरास्तेषा चक्रवाले समूहे विरुवति शब्द कुर्वति सति। अथ चक्रवाकसमूहं विशेषयन्नाह—समुपोढेति। समुपोढा समागता विरहवशान्मोहनिद्रा यस्मिन्। द्राघीय इति। द्राघीयोभिरतिदीर्घाभिर्वीचिभि कल्लोलैर्विचलित कम्पित वपुर्यस्य स तस्मिन्। पुन कस्मिन्। चन्द्रोदये च निवृत्ते सति विद्याधराणा व्योमचारिणामभिसारिकाजने मङ्केनितस्त्रीजने विद्रुते विशकलिते जाते सति। अभिसारिकाजन विशेषयन्नाह—हर्ष इति। हर्षजनिता ये नयनजलकणा एव प्रमोदबाष्पपृषता एव नीहार तुहिन हिम यस्मिन्। वियद्विहारिणि व्योमचारिणि मनोहारिण्यभिरामे। अस्यामिति। अस्या पूर्वोक्तायां वेलाया समयविशेषे। खलु निश्चयेन। मामन्तरेण मद्व्यतिरेकेण वैशम्पायन.। अथ च वराकी पत्रलेखा। अथ च राजपुत्रलोको नृपसुतसमूह किं चिन्तयिष्यति। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यति वर्तमानता। इति चियन्तन्नेवेति ध्यायन्नेव निद्रा ययौ प्रमीलां प्राप्तवान्।

कान्त मणियों की धाराओं मे बहने वाले झरने चारों ओर बह निकले, और बिसतन्तुओं के ढेर (कन्दल) से भरा (कमलों पर) आक्रमण के लिये गिर रही हैं चन्द्रमा की किरणें जिसमे मानों ऐसा तथा अच्छोद सरोवर का जल कमलसमूह की शोभा को नष्ट किये हुआ प्रतीत होने लगा (अर्थात् अच्छोद सरोवर के जल में चन्द्रमा की किरणें घुसने से वहाँ इतनी श्वेतिमा हो गई कि श्वेत कमल वन की शोभा ही मारी गयी), और जब (विरह के कारण) मोह निद्रा के वशीभूत हुआ तथा बड़ी लम्बी लहरों से हिलाये हुए शरीरों वाला विरही चक्रवाल जोड़ा करुण क्रन्दन करने लगा, चन्द्रोदय के पूर्णतया हो जाने पर हर्ष के कारण आँखों मे आये आँसुओं की धूँधवाला आकाश में क्रीडाएँ करता, आकर्षक, विद्याधरों का अभिसारिकासमूह भाग गया। उस समय महाश्वेता सो गयी—यह जान कर चन्द्रापीड पत्तों की शय्या पर धीरे-

अथ क्षीणायां क्षपायामुषसि संध्यामुपास्य शिलातलोपविष्टायां पवित्राण्यघमर्षणानि जपन्त्यां महाश्वेताया निर्वर्तितप्राभातिकविधौ चन्द्रापीडे तरलिका षोडशवर्षवयसा, सावष्टम्भाकृतिना, मदखेदालसगजगमनगुरूणि पदानि निक्षिपता, पर्युषितचन्दनाङ्गरागधूसरोरुदण्डद्वयेन कुङ्कुमरागपिञ्जरारुणेन चामीकरशृङ्खलाकलापनिबिडनियमितं कक्षाबन्धातिरिक्तप्रेङ्खत्पल्लवमधरवास एव केवल वसानेन, निरुदरतया विभक्तमध्येन, विपुलवक्षसा, दीर्घानुवृत्तपीनबाहुना, वामप्रकोष्ठदोलाय-

अथेति। क्षीणायां क्षपायामुषसि प्रभाते सध्यामुपास्य शिलातलोपविष्टाया पवित्राणि पूतान्यघमर्षणान्यापोदेवतास्तुतिरूपाणि महाश्वेताया जपन्त्या स्मरन्त्यां सत्या निर्वर्तितो विहित प्राभातिकः प्रत्युष सबन्धी विधिर्येनैवविधे चन्द्रापीडे सा तरलिका प्रत्युषस्येव प्रादुरासीत्प्रकटीबभूवेत्यन्वय.। कीदृशी। केयूरकनाम्ना गन्धर्वदारकेणानुगम्यमाना। अथ केयूरक विशेषयन्नाह—षोडशेति। षोडश वर्षाणि हायनानि तै परिमित वयो यस्य स तथा तेन। तावन्मात्रप्रमाणेनेत्यर्थं। सहावष्टम्भेनाभिमानेन वर्तमाना सावष्टम्भाकृतिराकारो यस्य स तेन। किं कुर्वता। मदखेदेनालसो मन्थरो यो गजो हस्ती तस्य गमनवद् गुरूणि पदानि चरण न्यासानि निक्षिपता स्थापयता। पर्युषितो गतदिनसक्तो यो चन्दनाङ्गरागस्तेन धूसरमीषत्पाण्डुरमूरुदण्डद्वय सक्थिदण्डद्वितय यस्य स तेन। कुङ्कुमेति। कुङ्कुम केसरं तस्य रागेण पिञ्जर पीतरक्तोऽरुणो देहस्थरागो यस्य स तेन। किं कुर्वता। केवलमधरवासोऽधोंशुकमेव वसानेन परिधानीकुर्वता। अथाधरवासो विशेषयन्नाह—चामीति। चामीकरस्य सुवर्णस्य शृङ्खलाकलापस्तेन निबिड यथा स्यात्तथा नियमित बद्धम्। कक्षेति। कक्षाबन्धात्कटिबन्धादतिरिक्तस्य वस्त्रस्य प्रेङ्खन्त उल्लसन्त पल्लवा अञ्चला यस्य तत्। निर्गत यदुदरं तस्य भावस्तत्ता तया विभक्तो विभागीकृतो मध्यो भागो यस्य स तेन। अनेन सामुद्रिकसुलक्षणत्वमुक्तम्। विपुलेति। विपुल बृहद्वक्षो भुजान्तरं यस्य स तेन। दीर्घेति। दीर्घावायतावनुवृत्तपीनौ

धीरे लेट गया[1] और "इस समय मेरे विषय में[2] वैशम्पायन अथवा बेचारी पत्रलेखा क्या सोच रही होगी'—यह सोचता हुआ ही सो गया।

इसके पश्चात् जब रात्रि बीत गयी, उषा काल में प्रात.कालीन सध्या की उपासना करके शिलातल पर बैठी हुई महाश्वेता पवित्र अघमर्षण मत्रों का पाठ करने लगी, और चन्द्रापीड भी अपने प्रभातकालीन धर्मकृत्य को समाप्त कर चुका तब प्रात॰काल ही तरलिका प्रकट हो गयी। वह एक सोलह वर्ष की अवस्था वाले, सबल आकृति वाले, नशे से उत्पन्न थकावट के कारण अलस गजराज के चरणन्यास की भाँति भारी कदम रखते हुए, बासी (पर्युषित) अर्थात् धुँधले पड़े हुए चन्दनलेप द्वारा धूसर हुई (गोल लम्बी) दो जघाओं वाले कुकुम के रग के कारण पीले लाल रगवाले, स्वर्ण शृंखला समूह से दृढ़ता से बँधे हुए कटिबन्ध के अतिरिक्त शेष सारा आँचल जिसका हवा में हिल रहा था ऐसे एक मात्र अधोवस्त्र को ही पहने हुए, कुछ-कुछ निकले हुए पेट के कारण बीच में (कटि भाग पर) मानो दो टुकड़ों में विभक्त से

१. समुपाविशत्। २. मामन्तरेण।

मानमाणिक्यवलयेन, कर्णाभरणमणेर्विप्रकीर्यमाणमधोमुखकिरणेन्द्रायुधजालवर्णांशुकोत्तरीयमिवैकस्कन्धक्षिप्तमुद्वहता, चूतपल्लवकोमलमनवरतताम्बूलबद्धरागान्धकारमधरं दधता, कर्णान्तायतस्य स्वभावधवलस्य धवलिम्ना लोचनयुगलस्य धवलयतेव दिगन्तराणि कुमुदवनानीव वर्षता, पुण्डरीकमयमिव दिवसं कुर्वता, कनकपट्टपृथुललाटेन, अलिकुलनीलसरलशिरसिजेन, अग्राम्याकृतिना, राजकुलसंपर्कचतुरेण, गन्धर्वदारकेण केयूरकनाम्नानुगम्यमाना प्रत्यूषस्येव प्रादुरासीत्। आगत्य च कोऽयमित्युपजातकुतूहला चन्द्रापीडं सुचिरमवलोक्य महाश्वेतायाः समीपमुपसृत्य कृत-

---

परम्परया पुष्टौ बाहू भुजौ यस्य स तेन। वामेति। वामप्रकोष्ठे दक्षिणेतरकलाचिकाया दोलायमानं कम्पमानं माणिक्यवलयं रत्नकङ्कणं यस्य स तेन। कर्णेति। कर्णाभरणमणेः श्रोत्रभूषणरत्नस्य विप्रकीर्यमाणं विक्षिप्यमाणमधोमुखकिरणानामिन्द्रायुधजालवर्णं शक्रचापसमूहरागं यदंशुकोत्तरीयमुत्तरासङ्गं चित्रवस्त्रमेकस्कन्धक्षिप्तमिवैकांसन्यस्तमिवोद्वहता धारयता। पुनः किं कुर्वता। अधरं दन्तच्छदमोष्ठं दधता। अधरं विशेषयन्नाह—चूतेति। चूतपल्लववदाम्रकिसलयवत्कोमलं सुकुमारम्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं ताम्बूलस्य नागवल्लया दलस्य बद्धो रागान्धकारो यस्मिन्। कर्णेति। कर्णान्तायतस्य श्रोत्रप्रान्तप्राप्तस्य स्वभावेन धवलस्य शुभ्रस्य लोचनयुगलस्य नेत्रयुग्मस्य धवलिम्ना शुभ्रत्वेन दिगन्तराणि धवलयतेव शुभ्रीकुर्वतेव कुमुदवनानीव कैरवखण्डानीव वर्षता वृष्टिं कुर्वता। पुण्डरीकमयमिव सिताम्भोजमयमिव दिवसं वासरं कुर्वता सृजता। कनकेति। कनकपट्टवत्सुवर्णपट्टवत्पृथु विस्तीर्णं ललाटमलिकं यस्य स तेन। अलीति। अलिकुलवन्नीला सरला अवक्रा शिरसिजा केशा यस्य स तेन। अग्राम्येति। अग्राम्या नागरीयाकृतिराकारो यस्य स तेन। राजेति। राजकुलेन यः संपर्कः संबन्धस्तत्र चतुरेण चातुर्ययुक्तेन। आगत्य चेति। आगत्य चैत्य च। कोऽयमित्युपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं यस्या सा तया। सुचिरं चिरकालं यावत्। चन्द्रापीडमवलोक्य

प्रतीत होते, विशाल छाती वाले तथा लम्बी गोल पुष्ट भुजाओं वाले, बायीं कलाई पर झूल रहे माणिक्य (लाल मणि) के वलय वाले, (अपने) कर्णाभूषण की मणि से चारों ओर बिखरते हुए अधोमुखी किरणों के इन्द्रधनुष सरीखे जाल को लालरंग से रंगे हुए उत्तरीय वस्त्र की भाँति एक कन्धे पर (फेंके हुए को) धारण किये हुए, आम्र की कोंपल के समान कोमल तथा निरन्तर पान चबाने से गहरे रंग के (काले) हुए होठ को धारण किये हुए, कानोंतक फैले हुए तथा स्वभाव से श्वेत, नेत्रों की जोड़ी की श्वेतिमा से दिगन्तरालोंको मानो श्वेत करते हुए मानों कुमुदों (श्वेत कमलों) के समूह को बरसाते हुए, दिन को मानो पुण्डरीक कमलों का बनाते हुए, सोने की पट्टी सरीखे चौड़े मस्तक वाले भ्रमर समूह के समान काले तथा सीधे (खड़े) बालों वाले अग्राम्य आकृति (चाल ढाल) वाले (अर्थात् नागरिक से प्रतीत होते), एक राजकीय भवन (कुल) से सम्पूर्ण होने के कारण चतुर बने हुए, केयूर नाम वाले गन्धर्व बालक से अनुगम्यमान थी। और आकर, 'यह कौन है'—इस प्रकार की उत्सुकता को जगाये

प्रणामा सविनयमुपाविशत्। अनन्तरं नातिदूरानतेनोत्तमाङ्गेन प्रणम्य केयूरकोऽपि महाश्वेतादृष्टिनिसृष्टं नातिसमीपवर्ति शिलातलं भेजे। उपविष्टश्च तमदृष्टपूर्वमधःकृत-कुसुमायुधमुपहसितसुरासुरगन्धर्वविद्याधररूपं रूपातिशयं चन्द्रापीडस्य दृष्ट्वा विस्मय-मापेदे। परिसमाप्तजपा तु महाश्वेता पप्रच्छ तरलिकाम्—'किं त्वया दृष्टा प्रियसखी कादम्बरी कुशलिनी। करिष्यति वा तदस्मद्वचनम्' इति। अथ सा तरलिकया विनया-वनतमौलिरीषदवलम्बितकर्णपाशमतिमधुरया गिरा व्यजिज्ञपत्—'भर्तृदारिके, दृष्टा खलु मया भर्तृदारिका कादम्बरी सर्वतः कुशलिनी। विज्ञापिता च निखिलं भर्तृदुहितुः संदेशम्। आकर्ण्य च यत्तया संततमुक्तस्थूलाश्रुबिन्दुवर्षं रुदित्वा प्रतिसंदिष्टम्, तदेष

निरीक्ष्य महाश्वेतायाः समीपमुपसृत्यागत्य कृतो विहितः प्रणामो यया सा सविनयमुपाविशदुप विष्टा। अनन्तरमिति। तरलिकावस्थानान्तरमतिदूरादानतेन नम्रेणोत्तमाङ्गेन शिरसा प्रणम्य नमस्कृत्य केयूरकोऽपि महाश्वेतया दृष्ट्या निसृष्टं दर्शितं नातिसमीपवर्ति नातिनिकटवर्ति शिला-तलं भेजेऽधितस्थौ। उपविष्टश्चेति। तत्रोपविष्ट आसीनश्च स तमदृष्टपूर्वमनवलोकितपूर्वं मध कृत कुसुमायुधो येन स तमुपहसितं न्यक्कृतं सुरासुरगन्धर्वविद्याधराणां रूपं सौन्दर्यं येन स तमेवंविधं चन्द्रापीडस्य रूपातिशयं सौन्दर्याधिक्यं दृष्ट्वा चावलोक्य च विस्मयमाश्चर्यमापेदे प्राप्तवान्। परीति। परिसमाप्तः पूर्णीभूतो जपो जापो यस्याः सैवंविधा महाश्वेता तरलिका मिति पप्रच्छेत्यप्राक्षीत्। इतिद्योत्यमाह—कादम्बरीति। कादम्बरी प्रियसखी वल्लभवयस्या कुशलिनी कल्याणवती किं त्वया दृष्टावलोकिता। वा अथवा तत्पूर्वोक्तमस्मद्वचनं करिष्यति। अथेति। तत्प्रश्नानन्तरं सा तरलिका विनयेनावनतो मौलिर्यया सा ईषत्किंचिदवलम्बित-कर्णपाशं यथा भवति तथा व्यजिज्ञपद्विज्ञापनां चकार। कया। अतिमधुरयातिमिष्टया गिरा वाण्या। हे भर्तृदारिके खलु निश्चयेन कादम्बरी भर्तृदारिका सर्वतः सर्वप्रकारेण कुशलिनी कल्याणवती दृष्टावलोकिता। विज्ञापिता च निखिलं समग्रं भर्तृदुहितुर्भवत्याः संदेश-मुदन्तम्। आकर्ण्य चेति। तच्छ्रुत्वा च यत्तया कादम्बर्या सततं निरन्तरं मुक्ता स्थूला येऽश्रुबिन्दवस्तेषां वर्षो यस्मिन्नेतादृशं यथा स्यात्तथा रुदित्वा रुदनं कृत्वा प्रतिसंदिष्टं प्रत्युत्तरः

हुई चन्द्रापीड को बहुत देर तक देखकर महाश्वेता के समीप पहुँच कर बैठ गयी। और इसके पश्चात् केयूरक भी, बहुत दूर तक (नीचे तक) झुकाये हुए मस्तक के द्वारा प्रणाम करके, महाश्वेता द्वारा अपनी आँख से दिखाये गये समीपवर्ती शिला तल पर बैठ गया। और बैठा हुआ वह, उस पहले कभी न देखे हुए, कामदेव को तुच्छ बनाये हुए, देवों, राक्षसों, गन्धर्वों तथा विद्याधरों की सुन्दरता का उपहास करते हुए चन्द्रापीड के उस असीम सौन्दर्य को देखकर अचम्भे में आ गया। जपको समाप्त किये हुई महाश्वेताने तरलिका से पूछा—"क्या तने प्रिय सहेली कादम्बरी को कुशलता-से युक्त (स्वस्थ) देखा? क्या वह मेरा वह कहना मानेगी?"

इसके पश्चात् नम्रता से मस्तक झुकाते हुई, कान की लौ को कुछ तिरछी करके अत्यन्त मीठी बोली में, उस तरलिका ने निवेदन किया—'राजपुत्रि! निश्चय ही मैंने राजपुत्री कादम्बरी को सब प्रकार से कुशलिनी देखा और तुम्हारा समूचा सन्देश उसको बताया।

तयैव विसर्जितस्तस्या एव वीणावादकः केयूरकः कथयिष्यति' इत्युक्त्वा विरराम। विरतवचसि तस्या केयूरकोऽब्रवीत्—'भर्तृदारिके महाश्वेते, देवी कादम्बरी दृढ-दत्तकण्ठग्रहा त्वा विज्ञापयति—'यदियमागत्य मामत्रदत्तरलिका तत्कथय किमयं गुरुजनानुरोधः, किमिदं मच्चित्तपरीक्षणम्, किं गृहनिवासापराधनिपुणोपालम्भः, किं प्रेमविच्छेदाभिलापः, किं भक्तजनपरित्यागोपायः, किं वा प्रकोपः। जानास्येव मे सहजप्रेमनिस्यन्दनिर्भरं हृदयम्। एवमतिनिष्ठुरं संदिशन्ती कथमसि न लज्जिता। तथा मधुरभाषिणी केनासि शिक्षिता वक्तुमप्रियं परुषमभिधातुं वा। स्वस्थोऽपि

कृत, तदेष तयैव कादम्बर्यैव विसर्जितस्त्वन्निकटे प्रेषितस्तस्या एव कादम्बर्या एव वीणावादक केयूरक कथयिष्यति निवेदयिष्यति। इत्युक्त्वा विरराम विरता बभूव। अथ विरतवचसि तस्या केयूरकोऽब्रवीदवोचत्। हे भर्तृदारिके महाश्वेते, देवी कादम्बरी दृढ दत्त कण्ठग्रहो यया सा। कृतालिङ्गनेत्यर्थः। त्वां विज्ञापयति विज्ञप्तिं करोति। किं विज्ञप्तिं कृतवतीत्याह—यदियमिति। इय तरलिका मामागत्यैत्य यदवददवोचत्तत्कथय ब्रूहि। किमय गुरुजनानुरोध किं गुरुजनपारवश्यम्। किमिद मच्चित्तस्य मन्मनस परीक्षण परीक्षाकरणम्। किं गृहनिवासलक्षणो योऽपराध आगस्तस्य निपुणो योग्योऽयमुपालम्भ। किं प्रेमविच्छेदार्थं स्नेहनिवृत्त्यै अयमभिलाप सलाप। किं भक्तजनस्य सेवकजनस्य उपाय प्रपञ्च। किंवा प्रकोप प्रतिघ। सहज स्वाभाविक यत्प्रेम तस्य निस्यन्दो रसस्तेन निर्भरं हृदय मे मम जानास्येव जानन्त्येव। एवमतिनिष्ठुरमतिपरुष संदिशन्ती कथयन्ती कथ न लज्जितासि। तथा त्व मधुरभाषिणी सत्यप्रियमनिष्ट वक्तु जल्पितु परुष कठिनमभिधातु कथयितु केन पुसा त्वं शिक्षितासि हितोपदेशविषयीकृतासि। स्वास्थ्यवशादेतादृशी मतिरुत्पद्यत इत्यभिप्रायेणाह—स्वस्थोऽपीति। स्वास्थ्यवानपि तावदादौ सहृदय पण्डित कनीयसि लघीयसीदृशेऽवलान-

---

और उसने सुनकर, निरन्तर रोकर, मोती सरीखे मोटे-मोटे आँसुओं की वर्षा करते हुए, जो प्रति (बदले का) सन्देश भेजा है, उसको यह, उस ही द्वारा भेजा हुआ उसका वीणावादक केयूरक कहेगा'—यह कह कर रुक गयी—चुप हो गयी। उसके मौन हो जाने पर केयूरक बोला—'राजपुत्रि! महाश्वेता! देवी कादम्बरी आपकी ग्रीवा का आलिङ्गन (दृढ़ता से) किये हुई सूचित करती है (निम्नलिखित सदेश भेजती है)—'इस तरलिका ने आकर जो कहा था, बता क्या वह (मेरे) माता पिता की आज्ञाकारिता है? अथवा क्या यह मेरे मन (हृदय) की परीक्षा है? अथवा मेरे गृहनिवास रूपी अपराध पर एक चतुराई भरा उलहना है? अथवा (हमारी) मित्रता को तोड़ने की इच्छा है? अथवा अपने भक्त व्यक्ति को छोड़ने का साधन है अथवा क्रोध है? तुम जानती ही हो कि मेरा हृदय (तुम्हारे प्रति) स्वाभाविक प्रेम के प्रवाह से आप्लावित है, (फिर भी) इतना क्रूर सदेश देती हुई तुम को लज्जा क्यों

तावत्क इव सहृदयः कनीयस्यवसानविरसे कर्मणीदृशे मतिमुपसर्पयेत्, किमुताति-दुःखाभिहतहृदयोऽस्मद्विधो जन । सुहृद्दुःखखेदिते हि मनसि कैव सुखाशा, कैव निर्वृतिः, कीदृशाः सभोगाः, कानि वा हसितानि, येनेदृशी दशामुपनीता प्रियसखी, कथमतिदारुण तमह विषमिवाप्रियकारिण काम सकाम कुर्याम्। दिवसकरास्तमय-विधुरासु नलिनीषु सहवासपरिचयाच्चक्रवाकयुवतिरपि पतिसमागमसुखानि त्यजति, किमुत नार्यः। यत्र भर्तृविरहविधुरा परिहृतपरपुरुषदर्शना दिवानिश निवसति प्रिय

विरसे प्रान्तदु खदे कर्मणि क्रियायां क इव को जनो मतिं बुद्धिमुपसर्पयेत्। अस्वस्थाना तु दूरत आस्तेत्याह—किमुतेति। अतिदु खेनाभिहत हृदयं यस्यैवंभूतोऽस्मद्विधो जन किमुत कथ्यते। सर्वथा तत्कर्मणि न प्रवर्तत इत्यर्थ। हीति निश्चितम्। सुहृद्दु खखेदिते मित्र दु खाभिभूते मनसि कैव सुखाशा क सौख्याभिलाष। केव निर्वृतिर्मन सतुष्टि। सभोगा इन्द्रियार्था कीदृशा किंस्वरूपा। हसितानि स्मितानि कानि च कीदृशानि। येन कामेन प्रियसखीदृशीं दशामवस्थामुपनीता प्रापिता त विषमिवाप्रियकारिणमनिष्टविधायिनमतिदारुण मतिभीषण कथ काम सकाम साभिलाष कुर्याम्। प्रणयसखीदु खेन स्वस्मिन् दु खवत्व निदर्शयन्नाह—दिवसेति। दिवसकरस्य सूर्यस्यास्तमयेन परद्वीपान्तरगमनेन विधुरासु दु खितासु नलिनीषु कमलिनीषु सत्सु सहवासपरिचयाच्चक्रवाकयुवतिरपि द्वन्द्वचरवनितापि पतिसमागम सुखानि भर्तृसंयोगसौख्यानि त्यजति जहाति, तर्हि नार्योऽपि योषितोऽपि किमुत वाच्या। न किमपि कथनीया इत्यर्थ। यत्रेति। यत्र हृदये भर्तृविरहेण विधुरा दु खिता परिहृत परित्यक्त परपुरुषाणामपरपुसां दर्शन वीक्षण यया सैवविधा प्रियसखी महाश्वेता दिवानिश

नहीं आई ? उस प्रकार (उतना) मीठी बोलने वाली भी तुम को अप्रिय अथवा कठोर बोलना किसने सिखा दिया है ? पहले (स्वय) सहानुभूतिपूर्ण कौन स्वस्थ व्यक्ति ऐसे छोटे से (तुच्छ) तथा परिणाम में कडुए ऐसे काम में अपनी बुद्धि को सम्भवत. लगायेगा ? फिर हमारे (मेरे) सरीखे अत्यन्त दुःख से पीड़ित हृदय वाला व्यक्ति तो ऐसा क्यों करेगा ? (ऐसे व्यक्ति के विषय में तो कहना ही क्या है ?) मित्र के दु ख से दु खी मन में (मन वाले व्यक्ति को) सुख की कौन सी आशा, कौन सी मन की तृप्ति, कैसे सुखोपभोग अथवा कौन सी खुशियाँ हो सकती हैं ? जिस काम ने मेरी प्रिय सखी को ऐसी (दु खपूर्ण) स्थिति में पहुँचा दिया है, उस अतिनिष्ठुर, विष की भाँति अहित करने वाले काम को मैं पूर्णमनोरथ कैसे करूँ ? सूर्य के अस्त हो जाने के कारण दुःखिता नलिनियों के होने पर उनमें साथ-साथ रहने के कारण हुए परिचय वश, चकवी भी अपने पति के साथ समागम करने के सुख को त्याग देती है, फिर नारियाँ इससे भी अधिक कितना करें ? जिस (मेरे हृदय) में पति के वियोग से पीड़िता, दूसरे पुरुष के दर्शन को छोड़े हुई मेरी प्यारी सहेली दिन रात रहती है, उस (मेरे हृदय) में दूसरा व्यक्ति कैसे प्रविष्ट हो ? और जिस समय पतिवियोग से दुःखित तथा कठोर व्रत से (अपने) अंगों को दुर्बल किये हुई मेरी प्रिय सहेली भारी कष्ट झेल रही है, उस समय (तत्र) इस

सखी कथमिव तन्मम हृदयमपरः प्रविशेज्जनः। यत्र च भर्तृविरहविधुरा व्रतकर्शिताङ्गी प्रियसखी महत्कृच्छ्रमनुभवति, तत्राहमवगणय्यैतत्कथमात्मसुखार्थिनी पाणि ग्राहयिष्यामि, कथ वा मम सुख भविष्यति, त्वत्प्रेम्णा चास्मिन्वस्तुनि कुमारिकाजनविरुद्ध स्वातन्त्र्यमालम्ब्याङ्गीकृतमपयशः, समवधीरितो विनयः, गुरुवचनमतिक्रामितम्, न गणितो लोकापवादः, वनिताजनस्य सहजमाभरणमुत्सृष्टा लज्जा, सा कथय कथमिव पुनरत्र प्रवर्तते। तदयमञ्जलिरुपरचितः, प्रणामोऽयम्, इद च पादग्रहणम्, अनुगृहाण माम्, वनमितो गतासि मे जीवितेन सहेति मा कृथाः स्वप्नेऽपि पुनरिममर्थं मनसि' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। महाश्वेता तु तच्छ्रुत्वा सुचिर विचार्य 'गच्छ,

महोरात्रं निवसत्यधितिष्ठति तन्मम हृदयमपर इतर प्राकृतो जन कथमिव प्रविशेत्कथ प्रवेश कुर्यात्। यत्र चेति। यत्र यस्मिन्समये भर्तुं पत्युर्विरहेण वियोगेन विधुरा दु खिता व्रतेन नियमेन कर्शित कृशता नीतमङ्ग शरीर यया सैवविधा प्रियसखी महत्कृच्छ्र कष्टमनुभवत्यनुभवविषयीकरोति, तत्र तस्मिन्समयेऽह प्रियसख्येतद्दु खमवमणय्यावगणनां कृत्वात्मसुखार्थिनी स्वस्य सुखाभिलाषिणी कथ पाणिं कर ग्राहयिष्यामि ग्रहण कारयिष्यामि। एव सत्यनुष्ठिते पाणिग्रहे न स्वेष्टसिद्धिरित्यत आह—कथमिति। वेति पक्षान्तरे। कथ मम सुखं भविष्यति। इष्टविरहव्याकुलचित्तत्वेन सुखमिति भाव। अथ त्वया साक यत्प्रेम तदपि न भविष्यति। 'ईषिते ईषित चेत्स्यात्तदा प्रेम प्रवर्तते' इति न्यायात्। अतस्त्वत्प्रेम्णा त्वत्स्नेहेनास्मिन्वस्तुनि पाणिग्रहणविषये मया कुमारिकाजनविरुद्ध स्वातन्त्र्य स्वेच्छाचारित्वमालम्ब्यापयशोऽपकीर्तिरङ्गीकृत स्वीकृतम्। पित्रादिभि पाणिग्रहण कार्यमाणापि पितुराज्ञामित्यपयश। समवधीरितस्तिरस्कृतो विनय गुरुवचन पित्रादीनां वचोऽतिक्रामितमुल्लङ्घितम्। तथा लोकापवादो जनापवादो न गणितो न विचारितः। वनिताजनस्य स्त्रीजनस्य सहजं स्वाभाविकमाभरण भूषण लज्जा त्रपा सा चोत्सृष्टा त्यक्ता। कथय प्रतिपादय। एतादृशो जन कथमिव पुनरत्रास्मिन्कर्मणि प्रवर्तते प्रवृत्ति करोति। उपसहरति—तदिति हेत्वर्थे। अयमञ्जलिरुपरचितो निबद्ध। अय च प्रणामो नमस्कार। इद च पादग्रहणमभिवादनम्। इति हेतोर्मामनुगृहाणानुग्रहं कुरु। इतो मत्समीपान्मे मम जीवितेन प्राणितेन सह वन गतासि प्राप्तासि इति स्वप्नेऽपि स्वप्नावस्थायामपि पुनर्द्वितीयवारमिम पूर्वोक्तमर्थं मनसि चित्ते मा कृथा मा व्यधिथा। इत्यभिधायेत्युक्त्वा

सब की उपेक्षा करके अपना सुख चाहती हुई मैं कैसे (अपना) विवाह करवाऊँगी? अथवा मुझे सुख ही कैसे होगा? और (तुम्हारे प्रति अपने) प्रेम के कारण ही मैंने, इस मामले में, कुमारियों के (स्वभाव के) विरोधी स्वातन्त्र्य का आश्रय लेकर अकीर्ति स्वीकार की है, नम्रता की उपेक्षा की है, अपने माता पिता के वचन का उल्लघन किया है, लोकनिंदा की परवाह नहीं की है, स्त्रियों के स्वाभाविक आभूषण—लज्जा को छोड़ दिया है—बता ऐसी मैं फिर इस विषय मे (विवाह करने के विषय मे) कैसे प्रवृत्त होऊँ? इस लिये, मैंने हाथ जोड़ लिये हैं, यह मेरा प्रणाम है, और यह मेरा पाँव पकड़ना है, मुझ पर कृपा करो, यहाँ से तुम मेरे जीवन के साथ (मेरे जीवन को लिये हुई) जगल को गयी हो, इसलिये स्वप्न मे भी फिर इस बात को (विचार को) अपने मन मे मत करना।"—यह कह कर केयूरक चुप हो गया। किन्तु

स्वयमेवाहमागत्य यथार्हमाचरिष्यामि' इत्युक्त्वा केयूरकं प्राहिणोत्। गते च केयूरके चन्द्रापीडमुवाच—'राजपुत्र, रमणीयो हेमकूट', चित्रा च चित्ररथराजधानी, बहुकुतूहलः किंपुरुषविषय', पेशलो गन्धर्वलोकः, सरलहृदया महानुभावा च कादम्बरी। यदि नातिखेदकरमिव गमनं कलयसि, नावसीदति वा गुरुप्रयोजनम्, अदृष्टचरविषयकुतूहलि वा चेतः, मद्वचनमनुरुध्यते वा भवान्, अतिसुखदायि वाश्चर्यदर्शनम्, अर्हसि वा प्रणयम्, इममप्रत्याख्यानयोग्यं वा जनं मन्यसे, समारूढो वा परिचयलेशः, अनुग्राह्यो वाय जनः, ततो नार्हसि निष्फलां कर्तुमभ्यर्थनामिमाम्। इतो मयैव सह गत्वा

तूष्णीमभून्मौनं कृतवती। महाश्वेता तु तत्पूर्वोक्तं श्रुत्वाकर्ण्य सुचिरं चिरकालं यावत् विचार्य विमृश्य त्वं गच्छ व्रज वयमेवात्मनैव। अहमागत्य यथार्हं यथायोग्यमाचरिष्यामीत्युक्त्वा केयूरकं प्राहिणोत्प्रेषितवती। गते च केयूरके चन्द्रापीडमुवाचाब्रवीत्। किं तदित्याह—राजपुत्रेति। हे राजपुत्र नृपसूनो, अयं हेमकूटो रमणीयो मनोहरः। चित्ररथो गन्धर्वनाथस्तस्य राजधानी नृपनिवासनगरी चित्रा विविधाश्चर्ययुक्ता। बहून्यनेकानि कुतूहलान्याश्चर्याणि यस्मिन्नेवंविधः किंपुरुषाणां किंनराणां विषयो देशः। गन्धर्वलोको देवगायनजनः पेशलः सुन्दरः। 'पेशलं हृद्यसुन्दरे' इति कोषः। सरलहृदयाकुटिलचित्ता महानुभावा च कादम्बरी भर्तृदारिका। यदीति प्रत्येकमभिसंबध्यते। नातिखेदकरमिव नातिप्रयासजनकमिव गमनं यानं कलयसि जानासि। वेति विकल्पार्थे। गुरुप्रयोजनं महानर्थो नावसीदति न विलम्बितो भवति। वेति पूर्ववत्। अदृष्टचरोऽनवलोकितपूर्वो यो विषयो देशस्तत्र कुतूहलं विद्यते यस्यैवंभूतं यदि चेतः। वाथवा भवान्मद्वचनं मद्वाक्यमनुरुध्यते समीहते। अनुपूर्वको रुध दिवादिरिच्छार्थः। वेति पक्षान्तरे। यद्यतिसुखदाय्यतिशयेन सौख्यप्रदमाश्चर्यदर्शनं कुतूहलावलोकनम्। वेति पूर्ववत्। अर्हसि वाञ्छसि यदि प्रणयं स्नेहम्। इमं मल्लक्षणं जनमप्रत्याख्यानयोग्यम निराकरणयोग्यं वा मन्यसे जानासि। समारूढः प्राप्तो वा परिचयलेशः संस्तवलवः। अनुग्राह्यो वानुग्रहयोग्यो वाय जनः। ततस्तस्माद्धेतोर्निष्फलां रिक्तामिमामभ्यर्थनां कर्तुं विधातुं नार्हसि न

महाश्वेता ने वह सुनकर, देरतक (उस पर) विचार करके 'जा, मैं अपने आप ही आकर यथोचित करूँगी'—यह कह कर केयूरक को भेज दिया।

और केयूरक के चले जाने पर उसने चन्द्रापीड से कहा—"राजकुमार! हेमकूट (एक) रम्य (प्रदेश) है, और चित्ररथ की राजधानी चमत्कारमयी है। किन्नरों का देश उत्सुकताओं से भरा है, गन्धर्व लोक सुन्दर है और कादम्बरी निष्कपट तथा उदार स्वभाव वाली है। यदि आप समझें कि चलना बहुत अधिक कष्टकर नहीं होगा, अथवा किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में विघ्न नहीं पड़ेगा, अथवा आपका मन पूर्व न देखे गये देश को देखने के लिये उत्सुक है, अथवा आप मेरे कथन के अनुसार करना चाहते हैं, यदि अद्भुत वस्तुओं को देखना (आपको) सुखदायक प्रतीत होता है, अथवा यदि मैं ऐसी प्रार्थना के योग्य हूँ, अथवा आप इस व्यक्ति को (मुझको) अस्वीकार करने योग्य मानते हैं, अथवा (हम दोनों में) थोड़ा सा भी परिचय उत्पन्न हो गया है, अथवा इस व्यक्ति (मुझ) को आप कृपा के योग्य मानते हैं तो आप

हेमकूटमतिरमणीयतानिधानं तत्र दृष्ट्वा च मन्निर्विशेषा कादम्बरीमपनीय तस्याः कुमति-मनोमोहविलसितमेकमहो विश्रम्य श्वोभूते प्रत्यागमिष्यसि। मम हि निष्कारण-बान्धव भवन्तमालोक्यैव दुःखान्धकारभाराक्रान्तेन महतः कालादुच्छ्वसितमिव चेतसा श्रावयित्वा स्ववृत्तान्तमिमं सह्यतामिव गतः शोकः। दुःखितमपि जनं रमयन्ति सज्जनसमागमाः। परसुखोपपादनपराधीनश्च भवादृशां गुणोदयः' इत्युक्तवतीं चैनां चन्द्रापीडोऽब्रवीत्—भगवति, दर्शनात्प्रभृति परवानयं जनः कर्तव्येषु यथेष्टमशङ्कितया

योग्यो भवसि। इतोऽस्मात्स्थानान्मयैव सह अतिरमणीयतानिधानं चारुताशेवधिं हेमकूटं गत्वा। तत्रेति। तस्मिन्स्थले मत्तो निर्गतो विशेषो यस्याम्। मत्सदृशीमित्यर्थः। एतादृशीं कादम्बरीं दृष्ट्वा विलोक्य च तस्याः कादम्बर्याः कुत्सिता मतिर्यस्मादेवंविधो यो मनोमोहश्चेत-सोऽज्ञानं तस्य विलसितं चेष्टितमपनीय दूरीकृत्यैकोऽहर्दिनं विश्रम्य विश्रामं गृहीत्वा। श्वोभूत इति। श्व आगामिदिने तस्मिन्भूते जाते सति प्रत्यागमिष्यसि पश्चादायास्यसि। ममेति। हीति निश्चितम्। मम निष्कारणबान्धव निमित्तव्यतिरेकेण स्वजन भ्रातर्वा भवन्तं त्वामालोक्यैव निरीक्ष्यैव दुःखमेवान्धकारं तिमिरं तस्य भारो वीवधस्तेनाक्रान्तेन व्याप्तेन चेतसा चित्तेन महतः कालाच्चिरसमयादुच्छ्वसितमिव गृहीतश्वासमिव। इमं स्ववृत्तान्तं स्वकीयो-दन्तं श्रावयित्वा कथयित्वा। सोढुं शक्यः सह्यस्तस्य भावस्तत्ता तामिव गतः प्राप्तः शोकः। श्रावणेन स शोको जीर्णतां प्राप्त इत्यर्थः। तत्रोपपादकमाह—दुःखितमपीति। सज्जनसमागमा दुःखितमपि जनं रमयन्ति विनोदयन्ति। अत्रार्थे हेतुमाह—परेति। परस्यान्यस्य यत्सुखं तस्य यदुपपादनं तत्र पराधीनः परायत्तः। तन्निमित्तक इति यावत्। भवादृशां त्वत्सदृशानां गुणोदयो गुणाः शौर्यादयस्तेषामभ्युदय इति पूर्वोक्तप्रकारेणोक्तवतीं कथितवतीं चन्द्रापीडोऽब्रवीदवोचत्। हे भगवति, दर्शनात्प्रभृत्यवलोकनदिनादारभ्य परवान्पराधीनः। त्वदायत्त इति यावत्। अथ

के लिये यह उचित नहीं होगा कि आप (मेरी) इस प्रार्थना को निष्फल करें (अस्वीकार करें)। यहाँ से मेरे ही साथ अत्यन्त सौन्दर्य के भण्डारभूत, हेमकूट मे पहुँच कर और वहाँ मेरे सरीखी कादम्बरी को देखकर (उससे भेंट करके), उसके कुविचार (कुकल्पना) के कारण उत्पन्न मनोन्माद को दूर करके, एक दिन वहाँ ठहर कर अगला दिन हो जाने पर (प्रातःकाल) यहाँ (लौट) आवोगे। एक अकारणबन्धु, आपको देखकर ही दुःख के अन्धकार के भार से दबे मेरे चित्त ने, निश्चय ही, बहुत देर के पश्चात्, मानो साँस लिया है (कुछ अनुतोष पाया है), आप को अपने इस वृत्तान्त को सुना कर (मेरा) शोक मानो सह्य हो गया था। सत्पुरुषों के साथ हुए समागम, दुखिया व्यक्ति का भी मन लगा लेते हैं (उसको सुखी कर देते हैं) और फिर आप सरीखों में हुआ गुणोदय तो (आप जैसों का गुणोद्रेक) दूसरों के सुख की उत्पत्ति के अधीन रहता है (आप सरीखों के गुण तो दूसरों को ही सुखी करते हैं)। और ऐसा कहने वाली इस महाश्वेता से चन्द्रापीड ने कहा—"देवि, आप के दर्शन (करने के समय) से ही, यह व्यक्ति पराधीन हो गया है (तुम्हारे अधीन है), (इसलिये) इसको अपनी इच्छानुसार (किसी) कर्त्तव्य में लगा दीजिये।" यह कह कर वह उसके साथ ही चल पड़ा।

नियुज्यताम्' इत्यभिधाय तया सहैवोदचलत्।

क्रमेण च गत्वा हेमकूटमासाद्य गन्धर्वराजकुल समतीत्य काञ्चनतोरणानि सप्तकक्षान्तराणि कन्यान्तःपुरद्वारमवाप। महाश्वेतादर्शनप्रधावितेन दूरादेव कृतप्रणामेन कनकवेत्रलताहस्तेन प्रतीहारजनेनोपदिश्यमानमार्गः, प्रविश्यासङ्ख्येयनारीशतसहस्रसबाधः स्त्रीमयमपरमिव जीवलोकम्, इयत्ता ग्रहीतुमेकत्र त्रैलोक्यस्त्रैणमिव संहृतम्, अपुरुषमिव सर्गान्तरम्, अङ्गनाद्वीपमिवापूर्वमुत्पन्नम्, पञ्चममिव नारीयुगावतारम्, अपरमिव पुरुषद्वेषिप्रजापतिनिर्माणम्, अनेककल्पकल्पनार्थमुत्पाद्य स्थापित-

---

जन कर्तव्येषु कार्येषु यथेष्टमशङ्कितया शङ्काराहित्यतया भवत्या नियुज्यतां प्रेर्यतामित्यभिधायेत्युक्त्वा तया महाश्वेतया सहोदचलत्प्रस्थानमकरोत्।

क्रमेण परिपाट्या गत्वा च हेमकूट गन्धर्वराजकुलमासाद्य प्राप्य काञ्चनस्य सुवर्णस्य तोरणानि बहिर्द्वाराणि येष्वेवविधानि सप्तकक्षान्तराणि गृहान्तराणि समतीत्य व्यतिक्रम्य कन्याना यदन्त पुर तस्य द्वारमवाप प्राप्तवान्। तदनन्तर कुमार कुमारीपुराभ्यन्तर ददर्शेक्षाचक्रे। किंविशिष्ट कुमार। महाश्वेताया दर्शनार्थमवलोकनार्थं प्रधावितेनोच्चलितेन दूरादेव कृतप्रणामेन कनकवेत्रलता हस्ते यस्यैवभूतेन प्रतीहारजनेन द्वारपालकलोकेनोपदिश्यमानो वचनव्यक्त्या प्रोच्यमानो मार्ग पन्था यस्य स.। किं कृत्वा। प्रविश्य प्रवेश कृत्वा। इत कुमारीपुराभ्यन्तर विशेषयन्नाह—असङ्ख्येति। असङ्ख्येयानि गणनावर्जितानि नारीणा स्त्रीणां शतसहस्राणि लक्षाणि तै सबाध सकीर्णं स्त्रीमयमपर भिन्न जीवलोकमिव। इयत्तेति। इयत्तामेतावत्यो नार्य सन्तीति सङ्ख्यां ग्रहीतु त्रैलोक्यस्त्रैण त्रिभुवनस्त्रीवृन्दमेकस्मिन्स्थले संहृतमिव सगृहीतमिव। केवलाङ्गनानामेव सद्भाव प्रदर्शयन्नाह—अपुरुषेति। अपुरुष पुरुषवर्जित सर्गान्तरमिव सृष्ट्यन्तरमिव। तासामेव विपुलाश्रयत्वादाह—अङ्गनेति। अपूर्वमभिनवमुत्पन्नमङ्गनाद्वीपमिव स्त्रीणामन्तरीपमिव। पञ्चममिति। नारीप्रधान यद्युगं तस्य पञ्चममवतारमिव। अपरमिति। पुरुषे द्वेषो विद्यते यस्यैवभूतो य प्रजापति ब्रह्मा तस्यापरमन्य-

---

क्रमश हेमकूट की ओर चलकर तथा गन्धर्वराज के महल (कुल) मे पहुँच कर तथा सोने के तोरणों (महराबदार दरवाजों) वाले सात भीतरी कमरों को लांघकर वह कन्या के महल (अन्त पुर) के द्वार पर पहुँच गया। महाश्वेता के दर्शन हो जाने के कारण दौड़े हुए, दूर से प्रणाम किये हुए, सोने की बेंतें हाथ मे लिये हुए सेवकों द्वारा मार्ग बताये गये कुमार ने प्रविष्ट होकर कुमारी (कादम्बरी) के निवासस्थान का भीतरी भाग देखा जो अनगिनत सैकड़ों हजारों स्त्रियों से भरपूर था (वहाँ नारियों की भारी भीड़ थी), वह मानो (केवल) स्त्रियों को ही धारण किये हुआ मर्त्यों का (दूसरा) ससार था, वह मानो इयत्ता करने के लिये (इतनी नारियाँ हैं यह जानने के लिये) एक स्थान पर एकत्रित की गयी तीनों लोकों की स्त्रियों का समुदाय था, मानो पुरुषविहीन दूसरी सृष्टि था, अथवा उत्पन्न हुआ एक नया स्त्रियों का द्वीप था, अथवा मानो पाँचवाँ नारीयुग का अवतार था—(ऐसा पाँचवाँ युग जिसमें केवल नारियाँ ही विद्यमान हों), अथवा मानो पुरुषों के द्वेषी (पुरुषों को उत्पन्न करना न चाहते हुए)

मिवाङ्गनाकोशम्, अतिविस्तारिणा युवतिजनलावण्यप्रभापूरेण प्लावितदिगन्तरेण सिञ्चतेवामृतरसविसरेण दिवसमार्द्रीकुर्वतेव भुवनान्तराल बहुलप्रभावर्षिणा मरकतमणिमयेन सर्वतः परिगततया तेजोमयमिव चन्द्रमण्डलसहस्रैरिव निर्मितसंस्थानम्, ज्योत्स्नयेव घटितसंनिवेशम्, आभरणप्रभाभिरिव निष्पादितदिगन्तरम्, विभ्रमैरिव

न्निर्माणमिव। पुरुषद्वेषिविशेषणेन केवल स्त्रीनिर्माणकर्तृत्वमेव सूचितम्। अनेकेति। अनेके ये कल्पा युगान्तास्तत्र कल्पना रचना। स्त्रीणामिति शेष। तदर्थमङ्गनाकोश स्त्रीभाण्डागारमुत्पाद्य विधाय स्थापितमिव रचितमिव। एतेन युगान्तरे स्त्रीनिर्माणप्रयासाभाव इति सूचितम्। पुन कीदृशम्। अतिविस्तारिणा युवतिजनाना लावण्य सौन्दर्यातिशयस्तस्य या प्रभा कान्तिस्तस्या पूर उत्कर्षस्तेन। अथ च बहुला या प्रभा कान्तिस्तद्वर्षिणी मरकतमणिमयेनाश्मगर्भमणिप्रचुरेण। अर्थान्निर्माणेन। सर्वत समन्तात्परिगततया व्याप्ततया तेजोमयमिव कान्तिसमूहमयमिव। अथ युवतिलावण्य विशेषयन्नाह—अमृतेति। अमृतरसस्य पीयूषद्रवस्य यो विसर समूहस्तेन दिवस दिन सिञ्चतेव सेकक्रिया कुर्वतेव प्लावित क्षालित दिगन्तरं येन तेन। किं कुर्वता। लावण्यप्रभापूरेण भुवनान्तराल विष्टपान्तरालमार्द्रीकुर्वतेवाशुष्कता विदधतेव। अत्र च मरकतमणे श्यामत्वे लावण्यप्रभापूरस्य च पाण्डुरत्वे क्रमं विहाय यथोचितमुत्प्रेक्षते—चन्द्रेति। चन्द्रमण्डलसहस्रैर्निर्मितं रचित संस्थानमाकृतिविशेषो यस्यैतादृशमिव। श्यामतासाम्यादिति भाव। पाण्डुरत्वेनाह—ज्योत्स्नयेति। ज्योत्स्नया चन्द्रिकया घटितो निर्मित सनिवेश. संस्थान यस्य स एतादृशमिव। अमृतरसविप्रुतिर्वा साम्यम्। आभरणेति। आभरणप्रभाभिर्भूषणकान्तिभिर्निष्पादित दिगन्तर दिगवकाश यस्मिन्नेतादृशमिव। एतेनाभरणानामतिशयो द्योतित। विभ्रमैरिति। विभ्रमैर्भ्रूसमुद्भवै कृत सर्वोपकरण सर्वा सामग्री

प्रजापति की एक दूसरी (नई) रचना था। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह कई कल्पों में स्त्रियों की आपूर्ति के लिये (उन्हें देने के लिये) उत्पन्न करके वहाँ स्थापित किया हुआ स्त्रियों का कोषागार था। दिशाओं के (सारे) अन्तराल को प्लावित किये हुए (वहाँ उमड़ कर बहते हुए) (इसी कारण) मानो दिन को अमृत रस के प्रवाह से सींचते अथवा लोकों के अन्तराल को गीला करते प्रतीत होते अतिविस्तृत स्त्रियों के सौन्दर्य की कान्ति के बाहुल्य (पूर) द्वारा और मानो मरकतमणिनिर्मित बहुत सी कान्ति को बिखराते अलकार द्वारा चारों ओर घिरा होने के कारण जो मानो प्रकाश से चमकता (तेजोमय) अथवा अधिकांश मे प्रकाश का बना हुआ प्रतीत हो रहा था तथा जिसका वह विशेष रूप (संस्थान) मानो सहस्र चन्द्र बिम्बों से बनाया गया प्रतीत होता था, मानो कि उसका विन्यास (सनिवेश) चाँदनी से किया गया था, (अथवा मानो वह चारों ओर से चाँदनी से गढ़ा गया था), जिसमे अन्तरिक्ष मानो आभूषणों की चमक से बनाया गया था, इसमे सारे उपकरण स्त्रियों के विलासों (उनकी आमोदकारी चेष्टाओं) से (प्राप्त) कराये जाते थे, उसके सारे अवयव (भाग) मानो यौवन

कृतसर्वोपकरणम्, यौवनविलासैरिवोत्पादितावयवम्, रतिविलसितैरिव रचितसचयम्, मन्मथाचरितैरिव कल्पितावकाशम्, अनुरागेणेवानुलिप्तसकलजनप्रवेशम्, शृङ्गारमयमिव, सौन्दर्यमयमिव सुरताधिदैवतमयमिव, कुसुमशरमयमिव, कुतूहलमयमिव, आश्चर्यमयमिव, सौकुमार्यमयमिव, कुमारः कुमारीपुराभ्यन्तरं ददर्श। अतिबहलतया च तस्य कन्यकाजनस्य समन्तादाननद्युतिभिरिन्दुबिम्बवृष्टिमिव पतन्तीम्, अपाङ्गविक्षेपैश्चलितकुवलयवनमयीमिव क्रियमाणामवनीम्, अतिनिभृतभ्रूलताविभ्रमैः कामकार्मुकबलानीव प्रचलितानि शिरसिजकलापान्धकारैर्बहुलपक्षप्रदोषसार्थानिव सवध्नतः,

यस्मिन्नेतादृशमिव। यौवनेति। यौवनविलासैस्तारुण्यविलसितैरुत्पादिता अवयवा यस्मिन्नेतादृशमिव। रतीति। रति कामयोषित्तद्विलसितै रचित सचय समूहो यस्मिन्नेतादृशमिव। मन्मथेति। मन्मथाचरितै कदर्पाचरणै कल्पितोऽवकाशोऽवगाहो यस्मिन्नेतादृशमिव। अन्विति। अनुरागेण प्रीत्यानुलिप्त सकलजनप्रवेशो यस्मिन्नेवभूतमिव। शृङ्गारमयमिव सभोगमयमिव। सौन्दर्यमयमिव सुरूपतामयमिव। सुरताधिदैवतमयमिव मैथुनाधिष्ठात्रीमयमिव। कुसुमशरमयमिव कदर्पबाणमयमिव। कुतूहलमयमिव कौतुकमयमिव। सौकुमार्यमयमिव मार्दवमयमिव। चन्द्रापीडस्तस्मिन्कुमारीपुराभ्यन्तर एतान्यद्राक्षीत्। तान्येवाह—अतीति। तस्य कन्यकाजनस्यातिबहलतयातिबाहुल्यतया समन्तादाननद्युतिभिर्मुखकान्तिभि कृत्वा पतन्तीं क्षरन्तीमिन्दुबिम्बवृष्टिमिव चन्द्रमण्डलवर्षणमिव। अत्र मुखे तत्तदतिशयो व्यङ्ग्य। अपाङ्गेति। अपाङ्गविक्षेपै कटाक्षैश्चलित कम्पित यत्कुवलयवनमुत्पलखण्ड तन्मयीमवनीं पृथ्वीं क्रियमाणमिव। प्रबलेन दुर्बलस्योच्चालन सभवतीति कुमुदातिशयोऽपाङ्गेषु द्योत्यते। अतीति। अतिनिभृता निश्चला ये भ्रूलताविभ्रमास्तै प्रचलितानि गन्तु प्रवृत्तानि कामकार्मुकस्य कन्दर्पचापस्य बलानीवोत्कर्षरूपाणीव। अत्र वक्रत्वसाम्यादुपमानोपमेयभाव। शिरसीति। शिरसिजा केशास्तेषां कलापाः समुदायास्तद्रूपाण्यन्धकाराणि तैर्बहुलपक्षाणां कृष्णपक्षाणां प्रदोषसार्थान्यामिनीमुख

की चापलूसियोंसे (विलासै) बनाये गये थे, इसमें मानो रति की कामुक क्रीडाओं से एक भडार बनाया गया था। इसमे मानो कामदेव के आचरणों का बनाया गया स्थान था, इसमें के सारे व्यक्ति (जन) तथा सारे स्थान (प्रदेश) मानो प्रेम से लीपे हुए थे। वह मानो सर्वथा कामुक भवनों (शृगार) का ही बना हुआ था, मानो सौन्दर्य का ही, सुरत (भोग) की अधिष्ठात्री देवता का ही, कामदेव का ही, कुतूहल (उत्सुकता) का ही, चमत्कार का ही, और यौवन की कोमलता का ही बना हुआ था।

और उन कन्याओं का बहुत अधिक बाहुल्य (अधिक सख्या) होने के कारण, उसने वहाँ उनके चेहरों की कांति के परिणाम स्वरूप मानो चारों ओर से चन्द्रबिम्बों की वर्षा गिरती देखी, उन कन्याओं के कटाक्षों के कारण पृथ्वी मानो चलते फिरते नीले कमलों से भरी जा रही थी, उनकी लता सरीखी भौंहों के अति स्पष्ट (अनिभृत) कामुक आकुञ्चनों (विभ्रमों) के कारण मानो प्रवृत्त हुई कामदेव के धनुष के सैकड़ों चेष्टाओं को उसने देखा, उनके बालों के काले ढेर के कारण, मानो कृष्णपक्ष की रात्रियों के समूहों (गठरियों) को बन्धते देखा, उनके हास्य की

स्मितप्रभाभिरुत्फुल्लकुसुमधवलानिव वसन्तदिवसान्सचरतः, श्वसितानिलपरिमलै-र्मलयमारुतानिव परिभ्रमतः, कपोलमण्डलालोकैर्माणिक्यदर्पणसहस्राणीव स्फुरितानि, करतलरागेण रक्तकमलवनवर्षिणमिव जीवलोकम्, कररुहस्फुरणेन कुसुमायुधशरसह-स्रैरिव सञ्छादितदिगन्तराणि, आभरणकिरणेन्द्रायुधजालकैरुड्डीयमानानीव भवनमयूर-वृन्दानि, यौवनविकारैरुत्पाद्यमानानीव मन्मथसहस्राण्यद्राक्षीत्। उचितव्यापारव्यप-देशेन कुमारिकाणा सखीहस्तावलम्बेषु पाणिग्रहणानि, वेणुवाद्येषु चुम्बनव्यतिकरान्, वीणासु कररुहव्यापारान्, कन्दुकक्रीडासु करतलप्रहारान्, भुवनलतासेककलशकण्ठेषु

समूहान्सबध्नत इव सग्रथ्नत इव। एतेन केशकलापेषु श्यामतातिशयो द्योत्यते। स्मितेति। स्मित हास्य तस्य प्रभाभि कान्तिभिरुत्फुल्लकुसुमधवलान्वसन्तदिवसान्सचरत इव व्रजत इव। श्वसितेति। श्वसितानिलस्य श्वासवायो परिमलैरामोदैर्मलयमारुतान्परिभ्रमत इव सचरत इव। कपोलेति। गल्लात्परप्रदेशा कपोलास्तेषां मण्डल समूहस्तस्यालोकै प्रकाशै स्फुरितानि माणि-क्यदर्पणसहस्राणीव रत्नादर्शदशशतानीव। एतेन कपोलयो स्वच्छतातिशयो दर्शित। कर इति। करतलरागेण रक्तकमलवनवर्षिण जीवलोकमिव। कररुहा नखास्तेषां स्फुरणेन विद्योतनेन कुसुमा-युधशरसहस्रै सञ्छादितदिगन्तराण्याच्छादितककुबन्तराणि। आभरणेति। आभरणकिरणान्ये वेन्द्रायुधजालकानि तैरुड्डीयमानानीव व्योम्नि व्रजमानानीव भवनमयूरवृन्दानि गृहकलापिमण्ड-लानि। यौवनेति। यौवनविकारैस्तारुण्यविकृतिभिरुत्पाद्यमानानीव विधीयमानानीव मन्मथसह-स्राणि मनोभवसहस्राणि। उचितेति। उचितो योग्यो यो व्यापारस्तद्व्यपदेशेन तन्मिषेण कुमारि-काणामतिरिक्तमद्भुत सुरत मैथुनमभ्यस्यन्तीनामिवाभ्यास कुर्वन्तीनामिव तत्तदपश्यत्। तत्र सुरतसाधर्म्यमाह—सखीति। सखीनामालीनां हस्तावलम्बेषु करावलम्बेषु पाणिग्रहणानि हस्तगृहनानि। वेणुवाद्येषु वंशातोद्येषु चुम्बनव्यतिकरान्मुखस्पर्शनवृत्तान्तान्। वीणासु वल्लकीषु

चमकों के कारण मानो खिले हुए पुष्पों-सरीखे वसन्त-दिवसों को घूमते फिरते देखा, उनकी श्वास वायुओं की सुगन्ध के कारण मानो मलय वायु वहाँ घूमती देखी, उनकी चौड़ी गालों की चमक के कारण मानो माणिक्यमणि के बने सहस्रों दर्पण चमकते हुए देखे, उनकी हथेलियों की लालिमा के कारण उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो जीवलोक लाल कमलों के समूह की वर्षा कर रहा हो, उनके नखों की किरणों की झिलमिलाहट के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि मानो दिशाओं के अन्तराल पुष्पधन्वा—कामदेव के सहस्रों बाणों से ढक गये हों, (उनके) आभूषणों की किरणों से बने इन्द्रधनुष के गुच्छों के परिणामस्वरूप मानो भवन के मयूर उड़ते प्रतीत हुए और यौवन से उत्पादित विकारों (आवेगों तथा उनकी बाह्य अभिव्यक्तियों) द्वारा वहाँ मानो सहस्रों कामदेव उत्पन्न किये जाते दिखायी दिये। उसने वहा (अपने) नित्य के (उचित) कार्यों के बहाने मानो एक अनोखे (अतिरिक्त) 'सुरत' (कामक्रीडाओं) का आनन्द लेती (अभ्यास करती) कन्याओं के (कन्याओं द्वारा) अपनी सखियों की भुजाओं (हस्तों) के सहारे में (सहारा लेते समय) हाथों के अधिग्रहण देखे, मुरलियाँ बजाने में (बजाते समय) चुम्बन के व्यापार (नखक्षत आदि) देखे, गेंद से खेले गये खेलों मे हथेली द्वारा दिये गये आघात देखे, महल की बेलों को सींचते समय

भुजलतापरिष्वङ्गान्, लीलादोलासु नितम्बस्तनप्रेङ्खितानि, ताम्बूलवीटिकावखण्डनेषु दशनोपचारान्, बकुलविटपेषु मधुगण्डूषप्रचारान्, अशोकतरुताडनेषु चरणाभिघातान्, उपहारकुसुमस्खलनेषु सीत्कारानतिरिक्त सुरतमिवाभ्यस्यन्तीनामपश्यत्। यत्र च कन्यकाजनस्य कपोलतलालोक एव मुखप्रक्षालनम्, लोचनान्येव कर्णोत्पलानि, हसितच्छवय एवाङ्गरागाः, निश्वासा एवाधिवासगन्धयुक्तयः, अधरद्युतिरेव कुङ्कुममुखा-

करुहव्यापारान्नखरव्यवहारान्। कन्दुकक्रीडास्वन्दुकलीलासु करतलप्रहारान्हस्ततलप्रघातान्। **भुवनेति**। भुवनलतानां गृहवल्लीनां सेकार्थं कलशकण्ठेषु कुम्भनिगरणेषु भुजलतापरिष्वङ्गान्बाहुवल्ल्यालिङ्गनान्। लीलादोलासु क्रीडाप्रेङ्खासु नितम्ब आरोह स्तन कुचस्तयो प्रेङ्खितानि धुतानि। **ताम्बूलेति**। ताम्बूलस्य नागवल्ल्या वीटिका प्रसिद्धास्तस्या अवखण्डनेषु शकलीकरणेषु दशनोपचारान्दन्तक्षतान्। **बकुलेति**। बकुलविटपेषु केसरवृक्षेषु मधु मद्य तस्य गण्डूषप्रचाराश्चुलुकप्रवृत्ती। **अशोकेति**। अशोकतरूणा कङ्केलिवृक्षाणा ताडनेषु चरणाभिघातान्पादप्रहारान्। **उपेति**। मुक्तादीना हार, पुष्पादीनामुपहार, तस्मात्कुसुमादीना स्खलनानि पतनानि तेषु सीत्कारान्सूक्ष्मध्वनिविशेषाञ्शब्दान्। दृश्यते हि हारात्पुष्पच्युतिसमये तथा ध्वनि। अथवोपहारकुसुमाना स्खलनानि कुमारीशरीरावयवेषु सीत्कारो वेदनातिशयद्योतको दलदन्तसयोगनिमित्तो ध्वनि। अनेन कुमारीणा कुसुमपातमात्रेण सीत्कार इति सौकुमार्यातिशयो व्यज्यते। **यत्र चेति**। यत्र कन्यान्त पुरे कन्यकाजनस्य कपोलतलस्यालोक एव प्रकाश एव मुखं वक्त्र तस्य प्रक्षालन धावनम्। अत्र स्वच्छत्वकरणसाम्येन जलालोकयोरुपमानोपमेयभाव। कर्णान्तत्वरूपव्यङ्ग्यसाम्येनाह—**लोचनेति**। लोचनान्येव नेत्राण्येव कर्णोत्पलानि कर्णावतसानि। पाण्डुरत्वसाम्येनाह—**हसितेति**। हसित स्मित तस्य छवय कान्तय एवाङ्गरागा विलेपनानि। **निश्वासेति**। निश्वासा पवनास्त एवाधिवासे वस्त्रादीना सस्कारकरणे गन्धयुक्तय सुगन्धीकरणप्रकारा। रक्तत्वसाम्येनाह—**अधरेति**। अधरो दन्तच्छदस्तस्य द्युतिरेव कुङ्कुम

घड़ों की ग्रीवाओं मे लम्बी पतली भुजाओं द्वारा किये गये आलिंगन देखे, खेलने के झूलों पर कटिस्थलो के हिलकोरे देखे, पान के बीड़ों को तोड़ने की क्रियाओं मे (नखक्षत के रूप म) दान्तों के प्रयोग[1] देखे, बकुल वृक्षों पर मधु अर्थात् मद्य के कुल्लों के स्थानान्तरण देखे, अशोकवृक्षों को ठुकराते समय पाँवों से किये गये आघात देखे तथा पूजार्थ (स्थापित) पुष्पों से टकरा कर लड़खड़ाने में हुई सिसकारें देखीं।

और जहाँ कन्याओं के कपोल्तल की चमक ही उनके मुखों का धोना थी—(मुखधोने के प्रयोजन को सिद्ध करती थी), उनकी (कानों तक फैली) आँखें ही कानों पर लगाये नीले कमल थीं, हँसने की चमक ही शरीर पर लगाया मण्डनद्रव्य थी, उनके नि श्वास ही (वस्त्रों आदि को) सुगन्धित करने के साधन (उपकरण) थे, निचले होठो की द्युति ही केसर का मुखलेप थी, (उनके पारस्परिक) सम्भाषण ही वीणा के शब्द थे, उनकी कोमल लम्बी पतली

१ उपचार = प्रयोग।

नुलेपनम्, आलापा एव तन्त्रीनिनादाः, भुजलता एव चम्पकवैकक्ष्यमालाः, करतलान्येव लीलाकमलानि, स्तना एव दर्पणाः, निजदेहप्रभैवाशुकावगुण्ठनम्, जघनस्थलान्येव विलासमणिशिलातलानि, कोमलाङ्गुलिराग एव चरणालक्तरसः, नखमणिमरीचय एव कुट्टिमोपहारकुसुमप्रकराः। यत्र चालक्तरसोऽपि चरणातिभारः, बकुलमालिकामेखलाकलनमपि गमनविघ्नकरम्, अङ्गरागगौरवमप्यधिकश्वासनिमित्तम्, अंशुकभारोऽपि ग्लानिकारणम्, मङ्गलप्रतिसरवलयविधृतिरपि करतलविधुतिहेतुः, अवतस-

---

तेन मुखस्य वक्त्रस्यानुलेपनम्। मञ्जुलत्वसाम्येनाह—आलापा इति। आलापा एव सभाषणान्येव तन्त्रीनिनादा वीणाध्वनय। मृदुत्वसाम्येनाह—भुजेति। भुजलता एव चम्पको हेमपुष्पकस्तस्य वैकक्ष्यमाला उत्तरासङ्गस्रज। करेति। करतलान्येव लीलाकमलानि क्रीडापङ्कजानि। निर्मलत्वसाम्येनाह—स्तनेति। स्तना एव दर्पणा मुकुरा। निचितत्वसाम्येनाह—निजेति। निजदेहप्रभैव स्वशरीरदीप्तिरेवाशुकेन वस्त्रेणावगुण्ठनमाच्छादनम्। विस्तरातिशयादाह—जघनेति। जघनस्थलान्येव कट्या पुरोभागप्रदेश एव विलासा लीलाविशेषास्तेषा मणिशिलातलानि। कोमलेति। कोमला या अङ्गुल्यस्तासां राग एव चरणयो पादयोरलक्तकरसो यावकरस। नखेति। नखा एव मणय, नखनिष्ठाभरणमणयो वा तेषा मरीचय एव दीधितय एव कुट्टिमेषु बद्धभूमिषूपहारकुसुमानां प्रकरा. समूहा। यत्र चेति। यत्र कन्यकासमुदायेऽलक्तरसोऽपि यावकरसोऽपि चरणयो पादयोरतिभारो व्यर्थं। स्वत एव चरणयोरारुण्यादिति भाव। बकुलेति। बकुलमालिका केसरस्रग्नो मेखला रसना तस्या आकलनमपि धारणमपि गमनविघ्नकर गतिप्रतिबन्धकम्। सौकुमार्यातिशयादिति भाव। अङ्गेति। अङ्गरागो विलेपन तस्य गौरवमप्यधिकश्वासनिमित्तमतिप्रयासकारणम्। अङ्गरागेभ्य शरीररागस्य सातिशयत्वात्। अशुकेति। अंशुकभारोऽपि वस्त्रभारोऽपि ग्लानिकारणम्। सातिशयदेहप्रभावरणरूपत्वात्। मङ्गलेति। मङ्गलार्थं प्रतिसरवलय हस्तसूत्रवलय तस्य विधृतिरपि धारणमपि करतलस्य हस्ततलस्य विधुति कम्पन तन्मात्रहेतु। स्वत सुन्दरत्वाच्छ्रेयस्करत्वाच्च मणिबन्धस्य। अवेति।

भुजाएँ ही चम्पक पुष्पों की बनी उत्तरासङ्ग मालायें थीं (अर्थात् यज्ञोपवीत की भाँति बायें कन्धे के ऊपर तथा दाये कन्धे के नीचे पहनी हुई मालायें थीं), उनकी हथेलियाँ ही क्रीडार्थ कमल थीं, उनके स्तन ही दर्पण थे, उनके अपने शरीर की चमक ही (उनका चमकीला स्वाभाविक रग रूप ही रेशमी अवगुण्ठन—(शरीर को ढकने का रेशमी कपड़ा) था, उनके विशाल कटिप्रदेश ही विलासार्थ मणिनिर्मित शिलातल थे, उनकी कोमल अगुलियों की लालिमा ही पाँव पर लगाने का अलक्तकरस थी, और उनके नखरूपी मणियों की किरणें ही फर्शों पर रखे पूजार्थ फूलों के ढेर थीं। और जहाँ (स्त्रियाँ इतनी नाजुक थीं कि) अलक्तरस भी चरणों के लिये एक भारी भार था, बकुल (पुष्पों) की मालारूप मेखला का धारण भी चलने में बाधक था, (शरीर पर लगाये) गये लेप का भार भी उनके अधिक श्वास का कारण था, वस्त्र का भार भी सुस्ती का कारण था, मङ्गलार्थ हस्तसूत्र रूपी कगन का धारण कर लेना भी हथेलियों (अथवा हाथों) के कम्पन का कारण था, शिरोभूषण के रूप में फूलों को पहनना भी थकान (थकाने

कुसुमधारणमपि श्रमः, कर्णपूरकमलतरलमधुकरपक्षपवनोऽप्यायासकरः। तथा च यत्र सखीदर्शनेष्वकृतहस्तावलम्बनमुत्थानमतिसाहसम्, प्रसाधनेषु हारभारसहिष्णुता स्तनकार्कश्यप्रभावः, कुसुमावचयेषु द्वितीयपुष्पग्रहणमप्ययुवतिजनोचितम्, कन्यकाविज्ञानेषु माल्यग्रन्थनमसुकुमारजनव्यापारः देवताप्रणामेषु मध्यभागभङ्गो नातिविस्मयकरः।

तस्य चैवविधस्य किंचिदभ्यन्तरमतिक्रम्येतश्चेतश्च परिभ्रमतः कादम्बरीप्रत्यासन्नस्य परिजनस्य शुश्राव तांस्तानतिमनोहरानालापान्। तथाहि—'लवलिके, कल्पय

भवतसकुसुमानां धारणमपि श्रम क्रम । कर्णेति । कर्णपूरकमलेषु तरलाश्चञ्चला ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां पक्षेभ्य समुद्भव पवनोऽपि वायुरप्यायासकर प्रयासकर । तथाचेति । यत्राभिनवसखीप्रत्यागमदर्शनेषु कदाचिदपि परिचारिका अकृत हस्तावलम्बन यस्मिन्नेतादृशं यदुत्थान तदप्यतिसाहसमित्यर्थं । सौभाग्यातिशयो लीलाविलासातिशयश्च द्योत्यते । प्रसाधनेष्विति । प्रसाधनेषु भूषणग्रहेषु या हारभारसहिष्णुता मुक्ताप्रालम्बवीवधसहनशीलता सापि शरीरावयवेषु मध्ये स्तनयो कुचयो कार्कश्य काठिन्य तस्य प्रभावो माहात्म्यम्। सामर्थ्यमिति यावत्। नेतरेषामवयवानाम्। अत्र स्तनयो काठिन्यातिशय । अन्यत्र मृदुत्वादिक कर्कशपददानाद् रूढ व्यज्यते । तथा कुसुमावचयेषु पुष्पचुण्टनेषु द्वितीयपुष्पग्रहणमप्ययुवतिजनोचितम्। पुरुषयोग्यमित्यर्थं । एतेनैतावत्प्रयासयोग्य पुरुष एवेति ध्वनितम्। पुन सौकुमार्यातिशयमाह—कन्यकेति। कन्यकाविज्ञानेषु कुमारिकाणा कलासु माल्यग्रथनमसुकुमारजनव्यापार । अतिकर्कशजनविधेयमित्यर्थं । एतेन माल्यापेक्षयापि सौकुमार्यं व्यज्यते । देवतेति । देवतानां प्रणामेषु नमस्क्रियासु । मध्यभागस्यातिसूक्ष्मत्वात्। भङ्गो द्वैधीभावो न भवति सोऽतिविस्मयकर आश्चर्यकर । एतेन मध्यभागस्य स्वारसिक कृशत्व व्यज्यते ।

तदनन्तर स चन्द्रापीड किंचिदभ्यन्तर मध्यभागमतिक्रम्येतश्चेतश्च परिभ्रमत पर्यटत एवविधस्य तस्य कादम्बरीप्रत्यासन्नस्य कुमारिकासमीपवर्तिन. परिजनस्य परिवारस्यातिमनोहरांस्तांस्तानालापान्सलापाञ्शुश्रावाकर्णयामास। एतदेव दर्शयति—तथा हीति । हे लवलिके,

---

का कारण) था, कर्णाभूषण के रूप में धारण किये कमलों पर मडराते (तरल) भौरों के पखों से उत्पन्न वायु भी थकावट उत्पन्न कर देती थी और इसी प्रकार जहाँ किसी सहेली का दर्शन हो जाने पर भी (किसी सेविका के) हाथ का सहारा लिये बिना उठ जाना उतावलापन (अति साहस) समझा जाता था, शृङ्गार-क्रियाओं में हार के भार को सह लेने की क्षमता स्तनों की कठोरता की शक्ति का परिणाम मानी जाती थी, फूलों को चुनते समय दूसरा भी फूल लेना युवती के लिये अयोग्य कार्य माना जाता था, कुमारियों की कलाओं में मालाओं का गूथना एक ऐसा व्यापार था जो अतिकर्कश व्यक्तियों का व्यापार था और देवताओं को प्रणाम करते समय कटिभाग का भङ्ग (यदि हो जाता था तो) यह कोई बड़ा आश्चर्य नहीं था।

और इस प्रकार के उस (कन्यापुर) भवन के कुछ दूर तक भीतर लांघ कर (चन्द्रापीड ने) इधर-उधर घूमते फिरते कादम्बरी के समीपवर्ती सेविकावर्ग के वे वे (विविध प्रकार के) बहुत ही सुन्दर आलाप सुने। जैसे कि—'लवलिके! केतकी के पराग से लवलीलताओं के आल

केतकीधूलिभिर्लवलीलतालवालमण्डलानि। सागरिके, गन्धोदकदीर्घिकासु विकिर रत्नवालुकाम्। मृणालिके, कृत्रिमकमलिनीषु कुङ्कुमरेणुमुष्टिभिश्छुरय यन्त्रचक्रवाकमिथुनानि। मकरिके, कर्पूरपल्लवरसेनाधिवासय गन्धपात्राणि। रजनिके, तमालवीथिकान्धकारेषु निधेहि मणिप्रदीपान्। कुमुदिके, स्थगय शकुनिकुलरक्षणाय मुक्ताजालैर्दाडिमीफलानि। निपुणिके, लिख मणिशालभञ्जिकास्तनेषु कुङ्कुमरसपत्रभङ्गान्। उत्पलिके, परामृश कनकसमार्जनीभिः कदलीगृहमरकतवेदिकाम्। केसरिके, सिञ्च मदिरारसेन बकुलकुसुममालागृहाणि। मालतिके, पाटलय सिन्दूररेणुना कामदेवगृहदन्तवलभिकाम्। नलिनिके, पायय कमलमधुरस भवनकलहंसान्। कदलिके, नय धारागृह गृहमयूरान्। कमलिनिके, प्रयच्छ चक्रवाकशावकेभ्यो मृणालक्षीररसम्।

केतकीधूलिभि केतकीपरागैर्लवलीलताया आलवालमण्डलान्यावालमण्डलानि कल्पय प्रणय। हे सागरिके, गन्धोदक सुगन्धजल तस्य दीर्घिकासु वापीषु रत्नवालुकां विकिर विक्षिप। हे मृणालिके, कृत्रिमकमलिनीषु यन्त्रचक्रवाकमिथुनानि कुङ्कुमरेणुमुष्टिभिश्छुरयाच्छोटय। हे मकरिके, कर्पूरपल्लवरसेन गन्धपात्राण्यधिवासय सुगन्धीकुरु। हे रजनिके, तमालवीथिकानामन्धकारेषु मणिप्रदीपान्निधेहि स्थापय। हे कुमुदिके, शकुनिकुलरक्षणाय पक्षिसमूहनिवारणाय मुक्ताजालैर्दाडिमीफलानि स्थगयाच्छादय। हे निपुणिके, मणिशालभञ्जिकास्तनेषु रत्नपुत्रिकाकुचेषु कुङ्कुमरसपत्रभङ्गाँल्लिख लिपीकुरु। हे उत्पलिके, कनकसमार्जनीभि सुवर्णबहुरीभि कदलीगृहमरकतवेदिकां परामृश समार्जय। हे केसरिके, मदिरारसेन कादम्बरीद्रवेण बकुलकुसुममालागृहाणि सिञ्च सेक कुरु। हे मालतिके, सिन्दूररेणुना नागभूषणधूल्या कामदेवगृहदन्तवलभिका पाटलय श्वेतरक्तीकुरु। हे नलिनिके, कमलमधुरस भवनकलहंसान्पायय पान कारय। हे कदलिके, गृहमयूरान्भवनकलापिनो धारागृह यन्त्रगृह नय प्रापय। हे कमलिनिके, मृणालक्षीररस चक्रवाकशावकेभ्यो रथाङ्गाङ्कपाकेभ्य प्रयच्छ प्रदेहि। चूतलतिके, पञ्जर-

---

वाल-मण्डल (जड़ों के चारों ओर जलाधार) बनाओ। सागरिके! सुगन्धित जल के कुण्डों में रत्नों के चूरे को बुरका दो। मृणालिके! कृत्रिम कमलिनियों में यन्त्र रूप (खिलोने) चक्रवाक जोड़ों पर केसर की धूल की मुट्ठियाँ (मुट्ठीभर केसर धूल) छिड़क दो। मकरिके! गन्ध पात्रों को कपूर की कोंपलों के रस से सुगन्धित कर दो। रजनिके! तमालवीथिका के अन्धकारो मे (अन्धेरे स्थानों पर) मणिदीप रख दो। कुमुदिके! पक्षिसमूहों से बचाने के लिये अनार के फलों को मोतियों की जालियों से ढक दो। निपुणिके! मणि-निर्मित पुत्तलियों की छातियों पर केसर के जल से चित्र (रेखाकार आकृतियाँ) अंकित कर दो। उत्पलिके! सोने की झाड़ुओं से कदलीगृह की मरकतमणि-निर्मित वेदी को बुहार दो। केसरिके! बकुल पुष्पमालाओं से बने घरों में शराब छिड़क दो। मालतिके! सिन्दूर की धूल से कामदेव के मन्दिर की हस्तिदन्त निर्मित छत को लाल कर दो। नलिनिके! पालतू राजकीय हंसों को कमलों के मधु का रस पिला दो। कदलिके! पालतू मयूरों को धारागृह (यन्त्र द्वारा जल की फुहारें जहाँ पड़ रही हों) मे पहुँचा दो। कमलिनिके! चक्रवाकों के बच्चों को बिसतन्तुओं का दूधिया जल दे दो।

चूतलतिके, देहि पञ्जरपुस्कोकिलेभ्यश्चूतकलिकाङ्कुराहारम्। पल्लविके, भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान्। लवङ्गिके, निचिक्षिप चकोरपञ्जरेषु पिप्पलीदलशकलानि। मधुकरिके, विरचय कुसुमाभरणकानि। मयूरिके, संगीतशालाया विसर्जय किन्नरमिथुनानि। कन्दलिके, समारोहय क्रीडापर्वतशिखरं जीवजीवमिथुनानि। हरिणिके, देहि पञ्जरशुकसारिकाणामुपदेशम्' इत्येतान्यन्यानि च परिहासजल्पितान्यश्रौषीत्। तथाहि—'चामरिके, मिथ्यामुग्धता प्रकटयन्ती कमभिसधातुमिच्छसि। अयि यौवनविलासैरुन्मत्तीकृते, विज्ञातासि या त्वं स्तनकलशभारावनम्यमानमूर्तिर्मणिस्तम्भमयूरानालम्बसे। परिहासकाङ्क्षिणि, रत्नभित्तिपतितमात्मप्रतिबिम्बमालपसि।

पुस्कोकिलेभ्यश्चूतकलिकाङ्कुराहारमाम्रकोरकप्ररोहाशन देहि प्रयच्छ। हे पल्लविके, भवनहारीतान्गृहमृदङ्कुरान्मरिचानां श्वेतशोभाञ्जनानामग्रपल्लवदलानि मुख्यकिसलयखण्डानि भोजय भोजन कारय। हे लवङ्गिके, चकोरपञ्जरेषु विषसूचकवशदलेषु पिप्पलीदलशकलानि मागधीपत्रखण्डानि निचिक्षिप निक्षेप कुरु। अनेन चकोराणां पिप्पलीदलानि प्रियाणीति ध्वनितम्। हे मधुकरिके, कुसुमानामाभरणकानि विभूषणानि विरचय रचना कुरु। हे मयूरिके, सगीतशालायां नृत्यशालायां किंनरमिथुनानि तुरगवदनद्वन्द्वानि विसर्जय प्रेषय। हे कन्दलिके, क्रीडापर्वतशिखर लीलाशिखरिसानु जीवजीवमिथुनानि विषदर्शनमृत्युकयुगलानि समारोहयारोहण कारय। हे हरिणिके, पञ्जरशुकसारिकाणामुपदेश हितशिक्षां देहि प्रयच्छ। इत्येतानि पूर्वोक्तान्यन्यानि चाग्रे वक्ष्यमाणानि परिहासजल्पितानि वचनान्यश्रौषीदाकर्णितवान्। एतदेव दर्शयति—तथाहीति। हे चामरिके, मिथ्या वृथा मुग्धतां प्रकटयन्ती प्रकाशयन्ती कमभिसधातु मिलितुमिच्छसि वाञ्छसि। बाह्यमुग्धत्वप्रकटनेन स्वकीय कार्यं कर्तुंकामेत्यर्थं। अयीति कोमलामन्त्रणे। हे यौवनविलासैस्तारुण्यविभ्रमैरुन्मत्तीकृते ग्रथिलीकृते, सा त्व विज्ञाता विदितासि या स्तनकलशभारेणावनम्यमाना मूर्ति शरीर यस्या एवविधा मणिभिर्निर्मिता रचिता ये स्तम्भा स्थूणास्तेषां मयूरान्कलापिन आलम्बसे आलम्बनविषयीकरोषि। परीति। हे परिहासकाङ्क्षिणि, रत्नभित्तिपतित मणिकुड्यसक्रान्तमात्मप्रतिबिम्बं स्वकीय प्रतिरूपमालपसि

चूतलतिके! पिंजरे में के नरकोकिलों को आम की कलियों तथा उसके अकुरों का भोजन दे दो पल्लविके! भवन के (पालतू) तोतों को मिर्च के कोमल पत्तों के अग्र भाग खिलाओ। लवङ्गिके! चकोरों के पिंजरों में पिप्पली के पत्तों के तथा चावलों के टुकड़े डाल दो। मधुरिके! फूलों के आभूषण बना लो। मयूरिके! सगीतशाला में किन्नर जोड़ों को छोड़ दे। कन्दलिके! जीवजीवों (तीतरों) के जोड़ों को क्रीडा पर्वत के शिखर पर चढ़ा दे। हरिणिके! पिंजरों में स्थित शुकों और मैनाओं को उनका पाठ (उपदेश) पढ़ा दे।—ये तथा अन्य परिहासपूर्ण बातें सुनीं। जैसे—'चामरिके! झूठे भोलेपन को दिखलाती हुई (दिखलाकर) तू किस को ठगना चाहती है! अरी ओ तरुणाई के हावभावों द्वारा पागल की गई! तू (अपने) स्तन रूपी कलशों के भार से झुकायी गयी देह वाली मणिनिर्मित थम्भों (पर उत्कीर्ण) मयूरों का सहारा लिये हुई है। परिहास करना चाहती हुई तू! रत्ननिर्मित दीवारों में प्रतिबिम्बित (पतित) अपनी परछाई

पवनहृतोत्तरीयांशुके, हारप्रभामायासितकरतलाकलयसि। मणिकुट्टिमेषूपहारकमलस्खलनभीते, निजमुखप्रतिबिम्बकानि परिहरसि। जालवातायनपतितपद्मरागालोक प्रति बालातपशङ्कया करतलमातपत्रीकरोषि। खेदस्रस्तहस्तगलितचामरा नखमणिमयूखकलापमाधुनोषि' इत्येतान्यन्यानि च श्रृण्वन्नेव कादम्बरीभवनमुपययौ।

पुलिनायमानमुपवनलतागलितकुसुमरेणुपटलैः, दुर्दिनायमानमनिभृतपरभृत-

---

परिभाषसे। एतेन स्वयमेव स्वस्य भाषणमुपहासहेतुरिति ध्वनितम्। पवनेति। पवनेन वायुना हृतं गृहीतमुत्तरीयांशुकमुपरिवस्त्र यस्यास्तस्या संबोधन हे पवनहृतोत्तरीयांशुके, लज्जावशादतिशुभ्रत्वसाम्याद्धारप्रभामेवाकलयस्युत्तरीयांशुकत्वेन जानासि। अतएवायासितकरतला पुन पुनस्तद्ग्रहणप्रयासेन परिश्रान्तहस्ततलेत्यर्थ। मणिकुट्टीति। मणिकुट्टिमेषूपहारार्थमुपचारार्थे कमलानि नलिनानि तेभ्यः स्खलन चरणाभिघातस्तस्माद्भीता त्रस्ता तस्या सबोधन हे उपहारकमलस्खलनभीते, निजमुखप्रतिबिम्बकानि स्वाननप्रतिच्छायानि परिहरसि त्यजसि। एतेन निजात्मप्रतिबिम्बान्येव कमलभ्रान्त्या त्यजसीति ध्वनितम्। जालेति। जालरूपो यो वातायनो गवाक्षस्तत्र पनित लग्न पद्मरागो लोहितकमणिस्तस्यालोक प्रकाश प्रति बालो नवीनो य आतप सूर्यालोकस्तस्य शङ्कया भ्रान्त्या करतल हस्ततलमातपत्रीकरोषि छत्रीकुरुषे। एतेन पद्मरागालोके बालातपभ्रान्तिरिति ध्वनितम्। खेदेति। खेदेन स्रस्त कम्पितो यो हस्त करस्तस्माद्गलित च्युत चामरं बालव्यजन यस्या एवंविधा सती नखा एव मणयस्तेषा मयूखकलाप कान्तिसमूहमाधुनोषि कम्पयसि। एतेन नखकान्तिकलापे चामरत्व व्यज्यते। इत्येतानि पूर्वोक्तान्यन्यानि च वाक्यानि श्रृण्वन्नाकर्णयन्कादम्बरी राजपुत्री तस्या भवन गृहमुपययौ जगाम।

अथेति। सेवार्थमागतेन सपर्यार्थं समायातेनोभयत ऊर्ध्वस्थितेन स्त्रीजनेन। ऊर्ध्वत्वसाम्येनाह—लावण्यमयेन प्राकारेणेव वप्रेणेव। उभयत सवृतत्वसाम्येनाह—कृत इति। कृतो विहितो दीर्घाया रथ्याया लोके 'गली' इति प्रसिद्धाया मुखाकारो यस्मिन्नेतादृश मार्गमध्वानमद्राक्षीदालोकितवान्। इतो मार्गविशेषणानि प्रदर्शयन्नाह—पुलिनेति। उपवनं गृहसमीप-

---

से बात करती है। वायु द्वारा उड़ाये गये उत्तरीयवस्त्रवाली! अपनी हथेली को कष्ट दिये हुई तू (अपने) हार की चमक को पकड़ती है (पकड़ने का यत्न करती है)? मणिनिर्मित फर्शों पर (रखे हुए) पूजा के कमलों से (ठोकर खाकर) गिरने से डरी हुई! तू अपने ही मुखों की परछाइयों से बचती है? अपनी सुकोमलता के अभिमान द्वारा मृणाल सूत्रों तथा फूलों की सुकुमारता को पराभूत किये हुई! जालरूप झरोखों में से होकर गिरे हुए पद्मराग के प्रकाश के प्रति उसको प्रात कालीन धूप समझती हुई अपनी हथेली का छाता बनाती है। थकावट से चूर बहुत थके हुए हाथ से गिरे हुए चामर वाली तू (केवल) नखों की मणियों की किरणों के समूह को ही हिला रही है (चामर तो हाथ से गिर चुका है)'—इन तथा अन्य (परिहास वचनों) को सुनता हुआ ही मैं कादम्बरी भवन के समीप (परकोटे में) पहुँच गया।

तब उसने वह मार्ग देखा जो उपवन स्थित लताओं से गिरे पुष्पों के पराग की राशि के

नखक्षताङ्गणसहकारफलरसवर्षैः, नीहारायमाणमनिलविप्रकीर्णैर्बकुलसेकसीधुधाराधूलिभिः, काञ्चनद्वीपायमानं चम्पकदलोपहारैः, लीलाशोकवनायमानं कुसुमप्रकरपतितमधुकरवृन्दान्धकारैः, तथा च सञ्चरतः स्त्रीजनस्य रागसागरायमाणं चरणालक्तकरसविसरैः, अमृतोत्पत्तिदिवसायमानमङ्गरागामोदैः, चन्द्रलोकायमानं दन्तपत्रप्रभामण्डलैः, प्रियङ्गुलतायमानं कृष्णागुरुपत्रभङ्गैः, लोहितायमानं कर्णाशोकपल्लवैः, धवलायमानं

वर्ति काननं तस्य लता वल्लयस्ताभ्यो गलितानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रेणुपटलैः परागपुञ्जैः पुलिनायमानं जलोज्झिततटायमानम् । श्वेतत्वातिशयात्परागोपेतमार्गस्य पुलिनोपमानता । अनिभृतेति । अनिभृताश्चञ्चला ये परभृता पिकास्तेषा नखा पुनर्भवास्तैः क्षतानि खण्डितान्यङ्गणमजिर तत्र ये सहकारा आम्रास्तेषां फलानि सस्यानि तेषा रसवर्षैर्मधुवर्षणैर्दुर्दिनायमानं मेघजनिततमोवदाचरमाणम् । एतेन सर्वत्र तत्तदतिशयो व्यज्यते । अनिलेति । अनिलेन वायुना विप्रकीर्णैर्विक्षिप्तैर्बकुला केसरास्तेषां सेकार्थं या सीधुधारा मद्यधारास्तासां धूलिभिः कणैः । श्वेतत्वसाम्यात् । नीहारायमाणं हिमवदाचरमाणम् । काञ्चनेति । चम्पकदलानि गन्धफलीशकलानि तेषामुपहारैरुपचारैः काञ्चनद्वीपायमानं स्वर्णान्तरीपवदाचरमाणम् । एतेन पीतत्वातिशयो व्यज्यते । कुसुमेति । कुसुमप्रकरेषु पुष्पसमूहेषु पतितमुपविष्टं यन्मधुकरवृन्दं भ्रमरसमूहस्तस्यान्धकारैश्छायारूपैर्लीलाशोकवनायमानम् । अन्धकारस्य नीलत्वादशोकवनसाम्यमित्यर्थः । तथा चेति । तेनैव प्रकारेण सञ्चरतो गच्छतः स्त्रीजनस्य वनितालोकस्य चरणालक्तकरस पादरञ्जनार्थयावकरसस्तस्य विसरैः समूहैः रागसागरायमाणं रागसमुद्रवदाचरमाणम् । एतेन रक्तत्वातिशयो द्योत्यते । अङ्गेति । अङ्गरागस्य विलेपनस्यामोदैः परिमलैरमृतस्य पीयूषस्य य उत्पत्तिदिवसस्तद्वदाचरमाणम् । तद्दिनेऽमृतामोदस्य प्रचुरत्वादिति भावः । श्वेतत्वसाम्येनाह—दन्तेति । दन्तपत्रैः कर्णाभरणैश्चन्द्रलोकायमानं चन्द्रलोकवदाचरमाणम् । एतेन दन्तपत्राणां भूयस्त्वं व्यज्यते । प्रियङ्गुलतेति । कृष्णागुरु काकतुण्डस्तस्य पत्रभङ्गैः पत्रलताभिः । प्रियङ्गु फलिनीलक्षणा या लता वल्ली तद्वदाचरमाणम् । नीलत्वातिशयादिति

कारण मानो पुलिन (रेतीला तट) बन रहा था, वाचाल कोयलों द्वारा (अपने) नखों से विदीर्ण आङ्गन के आमों के फलों के रस की वर्षा के कारण मानो दुर्दिन (वर्षा का दिन) हो रहा था, वायु द्वारा बिखेरे गये बकुलों के ऊपर छिड़काव (सेक) के लिये (प्रयुक्त) मद्य की धारा के कणों द्वारा वह मार्ग धुधला प्रतीत हो रहा था, चम्पकपुष्पों की पँखुड़ियों की भेंट कर देने के कारण, वह (मार्ग) सोने का एक द्वीप-सरीखा हो रहा था, फूलों के ढेरों पर गिरे (उतरे) भौंरों के समूह के अन्धेरे के कारण नीले अशोक वृक्ष की वीथि सा प्रतीत हो रहा था, और उसी प्रकार (स्त्रियों द्वारा) (अपने) पाँवों में लगाये गये द्रव अलक्तक की धाराओं से वह इधर उधर घूमती फिरती स्त्रियों के राग (कामोन्माद, लाल रग) का समुद्र प्रतीत होता था, (स्त्रियों द्वारा) शरीरों पर लगाये हुए लेप की सुगन्ध के कारण वह अमृत की उत्पत्ति के दिन की भाँति प्रतीत हो रहा था, हाथी दान्त के बने हुए कर्णाभूषण (पत्र) के मण्डलों से—(गोलाकृति, हस्तिदन्तनिर्मित कर्णाभूषणों से) वह चन्द्रलोक-सा प्रतीत होता था, कर्णा-

चन्दनरसविलेपनैः, हरितायमानं शिरीषकुसुमाभरणैः, अथ सेवार्थमागतेनोभयत ऊर्ध्वस्थितेन स्त्रीजनेन प्राकारेणेव लावण्यमयेन कृतदीर्घरथ्यामुखाकारं मार्गमद्राक्षीत्। तेन चान्तर्निपतन्तमाभरणकिरणालोकं संपिण्डित नदीवेणिकाजलप्रवाहमिव वहन्तमपश्यत्। तन्मध्ये च प्रतिस्रोत इव गत्वा प्रतिहारिमण्डलाधिष्ठितपुरोभागं श्रीमण्डपं ददर्श।

तत्र च मध्यभागे पर्यन्तरचितमण्डलेनाध उपविष्टेन चानेकसहस्रसंख्येन परिस्फुरदाभरणसमूहेन कल्पलतानिवहेनेव कन्यकाजनेन परिवृताम्, नीलांशुकप्रच्छद-

---

भाव। रक्तत्वसाम्येनाह—लोहितेति। कर्णाशोकपल्लवै श्रवणनिक्षिप्तकङ्केल्लिकिसलयैर्लोहितायमान रक्तवदाचरमाणम्। धवलेति। चन्दन मलयज तस्य रसो द्रवस्तस्य विलेपनैरङ्गरागैर्धवलायमानं श्वेतवदाचरमाणम्। हरितेति। शिरीष कपीतनस्तस्य कुसुमाभरणै पुष्पविभूषणैर्हरितायमान पीतनीलवदाचरमाणम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तेनेति। तेन मार्गेणान्तर्मध्ये निपतन्त प्रविशन्त सपिण्डितं नानाभूषणप्रभामिश्रितमाभरणकिरणालोक विभूषणप्रभाप्रकाशम्। प्रसरणसाम्येनाह—नदीति। नद्या सरितो वेणिका रयस्तत्र यो जलप्रवाहस्तद्वदिव वहन्त प्रसरन्तमपश्यत्। तन्मध्य इति। आमरणकिरणालोकमध्ये महाश्वेतया सह प्रतिस्रोत इव प्रतिरय इव गत्वा प्रतिहारिमण्डलेनाधिष्ठित आश्रित पुरोभागोऽग्रभागो यस्यैवंविध श्रीमण्डप ददर्श दृष्टवान्। अत्रालोकस्याभ्यन्तरावधि निपतनात्, एतस्य प्रत्यभिमुखगमनात्, गमनमात्र एव दृष्टान्तस्तस्मिन्नेव दृष्टान्तस्योचितत्वात्, न तु दर्शनक्रियायामिति।

तत्र श्रीमण्डपे मध्यभागे कादम्बरीं ददर्शेत्यन्वय। इतो दूर कादम्बरीं विशेषयन्नाह—पर्यन्तेति। मण्डपपर्यन्त रचित निर्मित मण्डलं येन स तेन। अध इति। कुमारिकासनापेक्षयाध उपविष्टेन स्थितेनानेकेषां सहस्राणां सख्या गणना यस्मिन्स तेन। परीति। परिस्फुरद्

भूषण (के रूप में प्रयुक्त) (लाल) अशोक की कोंपलों से वह लाल होता प्रतीत था, कृष्ण अगरु के लेप से चित्रित रैखिक सजावट (पत्रभग) के कारण वह नीला प्रतीत होता था, और गोरोचना के अभिलेप से अंकित तिलकचिह्नों से प्रियङ्गु लताओं का कुञ्ज (वन)—सरीखा प्रतीत होता था, चन्दन रस के अनुलेपनों से श्वेत हो रहा था, शिरीषपुष्पों के आभूषणों से हरा हो रहा था, और (कादम्बरी की) सेवा के लिये आयी हुई दोनों ओर सीधी (उद्ग्रीव होकर) खड़ी, सौन्दर्य की बनी दीवारों-सरीखी प्रतीत होती स्त्रियों के समूह द्वारा बना लम्बी गली (रथ्या) के प्रवेशद्वार (मुख) के आकार का था। और उसने नदी के केशपाश जैसे (अर्थात् सरल) जलप्रवाह जैसे प्रतीत होते, इस (मार्ग) पर एकत्रित होकर गिरते आभूषणों की किरणों के प्रकाश को उस (मार्ग) के साथ साथ बहते हुए देखा और उसके भीतर, एक विरोधी धारा की भाँति प्रविष्ट होकर उसने स्त्री द्वारपालिकाओं के मण्डल (अर्थात् कई द्वारपालिकाओं) द्वारा अधिकृत अग्रभाग वाले सुन्दर मण्डप को देखा।

और वहाँ उसने उस (मण्डप) के मध्यभाग में, (उसके) चारों ओर परिधि में मण्डल बना कर नीचे बैठी हुई, सख्यामें अनेक सहस्र, जगमगाते आभूषणों के समूह से युक्त कल्पलता के कुञ्ज सी प्रतीत होती स्त्रियों की टोली से घिरी हुई कादम्बरी को

पटप्रावृतस्य नातिमहतः पर्यङ्कस्याश्रये धवलोपधानन्यस्तद्विगुणभुजलतावष्टम्भेनावस्थिताम्, महावराहदंष्ट्रावलम्बिनीमिव महीं विस्तारिणि देहप्रभाजालजले भुजलताविक्षेपपरिभ्रमैः प्रतरन्तीभिरिव चामरग्राहिणीभिरुपवीज्यमानाम्, निपतितप्रतिबिम्बतयाधस्तान्मणिकुट्टिमेषु नागैरिवापह्रियमाणाम्, उपान्ते च रत्नभित्तिषु दिक्पालैरिव नीयमानाम्, उपरिमणिमण्डपेष्वमरैरिवोत्क्षिप्यमाणाम्, हृदयमिव प्रवेशिता महामणिस्तम्भैः, आपीतामिव भवनदर्पणैः, अधोमुखेन श्रीमण्डपमध्योत्कीर्णेन विद्याधर-

---

देदीप्यमान आभरणानां भूषणानां समूहो यस्मिन्स तेन। मनोहरत्वसाम्येनाह—कल्पेति। कल्पलता मन्दारवल्लयस्तासा निवहेनेव समूहेनेव कन्यकाजनेन परिवृताम्। नीलेति। नील यदंशुक तस्य य प्रच्छदपट उत्तरच्छदस्तेन प्रावृतस्याच्छादितस्य नातिमहतो नातिमहीयस। परिमाणोपेतस्येत्यर्थ। पर्यङ्कस्य पल्यङ्कस्याश्रयेऽधिकरणे धवलं शुभ्रं यदुपधानमुच्छीर्षकं तत्र न्यस्ता स्थापिता या द्विगुणा भुजलता तदवष्टम्भेन तदाश्रयेणावस्थिताम्। अत्र भुजाया वक्रीकरणत्वेन द्विगुणत्व बोध्यम्। धवलालम्बनावस्थितत्वमात्रेणोपमानमाह—महावराहेति। महावराह आदिक्रोडस्तस्य दंष्ट्रा दाढा तत्रावलम्बिनीमाश्रितां महीमिव वसुधामिव विस्तारिणि प्रसरणशीले देहप्रभाजालमेव जल पानीयं तस्मिन्भुजलतानां बाहुवल्लीनां विक्षेपरूपा ये परिभ्रमास्तै प्रसरन्तीभिरिव जलावगाहन कुर्वन्तीभिरिव चामरग्राहिणीभिरुपवीज्यमानाम्। निपतितेति। मणिकुट्टिमेष्वधस्तान्निपतित यत्प्रतिबिम्ब प्रतिच्छायस्तस्य भावस्तत्ता तया। नागै सर्पैरपह्रियमाणामिवान्यत्र नीयमानामिव। तथोपान्ते समीपे च रत्नभित्तिषु तत एव दिक्पालै सोमादिभिर्नीयमानामिव प्राप्यमाणामिव। तथोपरि मणिमण्डपेषु रत्नजनाश्रयेषु तत एवामरैर्देवैरुत्क्षिप्यमाणामिवोत्पाट्यमानामिव। तत एव महामणिस्तम्भैर्हृदयमिव प्रवेशितां चित्तान्तर्निहिताम्। तत एव भवनदर्पणैर्गृहादर्शैरापीतामिव पानविषयीकृतामिव। श्रीमण्डप-

---

देखा। वह नीले रेशमी वस्त्र की चादर (प्रच्छद पट) से ढके हुए, जो बहुत बड़ा नहीं था, पलङ्ग के सहारे पर (अर्थात् पलङ्ग पर), श्वेत तकिये पर रखी हुई (मोड़कर) दुहरी की हुई लता-सरीखी भुजा के सहारे बैठी हुई थी, और इसलिये ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो महावराह की दंष्ट्रा पर आश्रित पृथ्वी हो, (चँवरी चलाने के लिये) लम्बी तथा कोमल लता सरीखी भुजाओं के विक्षेप (फैंकना) तथा घुमाव से—(भुजाओं की सुन्दर गतियों से) मानो (उस कादम्बरी के) चारों ओर फैले हुए देह-काति समूह में (हाथ मार-मार कर) तैरती हुई जिसे चामरग्राहिणियों द्वारा पखा किया जा रहा था, मणिनिर्मित फर्शों में उसका प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो नाग उसको नीचे (नागलोक में) चुरा ले जा रहे हों, और समीपस्थ मणिनिर्मित दीवारों मे (पड़े प्रतिबिम्ब के कारण) मानो दिक्पालों द्वारा लेजायी जा रही हो, ऊपर की मणिनिर्मित छतों (मण्डपों) में (पड़े प्रतिबिम्ब के कारण) मानो देवताओं द्वारा उठायी जा रही हो, बड़े-बड़े मणिस्तम्भों द्वारा (उनमें पड़े प्रतिबिम्ब के कारण) मानो अपने हृदय में ही प्रविष्ट कराई गई हो, भवनमें लगे हुए दर्पणों ने मानो उसको पी लिया हो, नीचे को मुँह किये हुए—(नीचे की ओर मुँह किये हुए) श्रीमण्डप के मध्यभाग में

लोकेन गगनतलमिवारोप्यमाणाम्, चित्रकर्मच्छलेनावलोकनकुतूहलसपुञ्जितेन त्रिभुवनेनेव परिवृताम्, भूषणरवप्रनृत्तशिखिशतविततचित्रचन्द्रकेण भवनेनापि कौतुकोत्पादितलोचनसहस्रेणेव दृश्यमानाम्, आत्मपरिजनेनापि दर्शनलोभादुपार्जितदिव्यचक्षुषैवानिमिषनयनेन निर्वर्ण्यमानाम्, लक्षणैरपि रागाविष्टैरिवाधिष्ठितसर्वाङ्गाम्, अकृतपुण्यमिव मुञ्चन्तीं बालभावम्, अदत्तामपि मन्मथावेशपरवशेनेव गृह्यमाणा यौवनेन, अविचलितचरणरागदीधितिभिरिव निर्गताभिरलक्तकरसपाटलितलावण्य-

---

मध्योत्कीर्णेनाधोमुखेन विद्याधरलोकेन गगनतलं व्योमतलमारोप्यमाणामिव तत्र स्थाप्यमानामिव। एतेनोल्लिखितविद्याधररूपाणामतिस्वच्छता दर्शिता। चित्रेति। चित्रकर्मालेख्यकर्म तस्य छलेन मिषेणावलोकनलक्षण यत्कुतूहल कौतुक तेन सपुञ्जितेन पिण्डीभूतेन त्रिभुवनेन परिवृतामिव सहितामिव। भूषणरवेण प्रनृत्त ताण्डवितं यच्छिखिशतं मयूरशत तस्य वितता विस्तीर्णाश्चित्रा विविधवर्णाश्चन्द्रका मेचका यस्मिन्। कौतुकेन कुतूहलेनोत्पादित विहित लोचनसहस्रं येनैवविधेन भवनेनापि दृश्यमानामिव प्रेक्ष्यमाणामिव। अन्यथा भवनस्य लोचनाभावात्कादम्बरीप्रेक्षणं न स्यादिति भाव। आत्मेति। दर्शनलोभादवलोकनतृष्णातोऽनिमिषनयनेन निर्वर्ण्यमानामालोक्यमानाम्। केव। उपार्जितमर्जितं दिव्यं चक्षुर्येनैवविधेनेव। यौवनातिशयमाह—लक्षणैरिति। लक्षणैरपि कपोलद्युतिकुचकाठिन्यादिभिरधिष्ठितमाश्रित सर्वाङ्ग यस्या सा ताम्। कैरिव। रागाविष्टैरिव दृष्टिरागिभिरिव। किं कुर्वन्तीम्। बालभावं मुञ्चतीं त्यजन्तीम्। कमिव। अकृतपुण्यमिव निर्भाग्यमिव। अदत्तामिति। अदत्तामप्यनर्पितामपि मन्मथस्य कंदर्पस्यावेश आवेगस्तस्य परवशेन पराधीनेन यौवनेन गृह्यमाणामिव स्वीक्रियमाणामिव। पुन कीदृशीम्। चरणाभ्यां पादाभ्यां विद्रुमरसनदीमिव हेमकन्दलरसतटिनीमिव प्रवर्तयन्तीं विस्तारयन्तीम्। कीदृशाभ्यां चरणाभ्याम्। अङ्गुलीभि करशाखाभिरुपेताभ्यां सहिताभ्याम्। कीदृशीभिरङ्गुलीभि। अविचलितेति। अविचलितो निश्चलो यश्चरणयो रागस्तस्य दीधितिभिरिव प्रभाभिरिव निर्गताभि प्रत्युद्गताभि। अलक्तेति। अलक्तकरसो

खोदे हुए, विद्याधरों द्वारा मानो वह ऊपर आकाश में लेजायी जा रही थी (उस कादम्बरी को) देखने की उत्सुकता के कारण (वहाँ चारों ओर) की गयी चित्रकारी के बहाने एकत्रित तीनों लोकों से मानो घिरी हुई थी, स्वय भवन भी मानो अलङ्कारों के शब्द पर नाचे हुए सैकड़ों मयूरों द्वारा फैलायी गयी रगबिरगी आँखों (उनके पखों पर बने हुए चकत्तों) के बहाने, उसको उत्सुकतावश उत्पन्न की गई सहस्रों आँखों से देख रहा था, उसका अपना सेवकवर्ग भी मानो देखने की लालसा वश उपार्जित दिव्य दृष्टि द्वारा अपलक (स्थिर) आँखों से उसको ताक रहा था, मागलिक शारीरिक लक्षण भी मानो (उसके प्रति) अनुराग से आक्रान्त (आविष्ट) हुए उसके सारे शरीर पर अधिकार जमाये हुए थे। वह बचपन को मानो अभागा समझ कर छोड़ रही थी, (माता पिता द्वारा) न दी गयी हुई भी उसको यौवन मानो काम के वशीभूत होकर ग्रहण कर रहा था, अपने उन चरणों से मानो मूग के द्रव की नदी को प्रवर्तित कर रही थी, जो चरण पृथ्वी पर नक्षत्रपुञ्ज जैसे

जलवेणिकाभिरिव गलिताभिर्निवसितांशुकदशाशिखाभिरिवावलम्बिताभिः पादाभरणरत्नांशुलेखासंदेहदायिनीभिरतिकोमलतया नखविवरेण वर्षन्तीभिरिव रुधिरधारावर्षमङ्गुलीभिरुपेताभ्यां क्षितितलताराराणमिव नखमणिमण्डलमुद्वहद्भ्यां विद्रुमरसनदीमिव चरणाभ्यां प्रवर्तयन्तीम्, नूपुरमणिकिरणचक्रवालेन गुरुनितम्बभरखिन्नोरुयुगलसहायतामिव कर्तुमुद्गच्छता स्पृश्यमानजघनभागाम्, प्रजापतिदृढनिष्पीडितमध्यभागगलितं जघनशिलातलप्रतिघाताल्लावण्यस्रोत इव द्विधागतमूरुद्वयं दधानाम्, सर्वतः प्रसारितदीर्घमयूखमण्डलेनेर्ष्यया परपुरुषदर्शनमिव रुन्धता कुतूहलेन विस्तारमिव तन्वता स्पर्शसुखेन रोमाञ्चमिव मुञ्चता काञ्चीदाम्ना नितम्ब-

---

यावकरसस्तेन पाटलितं श्वेतरक्तीकृतं यल्लावण्यजलं तस्य गलिताभिः क्षरिताभिर्वेणिकाभिरिव धाराभिरिव। वस्त्रप्रान्तावलम्बनसाम्येनाह—निवसितेति। निवसितं परिधानीकृतं यदंशुकं रत्नांशुकं तस्य दशाशिखाभिरिव वस्त्रप्रान्ताग्रैरिवावलम्बिताभिर्लम्बमानाभिः। पादेति। अतिकोमलतयातिमृदुतया पादाभरणानां या रत्नांशुलेखा मणिकान्तिरेखास्तासां संदेहदायिनीभिः संशयवितरणकर्त्रीभिः। नखविवरेण नखान्तरेण रुधिरधारावर्षं वर्षन्तीभिरिव। किं कुर्वद्भ्यां पादाभ्याम्। क्षितितलताराराणमिव नखमणिमण्डलमुद्वहद्भ्यामुद्वहन् कुर्वद्भ्याम्। अत्र वर्तुलत्वप्रकाशकत्वसाधर्म्यान्नखताराराणयोः साम्यं प्रदर्शितम्। विद्रुमं हेमकन्दलस्तस्य यो रसस्तस्य नदीं तटिनीं चरणाभ्यां पादाभ्यां प्रवर्तयन्तीमिव विस्तारयन्तीमिव। नूपुरेति। स्पृश्यमानः स्पर्शविषयीक्रियमाणो जघनभागो यस्याः सा ताम्। केन। नूपुरमणीनां पादकटकरत्नानां किरणा दीधितयस्तेषां चक्रवालेन समूहेन गुरुर्यो नितम्ब आरोहस्तस्य भरेण भारेण खिन्नं यदूरुयुगलं सक्थिद्वन्द्वं तस्य सहायं साहाय्यं कर्तुमिवोद्गच्छतोर्ध्वं व्रजता। प्रजेति। प्रजापतिना ब्रह्मणा निर्माणव्याजेन दृढं निष्पीडितो मर्दितो मध्यभागो मध्यप्रदेशस्तस्माद्गलितं च्युतं लावण्यस्रोत इव जघनशिलातलप्रतिघाताद् द्विधागतमूरुद्वयं दधानां धारयन्तीम्। एतेन मध्य-

---

प्रतीत होते नखरूपी मणियों के मण्डल को (अर्थात् मणि की भाँति चमकीले नखों की श्रेणी को) धारण किये हुए थे और जो पाँव ऐसी अँगुलियों से युक्त थे जो निकली हुई पाँवों की स्थिर लालिमा की किरणों-सरीखी प्रतीत हो रही थीं, जो अलक्तक रस से लाल हुई (उसके) लावण्यजल की धाराओं सरीखी चूई हुई प्रतीत होती थीं, जो (उसके) पहने हुए लालवस्त्र के किनारे की शाखाओं-सरीखी वहाँ स्थापित प्रतीत होती थीं, जो पाँवों के आभूषण की किरणमाला (पेंसिलाकृति) का संदेह उत्पन्न कर रही थीं तथा जो (अपनी) अत्यधिक कोमलता के कारण नखरूपी छिद्र से मानों रक्त की धारा को बरसा रही थीं, वह (कादम्बरी) भारी कूल्हों (नितम्ब) के भार से झुकी हुई जघाओं को सहायता देने के लिये ही मानो ऊपर को उठी हुई, (अपने) नूपुर में लगी मणियों के किरणमडल से छुए जाते जघन प्रदेश वाली थी, (छोटा बनाने के लिये) विधाता के हाथ द्वारा कसकर दबाये हुए कटिभाग से चूए हुए, (फिर) जघन रूपी शिलातल पर टकराकर दो शाखाओं में विभक्त हुए सौन्दर्य के प्रवाह सरीखे ऊरुयुगल को धारण किये हुई थी, उस रशनादाम ने उसके नितम्बबिम्ब का (गोल कूल्हों का)

बिम्बस्य विरचितपरिवेषाम्, निपतितसकललोकहृदयभरेणेवातिगुरुनितम्बाम्, उन्नतकुचान्तरितमुखदर्शनदुःखेनेव क्षीयमाणमध्यभागाम्, प्रजापतेः स्पृशतोऽतिसौकुमार्यादङ्गुलिमुद्रामिव निमग्ना नाभिमण्डलमावर्तिनीमुद्वहन्तीम्, त्रिभुवनविजयप्रशस्तिवर्णावलीमिव लिखिता मन्मथेन रोमराजिमञ्जरीं बिभ्राणाम्, अन्तःप्रविष्ट-

---

भागे कार्श्यं शिलातलपदेन च जघने दृढत्वमगूढं व्यज्यते। पुन कीदृशीम्। काञ्चीदाम्ना रशनादाम्ना नितम्बबिम्बस्यारोहमण्डलस्य विरचितो निर्मित परिवेष. परिधिर्यस्या सा ताम्। इत काञ्चीदाम विशेषयन्नाह—सर्वत इति। सर्वतः समन्तात्प्रसारित विस्तारित दीर्घमायत मयूखमण्डलं किरणसमूहो येन स तेन। ईर्ष्यया स्पर्धया परपुरुषदर्शनमन्यनरावलोकन रुन्धतेवावरोध कुर्वतेव। अदृष्टपूर्वत्वात्। कुतूहलेन कौतुकेन विस्तार विस्तीर्णता तन्वतेव विस्तारयतेव। स्पर्श इति। स्पर्शसुखेन सश्लेषसातेन रोमाञ्चमिव रोमोद्गममिव मुञ्चता त्यजता। निपतितेति। हृदयत्वान्निपतितानि सकललोकानां समग्रजनानां हृदयानि मानसानि तेषां भरेणेवातिगुरुर्गरीयान्नितम्बो यस्या सा ताम्। उन्नतेति। उन्नतावुच्चौ यौ कुचौ स्तनौ ताभ्यामन्तरित व्यवहित यन्मुखदर्शनमाननवीक्षण तस्य दु खेनेव कृच्छ्रेणेव क्षीयमाण क्षीणतां प्राप्यमाणो मध्यभागो यस्या सा ताम्। मध्यभागस्याधस्तान्मुखस्योपरिष्टात्तन्मध्ये कुचान्तरालस्य विद्यमानत्वात्तथा दर्शन न भवति। अङ्कुरितयौवनत्वात्। पूर्णे तु यौवने सर्वथा दर्शन न भविष्यतीत्यतो दु खेनेवेत्युक्तमिति भावः। प्रजापतेरिति। अतिसौकुमार्यात्स्पृशत स्पर्श कुर्वतः प्रजापतेर्ब्रह्मणोऽङ्गुलिमुद्रामिवावर्तिनीं निम्नगां नाभिमण्डलमुदकूपिकामुद्वहन्तीं धारयन्तीम्। त्रिभुवनेति। मन्मथेन कदर्पेण लिखितां लिपीकृता त्रिभुवनस्य यो विजयो जयस्तस्य प्रशस्तिवर्णा श्लाघाक्षराणि तेषामावलीमिव रोमराजिमञ्जरीं तनूरुहसमूहवल्लरी बिभ्राणां दधानाम्। अन्तरिति। अन्त प्रविष्ट एवभूत कर्णपल्लवस्य य प्रतिबिम्बस्तेन तन्मिषेणातिभरेण

घेरा डाल रखा था जो रशनादाम (अपनी) चारों ओर फैलायी हुई किरणो के मण्डल से मानो ईर्ष्या के कारण ही दूसरे पुरुष के दर्शन को रोक रही थी जो मानो (उसके कूल्हों की परिमिति जानने की) अपनी उत्सुकता के कारण ही विस्तार को उत्पन्न कर रही थी (विस्तृत हो रही थी) मानो स्पर्श सुख द्वारा रोमाञ्च को प्रकट कर रही थी, सब लोगों के गिरे हुए हृदयों के भार से मानो वह बहुत भारी कूल्हों वाली थी, ऊँचे (उठे हुए) स्तनों से रुके हुए (विघ्नित) मुखदर्शन के दु ख से ही मानो वह दुर्बल हो रहे कटिप्रदेश वाली थी (अर्थात् उसका कटिप्रदेश मानो इस दुःख के कारण दुबला-पतला हो रहा था कि उसके ऊँचे स्तन उसके मुख के दर्शन में विघ्न डाल रहे थे), (उसकी) अत्यधिक कोमलता के कारण (उसको बनाते समय उस भाग को) छूते हुए विधाता की अगुलियों की मानो छाप-सरीखी, भँवर की भाँति मध्य में गढ्ढे से युक्त (अथवा चारो ओर घुघराले बालों वाली) गोल नाभि को धारण किये हुई थी, वह एक ऐसी रोमावली को (नाभि से ऊपर उठती हुई को) धारण किये हुई थी जो मानो कामदेव द्वारा लिखित, (अपनी) तीनों लोकों की विजय के अवसर पर प्रशस्ति के वर्णों की पक्ति थी, वह ऐसे उन्नत स्तनोंसे भूषित थी कि जो भीतर प्रविष्ट हुए कर्णा-

कर्णपल्लवप्रतिबिम्बेनातिभरखिद्यमानहृदयकरतलप्रेर्यमाणेनेव निष्पतता मकरकेतुपादपीठेन स्तनभरेण भूषिताम्, अधोमुखकर्णाभरणमयूखाभ्यामिव प्रसृताभ्याममललावण्यजलमृणालकाभ्या बाहुभ्या नखकिरणविसरवर्षिणा च माणिक्यवलयगौरवश्रमवशात्स्वेदजलधाराजालकमिव मुञ्चता करयुगलेन समुद्भासिताम्, स्तनभारावनम्यमानमाननमिवोन्नमयता हारेणोच्चैः करैर्गृहीतचिबुकदेशाम्, अभिनवयौवनपवनक्षोभितस्य रागसागरस्य तरगाभ्यामिवोद्गताभ्या विद्रुमलतालोहिताभ्यामधराभ्या

अर्थात्कामभारेण खिद्यमान पीड्यमान यद्धृदय तस्य मृदुत्वरक्तत्वसाम्यात्। अत्र च प्रतिबिम्बरूपेण। करतलेनेव प्रेर्यमाण नोदनाविषयीक्रियमाणमेवभूतम्। अतएव निष्पतता बहिर्नि सरता इदत्वान्मकरकेतोर्मदनस्य पादपीठेनेव पदासनेनेव स्तनभरेण भूषितां मण्डिताम्। अधोमुखेति। बाहुभ्यां भुजाभ्यां करयुगलेनेव समुद्भासितां विभ्राजिताम्। बाहुमुत्प्रेक्षयन्नाह—अधो इति। अधोमुखेऽवाङ्मुखे ये कर्णाभरणे श्रवणभूषणे तयोर्मयूखाभ्यां किरणाभ्यां प्रसृताभ्यामत्यन्तप्रवृद्धाभ्यामिव। अतिकोमलसाधर्म्यात्। उपमान्तर प्रदर्शयन्नाह—अमलेति। अमल निर्मल यल्लावण्यजलं पानीय तस्य मृणालकाभ्यामिव तन्तुलाभ्यामिव। करयुगल विशेषयन्नाह—नखेति। नखा पुनर्मवास्तेषां किरणास्तेषां विसर समूहस्तद्वर्षिणा तद्वृष्टिकारिणा। किरणविसरस्य श्वेतत्वसाम्यादाह—माणिक्येति। माणिक्यवलयानां रत्नकटकानामप्युद्वहनगौरवेण श्रम इति सौकुमार्यं ध्वन्यते। तद्वशात्स्वेद प्रस्वेदस्तस्य जलधाराजालकमिव मुञ्चता त्यजता। पुन कीदृशीम्। स्तनेति। हारेण मुक्ताकलापेनोच्चै करै स्वकिरणैस्तैरेव वा करैर्गृहीतश्चिबुकदेशोऽसिकाध प्रदेशो यस्या, सा ताम्। किं कुर्वता हारेण। स्तनभारेणावनम्यमान नम्रतां नीयमानमानन मुखमुन्नमयतेवोच्चै कुर्वतेव। अभीति। अभिनव नूतन यद्यौवन तारुण्य तदेव चञ्चलत्वात्पवनस्तेन क्षोभितस्य क्षोभं प्रापितस्य रागसागरस्य रागसमुद्रस्योद्गताभ्यां प्रादुर्भूताभ्यां तरगाभ्यामिव। विद्रुमेति। विद्रुमलतावल्लोहिताभ्यां रक्ताभ्याम-

---

भूषण के प्रतिबिम्ब से युक्त थे और इसी कारण मानो (इस पर बैठे कामदेव के) भार से दबे हुए (आभूषण रूप में पहनी कोंपलो के प्रतिबिम्ब रूप) इसके हृदय के हाथ से उछाले जाते हुए तथा बाहर निकलते हुए कामदेव के पीढ़े थे, वह मानो नीचे को मुँह किये हुए फैली हुई कर्णाभरणों की किरणों सरीखी तथा उसके विशुद्ध उज्ज्वल स्वरूप लावण्य के जल में दो मृणालदण्डियों जैसी प्रतीत होती हुई अपनी दो भुजाओं से तथा माणिक्य के कगन के भार (को उस द्वारा धारण करने) से उत्पन्न थकावट के कारण ही मानो पसीने की जलधाराओं के समूह को बहाते हुए दो हाथों से उज्ज्वल रूप से सुशोभित थी, उसकी ठोडी को उसके स्तनों के भार द्वारा झुकाये जाते (उसके) मुख को मानो ऊपर को उठाते हुए हार ने अपनी ऊर्ध्वमुख किरणों (हाथों) से पकड़ रखा था, वह नये यौवन की वायु द्वारा तरगित राग (लालिमा-कामोन्माद) के समुद्र की उत्पन्न हुई दो लहरों-सरीखे प्रतीत होते तथा मूगे के समान लाल होठों से और चमकीले लाल तथा स्वच्छ स्वरूप वाली एव मदिरा जल से भरे सीपी के खोल

रक्तावदातस्वच्छकान्तिना च मदिरारसपूर्णमाणिक्यशुक्तिसपुटच्छविना कपोलयुगलेन रतिपरिवादिनीरत्नकोणचारुणा नासावशेन च विराजमानाम्, गतिप्रसरनिरोधि-श्रवणकोपादिव किंचिदारक्तापाङ्गेन निजमुखलक्ष्मीनिवासदुग्धोदधिना लोचनयुगलेन लोचनमयमिव जीवलोक कर्तुमुद्यताम्, उन्मदयौवनकुञ्जरमदराजिभ्या भ्रूलताभ्या मनःशिलापङ्कलिखितेन च रागाविष्टेन मन्मथहृदयेनेव वदनलग्नेन तिलकबिन्दुना विद्योतितललाटपट्टाम्, उत्कृष्टहेमतालीपट्टाभरणमयमामुक्तकर्णोत्पलच्युतमधुधारा-

---

धराभ्यां दन्तच्छदाभ्यां तथा रक्तावदातेन स्वच्छा निर्मला कान्तिर्यस्यैवविधेन। मदिरेति। मदिरारस कापिशायनद्रवस्तेन पूर्ण भृत माणिक्यशुक्तिसपुट तद्वच्छवि. कान्तिर्यस्यैवविधेन कपोलयुगलेन। तथा रते परिवादिनी सप्ततन्त्रीभिर्युक्ता वीणा तस्या रत्नमयो य कोणो वीणादिवादन तद्वच्चारुणा मनोहरेण नासावशेन च नासिकावेणुना च विराजमाना शोभमानाम्। गतीति। गतिर्गमन तस्य प्रसरो विस्तारस्तस्य निरोधि अतिद्वन्द्वि यच्छ्रवण तस्य य कोपस्तस्मादिव किंचिदारक्तेऽपाङ्गे निर्याणे यस्य स तेन। निजेति। निज-मात्मीय यन्मुख तस्य या लक्ष्मी श्रीस्तस्या निवासार्थं दुग्धोदधिना क्षीरसमुद्रेणैवविधेन लोचन-युगलेन नेत्रयुग्मेन लोचनमयमिव जीवलोकं कर्तुमुद्यताम्। कपोलावधिश्यामलेखाद्वयसाम्ये-नाह—उन्मदेति। उद्गतो मदो यस्मादेवभूत यद्यौवन स एवानिवार्यत्वात्कुञ्जरस्तस्य मदो दान तस्य राजी इव राजी ताभ्या भ्रूलताभ्याम्। तथा रागोऽनुरागस्तेनाविष्टेन व्याप्तेन। अथ च राग आरुण्यम्। तिलकारुण्यमिति यावत्। एवविधेन मन्मथहृदयेनेव कदर्पस्वान्तेनेव वदनलग्नेन मन शिलापङ्कलिखितेन तिलकबिन्दुना विद्योतित प्रकाशित ललाटपट्टं यस्या सा ताम्। केचित्तु—मन्मथो हृदये यस्मात्। तिलकारुण्य दृष्ट्वा यूना हृदये मन्मथावेश.। एव-विधेनेवेति व्याख्यानयन्ति। पुन पुन कुर्वन्तीम्। दधतीं धारयन्तीम्। कर्णपाश कर्णाभरण-विशेषम्। दोलायमान पत्र स्वर्णपत्र यस्मिन्नेतादृश मरकतमाणिक्यनिर्मित कुण्डलं च। आद्य विशेषयन्नाह—उत्कृष्टेति। उत्कृष्टा अत्यद्भुता या हेमताली स्वर्णताली तस्या. पट्टाभरणेन

(अर्थात् पात्र विशेष) सरीखे प्रतीत होते दो कपोलों से और रति की वीणा (परिवादिनी) के रत्न (निर्मित) कोण (मिजराफ) के समान आकर्षक लम्बी तथा सीधी नाक (नासावश) से परम सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह (अपनी अग्रगामी) गति के फैलाव को रोकने वाले कानों पर मानो क्रुद्ध हो जाने के ही कारण कुछ-कुछ लाल हुए कोणों वाली तथा अपने मुख की शोभा (लक्ष्मी) के निवासभूत क्षीरसमुद्र सरीखी दो आँखों से इस मर्त्यलोक को मानो आँखों से भरा हुआ करने में तत्पर थी, उसका चौड़ा तथा लम्बा मस्तक (ललाटपट्ट), मदमत्त यौवन रूपी हस्ती की मदरेखाभूत दो भौंहों द्वारा और हरताल के लेप से अंकित किये गये एव राग (लाली=प्रेम) से प्रभावित हृदय सरीखे उसके चेहरे पर लगे तिलक चिह्न से अधिक आकर्षक (विद्योतित=प्रकाशित) बनाया हुआ था, वह उस प्रशस्त कर्ण को धारण किये हुई थी जो (आभूषण रूप में) पहने हुए (आमुक्त) (दो) कर्ण कमलों से चूई हुई शहद की

संदेहकारिण कर्णपाश दोलायमानपत्रमरकतमाणिक्यकुण्डल दधतीम्, पाटलीकृत ललाटेन सीमन्तचुम्बिनश्चूडामणेः क्षरतांशुजालेन मदिरारसेनेव प्रक्षाल्यमानदीर्घकेशकलापाम्, देहार्धप्रविष्टहरगर्वितगौरीविजिगीषयेव सर्वाङ्गानुप्रविष्टमन्मथदर्शितसौभाग्यविशेषाम्, उरःसमारोपितलक्ष्मीमुदितनारायणावलेपहरणाय प्रतिबिम्बकैर्निजरूपतो लक्ष्मीशतानीव सृजन्तीम्, उत्तमाङ्गनिहितैकचन्द्रविस्मितहराभिमाननाशाय विलासस्मितैश्चन्द्रसहस्राणीव दिक्षु क्षिपन्तीम्, निर्दयदग्धैकमन्मथप्रमथनाथरोषेणेव

निर्मितम्। तस्य च पिङ्गवर्णत्वात्। कमलमकरन्दस्याप्येवभूतत्वात्तत्साम्येनाह—आमुक्तेति। आमुक्त परिधानीकृत यत्कर्णोत्पल श्रवणकुवलय तस्माच्च्युता स्रस्ता या मधुधारा तस्या सदेह कारिणमारेकाजनकम्। पाटलीति। पाटलीकृत श्वेतरक्तीकृत ललाटमलिकं येनैवंविधेन सीमन्तचुम्बिन. केशवर्त्मचुम्बिनश्चूडामणे शिरोमणेरंशुजालेन किरणसमूहेन क्षरता स्रवता। अनेकवर्णत्वसाम्यादाह—मदिरारसेनेव प्रक्षाल्यमानो दीर्घ आयत केशकलापोऽलकसमूहो यस्या सा ताम्। देहेति। देहार्धे शरीरार्धे प्रविष्टो यो हर ईश्वरस्तेन गर्विता गर्व प्राप्ता या गौरी तद्विजिगीषयेव विजेतुमिच्छयेव। सर्वाङ्गेष्वनुप्रविष्टो हरविरोधी मन्मथस्तेन दर्शित सौभाग्यविशेषो यस्या सा ताम्। एतेन सर्वाङ्गानङ्गप्रवेशेन गौर्या सकाशादस्या सौभाग्यातिशयो व्यज्यते। उर इति। उर स्थले समारोपिता अवस्थापिता या लक्ष्मीस्तया मुदितो हर्ष प्राप्तो यो नारायणस्तस्य योऽवलेपोऽहकारो मत्सदृश कोऽपि नास्ति, अन्येषा लक्ष्मीर्वर्तते सा बहि सयोगवियोगमात्रेण, पर न शरीरान्तर्गतेत्येवरूपस्तस्य हरणाय निवृत्तेनिजरूपत आत्मीयदेहस्य। सार्वविभक्तिकस्तस्। तस्य प्रतिबिम्बकै प्रतिच्छायैर्लक्ष्मीशतानीव सृजन्तीं कुर्वन्तीम्। उत्तमाङ्गे शिरसि निहित स्थापितो य एकोऽद्वितीयश्चन्द्र शशी तेन विस्मितो हर ईश्वरस्तस्याभिमानोऽहकार एका चन्द्रस्य कला, सापि स्वोत्तमाङ्गे एव, नान्यस्य कस्यचित्,

---

(दो) धाराओं का सन्देह (भ्रम) उत्पन्न करने वाले, श्रेष्ठ सोने के बने तालीपट्ट (नाम के) आभरणों से लगभग ढका हुआ था, जो झूलते हुए स्वर्णपत्र में जड़े हुए मरकत तथा माणिक्य के बने कुण्डलों से युक्त था, उसके लम्बे केशों का जूड़ा, मस्तक को लाल किये हुए सीमन्तरेखा का आलिंगन करते हुए शिरोमणि से निकलते हुए, किरण समूह से, मानो शराब से ही धोया जा रहा था, गौरी के आधे शरीर में प्रविष्ट शिवजी के कारण गर्विता पार्वती को मानो जीतने की इच्छा से ही, (उसके) सारे अंगों में प्रविष्ट हुए कामदेव द्वारा उसने अपना विशेष सौभाग्य (उत्कृष्ट सौभाग्य) प्रकट किया हुआ था, अपने वक्षःस्थल पर रखी हुई लक्ष्मी से प्रसन्न हुए नारायण के गर्व को मानो दूर करने के लिये ही वह अपने प्रतिबिम्बों के द्वारा मानो सैकड़ों लक्ष्मियों की रचना कर रही थी, (अपने) माथे पर रखे हुए एक चन्द्रमा से विस्मित हुए शिवजी के अभिमान को मानो नष्ट करने के लिये ही वह अपने विलासयुक्त (आकर्षक) हास्यों के द्वारा मानो सहस्रों चन्द्रमाओं को चारों ओर (दिशाओं में) फेंक रही थी, निर्दयता से जला दिया है एक (मात्र) कामदेव को जिसने ऐसे शिवजी (प्रमथनाथ) के प्रति क्रोध के द्वारा ही मानो यह प्रत्येक (मनुष्य के) हृदय में

प्रतिहृदयं मन्मथायुतान्युत्पादयन्तीम्, रजनीजागरखिन्नस्य परिचितचक्रवाकमिथुनस्य स्वप्तु क्रीडानदिकासु कमलधूलिवालुकाभिर्बालपुलिनानि कारयन्तीम्, 'परिजननूपुररवप्रस्थित दुर्लभ च हसमिथुन मृणालनिगडकेन बद्ध्वानय' इति हसपालीमादिशन्तीम्, आभरणमरकतमयूखांलिहते हरिणशावकाय सखीश्रवणादपनीय यवाङ्कुरप्रसवं प्रयच्छन्तीम्, आत्मवर्धितलताकुसुमनिर्गमनिवेदनागतामुद्यानपालीमशेषाभरणदानेन समानयन्तीम्, उपनीतविविधवनकुसुमफलपूर्णपत्रपुटामविज्ञायमानालापतया

स्वतन्त्ववयवे बहिर्वा, इत्येवरूपस्तद्वैपरीत्येन तदभिनाशाय विशदाह्लादकत्वसाम्येन विलासस्मितैर्दिक्षु चन्द्रसहस्राणीव क्षिपन्तीम्। तादृशस्मितान्येव चन्द्रसहस्ररूपता प्रापितानीत्यर्थ। निर्दयदग्धेति। निर्दय निष्करुणं दग्धो ज्वालित एकोऽद्वितीयो मन्मथ कंदर्पो येनैवंभूतो य प्रमथनाथ ईश्वरस्तस्मिन्यो रोष क्रोधस्तेनेव प्रतिहृदय मन्मथस्यायुतानि सख्याविशेषान्युत्पादयन्तीं निर्माण कुर्वन्तीम्। रजनीति। रजन्यां यो जागरो जागरण तेन खिन्नस्यैवविधस्य परिचित स्ववशमानीत यच्चक्रवाकमिथुन द्वन्द्वचरयुग्म तस्य स्वप्तु शयन कर्तुं क्रीडानदिकासु क्रीडातटिनीषु कमलाना नलिनानां धूलय परागास्ता एव वालुका सिकतास्ताभिर्बालपुलिनानि स्वसैकतानि कारयन्तीम्। अत्र पूर्वोक्तेषु वक्ष्यमाणेषु वा यत्र यत्र द्रव्यगुणक्रियाभि प्रस्तुतप्रशसा तत्र सर्वत्र यथोचित तत्तदतिशया एव व्यङ्ग्या स्वय बोद्धव्या। यथा निजरूपत प्रतिबिम्बैरित्यत्र रूपातिशय.। यथा वा रजनीत्यत्र कमलातिशय पुलिनक्रियातिशयश्च। परिजनेति। परिजन परिच्छदलोकस्तस्य नूपुराणि पादकटकानि तेषा रव शब्दस्तेन प्रस्थित चलित दुर्लभं दुष्प्राप च हसमिथुन चक्राङ्गयुग्म मृणाल तन्तुलं तदेव निगडकमन्दुकस्तेन बद्ध्वा नियम्यानय मत्समीप प्रापय। इति हसपालीं हसरक्षानियुक्तामादिशन्तीम् कथयन्तीम्। पुन किं कुर्वन्तीम्। आभरणानां भूषणानां मरकतान्यश्मगर्भाणि तेषा मयूखान्किरणाल्लिहत आस्वादयते हरिण शावकाय मृगशिशवे सखीश्रवणाद्वयस्याकर्णाद्यवाङ्कुरप्रसव हयप्रियोद्गमपुष्पमपनीय दूरीकृत्य प्रयच्छन्तीं ददतीम्। आत्मेति। आत्मवर्धिता स्वय वृद्धिं प्रापिता या लता वल्ली तस्या कुसुमनिर्गमं पुष्पप्रादुर्भावस्तस्य निवेदनाय कथनायागतां प्राप्तामुद्यानपालीं वनरक्षानियुक्ताम शेषाभरणदानेन समग्रभूषणप्रदानेन समानयन्तीं समान कुर्वन्तीम्। उपेति। उपनीतान्या-

---

रहनेवाले हजारों कामदेवों को उत्पन्न कर रही थी, रात के जागरण से थके हुए (अपने) परिचित चक्रवाक जोड़े के सोने के लिये, वह मानो क्रीडा (प्रमोद)—नदियों में कमलों को पराग रूपी रेत से छोटे छोटे रेतीले तट बना रही थी, "परिचारिकाओं के नूपुरों के शब्द के पीछे-पीछे चल पड़े हुए तथा दुष्प्राप्य (मेरे) पालतू हसों के जोड़ों को बिसतन्तुओं की साकल से बाँध कर ले आ"—यह आज्ञा हसरक्षिका को दे रही थी, आभूषण में (लगी हुई) मरकत मणि के किरणों को चाटते हुए मृग शिशु को जौ के कोमल अकुर (अपनी) सखी के कान से उतार कर दे रही थी, स्वय पाली हुई बेल पर (पहली बार) फूल के आने का निवेदन करने के लिये आयी हुई उद्यान पालिका का, सारे आभूषण देकर, सम्मान कर रही थी, नाना प्रकार के वन्य पुष्पों तथा फलों से भरे दोने को लाए हुई तथा अपनी अस्पष्ट बातचीत के कारण हँसी का

हासहेतु पुनः पुनः क्रीडापर्वतपत्रशबरीमालपन्तीम्, करतलविनिहितैर्मुहुर्मुहुरुत्पतद्भिश्च मुखपरिमलान्धैर्नीलकञ्चुकैरिव मधुकरैः क्रीडन्तीम्, पञ्जरहारीतकरुतश्रवणकृतदुष्टस्मिता चामरग्राहिणीं विहस्य लीलाकमलेन शिरसि विघट्टयन्तीम्, मुक्ताफलखचितचन्द्रलेखिकासंक्रान्तप्रतिमा स्वेदजलबिन्दुजालचितनखपदाभिप्रायेण ताम्बूलकरङ्कवाहिनी पयोधरे पटवासमुष्टिना ताडयन्तीम्, रत्नकुण्डलप्रतिबिम्बसान्द्रदत्तनवनखपदमण्डलाशङ्कया चामरग्राहिणीं विहस्य कपोले प्रसादव्याजेन दत्तेनात्मकर्णपूरपल्लवेनाच्छा-

नीतानि विविधान्यनेकप्रकाराणि वनकुसुमफलानि तै पूर्ण भृत पत्रपुट यया सा ताम्। अविज्ञायमानो य आलाप संलापस्तस्य भावस्तत्ता तया हासहेतु परिहासनिमित्तं पुन पुनर्भूयोभूय' क्रीडापर्वतस्य पत्रशबरीं पुलिन्दपत्नीम्। 'पुलिन्द पत्रशबर' इति रत्नकोश। आलपन्ती जल्पन्तीम्। करेति। करतले हस्ततले विनिहिते स्थापितैर्मुहुर्मुहुर्वारंवारमुत्पतद्भिरुत्पतन कुर्वद्भिर्मुखस्य य परिमलस्तेनान्धै। नीलत्वसाम्यादाह—नीलेति। नीलकन्दुकैरिव मधुकरैर्भ्रमरै क्रीडन्तीं क्रीडा कुर्वन्तीम्। पञ्जरेति। पञ्जरे वंशदलनिर्मिते पात्रे यो हारीतको मृदङ्कुरस्तस्य रुतश्रवणेन कृतं दुष्ट गूढ स्मित यया सा ताम्। एवंविधां चामरग्राहिणीं विहस्य शिरसि मस्तके लीलाकमलेन विघट्टयन्तीं ताडयन्तीम्। मुक्तेति। मुक्ताफलानि रसोद्भवानि तै. खचिता या चन्द्रलेखिका चन्द्रलेखाकृतिराभरणविशेषस्तस्या संक्रान्ता प्रतिबिम्बिता प्रतिमा यस्यां सैवंविधां ताम्बूलकरङ्कवाहिनीं स्वेदजलबिन्दुजालेन चित व्याप्त यन्नखपद तस्याभिप्रायेण पयोधरे कुचे पटवास पिष्टातस्तस्य मुष्टिना ताडयन्तीम्। अत्रायमभिप्राय—मुक्ताफलानां जलबिन्द्वनुकारित्वाच्चन्द्रलेखिकायाश्च वक्रत्वेन नखक्षतानुकारित्वात्ताम्बूलकरङ्कवाहिनीवक्षसि गौररूपातिशयवति मुक्ताचन्द्रिकाया प्रतिबिम्बसंक्रान्त्या चौर्यरतपिशुन स्वेदबिन्दुजालचिते नखपद कस्येदमित्यभिप्रायेण यत्र तद्दर्शन तत्रैव चूर्णक्षेप। एतेन रतगोपन व्यज्यते। रत्नेति। रत्नकुण्डलस्य य प्रतिबिम्ब प्रतिच्छायस्तेन सान्द्र दत्तं यन्नवनखपदमण्डल तस्याशङ्कयारेकया वा चामरग्राहिणीं वालव्यजनधारिणीं विहस्य कपोले प्रसाद प्रसन्नता तद्व्याजेन तन्मिषेण दत्तेनार्पितेनात्मन. स्वकीयस्य य. कर्णपूरपल्लवस्तेनाच्छादयन्तीमाच्छादन कुर्वन्तीम्। एतेन रत्नकुण्डलस्य

कारण बनी हुई क्रीडापर्वत की रक्षिका भिल्लनी से बार बार बातें कर रही थी, हथेली पर रखे हुए, (उसके) मुख (सांस) की सुगन्ध से अन्धे हुए और बार-बार उछलते हुए, नीली गेंदों-सरीखे भौंरों से खेल रही थी, पिंजरे के तोते का शब्द सुन कर, तिरस्कारपूर्ण मुस्कराने वाली चामरग्राहिणी को हँस कर लीलाकमल से पीट रही थी, मोतियों से जड़े चन्द्रकलाकार आभूषणों की (अपने वक्ष.स्थल में) प्रतिबिम्बित प्रतिमा वाली, पानपात्र उठानेवाली को (उस प्रतिमा को) पसीने के बिन्दुओं से ढँका (चित), नखचिह्न (पद) समझ कर सुगन्धित चूर्ण की मुट्ठी से (अर्थात् मुट्ठी भर सुगन्धित चूर्ण से) पीट रही थी, (चामर उठाने वाली के) रत्नजटित कुण्डल के (उसकी गाल पर पड़े) प्रतिबिम्ब को (गाल पर) सान्द्रता से (प्रचण्डता से) दिया गया (रोपित किया गया) नया नख-चिह्न समझ कर, हँस कर उसके कपोल पर कृपा के चिह्न स्वरूप (कृपा के बहाने) रखी हुई, अपनी कर्णाभूषण बनी हुई कोमल कोंपल से चामरग्राहिणी

दयन्तीम्, पृथिवीमिव समुत्सारितमहाकुलभूभृद्व्यतिकरां शेषभोगनिषण्णाम्, मधुमासलक्ष्मीमिव षट्पदपटलापह्रियमाणकुसुमरजोधूसरपादपरागाम्, शरदमिवोत्पादितमानसजन्मपक्षिरवापनीतनीलकण्ठमदाम्, गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, उदधिवेलाघनलेखामिव मधुकरकुलनीलतमालकाननाम्, इन्दुमूर्तिमिवोद्दाममन्मथ-

---

वक्कलोह्रितातिशयवक्षःक्षतिसाम्यं प्रदर्शयन्नाह—समुत्सारितेति। समुत्सारितो दूरीकृतो महाकुलानां भूभृतां राज्ञां व्यतिकरो वृत्तान्तो यया सा ताम्। कादम्बर्या पितुरपेक्षयान्येषां राज्ञां न्यूनत्वादिति भाव.। पक्षे महाकुलभूभृतां कुलाचलानां व्यतिकरः सामर्थ्यं यया सा ताम्। शेषा उर्वरिता अन्यजनैरस्पृष्टा ये भोगास्तत्र निषण्णामुपस्थिताम्। पक्षे शेषस्य नागाधिपस्य यो भोगोऽहिकायस्तत्र निषण्णां स्थिताम्। मधुमासेति। मधुमासश्चैत्रमासस्तस्य लक्ष्मी श्रीस्तामिव। उभयो साम्य प्रदर्शयन्नाह—षट्पदेति। षट्पदाना भ्रमराणा पटलैरपह्रियमाण यत्कुसुमरजस्तेन धूसर ईषत्पाण्डु पादयोश्चरणयो पराग उपरागो यस्या। 'पराग ख्यात्युपरागयो' इति विश्व। पक्षे पादपानां वृक्षाणां राग आरुण्य यस्याम्। शरदिति। शरद्घनात्ययस्तामिव। उभयोः साम्यमाह—उत्पादितेति। उत्पादितो जनितो मानस मनस्तस्माज्जन्म यस्य स मानसजन्मा कंदर्पस्तस्य पक्षो विद्यते येषां मानसजन्मपक्षिणा रव उपभोगानुकूल शब्दो यया सा। कामिनामुपभोगविषयकालाप उद्दीपकत्वात्कादम्बर्यैवोत्पादित इत्यर्थ। अतोऽपनीतो दूरीकृतो नीलकण्ठो मदनदाहको महादेवस्तस्य मद। मदनसहस्त्रोत्पादकत्वस्य पूर्वमुक्तत्वात्पश्चात्कर्मधारय। ताम्। पक्षे मानसजन्मानो ये पक्षिणस्तेषां रवेण शब्देनापनीतो दूरीकृतो नीलकण्ठस्य मयूरस्य मदो यया सा ताम्। गौरीति। गौरी पार्वती तामिव श्वेतमंशुकं वस्त्र यस्या सा। विरचितान्युत्तमाङ्गावध्याभरणानि यया सा। पश्चात्कर्मधारय। ताम्। पक्षे श्वेता अशवः किरणा यस्यैवभूत श्वेतांशुकश्चन्द्र स एव रचित उत्तमाङ्ग आभरण यया। हारस्येति शेष.।

को ढक रही थी, महान कुलपर्वतों से (अपने) सम्बन्ध (व्यतिकर) को छोड़े हुई तथा शेषनाग की फणाओं पर विश्राम कर रही पृथ्वी की भाँति उसने उच्चकुलीय राजाओं से अपने विवाह सम्बन्ध का निषेध कर रखा था और (वैवाहिक भोग के अतिरिक्त) शेष भोग भोगने में दृढ़ता से लगी हुई थी, भ्रमर समूह द्वारा लिये जाते पुष्प पराग द्वारा धूसरित हुई वृक्षों की लालिमा वाली वसन्त मास की शोभा की भाँति भ्रमर समूह द्वारा ले जाये गये पुष्प पराग की भाँति धूसर वर्ण के (पाद पराग) चरण अनुलेप वाली थी, (अर्थात् उसने अपने शरीर अथवा पाँवों पर जो सुगन्धित लेप लगा रखा था वह पुष्प पराग सरीखा धूसर रग का था), उत्पन्न किये हुए मानसरोवर पर जन्म लेने वाले पक्षियों के शब्दो से दूर हुए मयूरों के अभिमान वाली शरद् ऋतु की भाँति उसने (अपने द्वारा) उत्पादित कामदेव (मानसजन्मा) के बाणों (पक्षी) के शब्दों द्वारा शिवजी का अभिमान दूर कर दिया था, चन्द्रमा (श्वेतांशु) की किरणों से ढके शिरोभूषण वाली पार्वती की भाँति (उसे) उसने श्वेत रेशमी वस्त्र तथा सिर पर आभूषण रचे हुए थे (पहने हुए थे), भौंरों के झुंड के समान काले तमालकुञ्जों की समुद्रतटवर्तिनी वनपंक्ति के समान उसका मुख (आनन) भ्रमर-कुल के समान गहरे काले

विलासगृहीतगुरुकलत्राम्, वनराजिमिव पाण्डुश्यामलवलीलतालंकृतमध्याम्, दिनमुखमिव भास्वन्मुक्तांशुभिन्नपद्मरागप्रसाधनाम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, मयूरावलीमिव नितम्बचुम्बिशिखण्डभारविस्फुरच्चन्द्र-

उदधीति। उदधि समुद्रस्तस्य वेलावन समीपवर्ति कानन तस्या लेखा राजिस्तामिव। मधिवति। मधुकराणा भ्रमराणा कुल समुदायस्तद्वन्नीलतमा अतिशयेन हरिता अलका. केशा आनने मुखे यस्या सा ताम्। पक्षे मधुकरकुलयुक्त नीलतमालकानन यस्याम्। इन्दुमूर्तीति। इन्दुश्चन्द्रस्तस्य मूर्तिस्तामिवोद्दामा उत्कटा ये मन्मथविलासा. कदर्पविभ्रमास्तैर्गृहीत स्वीकृत गुरु महत्। 'कलत्रं श्रोणिभार्ययो' इति विश्व। पक्षे उद्दाममन्मथविलासैर्गृहीतमात्तं गुरोर्बृहस्पते कलत्रं भार्या यया सा ताम्। कामव्याकुलचेतसा चन्द्रेण बृहस्पतेस्तारापहृतेति पुराणप्रसिद्धम्। वनेति। वनस्य राजिर्लेखा तामिव। उभयो शब्दसाम्यमाह—पाण्ड्विति। अङ्कुरितयौवनत्वाच्छ्यामला कृष्णा वल्लयस्त्रिवल्लयस्ता एव सन्लत्वसाम्याल्लता वल्लयस्ताभिरलकृतो मध्य. कटिप्रदेशो यस्या सा ताम्। पक्षे लवलीलता ताभिरलकृतो भूषितो मध्यो मध्यप्रदेशो यस्या सा ताम्। दिनमिति। दिनस्य वासरस्य मुखमानन तद्वदिव। भास्वदिति। भास्वन्त्यो या मुक्ता मुक्ताफलानि तेषामशुभि किरणैर्भिन्नानि मिश्रितानि पद्मरागाणां प्रसाधनानि भूषणानि यस्या सा ताम्। पक्षे भास्वता सूर्येण मुक्ता येऽशव किरणास्तैर्भिन्नानि विकसितानि यानि पद्मानि तेषां रागो रङ्ग स एव प्रसाधन यस्या सा ताम्। आकाशेति। आकाश व्योम तस्य कमलिनी स्वर्गनलिनी तामिव। स्वच्छेति। स्वच्छं निर्मल यदम्बर तस्मिन्दृश्यमान विलोक्यमान मृणालवत्कोमलमूरुमूल सक्थिमूल यस्या सा ताम्। पक्षे स्वच्छेऽम्बर आकरे मृणालस्य तन्तुलस्य कोमल सुकुमारमूरु विस्तीर्णं मूल बुध्न यस्याम्। मयूरेति। मयूराणां

(नील्तम) बालों से (शोभित) था, दुर्दमनीय कामदेव की कार्यवाही (विलास) के कारण गुरुपत्नी को जिसने ग्रहण कर लिया था (भगा लिया था) उस चन्द्रमा की भाँति उसने अपने भारी कूल्हों[1] (कलत्र) पर उत्कट प्रेम की ललित चेष्टाओं को धारण किया हुआ था, पीली सी गहरे रग की लवली लताओं द्वारा सुशोभित मध्य भाग (भीतरी भाग) वाली वनपक्ति की भाँति उसका कटिभाग पीली काली आभा वाली लता के आकार वाली त्रिवलियों में (पाण्डु श्यामल-वली-लता अलकृत) सुशोभित था, सूर्य द्वारा छोड़ी हुई किरणों द्वारा खिलाये गये (भिन्न) कमलों के रग (राग) से सुशोभित प्रात काल लक्ष्मी की भाँति उसने अपने (पद्मराग-प्रसाधनों) अर्थात् पद्मराग मणि निर्मित आभूषणों में चमकते मोतियों की किरणें जड़वाई हुई थीं, स्वच्छ आकाश मे दिखायी देते हुए मृणाल दण्ड के सदृश कोमल उरुमूल वाली आकाश-कमलिनी के समान उसका बिसतन्तु के समान कोमल कटिप्रदेश स्वच्छ तथा सूक्ष्म वस्त्र में से दिखायी दे रहा था, (मोरों के) कटि प्रदेश को छूने वाले (वहाँ तक लटके हुए) घने पिच्छ कलाप (शिखण्डभार) पर से चौंधियाती चन्द्रकान्ताओं (चन्द्राकृति बिन्दुओं अथवा चन्द्राकार आँखों) वाली मयूर पक्ति की भाँति वह कटिप्रदेश तक लटके हुए केशपाश

१. कलत्र श्रोणिभार्ययो.।

कान्ताम्, कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्, पुरःसमीपे संमुखोपविष्टम् 'कोऽसौ, कस्य वापत्यम्, किमभिधानो वा, कीदृशमस्य रूपम्, कियद्वा वयः, किमभिधत्ते, भवता किमभिहितः, कियच्चिर दृष्टस्त्वया, कथं चास्य महाश्वेतया सह परिचय उपजातः, किमयमत्रागमिष्यति' इति मुहुर्मुहुश्चन्द्रापीडसबद्धमेवालाप तद्रूपवर्णनामुखर केयूरकं पृच्छन्तीं कादम्बरीं ददर्श। तस्य तु दृष्टकादम्बरीवदनचन्द्रलेखालक्ष्मीकस्य सागरस्येवामृतमुल्लास हृदयम्। आसीच्चास्य मनसि—'शेषेन्द्रियाण्यपि मे वेधसा किमिति लोचनमयान्येव न कृतानि। किं वानेन कृतमवदात कर्म चक्षुषा, यद्-

---

कलापिनामावली श्रेणी तामिव। नितम्बेति। नितम्ब कटकस्तच्चुम्बिनि, अर्थाद्वक्षे, शिखण्डभारवत्कलापिपिच्छसमूहवच्चन्द्राकृतयो बिन्दवोऽन्ते प्रान्ते यस्या सा ताम्। पक्षे नितम्बचुम्बिशिखण्डभारस्तस्मिन्विस्फुरिता देदीप्यमानाश्चन्द्रका मेचका अन्ते यस्या सा ताम्। कल्पेति। कल्पतरुर्मन्दार सरलत्वात्स एव लता तामिव। उभयो साद्दश्यमाह—कामेति। काम वाञ्छित यत्फल तस्य प्रदामित्यभङ्गश्लेष। पुर इति। पुरोऽग्रे समीपे सविध उपविष्टमासीन कोऽसौ चन्द्रापीड, कस्य च राज्ञोऽपत्य प्रजा, किमभिधानो वा किंनामा, कीदृशमस्य रूपं सौन्दर्यम्, कियद्वा कियत्प्रमाण वयोऽवस्थाविशेष, किमभिधत्ते किं कथयति, भवता किमभिहित किं कथित, त्वया कियच्चिर कियत्काल दृष्ट। कथ चेति। केन प्रकारेणास्य पुरोवर्तिपुरुषस्य महाश्वेतया सह परिचय सस्तव उपजात। किमयमत्रागमिष्यतीति मुहुर्मुहुश्चन्द्रापीडसबद्ध चन्द्रापीडविषयकमेवालाप वार्ता तस्य चन्द्रापीडस्य रा वर्णना प्रशसा तत्र मुखर वाचाल केयूरक पृच्छन्तीं प्रश्नविषयीकुर्वन्ती कादम्बरीं ददर्शेति प्रागुक्त एवान्वय। तस्य त्विति। तस्य चन्द्रापीडस्य हृदय चेत उल्लासोच्छ्वसित बभूव। कीदृशस्य। दृष्टा वीक्षिता कादम्बरीवदनचन्द्रलेखाया लक्ष्मीर्येन स तस्य। कस्येव। सागरस्येवामृत पानीय यथा चन्द्रलेखादर्शनादुल्लसति। आसीदिति। अस्य चन्द्रापीडस्य मनसि चित्त एवमासीद् बभूव। वेधसा ब्रह्मणा मे मम शेषेन्द्रियाण्यपि चक्षुर्व्यतिरिक्तान्यपि करणानि किमिति हेतोर्लोचनमयान्येव न

वाली तथा उज्ज्वल चन्द्रमा के समान सुन्दर थी (अथवा अपने केशपाश में से चमकते चन्द्रकान्त आभूषण से वह सुन्दरी दिखायी दे रही थी), इच्छानुसार फल देने वाली कल्पवृक्ष की लता की भाँति वह प्रेम का फल प्रकृष्ट रूप से देने वाली थी, उसके सामने मुँह करके समीप बैठे हुए बार बार चन्द्रापीड सम्बन्धी बातों द्वारा उसके रूप का वर्णन करने के लिये वाचाल हुए और उसके रूप की प्रशसा कह डालना चाहते हुए केयूरक से—'वह कौन है ? किसका पुत्र है ? किस नाम का है ? उसका रूपरग कैसा है ? कितनी उम्र है ? क्या कहता है ? अथवा उसने तुझ को क्या कहा था ? कितनी देर हुई कि जब तूने उसको देखा था ? और उसका महाश्वेता से परिचय किस प्रकार हुआ ? क्या वह यहाँ आयेगा' आदि पूछ रही थी।

(जहाँ तक चन्द्रापीड का सम्बन्ध था), कादम्बरी के मुखरूपी चन्द्रकला की शोभा को देखकर उसका हृदय (हर्ष से) ऐसे फूल गया जैसे सागर का जल (चन्द्रमा को देख कर) ऊँचा उठ जाता है। और उसने मन में सोचा—"ब्रह्मा ने मेरी शेष इन्द्रियाँ भी नेत्रमय क्यों

निवारितमेना पश्यति। अहो चित्रमेतदुत्पादित वेधसा सर्वरमणीयानामेक धाम। कुत एते रूपातिशयपरमाणवः समासादिताः। तन्नूनमेनामुत्पादयतो विधेः करतल-परामर्शक्लेशेन ये विगलिता लोचनयुगलादश्रुजलबिन्दवस्तेभ्य एतानि जगति कुमुदकमलकुवलयसौगन्धिकवनान्युत्पन्नानि' इत्येव चिन्तयत एवास्य तस्या नयनयुगले निपपात चक्षुः। तदा तस्या अपि नूनमय स केयूरकेणावेदित इति चिन्तयन्त्या रूपातिशयविलोकनविस्मयस्मेर निश्चलनिबद्धलक्षं चक्षुस्तस्मिन्सुचिर पपात। लोचनप्रभाधवलितस्तु कादम्बरीदर्शनविह्वलोऽचल इव तत्क्षणम-

---

कृतानि न विहितानि। किं वेति। अनेन चक्षुषा लोचनेन। किमिति प्रश्ने। अवदात शुद्ध कर्म कृतं विहितम्। अत्रार्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—यदिति। यद्यस्माद्धेतोरनिवारित यथा स्यात्तथैता कादम्बरीं पश्यति विलोकयति। अहो चित्रमाश्चर्यमेतत्। यद्वेधसा सर्वरमणीयाना समग्रमनोहराणामेकमद्वितीय धाम गृहमुत्पादित निर्मितम्। एते इति। एते रूपातिशयपरमाणवो वेधसा कुत समासादिता कुत प्राप्ता। तन्नून तन्निश्चितमेना कादम्बरीमुत्पादयतो विधेर्ब्रह्मण करतलस्य हस्ततलस्य परामर्श संबन्धस्तस्माद्य क्लेशस्तेन ये विगलिता स्रस्ता लोचनयुगलान्नेत्रयुग्मादश्रुजलबिन्दवस्तेभ्य कर्मकठिनाभ्या करतलाभ्यां परामर्श सर्वावयवै सपूर्णो देह सिद्ध इत्याशयेन सर्वाङ्गेषु स्पर्शन तन्निमित्तक क्लेश श्रम अतिसौकुमार्यात्। तेन ये नयनजलबिन्दवस्तेभ्यो बिन्दुभ्यो जगति लोके कुमुदानि कैरवाणि कमलानि नलिनानि कुवलयान्युत्पलानि सौगन्धिकानि कह्लाराण्येतेषां वनान्युत्पन्नानि समुद्भूतानि। 'कारणगुणा हि कार्यगुणमारभन्ते' इत्यतिश्वेतसुकुमारावयवजनितानि कुसुमानीत्यर्थ.। इत्येव चिन्तयतो ध्यायत एवास्य चन्द्रापीडस्य तु तस्या कादम्बर्या नयनयुगले चक्षुर्निपपात दृढसंलग्नं बभूव। तदेति। तस्मिन्काले तस्या अपि कादम्बर्या अपि नून निश्चित पूर्व केयूरकेण मदनुचरेणावेदितो निवेदित सोऽयमिति चिन्तयन्त्या ध्यायन्त्या रूपातिशयविलोकने यो विस्मयश्चित्रं तेन स्मेर विनिद्रं निश्चलं निबद्धं लक्ष येनैवविध चक्षुस्तस्मिंश्चन्द्रापीडे सुचिरं पपात। लोचनेति। लोचनप्रभा नेत्रकान्ति। कादम्बर्या इति शेष। तया धवलित शुभ्रीकृत

नहीं कर दीं अथवा इस मेरी आँख ने कौन सा शुभ कर्म किया है कि यह बिना रोके ही उसे देखती चली जा रही है! अहो! ब्रह्मा ने यह सारे आकर्षक पदार्थों का एकमात्र स्थान अद्भुत बनाया है। उसने ये सब अत्यधिक सौन्दर्य के परमाणु कहाँ से प्राप्त किये? तो फिर निश्चय ही, इसको उत्पन्न करते हुए ब्रह्मा की हथेली के स्पर्श के कारण हुए कष्ट से (इसकी) दोनों आँखों से जो आँसुओं की बूँदें गिरीं उन्हीं से ससार में, ये कुमुद, कमल, कुवलय तथा सौगन्धिक (भिन्न भिन्न प्रकार के) कमलों के कुञ्ज उत्पन्न हुए हैं"। इस प्रकार सोचते हुए ही चन्द्रापीड की आँख उसकी दोनों आँखों पर पड़ी। उस समय "निश्चय ही यह केयूरक का बताया हुआ चन्द्रापीड है"—यह सोचती हुई उसकी आँख भी अतिशय सौन्दर्य के दर्शन से उत्पन्न आश्चर्य के कारण फैली हुई तथा स्थिरता से लक्ष्य को बाँधे हुई, बहुत देर तक उस चन्द्रापीड पर ठहरी रहीं। और उस समय चन्द्रापीड उसकी आँखों की चमक से उज्ज्वल (धवलित) हुआ, तथा

राजत चन्द्रापीडः। दृष्ट्वा च प्रथमं रोमोद्गम', ततो भूषणरवः, तदनु कादम्बरी समुत्तस्थौ। अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससम्भ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। ऊरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ। अन्तःप्रविष्टचन्द्रापीडस्पर्शलोभेनैव निपपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव। आनन्द एवाश्रुजलमपातयत्, चलितकर्णावतंसकुसुमरजो व्याजमासीत्। लज्जैव वक्तुं न

कादम्बर्या दर्शन सम्यक्तया विलोकन तत्र विह्वलो व्याकुलोऽचल इव पर्वत इव तत्क्षण तस्मिन्समये चन्द्रापीडोऽराजताशोभत। तत्र निश्चलत्वसाम्यात्पर्वतानुमानमित्यर्थ। एवमुभयोर्लोचनविषयतां प्राप्तयोर्विशेषोक्त्या विभावनया वा व्यभिचारिभावानुभावांश्च वक्तुमुपक्रमते—दृष्ट्वेति। दृष्ट्वा विलोक्य प्रथममादौ रोमोद्गमो रोमाञ्च समभूत्। तदुक्तमन्यत्र—'अपूर्वप्रियदर्शने। बध्नत्स्वङ्गेषु रोमाञ्च' इति। ततो भूषणरव आभरणसिञ्जितम्। तदनु तदनन्तर कादम्बरी समुत्तस्थावुत्थितवती। अथेति समुत्थानानन्तर तस्या कादम्बर्या। कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्। सर्वोऽप्यय प्रपञ्चश्चन्द्रापीडविषयक कादम्बर्या मनस्युत्कण्ठातिवृत्त्यतिशयप्रतिपादनपरश्च। एतदेव स्पष्टयन्नाह—ससंभ्रमेति। सम्भ्रमेण सह वर्तमान ससम्भ्रम यदुत्थान तस्माद्य श्रम खेद स एव व्यपदेशो मिष तेनाभवत्। ससम्भ्रमोत्थानश्रमादेव मम स्वेदोऽभूदिति व्याज कृतवतीत्यर्थ। ऊरुकम्प एव गतिं गमन रुरोध रुन्धितवान्। नूपुरे पादकटके तयो रव शब्दस्तेनाकृष्टमाकर्षित यद्धसमण्डन तदपयशोऽपकीर्तिं लेभे प्राप। मद्गतिनिरोधकृत् हंसमण्डलमिति सखीजनेष्वपत्राजना कृतवतीत्यर्थ। निःश्वासेति। निःश्वासानामेतनानां प्रवृत्तिरेव प्रवर्तनमेवाशुक वस्त्र चल कम्प्र चकार। चामरेति। चामरानिलो वालव्यजनपवनो निमित्ततां कारणता ययौ। चामरानिलेन मदंशुक चालितमित्युक्तवतीत्यर्थ। अन्तरिति। अन्त प्रविष्टो यश्चन्द्रापीडस्तस्य स्पर्शलोभेनैव हृदये हस्त करो निपपात निपतितो बभूव। स एवेति। स एव करो हस्त स्तनावरणस्य कुचाच्छादनस्य व्याजो मिष बभूव। स्तनावरणार्थं मया हस्तो दत्त इत्यन्येषां चेष्टया ज्ञापितवतीत्यर्थ। आनन्द एवेति। आनन्द एव प्रमोद एवाश्रुजल नेत्रजल-

---

कादम्बरी के दर्शन (से उत्पन्न प्रेम) से क्षुब्ध हुए एक पर्वत की भाँति सुशोभित प्रतीत हुआ। और उसको देख कर पहले तो रोमाञ्च उठा, फिर भूषणो का शब्द हुआ तथा उसके पश्चात कादम्बरी खड़ी हो गयी।

अब कामदेव ने (स्वय) ही उसका पसीना उत्पन्न किया, उसका अभिनन्दन करने के लिये हड़बड़ाहट मे उठने की थकान तो बहाना हो गयी। जघाओं में हुए कम्प ने ही उसकी गति मे रुकावट डाली, (रुकावट डालने का) कलक उसके नूपुरों के शब्द से आकृष्ट हंसों के झुण्ड को मिला। साँसों की प्रवृत्ति—वेगवृद्धि—ने उसके वस्त्र को हिला डाला, चँवर की वायु निमित्त बन गयी। भीतर प्रविष्ट चन्द्रापीड को स्पर्श करने की इच्छा से ही मानो हाथ हृदय पर जा पड़ा, परन्तु वही हाथ स्तनों के आच्छादन करने का बहाना हो गया। आनन्द ने ही आँसुओं को गिराया, हिले हुए कर्णभूषण रूप पुष्प का पराग तो बहाना था। लज्जा ने ही बोलने

ददौ, मुखकमलपरिमलागतालिवृन्दं द्वारतामगात्। मदनशरप्रथमप्रहारवेदनैव सीत्कारमकरोत्, कुसुमप्रकरकेतकीकण्टकक्षतिः साधारणतामवाप। वेपथुरेव करतलमकम्पयत्, निवेदनोद्यतप्रतीहारीनिवारणं कपटमभूत्। तदा च कादम्बरीं विशतो मन्मथस्येवाभूद् द्वितीयः, तया सह यो विवेश चन्द्रापीडहृदयम्। तथाहि असावपि तस्या रत्नाभरणद्युतिमपि तिरोधानममस्त, हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमगणयत्, भूषणरवमपि

मपातयत्पातितवान्। चलितेति। चलितं कम्पितं यत्कर्णावतंसकुसुमं तस्य रजः परागस्तदेव व्याजो मिषमासीत्। कर्णावतंसरजःपातान्मम नेत्रयोर्जलच्युतिरभूदिति ज्ञापितवतीत्यर्थः। लज्जैवेति। लज्जैव त्रपैव वक्तुं कथयितुं न ददौ। मुखेति। मुखमेव कमलं तस्य यः परिमलस्तस्मादागतं प्राप्तं यदलिवृन्दं भ्रमरसमूहपटलं द्वारतामगादगमत्। भ्रमरैर्निरुद्धवदना मौनं कृतवतीति सख्या ज्ञातव्या। मदनेति। मदनशरस्य यः प्रथमप्रहार आद्याभिघातस्तस्य वेदनैव व्यथैव सीत्कारं शब्दविशेषमकरोत्। कुसुमेति। कुसुमप्रकरेषु यः केतकीकण्टकस्तस्माद्या क्षतिः प्रघातः सा साधारणतां निमित्ततामवाप प्राप। केतकीकण्टकाभिघातेनानया सीत्कारो विहित इति सख्यो मेनिरे। वेपथुरेव कम्प एव करतलं हस्ततलमकम्पयत्। निवेदनेति। निवेदने ज्ञापने उद्यता या प्रतीहारी तस्या निवारणं कपटं कैतवमभूत्। प्रतीहारीनिवेदितवस्तुप्रतिषेधद्वारा करकम्पनमाचरितमिति सखीभिरज्ञायीति भावः। नायिकाक्रमेण तामुक्त्वा नायकक्रमेणाप्याह—तदा चेति। यदा कादम्बरीं चन्द्रापीडविषयको मन्मथः प्रविष्टस्तदा तस्य चन्द्रापीडविषयकस्य कादम्बरीहृदयप्रविष्टस्य मन्मथस्यापि प्रत्यर्थीभूतो द्वितीय इव मन्मथोऽभूत्। यथा कादम्बर्यां चन्द्रापीडविषयको मन्मथः प्रविष्टस्तथैव कादम्बरीविषयकोऽपि मन्मथश्चन्द्रापीडहृदयं प्रविवेशेत्यर्थः। तदेवाह—तया सहेति। यस्तया कादम्बर्या सह चन्द्रापीडहृदयं विवेश प्रविष्टवान्। तदेव दर्शयति—तथा हीति। असावपि चन्द्रापीडोऽपि तस्याः कादम्बर्या रत्नाभरणानां मणिखचितभूषणानां द्युतिमपि कान्तिमपि तिरोधानमन्तर्धानं साकल्येनावलोकनप्रतिबन्धकममस्त ज्ञातवान्। यमप्युत्कण्ठानिष्ठत्यतिशयप्रतिपादनपरः प्रपञ्चः। हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमावासस्थानमगणयत्। तस्या भूषणरवमपि सम्भाषणं जल्पनममन्यत। सर्वेन्द्रिया-

---

नहीं दिया, किन्तु मुखरूपी कमल की सुगन्ध से (आकृष्ट होकर) आये भौंरों का झुण्ड (केवल) माध्यम अथवा कारण बन गया (जब भौंरों ने उसका मुँह रोक लिया तो वह चुप होगई)। कामदेव के बाण के प्रथम आघात से हुई पीडा ने ही उसकी 'सी' निकलवाई, पुष्प-गुच्छ (में वर्तमान) की केतकी के काँटे से हुआ घाव निमित्त बन गया। कम्पन ने ही स्वयं हथेली को थरथरा दिया; उसको कुछ बताने को तय्यार द्वारपालिका को रोकना (लौटने का संकेत देना) बहाना हो गया। और उस समय कादम्बरी में प्रवेश करते कामदेव का भी मानो दूसरा (प्रतिद्वन्द्वी) कामदेव उत्पन्न हो गया, जो उस (कादम्बरी) के साथ ही चन्द्रापीड के हृदय में प्रविष्ट हो गया। क्योंकि उस (चन्द्रापीड) ने भी उसके रत्नाभूषणों की चमक को पर्दा माना, उसके हृदय में प्रवेश को भी स्वीकृति गिना (समझा), उसके आभूषणों की झन-

संभाषणममन्यत, सर्वेन्द्रियाहरणमपि प्रसादमचिन्तयत्, देहप्रभासपर्कमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयत्। कादम्बरी तु कृच्छ्रादिव दत्तकतिपयपदा महाश्वेता स्नेहनिर्भरं चिरदर्शनजातोत्कण्ठं सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह। महाश्वेतापि दृढतरदत्तकण्ठग्रहा तामवादीत्—

'सखि कादम्बरि, भारते वर्षे राजानेकवरतुरगखुरमुखोल्लेखदत्तचतुःसमुद्रमुद्रो रक्षितप्रजापीडस्तारापीडो नाम। तस्यायं निजभुजशिलास्तम्भविश्रान्तविश्वविश्वंभरापीडश्चन्द्रापीडो नाम सूनुर्दिग्विजयप्रसङ्गेनानुगतो भूमिमिमाम्। एष च दर्शनात्प्रभृति प्रकृत्या मे निष्कारणबन्धुतां गतः। परित्यक्तसकलासङ्गनिष्ठुरामपि मे सविशेषस्वभावसर-

हरणमपि समग्रकरणाकर्षणमपि प्रसादमचिन्तयत्। देहप्रभाया शरीरकान्तेः संपर्कमपि सबन्धमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयन्मैथुनसुखसदृशमगणयत्। कादम्बरी त्विति। कादम्बरी तु कृच्छ्रादिव कष्टादिव दत्तानि कतिपयानि कियन्ति पदानि यया सा महाश्वेता चिरकालेन यद्दर्शनं तेन जातोत्कण्ठा यस्याः सा तां स्नेहनिर्भरं यथा स्यात्तथा सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह कण्ठग्राहं गृहीतवती। महाश्वेतापि दृढतरं दत्तः कण्ठग्रहो यया सैवंविधा तां कादम्बरीमवादीदवोचत्। किमुवाचेत्याह—सखीति। हे सखि कादम्बरि, भारते वर्षे भरतक्षेत्रेऽनेके ये वरा श्रेष्ठास्तुरगा अश्वास्तेषां खुरमुखानामुल्लेखा उत्कर्षास्तैर्दत्ताश्चतु समुद्रावधिमुद्रा अङ्को येन स। रक्षिता प्रजाया पीडा बाधा येनैवंभूतस्तारापीडो नाम राजास्ति। तस्य राज्ञ। निजेति। निजावात्मीयौ यौ भुजौ तावेव दृढत्वाच्छिलास्तम्भौ तत्र विश्रान्ता सुखेन स्थिता या विश्वविश्वंभरा समग्रवसुधा सैव पीडोत्तंसो भूषणं यस्य स। 'पीडार्तिमर्दनोत्तंसकृपासु' इत्यनेकार्थः। एतादृशश्चन्द्रापीडो नाम सूनुर्दिग्विजयप्रसङ्गेनेमां भूमिमनुगत प्राप्त। एष चेति। एष चन्द्रापीडो दर्शनात्प्रभृत्यवलोकनादारभ्य प्रकृत्या मे मम निष्कारणबन्धुतां गतः प्राप्त। तन्निमित्तमाह—परीति। परित्यक्त उज्झितो य सकल समग्र आसङ्ग सुहृत्सम्बन्धस्तेन निष्ठुरामपि कठिनामपि सविशेषैर्विशेषसहितै स्वभावसरलै स्वारसिकर्जुभिर्गुणैर्मे मम चित्त-

झनाहट को भी सलाप समझा, उसके द्वारा अपनी सब इन्द्रियों के अपहरण को भी एक अनुग्रह समझा और उसके देह की चमक के साथ सम्पर्क को भी उसने उसके सग सुरत-समागम का सुख माना।

किन्तु कादम्बरी ने मानो कष्टपूर्वक ही कुछ पग चलकर उत्कण्ठा पूर्वक, देर से दर्शन होने के कारण उत्पन्न हुई उत्सुकता वाली महाश्वेता को बड़े स्नेहपूर्वक गले लगा लिया। महाश्वेता ने भी अधिक कस कर उसका गला पकड़ कर उससे कहा—"सखि! भारत देश में अनेक श्रेष्ठ अश्वों के खुराग्रों से की गयी खुरँचों (उल्लेखा) द्वारा चारों समुद्रों पर अपनी छाप लगाये हुआ तथा प्रजाओं को पीडाओं से बचाये हुआ तारापीड नाम का राजा है। उसका यह, अपनी भुजा रूपी शिला स्तम्भ पर विश्राम करती हुई समग्र पृथ्वी को माला बनाये हुआ चन्द्रापीड नाम का पुत्र, दिग्विजय के अवसर अथवा दिग्विजय की घटना के कारण इस देश में आया है। और यह, जबसे इसने मुझे देखा है तब से ही, अपने स्वभाव से मेरा निःस्वार्थ मित्र बन गया है। सभी प्रकार के सम्बन्धों को त्यागने के कारण कठोर हुई मेरी

लैर्गुणैराकृष्य चित्तवृत्तिं वर्तते। दुर्लभो हि दाक्षिण्यपरवशो निर्निमित्तमित्रमकृत्रिमहृदयो विदग्धजनः। यतो दृष्ट्वा चेममहमिव त्वयापि निर्माणकौशलं प्रजापतेः, निःसपत्नता च रूपस्य, स्थानाभिनिवेशित्वं च लक्ष्म्याः, सद्भर्तृतासुखं च पृथिव्याः, सुरलोकातिरिक्तता च मर्त्यलोकस्य, सफलता च मानुषीलोचनानाम्, एकस्थानसमागमं च सर्वकलानाम्, ऐश्वर्यं च सौभाग्यस्य, अग्राम्यता च मनुष्याणां ज्ञास्यसीति बलादानीतोऽयम्। कथिता चास्य मया बहुवारं प्रियसखी। तदपूर्वदर्शनोऽयमिति विमुच्य लज्जाम्, अनुपजातपरिचय इत्युत्सृज्याविश्रम्भताम्, अविज्ञातशील इत्यपहाय शङ्का

वृत्तिमाकृष्याय वर्तते। तत किमित्यत आह—दुर्लभ इति। यतोऽयं जनो विदग्धजनः। हीति निश्चये। सर्वथा दुर्लभो दुःप्रापः। एनं विशेषयन्नाह—दाक्षिण्येति। दाक्षिण्यमनुकूलता तेन परवशः पराधीनो निर्निमित्तं निष्कारणं मित्रं सुहृदकृत्रिमं स्वाभाविकं हृदयं चेतो यस्य सः। मया निर्मुक्त इत्यर्थः। मायया च चेतोवैपरीत्यं जायत इति भावः। इमं जनं दृष्ट्वा चाहमिव त्वमप्येतत्सर्वं ज्ञास्यसीत्यन्वयः। एतदेव प्रदर्शयन्नाह—निर्माणेति। प्रजापतेर्ब्रह्मणो निर्माणकौशलं रचनाचातुर्यम्। रूपस्य चेति। रूपस्य सौन्दर्यस्य निःसपत्नतां निर्विपक्षताम्। लक्ष्म्याः श्रियः स्थाने योग्यस्थलेऽभिनिवेशितं स्थायित्वम्। पृथिव्या वसुधायाः सन्शोभनो भर्ता पतिस्तस्य भावस्तत्ता तस्या सुखं सातम्। मर्त्यलोकस्य मनुष्यलोकस्य सुरलोकादतिरिक्ततामधिकताम्। मानुषीलोचनानां स्त्रीनेत्राणां सफलतां साफल्यं च सर्वकलानां समग्रविज्ञानानामेकस्मिन् स्थाने समागमं सबन्धं च। सौभाग्यस्य सुभगताया ऐश्वर्यं प्रभुत्वम्। तथा मनुष्याणां मानुषाणामग्राम्यतां नागरिकतां ज्ञास्यसि इति हेतोर्मया बलादानीत अयम्। कथितेति। अस्य चन्द्रापीडस्य मया बहुवारमनेकवारं प्रियसखी कथिता निवेदिता। तदिति हेत्वर्थे। अपूर्वमभिनवं दर्शनं यस्यैवंविधोऽयमिति कृत्वा लज्जां त्रपां विमुच्य विहाय। अन्वितेति। अनुपजातपरिचयो यस्यैवंविध इति कृत्वाविश्रम्भतामविश्वासतामुत्सृज्य त्यक्त्वा। अविज्ञातमविदितं शीलं स्वभावो यस्येति कृत्वा शङ्कामपहाय दूरीकृत्य यथा मयि तथात्राप्यस्मिन्नपि प्रवर्तितव्यम्।

चित्तदशा को भी इसने अपने उत्पन्न विशिष्ट स्वभाव तथा सीधे साधे गुणों से आकृष्ट किया है। ऐसा परिष्कृत तथा उदार मनुष्य बड़ी कठिनाई से मिलता है कि जो विनयशील, निःस्वार्थ मित्र, तथा सच्चे हृदय वाला हो। क्योंकि इसको देखकर मेरी भाँति तू भी विधाता की रचना चातुरी को, सौन्दर्य की असमानता को, लक्ष्मी के योग्य व्यक्ति के प्रति हठ को, और पृथिवी के एक सत्पति मिल जाने के सुख को, जीवलोक की स्वर्ग से अतिरिक्तता को मानवी (स्त्रियों की) आँखों की सफलता को, सब कलाओं के एक स्थान पर मिल जाने को, सौभाग्य और मनुष्यों की नागरिकता (अग्राम्यता) को जान लेगी। इस प्रयोजन से यह जबर्दस्ती लाया गया है। और इसको मैंने कई बार प्रिय सखी के सम्बन्ध में बताया है। इसलिये यह अपूर्व दर्शन है (जिसका दर्शन पहले कभी नहीं हुआ—ऐसा है) इसलिये लज्जा को त्याग कर, यह अभी परिचित नहीं है—इस बात को जानते हुए उत्पन्न होनेवाली अविश्वस्तता को और यह अज्ञातशील वाला है—इस कारण होनेवाली शङ्का को त्याग कर इसके विषय में वैसा ही व्यव-

यथा मयि तथात्रापि प्रवर्तितव्यम्। एष ते मित्रं च बान्धवश्च परिजनश्च' इत्यावेदिते तया चन्द्रापीडः प्रणाममकरोत्। कृतप्रणामं च तं तदा कादम्बर्यास्तिर्यग्विलोकयन्त्याः सस्नेहमतिदीर्घलोचनयोरपाङ्गभागं गच्छतस्तारतारकस्य लोचनस्य श्रमसलिललवविसर इवानन्दबाष्पजलबिन्दुनिकरो निपपात। त्वरितमभिप्रस्थितस्य हृदयस्य धूलिरिव सुधाधवला स्मितज्योत्स्ना विससार। संमान्यतामयं हृदयरुचिरो जनः प्रतिप्रणामेनेति शिरो वक्तुमिवैका भ्रूलता समुन्ननाम। अङ्गुलिविवरविनिःसृतमरकताङ्गुलीयकलेखो विभ्रमगृहीतताम्बूलवीटिका इव करो जृम्भारम्भमन्थरं मुखमुत्ससर्प। स्रवत्स्वेद-

---

एष चन्द्रापीडस्ते तव मित्रं च बान्धवः परिजनश्च। तया महाश्वेतयेत्यावेदिते निवेदिते सति चन्द्रापीडः प्रणामं नमस्कारमकरोत्। तदा कृतप्रणामं विहितनमस्कारं च तं विलोकयन्त्या पश्यन्त्या कादम्बर्याः सस्नेहं यथा स्यात्तथातिदीर्घयोर्लोचनयोरपाङ्गभागं निर्याणदेशं गच्छतो व्रजतस्तारा मनोहरा तारका कनीनिका यस्मिन्नेतादृशस्य लोचनस्य श्रमसलिलस्य खेदप्रभवपानीयस्य लवास्तेषां विसर इव समूह इव। आनन्दः प्रमोदस्तस्माद्यद्बाष्पजलं तस्य बिन्दुनिकरो निपपातापतत्। त्वरितमिति। त्वरितं शीघ्रमभिप्रस्थितस्य चलितस्य हृदयस्य धूलिरिव रेणुरिव सुधामृतं तद्वद्धवला शुभ्रा। स्मितमीषद्धसितं तस्य ज्योत्स्ना चन्द्रिका विससार प्रसृता बभूव। अत्र शुभ्रत्वसाम्यात्स्मितस्य धूलिसाम्यमित्यर्थः। अयं हृदयरुचिरो जनः समान्यतां सत्क्रियताम्। प्रतिप्रणामेनेति। अनुनमस्करणेन। इति शिर उत्तमाङ्गं वक्तुमिव कथयितुमिव एका भ्रूलता समुन्ननामोच्चीबभूव। अङ्गुलीति। अङ्गुल्यः करशाखास्तासां विवरेभ्यो विनिःसृता मरकताङ्गुलीयकलेखा यस्मात्स। नैलसाम्यादाह—विभ्रम इति। विभ्रमेण विलासेन गृहीता ताम्बूलवीटिका येनैवंविधः करो हस्तः। जृम्भेति। जृम्भा जृम्भणं तस्या आरम्भस्तेन मन्थरमलसं मुखमुत्ससर्प विस्तीर्णं बभूव। अस्या इति। अस्याः कादम्बर्या अवयवेष्वपघनेषु संचरन्ती व्रजन्ती मूर्तिः शरीरं यस्यैवंभूतश्चन्द्रापीडः। क इव। मकरकेतुरिवादृश्यतावालोक्यत।

हार करना चाहिये जैसा कि मेरे विषय मे करती हो। और यह तेरा मित्र भी है, बान्धव भी है, सेवक भी है। उस (महाश्वेता) द्वारा यह कह दिया जाने पर, चन्द्रापीड ने प्रणाम किया।

और प्रणाम किये हुए उस (चन्द्रापीड) को प्रीति सहित तिरछा देखती हुई कादम्बरी की, (अपनी) बहुत लम्बी आँखों के बाह्य प्रान्त भाग पर जाती हुयी सुन्दर पुतली की थकावट से उत्पन्न पसीने की बूँदों के समूह सरीखा आनन्दाश्रुओं का प्रवाह गिरा। अमृत के समान मुस्कान की श्वेत ज्योत्स्ना (चाँदनी) ऐसे फैल गयी कि मानो वह (चन्द्रापीड की ओर) द्रुत गति से चले हृदय की धूल हो। उसकी एक लता सरीखी भौं सिर को मानों यह कहने के लिये ऊँची हो गयी कि हृदय के इतने प्यारे इस व्यक्ति का प्रतिप्रणाम से आदर करो। अगुलियों के छिद्रों से निकली मरकतमणि निर्मित अँगूठी की किरणावली वाला तथा इस कारण खेल खेल में ही पान का बीड़ा पकड़े हुआ प्रतीत होता उसका हाथ जम्भाई आरम्भ होने से अलसाये मुँह की ओर उठ गया। बहते हुए पसीने से धोये गये सौन्दर्य द्वारा निर्मल हुए उसके

जलधौतलावण्यनिर्मलेषु चास्याः स्तम्भसक्रान्तप्रतिबिम्बतया सचरन्मूर्तिर्मकरकेतुरिवावयवेष्वदृश्यत चन्द्रापीडः। तथा हि—सिञ्जन्मणिनूपुरपुटेन भुवमालिखताङ्गुष्ठेनाहूत इव चरणनखेषु निपपात। दर्शनातिरभसप्रधावितेन गत्वा हृदयेनानीत इव स्तनाभ्यन्तरे समदृश्यत। विकचकुवलयदामदीर्घया च दृष्ट्या निपीत इव कपोलतले समलक्ष्यत। सर्वासामेव च तदा तासा कन्यकाना तिर्यक्पश्यन्तीना तं कुतूहलापाङ्गचुम्बिन्या दृष्ट्या निर्गन्तुकामा इव कर्णपूरमधुकरैः समं बभ्रमुस्तरलातारकाः। कादम्बरी तु सविभ्रमकृतप्रणामा महाश्वेतया सह पर्यङ्के निषसाद। ससंभ्रमं परिजनोपनीतायां च शयनशिरोभागनिवेशितायां धवलांशुकप्रच्छदपटायां

जनैरिति शेष। कीदृशेष्ववयवेषु। स्ववत्स्वरयस्वेदजल तेन धौत क्षालित लावण्यं लवणिमा तेन निर्मलेषु विमलेषु। कया। स्तम्भेति। स्तम्भेषु स्थूणासु सक्रान्तानि प्रतिबिम्बितानि यानि प्रतिबिम्बानि तस्य भावस्तत्ता तया। एतदेव दर्शयन्नाह—तथा हीति। सिञ्जच्छब्दं कुर्वन्यन्मणिनूपुरपुट तेन भुव पृथ्वीमालिखतालेख कुर्वताङ्गुष्ठेनाहूत इव निमन्त्रित इव चरणनखेषु निपपात। दर्शनेति। दर्शनार्थमतिरभसप्रधावितेनातिवेगोच्चलितेन हृदयेन गत्वा स्तनाभ्यन्तरेण कुचयोर्मध्य आनीत इव समदृश्यत समवलोक्यत। जनैरिति शेष। विकचेति। विकचानि विकस्वराणि यानि कुवलयान्युत्पलानि तेषां दाम स्रक्तद्वद्दीर्घयायतया च दृष्ट्या निपीत इव कपोलतले समलक्ष्यताऽदृश्यत। तत्तदवयवेषु तत्तत्प्रतिबिम्बमाश्रित्यैतदुक्तम्। तासामिति। अपाङ्गचुम्बिन्या दृष्ट्या कुतूहलात्त तिर्यक्पश्यन्तीनां सर्वासामेव तदा तासा कन्यकानां निर्गन्तुकामा इव बहिर्गमनोत्सुका इव तरला कम्प्रास्तारका. कनीनिका कर्णपूरमधुकरै समं बभ्रमुर्भ्रमण चक्रु। कादम्बरीति। कादम्बरी तु सविभ्रम कृत प्रणामो यया सैवविधा महाश्वेतया सह पर्यङ्के पल्यङ्के निषसादोपविवेश। ससभ्रममिति। ससभ्रम यथा स्यात्तथा परिजनेन परिच्छदेनोपनीतायां प्रापितायां शयनस्य पल्यङ्कस्य शिरोभागे निवेशितायां स्थापितायां धवलांशुकस्य प्रच्छदपट उत्तरपटो यस्यामेवविधायां हेमपादाङ्कितायां सुवर्णपाद-

---

अंगों में (उसका) प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण उनमें घूमती हुई मूर्ति वाला चन्द्रापीड कामदेव सरीखा दिखायी दिया। इस प्रकार से मानो पृथ्वी को खुरचते हुए इसीलिये झणत्कार करते हुए मणिनिर्मित नूपुरों वाले अँगूठे से मानो निमन्त्रित किया हुआ वह उसके पाँवों के नखों में गिरा। (उसको) देखने के लिये वेग से दौड़े हुए हृदय द्वारा ही मानो लाया गया वह दोनों स्तनों के मध्य में दिखायी दिया। और खिले हुए नील कमलों की माला-सरीखी लम्बी दृष्टि से मानो पिया गय ही उसकी गाल पर दिखायी दिया। और उत्सुकता से अपाङ्ग तक पहुँचने वाली उनको तिरछा देखती हुई सभी कन्याओं की आँख से मानो बाहर निकलना चाहती हुई चञ्चल पुतलियाँ कर्णाभूषणों के भौंरों के साथ साथ घूमती रहीं—भौंरों की भाँति चञ्चल रहीं।

कादम्बरी विलाससहित प्रणाम करके महाश्वेता के साथ पलग पर बैठ गयी। चन्द्रापीड शीघ्र शीघ्र सेवकों द्वारा लाये गये, तथा पलग के सिरहाने की ओर रखे गये श्वेत रेशमी चादर (प्रच्छद पट) से युक्त, सोने के पाँवों से युक्त पीढ़े पर बैठ गया और महाश्वेता के अनुरोध से

हेमपादाङ्किताया पीठिकाया चन्द्रापीडः समुपाविशत्। महाश्वेतानुरोधेन च विदित-कादम्बरीचित्ताभिप्रायाः संवृतमुखन्यस्तहस्तदत्तशब्दनिवारणसंज्ञाः प्रतीहार्यो वेणुरवान्वीणाघोषान्गीतध्वनीन्मागधीजयशब्दांश्च सर्वतो निवारयांचक्रुः। त्वरितपरिजनोपनीतेन च सलिलेन कादम्बरी स्वयमुत्थाय महाश्वेतायाश्चरणौ प्रक्षाल्योत्तरीयांशुकेनापमृज्य पुनः पर्यङ्कमारुरोह। चन्द्रापीडस्यापि कादम्बर्याः सखी रूपानुरूपा जीवितनिर्विशेषा सर्वविश्रम्भभूमिर्मदलेखेति नाम्ना बलादनिच्छतोऽपि प्रक्षालितवती चरणौ। महाश्वेता तु कर्णाभरणप्रभावर्षिण्यपाङ्गदेशे सप्रेम पाणिना स्पृशन्ती, मधुकरभरपर्यस्तं च कर्णावतंसं समुत्क्षेपयन्ती, चामरपवनविधूतिपर्यस्तालकवल्लरी-

---

चिह्निताया पीठिकाया चन्द्रापीड समुपाविशदासेदिवान्। महेति। महाश्वेताया अनुरोधेन प्रतिबन्धेन। विदितेति। विदितो ज्ञात' कादम्बर्याश्चित्ताभिप्रायो याभिस्ता। संवृतेति। संवृत पिहित यन्मुख तत्र न्यस्तो यो हस्तस्तेन दत्ता ज्ञापिता शब्दनिवारणसंज्ञा याभिरेवंविधा प्रतीहार्यो द्वाररक्षाविधायिन्यो वेणुरवान्वंशशब्दान्वीणाघोषान्वल्लकीशब्दान्गीतध्वनीन्गेयनादान्मागधीना मागधपत्नीना जयशब्दांश्च जयजयेति रवांश्च सर्वतो निवारयांचक्रुर्निवारितवत्य। त्वरितेति। त्वरित शीघ्र परिजनोपनीतेन सलिलेन पानीयेन कादम्बरी स्वयमात्मनोत्थायोत्थान कृत्वा महाश्वेतायाश्चरणौ पादौ प्रक्षाल्योत्तरीयांशुकेनोपरिवस्त्रेणापमृज्य मार्जन कृत्वा पुन पर्यङ्क पल्यङ्कमारुरोहोपविष्टवती। चन्द्रापीडेति। कादम्बर्याः सखी मदलेखेति नाम्नानिच्छतोऽप्यवाञ्छतोऽपि बलाच्चन्द्रापीडस्यापि चरणौ प्रक्षालितवती। सखी विशेषयन्नाह—रूपेति। रूपेण सौन्दर्येण चानुरूपा सदृशी। जीविताञ्चिर्गतो विशेषो यस्या. सा जीवितनिर्विशेषा। सर्वेषा विश्रम्भाणा भूमि स्थानम्। महेति। महाश्वेता तु कादम्बरीमनामयं कुशलं पप्रच्छ प्रश्नं कृतवती। किं कुर्वन्ती। कर्णेति। कर्णाभरणस्य श्रवणभूषणस्य प्रभा कान्तिस्तस्य वर्षिणी। एवंभूतेऽपाङ्गदेशे नेत्रप्रान्तदेशे सप्रेम प्रेमसहितं यथा स्यात्तथा पाणिना हस्तेन स्पृशन्ती स्पर्शं कुर्वन्ती। मधुकरेति। मधुकरभरेण भ्रमरभरेण पर्यस्त पतित च कर्णावतंस समुत्क्षेपयन्त्युच्चभागेन नयन्ती। चामरेति। चामर बालव्यजन तस्य पवनेन वातेन या विधूतिः कम्पन तेन पर्यस्ता पतिता यालकवल्लरी केशवल्लरी तामनुष्वञ्जमाना स्थाने तां

कादम्बरी की इच्छाओं (मन के अभिप्रायों) को जाने हुई, अपने बन्द किये मुँह पर (होठों पर) रखे हुए हाथ से शब्द को रोकने का सकेत करती हुई प्रतिहारियों ने बाँसुरी के शब्दों को वीणा के घोषों को, गीतध्वनियों को तथा मागधी स्त्रियों द्वारा किये जा रहे जयकारों को सब ओर से रुकवा दिया। और कादम्बरी स्वय उठकर शीघ्र-शीघ्र चलते सेवकों द्वारा लाये गये जल से महाश्वेता के पाँवों को धोकर तथा उत्तरीय से पोंछकर फिर पलंग पर चढ़ गयी (बैठ गयी) और कादम्बरी की सहेली, सौन्दर्य में उसके योग्य (उस जैसी ही), उस (कादम्बरी) के जीवन से जो विशेष नहीं थी (अर्थात् कादम्बरी को अपने जीवन जितना प्यारी), तथा उसके समग्र विश्वासों की पात्रभूता मदलेखा ने, न चाहते हुए भी चन्द्रापीड के पैर धोये। इधर कर्णभूषण की चमक की वर्षा से युक्त कन्धों पर स्नेहपूर्वक छूती हुई, तथा भौंरों के

मनुष्वङ्गमाना कादम्बरीमनामय पप्रच्छ। सा तु सखीप्रेम्णा गृहनिवासेन कृतापराधे वानामयेनैव लज्जमाना कृच्छ्रादिव कुशलमाचचक्षे। तदा समुपजातशोकापि च महाश्वेतामुखनिरीक्षणतत्परापि मुहुर्मुहुरपाङ्गविक्षेपप्रचलिततरलतरतारसारोदरं चक्षुर्मण्डलितचापेन भगवता कुसुमधन्वना बलान्नीयमानं चन्द्रापीडनयेव न शशाक निवारयितुम्। तेनैव क्षणेन तेनासन्नसखीकपोलसक्रान्तेनेर्ष्यया रोमाञ्चभिद्यमानकुचतटनश्यत्प्रतिबिम्बेन विरहव्यथास्वेदार्द्रवक्षःस्थलघटितशालभञ्जिकाप्रतिमेन सपत्नीरोषा-

स्थापयन्ती। सा त्विति। सा तु कादम्बरी सखीप्रेम्णा महता स्नेहेन गृहनिवासेन कृतापराधेवानामयेनैव कुशलप्रश्नेनैव लज्जमाना त्रपां कुर्वाणा कृच्छ्रादिव कुशलमाचचक्ष आचख्यौ। तदेति। तस्मिन्काले महाश्वेतादुःखेन समुपजातः शोको यस्याः पूर्वविधापि कादम्बरी महाश्वेताया मुखं तस्य निरीक्षणं तस्मिंस्तत्परापि सोद्यमापि मुहुर्मुहुः। अपाङ्गेति। अपाङ्गस्य नेत्रप्रान्तस्य यो विक्षेपस्तेन प्रचलिता या तरलतरतारा तया सारं कश्मलमुदरं मध्यं यस्यैवंविधं चक्षुर्मण्डलितचापेनारोपितकोदण्डेन भगवता कुसुमधन्वना कन्दर्पेण चन्द्रापीडस्य पीडनयेव बलान्नीयमानं निवारयितुं न शशाक न समर्था बभूव। तेनैवेति। यस्मिन्क्षणे चक्षुर्निवारयितुं न समर्था तेनैव क्षणेन सा कादम्बरी तेन चन्द्रापीडेन कृत्वा य सपत्नीरोषस्तस्मात्तथा निमिषता पक्ष्मपातस्तदेव दौर्भाग्यं तेन य शोकः, अथ चानन्दजलं हर्षाश्रुजलं तेन तिरोहितेनाच्छादितेनान्धतादुःखमभजत् प्रापत्। कीदृशेन तेन। आसन्नेति। आसन्ना समीपवर्तिनी या सखी तस्याः कपोलो गल्लात्परं प्रदेशस्तत्र सक्रान्तेन प्रतिबिम्बितेन। इदं च सपत्नीरोषनिमित्तम्। यदस्यां संक्रान्तस्तर्ह्ययमेव सपत्नी भविष्यतीति शङ्कया सपत्नीरोषः सपत्नीविषयको रोषस्तस्मात्। पुनः कीदृशेन। मय्यासक्तः कान्यत्र सक्रान्त इतीर्ष्यया ये रोमाञ्चास्तैर्भिद्यमानं यत्कुचतटं तस्मिन्रोमाञ्चप्रतिबन्धवशादेव नश्यत्प्रतिबिम्बो यस्य स तेन इदं च शोकोत्पत्तिकारणम्।

भार से आच्छादित कर्णाभूषण को उछालती हुई और चँवर की वायु द्वारा हिलाये गये तथा अस्त-व्यस्त हुए केश के लच्छे को सँवारती हुई महाश्वेता ने कादम्बरी से कुशलक्षेम पूछा। किन्तु उस (कादम्बरी) ने सखीप्रेम के कारण यह अनुभव करते हुए कि घर में रहने से मानो उसने अपराध किया है (जब कि उसकी सखी वन मे रहती है), और मानो अपने अनामय (कुशल क्षेम) से ही लज्जित होते हुए, मानो बड़ी कठिनाई से अपनी कुशलता बतायी। उस समय उत्पन्न हुए शोक वाली भी तथा महाश्वेता के मुख को ताकते रहने मे व्यस्त भी (कादम्बरी) बार बार अपाङ्ग की ओर जाने से प्रचलित तथा अत्यन्त चञ्चल बनी हुई पुतली द्वारा रञ्जित मध्यभाग वाले अपने नेत्र को, (बाण चढ़ाकर) गोलाकार किये हुए धनुष वाले भगवान् कामदेव द्वारा जबरदस्ती लिये जाते हुए को मानो चन्द्रापीड को दुःख देने के लिये ही, (चन्द्रापीड की ओर जाने से) नहीं रोक सकी। उसी समय समीपवर्ती सखी के कपोलों में प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रापीड से (चन्द्रापीड का प्रतिबिम्ब उसकी सखी के गालों में सक्रान्त हो जाने से) उसने ईर्ष्या अनुभव की, रोमाञ्च हो जाने से फूलते हुए वक्ष स्थल पर (उसका तल विषम हो जाने के कारण) नष्ट होते हुए प्रतिबिम्ब वाले चन्द्रापीड से उसने वियोग का दुःख

न्निमिषता दौर्भाग्यशोकमानन्दजलतिरोहितेनान्धतादुःखमभजत सा। मुहूर्तापगमे च ताम्बूलदानोद्यता महाश्वेता तामभाषत—'सखि कादम्बरि, संप्रतिपन्नमेव सर्वाभिरस्माभिरयमभिनवागतश्चन्द्रापीड आराधनीयः। तदस्मै तावद्दीयताम्' इत्युक्ता च किंचिद्विवर्तितावनमितमुखी शनैरव्यक्तमिव 'प्रियसखि, लज्जेऽहम्। अनुपजातपरिचयाप्रागल्भ्येनानेन, गृहाण, त्वमेवास्मै प्रयच्छ' इत्युवाच सा ताम्। पुनःपुनरभिधीयमाना च तया कथमपि ग्राम्येव चिराद्दानाभिमुखं मनश्चक्रे। महाश्वेतामुखादनाकर्षितदृष्टिरेव वेपमानाङ्गयष्टिः, आकुललोचना, स्थूलस्थूलं निःश्वसन्ती, निजशरप्रहारमूर्च्छिता

विरहेति। विरहस्य वियोगस्य या व्यथा तया च स्वेद श्रमजल तेनार्द्रे यद्वक्ष स्थल भुजान्तर तत्र घटिता शालभञ्जिकाया प्रतिमा प्रतिबिम्बं यस्मिन्स तेन। इद चानन्दाश्रुनिपाते कारणम्। सेति। सा महाश्वेता मुहूर्तापगमे घटिकाद्वयानन्तर ताम्बूलदानोद्यता नागवल्लीदलवितरणे विहितोद्यमा कादम्बरीमभाषतावोचत। किमुवाचेत्याह—सखीति। हे सखि कादम्बरि, सर्वाभिरेवास्माभि सप्रतिपन्न प्राप्तमेव। अह तु तव सखी नापूर्वा, मह्यमदत्तमपि ताम्बूल दत्तमेव, अय त्वपूर्व इत्याशयेनाह—अयमिति। अयमभिनवो नूतन आगत प्राप्तश्चन्द्रापीड आराधनीय पूजनीय। तस्माद्धेतोस्तावदादावस्मै चन्द्रापीडाय दीयतां वितीर्यताम्। इत्युक्ता भाषिता सती तदनन्तर सा कादम्बरी ता महाश्वेतां शनैर्मन्दमव्यक्तमिवास्फुटमिवेत्युवाचावोचत्। इतिद्योत्यमाह—किंचिदिति। किंचिदीषद्विवर्तित परवर्तितम्, अथ चावनमितं मुखं यया सैवंविधाह हे प्रियसखि, लज्जे त्रपे। तत्र हेतुमाह—अनुपजातेति। अनेन सममनुपजातोऽनुत्पन्न परिचयो यस्या सा। प्रगल्भानां तत्क्षणादेव परिचय इत्यत आह—अप्रागेति। अप्रागल्भ्येनाधाष्टर्येन गृहाण। त्वमस्य प्रयच्छ देहि। पुन पुनर्वारंवारमभिधीयमाना कथ्यमाना तया महाश्वेतया। त्रासवितर्कमूर्च्छादिव्यभिचारिभावावस्थान्तरमाह—कथमपीति। कथमपि महता कष्टेन ग्राम्येव ग्रामीणेव चिराच्चिरकालेन दानाभिमुख मनश्चित्त चक्रे विदधे। महाश्वेता-

---

अनुभव किया तथा (चन्द्रापीड के) पसीने से आर्द्र वक्ष.स्थल पर बनी हुई पुतलियों के प्रतिबिम्बों वाले चन्द्रापीड से उसने सपत्नीनिमित्तक क्रोध अनुभव किया, आँखे बन्द करते हुए चन्द्रापीड से उसने अपना दौर्भाग्य अनुभव किया और हर्षाश्रुओं के कारण छिप गये हुए चन्द्रापीड से उसने अन्धे होने का दु ख अनुभव किया।

और कुछ समय बीत जाने पर पान देने को तय्यार उस (कादम्बरी) से महाश्वेता ने कहा—"सखी, कादम्बरी! यह तो हम सबने मान ही लिया है (अथवा यह तो उचित ही है) कि हम सब अभी आये चन्द्रापीड का आदर करें, इसलिये 'पहले इन्हीं को ही दें'—ऐसा कही हुई, कुछ मोड़े हुए और झुकाये हुए चेहरे वाली, धीरे से मानो अस्पष्ट रूप में ही, 'प्रिय सखि, अनुत्पन्न परिचय वाली मैं इस धृष्टता से लज्जित होती हूँ, लो तुम ही इनको दे दो' यह बोली। और बार बार कही जाती हुई उस (कादम्बरी) ने किसी प्रकार ग्रामीण स्त्री की भाँति, देने का निश्चय किया। महाश्वेता के मुख से बिना दृष्टि हटाये हुए ही, कांपते शरीर वाली, घबराई आँखों वाली, लम्बे गहरे गहरे साँस लेती हुई कामदेव द्वारा अपने बाण से मूर्छित की

मन्मथेन स्नपितेव स्वेदजलविसरैः, स्वेदजलविसरनिमज्जनभयेन च हस्तावलम्बनमिव याचमाना, साध्वसपरवशा, पतामीति लगितुमिव कृतप्रयत्ना प्रसारयामास ताम्बूलगर्भं हस्तपल्लवम्। चन्द्रापीडस्तु जयकुञ्जरकुम्भस्थलास्फालनसक्रान्तसिन्दूरमिव स्वभावपाटलम्, धनुर्गुणाकर्षणकृतकिरणश्यामलम्, कचग्रहाकृष्टिरुदितारिलक्ष्मीलोचनपरामर्शनलग्नाञ्जनबिन्दुमिव विसर्पन्नखकिरणतयातिरभसेन प्रधाविताभिरिव विवर्धिताभिरिव प्रहसिताभिरिवाङ्गुलीभिरुपेतम्, स्पर्शलोभाच्च तत्कालकृतसनिवेशाः सरागाः पञ्चापीन्द्रियवृत्तीरपराङ्गुलीरुद्वहन्त प्रसारितवान्पाणिम्। तत्र च सा तत्काल-

---

मुखादनाकर्षितदृष्टिर्यथा सैवविधैव वेपमाना कम्पमानाङ्गयष्टि यस्या । आकुले व्याकुले लोचने नेत्रे यस्या सा । किं कुर्वन्ती । स्थूलस्थूल यथा स्यात् तथा नि.श्वसन्ती एतन गृह्णन्ती । मन्मथेन कन्दर्पेण निजशरप्रहारेणात्मीयबाणाभिघातेन मूर्च्छिता मूर्च्छां प्रापिता । स्वेदजलविसरैर्घर्मपानीयसमूहै स्नपितेव स्नान कारितेव । स्वेदजलविसरैर्निमज्जनभय तेन च हस्तावलम्बनमिव याचमाना । साध्वस भय तेन परवशा पराधीना । पतामीति कृत्वा लगितुमिव कृत प्रयत्नो यया सा ताम्बूलगर्भं हस्तपल्लवं प्रसारयामास विस्तारितवती । अथ नायकानुरक्तिविशेष प्रदर्शयन्नाह—चन्द्रेति । चन्द्रापीडः । तु पुनरर्थे । पाणिं करं प्रसारितवान्विस्तारितवान् । अथ पाणिनिष्ठमारुण्यातिशयं विशेषयन्नाह—जयेति । जयार्थं य कुञ्जरो गजस्तस्य कुम्भस्थल तस्यास्फालनेन ताडनसयोगविशेषेण सक्रान्त लग्न सिन्दूर नागजं यस्मिन्नेतादृशमिव स्वभावेन स्वारसिकेन पाटलं श्वेतरक्तम् । धनुरिति । धनुषश्चापस्य यो गुण प्रत्यञ्चा तस्याकर्षणमाकृष्टिस्तेन कृतो विहित किणो रूढव्रणपदं तेन श्यामलं कृष्णम् । कचेति । कचग्रहेणाकृष्टिस्तया रुदिता या अरिलक्ष्मी शत्रुरमा तस्या लोचनपरामर्शनेन लग्ना अञ्जनबिन्दवो यस्मिन्नेतादृशमिव किणस्य कृष्णत्वात्तदुपमानमित्यर्थं । विसर्पन्त. प्रसरन्तो ये नखकिरणास्तेषां भावस्तत्ता तयातिरभसेनातिवेगेन प्रधाविताभिरिवोच्छलिताभिरिव, विवर्धिताभिरिव वृद्धिं प्राप्ताभिरिव प्रहसिताभिरिव हास्य कुर्वाणाभिरिवाङ्गुलीभिः करशाखाभिरुपेतं सहितम् । स्पर्शलोभाच्चेति । स्पर्शस्य लोभो गर्धस्तस्मात्तत्कालं तस्मिन्क्षणे कृत संनिवेशः प्रवेशो याभिस्ता । सरागा रागेण

गई अतः मानो पसीने के प्रवाहों से स्नान किये हुई, पसीने के प्रवाह में डूब जाने के भय से मानो हाथ का सहारा माँगती हुई, भयाक्रांता, गिर रही हूँ—यह समझकर (चन्द्रापीड के शरीर) में मानो लगने की प्रयत्न किये हुई, उस कादम्बरी ने पानवाले कोमल हाथ को फैला दिया। और चन्द्रापीड ने मानो (अपने) विजयी हस्तियों के कुम्भस्थल को (हाथ से) थपथपाने में स्थानान्तरित सिन्दूर वाले, स्वभाव से ही लाल, धनुष की प्रत्यचा को खींचने से अंकित व्रणचिह्न के कारण काले-काले हुए, इसीलिये मानो ऐसे प्रतीत होते हुए कि बालों से पकड़ने पर रोई हुई शत्रुलक्ष्मी की आँखों को छूने से इसमें अञ्जन के कण लग गये हैं, फैलती हुई नखकिरणों के कारण मानो बड़े वेग से दौड़ी हुई अथवा (लम्बाई में) बढ़ी हुई अथवा हँसती हुई प्रतीत होती अँगुलियों से युक्त, स्पर्श के लोभ से उसी समय वहाँ अवस्थिति किये हुई, रागयुक्त (१. लाली २. प्रेम) दूसरी पाँचों इन्द्रियों की वृत्तिरूपी अँगुलियों को धारण

सुलभविलासदर्शनकुतूहलिभिरिव कुतोऽप्यागत्य सर्वरसैरधिष्ठिता, तेनानिबद्धलक्ष्य तया शून्यप्रसारितेन चन्द्रापीडहस्तान्वेषणायेव पुरःप्रवर्तितनखांशुनिवहेन वेपथुचलित-वलयावलीवाचालेन संभाषणमिव कुर्वता हस्तेन, स्वेदसलिलपातपूर्वकम् 'गृह्यतामय मन्मथेन दत्तो दासजनः' इत्यात्मानमिव प्रतिग्राहयन्ती, 'अद्यप्रभृति भवतो हस्ते वर्तते' इति जीवितमिव स्थापयन्ती ताम्बूलमदात्। आकर्षन्ती च करकिसलयं भुजल-तानुसारेण स्पर्शतृष्णागतमनङ्गशरभिन्नमध्य हृदयमिव पतितमपि रत्नवलय नाज्ञासीत्। गृहीत्वा चापर ताम्बूलं महाश्वेतायै प्रायच्छत्।

सह वर्तमाना। पञ्चापीन्द्रियवृत्तिरपराङ्गुली पूर्वोक्तभिन्नाः करशाखा उद्वहन्त धारयन्तम्। शृङ्गारं पोषयद्गन्धर्वविवाहन्यायेन पाणिग्रहणमप्याह—तत्र चेति। तस्मिन्काले सा कादम्बरी तस्मै चन्द्रापीडाय हस्तेन ताम्बूलमदात्। कीदृशी। सर्वरसै शृङ्गारादिभि कुतोऽप्यनिर्दिष्ट-स्थानादप्यागत्याधिष्ठिताश्रिता। कीदृशै रसै। तत्कालेति। तस्मिन्काले सुलभा सुप्रापा विलासास्तेषां दर्शन तत्र कुतूहलिभिरिव कौतुकिभिरिव। हस्ते विशेषयन्नाह—तेनेति। हस्तेनानिबद्ध न दृग्विषयीकृत यल्लक्ष्य वेध्य तेन शून्य प्रसारितेन विस्तारितेन चन्द्रापीडस्य यो हस्तस्तस्यान्वेषण गवेषण तदर्थमिव पुरोग्रे प्रवर्तित प्रचलितो नखाना पुनर्भवानामंशुनिवहो यस्य स तेन। वेपथुरिति। वेपथु. कम्पस्तेन चलिता कम्पिता या वलयानां पारिहार्याणामावली श्रेणी तया वाचालेन मुखरेण। शब्दसाम्यमाह—सभाषणमिव जल्पनमिव कुर्वता विदधता। स्वेदेति। स्वेदसलिल घर्मजल तस्य पात पतन तत्पूर्वक यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। किं कुर्वन्ती। इत्यात्मानमिव प्रतिग्राहयन्ती ग्रहण कारयन्ती। इतिशब्दद्योत्यमाह—गृह्यता-मिति। अय मल्लक्षणो दासजनो मन्मथेन कदर्पेण दत्तोऽर्पितो गृह्यतां स्वीक्रियताम्। पुन किं कुर्वन्ती। इति जीवितमिव प्राणितमिव स्थापयन्ती। इतिशब्दद्योत्यमाह—अद्येति। अद्यप्रभृत्यद्यदिनादारभ्य भवतस्तव हस्ते वर्तते। त्वदधीनेत्यर्थ। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त'। पुन किं कुर्वन्ती। ताम्बूलप्रदानानन्तर करकिसलय हस्तपल्लवमाकर्षन्त्याकर्षण कुर्वन्ती च पतित-मपि स्रस्तमपि रत्नवलय मणिकटकं नाज्ञासीन्न ज्ञातवती। एतेन तन्मयत्वं सूचितम्। वलयस्य

किये हुए हाथ को फैला दिया। और उस (हाथ) पर उस समय सुलभ (सुगमता से देखे जाने योग्य) उसकी ललित चेष्टाओं के दर्शन के लिये मानो उत्सुक हुए, कहीं से भी आये सभी रसों (भावनाओं) से युक्त हुई उस कादम्बरी ने शून्य मन से (बिना विचारे, लक्ष्य को देखे बिना) फैलाये हुए, मानो चन्द्रापीड के हाथ को ढूँढने के लिये ही आगे चलायीं नख किरणों के समूह वाले तथा कँपन से हिलती कंकणपंक्ति के साथ गूँजते, वार्तालाप करते से प्रतीत होते हाथ से, पसीने के जल को गिराने (समर्पित करने) के साथ साथ, 'यह कामदेव द्वारा दिया गया दास व्यक्ति है, इसको स्वीकार कीजिये' यह कहकर मानो अपने आपको भेंट रूप में देती हुई ने, 'आज से आपके हाथ में है'—यह कह कर मानो अपने जीवन को स्थापित करती हुई ने (चन्द्रापीड को) पान दिया। और अपने कोंपल सरीखे कोमल हाथ को वापस खींचती हुई ने अपनी भुजलता के साथ-साथ गिरे हुए

अथ सहसैव त्वरितगतिः, त्रिवर्णरागमिन्द्रायुधमिव कुण्डलीकृतं कण्ठेन वहता विद्रुमाङ्कुरानुकारिणा चञ्चुपुटेन मरकतद्युतिपक्षतिना मन्थरगतेन शुकेनानुबध्यमाना, कुमुदकेसरपिञ्जरतया चरणयुगलस्य चम्पककलिकाकारतया च मुखस्य, कुवलयदलनीलतया च पक्षद्युतीनां कुसुममयीवागत्य सारिका सक्रोधमवादीत्—'भर्तृदारिके कादम्बरि, कस्मान्न निवारयस्येनमलीकसुभगाभिमानिनं दुर्विनीत मामनुबध्नन्त

लोहितमणिनिर्मितत्वसाम्यादाह—भुजेति। भुजलता बाहुलता तदनुसारेण तन्मार्गेण स्पर्श तृष्णा तयागत प्राप्तमनङ्गशरेण कदर्पबाणेन भिन्न मध्य यस्यैवविध हृदयमिव। गृहीत्वेति। अपर तद्व्यतिरिक्त ताम्बूल नागवल्लीदल महाश्वेतायै प्रायच्छद्ददात्।

अथेति। ताम्बूलप्रदानानन्तर सहसैवागत्यैत्य सारिका पीतपादा सक्रोधं यथा स्यात्तथावादीदवोचत्। कीदृशी। त्वरिता शीघ्रा गतिर्यस्या सा। पुनः कीदृशी। शुकेन कीरेणानुबध्यमाना निरुध्यमाना। अथ शुक विशेषयन्नाह—वहतेति। कण्ठेन निगरणेन वहता धारयता। कम्। त्रिवर्णरागम्। किमिव। इन्द्रायुधमिवाखण्डलधनुरिव कुण्डलीकृत वर्तुलीकृतम्। जातिवर्णनमेतत्। एतदेव विवृणोति—विद्रुमेति। चञ्चुपुटेन त्रोटिसपुटेन कृत्वा विद्रुमाङ्कुर प्रवालप्ररोहमनुकरोतीत्येवशील स तेन। मरकतेति। मरकतस्य द्युतिरिव द्युतिर्ययोरेवविधे पक्षती पक्षमूले यस्य स। तेन मन्थर सालस गत यस्य स तेन। अथ सारिकां विशिनष्टि—कुमुदेति। कुमुदानां केसरं तेन पिञ्जर पीतरक्तस्तस्य भावस्तत्ता तया चरण युगलस्याङ्घ्रियुग्मस्य। चम्पकेति। चम्पकस्य हेमपुष्पकस्य कलिका कोरकस्तस्या आकार आकृतिर्यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, मुखस्याननस्य कुवलयदलान्युत्पलखण्डास्तद्वन्नीलस्तस्य भावस्तत्ता तया, पक्षद्युतीना छदकिरणानाम्। अत एवाह—कुसुममयीव पुष्पमयीव। अन्वयस्तु प्रागे वोक्त'। किमुवाचेत्याह—भर्तृ इति। हे भर्तृदारिके कादम्बरि, कस्माद्धेतोरेन शुकं न निवार यसि न निराकरोषि। अलीक मिथ्या सुभगस्य सौभाग्यस्याभिमानोऽहङ्कारो विद्यते यस्य स तम्। दुर्विनीत शुकलम्। किं कुर्वन्तम्। मामनुबध्नन्तमनुरोध कुर्वन्तम्। तथा विहगेषु

अपने रत्नजटित ककण को भी उसने नहीं जाना, मानो कि वह कगन छूने के लोभ से आया हुआ, कामदेव के बाण द्वारा मध्य में से काटा गया उसका हृदय ही था। और उसने दूसरा पान हाथ में लेकर महाश्वेता को दे दिया।

इसके पश्चात् अचानक ही, जल्दी-जल्दी चलती हुई, अपनी ग्रीवा पर तीन रग की धारियों को, मानो कुण्डलाकृति इन्द्रधनुष को, कण्ठ में धारण किये हुए, मूँगे के अँकुर सी चोंच वाले तथा हरित मणि के रग वाले पखों से युक्त धीरे-धीरे गति वाले तोते द्वारा अनुगम्यमान, दोनों पाँवों की कुमुद के तन्तुओं (केसर) की भाँति पिञ्जरता (लाल-पीलापन) होने के कारण, मुख का आकार चम्पक की कली के आकार का होने के कारण तथा पखों का रग नील कमल की पखुँड़ियों के समान नीला होने के कारण मानो पुष्पों की बनी हुई सी प्रतीत होती, सारिका आकर क्रोधसे बोली—"राजपुत्री कादम्बरी, इस झूठे सौन्दर्य (अथवा सौभाग्य) के अभिमानी अत्यन्त दुश्शील, निन्दनीय पक्षी को मेरा पीछा करते हुए क्यों नहीं

विहंगापसदम्। यदि मामनेन परिभूयमानामुपेक्षसे, ततोऽहं नियतमात्मानमुत्सृजामि। सत्यं शपामि ते पादपङ्कजस्पर्शेन' इत्येवमभिहिता च तया कादम्बरी स्मितमकरोत्। अविदितवृत्तान्ता तु महाश्वेता 'किमियं वदति' इति मदलेखां पप्रच्छ। सा चाकथयत्—'एषा भर्तृदुहितुः सखी कादम्बर्याः कालिन्दीति नाम्ना सारिका, एतस्य परिहासनाम्नः शुकस्य भर्तृदारिकयैव पाणिग्रहणपूर्वकं जायापदं ग्राहिता। अद्य चायमनया प्रत्यूषसि कादम्बर्यास्ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमिमां तमालिकामेकाकिनीं किमपि पाठयन्दृष्टो यतः, ततः प्रभृति सजातेर्ष्या कोपपराङ्मुखी नैनमुपसर्पति, नालपति, न स्पृशति, न विलोकयति, सर्वाभिरस्माभिः प्रसाद्यमानापि न प्रसीदति' इत्येतदाकर्ण्य स्फुटं स्फुरितकपोलोदरश्चन्द्रापीडो मन्दं मन्दं विहस्याब्रवीत्—'अस्त्येषा

पक्षिष्वपसदमधमम्। यदीति। यदि मामनेन शुकेन परिभूयमानां पराजितामुपेक्षसे उपेक्षां करोषि, ततोऽहं नियतमात्मानमुत्सृजामि। भविष्यति वर्तमाना। त्यक्ष्यामीत्यर्थः। सत्यं स्यात्तथा शपामि शपथं करोमि। केन। ते तव पादपङ्कजस्पर्शेन। तवाङ्घ्रिस्पर्शपूर्वकमित्यर्थः। तयेत्येवमभिहितोक्ता कादम्बरी स्मितमकरोत्। अविदितेति। अविदितोऽज्ञातो वृत्तान्त उदन्तो यस्याः सैवंविधा तु महाश्वेता किमियं सारिका वदतीति मदलेखां पप्रच्छ। सा चेति। सा मदलेखा इत्यकथयदित्यवोचत्। किमुवाचेत्याह—एषेति। एषा भर्तृदुहितुः कादम्बर्याः कालिन्दीति नाम्ना सखी सारिका एतस्य परिहासनाम्नः शुकस्य भर्तृदारिकयैव पाणिग्रहणपूर्वकं जायापदं ग्राहिता स्त्रीत्वं प्रापिता। अद्य चेति। अद्य दिने चानया सारिकया प्रत्यूषसि प्रभाते कादम्बर्यास्ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमेकाकिनीमिमां तमालिकां किमपि पाठयन्दृष्टः। ततः प्रभृति तद्दिनादारभ्य सजातेर्ष्या यस्याः सा कोपपराङ्मुखी क्रोधाद्वाङ्मुखी नैनं शुकमुपसर्पति समीपे गच्छति, नालपति ब्रवीति, न स्पृशति स्पर्शं करोति, न विलोकयति नेक्षते, सर्वाभिरस्माभिः प्रसाद्यमानापि प्रसन्नीक्रियमाणापि न प्रसीदति न प्रसन्नीभवति। इत्येतदाकर्ण्य श्रुत्वा। स्फुटमिति। स्फुटं स्पष्टं स्फुरितं स्पन्दितं कपोलयोरुदरं यस्यैवंविधश्चन्द्रापीडो मन्दं मन्दं विहस्य। स्मितं कृत्वेत्यर्थः। इत्यब्रवीदित्यवोचत्। अस्तीति। एषा कथास्ति। एतद्राजकुले

रोकती हो? यदि इससे निरादृत की जा रही मेरी तुम उपेक्षा करोगी तो मैं निश्चय ही अपना जीवन छोड़ दूँगी—तुम्हारे चरण कमल को छूकर मैं सचमुच ही यह शपथ लेती हूँ।"— उस (मैना) के द्वारा इस प्रकार कही हुई कादम्बरी मुस्कराने लगी। किन्तु महाश्वेता ने जो इस विषय में कुछ नहीं जानती थी, मदलेखा से पूछा और उसने कहा—"यह राजपुत्री कादम्बरी की सहेली कालिंदी नाम की सारिका है, राजपुत्री ने स्वयं ही, इसको इस परिहास नाम के शुक की स्त्री का स्थान, पाणिग्रहणपूर्वक, स्वीकार कराया है। और आज प्रातःकाल ही यह (तोता) कादम्बरी की पान पेटी उठाने वाली इस तमालिका को कुछ पढ़ाता हुआ इसने देख लिया, तभी से ईर्ष्या से भरी हुई, क्रोध के कारण मुँह फेरे हुई न इसके समीप जाती है, (न इससे) बात करती है, न छूती है, न देखती है और हम सभी द्वारा प्रसन्न की जाती हुई भी प्रसन्न नहीं होती है।"

कथा श्रूयत एवैतद्राजकुले, कर्णपरम्परया परिजनोऽप्येवमामन्त्रयते, बहिरपि जनाः कथयन्त्येवम्, दिगन्तरेष्वप्ययमालापो वर्तत एव, अस्माभिरप्येतदाकर्णितमेव, यथा किल देव्याः कादम्बर्यास्ताम्बूलदायिनीं तमालिका कामयमानः परिहासनामा शुको मदनपरवशो गतान्यपि दिनानि न वेत्तीति। तदयमास्ता तावद्वामाचारः परित्यक्त-निजकलत्रो निस्त्रपोऽनया सह, देव्यास्तु कादम्बर्याः कथमेतद्युक्त यन्न निवारयतीमां चपला दुष्टदासीम्, अथवा देव्यापि कथितैव निःस्नेहता प्रथममेव वराकीमिमां कालिन्दीमीदृशाय दुर्विनीताय विहगाय प्रयच्छन्त्या। किमिदानीमियं करोतु यदेतत् सापत्न्यकरणं नारीणा प्रधानं कोपकारणम्, अग्रणीर्विरागहेतुः, परं परिभवस्थानम्। इयमेव केवलमतिधीरा, यदनयानेन दौर्भाग्यगरिम्णा जातवैराग्यया विषं वा नास्वा-

---

श्रूयते एवमाकर्ण्यते। कर्णपरम्परया परिजनोऽपि सेवकजनोऽप्येवमामन्त्रयते। एव कथयतीत्यर्थ। बहिरपि जना एवं कथयन्ति। दिगन्तरेष्वपि परदेशेष्वप्ययमालापो वर्तत एव। अस्माभिरप्येतत्पूर्वोक्तमाकर्णितमेव श्रुतमेव। तदेव दर्शयन्नाह—यथेति। किलेति सत्ये। देव्या कादम्बर्यास्ताम्बूलदायिनीं तमालिका कामयमान प्रार्थयमान परिहासनामा शुको मदनपरवशो गतान्यतीतान्यपि दिनान्यहानि न वेत्ति न जानाति। तदयमिति। तदिति हेत्वर्थे। अय वामाचारो विरुद्धाचरण परित्यक्तनिजकलत्रो निस्त्रपो निर्लज्जस्तया सह तावदास्तां तिष्ठतु, देव्यास्तु कादम्बर्या कथमेतद् युक्त न्याय्यम्। इमां चपला चञ्चलां दुष्टदासीं यन्न निवारयति न निषेधति। अथवेति पक्षान्तरे। देव्यापि प्रथममेव नि स्नेहता निष्प्रेमता कथितैवोक्तैव। किं कुर्वन्त्या देव्या। इमां वराकीं कालिन्दीमीदृशाय दुर्विनीताय विहगाय प्रयच्छन्त्या प्रददत्या। किमिदानीमिय करोतु। न किमपि कर्तुं समर्था। यद्यस्माद्धेतो-रेतत्सापत्न्यकरण नारीणां स्त्रीणां प्रधान मुख्य कोपकारणम्। अग्रणीर्मुख्यो विरागस्य विरक्तताया हेतु। परं परिभवस्थानं मुख्य पराभवगृहम्। इयमेव कालिन्द्येव केवलमतिधीरा।

यह सुनकर हँसी आ जाने के कारण स्पष्ट रूप से कापते हुए कपोल मध्य वाला चन्द्रापीड धीरे-धीरे मुस्कराता हुआ बोला—'यह एक कहानी है, यह राजभवन में कानों कान सुनायी देती है, सेवक भी ऐसे ही कहते हैं, बाहर के लोग भी इसी प्रकार कहते हैं, दिगन्तरालों में भी यह बातचीत है ही, हमने भी इसको सुना ही है कि देवी कादम्बरी की पान वाली तमालिका के प्रेम में पड़ा हुआ परिहास नाम का तोता, सर्वथा प्रेम के वशीभूत हुआ बीते हुए दिनों तक को भी नहीं जान पाता है। इस कारण विरुद्धाचरणशील और अपनी पत्नी को छोड़े हुए इस निर्लज्ज को एक ओर रहने दो, किन्तु देवी कादम्बरी के लिये यह कैसे उचित है कि वह इस चञ्चला दुष्ट दासी तक को भी नहीं रोकती है, अथवा इस बेचारी कालिन्दी को ऐसे कु'शील पक्षी को सौंपती हुई देवी ने अपना स्नेहाभाव पहले ही बता दिया है। यह बेचारी अब क्या करे? क्योंकि सौत का होना स्त्रियों के कोप का मुख्य कारण होता है, स्नेहाभाव का मुख्य स्रोत होता है तथा अपमान का गम्भीर विषय होता है। यह कालिन्दी ही केवल अत्यन्त धीर है कि अपने इस दौर्भाग्य के भार से विरक्त हुई इसने विष नहीं खाया, अग्नि का आश्रय नहीं लिया

दितम्, अनलो वा नासादितः, अनशनं वा नाङ्गीकृतम्। नह्येकमपरमस्ति योषिता लघिम्नः कारणम्, यदि चेयमीदृशेऽप्यपराधेऽनुनीयमानानेन प्रत्यासत्तिमेष्यति तदा धिगिमाम्, अलमनया, दूरतो वर्जनीयेयमभिभवनिरस्या, क एना पुनरालापयिष्यति, को वावलोकयिष्यति, को वास्या नाम ग्रहीष्यति' इत्येवमभिहितवति तस्मिन्सर्वास्ताः सह कादम्बर्या क्रीडालापभाषिता जहसुरङ्गनाः। परिहासस्तु तस्य नर्मभाषितमाकर्ण्य जगाद—'धूर्त राजपुत्र, निपुणेयम्, न त्वयान्येन वा लोलापि प्रतारयितुं शक्यते। एषापि बुध्यत एवैतावतीर्वक्रोक्तीः। इयमपि जानात्येव परिहासजल्पितानि। अस्या अपि राजकुलसंपर्कचतुरा मतिः। विरम्यताम्। अभूमिरेषा भुजङ्गभङ्गिभाषिता-

अस्मिन्नर्थे हेतुमाह—यदिति। यद्यस्मात्कारणादनया कालिन्द्या अनेन दौर्भाग्यगरिम्णा शुकेन कृत्वा जातमुत्पन्नं वैराग्यं यस्याः सैवंविधया विषं नास्वादितं न भक्षितम्। अनलो वह्निर्वा नासादितो न गृहीतः। अनशनं प्रायो वा नाङ्गीकृतम्। योषितां लघिम्नः कारणं नह्येकमपरमस्ति। यदि चेति। इयं कालिन्दीदृशेऽपराधेऽप्यनुनीयमाना प्रसन्नीक्रियमाणा। अनेन शुकेन प्रत्यासत्तिं सबन्धमेष्यति गमिष्यति, तदेमां धिक्। अनयालं कृतम्। दूरतो वर्जनीया त्याज्येयम्। अभिभवेन निरस्या दूरीकरणीया। क एनां पुनरालापयिष्यति। को वावलोकयिष्यति। को वास्या कालिन्द्या नामाभिधानं ग्रहीष्यतीत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेणाभिहितवति कथितवति तस्मिन्राज्ञि सर्वास्ता अङ्गनाः कादम्बर्या सह जहसुर्हसितवत्यः। कीदृश्यः। क्रीडालापेन नर्मालापेन भाषिता वासिताः। परीति। परिहासः शुकस्तु तस्य चन्द्रापीडस्य नर्मभाषितमाकर्ण्य श्रुत्वा जगादोवाच। हे धूर्त राजपुत्र, निपुणाभिज्ञेयम्। त्वयान्येन वा त्वद्व्यतिरिक्तपुंसा लोलापि चपलापि प्रतारयितुं न शक्यते न पार्यते। एषेति। एतावतीर्वक्रोक्तीरेषापि बुध्यते जानाति। इयमपि परिहासजल्पितानि जानात्येव। अस्या अपि राजकुलेन संपर्कः सबन्धस्तेन चतुरा चातुर्ययुक्ता मतिर्बुद्धिः। अतो विरम्यतां मौनं क्रियताम्। नर्मालापभाषणादिति शेषः। भुजगाः कामिनस्तेषां भङ्गिभाषितानां वक्रोक्तीनामेषाऽभूमिरस्थानम्। इयमेव हि मञ्जुभाषिणी मनोज्ञा-

अथवा अनशन स्वीकार नहीं किया। स्त्रियों की तुच्छता (अपमान) का ऐसा दूसरा कोई कारण नहीं है। और यदि इस प्रकार के अपराध करने पर भी इस शुक के द्वारा मनायी गयी यह (उसके साथ) निकट सम्बन्ध को स्थापित कर लेती है तो इसको धिक्कार है। अब इससे कोई सम्बन्ध नहीं। घृणापूर्वक त्यागने योग्य यह दूर से ही वर्जनीय है। फिर इस से कौन बात करेगा, कौन इसको देखेगा अथवा कौन इसका नाम तक भी लेगा।'—चन्द्रापीड के यह कह चुकने पर कादम्बरी के साथ ही साथ वे सारी उसकी (उस द्वारा की गयी) हसी की बात से प्रभावित हुई नारियाँ हँस पड़ीं। किन्तु परिहास उसके प्रमोदमय वचन को सुनकर बोला—"धूर्त, राजपुत्र! यह बड़ी चतुरा है, चञ्चला है, तो भी तू अथवा कोई दूसरा इसको ठग नहीं सकता है। यह भी इतनी वक्र उक्तियों को जानती ही है। इसकी भी राजभवन के साथ हुए सम्पर्क के कारण चतुर (पैनी) हुई बुद्धि है! इसलिये, रुको (ऐसी बातें मत करो)। कामियों की वक्रोक्तियों के लिये यह (मैना) उचित पात्र नहीं है! क्योंकि, मधुरभाषिणी यह स्वयं ही क्रोध तथा

नाम्। इयमेव हि वेत्ति मञ्जुभाषिणी काल च कारण च प्रमाणं च विषय च प्रस्तावञ्च कोपप्रसादयोः' इति।

अत्रान्तरे चागत्य कञ्चुकी महाश्वेतामवोचत्—'आयुष्मति, देवश्चित्ररथो देवी च मदिरा त्वा द्रष्टुमाह्वयते' इति। एवमभिहिता च गन्तुकामा 'सखि, चन्द्रापीडः कास्ताम्' इति कादम्बरीमपृच्छत्। असौ तु ननु पर्याप्तमेवानेकस्त्रीहृदयसहस्रावस्थानमनेनेति मनसा विहस्य प्रकाशमवदत्—'सखि महाश्वेते, किं त्वमेवमभिदधासि। दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्यह न विभुः, किमुत भवनस्य परिजनस्य वा। यत्रासौ रोचते प्रियसखीहृदयाय वा तत्रायमास्ताम्' इति। तच्छ्रुत्वा महाश्वेतावदत्—

लापिनी कोपप्रसादयो काल समय कारण निमित्त प्रमाण तद्व्यवस्थापक पञ्चावयव वाक्य विषय गोचर प्रस्तावमवसर च वेत्ति जानातीति।

अत्रान्तरे चेति। अस्मिन्समये कञ्चुक्यागत्य महाश्वेतामित्यवोचदित्यब्रवीत्। इतिशब्दवाच्यमाह—आयुष्मतीति। हे आयुष्मति, देव पूज्यश्चित्ररथाभिधो नृपो देवी च राज्ञी मदिराभिधा त्वा भवतीं द्रष्टु विलोकयितुमाह्वयत आह्वान करोति। एवप्रकारेणाभिहितोक्ता सती गन्तुकामा इति कादम्बरीमपृच्छत्। इतीति किम्। हे सखि कादम्बरि, चन्द्रापीड कास्तां क तिष्ठतु। असौ त्विति। असौ कादम्बरी मनसा विहस्येति प्रकाश प्रकटमवदत्। इतियीत्याह—पर्याप्तेति। अनेन कृत्वा पर्याप्तमेव परिपूर्णमेव। स्वेर्ष्यां प्रकटयन्नाह—अनेकेति। अनेका या स्त्रियस्तासा हृदयानि चेतांसि तेषा सहस्र तल्लक्षणमवस्थानमावास। अवस्थानावस्थितिभावस्य समानत्वादेतन्मनोऽन्यासु लग्नमिति भाव। नवकपोलप्रतिबिम्बसक्रान्तिवशात्प्रागेव दर्शितमित्यनुनयमाह—किं त्विति। त्वं किमभिदधासि किं कथयसि। दर्शनादारभ्यावलोकनात्प्रभृति शरीरस्यापि देहस्याप्यह न विभु। देह धारयितु न समर्थ इत्यर्थ.। स भवनस्य परिजनस्य वा किमुत भण्यते। यत्रेति। यस्मिन्स्थलेऽसौ चन्द्रापीड.। पुनरार्यामाह—प्रियेति। प्रियसखीहृदयाय रोचते रुचिविषयीभवति। तत्रायमास्ता तिष्ठतु। तत्पूर्वोक्त श्रुत्वाकर्ण्य महाश्वेतावददवोचत्। अत्रैव त्वत्प्रासादसमीपवर्तिनि प्रमदवनेऽन्त पुरो-

सन्धि के (उचित) समय, कारण, प्रमाण, विषय और अवसर को निश्चय ही जानती है।"

और ऐसे समय में आकर कञ्चुकी ने महाश्वेता से कहा—"आयुष्मति! महाराज चित्ररथ और देवी मदिरा तुम्हें देखने के लिये बुला रहे हैं।" इस प्रकार कही गयी तथा जाना चाहती हुई महाश्वेता ने कादम्बरी से यह पूछा—'सखि! चन्द्रापीड कहाँ ठहरें'? वह (कादम्बरी) 'तो अनेक स्त्रियों के सहस्रों हृदयों में इसके लिए निवास स्थान क्या पर्याप्त नहीं है? (अथवा निश्चय, ही उसने तो पहले ही रहने का स्थान अनेक स्त्रियों के सहस्रों हृदयों में प्राप्त कर लिया है)— इस उक्ति (विचार) पर मन ही मन हँसकर प्रकट रूप से बोली—"सखि महाश्वेते! तू ऐसी बात क्यों कहती है! दर्शन से लेकर ही यही मेरे शरीर का भी स्वामी है, भवन अथवा सेवकों का तो कहना ही क्या है! जहाँ (रहना) उसको अच्छा लगे अथवा प्रियसखी के मन को अच्छा लगे वहीं यह रहे।" इस बात को सुनकर महाश्वेता ने कहा—"यहीं तेरे महल के समीप-

'अत्रैव त्वत्प्रासादसमीपवर्तिनि प्रमदवने क्रीडापर्वतकमणिवेश्मन्यास्ताम्' इत्यभिधाय गन्धर्वराज द्रष्टुं ययौ। चन्द्रापीडोऽपि तयैव सह निर्गत्य विनोदनार्थं वीणावादिनीभिश्च वेणुवाद्यनिपुणाभिश्च गीतकलाकुशलाभिश्च दुरोदरक्रीडारागिणीभिश्चाष्टापदपरिजयचतुराभिश्च चित्रकर्मकृतश्रमाभिश्च सुभाषितपाठिकाभिश्च कादम्बरीसमादिष्टप्रतीहारीप्रेषिताभिः कन्याभिरनुगम्यमानः पूर्वदृष्टेन केयूरकेणोपदिश्यमानमार्गः क्रीडापर्वतमणिमन्दिरमगात्। गते च तस्मिन्गन्धर्वराजपुत्री विसर्ज्य सकलसखीजन परिमितपरिचारिकाभिरनुगम्यमाना प्रासादमारुरोह। तत्र च शयनीये निपत्य दूरस्थिताभिर्विनयनिभृताभिः परिचारिकाभिर्विनोद्यमाना कुतोऽपि प्रत्यागतचेतना

पवने क्रीडापर्वतकस्य मणिवेश्मनि रत्ननिर्मितगृह आस्ता तिष्ठत्विल्यभिधायेत्युक्त्वा गन्धर्वराज द्रष्टु ययौ गतवती। चन्द्रापीडोऽपि तयैव महाश्वेतयैव सह निर्गत्य बहिरागत्य कादम्बर्या समादिष्टा या प्रतीहारी द्वाररक्षानियुक्ता तया प्रेषिताभि प्रहिताभिर्वीणावादिनीभिर्वेणुवादय वशवाद्य तत्र निपुणाभिर्दक्षाभिर्गीत गान तल्लक्षणा या कला विज्ञान तत्र कुशलाभिर्दक्षाभि। दुरोदरेति। दुरोदरक्रीडा द्यूतक्रीडा तस्या राग अनुरागो विद्यते यासा ताभि। अष्टापद शारिफल तत्र य परिचयस्तस्मिंश्चतुराभि। चित्रेति। चित्रकर्मालेख्यकर्म तत्र कृतो विहित श्रमो याभि। सुभाषितानि सूक्तानि तेषा पाठिकाभि। एवविधाभि. कन्यकाभिरनुगम्यमान। अत्र कलानां भिन्नभिन्नाश्रयत्वसूचनार्थं चकार। कीदृशो नृपश्चन्द्रापीड। पूर्वदृष्टेन केयूरकेणोपदिश्यमान प्रदर्श्यमानो मार्ग पन्था यस्य स। क्रीडापर्वतमणिमन्दिरमगाद्गतवान्। भावशबलानि व्यञ्जयन्नाह—गते चेति। तस्मिंश्चन्द्रापीडे गते सति गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरी सकलसखीजन समप्रवयस्याजन परिजनं परिच्छदलोक च विसर्ज्य गृहे गम्यतामित्यादिश्य परिमितं परिचारिकाभि स्तोकपरिच्छदस्त्रीभिरनुगम्यमाना प्रासादो देवभूपानां गृह तमारुरोहारूढवती। तत्र मणिमन्दिरे शयनीये शय्यायां निपत्य पतन कृत्वा विरहव्याकुलचित्तत्वेन शयनाभावाद् दूरस्थिताभिर्दविष्ठदेशावस्थायिनीभिर्विनयनिभृताभिर्मर्यादावतीभि एवविधाभि

स्त्रियों के उपवन में क्रीडापर्वत पर स्थित मणिनिर्मित घर में ठहरें" यह कह कर गन्धर्वराज से भेंट करने के लिये चली गई। चन्द्रापीड भी उस (महाश्वेता) के साथ ही निकल कर (विदा होकर) और कादम्बरी द्वारा आज्ञा दी गई प्रतिहारियों द्वारा (उसके) मन बहलाव के लिये भेजी गयीं- वीणा बजाने वाली, बाँसुरी बाजे में कुशल, सगीतकला में निपुण, द्यूतक्रीडा से प्रेम रखने वाली, चित्रकारी के कामों में मेहनत किये हुई तथा सुभाषित पढ़ने वाली कन्याओं द्वारा अनुगम्यमान, पहले से ही देखे गये केयूरक द्वारा बतलाये गये मार्ग वाला क्रीडा-पर्वत पर स्थित मणिमहल को चला गया।

और उसके चले जाने पर गन्धर्वराज की पुत्री (कादम्बरी) सारी सखियों और सेविकाओं को हटा कर सीमित सख्या की सेविकाओं द्वारा अनुगम्यमान अपने महल पर चढ़ गयी। और वहाँ अपने पलग पर गिर कर, दूर खड़ी हुई, नम्रता (अथवा आदर) पूर्वक मौन हुई सेविकाओं द्वारा (मन) बहलायी जाती हुई, किसी भी प्रकार होश मे आयी हुई तथा अकेली ही

चैकाकिनी तस्मिन्काले 'चपले, किमिदमारब्धम्' इति निगृहीतेव लज्जया, गन्धर्वराजपुत्रि, कथमेतद्युक्तम्' इत्युपालब्धेव विनयेन, 'अयमसावव्युत्पन्नो बालभावः क गतः' इत्युपहसितेव मुग्धतया, स्वैरिणि, मा कुरु यथेष्टमेकाकिन्यविनयम्' इत्यामन्त्रितेव कुमारभावेन, 'भीरु, नाय कुलकन्यकाना क्रमः' इति गर्हितेव महत्त्वेन, 'दुर्विनीते, रक्षाविनयम्' इति तर्जितेवाचारेण, 'मूढे, मदनेन लघुतां नीतासि' इत्यनुशासितेवाभिजात्येन, 'कुतस्तवेयं तरलहृदयता' इति धिक्कृतेव धैर्येण, 'स्वच्छन्दचारिणि, अप्रमाणीकृताह त्वया' इति निन्दितेव कुलस्थित्यातिगुर्वी लज्जामुवाह। समचिन्तयच्चैवम्—'अगणितसर्वशङ्कया तरलहृदयतां दर्शयन्त्याद्य मया किं कृतमिदं मोहान्धया। तथा

परिचारिकाभिर्विनोद्यमाना विनोदविषयीक्रियमाणा कुतोऽपि प्रत्यागता पश्चादागता चेतना यस्या। चन्द्रापीडदर्शनान्मन्मथेन चैतन्यमपहृत तत्प्रत्यागतमिति भाव। सैव विधैकाकिनी तस्मिन्काले स्वात्मान समुद्दध्याह—चपलेति। हे चपले चञ्चले, किमिदमारब्ध प्रस्तुतमिति लज्जया त्रपया निगृहीतेव निरुत्तरीकृतेव। हे गन्धर्वराजपुत्रि, कथमेतत्पूर्वोक्तं युक्त न्याय्यमित्युपालब्धेव विनयेन। उपालम्भस्तिरस्कारविशेष। अयमसौ अव्युत्पन्नो बालभाव शिशुभाव क गत इत्युपहसितेव हास्यगोचरीकृतेव मुग्धतया। हे स्वैरिणि स्वेच्छा चारिणि, एकाकिनी यथेष्टमविनय मा कुर्वित्यामन्त्रितेव निमन्त्रितेव कुमारभावेन बालभावेन। हे भीरु, कुलकन्यकानामयं न क्रम इति गर्हितेव निन्दितेव महत्त्वेन गरिम्णा। दुर्विनीते, अविनय रक्षेति तर्जितेवाचारेण। हे मूढे, मदनेन कदर्पेण लघुतां तुच्छतां नीतासि प्रापितासीत्यनुशासितेवानुशिक्षितेवाभिजात्येन भूमिकानुसारितया। कुतस्तवेयं तरलहृदयतेति धिक्कृतेव धैर्येण। हे स्वच्छन्दचारिणि, अह त्वयाप्रमाणीकृतेति निन्दितेव कुलस्थित्यातिगुर्वीमतिमहतीं लज्जा त्रपामुवाह धारयामास। समिति। एवमग्रे वक्ष्यमाण समचिन्तयदध्यायत्। एवशब्दवाच्यमाह—

उस समय 'चपले, यह तूने क्या काम आरम्भ किया है'? मानो यह कह कर लज्जा (नम्रता) द्वारा नियन्त्रित की गई, विनय (प्रशिक्षण) द्वारा मानो यह कह कर कि 'गन्धर्वराजपुत्रि! यह तुम्हारे लिये कैसे उचित है'—ताना दी गई, 'तेरा वह निश्छल (अबोध) बचपन कहाँ चला गया' मानो यह कह कर भोलेपन द्वारा चिढ़ायी गई, बालभाव द्वारा "मनमाना करने वाली! अकेली, निर्लज्जता का काम जी भर कर मत कर' इन शब्दों में मानो उपदेश दी गई, कुलीनता द्वारा 'भीरु! यह कुलीन कन्याओं की आचरणपद्धति नहीं है'—इस प्रकार मानो निंदित की गई, आचरण द्वारा मानो यह कह कर कि 'कुप्रशिक्षिते? अविनय से बच कर रह'—डरायी धमकायी गई, उच्च कुलीनता द्वारा मानो यह कह कर कि 'मूर्खे! काम ने तुझे तुच्छ बना दिया है—तुझे पतित कर दिया है', उपदेश दी गई, धीरज द्वारा मानो यह कह कर कि "तेरे में यह हृदय की चञ्चलता (अस्थिरता) कहा से आयी?"—धिक्कार दी गई, कुल की स्थिति द्वारा मानो यह कह कर कि 'मनमाना व्यवहार करने वाली तूने मुझे अप्रमाण बना दिया—मेरे सत्ताधिकार को व्यर्थ कर दिया'—निन्दित की गई—वह कादम्बरी बहुत अधिक लज्जित हो गई। और उसने इस प्रकार विचार किया—"मोह से अन्धी हुई, सभी बाधाओं की उपेक्षा करती हुई तथा अपनी अस्थिर हृदयता को

हि—अदृष्टपूर्वोऽयमिति साहसिकतया मया न शङ्कितम्। लघुहृदया मामय कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया नाकलितम्। कास्य चित्तवृत्तिरिति मया न परीक्षितम्। दर्शनानुकूलाहमस्य नेति वा तरलया न कृतो विचारक्रमः। प्रत्याख्यानवैलक्ष्यान्न भीतम्। गुरुजनान्न त्रस्तम्। लोकापवादान्नोद्विग्नम्। तथा च महाश्वेताविदुःखितेति दाक्षिण्यया नापेक्षितम्। आसन्नवर्तिसखीजनोऽप्युपलक्षयतीति मन्दया न लक्षितम्। पार्श्वस्थितः परिजनः पश्यतीति नष्टचेतनया न दृष्टम्। स्थूलबुद्धयोऽपि तादृशीं विनयच्युतिं विभावयेयुः, किमुतानुभूतमदनवृत्तान्ता महाश्वेता सकलकलाकुशलाः

अगणितेति। अगणिता सर्वा समग्रा शङ्का यया सा तथा। किं कुर्वन्त्या। तरलहृदयतां चञ्चलचित्तता दर्शयन्त्या प्रकाशयन्त्या अद्य मोहान्धया मयेदं किं कृत किं विहितम्। तदेव दर्शयति—तथा हीति। अदृष्टपूर्वोऽनवलोकितपूर्वोऽय चन्द्रापीड इति साहसिकतया साहसयुक्तया मया न शङ्कितम्। तथा मां लघुहृदयां तुच्छचित्तामय कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया निर्लज्जया नाकलितम्। तथा कास्य चित्तवृत्तिरिति मया न परीक्षित परीक्षा न कृता। तथा दर्शनानुकूला दर्शनयोग्याहमस्य नेति वा मया तरलया चपलया विचारक्रमो न कृतो न विहित। तथा प्रत्याख्यान प्रतिषेधस्तज्जनित यद्वैलक्ष्य तस्मान्न भीत न त्रस्तम्। तथा गुरुजनात्पूज्यजनान्न त्रस्त चकितम्। तथा लोकापवादाज्जनप्रवादान्नोद्विग्न नोद्वेगं प्राप्तम्। तथा च महाश्वेतातिदु खितेति दाक्षिण्यया गतानुकूलतया नापेक्षितमपेक्षा न कृता। तथासन्नवर्ती समीपवर्ती सखीजनोऽप्यालीजनोऽप्युपलक्षयति ज्ञास्यति। भविष्यति वर्तमान। इति मन्दया मूर्खया न लक्षित न ज्ञातम्। तथा पार्श्वस्थित समीपस्थ परिजन परिच्छद पश्यत्यवलोकयतीति नष्टचेतनया मया न दृष्टम्। तथा स्थूलबुद्धयोऽपि तादृशीं विनयच्युतिं सभावयेयु विभावना कुर्युः। अनुभूतोऽनुभव नीतो मदनवृत्तान्तो यय सैवविधा महाश्वेता सकलकलाकुशलास्तस्या सख्यो वयस्या

दिखाती हुई मैंने आज यह क्या कर डाला है? उदाहरणतया, अपने उतावलेपन (साहसिकता) के कारण मैंने यह दुविधा (हिचकिचाहट) भी नहीं की कि यह तो अपरिचित है। निर्लज्ज होने के कारण मुझे लोग चञ्चल चित्त वाली समझेंगे—इस बात को भी मैं मनमें नहीं लाई! मूर्खतया मैंने इस बात की भी जाच नहीं की कि (मेरे प्रति) इसका मानसिक रुख (चित्तवृत्ति) क्या है? अपनी अस्थिरता के कारण मैंने यह ऊहापोह (विचारक्रम) भी नहीं किया कि मैं इसके दर्शन के योग्य हूँ या नहीं? प्रतिषेध करने पर होने वाले निरादर अथवा लज्जा से नहीं डरी, बड़े बूढों से नहीं डरी। जनता द्वारा की जानेवाली—लोकनिन्दा से भी भयभीत नहीं हुई। उदारता-रहित मैंने इस बात को भी नहीं सोचा कि महाश्वेता दु खी है। मूर्खतया मैंने यह भी नहीं देखा कि समीपवर्ती सहेलियाँ भी मुझे देख रही हैं। नष्ट है (चेतना) ज्ञानशक्ति जिसकी ऐसी मैंने यह भी नहीं देखा कि आस पास स्थित सेवकवर्ग देख रहा है। मन्दबुद्धि (मनुष्य) भी वैसी शील की भूल को भाँप जाते हैं, तो फिर काम की कार्यवाही को जाननेवाली महाश्वेता का, सब कलाओं में निपुण सखियों का, और राजभवन में आवागमन (अथवा

सख्यो वा राजकुलसंचारचतुरो वा नित्यमिङ्गितज्ञः परिजनः। ईदृशेष्वतिनिपुणतर-दृष्टयोऽन्तःपुरदास्यः। सर्वथा हतास्मि मन्दपुण्या। मरण मेऽद्य श्रेयः, न लज्जाकरं जीवितम्। श्रुत्वैतद् वृत्तान्त किं वक्ष्यत्यम्बा, तातो वा, गन्धर्वलोको वा। किं करोमि। कोऽत्र प्रतीकारः। केनोपायेन स्खलितमिद प्रच्छादयामि। कस्य वा चापलमिदमेतेषा दुर्विनीतानामिन्द्रियाणा कथयामि। क्व वानेन दग्धहृदया पञ्चबाणेन गच्छामि। तथा महाश्वेताव्यतिकरेण प्रतिज्ञा कृता, तथा प्रियसखीना पुरो मन्त्रितम्, तथा च केयूर-कस्य हस्ते सदिष्टम्, न खलु जानामि मन्दभागिनी शठविधिना वा, उत्सन्नमन्मथेन वा, पूर्वकृतापुण्यसचयेन वा, मृत्युहतकेन वा, अनेन वा केनाप्ययमानीतो मम

वा राजकुले सचार सचरण तत्र चतुरोऽभिज्ञो नित्यमिङ्गितज्ञ इङ्गित शरीरचेष्टा तदभिज्ञ परि-जनो वा। ईदृशेषु कार्येष्वतिनिपुणतरा दृष्टयो यासां ता अन्त पुरदास्य। एतासा किमुत भण्यते। एता पराभिप्राय विदन्त्येवेति भाव। अत सर्वथा मन्दपुण्याहं हतास्मि। मे मम मरणमद्य श्रेय। लज्जाकर त्रपाजनक जीवित न श्रेय। एतद्वृत्तान्तमुदन्त श्रुत्वाकर्ण्याम्बा माता, तात पिता वा, गन्धर्वलोक स्वजनवर्गो वा, किं वक्ष्यति किं कथयिष्यति। अहं किं करोमि किमनुतिष्ठामि। कोऽत्रास्मिन्विषये प्रतीकारः प्रतिक्रिया। केनोपायेन प्रपञ्चेनेद स्खलित दुश्चेष्टित प्रच्छादयाम्यावृणोमि। एतेषां दुर्विनीतानामिन्द्रियाणा करणाना चापल चाञ्चल्य कस्य वा कथयामि निवेदयामि। क्व वानेन पञ्चबाणेन कदर्पेण दग्धहृदया गच्छामि व्रजामि। तथा महाश्वेताया व्यतिकरेण वृत्तान्तेन मया प्रतिज्ञा सगर कृता पत्युर्न सेवनीय इति तथापि प्रिय-सखीनामतिवल्लभवयस्याना पुर पुरतो मन्त्रितमालोचितम्। तथा केयूरकस्य हस्ते महाश्वेतायै सदिष्ट सदेश प्रेषित। तत्रोत्तरभाव्यनर्थापरिज्ञाननिमित्तमित्याह—न खल्विति। न खलु निश्चयेनाहं मन्दभागिनी एतन्न जानामि नाकलयामि। किं तदित्याह—शठेति। शठो मूर्खो यो विधिर्ब्रह्मा तेन वा, उत्सन्नो हतो मन्मथ कदर्पस्तेन वा, पूर्व कृतो योऽपुण्यसचय पापभरस्तेन वा,

---

निवास) के कारण चतुर बने हुए अथवा सदा इशारों को समझने वाले सेवकों का तो कहना ही क्या है? (विशेषतया) अन्त.पुर की दासियाँ तो ऐसे (मामलों में) निपुण दृष्टि वाली होती हैं। हा! अभागी मैं, सब प्रकार से मारी गयी हूँ। आज मेरा मरना ही (मेरे लिए) कल्याणकारी है, और (ऐसा) लज्जाजनक जीवन नहीं! इस मामले (वृत्तान्त) को सुन कर मेरी माँ, मेरे पिता अथवा गन्धर्व क्या कहेंगे? मैं क्या करूँ! इस स्थिति का क्या उपाय है! किस साधन से मैं अपनी इस भूल को छिपाऊँ? अथवा इन अपनी कुशासित इन्द्रियों की चपलता को किससे बताऊँ! अथवा इस कामदेव से जलाए हुए हृदय वाली मैं कहाँ जाऊँ? क्योंकि मैंने उस (शानदार) प्रकार से महाश्वेता के वृत्तान्त के कारण प्रतिज्ञा की, प्रिय सहेलियों के सामने उस (शानदार) ढग से बातचीत की, और उस शैली में केयूरक के हाथ सदेश दिया। निश्चय ही अभागिनी मैं नहीं जानती कि इस मेरे वञ्चक चन्द्रापीड को दुष्ट दैव यहाँ लाया अथवा दुरात्मा कामदेव लाया, या मेरे पूर्व जन्मों में किये हुए पापों (अपुण्य) का पुञ्ज इसे ले आया अथवा हत्यारी मृत्यु अथवा दूसरा कोई इसको यहाँ ले आया! अथवा

विप्रलम्भकश्चन्द्रापीडः। कोऽपि वा न कदाचिद् दृष्टः, नानुभूतः, न च श्रुतः, न चिन्तितः, नोत्प्रेक्षितः, मा विडम्बयितुमुपागतः। यस्य दर्शनमात्रेणैव सयम्य दत्तेव, इन्द्रियैः शरपञ्जरे निक्षिप्य समर्पितेव, मन्मथेन दासीकृत्योपनीतेव, अनुरागेण निर्यातितेव, गृहीतमूल्येन गुणगणेन विक्रीतेव, हृदयेनोपकरणीभूतास्मि। न मे कार्यं तेन चपलेन' इति क्षणमिव संकल्पमकरोत्। कृतसकल्पा चान्तर्गतेन 'मिथ्याविनीते, यदि मया न कृत्यम्, एष गच्छामि' इति हृदयोत्कम्पचलितेन परिहसितेव चन्द्रापीडेन परित्यागसकल्पसमकालप्रस्थितेन कण्ठलग्नेन पृष्टेव जीवितेन 'अविशेषज्ञे, पुनरपि

मृत्युलक्षणो यो हतको हत्याकृत्तेन वा, अन्येनानिर्दिष्टनाम्ना केनापि वा मम विप्रलम्भको वियोगरूपोऽय चन्द्रापीड आनीत प्रापित। पूर्वपरिचिन्तितं निरस्यन्नाह—कोऽपीति। कोऽप्यय न कदाचिद् दृष्ट, नानुभूत, न च श्रुत आकर्णित, न चिन्तितो ध्यात., नोत्प्रेक्षित पुन पुनर्विलोकितो यन्मां विडम्बयितु कदर्थनां कर्तुमुपागत प्राप्त। यस्येति। यस्य चन्द्रापीडस्य दर्शनमात्रेण करणभूतेन हृदयेन कर्तृभूतेन सयम्य बद्ध्वा दत्तेव समर्पितेवेन्द्रियैः करणैः करणभूतै. शरपञ्जरे काशघटितगृहे निक्षिप्य हृदयेन समर्पितेव। तथा मन्मथेन कदर्पेण करणभूतेन दासीकृत्य हृदयेनोपनीतेव प्रापितेव तथानुरागेण चन्द्रापीडविषयकेण कृत्वा हृदयेन निर्यातितेव नि सारितेव। तथा गृहीतमूल्येनात्तवेतनेन गुणगणेन करणभूतेन हृदयेन विक्रीतेव विक्रयीकृतेव अतोऽहमुपकरणीभूतोपस्करभूतास्मि। यथा गृहोपकरण यत्र तत्रोपयोगि न तथाहमित्यर्थं। भावशबलत्वं पोषयन्नाह—नेति। तेन चपलेन न मे कार्यं प्रयोजनमिति क्षणमिव क्षणसदृश सकल्पमकरोत्। इय निर्वेदावस्था। तामुपमर्द्य पुनरपि रतिभावावस्थामाह—कृतेति। कृतसकल्पा च विहितविकल्पा च। अन्तर्गतेनेति चन्द्रापीडेत्यादि त्रिष्वपि सबध्यते। त्रयाणामेव हृदये स्थितत्वात्परिहासप्रश्नाभिहितत्वान्नियुक्तानि। तान्येवाह—हृदयेति। हृदये य उत्कम्पो ग्लानिविशेषस्तेन चलितेन कम्पितेन चन्द्रापीडेन हे मिथ्याविनीते, यदि मया न कृत्य तदैषोऽह गच्छामि व्रजामीति कृत्वा परिहसितेव कृतहास्येव। तथा तस्य चन्द्रापीडस्य य परित्यागस्तस्य सकल्पस्तदध्यवसायस्तत्समकाल प्रस्थितेन चलितेन कण्ठलग्नेन जीवितेन पृष्टेव

कोई भी (अवर्णित) ऐसा व्यक्ति है कि जो न कभी देखा है, न अनुभूत (व्यक्तिरूप में परिचित) ही है, न कभी सुना गया है, न कभी सोचा गया है और न कभी कल्पित किया गया है, जो मेरा उपहास करने के लिए आया है, (परिणाम यह हुआ है कि) जिसको केवल देख कर ही मैं मानो इद्रियो द्वारा बाँध कर उसको सौंप दी गयी हूँ, मानो (अपने) बाणों से बनाये पिंजरे में डाल कर कामदेव द्वारा सौंप दी गयी हूँ, मानो प्रेम द्वारा दासी बनाकर उसके पास पहुँचा दी गयी हूँ, मानो हृदय द्वारा (उसके) गुणों को मूल्य रूप में लेकर बेच दी गयी हूँ, (इस प्रकार) मैं उस (के हाथ) का औजार बन गयी हूँ। उस चञ्चल से मेरा (भविष्य मे) कोई कार्य नहीं रहेगा।"—इस प्रकार मानो एक क्षण भर के लिए मैंने (अपना) निश्चय किया। किन्तु इस निश्चय को किये हुई मैं (तुरन्त ही) चन्द्रापीड की ओर आकृष्ट हो गयी क्योंकि इस समय मानो (मेरे) हृदय मे बैठे, हृदय के कम्पन से क्षुब्ध हुए चन्द्रापीड ने

प्रक्षालितलोचनया दृश्यतामसौ जनः, प्रत्याख्यानयोग्यो न वा' इति तत्कालागतेनाभिहितेव बाष्पेण 'अपनयामि ते सहासुभिर्धैर्यावलेपमिति निर्भर्त्सितेव मनोभुवा पुनरपि तथैव चन्द्रापीडाभिमुखहृदया बभूव। तदेवमस्तमितप्रतिसमाधानबलात्प्रेमावेशेनास्वतन्त्रीकृता परवशेवोत्थाय जालवातायनेन तमेव क्रीडापर्वतकमवलोकयन्त्यतिष्ठत्। तत्रस्था च सा तमानन्दजलव्यवधानोद्विग्नेव स्मृत्या ददर्श, न चक्षुषा। अङ्गुलीगलितस्वेदपरामर्शभीतेव चिन्तया लिलेख, न चित्रतूलिकया। रोमाञ्चतिरो-

---

प्रश्नविषयीकृतेव। अन्योऽपि य प्रस्थान करोति सोऽपि कण्ठेन लगित्वा गच्छामीति प्रश्नपूर्वक व्रजति। तत्कालागतेन तत्समयावच्छेदेन प्रादुर्भूतेन बाष्पेण नेत्राम्बुनेत्यभिहितेवेति कथितेव। इतिवाच्यमाह—अविशेषेति। हे अविशेषज्ञे, पुनरपि प्रक्षालितलोचनया त्वयासौ जनो दृश्यतामालोक्यताम्। न चाप्रत्याख्यानयोग्यो निराकरणयोग्य। इतीति। इति मनोभुवा कदर्पेण निर्भर्त्सितेवाधिक्षिप्तेव। इतिप्रोक्तमाह—अपेति। ते तवासुभि प्राणै सह धैर्यावलेप धीरिमाहकारमपनयामि दूरीकरोमि। पुनरपीति। तथैव पूर्वोक्तप्रकारेणैव चन्द्रापीडस्याभिमुखं हृदय यस्या एवभूता पुनरपि बभूव जये. उत्कण्ठातिशयेन रतिभाव पुन पोषयन्नाह—तदेवमिति। तदेव पूर्वोक्तप्रकारेणास्तमितमस्ततां प्राप्त यत्समाधान किमनेन चपलेन कार्यमित्यादि निर्वेदरूप तदेव बल तस्मात्प्रेमा चन्द्रापीडविषयक स्मृतिरूपस्तस्यावेशेन प्रवेशेनास्वतन्त्रीकृता परवशेव पराधीनेवोत्थायोत्थान कृत्वा जालवातायनेन जालगवाक्षेण तमेव क्रीडापर्वतकमवलोलयन्ती पश्यन्त्यतिष्ठदासत्। पुनर्भावानेवाह—तत्रस्थेति। तत्रस्था वातायनोपविष्टा सा न चन्द्रापीडमानन्दजलेन हर्षाश्रुणा यद् व्यवधान तेनोद्विग्नेवोद्वेग प्राप्तेव स्मृत्यानुभवव्यतिरिक्तज्ञानेन ददर्शालोकयांचकार न चक्षुषा। अङ्गुलिभ्यो गलितो य स्वेदस्तस्य परामर्श सश्लेषस्तेन भीतेव त्रस्तेव चिन्तया लिलेख। न चित्रतूलिकया तदाकृतिं भावनया भावितवती।

'ओ, झूठी नम्र लड़की! यदि मुझसे तेरा कोई कृत्य (सम्बन्ध) नहीं रहेगा, तो ले, मैं जाता हूँ।' यह कह कर मानो मेरी हँसी की। अथवा उसका परित्याग करने के निश्चय के साथ ही-साथ मुझसे बिदा लिए हुए मेरे जीवन ने मेरी ग्रीवा मे लगे हुए ने (अर्थात् गले तक आये हुए ने) मानो मुझसे पूछा, और उसी समय (मेरी आँखो में) आये आँसुओं ने मानो मुझसे पूछा—"अरी ओ विशेषता न जान सकने वाली! अविवेकशील लड़की! आँखें धोये हुयी तुझको फिर भी वह व्यक्ति देख लेना चाहिए कि वह प्रतिषेध करने योग्य है या नहीं। और 'मैं तेरे प्राणों के साथ साथ तेरे इस दृढ़ निश्चय के घमण्ड अर्थात् घमण्ड भरे दृढ़ निश्चय को भी छीन कर ले जाऊँगा, नष्ट कर दूँगा'—इन शब्दों में मानो कामदेव ने मुझे झिड़क दिया था।"

इस पर सभी विरोधी तर्कों की समाप्ति हो जाने के कारण, प्रेम के आवेग द्वारा वश में की गयी (दास बनायी गयी) वह मानों दूसरे की इच्छा के वश में हो ऐसी, उठकर, जालीदार झरोखे में से क्रीड़ा-पर्वत को देखती बैठी रही। और वहाँ बैठी हुई उसने मानो आनन्दाश्रुरूप रुकावट से व्याकुल होकर उसको स्मृति से देखा, आँख से नहीं। (अपनी) अगुलियों से निकले

धानशङ्कितेव हृदयेनालिलिङ्ग, न वक्षसा। तत्सगमकालातिपातासहेव मनो गमाय वियुक्तवती, न परिजनम्। चन्द्रापीडोऽपि प्रविश्य स्वच्छन्द कादम्बरीहृदयमिव द्वितीय मणिगृह शिलातलास्तीर्णायामुभयत उपर्युपरि निवेशितबहूपधानाया कुथाया निपत्य केयूरकेणोत्सङ्गेन गृहीतचरणयुगलस्ताभिर्यथादिष्टेषु भूमिभागेषूपविष्टाभिः कन्यकाभिः परिवृतो दोलायमानेन चेतसा चिन्ता विवेश। किं तावदस्या गन्धर्व-राजदुहितुः कादम्बर्याः सहभुव एते विलासा एवेदृशाः सकललोकहृदयहारिण., आहो-

न कूर्चिकया लिखितवतीत्यर्थं । रोमाञ्च इति। रोमाञ्चो रोमोद्गमस्तेन तिरोधानमाच्छादन तेन शङ्कितेव हृदयेन चित्तेनालिलिङ्गाश्लेष कृतवती। न वक्षसा भुजान्तरेण। तस्येति। तस्य चन्द्रापीडस्य य. सगम सश्लेषस्तत्र कालातिपात कालविलम्बस्त सोढुमसहेवाशक्तेव गमाय तदालिङ्गनाय मनो नियुक्तवती प्रेषितवती। न परिजनम्। अत्रायमभिप्राय —आनन्दजल व्यवधायकमिति न चक्षुषा तथादर्शनमित्युद्वेग.। अङ्गुलीगलितस्वेदेन चित्रतूलिकाविलिखनस्य विलोपो भयहेतुर्वक्षसालिङ्गनेनेव रोमाञ्च एव व्यवधायक इति सर्वथा नानान्तरितालिङ्गनमिति शङ्काहेतु । मनस सत्वरगतिं मत्वा तस्य परिजनस्य तथात्वाभावात्कालातिपातः। अत्र चानन्द जलादीना स्मृत्यादीनां चातिशया व्यङ्ग्या। नायिकामालम्ब्य भावशबलत्वमुक्त्वा नायक माश्रित्य भावशबलत्वमाह—चन्द्रापीडोऽपीति। स्वच्छन्द यत्कादम्बरीहृदय तद्वदिव द्वितीय मणिगृह प्रविश्य शिलातल आस्तीर्णायां विस्तारितायामुभयत पार्श्वद्वय उपर्युपरि निवेशितानि स्थापितानि बहून्युपधानान्युच्छीर्षकाणि यस्यामेवविधायां कुथायां प्रवेण्यां निपत्य केयूरकेणोत्सङ्गेन गृहीतमात्त चरणयुगलमङ्घ्रियुग्म यस्य स । ताभिर्यथादिष्टेषु यथायोग्य कथितेषु भूमिभागेषूपविष्टाभि कन्यकाभि परिवृत सहितो दोलायमानेन कम्पमानेन चेतसा कृत्वा चिन्ता विवेश। चिन्तामग्नो बभूवेत्यर्थं । किं तावदस्या गन्धर्वराजदुहितु कादम्बर्या सहभुव स्वाभाविका सकललोकहृदयहारिण ईदृशा एते विलासा एव। आहोस्विद्वितर्के।

पसीने के स्पर्श (हो जाने के कारण चित्र बिगड़ जाने) से मानो डरी हुई ने अपनी कल्पना से उसका चित्र बनाया, चित्र बनाने के ब्रश (तूलिका) से नहीं। (अपने तथा चन्द्रापीड के मध्य) मानो रोमाच के व्यवधान से डरी हुई ने हृदय से आलिङ्गन किया, वक्षःस्थल से नहीं। उसके साथ सगम होने मे होने वाली देरी को मानो न सहन कर सकने के कारण ही, जाने के लिये उसने मन को नियुक्त किया, किसी सेवक को नहीं भेजा।

(इस अन्तर में) चन्द्रापीड भी साफ सुथरे मणिगृह मे, मानो कि दूसरे कादम्बरी के हृदय में ही प्रविष्ट होकर, शिलातल पर फैलायी हुई उस दरी पर गिर कर—(बैठ कर) जिसके दोनों ओर एक दूसरे के ऊपर (ऊपर-ऊपर) बहुत से तकिये रखे हुए थे, तथा केयूरक द्वारा अपनी गोदी मे गृहीत (दबाने के लिये गोदी मे उठाये हुए) दोनों पाँवों वाला, उन भूमि-भागों पर बैठी हुई कन्याओं से घिरा हुआ अपने अस्थिर चित्त से सोचने लगा—"क्या इस गन्धर्वराज की कन्या के (मामले में) सर्वथा स्वाभाविक ये ललित हाव-भाव ऐसे ही सभी के हृदयों को चुराते हैं? अथवा बिन पूजे ही प्रसन्न हुए भगवान् कामदेव ने मेरी ओर भेजे हैं,

स्विदनाराधितप्रसन्नेन भगवता मकरकेतुना मयि नियुक्ता येन मां सास्रेण सरागेणाकूणितत्रिभागेण हृदयान्तःपतत्स्मरशरकुसुमरजोरूषितेनेव चक्षुषा तिर्यग्विलोकयति। मद्विलोकिता च धवलेन स्मितालोकेन दुकूलेनेव लज्जयात्मानमावृणोति। मल्लज्जाविवर्तमानवदना च प्रतिबिम्बप्रवेशलोभेनेव कपोलदर्पणमर्पयति। मदवकाशदायिनो हृदयस्य प्रथमाविनयलेखामिव कररुहेण शयनाङ्के लिखति। मत्ताम्बूलवीटिकोपनयनखेदविधूतेन रक्तोत्पलभ्रमद्भ्रमरवृन्देन करतलेन खिन्न मुखमिव गृहीततमालपल्लवेनेव बीजयति। पुनश्चाचिन्तयत्—'प्रायेण मानुष्यकसुलभा लघुता मिथ्यासकल्पसहस्रैरेवं

अनाराधितश्चासौ प्रसन्नश्चैवविधेन भगवता मकरकेतुनेति सावधारणं तेन मकरकेतुनैव मयि कादम्बरी नियुक्ता नियोजिता, येन मन्मथनियोगेन सास्रेणास्र रुधिर तेन सरागेण स्नेहयुक्तेनाकूणितो वक्रीकृतस्त्रिभागो यस्मिन्। हृदयेति। हृदयान्त पतन्तो ये स्मरशरा कदर्पबाणास्त एव कुसुमानि तेषा रज परागस्तेन रूषितेनेव चक्षुषा नेत्रेण तिर्यग्विलोकयति। इद चिन्ताधिरूढामधिकृत्योक्तम्, अन्यथा प्रासादादिरूढायास्तस्या विलोकनासभवात्। एवमन्यानपि तद्व्यापारान्स्वानुकूलानेव चिन्तयन्नाह—मदिति। मद्विलोकिता सती लज्जया धवलेन स्मितालोकेन। शुभ्रत्वसाम्यादाह—दुकूलेति। दुकूलेनेवात्मानमावृणोत्याच्छादयति। प्रतिबिम्बमधिकृत्याह—मदिति। मल्लज्जया विवर्तमान वदन यस्या एवविधापि प्रतिबिम्बस्य य प्रवेशस्तस्य लोभेनेव कपोलदर्पणमर्पयति। मुखविवर्तनेऽपि कपोलस्य तदभिमुखत्वादिति भाव। नखकर्षणचेष्टामधिकृत्याह—मदिति। मामवकाशदायिनो हृदयस्य प्रथमामाद्यामविनयलेखामिव कररुहेण पुनर्भवेन शयनस्य पल्यङ्कस्याङ्क उत्सङ्गे लिखति। ताम्बूलप्रदानसमये तस्या करकम्पक्रियामधिकृत्याह—ममेति। मम ताम्बूलवीटिकाया यदुपनयन प्रापण तस्माद्य खेद प्रयासस्तेन विधूतेन कम्पितेन रक्तोत्पल कोकनद तस्य यो भ्रमस्तेन भ्रमद् भ्रमरवृन्द मधुकरपटलं यस्मिन्नेतादृशेन करतलेन गृहीततमालपल्लवेन। भ्रमराणां तत्साद‍ृश्यादिति भाव। मदिति। मद्विलोकनाप्रेम्णा

जिसके कारण वह मुझको अश्रुपूर्ण राग (१ लालिमा, २ प्रेम) प्रदर्शित करते हुए, सिकोड़े हुए कोने (त्रिभाग) वाले (तथा इस प्रकार) मानो हृदय के भीतर गिरते कामदेव के बाणों के पुष्पो की धूलि से ढके हुए नेत्रों से तिरछा देखती है! और मुझसे देखी गयी, लज्जा के कारण अपने आपको श्वेत रेशमी वस्त्र सरीखे, मुस्कान के श्वेत प्रकाश से ढक लेती है। मुझसे लजाकर मुँह फेरती हुई मानो मेरे प्रतिबिम्ब को उसमे प्रवेश कराने के लोभ (इच्छा) से ही अपने कपोलरूपी दर्पण को अर्पित कर देती है। मुझको (रहने का) स्थान देने वाले (अपने) हृदय के प्रथम अनुचित कार्य को प्रदर्शित करने वाली रेखा को ही मानो वह नाखून से अपनी शय्या के तल पर लिखती है। मेरे लिये पान के बीड़े को ले आने में हुई थकान के कारण काँपते हुए, लाल कमल समझ कर, उस पर घूमते हुए, भौरों के समूह से युक्त तथा तमाल का पत्ता लिये हुए-से प्रतीत होते हाथ के द्वारा मानो वह थके हुए मुँह पर पखा करती है।" और उसने यह भी सोचा—"बहुत सम्भव है कि मनुष्य (प्राणियों) में सुगमता से (स्वभाव से)

मां विप्रलभते, लुप्तविवेको यौवनमदो मदयति, मदनो वा। यतस्तिमिरोपहतेव यूना दृष्टिरल्पमपि कालुष्य महत्पश्यति। स्नेहलवोऽपि वारिणेव यौवनमदेन दूर विस्तीर्यते। स्वयमुत्पादितानेकचिन्ताशताकुला कविमतिरिव तरलता न किंचिन्नोत्प्रेक्षते। निपुणमदनगृहीता चित्रवर्तिकेव तरुणचित्तवृत्तिर्न किंचिन्नालिखति। सजातरूपाभिमाना कुलटेवात्मसभावना न क्वचिन्नात्मानमर्पयति। स्वप्न इवानुभूतमपि

खिन्न मुखमिव वीजयति। पुनरिति। पुनरचिन्तयच्चिन्तितवान्। कि तदित्याह—प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन मानुष्यके भवे सुलभा सुप्रापा लघुता मिथ्या मुधा सकल्पसहस्रैर्मनोरथसहस्रैरेव पूर्वोक्तप्रकारेण। मामित्यात्मनिर्देशः। विप्रलभते। वञ्चयतीत्यर्थः। तथा लुप्तो विवेको येनैतादृशो यौवनमदस्तारुण्यगर्वो मदयति मद जनयति। एव मदनोऽपि। यतस्तिमिरोपहतेव यूनां दृष्टिरल्पमपि कालुष्य महत्पश्यति। अल्पापि योषिता चित्तविकृतिर्बहुत्वेन जानातीत्यर्थः। स्नेहलवोऽपि प्रीतिलेशोऽपि वारिणेव यौवनमदेन दूर विस्तीर्यते दूर नीयते। स्वयमिति। स्वयमात्मनोत्पादिता अनेकेषामभिलषणीयवस्तूनां चिन्तास्तत्तद्विषयकमनोवृत्तयस्तासां शत तेनाकुला व्याकुला तरलता तृष्णाविशेष किंचिन्न नोत्प्रेक्षतेऽभिलषते। अपि तु सर्वमेवोत्प्रेक्षत इति भाव। केव? कविमतिरिव। सापि स्वयमुत्पादितानेकेषां वर्णनीयाना या चिन्ता स्मृतिस्तस्या शत तेनाकुला व्याप्ता सती किंचिन्न नोत्प्रेक्षते। अपि तु सर्वमेवोत्प्रेक्षालकारविषयीकरोतीत्यर्थः। निपुणेति। निपुणोऽभिज्ञो यो मदन कदर्पस्तेन गृहीता स्वीकृता तरुणचित्तवृत्तिश्चित्रवर्तिकेव किंचिन्न नालिखति। अपि तु सर्वमेवालिखतीत्यर्थः। सजातेति। सजात रूपस्य सौन्दर्यस्याभिमानोऽहकारो यस्या एवविधात्मसभावना कुलटेव क्वचिन्न नात्मानमर्पयति। अपि तु सर्वत्रात्मानं दत्त इत्यर्थः। स्वप्न इवानुभूतमपि मनोरथो

उपलब्ध होने वाली नासमझी ही मुझको सहस्रों मिथ्या धारणाओं से इस प्रकार ठग रही है, अथवा विवेक को नष्ट करने वाला यौवन का अथवा मदन का प्राचुर्य (मद) इस प्रकार उन्मत्त कर रहा है। क्योंकि, युवाओं की आँख अल्प-सी भी (भावनाओं की) अस्तव्यस्तता (कालुष्य) को, 'तिमिर' नाम के रोग से आक्रान्त आँख की भाँति (जो छोटे से भी धब्बे को बड़ा देखती है) बड़ा देखती है। जैसे चिकनाई की एक बूँद भी जल द्वारा दूर तक फैल जाती है—ऐसे ही स्नेह का एक अश भी यौवन की उत्तेजना (मद) से दूर दूर तक फैल जाता है। स्वय उत्पन्न की हुई सैकड़ो चिन्ताओं अथवा कल्पनाओं से व्याकुल (युवक की) सवेदनशीलता (तरलता), स्वय उत्पन्न की गयी वर्णनीय विषयो की सैकड़ों स्मृतियों से व्याप्त कवि की बुद्धि की तरह क्या-क्या कल्पनाये नहीं करती। चतुर कामदेव के वशीभूत हुई तरुण मनुष्य की अभिरुचि, (चतुर चितेरे द्वारा चलाये हुए) ब्रश (तूलिका) की भाँति किसको अकित नहीं कर लेती। उत्पन्न हुए सौन्दर्य के अभिमान वाली आत्म-श्लाघा अपने आपको सभी को अर्पित करने वाली कुल्टा स्त्री की भाँति अपने आपको किस स्थान पर नहीं जमा लेती। मनोरथ, स्वप्न की भाँति, अनुभूत पदार्थ को भी (मन की आँख को) दिखला देता है। प्रत्याशा,

मनोरथो दर्शयति। इन्द्रजालपिच्छिकेवासम्भाव्यमपि प्रत्याशा पुरः स्थापयति। भूयश्च चिन्तितवान्—'किमनेन वृथैव मनसा खेदितेन, यदि सत्यमेवेयं धवलेक्षणा मय्येवजातचित्तवृत्तिस्तदा नचिरात्स एवैनामप्रार्थितानुकूलो मन्मथः प्रकटीकरिष्यति। स एवास्य संशयस्य छेत्ता भविष्यति' इत्यवधार्योत्थायोपविश्य च ताभिः कन्यकाभिः सहाक्षैर्गेयैश्च विपञ्चीवाद्यैश्च पाणविकैश्च स्वरसंदेहविवादैश्च तैस्तैरालापैः सुकुमारैः कलाविलासैः क्रीडन्नासाचक्रे। मुहूर्तं च स्थित्वा निर्गम्योपवनालोकनकुतूहलक्षिप्तचित्तः क्रीडापर्वतशिखरमारुरोह। कादम्बरी तु तं दृष्ट्वा चिरयतीति महाश्वेतायाः किल वर्त्मावलोकयितुं विमुच्यतां गवाक्षमित्युक्त्वानङ्गक्षिप्तचित्ता सौधस्यो-

---

दर्शयति। प्रत्याशा दुराशेन्द्रजालपिच्छिकेवासम्भाव्यमपि पुरोग्रे स्थापयति प्रतिष्ठितं करोति। भूयश्चेति। पुनरप्यन्यच्चिन्तितवान्। धृतिमाह—किमनेनेति। अनेन पूर्वोदन्तेन वृथैव मुधैव मनसा खेदितेन किम्, यदि सत्यमेव धवलेक्षणा कादम्बरी मय्येव जातचित्तवृत्तिस्तदा न चिरात्स्तोककालेनाप्रार्थित एवानुकूलो दाक्षिण्यवान्मन्मथ स एवैनां चित्तवृत्तिं प्रकटीकरिष्यति। स एवेति। स एव कदर्प एव। अस्येति। अस्याश्चित्तवृत्तिर्मयि वर्तते न वेत्येवंरूपस्यास्य संशयस्य छेत्ता दूरीकर्ता भविष्यति। इत्यवधार्य निश्चयं कृत्वोत्थायोपविश्य च ताभिः पूर्वोक्ताभि कन्यकाभि सहाक्षैः पाशकैर्गेयैर्गानैश्च। विपञ्ची वाद्यं येषां तैश्च। पणवो वादित्रविशेषो विद्यते येषां ते पाणविकास्तैश्च। स्वराणां षड्जादीनां ये संदेहास्तेषां विवादैश्च। सुभाषितानि सूक्तानि तेषां गोष्ठीभिश्च। अन्यैश्च पूर्वोक्तव्यतिरिक्तैस्तैस्तैरालापैश्च सुकुमारैः कलाविलासैः क्रीडन्क्रीडां कुर्वन्नासांचक्रेऽधितस्थौ। मुहूर्तं च स्थित्वा तत्रावस्थानं विधाय तदनन्तरं निर्गम्य बहिरागत्योपवनस्यालोकनं तस्य कुतूहलं कौतुकं तेनाक्षिप्तं चित्तं यस्य स क्रीडापर्वतशिखरमारुरोहारूढवान्। कादम्बरी तु तं चन्द्रापीडं दृष्ट्वा विलोक्य चिरयति विलम्बते इति महाश्वेताया किल वर्त्म मार्गमवलोकयितुं वीक्षितुं गवाक्षं वातायनं विमुच्यतामुद्घाट्यतामित्यु-

---

ऐन्द्रजालिक की मयूर पुच्छों की पोटली की भाँति असम्भव वस्तुओं को भी प्रत्यक्ष करा देती है।" और उसने फिर यह विचार किया—"व्यर्थ में ही मन को दुःखी करने से क्या लाभ ? यदि यह उज्ज्वल आँखों वाली सचमुच ही इस प्रकार उत्पन्न मन-प्रवृत्ति वाली है तब तो वही, बिना प्रार्थना किये हुए ही (मेरे) अनुकूल (मुझपर कृपालु) कामदेव इसको स्वयं ही इसके सच्चे रूप में प्रकट कर देगा। वही इस संशय को मिटायेगा।" यह निश्चय करके और बैठकर उन कन्याओं के साथ पासों से, वाचिक संगीतों से, बाँसुरी वाद्यों से, तबला संगीत (पाणविक) से, संदेहास्पद स्वरों के विषय में किये गये वाद विवाद से, प्रसन्नतादायक विषयों (सुभाषित) पर की गयी बात चीत से तथा दूसरी विविध बात-चीत से और ललित कलाओं के आकर्षक प्रदर्शनों से खेलता रहा और कुछ देर वहाँ रुककर बाहर निकल कर (साथ के) उपवनों के दर्शन की उत्कण्ठा से युक्त मन वाला क्रीड़ा-पर्वत की चोटी पर चढ़ गया।

किन्तु कादम्बरी उसको (वहाँ) देखकर, 'महाश्वेता देर कर रही है'—इसलिये उसके मार्ग को देखने के बहाने, उस झरोखे को छोड़कर प्रणय के वशीभूत मन वाली, महल के ऊपर

परितन शिखरमारुरोह। तत्र च विरलपरिजना, सकलशशिमण्डलपाण्डुरेणातपत्रेण हेमदण्डेन निवार्यमाणातपा, चतुर्भिर्वालव्यजनैश्च फेनशुचिभिरुद्धूयमानैरुपवीज्य-माना, शिरसि कुसुमगन्धलुब्धेन भ्रमता भ्रमरकुलेन दिवापि नीलावगुण्ठनेनेव चन्द्रापीडाभिसरणवेषाभ्यस्यन्ती, मुहुश्चामरशिखा समासज्य मुहुश्छत्रदण्डमवलम्ब्य मुहुस्तमालिकास्कन्धे करौ विन्यस्य मुहुर्मदलेखा परिष्वज्य मुहुः परिजनान्तरित-सकलदेहा नेत्रत्रिभागेणावलोक्य मुहुरावलितत्रिवलीवलया परिवृत्य मुहुः प्रतीहारी-वेत्रलताशिखरे कपोल निधाय मुहुर्निश्चलकरविधृतामधरपल्लवे वीटिका निवेश्य

कस्वानङ्गक्षिप्तचित्ता सौधस्योपरितन शिखरमारुरोहारूढवती। तत्र चेति। तस्मिन्स्थले। इत कादम्बरीं विशेषयन्नाह—विरलेति। विरल स्वल्प परिजनो यस्या सा। सकलेति। सकल समग्र यच्छशिमण्डल चन्द्रबिम्ब तद्वत्पाण्डुरेण श्वेतेन हेमदण्डेन सुवर्णदण्डेनातपत्रेण छत्रेण निवार्यमाणो दूरीक्रियमाण आतपो यस्या सा। उद्धूयमानै कम्पमानै फेन कफस्तद्व-च्छुचिभिर्निर्मलैश्चतुर्भिर्वालव्यजनैश्चामरैश्चोपवीज्यमाना। शिरसीति। शिरसि मस्तके कुसुमानां पुष्पाणां गन्धस्तेन लुब्धेन गर्धेन भ्रमरकुलेन मधुकरवृन्देन भ्रमता पर्यटता। दिवापि भ्रमर-कुलस्य नीलत्वात्तत्साम्येनाह—नीलेति। नील यदवगुण्ठन शिरोवेष्टन तेनेव। अभिसारिका वेषमधिकृत्याह—चन्द्रेति। चन्द्रापीडस्याभिसरण तत्र यो वेषस्तमभ्यस्यन्त्यभ्यास कुर्वन्ती। उत्कण्ठिताचेष्टितान्याह—मुहुरिति। मुहु क्षणमात्र चामरशिखा वालव्यजनप्रान्त समास-ज्यालम्ब्य। मुहुश्छत्रदण्डमवलम्ब्यालम्बनीकृत्य। मुहुस्तमालिकास्कन्धे करौ हस्तौ विन्यस्य सस्थाप्य। मुहुर्मदलेखा परिष्वज्याश्लिष्य। मुहु परिजनेनान्तरितो व्यवहित सकलदेहो यस्या एवंविधा सती नेत्रत्रिभागेणावलोक्य निरीक्ष्य। मुहुरावलित त्रिवल्या वलय मण्डल यस्या सा परिवृत्य परावर्तन कृत्वा। मुहु प्रतिहारी द्वाररक्षानियुक्ता स्त्री तस्या वेत्रलता यष्टिविशेष-

वाले शिखर[1] पर चढ़ गयी मानो कि पार्वती कैलास पर्वत की चोटी पर चढ़ी हो। और वहाँ स्वल्प परिजन से युक्त हुई (थोड़ी सी सेविकाओं को अपने साथ रखे हुई), सम्पूर्ण चन्द्रबिम्ब से पाण्डुर (श्वेत) तथा सुवर्ण की डंडी वाले छाते द्वारा हटायी गयी धूप वाली, और फेन के समान स्वच्छ (श्वेत), (अपने ऊपर) डुलायी जा रही चार चँवरियों द्वारा पखा की जाती हुई, सिर पर मडराते पुष्प गन्ध के लोभी (उससे आकृष्ट) भौंरों द्वारा, दिन मे भी, मानो नीले अवगुण्ठन द्वारा चन्द्रापीड के प्रति अभिसरण के लिये उचित वस्त्र पहनने का अभ्यास करती हुई, क्षण भर (अभी) तो चँवर के सिरो को पकड़ कर, अभी छतरी की डुण्डी का सहारा लेकर, अभी तमालिका के कन्धे पर दोनों हाथों को रख कर, अभी सखी मदलेखा का आलिंगन करके, अभी सारे शरीर को ढके हुई, नेत्र के कोने को सिकोड़ कर (उसको) देख कर, अभी घुमाये हुए (गोल किये हुए) त्रिवली (पेट पर की चमड़ी की तीन तहों) के वलय वाली दुहरी होकर, अभी प्रतिहारी की बेंत के सिरे पर गाल को रखकर, अभी अपने निश्चल हाथ में पकड़े हुए पान के बीड़े को कोमल अधर पर रख कर, (अभी अपने जूड़े से)

१ अर्थात् ऊपर वाली मंजिल पर।

मुहुरुद्गीर्णोत्पलप्रहारपलायमानपरिजनानुसरणदत्तकतिपयपदा विहस्य त विलोकयन्ती, तेन च विलोक्यमाना, महान्तमपि कालमतिक्रान्तं नाज्ञासीत्। आरुह्य च प्रतीहार्या निवेदितमहाश्वेताप्रत्यागमना तस्मादवततार। स्नानादिषु मन्दादरापि महाश्वेतानुरोधेन दिवसव्यापारमकरोत्। चन्द्रापीडोऽपि तस्मादवतीर्य प्रथमविसर्जितेनेव कादम्बरीपरिजनेन निवर्तितस्नानविधिर्निरुपहतशिलार्चिताभिमतदैवनः क्रीडापर्वतक एव सर्वमाहारादिकमहःकर्म चक्रे। क्रमेण च कृताहारः क्रीडापर्वतकप्राग्भागभाजि, मनोहारिणि, हारीतहरिते, हरिणरोमन्थफेनशीकरासारे, सीरायुधहलभयनिश्चल-

स्तस्या शिखरे प्रान्ते कपोल गल्लात्परप्रदेश निधाय। मुहुर्निश्चलो निष्कम्पो य करो हस्तस्तेन विधृतां वीटिकामधरपल्लव ओष्ठकिसलये निवेश्य स्थापयित्वा। मुहुरुद्गीर्णं क्षिप्त यदुत्पल तस्य प्रहारस्तेन पलायमानो य परिजनस्तस्मिन्ननुसरण तत्र दत्तानि कतिपयपदानि यया सा विहस्य हास्य कृत्वा तं विलोकयन्ती तेन च चन्द्रापीडेन विलोक्यमानातिक्रान्त व्यतीत महान्तमपि कालं समय नाज्ञासीन्न ज्ञातवती। इतश्चारुह्य चारोहण कृत्वैव प्रतीहार्या द्वारपालिकया निवेदित ज्ञापित महाश्वेताप्रत्यागमन यया सैवविधा तस्मात्सौधादवततारोत्तीर्णा। स्नानादिषु मन्दादरापि शिथिलोद्यमापि महाश्वेतानुरोधेन दिवसव्यापार दिनकृत्यमकरोद् व्यदधात्। चन्द्रापीडोऽपि तस्मात्क्रीडापर्वतशिखरादवतीर्योत्तीर्य प्रथमविसर्जितेनेवाग्रप्रहितेनेव कादम्बरीजनेन निवर्तितो विहित स्नानविधिर्यस्य स। निरुपहताखण्डा सा शिला तस्या अर्चिता पूजिता भिमतदेवता येन स क्रीडापर्वतक एव सर्वमाहारादिकमह कर्म चक्रे। क्रमेणेति। क्रमेणानुक्रमेण कृत आहारो भोजनं येन स मरकतशिलातल उपविष्ट आसीनोऽतिबहल धाम तेजो यस्मिन्नेवविधेन धवलेन शुभ्रेणालोकेन जलेनेव निर्वाप्यमाण दिवस दृष्टवानित्यन्वय। मरकतशिलातल विशेषयन्नाह—क्रीडेति। क्रीडापर्वतकस्य प्राग्भागभाजि पूर्वप्रदेशवर्तिनि मनोहारिणि चित्तक्षोभजनके। मरकताना नीलत्वादाह—हारीतेति। हारीत पक्षिविशेषो मुद्गाङ्कुरस्त द्वद्धरिते नीले। हरिणेति। हरिणाना मृगाणा यो रोमन्थश्चर्वितस्य चर्वण तस्य फेन कफस्तस्य शीकराणा वातास्तविप्रुषामासारो वेगवान्वर्षो यस्मिन्। सीरेति। सीरायुधो रामो हल सीर

गिरे हुए कमल की चोट खाकर दौड़ते हुए सेवकों का अनुगमन करने के लिये कुछ कदम चली हुई, हँस कर उस (चन्द्रापीड) को देखती हुई तथा उससे देखी गयी उसने बीते हुए बहुत लम्बे समय को भी नहीं जाना और चढ़कर प्रतिहारी द्वारा महाश्वेता का लौटना बतायी गयी उस महल पर से उतरी। स्नान आदि क्रियाओं मे मन्द रुचि होते हुए भी महाश्वेता के अनुरोध से दैनिक कृत्यों को किया। चन्द्रापीड ने भी वहाँ से उतर कर आरम्भ में ही भेजे हुए कादम्बरी के सेवको (की सहायता) से स्नानक्रिया करके एक साबुत (निरुपहत) शिला पर अपने इष्ट देवता की पूजा करके क्रीडापर्वत के ऊपर भोजनादि का सारा दैनिक कृत्य पूरा किया।

और क्रमश. भोजन किये हुए, क्रीडापर्वत के पूर्व भाग में स्थित, आकर्षक, हारीत के समान हरे, हरिणों की जुगाली के फेन बिंदुओं की वर्षा से युक्त (फुहारों से सींचे गये), बलराम के हल के भय से स्थिर यमुना-जल की प्रभा वाले, युवतियों के पाँवों के अलक्तकरस से

कालिन्दीजलत्विषि, तरुणीचरणालक्तकरसशोणशोचिषि, कुसुमरजःसिकतिलतले, लतामण्डपोपगूढे, शिखण्डिताण्डवसंगीतगृहे, मरकतशिलातल उपविष्टो दृष्टवान्सहसैवातिबहलधाम्ना धवलेनालोकेन जलेनेव निर्वाप्यमाणं दिवसम्, मृणालवलयेनेव पीयमानमातपम्, क्षीरोदेनेव प्लाव्यमानां महीम्, चन्दनरसवर्षेणेव सिच्यमानान् दिगन्तान्, सुधयेव विलिप्यमानमम्बरतलम्। आसीच्चास्य मनसि—'किमु खलु भगवानोषधिपतिरकाण्ड एव शीतांशुरुदितो भवेत्, उत यन्त्रविक्षेपविशीर्यमाणपाण्डुरधारासहस्राणि धारागृहाणि मुक्तानि, आहोस्विदनिलविकीर्यमाणसीकरधवलितभुवनाम्बरसिन्धुः कुतूहलाद्धरातलमवतीर्णा' इति। आलोकानुसारप्रहितचक्षुरद्राक्षीद-

तस्माद्यद्वय तेन निश्चला कालिन्दी यमुना तस्या जलं पानीयं तद्वत्त्विट् कान्तिर्यस्मिन्। तरुणीति। तरुणीनां मानिनीनां यश्चरणालक्तकं पादरञ्जनार्थं यावकरसस्तेन शोणा रक्ता शोचिः कान्तिर्यस्मिन्। कुसुमानां पुष्पाणां रजो धूलिस्तेन सिकतिलं सिकतायुक्तं तलं यस्मिन्। लतामण्डपैरुपगूढे व्याप्ते। शिखण्डीति। शिखण्डिनां मयूराणां यत्ताण्डवं नृत्यं तस्य संगीतगृहं तस्मिन्। अथ चातपं सूर्यलोकं दृष्टवान्। कीदृशम्। मृणालवलयेनेव पीयमानमास्वाद्यमानम्। नायं सूर्यस्यातपः किंतु मृणालवलयस्येत्यर्थः। पुनर्महीं वसुधां दृष्टवान्। कीदृशीम्। क्षीरोदेनेव क्षीरसमुद्रेणेव प्लाव्यमानां बाध्यमानाम्। पुनर्दिगन्तरान्दृष्टवान्। कीदृशम्। चन्दनरसवर्षेणेव सिच्यमानानभिषेकविषयीक्रियमाणान्। तदनन्तरमम्बरतलं व्योमतलं दृष्टवान्। कीदृशम्। सुधया गृहधवलीकरणद्रव्येण विलिप्यमानं विलेपनविषयीक्रियमाणम्। आसीच्चेति। अस्य चन्द्रापीडस्य मनस्येवमासीत्। खलु निश्चयेन। किमु भगवानोषधिपतिः शीतांशुश्चन्द्रोऽकाण्ड एवाप्रस्ताव एवोदितो भवेदुद्गतः स्यात्। उत यन्त्रस्य विक्षेपः प्रतापस्तेन विशीर्यमाणानि विशरारुतां प्राप्यमाणानि पाण्डुरधाराणां सहस्राणि येष्वेवंविधानि धारागृहाणि मुक्तानि। आहोस्विदिति वितर्के। अनिलेन वायुना विकीर्यमाणा विक्षिप्यमाणा ये सीकरा वातास्तवारीणि तैर्धवलितं शुभ्रीकृतं भुवनं यया सैवंविधाम्बरसिन्धुर्गङ्गा कुतूहलाद्धरातलं पृथ्वीतलमवतीर्णागता।

आलोकस्यानुसारेण प्रहितं प्रेषितं चक्षुर्येनैवंभूतश्चन्द्रापीडः कादम्बरीम्, अथ चागच्छन्ती

लाल हुई आभा वाले, पुष्प पराग द्वारा रेतीले बने तल वाले लताकुञ्ज द्वारा घिरे हुए, तथा मयूरों के नृत्य के लिये संगीतगृह बने हुए शिलातल पर बैठे हुए चन्द्रापीड ने अचानक अत्यन्त अधिक चमक वाले श्वेत प्रकाश द्वारा, मानो कि जल (की बाढ) द्वारा ही बुझाये जाते हुए दिन को देखा, मानो बिसतन्तुओं के (वृत्ताकार) वलय से पी जाती हुई धूप को देखा, मानो कि क्षीरसमुद्र से आप्लावित पृथ्वी को देखा, मानो कि चन्दन रस वर्षा से सींचे जाते हुए आकाश को देखा। और उसके मन मे हुआ (उसने मन मे सोचा)—"क्या निश्चय ही ओषधिपति भगवान् चन्द्रमा अचानक ही उदित हो गये हैं अथवा यन्त्र द्वारा किये गये फैलाव (विक्षेप) से बिखेरी गई सहस्रों श्वेत जलधाराओं वाले फुव्वारे खुल गये हैं, अथवा वायु द्वारा (चारों ओर) बिखेरी जाती और फुहारों से संसार को श्वेत बनाती आकाशगंगा उत्सुकतावश पृथ्वी पर उतर आई है?

प्रकाश की दिशा मे दृष्टि प्रेषित किये हुए चन्द्रापीड ने बहुत सी कन्याओं की टोली से

नल्पकन्यकाकदम्बपरिवृता ध्रियमाणधवलातपत्रामुद्धूयमानचामरद्वया कादम्बरीं प्रतीहार्या वामपाणिना वेत्रलतागर्भेणार्द्रवस्त्रशकलावच्छन्नमुखं चन्दनानुलेपनसनाथं नालिकेरसमुद्गकमुद्वहन्त्या दक्षिणकरेण दत्तहस्तावलम्बा केयूरकेण च निःश्वासहार्ये निर्मोकशुचिनी धौते कल्पलतादुकूले दधता निवेद्यमानमार्गाम्, मालतीकुसुमदामाधिष्ठितकरतलया च तमालिकयानुगम्यमानामागच्छन्तीं मदलेखाम्, तस्याश्च समीपे तरलिकाम्, तया च सितांशुकोपच्छदे पटलके गृहीत धवलताकारणमिव क्षीरोदस्य

मदलेखाम्, अथ च तस्याः समीपे तरलिकाम्, तया च सितांशुक श्वेतवस्त्रमुपच्छद यस्मिन्नेतादृशे पटलके पात्रविशेषे गृहीत हार चाद्राक्षीत्। अथ कादम्बरीं विशिनष्टि—अनल्पेति। अनल्पा बह्व्यो याः कन्यकाः कुमार्यस्तासां कदम्ब समूहस्तेन परिवृता सहिताम्। ध्रियमाणेति। ध्रियमाण धवल शुभ्रमातपत्र छत्र यस्याः सा ताम्। उद्धूयमान वीज्यमान चामरद्वय यस्याः सा ताम्। प्रतीहार्या द्वारागतजननिवेदनकारिण्या। वामेति। वेत्रलता गर्भे मध्ये यस्यैवविधेन वामपाणिनापसव्यहस्तेन कृत्वार्द्रं यद्वस्त्र तस्य शकल खण्डस्तेनावच्छन्नमाच्छादित मुखं यस्यैवभूत चन्दनस्यानुलेपनेन सनाथ सहित नालिकेरसमुद्गक श्रीफलमध्यवर्तिगोलकमुद्वहन्त्या दक्षिणेन करेणापसव्यपाणिना दत्तो हस्तावलम्बो यस्याः सा ताम्। केयूरकेणेति। निःश्वासेन श्वासवातेन हार्ये हर्तुं योग्ये निर्मोकः कञ्चुकस्तद्वच्छुचिनी निर्मले धौते क्षालिते कल्पलतादुकूले दधता धारयतैवविधेन केयूरकेण च निवेद्यमानो मार्गो यस्याः सा ताम्। अथ मदलेखां विशेषयन्नाह—मालतीति। मालती जाती तस्याः कुसुमानि पुष्पाणि तेषां दाम स्रक्तेन अधिष्ठितम् अधिश्रितम् करतल यस्याः एतादृश्या तमालिकया भुजिष्यया‌नुगम्यमानाम्। अथ हारस्य श्वेतत्वप्रकर्षमाश्रित्योत्प्रेक्षते—धवलतेति। क्षीरोदस्य क्षीरसमुद्रस्य या धवलता शुभ्रता तस्याः कारणमिव निमित्तमिव। एतेन क्षीरोदस्य स्वाभाविकी धवलता न, किं तु तद्धवलताया हेतुरेवायम्। क्षीरोदस्य हारगर्भत्वस्य

घिरी हुई, (अपनी ओर) आती हुई मदलेखा को देखा, उस मदलेखा के ऊपर श्वेत छत्र थाम्भा हुआ था, (उस पर) दो चँवर डुलाये जा रहे थे, जिसे कादम्बरी की प्रतिहारी अपने बेंत पकड़े हुए बाँये हाथ से गीले वस्त्रखड से ढँकी उपरि भाग (मुख) वाली, चन्दन के उबटन से युक्त नारियल की पेटी को उठाये हुई थी और अपने दाँये हाथ से उसको सहारा दिये हुई थी, और फूँक द्वारा भी उड़ जाने योग्य अर्थात् बहुत ही हलके, साँप की केंचुली जैसे स्वच्छ (श्वेत), धोए हुए कल्पवृक्ष से उत्पादित दो रेशमी वस्त्र (हाथ में) लिये हुआ केयूरक मार्ग बता रहा था, और मालती पुष्पों की माला से युक्त हथेली वाली तमालिका जिसके पीछे पीछे चल रही थी। और उस (मदलेखा) के समीप उसने तरलिका को देखा और उस तरलिका के हाथ में एक श्वेत रेशमी वस्त्र के आस्तरण पर पेटी में रखे हुए एव चमक की वर्षा करने वाले अत्यन्त सुन्दर हार को देखा, जो हार मानो दुग्धसागर की श्वेतता का कारण था, चन्द्रमा का मानो सगा भाई था, मानो विष्णु की नाभि में स्थित कमल की बिसतन्तुमयी

सहभुवमिव चन्द्रमसो मृणालदण्डमिव नारायणनाभिपुण्डरीकस्य मन्दरक्षोभविक्षिप्तमिवामृतफेनपिण्डनिकरं वासुकिनिर्मोकमिव मन्थनश्रमोज्झितं हासमिव कुलगृहवियोगगलित मन्दरमथनविखण्डिताशेषशशिकलाखण्डसचयमिव सहृत प्रतिमागततारागणमिव जलनिधिजलादुद्धृत दिग्गजकरसीकरासारमिव पुञ्जीभूत नक्षत्रमालाभरणमिव मदनद्विपस्य शरच्छकलैरिव कल्पित कादम्बरीरूपवशीकृतमुनिजनहृदयैरिव निर्मित गुरुमिव सर्वरत्नाना यशोराशिमिवैकत्र घटित सर्वसागराणा प्रतिपक्षमिव चन्द्रमसो जीवितमिव ज्योत्स्निकाया लक्ष्मीहृदयमिव नलिनीदलगलज्जलबिन्दुविलास-

---

वक्ष्यमाणत्वादन्तर्गतस्य हारस्येत्यर्थं । चन्द्रमस शशिन सहभुवमिव सहसमुत्पन्नमिव । नारायणेति । नारायणो विष्णुस्तस्य नाभिपुण्डरीकस्य तुन्दकूपिकाशीताम्भोजस्य मृणालदण्डमिव मन्दरो मेरुस्तस्य क्षोभेण विक्षिप्तं दूरीकृतममृतस्य पीयूषस्य फेनपिण्डो डिण्डीरपिण्डस्तस्य निकरमिव । मन्थनेति । मन्थनस्य श्रम खेदस्तेनोज्झितं त्यक्त वासुकिर्नागराजस्तस्य निर्मोकमिव कञ्चुकमिव । कुलेति । कुलगृहं पितृगृह तस्य यो वियोगो भर्तृगृह आगमन तस्मिन्नवसरे गलित स्रस्त हासमिव । दृश्यते हि पितृगृहाद्भर्तृगृहे व्रजन्त्या पितृवात्सल्यवशाद्धासो गलितो भवति परमुद्वेग एव भवतीति । मन्दरमथनेन विखण्डिता या अशेषा समग्रा शशिकलास्तासां सहृत खण्डसचयमिव ।·जलनिधिजलादुद्धृत प्रतिमागत प्रतिरूपागत तारागणमिव नक्षत्रसमूहमिव पुञ्जीभूतम् । दिगिति । दिग्गजा दिग्दन्तिनस्तेषा करा शुण्डादण्डास्तेषा सीकराणां सारमिव रहस्यमिव । मदनेति । मदनद्विपस्य कदर्पहस्तिनो नक्षत्रमालासज्ञितमाभरणमिव विभूषणमिव । शरदिति । शरद्घनात्ययस्तस्य शकलैरिव खण्डैरिव कल्पित निर्मित हृदयनिर्मलत्वात् । तदभिप्रायेणाह—कादमिति । कादम्बरी राजसुता तस्या रूप सौन्दर्य तेन वशीकृतानि यानि मुनिजनहृदयानि तैर्निर्मितमिव । सर्वरत्नानां समग्रमणीना गुरुमिव श्रेष्ठमिव । सर्वसागराणां समग्रसमुद्राणामेकत्र घटित यशोराशिमिव । चन्द्रमस शशिन प्रतिपक्षमिव । ज्योत्स्निकायाश्चन्द्रिकाया जीवितमिव । नलिनीति । नलिनी पद्मिनी तस्या दलानि पत्राणि तेभ्यो गलन्त क्षरन्तो ये जलबिन्दवस्तेषां विलासस्तद्वत्तरलं चञ्चलम् । उत्कण्ठित लक्ष्मीहृदय-

---

डडी था, मानो मन्दर के आवर्तनों से फेंका हुआ अमृत फेन की पिण्डियों का समूह था, विलोडन क्रिया से हुई थकावट के कारण छोड़ी हुई मानो वासुकि की केंचुली था, अपने पितृगृह को छोड़ते समय (अपने चेहरे से) गिरायी हुई मानो लक्ष्मी की हँसी था, मन्दर द्वारा विलोडन से टूटी हुई सारी शशिकलाओं के टुकड़ों का मानो ढेर था, जो मानो समुद्र के जल से निकाला हुआ प्रतिबिम्बभूत नक्षत्रमण्डल था, जो मानो एक स्थान पर ढेर हुई दिग्गजों की सूड़ों से छूटी फुहारों की वर्षा था, जो मानो कामदेवरूपी हस्ती का नक्षत्रमाला नामक (आभूषण) था, जो मानो शारदी मेघ के टुकड़ों से बनाया गया था, जो मानो कादम्बरी के सौन्दर्य द्वारा वशीकृत मुनियों के हृदयों से बना हुआ था, जो मानो रत्नों का मुखिया था, जो मानो सारे समुद्रों की कीर्ति का एक स्थान पर लगाया हुआ ढेर था, जो मानो चन्द्रमा का प्रतियोगी था, जो मानो ज्योत्स्ना का जीवन था, कमलिनी की पखुड़ियों से गिरते हुए जलबिन्दुओं के समान

तरलमुत्कण्ठितमिव मृणालवलयधवलकरं शरच्छशिनमिव घनमुक्तांशुनिवहधवलितदिङ्मुखं मन्दाकिनीमिव सुरयुवतिकुचपरिमलवाहिनं प्रभावर्षिणमतितारं हारम्। दृष्ट्वा चायमस्य चन्द्रापीडश्चन्द्रातपद्युतिमुखो धवलिम्नः कारणमिति मनसा निश्चित्य दूरादेव प्रत्युत्थानादिना समुचितोपचारक्रमेण मदलेखामापतन्तीं जग्राह। सा तु तस्मिन्नेव मरकतग्रावणि मुहूर्तमुपविश्य स्वयमुत्थाय तेन चन्दनाङ्गरागेणानुलिप्य ते च द्वे दुकूले परिधाप्य तैश्च मालतीकुसुमदामभिरारचितशेखरं कृत्वा तं हारमादाय चन्द्रापीडमुवाच—'कुमार, तवेयमपहस्तिताहंकारकान्ता पेशलता प्रीतिपरवशं जन

मिव। मृणालेति। मृणालानि बिसानि तेषां वलयं तद्वद्धवला करा यस्य स तम्। घनमुक्तो योंऽशुनिवहः किरणसमूहस्तेन धवलितं दिङ्मुखं येनैवंभूतं शरच्छशिनमिव सुरयुवतिकुचानां यः परिमल आमोदस्तद्वाहिनं मन्दाकिनीमिवैतादृशं प्रभावर्षिणमतितारमतिमनोहरं हारम्। दृष्ट्वा चेति। दृष्ट्वा विलोक्य चन्द्रापीडः। चन्द्रेति। चन्द्रातपद्युतिवद्द्युतिर्यस्यैवंविधं मुखं यस्य सः। धवलिम्नो विशेषणं वा। पूर्वोपवर्णितमयं हार इवास्य धवलिम्नः कारणमिति मनसा निश्चित्य दूरादेव प्रत्युत्थानादिना समुचितेन योग्येनोपचारक्रमेणापतन्तीमागच्छन्तीं मदलेखां जग्राह प्रत्युद्गमेन तामासादितवान्। सा त्विति। सा तु मदलेखा तस्मिन्नेव मरकतग्रावण्यश्मगर्भशिलायां मुहूर्तं क्षणमात्रमुपविश्यावस्थानं कृत्वा स्वयमात्मनोत्थाय तेन चन्दनाङ्गरागेण मलयजविलेपनेनानुलिप्य ते च पूर्वोक्ते द्वे दुकूले परिधाप्य तैश्च मालतीकुसुमदामभिर्जातीपुष्पस्रग्भिरारचितशेखरं विरचितावतंसं कृत्वा तं हारमादाय गृहीत्वा चन्द्रापीडमुवाचोक्तवती। किमुवाचेत्याह—कुमारेति। हे कुमार हे चन्द्रापीड, तवेयमपहस्तितो दूरीकृतोऽहंकारो ययैवंविधा कान्ता मनोहरा पेशलता सुन्दरता कमिव प्रीतिपरवशं जनं न कारयति। ते तव

लक्ष्मीहृदय सरीखा था, कमलिनी दल से गिरती जलबिन्दुओं की चमक के समान चमकती मध्य मणि (तरल) वाला था, मृणालों के वलय के समान श्वेत किरणों वाला था—अतएव ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो (पहने हुए) मृणालवलय के कारण श्वेत हाथों वाला कोई वियोगी (उत्कण्ठित) व्यक्ति हो, बादलों से मुक्त हुए किरणसमूह से दिशाओं को श्वेत किये हुए शारदी चन्द्रमा की भाँति वह हार मोतियों की किरणों के घने समूह से सब दिशाओं को श्वेत कर रहा था, और (उसमें स्नान करने वाली) देवाङ्गनाओं के स्तनों की सुगन्ध को धारण करने वाली सुरगंगा के प्रवाह की भाँति (हार को पहनने के कारण) सुरयुवतियों के कुचों की सुगन्ध सरीखी सुगन्ध से युक्त था। और इसको देखकर अपने मन से यह निश्चित करके कि इस चन्द्रज्योत्स्ना की कांति को चुराने वाली श्वेतता का कारण यही हार है, दूर से ही प्रत्युत्थान आदि व्यावहारिकता की सामान्य व्यवस्था का पालन करती आती हुई मदलेखा का उसने आगे बढ़कर स्वागत किया।

किन्तु वह कुछ देर उसी मरकतशिला पर बैठकर, (फिर) उठकर स्वयं ही उस चन्दन के उबटन से उसको अनुलिप्त कर, और उन दोनों रेशमी वस्त्रों को पहना कर और उन मालती-पुष्पों की मालाओं से बने हुए शिरोभूषण से चन्द्रापीड को भूषित करके और उस हार को लेकर चन्द्रापीड से बोली—"राजकुमार ! तुम्हारी यह अहंकार को छोड़े हुई (अहंकार

कमिव न कारयति। प्रश्रय एव ते ददात्यवकाशमेवंविधानाम्। अनया चाकृत्या कस्यासि न जीवितस्वामी। अनेन चाकारणाविष्कृतवात्सल्येन चरितेन कस्य न बन्धुत्वमध्यारोपयसि। एषा च ते प्रकृतिमधुरा व्यवहृतिः कस्य न वयस्यतामुत्पादयति। कस्य वा न समाश्वासयन्त्यमी स्वभावसुकुमारवृत्तयो भवद्गुणाः। त्वन्मूर्तिरेवात्रोपालम्भमर्हति, या प्रथमदर्शन एव विश्रम्भमुपजनयति। इतरथा हि त्वद्विधे सकलभुवनप्रथितमहिम्नि प्रयुज्यमानं सर्वमेवानुचितमिवाभाति। तथा हि—सभाषणमप्यधःकरणमिवापतति। आदरोऽपि प्रभुताभिमानमिवानुमापयति। स्तुतिरप्यात्मोत्सेकमिव सूच-

---

प्रश्रय एव विनय एवावकाशमवगाह ददात्येवंविधानां पुरुषाणाम्। अनया चाकृत्याकारविशेषेण त्वं कस्य जीवितस्वामी नासि। अपि तु सर्वेषामित्यर्थः। अनेन चाकारणेनानिमित्तेनाविष्कृतं प्रकटीकृतं यद्वात्सल्यं हितं यस्मिन्नेवंविधेन चरितेन समाचरणेन कस्य बन्धुत्वं नाध्यारोपयसि। एषा च ते तव प्रकृत्या स्वभावेन मधुरा मिष्टा व्यवहृतिर्व्यापारः कस्य न वयस्यतां मित्रतामुत्पादयति। स्वभावेन सुकुमारा वृत्तिर्येषामेवंविधा अमी भवद्गुणा कस्य न समाश्वासयन्ती समाश्वासनां कुर्वन्ति। त्वदिति। अत्रार्थे त्वन्मूर्तिरेवोपलम्भमनुभवमर्हति। साक्षात्कारयोग्या भवति। या प्रथमदर्शन एव प्रथमावलोकन एव विश्रम्भं विश्वासमुपजनयति। अतस्त्वद्विधे त्वत्सदृशे पुरुषे सकलभुवने प्रथितः प्रख्यातो महिमा माहात्म्यं यस्मिन्नेवं प्रयुज्यमानं कथ्यमानं सर्वमनुचितमिवायोग्यमिवाभाति। तदेव दर्शयति—तथा हीति। सभाषणमपि जल्पनमप्यधःकरणमिवापतति। अनुचितेन सर्वोचितस्य सभाषणमनुचितमेव करोतीति न्यायादिति भावः। आदर इति। आदरोऽपि बहुमानोऽपि प्रभुताया ऐश्वर्यस्याभिमानमिवानुमापयति ज्ञापयति। स्तुतिरपि नुतिरप्यात्मन उत्सेकं उत्कर्षंस्तमिव सूचयति। उपचारोऽप्यभ्युत्थानादिरूपोऽपि चपलतामिव प्रकाशयति प्रकटीकरोति। प्रीतिरपि स्नेहोऽप्यनात्मज्ञतां स्वस्वरूपानभिज्ञतां

से सर्वथा रहित) सज्जनता किसको भला प्रेमाधीन नहीं करती ? तुम्हारी नम्रता ही इस प्रकार के व्यक्तियों को अवसर प्रदान करती है। और इस (रमणीय) आकृति के द्वारा तुम भला किसके जीवन-स्वामी नहीं बन सकते ? और निष्कारण ही वात्सल्य (मैत्री) प्रकट किये हुए अपने चरित्र से तुम किस पर मित्रता को आरोपित नहीं करोगे ? और तेरा यह स्वभाव से मीठा आचरण किसको अपना मित्र नहीं बना लेगा ? और स्वभावत आनन्दप्रद प्रभाव डालने वाले (सुकोमल) ये तुम्हारे गुण किसको आश्वास नहीं देंगे ? इस प्रीत्युत्पादन में तुम्हारी यह आकृति ही उपालम्भ (उलहना अथवा दोष) की पात्र है जो प्रथम दर्शन में ही (देखने वालों में) विश्वास उत्पन्न कर देती है। नहीं तो, सारे संसार मे प्रसिद्ध महत्त्व वाले तुम जैसे के विषय में किया गया यह सब अनुचित ही प्रतीत होता है। जैसे—कि तुमसे सम्भाषण तक भी मानो तुम्हारे महत्त्व को कम करना सरीखा हो जाता है, (तुम्हारे प्रति दिखाया गया) आदर भी मानो बड़प्पन के कारण उत्पन्न घमण्ड का अनुमान कराता है, (तुम्हारी) प्रशंसा भी मानो (करने वाले के) अपने दर्प को सूचित करती है; (तुम्हारे प्रति दिखाया गया)

यति। उपचारोऽपि चपलतामिव प्रकाशयति। प्रीतिरप्यनात्मज्ञतामिव ज्ञापयति। विज्ञापनापि प्रागल्भ्यमिव जायते। सेवापि चापलमिव दृश्यते। दानमपि परिभव इव भवति। अपि च स्वयं गृहीतहृदयाय किं दीयते जीवितेश्वराय। किं प्रतिपाद्यते। प्रथमकृतागमनमहोपकारस्य का ते प्रत्युपक्रिया। दर्शनदत्तजीवितफलस्य सफलमागमनं केन ते क्रियते। प्रणयिता चानेन व्यपदेशेन दर्शयति कादम्बरी, न विभवम्। अप्रतिपाद्या हि परस्वता सज्जनविभवानाम्। आस्तां तावद्विभवः, भवादृशस्य दास्यमप्यङ्गीकुर्वाणा नाकार्यकारिणीति नियुज्यते। दत्त्वात्मानमपि वञ्चिता न भवति।

ज्ञापयति। विज्ञापनापि विज्ञप्तिरपि प्रागल्भ्यमिव पाण्डित्यमिव जायते। सेवापि सपर्यापि चापलमिव दृश्यते। दानमपि परिभव इव पराभव इव भवति। प्रथितमहिमत्वादिति भाव। अपि चेति युक्त्यन्तरे। स्वय गृहीत हृदयं येनैवविधाय किं दीयते। अथ च जीवितेश्वराय किं प्रतिपाद्यते किं कथ्यते। अय भाव—हृदयाधीन जीवित हृदय चेद् गृहीत तदा जीवितेश्वर एव जात। एव सति तस्मै जीविताभिधान किं वस्तु नेयम्, सर्वेषां वस्तूनां जीवितार्थत्वात्। एतदपर किं प्रतिपाद्यम्, प्रतिपाद्याना जीविताविधित्वात्। प्रथम कृत यदागमन तदेव महानुपकारो यस्यैवविधस्य ते भवत का प्रत्युपक्रिया। न कापीत्यर्थ। दर्शनेन दत्त जीवितफल येनैवविधस्य ते तव सफलमागमन केन क्रियते। अय भाव—सर्वापेक्षयोत्कृष्ट जीवित फल त्वयैव दत्तम्। इत. पर त्वत्सदृशमस्माकं किमपि नास्ति, येन त्वदागमनसाफल्य क्रियते। कादम्बर्यनेन व्यपदेशेन हारानयनमिषेण प्रणयितां स्नेहवत्ता त्वयि दर्शयति। न विभवमैश्वर्यम्। तवैतादृश वस्तु नास्ति यादृश मम वर्तत इत्येवम्। नन्वत्युत्तममुक्ताकलापस्य स्वविभवत्वप्रदर्शने कोऽयमस्वरस इत्यत आह—अप्रतीति। हीति निश्चितम्। सज्जनविभवाना परस्वता स्वीयपरकीयभावोऽप्रतिपाद्या वर्तते। सता प्रवृत्ते परोपकारनिमित्तकत्वेन तद्विभवस्यापि तथात्वादिति भाव। अथ यद्यपरितोषस्तदा विभवो हारादिरूप स्वोत्कर्षहेतुस्तावदास्ता तिष्ठतु। किं तु भवादृशस्य दास्यमङ्गीकुर्वाणा नाकार्यकारिणीति नियुज्यते नाकृत्यविधायिनीति व्यपदिश्यते। दत्त्वेति। आत्मानमपि दत्त्वा त्वदधीन कृत्वा वञ्चिता न भवति विप्र

शिष्टाचार भी मानो अविवेकशीलता को प्रकट करता है, (तुमसे) प्रेम करने का अर्थ मानो अपनी उचित स्थिति को न जानना (अर्थात् मूढ़ता) लिया जाता है, (तुमसे की गयी) प्रार्थना भी मानो धृष्टता समझी जाती है, (तुम्हारी की गयी) सेवा भी अनधिकार चेष्टा सरीखी दिखायी देती है, (तुम्हें भेंट किया गया) उपहार तक भी अनादर सरीखा हो जाता है। इसके अतिरिक्त, जिसने स्वय ही हृदय को ले लिया हो उसको फिर और क्या दिया जा सकता है? जो जीवन का स्वामी हो उसको फिर क्या दिया जा सकता है? जिसने (मिलने के लिये) यहा आने का उपकार पहले ही कर दिया हो, ऐसे तुम्हारा क्या प्रत्युपकार किया जा सकता है? अपने दर्शनों से हमें जीवन का फल देने वाले तुम्हारा आगमन क्या देकर सफल बना सकते हैं? और इस बहाने से कादम्बरी केवल अपने प्रणय को दिखाती है, ऐश्वर्य को नहीं। निश्चय ही सज्जनों के ऐश्वर्यों पर दूसरों का अधिकार प्रतिपादित नहीं किया जाता। इसको सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। धन की बात जाने दीजिये, आप सरीखे व्यक्ति

जीवितमप्यर्पयित्वा न पश्चात्तप्यते। प्रणयिजनप्रत्याख्यानपराङ्मुखी च दाक्षिण्यपरवती महत्ता सताम्। न च तादृशी भवति याचमानाना यादृशी ददता लज्जा। यत्तु सत्यममुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादम्बरी। तदयममृतमथनसमुद्भूताना सर्वरत्नानामेकशेष इति शेषनामा हारोऽमुनैव हेतुना बहुमतो भगवताम्भसांपत्या गृहमुपागताय प्रचेतसे दत्तः। पाशभृतापि गन्धर्वराजाय। गन्धर्वराजेनापि कादम्बर्यै। तयापि त्वद्वपुरस्यानुरूपमाभरणस्येति विभावयन्त्या नभःस्थलमेवोचित

तारिता न स्यात्। जीवितमप्यर्पयित्वा न पश्चात्तप्यते न पश्चात्तापं करोति। य सतां सत्पुरुषाणां महत्ता गुरुताप्रणयो विद्यते यस्मिन्नेवभूतो यो जनस्तस्य प्रत्याख्यान निराकरणं तत्र पराङ्मुखी प्रणयिजनाभीष्टप्रदाननिराकरणशीला न भवतीत्यर्थ। तत्र हेतुमाह—दाक्षिण्येति। दाक्षिण्यमनुकूलता तस्या परवती। तदधीनेत्यर्थ। दाक्षिण्यं लज्जाधीन स्यादित्यत आह—नचेति। ददतां वितरण कुर्वतां यादृशी लज्जा त्रपा स्यात्तादृशी याचमानाना नीचाना च न स्यात्। यत्त्विति। तु पुनरर्थे। यत्पूर्वोक्त तत्सत्यम्। ततः किमित्यत आह—अमुनेति। अमुना व्यतिकरेण त्वदागमनसबन्धेन त्वयि कृतापराध विहितागसमिवात्मान कादम्बर्यवगच्छति जानाति। तदयममृतमथनात्समुद्भूतानां प्रकटितानां सर्वरत्नानामेकशेषोऽवशिष्टोऽत शेषनामाय हारोऽमुनैव हेतुनैकशेषत्वेनाम्भसांपत्या भगवता समुद्रेण बहुमतो गृहमुपागताय प्राप्ताय प्रचेतसे वरुणाय दत्तोऽर्पित। पाशभृतापि वरुणेनापि गन्धर्वराजाय दत्त। गन्धर्वराजेनापि कादम्बर्यै दत्त। तयाप्यस्याभरणस्य त्वद्वपुस्त्वदीय शरीरमनुरूप योग्यमिति विभावयन्त्या मनसि विभावना कुर्वन्त्या। एतस्मिन्नर्थे दृष्टान्त प्रदर्शयन्नाह—नभ इति। सुधास्रुत इचन्द्रस्य धाम्नस्तेजसो नभस्थलमेवोचितं योग्य न धरा पृथ्वीत्यवधार्य निश्चित्यानुप्रेषितोऽ-

---

की दासता को स्वीकार कर लेने वाली कन्या को "अनुचित काम करने वाली हो गयी" यह नहीं कहा जाता है। अपने आपको तुम्हें समर्पित करके भी वह ठगी नहीं जाती है। अपना जीवन तक भी समर्पित करके वह पश्चात्ताप नहीं करती। और सज्जनों का बड़प्पन ऐसा होता है कि अपने प्रेमियों का वह प्रतिषेध करने से विमुख होता है (प्रेमियों द्वारा की गयी किसी प्रार्थना को सज्जन अपने महत्त्व के कारण कभी अस्वीकार नहीं करते हैं) एव उनका महत्त्व नम्रता (अथवा शालीनता) के वशीभूत (नम्रता से भरपूर) होता है। और फिर मागने वालों को वैसी लज्जा नहीं आती जैसी कि देने वालों को आती है (क्योंकि देने वाला सोचता है कि उचित दिया गया है या नहीं)। सच बात तो यह है कि कादम्बरी इस (उपहार-प्रेषण के) मामले द्वारा अपने को मानो तुम्हारे प्रति अपराध की हुई सी समझती है। तो यह अमृत-विलोडन से उत्पन्न हुए सब रत्नों में एकमात्र बच गया था—इस कारण 'शेष' नाम का हार भगवान् महासमुद्र द्वारा इसी कारण अत्यधिक आदृत था, और (एक बार) घर पर पधारे वरुणदेवता को महासमुद्र ने दे दिया था। पाशधारी वरुण ने गन्धर्वराज को दिया, गन्धर्वराज ने कादम्बरी को और उसने भी यह समझते हुए कि तुम्हारा शरीर इस आभूषण के अनुकूल है, क्योंकि चन्द्रमा का उचित घर आकाश ही है, पृथ्वी नहीं—यह सोचकर भेजा

सुधास्रुतो धाम्नो न धरेत्यवधार्यानुप्रेषितः। यद्यपि गुणगणाभरणभूषिताङ्गयष्टयो भवादृशाः क्लेशहेतुमितरजनबहुमतमाभरणभारमङ्गेषु नारोपयन्ति, तथापि कादम्बरीप्रीतिरत्र कारणम्। किं न कृतमुरसि शिलाशकल कौस्तुभाभिधान लक्ष्म्याः सहजमिति बहुमानमाविष्कुर्वता भगवता शार्ङ्गपाणिना। न च नारायणोऽत्रभवन्तमतिरिच्यते। नापि कौस्तुभमणिरणुनापि गुणलवेन शेषमतिशेते। न चापि कादम्बरीमाकारानुकृतिकलयाप्यल्पीयस्या लक्ष्मीरनुगन्तुमलम्। अतोऽर्हतीयमिम बहुमान त्वत्तः। न चाभूमिरेषा प्रीतिप्रसरस्य। नियत च भवता लग्नप्रणया महाश्वेतोपालम्भसहस्रैः खेदयित्वा

नुप्रहित। यद्यपीति। यद्यपि भवादृशा भवत्सदृशा पुरुषा गुणा शौर्यादयस्तेषां गणा समुदायास्त एवाभरणानि तैर्भूषिता शोभिताङ्गयष्टिर्येषा ते तथा क्लेशहेतु परिश्रमकारणमितरजना प्राकृतजनास्तैर्बहुमतमादरपूर्वक स्वीकृतमाभरणभार विभूषणवीवधमङ्गेषु हस्तपादादिषु नारोपयन्ति न स्थापयन्ति। तथापीति। यद्यप्येवमस्ति तथापि कादम्बरीप्रीतिरत्र हारधारणे कारण नियामकम्। प्रीत्यान्यैरपि तथा कृतमित्याह—किं न कृतमिति। लक्ष्म्या श्रिय सहजं सार्धं समुत्पन्नमिति कृत्वा बहुमान सत्कारमाविष्कुर्वता प्रकटीकुर्वता भगवता शार्ङ्गपाणिना कौस्तुभाभिधान शिलाशकलमुरसि कि न कृत किं न विहितम्। न च नारायणस्तथा करोतु नाम। अहं तु तादृशो न भवामीत्यत आह—न चेति। नारायण कृष्णोऽत्रभवन्त त्वा न चातिरिच्यते नाधिको भवति। तथा च स्वानुरक्तप्रीतिसरक्षणस्वभावसाम्येन त्वमपि स एवेत्यर्थः। न च हारोऽपि कौस्तुभापेक्षया न्यून इत्याह—नापीति। कौस्तुभमणिरणुनापि गुणलवेन शेष शेषनामान हार नाप्यतिशेतेऽतिशयितो न भवति। एव लक्ष्मीसादृश्य कादम्बर्यामानयति—न चेति। लक्ष्मी पद्माकारस्यानुकृतिरनुकरण तस्य कलाशमत्याप्यल्पीयस्यापि कादम्बरीमनुगन्तु सादृश्य कर्तुं नाल न समर्था। अतो हेतोरिय त्वत्तो भवत इय बहुमानमर्हति योग्या भवति। नचेय प्रीतिर्न भवतीत्याह—न च प्रीतिप्रसरस्य प्रीत्युत्कर्षस्यैषाभूमिरस्थानम्, अपि तु स्थानमेव। वैपरीत्ये बाधकमाह—नियतेति। नियत निश्चित भवता त्वया लग्न प्रणय स्नेहो

है। यद्यपि आप सरीखे जन (स्वभावत ही) अपने गुणोंरूपी अलकारों से ही अलकृत शरीर वाले हैं—वे कष्टों के स्रोत (केवल) सामान्यजनों (इतरजन) द्वारा ही आदृत (सामान्य) आभूषणों के भार को अपने अगों पर नहीं लादते हैं, तो भी कादम्बरी की तुम्हारे प्रति जो प्रीति है वह इसमें कारण है। (उस प्रीति के कारण इस अलकार को तुम्हें पहन लेना चाहिये)। क्या भगवान् विष्णु ने यह लक्ष्मी के साथ उत्पन्न हुआ है—इसी कारण उसके प्रति बहुत सा आदर प्रकट करते हुए कौस्तुभ नाम के पत्थर के टुकड़े को अपने वक्ष स्थल पर धारण नहीं किया था? और विष्णु आप से बढ़कर नहीं है, और न कौस्तुभमणि ही थोड़े भी गुणाश में, शेष हार से अधिक है। और न ही लक्ष्मी आकृति की समता के थोड़े से भी अंश में कादम्बरी की समता कर सकती है। इस कारण यह (कादम्बरी) आप (के हाथों) से इस अत्यादर के प्राप्त करने योग्य है। और यह प्रेम के फैलाव की अपात्र भी नहीं है। आप द्वारा तोड़ी हुई प्रीति वाली वह (यदि आप उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे तो) निश्चय

स्वात्मानमुत्स्रक्ष्यति। अतएव महाश्वेता तरलिकामपीमं हारमादाय त्वत्सकाशं प्रेषितवती। तथापि कुमारस्य सदिष्टमेव। न खलु महाभागेन मनसापि कार्ये कादम्बर्याः प्रथमप्रणयप्रसरभङ्गः' इत्युक्त्वा च ताराचक्रमिव चामीकराचलस्य तटे त तस्य वक्षःस्थले बबन्ध। चन्द्रापीडस्तु विस्मयमानः प्रत्यवादीत्—'मदलेखे, किमुच्यते। निपुणासि। जानासि ग्राहयितुम्। उत्तरावकाशमपहरन्त्या कृतं वचसि कौशलम्। अयि मुग्धे, के वयमात्मनः, के वा वयं ग्रहणाग्रहणस्य वा। गता खल्वियमस्त कथा। सौजन्यशालिनीभिर्भवतीभिरुपकरणीकृतोऽय जनो यथेष्टमिष्टेष्वनिष्टेषु वा

यस्या एवविधा महाश्वेता उपालम्भसहस्रै खेदयित्वा खेदमुत्पाद्य स्वात्मान निजात्मानमुत्स्रक्ष्यति त्यक्ष्यति। अतएवास्मो हेतोर्महाश्वेतेम हारमादाय गृहीत्वा त्वत्सकाश भवत्समीप तरलिकां प्रेषितवती प्रहितवती। तथापि महाश्वेतयापि कुमारस्य सदिष्ट कथितमेव। महाभागेन सत्पुरुषेण त्वया कादम्बर्या प्रथमप्रणयप्रसरभङ्गो मनसापि न कार्यो न विधेय। कायवाग्भ्यां तु सर्वथा निषेध एव सूचित। इत्युक्त्वेत्यभिधाय चामीकराचलस्य मेरोस्तटे ताराचक्रमिव नक्षत्रसमूहमिव त हार तस्य वक्ष स्थले बबन्ध। चन्द्रापीडस्तु विस्मयमानो विस्मय कुर्वाण प्रत्यवादीत्प्रत्य-वोचत्। हे मदलेखे, त्वया किमुच्यते। त्व निपुणासि पण्डितासि। अत एव ग्राहयितु स्वीकारयितु जानासि। उत्तरस्य प्रतिवचसोऽवकाश प्रवेशयोग्यतामपहरन्त्या दूरीकुर्वन्त्या वचसि वाग्व्यापारे कौशल पाण्डित्य कृतम्। अयीति कोमलामन्त्रणे। हे मुग्धे, आत्मनो भवदपेक्षया के वयम्। युष्माक देवयोनित्वादिति भाव। अथ च के वा वयं ग्रहणाग्रहणस्य वा। गता खलु निश्चितम्। इयमस्त कथा। सौजन्यशालिनीभि सुजनताशोभिनीभिर्भवती-भिरुपकरणीकृतोऽयं जनो यथेष्टमिष्टेष्वनिष्टेषु वा व्यापारेषु विनियुज्यता प्रेर्यताम्। खलु

ही, महाश्वेता को सहस्रों उलहनो से दु खी करके (अन्त में) अपने (जीवन) को छोड़ देगी। इसीलिये महाश्वेता ने तरलिका को ही इस हार को लेकर तुम्हारे समीप भेजा है। फिर भी उसने (महाश्वेता ने) आपको यह सदेश भेजा ही है—"महानुभाव आपको कादम्बरी के प्रथम प्रणय विस्तार का भग मन से भी नहीं करना चाहिये। अर्थात् कादम्बरी की इस प्रणय प्रार्थना को अस्वीकार करने का मन में विचार तक नहीं लाना चाहिये।" यह कहकर उसने हार को उसके वक्ष-स्थल पर ऐसे बाध दिया जैसे कि सुवर्णपर्वत मेरु पर तारा मण्डल बाध दिया हो।

इस पर विस्मित होते हुए चन्द्रापीड ने प्रत्युत्तर दिया—"मदलेखे ! मैं क्या कहूँ ? तुम चतुर हो, तुम जानती हो कि कैसे अपनी बात को स्वीकार कराया जाता है ? उत्तर देने के प्रत्येक स्थान (अथवा अवसर) को छीन कर ले जाती हुयी (तुम) ने कहने में कुश-लता, वाक् पटुता दिखायी है। अरी सीधी सादी लड़की ! हम अपने (अपना शासन करने वाले) कौन हैं, अथवा हम स्वीकृति वा अस्वीकृति के (स्वामी) कौन हैं—(हम स्वीकार करने या न करने वाले) कौन हैं ? यह बातचीत तो अब समाप्ति पर आ ही गयी। यह व्यक्ति (अर्थात् मैं) तो सजनतायुक्त आप देवियों ने अपना अनुसेवी (अथवा अपना साधन) बना

व्यापारेषु विनियुज्यताम्। अतिदक्षिणायाः खलु देव्याः कादम्बर्या निर्दाक्षिण्या गुणा न कंचिन्न दासीकुर्वन्ति' इत्युक्त्वा च कादम्बरीसबद्धाभिरेव कथाभिः सुचिरं स्थित्वा विसर्जयाबभूव मदलेखाम्। अनतिदूर गताया च तस्या क्रीडापर्वतगतमुदयगिरिगतमिव चन्द्रमस चन्दनदुकूलहारधवल चन्द्रापीड द्रष्टु समुत्सारितवेत्रच्छत्रचामरचिह्ना निषिद्धाशेषपरिजना तमालिकाद्वितीया चित्ररथसुता पुनरपि तदेव सौधशिखरमारुरोह। तत्रस्था च पुनस्तथैव विविधविलासतरङ्गितैर्विकारिविलोकितैर्जहारास्य मनः।

निश्चितम्। अतिदक्षिणाया अत्युदाराया। 'दक्षिणे सरलोदारौ' इति कोश.। कादम्बर्या निर्दाक्षिण्या सर्वत्र भ्रमणशीला गुणा कंचित्पुरुषं न दासीकुर्वन्ति। अपि तु सर्वानेव। इत्युक्त्वा चेत्यभिधाय च कादम्बरीसबद्धाभिरेव कथाभि सुचिर स्थित्वा तां मदलेखां विसर्जयाबभूव गृहे गमनायानुज्ञापितवान्। तदनन्तर तस्या मदलेखायामनतिदूर गताया नातिदूर प्राप्तायां चित्ररथसुता कादम्बरी पुनरपि द्वितीयवारमपि तदेव सौधशिखरमारुरोहा रूढा। अत्र सौधशिखर विशेषयन्नाह—क्रीडेति। क्रीडार्थं य पर्वत शैलस्तत्र गतम्। कमिव। उदयगिरिरुदयाचलस्तत्र गतमिव चन्द्रमसम्। चन्दन मलयजम्, दुकूल क्षौमम्, हार शेषाभिधान, एतैर्धवल शुभ्रं चन्द्रापीड द्रष्टु वीक्षितु समुत्सारितानि दूरीकृतानि वेत्रच्छत्रचामरचिह्नानि यया सा। निषिद्धो वर्जितोऽशेष समग्र परिजन परिच्छदो यया सा। तमालिका एव द्वितीया यस्या सा च। तत्रस्था च सौधशिखरगता च पुनस्तथैव पूर्वोक्तरीत्यैव विविधा अनेकप्रकारा ये विलासा भ्रूसमुद्भवास्तैस्तरङ्गितैर्विकारिविलोकितैरस्य चन्द्रापीडस्य

लिया है, (अब) इसको (आप ही) किन्हीं भी सुखदायक अथवा कष्टदायक कार्यों में इच्छानुसार लगा सकती हैं। स्वय अत्यन्त उदार कादम्बरी के अनौपचारिक गुण किस व्यक्ति को अपना दास नहीं बना लेते हैं—अर्थात् सभी को दास बना लेते है।"[1] यह कहकर और कादम्बरी से सम्बद्ध बातचीत मे बहुत देरतक ठहर कर, उसने मदलेखा को बहुत दूर गयी हुई होने के पहले ही, क्रीडा-पर्वत पर स्थित तथा चन्दन (के उबटन) रेशमी श्वेत वस्त्र तथा (शेष नामक) हार के कारण श्वेत चन्द्रापीड को मानो कि उदय पर्वत पर स्थित तथा चन्दन के उबटन, रेशमी वस्त्र और हार के समान श्वेत प्रतीत होते चन्द्रमा को ही देखने के लिए बेंत, छत्र तथा चँवर (राज) चिह्नों को छोड़े हुई, सभी सेवकों को अपने साथ आने को प्रतिषेध किये हुई, तमालिका ही जिसकी दूसरी (सगिनी) थी, अर्थात् अकेली तमालिका को ही साथ लिये हुई, चित्ररथ की पुत्री (कादम्बरी) फिर उसी महल के शिखर पर चढ़ गई। और वहाँ (खुली छत पर) उसने फिर वैसे ही अपनी नानाविध ललित चेष्टाओं से चित्र चित्रित अथवा प्रभावित (तरङ्गितै) प्रणयोन्मादी (विकारी) दृष्टियों के द्वारा इस (चन्द्रापीड) के मन को अपना बन्दी बना लिया। जैसे कि, कुछ समय के लिये तो (अथवा अभी

---

१. 'निर्दाक्षिण्यम्' पाठ में यह अर्थ होगा कि कादम्बरी के गुण किस (मेरे सरीखे) अनुदार को भी अपना दास नहीं बना लेते हैं।

तथाहि मुहुर्मुहुर्नितम्बबिम्बन्यस्तवामहस्तपल्लवा प्रावृतांशुकानुसारप्रसारितदक्षिणकरा निश्चलतारका लिखितेव, मुहुर्जृम्भिकारम्भदत्तोत्तानकरतलतया तद्गोत्रस्खलनभिया निरुद्धवदनेव, मुहुरंशुकपल्लवताडितनिःश्वासामोदलुब्धमधुकरमुखरतया प्रस्तुताह्वानेव, मुहुरनिलगलितांशुकसम्भ्रमद्विगुणीकृतभुजयुगलप्रावृतपयोधरतया दत्तालिङ्गनसञ्ज्ञेव, मुहुः केशपाशाकृष्टकुसुमपूरिताञ्जलिसमाघ्राणलीलया कृतनमस्कारेव, मुहुरुभयतर्जनीभ्रमितमुक्ताप्रालम्बतया निवेदितहृदयोत्कलिकोद्गमेव, मुहुरुपहारकुसुम-

मनो जहार हृतवती। तदेव दर्शयति—तथा हीति। मुहुर्मुहुर्वारंवार नितम्बबिम्ब आरोहबिम्बे न्यस्त स्थापितो वामहस्तपल्लवो यया सा। प्रावृत परिधानीकृत यदंशुक तदनुसारेण प्रसारितो दक्षिणकरो यया सा। निश्चलेति। निश्चला स्थिरा तारका कनीनिका यस्या सा। अत एव लिखितेव चित्रितेव। मुहुरिति। जृम्भिकारम्भे जृम्भाया प्रारम्भे दत्त यदुत्तान करतलं तस्य भावस्तत्ता तया। तस्य चन्द्रापीडस्य गोत्रमभिधान तस्य स्खलन तस्माद्या भी भीतिस्तया निरुद्धवदनेव। मुहुरिति। अंशुकपल्लवेन ताडितो यो नि श्वासामोदस्तत्र लुब्धा ये मधुकरा भ्रमरास्तैर्मुखरो वाचालस्तस्य भावस्तत्ता तया प्रस्तुत प्रारब्धमाह्वान यया सैवंविधेन। मुहुरिति। अनिलेन गलितानि यान्यंशुकान्युत्तरीयाणि तेषा सम्भ्रमो विलासस्तेन द्विगुणीकृत यद् भुजयुगलं तदेव प्रावृतमुत्तरीय ययो पयोधरयोस्तयोर्भावस्तत्ता तया दत्तालिङ्गनसञ्ज्ञा सकेतो यया सैवंविधेव। मुहुरिति। केशपाशादाकृष्टानि यानि कुसुमानि तेन पूरितो योऽञ्जलिस्तस्य समाघ्राणलीलया कृत्वा कृतनमस्कारेव विहितप्रणामेव। पुन करयोरलीकप्रदेशाभिमुखीकरणेन तदुत्प्रेक्षा। मुहुरिति। उभयतर्जनीभ्रमितो यो मुक्ताप्रालम्बो मुक्तालता तस्य भावस्तत्ता तया निवेदितो ज्ञापितो हृदयस्योत्कलिका हृल्लेख तस्या उद्गम प्रादुर्भावो यया सैवविधेव। यथा हारो मया भ्राम्यते तथोत्कलिकया मच्चित्तमिति भाव। मुहुरिति। उपहारस्योपचारस्य

तो) वह अपने गोल कूल्हे पर अपने बाँये कोमल हाथ को रखे हुई, पहने हुए रेशमी वस्त्र (की किनारी) के साथ साथ फैलाये हुए दाँये हाथ वाली तथा निश्चल (तारका) दृष्टि से देखती हुई ऐसी प्रतीत हुई कि मानो (किसी चित्र मे) चित्रित की गयी हो, अभी जम्भाइयाँ आरम्भ हो जाने के कारण उलटी हथेली रख देने के कारण ऐसी प्रतीत हुई कि मानो उसका नाम (गोत्र) (मुँह से) निकल जाने की आशका से ही उसने मुँह बन्द कर लिया हो, अभी, उसके रेशमी वस्त्र के अचल से ताडित, उसके श्वास की सुगन्ध के लोभी भौरों द्वारा उत्पादित शब्द के कारण वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो उसने उसको ऊँची आवाज में बुलाना आरम्भ कर दिया हो, वायु द्वारा खिसके हुए वस्त्र द्वारा उत्पादित अस्त व्यस्तता में दुहरे किये हुए (मोड़े हुए) बाहुयुगल से ढके स्तन होने के कारण अभी वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो उसने आलिङ्गन का सकेत (सज्ञा) दे दिया हो, अपने जूड़े से खींचे हुए फूलों से भरी हुई अजलि को सूँघने के हाव-भाव के कारण (अर्थात् हावभाव से सूँघने के कारण) अभी ऐसी प्रतीत हुई कि मानो (चन्द्रापीड को) नमस्कार किये हुए हो, दो अगुलियों (तर्जनियों) पर घुमाये मोतियों के हार के कारण, अभी वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो हृदय में उत्कण्ठा की उत्पत्ति

स्खलनविधुतकरतलतया कथितकुसुमायुधशरप्रहारवेदनेव, मुहुर्गलितरसनानिगडपतितचरणतया सयम्यार्पितेव मन्मथेन, मुहुश्चलितोरुविधृतशिथिलदुकूला, क्षितितलदोलायमानांशुकैकदेशाच्छादितकुचा, चकितपरिवर्तनत्रुट्यत्त्रिवलीलता, समस्तचिकुरकलापसकलनाकुलकरतला, कटाक्षक्षेपधवलीकृतकर्णोत्पल विलक्ष्यमाणस्मितसुधाधूलिधूसरितकपोल साचीकृत्य वदनमनेकरसभङ्गिभङ्गुर विलोकयन्ती, तावदवतस्थे यावदुपसहृतालोको लोहितो दिवसो बभूव ।

यानि कुसुमानि तेभ्य स्खलनेन विधुत कम्पित यत्करतल तस्य भावस्तत्ता तया कथिता कुसुमायुधो मदनस्तस्य शरप्रहारवेदना पीडा यया सैवभूतेव । मुहुरिति । गलिता स्रस्ता या रसना कटिमेखला सैव निगडोऽन्दुकस्तत्र पतितौ यौ चरणौ तयोर्भावस्तत्ता तया सयम्य बद्ध्वा मन्मथेनार्पितेव । मुहुरिति । चलिताभ्यामूरुभ्यां यथाकथंचिद्विधृतमपि शिथिल दुकूल यस्या सा । क्षितितले दोलायमानोंऽशुकस्योत्तरीयस्यैकदेशस्तेनाच्छादितौ कुचौ यया सा । चकित ससभ्रम यत्परिवर्तन तेन त्रुट्यन्ती त्रिवलीलता यस्या सा । समस्ता समग्रा ये चिकुरा कुन्तलास्तेषा कलाप समूहस्तस्य सकलन स्वकीयस्थले स्थापनं तेनाकुल व्याक्षिप्त करतल यस्या सा । किं कुर्वती । वदन मुख साचीकृत्य वक्रीकृत्यानेके रसास्तेषां भङ्गी रचनाविशेषस्तेन भङ्गुर वक्र यथा स्यात्तथा विलोकयन्ती । अथ वदन विशेषयन्नाह—कटाक्षेति । कटाक्षाणा क्षेपस्तेन धवलीकृतं कर्णोत्पल यस्मिन् । विलक्ष्यमाण यत्स्मित तदेव सुधा तस्या धूलिस्तया धूसरितौ कपोलौ यस्मिन् । तावदवतस्थे यावदुपसहृत एकीभूत आलोको यस्मिन्नेवविधो लोहितो रक्तो दिवसो बभूव । एतेन सध्यासमयो जात इति ज्ञापितम् ।

को बताये हुई हो, पूजार्थ (स्थापित) फूलों से ठोकर खाकर (दु ख से) पटके (उछाले) हाथों के कारण अभी वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो उसने कामदेव के बाणों की चोट की पीड़ा कह दी हो, उसकी खिसकी हुई मेखला रूप साकल से बँधे पाँवों के कारण वह अभी ऐसी प्रतीत हुई कि मानो मन्मथ ने बाँधकर चन्द्रापीड को समर्पित कर दी हो, और अभी अपनी थरथराती जघाओं द्वारा कसकर धारण किये हुए ढीले वस्त्र वाली, धरातल पर लटकते आँचल के एक भाग से स्तनों को ढके हुई हड़बड़ाकर मुड़ने से पृथक् पृथक् होती (अथवा ऐंठती) दिखायी देती त्रिवली लता वाली, कन्धों पर अस्त व्यस्त रूप मे पड़े केशसमूह को एकत्रित करने मे व्यस्त हाथों वाली, कटाक्षपात से श्वेत किये हुए कर्ण पर पहने कमल वाले तथा लजीली (विलक्ष) मुस्कुराहटरूपी चूने की धूल से धूसरित गालों वाले मुँह को टेढ़ा करके, विविध भावनाओं (रसों—प्रेम आदि) के पेचीदे रूपों से वक्र करके देखती हुई। और इस प्रकार वह वहाँ तब तक बैठी रही जब कि दिन अपने प्रकाश को समेटे हुए (अथवा समेट कर) लाल हो गया (अर्थात् सायकाल हो गया) ।

अथ हृदयस्थितकमलिनीरागेणेव रज्यमाने राजीवजीवितेश्वरे सकललोकचक्रवालचक्रवर्तिनि भगवति पूष्णि क्रमेण च दिनपरिलम्बनरोषरक्ताभिः कामिनीदृष्टिभिरिव सङ्क्रामितशोणिम्नि व्योम्नि संहृतशोचिषि जाते जरठहारीतहरितवाजिनि, रविविरहमीलितसरोजसंहतिषु, हरितायमानेषु कमलवनेषु, श्वेतायमानेषु कुमुदखण्डेषु, लोहितायमानेषु दिङ्मुखेषु, नीलायमाने शर्वरीमुखे, शनैः शनैश्च पुनर्दिनश्रीसमागमाशाभिरिवानुरागिणीभिः सहैव दीधितिभिरदर्शनतामुपगते भगवति गभस्तिमालिनि, तत्कालविजृम्भितेन च कादम्बरीहृदयरागसागरेणेवापूरिते सन्ध्यारागेण

अथ प्रदोषसमयं वर्णयन्नाह—अथेति। जातायामदर्शनक्षमायां वेलायां कादम्बरी सौधशिखरात्क्रीडापर्वतकनितम्बाच्च चन्द्रापीडोऽवततारेत्यन्वयः। कस्मिन्सति। रागेणानुरज्यमाने सति रक्तता प्राप्यमाणे सति। रक्तत्वमाम्यादाह—हृदयस्थितो यः कमलिनी रागस्तेनेव राजीवानां कमलानां जीवितं तस्येश्वरः स्वामी तस्मिन्सकलः समग्रो यो लोकस्तस्य चक्रवालं पटलं तस्य चक्रवर्तिनि सार्वभौमे भगवति माहात्म्यवति। जरठः परिणत एवंविधो यो हारीतो मृदङ्कुरस्तद्वद्धरिता नीला वाजिनो यस्य स तस्मिन्। पुनः कीदृशे। संहृतशोचिव्यात्तदीधितौ एवंविधे पूष्णि सूर्ये जाते सति। तथा क्रमेण च परिपाट्या दिनस्य सूर्यस्य परिलम्बनमस्तसमयस्तेन रोषो नायको दत्तसंकेतोऽद्यापि नागत एवंरूपस्तेन रक्ताभिः कामिनीदृष्टिभिरिव सङ्क्रामिता शोणिमा रक्तिमा यस्मिन्नेवंविधे व्योम्न्याकाशे सति। पुनः केषु। रविरिति। रविः सूर्यस्तस्य विरहो वियोगस्तेन मीलिता सङ्कुचिता या सरोजसंहतयः कमलराजयस्तासु। पुनः केषु। कमलवनेषु नलिनखण्डेषु हरितायमानेषु नीलायमानेषु सत्सु। तथा कुमुदखण्डेषु कैरववनेषु गौरवद्वदाचरमाणेषु। प्रफुल्लितत्वादिति भावः। तथा लोहितायमानेषु रक्तायमानेषु दिङ्मुखेषु सत्सु। तथा नीलायमाने हरितायमाने शर्वरीमुखे प्रदोषे। शनैः शनैः पुनः पुनर्दिनश्रिया यः समागमस्तस्याशाभिरिवानुरागिणीभिर्दीधितिभिः सह भगवति गभस्तिमालिनि सूर्येऽदर्शनतामदृश्यतामुपगते प्राप्ते सति। पुनः सन्ध्यारागेण जीवलोके आपूरिते सति। केनेव।

इसके पश्चात् जब कमलों का जीवन स्वामी, सारे संसार चक्र का सम्राट् भगवान् सूर्य, हृदय में स्थित कमलिनी के प्रति राग (लाली और अनुराग) से (अर्थात् हृदय में अनुभूत प्रेम के कारण) ही मानो लाल होने लगा और धीरे धीरे मानो दिन के अस्त होने में देरी करने के कारण उत्पन्न क्रोध से ही लाल हुई स्त्रियों की दृष्टियों द्वारा जब आकाश लाल हो गया, जब पूर्णतया प्रवृद्ध (जरठ) हारीत (पक्षियों) के समान हरे अश्वों वाले सूर्य ने अपनी चमक को समेट लिया, सूर्य के वियोग के कारण बन्द हुई कमल पंक्तियों वाले कमलवन हरे-हरे होने लगे, जब रात्रिकमलवन (रात के समय खिलने के कारण) श्वेत होने लगे, दिग्देश लाल होने लगे, जब रात्रि का आरम्भिक भाग—अर्थात् सध्या काली दिखायी देने लगी, जब कि फिर दिन की चमक दमक के साथ समागम की आशा बाँधे हुई होने के कारण ही मानो लाल (साथ ही प्रेमोन्मादिनी बनी हुई) अपनी किरणों समेत भगवान् सूर्य धीरे-धीरे अदृश्य हो गये और जब मृत्युलोक सध्याकालीन लाल प्रकाश से, मानो कि उस समय उमड़े हुए (विजृम्भित)

जीवलोके, कुसुमायुधानलदह्यमानहृदयसहस्रधूम इव जनितमानिनीनयनवारिणि विस्तीर्यमाणे तरुणतमालत्विषि तिमिरे, दिक्करिकरावकीर्णसीकरासार इव श्वेतायमानतारागणे गगने, जाताया चादर्शनक्षमाया वेलाया सौधशिखरादवततार कादम्बरी, क्रीडापर्वतकनितम्बाच्च चन्द्रापीडः। ततोऽचिरादिव गृहीतपादः प्रसाद्यमान इव कुमुदिनीभिः कलुषमुखीः, कुपिता इव प्रसादयन्नाशाः प्रबोधशङ्कयेव परिहरन्सुप्ताः कमलिनीः, लाञ्छनच्छलेन निशामिव हृदयेन समुद्वहन्, रोहिणीचरणताडनलग्नम-

---

तत्कालविजृम्भितेन तदात्वप्रसृतेन कादम्बर्या हृदयरागस्तल्लक्षणो य सागर. समुद्रस्तेनेव। पुन कस्मिन्। विस्तीर्यमाणे विस्तार प्राप्यमाणे। तरुणो नवीनो यस्तमालस्तापिच्छ तस्य त्विडिव त्विट् यस्मिन्नेवविधे तिमिरेऽन्धकारे सति। तस्य नीलत्वेन साम्यादाह—कुसुमेति। कुसुमायुध एवानलो वह्निस्तेन दह्यमान ज्वलमान यद्धृदयसहस्र तस्य धूम इव। कीदृशे। जनितमुत्पादित मानिनीना नयनेषु वारि येन तस्मिन्। अद्यापि पतिर्गृहे नागत इति दु खेन मानिनीनयनेष्वश्रुसद्भाव इत्यर्थ। एतेन धूमसादृश्य ध्वनितम्। दिगिति। दिक्करिणां दिग्गजाना ये करा शुण्डादण्डास्तैरवकीर्णोऽवध्वस्तो य सीकरासारस्तस्मिन्निव। श्वेतायमाने दीप्यमाने तारागणे नक्षत्रसमूहे गगने व्योम्नि जाते सति। अन्वयस्तु प्रागुक्त। ततस्तदनन्तरम चिरादिव स्तोककालेनेव सुधासूतिश्चन्द्र उदगादुदय प्राप्तवान्। गृहीतेति। गृहीता पादा यस्य स। प्रसाद्यमान इव। काभि। कुमुदिनीभि कैरविणीभि। कलुषमुखी कुपिता इव आशा दिश प्रसादयन्प्रसन्नीकुर्वन्। सुप्तानां कमलिनीना प्रबोधो मा भूदित्याशङ्कया परिहरस्त्यजन्। लाञ्छनच्छलेनाङ्कमिषेण निशामिव हृदयेन समुद्वहन्धारयन्। पुन किं कुर्वाण। उदयराग दधान। कमिव। रोहिण्याश्चरणेन रतिकलहेन यत्ताडन तेन लग्नम् अलक्तकरसमिव

कादम्बरी के हृदय के द्रव 'राग' (रागरस) (उसकी लाली तथा प्रणयोन्माद) के लहराते समुद्र से ही भर गया, जब पूर्णतया वर्धित (वरुण) तमाल वृक्ष की सी (काली) आभा वाला अन्धकार ऐसे फैलने लगा कि मानो वह कामरूपी अग्नि से जल रहे सहस्रों चकवा चकवियों के हृदयों का स्त्रियो की आँखों मे आँसू उत्पन्न किये हुआ धुँआ हो, जब कि आकाश के नक्षत्रपुञ्ज इस प्रकार श्वेत होते दिखाई देने लगे कि मानो वे दिग्गजों की सूँडों से बिखेरी हुई फुहारों की वर्षा हों, और जब समय (वस्तुओं को स्पष्ट) दिखाने मे असमर्थ हो गया, तब कादम्बरी (अपने) महल की छत पर से और चन्द्रापीड क्रीड़ापर्वत के मध्य से उतरे। तब मानो शीघ्र ही, पादों (पावों—किरणों) को (ग्रहण किये) पकड़े हुई कुमुदिनियों द्वारा मानो मनाया जाता हुआ (तथा चमकाया जाता हुआ) काले अप्रसन्न मुखों (मुँहों) वाली दिशाओं रूप स्त्रियों को मानो मनाता हुआ (तथा चमकाता हुआ), सोई हुई (बन्द कमलों वाली) कमलिनियों को उनके जाग जाने के (खिल जाने का) भय से ही मानो छोड़ता हुआ (उनसे वचता हुआ), कलक (काले दाग) के बहाने मानो (काली) रात्रि को ही (अपनी प्रेयसी को) अपने हृदय में धारण किये हुआ, (अभी उदय होने के कारण लाल रग को ऐसे धारण किये हुआ कि मानो वह लाल रग रोहिणी के पाँवों की (प्रेम-कलह में की गयी) चोट से लगा अलक्तक रस

लक्तकरसमिवोदयराग दधानः, तिमिरनीलाम्बरा दिवमभिसारिकामिवोपसर्पन्, अतिवल्लभतया विकिरन्निव सौभाग्यमुदगाद्भगवानीक्षणोत्सवः सुधासूतिः। उच्छ्रिते च कुसुमायुधाधिराज्यैकातपत्रे कुमुदिनीवधूवरे विभावरीविलासदन्तपत्रे श्वेतभानौ, धवलितदिशि दन्तादिवोत्कीर्णे भुवने चन्द्रापीडश्चन्द्रातपनिरन्तरतयैव कुमुद इव गृहकुमुदिन्याः कल्लोलधौतसुधाधवलसोपाने तनुतरङ्गतालवृन्तवाहिनि सुप्तहंसमिथुने विरहवाचालचक्रवाकयुगले तीरे कुमुददलावलीभिः पर्यन्तलिखितपत्रलतमवदातसिन्दु-

---

पानकद्रवमिव। तिमिरमेव नीलमम्बर वस्त्रमेतादृशीं दिव नीलावगुण्ठनसाम्याद्भिसारिकामिवोपसर्पन्गच्छन्। अतिवल्लभस्य भावोऽतिवल्लभता तया सौभाग्य विकिरन्निव विक्षिपन्निव। कीदृश। भगवान्माहात्म्यवान्। पुन किंविशिष्ट। ईक्षणाना नेत्राणामुत्सव इव। उच्छ्रिते च वृद्धिं प्राप्ते च कुसुमायुध कदर्पस्तस्याधिराज्य साम्राज्य तस्य एकमद्वितीयमातपत्र छत्र तस्मिन्। कुमुदिनी कैरविणी सैव वधूस्तस्या वर प्राणनाथस्तस्मिन्। पाण्डुरत्वसाम्येनाह—विभावरीति। विभावर्यास्त्रियामाया विलासार्थं दन्तपत्र कर्णाभरण तस्मिन्श्वेता शुभ्रा भानव किरणा यस्मिन्। धवलिता शुभ्रीकृता दिशो येन स तस्मिन्। चन्द्रालोकेन भुवनस्य व्याप्तत्वादाह—दन्तेति। दन्तादिवोत्कीर्णे भुवने विष्टपे जाते सति चन्द्रापीडश्चन्द्रातपस्य चन्द्रालोकस्य निरन्तरता सर्वस्मिन्नभिव्याप्तिस्तया हेतुभूतया। एवं विरलकुमुदवत्या अपि। गृहकुमुदिन्या कुमुदमय्या कुमुदप्रकर्षवत्या इव ये कल्लोला श्वेतिमोत्कर्षास्तैर्धौत निर्मलीकृत सुधया धवल सोपान यस्मिन्। तनव सूक्ष्मा ये तरङ्गा कल्लोलास्त एव वातहेतुत्वात्तालवृन्तानि व्यजनानि तेषा वात वहतीत्येवशील तस्मिन्। सुप्तानि हसाना मिथुनानि यस्मिन्। विरहेण वियोगेन वाचालानि मुखराणि चक्रवाकयुगलानि यस्मिन्नेवविधे तीरे। गृहदीर्घिकाया इति शेष। कुमुदाना कैरवाणा दलावलीभि. पत्रश्रेणिभि पर्यन्ते प्रान्ते लिखिता पत्रलता पत्रभङ्गय-

---

हो, अन्धकार रूपी नीले वस्त्र वाली द्यौ (आकाश) की ओर मानो अन्धकार-सरीखी काली पोशाक (अम्बर) से ढकी अभिसारिका की ओर बढ़ता हुआ, (लोकों का) अति प्रीतिपात्र होने के कारण मानो सौभाग्य को सौन्दर्य अथवा प्रीति को सब स्थानों पर बखेरता हुआ, अमृत का स्रोत तथा (मर्त्यों की) आँखों का उत्सवरूप चन्द्र भगवान् उदित हुआ और कुसुमायुध (कामदेव) के साम्राज्य के (चिह्न रूप) (श्वेत) अनुपम (एकमात्र) छत्र सरीखे, कुमुदिनीरूप बहुओं के पति, रात्रि (रूपा युवती) के शानदार कर्णाभूषण सरीखे चन्द्रमा (श्वेतभानु) के उदित हो जाने पर तथा जब ससार (ज्योत्स्ना से) श्वेत दिशाओं वाला (चारों ओर श्वेत) होकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो इसको हाथी दात में से खोद कर बनाया हो तब चन्द्रापीड चाँदनी के सर्वत्र फैल जाने के कारण (इस पर घनी चाँदनी पड़ी होने के कारण) ही मानो कुमुदों के बने प्रतीत होते (अर्थात् कुमुदों से पूर्णतया भरे प्रतीत होते) घर के कमलसरोवर के, लहरा से धोये हुए, चूने के समान श्वेत (सगमर्मर की बनी) सीढियों वाले, छोटी छोटी तरगों रूपी पखों (तमालवृन्त) की वायु वहन कर रहे को सोई हुई हस जोड़ियों वाले विरह से (विरहजन्य दुःख से) चिल्लाती चक्रवाक जोड़ियों वाले

वारदामोपहार हरिचन्दनरसैः प्रक्षालित कादम्बरीपरिजनोपदिष्ट मुक्ताशिलापट्टं चन्द्रशीतलमधिशिश्ये। तत्रस्थस्य चास्यागत्याकथयत् केयूरकः 'देवी कादम्बरी देव द्रष्टुमागता' इति।

अथ चन्द्रापीडः ससंभ्रममुत्थायागच्छन्तीम्, अल्पसखीजनपरिवृताम्, अपनीताशेषराजचिह्नाम्, इतरामिवैकावलीमात्राभरणाम्, अच्छाच्छेन चन्दनरसेन धवलीकृततनुलताम्, एककर्णावसक्तदन्तपत्राम्, इन्दुकलाकलिकाकोमल कर्णपूरीकृत

स्ताभिर्दन्तुर सदवदातानि सिन्दुवारदामानि निर्गुण्डीस्रजस्तेषामुपहारो यस्मिंस्तद्धरिचन्दनं गोशीर्षचन्दनं तस्य रसै प्रक्षालित धौत कादम्बर्या· परिजन परिच्छदस्तेनोपदिष्ट कथित मुक्तावद्धवल शुभ्र शिलापट्ट चन्द्रेण शीतलमधिशिश्ये। शयन चकारेत्यर्थ । तत्रस्थस्यास्य चन्द्रापीडस्य केयूरक आगत्येत्यकथयत्। इतिशब्दद्योत्यमाह—कादम्बरीति। कादम्बरी देवी देव भवन्त द्रष्टुमागता।

अथेति। तत्कथनानन्तर ससभ्रममुत्थाय स चन्द्रापीड कादम्बरीमपश्यत्। अथ कादम्बरीं विशेषयन्नाह—आगच्छन्तीमिति। आगच्छन्तीमायान्तीम्। अल्पेति। अल्प· स्तोको य सखीजनस्तेन परिवृताम्। अपनीत दूरीकृतमशेषं समग्र राजचिह्नं यया सा ताम्। अतएवेत रामिव पूर्वंव्यावर्णितस्वरूपाया भिन्नामिवैकावलीमात्रमाभरण विभूषण यस्या सा ताम्। अच्छ चाच्छ चाच्छाच्छ तेन। अतिनिर्मलेनेत्यर्थं। एतादृशेन चन्दनरसेन धवलीकृता तनुलता यया सा ताम्। एककर्णेऽवसक्त क्षिप्त दन्तपत्र यया सा ताम्। तथाविधदेशाचारत्वादिति भाव। पुन किं कुर्वाणाम्। कर्णपूरीकृत कुमुददल कैरवपत्र दधानाम्। कीदृशम्। इन्दुकला

किनारे पर, फूलों की पँखुड़ियों की पक्तियों से किनारे-किनारे चित्रित (शाभादायक) पत्तो और लताओं द्वारा कठोर बने (ऊँचे नीचे बने—दन्तुरित) हुए, श्वेत सिन्दुवार के फूलों की मालाओं की भेंट वाले (मालाओं से युक्त), हरिचन्दन के रस से धोये हुए, कादम्बरी के सेवकों से निर्दिष्ट, स्वय चन्द्रमा के समान शीतल मोतियों के बने चौड़े शिलाखण्ड पर लेट गया। और वहाँ बैठे हुए इससे केयूरक ने आकर कहा—'देवी कादम्बरी आपको देखने के लिये आई है।'

इसके पश्चात् चन्द्रापीड ने शीघ्रता से उठ कर आती हुई कादम्बरी को देखा, वह (कादम्बरी उस समय) केवल थोड़े से ही सेवकों से घिरी हुई थी (उसके साथ केवल थोड़े से ही सेवक थे), (वहाँ आने से पहले) उसने सारे राजचिह्न उतार दिये थे, एक सामान्य स्त्री की भाँति उसने केवल एकावली (एक लड़ी वाली मोती माला) आभूषण पहना हुआ था; अपने पतले शरीर को उसने अत्यन्त स्वच्छ चन्दन रस से श्वेत किया हुआ था, कर्णाभूषण बनायी हुई चन्द्रकला रूपी कली (अथवा कली के आकार की इन्दुकला) के समान मृदु, कमल की पखुड़ी को धारण किये हुई थी, चाँदनी के समान चमकीले, कल्पवृक्ष (की छाल) के वस्त्र

कुमुददलं दधानाम्, ज्योत्स्नाशुचिनी कल्पद्रुमदुकूले बिभ्रतीम्, तत्कालरमणीयेन वेषेण साक्षादिव चन्द्रोदयदेवताम्, मदलेखया दत्तहस्तावलम्बा कादम्बरीमपश्यत्। आगत्य च सा प्रीतिपेशलता दर्शयन्ती प्राकृते परिजनोचिते भूतले समुपाविशत्। चन्द्रपीडोऽपि 'कुमार, अध्यास्यता शिलातलमेव' इत्यसकृदनुबध्यमानोऽपि मदलेखया भूमिमेवाभजत। सर्वासु चासीनासु तासु मुहूर्तमिव स्थित्वा वक्तुमुपचक्रमे चन्द्रापीडः—'देवि, दृष्टिमात्रपीते दासजने सभाषणादिकस्यापि प्रसादस्य नास्त्यवकाशः, किमुतैतावतोऽनुग्रहस्य। न खलु चिन्तयन्नपि निपुणं तमात्मनो गुणलवमवलोकयामि

चन्द्रकला सैव कलिका तद्वत्कोमलं सुकुमारम्। पुनः किं कुर्वन्तीम्। ज्योत्स्नावच्छुचिनी पवित्रे कल्पद्रुमस्य दुकूले बिभ्रतीं दधानाम्। तत्कालरमणीयेन तत्समयमनोहरेण वेषेण नेपथ्येन साक्षाच्चन्द्रोदयदेवतामिव। मदलेखया दत्तो हस्तावलम्बः करावलम्बो यस्याः सा ताम्। अन्वयस्तु प्रागुक्तः। आगत्य च प्रीतिपेशलता स्नेहसुन्दरतां दर्शयन्ती प्रकटयन्ती प्राकृते नीचे परिजनस्य सेवकजनस्योचिते योग्ये भूतले पृथिव्यां समुपाविशत्समुपविष्टा। चन्द्रापीडोऽपि हे कुमार, शिलातलमेवाध्यास्यतामिति मदलेखयासकृद्वारंवारमनुबध्यमानोऽपि कथ्यमानोऽपि भूमिमेव वसुधामेवाभजताश्रितवान्। सर्वासु तास्वासीनासूपविष्टासु सत्सु मुहूर्तमिव स्थित्वा चन्द्रापीडो वक्तुं कथयितुमुपचक्रमे उद्यमं कृतवान्। किं तदित्याह—देवीति। हे देवि, दृष्टिमात्रेण प्रीते दासजने सभाषणादिकस्य जल्पनप्रभृतिकस्य प्रसादस्यानुग्रहस्यावकाशोऽवगाहो नास्ति। दृष्टिमात्रसमुद्भूतप्रीत्या तावन्मम हृदयं भृतं यावदस्य प्रवेशो नास्तीत्यर्थः। एतावतोऽनुग्रहस्य किमुत भण्यते। सर्वथा प्रवेशो नास्तीत्यर्थः। न खल्विति। निपुणं यथा स्यात्तथा चिन्तयन्नपि विचारयन्नप्यात्मनो गुणलवमवलोकयामि पश्यामि। यस्य गुणलवस्यायमनुरूपो योग्योऽनुग्रहातिरेकः प्रसादोत्कर्षः। अतिसरलात्स्वृत्वी तवेयमपगतो दूरीभूतो योऽभिमानोऽहंकारस्तेन

पहने हुई थी, उस समय अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होते अपने वेष के कारण मानो शरीरधारिणी चन्द्रोदय की (अधिष्ठात्री) देवता सी प्रतीत हो रही थी, तथा मदलेखा ने उसको हाथ का सहारा दिया हुआ था। और आकर वह स्नेह की सुन्दरता को, अथवा एक सादी (सरल) आकर्षकता को दिखाती हुई सामान्य स्त्री की भाँति केवल सेवकों के बैठने योग्य, नंगी भूमि पर ही बैठ गयी। 'राजकुमार! आप शिला पर ही बैठे रहिये'—इन शब्दों में मदलेखा द्वारा कई बार (अथवा बार बार) कहा जाता हुआ भी चन्द्रापीड (नंगी) भूमि पर ही आ बैठा। और उन सब (कन्याओं) के बैठ जाने पर लगभग एक मुहूर्त भर तक (आधा घंटे तक) (चुप) रहकर चन्द्रापीड ने बोलना आरम्भ किया :—"राजकुमारी! केवल दृष्टि से ही सन्तुष्ट हुए (मेरे सरीखे) सेवक व्यक्ति पर तो सम्भाषणादि कृपा का भी अवकाश अर्थात् कोई कारण नहीं है, फिर (भेंट करने आना, आदि) इतने (अथवा ऐसे) अनुग्रह के दिखाने के विषय में तो क्या कहा जाय! निश्चय ही बड़े ध्यान से सोचते हुए भी मैं ऐसा कोई गुण अपने मे एक (लेशमात्र) भी नहीं देख पाता हूँ, जिसके योग्य यह अत्यन्त अनुग्रह (समझा) जा सके।

यस्यायमनुरूपोऽनुग्रहातिरेकः। अतिसरला तवेयमपगताभिमानमधुरा च सुजनता यदभिनवसेवकजनेऽप्येवमनुरुध्यते। प्रायेण मामुपचारहार्यमदक्षिण देवी मन्यते। धन्यः खलु परिजनः, ते यस्योपरि नियन्त्रणा स्यात्। आज्ञासविभागकरणोचिते भृत्यजने क इवादरः। परोपकारोपकरण शरीरम्, तृणलवलघु च जीवितम्। अपत्रपे त्वत्प्रतिपत्तिभिरुपायनीकर्तुमागतायास्ते वयमेते शरीरमिदमेतज्जीवितमेतानीन्द्रियाणि एतेषामन्यतरदारोपय परिग्रहेण गरीयस्त्वम्' इति। अथैववादिनोऽस्य वचनमाक्षिप्य मदलेखा सस्मितमवादीत्—'कुमार, भवतु। अतियन्त्रणया खिद्यते खलु सखी काद-

---

मधुरा मिष्टा सुजनता सौजन्यम्। अत्रार्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—यदिति। यदभिनवे सेवकजनेऽपि नूतनभृत्येऽप्येवमनुरुध्यतेऽनुग्रहविषयीक्रियते। प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येनोपचारेण बाह्यविनयेन हार्यं वशीकर्तुं योग्यमत एवादक्षिणमनुदार मा देवी मन्यते जानाति। खलु निश्चयेन। स एव परिजनो धन्य कृतपुण्य, यस्योपरि ते तव नियन्त्रणाज्ञा स्यात्। आज्ञालक्षणो य सविभागो विभज्य किंचिदर्पण तस्य करण तत्रोचिते योग्ये भृत्यजने क इवादरो बहुमानाधिक्यम्। परेति। परस्य य उपकार उपकृतिस्तस्योपकरण साधक शरीर तृणस्यार्जुनस्य यो लवो केशस्तद्वल्लघु च जीवितम्। अत आगतायास्ते तव त्वत्प्रतिपत्तिभिस्त्वद्भक्तिभिरुपायनीकर्तुमुपढौकनीकर्तुमहमपत्रपे लज्जे। एते वयम्, इदं शरीरम्, एतज्जीवितम्, एतानीन्द्रियाणि, एतेषा मध्यादन्यतरत्परिग्रहेण स्वीकारेण कृत्वा गरीयस्त्वमारोपय स्थापयेति। अन्यस्योपायनस्याभावात्। इदमेव तत्रोपायनम्। अथैववादिनोऽस्य चन्द्रापीडस्य वचनमाक्षिप्य निराकृत्य मदलेखा सस्मितमवादीदवोचत्। हे कुमार, भवतु यत्त्वयोक्त तत्तथैवास्तु। परमतियन्त्रणयाति कथनेन खलु निश्चयेन कादम्बरी खिद्यते खेद प्राप्नोति। अत किमर्थं चैवमुच्यते कथ्यते।

(इसलिये केवल) यह तुम्हारी परम सरलता तथा दूर हुए गर्व के कारण आकर्षक बनी हुई सज्जनता ही है कि जो नये (बनाये हुए) सेवक व्यक्ति के प्रति भी इस प्रकार अनुरोध (प्रीति-व्यवहार) किया जाता है। (अथवा) सम्भवत राजकुमारी मुझको सज्जनता (अथवा विनय) रहित मानती है और इसलिये बाह्य व्यवहारों (शिष्टाचारादि क्रियाओं द्वारा) वश में लाने योग्य समझती है। निश्चय ही वह सेवक धन्य है जिस पर तुम्हारा अधिकार (नियन्त्रण) हो। आदेशों को बाटने योग्य (अर्थात् दिये हुए आदेशों का पालन करना ही जिसको उचित है ऐसे) सेवक के प्रति बताइये, आदर दिखाना कैसा है (आदर दिखाने की क्या आवश्यकता है) ? शरीर तो दूसरों की भलाई करने का एक औजार है, और जीवन तिनके के छोटे से अश के समान तुच्छ है। (इसलिये) आयी हुई आपकी कृपा के बदले मे इन्हें (शरीर तथा अपने प्राण को) तुम्हारे प्रति भक्ति के द्वारा भेंट करने मे मुझे लज्जा आती है। मैं स्वय, यह शरीर, यह मेरा जीवन, ये मेरी इन्द्रिया इनमे से किसी को भी स्वीकार करके गरिमा पर आरोपित कीजिये अर्थात् इनका महत्त्व बढ़ाइये।"

ऐसा कह रहे इस चन्द्रापीड की बात को (बीच में ही) काट कर मुस्कराती हुई मदलेखा बोली—'कुमार ! बस कीजिये, किसी के उचित कार्यों पर अत्यधिक अकुश अब मत

म्बरी। किमर्थं चैवमुच्यते। सर्वमिदमन्तरेणापि वचनमनया परिगृहीतम्, किं पुनरमुनोपचारफल्गुना वचसा सदेहदोलामारोप्यते' इति। स्थित्वा च कंचित्काल कृतप्रस्तावा 'कथ राजा तारापीडः, कथ देवी विलासवती, कथमार्यः शुकनासः, कीदृशी चोज्जयिनी, कियत्यध्वनि सा, कीदृग्भारत वर्षम्, रमणीयो वा मर्त्यलोकः' इत्यशेष पप्रच्छ। एवविधाभिश्च कथाभिः सुचिर स्थित्वोत्थाय कादम्बरी केयूरक चन्द्रापीडसमीपशायिनं समादिश्य परिजन च शयनसौधशिखरमारुरोह। तत्र च सितदुकूलवितानतलास्तीर्णं शयनीयमलचकार। चन्द्रापीडोऽपि तस्मिन्नेव शिलातले निरभिमानतामभिरूपतामतिगम्भीरता च कादम्बर्याः, निष्कारणवत्सलतां च महाश्वेतायाः, सुजनता

वचनमन्तरेणापि कथन विनैव सर्वमिद पूर्वोक्तमनया कादम्बर्या परिगृहीतमात्तम्। किं पुनरमुनोपचारेण फल्गुना निरर्थकेन वचसा किं वचनव्यापारेण सदेहदोलामारोप्यते। मन इति शेष। इत्युक्तप्रकारेण कंचित्काल स्थित्वा विलम्ब्य च कृतो विहित अर्थात्प्रश्नस्य प्रस्तावोऽवसरो यया सैवविधा सतीत्यशेष समग्र पप्रच्छ अपृच्छत्। इतिशब्दद्योत्यमाह—कथमिति। कथ केन प्रकारेण राजा तारापीड। देवी विलासवती कथम्। कथमार्य शुकनास। कीदृशी चोज्जयिनी विशाला। सा चोज्जयिनीत कियत्यध्वनि मार्गे। कीदृग्भारत वर्ष क्षेत्रम्। रमणीयो वा मनोहरो वा मर्त्यलोको मनुष्यलोक। एवमिति। एवविधाभिरेवप्रकाराभि कथाभिर्वार्ताभि सुचिर बहुकाल स्थित्वावस्थान कृत्वोत्थाय कादम्बरी केयूरक चन्द्रापीडसमीपशायिन परिजन च समादिश्यादेश दत्त्वा शयनयोग्य यत्सौधशिखर तदारुरोह। रूढवती। तत्रेति। तत्र तस्मिन्सौधतले सित शुभ्र यद्दुकूल दुगूल तस्य वितान चन्द्रोदयस्तस्य तलमधोभागस्तत्रास्तीर्णं स्थापित शयनीय शय्यामलचकारालकृतवती। चन्द्रापीडोऽपि तस्मिन्नेव शिलातले निरभिमानतां निगर्वतामभिरूपतां विचक्षणतामतिगम्भीरता च कादम्बर्या, निष्कारणवत्सलता च निर्हेतुकहितकारिता च महाश्वेताया, सुजनता च मदलेखाया, महानु-

---

लगाइये, मेरी सखी कादम्बरी निश्चय ही, इससे दुःखी होती है। और इस रीति से यह सब क्यों कहा जाता है? यह सब तो उसने शब्दों में कहे बिना ही, पहले ही स्वीकार कर लिया है, फिर क्यों इस शिष्टाचार के कारण व्यर्थ कथन द्वारा उसको संदेह में डाला जा रहा है।" फिर कुछ देर चुप रह कर (प्रतीक्षा करके), तथा प्रश्न का अवसर प्राप्त करके 'राजा तारापीड कैसे हैं? रानी विलासवती कैसी है? आर्य शुकनास कैसे हैं? उज्जयिनी नगरी किस प्रकार की है? और वह नगरी कितनी दूरी पर है? भारत देश कैसा है? क्या मर्त्यलोक आकर्षक है?—आदि सभी कुछ पूछ डाला। और इन बातों में व्यस्त रहकर, बहुत देर तक बैठी रहने के पश्चात् उठ कर कादम्बरी केयूरक को तथा अन्य सेवकों को यह आज्ञा देकर कि वे चन्द्रापीड के समीप सोवेंगे, वह अपने शयनमहल की छत पर चढ़ गई। और वहाँ पर श्वेत रेशमी वितान के नीचे बिछी हुई शय्या को अलंकृत किया। चन्द्रापीड ने भी उसी शिलातल पर ही कादम्बरी की गर्वशून्यता, उसकी अत्यधिक सुन्दरता तथा चरित्र की गम्भीरता को, महाश्वेता की अकारण प्रीति को, मदलेखा की सज्जनता को, सेवक वर्ग की अत्य

च मदलेखायाः, महानुभावतां च परिजनस्य, अतिसमृद्धिं च गन्धर्वराजलोकस्य, रम्यता च किंपुरुषदेशस्य मनसा भावयन्केयूरकेण संवाह्यमानचरणः क्षणादिव क्षणदां क्षपितवान् ।

अथ क्रमेण कादम्बरीदर्शनजागरखिन्न स्वप्तुमिव तालतमालतालीकदलीकन्दलिनीं प्रविरलकल्लोलानिलशीतला वेलावनराजिमवततार तारापतिः। अभ्यर्णविरहविधुरस्य च कामिनीजनस्य निःश्वसितैरिवोष्णैर्म्लानिमनीयत चन्द्रिका। चन्द्रापीडविलोकनारूढमदनेव कुमुददलोदरनीतनिशा पङ्कजेषु निपपात लक्ष्मी। क्षणदापगमे

भावता च परिजनस्य अतिसमृद्धिं च गन्धर्वराजलोकस्य, रम्यतां मनोहरतां च किंपुरुषदेशस्य, मनसा भावयश्चिन्तयन्केयूरकेण संवाह्यमानौ लाल्यमानौ चरणौ पादौ यस्यैवंभूत क्षणादिव क्षणमात्रेण क्षणदा त्रियामां क्षपितवान्क्षयं नीतवान् ।

इदानीं रात्रिशेष चन्द्रास्त सूर्योदय च वर्णयश्चन्द्रापीडकर्तव्यतामाह—अथेति । क्षणदाक्षयानन्तरं कादम्बर्या यद् दर्शनमवलोकन तेन जागरो जागरणं तेन खिन्नो रीण स्वप्तुमिव शयन कर्तुमिव तारापतिश्चन्द्र । वेलेति । वेलाम्भसां वृद्धिस्तस्या वनराजिं कान्तारश्रेणिमवततारावतीर्णवान् । अथ वनराजि वर्णयन्नाह—तालेति । तालस्ताल, तमालस्तापिच्छ, ताली वृक्षविशेष, कदली रम्भा, आसा कन्दली विद्यते यस्यां सा ताम् । प्रविरलेति । प्रविरला स्तोका ये कल्लोलास्तरंगास्तेषामनिलो वायुस्तेन शीतला सुशीताम् । अभ्यर्णेति । अभ्यर्णस्तत्कालीनो यो विरहो वियोगस्तेन विधुरस्य दु खितस्य कामिनीजनस्योष्णैर्निश्वसितैर्निश्वासैरिव म्लानिं मलिनता चन्द्रिका चन्द्रगोलिकानीयत प्राप्यत । चन्द्रेति । चन्द्रापीडविलोकनेन आरूढ प्राप्तो मदनो यस्या एवंभूतेव । आरूढमदनतायास्तु शीतलस्थानावस्थिति प्रजागरश्च स्यादित्याशयेनाह—कुमुदेति । कुमुददलानां कैरवपत्राणाम् उदरे मध्ये नीता परिकलिता निशा रात्रिर्यया सा । तेषा विकसितत्वात् । तदनन्तरमेव पङ्कजेषु कमलेषु लक्ष्मीर्निपपात । क्षणदेति । क्षणदाया निशाया अपगमे कामिनीनां रते यान्कर्णोत्पलप्रहारान्, अथ

धिक उदारता को, गन्धर्वराज के प्रदेश की अतिशय ऐश्वर्यशालिता को तथा किन्नर प्रदेश की रमणीयता को मन में सोचते हुए केयूरक द्वारा दबाये जाते हुए पाँवों वाले ने वह रात्रि, मानो एक क्षण की भाँति ही बिता दी ।

तब उचित समय पर, नक्षत्राधिपति चन्द्रमा, कादम्बरी के दर्शन के लिए जागने के कारण मानो थका हुआ, सोने के लिये ही ताल, तमाल, ताली तथा केले के वृक्षों की नई कोंपलों से युक्त (समीपस्थ समुद्र की) निरन्तर आयीं लहरों की वायु से शीतल हुई तटीय वनों की पंक्तियों मे उतर गया। चाँदनी को, समीप आते हुए वियोग के कारण दु:खी स्त्रियों की गरम आहों ने ही मानो धीमी कर दिया था। मानो चन्द्रापीड के दर्शन से काम पीडिता लक्ष्मी, प्रणयासक्ता स्त्री की भाँति कुमुदों की पखुड़ियों के ऊपर रात्रि बिताकर अब कमलों पर (अर्थात् दिवसकालीन कमलों की शय्या पर) आ पड़ी थी और रात्रि के बीत जाने पर

च स्मृत्वा कामिनीकर्णोत्पलप्रहारानुत्कण्ठितेष्विव क्षामतां व्रजत्सु, पाण्डुतनुषु गृहप्रदीपेषु, अनवरतशरक्षेपखिन्नानङ्गनिःश्वासविभ्रमेषु वहत्सु लताकुसुमपरिमलेषु प्रभातमातरिश्वसु, सुमन्दरलतागृहगहनानि च भियेव भजन्तीष्वरुणोदयोपप्लविनीषु तारकासु क्रमेण च समुद्गते चक्रवाकहृदयनिवासलग्नानुरागमिव लोहितं मण्डलमुद्वहति सवितरि शिलातलादुत्थाय चन्द्रापीडः प्रक्षालितमुखकमलः कृतसध्यानमस्कृतिर्गृहीतताम्बूलः 'केयूरक, विलोकय देवी कादम्बरी प्रबुद्धा न वा, क्व वा तिष्ठति' इत्यवोचत्। गतप्रतिनिवृत्तेन च तेन 'देव, मन्दरप्रासादस्याधस्तादङ्गणसौधवेदिकायां महाश्वेतया सहावतिष्ठते' इत्यावेदिते गन्धर्वराजतनयामालोकयितुमाजगाम। ददर्श च धवलभस्म-

वान्यानपि क्रीडाविलासान्स्मृत्वा स्मरणं कृत्वा पुनर्द्रष्टुमुत्कण्ठितेष्विवात एवोत्कण्ठापरिपूर्त्यां क्षामतां कृशतां व्रजत्सु गच्छत्सु, तत एव पाण्डुतनुषु गृहदीपकेषु सत्सु। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं यः शरक्षेपो बाणप्रक्षेपस्तेन खिन्नो रीणो योऽनङ्गः कंदर्पस्तस्य निःश्वासास्तेषां विभ्रमेषु लता वल्लयस्तासां कुसुमानां पुष्पाणां परिमलो येष्वविधेषु प्रभातमातरिश्वसु प्रत्यूषसमीरेषु वहत्सु। अरुणोदयेन उपप्लव उपद्रवो विद्यते यासामेवंविधासु तारकासु तारासु भियेव भीत्येव सुमन्दरो मेरुस्तस्य लता वीरुधस्ता इव गृहास्तेषां गहनान्यरण्यानि च भजन्तीष्वाश्रयन्तीषु। क्रमेण परिपाट्या चक्रवाको रथाङ्गाह्वयस्तस्य हृदयं तेन सह निवासस्तत्र लग्नोऽनुरागो यस्यैवंविधमिव लोहितं मण्डलं बिम्बमुद्वहति धारयति सवितरि सूर्ये च समुद्गते उदिते सति शिलातलादुत्थाय प्रक्षालितं मुखकमलं येन स, कृता सध्याया नमस्कृतिर्येन स, गृहीतं भक्षितं ताम्बूलं येन स, हे केयूरक, विलोकय देवी कादम्बरी प्रबुद्धा न वा। क्व वा तिष्ठतीत्यवोचत्। गतप्रतिनिवृत्तेन च तेन केयूरकेण हे देव, मन्दरप्रासादस्याधस्तादङ्गणं तत्र यत्सौधं तस्य वेदिकायां महाश्वेतया सहावतिष्ठते। इत्यावेदिते कथिते सति गन्धर्वराजतनयामालोकयितुं वीक्षितुमाजगाम। तदनन्तरं महाश्वेतां कादम्बरीं च ददर्शावलोकयामास। अथ

पर, स्त्रियों के कान पर पहने हुए कमलों द्वारा की गयी चोटों को स्मरण करके, उसके लिये उत्सुक (मानो प्रेमरोगी) बने शयन गृह के दीपक जब देखने में पतले तथा पीले (फीके) पड़ गये, जब निरन्तर बाण फेंकने से थके हुए कामदेव के श्वसोच्छ्वासों के विलासों से मिलते-जुलते विलासों वाली तथा लताओं पर के फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित प्रातःकालीन हवाएँ चलने लगीं, जब सूर्योदय से विपत्तिग्रस्त नक्षत्र मानो डरकर ही मन्दर पर्वत की लताओं के कुञ्जों में चले गये और धीरे-धीरे (अथवा काल क्रमानुसार) उदित हुए सूर्य ने चक्रवाक के हृदय में (रात्रिभर) निवास करने से लगे अनुराग (लालिमा—प्रणयोन्माद) से ही मानो लाल हुए अपने मण्डल को धारण कर लिया, तब शिलातल से उठ कर, मुखकमल को धोकर सन्ध्या को नमस्कार करके पान ग्रहण करके चन्द्रापीड बोला—'केयूरक, जाकर देखो देवी कादम्बरी अभी जाग गयी या नहीं। अथवा वह (इस समय) कहाँ है।''

और जाकर लौटे हुए उसने जब यह बताया कि 'कुमार! मन्दर-महल के ठीक नीचे, आङ्गन में स्थित (सुधा) चूने के बने (श्वेत) मच पर महाश्वेता के साथ (कादम्बरी) बैठी

ललाटिकाभिरक्षमालापरिवर्तनप्रचलकरतलाभिः पाशुपतव्रतधारिणीभिर्धातुरागारुणाम्बराभिश्च परिव्राजिकाभिः परिणततालफलवल्कललोहितवस्त्राभिश्च रक्तपटव्रतवाहिनीभिः सितवसननिबिडनिबद्धस्तनपरिकराभिश्च श्वेतपटव्यजनाभिर्जटाजिनवल्कलाषाढधारिणीभिर्वर्णिचिह्नाभिस्तापसीभिः साक्षादिव मन्त्रदेवताभिः पठन्तीभिर्भगवतस्त्र्यम्बकस्याम्बिकायाः कार्तिकेयस्य विश्रवस्य कृष्णस्यार्यविलोकितेश्वरस्यार्हतो विरिञ्चस्य पुण्याः स्तुतीरुपास्यमानामन्तःपुराभ्यर्हिताश्च सादर नमस्कारैराभाषणैरभ्युत्थानैरासन्नवेत्रासनदानैश्च गन्धर्वराजबान्धववृद्धाः समानयन्ती महाश्वेताम्,

महाश्वेतां विशिनष्टि—साक्षादिति । साक्षान्मन्त्रदेवताभिरिव परिव्राजिकाभिस्तापसीभिरुपास्यमानाम् । ता विशिनष्टि—धवलेति । धवल शुभ्र यद्भस्म भूतिस्तस्य ललाटिका यासा ताभि' । अक्षेति । अक्षमाला जपमालास्तासा परिवर्तन तेन प्रचलानि कम्प्राणि करतलानि यासां ताभि । पशुपतेरीश्वरस्येद पाशुपतं यद् व्रत नियमविशेषस्तद्धारयन्तीत्येवशीलास्ताभिर्धातुरागेण गैरिकेणारुणान्यम्बराणि यासां ताभि । परिणता ये तालफलास्तेषा वल्कलानि तान्येव लोहितानि रक्तानि वस्त्राणि यासा ताभि' । रक्तेति । रक्त' य पटस्तस्य यद् व्रत तद्वाहिनीभिस्तन्निर्वाहकारिणीभि । अथ तापसीं विशिनष्टि—सितेति । सितवसनेन श्वेत वस्त्रेण निबिड यथा स्यात्तथा निबद्ध स्तनपरिकर कुचाभोगो याभि । श्वेतपटस्य व्यजनानि तालवृन्तानि यासा ताभि. । जटेति । जटा सटा', अजिन मृगचर्म, वल्कल चोचम्, आषाढ पालाश, एतान्धारयन्तीत्येवशीलास्ताभि । वर्णी ब्रह्मचारी तस्य चिह्न यासा ताभि । किं कुर्वन्तीभिरेताभि । पठन्तीभिरुच्चारयन्तीभि. । का । भगवतस्त्र्यम्बकस्येश्वरस्य, अम्बिकाया गौर्या, कार्तिकेयस्य स्कन्दस्य, विश्रवस्य विश्रवस, कृष्णस्य जिनस्य, आर्यविलोकितेश्वरस्य बौद्धस्य, अर्हतस्तीर्थंकरस्य, विरिञ्चस्य ब्रह्मण, पुण्या पवित्रा स्तुतीर्नुती । पुन किं कुर्वन्तीम् । अन्त पुरेऽभ्यर्हिता श्रेष्ठा गन्धर्वराजस्य बान्धवा स्वजनास्तेषा वृद्धा स्थविरा

है'—तब चन्द्रापीड चित्ररथ की कन्या (कादम्बरी) को देखने के लिये आया । और वहाँ उसने श्वेत भस्म से चिह्नित मस्तकों वाली, जपमाला के मनकों को फेरने मे चलती हथेलियों वाली, पाशुपत व्रत धारण किये हुई, धात्वीय रगों से रगे लाल वस्त्रों वाली सन्यासिनियों द्वारा पके तालफल की छाल के समान लाल वस्त्रोंवाली 'रक्तपट' नाम के व्रत को धारण किये हुई तथा श्वेत वस्त्र से कसकर बन्धी कमरों वाली 'श्वेतपट' (नाम के सम्प्रदाय) के वेष को धारण किये हुई तपस्विनियों द्वारा, ब्रह्मचारी के चिह्नों को तथा जटा, मूँज की मेखला, वल्कल वस्त्र पहने हुई तथा पलाश के दण्ड लिये हुई तपस्विनियों द्वारा और (अपने अपने इष्ट देवता जैसे कि) भगवान् शिव, पार्वती, कार्तिकेय, विष्णु जिन, कृष्ण, आर्यविलोकितेश्वर, अर्हत् तथा ब्रह्मदेव की पवित्र स्तुतियों को पढ़ती हुई शरीरधारिणी मत्राधिष्ठात्री देवता सरीखियों द्वारा सेवित अन्तःपुर की पूजनीय, चित्ररथ की सम्बन्धिनी वृद्धाओं का, आदरसहित नमस्कार, वार्तालाप, (उनके पधारने पर) उठ कर खड़े होना, आसन्नवर्ती वेत्रासन को (स्वय) अर्पित करना—आदि कार्यों से आदर करती हुई, महाश्वेता को

पृष्ठतश्च समुपविष्टेन किंनरमिथुनेन मधुकरमधुराभ्या वशाभ्या दत्ते ताने कलगिरा गायन्त्या नारददुहित्र्या पठ्यमाने च सर्वमङ्गलमहीयसि महाभारते दत्तावधाना पुरो धृते च दर्पणे ताम्बूलरागबद्धकृष्णिकान्धकारिताभ्यन्तरं दशनज्योत्स्नासिक्तमुत्सृष्ट-मधूच्छिष्टपट्टपाण्डुरमधर विलोकयन्ती शैवलतृष्णया कर्णपूरशिरीषप्रेषितोत्तानविलो-चनेन बद्धमण्डल भ्रमता भवनकलहंसेन प्रभातशशिनेव क्रियमाणगमनप्रणामप्रद-क्षिणा कादम्बरीं च समुपसृत्य कृतनमस्कारस्तस्यामेव वेदिकाया विन्यस्तमासन

सादर सत्कारपूर्वक नमस्कारै प्रणामैराभाषणैर्जल्पनैरभ्युत्थानैरुत्तिष्ठनैरासन्ने समीपे वेत्रासन-स्यासन्द्या दानैश्च कृत्वा समानयन्तीं सत्कार कुर्वन्तीं महाश्वेताम्। पुन कीदृशीं कादम्बरीम्। पृष्ठत समुपविष्टेन पश्चाद्भागस्थितेन किंनरमिथुनेन किंपुरुषयुग्मेन मधुकरवन्मधुराभ्या वशा-भ्यासुपाङ्गाभ्या ताने स्वरे दत्ते सति। नारदो देवब्रह्मा तस्य दुहित्र्या पुत्र्या भद्राभिधानया कलगिरा मनोज्ञवाण्या गायन्त्या गान कुर्वन्त्या। पठ्यमाने गानद्वारा कथ्यमाने च सर्वमङ्गलै समग्रश्रेयोभिर्महीयसि महाभारते दत्तावधानां न्यस्तचित्ताम्। पुन किं कुर्वन्तीम्। पुरो धृतेऽग्रे स्थापिते दर्पणेऽधर दन्तच्छद विलोकयन्तीं पश्यन्तीम्। अथाधर विशेषयन्नाह— ताम्बूलेति। ताम्बूल नागवल्लीदलं तस्य रागस्तेन बद्धा या कृष्णिका श्यामता तयान्ध-कारितमन्धकारवदाचरितमभ्यन्तर मध्यभागो यस्य तत्। दशनेति। दशनानां दन्तानां या ज्योत्स्ना चन्द्रिका तया सिक्तं खिन्नितम्। उत्सृष्टेति। उत्सृष्टमुज्झित मधु क्षौद्रं येनैवंविधो य उच्छिष्टपट्टो मदनपिण्डस्तद्वत्पाण्डुर श्वेतरक्तम्। बद्धेति। बद्धमण्डल यथा स्यात्तथा भ्रमता भ्रमण कुर्वता भवनकलहंसेन गृहकलहंसेन प्रभातकालीनो य शशी चन्द्रस्तेनेव क्रियमाणा विधीयमाना गमनसमये प्रणामयुक्ता प्रदक्षिणा यस्या सा ताम्। कलहसान्विशेष-यन्नाह—शैवलेति। शैवल शैवाल तस्य तृष्णया गर्धेन कर्णपूरीकृत यच्छिरीषपुष्प तस्मिन् प्रेषित उत्तान ऊर्ध्वमुखे विलोचने नेत्रे यस्य स तेनैवंविधां कादम्बरीं च समुपसृत्य निकटे गत्वा कृतो नमस्कारो येनैवंभूतो यस्यां सा समुपविष्टास्ति तस्यामेव वेदिकाया विन्यस्त

देखा। और उसने कादम्बरी को (भी) देखा जो (उस समय), पीछे बैठी हुई किन्नर जोड़ी द्वारा भौरों (की गुञ्जार)—सरीखी मीठी (ध्वनि वाली) दो बाँसुरियों पर ताल मिलाये हुए, नारद की पुत्री द्वारा मीठी ध्वनि में पढ़े जा रहे, सब मागलिक अर्थात् पवित्र पुस्तकों में सबसे अधिक मागलिक महाभारत ग्रन्थ मे ध्यान दिये हुई थी; और सामने रखे हुए मणिजटित दर्पण में, (उस द्वारा निरन्तर चबाये जा रहे) पान के रग द्वारा प्रदत्त कालिमा से काले हुए भीतरी भागवाले, (उसके) दान्तों की मृदु चमक से सींचे हुए—(जिस पर दान्तों की मृदु चमक फैली हुई थी) और मधुरहित मोम पिण्ड के समान श्वेत लाल अधर को देख रही थी, शैवाल पौधे की कोंपल की लालसा में (शिरीष पुष्प को शैवाल की कोंपल समझ कर) कर्णाभूषण के (रूप मे पहने हुए) शिरीषपुष्प की ओर प्रेरित अपनी खूब खुली हुई आँख वाले पालतू हस द्वारा, मानो कि प्रात:कालीन चन्द्रमा द्वारा ही जिसकी गमन (-कालीन) प्रणाम तथा प्रदक्षिणा की जा रही थी। चन्द्रापीड समीप पहुँच कर

भेजे। स्थित्वा च कंचित्कालं महाश्वेताया वदनं विलोक्य स्फुरितकपोलोदर मन्दस्मितमकरोत्। असौ तु तावतैव विदिताभिप्राया कादम्बरीमब्रवीत्—'सखि, भवत्या गुणैश्चन्द्रापीडश्चन्द्रकान्त इव चन्द्रमयूखैरार्द्रीकृतो न शक्नोति वक्तुम्। जिगमिषति खलु कुमारः। पृष्ठतो दुःखमविदितवृत्तान्त राजचक्रमास्ते। अपि च युवयोर्दूरस्थितयोरपि स्थितेयमिदानीं कमलिनीकमलबान्धवयोरिव कुमुदिनीकुमुदनाथयोरिव प्रीतिराप्रलयात्। अतोऽभ्यनुजानातु भवती' इति।

अथ कादम्बरी 'सखि, महाश्वेते, स्वाधीनोऽयं सपरिजनो जनः कुमारस्य स्व इवान्तरात्मा। क इवात्रानुरोधः' इत्यभिधाय गन्धर्वकुमारानाहूय 'प्रापयत

स्थापितमासन विष्टर भेजेऽभजत्। तत्र कंचित्काल स्थित्वा स्थितिं विधाय महाश्वेताया वदन विलोक्य निरीक्ष्य स्फुरित चलित कपोलयोरुदर मध्यप्रदेशो यस्मिन्नेतादृश मन्दस्मित मीषद्धास्यमकरोत्। असौ महाश्वेता तु तावतैव स्मितमात्रेणैव विदितो ज्ञातोऽभिप्रायो यया सैवविधा सती कादम्बरीमित्यब्रवीत्। इतिशब्दद्योत्यमाह—सखीति। हे सखि आलि, भवत्या गुणै कारणभूतैश्चन्द्रापीडश्चन्द्रमयूखै शशिकिरणैश्चन्द्रकान्त इव चन्द्रोपल इवार्द्रीकृतो वक्तु कथयितु न शक्नोति न समर्थो भवति। खलु निश्चयेन कुमारो जिगमिषति चिचलिषति। पृष्ठतो मद्गमनानन्तरमविदितवृत्तान्तमज्ञातोदन्तमतएव दु ख दु खित राजचक्रं नृपसमूह आस्ते वर्तते। अपि चेति युक्त्यन्तरे। युवयो कादम्बरीचन्द्रापीडयोर्दूरस्थितयोरपीदानीं सांप्रत कमलिनीकमलबान्धवयोरिव पद्मिनीसूर्ययोरिव कुमुदिनीकुमुदनाथयोरिव कैरविणीचन्द्रमसोरिव प्रीति स्नेह आ प्रलयात्प्रलयं मर्यादीकृत्य आकल्पान्तादिय स्थिता। अतो हेतोर्भवत्यभ्यनुजानातु। गमनाज्ञा ददात्वित्यर्थं।

अथेति। एतच्छ्रवणानन्तर कादम्बरी गन्धर्वकुमारानाहूयाह्वान कृत्वेत्यादिदेशेत्यादिष्टवती। इतिशब्दवाच्यमाह—कुमारेति। कुमारं चन्द्रापीड स्वा भूमिं प्रापयत आपयत

नमस्कार करके उसी वेदिका के ऊपर रखे हुए आसन पर बैठ गया। और कुछ देर रुक कर महाश्वेता के चेहरे को देखकर वह इस प्रकार मन्द-मन्द मुस्कराया कि उसकी गालें बीच मे से बस कुछ कुछ थर थरायीं। किन्तु महाश्वेता, उतने मात्र से ही उसके अभिप्राय को जान गयी और कादम्बरी से बोली—"सखि! जैसे चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रकान्त मणि प्रभावित हो जाती है, वैसे ही तेरे गुणों से प्रभावित (मृदु) हुआ चन्द्रापीड कुछ बोल नहीं पा रहा है। निश्चय ही वह जाना चाहता है। पीछे छूटा हुआ उसका सैन्य (राजचक्रम्) उसके समाचार को न जाने हुआ, अवश्य ही दु:खी होगा। और इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि परस्पर दूरी पर स्थित भी तुम दोनों की प्रीति अब प्रलय (मृत्यु) पर्यंत वैसी ही स्थिर हो गयी है जैसी कि कमलिनी तथा कमलबन्धु सूर्य की और कुमुदिनी तथा कुमुदनाथ—चन्द्रमा की।

इसके पश्चात् कादम्बरी ने "सखि महाश्वेता, सारे सेवक वर्ग समेत यह (कादम्बरी) उस (चन्द्रापीड) के वश में ऐसे है जैसे कि उसकी अपनी अन्तरात्मा हो (वह जैसा चाहे वैसा आदेश दे)। इस विषय में हमारे अनुरोध (इच्छा) की उसको क्या आवश्यकता है यह कह-

कुमारं स्वां भूमिम्' इत्यादिदेश। चन्द्रापीडोऽप्युत्थाय प्रणम्य प्रथमं महाश्वेतां ततः कादम्बरीं तस्याश्च प्रेमस्निग्धेन चक्षुषा मनसा च गृह्यमाणः 'देवि, किं ब्रवीमि। बहुभाषिणे न श्रद्दधाति लोकः। स्मर्तव्योऽस्मि परिजनकथासु' इत्यभिधाय कन्यकान्तःपुरान्निर्जगाम। कादम्बरीवर्जोऽशेषः कन्यकाजनो गुणगौरवाकृष्टः परवश इव तं व्रजन्तमा बहिस्तोरणादनुवव्राज। निवृत्ते च कन्यकाजने केयूरकेणोपनीतं वाजिनमारुह्य गन्धर्वकुमारकैस्तैरनुगम्यमानो हेमकूटात्प्रवृत्तो गन्तुम्। गच्छतश्चास्य चित्ररथतनया न केवलमन्तर्बहिरपि सैव सर्वाशानिबन्धनमासीत्। तथा हि—

यूयम्। किं कृत्वा। इत्यभिधायेत्युक्त्वा। इतिशब्दार्थमाह—हे सखि महाश्वेते, अयं मल्लक्षणः सपरिवारो जनः कुमारस्य स्वान्तरात्मेव स्वाधीनः स्ववशः। अतः कोऽत्रानुरोधः संकोचः। चन्द्रापीडोऽप्युत्थायोत्थानं कृत्वा प्रथममादौ महाश्वेतां प्रणम्य नमस्कृत्य ततस्तदनन्तरं कादम्बरीं प्रणम्य नमस्कृत्य तस्याः कादम्बर्याः प्रेमस्निग्धेन स्नेहचिक्कणेन चक्षुषा नेत्रेण मनसा च गृह्यमाणः इत्यभिधायोक्त्वा कन्यकान्तःपुरान्निर्जगाम निर्गतो बभूव। इतिशब्दार्थमाह—देवीति। हे देवि कादम्बरि, किं ब्रवीमि किं कथयामि। 'ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु शब्देन' इति न्यायात्। अत्र हेतुमाह—यतो बहुभाषिणे वाचालाय लोको जनो न श्रद्दधाति न श्रद्धत्ते। अत उपसंहरति—परीति। परिजनकथासु निजसेवकवार्तासु स्मर्तव्यः स्मरणीयोऽस्मि। अहमिति शेषः। तदनन्तरं कादम्बरीवर्जोऽशेषः समग्रः कन्यकाजनो गुणगौरवेणाकृष्ट आकर्षितः परवश इव परायत्त इव तं चन्द्रापीडं व्रजन्तं गच्छन्तमा बहिस्तोरणाद् बहिर्द्वारं मर्यादीकृत्यानुवव्राज पृष्ठतो जगाम। तदनन्तरं निवृत्ते च पश्चाद्वलिते च कन्यकाजने केयूरकेणोपनीतमानीतं वाजिनमारुह्यारोहणं कृत्वा तैः पूर्वोक्तैर्गन्धर्वकुमारकैरनुगम्यमानो हेमकूटाद्गन्तुं प्रवृत्तः। गच्छतो व्रजतोऽस्य चन्द्रापीडस्य चित्ररथतनया कादम्बरी न केवलमन्तर्बहिरपि सैव कादम्बरी सर्वाशानिबन्धनं समग्राभिलाषाणां कारणमासीद् बभूव।

कर, (कुछ) गन्धर्वकुमारों को बुलाकर "राजकुमार को अपनी भूमि मे पहुँचा दो'—यह आज्ञा दी। चन्द्रापीड भी उठकर पहले महाश्वेता को और फिर कादम्बरी को प्रणाम करके, और उसकी प्रीति से आर्द्र (नम हुई) दृष्टि से तथा उसके (भद्र) मन से आकर्षित किया जाता हुआ "देवि, मैं भला क्या कहूँ? (क्योंकि) लोग बहुत बोलने वाले व्यक्ति पर विश्वास नहीं करते हैं, (केवल इतनी ही प्रार्थना है कि) सेवकों के विषय मे की गयी बातचीत मे मुझे स्मरण कर लेना।"—यह कह कर कन्याओं के अन्त पुर से निकल गया। कादम्बरी को छोड़ कर शेष सभी कन्यायें, उसके गुणों के प्रति आदर भावना से आकृष्ट हुई ही, मानो पराधीन (गुण अर्थात् रस्सी द्वारा खिंची हुई सी) हुई सी, जाते हुए उसके पीछे पीछे तोरण तक (बाह्य द्वार तक) गयीं। कन्याओं के लौट जाने पर केयूरक द्वारा लाये गये घोड़े पर चढ़कर गन्धर्व कुमारों द्वारा अनुगम्यमान वह हेमकूट से चलने लगा। और जाते हुए (घोड़े पर सवार होकर चलते हुए) इस चन्द्रापीड के उस सम्बन्धी विचारों से भरे हुए मनमें चित्ररथ-पुत्री (कादम्बरी) केवल अन्दर से ही सब आशाओं का आश्रय नहीं थी अपितु बाहर से

तन्मयेन मानसेनासह्यविरहदुःखानुशयलग्नामिव पृष्ठतः, कृतमार्गगमननिरोधामिव पुरस्तात्, वियोगाकुलहृदयोत्कलिकावेशात्क्षिप्तामिव नभसि सम्यगालोकयितु वदनम्, विरहातुरमानसामिवावस्थितामुरःस्थले, तामेव ददर्श। क्रमेण च प्राप्य महाश्वेताश्रममच्छोदसरस्तीरे सनिविष्टमिन्द्रायुधखुरपुटानुसारेणैवागतमात्मस्कन्धावारमपश्यत्। निवर्तिताशेषगन्धर्वकुमारश्च सानन्देन सकुतूहलेन सविस्मयेन च स्कन्धावारवर्तिना जनेन प्रणम्यमानः स्वभवनं विवेश। समानिताशेषराजलोकश्च वैशम्पायनेन पत्रलेखया च सहैव महाश्वेता, एव कादम्बरी, एव मदलेखा, एव

एतदेव दर्शयति—तथा हीति। तन्मयेन कादम्बरीमयेन मानसेन चित्तेन कृत्वासह्य न सोढु शक्य यद्विरहदु ख तस्यानुशय सतापस्तेन पृष्ठतो लग्नामिव, पुरस्तादग्रे कृतो मार्गगमनस्य निरोधो यया सैवविधामिव, वियोगेन विरहेणाकुल यद्धृदय चित्त तस्मिन्नुत्कलिका हल्लेखस्तस्या आवेशात्प्रवेशात्सम्यग्वदनमालोकयितु वीक्षितु नभसि व्योम्नि क्षिप्तामिव पर्यस्तामिव। विरहेण वियोगेनातुर पीडयितु मानस यस्या एवविधामिवोर स्थलेऽवस्थिताम्। तामेव कादम्बरीमेव ददर्शेक्षांचक्रे। क्रमेण परिपाट्या च महाश्वेताश्रम प्राप्यासाद्याच्छोदसर स्तीरे सनिविष्ट स्थापितमिन्द्रायुधखुरपुटानुसारेणैवागत प्राप्तमात्मन स्वस्य स्कन्धावार सैन्य निवेशमपश्यदैक्षत। निवर्तितेति। निवर्तिता पश्चाद्वालिता अशेषा समग्रा गन्धर्वकुमारा येनैवभूतश्च सानन्देन सप्रमोदेन। सेव प्रभुदर्शनादिति भाव। सकुतूहलेन कौतुकसहितेन। अत्यद्भुतगन्धर्वजनदर्शनात्। सविस्मयेन साश्चर्येण। तादृशमुक्ताप्रालम्बदर्शनात्। एवविधेन च स्कन्धावारवर्तिना जनेन प्रणम्यमानो नमस्क्रियमाण स्वभवन स्वगृह विवेश प्रवेश कृतवान्। समानित सस्तुतोऽशेष समग्रो राजलोको येनैवभूतश्च वैशम्पायनेन पत्रलेखया च सहैव महाश्वेता, एव कादम्बरी, एव मदलेखा, एव तमालिका, एव केयूरक, इत्यनयैव कथया वार्तया प्रायो बाहुल्येन दिवस वासरमनैषीत्। परिपूर्णीचकारेत्यर्थ। कादम्बर्या रूपदर्शन

भी सभी आशाओं (दिशाओं) मे व्याप्त थी। जैसे कि—उस (से सम्बद्ध विचारों) से भरे मन के द्वारा उसने असह्य वियोग-दु ख से उत्पन्न सन्ताप के कारण अपनी पीठ से मानो लगी हुई उसको ही देखा, सामने की ओर मानो मार्ग पर चलने की रुकावट को डाले हुई को देखा, चेहरे को भली भाँति देखने के लिए, वियोग से दु खी हृदय की लालसा (उत्कण्ठा) के बल द्वारा मानो उसको आकाश मे फेंकी हुई को देखा, मानो वियोग से दु खी मन वाली उसके वक्ष स्थल पर बैठी हुई को देखा। और क्रमश. महाश्वेता के आश्रम मे पहुँच कर, उसने अच्छोद सरोवर के तट पर ठहरी हुई केवल इन्द्रायुध के खुरों के चिह्नों के साथ साथ चलकर ही वहाँ तक पहुँची सेना को देखा।

और सभी गन्धर्व-युवकों को लौटाये हुआ, (उसके लौट आने से) आनन्दित हुए, उत्सुक हुए तथा आश्चर्यान्वित हुए सैन्यवर्ती लोगों द्वारा नमस्कार किया जाता हुआ अपने कक्ष (तम्बू) में घुस गया। फिर सभी (उपस्थित) राजपुत्रों का सम्मान कर लेने के पश्चात् वैशम्पायन तथा पत्रलेखा के साथ 'महाश्वेता ऐसी है, कादम्बरी ऐसी है, मदलेखा ऐसी है,

तमालिका, एव केयूरकः, इत्यनयैव कथया प्रायो दिवसमनैषीत्। कादम्बरीरूपदर्शनविद्विष्टेव नास्य पुरे प्रीतिमकरोद्राजलक्ष्मीः। तामेव च धवलेक्षणामाबद्धरणरणकेन[1] चेतसा चिन्तयतो जाग्रत एवास्य जगाम रात्रिः। अपरेद्युश्च समुत्थिते भगवति रवावास्थानमण्डपगतस्तद्गतेनैव मनसा सहसैव प्रतीहारेण सह संप्रविशन्तं केयूरकं ददर्श। दूरादेव च क्षितितलस्पर्शिना मौलिना कृतपादपतनम् 'एह्येहि' इत्युक्त्वा प्रथममपाङ्गविसर्पिणा चक्षुषा, ततो हृदयेन, ततो रोमोद्गमेन, पश्चाद्भुजाभ्या प्रधावितः प्रथितमालिलिङ्ग गाढम्। उपावेशयच्चैनमात्मनः समीप एव। पप्रच्छ

तेन विद्विष्टेव विद्वेष प्राप्तेव राजलक्ष्मीर्नास्य पुरेऽस्य शरीरे। 'घनो बन्ध पुर पिण्ड' इति कोश। प्रीतिमकरोत्। तामेव धवलेक्षणां कादम्बरीमाबद्धरणरणकेन निबद्धौत्कण्ठ्येन चेतसा चिन्तयतो ध्यायतो जाग्रत एव अस्य चन्द्रापीडस्य रात्रिर्जगाम। अपरेद्युश्चेति। अपरस्मिन्दिने भगवति रवौ समुत्थिते सति तद्गतेनैव कादम्बरीगतेनैव मनसास्थानमण्डपगत सहसैवातर्कित एव प्रतीहारेण सह सप्रविशन्त केयूरक ददर्शाद्राक्षीत्। दूरादेवेति। दूरादेव दर्शनमात्रादेव क्षितितल स्पृशतीत्येवशीलेन मौलिना मस्तकेन कृत पादपतन येन तम्, एह्येहीत्युक्त्वेत्यभिधाय। इद प्रीत्यतिशयनिवेदकम्। प्रथममादावपाङ्गविसर्पिणा नेत्रप्रान्तचारिणा चक्षुषा नेत्रेण, ततस्तदनन्तर हृदयेन स्वान्तेन, ततस्तदनन्तर रोमोद्गमेनोद्भूषणेन, तत पश्चाद् भुजाभ्यां बाहुभ्या प्रधावित उच्चलित प्रथित विख्यात गाढमत्यर्थमालिलिङ्गोपगूहितवान्। पुन केयूरकं आत्मन समीप एव आत्मीयासनाभ्यर्णं एवोपावेशयदस्थापयच्च। पुन स्मितसुधाधवलीकृतान्यक्षराणि यस्मिस्तत्क्षरत्स्नेहवद्य प्रीतिद्रवस्तन्मयमिव तन्निर्मितमिवैतादृश वचनमादृत आदरवान्पप्रच्छ। प्रश्न चकारेत्यर्थ। किं तदित्याह—केयूरकेति। हे केयूरक, कथय ब्रूहि। कुशलिनी

तमालिका ऐसी है, केयूरक ऐसा है इत्यादि'—इसी प्रकार की बात चीत मे व्यस्त रह कर उसने प्राय वह सारा दिन बिता दिया। राजलक्ष्मी ने (चन्द्रापीड द्वारा) कादम्बरी के सौन्दर्य का दर्शन कर लेने से मानो चिढी हुई ने ही इसमे पहले की सी प्रीति नहीं पायी। और उसने चमकीली (धवल) आँखों वाली उस कादम्बरी को ही अपने व्यग्रतायुक्त चित्त से सोचते हुए तथा जागते हुए ही रात बीत गयी। और अगले दिन भगवान् सूर्यदेव के उदित हो जाने पर, सभामण्डप मे पहुँचे हुए चन्द्रापीड ने अपने (उस कादम्बरी मे) गये हुए (उसी का ध्यान करते हुए) मन से, अचानक ही द्वारपाल के साथ प्रवेश करते हुए केयूरक को देखा। और दूर से ही धरातल को छुए हुए मस्तक से पादपतन किये हुए (खूब सिर झुका कर उसके पाँवों में गिरे हुए) केयूरक को 'आओ, आओ' यह कहकर उसकी ओर दौड़े हुए चन्द्रापीड ने पहले तो (अपने) अपाङ्ग भागों तक फैल कर पहुँची हुई आँखों से, फिर हृदय से, पुन. रोमाचों से, पश्चात् बाहुओं से मार्ग में ही उसका गाढ़ आलिङ्गन किया। और इसको अपने समीप ही बैठा लिया। और आदरवान् चन्द्रापीड ने मुस्कान की सुधा से (बोलते समय) श्वेत किये हुए अक्षरों वाले मानो उस रूप में बह निकलते प्रेम रस से ही बने हुए वाक्य में

१ रणरणकम् = परेशानी।

च स्मितसुधाधवलीकृताक्षरं क्षरत्प्रीतिद्रवमयमिव वचनमाहृतः—'केयूरक, कथय कुशलिनी देवी ससखीजना सपरिजना कादम्बरी भगवती महाश्वेता च' इति। असौ तु तेन राजसूनोः प्रीतिप्रकर्षजन्मना स्मितेनैव स्नपित इवानुलिप्त इव सद्य एवापगताध्वखेदः प्रणम्याहततरमवोचत्—'अद्य कुशलिनी, यामेव देवः पृच्छति।' इत्यभिधायापनीयार्द्रवस्त्रावगुण्ठित बिससूत्रसयतमुखमार्द्रचन्दनपङ्कन्यस्तबालमृणालवलयमुद्र नलिनीपत्रपुटमदर्शयत्। उद्घाट्य च तत्र कादम्बरीप्रहितान्यभिज्ञानान्यदर्शयत्। तद्यथा—मरकतहरिन्ति व्यपनीतत्वञ्चि चारुमञ्जरीभाञ्जि क्षीरीणि पूगीफलानि, शुककामिनीकपोलपाण्डूनि ताम्बूलीदलानि, हरचन्द्रखण्डस्थूलशकल च

क्षेमवती देवी ससखीजना सपरिजना कादम्बरी वर्तते। तथा महाश्वेता भगवती च। असौ त्विति। असौ केयूरकस्तु तेनानिर्वचनीयेन राजसूनोश्चन्द्रापीडस्य प्रीत्या प्रकर्षस्तस्माज्जन्मोपत्तिर्यस्यैवभूतेन स्मितेनैव स्नपित इव स्नान कारित इव, अनुलिप्त इव विलिप्त इव, सद्य इव तत्कालमेवापगतोऽध्वखेद पथश्रमो यस्य स प्रणम्य नमस्कृत्याहततरमत्यादरपूर्वकमवोचदब्रवीत्। अद्य कुशलिनी सा वर्तते, यामेव देव पृच्छतीत्यभिधायेत्युक्त्वापनीय दूरीकृत्यार्द्रवस्त्रेण स्तिमितांशुकेनावगुण्ठितमाच्छादित बिससूत्रेण मृणालतन्तुना सयतं बद्ध मुख यस्य तत्। आर्द्रचन्दनपङ्को न्यस्तो यस्मिन्नेतादृश बालमृणालवलय नवीनतन्तुलकटक तस्य मुद्रा यस्मिन्नेतादृश नलिनीपत्रपुटमदर्शयदीक्षणविषयमकारयत्। उद्घाट्योन्मुद्र्य तत्र तस्मिन्कादम्बरीप्रहितानि। राजपुत्रीप्रेषितान्यभिज्ञानानि चिह्नान्यदर्शयदवलोकनमकारयत्। तदेव दर्शयति—तद्यथेति। मरकतमश्मगर्भं तद्वद्धरिन्ति नीलानि व्यपनीतत्वञ्चि दूरीकृतत्वग्भागानि चार्वी या मञ्जरी तद्भाञ्जि क्षीरीणि क्षीरयुक्तान्येतादृशानि पूगीफलानि क्रमुकफलानि। तथा शुककामिनी कीरपत्नी

केयूरक से पूछा—केयूरक, बता अपनी सखियों समेत तथा अनुचरवर्ग के साथ कादम्बरी तथा भगवती महाश्वेता कुशलपूर्वक तो है ?" किन्तु केयूरक राजपुत्र के प्रेमाधिक्य से उत्पन्न हुई उस मुस्कराहट से ही मानो नहा गया हुआ तथा (उससे मानो) अनुलिप्त हुआ हुआ (इसी कारण) शीघ्र ही दूर हुई थकावट वाला प्रणाम करके और भी अधिक सम्मानपूर्वक बोला—"वह, जिसके विषय में महाराज इस प्रकार (इतनी कृपा पूर्वक) पूछ रहे हैं अब सकुशल है।" यह कह कर उस (केयूरक) ने, निकाल कर गीले वस्त्र से ढकी हुई,[1] मृणालतन्तुओं द्वारा बन्धे हुए मुख (ढक्कन) वाली, भीगे हुए चन्दनलेप पर लगायी गयी नये बिसतन्तुओं के छल्लों की छाप वाली, नलिनी के पत्तों की बनायी हुई पेटी को दिखाया। और उसको उघाड़ कर उसमें (रखे हुए) कादम्बरी द्वारा भेजे गए (प्रेम के) चिह्नों को दिखाया। वे चिह्न इस प्रकार थे—(कुछ) मरकत मणियों-सरीखी हरी, (कुछ) छिलका उतारी हुई तथा (कुछ) सुन्दर कोंपलों को सेवन करने वाली (अर्थात् सुन्दर कोंपलों में बन्द) रसीली सुपारियाँ थी,

---

१. 'अवगुण्ठनम्' पाठ हो तो 'गीले वस्त्र के आवरण को हटाकर' अर्थ होगा।

कर्पूरम्, अतिबहलमृगमदामोदमनोहरं च मलयजविलेपनम्। अब्रवीच्च—'चूडामणिचुम्बिना कोमलाङ्गुलिविनिर्गतलोहितांशुजालेनाञ्जलिना देवमर्चयति देवी कादम्बरी महाश्वेता च सकण्ठग्रहेण कुशलवचसा, पर्यस्तशिखण्डमाणिक्यज्योत्स्नास्नपितललाटेन च नमस्कारेण मदलेखा, क्षितितलघटितसीमन्तमकरिकाकोटिकोणेन सकलकन्यालोकश्च सचरणरजःस्पर्शेन च पादप्रणामेन तमालिका। संदिष्टं च तव महाश्वेतया—'धन्याः खलु ते येषां न गतोऽसि चक्षुषोरविषयम्। तथा नाम समक्षं भवतस्ते तुहिनशीत-

तस्याः कपोलौ तद्वत्पाण्डूनि श्वेतानि ताम्बूलीदलानि नागवल्लीपत्राणि। तथा हरस्येश्वरस्य यश्चन्द्रखण्डस्तद्वत्स्थूलं शकलं खण्डं तस्यैतादृशं कर्पूरं हिमवालुका। तथातिबहलोऽतिनिबिडो यो मृगमदामोदः कस्तूरीपरिमलस्तेन मनोहरं रुचिरं यन्मलयजविलेपनं चन्दनाङ्गरागः। एतद्दर्शनानन्तरमब्रवीदवोचत्। चकारः समुच्चयार्थः। कादम्बरी देव्यञ्जलिना बद्धपाणिपुटेन देवं भगवन्तमर्चयति पूजयति। अथाञ्जलिं विशिनष्टि—चूडेति। चूडामणिः शिरोमणिस्तच्चुम्बिना तत्स्पर्शिना कोमलाङ्गुलिभ्यो मृदुकरशाखाभ्यो विनिर्गमो यस्यैवंभूतं लोहितं रक्तमंशुजालं किरणसमूहो यस्मिन्स तेन। महाश्वेता च सकण्ठग्रहेण निगरणसहितेन कुशलवचसा मङ्गलवाक्येन देवमर्चयतीत्यस्य सर्वत्र संबन्धः। तथा मदलेखा नमस्कारेण प्रणामेन। कीदृशेन। पर्यस्तेति। पर्यस्तं पतितं यच्छिखण्डमाणिक्यं शिखारत्नं तस्य ज्योत्स्ना कान्तिस्तया स्नपितं क्षालितं ललाटमलिकं यस्मिन्स तेन। सकलकन्यालोकश्च क्षितितले घटितो लग्नः सीमन्तः केशेषु वर्त्म तस्य मकरिकाभरणविशेषस्तस्याः कोटेरग्रभागस्य कोणोऽश्रिर्यस्मिन्नेवंविधेन चरणरजःस्पर्शेन सहवर्तमानेन पादप्रणामेन तमालिका। तथा तव महाश्वेतया संदिष्टं कथितं वर्तते। तदेव दर्शयति—धन्या इति। खलु निश्चयेन। ते धन्या जनाः। यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धादाह—येषामिति। येषां नृणां चक्षुषोर्नेत्रयोरविषयमगोचरं न गतोऽसि। तथा नाम भवतः समक्षं त्वत्प्रत्यक्षं ते तव गुणा औदार्यादयस्तुहिनं हिमं तद्वच्छीतलाः सुशीताश्चन्द्रमया

मैनाओं की गालों सरीखे पीले पान पत्र थे, शिवजी (के मस्तक पर) की चन्द्रापीड जितनी बड़ी कपूर (की पपड़ियाँ) थीं, और अत्यन्त समृद्ध (बहल) कस्तूरी सुगन्ध से रमणीय बना हुआ चन्दन-लेप था। और उसने कहा—"देवी कादम्बरी अपनी चूडामणि को स्पर्श किये हुई, कोमल अंगुलियों के मध्यान्तरों से निकले हुए लाल किरणसमूहों वाली अञ्जलि द्वारा (हाथों को जोड़ कर) आपको आदर प्रदान करती है, और महाश्वेता (आपकी) ग्रीवा का आलिङ्गन करती हुई कुशल-प्रश्न पूछ कर, मदलेखा खिसके हुए शिखरस्थ माणिक्य के मन्द प्रकाशमें नहाये हुए मस्तक से नमस्कार करके, और सारी कन्यायें सीमन्त पर पहने मकर आभूषण (मकरिका) की नोक के कोनों को धरातल पर खूब छुआ कर, तथा (आप के) पावों की धूलि का स्पर्श करती हुई, पावों में प्रणाम करके तमालिका आपके प्रति आदर प्रदर्शित करती है। और महाश्वेता ने आपको यह संदेश दिया है—"निश्चय ही वे जन धन्य हैं जिनकी आँखों के क्षेत्र में तुम नहीं आये हो। तुम्हारे वे गुण, जो तुम्हारे सामने वैसे (प्रकृष्ट रूप से) बर्फ-से शीतल और मानो चन्द्रमा के ही बने हुए से थे, अब तुम्हारी अनुपस्थिति में सूर्य के

लाश्चन्द्रमया इव गुणा विरहे विवस्वन्मया इव वृत्ताः। स्पृहयन्ति खलु जनाः कथमपि दैवोपपादितायामृतोत्पत्तिवासरायेवातीतदिवसाय। त्वया वियुक्तं निवृत्तमहोत्सवालसमिव वर्तते गन्धर्वराजनगरम्। जानासि च मां कृतसकलपरित्यागाम्, तथाप्यकारणपक्षपातिनं भवन्तं द्रष्टुमिच्छत्यनिच्छन्त्या अपि मे बलादिव हृदयम्। अपि च बलवदस्वस्थशरीरा कादम्बरी। स्मरति च स्मेरानन स्मरकल्प त्वाम्। अतः पुनरागमनगौरवेणार्हसीमां गुणवदभिमानिनीं कर्तुम्। उदारजनादरो हि बहुमानमारोपयत्यवश्यम्। सोढव्या चेयमस्मद्विधजनपरिचयकदर्थना कुमारेण। भवत्सुजनतैव

इव विरहे त्वद्वियोगे विवस्वन्मया इव दाहजनकत्वात्सूर्यमया इव वृत्ता सपन्ना। एतेन विरहाधिक्य सूचितम्। खलु निश्चयेन जनास्तन्नगरनिवासिनो लोका कथमपि महता कष्टेन दैवेन भाग्येनोपपादिताय विहितायामृतोत्पत्तिवासरायेव। यद्दिनेऽमृत समुत्पन्न समुद्राद् बहिर्निर्गत तस्मिन्दिने त्रिभुवन आनन्द समभूत्। अतोऽमृतोत्पत्तिवासरोपमानम्। अतीतदिवसाय पूर्वं यद्दिने त्वया सह सबन्ध समभूत्तद्वासराय स्पृहयन्ति वाञ्छन्ति। त्वया वियुक्त विरहित निवृत्तो दूरीभूतो यो महोत्सव क्षणस्तेनालसमिवालस्योपेतमिव गन्धर्वराजनगर वर्तते समस्ति। कृत इति। कृतो विहित सकलवस्तुन परित्यागो ययैवविधा मा महाश्वेता च त्वं जानासि, तथाप्यकारणेनानिमित्तेन पक्षपातिन साहाय्यकारिण भवन्त त्वा द्रष्टु वीक्षितुमनिच्छन्त्या अप्यवाञ्छन्त्या अपि मे मम हृदय बलादिव हठादिवेच्छति स्पृहयति। अपि चेति हेत्वन्तरे। बलवदतिशयेनास्वस्थ पीडायुक्त शरीर देहो यस्या सैवविधा कादम्बरी स्मेरानन विनिद्रमुख स्मरकल्प कदर्पतुल्य त्वा स्मरति गोचरीकरोति। अतो हेतो पुनर्द्वितीयवार यदागमनगौरव तेन कृत्वेमा कादम्बरीं गुणवत्स्वाभिमानो विद्यते यस्या एवंविधा कर्तुमर्हसि योग्यो भवसि। हि निश्चितम्। उदारजनेष्वादरोऽवश्य बहुमान सत्कारमारोपयति। इयमस्मद्विधजनपरिचय जनिता या कदर्थना सकोचलक्षणा सा च कुमारेण सोढव्या सहनीया। सदेशानौचित्यदोष

बने हुए-से हो गये हैं। निश्चय ही (यहाँ के) लोग उस बीते (प्रसन्नता भरे) दिन के लिये लालायित हैं जो किसी प्रकार भाग्य (की कृपा) द्वारा अस्तित्व में लाया गया था तथा जो अमृत की उत्पत्ति का ही दिन था। तुम्हारे विरह में गन्धर्वराज का नगर किसी बड़े उत्सव के अभी समाप्त होने पर नीरस नगर की भाँति नीरस हो गया है। मैंने सब कुछ त्याग दिया है—ऐसी मैं हूँ—यह आप जानते ही हैं, तो भी निष्कारण कृपालु तुम को, न चाहते हुए भी मेरा हृदय हठात् देखना चाहता है। इसके अतिरिक्त, कादम्बरी अत्यन्त अधिक अस्वस्थ (शरीर वाली) है। और कामदेवसदृश हसमुख तुमको स्मरण करती है। इस लिये तुम्हें चाहिये कि तुम इसको फिर आगमन (दूसरी भेंट) के सम्मान से (का सम्मान देकर) गुणी होने की गर्ववाली बनाओ—अर्थात् यह अनुभव करे कि मेरे में कुछ गुण हैं जिनके कारण तुम पुनः मिलने आये। क्योंकि सज्जनों द्वारा दिया गया आदर, अवश्य ही, मनुष्य को अपने प्रति अत्यन्त आदरवान् बना देता है। और हमारे सरीखों के परिचय से हुआ यह कष्ट (अथवा यह नियन्त्रण) तो कुमार को अवश्य ही सहन करना होगा। यह तुम्हारी (अपनी) सुजनता ही है कि

जनयत्यनुचितसदेशप्रागल्भ्यम्। एष देवस्य शयनीये विस्मृतः शेषो हार' इत्युत्तरीय-पटान्तसयत सूक्ष्मसूत्रविवरनिःसृतैरंशुसतानैः संसूच्यमान विमुच्य चामरग्राहिण्याः करे समर्पितवान्।

अथ चन्द्रापीडः 'महाश्वेताचरणाराधनतपःफलमिद यदेव परिजनेऽप्यनुस्मरणादिक प्रसादभारमतिमहान्तमारोपयति देवी कादम्बरी' इत्युक्त्वा तत्सर्वं शिरसि कृत्वा स्वयमेव जग्राह। तेन च कादम्बर्याः कपोललावण्येनेव गलितेन, स्मितालोकेनेव रसतामुपनीतेन, हृदयेनेव द्रुतेन, गुणगणेनेव विस्पन्दितेन, स्पर्शवता ह्लादिना सुरभिणा

परिहसन्नाह—भवदिति। भवतस्तव सुजनतैव सज्जनतैवानुचितोऽयोग्यो य सदेशस्तत्र प्रागल्भ्य पाण्डित्य जनयति निष्पादयति। एष देवस्य शयनीये शय्याया विस्मृतो विस्मरण प्राप्त शेषा भिधानो हार इत्युत्तरीयपट सव्यानपटस्तस्यान्तेन प्रान्ताञ्चलेन सयत बद्ध सूक्ष्म यत्सूत्रं तेषा विवराणि रोकाणि तेभ्यो नि सृतैर्विनिर्गतैरंशुसतानै किरणसमूहै ससूच्यमानमभिव्यज्यमान चामरग्राहिण्या करे विमुच्य समर्पितवान्प्रदत्तवान्।

अथेति। हारप्रदानानन्तर चन्द्रापीडस्तत्पूर्वप्रतिपादित शिरसि कृत्वा मस्तक आरोप्य स्वयमेवात्मनैव जग्राह गृहीतवान्। इतिशब्दार्थमाह—महाश्वेतेति। इदं महाश्वेतायाश्चरण योराराधन सेवन तल्लक्षण यत्तपस्तस्य फल यस्माद्धेतोरेवममुना प्रकारेण परिजनेऽपि सत्यप्यनुस्मरणादिकमतिमहान्त प्रासादभारमारोपयति देवी कादम्बरी। इत्युक्त्वेत्यभिधाय तत्पूर्वोक्त शिरसि कृत्वा मस्तक आरोप्य जग्राह गृहीतवान्। तेनेति। तेनानिर्वचनीयस्वरूपेण स्पर्शवता ह्लादिना प्रमोदकारिणा सुरभिणा सुगन्धेन विलेपनेन विलिप्य कण्ठे तमेव हारमकरोद्घटयत्। अथ श्वेतत्वसाम्याद्विलेपनमुत्प्रेक्षयन्नाह—कादम्बर्या इति। कादम्बर्या गलितेन च्युतेन कपोल लावण्येन च, तथा रसनामुपनीतेन द्रवता प्रापितेन स्मितालोकेनेवादृष्टदहास्यप्रकाशेनेव, द्रुतेन विलीनेन हृदयेनेव चित्तेनेव, विस्पन्दितेन प्रस्रवितेन गुणगणेनेव। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त।

जिसने तुमको अनुचित सदेश भेजने की यह धृष्टता उत्पन्न की है। यह शय्या पर भूला हुआ 'शेष' नाम का तुम्हारा हार है।''—यह कह कर केयूरक ने उत्तरीय वस्त्र के एक कोने में बाधे हुए तथा बारीक सूत्रों के मध्यवर्ती छेदो से निकली हुई किरणधाराओं से सूचित किये जा रहे हार को निकालकर चामरग्राहिणी के हाथ पर रख दिया।

इसके पश्चात् चन्द्रापीड ने ''देवी कादम्बरी इस प्रकार सेवक भी मुझपर मेरे आने के पश्चात् मेरे स्मरण आदि की कृपा के बड़े भारी भार को जो मुझ पर रख रही है, वह यह सब महाश्वेता के चरणों की (मेरे द्वारा की गयी) पूजा व तपस्या का ही फल है''—यह कह कर उस सब को (सारी वस्तुओं को) स्वीकार करके स्वय ही (अपने हाथ में) ले लिया। और उस स्पर्श करने पर सुख देनेवाले, प्रसन्नतादायक तथा सुगन्धित चन्दन-विलेपन को, जो मानो चूआ हुआ कादम्बरी के कपोलों का सौन्दर्य ही था, अथवा द्रव बना हुआ उसके हास्य का प्रकाश ही था अथवा द्रव बना हुआ (स्वय) उसका हृदय ही था अथवा बहा हुआ उसके गुणो का समूह ही था—(अपने शरीर पर) मलकर वही हार गले मे पहन लिया और फिर

च विलेपनेन विलिप्य तमेव कण्ठे हारमकरोत्। आगृहीतताम्बूलश्च मुहूर्तादिवोत्थाय वामबाहुना स्कन्धदेशेऽवलम्ब्य केयूरकमूर्ध्वस्थित एव कृतयथाक्रियमाणसमानमुदित प्रधानराजलोक विसृज्य शनैः शनैर्गन्धमादन करिण द्रष्टुमयासीत्। तत्र च स्थित्वा क्षणमिव तस्मै स्वयमेव निजनखांशुजालजटिल समृणालमिव शष्पकवलमवकीर्य वल्लभतुरगमन्दुराभिमुखः प्रतस्थे। गच्छंश्चोभयतः किंचित्किंचिदिव तिर्यग्वलित-वदनः परिजन विलोकयाबभूव। अथ चित्तज्ञैः प्रतीहारैः प्रतिषिद्धानुगमने निखिलेन समुत्सारिते परिजने केयूरकद्वितीय एव मन्दुरा प्रविवेश। उत्सारणभयसम्भ्रान्त-लोचनेषु प्रणम्यापसृतेषु मन्दुरापालेषु, इन्द्रायुधपृष्ठावगुण्ठनपट किंचिदेकपार्श्वे गलित

आगृहीतेति। आगृहीत ताम्बूल येन स तथा मुहूर्तादिवोत्थाय वामबाहुना केयूरक स्कन्धदेशेऽवलम्ब्यालम्बन विधायोर्ध्वस्थित एव कृत विहित यथाक्रियमाण पूर्वपरम्परया विधीयमानं संमानं तेन मुदित हर्षितमेवविध प्रधान प्रकृष्ट राजलोक सामन्तादिसेवकवर्ग विसृज्य गृहे गम्यतामित्युक्त्वा शनै शनैर्मन्दमन्द गन्धमादननामान करिण हस्तिन द्रष्टुमीक्षितुमयासीद-गमत्। तत्र चेति। गन्धमादनसमीपे क्षणमिव समयसदृश स्थित्वा तस्मै हस्तिने स्वयमेवात्म-नैव निजमात्मीयं यन्नखानामंशुजाल किरणपटल तेन जटिल व्याप्तम्। पाटलत्वसाम्यादाह—समृणालमिव बिसै सह वर्तमानमिव शष्पकवल नवतृणगुडेरकमवकीर्य पुरोऽवक्षिप्य वल्लभ प्रियो यस्तुरगोऽश्वस्तस्य मन्दुरा वाजिशाला तस्या अभिमुख संमुख प्रतस्थे चचाल। गच्छंश्च व्रजंश्चोभयतो द्वयो पार्श्वयो किंचित्तिर्यक्साचि विवलित वदन यस्य स। परिजन परिच्छदलोकं विलोकयांबभूवेक्षांचक्रे। अथेति। तन्निकटगमनानन्तर चित्तज्ञै प्रभोरभिप्रायविद्भि प्रती-हारैर्द्वारपालै प्रतिषिद्धं निवारितमनुगमनमनुयान यस्यैवंविधे निखिले समग्रे परिजने सेवकजने समुत्सारिते दूरीकृते सति केयूरक एव द्वितीयो यस्यैवंभूतश्चन्द्रापीडो मन्दुरां वाजिशाला प्रवि-वेश प्रवेश चकार। उत्सारण दूरीकरण तस्माद्भय तेन सम्भ्रान्तानि त्रस्तानि लोचनानि येषां तेषु

पान लिये हुए, मुहूर्तभर में ही (थोड़ी सी देर में ही) उठकर केयूरक के कन्धे को (अपनी) बाँयी भुजा में पकड़ कर, खड़ा हुआ ही, यथारीति किये गये आदर से प्रसन्न हुए प्रमुख राजाओं को छुट्टी देकर, गन्धमादन नाम के हस्ती को देखने के लिये, धीरे धीरे चला गया। और वहाँ थोड़ी ही देर ठहर कर और उसके लिये (उसके सामने खाने के लिये) स्वय (अपने हाथों से) ही, अपने नखों की किरणों के समूह से सम्मिश्रित होने के कारण मानो बिसतन्तुओं से भरे प्रतीत होते मुट्ठीभर घास को फैलाकर अपने प्रिय अश्व की अश्वशाला की ओर मुँह किये हुए चल पड़ा। और जाते हुए दोनों ओर कुछ कुछ फिराये हुए चेहरेवाले ने (अपने) सेवकवर्ग पर दृष्टि डाली।

इसके पश्चात् उसके मन को जाननेवाले द्वारपालों द्वारा जिनका अनुगमन रोक दिया गया ऐसे उन सभी सेवकों से हटा दिये जाने पर वह चन्द्रापीड केवल केयूरक को ही साथ लिये हुए अश्वशाला में प्रविष्ट हुआ। निकाले जाने के भय से डरे हुए नेत्रोंवाले अश्वपाल जब प्रणाम करके दूर चले गये तब, इन्द्रायुध की पीठ के आवरक वस्त्र को, जो एक ओर को कुछ

समीकुर्वन्नुत्सारयंश्च कूणितनेत्रत्रिभागस्य दृष्टिनिरोधिनीं कुङ्कुमकपिला केसरसटा खुरधारिणीविन्यस्तचरणो लीलामन्द मन्दुरादारुदत्तदेहभरः सकुतूहलमुवाच—'केयूरक, कथय मन्निर्गमादारभ्य को वा वृत्तान्तो गन्धर्वराजकुले, केन वा व्यापारेणावसरमतिनीतवती गन्धर्वराजपुत्री, किं वाकरोन्महाश्वेता, किमभाषत वा मदलेखा, के वाभवन्नालापाः, परिजनस्य भवतो वा को व्यापार आसीत्, आसीद्वा काचिदस्मदाश्रयिणी कथा'। केयूरकस्तु सर्वमाचचक्षे—'देव, श्रूयताम्। निर्गते त्वयि हृदयसहस्रप्रयाणपटहकलकलमिव नूपुरनवक्वणितेन कन्यकान्तःपुरे कुर्वन्ती देवी कादम्बरी सपरिजना सौधशिखरमारुह्य तुरगधूलिरेखाधूसरं देवस्यैव गमनमार्गमालोकितवती।

मन्दुरापालेषु प्रणम्यापसृतेषु दूरीभूतेषु सत्सु, इन्द्रायुधपृष्ठस्यावगुण्ठनपटमाच्छादनवस्त्रं किंचिदेकपार्श्वे गलितं स्रस्तं समीकुर्वन्स्वस्थाने नयन्कूणितनेत्रत्रिभागस्येन्द्रायुधस्य दृष्टिनिरोधिनीं दृष्टिबाधाकारिणीं कुङ्कुमवत्कपिला पिङ्गलां केसरसटा स्कन्धकेशश्रेणीमुत्सारयंश्चोच्चैः कुर्वं खुरधारिण्यां खुरबन्धनशङ्कौ विन्यस्तौ स्थापितौ चरणौ येन स लीलामन्दं यथा स्यात्तथा मन्दुरादारौ दत्तो देहभरो येन. स । सकुतूहलं सकौतुकं यथा स्यात्तथोवाचाब्रवीत्। हे केयूरक, कथय ब्रूहि मन्निर्गमान्मदीयचलनादारभ्य गन्धर्वराजकुले को वा वृत्तान्त उदन्त । केन व्यापारेणावसरं समयं गन्धर्वराजपुत्री कादम्बर्यतिनीतवत्यतिक्रान्तवती। किं वा महाश्वेताकरोदन्वतिष्ठत्। वेति विकल्पार्थं सर्वत्र। मदलेखा किमभाषत किमवोचत्। के वालापा वचनव्यापारा अभवन्। परिजनस्य परिच्छदस्य भवतो वा को व्यापारो व्याकृतिरासीदभवत्। काचिदस्मदाश्रयणी कथा वार्तासीत्। केयूरकस्तु सर्वं प्राणविपर्यीकृतमाचचक्षे कथयामास। देवेति। देव श्रूयतामाकर्ण्यताम्। त्वयि निर्गते चलिते सति नूपुराणां पादकटकाना नवक्वणितेनाभिनवशब्दितेन हृदयाना सहस्राणि तेषां प्रयाण प्रस्थान तत्र य पटहस्य कलकल कोलाहलस्तमिव कन्यकान्त पुरे कुर्वन्ती सृजन्ती देवी कादम्बरी सपरिजना सपरिच्छदा सौधशिखरं गृहाधित्यकामारुह्यारोहणं कृत्वा तुरगास्याश्वस्य धूलिरेखा रज पङ्क्तिस्तया धूसरं मलिनं देवस्यैव भवत एव गमनमार्गमालो-

---

खिसक गया था, ठीक सम करता हुआ, और टेढे किये नेत्रवाले इन्द्रायुध की दृष्टि को रोकनेवाली केसर सरीखी लाल पीली सटा के हटाता हुआ, खुर बाँधने की खूँटी पर पैर रखे हुए, सजीलेपन से धीरे धीरे अश्वशाला के काष्ठस्तम्भ पर अपने शरीर का भार रखा हुआ (अर्थात् स्तम्भ के सहारे खड़ा हुआ) उत्सुकतापूर्वक केयूरक से बोला—"केयूरक, बता मेरे (वहाँ से) निकलने पर राजभवन में क्या कुछ बीता ? गन्धर्वराज की पुत्री (कादम्बरी) ने दिन किस काम में (लगी रह कर) बिताया ? महाश्वेता ने क्या कुछ किया ? मदलेखा ने क्या कुछ कहा ? सेवकों की क्या बातें हुई ? और तूने स्वय क्या कुछ किया ? क्या कोई मेरे सम्बन्ध की बात भी हुई या नहीं ?

उधर केयूरकने सब कुछ बतलाया—"राजकुमार सुनिये ! आपके चल देने पर, कन्याओं के अन्त'पुर में नूपुरों की अनोखी टनटनाहट से मानो सहस्रों हृदय के (आपके साथ) प्रस्थान सूचक का दुन्दुभि का शोर करती हुई कादम्बरी अपने सेवकजनों के साथ महल की

तिरोहितदर्शने च देवे मदलेखास्कन्धनिक्षिप्तमुखी प्रीत्या तं दिगन्तं दुग्धोदधिधवलैः प्लावयन्तीव दृष्टिपातैः सितातपत्रापदेशेन शशिनेवेर्ष्यया निवार्यमाणरविकिरणस्पर्शा सुचिरं तत्रैव स्थितवती। तस्माच्च कथमपि सखेदमवतीर्य क्षणमिवावस्थानमण्डपे स्थित्वोत्थाय स्खलनभियेव निवेद्यमानोपहारकुसुमाशब्दायमानैर्मधुकरैः, जलधाराधवलनखमयूखोन्मुखानामनुगलं गलद्भिर्वलयैः कण्ठबन्धानिवोपपादयन्ती केकारवोद्विग्ना भवनशिखण्डिनाम्, पदे पदे च कुसुमधवलान्करेण लतापल्लवान्मनसा च देवस्य गुणगणानवलम्बमाना तमेव क्रीडापर्वतकमागतवती यत्र स्थितवान्देवः। तमुपेत्य च

कितवती। तिरोहितमदृश्यीभूतं दर्शनं वीक्षणं यस्यैवंभूते च देवे मदलेखाया स्कन्धोऽसस्तत्र निक्षिप्तं स्थापितं मुखमाननं यया सैवंविधा प्रीत्या स्नेहेन दुग्धोदधिः क्षीरोदधिस्तद्वद्धवलैः शुभ्रैर्दृष्टिपातैस्तं दिगन्तं प्लावयन्तीव क्षालयन्तीव सितं शुभ्रं यच्चातपत्रं छत्रं तस्यापदेशेन व्याजेन। शुक्लत्ववर्तुलत्वसाम्यादाह—शशीति। शशी चन्द्रस्तेनेवेर्ष्यया स्पर्धया निवार्यमाणो दूरीक्रियमाणो रविकिरणानां सूर्यकिरणानां स्पर्शो यस्याः सैवंभूता सती सुचिरं चिरकालं तत्रैव सौधशिखरे स्थितवत्यवस्थानं कृतवती। तस्माच्च सौधशिखरात्सखेदं यथा स्यात्तथावतीर्यावतरणं कृत्वा क्षणमिवावस्थानमण्डपे स्थित्वोत्थाय स्खलनभियेव पतनभयेनेवोपहारस्य कुसुमानि तेष्वासमन्ताच्छब्दायमानैः शब्दं कुर्वाणैर्मधुकरैर्भ्रमरैर्निवेद्यमानेव विज्ञप्तिविषयीक्रियमाणेव। जलधारावद्धवलानां शुभ्राणां नखमयूखानां पुनर्भवकान्तीनामुन्मुखानां सम्मुखानामनुगलं निगरणमनुलक्षीकृत्य गलद्भिः पतद्भिर्वलयैः कटकैः करणभूतैर्भवनशिखण्डिनां गृहमयूराणां केकारवेणोद्विग्नोद्वेगं प्राप्ता सती कण्ठबन्धानुपपादयन्तीव रचयन्तीव। करेण हस्तेन पदे पदे च कुसुमधवलान्पुष्पवच्छुभ्राल्लतापल्लवान्वल्लीकिसलयानि मनसा च देवस्य भवतो गुणगणान्गुणसमूहानवलम्बमानावलम्बनं कुर्वाणा तमेव पूर्वोक्तमेव क्रीडापर्वतकमागतवती। यत्रेति।

छत पर चढ़कर घोड़ों द्वारा उठायी गयी धूल की रेखा से धूसर हुए, आपके ही जाने के मार्ग को देखती रही। जब आप अदृश्यदर्शन हो गये तब मदलेखाके कन्धे पर अपना मुँह डाले हुई, (अपनी) दुग्धसागर के समान सफेद चितवनों द्वारा उस दिक्प्रदेश को मानो श्वेत करती हुई तथा श्वेत छत्र के बहाने मानो चन्द्रमा ही के द्वारा सूर्य के करों (किरणों, हाथों) का स्पर्श जिसका हटाया जा रहा हो—ऐसी, बहुत देर तक वहीं बैठी रही। और उस (छत) से बड़े कष्टपूर्वक, बड़ी उदासी के साथ, उतर कर, थोड़ी सी देरतक सभाभवन में विश्राम करके, उठकर, (उनपर पैर पड़ने से) यह कहीं गिर न पड़े इस भय से ही मानो (उनपर) गुजारते हुए भौंरों द्वारा पूजार्थ (रखे हुए) फूलों की सूचना दी जाती हुई, (आपसे वियोग होने पर) भवन के (पालतू) मयूरों की केकाध्वनिसे उद्विग्न हुई, (मानो उनको चुप करने के लिये ही) जलधारा के सदृश नखकिरणों की ओर मुँह किये हुए मयूरों की गर्दनों को लक्ष्य करके गिरते हुए कंकणों द्वारा ही मानों उनके गलों में बन्धन डालती हुई, और कदम-कदम पर हाथ से फूलों से श्वेत हुए बेलों के पत्तों का तथा मन से आपके गुण-समूहों को सहारा लेती हुई, जहाँ आप बैठे थे, उसी क्रीडापर्वत पर पहुँच गयी। और वहाँ पहुँच कर—"यहाँ

'देवेनात्र मरकतशिलामकरिकाप्रणालप्रस्रवणसिच्यमानलतामण्डपे सीकरिणि शिलातले स्थितम्, अत्र गन्धोदकपरिमललीनालिजालजटिलशिलाप्रदेशे स्नातम्, अत्र कुसुमधूलिसिकतिले गिरिनदिकातटे भगवानर्चितः शूलपाणिः, अत्र ह्रेपितशशधररोचिषि स्फटिकशिलातले भुक्तम्, अत्र सङ्क्रान्तचन्दनरसलाञ्छने मुक्ताशैलशिलापट्टे सुप्तम्' इति परिजनेन पुनरुक्त निवेद्यमानानि देवस्यैव स्थानचिह्नानि पश्यन्ती क्षपितवती दिवसम्। दिवसावसाने च कथमपि महाश्वेताप्रयत्नादनभिमतमपि तस्मिन्नेव स्फटिकमणिशिलावेश्मन्याहारमकरोत्। अस्तमुपगते च भगवति रवावुदिते चन्द्रमसि

यस्मिन्स्थले देवो भवान्पूर्वं स्थितवान्। त क्रीडाचलमुपेत्यागत्य च। अत्र सीकरा विद्यन्ते यस्मिन्नेवविधे शिलातले देवेन स्थितमासितम्। कीदृशे। मरकतस्य शिला तस्या मकरिका प्रणालो मकरमुखो जलमार्गस्तस्य प्रस्रवणेन सिच्यमानो लतामण्डपो यस्य तत्तस्मिन्। अत्रेति। अस्मिन्गन्धोदकस्य सुगन्धजलस्य य परिमलस्तेन लीना लग्ना येऽलयो भ्रमरास्तैर्जटिलो व्याप्त शिलाप्रदेशस्तस्मिन्स्नात कृताप्लवम्। अत्रेति। अस्मिन्कुसुमाना धूल्या परागेण सिकतिले सिकतायुक्ते गिरिनदिकातटे भगवाञ्शूलपाणिरर्चित पूजित। अत्रेति। अस्मिन्ह्रेपिता लज्जिता शशधरस्य रोचिर्येन तस्मिन्स्फटिकशिलातले भुक्तम्। अत्रेति। अस्मिन्सङ्क्रान्त प्रतिबिम्बितो यश्चन्दनरस स एव लाञ्छन चिह्न यस्मिन्नेवविधे मुक्ताशैलशिलापट्टे सुप्तमिति परिजनेन पार्श्ववर्तिसेवकलोकेन देवस्य भवत एव स्थानचिह्नानि। पुनरुक्त पृथक्पृथङ्निवेदनादिति भाव। निवेद्यमानानि कथ्यमानानि पश्यन्ती विलोकयन्ती दिवस वासर क्षपितवती क्षय नीतवती। दिवसावसाने च दिनप्रान्ते च कथमपि महता कष्टेन महाश्वेताप्रयत्नादनभिमतमप्यसमीहितमपि तस्मिन्नेव स्फटिकमणिशिलावेश्मन्याहार भोजनमकरोदकल्पयत्। अस्तमिति। अस्तमुपगते प्राप्ते च भगवति माहात्म्यवति रवौ सूर्ये, चन्द्रमसि कुमुदबान्धव उदित उदय प्राप्ते सति,

राजकुमार मरकतशिलाओं से बनी मछली के आकार की जल प्रणाली[1] (मोरी) के जल प्रवाह द्वारा सींचे जा रहे लताकुञ्ज में फुहारों से युक्त शिलातल पर बैठे थे, यहाँ, राजकुमार ने (स्नानार्थप्रयुक्त) सुगन्धित जल की सुगन्ध के कारण इसपर चिपके (लीन) भौरों के समूह से खूब घिरे शिला-प्रदेश पर स्नान किया था, यहाँ, पुष्पों की धूलि से रेतीले, छोटी पहाड़ी नदी के तट पर भगवान् शिवजी की पूजा की थी, यहाँ (अपनी चमक से) चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को लजाने वाले स्फटिकनिर्मित शिलातल पर राजकुमार ने खाना खाया था, यहाँ, (उसके शरीर से) स्थानान्तरित चन्दन लेप चिह्न वाली चौड़ी शिला पर, राजकुमार सोये थे"—इन शब्दों में सेवकों द्वारा आवश्यकता से अधिक बार बतलाये गये आपके ही चिह्नों को देखती हुई उसने दिन बिता दिया। दिन का अन्त हो जाने पर, बड़ी कठिनता से महाश्वेता की प्रेरणा (अक्षरार्थ—उद्योग) से उसी स्फटिकशिला पर (बैठी हुई ने) इच्छा न होते हुए भी भोजन किया। सूर्य भगवान् के अस्त हो जाने पर तथा चन्द्रमा के उदित हो

1 मकरिका प्रणाली।

तत्रैव कञ्चित्कालं स्थित्वा चन्द्रकान्तमयीव चन्द्रोदये प्रत्यार्द्रीकृततनुश्चन्द्रबिम्बप्रवेश-भयेनेव करौ कपोलयोः कृत्वा किमपि चिन्तयन्ती मुकुलितेक्षणा क्षणमात्रं स्थित्वोत्थाय विमलनखविपतितशशिप्रतिमाभरगुरूणीव कृच्छ्रादुत्क्षिपन्ती लीलामन्थरगमनपटूनि पदानि शय्यागृहमगात्। शयननिक्षिप्तगात्रयष्टिश्च ततःप्रभृति प्रबलया शिरोवेदनया विचेष्टमाना दारुणेन च दाहरूपिणा ज्वरेणाभिभूयमाना केनाप्याधिना मङ्गलप्रदीपैः कुमुदाकरैश्चक्रवाकैश्च सार्धमनिमीलितलोचना दुःखदुःखेन क्षणदामनैषीत्। उषसि च मामाहूय देवस्य वार्ताव्यतिकरोपालम्भाय सोपालम्भमादिष्टवती।

तत्रैव तस्मिन्प्रदेशे कञ्चित्कालं स्थित्वावस्थानं कृत्वा चन्द्रकान्तश्चन्द्रमणिस्तन्मयीव अतएव चन्द्रोदये प्रत्यार्द्रीकृता तनुर्यस्या सा तथा चन्द्रबिम्बस्य य प्रवेशस्तस्य भय तेनेव कपोलयो करौ कृत्वा किमपि चिन्तयन्ती ध्यायन्ती मुकुलितेक्षणा कुड्मलितलोचना क्षणमात्र स्थित्वा तत उत्थाय। विमलेति। विमला निर्मला ये नखास्तेषु निपतिता या शशिप्रतिमाश्चन्द्रप्रतिबिम्बानि तासा भरस्तेन गुरूणीव लीलामन्थर यद्गमन तत्र पटूनि पदानि चरणन्यासानि कृच्छ्रात्कष्टादुत्क्षिपन्त्युत्क्षेप कुर्वन्ती शय्यागृह शयनसद्मा-गादगमत्। शयने तल्पे निक्षिप्ता स्थापिता गात्रयष्टिर्यया सैवविधा च। तत प्रभृति तद्दिनादारभ्य प्रबलया तीव्रया शिरोवेदनया विचेष्टमाना व्याकुलीक्रियमाणा दाहरूपिणा दारुणेन तीव्रेण च ज्वरेण तापेनाभिभूयमाना पराभूयमाना केनाप्याधिना मानसीव्यथया मङ्गलप्रदीपै कुमुदाकरैश्चक्रवाकैश्च सार्धमनिमीलितेऽमुद्रिते लोचने यस्या सा तथा। अथ कुमुदानां रात्रौ विकासाच्चक्रवाकानां च वियोगवशादनिमीलनमिति भाव। दु खदु खेन। अतिदु खेनेति भाव। क्षणदा रात्रिमनैषीद्यापयद्गमयामास। उषसि च प्रभाते मामाहूयाह्वान कृत्वा देवस्य वार्ताव्यतिकरेण भवद्वृत्तान्तसमूहेन हेतुभूतेन उपालम्भाय सोपालम्भ यथा स्यात्तथादिष्टवती कथितवती।

जाने पर वह कुछ देर तक वहीं बैठी रही मानो कि वह चन्द्रकान्त मणि से बनी हो। चन्द्रोदय हो जाने पर गीले किये हुए शरीर वाली (वस्तुत पसीने से तर शरीर वाली), मानो कि चन्द्रबिम्ब के (अपने भीतर) प्रविष्ट हो जाने (प्रतिबिम्बित हो जाने) के भय से अपने दोनों हाथों को दोनों गालों पर रखकर कुछ सोचती हुई, आँखें बन्द किये हुए कुछ देर बैठी रही, फिर उठकर स्वच्छ नखों में गिरी चन्द्र की प्रतिमा (प्रतिबिम्बित चन्द्रबिम्ब) के भार से ही मानो भारी हुए, सजीलेपन से धीमे पदन्यास करने में अभ्यस्त पाँवों को बड़ी कठिनता से उठाती हुई, शयन-कक्ष में गयी। अपनी गात्रयष्टि—पतली दुबली देह—को शय्या पर फेंक कर, तब से लेकर प्रबल सिर दर्द से छटपटाती हुई और कठोर दाहात्मक ज्वर से आक्रान्त हुई किसी प्रकार के मानसिक रोग से अत्यन्त दु खिता आँखें बन्द किये हुई उसने (रातभर जलते रहे) मागलिक दीपकों के साथ, (रातभर खिलते रहे) रात्रि-कमलों के साथ और (रात भर जागते हुए) चक्रवाक पक्षियों के साथ रात्रि बितायी। और प्रात'काल होने पर उसने मुझे बुलाकर आपके समाचार का विवरण प्राप्त करने के लिये उलहना देते हुए आज्ञा दी।"

चन्द्रापीडस्तदाकर्ण्य जिगमिषुः 'अश्वोऽश्वः' इति वदन्भवनान्निर्ययौ। आरोपितपर्याणं च त्वरिततुरगपरिचारकोपनीतमिन्द्रायुधमारुह्य, पश्चादारोप्य पत्रलेखाम्, स्कन्धावारे संस्थापयित्वा वैशम्पायनम्, अशेषपरिजनं निवर्त्य च, अन्यतुरगारूढेनैव केयूरकेणानुगम्यमानो हेमकूटं ययौ। आसाद्य च कादम्बरीभवनद्वारमवततार। अवतीर्य द्वारपालार्पिततुरङ्गः कादम्बरीप्रथमदर्शनकुतूहलिन्या च पत्रलेखया चानुगम्यमानः प्रविश्य 'क्व देवी कादम्बरी तिष्ठति' इति संमुखागतमन्यतमं वर्षधरमप्राक्षीत्। कृतप्रणामेन च तेन 'देव, मत्तमयूरस्य क्रीडापर्वतकस्याधस्तात्कमलवनदीर्घिकातीरे विरचितं हिमगृहमध्यास्ते' इत्यावेदिते केयूरकेणोपदिश्यमानवर्त्मा प्रमदवनमध्येन गत्वा किंचिदध्वानं मरकतहरितानां कदलीवनानां प्रभया शष्पीकृत-

चन्द्रापीडस्तदाकर्ण्य श्रुत्वा जिगमिषुर्गन्तुमिच्छुरश्वोऽश्व इति वदन्ब्रुवन्भवनाद्गृहान्निर्ययौ निर्जगाम। आरोपितं स्थापितं पर्याणं पल्ययनं यस्मिन्नेतादृशं त्वरितं शीघ्रं तुरगपरिचारकेणोपनीतमिन्द्रायुधमारुह्यारोहणं कृत्वा पत्रलेखां पश्चात्पृष्ठभागं आरोप्य स्थापयित्वा स्कन्धावारे सैन्यवेशे वैशम्पायनं संस्थापयित्वाशेषपरिजनं समग्रपरिच्छदं निवर्त्य पश्चाद्व्याघुट्यान्यतुरगारूढेनैव केयूरकेणानुगम्यमानो हेमकूटं ययौ। कादम्बरीभवनद्वारमासाद्य प्राप्यावततारोत्तीर्णवाश्च। अश्वादिति शेषः। अवतीर्य च द्वारपालस्यार्पितस्तुरङ्गो येन स तथा कादम्बर्या यत्प्रथमदर्शनं तत्र कुतूहलं विद्यते यस्या एवंविधया पत्रलेखयानुगम्यमानः प्रविश्य क्व देवी कादम्बरी तिष्ठतीति संमुखागतमन्यतमं वर्षधरं कञ्चुकिनमप्राक्षीत्पप्रच्छ। तेन कृतप्रणामेन चेत्यावेदिते कथिते सति। इतिशब्दद्योत्यमाह—देवेति। हे देव, मत्तमयूरकाभिधानस्य क्रीडापर्वतकस्याधस्तादधोभागवर्तिनि कमलवनदीर्घिकातीरे विरचितं हिमगृहमध्यास्तेऽधितिष्ठति। 'उपान्वध्याङ्वसः' इत्यधिकरणे द्वितीया। केयूरकेणोपदिश्यमानं प्रदर्श्यमानो वर्त्म मार्गो यस्य स तथा प्रमदवनमध्येन किंचिदध्वानं मार्गं गत्वा मरकतवद्धरितानां नीलानां कदलीवनानां रम्भाकाननानां प्रभया कान्त्या शष्पीकृतानि बालतृणीकृतानि रविकिरणानि

यह सुनकर (तत्काल) जाना चाहता हुआ चन्द्रापीड 'अश्व अश्व' यह चिल्लाता हुआ भवन (मण्डप) से बाहर निकला। और काठी (पीठ) पर रखाये हुए, हड़बड़ाते सेवक द्वारा लाये गये इन्द्रायुध पर चढ़कर अपने पीछे पत्रलेखा को चढ़ाकर, वैशम्पायन को सेना की अध्यक्षता में स्थापित कर (सेना का अध्यक्ष बनाकर), और सारे सेवकों को लौटा कर दूसरे अश्व पर सवार केयूरक द्वारा ही अनुगम्यमान हेमकूट की ओर चल पड़ा। और कादम्बरी के भवन के दरवाजे पर पहुँच कर अश्व से उतरा। उतर कर, दरबानों को अश्व सौंप कर कादम्बरी के सबसे पूर्व दर्शन करना चाहती हुई पत्रलेखा द्वारा अनुगम्यमान घरमें प्रविष्ट हो गया। और प्रविष्ट होकर उसने सामने आये हुए कञ्चुकी से पूछा—राजकुमारी कादम्बरी कहाँ है?" "राजकुमार! मत्तमयूर नामक क्रीडा पर्वत के नीचे, कमलों वाली (कमलों से भरी) बावड़ी के किनारे पर बनाये गये हिमगृह में है"—नमस्कार करके उसके यह बताने पर, केयूरक द्वारा बताये गये मार्ग वाले चन्द्रापीड ने प्रमदवन में से कुछ मार्ग पर चल कर, मरकतमणि के

रविकिरण हरितायमान दिवस ददर्श। तेषा च मध्ये निरन्तरनलिनीदलच्छन्न हिमगृहमपश्यत्। तस्माच्च निष्पतन्तमार्द्रांशुकच्छलेनाच्छोदजलेनेव सवीतम्, बाहुलताविधृतैर्मृणालवलयैराभरणकैरिव धवलितावयवम्, आपाण्डुभिश्चैकश्रवणाश्रयैस्ताडङ्कीकृतैः केतकीगर्भदलैरुपहसितदन्तपत्रम्, आलिखितचन्दनललाटिकानि मुखारविन्दानि बद्धसौभाग्यपट्टानीव दधानम्, कृतचन्दनबिन्दुविशेषकाश्च दिवापि स्पर्शलोभस्थितेन्दुप्रतिबिम्बानिव कपोलानुद्वहन्तम्, अपहृताशेषशिरीषसौभाग्याभिः

सूर्यरश्मयो यस्मिन्नत एव हरितायमान नीलायमान दिवस दिन ददर्शेक्षाचक्रे। तेषा च कदलीवनाना मध्ये निरन्तर नलिनीदलै कमलिनीपत्रैश्छन्नमाच्छादित हिमगृहमपश्यदैक्षत। तस्माच्च गृहान्निष्पतन्त बहिर्गच्छन्त कादम्बर्या शरीरपरिचारक परिजनमद्राक्षीद्दृष्टवान्। अथ तस्या परिचारक विशेषयन्नाह—आर्द्रेति। आर्द्रं स्तिमितं यदशुक वस्त्रं तस्य च्छलेन। श्वेताह्लादकत्वसाम्यादाह—अच्छोदेति। अच्छोदजलेनेव संवीत रुद्धम्। 'सवीत रुद्धमावृतम्' इति कोश। बाहुलताविधृतैर्भुजलतास्थापितैर्मृणालवलयैस्तन्तुलकटकैराभरणकैरिव विभूषणैरिव धवलीकृता शुभ्रीकृता अवयवा अपघना यस्य स तम्। आपाण्डुभिरीषच्छ्वेतैरेकश्रवण एवैककर्ण एवाश्रयोऽधिकरण येषा तैस्ताडङ्कीकृतैस्ताडपत्रीकृतैरेवंविधै। केतकीगर्भदलैरुप हसितानि दन्तपत्राणि येन स तम्। पुन किं कुर्वाणम्। दधान बिभ्राणम्। कानि। मुखान्येवारविन्दानि कमलानि। कीदृशानि। आलिखिता चन्दनस्य मलयजस्य ललाटिका पुण्ड्रविशेषो येषु तानि। विविधवर्णसाम्याद्बद्धसौभाग्यपट्टानीव। कृतेति। कृता विहिता चन्दनबिन्दुभिर्विशेषका येषु तान्। 'चित्र पुण्ड्रविशेषका' इति कोश। दिवापि दिवसेऽपि स्पर्शलोभेन स्थित इन्दुप्रतिबिम्बो येष्वेवविधानिव कपोलानुद्वहन्तम्। अपेति। अपहृत

के समान हरे केले के वृक्षों की हरी चमक से (हरी) घास की कोमल पत्तियों में परिणत किरणों वाले, हरे हरे प्रतीत होते, दिन को देखा। उन कदली वृक्षों के बीच, सघनतया नलिनी के पत्तों से ढके हुए हिम गृह को देखा। और उसने उस (हिमगृह) से निकलती हुई शीतप्रद चिकित्सा करने में निपुण, (कादम्बरी) के शरीर की शुश्रूषा करने वाले, उसके शरीर सरीखे ही (अपनी स्वामिनी के इतने प्यारे कि लगभग उसके शरीर ही प्रतीत होते) (अथवा लगभग अपने शरीरों मे—वस्त्र न पहने हुए—ही दिखाई देते) सेवकों को भी देखा, (पहने हुए) गीले वस्त्रों के बहाने मानो वे अच्छोद के जल से वेष्टित थे अर्थात् जल की ही पोशाक पहने हुए थे, अपनी लता सरीखी भुजाओं पर पहने हुए मृणाल-कङ्कणों के द्वारा उनके शरीर मानो आभूषणो से ही श्वेत हो रहे थे, केवल एक ही कान का आश्रय लिये हुए (एक ही कान पर पहने हुए) ताडङ्क आभूषण बनाये हुए कुछ-कुछ पीले पड़े हुए केतकी की भीतरी पखुड़ियों से उन्होंने दन्तपत्र नाम के आभूषणों को लज्जित किया हुआ था, वे ऐसे कमलसदृश मुखड़ों को धारण किये हुए थे कि जिनके मस्तकों पर चन्दन से ललाटिकाचिह्न (आयताकार श्वेत चिह्न) बनाये हुए थे और इसलिये मानो उन पर मांगलिक श्वेत रेशमी पट्टियाँ बँधी हुई थीं, वे ऐसे कपोलों को वहन कर रहे थे—(ऐसी गालों वाले थे) जिन पर चन्दन की बिन्दुओं रूप तिलक

शैवलमञ्जरीभिः कृतकर्णपूरम्, कर्पूरधूलिधूसरेषु मलयजरसलवलुलितेषु बकुलावलीवलयेषु स्तनेषु न्यस्तनलिनीपत्रप्रावरणम्, अनवरतचन्दनचर्चाप्रणयनपाण्डुरैः सतापरोषमृदितारक्तचन्द्रकरैरिव करैः कल्पितमृणालदण्डानि बिसतन्तुमयानि चामराणि बिभ्राणम्, उन्नालैश्च कमलैः कुमुदैः कुवलयैः किसलयैः कदलीदलैः कमलिनीपलाशैः कुसुमस्तबकैश्चातपत्रीकृतैर्निवारितातपम्, जलदेवतानामिव समूहम्, वरुण

दूरीकृतमशेष समग्र शिरीषस्य वृक्षविशेषस्य सौभाग्य याभिरेवभूताभि शैवलमञ्जरीभिर्जलशूकवल्लरीभि कृत कर्णपूरो येन स तम्। स्तनेषु कुचेषु न्यस्त स्थापित नलिनीपत्राणा प्रावरणमुत्तरीयक येन स तम्। अथ च स्तन विशेषयन्नाह—कर्पूरेति। कर्पूरस्य घनसारस्य धूली रजस्तया धूसरेष्वीषत्पाण्डुषु मलयजरसलवैश्चन्दनद्रवलेशैर्लुलितेष्वेकीभूतेषु बकुलावलीनां केसरराजीना वलयानि येषु ते तथा तेषु। पुन कीदृशम्। करै करणभूतैश्चामराणि बिभ्राणम्। कीदृशै करै। प्रियविरहेण सतापरोषाभ्या मृदिता मर्दिता आरक्ता नवोदिताश्चन्द्रकरास्तैरिवानवरत निरन्तर चन्दनचर्चा तस्याः प्रणयन प्रापणं तेन पाण्डुरै। कीदृशानि चामराणि। कल्पित इति। कल्पितो विहितो मृणालाना दण्डो येषु तानि। पुन किंविशिष्टानि। बिसाना तन्तवस्तन्मयानि तन्निर्मितानि। उन्नालै कमलै, कुमुदै कैरवै, कुवलयैरुत्पलै, किसलयै पल्लवै, कदलीदलै रम्भापत्रै, कमलिनीपलाशै पद्मिनीपत्रै.। 'पत्रं पलाश छदनम्' इति कोश। कुसुमस्तबकै पुष्पगुच्छैः। 'गुच्छस्तबकगुच्छका' इति कोश। एतैश्चातपत्रीकृतैश्छत्रीकृतैर्निवारितो दूरीकृत आतपः सूर्यालोको यस्य स तम्। जलदेवताना जलाधिष्ठात्रीणां समूहमिव। सर्वदा जलक्लिन्नदेहत्वादिति भाव। वरुण प्रचेतास्तस्य श्रियां समागममेकीभवन

(विशेषक) बनाये हुए थे (अथवा जिन पर चन्दन से गोल, आभूषक, (श्वेत) बिन्दु अंकित किये हुए थे)—इसीलिये वे कपोल ऐसे दिखायी दे रहे थे कि मानो उनको स्पर्श करने की लालसा से चन्द्रमा प्रतिबिम्ब के रूप में, दिन में भी, वहा स्थित हो, शिरीष के सारे सौन्दर्य को छीने हुई —(सौन्दर्य में शिरीष से अत्यन्त उत्कृष्ट बनी हुई) शैवाल-मञ्जरियों से उन्होंने अपने कर्णाभूषण बनाये हुए थे, अपने पिसे हुए कपूर (कर्पूरधूलि) से भरे हुए, चन्दन रस के अशमात्र से (थोड़ी मात्रा में चन्दन के लेप से) शोभित, तथा बकुल पुष्प के गजरों की माला पहने स्तनों पर उन्होंने नलिनी के पत्तों का आवरण रखा हुआ था, निरन्तर (कादम्बरी के शरीर पर) चन्दन का लेप करने से श्वेत हुए, (कादम्बरी को पहुँचायी हुई पीड़ा पर) क्रोध करके मसल दी हैं चन्द्रमा की किरणें जिन्होंने—ऐसे अपने हाथों में (से) मृणाल की डडियाँ बनाये हुए बिसतन्तुओं के बने हुए चँवरों को पकड़े हुए थे, ऊपर को की हुई नालों वाले छत्र बनाये हुए कमलों कुमुदों, कुवलयों द्वारा, केले के कोमल पत्तों द्वारा, कमलिनी के पत्तों द्वारा और पुष्पगुच्छों द्वारा उन्होंने (कादम्बरी के शरीर से) धूप को हटा रखा था, वे मानों जल-परियों का समूह थे, मानो (जल के देवता) वरुण की कीर्तियों का दल थे, वे मानो शरद ऋतुओं का समूह थे, और झीलों (की अधिष्ठात्री देवताओं) की गोष्ठी थे।

श्रियामिव समागमम्, शरदामिव समाजम्, सरसीनामिव गोष्ठीबन्धम्, शिशिरोपचारनिपुण कादम्बर्याः शरीरपरिचारक शरीरप्रायं परिजनमद्राक्षीत्। तेन च प्रणम्यमानः पादनखपतनभयादिव त्वरितापसृतेन दीयमानमार्गश्चन्दनपङ्ककृतवेदिकाना पुण्डरीककलिकाघटितघण्टिकाना विकसितसिन्दुवारकुसुममञ्जरीचामराणा लम्बितस्थूलमल्लिकामुकुलहाराणामाबद्धलविङ्गपल्लवचन्दनमालिकाना दोलायमानकुसुमदामध्वजानां मृणालवेत्रहस्ताभिर्गृहीतरुचिरकुसुमाभरणाभिर्मधुलक्ष्मीप्रतिकृति-

मिव। वरुणस्यापि जलाधीशत्वेन तस्य श्रियामप्यतिशीतलत्वात्तदुपमानम्। शरदा घनात्ययानां समाजमिव परिषदमिव। तासामपि शीतलत्वात्तदुपमानम्। सरसीना सरसा गोष्ठीबन्धमिव। एकत्रीभूयोपवेशन गोष्ठीबन्ध। कीदृशम्। शिशिरोपचारा शीतलोपचारास्तत्र निपुण दक्ष शरीर प्रायमित्यन्तर गत्वा चोक्त कादम्बरीपरिजनमद्राक्षीदित्यन्वयस्तु प्रागेवोक्त। इदानीं समयोद्याना द्युद्दीपनविभावान्वर्णयन्नाह—तेन चेति। तेन परिजनेन प्रणम्यमानो नमस्क्रियमाण। कदली तोरणाना तलेन प्रविश्य सर्वतो निसृष्टदृष्टिरिद वक्ष्यमाण सर्वं दृष्टवानित्यन्वय। कीदृश। प्रणामेन पादनखस्यैव कोमलत्वात्पतन भविष्यतीति शङ्कया त्वरितमपसृत परिजनस्तेन दीयमानो मार्गो यस्य स। इत. कदलीतोरण विशेषयन्नाह—चन्दनेति। चन्दनपङ्केन मलयजकर्दमेन कृता वेदिका येषाम्। कलिकानाद्यघण्टिकानुकारादाह—पुण्डरीकेति। पुण्डरीकाणि सिताम्भोजानि तेषा कलिकाभिर्घटिता निर्मिता घण्टिका किङ्किण्यो येषाम्। विकसितानि विमुद्राणि सितानि सिन्दुवारस्य निर्गुण्ड्या कुसुमानि तेषा मञ्जरीणां चामराण्यातपत्राणि येषाम्। लम्बिता स्थूलमल्लिका मुकुलाना हारिणो हारा येषाम्। आबद्धा लविङ्ग देवकुसुम तस्य पल्लवा येष्वेवविधा चन्दनमालिका तोरणार्थे मङ्गल्य दाम येषाम्। 'तोरणार्थे तु मङ्गल्यं दाम चन्दनमालिका' इति कोश.। दोलेति। दोलायमाना कम्पमाना कुसुमदामध्वजा येषाम्। मृणालेति। मृणालानां तन्तुलानां वेत्र हस्ते यासा ताभिर्गृहीतानि स्वीकृतानि रुचिराणि मनोहराणि कुसुमाभरणानि पुष्पविभूषणानि याभि। मध्विति। मधुलक्ष्म्या

उस सेवकवर्ग से नमस्कार किया जा रहा वह, पाँवों के नाखूनों मे (अपने प्रतिबिम्ब के) गिरने के भय से ही, मानो, शीघ्रता से हटे हुए (परिजनवर्ग) द्वारा मार्ग दिया जाता हुआ—चन्दनलेप से (अनुलिप्त) पवित्र तल भूमियों—वेदिकाओं वाले[1], श्वेत कमलों की कलियों की ही बनायी गयी घण्टियों वाले, खिले हुए सिन्दुवार पुष्प के गुच्छों की (बनी) चॅवरियों वाले, बड़ी बड़ी मल्लिका की कलियों के लटकाये हुए हारों वाले, लौंग की कोंपलों से युक्त चन्दन मालिकाओं (तोरणों पर लटकायी हुई माङ्गलिक फूल मालाओं) वाले, फहराती हुई पुष्पमालारूप पताकाओं वाले, कमल डण्डियों रूपी बेंतें हाथों मे लिये हुई, शोभन पुष्पों के आभूषण लिये हुई (पहने हुई), और (इस प्रकार) वसन्त ऋतु की शोभा की प्रतिमायें

१ जिनके न्याधार—कुर्सियाँ—(वेदिकायें) चन्दन लेप से बनाये गये थे—काले का किया हुआ यह अर्थ चन्दन लेप की कुर्सियाँ—आधारभूमि—बनाने का अर्थ कुछ स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। (अनु०)

भिरिव द्वारपालिकाभिरधिष्ठिताना कदलीतोरणाना तलेन प्रविश्य सर्वतो निसृष्टदृष्टिर्दृष्टवान्क्वचिदुभयतटनिखाततमालपल्लवकृतवनलेखाः कुमुदधूलिवालुकापुलिनमालिनीश्चन्दनरसेन प्रवर्त्यमाना गृहनदिकाः क्वचिन्निचुलमञ्जरीरचितरक्तचामराणा जलार्द्रवितानकाना तलेषु सिन्दूरकुट्टिमेष्वास्तीर्यमाणालिरक्तपङ्कजशयनानि, क्वचिदेलारसेन सिच्यमानानि स्पर्शानुमेयरम्यभित्तीनि स्फटिकभवनानि, क्वचिच्छिरीषपक्ष्मकृतशाद्वलाना मृणालधारागृहाणा शिखरमारोप्यमाणाना धाराकदम्बधूलिधूसरितानि यन्त्रमयूरकाणा कादम्बकानि, क्वचित्सहकाररससिक्तैर्जम्बूपल्लवैरा-

---

वसन्तश्रिय प्रतिकृतिभि प्रतिरूपाभिरेवंविधाभिर्द्वारपालिकाभिरधिष्ठितानामाश्रितानाम् । सर्वं दृष्टवानिति पूर्वोक्त स्पष्टीकुर्वन्नाह—क्वचिदिति । कस्मिंश्चित्प्रदेश उभयतटे निखाता आरोपिता ये तमालपल्लवास्तापिच्छकिसलयास्तै कृता वनलेखा काननवीथी यासा ता । कुमुदाना धूलि पराग सैव वालुका सिकतास्तया पुलिन जलोज्झित सैकत मालव इत्येवशीलाश्चन्दनरसेन मलयजद्रवेण प्रवर्त्यमाना विस्तार्यमाणा गृहनदिका भवनसरितः । क्वचिदिति । निचुलमञ्जरी हिज्जलवल्लरी तया रचितानि रक्तचामराणि येषामेतादृशाना जलार्द्रवितानकानामम्भ क्लिन्नोल्लोचाना तलेषु सिन्दूर नागज तेन सहवर्तमानेषु कुट्टिमेष्वास्तीर्यमाणानि विस्तीर्यमाणानि रक्तपङ्कजशयनानि लोहितकमलशयनानि । क्वचिदिति । एला चन्द्रवाला तस्या रसेन सिच्यमानानि सेचनक्रियाविषयीक्रियमाणानि स्पर्शेन करसस्पर्शेनानुमेया अनुमातुं योग्या रम्या मनोहरा भित्तय कुड्यानि येषामेवविधानि स्फाटिकभवनानि । क्वचिदिति । कस्मिंश्चित्प्रदेशे शिरीष कपीतनस्तस्य पक्ष्मभि कोमलकेसरामि कृतशाद्वलानां विहितश्यादहरिताना मृणालधारागृहाणा बिसयन्त्रसद्मना शिखरं प्रान्तमारोप्यमाणानामुपरिष्टाद्धीयमानानां धाराकादम्बाना धूलिभी रजोभिर्धूसरितानि यन्त्रगृहवर्तिमयूरकाणा कदम्बकानि मण्डलानि । क्वचिदिति । सहकारा आम्रास्तेषा रसे सिक्तै सिञ्चितैर्जम्बूपल्लवैराच्छाद्यमाना आभ्यन्तराः

ही प्रतीत होती हुई द्वारपालिकाओं द्वारा (रक्षार्थ) आश्रित केले के तोरणों के नीचे से प्रविष्ट होकर, चारो ओर दृष्टि डालते हुए कहीं दोनों तटों पर आरोपित तमाल पत्तों से बनाये गये वनों की पक्तियों वाली, चारों ओर दूर दूर तक बिखरी हुई कुमुद पराग की धूली रूपा पुलिन मालाओं वाली, चन्दन रस के द्वारा बहायी जा रहीं (प्रवर्तित करायी जा रहीं) घरेलू छोटी छोटी नदिया (खिलौना नदिया) देखीं, कहीं उसने निचुल पुष्पों के गुच्छों से बनायी गयी लाल चॅवरियों वाले जल से गीले मण्डपों (चॅदोवों) के तलों पर (नीचे), सिन्दूर से युक्त (सिन्दूर से रॅगे) फर्शों पर बिछायी जा रही लाल कमलों की शय्यायें देखीं, कहीं इलायची के रस से सींचे जा रहे, स्पर्श से ही अनुमित होने योग्य दीवारों वाले स्फटिक निर्मित घर देखे, कुछ स्थानों पर उसने, शिरीष के फूलों के कोमल तन्तुओं (पक्ष्मभि) से (पड़ौस में) बनाये गये घास वाले मैदानों वाले, मृणालदण्डियों से निर्मित, जलयन्त्रगृहों (धारागृहाणाम्) के शिखर पर रखे जाते हुए, (जल) धाराओं के समूहों से धूमिल दिखायी देते हुए यन्त्रचालित मयूरों (की प्रतिमाओं) के समूह देखे, कहीं उसने, आम के रस से सींचे गये जामुन के पत्तों

च्छाद्यमानाभ्यन्तराः पर्णशालाः, क्वचित्क्रीडितकृत्रिमकरिकलभयूथकाकुलीक्रियमाणाः काञ्चनकमलिनीकाः, क्वचिद्गन्धोदककूपेषु बद्धकाञ्चनसुधापङ्ककामपीठेषु स्थूलबिसलतादण्डघटितारकाणि कृतकेतकदलद्रोणिकानि कुवलयावलीरज्जुभिर्ग्रथ्यमानानि पत्रपुटघटीयन्त्रकाणि, क्वचित्स्फटिकबलाकावलीवान्तवारिधारा लिखितेन्द्रायुधाः सचार्यमाणमायामेघमालाः, क्वचिदुपान्तरूढयवाङ्कुरासु तरत्तरुणमालतीकुड्मलदन्तुरिततरङ्गासु हरिचन्दनद्रववापिकासु शिशिरीक्रियमाणा हारयष्टीः, क्वचिन्मुक्ताफलक्षोदरचितालवालकाननवरतस्थूलजलबिन्दुदुर्दिनमुत्सृजतो यन्त्रवृक्षकान्,

---

पर्णशाला उटजा। क्वचिदिति। क्रीडित यत्कृत्रिम निर्मित करिकलभयूथकं तेनाकुलीक्रियमाणा काञ्चनकमलिनीका सुवर्णनलिन्य। कप्रत्यये च सर्वत्र ह्रस्वत्वम्। गन्धोदकस्य सगन्धजलस्य कूपेषूदपानेषु। कीदृशेषु। बद्धः काञ्चनस्य सुवर्णस्य सुधा गृहधवलीकरणद्रव्य तस्य पङ्क कर्दमस्तेन काममत्यर्थं पीठ येषु, स्थूलो यो बिसलताया दण्डस्तेन घटिता अरका येषु, कृतानि केतकदलाना द्रोणिकानि भाजनविशेषाणि येषु, कुवलयानामुत्पलानामावल्य पङ्क्तयस्ता एव रज्जवस्तैर्ग्रथ्यमानानि बध्यमानान्येवविधानि पत्रपुटलक्षणानि घटीयन्त्रकाण्युद्घाटकानि। क्वचिदिति। स्फटिकस्य बलाका बिसकण्ठिकास्तासामावलीभिर्वान्ता मुक्ता वारिधारा जलधारा यासु, लिखितानीन्द्रायुधानि शक्रचापानि यासु, एवविधा सचार्यमाणा प्रेर्यमाणा मायामेघमाला कृत्रिमजलदपङ्क्तय। क्वचिदिति। उपान्ते समीपे रूढा यवाङ्कुरा यासु, तरन्ति तरुणमालतीकुड्मलानि तैर्दन्तुरितास्तरगा कल्लोला यासु, हरिचन्दनस्य तैलपर्णिकस्य द्रवस्तस्य वापिकासु क्षुद्रकूपिकासु शिशिरीक्रियमाणा हारयष्टीर्मुक्ताकलापान्। एतेन विरहाधिक्य वर्णितम्। क्वचिदिति। मुक्ताफल रसोद्भव तस्य क्षोदेन चूर्णेन रचित निर्मितमालवालकमावापस्थानक येषाताननवरतं निरन्तरं स्थूला जलबिन्दवस्तेषा दुर्दिनमुत्सृजत उत्प्राबल्येन मुञ्चत. कुर्वत। एवविधान्यन्त्रवृक्षकान्कृत्रिममही-

---

द्वारा ढके जा रहे भीतरी भाग वाली पर्णकुटियाँ देखीं, कुछ स्थानों पर उसने, खेलते हुए, कृत्रिम गजशिशुओं की टोलियों द्वारा क्षुब्ध किये जा रहे सोने के कमलों से भरे तालाब देखे, कहीं उसने, सुगन्धित जल वाले तथा (द्रव) सोना रूप चूने से बनायी गयी सुन्दर आधारभूमियों वाले कुँओं पर, मोटे, लम्बे मृणाल दण्डो से बनाये गये अरों वाले, केतकी के पत्तों से बनाये बनावटी (कृतक) कुंडोंवाले, कमलों की मालाओं से युक्त रस्सियों द्वारा बाँधे गये पत्तों के बर्तनों वाले अरहट (घटीयत्र) देखे, कुछ स्थानों पर उसने स्फटिक निर्मित सारसों के झुडों पर जलधाराओं को छोड़ती हुई तथा जिनपर इन्द्रधनुष चित्रित कर दिया गया है ऐसी, (आकाश में) केवल निर्माता की चतुराई ही से चलायी जा रही कृत्रिम (मायानिर्मित) मेघपक्तियाँ देखीं, कुछ स्थानों पर उसने, आस पास (उपान्ते) उगे हुए पीले से जो के अङ्कुरों वाली, (उन पर) तैरती हुई मालती लताओं की ताजी कलियों से विषम (ऊँची नीची) बनी लहरियों वाली चन्दन रस की बावड़ियों में ठंडी की जा रहीं मोती मालाएँ देखीं, किन्हीं स्थानों पर उसने. मोतियो के चूरे से निर्मित आलवाल वाले निरन्तर मोटी-मोटी जल की बूदों

क्वचिद्विधुतपक्षनिक्षिप्तसीकरानीतनीहारा भ्रमन्तीर्यन्त्रमयीः पत्रशकुनिश्रेणीः, क्वचिन्मधुरकिङ्किणीपङ्क्तिपटुतराबध्यमानाः कुसुमदामदोलाः, क्वचिदुदरारूढनिर्गतोत्तालनलिनीच्छदाच्छादितमुखान्प्रवेश्यमानाञ्शातकुम्भान्, क्वचिद्घटितकदलीगर्भस्तम्भदण्डानि बध्यमानानि चारुवंशाकृतीनि कुसुमस्तबकातपत्राणि, क्वचित्करमृदितकर्पूरपल्लवरसेनाधिवास्यमानानि बिसतन्तुमयान्यंशुकानि, क्वचिल्लवलीफलद्रवेणार्द्रीक्रियमाणास्तृणशूकमञ्जरीकर्णपूरान्, क्वचिदम्भोजिनीदलव्यजनैर्वीज्यमानानुपलभाजनभाजः शीतौषधिरसानन्यांश्चैवप्रकाराञ्शिशिरोपचारोपकरणकल्पना-

रुहान्। क्वचिदिति। विधुता कम्पिता ये पक्षास्तैर्निक्षिप्ता ये सीकरास्तैरानीतो नीहारो हिम याभिस्ता भ्रमन्तीर्भ्रमण कुर्वन्ती। एवविधा यन्त्रमयी पत्रशकुनिश्रेणी। क्वचिदिति। मधुकरा भ्रमरा एव किङ्किण्य क्षुद्रघण्टिकास्तासां पङ्क्ति श्रेणी तया पटुतर स्पष्ट यथा स्यात्तथा बाध्यमाना निरुध्यमाना कुसुमदामदोलाः पुष्पजवप्रेङ्खा। क्वचिदिति। उदरे मध्य आरूढा निर्गता उद्गता सुवर्णकलशादुत्तालोर्ध्वमुखी या नलिनी तस्याश्छदानि दलानि तैराच्छादित पिहित मुखं येषा तान्प्रवेश्यमानान्गृहान्तर्नीयमानाञ्शातकुम्भान्। क्वचिदिति। घटिता कदलीगर्भस्तम्भा एव दण्डा येष्वेवविधानि बध्यमानानि चारुर्मनोहरो यो वशो वेणुस्तद्वदाकृतिराकारो येषा तानि कुसुमस्तबकान्येवातपत्राणि छत्राणि। क्वचिदिति। करेण मृदितो य कर्पूरपल्लवस्तस्य रसेनाधिवास्यमानानि सुगन्धीक्रियमाणानि बिसतन्तुमयानि तन्तुलतन्तुनिर्मितान्यंशुकानि वस्त्राणि। क्वचिदिति। लवली वल्लीविशेषस्तस्या फलद्रवेणार्द्रीक्रियमाणान्। तृणाना शूक किंशारुस्तस्य मञ्जर्य एव कर्णपूरान्कर्णाभरणान्। क्वचिदिति। अम्भोजिनी कमलिनी तस्या दलान्येव व्यजनानि तालवृन्तानि तैर्वीज्यमानानुपलभाजनभाजो दृषत्पात्रस्थिताञ्शीतौषधिरसान्, अन्यांश्चैवप्रकाराञ्शिशिरोपचारोपकरणकल्पनाव्यापारान्परिजनेन परिच्छदेन कृतान्विहितान्क्रिय-

की फुहारों को छोड़ते हुए यन्त्रचालित वृक्ष देखे, कहीं फड़फड़ाते पखों से फैंकी हुई (जल की) फुहारों द्वारा वहाँ धुंध (का दृश्य) उत्पन्न करती हुई घूमती हुई, यन्त्रचालित पत्तों की बनी पक्षियों की पंक्तियाँ देखीं, कहीं, (उनके ऊपर तथा समीप मंडराते) भौंरों के रूप में स्थित घंटियों की पंक्तियों से खचा खच भरे हुए (शब्दार्थ—पंक्तियों द्वारा भली भाँति संकुल) पुष्पमालाओं के झूले देखे, कहीं उनके भीतर उगी हुई तथा अपनी सीधी खड़ी (उत्ताल अथवा उन्नाल) डंडियों समेत बाहर निकली नलिनियों के पत्तों से ढके मुखों वाले, भीतर ले जाते हुए सोने के घड़े देखे, कहीं, उसने, केले की बीच वाली डंठल (स्तम्भ) से बनी हत्थियों वाली, सुन्दर बाँस की सी आकृतियों की, पुष्पगुच्छों से बनी, बाँधी जाती हुई छतरियाँ देखीं, कहीं हाथ से मसले हुए कपूर के पत्ते के रस से गन्ध युक्त किये जा रहे, बिसतन्तुओं के बने वस्त्र देखे, कहीं लवली लता के फलों के रस से गीले किये जाते, मल्लिका (तृणशूक) की मञ्जरियों के बने कर्णाभूषण देखे, और कहीं पत्थर के पात्रों में रखे हुए तथा कमलिनी के पत्तों के पंखों से पंखा किये जाते शामक औषधियों के रस देखे। और दूसरी भी इसी प्रकार की शामक चिकित्सा

व्यापारान्परिजनेन कृतान्क्रियमाणांश्च वीक्षमाणो हिमगृहकस्य मध्यभागं हृदयमिव हिमवतः, जलक्रीडागृहमिव प्रचेतसः, जन्मभूमिमिव सर्वचन्द्रकलानाम्, कुलगृहमिव सर्वचन्दनवनदेवतानाम्, प्रभवमिव सर्वचन्द्रमणीनाम्, निवासमिव सर्वमाघमासयामिनीनाम्, संकेतसदनमिव सर्वप्रावृषाम्, ग्रीष्मोष्मापनोदोद्देशमिव सर्वनिम्नगानाम्, बडवानलसंतापापनोदननिवासमिव सर्वसागराणाम्, वैद्युतदहनदाहप्रतीकारस्थानमिव सर्वजलधराणाम्, इन्दुविरहदुःसहदिवसातिवाहनस्थानमिव कुमुदिनीनाम्, हरहुताशननिर्वापणक्षेत्रमिव मकरध्वजस्य, दिनकरकरैरपि सर्वतो जलयन्त्रधारासहस्रसमुत्सारितैरतिशीतस्पर्शभयनिवृत्तैरिव परिहृतम्, अनिलैरपि

माणाश्च विधीयमानांश्च वीक्षमाणो हिमवतो गौरीगुरोर्हृदयमिव स्वान्तमिव, प्रचेतसो वरुणस्य जलक्रीडागृहमिव सर्वा समग्रा याश्चन्द्रकलास्तासा जन्मभूमिमिव, सर्वं यच्चन्दनवन गन्धसारकानन तस्य देवतानामधिष्ठात्रीणां कुलगृहमिव पितृसद्मिव, सर्वचन्द्रमणयश्चन्द्रकान्तायास्तेषा प्रभवमिवोत्पत्तिमिव, सर्वे ये माघमासास्तपोमासास्तेषा यामिनीना रात्रीणा निवासमिव वसतिस्थलमिव, सर्वप्रावृषा समग्रतपात्ययानां सकेतसदनमिव, सर्वनिम्नगाना समस्ततटिनीना ग्रीष्मस्योष्णागमस्य ऊष्मा तापस्तस्यापनोदो दूरीकरण तस्योद्देशमिव प्रदेशमिव, सर्वसागराणां वडवानलः वाडवस्तस्य य सतापस्तस्यापनोदना दूरीकरण तस्या निवासमिव वसतिमिव, सर्वजलधराणां समग्रमेघाना वैद्युतो यो दहन इरमदस्तेन दाहस्तस्य प्रतीकारस्थानमिव प्रतिक्रियागृहमिव, कुमुदिनीना कैरविणीनामिन्दुविरहेण दु सहमसह्य दिवसस्यातिवाहनमुल्लङ्घन तस्य स्थानमिव, मकरध्वजस्य कदर्पस्य हरस्येश्वरस्य यो हुताशनस्तृतीयनेत्रजो वह्निस्तस्य निर्वापण निर्यातन तस्य क्षेत्रमिव स्थानमिव, दिनकरस्य सूर्यस्य करैरपि सर्वत समन्ताज्जलयन्त्रधारासहस्राणि तै. समुत्सारितैर्दूरीकृतैरतिशयेन यः शीत स्पर्शः तस्माद्भय तेन निवृत्तैरिव परिहृत परित्यक्तम्।

के साधनों (उपकरणों) को बनाने (तय्यार करने) की सेवकों द्वारा की गयीं तथा की जा रहीं क्रियाओं को देखता हुआ वह हिमगृह के मध्य भाग मे पहुँच गया। (हिमगृह का यह मध्यभाग बहुत शीतल था, इसलिये) मानो हिमालय का ही मध्यभाग (हृदय) था, (जलाधिपति) वरुण का मानो जलक्रीडागृह था, सारी चन्द्रकलाओं का मानो जन्मस्थान था, मानो सभी चन्दन के वनों की अधिष्ठात्री देवियों का पैतृक गृह था, मानो सभी चन्द्रमणियों का (उद्गम) स्रोत था, (ठढे) माघमहीने की सभी रात्रियों का मानो निवास स्थान था, मानो सभी वर्षाऋतुओं का सकेतगृह (मिलने का स्थान) था, मानो सारी नदियों की ग्रीष्म ऋतु की गर्मी को दूर करने का प्रदेश था, सब समुद्रों का समुद्राग्नि की ऊष्मा रूपी पाप को हटाने का निवास स्थान था, मानो सारे बादलों का, बिजली से उत्पन्न (वैद्युत) जलन के प्रतीकार का स्थान था, कमलिनियों के लिये, चन्द्रमा के वियोग के कारण असह्य (बने हुए) दिन को बिताने का मानो स्थान ही था, कामदेव का मानो शिवजी की आग को बुझाने का प्रदेश था, यह ऐसा स्थान था कि जिसको फव्वारों की सहस्रों जलधाराओं द्वारा सभी स्थानो से निकाल कर फैंकी गयीं, मानो कि ठढे स्पर्श के भय के कारण ही लौटी हुई सूर्य की किरणों ने भी छोड़ दिया था, कदम्बपुष्पों के तन्तुओं के ढेरों को उड़ाकर ले

कदम्बकेसरोत्करवाहिभिः कण्टकितैरिवानुगतम्, कदलीवनैरपि पवनचलितदलै-र्जाड्यजनितवेपथुभिरिव परिवारितम्, अलिभिरपि कुसुमामोदमदमुखरैराबद्धदन्त-वीणैरिव वाचालितम्, लताभिरपि मधुकरपटलजटिलाभिर्गृहीतनीलप्रावरणका-भिरिव विराजितमाससाद। क्रमेण च तत्रान्तर्बहिश्चातिबहलेन पिण्डहार्येणेवोप-लिप्यमानोऽतिशीतलेन स्पर्शेनामन्यतात्मनो मनश्चन्द्रमय कुमुदमयानीन्द्रियाणि ज्योत्स्नामयान्यङ्गानि मृणालिकामयी धियम्। अगणयच्च हारमयानर्ककिरणा-

अनिलैरपि पवनैरपि कदम्बस्य कादम्बस्य य. केसरोत्करस्तद्वाहिभिरत एव कण्टकितैरिव रोमाञ्चितैरिवानुगत सहितम्। कदलीवनैरपि रम्भाकाननैरपि पवनेन चलितानि कम्पितानि दलानि येषा तैरत एव जाड्येन जनितो वेपथु कम्पो येषामेतादृशैरिव परिवारितम्। अलिभिरपि भ्रमरैरपि कुसुमानामामोद परिमलस्तज्जनितो मदस्तेन मुखरैर्वाचालैरत एवाबद्धा दन्तवीणा यैरेवविधैरिव वाचालित मुखरितम्। लताभिरपि वल्लीभिरपि मधुकराणा पटल तेन जटिलाभिर्व्याप्ताभिर्गृहीत स्वीकृत नील प्रावरण प्रच्छादन याभिरेवविधाभिरिव विराजित शोभितमेतादृश हिमगृहकस्य मध्यभागमाससाद प्राप्तवान्। क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्यान्तर्बहिश्चातिशीतलेन स्पर्शेनोपलिप्यमानः। ननु मूर्तव्यतिरेकेणोपदिग्धक्रिया न सभवतीत्याशयेनाह—अतीति। अतिबहलेनातिदृढेन पिण्डहार्येणेव पिण्डरूपेणाहर्तुं शक्य पिण्डहार्यं तेनेव। एतेनातिशीतलस्पर्शस्य बाहुल्यतया हस्तग्राह्यत्व सूचितम्। तथातिशीतलेन स्पर्शेनात्मन स्वस्य मनश्चित्त चन्द्रमयममन्यताजानात्। तथा कुमुदमयानि कैरवमयानीन्द्रियाणि करणानि ज्योत्स्नामयानि चन्द्रिकामयान्यङ्गानि हस्तपादादीनि मृणालिकामयीं बिसमयी धिय बुद्धिममन्यतेत्यस्य सर्वत्र सबन्ध। तथार्ककिरणान्सूर्यकरान्। शुभ्रत्वायतत्वसाम्यादाह—हारमयान्मुक्ताप्रालम्बमयानगणयत्। अत्रोऽप्येतस्य संबन्ध। आतप सूर्यालोकं चन्दनमथ मलयजमयम्। अतिशीतलत्वादिति भाव।

जाती हुई तथा (इसी कारण मानो ठढ से ही) रोमाञ्चित सी प्रतीत होती हुई, पवनो द्वारा भी अनुगत भरा हुआ था, यह केले के कुञ्जो से भी घिरा हुआ था जो वायु द्वारा हिलाये गये पत्तो से युक्त ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो उनमें शीतलता के कारण कम्पन उत्पन्न हो गया हो, यह उन भौरो से भी गूज रहा था जो फूलो की सुगन्ध के नशे के कारण भिनभिनाते ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो (ठढ के कारण) उनके दान्तो की वीणा बन्ध गयी हो—अर्थात् ठढ के कारण उनके दान्त किचकिचा रहे थे, और उन बेलों से भी शोभित था जो भौरों के झुडों से खचाखच भरी हुई ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि मानो उन्होंने (शीत को हटाने के लिये) काली चादर ओढ रखी हो। और क्रमश वहाँ (अपने) भीतर तथा बाहर से (दोनों ही स्थानों पर) अत्यन्त शीतल स्पर्श द्वारा, इतने घने कि मानो वह ढेरों में उठाया जा सकता था, लीपे जाते हुए उस (चन्द्रापीड ने) अपने मन को मानो चन्द्रमा से बना हुआ माना, इन्द्रियों को कमलों से बनी हुई, शरीर के अगों को चन्द्रमा के प्रकाश से बने हुए, बुद्धि को मृणालसूत्रों की बनी हुई समझा और उसने सूर्य की किरणें हारो से भरी हुई समझीं, धूप चन्दन-लेप से भरी हुई, वायु कपूर से भरी, समय जल से भरा और तीनों भुवन बर्फ से भरे समझे।

श्चन्दनमयमातपं कर्पूरमय पवनमुदकमय काल तुषारमय त्रिभुवनम्। एवविधस्य च तस्यैकदेशे सखीकदम्बकपरिवृताम्, अशेषसरित्परिवारामिव भगवतीं गङ्गा हिमवतो गृहाचलगताम्, कुल्याभ्रमिभ्रमितेन कर्पूररसस्रोतसा कृतपरिवेषाया मृणालदण्डमण्डपिकायास्तले कुसुमशयनमधिशयानाम्, हाराङ्गदवलयरसनानूपुरैर्मृणालमयैर्निगडैरिव सयतामीर्ष्यया मन्मथेन, चन्दनधवले स्पृष्टामिव ललाटे शशलाञ्छनेन, बाष्पवारिवाहिनि चुम्बितामिव चक्षुषि, वरुणेन वर्धितनिःश्वासमरुति दष्टामिव मुखे, मातरिश्वना सतापप्रतप्तेष्वध्यासितामिवाङ्गेष्वनङ्गेन कंदर्पदाहदीपिते गृहीतामिव हृदये

तथा पवन समीर कर्पूरमय धनसारमयम्। उद्गन्धयुक्तत्वात्। तथा काल समयमुदकमय जलमयम्। त्रिभुवन त्रिविष्टप तुषारमय हिममयम्। अतिशीतलस्य शेषाधिवशादिकरणरूपतया सत्त्वेऽपि हाररूपतयागणयदित्यर्थ । एवविधस्य तस्य हिमगृहस्य एकदेश एकस्मिन्प्रदेशे सखीकदम्बकेन वयस्यासमूहेन परिवृताम्। अशेषसरित्परिवारा समग्रतटिनीपरिच्छदा हिमवत पर्वतात् गृहाचलगता गृहशिलागता भगवती गङ्गामिव जाह्नवीमिव विरहजनितपाण्डुरत्वसाम्यात्तदुपमानम्। अन्यासां च नद्युपमानम्। कुल्या सारणी तस्या भ्रमिर्भ्रमण तया भ्रमितेन कर्पूररसस्रोतसा धनसारद्रवप्रवाहेण कृतो विहित परिवेष परिधिर्यस्या एवविधाया मृणालदण्डमण्डपिकाया बिसदण्डमण्डपस्य तलेऽधोभागे कुसुमशयन पुष्पशय्यामधिशयाना कृतस्वापाम्। हारेति। हारो मुक्ताप्रालम्ब., अङ्गद बाहुकटम्, वलय कङ्कणम्, रसना काञ्ची, नूपुराणि पादकटकानि, एतैर्मृणालमयैर्बिसमयैर्निगडैरिवान्दुकैरिवेर्ष्यया स्पर्धया मन्मथेन कदर्पेण सयता बद्धाम्। चन्दनेन धवले शुभ्रीकृते ललाटेऽलिके शशलाञ्छनेन चन्द्रेण स्पृष्टामिवालिङ्गितामिव। शुभ्रत्ववक्रत्वसाम्याच्चन्द्रोपमानम्। बाष्पवारि नेत्राम्बु तद्वाहिनि चक्षुषि नेत्रे वरुणेन प्रचेतसा चुम्बितामिव। जलच्युतिसाम्याद्वरुणेनेत्युक्तम्। वर्धितो वृद्धिं प्राप्तो नि श्वासमरुदेतनवायुर्यस्मिन्नेवविधे मुखे। वायुबाहुल्यादाह—मातरिश्वना वायुना दष्टामिव भक्षितामिव। सताप सज्वरस्तेन प्रतप्तेषूष्णेष्वङ्गेष्वनङ्गेन कदर्पेणाध्यासितामाश्रितामिव। कुत्रचित् 'पतङ्गेन' इति पाठ।

और इस प्रकार के उस हिमगृह के एक भाग में उसने कादम्बरी को देखा। वह कादम्बरी बहुत सी सहेलियों से घिरी हुई थी, (इसलिये) ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो सभी (सहायक) नदियों के परिवार वाली (सहायक नदियों समेत) भगवती गगा, हिमालय की गुफा के तल पर पड़ी हो, किसी नहर के चक्करदार घुमाव से घुमाये गये कपूर रस के प्रवाह द्वारा घिरी हुई, मृणालदण्डोंके बने स्तम्भों वाली छोटी छोलदारी के नीचे पुष्पों की शैय्या पर सोयी हुई थी, कामदेव ने उससे जलकर मानो बिसतन्तुओं द्वारा बनाये हुए मानो साकल बनाये हुए हारों, बाजूबन्दों, कगनों तथा नूपुरों द्वारा बाँध रखा था, चन्दन से श्वेत हुए मस्तक पर मानो चन्द्रमा द्वारा स्पर्श की हुई थी, आँसू बहाती आँखों पर मानो वरुण द्वारा चूमी गयी थी, बढे हुए श्वासों की वायु वाले (भारी आहें निकलते हुए) मुँह पर मानो वायु द्वारा काट ली गयी थी (अर्थात् चूम ली गयी थी), सताप-प्रणयोन्माद-से तपाये हुए अगों में [1]सूर्य

---

1. पतङ्गेन।

हुतभुजा, स्वेदिनि परिष्वक्तामिव वपुषि जलेन, दैवतैरपि विलुप्यमानसौभाग्यामिव सर्वशः, हृदयेन सह प्रियतमसमीपमिवोपगतैरङ्गैरुपजनितदौर्बल्याम्, आश्यानचन्दनपाण्डुरं च रोमाञ्चमनवरतहारस्पर्शलग्न मुक्ताफलकिरणपुञ्जमिवोद्वहन्ती स्वेदसीकरिणी च कपोलपालीम्, पक्षपवनेन वीजयद्भिरनुकम्प्यमानामिवावतसमधुकरैः, अवतसमधुकररवदहनदग्धमिव श्रोत्रमपाङ्गनिर्गतेनाश्रुस्रोतसा सिञ्चन्तीम्, अतिप्रवृत्तस्य चाश्रुणो निर्वाहप्रणालिकामिव कर्पूरकेतकीकलिका कर्णे कलयन्तीम्, आयतश्वासविधु-

---

तत्र पतङ्ग सूर्यस्तापजनकत्वात् । तदाश्रितामित्यर्थः । कदर्पदाहदीपिते मदनदावज्वलिते हृदये । दाहजनकत्वसाम्यादाह—हुतभुजेति । हुतभुजा वह्निना गृहीतामिव स्वीकृतामिव । स्वेदिनि प्रस्वेदवति वपुषि जलेन नीरेण परिष्वक्तामिवाश्लिष्टामिव । एतेन स्वेदबाहुल्य सूचितम् । दैवतैरप्यदृष्टैरपि सर्वश सर्वप्रकारेण विलुप्यमान लोपमाप्यमान सौभाग्य यस्या सा तामिव । हृदयेन चित्तेन सह सार्धं प्रियतमसमीप प्राणप्रियनिकटमिवोपगतैरङ्गै कृत्वोपजनित विहित दौर्बल्य कृशत्व यस्या एतादृशीम् । आश्यानमिति । आश्यान शुष्क यच्चन्दन मलयज तेन पाण्डुरं शुभ्र रोमाञ्च चानवरत निरन्तर हारस्पर्शेन लग्न मिलित मुक्ताफलाना किरणा दीधितयस्तेषा पुञ्ज समूहस्तमिवोद्वहन्तीं धारयन्तीम् । अत्र चन्दनधवलीकृतस्य रोमोद्गमस्य मुक्ताकिरणसमूहोपमानम् । तथा स्वेदस्य घर्मजलस्य सीकरा विद्यन्ते यस्यामेतादृशीं कपोलपालीमुद्वहन्तीम् । चकार· समुच्चयार्थं । अवेति । अवतस उत्तसस्तस्य मधुकरैर्भ्रमरै पक्षपवनेन वीजयद्भिरनुकम्प्यमानामिवानुकम्पाविषयीक्रियमाणामिव । अवतसमधुकराणा रव शब्द स एव दाहकत्वाद्दहनो वह्निस्तेन दग्धमिव ज्वलितमिव । श्रोत्रं श्रवणमपाङ्गनिर्गतेनाक्षिबाह्यायातेनाश्रुस्रोतसा नेत्रजलप्रवाहेण करणभूतेन सिञ्चन्ती सेक कुर्वन्तीम् । अतिप्रवृत्तस्यातिप्रसृतस्याश्रुणो नेत्रजलस्य निर्वाहार्थं सुखेन गमनार्थं प्रणालिकामिव जलमार्गमिव कर्पूरकेतकीकलिका कर्पूरेषूक्ता या केतकी तस्या कलिका कोरक ता कर्णे कलयन्तीं कलना कुर्वन्ती धारयन्तीम् । आयतो विस्तीर्णो

द्वारा अध्यासित थी, प्रेम के उत्ताप से ज्वलित हृदयमें अग्नि द्वारा पकड़ी हुई (कैद की हुई) थी, पसीने से तर शरीर पर मानो जल द्वारा आलिंगित थी, इस प्रकार मानों देवताओं द्वारा भी (ईर्ष्या से) उसका सौन्दर्य सर्वथा नष्ट किया जा रहा था। उसने अपने (शरीर) मे दुर्बलता उत्पन्न कर रखी थी, क्योंकि मानो उसके सारे अग, हृदय के साथ ही साथ, उसके प्रियतम (चन्द्रापीड) के समीप चले गये थे, और अशत सूखे हुए (आश्यान) चन्दन से श्वेत हुए मानो कि निरन्तर हार के स्पर्श करने से लगे मोतियों के किरण समूह सरीखे रोमाच को तथा पसीने के बूँदों वाले कपोलों के तल भाग को धारण किये हुई थी, अपने कर्णाभूषण के ऊपर मँडराते भौंरे अपने पखों से उसको पखा करते हुए मानो उसपर दया दिखा रहे थे, वह मानो उसके कर्णाभूषणों (पर मँडराते) भौंरों की गूँज रूपी अग्नि से उसका कान जल गया था, इसलिये वह उसको आँखों के कोने से निकले आँसुओं के बहाव से सींच रही थी, और अपने कान पर श्वेत केतकी (अथवा कपूर से सुवासित केतकी) की कली को रख रही थी मानो कि वह (कली) अतिरिक्त बहते हुए आँसुओं को ले जाने की नली हो, उसका

तितरलितेन च सतापभयपलायमानेन देहप्रभावितानेनेवांशुकेन विमुच्यमानकुचकलशाम्, आपतत्प्रचलचामरप्रतिबिम्ब च कुचकलशयुगल प्रियान्तिकगमनौत्सुक्यकृतपक्षमिव करतलेन निरुन्धन्तीम् , मुहुर्मुहुर्भुजलतया तुषारशिलाशालभञ्जिकामालिङ्गन्तीम्, मुहुः कपोलफलकेन कर्पूरपुत्रिकामाश्लिष्यन्तीम्, मुहुश्चरणारविन्देन चन्दनपङ्कप्रतियातनामामृशन्तीम्, स्तनसक्रान्तेनात्ममुखेनापि कुतूहलिनेव परिवृत्य विलोक्यमानाम्, कर्णपूरपल्लवेनापि स्वप्रतिबिम्बशायिना सोत्कण्ठेनेव चुम्ब्यमानकपोलफलकाम्, हारैरपि मुक्तात्मभिर्मदनपरवशैरिव प्रसारितकरैरालिङ्ग्यमानाम्, मणिदर्पणमुरसि

य. श्वास श्वसित तस्माद्या विधुति कम्पस्तेन तरलितेन कम्पितेन सतापभयात्पलायमानेन धावता। अतिशुभ्रस्वसचिक्कणत्वसाम्यादाह—देहेति। देहप्रभावितानेनेव शरीरदीप्तिसमूहेनेवांशुकेन वस्त्रेण विमुच्यमानौ कुचावेव कलशौ यस्या सा ताम्। आपतत्प्रचलचामरयो प्रतिबिम्ब यस्मिन्नेतादृश कुचकलशयुगल प्रियस्य वल्लभस्यान्तिक समीप तत्र गमने याने यदौत्सुक्य रणरणकता तेन कृता पक्षा येनैतादृशमिव करतलेन निरुन्धन्ती निरोध कुर्वन्तीम्। मुहुर्मुहुर्भुजलतया बाहुवल्लया तुषारशिला तस्या शालभञ्जिका पाञ्चालिकामालिङ्गन्तीमाश्लेष कुर्वन्तीम्। मुहु कपोलफलकेन कर्पूरपुत्रिका घनसारपाञ्चालिकामाश्लिष्यन्तीमालिङ्गन्तीम्। मुहुश्चरणारविन्देनाङ्घ्रिकमलेन चन्दपङ्कस्य मलयजकर्दमस्य प्रतियातना प्रतिमाम्। 'प्रतिमा यातनाविधि। छाया छन्द कायो रूप बिम्ब मानकृती अपि' इति कोश। आमृशन्तीं परामर्श कुर्वन्तीम्। स्तनेति। स्तनयो कुचयो सक्रान्तेन प्रतिबिम्बितेनात्ममुखेनापि स्वकीयवदनेनापि कुतूहलिनेव कौतुकिनेव परिवृत्य। उत्तानीकृत्येत्यर्थ। विलोक्यमाना वीक्ष्यमाणाम्। एतेन सौन्दर्यातिशय सूचित। एव कर्णपूरपल्लवेनापि स्वप्रतिबिम्बरूपेण शायिना शयनकारिणा। एतेनायतत्व सूचितम्। सोत्कण्ठेनेव सोत्कलिकेनेव चुम्ब्यमान चुम्बनविषयीक्रियमाण कपोलफलक यस्या सा ताम्। हारैरपि मुक्ताकलापैरपि मुक्तात्मभिर्मुक्तास्वरूपैर्मदनपरवशैरिवानङ्गायत्तैरिव प्रसारितकरैर्विस्तारितपाणिभिरालिङ्ग्यमानामाश्लिष्यमानाम्। अत्र मुक्तात्मभिरालिङ्ग्यमानामित्यनेन

रेशमी वस्त्र उसके घट सरीखे स्तनों को छोड़ रहा था, मानो कि वह वस्त्र उसकी गहरी आहों के कम्पन से चञ्चल हुई और (प्रेम की) ऊष्मा के भय से भागी हुई उसके देह की कान्ति का विस्तार ही हो, वह अपनी हथेली से, उनमें पड़ते हुए हिलते चमर के प्रतिबिम्ब से युक्त घट सरीखे स्तनो को पकड़े हुए थी मानो कि प्रेमी के समीप जाने की लालसा में उनमें चँवरी के प्रतिबिम्ब रूपी पख निकल आये हों, वह अपनी लता सरीखी भुजा से हिमशिला से बनायी गयी प्रतिमा (शालभञ्जिका) का आलिंगन कर रही थी, वह अपने चौड़े कपोलों से कपूर की गुड़िया का आलिंगन कर रही थी, वह अपने चरण रूपी कमल से गाढ़े चन्दन लेप की बनी मूर्ति को छू रही थी, स्तनों में प्रतिबिम्बित अपने मुँह द्वारा भी वह उत्सुकतापूर्वक देखी जा रही थी, अपने ही प्रतिबिम्ब के पल्लव पर पड़ा उसके कर्णाभूषण का पल्लव भी मानो उत्कठित होकर उसके कपोलतल का स्पर्श कर रहा था, अपने मोतियों के बने (मुक्तात्मभिः) हारों द्वारा भी फैलायी हुई किरणों (करै) द्वारा मानो इस प्रकार आलिंगित की जा रही

निहित विनोदितव्यमेतदिति जीवितस्पर्शमय शपथं शशिनमिव कारयन्तीम्, करिणीमिव संमुखागतप्रमदवनगन्धवारणप्रसारितकराम्, प्रस्थितामिवानभीष्टदक्षिणवातमृगागमनाम्, मदनाभिषेकवेदिकामिव कमलावृतचन्दनधवलपयोधरकलशावष्टब्धपार्श्वाम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरतलदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, कुसुमचापलेखा-

तस्या अभिनव सौभाग्य वर्णितम्। उरसि निहित वक्षसि स्थापित मणिदर्पण रत्नादर्शम्। वर्तुलत्वतादृशद्युतिमत्त्वसाधर्म्यात्। जीवितस्य स्पर्शो दान तन्मय शशिनमिव चन्द्रमिव। 'स्पर्शो वर्गाक्षरे दाने स्पर्शने स्पर्शके रुजि' इति कोश। इति शपथ कारयन्तीम्। इतिशब्दद्योत्यमाह—विनोदेति। अद्य त्वया विनोदितव्यम्। अन्यस्तु शशी शोकप्रद, त्वया तु विनोदितव्यमेतदिति भाव। अत एव जीवितस्पर्शमयमिति विशेषणम्। करिणीति। हस्तिनीमिव। उभयो शब्देन साम्य प्रदर्शयन्नाह—संमुखेति। समुखागतो य प्रमदवनगन्धस्तस्य वारण दूरीकरण तत्र प्रसारितौ करौ यया सा। विरहाकुलितत्वेन प्रमदवनस्य गन्धस्य दु खदायित्वात्तन्निवारण युक्तमेवेति भाव। पक्षे समुखागत प्रमदो मदोत्कटो वनगन्धवारणो वनप्रभवो गन्धहस्ती त प्रति प्रीत्या प्रसारित कर शुण्डा यया सा ताम्। प्रस्थितामिव चलितामिव। उभयसाम्य प्रदर्शयन्नाह—अनभीष्टेति। अनभीष्टमनीप्सित दक्षिणो यो वात स एव शीघ्रगामित्वान्मृगो हरिणस्तस्यागमन यस्या सा ताम्। विरहिण्या दक्षिणो वायुरतीव दु खदो भवतीति सर्वत्र प्रसिद्धम्। पक्षेऽनभीष्टो दक्षिणो वामतोऽपसव्यगो वातमृगो वातप्रमीर्यस्या सा ताम्। क्षीणा प्रयाणे दक्षिणो मृगोऽपशकुनमिति वसन्तराजादौ प्रसिद्धम्। मदनेति। मदनस्य कदर्पस्याभिषेकार्थे वेदिका सस्कृता भूमिस्तामिव। उभयो साम्यमाह—कमलेति। कमलया शोभयावृतौ चन्दनेन धवलौ पयोधरावेव कुचावेव पीनत्ववर्तुलत्वसाम्यात्कलशौ ताभ्यामवष्टब्धावाश्रितौ पार्श्वौ

थी कि मानो वे हार प्रणयाधीन होने के कारण आत्मनियन्त्रण को छोड़े हुए (अथवा मुक्तात्मा मुनि) वे व्यक्ति हो जिन्होंने (उसका आलिंगन करने के लिये) हाथ फैला रखे हों, अपने वक्ष स्थल पर रखे हुए मणिजटित दर्पण को, यह समझते हुए कि यह चन्द्रमा है, अपने जीवन के स्पर्श के साथ (मानो कि अपने जीवन का स्पर्श करा कर) यह शपथ दिला रही थी कि अब उदित मत होना, अपने सामने (अपनी ओर) आयी हुई प्रमदवन की गन्ध को रोकने के लिये हाथ फैलाये हुई मानो वह हथिनी थी कि जो अपनी ओर आते प्रमदवन के गन्धहस्ती की दिशा मे अपनी सूँड को फैला देती है, अनिष्ट दक्षिणी वायु रूपी मृग के आगमन वाली वह ऐसी प्रतीत हुई कि मानो अपनी दायीं ओर वातमृग के (वायु के समान त्वरितगति हरिण) के आगमन को (अशुभसूचक होने के कारण) नापसन्द करनेवाली कोई स्त्री (यात्रा पर) चल पड़ी हो, कमलों से आच्छादित तथा चन्दन लेप से श्वेत हुए स्तन कलशों (बड़े-बड़े स्तनों) द्वारा थामे हुए पार्श्वों वाली वह ऐसी कामदेव के स्नान के लिये बनायी गयी उस वेदी सरीखी प्रतीत हो रही थी जिसके दोनों ओर कमलों से ढके तथा चन्दन से (मिश्रित होने के कारण) श्वेत जल से भरे घड़े रखे हों, उसकी बिसतन्तुओं के समान कोमल जघाओं का मूल (भाग) उसके पारदर्शक (स्वच्छ) वस्त्रों के नीचे दिखायी दे रहा था और इस प्रकार वह

मिव मदनारोपितगुणकोटिकान्ततराम्, मधुमासदेवतामिव शिशिरहारिणीम्, मधुकरीमिव कुसुममार्गणाकुलाम्, चन्दनविलेपनामनङ्गरागिणीं च बाला मन्मथजननी च मृणालिनीमभ्यर्थिततुषारस्पर्शां च कादम्बरीं व्यलोकयत्।

यस्या । आकाशेति । आकाश व्योम तस्य कमलिनी पद्मिनी तामिव । उभयो साम्यमाह—स्वच्छेति । स्वच्छ निर्मल यदम्बर वस्त्र तस्य तलमधोभागस्तत्र दृश्यमान विलोक्यमान मृणालवत्कोमलमूरुमूल सक्थिमूल यस्या सा ताम्। पक्षे स्वच्छ रजोरहित यदम्बरतल व्योमतल तत्र दृश्यमान मृणाललक्षण कोमल सुकुमारमुरु विस्तीर्ण मूल बुध्नो यस्या । कुसुमेति । कुसुमचाप पुष्पधनुस्तस्य लेखामिव । उभयसाम्यमावि कर्तुमाह—मदनेति । मदनेन यौवनावस्थारोपिता स्थापिता या गुणकोटिस्तया कान्ततरा मनोज्ञतराम्। पक्षे मदनेन कदर्पेणारोपितोऽधिज्यीकृतो गुणकोटिमौर्वीप्रान्तस्तया कान्ततराम्। मध्विति । मधुमासो वसन्तमासस्तस्य देवतामिवाधिष्ठात्रीमिव । उभयसादृश्यमाह—शिशिरेति । शिशिरेति शीतलोचापरेण हारिणीं रुचिराम्। पक्षे शिशिरस्य ऋतुविशेषस्यापहारिणीम्। शिशिरापगमे हि मधुमास. प्रवर्तते । मधुकरीमिव भ्रमरीमिव । उभयसादृश्यमाह—कुसुमेति । कुसुमान्येव विरहवशान्मार्गणा बाणास्तैराकुलाम्। पक्षे कुसुमाना मार्गणमन्वेषणं तेनाकुला व्यग्राम्। अथ च चन्दनस्य विलेपनमङ्गरागो यस्या एवविधामपि न विद्यतेऽङ्गरागो यस्यामिति विरोधः। तत्परिहारस्तु—अनङ्ग कदर्पस्तस्मिन्रागिणीमनुरागवतीमित्यर्थात्। बालामनाविष्कृतमन्मथाम्, अथ च मन्मथजननीमिति विरोध । तत्परिहारस्तु—बालामनुद्वाहितामित्यर्थात्। मृणालिनीम्, अथ चाभ्यर्थितो वाञ्छितस्तुषार स्पर्शो ययेति विरोध । कमलिन्यास्तुषारस्पर्शं सर्वथानिष्ट इति लोके प्रसिद्धम्। तत्परिहारस्तु—विरहतापोपशान्त्यर्थं मृणाल विद्यते यस्या इत्यर्थात्। एवविधा कादम्बरी व्यलोकयद्पश्यत्।

उस आकाशरूपी कमल सरोवर की सी प्रतीत हो रही थी कि जिसके भीतर बिसतन्तुओं का सा (अर्थात् श्वेत तथा चमकीला) नाजुक (कोमल) तथा बड़ा (उरू) मूल नक्षत्र दिखायी देता हो, कामदेव द्वारा उसको प्रदान किये गये करोड़ों गुणों के कारण वह अधिक सुन्दरी प्रतीत हो रही थी मानो वह कामदेव की फूलों की धनुष की पक्ति थी जो कामदेव द्वारा चढ़ायी हुई प्रत्यञ्चा के कारण अधिक सुन्दर दिखायी देती है, शीतल हारों को पहने हुई वह शिशिर ऋतु का पीछा करने वाली वसन्त ऋतु की अधिष्ठात्री देवता सरीखी दिखायी दे रही थी, फूलों के ढूँढने में लीन भौंरी की भाँति वह भी कुसुम ही जिसके मार्गण बाण हैं उस कुसुमधन्वा कामदेव से पीड़ित थी, चन्दन का (शरीर पर) लेप किये हुई भी किसी भी शारीरिक लेप से विहीन थी ! (नहीं, नहीं, वस्तुत. अनङ्ग कामदेव से उत्पादित प्रेम से भरी हुई थी), युवती भी थी और कामदेव की माता भी थी ! (नहीं, नहीं, वस्तुतः दूसरों मे प्रणयोन्माद को उत्पन्न करने वाली थी), मृणालिनी (विषतन्तुओं) को धारण किये हुई थी और (कमल के पौधे को नष्ट करने वाली) बर्फ के स्पर्श के लिये लालायित भी थी।

अथ सा यथादर्शनमागत्यागत्य चन्द्रापीडागमनमावेदयन्त परिजनमुत्तरलतारकेण चक्षुषा विलोक्य 'कथय, किं सत्यमागतो दृष्टस्त्वया ? कियत्यध्वनि, कासौ' इति प्रतिमुख निक्षिप्तनामाक्षरं पप्रच्छ। प्रवर्धमानधवलिम्ना चक्षुषा दृष्ट्वा च सम्मुखमापतन्त तं दूरादेव वरारोहा, नवग्रहा करिणीवोरुस्तम्भविधृता, विचेष्टमानाङ्गी, कुसुमशयनपरिमलोपगतैः परवशामुखरैर्मधुकरकुलैरिवाच्छाद्यमाना, सम्भ्रमच्युतोत्तरीयका हारकिरणानुरसि कर्तुमिच्छन्ती, मणिकुट्टिमनिहितेन वामकरतलेन हस्ताव-

---

अथ सा कादम्बरी यथादर्शनं यथावसरमागत्यागत्य चन्द्रापीडस्यागमनमावेदयन्त कथयन्त परिजनमुत्प्राबल्येन तरला चञ्चला तारका यस्मिन्नेताद्दशेन चक्षुषा विलोक्य वीक्ष्य प्रतिमुख निक्षिप्तानि स्थापितानि नामाक्षराणि यथा स्यात्तथा। प्रत्येक प्रत्येक नाम गृहीत्वेत्यर्थं । इति पप्रच्छेत्यप्राक्षीत्। इतिद्योत्यमाह—कथयेति। कथय ब्रूहि। किं सत्यमागतस्त्वया दृष्ट । कियत्यध्वनि। कासौ चन्द्रापीड । तदनन्तर प्रवर्धमान प्रतिदिनमुपचीयमानो धवलस्य भावो धवलिमा यस्मिन्नेताद्दशेन चक्षुषा नेत्रेण सम्मुखमापतन्तमागच्छन्त त दृष्ट्वा विलोक्य च कुसुमशयनादुत्तस्थावुस्थिता बभूवेत्यन्वय । अथ कादम्बर्या विशेषणानि—वरेति। वर श्रेष्ठ आरोहो नितम्बो यस्या सा । 'नितम्बारोहौ स्त्रीकट्या पश्चाज्जघनपार्श्वत' इति कोश । ऊर्वावेव स्तम्भौ ताभ्या विधृता धृता । केव । नव प्रत्यग्रो ग्रहो ग्रहण यस्या एवविधा करिणीव हस्तिनीव । सापि उरुर्विस्तीर्णो य स्तम्भस्तत्र विधृता बद्धा स्यात् । विचेष्टमानानि चेष्टाविशेषण प्राप्यमाणान्यङ्गानि यस्या । कुसुमशयनस्य परिमलस्तेनोपनतै प्राप्तैरत एव परवशैरा समन्तान्मुखरैर्वाचालैरेवविधैर्मधुकरकुलैर्भ्रमरसमूहैराच्छाद्यमानेव । सम्भ्रमेण सहसा च्युतमुत्तरीयक प्रावरण वस्त्र यस्या सैवभूता सती हारकिरणानुरसि कर्तुमिच्छन्ती वाञ्छन्ती । एतेन हारकिरणोत्तरीयांशुकयोरतिस्वच्छत्वसाम्याद्भेदो न ज्ञात इति भाव । मणिकुट्टिमे निहितेन स्थापितेन वामकरतलेन निजप्रतिमा प्रति हस्ताव-

---

इसके पश्चात् जैसे-जैसे जिसने देखा (दर्शन के अनुसार) वैसे ही वैसे आ आ कर चन्द्रापीड के आगमन को बताती हुई सेविकाओं (परिजन) को, ऊपर को उठायी हुई चञ्चल पुतलियों वाली आँखों से देख कर उसने प्रत्येक के सामने प्रत्येक सेविका से "मुझे बता, क्या वह वस्तुत आ गया है ? तूने देखा है ? वह कितने मार्ग पर (दूरी पर) है ? वह कहाँ है ?" (अनक्षरम्) बिना बोले ही—(केवल सकेत से ही) यह पूछा। और क्रमश बढती जा रही चमकीली दृष्टि से, सामने आते हुए उसको दूर से ही देखकर अपनी जघाओं की अशक्तता से आक्रान्त तथा काँपते अगों वाली वह प्रशस्त (सुन्दर) कूल्हों वाली, कादम्बरी नयी पकड़ी हुई उत्तम सवारी वाली (अथवा प्रशस्त डीलडौल वाली), एक बड़े खम्भे से कस कर बाँध कर रखी हुई तथा (छूटने के लिये) चेष्टा करती हुई हथिनी-सी प्रतीत होती अपनी पुष्प शय्या से उठकर खड़ी हो गयी। पराधीन वह कादम्बरी मानो पुष्पशय्या की सुगन्ध से वहाँ खिंच आये हुये, गुञ्जारते हुए भौंरो द्वारा मानों ढठाई जा रही थी, हड़बड़ाहट मे गिरे हुए उत्तरीय वस्त्र वाली मानो अपने हार की किरणों को (वस्त्र समझकर) वक्ष स्थल पर फैलाना चाहती थी, मणि

लम्बनं निजप्रतिमामिव याचमाना, स्रस्तकेशकलापसयमनश्रमितेन गलत्स्वेदसलिलेन दक्षिणकरेण समभ्युक्ष्येवात्मानमर्पयन्ती, चलितत्रिकताम्रत्रिवलीतरङ्गितरोमराजितया निष्पीड्यमानेव सर्वरसाननङ्गेन, अन्तःप्रविष्टललाटिकाचन्दनरसमिश्रमिव चक्षुषा क्षरन्ती शिशिरमानन्दजलम्, नन्दवारिबिन्दुवेणिकया चलितावतसधूलिधूसरं प्रियप्रतिमाप्रवेशलोभेनेव कपोलफलक प्रक्षालयन्ती, ललाटिकाचन्दनभरेणेव किंचिदधोमुखी तत्क्षणमपाङ्गभागयुञ्जिततारकया तन्मुखलग्नयेव दीर्घया दृष्ट्याकृष्यमाणा कुसुमशयनादुत्तस्थौ ।

लम्बन याचमानेव प्रार्थ्यमानेव । एतेन स्वत स्वशरीरधारणे न क्षमेति प्रदर्शितम् । स्रस्तो य केशकलापोऽलकसमूहस्तस्य सयमन बन्धन तेन श्रमितेन श्रम प्राप्तेन गलत्स्वेदसलिलेन क्षरद्धर्मवारिणा दक्षिणकरेण समभ्युक्ष्य । यस्यकस्यचिदर्पण क्रियते तत्तु करेण प्रोक्षितस्यैवेत्यर्थ । आत्मानमर्पयन्त्यर्पणं कुर्वन्ती । चलित यत्त्रिक वशाधस्तस्य ताम्रा स्वच्छा या त्रिवली तया तरङ्गिता रोमराजिस्तस्या भावस्तत्ता तया हेतुभूतयानङ्गेन कदर्पेण सर्वरसान्निष्पीड्यमानेव मर्द्यमानेव । एतेन चलितत्रिकस्य पीडनयन्त्रसाम्यता प्रदर्शिता। किं कुर्वती । चक्षुषा नेत्रेण शिशिर शीतलमानन्दजल क्षरन्ती स्रवन्ती । शिशिरत्वे हेतु प्रदर्शयन्नाह—अन्तरिति । अन्त प्रविष्टो यो ललाटिकाचन्दनरसस्तेन मिश्रमिव संपृक्तमिव। पुन किं कुर्वन्ती । आनन्दवारिणो बिन्दवो विप्रुषास्तेषां वेणिकया प्रवाहेण । 'धारा वेणी रयश्च स' इत्यमर । चलितः स्वस्थानाच्च्युतो योऽवतसस्तस्य धूलि परागस्तेन धूसर मलिनं कपोलफलक प्रियप्रतिमाप्रवेशलोभेन प्राणप्रियप्रतिबिम्बसक्रान्तितृष्णयेव प्रक्षालयन्ती धावन कुर्वन्ती । ललाटिकाया यश्चन्दन भरस्तेनेव किंचिदधोमुख्यवाङ्मुखी तत्क्षणमपाङ्गभागोऽक्षिबाह्यान्त प्रदेशस्तत्र युञ्जिता प्रेरिता तारका कनीनिका ययैवविधया तस्य चन्द्रापीडस्य मुखमाननं तत्र लग्नयेव दीर्घया दृष्ट्याकृष्यमाणाकर्षण क्रियमाणा । अन्वयस्तु प्रागेवोक्त ।

खचित फर्श पर रखे हुए अपने बायें हाथ की हथेली वाली मानो अपने प्रतिबिम्ब से हाथ का सहारा माँग रही थी, अपने बिखरे बालों को बाँधने से थके हुए, पसीने के जल को गिराते हुए दायें हाथ से मानो अपने आपको सींचकर (स्नान करके ही) अपना समर्पण कर रही थी, भीतर को मुड़ी हुई (बलित) मेरुदण्ड की अघरास्थि (त्रिक) से दबी हुई (ताम्यन्ती) त्रिवली (पेट पर की तीन रेखाओं का समूह) रोम पंक्ति (नाभि से ऊपर को उठती हुई रोमपँक्ति) के लहरदार बन जाने के कारण, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कामदेव (अनङ्ग) उसमें से सारे रसों को निचोड़ कर निकाल रहा था, वह आँखों से ठढा आनन्द जल गिरा रही थी जो कि मानो उसके भीतर गये उसकी ललाटिका (तिलक) के चन्दन रस से मिला हुआ था, (उठते समय) हिले हुए (पुष्पों के बने हुए) कर्णाभूषण की धूलि से भूरे हुए (मैले हुए) अपने चौड़े कपोलों को, मानो अपने प्यारे के प्रतिबिम्ब को उनमें प्रविष्ट कराना चाहती हुई ही, आनन्द के आँसुओं की बूँदों की धारा (वेणिकया) से धो रही थी, मानो कि ललाटिका (तिलक) पर के चन्दन के भार से ही उसका मुँह कुछ लटक गया था, उस समय

चन्द्रापीडस्तु समुपसृत्य पूर्ववदेव तां महाश्वेताप्रणामपुरःसरं दर्शितविनयः प्रणनाम। कृतप्रतिप्रणामायां च तस्यां पुनस्तस्मिन्नेव कुसुमशयने उपविष्टायां प्रतीहार्योपनीतां जाम्बूनदमयीमासन्दिकां रोचिष्णुरत्नप्रत्युप्तपादां पादेनैवोत्सार्य क्षितावेवोपाविशत्। अथ केयूरकः 'देवि, देवस्य चन्द्रापीडस्य प्रसादभूमिरेषा पत्रलेखा नाम ताम्बूलकरङ्कवाहिनी' इत्यभिधाय पत्रलेखामदर्शयत्। अथ कादम्बरी दृष्ट्वा ताम् 'अहो, मानुषीषु पक्षपातः प्रजापतेः' इति चिन्तयांबभूव। कृतप्रणामां च तां सादरम् 'एह्येहि' इत्यभिधायात्मनः समीपं सकुतूहलपरिजनदृश्यमाना पृष्ठतः समुपावेशयत्। दर्शना-

---

तदनन्तरं चन्द्रापीडस्तु समुपसृत्यापसर्पणं कृत्वा पूर्ववदेव महाश्वेताप्रणामपुरःसरं तां कादम्बरीं दर्शितविनयं प्रणनाम नमश्चक्रे। तदनन्तरं कृतो विहितः प्रतिप्रणामोऽनुनमस्कारो ययैवंविधायां च तस्यां पुनस्तस्मिन्नेव कुसुमशयन उपविष्टायामासेदुष्यां प्रतीहार्या द्वारपालिकयोपनीतामानीतां जाम्बूनदमयीमासन्दिकां वेत्रासनम्। 'स्याद्वेत्रासनमासन्दी' इत्यभिधानकोशः। कीदृशीम्। रोचिष्णुरत्नैः प्रत्युप्ता पादा यस्याः सा तां पादेनैव चरणेनैवोत्सार्य दूरीकृत्य क्षितावेव पृथिव्यामेवोपाविशदुपविष्टः। अथेति। उपवेशनानन्तरं केयूरकः हे देवि, देवस्य पूज्यस्य चन्द्रापीडस्य प्रसादभूमिः प्रसन्नताधरिण्येषा पत्रलेखा नाम ताम्बूलकरङ्कवाहिनीत्यभिधायेत्युक्त्वा पत्रलेखामदर्शयद् दृग्विषयतां प्रापयत्। अथेति। दृग्विषयीकरणानन्तरं कादम्बरी तां दृष्ट्वा विलोक्येति चिन्तयाबभूवेति चिन्तितवती। इतिशब्दद्योत्यमाह—अहो इति। प्रजापतेर्विधातुरहो मानुषीषु पक्षपातोऽङ्गीकारः। कृतः प्रणामो नमस्कारो ययैवंभूतां च सादरं सबहुमानम् एहि एहि इत्यभिधायात्मनः समीपे स्वकीयनिकटे सह कुतूहलेन वर्तमानो यः परिजनः परिवारजनस्तेन दृश्यमाना विलोक्यमाना पृष्ठतः समुपावेशयन्निवेशितवती। अथ दर्शनादेव विलोकनादेवोपारूढः प्रादुर्भूतः प्रीतेरतिशय आधिक्यं यस्याः सा मुहुर्मुहुर्वारंवारमेना

अपाङ्ग भागों पर ठहरी हुई पुतलियों वाली, लम्बी, (इसीलिये) उस (चन्द्रापीड) के चेहरे पर लगी हुई (चेहरे तक पहुँची हुई) प्रतीत होती आँखों के द्वारा आगे की ओर खींची जा रही थी।

किन्तु चन्द्रापीड ने समीप पहुँचकर पहले महाश्वेता को प्रणाम करके पहले की भाँति ही आदर दिखाकर उसको नमस्कार किया। और जब (कादम्बरी) प्रतिप्रणाम (उत्तर में नमस्कार) कर चुकी और उसी पुष्पशय्या पर बैठ गयी तब द्वारपालिका द्वारा (बैठने के लिये) लायी गयी सोने की बनायी गयी, चमकते रत्नों से जड़े (उस) पायों वाली कुर्सी को पाँव से ही हटाकर चन्द्रापीड पृथ्वी पर ही बैठ गया। तब केयूरक ने "राजकुमारी! राजकुमार चन्द्रापीड की प्रसन्नता की आधारभूमि यह पत्रलेखा देव की पानपेटी उठाने वाली है।"—यह कहकर पत्रलेखा को दिखाया (परिचित कराया)। तब कादम्बरी ने उसको देखकर सोचा—'आश्चर्य है, विधाता का मानुषी (मर्त्य स्त्रियों) के प्रति कितना अधिक पक्षपात है?' तथा आदरपूर्वक नमस्कार किये हुई उसको उसने 'आओ, आओ'—कहकर, आश्चर्य से परिजनों द्वारा देखी जा रही को अपने समीप ही, पीछे की ओर बैठा लिया। (पहले) दर्शन से (लेकर) ही अत्यन्त

देवोपारूढप्रीत्यतिशया च मुहुर्मुहुरेना सोपग्रह करकिसलयेन पस्पर्श। चन्द्रापीडस्तु सपदि कृतसकलागमनोचितोपचारस्तदवस्था चित्ररथतनयामालोक्याचिन्तयत्—'अतिदुर्विदग्धं हि मे हृदयमद्यापि न श्रद्धाति। भवतु। पृच्छामि तावदेनाम्' इति निपुणालापेनातिप्रकाशमब्रवीत्—'देवि, जानामि कामरति निमित्तीकृत्य प्रवृत्तोऽयमविचलसतापतन्त्रो व्याधिः। सुतनु, सत्यं न तथा त्वामेष व्यथयति यथास्मान्। इच्छामि देहदानेनापि स्वस्थामत्रभवती कर्तुम्। उत्कम्पिनीमनुकम्पमानस्य कुसुमेषु-

---

पत्रलेखां सोपग्रह सानुकूलन करकिसलयेन पाणिपल्लवेन पस्पर्श स्पर्श चकार। चन्द्रापीडस्तु सपदि शीघ्र कृतो विहित सकल समग्र आगमनस्यागमने वोचितो योग्य उपचारो विनयो येन स तदवस्था विरहविक्लवां चित्ररथतनयां कादम्बरीमालोक्य वीक्ष्याचिन्तयदध्यायत्। हीति निश्चितम्। मे मम हृदय चेतोऽतिदुर्विदग्धमतिजडं यदद्यापि न श्रद्दधाति न निश्चय करोति। इयमीदृश्यवस्था किं कामात्, अन्यप्रियनिमित्ताद्वेति प्रकारान्तरस्यासभवात्। कामनिमित्तकत्वे च गतेऽपि विपरीतसंभावनेति दुर्विदग्धपदव्यङ्ग्यम्, अत एव निश्चयानुरोधेनाह—भवत्विति। कामनिमित्तक एवास्तु, पर तावदादावेना पृच्छामीति कृत्वा निपुणालापेन नातिप्रकाश नातिस्पष्टमब्रवीदवोचत्। हे देवि कादम्बरि, अह जानामि कामनिर्वचनीयस्वरूपामरतिं निमित्तीकृत्यायमविचलो य सतापस्तस्य तन्त्र आधीन एवविधोऽपि व्याधि प्रवृत्त। हे सुतनु हे कादम्बरि। सत्यमिदं नौपचारिक वचः त्वामेष व्याधिर्न तथा व्यथयति पीडयति, यथास्मान्। देहदानेनाप्यत्रभवतीं पूज्यां स्वस्थां सज्जा कर्तुमिच्छाम्यभिलषामि। उत्कम्पिनीं त्वां प्रत्यनुकम्पमानस्यानुकम्पां कुर्वाणस्य कुसुमेषु कदर्पस्तस्य पीडया पतिता त्वामवेक्षमाणस्य पश्यतो मे मम हृदय चेत पततीव। कादम्बर्या विरहकार्श्ये

प्रीति का अनुभव करती हुई कादम्बरी ने इसको अपने कोमल हाथ से स्नेहपूर्वक (सोपग्रहम्) छूआ। किन्तु चन्द्रापीड ने तत्काल ही आगमन (के समय) के लिये उपयुक्त शिष्टाचार करके कादम्बरी को वैसी अवस्था मे देखकर सोचा—'मेरा हृदय तो निश्चय ही अत्यन्त ही जड है जो अब भी विश्वास नहीं करता है। अच्छा तो, मैं इससे निपुणजनोचित बातचीत के द्वारा (अर्थात् व्यङ्ग्यार्थपूर्ण बातचीत के द्वारा—अथवा निपुणतया प्रयुक्त शब्दों में) पूछता हूँ। यह सोचकर प्रकट रूप में बोला—"राजकुमारी! जानता हूँ कि कौन सी (काम् अरतिम्) मानसिक व्यथा के कारण तुम्हारा यह निरन्तर यन्त्रणा पर निर्भर (निरन्तर यन्त्रणा देने वाला) रोग आरम्भ हुआ है! (गूढार्थ—कामदेव द्वारा उत्पादित आवेग के कारण)! हे शोभन शरीर वाली कन्ये! यह (रोग–आवेग) निश्चय ही तुमको इतना दु ख नहीं दे रहा है जितना कि मुझको। मैं तो अपना शरीर दान करके भी (उसको छोड़कर) (वास्तविक अर्थ—विवाह द्वारा शरीर को तुम्हें सौंपकर भी) आपको स्वस्थ, नीरोग अथवा प्रसन्न करना चाहता हूँ। रोग के कारण जोर से काँपती हुई के पीछे पीछे (के अनुसार) कापते हुए और मदन के दु ख से (पुष्पशय्या पर) पड़ी हुई को देखते हुए मेरा हृदय भी दु खार्त हुआ मानो गिरता है। (वास्तविक अर्थ—प्रबल काम के

पीडया पतितामवेक्षमाणस्य पततीव मे हृदयम्। अनङ्गदे तनुभूते ते भुजलते गाढसतापतया च दृष्ट्या वहसि स्थलकमलिनीमिव रक्ततामरसाम्। दुःखितायां च त्वयि परिजनोऽपि चानवरतकृताश्रुबिन्दुपातेन वर्तते। मुक्ताभरणता गृहाण। स्वय वरार्हाणि प्रसाधनानि। कुसुमशिलीमुखान्तर्हिता शोभते यथा लता' इति। अथ कादम्बरी बालतया स्वभावमुग्धापि कदर्पेणोपदिष्टयेव प्रज्ञया तमशेषमस्याव्यक्तव्याहारसूचित-

प्रकटयन्नाह—अनङ्गदे इति। गाढसतापतया तनुभूते ते भुजलते अनङ्गदे बाहुभूषणवर्जिते दृष्ट्या कृत्वा रक्ततामरसां स्थलकमलिनीमिव त्व वहसि। अत्र कृशभुजलतयोर्मृणालसाम्यम्, नेत्रयो रक्ततामरससाम्यमिति भाव। त्वयि दु खितायां सत्यां परिजनोऽप्यनवरत निरन्तर कृतो योऽश्रुबिन्दुपातस्तेन वर्तते प्रवृत्तो भवतीत्यर्थ। एतेनाश्रुपातस्य नैरन्तर्यं सूचितम्। मुक्तानामाभरणानि तेषा भावो मुक्ताभरणता ता गृहाण स्वीकुरु। स्वयमात्मना वराणि प्रधानान्यर्हाणि योग्यानि प्रसाधनानि प्रतिकर्माणि। कुर्विति क्रियाध्याहार। कुसुमानि पुष्पाणि, शिलीमुखा भ्रमरा, ताभ्यामन्तर्हिताच्छादिता यथा लता वल्ली शोभते राजते तथा त्वमपीति भाव। शुक्लत्वसाम्यान्मुक्ताना कुसुमसाम्यम्, नेत्राञ्जनस्य कृष्णत्वसाम्याद् भ्रमरसाम्यमिति भाव। अथेति। तदनन्तर कादम्बरी बालतया शिशुतया स्वभावेन मुग्धापि सरलाशयापि कदर्पेण मदनेनोपदिष्टयेव दर्शितयेव प्रज्ञया तमशेष समग्रमव्यक्तव्याहारोऽस्फुटभाषित तेन सूचित ज्ञापितमुपभोगविषयकं रह सगमरूप वार्थं मनसा जग्राह गृहीतवती। मनोरथाना स्वभिलाषाणा तु तावतीं भूमिं सगमरूपलक्षणामसभावयन्त्यवितर्कयन्ती शालीनता दृष्टता चावलम्बमाना। 'दृष्टे शालीनशारदौ'

वशीभूत होकर कम्पवती, सात्त्विक भाववती, तुम पर (रमण के द्वारा) दया दिखाना चाहते हुए-मेरा हृदय काम पीडा से शिथिल हुई को देखकर (रमण के लिये) मानो दौड़ रहा है। अनङ्गदे[1] अर्थात् अन्+अङ्गदे अर्थात् ककण न पहने हुई तेरी दो भुजाएँ पतली हो गयी हैं (वास्तविक अर्थ—तुम्हारी पतली भुजाएँ अनङ्ग अर्थात् कामोन्माद को प्रेरित करती हैं। और अत्यन्त घनी (प्रबल) पीड़ा के कारण तुम अपनी आख मे स्थल-कमलिनी जैसे लाल कमल रखने के गुण को धारण करती है वैसे तुम आख से लाली धारण किये हुए हो (अर्थात् तुम्हारी आखें लाल कमल के समान लाल हैं)। (गुप्तार्थ—तुम्हारी इच्छा पूर्ण न होने के कारण तुम्हारी दृष्टि एक ऐसी स्थिति को सूचित करती है जो प्रसन्न नहीं करती है)। और तुम्हारे दु खित रहने पर तुम्हारे परिजन में भी, निरन्तर आसुओं को बहाने के कारण अलङ्कारशून्यता विद्यमान रहती है (जब तुम दु खी रहती हो तो तुम्हारी सेविकायें भी आभूषण नहीं पहनतीं), इसलिये अपने योग्य तथा अच्छे मागलिक उपकरणों को धारण करो (गुप्तार्थ—स्वयवर (विवाह) के योग्य मागलिक साज सज्जा को धारण करो), क्योंकि नयी बेल तो पुष्पों तथा भ्रमरों से छिपी हुई ही शोभित होती है (गुप्तार्थ—बालता-युवावस्था तो काम से अन्तर्हित हो प्रणयोन्माद से भरी हुई ही शोभित होती है न?)[2]

तब कादम्बरी ने, जो अपने बचपन के कारण अभी स्वभावत भोली भी थी, मानो कि काम द्वारा सिखायी गयी बुद्धि के द्वारा ही वह सारा अस्पष्ट भाषण से सूचित अर्थ मन में

१ मुझे (विवाह के लिये) अपना शरीर न देने वाली।
२. पाठान्तर—सकुसुमशिलीमुखा हि शोभते नवा लता।

मर्थं मनसा जग्राह। मनोरथाना तु तावतीं भूमिमसंभावयन्ती शालीनता चावलम्बमाना तूष्णीमेवासीत्। केवलमुत्पादितान्यव्यपदेशा तत्क्षणं तमाननामोदमधुकरपटलान्धकारितं मुखं द्रष्टुमिव स्मितालोकमकरोत्। ततो मदलेखा प्रत्यवादीत्— "कुमार, कि कथयामि। दारुणोऽयमकथनीयः खलु संतापः। अपि च कुमारभावोपेतायाः किमिवास्या यन्न संतापाय। तथा हि—मृणालिन्याः शिशिरकिसलयमपि हुताशनायते। ज्योत्स्नाप्यातपायते। ननु किसलयतालवृन्तवातैर्मनसि जायमान किं न पश्यति खेदम्। धीरत्वमेव प्राणसधारणहेतुरस्याः' इति। कादम्बरी तु हृदयेन तमेव मदलेखालापमस्य प्रत्युत्तरीचकार। चन्द्रापीडोऽप्युभयथाघटमानार्थतया सदेहदोलारूढेनैव चेतसा महाश्वेतया सह प्रीत्युपचयचतुराभिः कथाभिर्महान्तं कालं स्थित्वा

इति कोश । तूष्णीमेवासीत्। केवलमुत्पादितोऽन्यव्यपदेशो मिष ययैवभूता तत्क्षणमाननस्या मोदस्तस्माद्यन्मधुकरपटल तेनान्धकारितमन्धकारवदाचरितं मुखमानन द्रष्टुमिव स्मितालोकं स्मितलक्षणमालोक प्रकाशमकरोत्। स्मितेन दन्तज्योत्स्नाया बहिर्निर्गमेन प्रकाशसभवात्। ततो मदलेखा प्रत्यवादीत्। कुमार, किं कथयामि किं ब्रवीमि। अय दारुणस्तीव्रोऽकथनीयो वक्तुम शक्य खलु निश्चयेन सताप । अपि चेति युक्त्यन्तरे कुमारभावोपेताया अस्या किमिव यन्न सतापाय भवति। तदेव दर्शयति—तथा हीति। मृणालिन्या कमलिन्या शिशिरकिसलयमपि हुताशनायते वह्निवदाचरति । ज्योत्स्नापि चन्द्रिकाप्यातपायते सूर्यालोकायते। नन्विति वितर्के। किसलयानि पल्लवास्त एव तालवृन्तानि तेषां वातै पवनैर्मनसि जायमान खेद भवान्किं न पश्यति। अतोऽस्याः कादम्बर्या धीरत्वमेव प्राणसधारणे जीवितधारणे हेतुर्निमित्तमिति। कादम्बरी तु हृदयेन तमेव पूर्वोक्तमेव मदलेखालाप मदलेखाजल्पितमस्य चन्द्रापीडस्य प्रत्युत्तरीचकार। प्रतिवच प्रादादित्यर्थं । एतत्कृतो मम विरहो मत्कृतश्चास्या इत्युभयथाघटमानार्थतया विरहताप सोढु शक्यो न वेति सदेहदोलारूढेनैव चेतसा महाश्वेतया सह प्रीत्युपचयो रसपुष्टिस्तत्र चतुराभिर्दक्षाभि कथाभिर्वार्ताभिर्महान्त काल च स्थित्वावस्थान कृत्वा

समझ लिया। किन्तु यह सम्भावना (आशा) न करती हुई कि उसकी मनोकामनायें इतनी भूमि (सफलता) तक पहुँच जायेंगी, तथा लज्जा का आश्रय लेती हुई मौन ही बैठी रही। केवल दूसरा बहाना करके मानो (अपने) मुख की सुगन्ध से आकृष्ट भ्रमरसमूह द्वारा अन्धकारयुक्त हुए (मध्यम पड़े हुए) उस मुख को देखने के लिये ही, (अपनी) मुस्कान का प्रकाश फैला दिया। इसके पश्चात् मदलेखा ने प्रत्युत्तर दिया—"राजकुमार ! क्या कहूँ ? यह अकथनीय (प्रेम से उत्पन्न होने के कारण स्पष्ट रूप से वर्णन करने के अयोग्य) सन्ताप भयकर है। इसके अतिरिक्त अभी युवावस्था में आयी हुई (गुप्त अर्थ—कुमार से प्रेम करने वाली) इसको दु खी करने के लिये कौन सी वस्तु नहीं है ? अर्थात् इसको प्रत्येक वस्तु दु खी करती है। जैसे कमल पादप के ठढे कोंपल भी अग्नि का काम करते हैं, चाँदनी भी धूप बन जाती है। क्या तुम कोंपलों के पखों की हवाओं द्वारा उत्पन्न किये जाते इसके कष्ट को नहीं देखते ? इसके जीवनधारण करने का एकमात्र कारण इसके मन की दृढ़ता (धीरता) ही है।" कादम्बरी ने भी मदलेखा का वह भाषण ही इसको प्रत्युत्तर के रूप में मन से प्रदान किया। किन्तु चन्द्रापीड, दोनों ओर लगते हुए अर्थ के कारण सदेह के झूले में झूलते हुए ही मन से, महाश्वेता के साथ

तथैव महता यत्नेन मोचयित्वात्मान स्कन्धावारगमनाय कादम्बरीभवनान्निर्ययौ। निर्गत च तुरङ्गममारुरुक्षन्त पश्चादागत्य केयूरकोऽभिहितवान्—"देव मदलेखा विज्ञापयति—"देवी कादम्बरी खलु प्रथमदर्शनजनितप्रीतिः पत्रलेखा निवर्त्यमानामिच्छति, पश्चाद्यास्यति' इति श्रुत्वा देवः प्रमाणम्।" इत्याकर्ण्य चन्द्रापीडः 'केयूरक, धन्या स्पृहणीया च पत्रलेखा यामेवमनुबध्नाति दुर्लभो देवीप्रसादः। प्रवेश्यताम्।' इत्यभिधाय पुनः स्कन्धावारमेवाजगाम। प्रविशन्नेव पितुः समीपादागतमभिज्ञाततरमालेखहारकमद्राक्षीत्। धृततुरङ्गमश्च प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा दूरादेवापृच्छत्—'अङ्ग, कच्चित्कुशली तातः सह सर्वेण परिजनेनाम्बा च सर्वान्तःपुरैः' इति। अथासावुपसृत्य

तथैव पूर्वप्रकारेणैव महता यत्नेनात्मान मोचयित्वा स्वस्य मुक्तिं विधाय स्कन्धावारगमनाय स्वसैन्यनिवेशगमनाय। 'स्कन्धावारोऽस्य तु स्थिति' इति कोश। चन्द्रापीडोऽपि कादम्बरीभवनान्निर्ययौ निर्जगाम। निर्गत च तुरङ्गममश्वमारुरुक्षन्तमारोढुमिच्छन्त पश्चादागत्यैत्य केयूरकोऽभिहितवान्। किं तदित्याह—देवेति। हे देव मदलेखा विज्ञापयति विज्ञप्तिं करोति। एतदेव दर्शयति—देवीति। खलु निश्चयेन देवी कादम्बरी प्रथमदर्शनेन जनिता प्रीतिर्यस्या एवभूता पत्रलेखां निवर्त्यमानामिच्छति समीहते। पश्चाद्यास्यति गमिष्यति। इति श्रुत्वा देव प्रमाणम्। इत्याकर्ण्य चन्द्रापीड प्रवेश्यतां गृहीत्वागम्यतामित्यभिधायेत्युक्त्वा पुन स्कन्धावारमेवाजगाम। इतिशब्दद्योत्यमाह—केयूरकेति। हे केयूरक, धन्या स्पृहणीया च पत्रलेखा या पत्रलेखा दुर्लभो दु प्रापो देवीप्रसाद कादम्बरीप्रसन्नता एवमनुबध्नात्यनुबन्ध करोति। स्कन्धावार प्रविशन्नेव पितु समीपाज्जनकपार्श्वादभिज्ञाततरमतिशयेन ज्ञातपूर्वमासमन्ताल्लेखहारकमुदन्तहारकमद्राक्षीत्। धृततुरङ्गश्च स्थापिताश्वश्च प्रीत्या स्नेहेन विस्फारितेन विस्तीर्णीकृतेन चक्षुषा दूरादेवापृच्छत्। हे अङ्ग। कच्चिदिति प्रश्ने। तात पिता कुशली वर्तते। सर्वेण परिजनेन सह तथा सर्वान्त पुरै सहाम्बा माता च कुशलिनीति। अथेति प्रश्नानन्तरमसावुपसृत्योपसरण

प्रीति की वृद्धि में प्रवीण बातों द्वारा बहुत देर तक ठहरकर और उसी प्रकार (निपुणता) से बड़े उद्यम से अपने आप को छुड़ा कर कादम्बरी के घर से निकल पड़ा। जब वह निकल कर घोड़े पर सवार होना ही चाहता था तभी केयूरक ने पीछे से आकर कहा—"राजकुमार! मदलेखा (सादर) सूचित करती है 'वस्तुतः राजकुमारी कादम्बरी प्रथम दर्शन से ही प्रीति को उत्पन्न किये हुई, पत्रलेखा को लौटाना चाहती है (अर्थात् पहली बार देखने से ही कादम्बरी की मदलेखा के प्रति इतनी प्रीति उत्पन्न हो गयी है कि वह चाहती है कि पत्रलेखा को उसके पास रहने दिया जाय) वह पीछे चली जायगी'—यह सुनकर आप जैसा चाहें निर्णय करें।"—चन्द्रापीड इस (सन्देश) को सुन कर, बोला—'केयूरक! वह पत्रलेखा धन्य है तथा ईर्ष्या करने योग्य है, राजकुमारी की दुर्लभ कृपा जिसका इस प्रकार पीछा करती है! इसलिये इसको ले जाओ" चन्द्रापीड यह कह कर फिर अपनी सेना में ही आ गया। सैन्यस्थान में प्रवेश करते हुए ही उसने पिता के समीप से आये हुए, अत्यन्त परिचित पत्रवाहक को देखा। और घोड़े को थामे हुए प्रीति से फैलायी हुई आँखों से, (देखते हुए) दूर से ही पूछा—"क्यों भाई! पिता जी सारे परिजन समेत सकुशल तो है? और माता जी सब अन्तःपुरस्थित स्त्रियों के साथ

प्रणामानन्तरम् 'देव, यथाज्ञापयसि' इत्यभिधाय लेखद्वितयमर्पयाबभूव। युवराजस्तु शिरसि कृत्वा स्वयमेव च तदुन्मुच्य क्रमशः पपाठ—"स्वस्त्युज्जयिनीतः सकलराजन्यशिखण्डशेखरीकृतचरणारविन्दः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीडः सर्वसंपदामायतन चन्द्रापीडमुदञ्चच्चारुचूडामणिमरीचिचक्रचुम्बिन्युत्तमाङ्गे चुम्बन्नन्दयति। कुशलिन्यः प्रजाः। कि नु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य गतः। बलवदुत्कण्ठित नो हृदयम्। देवी च सहान्तःपुरैर्म्लानिमुपनीता। अतो लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकारणता नेतव्या" इति। शुकनासप्रेषिते द्वितीयेऽप्ययमुमेवार्थं लिखितमवाचयत्।

कृत्वा प्रणामानन्तर नमस्कृतेरनु हे देव, यथाज्ञापयसि यथा कथयसि तथास्तीति भाव। इत्यभिधाय लेखद्वितयमर्पयाबभूवार्पितवान्। युवराजस्तु चन्द्रापीडस्तु शिरसि कृत्वा मस्तके निधाय स्वयमेवात्मनैव तल्लेखद्वयमुन्मुच्योन्मुद्र्य क्रमश पपाठ पठितवान्। किं तदित्याह—स्वस्तीति। स्वस्ति यथा स्यात्तथोज्जयिनीतो विशालात सकलराजन्याना समग्रभूपानां शिखण्डैश्चूडाभि शेखरीकृत चरणारविन्द यस्य स परममाहेश्वरोऽत्युत्कृष्टशैवो महाराजाधिराजो महता राज्ञामधीशस्तारापीड सर्वसपदां समग्रसमृद्धीनामायतन गृहमेवभूतं चन्द्रापीडमुदञ्चदुल्लसच्चारु मनोहारि यच्चूडामणिमरीचिचक्र शिरोमणिदीप्तिपटल तच्चुम्बिन्युत्तमाङ्गे शिरसि चुम्बञ्चुम्बन कुर्वन्नन्दयति प्रमोदयति। प्रजा प्रकृतय कुशलिन्यो मङ्गलवत्य सन्ति। किं न्विति। किं नु भवतो दृष्टस्य कियानपि काल समयो गतो व्यतीत। तेन नोऽस्माक बलवत्युत्कण्ठोत्कलिका जाता यस्मिन्नेतादृश हृदयमस्ति। देवी च तवाम्बा सहान्त पुरैर्म्लानिमुपनीता प्रापिता। अत्र सहान्त-पुरैरित्यनेनोपमातरोऽपि त्वां समीहन्त इति सौजन्यातिशय सूचित। अतो हेतोर्लेखवाचनस्य विरतिरेवावसानमेव प्रयाणकारणता प्रस्थाननिमित्तता नेतव्या प्रापणीया। शुकनासेन प्रेषिते द्वितीयेऽपि लेखेऽमुमेवार्थं लिखित लिपीकृतमवाचयदपठत्। अस्मिन्नेवावसरे समये समुपसृत्य

सकुशल है? तब उसने समीप पहुँचकर नमस्कार करने के पश्चात् "कुमार! जैसा आप पूछते हैं (वैसा ही है, वे सब सकुशल हैं)।"—यह कह कर दो पत्र (लेख) भेंट किये। किन्तु युवराज ने उनको, सिर पर रखकर और अपने आप ही उनको खोलकर, धीरे धीरे पढ़ा —

"कल्याण हो, उज्जयिनी से सारे राजाओं के सिरों पर शिरोभूषण बनाये हुए चरणकमल वाला, शिवजी का परमभक्त महाराजाधिराज देव तारापीड, प्रत्येक प्रकार की समृद्धि के निवास स्थानभूत चन्द्रापीड को उसके सुन्दर शिरोभूषण की मणियों के दमकते किरणमण्डल को स्पर्श करने वाले मस्तक पर चुम्बन करके अभिनन्दन करता है। प्रजाएँ सकुशल हैं। किन्तु तुम्हें देखे हुए कितना ही समय बीत गया है। हमारा हृदय बहुत सी उत्कण्ठा (अभिलाषा) से युक्त है। और देवी (तुम्हारी माता) भी सारे अन्त पुर के साथ दुःखित हो गयी है इसलिये पत्र पढ़ने की समाप्ति (के काल) को ही प्रस्थान करने का समय बना लेना (अर्थात् इस पत्र को पढ़ते ही चल पड़ना)"। शुकनास द्वारा लिखे हुए दूसरे पत्र में भी इसी विषय को पढ़ा। इसी समय समीप पहुँच कर वैशम्पायन ने भी, अपने दो पत्र, इन दोनों के समान विषय के ही दिखलाये।

अस्मिन्नेवावसरे समुपसृत्य वैशम्पायनोऽपि लेखद्वितयमपरमात्मीयमस्मादभिन्नार्थमेवादर्शयत्। अथ 'यथाज्ञापयति तातः' इत्युक्त्वा तथैव च तुरगाधिरूढः प्रयाणपटहमदापयत्। समीपे स्थितं च महताश्वीयेन परिवृतं महाबलाधिकृतं बलाहकपुत्रं मेघनादनामानमादिदेश—'भवता पत्रलेखया सहागन्तव्यम्। नियतं च केयूरकस्तामादायैतावतीं भूमिमागमिष्यतीति तन्मुखेन विज्ञाप्या प्रणम्य देवी कादम्बरी। नन्वियं सा त्रिभुवननिन्दनीया निरनुरोधा निष्परिचया दुर्ग्रहा प्रकृतिर्मर्त्यानां येषामकाण्डविसंवादिन्यः प्रीतयो न गणयन्ति निष्कारणवत्सलताम्। एवं गच्छता मयात्मनो नीतः स्नेहः कपटकूटजालिकताम्, प्रापिता भक्तिरलीककाकुकरणकुशलताम्, पातितमुपचार-

समीपमागत्य वैशम्पायनोऽप्यपरमात्मीयं लेखद्वितयमस्मात्स्वकीयलेखादभिन्नार्थमेकाभिधेयमेवमदर्शयद्दर्शितवान्। अथेति। तद्वाचनानन्तरं यथाज्ञापयति यथाज्ञां दत्ते तात' पिता। इत्युक्त्वा तथैव पूर्ववदेव तुरगाधिरूढं प्रयाणपटहं प्रयाणभेरीमदापयद्दापितवान्। समीपे स्थितं महताश्वीयेन बलेन परिवृतं महाबलं सैन्यं तत्राधिकृतं नियुक्तं बलाहकस्य पुत्रं मेघनादनामानमादिदेशादिष्टवान्। भवता त्वया पत्रलेखया सहागन्तव्यं समेतव्यम्। नियतं निश्चितं केयूरकस्तां पत्रलेखामादाय गृहीत्वैतावतीं भूमिमागमिष्यतीति तन्मुखेन केयूरकमुखेन प्रणम्य देवी कादम्बरी विज्ञाप्या विज्ञप्तिविषयीकरणीया। नन्विति वितर्के। तेषां मर्त्यानां या निरनुरोधा निर्गतं कस्याप्यनुरोधं स्वकार्यप्रतिबन्धो यस्यां निर्गतं परिचयं सख्यानुवृत्तिर्यस्याम्। दुर्ग्रहेति। दुर्दुष्टो ग्रह आग्रहो हठो यस्यामेवंविधा प्रकृतिः स्वभावः सा प्रकृतिस्त्रिभुवननिन्दनीया स्यात्। यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धाद्येषां मर्त्यानामकाण्डेऽप्रस्तावे विसंवादिन्यो व्यभिचारिण्यः प्रीतयो निष्कारणवत्सलतां निर्निमित्तहितकारितां न गणयन्ति न मनस्यानयन्ति। एवममुना प्रकारेण गच्छता व्रजता मयात्मनः स्नेहः स्वकीया प्रीतिः कपटं कैतवं तस्य कूटजालिका मिथ्याप्रपञ्चस्तद्रूपतां नीतः प्रापितः। भक्तिराराध्यत्वेन ज्ञानं वा साध्यलीका

इसके पश्चात् 'मेरे पिता जो आज्ञा देते हैं वही हो" यह कहकर उसने प्रस्थान (सूचक) ढोल बजवाया। और समीप में स्थित बहुत बड़े अश्वसम्बन्धी सैन्य (बड़ी भारी अश्वसेना) से घिरे हुए उस बड़ी (भारी) सेना के अध्यक्ष बलाहक के पुत्र मेघनाद को आज्ञा दी—"तुमको पत्रलेखा के साथ आना है। और निश्चय ही, केयूरक उसको लेकर यहाँ तक आयेगा ही, उसके मुख से (उसके द्वारा) मेरा नमस्कार देकर राजकुमारी कादम्बरी को यह सन्देश देना—"निश्चय ही, मनुष्यों (मर्त्यों) का यह प्रसिद्ध स्वभाव है जो तीनों लोकों द्वारा निन्दा करने योग्य है (तीनों लोकों को जिसकी निन्दा करनी चाहिये), जो किसी की की हुई भलाई को नहीं मानता, जो परिचय को नहीं मानता तथा जिसको पकड़ पाना कठिन है (अथवा जिसको जीता नहीं जा सकता)। उन मनुष्यों का स्वभाव है कि जिनकी अचानक न मेल खायी हुई (असफल हुई) प्रीतियाँ (दूसरों द्वारा दिखलायी गयी) अकारण (निःस्वार्थ) संवेदनशीलता की उपेक्षा कर देती हैं। इस प्रकार (अचानक) चले आये मैंने अपनी प्रीति को कपटकारी, कपटजाली अर्थात् असत्य व्यवहार करने वाले व्यक्ति के गुणों से युक्त बना दिया है, अपनी (तुम्हारे प्रति) भक्ति को (तुम्हें भ्रम में डालने के लिये) झूठे वाणी परिवर्तन करने में कुशल बना लिया

मात्रमधुर धूर्ततायामात्मार्पणम्, प्रकटित वाङ्मनसोर्भिन्नार्थत्वम्। आस्ता तावदात्मा। अस्थानाहितप्रसादा दिव्ययोग्या देव्यपि वक्तव्यतां नीता। जनयन्ति हि पश्चाद्वैलक्ष्यम भूमिपातिता व्यर्थाः प्रसादामृतदृष्टयो महताम्। न खलु तथा देवी प्रति प्रबललज्जाति-भारमन्थर मे हृदयं यथा महाश्वेता प्रति। नियतमेनामलीकाध्यारोपणवर्णितास्मद्गुण सभारामस्थानपक्षपातिनीमसकृदुपालप्स्यते देवी। तत्किं करोमि। गरीयसी गुरोराज्ञा प्रभवति देहमात्रकस्य। हृदयेन हेमकूटनिवासव्यसनिना लिखित जन्मान्तरसहस्रस्य

मिथ्या या काकुर्वक्रोक्तिस्तस्या करणे कुशलतां दक्षता प्रापिता। उपचारो बाह्यनियमस्तन्मात्रेण मधुर मिष्टमात्मार्पण भवदीयोऽहमिति स्वस्यार्पण धूर्तताया पातित क्षिप्तम्। वाङ्मन सयोरिति। 'अचतुर–' इत्यादिना निपात। भिन्नार्थत्व विसवादित्व प्रकटितमाविष्कृतम्। तावदादावात्मास्तां तिष्ठतु। ममेति शेष। अस्थानेऽयोग्य आहितः स्थापित प्रसादो ययात एवाह—दिव्याना योग्योचितैवविधा देव्यपि कादम्बर्यपि दूरदेशागतेन चन्द्रापीडेन कारणं विना कथ सत्य प्राप्तेति वक्तव्यता वचनीयतां नीता प्रापिता। मयेति शेष। हि यस्मात्कारणादभूमिपातिता अस्थाननिपातिता व्यर्था निष्फला प्रसादामृतदृष्टय प्रसन्नतापीयूष दृश. पश्चान्महता वैलक्ष्य जनयन्त्युत्पादयन्ति। स्थानविशेषे प्रीतिविशेष प्रदर्शयन्नाह—न खल्विति। खलु निश्चये। न तथा देवीं प्रति कादम्बरीं प्रति प्रबला प्रकृष्टा या लज्जा त्रपा तस्या अतिभारोऽतिवीवधस्तेन मन्थरमलस मे मम हृदय चेतो यथा महाश्वेता प्रति वर्तते। नियत निश्चितमलीकाध्यारोपेण वर्णित स्तुतोऽस्मद्गुणसभारो यया तामस्थानेऽनुचितस्थले पक्षपातो विद्यते यस्या एवविधामेना महाश्वेता देवी कादम्बर्यसकृद्वारवारमुपालप्स्यते। उपालम्भ दास्यतीत्यर्थं। तत्किं करोमि। कोऽप्युपायो नास्तीत्यर्थं। अस्मिन्नर्थे हेतु प्रदर्शयन्नाह—गरीयसीति। देहमात्रकस्य शरीरमात्रधारिणो गुरोराज्ञा निर्देशो गरीयसी गरिष्ठा

है, (तुम्हारे लिये) मैने अपने आत्मसमर्पण को जो केवलमात्र शिष्टाचार में ही मधुर रह गया है, निपुण वञ्चकता में (परिवर्तित कर) गिरा दिया है, वाणी तथा मन की पृथक् पृथक् विषयता (वचनों तथा विचारों की भिन्नता) को प्रकट कर दिया है। मेरी आत्मा (मेरे अपने विषय को) छोड़ भी दें तो भी मैंने अनुचित स्थान में (मेरे जैसे अपात्र व्यक्ति पर) अपनी कृपा किये हुई आप सरीखी, देवताओं के योग्य राजकुमारी को भी निन्दार्ह बना दिया है। निश्चय ही कृपारूपी अमृत से भरी बड़े आदमियों की दृष्टियाँ, अपात्र पर पड़ी हुई व्यर्थ हो कर पीछे लज्जा को उत्पन्न करती हैं। वस्तुत मेरा हृदय राजकुमारी के प्रति उतना प्रबल लज्जा के भारी भार से दबा हुआ (शिथिल) नहीं है जितना कि महाश्वेता के विषय मे है। निश्चय ही, झूठ मूठ मेरे गुणसमूह के अध्यारोपण का वर्णन किया है जिसने ऐसी, इस, अनुचित व्यक्ति (अपात्र) पर अपना पक्षपात दिखाये हुई (महाश्वेता) को राजकुमारी बार बार उपालम्भ देगी। तब फिर मैं क्या करूँ! मेरे पिता की बहुत भारी (महत्त्वपूर्ण) आज्ञा का तो केवल मेरे देह पर ही आधिपत्य है किन्तु हेमकूट में निवास की 'प्रबल इच्छा' (व्यसन) रखने वाले मेरे हृदय ने तो (केवल इस जन्म के लिये ही नहीं) अपितु दूसरे सहस्रों जन्मों के लिये

दास्यपत्र देव्या हस्तेन दत्तमस्याः। दविकगौल्मिकेनेव देवीप्रसादेन गन्तु सर्वथा गतोऽस्मि पितुरादेशादुज्जयिनीम्। प्रसङ्गतो जनकथाकीर्तनेषु स्मर्तव्यः खलु चन्द्रापीडः। चण्डालो मा चैवं मस्थाः, यथा जीवन्पुनर्देवीचरणारविन्दवन्दनानन्दमननुभूय स्थास्यति चन्द्रापीड इति। महाश्वेतायाश्च सप्रदक्षिणं शिरसा पादौ वन्दनीयौ। मदलेखायाश्च कथनीयः प्रणामपूर्वमशिथिलः कण्ठग्रहः। गाढमालिङ्गनीया च तमालिका। अस्मद्वचनादशेषः प्रष्टव्यः कुशलं कादम्बरीपरिजनः। रचिताञ्जलिना च भगवानामन्त्रणीयो हेमकूटः' इति। एवमादिश्य तम् 'सुहृदादिसाधनमक्लेशयता शनैः

प्रभवति जायते। हेमेति। हेमकूटे निवासस्तद्वयसनिना हृदयेन चित्तेन जन्मान्तरसहस्रस्य दास्यपत्रं लिखितमस्या देव्या हस्तेन दत्तम्। पितुरादेशाज्जनकनियोगादुज्जयिनी गन्तु सर्वथाह गतोऽस्मि। केन। देवीप्रसादेन। कादम्बर्या माहात्म्येनेत्यर्थः। देवयोनित्वात्तस्या इति भाव। केनेव। दविकगौल्मिकेनेव वनेचरसमूहेनेव। सोऽपि देवी पोदकी तदनुरोधेनैव गच्छति। तथा प्रसङ्गतो जनकथा सौवसेवककथा तस्या कीर्तनेषु नामोच्चारणेषु खलु निश्चयेन चन्द्रापीड स्मर्तव्य स्मरणीय। अय चण्डाल कृतघ्नत्वादेव मा मस्था मा जानीया। यथा जीवन्पुनश्चन्द्रापीडो देव्या कादम्बर्याश्चरणारविन्दस्याङ्घ्रिपद्मस्य वन्दन नमस्करण तस्माद्य आनन्द प्रमोदस्तमननुभूयाननुभवविषयीकृत्य स्थास्यति। अत्र काकु न स्थास्यतीत्यर्थः। इति महाश्वेतायाश्च सप्रदक्षिण प्रदक्षिणासहित यथा स्यात्तथा शिरसा मस्तकेन पादौ वन्दनीयौ नमस्करणीयौ। तथा मदलेखायाश्च प्रणामो नमस्कारस्तत्पूर्वकमशिथिलः कण्ठग्रह कथनीयो वाच्य। तथा गाढमत्यर्थमालिङ्गनीया परिरम्भणीया च तमालिका। अशेष समग्र. कादम्बरीपरिजनोऽस्मद्वचनात्कुशल श्रेय प्रष्टव्य। रचिताञ्जलिना च त्वया भगवान्हेमकूट निमन्त्रणीय आमन्त्रणीय इति पूर्वोक्तया दिशादिश्यादेश दत्वा त मेघनादं सुहृदादिसाधन मित्रादिसैन्यमक्लेशयताखेदयता त्वया शनै. शनैर्गन्तव्यमित्युक्त्वा वैशम्पायन स्कन्धावारभरे न्ययुङ्क्त नियोजितवान्।

भी लिखा गया दास्यपत्र (सेवा करने का इकरारनामा) तुम्हारे पास रख दिया है। जैसे वनचर को सेनाध्यक्ष जाने नहीं देता वैसे ही इसको देवी की कृपा ने जाने नहीं दिया, (गुल्म का अर्थ चुंगीकेन्द्र भी है—उस अवस्था में चुंगीकेन्द्र का अध्यक्ष अर्थ होगा), (विवश होकर) सर्वथा पिता के आदेश से ही उज्जयिनी को चला गया हूँ। अवसर आने पर (प्रसंगवश) व्यक्तिविषयक वार्ताओं में इस नीच (अथवा दुःखी) चन्द्रापीड को स्मरण कर लेना। चन्द्रापीड चण्डाल अर्थात् कृतघ्न है, यह मत मान लेना। और यह भी मत समझ लेना कि जीवित रहता हुआ चन्द्रापीड देवी के चरणकमलों की वन्दना के आनन्द का उपभोग किये बिना चैन से बैठेगा। और महाश्वेता के पाँवों की वन्दना प्रदक्षिणा के साथ करना। और मदलेखा को नमस्कारपूर्वक दृढ़ कण्ठाश्लेष कहना। तमालिका को (मेरी ओर से) गाढ़ आलिङ्गन कहना। मेरे कहने से कादम्बरी के सभी कर्मचारियों की कुशलता पूछना, और हाथ जोड़कर भगवान् हेमकूट को बिदाई (आमन्त्रण) देना। उस मेघनाद को इस प्रकार आदेश देकर "मित्र आदि सेना को कष्ट न देते हुए तुम्हें धीरे-धीरे चलना चाहिए" यह कह कर वैशम्पायन को

शनैर्गन्तव्यम्' इत्युक्त्वा वैशम्पायन स्कन्धावारभरे न्ययुङ्क्त। स्वयमपि च तथारूढ एव गमनहेलाहर्षहेषारवकम्पितकैलासेन खुरताण्डवखण्डितभुवा कान्तकुन्तलतावनवाहिना तरुणतुरगप्रायेणाश्वसैन्येनानुगम्यमानस्तमेव लेखहारक पर्याणलग्नमभिनवकादम्बरीवियोगशून्येनापि हृदयेनोज्जयिनीमार्गं पृच्छन्प्रतस्थे। क्रमेण चातिप्रवृद्धप्रकाण्डपादपप्रायया, मालिनीलतामण्डपैर्मण्डलिततरुखण्डया, वनगजपतिपातितपादपपरिहारवक्रीकृतमार्गया, जनजनिततृणपर्णकाष्ठकोटिकूटप्रकटितवीरपुरुषघातस्थानया

स्वयमपि च तथा पूर्वोक्तप्रकारेणारूढ एव गमनलक्षणा या हेला तया हर्षं तस्य हेषारवस्तेन कम्पित कैलासो येन। खुरेति। खुरताण्डवेन खण्डिता भूर्येन स तेन। कान्तेति। कान्ता मनोहरा ये कुन्ता भल्ला। सरलत्वसाम्यात्त एव लतास्तासां वन तद्वाहिना। तरुणा इति। तरुणा नव्यास्तुरगा प्रायेण बाहुल्येन यस्मिन्नेवंविधेनाश्वसैन्येनानुगम्यमानस्तमेव पूर्वोक्तमेव लेखहारक पर्याण पल्ययन तत्र लग्नम्। अभीति। अभिनव प्रत्यग्रो य कादम्बरीवियोगस्तेन शून्येनापि हृदयेनोज्जयिनीमार्गं पृच्छन्प्रतस्थे चचाल। क्रमेण चेति। स चन्द्रापीड क्रमेण परिपाट्या शून्ययाटव्या दिवस गत्वा वासरमतिक्रम्य। परीति। परिणत रक्त रविबिम्बं यस्मिन्नेवभूत वासरे सायसमयेऽटवीक्षेत्रैर्विरलीकृतो यो वनप्रदेशस्तस्मिन्। चिरेति। चिरप्ररूढस्य। बहुकालीनस्येत्यर्थं। रक्तचन्दनतरो पत्राङ्ववृक्षस्योपरि महान्त रक्तध्वज दूरत एव ददर्शेत्यन्वय। इतोऽटव्या विशेषणानि—अतीति। अतिप्रवृद्धोऽतिवृद्धिं प्राप्त प्रकाण्ड स्कन्धो येषामेतादृशा पादपा वृक्षा. प्रायो बाहुल्येन यस्यां सा तया। मालीति। मालिनीसञ्ज्ञिता या लता वल्लयस्तासा मण्डपैर्मण्डलिताश्चक्रवालितास्तरुखण्डा वृक्षसमूहा यस्यां सा तया। वनेति। वनस्य यो गजपतिर्यूथनाथस्तेन पातिता भग्ना ये पादपा वृक्षास्तेषां परिहारो वर्जन तन्निमित्तक प्रतिबन्धवशाद्वक्रीकृतो मार्गं पन्था यस्यां सा तया। जनेनेति। जनेन लोकेन जनित निष्पादित यत्तृण पर्णकाष्ठानां कोटी तस्या कूट शिखर तादृशचिह्नेन प्रकटित वीरपुरुषाणां घातस्थान यस्या

उसने सेना के दायित्व पर नियुक्त कर दिया। और वह स्वय भी वैसे ही घोड़े पर चढा हुआ, चलने के चाव (हेला) में की गयी हर्षसूचक हिनहिनाहट के शोर से कैलाश को कम्पाते हुए, खुरों के नृत्य (ताण्डव) द्वारा भूमि को खोदते हुए, सुन्दर भालों रूपी लताओं के समूह को अथवा व्यूहरचना को धारण किये हुई युवक अश्वो की अधिकता से युक्त अश्वसेना द्वारा अनुगम्यमान, उसी पत्रवाहक से जो कि काठी से लगा हुआ (चल रहा) था, नये (ताजे) कादम्बरी के वियोग के कारण शून्य हृदय द्वारा भी उज्जयिनी के मार्ग को पूछता हुआ चल पड़ा। और उसने दिन भर अधिकाश में अत्यन्त बढ़े हुए तनों वाले वृक्षों से भरे हुए, मालिनी लताओं के कुञ्जों द्वारा घिरे हुए वृक्षसमूहों वाले, जगली विशाल हस्तियों द्वारा गिराये हुए वृक्षों को त्यागने से (वृक्षों से बचकर निकलने के कारण) टेढ़े हुए मार्ग वाले, मनुष्यरचित, घास, पत्र तथा लकड़ी के नोकदार खण्डों के ढेरों से जहाँ वीर पुरुषों की हत्या के स्थान सूचित हो रहे थे, जहाँ बड़े बड़े वृक्षों की जड़ों पर व्रन की दुर्गा देवी के चित्र खुदे हुए थे, जहाँ प्यासे

महापादपमूलोत्कीर्णकान्तारदुर्गया, तृषितपथिकखण्डितदलोज्झितामलकीफलनिकरया, विकसितकरञ्जमञ्जरीरजोविच्छुरिततटैस्तटतरुबद्धपटच्चरकर्पटध्वजचिह्नैरिष्टिकास्थित-शुष्कपल्लवविष्टरानुमितपथिकविश्रामैर्विश्रान्तकार्पटिकस्फोटितधूलिधूसरकिसलयलाञ्छि-तोपकण्ठैः पत्रसकरासुरभीकृताशिशिरपङ्किलविवर्णास्वादुजलैर्व्रततिग्रन्थिग्रथितपर्णपुट-तृणपूलीचिह्नानुमेयैर्जरत्कान्तारकूपैरसुलभसलिलतयानभिलषितोद्देशया, मधुबिन्दु-

सा तया। साम्प्रतमपि तथा कुर्वन्तीति सर्वलोके प्रसिद्धम्। महेति। महापादपानामुच्चैस्तर-वृक्षाणा मूलानि प्रसिद्धान्युत्कीर्णानि यस्मिन्नेवंभूत कान्तार वन तदेव विषमत्वाद् दुर्ग यस्यां सा तया। कान्तार विशेषरूपम्, अटवी तु सामान्यरूपेति न पुनरुक्तदोष। तृषितेति। तृषिताः पिपासिता ये पथिकजनास्तै खण्डितानि द्वैधीकृतानि दलानि पत्राणि येषामेव विधान्युज्झितानि रसास्वादानन्तर त्यक्तान्यामलकीफलानि तेषां निकर समूहो यस्यां सा तया। जरदिति। जरन्तो जीर्णा ये कान्तारकूपास्तै कृत्वा न सुलभ सलिलं जलं यस्यां तस्या भावस्तत्ता तयानभिलषितो नेप्सित। पान्थेनेति शेषः। उद्देश प्रदेशो यस्या सा तया। अथ कान्तारकूपान्विशिनष्टि— विकसितेति। विकसिता विनिद्रा ये करञ्जा नक्तमालास्तेषा मञ्जर्यस्तासां रजोभि परागैर्वि-च्छुरितानि धूसरितानि तटानि कूपोपकण्ठा येषां तैः। तटेति। तटतरुषु कूपोपकण्ठसमुद्भव-वृक्षेषु बद्धा पटच्चरैर्जीर्णै कर्पटध्वज स एव कूपाभिव्यञ्जक चिह्न येषां ते। इष्टिकेति। इष्टिका सुस्थिता येषु, शुष्कपल्लवविष्टरा सस्तारकास्तैरनुमिता पथिकानां विश्रामा येषु ते। विश्रान्तेति। विश्रान्ता स्थिता ये कार्पटिकास्तैर्विस्फोटिता दूरीकृता या धूली रजस्तया धूस राणि मलिनानि किसलयानि पल्लवास्तैर्लाञ्छितश्चिह्नित उपकण्ठो येषा ते। पत्रेति। पत्रसकरै पर्णसमूहैरसुरभीकृतान्यत एवाशिशिराण्यशीतलानि पङ्किलानि कर्दमयुक्तानि विवर्णान्यशुभवर्णा न्यस्वादूनि स्वादरहितानि जलानि येषा ते। व्रततीति। व्रततीनां वल्लीनां ग्रन्थिभिर्ग्रथिता पर्णपुटयुक्तास्तृणपूल्यस्ता एव चिह्नानि तैरनुमातु योग्यै। शुष्केति। शुष्का गिरीणा नद्य एव नदिका। स्वार्थे क। 'केण' इति ह्रस्व। ताभिर्विषमीकृत स्थपुटीकृतमन्तराल मध्य यस्या सा तया। अथ नदिका विशेषयन्नाह—मध्विति। मधुबिन्दुस्यन्दीनि यानि सिन्दुवारवनानि

यात्रियों द्वारा तोड़े गये बाह्य छिलके वाले तथा फिर (खाकर) छोड़े गये आँवलों के ढेर लगे हुए थे, जो पूर्ण विकसित करञ्जमञ्जरी की पराग से ढके (इसीलिये मैले हुए) किनारो वाले थे, जो तटवर्ती वृक्षों पर (सुखाने के लिये) बाँधे हुए फटे पुराने कपड़ों के टुकड़ों (कर्पटा' वस्त्रखण्डा.) रूपी पताकाचिह्नों से युक्त थे (पताकाओं से सूचित हो रहे थे), जो ईंटों पर पड़े सूखे पत्तों के बने बिस्तरों से अनुमान किये गये यात्रियों के विश्राम वाले (विश्राम करके वहाँ स्थित) पथिकों (कार्पटिक) द्वारा तोड़ी हुई (पावों की रगड से फैली हुई) धूल से मैले हुए कोमल पत्तों द्वारा चिह्नित तटोंवाले थे, जो पत्तों के मिश्रण (सकर) से दुर्गन्धित, अशीतल, कीचड़ मिश्रित अशोभन रग के तथा बेस्वाद (कड़ुए) जल वाले थे, जो बेलों की गाँठों से बन्धे दोनों (पर्णपुट) तथा तिनकों की चरखियों (तृणपूली) के चिह्नों द्वारा अनुमेय थे, पुराने टूटे फूटे जगल के कुँओं द्वारा सुगमता से अलब्ध जल के कारण (ऐसे कुँए होने से

स्यन्दिसिन्दुवारवनराजिरजोधूसरिततीराभिश्च कुब्जकलताजालकैर्जटिलीकृतसैकताभिरध्वगोत्खातवालुकाकूपकोपलभ्यमानकलुषस्वल्पसलिलाभिः शुष्कगिरिनदिकाभिर्विषमीकृतान्तरालया, कुक्कुटकुलकौलेयकरटितानुमीयमानगुल्मगहनग्रामटिकया, शून्यया दिवसमटव्या गत्वा परिणतरविबिम्बे बिम्बारुणातपविसरे वासरे निःशाखीकृतकदम्बशाल्मलीपलाशबहुलैः शिखरशेषैकपल्लवविडम्बितातपत्रैः पादपैरूर्ध्वस्थितप्ररोहस्थूलस्थाणुमूलग्रन्थिजटिलैश्च हरितालकपिलपक्ववेणुविटपरचितवृतिभिर्मृगभय-

---

निर्गुण्डीकाननानि तेषां राजिः पङ्क्तिस्तस्या रजः परागस्तेन धूसरितानि तीराणि तटानि यासां ताभिः । कुब्जकेति । कुब्जकलता प्रसिद्धास्तासां जालकैर्जटिलीकृतानि सैकतानि जलोज्झितपुलिनानि यासां ताभिः । अध्वगैरिति । अध्वगैः पथिकैरुत्खाता खनिता वालुकासु कूपका विदारकास्तेषूपलभ्यमानं प्राप्यमाणं कलुषं मलिनं स्वल्पं स्तोकं सलिलं जलं यासु ताभिः । कुक्कुटेति । कुक्कुटकुलं ताम्रचूडवंशः, कौलेयकाः श्वानः तेषां रटितं शब्दितं तेनानुमीयमाना सभाव्यमाना गुल्मगहने ग्रामटिका क्षुद्रग्रामो यस्यां सा तया । अथ वासरं विशिनष्टि—बिम्बेति । बिम्बसबन्धि योऽरुणो रक्त आतपः सूर्यालोकस्तस्य विसरः समूहो यस्मिन् । 'समुदायराशिविसरव्राता कलापो व्रज' इति कोशः । तथैवविधैः पादपैरटवीक्षेत्रैश्च विरलीकृतोऽनिबिडीकृतो यो वनप्रदेशो वनैकदेशस्तस्मिन् । अथ पादपान्विशिनष्टि—निःशाखीति । निःशाखीकृता निःशाखीकृता । वनेचरैरिति शेषः । एवविधाः कदम्बा नीपाः शाल्मल्यो वृक्षविशेषाः, पलाशा ब्रह्मपादपा बहुला बाहुल्येन येषु ते । अनेन सरलत्वाद्दण्डरूपत्वं सूचितम् । शिखरेति । शिखरं वृक्षाग्रं तत्र शेषोऽवशिष्ट एकः पल्लवः किसलयं तेन विडम्बितान्यातपत्राणि छत्राणि यैः । अथ क्षेत्राणि विशेषयन्नाह—ऊर्ध्वस्थिता प्ररोहा नवीनाङ्कुराः स्थूलाः, स्थाणवः शङ्कवश्च तेषां मूलग्रन्थिभिरङ्घ्रिग्रन्थिभिर्जटिलैर्व्याप्तैः । हरितालं नटमण्डनं तद्वत्कपिलाः पिङ्गला ये पक्ववेणुविटपाः परिणतवंशवृक्षास्तेषां रचिता वृतिः सुगहना येषां ते । मृगेति । मृगा हरिणा

जल दुर्लभ होने के कारण) जहाँ का स्थान अभीष्ट नहीं था, जिस का भीतरी भाग शहद की बूँदों को टपकाते सिन्धुवार के वृक्षकुञ्जों से गिरी पराग से मैले हुए तटों वाली, 'कुब्जक' लताओं के ताने-बाने से जटिल किये गये रेतीले किनारों वाली, यात्रियों द्वारा खोदे गये वालुका कूपों (रेत हटाकर बनाये गये छोटे-छोटे कुओं) द्वारा प्राप्त होते थोड़े जल वाली, सूखी पहाड़ी नदियों द्वारा ऊँचे नीचे (इसी कारण) दुर्गम बन गये थे—ऐसे निर्जन जगल प्रदेश में से चलकर (उस समय जब कि) सूर्य का बिम्ब पक गया (अर्थात् लाल होकर छिपने लगा), दिन सन्ध्या की लालिमा के प्रकाश के पुञ्ज से युक्त हो गया, उस समय उसने एक बड़े लाल झडे को दूर से ही देखा। वह झण्डा, अधिकाश में टहनियों रहित किये हुए कदम्ब, शाल्मली तथा पलाश वृक्षों से युक्त, चोटी पर बचे हुए पत्तों को एक गुच्छे से छतरियों को भी तिरस्कृत किये हुए (छतरी सरीखे प्रतीत होते) वृक्षों के द्वारा और ऊपर स्थित अकुरों वाले (वृक्षों) के मोटे मोटे तनों की गाँठदार जड़ों (मूल ग्रन्थि) द्वारा व्याप्त, हरताल सदृश पीले, पके, बाँसों से बनी हुई बाड़ों (वृति) वाले, पशुओं के भय के कारण (वहाँ पर आने वाले पशुओं को भगाने के लिए)

कृततृणपुरुषकैर्विपाकपाण्डुभिः फलिनैः प्रियङ्गुप्रायैरटवीक्षेत्रैर्विरलीकृतवनप्रदेशे चिरप्ररूढस्य रक्तचन्दनतरोरुपरि बद्धम्, सरसपिशितपिण्डनिभैरलक्तकैरभिनवशोणितारुणेन चार्द्रम्, जिह्वालतालोहिनीभी रक्तपताकाभिः केशकलापकान्तिना च कृष्णचामरावचूलेन प्रत्यग्रविशसितानां जीवानामिवावयवैरुपचितदण्डमण्डनम्, परिणतवराटकघटितबुद्बुदार्धचन्द्रखण्डखचितम्, सुतमहिषरक्षणावतीर्णदिनकरावतारितशशिनेव विराजितशिखरम्, दोलायितशृङ्गसङ्गिलोहशृङ्खलावलम्बमानघर्घररवघोरघण्टया च घटितकेसरिसटारुचिरचामरया काञ्चनत्रिशूलिकया लिखितनभ-

---

स्तेभ्यो भय मीतिस्तस्मात्कृतास्तृणपुरुषा येषु तै.। विपाकेति। विपाकेन परिणत्या पाण्डुभि पाण्डुरै। फलिनै फलवद्भि। 'फलवान्फलिन फली' इति कोश। प्रियङ्गु श्यामा प्रायो बाहुल्येन येषु तै। सरसेति। सरसोऽशुष्को य पिशितपिण्डो मासपिण्डस्तस्य निभै सदृशैरलक्तकैर्यावकै। तथाभिनवं प्रत्यग्रं यच्छोणित रक्त तद्वदरुणेन लोहितेन रक्तचन्दनं पत्राङ्ग तस्य रसेन चार्द्रं समुक्षम्। जिह्वेति। जिह्वा एव लता तद्वल्लोहिनीभी रक्ताभी रक्तपताकाभिर्लोहितवैजयन्तीभि। केशेति। केशकलापवत्कान्तिर्यस्यैवंभूतेन कृष्णचामरस्य श्यामवालव्यजनस्यावचूलेनाधोमुखकूर्चकेन प्रत्यग्र तत्कालं विशसितानां हतानां जीवानामवयवैरपघनैरिवोपचितो व्याप्तो यो दण्ड स एव मण्डन यस्य स तम्। परीति। परिणता पक्वा ये वराटका कपर्दकास्तेषां घटिता निर्मिता ये बुद्बुदा स्थासका अर्धचन्द्राकृतिखण्डाश्च तै खचित व्याप्तम्। वर्तुलत्ववक्रत्वसाम्यादुत्प्रेक्षते—सुतेति। सुतो यमस्तस्य महिषी रक्षार्थं तस्य रक्षणं त्राण तदर्थमवतीर्णो यो दिनकर सूर्यस्तेनावतारितो य शशी तेनेव विराजितं शोभित शिखरमग्रभागो यस्य स तम्। दोलेति। दोलायिता या शृङ्गसङ्गिनी लोहशृङ्खला तत्रावलम्बमाना घर्घररवा काहलस्वरा घोरा भीषणा घण्टा यस्या सा तया। घटितेति। घटिता या केसरिसटा तद्वद्रुचिराणि मनोहराणि चामराणि यस्यामेवविधया काञ्चनत्रिशूलिकया लिखित नभस्तल येन स तम्। इतस्तत

उन पर रखे हुए चञ्चापुरुषों वाले, पक जाने के कारण पीले-श्वेत हुए, फलदार, प्रियङ्गुबहुल वनप्रान्तों द्वारा विरलीकृत (परिवेष्टित) वनप्रदेश में एक चिरकाल से उगे हुए (अर्थात् बहुत पुराने) लाल चन्दन के वृक्ष के ऊपर बन्धा हुआ था। वह रस (रक्त) सहित मांस पिण्डों सरीखे अलक्तक पिंडों से तथा ताजे खून के रंग के समान लाल चन्दन रस से गीला हो गया था, उसके डण्डे की सजावट जिह्वा रूपी लता अर्थात् लम्बी जिह्वा के समान लाल झण्डियों से तथा बालों के जूड़े की आभा वाली (जूड़ा सा प्रतीत होती) काली चँवरी रूप लटकन से, मानो कि ताजे मारे हुए जन्तुओं के अङ्गों से की गयी थी, उस रक्तध्वज पर पकी हुई कौड़ियों का बना बुद्बुदाकार (बीच में से मोटे मध्य भाग वाला) चन्द्रखण्ड जड़ा हुआ (लगा हुआ) था, मानो कि वह पुत्र भैंसे की रक्षा के लिये उतरे सूर्य द्वारा उतारे हुए चन्द्रमा से सुशोभित शिखर वाला था, हिलते शूलों में लगी लोहे की साँकल से लटकती भयानक घर्घर शब्द करती घण्टी से युक्त तथा सिंह की सटाओं के समान सुन्दर चँवर से युक्त सोने के बने त्रिशूल से

स्तलम्, इतस्ततः पथिकपुरुषोपहारमार्गमिवालोकयन्तम्, महान्त रक्तध्वज दूरत एव ददर्श। तदभिमुखश्च किंचिदध्वान गत्वा केतकीसूचितखण्डपाण्डुरेण वनद्विरद-दन्तकवाटेन परिवृताम्, लोहतोरणेन नवारक्तचामरावलिपरिकरां कालायसदर्पण मण्डलमालां शबरमुखमालामिव कपिलकेशभीषणा बिभ्राणेन सनाथीकृतद्वारदेशाम्, अभिमुखप्रतिष्ठितेन च विनिहितरक्तचन्दनहस्तकतया रुधिरारुणयमकरतलास्फालि-तेनेव शोणितनवलोभलोलशिवाविलिह्यमानलोहितलोचनेन लोहमहिषेणाध्यासिता-

---

इति। इतस्तत पथिकपुरुषाणामध्वनीनपुसामुपहारमार्गमिव बलिपन्थानमिवालोकयन्त पश्य-न्तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्त। तस्याभिमुखस्तत्सम्मुख. किंचिदध्वान मार्ग गत्वाकारण-क्रोधादयो द्रविडधर्मास्तद्वता जरीयसा पुरुषेणाधिष्ठितामाश्रितां चण्डिकामपश्यदित्यन्वय। अथ चण्डिका विशिनष्टि—केतकीति। केतक्या या सूचिस्त्रिपत्रकम्। 'त्रिपत्रक सूचिरित्य भिधीयते' इत्यमर। तस्य खण्डास्तद्वत्पाण्डुरेण शुभ्रेण वनद्विरदा अरण्यहस्तिनस्तेषा दन्ता रद-नास्तेषा कपाटेन लोकभाषया कटहरेण दन्तनिर्मितकपाटेन वा चतुर्दिक्षु परिवृताम्। आवृता-मित्यर्थ। लोहेति। लोहमय यत्तोरण तेन सनाथीकृतो द्वारदेशो यस्यास्ताम्। किं कुर्वता तोर-णेन। बिभ्राणेन दधता। काम्। कालायस लोहविशेषस्तस्य यानि दर्पणमलानि तन्मयी या माला वन्दनमाला ताम्। कीदृशम्। नवेति। नवानि यान्यारक्तचामराणि तेषामावलि पङ्क्ति सैव परि-करो यस्याम्। अत्र कालायसदर्पणस्यातिश्यामत्वाच्चामरस्यातिरक्तत्वाच्च तत्साम्येनोत्प्रेक्षते—शबरेति। कपिलकेशभीषणा शबरमुखमालामिव। तेषा तु मुखानि श्यामानि, केशाश्च पिङ्गा। अत उपमानो-पमेयसाम्यम्। अभीति। अभिमुख सम्मुखम्। चण्डिकाया इति शेष। प्रतिष्ठितेन स्थापितेन लोहमहिषेणाध्यासिताश्रिताञ्जनशिलावेदिका यस्या सा ताम्। विनीति। विनिहिता दत्ता

आकाश-तल को खरोंच रहा था, और इधर-उधर भेंट के काम आ सकने वाले यात्री पुरुषों के मार्ग पर मानो दृष्टि जमाये हुआ था अथवा यात्री पुरुषों द्वारा लायी गयीं (लायी जाने वाली) भेंटों की प्रतीक्षा में इधर-उधर देख रहा था।

और उस (झडे) की ओर मुँह किये हुए कुछ मार्ग (दूरी तक) चल कर उसने चण्डिका (भयानक देवी) को (उसके मन्दिर में) देखा। वह चण्डिका (की मूर्ति), केतकी के पुष्पों के काँटों के समूह (खण्ड) के समान पीत श्वेत, जगली हाथी के दाँत के बने, द्वार (कपाट) से (वस्तुत कटहरे से) घिरी हुई थी, उसका द्वारप्रदेश नयी लाल चँवरी-पक्ति रूप परिकर वाली (नयी लाल चँवरियों से घिरी), लोहे के दर्पणों की वृत्ताकृति माला को, मानो कि खाकी केशों के कारण भयङ्कर बनी हुई शबरों के मुखों की माला को धारण किये हुए लोहे के तोरण से युक्त था, उसकी काले पत्थर की चौकी (चण्डिका देवी) के मुँह करके स्थापित, लाल चन्दन से किये गये, हथेली के छापों के कारण रक्त-से लाल हुई यम की हथेली से ही मानो दबाये हुए (दबाकर मुद्रित) (अथवा हथेली से चोट पहुँचाये हुए) रक्त के लोभ से चचल गीदड़ियों द्वारा चाटी जाती हुई लाल आँखों वाले लोहे के बने भैंसे द्वारा अधिष्ठित

ञ्जनशिलावेदिकाम्, क्वचिद्रक्तोत्पलैः शबरनिपातितानां वनमहिषाणामिव लोचनैः क्वचिदगस्तिकुड्मलैः केसरिणामिव करजैः क्वचित्किंशुककुसुमकुड्मलैः शार्दूलानामिव सरुधिरैर्नखरैः कृतपुण्यपुष्पप्रकराम्, अन्यत्राङ्कुरितामिव कुटिलहरिणविषाणकोटिकूटैः, पल्लवितामिव सरसजिह्वाच्छेदशतैः, कुसुमितामिव रक्तनयनसहस्रैः, फलितामिव मुण्डमण्डलैः उपहारहिंसा दर्शयन्तीम्, शाखान्तरालनिलीनरक्तकुक्कुटकुलैः श्वभयाद्-कालदर्शितकुसुमस्तबकैरिव रक्ताशोकविटपैर्विभूषिताङ्गणाम्, बलिरुधिरपानतृष्णया

ये रक्तचन्दनहस्तकास्तेषां भावस्तत्ता तया रुधिरेणारुणं यद्यमकरतलं युग्मपाणितलं तेनास्फालितेनेव। लोचनयोरतिलौहित्यवशाद्रुधिरभ्रमेणाह—शोणितेति। शोणितस्य रुधिरस्य नव प्रत्यग्रो लोभस्तेन लोला या शिवा जम्बुकप्रिया तया विलिह्यमाने आस्वाद्यमाने लोहिते लोचने नेत्रे यस्य स तेन। क्वचिदिति। कस्मिंश्चित्प्रदेशे शबरनिपातितानां भिल्लव्यापादितानां वनमहिषाणां लोचनैरिव नेत्रैरिव रक्तोत्पलैः कोकनदैः। क्वचित्केसरिणां कण्ठीरवाणां करजैर्नखैरिवागस्तिकुड्मलैर्मुनिवृक्षमुकुलैः। क्वचिदिति। क्वचिच्छार्दूलानां द्वीपिनां सरुधिरैर्नखरैरिव किंशुको ब्रह्मपादपस्तस्य कुसुमकुड्मलैः कृतो विहितः पुण्यः पवित्रः पुष्पप्रकरो यस्यां सा ताम्। अन्यत्रेति। अन्यस्मिन्स्थले कुटिलानि वक्राणि हरिणविषाणानि मृगशृङ्गाणि तेषां कोटयस्तासां कूटैः समूहैरङ्कुरितामिव प्ररोहितामिव। सरसेति। सरसा या जिह्वा रसनास्तासां छेदशतैः पल्लवितामिव किसलयितामिव। रक्तेति। रक्तानि नयनसहस्राणि तैः कुसुमितामिव पुष्पितामिव। मुण्डमण्डलैः फलितामिव सजातफलामिव। उपेति। उपहारहिंसां बलिप्रमथनं दर्शयन्तीं प्रकटयन्तीम्। चण्डिकायाः सम्मुखवेदिकां वर्णयित्वाङ्गणं वर्णयन्नाह—शाखेति। श्वभयात्कौलेयकभीतेः शाखान्तराले शाखाविचाले निलीनानि मध्यप्रविष्टानि यानि रक्तकुक्कुटकुलानि लोहितताम्रचूडपटलानि येष्वेवंविधैरकाले दर्शितकुसुमस्तबकैरिव रक्ताशोकविटपैर्लोहितकङ्केलिवृक्षैर्विभूषितं शोभितमङ्गणमजिरं यस्याः सा ताम्। बलेरुपहारस्य रुधिरपानं

थी (उस चौकी पर लोहे की बनी भैंसे की मूर्ति रखी हुई थी), वहाँ एक स्थान पर तो शबरों द्वारा मारे गये जगली भैंसों की आँखें प्रतीत होते लाल कमलों से, कहीं शेरों की नख-सरीखे प्रतीत होते अगस्ति-पुष्प की कलियों से, और कहीं चीतों के खून से रगे नाखून प्रतीत होते किंशुक-पुष्पों की कलियों से पुण्यवर्धक पुष्पविक्षेपण किया हुआ था (अर्थात् उपर्युक्त वस्तुएँ वहाँ चण्डिका को अर्पित की हुई थीं), और उसके दूसरे स्थान पर वह (टेढ़ी) हरिण के सींगों की नोकों के ढेरों से मानो (बेल की भाँति) अकुरों से युक्त, रक्त चुआते (सरस) जिह्वा के सैकड़ों टुकड़ों के रूप मे मानो पत्तों से युक्त, सहस्रों लाल नेत्ररूप फूलों से पुष्प युक्त, तथा मुण्डमाला रूप फलो से युक्त होने के कारण वह (अपने आप को) भेंट किये गये पशुओं की हिंसा को दिखा रही थी, उस (चण्डिका) का आगन उन लाल अशोक वृक्षों से सुशोभित था जो कुत्तों के भय से उनकी टहनियों के भीतर छिप कर बैठे हुए मुर्गों के झुण्डों के कारण ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो इन्होंने असमय में ही (समय से पूर्व ही) पुष्प गुच्छे उत्पन्न कर दिये हों, ताल वृक्षों द्वारा उसको खोपड़ीरूपी फलों की भेंट दी

समागतैश्च वेतालैरिव तालैर्दीयमानफलमुण्डोपहाराम्, शङ्काज्वरकम्पितैरिव कदलिकावनैर्भयोत्कण्टकितैरिव श्रीफलतरुखण्डैस्त्रासोर्ध्वकेशैरिव खर्जूरवनैः समन्ताद्गहनीकृताम्, वनकरिकुम्भविदलितरक्तमुक्ताफलानि रुधिरारुणानि बलिसिक्थलुब्धमुग्धकृकवाकुग्रस्तमुक्तानि विकिरद्भिरम्बिकापरिग्रहदुर्ललितैः क्रीडद्भिः केसरिकिशोरकैरशून्योद्देशाम्, प्रभूतरुधिरदर्शनोद्भूतमूर्च्छापतितेनेव प्रतिबिम्बितेनास्तताम्रेण

रक्तास्वादन तस्य तृष्णया गर्धेन समागतै तालैः। उच्चत्वसाम्येनाह—वेतालैरिति। तालफलाना मस्तकसाम्येनाह—दीयमानेति। दीयमानानि फलान्येव मुण्डानि शिरांसि तान्येवोपहारो बलिर्यस्यै सा ताम्। कदलिकावने कम्पातिशय बिल्वखण्डे कण्टकातिशय खर्जूरीवन ऊर्ध्वपत्रातिशय व्यञ्जयितुमुत्प्रेक्षते—शङ्केति। शङ्का पशुवधदर्शनजनिता तस्या यो ज्वरस्तापस्तेन कम्पितैरिव कदलिकाननै रम्भाकाननै, भयेन भीत्योत्कण्टकितैरिव संजातरोमाञ्चैरिव श्रीफलतरुखण्डै, त्रासेन भयेनोर्ध्वं केशा येषामेवविधैरिव खर्जूरवनै समन्ताद्गहनीकृताम्। सर्वतो व्याप्तामित्यर्थ। पुन प्रकारान्तरेण तामेव विशेषयन्नाह—वनेति। वनकरिणा काननहस्तिनां कुम्भेभ्यो विदलितानि विनिर्गतानि रक्तमुक्ताफलानि। कीदृशानि। रुधिरेण रक्तेनारुणानि लोहितानि। पुन कीदृशानि। बलिसिक्थेषूपहारकणेषु लुब्धा आसक्ता मुग्धा ये कृकवाकवस्ताम्रचूडास्तै पूर्वं ग्रस्तानि गृहीतानि पश्चान्मुक्तानि तानि विकिरद्भिरितस्ततो विक्षिपद्भि। अम्बिकाया. भैरव्या परिग्रहेण स्वीकारेण दुर्दुष्ट ललित चेष्टित येषा तै क्रीडद्भि क्रीडा कुर्वद्भि. केसरिकिशोरकैर्नखरायुधबालकैरशून्य उद्देश प्रदेशो यस्या सा ताम्। एतेन सिंहबाहुल्य वर्णितम्। तद्वर्णनाच्च महाविपिनवासित्व व्यङ्ग्यम्। क्षतजानि रुधिराणि तेषा प्रवाहैरोघै. पिच्छिलीकृत विजिलीकृतमजिरमङ्गण यस्या सा ताम्। कीदृशै. क्षतजलप्रवाहै। प्रतीति। प्रतिबिम्बितेन सङ्क्रान्तेनास्तताम्रेणास्तसमयरक्तेन सवित्रा सूर्येणान्तरीकृतै-

---

गई थी मानो कि यह भेंट उसको बलि व्यक्तियों के रक्त को पीने की इच्छा से आये वेताल (भूताविष्ट मृत शरीर) रूप तालवृक्षों ने दी हो। (उस चण्डिका का मन्दिर) मानो (पशु वध-दर्शन से उत्पन्न) भय से चढे हुए ज्वर के द्वारा काँपे हुए, केले के कुञ्जों द्वारा, मानो भय के कारण रोमाञ्चित हुए श्रीफल के वृक्ष समूहों द्वारा तथा भय से ऊपर हुए केशों वाले खजूर के कुञ्जों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ था (अर्थात् इन वृक्षों की बाड़ उस मन्दिर के चारों ओर लगी हुई थी), उस (के आसपास) का प्रदेश (स्थान) अम्बिका (चण्डिका) के स्वीकार से दुश्चेष्टाओं से युक्त हुए (अर्थात् चण्डिका पालित होने के कारण उच्छृंखल हुए) तथा (सिंहों द्वारा) जगली हाथियों के मस्तकों पर से निकाले हुए लाल मोतियों को रुधिर से लाल हुए, उपहारों में विद्यमान उबले चावलों (सिक्थ) के लोभी भोले कुक्कुटों द्वारा (पहले) पकड़े हुए (और फिर) छोड़े हुओं को बखरेते हुए सिंह-शावकों से रहित नहीं था, उस (मन्दिर) का आगन, प्रतिबिम्बित हुए (नहीं नहीं) बहुत-से रक्त के दर्शन से उत्पन्न हुई मूर्छा के कारण ही मानो गिरे हुए अस्तकालीन लाल सूर्य के द्वारा और भी अधिक लाल हुए

सवित्रान्तरीकृतैः क्षतजप्रवाहैः पिच्छिलीकृताजिराम्, अवलम्बमानदीपधूमरक्तांशुकेन ग्रथितशिखिगलवलयावलिना पिष्टपाण्डुरितघनघण्टामालाभारिणा त्रापुषसिंहमुख-मध्यस्थितस्थूललोहकण्टकं दत्तदन्तदण्डार्गलं गलत्पीतनीललोहितदर्पणस्फुरितबुद्बुद-मालं कपाटपटद्वयं दधानेन गर्भगृहद्वारदेशेन दीप्यमानाम्, अन्तःपिण्डिकापीठपातिभिश्च सर्वपशुजीवितैरिव शरणमुपागतैरलक्तकपटैरविरहितचरणमूलाम्, पतितकृष्णचामर-

र्थ्येवधानीकृते। पतनसाम्येनाह—प्रभूतेति। प्रभूत भूयिष्ठ यद्रुधिरं रक्त तस्य दर्शनमव लोकन तेनोद्भूता सजाता या मूर्च्छा तया पतितेनेव स्रस्तेनेव। गर्भेति। गर्भगृहमपवरकस्तस्य द्वारदेशेन प्रतीहारप्रदेशेन दीपमाना शोभमानाम्। अथ द्वारदेशं विशेषयन्नाह—अवलम्बेति। अवलम्बमाना ये दीपा गृहमणयस्तेषा धूमै रक्तानि रञ्जितान्यंशुकानि यस्मिन्। एतेन दीपक बाहुल्य वर्णितम्। अवलम्बमाना दीपा धूमा उत्क्षिप्यमाणकृष्णागुरुसबन्धिनो रक्तांशुकानि च यस्मिन्निति वा। द्वारदेशातिशयवर्णनमेतत्। ग्रथितेति। ग्रथिता गुम्फिता शिखिनो मयूरा-स्तेषा गलवलयाना निगरणकण्टकानामावलय श्रेणयो यस्मिन्स तेन। पिष्टेति। पिष्टवत्पा-ण्डुरिता धूसरवर्णा घना निबिडा या घण्टास्तासां माला श्रेणिस्तां बिभर्तीत्येवशीलेन भारिणा। किं कुर्वता द्वारदेशेन। दधानेन बिभ्रता। किम्। कपाटस्यारे पटद्वयम्। तदेव विशिनष्टि—त्रापुषेति। त्रापुष श्वेतरूप्यनिर्मितो य सिंहो हर्यक्षस्तस्य मुखमध्यस्थित स्थूल लोहकण्टक यस्मिन्। दत्ता दन्तदण्डस्यार्गला यस्मिन्। गलदिति। गलन्त स्रवन्त पीतनीललोहिता इति त्रयोपादान विविधवर्णोपलक्षण तेषां दर्पणेभ्य स्फुरिता विद्योतिता बुद्बुदाकृतयो द्युतिपुञ्जास्तेषा माला यस्मिन्। पुन कीदृशीम्। अन्तरिति। अलक्तकपटैर्यावकरसरक्त वस्त्रैरविरहित चरणयोर्मूल यस्या सा ताम्। चरणमूलेऽपि रक्तवस्त्राणि शोभातिशयार्थं ध्रियन्ते। तत्र हिंसितपशुजीविताना रुधिरसबन्धवशाद्रक्तपटारुण्यसाम्येनोत्प्रेक्षते—अन्त-र्मध्यवर्तिनी या पिण्डिका तस्या पीठ तत्र पातिभि पतनशीलै। आरुण्यव्यञ्जकमुक्त्वा

रक्तरूपी जल की धाराओं से पंकिल हो गया था, वह चण्डिका का मन्दिर भीतरी मन्दिर (गर्भ गृह) के उस द्वारप्रदेश से चमक रहा था जिसपर दीपक, (सुगन्धित पदार्थ का) धुआँ तथा लाल कपड़े लटक रहे थे[1], मयूरों की गर्दनों के कुण्डलों की पँक्तियाँ गुँथी हुई थीं, जो आटे (पिष्ट) के पिण्ड से पीले श्वेत रंग के हुए ठोस, पीतल के घण्टों की माला को धारण किये हुआ था और जो टीन (अथवा सीसे) के बने शेर (की प्रतिमाओं) के मुँह के बीच जड़ी हुई मोटी लोहे की शलाका से युक्त, (हाथी के लम्बे) दाँत (दन्तदण्ड) की अर्गला से युक्त, सामने शोभायमान पीले, नीले तथा लाल दर्पणों में प्रतिबिम्बित (स्फुरित) बुलबुले के समान आकार वाली शंकु श्रेणियों से युक्त, दो किवाड़ों को धारण किये हुआ था। उस (चण्डिका) के पादमूल में (रक्षा की प्रार्थना के लिये) शरणागत सब पशुओं के जीवनों सरीखे भीतरी पिण्डिका (मूर्ति अथवा वेदी) की चौड़ी पीढ़ी पर गिरने वाले, अलक्तक रस से लाल हुए कपड़ों से युक्त था, वह चण्डिका, प्राणियों को काटने के उन शस्त्रों, परशु,

१ जिस पर दियों के धूमों से रंगे कपड़े लटक रहे थे।

प्रतिबिम्बाना च शिरश्छेदलग्नकेशजालकानामिव परशुपट्टिशप्रभृतीना जीवविशमन-शस्त्राणा प्रभाभिर्बद्धबहलान्धकारतया पातालगृहवासिनीमिवोपलक्ष्यमाणाम्, रक्त-चन्दनखचितस्फुरत्फलपल्लवकलितैश्च बिल्वपत्रदामभिर्बालकमुण्डप्रालम्बैरिव कृत-मण्डनाम्, शोणितताम्रकदम्बस्तबककृतार्चनैश्च पशूपहारपटपटुरटितरसोल्लसितरोमा-ञ्चैरिवाङ्गैः क्रूरतामुद्वहन्तीम्, चारुचामीकरपट्टप्रावृतेन च ललाटेन शबरसुन्दरीरचित-

---

चरणमूलसबन्धनियामकमाह—शरणेति। शरणमुपागतै सर्वपशुजीवितैरिव। रुधिर-स्यापि जीवितेन सहगमनादुपमानोपमेयभाव। पतितेति। पतितानि कृष्णचामराणा प्रतिबिम्बानि येष्वेवविधानां परशु परश्वध, पट्टिश शस्त्रविशेष, एतत्प्रभृतीना जीव विशसनशस्त्राणाम्। नीलातिशयवशादाह—शिरश्छेदेति। शिरश्छेदानन्तर लग्न केशानां जालकं समूहो येष्वेतादृशानामिव प्रभाभि कान्तिभिर्बद्धो बहलो निबिडो योऽन्धकारस्तस्य भावस्तत्ता तया पातालगृहवासिनीमिवोपलक्ष्यमाणा दृश्यमानाम्। रक्तेति। रक्तचन्दनेन पत्राङ्गेन खचिता व्याप्ता स्फुरन्तो दीप्यमाना ये फलपल्लवास्तै कलितै सहितैर्बिल्वा श्रीफलास्तेषां पत्रदामभि। वर्तुलत्वसाम्यादाह—बालकेति। बालका शिशवस्तेषां मुण्डानां शिरसां प्रालम्बैरिव ऋजुलम्बिपुष्पदामभिरिव कृत मण्डन यया सा ताम्। स्वाभाविक तु कदम्बकेसर कपिशमत आह—शोणितेति। शोणितेन ताम्रा रक्ता ये कदम्बस्तबका नीपगुच्छकास्तै कृतमर्चन पूजन येषां तैरङ्गैर्हस्तपादादिभि। शोणितरक्तनीपगुच्छस्य रोमोद्गमसादृश्य वर्णयन्नाह—पशूपहारेति। पशूनामुपहारे बलिविधाने पटहानां दुन्दुभीनां यत्पटुरटित स्पष्टशब्दित तेन यो रस। श्रोतुरिति शेष। तेनोल्लसिता उल्लास प्राप्ता रोमाञ्चा रोमहर्षणानि येषां तैरिव क्रूरतां रौद्रतामुद्वहन्तीं धारयन्तीम्। एतदर्थ-स्पष्टीकरणाय हेतूनाह—चार्विति। चारु मनोहरो यश्चामीकरपट्ट सुवर्णपट्टस्तेन प्रावृतेना-च्छादितेन ललाटेनालीकेन। कीदृशेन। शबरेति। शबरसुन्दरीभिर्भिल्लवनिताभी रचिता विहिता सिन्दूरस्य नागजस्य तिलकबिन्दवो यस्मिस्तत्तेन। तथा मुखेन वदनेन। अथ मुख

पट्टिश आदि की चमक के द्वारा जिन मे पड़े काली चँवरियों के प्रतिबिम्बों के कारण वे मानो सिर काटने पर लगे हुए केशसमूहों से युक्त से प्रतीत हो रहे थे, वह घने अन्धकार से घिरी होने के कारण पातालगृह में रहती हुई सी प्रतीत हो रही थी, वह लालचन्दन लेपे हुए चमकते (बिल्व) फलों तथा पत्तों से मिश्रित बेलपत्तों की मालाओं से मानो कि बालकों के सिरों की लम्बी लटकनों (प्रालम्बों) से ही शोभित थी, वह अपने उन अंगों से भीषण दिखायी दे रही थी जिनकी रक्त सरीखे लाल कदम्बपुष्पों से पूजा की गयी थी जो इसी कारण ऐसे दिखायी दे रहे थे कि मानो (उसके बलिभूत) पशुओं की बलि (उपहार देते समय) बजाये गये ढोलों के गम्भीर शब्द को सुनकर हुए हर्ष से रोमाञ्चित हो गये हों, वह इस इस प्रकार मस्तक आदि के कारण महाकाल की अभिसारिका (गुप्त रूप से प्रणयी को मिलने जाने वाली प्रेमिका) के वेश के मोहक गुण को धारण किये प्रतीत होती थी, उसका मस्तक आकर्षक सुवर्ण की पट्टी से ढका हुआ था और चेहरे पर शबर-स्त्रियों द्वारा बनाए हुए सिन्दूर के तिलक के बिन्दु अंकित

सिन्दूरतिलकबिन्दुना दाडिमकुसुमकर्णपूरप्रभासेकलोहितायमानकपोलभित्तिना रुधिर-ताम्बूलारुणिताधरपुटेन भ्रूकुटिकुटिलभ्रुणा रक्तनयनेन मुखेन कुसुम्भपाटलितदुकूल-कलितया च देहलतया महाकालाभिसारिकावेषविभ्रमं बिभ्रतीम्, सपिण्डितनील-गुग्गुलधूपधूमारुणीकृताभिश्च प्रचलन्तीभिर्गर्भगृहदीपिकालताभिरङ्गुलीभिरिव महिषा-सुरशोणितलवालोहिनीभिः स्कन्धपीठकण्डूयनचलितत्रिशूलदण्डकृतापराध वनमहिष-मिव तर्जयन्तीम्, प्रबलकूर्चधरैश्छागैरपि धृतव्रतैरिव स्फुरदधरपुटैराखुभिरपि जपपरै-रिव कृष्णाजिनप्रावृताङ्गैः कुरङ्गैरपि प्रतिशयनैरिव ज्वलितलोहितमूर्धरत्नरश्मिभिः

विशिनष्टि—दाडिमेति। दाडिम करकस्तस्य कुसुम पुष्प तस्य कर्णपूरं तस्य प्रभा कान्तिस्तस्या सेक सपर्कस्तेन लोहितायमाना कपोलभित्तिर्यस्मिंस्तत्तेन। रुधिरेति। रुधिरपानलक्षण यत्ता-म्बूलं तेनारुणितोऽधरपुटो यस्मिंस्तत्तेन। भृकुटीति। भृकुटिभ्रुकुटिस्तया कुटिले वक्रे बभ्रुणी यस्मिंस्तत्तेन। रक्तेति। रक्ते लोहिते नयने नेत्रे यस्मिंस्तत्तेन। पुन कया। देहलतया। सरल त्वाल्लतासाम्यम्। यद्वा एतेन सौकुमार्यातिशयो वर्णित। कीदृश्या। कुसुम्भेन कमलोत्तरेण पाटलितं श्वेतरक्तीभूत यद्दुकूल क्षौम तेन कलितया सहितया देहलतया। महाकालो रुद्रस्त-स्याभिसारिकाया वेषविभ्रम नेपथ्यविलास बिभ्रतीं धारयन्तीम्। संपिण्डितेति। सपिण्डित पुञ्जीकृतो यो नीलगुग्गुलु पलकषस्तस्य धूपधूमस्तेनारुणीकृताभी रक्तीकृताभि प्रचलन्तीभिर्गर्भं गृहस्यापवरकस्य दीपिकालताभिर्दशेन्धनवल्लीभि। अत एव किंचिदारक्तकृष्णतया तत्साम्य-प्रदर्शनार्थमाह—अङ्गुलीति। कीदृशीभि। महिषासुरो दैत्यस्तस्य शोणितं तस्य लवस्तेनालो हिनीभिर्वनमहिषमरण्यरक्ताक्ष तर्जयन्तीं न्यक्कुर्वन्तीम्। कीदृशम्। स्कन्धपीठस्य यत्कण्डूयन तेन चलित कम्पितो यस्त्रिशूलदण्ड स एव कृतोऽपराधो येनैवभूतम्। सजातीयकृतमहिषाप राधाद्वनमहिषस्याप्यपराध। प्रबलेति। प्रबलानि प्रकृष्टानि कूर्चानि चिबुकाध स्थलवर्तिरोमाणि धरन्तीति धरैश्छागैरपि बस्तैरपि धृतव्रतैरिव स्वीकृतनियमैरिवाखुभिरप्युन्दुरैरपि स्फुरन्त्यधर-पुटानि येषा ते। जातिस्वभावोऽयम्। अतएव जपपरैरिव जापतत्परैरिव। कृष्णेति। कृष्णा-

---

थे, अनार के फूलों के कर्णाभूषणों की चमक के उन पर बिखरने के कारण उसके चौड़े (भित्तिसरीखे) कपोल लाल हो रहे थे, रक्त रूपी पान से अधर पुट लाल हो रहा था, सिकोड़ने से टेढ़ी हुई भौंहें थीं, लाल आँखें थीं, और उसका पतला दुबला शरीर कुसुम्भ से लाल रगी रेशमी पोशाक से आवृत था, घनी तथा नीली (काली) गूगल तथा धूप के धुये से लाल-सी की हुई, झिलमिलातीं, लताओं सरीखी अर्थात् लम्बी हुई गर्भगृह के दियों की ज्वालाओं से, मानो कि महिषासुर के रक्तबिन्दुओं से सर्वथा लाल हुई अपनी अगुलियों से ही, अपने (विशाल) कन्धे को खुजाने में त्रिशूलदण्ड को हिलाने का अपराध किए हुए जगली भैंसे ही को मानो झिड़क रही थी, वह लम्बी दाढ़ी धारण किये हुए इसीलिये व्रत धारण किये हुए से प्रतीत होते बकरों द्वारा पूजा की जा रही थी, काँपते होठों वाले, मानो कि जप करते हुए चूहों से भी, काले चर्म से ढके अङ्गोंवाले, इसीलिये मानो प्रतिशयन किये हुए (अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये नियत समय तक देवता के आगे सोना 'प्रतिशयन' कहलाता है), हरिणों से भी, चमकती,

कृष्णसर्पैरपि शिरोधृतमणिदीपकैरिवाराध्यमानाम्, सर्वतः कठोरवायसगणेन च रटता स्तुतिपरेणेव स्तूयमानाम्, स्थूलस्थूलैः शिराजालकैर्गोधागोलिकाकृकलासकुलैरिव दग्धस्थाण्वाशङ्कया समारूढैर्गवाक्षितेन, अलक्ष्मीसमुत्खातलक्षणस्थानैरिव विस्फोटकव्रणबिन्दुभिः कल्माषितसकलशरीरेण, कर्णावतससंस्थापितया च चूडया रुद्राक्षमालिकामिव दधानेन, अम्बिकापादपतनश्यामललाटवर्धमानबुद्बुदेन, कुवादिदत्तसिद्धा-

जिनेन श्यामचर्मणा प्रावृतमङ्ग येषां ते कुरङ्गैरपि सारङ्गैरपि प्रतिशयनैरिव प्रतितल्पैरिव। ज्वलितेति। ज्वलिता दीप्यमाना लोहिता रक्ता मूर्धनि शिरसि रत्नाना मणीना रश्मयो रोचिषो येषां तैरेवविधै कृष्णसर्पैरपि भुजङ्गैरपि शिरोधृतमणिदीपकैरिव मस्तकन्यस्तप्रदमणिभिरिव। एतैराराध्यमानामुपास्यमानाम्। सर्वत इति। सर्वत. समन्ताद्रटता शब्द कुर्वता कठोरवायसगणेन सकृत्प्रजसमूहेन च स्तुतिपरेण स्तूयमानाम् नूयमानाम्। अथ द्राविडधार्मिक विशेषयन्नाह—स्थूल इति। स्थूलानि स्थूलानि च स्थूलस्थूलानि तै शिराजालकैर्नाडीसमूहैर्गवाक्षितेन सर्वत्र जालकमयीभूतेन। तत्र शिराजालकस्य पीनस्थूलरूपतया तत्साम्येनाह—गोधेति। नीलत्वसाम्यात्। दग्धो ज्वलितो य स्थाणु कीलकस्तस्याशङ्कारेका तया। गोधा प्रसिद्धा, गोलिका पल्ली, कृकलास. सरट एतेषा कुलैरिव समूहैरिव समारूढैराश्रितै। अलक्ष्मीति। अलक्ष्म्या अश्रिया समुत्खातानि मूलत उन्मूलितानि यानि लक्षणानि सामुद्रकशास्त्रोक्तानि तेषां स्थानैरिव विस्फोटका प्रसिद्धास्तेषां व्रणबिन्दुभि कल्माषित चित्रित सकलं समग्र शरीर यस्य स तेन। कर्णेति। कर्णावतसे संस्थापितया न्यस्तया चूडया शिखया रुद्राक्षमालिकामिव दधानेन धारयता। अम्बिकेति। अम्बिकाया पार्वत्या पादपतनेन श्याम कृष्ण यल्ललाटमलिकं तत्र वर्धमानो बुद्बुद स्थासको यस्य स तेन। शरीर कदर्यरूपमुक्त्वा तत्प्रसङ्गेनेन्द्रियाणां दन्तादीना कदर्यत्व कपटक्रियासाधनानां चातिशयत्व व्यञ्जयन्पुनस्तमेव विशेषयन्नाह—कुवादीति। कुवादी मिथ्यावादी तेन दत्त सिद्धाञ्जन नेत्रौषध तस्य दानं नेत्रयो प्रक्षेपस्तेन

लाल शिरोमणि की किरणों वाले, मानो कि सिर पर मणियों के दीपक धरे हुए, काले सर्पों से भी वह पूजित हो रही थी, और काँव काँव करते, मानो कि उसक स्तुति मे व्यस्त युवा[1] कौओं के समूह द्वारा उसकी स्तुति की जा रही थी। उस चण्डिका मदिर का अधिष्ठाता एक बूढ़ा द्रविड तपस्वी था। (अथवा उस चण्डिका देवी की सेवा एक बूढ़ा द्रविड़ तपस्वी करता था।) जला हुआ स्थाणु समझ कर उसपर चढे हुए गोहों (गोधा), छिपकलियों (गोलिका) तथा गिरगिटों सरीखे प्रतीत होते मोटे मोटे शिराजालों के कारण वह (द्रविड़ धार्मिक) जालीदार खिड़की बना हुआ (गवाक्षित) था। अभाग्य द्वारा (उसके शरीर से) उखाड़े हुए मांगलिक चिह्नों के स्थान सरीखे प्रतीत होते, माता के घाव के बिन्दुओं के कारण उसका सारा शरीर रग बिरगा बना (कल्माषित) हुआ था। कर्णभूषण के रूप में स्थापित चोटी के कारण वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो उसने रुद्राक्षमाला पहनी हुई हो। चण्डिका के पाँवों में (निरन्तर) गिरने के कारण काले हुए उसके मस्तक पर रसौली (अर्बुद)

१ कठोर Full-grown

ञ्जनदानस्फोटितैकलोचनतया त्रिकालमितरलोचनाञ्जनदानादरश्लक्ष्णीकृतदारुशलाकेन, प्रत्यहं कटुकालाबुस्वेदप्रारब्धदन्तुरताप्रतीकारेण, कथंचिदस्थानदत्तेष्टकाप्रहारतया शुष्कैकभुजोपशान्तमर्दनव्यसनेन, उपर्युपर्यविश्रान्तकटुवर्तिप्रयोगवर्धिततिमिरेण, अश्मभेदसंगृहीतवराहदंष्ट्रेण, इङ्गुदीकोषकृतौषधाञ्जनसंग्रहेण सूचीस्यूतशिरासको-

स्फोटित नाशितमेकं लोचनं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया। त्रिकालमिति। त्रिकालं कालत्रये इतरस्मिन् एकस्मिँल्लोचने यदञ्जनदानं तदर्थमादर आग्रहस्तेन श्लक्ष्णीकृता दारुशलाका येन। पुनः पुनर्नेत्राञ्जनसंबन्धेन दारुशलाकापि श्लक्ष्णीकृतात्यन्तमृदुतामापादितेत्यर्थः। एतेन निरवधिकदेवानाप्रियता दर्शिता। प्रत्यहमिति। प्रत्यहं निरन्तरं कटुकं यदलाबु तुम्बीफलं तस्य यः स्वेदस्तत्र स्रुतं जलं तेन प्रारब्धा दन्तुरतोन्नतदन्तता तस्याः प्रतीकारश्चिकित्सा येन। आमवातजडीकृतदेहस्य तैलविशेषमर्दनानन्तरं कारञ्जाग्नितप्तेष्टिकानां प्रहारः क्रियते। तमधिकृत्याह—अस्थानेति। यत्राग्नितप्तेष्टिकाप्रहार उक्तो नास्ति तस्मिन्नङ्गे, अत एवास्थाने दत्तो य इष्टिकाप्रहारस्तस्य भावस्तत्ता तया। शुष्केति। अचिकित्सित एकस्मिन्भुज उपशान्तं निष्ठाप्राप्तं मर्दनव्यसनं यस्य स तेन। कुत्सिततैलप्रयोगवशाद्दीपालोके सत्यप्यन्धकार एवेत्यधिकृत्याह—उपर्युपरीति। उपर्युपर्यविश्रान्तं निरन्तरं कटुकवर्तिप्रयोगेण वर्धितं तिमिरं येन। अश्मेति। अश्मभेदार्थं प्रस्तरखण्डार्थं संगृहीता आत्ता वराहाणां वनक्रोडानां दंष्ट्रा येन। इङ्गुदीति। इङ्गुदी तापसद्रुमस्तस्य कोषः फलं तन्मध्ये कृतः औषधाञ्जनयोः संग्रहो येन। तत्र स्थापितस्यौषधाञ्जनादेर्विशेषगुणकारित्वादित्युक्तं महासाहसिकत्वमप्याह—सूचीति। सूच्या सीवन्या स्यूता प्रोता या शिरा।

निकल आयी थी (अर्थात् मस्तक को चण्डिका के पाँवों पर घिसने से काले रंग का शुष्क व्रण चिह्न (अर्बुद) हो गया था)। किसी पाखण्डी (कुवादी) द्वारा दी गयी जादूई मल्हम (सिद्धाञ्जन) को लगाने से एक आँख के फूट जाने के कारण, दिन में तीन समय (तीन बार) दूसरी आँख में साधारण अञ्जन लगाने में ध्यान देने से उसने काठ की 'सलाई' चिकनी (अथवा पतली) कर ली थी। प्रतिदिन कड़वी तूम्बी (अलाबु) (को गरम करने से प्राप्त) की आर्द्रता (अथवा जल) को लगाकर उसने दन्तुरता (दाँतों के आगे बढ़ आने के रोग) की चिकित्सा आरम्भ कर रखी थी। किसी प्रकार अनुपयुक्त स्थान पर (वस्तुतः दुखते स्थान से भिन्न स्थान पर) (गर्म) ईंट की टकोर करने के कारण सूखी हुई एक भुजा तक ही (रोगनाशक तैल आदि) के मसलने के उद्यम को सीमित[1] किये हुआ था। ऊपर ऊपर निरन्तर कटु वर्ति (तीक्ष्ण औषधि की बनी बत्ती) के प्रयोग करने से उसका तिमिर रोग—(मोतिया बिन्दु रोग) और अधिक बढ़ गया था। पत्थरों को तोड़ने के लिये उसने सूअर की

१ उपशान्त का अर्थ Confined किया गया है, इसका सीधा अर्थ Stopped' 'बन्द कर दिया गया' होना चाहिये। आमवात के कारण अशक्त हुई बाँह पर गर्म ईंट से टकोर करनी आरम्भ की, परन्तु गलत स्थान पर सेक करने के कारण वह सूख गयी। इसलिये यह समझ कर कि वान तो नष्ट हो गया, तैल आदि का मसलना उसने बन्द कर दिया।

चितवामकराङ्गुलिना, कौशेयककोशावरणक्षतिव्रणितचरणाङ्गुष्ठकेन, असम्यक्कृतरसायनानीताकालज्वरेण, जरां गतेनापि दक्षिणापथाधिराज्यवरप्रार्थनाकदर्थितदुर्गेण, दुःशिक्षितश्रवणादिष्टतिलकाबद्धविभवप्रत्याशेन[1], हरितपत्ररसाङ्गारमषीमलिनशम्बूकवाहिना, पट्टिकालिखितदुर्गास्तोत्रेण, धूमरक्तालक्तकाक्षरतालपत्रकुहकतन्त्रमन्त्रपुस्तिका-

प्रकोष्ठसबन्धिनीति शेष । तया सकोच प्रापिता वामकराङ्गुल्यो येनैतादृशविकृताङ्गप्रदर्शनेन । लोकानामद्भुतमिदमिति बुद्धिजननात्पुनरपि तदेवाह—कौशेयकेति । कौशेयकस्य कृमिकोशोत्थस्य कोश कृमिगृह तस्यावरणमावेष्टन तस्माद्या क्षति संघृष्टिस्तया व्रणितश्चरणाङ्गुष्ठो यस्य स तेन । असम्यगिति । न सम्यक्कृतमनभिज्ञत्वाद्रसायन पारदकलङ्कादिकम् । बहुद्रव्यव्ययेनापि कार्यसिद्धेरभावात् । तेनानीत प्रापित कालज्वरो मरणपर्यवसायितापो यस्य स तेन । अनेन मुमूर्षोरपि वैराग्य नोत्पद्यत इति लोभातिशयो व्यज्यते । जरेति । जरां गतेनापि विस्रसा प्राप्तेनापि दक्षिणापथस्य यदधिराज्यमाधिपत्य तस्य वरप्रार्थना तया कदर्थितोद्विग्नीकृता दुर्गा भवानी येन । दु शिक्षितेति । दुर्दुष्ट शिक्षित तस्य श्रवणादाकर्णनादिष्टेऽभिमतस्थानवर्तिनि तिलके कालके । 'तिलक कालकः पिप्लुर्जडुलस्तिलकालक' इति कोश । तस्मिन्नाबद्धा मनसि निश्चिता विभवस्यैश्वर्यस्य प्रत्याशा प्राप्तिवाञ्छा येन । हरितेति । हरितपत्राणां नीलपलाशानां रसेन कृत्वा योऽङ्गारस्य मषी मसी तया मलिनो य शम्बूक शङ्खस्तद्वाहिना । एतेन यत्किंचिल्लिखनव्यसनता सूचिता । पट्टिकेति । पट्टिकाया लिखित लिपीकृत दुर्गास्तोत्र यस्य येन वा स तेन । धूमेति । धूमवद्रक्तान्यलक्तकस्य यावकस्याक्षराणि येष्वेवविधानि तालपत्राणि येषामेतादृशा ये कुहका जालिकास्तेषा तन्त्रा औषधप्रयोगा., मन्त्रा. शाबरमन्त्रा , तेषा पुस्तिकास्तस्या

दाढ़ का सग्रह कर लिया था—(सूअर की दाढ़ प्राप्त कर ली थी)। उसने इगुदी के वृक्ष के खोखले किये गये काष्ठ फलों (कोषों) मे ओषधियों तथा अञ्जनों (मल्हम) का सग्रह किया हुआ था। सूई से सी हुई (प्रकोष्ठ की) शिराओं के कारण उसके बायें हाथ की अगुलियाँ सिकुड़ गयी थीं। रेशम के कीड़ों (कौशेयक) के कोयों के बनाये आवरण से हुए घाव (रगड़) के कारण उसके पॉव के अँगूठे पर फोड़ा हो गया था। अनुपयुक्त विधि से (अवैज्ञानिक रीति से) बनायी गयी पारदयुक्त औषध (रसायन) से वह अपने ऊपर असामयिक ज्वर को ले आया था (अनुपयुक्त रसायन से उसको असामयिक ज्वर हो गया था)। वह बूढा हो गया था तो भी उसने दक्षिण देश के एकाधिपत्य के वर की मॉग से दुर्गा (चण्डी) देवी को परेशान कर रखा था। किसी कुशिक्षित (अपूर्ण शिक्षित) बौद्ध सन्यासी (श्रमण) द्वारा उपदिष्ट तिलक (सिद्धौषधि द्वारा किये गये मस्तक बिन्दु) पर (अथवा किसी कुशिक्षित श्रमण द्वारा पूर्वसूचित (शरीर पर के) तिलक पर (ऐश्वर्य की आशा लगाये हुआ था)। वह हरे पत्तों के रस से मिश्रित कोयले से बनायी स्याही से काले किये हुए शङ्ख को रखता था। उसने कपड़े की पट्टी (अथवा खजूर के पत्ते) पर दुर्गा का स्तोत्र लिख रखा था। (धूप के) धुँए से धुँआरे हुए, लाल लाख में लिखे अक्षरों में, ताड़ के पत्तों पर (लिखी) ऐन्द्रजालिक औषधियों तथा मन्त्रों की पुस्तकें एकत्र कर रखी थीं।

1 श्रमणेति पाठान्तरम् ।

सम्राहिणा, जीर्णपाशुपतोपदेशलिखितमहाकालमतेन, आविर्भूतनिधिवादव्याधिना, सजातधातुवादवायुना, लग्नासुरविवरप्रवेशपिशाचेन, प्रवृत्तयक्षकन्यकाकामित्वमनोरथव्यामोहेन वर्धितान्तर्धानमन्त्रसम्रहेण श्रीपर्वताश्चर्यवार्तासहस्राभिज्ञेन, असकृदभिमन्त्रितसिद्धार्थकाहतिधावितैः पिशाचगृहीतकैः करतलताडननिबिडीकृतश्रवणपुटेन, अवमुक्तशैवाभिमानेन, दुर्गृहीतालाबुवीणावादनोद्वेजितपथिकपरिहृतेन, दिवसमेव मशककणितानुकारि किमपि कम्पितोत्तमाङ्ग गायता, स्वदेशभाषानिबद्धभागीरथी-

सम्राहिणा सग्रहकारिणा। जीर्णेति। जीर्णश्चिरकालीनो य पाशुपतोपदेशो मनुष्यरुधिरेण होमप्रतिपादकशिक्षा तेन लिखित लिपीकृत महाकालमतमीश्वरमत येन। एतेन केवल वाममार्गोपदेष्टृत्व सूचितम्। आविर्भूतेति। आविर्भूत प्रकटीभूत सर्वे मे मम निधय इति वाद स एव व्याधिर्यस्य स तेन। अत एवाह—सजातेति। सजात समुत्पन्नो धातुवादस्य ताम्रादे. सुवर्णादिकरणस्य स एव वायुर्विक्रिया यस्य स तेन। लग्न इति। लग्नोऽसुराणा पातालवासिदेवाना विवरप्रवेशलक्षण पिशाचो यस्य स तेन। प्रवृत्तेति। प्रवृत्त. प्रसृतो यक्षकन्यका गन्धर्वपुत्र्य स्तासा य कामित्वमनोरथो भोगेच्छाविशेषस्तद्विषये व्यामोहो यस्य स तेन। वर्धितेति। वर्धितो वृद्धिं नीतोऽन्तर्धानमदृश्यता तस्मिन्कर्तव्ये मन्त्रसग्रहो यस्यैवविधेन। श्रीपर्वतेति। श्रीपर्वत श्रीशैलस्तस्याश्चर्यवार्ताश्चित्रकारिण्य किंवदन्त्यस्तासा सहस्रं तस्मिन्नभिज्ञेन कुशलेन तस्य शाम्भवत्वाद्द्रविडधार्मिकस्य जंगमत्वाच्चेति भाव । असकृदिति। असकृन्निरन्तरमभिमन्त्रिता ये सिद्धार्थका सर्षपास्तेषामाहति प्रक्षेपस्तया धावितैस्त्वरया प्रचलितै पिशाचगृहीतकै पिशाचाविष्टै करतलताडनेन हस्ततलास्फोटनेन निबिडीकृत दृढीकृत श्रवणपुट कर्णकोटर यस्य स तेन। एतेन पिशाचावेशविद्यावत्त्व सूचितम्। अवेति। अवमुक्तस्त्यक्त शैवाभिमानोऽहमेव शैवो नान्य इति भाव येन। दुरिति। दु खेन गृहीता यालाबुवीणा तस्या वादनेनोद्वेजिता उद्वेग प्रापिता ये पथिका अध्वगास्ते परिहृतेन त्यक्तेन। दिवसेति। दिवसमेव न तु रात्रौ मशकाना

किसी वृद्ध पशुपति के भक्त-शैव के बताये अनुसार उसने महाकाल की पूजा के सिद्धान्त लिख रखे थे। किसी कोष (की प्राप्ति) को बखानने की व्याधि उसमें प्रकट हो गयी थी तथा धातुवाद रूपी वायु रोग (तॉबे आदि को सोने मे परिवर्तन करने के बखान करने का रोग)—उन्मत्तता—उसमें उत्पन्न हो गया था। असुरों के विवर अर्थात् पाताल में (धन की खोज के लिये) प्रवेश रूप पिशाच उसपर लग गया था। उसपर यक्षकन्या से प्रेम करने की अभिलाषा (मनोरथ) की मूढता सवार हो गयी थी। उसने अदृश्य होने के मन्त्रों को प्रभावकारी बनाने के साधनों के सग्रह को बढ़ा लिया था। श्रीशैल की सहस्रों आश्चर्यजनक किंवदन्तियों को वह जानता था। बार बार अभिमन्त्रित (मन्त्रों से पवित्र किये गये) सफेद सरसों के बीजो (सिद्धार्थक) की मार (आहति) के कारण उसकी ओर दौड़े हुए, भूताविष्ट व्यक्तियों द्वारा हथेलियों से पीटने पर उसके कान चौड़े हो गये थे। उसने शिवभक्त होने के अभिमान को नहीं छोड़ा था। उसके द्वारा गलत विधिसे सचालित कर्कश ध्वनि में बजायी गयी अलाबु वीणा के बजाने से ऊबे हुए पथिकों ने उसको छोड़ दिया था (वे उससे बचते थे)। वह स्वय

भक्तिस्तोत्रनर्तकेन, गृहीततुरगब्रह्मचर्यतयान्यदेशागतोषितासु जरत्प्रव्रजितासु बहुकृत्वः सम्प्रयुक्तस्त्रीवशीकरणचूर्णेन, अतिरोषणतया कदाचिद्दुर्न्यस्ताष्टपुष्पिकापातोत्पादितक्रोधेन, चण्डिकामपि मुखभङ्गिविकारैर्भृशमुपहसता, कदाचिन्निवार्यमाणावासरुषिताध्वगारब्ध-बहुबाहुयुद्धपातभग्नपृष्ठकेन, कदाचित्कृतापराधबालकपलायनामर्षपश्चात्प्रधावितस्ख-लिताधोमुखनिपातोपलस्फुटितशिरःकपालभुग्नग्रीवेण कदाचिज्जनपदकृतनवागतपरम-

---

क्वणित शब्दित तदनुकारि किमप्यनिर्वचनीय कम्पितोत्तमाङ्ग यथा स्यात्तथा गायता गान कुर्वता । स्वदेशेति । स्वदेशस्य सौवजनपदस्य या भाषा वाणी तया निबद्ध गुम्फित यद्भागीरथी गङ्गा तस्या भक्तिस्तोत्र तेन नर्तकेन नृत्यकारिणा । स्तोत्रं पठन्नेव नृत्यतीत्यर्थ । गृहीतेति । गृहीत स्वीकृत तुरगाणा ब्रह्मचर्यम् । प्रतिबन्धवशात् । न तु वैराग्येणेति । तस्य भावस्तत्ता तयान्येभ्यो देशेभ्यो जनपदेभ्य आगता प्राप्ता उषिताश्च तासु जरन्त्योऽपि या प्रव्रजिता आत्तव्रतास्तासु बहुकृत्वो बहुवार सप्रयुक्त स्त्रीवशीकरणस्य चूर्ण येन । एतेन महाकामुकत्व सूचितम् । अतीति । अतिरोषणस्य भावस्तत्ता तया कदाचिद्दुर्न्यस्ता विषमस्थापिता याष्टपुष्पिका सोलिका तस्या पातेनोत्पादित क्रोधो यस्य स तेन । नि शङ्कत्वाच्चण्डिकामपि मुखभङ्गिविकारैर्भृशमत्य-र्थमुपहसता हास्य कुर्वता । कदाचिदिति । कदाचित्कस्मिंश्चित्समये निवार्यमाणो य आवासो निवासस्तेन रुषिता क्रोध प्राप्ता येऽध्वगा पान्थास्तैरारब्ध यद्बहुबाहुयुद्ध तेन पात पतन तस्माद्भग्नं स्फुटित पृष्ठक यस्य स तेन । कदाचिदिति । कृतापराधा विहितागसो ये बालका-स्तनधयास्तेषा पलायन तस्मादमर्ष क्रोधसभवस्तेन पश्चात्पृष्ठे प्रधावित सन्स्खलितस्तेनाधोमुख-निपातस्तेनोपलेऽश्मनि स्फुटित प्राप्त शिर कपाल भुग्ना वक्रा ग्रीवा च यस्य स तेन । कदा-चिदिति । जनपदेनाधाराधेययोरैक्याज्जनपदस्थालोकेन कृतो नवागतपरमधार्मिकस्यादरस्तस्मि-

---

दिन में ही सिर को हिलाता हुआ मक्खियों की भिनभिनाहट से मिलता जुलता कुछ गाता था। अपनी मातृभाषा में रचित गगा की भक्ति के गीतों के साथ साथ नाचता था। तुरग ब्रह्मचर्य (अर्थात् केवल विवशता के आधीन ही ब्रह्मचर्य) का व्रत धारण करने के कारण वह दूसरे देशों से आयी हुई बूढ़ी वहाँ आकर बसी हुई (प्रवास किये हुई) स्त्रियों पर उसने बहुत बार स्त्री-वशीकरण चूर्ण का प्रयोग किया था। बहुत अधिक क्रोध (अथवा चिढ़ने) का स्वभाव होने के कारण कभी गलत स्थान पर रखे गये आठ पुष्पों के समूह (अष्टपुष्पिका, सोलिका) के पतन पर आये क्रोध से (गलत ढग से चण्डिका की पीढ़ी पर रखे हुए आठ फूलों के गिर जाने पर अथवा किसी द्वारा गिरा दिये जाने पर, चण्डिका पर इसलिये क्रोध करके कि तू फूलों को भी नहीं रख सकती) मुँह बिचका कर चण्डिका (की प्रतिमा) का भी अत्यधिक उपहास करता था। कभी, वहाँ निवास करने से रोकने पर क्रुद्ध हुए पथिकों द्वारा आरम्भ किये गये बहुत से बाहुयुद्धों में गिरने से उसकी पीठ टूट गयी थी। कभी, अपराध करके भागते हुए बालकों पर क्रोध करके उसके पीछे पीछे दौड़ने पर ठोकर खा कर औंधे मुँह गिरने से पत्थर से सिर की खोपड़ी टूट गयी थी और गर्दन टेढ़ी हो गयी थी (अथवा मोच खा गयी थी)।

धार्मिकादरमत्सरोद्बद्धात्मना, निःसंस्कारतया यत्किंचनकारिणा, खञ्जतया मन्द मन्द सचारिणा, बधिरतया सज्ञाव्यवहारिणा, रात्र्यन्धतया दिवाविहारिणा, लम्बोदरतया प्रभूताहारिणा, अनेकश· फलपातनकुपितवानरनखोल्लेखच्छिद्रितनासापुटेन, बहुशः कुसुमावचयचलितभ्रमरसहस्रदशशीर्णीकृतशरीरेण, सहस्रशः शयनीकृतासस्कृतशून्यदेवकुलकालसर्पदष्टेन, शतशः श्रीफलतरुशिखरच्युतिचूर्णितोत्तमाङ्गेन असकृदुत्सन्नदेवमातृगृहवास्यृक्षनखजर्जरितकपोलेन, सर्वदा वसन्तक्रीडिना जनेनोत्क्षिप्तखण्ड-

---

न्मत्सरस्तत्रोद्बद्ध आत्मा येन। निःसस्कारेति। निर्गतो दूरीभूतो वर्णसस्कारो यस्मिंस्तस्य भावस्तत्ता तया। यत्किंचनकारिणा। अविहितकृत्यकारिणेत्यर्थ। खञ्जेति। खञ्जतया खोडतया मन्द मन्द यथा स्यात्तथा सचारिणा सचरणशीलेन। बधिरेति। बधिरतयाकर्णतया सज्ञया हस्तचालनादिकया व्यवहारिणा व्यवहरणशीलेन। रात्र्येति। रात्र्यन्धतया रजन्यामनवीक्षकत्वेन दिवाविहारिणा दिवससचारिणा। लम्बेति। लम्बोदरतया प्रलम्बोदरतया प्रभूताहारिणा प्रचुरान्नभक्षकेन। अनेकश इति। अनेकोपायैर्वृक्षान्दोलनाद्युपायै फलपातन तेन कुपिता कोप प्राप्ता ये वानरा शाखामृगास्तेषां नखोल्लेखस्तेन छिद्रित नासापुट येन। बहुश इति। बहुशो बहुप्रकारेण कुसुमानां स्वभोगार्थमवचयश्चुण्टन तेन चलिता भ्रमरा भृङ्गास्तेषा सहस्रं तस्य दशा भक्षणानि तै शीर्णीकृत जीर्णीकृत शरीर यस्य स तेन। सहस्रश इति। सहस्रश सहस्रवार शयनीकृतान्यसस्कृतान्यशोधितानि शून्यानि जनरहितानि देवकुलानि तेषु ये कालसर्पा कृष्णनागास्तैर्दष्टेन भक्षितेन। शतश इति। श्रीफलतरुर्बिल्वतरुस्तस्य शिखरमग्र तस्माच्च्युति पात। फलस्येति शेष। तेन चूर्णितमुत्तमाङ्ग शिरो यस्य स तेन। असकृदिति। असकृद्वारवारमुत्सन्नमुद्वस यद्देवमातृगृह तद्वासिनो ये ऋक्षा भल्लूकास्तेषा नखैर्जर्जरितौ कपोलौ यस्य स तेन। सर्वदेति। सर्वदा सर्वकाल वसन्तक्रीडिना सुरभिक्रीडा-

---

कभी लोगों द्वारा किये हुए नये आये (किसी) श्रेष्ठ तपस्वी के आदर पर की गयी ईर्ष्या से उसने अपने आप को लटका लिया था। उचित रूप में सस्कृत न होने के कारण वह कुछ भी किसी भी रीति से (अर्थात् मनमानी) करता था। लँगड़ा होने के कारण वह बहुत धीरे धीरे चलता था। बहरा होने के कारण वह अपना व्यवहार इशारों द्वारा करता था। रात्र्यन्ध (रात मे न दिखने के कारण) होने के कारण वह केवल दिन में ही चलना फिरता था। लम्बे (बड़े) पेट वाला होने के कारण बहुत अधिक भोजन वाला (बहुत अधिक खाने वाला) था। (वृक्षो से उसके द्वारा) फलों के गिराने के कारण (उस पर) क्रुद्ध बन्दरों द्वारा नाखूनों से की गयीं खरोंचों से उसकी नाक में अनेक बार छिद्र हुए थे। फूल चुनते समय (वहाँ से) हटे हुए सहस्रों भौरों द्वारा की गयीं काटों से उसका शरीर बहुत बार छिन्न भिन्न हुआ था। शयन बनाये हुए, साफ न किये हुए, निर्जन देवगृहों मे काल सर्पों ने उसको हजारों बार काटा था। श्रीफल (बिल्व) वृक्ष की चोटी पर से पतन द्वारा (अथवा बिल्व वृक्ष की चोटी पर से फल के पतन द्वारा) उसका सिर सैकड़ों बार टूटा था। भग्न देवमातृगृहों (देवताओं के मन्दिरों) के निवासी भालुओं के नखों से उसके गाल, एक से अधिक बार, चीरे गये थे।

खट्वारोपितवृद्धदासीविवाहप्राप्तविडम्बनेन, अनेकायतनप्रतिशयितनिष्फलोत्थानेन, दौःस्थित्यमपि विविधव्याधिपरिवृत स्वकुटुम्बमिवोद्वहता, मूर्खतामपि बहुव्यसनानुगता प्रसूतानेकापत्यामिव दर्शयता, क्रोधमप्यनेकदण्डाभिघातनिर्मितबहुगात्रगण्डूक फलितमिव प्रकाशयता, क्लेशमपि सर्वावयवज्वलितदीपिकादाहव्रणविभावितं बहुमुखमिव प्रकटयता, परिभवमपि निष्कारणाकृष्टजनपददत्तपदाकृष्टिशत प्रवाहमिव दधानेन,

---

कारिणा जनेनोत्क्षिप्ता या खण्डा भग्ना खट्वा पल्यङ्कस्तस्यामारोपिता या वृद्धा जीर्णा दासी कूटहारिका तया सह यो विवाह उद्वाहस्तेन प्राप्त विडम्बन कदर्थन यस्य स तेन। अनेकेति। अनेकेष्वायतनेषु चैत्येषु प्रतिशयित किंचित्फलप्राप्तिबुद्ध्या स्वाप. कृतस्तेन तस्माद्वा निष्फलमुत्थान जागरण यस्य स तेन। एतेन वार्धकेऽप्यत्यन्तमुद्योग सूचित । दुःस्थितेति। दुःस्थितस्य भावो दौःस्थित्यमप्यसद्वृत्तमपि विविधा अनेकप्रकारा ये व्याधय पीडास्तै परिवृतम्। अनेनासद्वृत्तपरम्परा सर्वदा वर्तमानैवेति सूचितम्। यथा व्याधिरपि व्याध्यन्तरेण परिवृतो वृद्धिमेव जनयति तद्वद्दौःस्थित्यवृद्धिरेव सूचिता। अत एव तस्य विच्छेद एव नास्तीत्याह—स्वकुटुम्बेति। स्वकीय कुटुम्बमिवात्मीयस्वजनमिवोद्वहतोद्वहन कुर्वता। मूर्खतेति। मूर्खस्य भावो मूर्खता तामपि बहुभिर्व्यसनैरासक्तिभिरनुगता सहिताम्। अतएव मूर्खताया व्यसनजनकत्वादाह—प्रसूतेति। प्रसूतानि जनितान्यनेकान्यपत्यानि ययैवंविधामिव दर्शयतान्येभ्य प्रकाशयता। क्रोधमिति। क्रोध कोपमप्यनेके दण्डास्तेषा कलहावसरे योऽभिघातस्तैर्निर्मितो बहुगात्राणा गण्डूक पिटको येन स तम्। अत एवाह—फलितमिव प्रकाशयताविष्कुर्वता। क्लेशमिति। क्लेश परिश्रमस्तमपि सर्वेष्ववयवेषु ज्वलिता या दीपिकास्तासां दाह इव यो दाहस्तस्माद्यानि व्रणानि देहविकृतिरूपाणि तैर्विभावितं लक्षितम्। अतएव बहुच्छिद्रवत्त्वाद् बहुमुखमिव प्रकटयता प्रकाशयता। परीति। परिभवमपि तिरस्कारमपि निष्कारण निष्प्रयोजनमाकृष्ट आकर्षितो यो जनस्य पदोऽङ्घ्रिस्तेन दत्त पदाकृष्टिशत चरणप्रहारशत यस्मिन्। अविच्छिन्नगतिमत्त्वात्प्रवाहमिव दधानेन

वसन्तऋतु में (होली के अवसर पर) क्रीडायें (स्वाँग) करने वाले लोगों द्वारा (इसलिये) उठायी गयी (कि वह न देख सके) टूटी खाट पर बिठायी गयी बुढ़िया दासी से विवाह का उपहास उसे सदा मिला था। बहुत से मन्दिरों मे (देवताओं के समक्ष) शयन करके निष्फल ही (किसी फल की प्राप्ति के बिना ही) उसने जागरण किया था। अनेक प्रकार के रोगों से घिरी (भरी) हुई अपनी दुर्दशा को भी वह उसको अपना परिवार ही समझ कर धारण किये हुए था। बहुत-सी बुराइयों (अथवा आशकाओं) से अनुगत अपनी मूर्खता को भी वह ऐसी दिखाता था कि मानों उसने अनेक सन्तान उत्पन्न कर ली हो। अनेक दण्ड प्रहारों द्वारा निर्मित शरीर पर बहुत से गूमड़े (गण्डक) बनाये हुए क्रोध को भी, वह फल उत्पन्न किये हुए सा दिखा रहा था। सब अंगों मे जलती मशालों (दीपिका) की भाँति जलन उत्पन्न करते घावों द्वारा स्पष्टतया सूचित कष्ट को भी वह ऐसा दिखा रहा था कि मानो इस कष्ट के बहुत से मुँह हों। (उस द्वारा) बिना कारण ही तिरस्कृत (शापादि द्वारा आकृष्ट) लोगों द्वारा दी गयीं सैकड़ों ठोकरों (आकृष्टि) वाले अपने अपमान को भी वह ऐसे धारण कर रहा था कि

शुष्कवनलताविनिर्मितबृहत्कुसुमकरण्डकेन, वेणुलतारचितपुष्पपातनाङ्कुशिकेन क्षणमप्यमुक्तकालकम्बलखण्डखोलेन जरद्द्रविडधार्मिकेणाधिष्ठिता चण्डिकामपश्यत्। तस्यामेव च वासमरचयत्।

अथावतीर्य तुरगात्प्रविश्य भक्तिप्रवणेन चेतसा तां प्रणनाम। कृतप्रदक्षिणश्च पुनः प्रणम्य प्रशान्तोद्देशदर्शनकुतूहलेन परिभ्रमन्नुच्चैरारटन्तमाक्रोशन्तं च कुपित द्रविडधार्मिकमेकदेशे ददर्श। दृष्ट्वा च कादम्बरीविरहोत्कण्ठोद्वेगदूयमानोऽपि सुचिरं जहास। न्यवारयच्च तेन सार्धं प्रारब्धकलहानुपहसतः स्वसैनिकान्। उपसान्त्वनैश्च कथमपि प्रियालापशतानुनयैः प्रशममुपनीय क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां च कलत्रम-

बिभ्रता। शुष्केति। शुष्का या वनलता तया विनिर्मितो निष्पादितो बृहत्कुसुमकरण्ड पुष्पसस्थापकस्थल येन। वेणिवति। वेणुलतया रचिता पुष्पपातनार्थमङ्कुशिका येन। क्षणेति। क्षणमप्यमुक्तोऽत्यक्त कालकम्बलखण्डस्य कृष्णरल्लकप्रदेशस्य खण्डखोलो येन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तस्यामिति। तस्यामेव भूमौ वास निवासमरचयद्रचितवान्।

अथेति। तदनन्तर तुरगादश्वादवतीर्य प्रविश्य च। चण्डिकायतनमिति शेष। भक्तिप्रवणेन चेतसा ता प्रणनाम नमश्चक्रे। कृतेति। कृता विहिता प्रदक्षिणा येनैवविधश्च पुनरपि प्रणम्य नमस्कार कृत्वा प्रशान्तो य उद्देशस्तस्य दर्शनस्य यत्कुतूहल तेन परिभ्रमन्नितस्तत सचरन्। उच्चैरुच्चस्वरेणारटन्त पूत्कुर्वन्तमाक्रोशन्त च कुपित द्रविडधार्मिकमेकदेश एकस्मिन्प्रदेशे ददर्शेक्षाचक्रे। दृष्ट्वा विलोक्य। कादम्बरीति। कादम्बर्या विरहे योत्कण्ठा तज्जनितो य उद्वेगस्तेन दूयमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सुचिर चिरकाल यावज्जहास हास्य चक्रे। न्यवारयच्च निवारणा कृतवांश्च। तेनेति। द्रविडधार्मिकेण सार्धं प्रारब्धकलहान्स्वसैनिकानुपहसत। उपेति। उपसान्त्वनै सामभि प्रियालापानामिष्टवचनानां शतेनानुनयैरनुकूलनैश्च कथमपि महता कष्टेन प्रशम शान्तभावमुपनीय प्राप्य जन्मभूमिमुत्पत्तिस्थलम्, जातिं ब्राह्मणत्वादिकाम्,

मानो यह मानधारा-प्रवाह ही हो। उसने सूखी जगली बेलों से फूल गिराने (रखने) की पटी (अकुशिका) बनायी हुई थी। काले कम्बल से बनाये गये (शिरस्त्राण सरीखे) खोल को वह एक क्षणभर के लिये भी नहीं छोड़ता था। फिर उस चन्द्रापीड ने उसी (मन्दिर) में अपना निवास बनाया (अथवा उसी में डेरा डालने का आदेश दिया)।

इसके पश्चात् घोड़े से उतर कर, मन्दिर मे प्रवेश करके, उसने भक्ति से झुके हुए (भक्तिपूर्ण) मन से उस (चण्डिका देवी) को नमस्कार किया। और (चण्डिका की) प्रदक्षिणा करके, फिर नमस्कार करके, उस शात स्थान को देखने की उत्कण्ठा से घूमते हुए उसने एक स्थान पर क्रुद्ध (इसी कारण) ऊँचे ऊँचे चिल्लाते, द्रविड तपस्वी को देखा। और उसको देखकर, कादम्बरी के वियोग के कारण उत्पन्न लालसा से दुखी भी वह देर तक हँसता रहा। और उसके साथ झगड़ा शुरू किये हुए तथा उसका उपहास करते हुए अपने सैनिकों को उसने हटा दिया। बड़ी कठिनता से, शातिकर वचनों द्वारा (उपसान्त्वनैः) तथा सैंकड़ों प्रिय बातों भरे समाधानों द्वारा उसको शात करके, धीरे धीरे उसने स्वय ही उससे (उसकी) जन्मभूमि, जाति, विद्या, स्त्री, सन्तान, धन, उम्र और सन्यास का कारण पूछा। और पूछे गये

पत्यानि विभव वयःप्रमाण प्रव्रज्यायाश्च कारण स्वयमेव पप्रच्छ। पृष्टश्चासाववर्णयदात्मानम्। अतीतस्वशौर्यरूपविभववर्णनवाचालेन तेन सुतरामरज्यत राजपुत्रः। विरहातुरहृदयस्य विनोदनतामिवागात्। उपजातपरिचयश्चास्मै ताम्बूलमदापयत्। अस्तमुपगते च भगवति सप्तसप्तौ, आवासितेषु यथासपन्नपादपतलेषु राजसूनुषु, शाखावसक्ततपनीयपर्याणेषु क्षितितललुठनपांसुलसटावधूननानुमितोत्साहेषु गृहीतकतिपयशष्पकवलेषु पीतोदकेषु स्नानार्द्रपृष्ठतया विगतश्रमेषु पुरोनिखातकुन्तयष्टिषु सयतेषु

विद्या वेदाध्ययनादिरूपाम्, कलत्र स्त्री, अपत्यानि पुत्रपुत्रीरूपाणि, विभवमैश्वर्यम्, वय प्रमाण वर्षपरिमाणम्, प्रव्रज्यायाश्च दीक्षायाश्च कारणं निदानम्, एतानि स्वयमेव पप्रच्छ प्रश्नविषयीचक्रे। पृष्टश्चासौ द्रविडधार्मिक आत्मान स्वमवर्णयद्वर्णितवान्। अतीति। अतीत व्यतिक्रान्त यत्स्वकीय शौर्य पराक्रम, रूप सौन्दर्यम्, विभव ऐश्वर्य, तेषा वर्णनं तत्र वाचालेन वाचाटेन तेन द्रविडधार्मिकेण राजपुत्रश्चन्द्रापीड सुतरामतिशयेनारज्यतानुरक्तो बभूव। विरहेति। विरहेणातुर हृदय यस्यैवभूतस्य राज्ञो विनोदनस्य भावो विनोदनता तामिव सोऽगात्। राज्ञश्चित्तविश्रान्तिस्थानतां जगामेत्यर्थं। उपेति। उपजात प्राप्त परिचयो यस्यैवविधोऽस्मै द्रविडधार्मिकाय ताम्बूल नागवल्लीदलमदापयद्दापितवान्। अथ च भगवति सप्तसप्तौ सूर्येऽस्तमुपगते सति चन्द्रापीड परिजनेन सेवकजनेनैकदेश एकत्रस्थले सयतस्य बद्धस्येन्द्रायुधस्य पुर परिकल्पित प्रतीहारेण निवेदित ज्ञापितं शयनीय तल्पमगादित्यन्वय। केषु सत्सु। राजसूनुषु नृपपुत्रेषु यथासपन्ना पुष्पफलसमृद्धा ये पादपा वृक्षास्तेषां तलेष्वावासितेषु वसतिं प्रापितेषु सत्सु। पुन केषु सत्सु। वाजिषु तुरङ्गमेषु सयतेषु बद्धेषु सत्सु। अथ वाजिविशेषणानि— शाखेति। शाखायामवसक्तान्यवलम्बितानि तपनीयस्य सुवर्णस्य पर्याणानि पल्ययनानि येषा तेषु। क्षितीति। क्षितितल पृथ्वीतल तत्र लुठनेन पांसुला या सटा. केशसहतयस्तासामव धूननेन कम्पनेनानुमित उत्साहो येषा तेषु। गृहीतेति। गृहीता कतिपया कियन्त शष्प कवला बालतृणग्रासा यैस्तेषु। पीतान्युदकानि यैस्तेषु। स्नानेति। स्नानेनार्द्रं पृष्ठ येषां तेषा भावस्तत्ता तया विगतो दूरीभूत श्रमो येषां तेषु। पुर इति। पुरोनिखाता अग्रे स्थापिता

उस द्रविड़ धार्मिक ने अपना वर्णन कर दिया। और अपने भूतकालीन शौर्य, सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य को बातूनीपन से वर्णन करते हुए उसने राजपुत्र का बहुत अधिक मनोविनोद किया। वियोग से दुखी हृदय वाले (चन्द्रापीड) का वह (द्रविड़ धार्मिक), मानो मनोविनोद का स्रोत बन गया। परिचय उत्पन्न किये हुए उसने इसको (द्रविड़ धार्मिक को) पान भी दिलवाया। और भगवान् सूर्य (सप्तसप्ति) के अस्त हो जाने पर जैसे मिले वैसे वृक्षों के नीचे, राजपुत्रों को बसा देने पर, जब घोड़ों को, जिनकी सोने की काठियाँ वृक्षों की शाखाओं पर लटका दी गयीं, जिनके उत्साह का अनुमान पृथ्वी पर लोटने से धूलिमय हुई सटाओं के झटकने से हो रहा था, जिन्होंने कुछ घास के ग्रास खा लिये थे, पानी पी लिया था और स्नान करने से गीली पीठ हो जाने के कारण जिनकी थकावट मिट गयी थी, गाड़ी गयी भालों की यष्टियों में

वाजिषु, वाजिसमीपविरचितपर्णप्रस्तरे च दिवसगमनखिन्नपरिकल्पितयामिके सुषुप्सति सैनिकजने, कृतबहुपावकप्रभापीततमसि दिवस इव विराजमाने सेनानिवेशे चन्द्रापीडः परिजनेनैकदेशे संयतस्येन्द्रायुधस्य पुरः परिकल्पित प्रतीहारनिवेदितं शयनीयमगात्। निषण्णस्य चास्य तत्क्षणमेव पस्पर्श दुःखासिका हृदयम्। अरतिगृहीतश्च विसर्जयाबभूव राजलोकम्। अतिवल्लभानपि नाललाप पार्श्वस्थान्। निमीलितलोचनो मुहुर्मुहुर्मनसा जगाम किंपुरुषविषयम्। अनन्यचेताः सस्मार हेमकूटस्य। निष्कारणबान्धवतामचिन्तयन्महाश्वेतापादानाम्। जीवितफलमभिललाष पुनः पुनः कादम्बरीदर्शनम्। अपगताभिमानपेशलाय नितरामस्पृहयन्मदलेखापरिचयाय। तमालिका

कुन्तयष्टयो येषा तेषु। पुन कस्मिन्सति। वाजिसमीपेऽश्वसविधे विरचित कल्पित पर्णानां पत्राणा प्रस्तर सस्तरो येन तस्मिन्। दिवस यावद्गमनेन खिन्ना पदातिजना परिकल्पिता प्रथमप्रहरक्रमेण सस्थापिता यामिका यस्मिन्नेवविधे सैनिकजने सुषुप्सति स्वपितुमिच्छति सति। कृतो विहितो यो बहुपावक प्रभूताग्निस्तस्य प्रभया पीत तमो यस्मिन्नेवविधे दिनावसाने दिवस इव विराजमाने सेनानिवेशे सति। निषण्णस्य चेति। अस्य चन्द्रापीडस्य निषण्णस्योपविष्टस्य तत्क्षणमेव दु खमासतेऽस्यामिति दु.खासिकातुरतिर्हृदय पस्पर्श स्पृष्टवती। अरतीति। अरत्योद्वेगेन गृहीत आक्रान्तश्च राजलोक विसर्जयांबभूव शयनायानुज्ञां प्रदत्तवान्। अतीति। अतिवल्लभानप्यतिप्रियानपि पार्श्वस्थान्समीपवर्तिनो नाललाप न बभाषे। निमीलिते लोचने यस्यैवभूतो मुहुर्मुहु किंपुरुषविषय मनसा चेतसा कृत्वा जगाम गतवान्। अनन्येति। न विद्यतेऽन्यस्मिन् चेत चित्त यस्यैवंभूतो हेमकूटस्य सस्मार स्मरण चकार। 'मातु स्मरति' इतिवत् हेमकूटस्येति षष्ठी। निष्कारणेति। महाश्वेतापादाना निष्कारणबान्धवतां निर्हेतुकस्वजनतामचिन्तयत्। पुन पुनर्वारंवारं कादम्बरी दर्शनमभिललाष वाञ्छयामास। कीदृशम्। जीवितस्य फलमिव फलम्। अपगतेति। अपगतो दूरीभूतो योऽभिमानो गर्वस्तेन पेशलाय हृद्याय। 'पेशलं हृद्य सुन्दरम्' इति कोश।

बाँध दिया गया, और दिन भर की कूच से थके तथा अन्यों को प्रहरी बनाकर घोड़ों के समीप ही बनाये गये पत्तों के बिछौनों पर सैनिकों द्वारा सोने की इच्छा करने पर, बनायी गयी बहुत-सी आगों के प्रकाश द्वारा पिये गये अन्धकार वाले, दिन की भाँति चमकते सैनानिवेश—कैम्प—के हो जाने पर, सेवक वर्ग द्वारा एक स्थान पर बाँधे गये इन्द्रायुध के सामने सेवकों द्वारा बनाये गये, द्वारपाल द्वारा निर्दिष्ट बिस्तर पर चन्द्रापीड लेट गया। और लेट गये इसके हृदय को वियोग-दुख ने उसी समय छूआ। और उद्विग्नता के वशीभूत होकर राजपुत्रों को उसी समय छुट्टी दे दी। समीप खड़े अत्यन्त प्रिय पात्रों से भी वह नहीं बोला। आँखें बन्द किये हुआ बार बार मन से किन्नर प्रदेश में पहुँच गया। किसी दूसरे मे मन न लगाये हुआ (किसी और के विषय मे न सोचता हुआ) हेमकूट को स्मरण करने लगा। महाश्वेता की कृपाओं की नि स्वार्थता को सोचता रहा। कादम्बरी के दर्शन को उसने अपने जीवन का फल समझ कर उसकी बार बार इच्छा की। अभिमानरहित होने के कारण आकर्षक मदलेखा के सान्निध्य (शब्दार्थ-परिचय) को उसने

द्रष्टुमाचकाङ्क्ष। केयूरकागमनमुत्प्रैक्षत। हिमगृहकमपश्यत्। उष्णमायत पुनरुक्त निश्श्वास। बबन्ध बान्धवेभ्यश्चाधिका प्रीति शेषहारे। पश्चात्स्थिता पुण्यभागिनी ममन्यत पत्रलेखाम्। एव चानुपजातनिद्र एव तामनयन्निशाम्। उषसि चोत्थाय तस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरैः पूरयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरेवाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम। आकस्मिकागमनप्रहृष्टसंभ्रान्ताना पौराणामर्घकमलानीव नमस्काराञ्जलिसहस्राणि प्रतीच्छन्नतर्कित एव विवेश नगरीम्। अहमहमिकया च प्रधावितानतिरभसहर्षविह्वलान्परिजनान् 'द्वारि देव, चन्द्रापीडो वर्तते' इत्युपलभ्यास्य पिता निर्भरानन्दमन्दगमनो मन्दर इव क्षीरोदजलमुत्तरीयाशुक-

मदेति। मदलेखया सह य परिचय सस्तवस्तस्मै नितराम् अस्पृहयत्स्पृहा चकार। तमालिकां द्रष्टु विलोकयितुमाचकाङ्क्षाभिललाष। केयूरकस्यागमनमुत्प्रैक्षतोदटङ्कयत। हिमगृहकमपश्यत्। उष्णमुष्णमायत विस्तीर्णं पुनरुक्त वारवार निश्श्वास निश्वासान्मुमोच। बान्धवेभ्यः स्वजनेभ्योऽधिकां प्रीतिं शेषाभिधाने हारे बबन्ध बन्धितवान्। तदर्पितत्वेन तदुपरि रागाधिक्यमिति भाव। पश्चादिति। पश्चात्स्थिता पुण्यभागिनीं पत्रलेखाममन्यत ज्ञातवान्। एवं चेति। एवममुना प्रकारेण अनुपजातानागता निद्रा प्रमीला यस्यैवभूत एव निशां रात्रिमनयत्प्रापितवान्। उषसि च प्रभात उत्थाय तस्य पूर्वव्यावर्णितस्वरूपस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्दत्तैर्धनविसरैर्द्रव्यसमूहैर्मनोरथमभिलाषं पूरयित्वाभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्निवास कुर्वन्नल्पैरहोभिरेव स्तोकैरेव दिनैरुज्जयिनीं विशालामाजगामाययौ। आकस्मिकेति। आकस्मिकमसंभावित यदागमन तेन प्रहृष्टाः प्रमुदिता सभ्रान्ताश्च ये पौरास्तेषामर्घकमलानीव नमस्काराञ्जलिसहस्राणि प्रतीच्छन्गृह्णन्नतर्कित एवासभावित एव नगरीमुज्जयिनीं विवेश प्रवेश चकार। अह पूर्वमह पूर्वमित्यहमहमिका तया प्रधावितानुच्चलितानतिरभसेन जनितो यो हर्षं प्रमोदस्तेन विह्वलान्व्याकुलान्परिजनान्परिच्छदान्द्वारि द्वारदेशे हे देव, चन्द्रापीडो वर्तते इत्युप-

अत्यधिक चाहा। तमालिका को देखना चाहा। केयूरक के आने की प्रतीक्षा की। (कल्पना में) उसने हिमगृह को देखा। बार-बार गरम तथा लम्बी आहें भरीं। शेषहार पर अपने बन्धुओं से भी अधिक प्रीति (चाह) लगायी। पीछे रह गयी पत्रलेखा को पुण्यात्मा समझा। और इस प्रकार नींद आये बिना ही उसने वह रात बिता दी। और प्रात काल उठकर उस द्रविड़ धार्मिक की इच्छानुसार उसको दी हुई धनराशियों से उसके इष्ट मनोरथ को पूर्ण करके, और (मार्ग में) प्रसन्नतादायक प्रदेशों मे डेरा डालता हुआ, थोड़े ही दिनों में उज्जयिनी पहुँच गया। (उसके) अकस्मात् (असभावित) आगमन से प्रसन्न तथा हड़बड़ाये हुए नगर निवासियों की पूजा के कमलों सरीखी सहस्रो प्रणामाञ्जलियों को स्वीकार करता हुआ[1], अकस्मात् ही नगरी में प्रविष्ट हो गया।

और 'मैं पहले, मैं पहले' इस प्रकार करके दौड़े हुए (पहले बताने की होड़ में भागते हुए) सेवकों से यह सुनकर कि 'महाराज! चन्द्रापीड द्वार पर है'—इसका पिता, अत्यधिक

1. प्रति + इष्, स्वीकार करना।

ममलमागलितमाकर्षन्प्रहर्षनेत्रजलबिन्दुवर्षी मुक्तमुक्ताफलासार इव कल्पपादपः प्रत्यासन्नवर्तिभिर्जरापाण्डुमौलिभिश्चन्दनविलेपनैरनुपहतक्षौमधारिभिः केयूरिभिरुष्णीषिभिः किरीटिभिः शेखरिभिर्बहुकैलासामिव बहुक्षीरोदामिव क्षितिं दर्शयद्भिः प्रतिपन्नासिवेत्रच्छत्रकेतुचामरैरनुगम्यमानो राजसहस्रैश्चरणाभ्यामेव प्रत्युज्जगाम। दृष्ट्वा च पितरं दूरादेवावतीर्य वाजिनश्चूडामणिमरीचिमालिना मौलिना महीमगच्छत्। अथ प्रसारितभुजेन 'एह्येहि' इत्याहूय पित्रा गाढमुपगूढः सुचिरं परिष्वज्य

लभ्य प्राप्यास्य चन्द्रापीडस्य पिता तारापीडो निर्भरानन्देन निबिडप्रमोदेन मन्दं गमनं यस्यैव भूतोऽमलं निर्मलमागलितमीषत्स्वस्थानाद्भ्रष्टमुत्तरीयांशुकमुपसव्यानवस्त्रमाकर्षयन्स्वस्थानं नयन्। राज्ञो गौरत्वसाम्यादुत्तरीयांशुकस्य शुभ्रत्वसाम्यादाह—मन्दरेति। मन्दर इव मेरुरिव क्षीरोदजलम्। प्रहर्षेति। प्रहर्षात्प्रमोदान्नेत्रजलबिन्दून्वर्षतीत्येवंशील स तथा। जलबिन्दूनां शुचित्वे मुक्ताफलसाम्यमाह—मुक्तेति। मुक्तो मुक्ताफलानामासारो येनैवंविध इव कल्पपादपो मन्दरतरु प्रत्यासन्नवर्तिभिर्जरा विस्रसा तया पाण्डव श्वेता मौलयो येषां तैश्चन्दनानां विलेपनान्यङ्गरागा येषां ते। अन्विति। अनुपहतमच्छिन्नं यत्क्षौमं दुकूलं तद्धारिभि केयूरमङ्गदं विद्यते येषा ते उष्णीषं पुष्पदाम विद्यते येषा ते किरीटं कोटीरं विद्यते येषां ते शेखर आपीडो विद्यते येषां ते। अत एव बहुकैलासामिव। शेखराणां शुभ्रत्वादिति भाव। बहुक्षीरोदामिव। क्षौमादीनामतिशुभ्रत्वेन क्षीरोदसादृश्यात्। इत्येतादृशीं क्षितिं वसुधां दर्शयद्भि प्रकाशयद्भिः। प्रतीति। प्रतिपन्नानि स्वीकृतानि वेत्रच्छत्रकेतुचामराणि यैरेवंविधै राजसहस्रैरनुगम्यमान चरणाभ्या पादाभ्यामेव प्रत्युज्जगामाभिमुख प्रतस्थे। दृष्ट्वा च पितरं जनकं दूरादेव वाजिनोऽश्वादवतीर्य चूडामणि शिरोमणिस्तस्य मरीचय कान्तयस्ता मलति धारयतीत्येवंशीलेन मौलिना मस्तकेन महीं वसुधामगच्छत्। पञ्चाङ्ग प्रणाममकरोदित्यर्थ। अथेति। प्रणामानन्तरं प्रसारितभुजेन विस्तारितबाहुना पित्रा एहि एहि इत्याहूय गाढमत्यर्थमुपगूढ आलिङ्गित. सुचिरं बहुकालं परिष्वज्यालिङ्ग्य तस्मिन्काले सनिहितानां समीपगतानां च माननीयानां पूज्यानां कृतो

आनन्द के कारण मन्द गति हुआ-हुआ, मन्दराचल जैसे दुग्ध सागर के जल को खींचता है वैसे ही अपने खिसके हुए स्वच्छ उत्तरीय को खींचता हुआ, हर्ष के आँसुओं के बिन्दुओं की वर्षा करता हुआ मानो कि मोतियों की बौछार छोड़े हुआ कल्पवृक्ष ही हो, समीपवर्ती, वृद्धावस्था के कारण श्वेत हुए (सिर के) बालों वाले, (शरीरों पर) चन्दन का लेप किये हुए, अप्रयुक्त (नयी) रेशमी पोशाक पहने हुए, तथा अंगदों, पगड़ियों, मुकुटों और शिरोमालाओं को पहने हुए, पृथ्वी को मानो बहुत से कैलासों से युक्त और बहुत से क्षीरसागरों से युक्त दर्शाते हुए, तलवारों, बेंतों, छतरियों, ध्वजों, तथा चवरियों लिये हुए हजारों राजाओं द्वारा अनुगम्यमान, पाँवों से ही (पैदल ही) (उसकी अगवानी के लिये) आगे गया। और पिता को देख कर, दूर से ही घोड़े से उतर कर, उसने अपने शिरोभूषण की किरणों से युक्त सिर से पृथ्वी को छूआ। तब, भुजाओं को फैलाये हुए राजा द्वारा "आ, आ"—यह कहकर बहुत देर तक गाढ़ आलिङ्गन किया हुआ (चन्द्रापीड) बहुत देर तक (पिता का) आलिंगन करके और

तत्कालसंनिहितानां च माननीयानां कृतनमस्कारः करे गृहीत्वा विलासवतीभवनम-नीयत राज्ञा । तयापि तथैव सर्वान्तःपुरपरिवारया प्रत्युद्गम्याभिनन्दितापगमनः कृता-गमनमङ्गलाचारो दिग्विजयसबद्धाभिरेव कथाभिः कंचित्कालं स्थित्वा शुकनासं द्रष्टुमाययौ । तत्राप्यमुनैव क्रमेण सुचिरं स्थित्वा निवेद्य वैशम्पायनं स्कन्धावारवर्तिनं कुशलिनमालोक्य च मनोरमामागत्य विलासवतीभवन एव सर्वाः स्नानादिकाः परवश इव क्रिया निरवर्तयत् । अपराह्णे निजमेव भवनमयासीत् । तत्र च रणरणकखिद्यमान-मानसः कादम्बर्या विना न केवलमात्मानं स्वभवनमवन्तीनगरं वा सकलमेव मही-मण्डलं शून्यममन्यत । ततो गन्धर्वराजपुत्रीवार्ताश्रवणोत्सुकश्च महोत्सवमिवेप्सित-वरप्राप्तिकालमिवामृतोत्पत्तिसमयमिव पत्रलेखागमनं प्रत्यपालयत् ।

विहितो नमस्कारो येनैवंभूतश्चन्द्रापीड करे गृहीत्वा विलासवतीभवन राज्ञानीयत प्राप्यत । तयापि विलासवत्यापि तथैव पूर्वोक्तरीत्यैव सर्वान्त पुरस्य परिवारो यस्या सा तया प्रत्युद्गम्याभि-मुखमागत्याभिनन्दित श्लाघितमागमनं यस्य स । कृतो विहित आगमनस्य मङ्गलाचार क्रिया-विशेषो यस्य स । दिशा विजय स्वायत्तीकरण तत्सबद्धाभिस्तद्विषयकाभि कथाभिर्वार्ताभि कंचित्काल मातुर्गृहे स्थित्वा शुकनास द्रष्टु विलोकितुमाययावाजगाम । तत्राप्यमुनैव क्रमेण पूर्वोक्तन्यायेन सुचिर बहुकाल स्थित्वा स्कन्धावारवर्तिन कुशलिन वैशम्पायन निवेद्य विज्ञाप्या-लोक्य निरीक्ष्य च मनोरमा वैशम्पायनजननीमागत्य विलासवतीभवन एव सर्वा समग्रा स्नानादिका क्रिया परवश इव परायत्त इव निरवर्तयन्निर्वर्तितवान् । अपराह्णे मध्याह्नात्परतो निजमात्मीयमेव भवन कुमारोऽयासीदगात् । तत्र च रणरणकेनोत्कण्ठया खिद्यमान पीड्यमान मानस यस्यैवविध कादम्बर्या विना न केवलमात्मान स्वभवन स्वगृहमवन्तीनगर सकलमेव महीमण्डल शून्यममन्यतागणयत । ततस्तदनन्तर गन्धर्वराजपुत्र्या या वार्ता किंवदन्ती

उस समय समीप स्थित सम्माननीय व्यक्तियों को नमस्कार करके हाथ पकड़ कर विलासवती के भवनकी ओर ले जाया गया। उसी प्रकार सारे अन्त पुर (अन्त पुर की स्त्रियों) से घिरी हुई उस विलासवती के द्वारा भी आगे बढ़कर (सामने आकर) अगवानी का अभिनन्दन किया हुआ, आगमन-सम्बन्धी मागलिक विधियाँ जिसकी की गयी थीं ऐसा वह चन्द्रापीड कुछ समय को दिग्विजय सम्बन्धी बातों में ही बिता कर शुकनास को देखने के लिये अर्थात् शुकनास से भेंट करने के लिये चल पड़ा। वहाँ भी इसी रीति (क्रम) से अथवा इसी कार्यविधि में लगा रह कर, बहुत देर रुक कर, 'वैशम्पायन सेना में है तथा सकुशल है' यह बताकर और मनोरमा को देखकर, लौट कर, विलासवती के महल में ही उसने स्नान आदि सब क्रियायें एक पराधीन व्यक्ति की भाँति समाप्त कीं। दुपहर के समय वह अपने ही महल में चला गया। और वहाँ लालसा (रणरणक) से दुःखी होते हुए मनवाले ने काद म्बरी के विना, न केवल अपने को ही अपितु अपने भवन को, अवन्तीनगर को अथवा सारी पृथ्वी को ही शून्य समझा। उसके पश्चात् गन्धर्वराजपुत्री (कादम्बरी) के वृत्तान्त को सुनने के लिए उत्कण्ठित हुए उसने पत्रलेखा के आगमन की प्रतीक्षा ऐसे की कि मानो (उसका

ततः कतिपयदिवसापगमे मेघनादः पत्रलेखामादायागच्छत्। उपानयच्चैनाम्। कृतनमस्कारा च दूरादेव स्मितेन प्रकाशितप्रीतिश्चन्द्रापीडः प्रकृतिवल्लभामपि कादम्बरीसकाशात्प्रसादलब्धापरसौभाग्यामिव वल्लभतरतामुपागतामुत्थायातिशयदर्शितादरामालिलिङ्ग पत्रलेखाम्। मेघनादं च प्रणतं पृष्ठे करकिसलयेन पस्पर्श। समुपविष्टश्चाब्रवीत्—'पत्रलेखे, कथय तत्रभवत्या महाश्वेतायाः समदलेखाया देव्याः कादम्बर्याश्च कुशलम्। कुशली वा सकलस्तमालिकाकेयूरकादिपरिजनः' इति। साब्रवीत्—'देव, यथाज्ञापयसि, भद्रम्। त्वामर्चयति शेखरीकृताञ्जलिना ससखीजना सपरि-

---

तस्या श्रवणमाकर्णन तत्रोत्सुक उत्कण्ठितश्च महोत्सवमिवोत्सवमिवेप्सितोऽभिलषितो यो वरस्तस्य प्राप्तिकालो लब्धिसमयस्तमिवामृतस्य पीयूषस्योत्पत्तिसमयस्तमिव पत्रलेखागमन प्रत्यपालयत्प्रत्यपेक्षाचक्रे।

तदस्तदनन्तर कतिपयदिवसापगमे कियत्कालातिक्रमे मेघनाद पत्रलेखामादाय गृहीत्वागच्छदायथौ। एनां पत्रलेखामुपानयच्च राज्ञ समीपे प्रापयच्च। कृतनमस्कारा च तां दूरादेव स्मितेनेषद्धसितेन च प्रकाशिताविष्कृता प्रीतिर्येनैवंभूतश्चन्द्रापीड प्रकृत्या स्वभावेन वल्लभामपि कादम्बरीसकाशात्प्रसादेन लब्धमपर सौभाग्य ययैवंविधामिवात एव वल्लभतरतामतिवल्लभतामुपागता प्राप्तवतीमुत्थायातिशयदर्शितादर यथा स्यात्तथा पत्रलेखामालिलिङ्गोपगूहं चकार। मेघनाद च प्रणत पृष्ठे करकिसलयेन हस्तपल्लवेन पस्पर्श स्पर्शं चकार। तदनन्तरं समुपविष्टश्चेत्यब्रवीदित्यवोचत्। इतिशब्दद्योत्यमाह—पत्रलेखे इति। हे पत्रलेखे, कथय निवेदय तत्रभवत्या. पूज्याया महाश्वेताया मदलेखया सह वर्तमानाया देव्या कादम्बर्याश्च कुशल वर्तते। कुशली वा सकल समस्तस्तमालिकाकेयूरकादिपरिजन.। साब्रवीदवोचत्। हे देव, यथाज्ञापयस्याज्ञां करोषि तथा भद्र कुशल वर्तते। शेखरीकृतो योऽञ्जलिस्तेन कृत्वा ससखीजना सवयस्या सपरिजना सपरिच्छदा च देवी कादम्बरी त्वा भवन्तमर्चयति पूजयति। इत्येवमुक्त-

---

आगमन) एक बड़ा उत्सव हो अथवा अभीष्ट वर के मिलने का समय हो अथवा अमृत की उत्पत्ति का समय हो।

इसके पश्चात् कई दिन बीत जानेपर मेघनाद पत्रलेखा को लेकर आया और उसको राजकुमार के सामने पहुँचाया। और नमस्कार किये हुई उसको (उसके प्रति) दूर से ही प्रीति प्रकट किये हुए चन्द्रापीड ने, स्वभाव से प्रिय होते हुए भी कादम्बरी (के समीप) से प्राप्त कृपा के कारण मानो अतिरिक्त सौन्दर्य प्राप्त किये हुई तथा और भी अधिक प्यारी बन गयी पत्रलेखा को, उठकर अत्यधिक सम्मान दिखाते हुए आलिङ्गन किया। और झुके हुए (नमस्कार किये हुए) मेघनाद की पीठपर (मेघनाद की पीठ को) अपने कोमल हाथ से छुआ। और बैठकर उसने कहा—'पत्रलेखा! पूजनीया महाश्वेता का तथा मदलेखा समेत कादम्बरी का कुशल समाचार कहो। अथवा तमालिका, केयूर आदि सारे परिजन सकुशल तो हैं?" उसने कहा—"राजकुमार! जैसा आप पूछते हैं—सब अच्छे हैं। सहेलियों समेत, अपनी अंजलि को शिरोभूषण बनाये हुई राजकुमारी कादम्बरी आपको सम्मान प्रदान

जना देवी कादम्बरी' इति। एवमुक्तवती पत्रलेखामादाय मन्दिराभ्यन्तरं विसर्जित राजलोको विवेश। तत्र चोत्ताम्यता मनसा धारयितुमपारयन्कुतूहलमतिप्रीत्या दूरमुत्सारितपरिजनः प्रविश्यागारमचिरप्ररूढायाः स्थलकमलिन्याः पृथुभिरुन्नालैः पलाशैर्विरचितातपत्रकृत्याया अध्यास्य मध्यभागमन्यतरस्य मरकतपताकायमानस्य पत्रमण्डपस्य तले चरणारविन्देन समुत्सार्य सुखप्रसुप्तं हंसमिथुनमुपविश्याप्राक्षीत्—'पत्रलेखे कथय कथमसि स्थिता। कियन्ति वा दिनानि। कीदृशो वा देवीप्रसादः। का वा गोष्ठ्यः समभवन्। कीदृश्यो वा कथाः समजायन्त। को वातिशयेनास्मान्स्मरति। कस्य वा गरीयसी प्रीतिः' इति। एवं पृष्टा च व्यजिज्ञपत्—'देव, दत्तावधानेन श्रूयताम्, यथा स्थितास्मि, यावन्ति वा दिनानि, यादृशो वा देवीप्रसादः, यथा वा गोष्ठ्यः समभवन्,

---

वती कथितवतीं पत्रलेखामादाय गृहीत्वा। विसर्जितेति। विसर्जितो राजलोको येनैवंभूतो मन्दिराभ्यन्तरं विवेश प्रविष्टवान्। तत्र चेति। तस्मिन्नेव स्थले उत्ताम्यता विरहेणोत्तपता मनसा चेतसा कुतूहलमाश्चर्यं धारयितुं सम्यक्तया ज्ञातुमपारयन्नशक्नुवन्, अतिप्रीत्यातिस्नेहेन दूरमुत्सारितो विसर्जितः परिजनो येनैवंभूतोऽगारं गृहं प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा पृथुभिर्विस्तीर्णैरुन्नालैः पलाशैः पत्रैर्विरचितं विहितमातपकृत्यं छत्रकार्यं ययैवंविधायाः स्थलकमलिन्या मध्यभागमध्यास्याश्रित्यान्यतरस्य पूर्वोक्तस्य भिन्नस्य मरकतस्याश्मगर्भस्य या पताका वैजयन्ती तद्वदाचरमाणस्य पत्रमण्डपस्य तले सुखप्रसुप्तं हंसमिथुनं चरणारविन्देन समुत्सार्य दूरीकृत्य तत्रोपविश्याप्राक्षीत्प्रश्नमकार्षीत्। हे पत्रलेखे, कथय प्रतिपादय। कथं केन प्रकारेण स्थितासि। कियन्ति वा दिनानि वासराणि। स्थितेति शेषः। कीदृशः पूर्वस्मादधिको न्यूनो वा देव्याः कादम्बर्याः प्रसादः प्रसन्नता। का वा गोष्ठ्योऽन्योन्यसल्लापाः समभवन्सजाताः। कीदृश्यो वा कथाः सखीनां वार्ताः समजायन्त समभवन्। को वातिशयेन बाहुल्येनास्मान्स्मरति स्मरणविषयीकरोति। कस्य वा गरीयसि महीयसि मयि विषये प्रीतिः स्नेहः। इत्येवममुना प्रकारेण पृष्टा प्रश्नविषयीकृता च व्यजिज्ञपन्न्यवेदयत्। तदेवाह—देवेति। हे देव, दत्तावधानेन

करती है।'' जब पत्रलेखा इस प्रकार कह चुकी तो राजाओं को छुट्टी देकर चन्द्रापीड पत्रलेखा को लेकर अपने घर के भीतर चला गया। और वहाँ, चिन्तातुर मनसे अपनी अतिशय प्रीति के कारण अपनी उत्सुकता को नियन्त्रित करने में असमर्थ, तथा सेवकों को दूर भेज कर घर मे प्रविष्ट होकर, अपने बड़े बड़े, ऊपर को उठी हुई नालों वाले पत्तों से छतरी का कार्य करती हुई अभी-अभी उगी हुई स्थलकमलिनी के मध्यभाग का आश्रय लेकर वहा मरकतमणि-निर्मित ध्वज बने हुए पत्तों के कुञ्ज में सुख से सोये हुए हस के जोड़े को अपने चरणकमल से हटा कर वहाँ बैठकर उसने (पत्रलेखा से) पूछा—''पत्रलेखा! बता, तू वहाँ कैसे रही? अथवा कितने दिन रही? राजकुमारी की कृपा तुझ पर कैसी रही? तुममें क्या क्या गोष्ठिया हुई? कैसे कैसे वार्तालाप हुए? कौन हमें बहुत अधिक स्मरण करता है? और किसका प्रेम बहुत अधिक है?'' इस प्रकार पूछी हुई ने बताया—''राजकुमार! सावधान मन से सुनिये कि मैं वहाँ जैसे रही, जितने दिन रही, राजकुमारी ने जैसी कृपा की, जैसी गोष्ठियाँ हुई और

यादृश्यश्च कथाः समजायन्त ।' ततः खल्वागते देवे केयूरकेण सह प्रतिनिवृत्याह तथैव कुसुमशयनीयसमीपे समुपाविशम् । अतिष्ठ च सुख नवनवाननुभवन्ती देवीप्रसादान् । किं बहुना, प्रायेण मम चक्षुषि चक्षुः, वपुषि वपुः, करे करपल्लवम्, नामाक्षरेषु वाणी, प्रीतौ हृदयं देव्याः सकलमेव त दिवसमभवत् । अपराह्ले च मामेवावलम्ब्य निष्क्रम्य हिमगृहकात्सचरन्ती यदृच्छया निषिद्धपरिजना वल्लभबालोद्यान जगाम । तत्र च सुधाधवला कालिन्दीजलतरङ्गमय्येव मरकतसोपानमालया प्रमदवनवेदिकाम-ध्यारोहत् । तस्या च मणिस्तम्भावष्टम्भस्थिता । स्थित्वा च मुहूर्तमिव हृदयेन सह दीर्घकालमवधार्य किमपि व्याहर्तुमिच्छन्ती निश्चलधृततारकेण निष्पन्दपक्ष्मणा चक्षुषा

चित्तैकाग्र्येण श्रूयतामाकर्ण्यताम् । तदेव दर्शयति—यथेति । यावन्ति दिनान्यह स्थितास्मि, यादृशो वा देवीप्रसाद, यथा गोष्ठ्य समभवन्, यादृश्यश्च कथा समजायन्त, एतत्सर्वं श्रूयतामित्यनेनान्वितम् । तत इति । तस्मात्स्थानात्खलु निश्चयेन देवे त्वय्यागते सति केयूरकेण सह प्रतिनिवृत्य पश्चाद्गता तथैव पूर्वोक्तरीत्यैव कुसुमशयनीयसमीपे समुपाविश समुपाविष्टा । नवनवान्देवीप्रसादाननुभवन्त्यहं सुखमतिष्ठम् । किं बहुना जल्पितेन । प्रायेण बाहुल्येन मम चक्षुषि देवीचक्षुरिति । देवीपद प्रत्येकमभिसबध्यते । चक्षुरित्यनेन सम्मुखमद्विषयकप्रेक्षणा तिशय । वपुषि वपुरित्यवियोगातिशय । करे करपल्लवमिति मद्विषयक कश्चिच्चमत्कारातिशय । नामाक्षरेषु वाणीत्यनेन प्रश्नातिशय । प्रीतौ हृदयमिति रहस्यप्रीत्यतिशयश्च व्यज्यते । देव्या पूर्वोक्त सकलमेव त दिवसमभवत् । अपराह्ले च मामेवावलम्ब्यालम्बनीकृत्य हिमगृहकान्निष्क्रम्य निर्गत्य यदृच्छया स्वेच्छया संचरन्ती व्रजन्ती निषिद्धपरिजना वल्लभ बालोद्यान जगाम गतवती । तत्र चेति । तस्मिन्बालोद्याने सुधया पूर्वोक्तया धवला शुभ्रा प्रमदवनवेदिकामध्यारोहदधिरोहण कृतवती मरकतस्य या सोपानमाला तया कालिन्दी यमुना तस्या जलतरङ्गा. प्रचुरा यस्या एवविधैव । तस्या चेति । प्रमदवनवेदिकायां मणिस्तम्भलक्षणो योऽवष्टम्भस्तस्मिन्स्थिता तदा धारेणासेदुषी । विरहातिशय व्यञ्जयन्नाह—स्थित्वा चेति । मुहूर्तमिव स्थित्वावस्थितिं कृत्वा

जैसे वार्तालाप हुए । निश्चय ही, वहाँ से आपके लौट आने पर मैं केयूरक के साथ लौटकर, वैसे ही पुष्पशय्या के समीप बैठ गयी । और राजकुमारी की नई नई कृपाओं को प्राप्त करती हुई सुख से रही । बहुत क्या कहूँ ! अधिकाशत उस समय सारे ही दिन भर, राजकुमारी की आँख मेरी आँख पर, उसका शरीर मेरे शरीर पर, उसके कोमल हाथ मेरे हाथ पर रहे और उसकी वाणी मेरे नाम के अक्षरों पर रही (वह मेरा नाम ही बोलती रही), और उसका हृदय मेरे प्रति प्रीति में ही रहा । और अगले दिन, (अपराह्ले) मेरा ही सहारा लेकर, हिमगृह से निकलकर, इच्छानुसार टहलती हुई सेविकाओं को निषेध किये हुई, अपने प्रिय प्रमद-उद्यान में चली गयी । और वहाँ यमुना जल की लहरों से बनी हुई सी प्रतीत होती मरकतमणि निर्मित सीढ़ी के द्वारा चूने से सफेद की गयी प्रमदवन की वेदिका पर चढ़ गयी । और उस (वेदिका) पर मणिनिर्मित स्तम्भ के सहारे बैठी हुई कुछ देर ठहर कर देर तक हृदय के साथ विचार विमर्श करने के पश्चात् कुछ कहना चाहती हुई, स्थिर पुतलियों को धारण किये हुई

मुखं मे सुचिरं व्यलोकयत्। विलोकयन्त्येव च कृतसंकल्पा मदनाग्निं प्रवेष्टुमिच्छन्ती सस्नाविव स्वेदाम्भःस्रोतसि। स्रोतसेव तरलीकृता समकम्पत। कम्पिताङ्गी च पतनभियेवागृह्यत विषादेन।

अथ मया विदिताभिप्रायया तन्मुखविनिवेशितनिष्कम्पनयनदत्तावधानया 'आज्ञापय' इति विज्ञापिते निजावयवैरपि वेपथुमद्भिर्निवार्यमाणेव रहस्यश्रवणलज्जया-त्मप्रतिमामपि लिखितमणिकुट्टिमेन चरणाङ्गुष्ठेनापक्रमायेवामृशन्ती, भवनकलहंसान्कु ट्टिमोल्लेखमुखरितनूपुरेण चरणारविन्देन विसर्जयन्ती, कर्णोत्पलमधुकरानपि स्विद्यद्-

हृदयेन मनसा सह दीर्घकालमवधार्य निश्चित्य किमपि व्याहर्तुं कथयितुमिच्छन्त्यभिलषन्ती निश्चल धृता तारका कनीनिका यस्मिन्, निष्पन्दं निश्चलं पक्ष्म नेत्ररोम यस्मिन्नेवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेण मे मम मुखं सुचिरं बहुकालं व्यलोकयदपश्यत्। विलोकयन्त्येव पश्यन्त्येव कृत संकल्पो यया सा। संकल्पकार्यमाह—मदनेति। मदन एवाग्निर्वह्निस्तं प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुमिच्छन्ती वाञ्छन्ती। एतेन मदनदाहस्यासह्यतातिशयो द्योत्यते। अग्निप्रवेशस्य स्नानपूर्वकत्वादाह—सस्नाविवेति। स्वेदाम्भसो घर्मजलस्य स्रोतसि प्रवाहे सस्नाविव स्नानं कृतवतीव। एतेन स्वेदातिशयश्च व्यज्यते। स्रोतसा तरलीकृतेव समकम्पताचलत्। कम्पितमङ्गं यस्या एवंविधा च पतनभियेव विषादेनागृह्यतोपादीयत।

अथेत्यानन्तर्ये। विदितो ज्ञातोऽभिप्रायो यस्या सैवंविधया मया तस्या कादम्बर्या मुखे विनिवेशिते स्थापिते निष्कम्पे नयने ताभ्यां कृत्वा दत्तमवधानं यया सा तया देवि, मामाज्ञा-पयाज्ञां देहीति विज्ञापिते सति सा कादम्बरी वक्तुकामापि किंचिदपि न शक्नोति स्म न समर्था बभूव गदितुं वक्तुं प्रयत्नतोऽपि च सा निःशेषं समग्रम्। अथेत कादम्बरी विशेषयन्नाह—निजेति। वेपथुमद्भिः कम्पवद्भिर्निजावयवैरात्मीयापघनैर्निवार्यमाणेव। अन्योऽपि हस्तचाल नादिना निवार्यते। रहस्येति। रहस्यस्य गुह्यस्य श्रवणमाकर्णनं तस्माद्या लज्जा त्रपा तयात्म प्रतिमामपि स्वकीयप्रतियातनामपि लिखितं कर्षितं मणिकुट्टिमं येनैवंभूतेन चरणाङ्गुष्ठेनापक्र मायेव तन्निवृत्तय इवामृशन्त्यामर्शं कुर्वन्ती। भवनकलेति। कुट्टिमं बद्धभूमिकं तस्योल्लेख उत्कर्षणं तेन मुखरितं वाचालं नूपुरं यस्यैवंभूतेन चरणारविन्देन भवनकलहंसानपि गृहकदम्बा

तथा अपलक आँख के द्वारा बहुत देर तक मेरे मुँह को ताकती हुई ने ही संकल्प करके (निश्चित विचार करके) प्रेम की अग्नि में प्रवेश करना चाहती हुई ने मानों पसीने की नदी में स्नान ही कर लिया। पसीने की नदी से ही मानो हिलाई हुई काँप उठी। और काँपे हुए अङ्गों वाली को, कहीं गिर न पड़े इस भय से ही मानो उदासी ने जकड़ लिया।

और इसके पश्चात् उसका अभिप्राय भाँपी हुई मैंने, उसके मुँह पर लगाई हुई स्थिर आँखों से ध्यान दिये हुई ने 'मुझे आज्ञा दीजिये,—यह कह दिया। तब काँपते हुए अपने अंगों से ही मानो रोकी गयी, मणिनिर्मित फर्श को कुरेदे हुए पाँव के अगूठे से मानो उसकी गुप्त बात को सुनने से होने वाली लज्जा के कारण ही मानो अपने प्रतिबिम्ब को भी विदा होने को कहने के लिये छूती हुई (रगड़ती), फर्श की कुरेद से बजे नूपुर वाले अपने चरणकमल के द्वारा पालतू हंसों को भगाती हुई, कर्णाभूषणीभूत कमलों पर मडराते भौंरों को भी अपना पसीना

वदनव्यजनीकृतेनांशुकपल्लवेनोत्सारयन्ती, ताम्बूलवीटिकाशकलमुत्कोचमिव दन्तखण्डितं शिखण्डिने ददती, वनदेवताश्रवणशङ्कितेव मुहुर्मुहुरितस्ततो विलोकयन्ती, वक्तुकामापि न शक्नोति स्म किंचिदपि लज्जाकलितगद्गदा गदितुं प्रयत्नतोऽपि च सा निःशेषम्। ज्वलता मदनानलेनेव दग्धा, अजस्रं प्रवहता नयनोदकेनेवोढा, प्रविशद्भिर्दुःखैरिवाक्रान्ता, पतद्भिः कुसुमचापशरैरिव शकलीकृता, निष्पतद्भिः श्वसितैरिव निर्वासिता, हृदयवर्तिभिश्चिन्ताशतैरिव विधृता, निःश्वासपायिभिर्मधुकरकुलैरिव निपीता न प्रावर्तत वाणी। केवलं दुःखसहस्रगणनाय मुक्ताक्षमालिकामिव कल्पयन्ती

नपि विसर्जयन्ती मानसगमनायाज्ञां प्रयच्छन्ती। विरहवशात्सचिन्ताया स्त्रियोऽङ्गुष्ठेन भूमिकर्षणं स्त्रीजातिस्वभावः। विसर्जयन्तीत्यनेन हंसापेक्षयापि गत्या शब्देन चरणारविन्दस्याधिक्यमिति व्यज्यते। कर्णेति। स्विद्यत्स्वेदं प्राप्नुवद्यद्वदनं मुखं तत्र व्यजनीकृतो योऽशुकपल्लवस्तेन कर्णोत्पलमधुकरानप्युत्सारयन्ती दूरीकुर्वन्ती। अनेन कर्णोत्पले सौगन्ध्यातिशयो द्योत्यते। ताम्बूलेति। ताम्बूलस्य नागवल्लीदलस्य वीटिका प्रसिद्धा तस्याः शकलं खण्डं दन्तखण्डितं रदनचर्वितमुत्कोचमिव लञ्चामिव शिखण्डिने कलापिने ददती प्रदानं कुर्वती। वनेति। वनस्यारण्यस्य देवताधिष्ठात्री तया श्रवणमाकर्णनं तेन शङ्कितेवेतस्ततश्चतुर्दिक्षु मुहुर्मुहुर्वारंवारं विलोकयन्ती पश्यन्ती। ज्वलतेति। दीप्तिमता मदनरूपोऽनलो वह्निस्तेन दग्धेव ज्वलितेव। अजस्रं निरन्तरं प्रवहता चलता नयनोदकेन नेत्राम्भसोढेव वाहितेव। प्रविशद्भिरिति। प्रविशद्भिः प्रवेशं कुर्वद्भिः। हृदयं इति शेषः। एवंविधैर्दुःखैरसुखैराक्रान्तेव व्याप्तेव। पतद्भिरिवोपरिपतनं कुर्वद्भिः कुसुमचापः कन्दर्पस्तस्य शरैर्बाणैः शकलीकृतेव खण्डीकृतेव। निष्पतद्भिरिति। निष्पतद्भिर्बहिर्निर्गच्छद्भिः श्वसितैः श्वासैर्निर्वासितेव हृदयाद् दूरीकृतेव। हृदयेति। हृदयवर्तिभिश्चिन्ताशतैर्विधृतेव रक्षितेव। निःश्वासेति। निःश्वासं वदनानिलं पिबन्तीत्येवंशीलाः निःश्वासपायिनस्तैरेवंभूतैर्मधुकरकुलैर्भ्रमरसमूहैर्निपीतेव पानविषयीकृतेव। अतोऽस्या वाणी वाङ् न प्रावर्तत न प्रवृत्ता बभूव। केवलं साधोमुख्यवाङ्मुखो दुःखानां सहस्रं तद्गणनाय पृथक्सख्यां कर्तुम्। शुचित्ववर्तुलत्वसाम्यादाह—मुक्तेति।

छोड़ते हुए चेहरे के लिये पंखा बनाये हुए वस्त्र के आंचल से दूर हटाती हुई, अपने ही दान्त से काटकर पान के बीड़े के एक टुकड़े को, मानो कि यह घूस ही हो—यह समझ कर, (समापस्थ) मोर को देती हुई, कहीं वन देवता न सुन ले मानो इसी भय के कारण ही इधर उधर झांकती हुई, बोलना चाहती हुई भी, लज्जा से आक्रान्त होकर लड़खड़ाती वाणी वाली होकर कुछ भी कह न सकी। प्रयत्न करने से भी उसकी वाणी चली नहीं—वह वाणी उस समय ऐसी प्रतीत हुई कि मानो प्रज्वलित कामाग्नि से वह पूरी पूरी जल गयी हो, मानो कि निरन्तर बहते हुए आंसुओं के जल द्वारा उठायी गयी हो, कुचलते हुए कष्टों द्वारा आक्रान्त हो गयी हो, मानो गिरते हुए कामदेव के बाणों द्वारा ही टुकड़े टुकड़े कर दी गयी हो, (बाहर आते हुए) निःश्वासों द्वारा ही निकाल दी गयी हो, और हृदय में बसी हुई सैकड़ों चिन्ताओं द्वारा ही मानो पकड़ ली गयी हो, तथा उसके निःश्वासों को पी जाने वाले भौंरों द्वारा मानो पी ली गयी

गलद्भिरस्पृष्टकपोलस्थलैः शुचिभिरधोमुखी नयनजलबिन्दुभिर्दुर्दिनमदर्शयत् । तदा च तस्याः सकाशादशिक्षतेव लज्जापि लज्जालीलाम्, विनयोऽपि विनयातिशयम्, मुग्धतापि मुग्धताम्, वैदग्ध्यमपि वैदग्ध्यम्, भयमपि भीरुताम्, विभ्रमोऽपि विभ्रमिताम्, विषादोऽपि विषादिताम्, विलासोऽपि विलासम्। तथाभूता च 'देवि, किमिदम्' इति विज्ञापिता मया प्रमृज्य लोहितायमानोदरे लोचने दुःखप्रकर्षेणात्मनः समुद्बन्धनायेव मृणालकोमलया बाहुलतया वेदिकाकुसुमपालिकाग्रथितकुसुममाला-

---

मुक्ताया अक्षमालिकां जपमालामिव कल्पयन्ती रचयन्ती। गलद्भि स्रवद्भिरस्पृष्टमस्पर्शित कपोलस्थलम् अधोमुखत्वाद्गल्लात्परप्रदेशो यैरेवविधै शुचिभिर्नयनजलबिन्दुभि कृत्वा दुर्दिन मेघज तमोऽदर्शयद्दर्शितवती। मया पृष्टा केवल रुदनमेव चक्रे इति भाव। तदा चेति। तस्मिन्काले तस्या कादम्बर्या सकाशात्समीपाल्लज्जापि त्रपापि लज्जाया लीला स्वभाव सकोच-रूपस्तामशिक्षत शिक्षितवती। अशिक्षतेत्यस्य सर्वत्र सबन्ध। तथा च स्वाश्रय सकुचित करोतीति लज्जास्वभाव। लज्जया अपि चेल्लज्जास्वभावोऽभ्यस्तस्तर्हि लज्जाया सकोच एवेति न्यूनत्वमेव सूचित भवति। तथा विनयोऽपि शरीरावनतिरूपोऽपि विनयातिशयमनधिकताम्। एतेन विनयस्यापि न्यूनत्वं सूचितम्। तथा मुग्धतापि विशेषावगत्यभावरूपापि मुग्धताम-भावरूपाम्। एवं सति मुग्धताया अभाव एव प्रौढत्व सिद्धम्। अभावाभावे भावरूपा विशेषावगति प्रौढता। वैदग्ध्यमपि भावाभिव्यञ्जकक्रियावृद्धिरूपमपि वैदग्ध्यमेव वर्तत इति सूचितम्। तथा भयमपि क्रियाभिनिवेशनिवृत्तरूपमपि भीरुताम्। एतेन भयमपि निवृत्त सोत्साहरूप मनो जातमिति सूचितम्। तथा विभ्रमोऽपि चित्तपरिवृत्तिलक्षणोऽपि विभ्रमिताम्। एतेनात्यन्तचिन्तास्थैर्यं सूचितम्। तथा विषाद इष्टविषयेषु प्रातिकूल्यरूपोऽपि विषादिताम्। एतेनेष्टेष्वनुकूलतालक्षण उत्साह एव प्रसिद्ध इति ध्वनितम्। विलासोऽपि परव्यामोहनानु-कूलव्यापाररूपोऽपि विलासम्। एतेन विचित्रैव चेष्टा स्वीकृतेति व्यज्यते। तथाभूता चेति। एवरूपा सा कादम्बरी हे देवि, किमिदमिति मया विज्ञापिता पृष्टा सती लोहितायमानमारक्त मुदर मध्य ययोरेवविधे लोचने प्रमृज्य प्रमार्जनं कृत्वा दु खप्रकर्षेणात्मन स्वस्य समुद्बन्धना-येव मृणालवत्कोमलया बाहुलतया कारणभूतया वेदिकाया या कुसुमपालिका तया ग्रथिता

हो। उससे अपने गिरते हुए तथा गण्डस्थलों को न छूते हुए स्वच्छ आसुओं के बिन्दुओं द्वारा, मानो कि अपने हजारों दु खों की गिनती करने के लिये मोतियों की अक्षमाला को बनाती हुई ने केवल कुहार (मेघाच्छन्न दिवस) का प्रदर्शन किया। उस समय उससे मानो उसकी लज्जा ने लज्जा का सजीलापन सीखा, विनय ने उत्कृष्ट विनय, सरलता ने सरलता, चतुराई ने चतु-राई, भय ने भीरुता, आमोदप्रियता ने आमोदप्रियता, निराशा ने नैराश्य और कृत्यों के सजीलेपन ने कृत्यों का सजीलापन सीखा। और इस प्रकार की आवश्यकता वाली को अब मैंने 'राजकुमारी यह क्या है' कह कर पूछा, तो अपने लाल होते मध्यभागों वाली आँखों को पोंछ कर, दुःख की अधिकता के कारण मानो अपने आप को लटकाने के लिये ही, बिससूत्र जैसी कोमल, लता सरीखी बाहु से वेदिका की द्वारपालिका द्वारा गूथी गयी पुष्पमाला का सहारा लेकर,

मवलम्ब्य समुन्नतैकभ्रूलता मृत्युमार्गमिवालोकयन्ती दीर्घमुष्णं च निश्वसितवती। तद्दुःखकारणमुत्प्रेक्षमाणया च कथनाय पुनःपुनरनुबध्यमाना मया व्रीडया नखमुखविलिखितकेतकीदलानि लिखित्वेव वक्तव्यमर्पयन्ती विवक्षास्फुरिताधरा निश्वासमधुकरानिवोपांशु सदिशन्ती क्षितितलनिहितनिश्चलनयना सुचिरमतिष्ठत्।

क्रमेण च भूयो मन्मुखे निधाय दृष्टिं पुनःपुनरथापूर्यमाणलोचनच्युतैर्मदनानलधूमधूसरा वाचमिव क्षालयन्ती बाष्पजलबिन्दुभिः, बाष्पजलबिन्दुव्याजेन च विलक्षस्मितस्फुरितैर्दशनांशुभिः साध्वसविस्मृतानपूर्वानभिधेयवर्णानिव ग्रथ्नती कथमपि व्याहाराभिमुखमात्मानमकरोत्। अब्रवीच्च माम्—'पत्रलेखे, वल्लभतया

या कुसुममाला स्रक् तामवलम्ब्याश्रित्य समुन्नतैका भ्रूलता यया सैवविधा मृत्युमार्गमिवालोकयन्ती पश्यन्ती दीर्घं लम्बायमानमुष्ण तप्त च निश्वसितवती निश्वास मुक्तवती। तस्य निश्वासमोचनस्य दु खस्य कारण नियामकमुत्प्रेक्षमाणया जानुमिच्छया मया कथनाय पुन पुनरनुबध्यमाना व्रीडया लज्जया नखमुखेन नखराग्रेण विलिखितानि केतकीदलानि। अक्षर साम्येनाह—लिखित्वेव वक्तव्यमभिधेयमर्पयन्ती। वक्तुमिच्छा विवक्षा तया स्फुरितावधरौ यस्या सा। अधरकम्पमिषादुत्प्रेक्षते—निश्वासेति। निश्वासमधुकरानुपांशु रहसि सदिशन्तीव कथयन्तीव क्षितितले निहिते स्थापिते निश्चले नयने यया सा सुचिर चिरकाल यावदतिष्ठत्स्थिता।

क्रमेण परिपाट्या भूयो मन्मुखे दृष्टिं निधाय स्थापयित्वा पुन पुनर्वारंवारम्। अथेत्यानन्तर्ये। आपूर्यमाणे लोचने ताभ्या च्युतैर्गलितैर्बाष्पजलबिन्दुभिर्मदनानलस्य यो धूमस्तद्वद्धूसरां मलिना वाच वाचालता क्षालयन्तीव। बाष्पेति। बाष्पजलबिन्दुव्याजेन विलक्षमभिनव यत् स्मित तेन स्फुरितैर्दीपितैर्दशनांशुभिर्दन्तमयूखे साध्वसेन भयेन विस्मृतानपूर्वानभिधेयवर्णान्वाच्याक्षरान्ग्रथ्नतीव। अत्र बाष्पबिन्दूनां वर्तुलतयाक्षरसाम्य दशनांशूनां विततया गुणसाम्येन ग्रन्थनमित्यर्थ। कथमपि महता कष्टेन व्याहाराभिमुख भाषिताभिमुखमात्मानमकरोदन्वतिष्ठत्।

एक भौंहे को ऊची किये हुई, मानो कि मृत्यु के मार्ग को ही ताकती हुई ने एक लम्बी और गरम आह भरी। उसके दु ख के कारण को भापती हुई मेरे द्वारा कहने के लिये बार-बार अनुरोध की गयी (दबाव डाली गयी), लज्जा के कारण (अपने पहने हुए) केतकी के पत्रों को नखाग्र से कुरेदती हुई मानो कि लिख कर ही अपना वक्तव्य देती हुई, कहने की इच्छा से थरथराते होंठ वाली, उसकी सास पर मडराते भौंरों को ही मानो एकान्त मे (उपांशु) फुसफुसाकर सदेश देती हुई पृथ्वी पर रखे हुई स्थिर आँखों वाली, देरतक बैठी रही।

धीरे धीरे, मेरे ~~चेहरे~~ पर अपनी आँखों को गड़ा कर, अपनी प्रेमाग्नि के धुएँ से मैली हुई (अर्थात् अस्पष्ट) अपनी वाणी को, बार बार (आंसुओं) से भरी जाती आँखों से गिरी अश्रुजल की बून्दों से मानो धोती हुई ने, अथवा भय के कारण भूले हुए, अपूर्व, अभिधेय (कहने के लिये अभीष्ट) वाक्यों को मानो, परेशानी मे मुस्कराने से चमके दान्तों के द्वारा आंसुओं की बिन्दुओं के बहाने ही व्यवस्थित करती हुई ने, बड़ी कठिनता से, अपने आप को कहने की ओर प्रवृत्त किया—बोलने के लिये तैयार कर लिया। और मुझ से बोली—"पत्रलेखा,

तस्मिन्स्थाने न तातो नाम्बा न महाश्वेता न मदलेखा न जीवितम्, यत्र मे भवती दर्शनात्प्रभृति प्रियासि। न जाने, केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजन त्वयि विश्वसिति मे हृदयम्। कमपरमुपालभे। कस्य वान्यस्य कथयामि परिभवम्। केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुःखम्। दुःखभारमिममसह्य निवेद्य भवत्यास्त्यक्ष्यामि जीवितम्। जीवितेनैव शपामि ते। स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि, किमुतापरहृदयेन। कथमिव मादृशी रजनिनिकरकिरणावदातं कौलीनेन कुल कलङ्कयिष्यति। कुलक्रमागता च लज्जा परित्यक्ष्यति। अकन्यकोचिते वा चापले चेतः प्रवर्तयिष्यति। साह न सकल्पिता पित्रा, न दत्ता मात्रा, नानुमोदिता

मा प्रत्यब्रवीत्नावादीत्। हे पत्रलेखे, वल्लभस्य भावो वल्लभता तया तस्मिन्स्थाने न तातो न पिता, नाम्बा माता, न महाश्वेता, न मदलेखा, न जीवितम्। यत्र स्थाने मे मम भवती दर्शनात्प्रभृत्यवलोकनादारभ्य प्रिया वल्लभासि। अह न जाने नाकलयामि केनापि कारणेन हेतुनापहस्तितो दूरीकृत. सकल समग्र सखीजनो येनैव मे मम हृदय चेतस्त्वयि विषये विश्वसिति विश्वास करोति। अपर कमन्य कमुपालभे। उपालम्भ ददामीत्यर्थ। अन्यस्य कस्य वा परिभव कथयामि निवेदयामि। केन वान्येन सह दु ख साधारणीकरोमि। असह्यं सोढुमशक्यमिम दु खभार भवत्या निवेद्य कथयित्वा जीवित त्यक्ष्यामि दूरीकरिष्यामि। ते तव पुरस्ताज्जीवितेनैव शपामि शपथ करोमि। एतस्मादधिक कोऽपि शपथो नास्तीति भाव। विदितवृत्तान्तेन ज्ञात स्वरूपेणामुना स्वहृदयेनापि जिह्रेमि लज्जा प्राप्नोमि। किमुतापरहृदयेन भण्यते। मादृशी स्त्री कथमिव रजनिकरश्चन्द्रस्तस्य किरणा गभस्तयस्तद्वदवदात निर्मलं कुल वश कौलीनेन जनापवादेन कलङ्कयिष्यति मलिनयिष्यति। कुलक्रमागता परम्परायाता च लज्जा त्रपा परित्यक्ष्यति परिहरिष्यति। अथवा कन्यकोचित कन्यकाजनस्यानुचितेऽयोग्ये वा चापले चपलतायां चेत प्रवर्तयिष्यति प्रवृत्तिं कारयिष्यति। साह कादम्बरी न सकल्पिता पित्रा जनकेनोद्वाहार्थं न

मेरी प्यारी होने के कारण मैं उस स्थान पर (ऊँचे स्थान पर) न पिता को, न महाश्वेता को, न मदलेखा को और न जीवन को ही रखती हूँ, जहाँ तुझ को रखती हूँ, तुम्हारे दर्शन से लेकर ही (जब से मैंने तुझ को देखा है, तभी से) तुम मेरी प्यारी हो। न जाने किस कारण, मेरा हृदय सब सखियों को बलात् निकाले हुआ तुझ पर ही विश्वास करता है। मैं दूसरे किसको दोष दू? अथवा किस दूसरे का अपना निरादर बताऊ? अथवा किस दूसरे के साथ अपने दु ख का बँटवारा करू (साधारणीकरोमि)? इस असह्य दु ख के भार को तुझे बताकर अपना जीवन छोड़ दूगी। मैं तेरे जीवन की ही सौगध खाती हूँ। मेरी अवस्था को जाने हुए इस अपने हृदय तक से मैं लज्जित होती हूँ, दूसरे के हृदय से लज्जित होने का तो कहना ही क्या है? यह कैसे सम्भावित है मुझ सरीखी—मेरे जैसी परिस्थिति वाली—कोई चन्द्रमा के किरणों सरीखे शुद्ध कुल को लोकनिन्दा (कौलीनेन) के द्वारा कलंकित कर दे और पीढ़ी दर पीढी प्राप्त लज्जा को छोड़ दे। अथवा एक कन्या (के सम्मान) के अनुपयुक्त विवेकरहित कृत्य में अपना चित्त लगने दे। तो फिर ऐसी स्थिति में स्थित मैं, (उसके लिये) पिता द्वारा

गुरुभिः, न किंचित्संदिशामि, न किंचित्प्रेषयामि, नाकारं दर्शयामि। कातरा चानाथेव बलादवलिप्तेन गुरुगर्हणीयतां नीता कुमारेण चन्द्रापीडेन। कथय महतां किमयमाचारः, किं परिचयस्येदं फलम्, यदेवमभिनवबिसकिसलयतन्तुसुकुमारं मे मनः परिभूयते। अपरिभवनीयो हि कुमारिकाजनो यूनाम्। प्रायेण प्रथमं मदनानलो लज्जां दहति, ततो हृदयम्। आदौ विनयादिकं कुसुमेषुशराः खण्डयन्ति, पश्चान्मर्माणि। तदामन्त्रये भवतीं पुनर्जन्मान्तरसमागमाय। नहि मे त्वत्तोऽन्या प्रियतरा। प्राणपरित्यागप्रायश्चित्ताचरणेन प्रक्षालयाम्यात्मनः कलङ्कम्।' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्।

कस्यचित्संकल्पविषयीकृता। तथा न मात्राम्बया दत्तार्पिता। इदं सुष्ठु कृतमित्येवप्रकारेण गुरुभिर्वृद्धैः नानुमोदिता। न किंचित्संदिशामि कथयामि। न किंचित्प्रेषयामि प्रेषणं करोमि। नाकारं देहविकृतिं दर्शयामि प्रकटयामि। कातरा चानाथेवाह बलाद्धठेनावलिप्तेन दर्पितेन कुमारेण चन्द्रापीडेन गुरुर्गुर्वी या गर्हणीयता निन्द्यता तां नीता प्रापिता। त्वं कथय निवेदय महतां सत्पुरुषाणाम्। किमिति प्रश्ने। अयमाचारः कुलक्रमागतव्यवहारः, किं वा परिचयस्य संस्तवस्येदं फलम्, यदेवप्रकारेणाभिनवो यो बिसकिसलयस्य तन्तुस्तद्वत्सुकुमारं कोमलं मे मम मनोऽनेन परिभूयते पराभवविषयीक्रियते। हि यस्मात्कारणात्कुमारिकाजनोऽपरिभवनीयो यूनां पराभवितुं न योग्यः। प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन प्रथमं मदनानलो लज्जां त्रपां दहति भस्मीकरोति। ततो हृदयं चेतो दहति तथा कुसुमेषुः कन्दर्पस्तस्य शरा आदौ प्रथमं विनयादिकं खण्डयन्ति शकलीकुर्वन्ति। पश्चान्मर्माणि मर्मस्थानानि खण्डयन्ति। तदाह पुनर्जन्मान्तरे यः समागमः संबन्धस्तदर्थं भवतीमामन्त्रये आमन्त्रणं कुर्वे। मर्मविच्छेदेऽवश्यमरणसंभवादिति भावः। अत्रार्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह—नहीति। नहि मे मम त्वत्तोऽन्या प्रियतरा वल्लभतरा। प्राणपरित्यागलक्षणं यत्प्रायश्चित्तं तदाचरणेन तदासेवनेनात्मनः स्वस्य कलङ्कं प्रक्षालयामि पवित्रीकरोमि।। इत्यभिधायेत्युक्त्वा तूष्णीमभूत्। मौनं चकारेत्यर्थः।

संकल्पित नहीं हूँ, माता द्वारा नहीं दी गयी हूँ, बड़े बूढ़ों द्वारा अनुमति प्राप्त नहीं हूँ, इसलिये (उसको) कोई संदेश नहीं भेजूंगी, उसको कोई वस्तु नहीं भेजूंगी, और न (अपनी भीतरी भावनाओं के) किसी चिह्न को ही दिखलाऊंगी। एक कायर अथवा अरक्षित मुझ को उस गर्वाले चन्द्रापीड ने जबर्दस्ती बड़े बूढ़ों द्वारा निन्दनीय बना दिया है। बता क्या यह महान् पुरुषों का उचित आचार है, अथवा क्या परिचय ही का यह परिणाम है कि मेरा ताजे बिसतन्तु सरीखा कोमल हृदय इस प्रकार वशीभूत किया जा रहा है—हराया जा रहा है! निश्चय ही युवा पुरुषों के लिये यह उचित नहीं है कि वे कुमारियों के साथ हिंसात्मक व्यवहार करें। सामान्यतया कामाग्नि पहले (कुमारियों की) लज्जा (की भावना) को जला देती है—नष्ट कर देती है और फिर हृदय को जलाती है। कामदेव के बाण आरम्भ में विनय आदि गुणों को काट डालते हैं और तब मर्म-स्थानों को काटते हैं। इस लिये मैं तुम्हें बिदाई देती हुई कहती हूँ कि पुनः दूसरे जन्मों मे हम मिलें। तेरे से अधिक मेरी प्यारी दूसरी कोई नहीं है। प्राणत्याग रूप प्रायश्चित्त करके मैं अपने कलंक को धो डालूंगी।"—यह कह कर चुप हो गयी।

अहं तु यत्सत्यमविदितवृत्तान्ततया ह्रीतेव भीतेव विलक्ष्येव विसञ्ज्ञेव सविषाद विज्ञापितवती—'देवि, श्रोतुमिच्छामि। आज्ञापय किं कृतं देवेन चन्द्रापीडेन। को वापराधः समजनि। केन वा खल्वविनयेन खेदितमखेदनीयं देव्याः कुमुदकोमल मनः। श्रुत्वा प्रथममुत्सृष्टजीविताया मयि पश्चात्समुत्स्रक्ष्यसि जीवितम्' इति। एवमभिहिता च पुनरवदत्—'आवेदयामि ते। अवहिता शृणु। स्वप्नेषु प्रतिदिवसमागत्यागत्य मे रहस्यसंदेशेषु निपुणधूर्तः पञ्जरशुकसारिका दूतीः करोति। सुप्तायाः श्रवणदन्तपत्रोदरेषु व्यर्थमनोरथमोहितमानसः संकेतस्थानानि लिखति। स्वेदप्रक्षालिताक्षरानपि

अहं तु यत्त्वं वदसि तत्सत्यमवितथमविदितवृत्तान्ततया ह्रीतेव लज्जितेव, भीतेव त्रस्तेव, विलक्षेव वीक्षापन्नेव, विसञ्ज्ञेव विगतचेतनेव, सविषादं यथा स्यात्तथा विज्ञापितवती। हे देवि कादम्बरि, श्रोतुं श्रवणविषयीकर्तुमिच्छाम्यभिलषामि। आज्ञापय प्रतिपादय। देवेन चन्द्रापीडेन किं कृतं किं विहितम्। को वापराध आगः समजनि समभूत्। खलु निश्चितम्। केन वा विनयेन देव्याः कादम्बर्या अखेदनीयं कुमुदवत्कोमलं सुकुमारं मनः खेदितं खेदं प्रापितम्। एतच्छ्रुत्वा कर्ण्याह प्रथममुत्सृष्टजीवितायां त्यक्तप्राणितायां मयि सत्यां पश्चात्तदनन्तरं जीवितं त्वं समुत्स्रक्ष्यसि त्यक्ष्यसि। इत्येव मयाभिहिता कथिता पुनर्भूयोऽवददवोचत्। आवेदयामि कथयामि ते तव। अवहिता दत्तावधाना त्वं शृण्वाकर्णय। स्वस्यैव विरहावस्थविलासान्कुमाराध्यासवशात्तदनुबन्धित्वेन स्वप्नेषु पश्यन्नाह—स्वप्नेष्विति। स्वप्नेषु प्रतिदिवसं प्रत्यहमागत्यागत्य निपुणो धूर्तो मे मम रहस्यसंदेशेषूपांशुसंदिष्टेषु। तत्र च कुमाराध्यासवशाच्छुकसारिकाणां शब्दमधिकृत्याह—पञ्जरेति। पञ्जरस्था शुकाः कीराः सारिकाः पीतपादा दूतीः करोति। तन्मुखेनैव संदिष्टसंदेशान्कथापयतीत्यर्थः। श्रवणदन्तपत्रयोर्मुद्रारेखामधिकृत्याह—सुप्ताया इति। सुप्तायाः श्रवणदन्तपत्राणामुदरेषु व्यर्थः सगमविषयो यो मनोरथोऽभिलाषस्तेन मोहितं मानसं यस्य सः। संकेतस्थानानि लिखति लिपीकरोति। कपोलयोः पत्रवल्लीलेखामधिकृत्याह—

किन्तु मैंने सचमुच वृत्तान्त विदित न होने के कारण, मानो लज्जित सी, डरी हुई सी, लज्जा से किंकर्तव्यविमूढ सी, बेहोश सी शोक के साथ उससे कहा—"राजकुमारी! मैं सुनना चाहती हूँ, राजकुमार चन्द्रापीड ने क्या किया—यह मुझे बताइये। अथवा उससे क्या अपराध हो गया है? उसने राजकुमारी का कमल सा कोमल, अक्लेशितव्य हृदय किस गुस्ताखी से दुखाया है? यह बात सुनकर पहले जब मैं जीवन को त्याग दूँगी तब आप भी प्राण त्याग कर सकेंगी।" इस प्रकार कही गयी उसने फिर कहा—मैं तुझे बताती हूँ। ध्यान से सुन। (मेरे) स्वप्नों मे प्रतिदिन आ-आकर वह चालाक धूर्त (अपने अभीष्ट) गोपनीय सदेशों में पिंजरों मे स्थित (पालतू) तोतों और मैनाओं को सदेशवाहक बनाता है। सोयी हुई के (लिये) कानों में पहने हुए दन्तपत्रों (आभूषणों) पर व्यर्थ मनोरथों से मदान्ध मन वाला (मिलने के लिये) नियत समय तथा निश्चित स्थानों के सकेत लिखता है। वह आकर्षक तथा चित्त की भ्राति द्वारा लगायी गयी अथवा बाधी गयी मेरे सगम की आशा के पीछे-पीछे चलने वाले (अर्थात् आशा से प्रेरित) ऐसे प्रेम पत्र लिखता है जो पसीने से धोये हुए

निपतितसाञ्जनाश्रुबिन्दुपङ्क्तिकथितात्मावस्थानान्मनोहरान्समोहाशानुवर्तिनो मदनलेखान्प्रेषयति। निजानुरागेण बलादरञ्जयदलक्तकरसेनेव चरणौ। अविनयनिश्चेतनो नखप्रतिबिम्बितमात्मान बहु मन्यते। उपवनेष्वेकाकिन्या ग्रहणभयपलायमानायाः पल्लवलग्नांशुकदशाप्रतिहतगमनाया गृहीत्वेव सखीभिरर्पिताया मिथ्याप्रगल्भः पराङ्मुखायाः परिष्वङ्गमाचरति। स्तनस्थले मे लिखन्पत्रलेखा कुटिलतामिवानृजुप्रकृतिः प्रकृतिमुग्ध मनः शिक्षयति। हृदयोत्कलिकातरगवातैरिव शीतलैर्मुखमरुद्भिः

स्वेदेति। स्वेदेन घर्मवारिणा प्रक्षालिता धौता अक्षरा येषु तान्। निपतितेति। निपतिता ये साञ्जना अश्रुबिन्दवस्तेषा पङ्क्त्या कथितात्मावस्थान येषु तान्मनोहरान्समोहानुवर्तिन समोहकारिणो मदनलेखान्प्रेषयति प्रेषण करोति। स्वाभाविकचरणयोरारुण्यमधिकृत्याह—निजेति। निजानुरागेण बलाद्धठादार्द्रालक्तकरसेनेवाशुष्कयावकद्रवेणेव चरणावरञ्जयत्। नखाना स्वच्छतां व्यञ्जयस्तेषु प्रतिबिम्बमधिकृत्याह—अविनयेति। मामुक्त्वा गत इत्यविनयस्तेन निश्चेतनो नखेषु प्रतिबिम्बितमात्मान बहुमन्यते। अधिकं जानातीत्यर्थः। यद्यपि नखेषु य कश्चन प्रतिबिम्बस्तथापि तदध्यासवशात्तस्यैवेत्यर्थः। उपवनेषु सर्वत कोमलपल्लवानामाश्लेषमधिकृत्याह—उपवनेष्विति। उपवनेष्वेकाकिन्या असहायाया केनचित्पुरुषेण ग्रहण तस्माद्भय तेन पलायमानाया नश्यन्त्या पल्लवेषु लग्ना या अशुकदशा तया प्रतिहत गमन यस्या अत एव पराङ्मुखाया सखीभिर्गृहीत्वेवार्पिताया मिथ्याप्रगल्भो मिथ्यैव विदग्धचरितश्चन्द्रापीड परिष्वङ्गमाचरत्यालिङ्गन करोति। बहिरुपवनपल्लवाश्लेषमनुभूतम्, तदध्यासवशात्तत्कृताभिमतिमधिकृत्याह—स्तनेति। मे मम स्तनस्थले पत्रलेखां लिखन्ननृजुप्रकृति कुटिलस्वभाव कुटिलतामिव प्रकृतिमुग्ध मन शिक्षयति। सस्वेदजलकणिकयो कपोलयोर्व्यजनवातवीजितयोस्तदध्यासवशात्तत्कृताभिमतिमधिकृत्याह—हृदयेति। अलीकचाटुकारो मिथ्यैव चाटुकृच्छ्रमजलशीकरैः श्वेतत्वसाम्येन तारकिताविव कपोलौ शीतलैर्मुखमरुद्भिर्वीज

(मिटे हुए) अक्षरों वाले होते हुए भी अजन मिश्रित उन पर गिरे हुए अश्रुबिन्दुओं की पक्तियों के द्वारा अपनी दशा को अपने आप बता रहा है। वह अपने अनुराग (प्रेम—लाल रग) से मानो कि अलक्तक रस से ही जबर्दस्ती (मेरी इच्छा के विरुद्ध) मेरे पॉवों को रग देता है। अपने अशिष्ट व्यवहार से चेतनाशून्य हुआ मेरे नखों मे प्रतिबिम्बित हुए अपने आप पर गर्व करता है। झूठा निर्भीक वह, उपवनों में अकेली का, पकड़े जाने के डर से भागती हुई का, पत्तों मे उलझे मेरे रेशमी वस्त्र के आँचल (दशा) के कारण रुके हुए गमन वाली का, मानो कि लतारूप सखियों द्वारा ही (उसको) समर्पित कर दी गयी का, मुह मोड़े हुई का आलिंगन कर लेता है। मेरे वक्ष स्थल पर चित्रकारियाँ करता हुआ वह कुटिल स्वभाववाला, स्वभाव से सरल मेरे मन को, मानो, कुटिलता सिखाता है। वह कपटी चापलूस, पसीने जल की तारों सरीखी बूँदों से युक्त मेरे गालों पर ठढी मुखकी वायुओं से मानो कि अपने हृदय की लालसा की तरङ्गों की हवाओं से ही, पखा करता है। नौसिखिया वह, पसीने के कारण

श्रमजलशीकरतारकितावलीकचाटुकारः कपोलौ वीजयति। स्वेदसलिलशिथिलितग्रहणगलितोत्पलशून्येनापि करेण यवाङ्कुरानिव नखकिरणाञ्शुद्धान्दुर्विदग्धः कर्णपूरीकरोति। वल्लभतरबालबकुलसेककालकवलीकृतान्सुरागण्डूषान्सकचग्रहमसकृद् धृष्टो मा पाययति। भवनाशोकताडनोद्यतान्पादप्रहारान्दुर्बुद्धिविडम्बितः शिरसा प्रतीच्छति। मन्मथमूढमानसश्च 'कथय हे पत्रलेखे' केन प्रकारेण निश्चेतनो निषिध्यते। प्रत्याख्यानमपीर्ष्यां संभावयति। आक्रोशमपि परिहासमाकलयति। असंभाषणमपि मानं मन्यते। दोषसंकीर्तनमपि स्मरणोपायमवगच्छति। अवज्ञानमप्यनियन्त्रण

यति पतनं करोति। कीदृशैरिव। हृदये योत्कलिका रणरणता सैवास्थिरत्वात्तरगा कल्लोलास्तेषां वातैरिव। स्वेदसलिलेन शिथिलीकृतं यदुत्पलं तत्संरक्षणार्थं न्यस्तं यत्करतलं तन्नखप्रभाया तत्कृतयवाङ्कुरकर्णपूरबुद्धिमविकृत्याह—स्वेदेति। स दुर्विदग्धः करेण शुद्धान्नखकिरणान्पाण्डुरत्वसाम्याद्यवाङ्कुरानिव कर्णपूरीकरोति। कीदृशेन करेण। स्वेदसलिलेन शिथिलितं तस्य ग्रहणे गलितं यदुत्पलं तेन शून्येनापि। अत्रापिशब्देन कर्णपूरीकृतोत्पलाभावेऽपि कर्णपूरकार्यं करोतीत्यर्थः। वल्लभतरेति। वल्लभतरा ये बलिबकुला लघुकेसरास्तेषां सेककालस्तत्र कवलीकृतान्सुरागण्डूषान्मद्यचुलुकानसकृन्निरन्तरम्। अलीनां नीलत्वादाह—सकचेति। सकचग्रहं धृष्टो मा पाययति पानं कारयति। भवनाशोकेति। अशोकस्य गृहकङ्केल्लिवृक्षस्य ताडनं तत्रोद्यतान्पादप्रहारांश्चरणाभिघातान्दुर्बुद्ध्या विडम्बितः शिरसोत्तमाङ्गेन प्रतीच्छति वाञ्छति। अत्र तदध्यासवशादशोकस्यापि तद्रूपत्वेन चिन्तनमित्यर्थः। विरहेण मूढतां प्रदर्शयन्नाह—मन्मथेति। मन्मथेन मूढं मानसं यस्यैवंविधः। स्वव्यामोहं तत्रैवारोपयन्नाह—निश्चेतन इति। त्वं कथय केन प्रकारेण निषिध्यते प्रतिषिद्धोऽप्युत्कटरागवशाद्धृष्टेव तिष्ठति। प्रत्याख्यानेति। प्रत्याख्यानं निराकरणमीर्ष्यामसूयां संभावयति संभावनां करोति। आक्रोशमपि निष्ठुरोक्तिमपि परिहासं हास्यमात्रमाकलयति चिन्तयति। असंभाषणमप्यजल्पनमपि मानं मन्यते

ढीली पड़ी अपनी पकड़ में से गिरे हुए कमल से रहित भी अपने हाथ से, चमकीली नख किरणों को, मानो कि वे जौ के अंकुर ही हों, मेरे कर्णाभूषण बनाता है। वह ढीठ, मेरे बालों को पकड़ कर, अत्यन्त प्रिय बकुल के छोटे पौधों को सींचने के समय मेरे द्वारा ली गयी (अर्थात् मेरे पास विद्यमान) शराब के कौरों को एक से अधिक बार पिलाता है।[1] सनक के कारण ठुकराया हुआ वह महल के अशोक वृक्षों को ठोकर मारने के लिये उठाये हुए मेरे पाँव की ठोकरों को अपने शिर पर ले लेता है। हे पत्रलेखा बता, काम (प्रेम) से उन्मत्त मन वाले इस चेतनाशून्य को किस प्रकार रोका जाय। क्योंकि वह अस्वीकृतियों को भी ईर्ष्या समझ लेता है, झिड़कियों को भी उपहास मान लेता है, और मौन को आदर मान लेता है। उसके दोषों के वर्णन को अपने स्मरण करने की रीति समझ लेता है। घृणा को अनियन्त्रित प्रेम

---

१ बकुल के सींचने के समय (वहाँ विद्यमान) शराब को स्वयं मुह में भर कर उन कौरों को जबर्दस्ती मुझे पिलाता है।

प्रणयमुत्प्रेक्षते। लोकापवादमपि यशो गणयति' इति। तामेववादिनीमाकर्ण्य प्रहर्षरस निर्भरा मनस्यकरवम्—'अहो चन्द्रापीडमुद्दिश्य सुदूरमाकृष्टा खल्विय मकरकेतुना। यदि च सत्यमेव कादम्बरीव्याजेन साक्षान्मनोभवचित्तवृत्तिः प्रसन्ना देवस्य, ततः सहजैः सादर सवर्धितैः प्रत्युपकृतमस्य गुणैः, यशसा धवलिताः ककुभः, यौवनेन रतिरससागरतरगैः पातिता रत्नवृष्टिः, यौवनविलासैर्लिखित नाम शशिनि, सौभाग्येन प्रकाशिता निजश्रीः, लावण्येनैन्दवीभिरिव वृष्टममृतं कलाभिः। तथा च चिराल्लब्धः कालो मलयानिलेन, समासादितोऽवसरश्चन्द्रोदयेन, प्राप्तमनुरूपं फलं मधुमासकुसुमसमृद्ध्या,

---

जानाति। दोषसकीर्तनमपि स्मरणोपायत्वेनावगच्छति जानाति। अवज्ञानमप्यवगणनमपि स्नेहस्य चाटूनि नियन्त्रणानि तद्रहितमनियन्त्रण प्रणय स्नेहमुत्प्रेक्षते। लोकापवादमपि यशो गणयत्या कलयति। इद च सर्वं तद्विषयकोत्कटाध्यासवशाज्ज्ञेयम्। इत्येववादिनी तामाकर्ण्य प्रकृष्टो यो हर्षस्तल्लक्षणो यो रसस्तेन निर्भरा सपूर्णा मनस्येवमकरवमकल्पयम्। अहो इति। अहो इत्याश्चर्यम्। खलु निश्चितम्। चन्द्रापीडमुद्दिश्येय कादम्बरी मकरकेतुना सुदूरमतिदूरमाकृष्टाकर्षिता। यदि च सत्यमेवावितथमेतदेव तदा देवस्य चन्द्रापीडस्योपरि मनोभवचित्तवृत्ति कादम्बरीव्याजेन साक्षात्प्रसन्ना। तत इति। अस्य चन्द्रापीडस्य सहजै स्वभावजनितै सादर सवर्धितैर्वृद्धि प्रापितैर्गुणै प्रत्युपकृत प्रत्युपकार कृत। यशसा कीर्त्या ककुभो दिशो धवलिता शुभ्रिता। यौवनेति। यौवनेन तारुण्येन रतिरस शृङ्गाररस स एव सागर समुद्रस्तस्य तरगै कल्लोलै कृत्वा रत्नवृष्टि पातिता। तथा यौवनविलासैस्तारुण्यविभ्रमै शशिनि चन्द्रे चन्द्रापीडेति नाम लिखितम्। सौभाग्येति। सौभाग्येन सुभगतया निजा श्रीरात्मशोभा प्रकाशिता प्रकटीकृता। लावण्येति। लावण्येन चातुर्येणैन्दवीभिश्चन्द्रसबन्धिनीभि कलाभिरिवामृत पीयूष वृष्टम्। पीयूषवृष्टि कृतेत्यर्थः। तथा मलयानिलेन मलयवायुना चिराद् बहुकालात्काल प्रस्तावो लब्ध। तथा चन्द्रोदयेनावसर समासादित। तथा मधुमास सुरभिमासस्तस्य कुसुमसमृद्ध्यानुरूप योग्य फल प्राप्तम्। मदिरेति। मदिरा कापिशायन तस्य रसदोषो

करके देखता है और लोकनिन्दा को अपनी कीर्ति गिनता है।" इस प्रकार—इस लहजे में-बात करती हुई उसको सुन कर पूर्णाह्लादिक हर्ष से भरी हुई मैंने सोचा—"ओहो! निश्चय ही चन्द्रापीड के उद्देश्य से कामदेव इसको खींच कर बहुत दूर तक ले गया है। यदि सचमुच ही, साक्षात् कामदेव का मन (चित्तवृत्ति) कादम्बरी के बहाने राजकुमार पर प्रसन्न है, अनुकूल रूप में राजकुमार के प्रति झुका हुआ है, तब तो इसके स्वाभाविक किन्तु प्रयत्नपूर्वक बढ़ाये गये गुणों ने इसका प्रत्युपकार कर दिया, इसके यश ने दिशायें श्वेत कर दीं, यौवन ने प्रेम की भावनाओं (जलों) के समुद्र की लहरों द्वारा इस पर रत्नों की वर्षा कर दी। उसके यौवन के हाव-भावों ने चन्द्रमा पर इसका नाम (कादम्बरी के प्रति प्रेम को उकसाने के लिये) लिखा है। इसके सौभाग्य ने अपनी शोभा प्रकट की है। इसके सौन्दर्य ने मानो चन्द्रमा की कलाओं के द्वारा इस पर अमृत की वर्षा की है। इसके अतिरिक्त मलय वन ने बहुत समय के पश्चात् उचित समय पाया है, चन्द्रोदय ने उचित अवसर पाया है, वसन्त

गतो मदिरारसदोषो गुणताम्, दर्शितं मुखं मन्मथयुगावतारेण' इति। अथाह प्रकाश विहस्याब्रवम्—'देवि, यद्येवमुत्सृज कोपम्। प्रसीद। नार्हसि कामापराधैर्देवं दूषयितुम्। एतानि खलु कुसुमचापस्य चापलानि शठस्य, न देवस्य' इति। एवमुक्तवतीं मां पुनः सकुतूहला सा प्रत्यभाषत—'योऽयं कामः कोऽपि वा, कथय कानि कान्यस्य रूपाणि' इति। तामहं व्यजिज्ञपम्—'देवि, कुतोऽस्य रूपम्। अतनुरेष हुताशनः। तथा हि—अप्रकाशयञ्ज्वालावलीः संतापं जनयति, अप्रकटयन्धूमपटलमश्रु पातयति, अदर्शयन्भस्मरजोनिकरं पाण्डुतामाविर्भावयति। न च तद्भूतमेतावति त्रिभुवनेऽस्य शरशरव्यतां यन्न यातं याति यास्यति वा। को वास्मान्न त्रसति। गृहीतकुसुमकार्मुको

गुणतां गतः। मन्मथयुगावतारेण मुखं दर्शितम्। कादम्बर्यनुकूलताया सत्यामेतत्सर्वमनुकूलं जातमित्यर्थः। अथेति। तच्चिन्तनानन्तरं प्रकाशं प्रकटं विहस्याहमब्रवमवोचम्। हे देवि, यद्येवं तर्हि कोपमुत्सृज त्यज। प्रसीद प्रसन्ना भव। कामापराधैर्देवं दूषयितुं नार्हसि न योग्या भवसि। एतानीति। एतानि पूर्वोक्तानि खलु निश्चितं कुसुमचापस्य कदर्पस्य चापलानि चेष्टितानि न शठस्य देवस्य चन्द्रापीडस्य। इत्येवमुक्तवतीं मां पुनर्भूय सकुतूहला सकौतुका सा इति प्रत्यभाषत प्रत्यवोचत्। इतिशब्दद्योत्यमाह—योऽयमिति। कोऽपि वा योऽयं कामः कथय प्रतिपादय, कानि कान्यस्य रूपाणि। ततोऽहं तां कादम्बरीं व्यजिज्ञपं विज्ञप्तिमकरवम्। कुतोऽस्य रूपम्। एषोऽतनुर्महान्दृश्यमानवह्नेर्विलक्षणो हुताशनः। तदेव दर्शयति—तथा हीति। ज्वालावलीः शिखाश्रेणीरप्रकाशयन्नप्रकटीकुर्वन्संतापं जनयति। अप्रकटयन्नप्रकाशयन्धूमपटलमश्रु पातयत्यश्रुपातं करोति। अदर्शयन्नप्रकटयन्भस्मलक्षणं रजोविकारं पाण्डुतां पाण्डुरतामाविर्भावयति प्रकटयति। एतावति त्रिभुवने तन्न भूतम्। यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धादाह—यदिति। यदस्य मदनस्य शराणां बाणानां शरव्यतां वेध्यतां न यातं न प्राप्तम्। न कोऽपि सांप्रतं शरव्यतां याति। न कोऽप्यग्रे यास्यति। कोऽपि नास्मान्नत्रसति। गृहीतेति। गृहीतमात्तं कुसुमानां कार्मुकं धनुर्येनैव-

---

ऋतुकालीन पुष्पबाहुल्य ने उपयुक्त फल पाया है, शराब के साथ लगा हुआ दोष गुण बन गया है और प्रेम युग के आगमन की उषा ने मुँह दिखा दिया है।'

तब मैंने प्रकट रूप में हँस कर कहा—'राजकुमारी! यदि बात ऐसी ही है तो क्रोध को छोड़ दे, सन्तुष्ट हो जा। काम के अपराधों से राजकुमार की निन्दा करना तुझे उचित नहीं है। ये तो उस धूर्त पुष्पायुध के कामुकतापूर्ण खेल हैं, राजकुमार के नहीं हैं। ऐसा कही हुई मुझको उसने फिर उत्सुकता से कहा—"जो यह काम है, अथवा वह कोई भी हो, बता इसके क्या क्या (विभिन्न) रूप हैं?' मैंने उसे बतलाया—"राजकुमारी! इसका रूप कहाँ? यह तो बिना शरीर वाली अग्नि है। क्योंकि ज्वाला की पंक्तियों को न दिखाता हुआ ही यह ऊष्मा को उत्पन्न करता है, धुँए को प्रकट न करता हुआ ही आँसू गिरवाता है (रुला देता है); और राख की धूल के समूह को न प्रकट करता हुआ ही पीलेपन को प्रकट करा देता है। और इतने बड़े भुवन मे ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो इसके बाणों का लक्ष्य (अथवा शिकार) न बना हो, बनता हो अथवा बनेगा। कौन है जो इससे नहीं डरता है? पुष्पधनुष

बाणैर्बलवन्तमपि विध्यति। अपि चानेनाधिष्ठिताना कामिनीना पश्यन्तीना चिन्ता-प्रियमुखसहस्रसकटमम्बरतलम्, लिखन्तीना दयिताकारानविस्तीर्णं महीमण्डलम्, गणयन्तीना वल्लभगुणानसंख्यान्, शृण्वन्तीना प्रियतमकथामबहुभाषिणीं सरस्वतीम्, ध्यायन्तीना प्राणसमसमागमसुखानि ह्रसीयान्कालो हृदयस्यापतति' इति। एतदाकर्ण्य च क्षण विचिन्त्य प्रत्यवादीत्—'पत्रलेखे, यथा कथयसि तथा जनोऽय कारितः कुमारे पक्षपातं पञ्चेषुणा। यान्यस्यैतानि रूपाणि समधिकानि वा तानि मयि वर्तन्ते। हृद-

---

विधो मदनो बाणै शरैर्बलवन्तमपि विध्यति। अपिचेति युक्त्यन्तरे। अनेनेति। अनेन कदर्पेणाधिष्ठिनानामाश्रिताना कामिनीना हृदयस्य ह्रसीयान्ह्रासकृत्काल आपतति। अकस्मादागच्छतीत्यर्थ। अथ कामिनीना विशेषणानि—किं कुर्वन्तीनाम्। चिन्ताजनित यत्प्रियमुखसहस्र तेन सकट सकीर्ण यदम्बरतल तत्पश्यन्तीनाम् विलोकयन्तीनाम्। दयितस्य भर्तुर्य आकार आकृतिस्तेनाविस्तीर्ण सकुचित यन्महीमण्डल तल्लिखन्तीनाम्। तथासंख्याननेकान्वल्लभगुणान्गणयन्तीना गणनां विदधतीनाम्। तथा प्रियतमकथा अबहुभाषत इत्येवशीला सरस्वतीं शृण्वन्तीनामाकर्णयन्तीनाम्। तथा प्राणसमस्य भर्तुर्य समागमस्तस्य सुखानि ध्यायन्तीनां चिन्तयन्तीनाम्। इत्येतदाकर्ण्य च क्षण विचिन्त्य प्रत्यवादीत्प्रत्यवोचत्। किं तदित्याह—पत्रलेखेति। हे पत्रलेखे, यथा त्व कथयसि तथाय जन. पञ्चेषुणा कदर्पेण कुमारे पक्षपात कारित। तदेव स्पष्टीकरोति—यानीति। यानि त्वया कथितान्यस्य कदर्पस्य रूपाणि तदपेक्षया समधिकानि मयि कादम्बर्यां वर्तन्त इत्यर्थ। अतिनिगूढत्व यन्मम हृदि वर्तते तदपि भवतीमेव पृच्छामीत्याशयेनाह—भवतीमिति। भवतीं त्वामेव वा पृच्छामि प्रश्न करोमि। अत्रार्थे हेतुमाह—हृदयेति। इदानीं साम्प्रत मम हृदयात्त्वमव्यतिरिक्ताभिन्नासि। अत एव त्वां पृच्छा-

---

को हाथ मे लिये हुआ यह बलशाली को भी अपने बाणों से बींध देता है। इसके अतिरिक्त इससे गृहीत (प्रभावित), प्रियसम्बन्धी चिन्ता के वशीभूत होकर (काल्पनिक) चन्द्रसदृश सहस्रों प्रियमुखों को देखती हुई युवती स्त्रियों को तो आकाश (उन मुखों से) भरा हुआ दिखायी देता है। (धरातल पर) अपने प्रिय की आकृतियाँ बनाती हुई स्त्रियों के लिये तो महीमण्डल बहुत विस्तृत नहीं रहता, अपने प्यारे के अनगिनत गुणों को गिनती हुई स्त्रियों के लिये स्वय सख्या ही छोटी हो जाती है, अपने प्रियतम के सम्बन्ध में की गयीं वार्ताओं को सुनती हुई स्त्रियो को स्वय सरस्वती देवी ही पर्याप्त वाक्पटु नहीं दिखायी देती, अपने प्राण के समान व्यक्ति के साथ हुए समागम (रति) के सुखों को स्मरण करने वालियों के हृदयों को समय बहुत क्षीण (छोटा) प्रतीत होता है।'

यह सुन कर, कुछ देर सोच कर, उसने उत्तर दिया—"पत्रलेखा! जैसा तू कहती है वैसे ही कामदेव ने राजकुमार के प्रति इस जन से (मुझसे) पक्षपात करा दिया है (कामदेव के कारण मैं राजकुमार को अत्यन्त चाहने लगी हूँ)। इसके ये सब रूप (चिह्न) और इनसे भी अधिक मुझ में विद्यमान हैं। तू मेरे लिये अब मेरे अपने हृदय से अभिन्न (हृदय

याद्व्यतिरिक्तासीदानीं भवतीमेव पृच्छामि। उपदिश त्वं यदत्र मे सांप्रतम्। एवंविधानां वृत्तान्तानामनभिज्ञास्मि। अपि च मे गुरुजनवक्तव्यतां नीताया नितरां लज्जिताया जीवितान्मरणमेव श्रेयः पश्यति हृदयम्' इति। एवंवादिनीं भूयस्तामहमेवमवोचम्—'अलमलमिदानीं देवि, किमनेनाकारणमरणानुबन्धेन। वरोरु, अनाराधितप्रसन्नेन कुसुमशरेण भगवता ते वरो दत्तः। का वात्र गुरुजनवक्तव्यता, यदा खलु कन्यका गुरुरिव पञ्चशरः सकल्पयति, मातेवानुमोदते, पितेव ददाति, सखीवोत्कण्ठां जनयति, धात्रीव तरुणतायां रत्युपचारं शिक्षयति। किमिव कथयामि ते याः स्वय

मीत्यर्थः। ततो यदत्र मे मम सांप्रतं युक्तं तदुपदिश कथय। अत्र हेतुमाह—एवमिति। एवंविधानां पूर्वोद्दिष्टानां वृत्तान्तानामहमनभिज्ञास्म्यकुशला। तस्मात्त्वदीयोपदेशस्यैव प्रतीक्षा क्रियते। मम त्वेतदेव प्रतिभातमित्याह—गुरुजनेति। गुरुजनेन मातृपित्रादिजनेन वक्तव्यतां वचनीयतां नीताया प्रापिताया नितरामत्यर्थं लज्जिताया मे मम मरणमेव श्रेयं इति हृदयं चेत पश्यति। जानातीत्यर्थः। इत्येववादिनीं भूयस्तामहमेवमवोचमब्रुवम्। हे देवि, अलमलं कृतं कृतम्। किमनेन व्यर्थेनाकारणमरणानुबन्धेन निष्प्रयोजनमृत्युप्रयासेन। वर इति। हे वरोरु, भगवता कुसुमशरेण ते तव वरो भर्ता दत्तः। भगवान्देव आराधित एव प्रसन्नः स्यात्। अयं तु न तथेत्याह—अनेति। अनाराधितप्रसन्नेन। का वेति। अत्र गुरुजने का वक्तव्यता का वचनीयता। यदेति। खलु निश्चितम्। यदा गुरुरिव पञ्चशरः कन्दर्पः कन्यकां सकल्पयति दानेच्छाविषयीकरोति। मातेव जनन्येवानुमोदते एतत्सुष्ठु विहितमिति श्लाघते। पितेव जनक इव ददाति प्रयच्छति। सखीव वयस्येवोत्कण्ठामुत्कलिकां जनयत्युत्पादयति। धात्रीवोपमातेव तरुणतायां तारुण्यविषये रतिविषयको य उपचारो विभ्रमादिस्तं शिक्षयत्यभ्यासं कारयति। न च काश्चन स्वेच्छया पतिवरणं कुर्वन्तीत्याशयेनाह—या इति। या पतीन्स्वयं वृतवत्यस्ता अपि कन्यकाः सन्ति। अतस्ते तव किमिव कथयामि किं ब्रवीमि। इदं त्वयापि समाचरणीय-

---

जितनी ही प्यारी) है, इसलिये मैं तुझसे ही पूछती हूँ। इस मामले में मेरे लिये जो (करना) उचित हो वह बता। मैं तो इस प्रकार के वृत्तान्तों को जानती नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त माता-पिता द्वारा निन्दनीय अवस्था में पहुँची हुई, अत्यन्त लज्जित हुई मेरा हृदय तो जीवन की अपेक्षा मरण को ही अधिक कल्याणकर समझता है।"

इस प्रकार कहने वाली उससे मैंने फिर कहा—"राजकुमारी! अब बस कर! (ऐसा मत सोच)! बिना कारण ही मरण के इस आग्रह से क्या लाभ है! हे सुन्दरी! बिना आराधना के तुझ पर प्रसन्न पुष्पायुध ने (निश्चय ही) तुझे वर दे दिया है। अब यहा बड़े बूढ़ों द्वारा निन्दनीय होने की कौन सी बात है? (माता-पिता के लिये तुम्हें दोष देने का अवसर ही कहा है?) निश्चय ही, जब कन्या को कामदेव एक बड़े की भाति (देने का) सकल्प कर लेता है (उसके लिये वर ढूढ लेता है) माता के समान समर्थन करता है, पिता की भाति देता है, सहेली की भाति उसमें लालसा को उत्पन्न करता है, और धाय के समान युवावस्थासम्बन्धी प्रेम की रीति को सिखाता है। और मैं तुझसे ऐसी कितनी कन्याओं का उल्लेख करू जिन्होंने

वृतवत्यः पतीन्। यदि च नैवमनर्थक एव तर्हि धर्मशास्त्रोपदिष्टः स्वयंवरविधिः। तत्प्रसीद देवि, अलममुना मरणानुबन्धेन। शपे ते पादपङ्कजस्पर्शेन। सदिश। प्रेषय माम्। यामि। आनयामि देवि, ते हृदयदयितम्' इत्येवमुक्ते मया प्रीतिद्रवार्द्रया दृष्ट्या पिबन्तीव मा निरुध्यमानैरपि मकरकेतुशरजर्जरिता भित्त्वेव लज्जा लब्धान्तरैर्निष्पतद्भिरनुरागविभ्रमैराकुलीक्रियमाणा प्रियवचनश्रवणप्रीत्या च स्वेदाश्लिष्टमुत्क्षिप्य रोमाञ्चजालकेन दधतीवोत्तरीयांशुकं प्रेङ्खत्कुण्डलमाणिक्यपत्रमकरकोटिलग्न च शशिकिरणमय मरणपाशमिव मकरकेतुना निहित कण्ठे हारमुन्मोचयन्ती प्रहर्ष-

मिति ध्वनितम्। न चेदमाचरणीयमित्याशयेनाह—यदि चेति। यदीद पत्यु स्वयंवरण न कर्तव्य तर्हि धर्मशास्त्रे स्मृत्यादावुपदिष्ट कथित स्वयवरविधिरनर्थक एव निष्प्रयोजन एव। अतस्त्व प्रसीद प्रसन्ना भव। हे देवि। अलमिति। अमुना मरणानुबन्धेनाल कृतम्। ते तव पादपङ्कजस्पर्शेन शपे शपथ कुर्वे। सदिशाज्ञापय। मां प्रेषय प्रेषण कुरु। अह यामि। ते हृदयदयित देव चन्द्रापीडमानयामि। त्वदन्तिक इति शेष। इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेण मयोक्ते कथिते सति सा कादम्बरी शनैरवदत्। अथ कादम्बरीं विशेषयन्नाह—प्रीतीति। प्रीतिः स्नेहस्तस्य द्रव पङ्कस्तेनार्द्रयोऽवया दृष्ट्या मां पिबन्तीव पान कुर्वन्तीव लज्जा त्रपां भित्त्वा भेद कृत्वा निरुध्यमानैरपि सध्रियमाणैरपि लब्धान्तरै प्राप्तावकाशैर्निष्पतद्भिर्बहिर्नि सरद्भिरनुरागविभ्रमैरान्तरप्रीतिविलासैराकुलीक्रियमाणा व्याकुलतां नीयमाना। कीदृशी। मकरकेतुशरै कंदर्पबाणैर्जर्जरिता। प्रियेति। प्रिय यद्वचन तस्य श्रवणमाकर्णन तस्माद्या प्रीतिस्तया च स्वेदस्तेनाश्लिष्टम् आर्द्रमित्यर्थ। एवंविधमुत्तरीयांशुकमुपसव्यानवस्त्र रोमाञ्चजालकेन रोमोद्गम समूहेनोत्क्षिप्योन्नत कृत्वा दधती धारयन्ती। किंविशिष्टमुत्तरीयांशुकम्। प्रेङ्खदिति। प्रेङ्खच्चञ्चलत्कुण्डलं कर्णभूषण तस्य माणिक्यपत्र तत्र या मकरकोटिस्तस्या लग्न विलग्नम्। पुन किं कुर्वन्ती। कण्ठे गले हार मुक्ताकलापमुन्मोचयन्ती। कीदृश हारम्। शशिकिरणमयम्। अत्युज्ज्वलत्वाच्छशिप्रभाभिर्निष्पन्नमित्यर्थ। अत एव विरहमूर्च्छाजनकत्वान्मकरकेतुना निहित

पतियों को स्वय चुना है। यदि ऐसा कभी न हुआ होता (कन्याओं ने पतियों का चुनाव न किया होता) तो धर्मशास्त्र द्वारा विहित स्वयवरविधि निरर्थक ही रही होती। इसलिये राजकुमारी! प्रसन्न हो। करने का यह निश्चय अब मत कर। तेरे चरणकमलो को छूकर प्रतिज्ञा करती हूँ। अपना सन्देश दे और मुझे भेज दे, मैं जाऊगी और राजकुमारी! तेरे हृदय के प्यारे को लाऊगी।

मेरे द्वारा ऐसा कहे जाने पर, प्रीतिरूपी जल से गीली हुई दृष्टि से मानो मुझ को पीती सी, रोकी जाती हुई भी, कामदेव के बाणों से (पहले ही) छिन्न भिन्न हुई लज्जा (की भावना) को भेद कर निकल कर गिरती हुई, प्रेम की कामुक चेष्टाओं द्वारा व्यग्र की जाती हुई, पसीने के द्वारा (शरीर से) चिपके हुए उत्तरीय वस्त्र को, (मेरे कहे हुए) प्यारे वचन सुनकर अनुभूत हर्ष से हुए रोमाञ्चों द्वारा उठाकर ओढ़ती हुई, झूलते हुए कुण्डल के मणिनिर्मित पत्रों पर बनी हुई मछली की (आकृतियों की) नोकों से उलझे हुए, इतने चमकीले कि मानो चन्द्र

प्रविह्वलान्तःकरणापि कन्यकाजनसहजा लज्जामिवालम्ब्य शनैः शनैरवदत्—'जानामि ते गरीयसी प्रीतिम्। केवलमकठोरशिरीषपुष्पमृदुप्रकृतेः कुतः प्रागल्भ्यमेतावन्नारीजनस्य, विशेषतो बालभावभाजः कुमारीलोकस्य। साहसकारिण्यस्ता याः स्वयं संदिशन्ति, समुपसर्पन्ति वा स्वयम्, साहसं संदिशन्ति। बाला जिह्रेमि। किं वा संदिशामि। अतिप्रियोऽसीति पौनरुक्त्यम्, तवाहं प्रियात्मेति जडप्रश्नः, त्वयि गरीयाननुराग इति वेश्यालापः, त्वया विना न जीवामीत्यनुभवविरोधः, परिभवति

स्थापितं मरणपाशमिव। प्रहर्षेति। प्रहर्षेण प्रमोदेन विह्वलमन्तःकरणं यस्याः सा। तथा कन्यकाजनस्य सहजा सहोत्पन्ना लज्जा त्रपामालम्ब्येवालम्बनीकृत्येव शनैःशनैर्मन्दं मन्दमवदद्वोचत्। ते तव मयि विषये गरीयसीं प्रीतिं स्नेहं जानामि। परं केवलमकठोरं सुकुमारं यच्छिरीषपुष्पं तद्वन्मृद्वी प्रकृतिर्यस्यैवंविधस्य नारीजनस्यैतावत्प्रागल्भ्यं कुतः स्यात्। तत्रापि बालभावभाजः कुमारीलोकस्य विशेषतस्तन्न स्यात्। कथं तर्हि रुक्मिण्यादेः श्रीकृष्णविषये रहःसंदेशदूतप्रेषणादि वेत्यत आह—साहसेति। साहसकारिण्यो या स्वयं संदिशन्ति संदेशं प्रेषयन्ति। स्वयं समुपसर्पन्ति समीपे गच्छन्ति। साहसं सत्त्ववृत्तिं संदिशन्ति कथयन्ति। मायाशक्तिवशाद् गृहीतशरीराः। तास्त्विति। दिव्या एवेत्यर्थः। अहं तु तथाविधा न भवामीत्यत आह—बाला इति। अहं बालाप्राप्तयौवना, अतो जिह्रेमि त्रपापन्ना भवामि। बालत्वात्किमपि न स्फुरतीत्याह—किं वेति पक्षान्तरे। किं संदिशामि किं कथयामि। प्रियसंदेशविषयार्थस्य स्फुरणमेव प्रकटयति—अतीति। सर्वजनस्य प्रियत्वेऽनुभवसिद्धे त्वमतिप्रियोऽसीत्यग्निरुष्ण इतिवत्पुनरुक्तता। तवेति। तवाहं प्रियात्मा। प्रियो वल्लभ आत्मा यस्येति बहुव्रीहिः इत्यपि जडस्य प्रश्नः। स्वविषयकप्रियत्वख्यापनाज्जडत्वमित्यर्थः। तदुक्तम्—'स्वरूपं वा प्रियो वापि वृत्तं पौरुषमेव वा। प्रकाशयन्स्वयं यस्तु स वै जडतरः स्मृतः।' इति। त्वयि भवति गरीयाननुराग इत्यपि न स्वकीयानां नायकानां व्यङ्ग्यरूपतयैवानुरागप्रकाशनम्। सामान्यवनितानां तु वाच्यवृत्त्येवाह—वेश्येति। वेश्या गणिका तस्या आलापः, न तु कुल-

---

किरणों से ही बने हुए प्रतीत होते, कामदेव द्वारा गले में पहनाये मृत्युपाश (मारणार्थ फन्दे) से प्रतीत होते हार को छुड़ाती हुई, अत्यन्त प्रसन्नता से व्यग्र हृदयवाली भी, कन्याओं के लिये स्वाभाविक लज्जा का आश्रय लेकर ही (मानो स्वाभाविक लज्जा से ही लज्जित होती हुई) धीरे धीरे बोली—"तुम्हारे भारी प्रेम को मैं जानती हूँ। (किन्तु बात) केवल इतनी ही है कि अभी कठोर न हुए (न पके हुए) शिरीष पुष्प सरीखे नरम स्वभाववाली नारियों में, विशेष कर अभीतक बालकपन को धारण किये हुई (युवावस्था में विद्यमान) कुमारियों में इतनी धृष्टता कहाँ से आ जाती है। वे निश्चय ही साहसिक हैं जो स्वयं सन्देश भेजती हैं या स्वयं (प्रेमी के समीप) चली जाती हैं। मैं बालिका तो स्वयं साहसपूर्ण सन्देश भेजती हुई लजाती हूँ। अथवा मैं क्या सन्देश दूँगी? 'तू बहुत प्यारा है' यह कहना तो पुनरुक्ति है। 'क्या मैं तेरी प्रिय हूँ?'—यह एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न है। 'तुझ पर मेरी गहरी प्रीति है' यह एक वेश्या का कथन है। 'तेरे विना जीवित नहीं रह सकती'—यह कहना अनुभव (लक्ष्य) के विरुद्ध

मामनङ्ग इत्यात्मदोषोपालम्भः, मनोभवेनाह भवते दत्तेत्युपसर्पणोपायः, बलाद् धृतोऽसि मयेति बन्धकीधाष्टर्थम्, अवश्यमागन्तव्यमिति सौभाग्यगर्वः, स्वयमागच्छामीति स्त्रीचापलम्, अनन्यरक्तोऽय परिजन इति स्वभक्तिनिवेदनलाघवम्, प्रत्याख्यानशङ्कया न सदिशामीत्यप्रबुद्धबोधनम्, अनपेक्षितानुजीवितदुःखदारुणा स्यामित्य तिप्रणयिता, ज्ञास्यसि मरणेन प्रीतिमित्यसम्भाव्यम्' इति ।

वत्या । त्वयेति । त्वया विना भवद्व्यतिरेकेणाह न जीवामि न प्राणान्धारयामि । इत्यपि अनुभवविरोधात् । जीवन्नपि न जीवामीति स्पष्ट एव विरोध । परीति । मामनङ्गः कदर्प परिभवति पीडयति । इत्यपि न । आत्मन. कामुकत्वप्रकाशनेन कुलवधूनामनुचितदोषोपालम्भात् । मनोभवेति । मनोभवेन कदर्पेणाह भवते दत्ता समर्पिता । इत्यपि न । कामुकत्वप्रकाशनरूपतया कुलस्त्रीणामनुचितोपसर्पणोपायत्वात् । बलादिति । बलाद्धठान्मया त्व धृतोऽसि । इत्यपि न । अस्य बन्धकी कुलटा तस्या धाष्टर्यरूपत्वात् । अवश्येति । अवश्य निश्चितमागन्तव्यम् । इत्यपि न । अस्य स्वसौभाग्यगर्वरूपत्वात् । स्वयमागच्छामि । इत्यपि न । स्त्रीचापलत्वात् । अनन्येति । अय प्रत्यक्षोपलभ्यमान परिजन सेवकजनोऽनन्यरक्तस्त्वय्येवानुरक्त । इत्यपि न । स्वय स्वभक्तिनिवेदनस्य लाघवत्वात् । प्रत्याख्यानेति । प्रत्याख्यान निराकरण तस्य शङ्कयारेकया सदिशामि न सदेशप्रेषणं करोमि । इत्यपि न । इदं हि प्रसुप्तसिंहोत्थापनवदप्रबुद्धबोधनम् । अज्ञातज्ञापनमित्यर्थ । अनेति । अनपेक्षितमसमीहित त्वद्गमनानन्तरमनुजीवित यस्मिन्नेतादृशं यद्दु ख तेन दारुणा भीषणाह स्याम् । इत्यपि न । इय ह्यतिप्रणयितात्युत्कटस्नेहवत्ता । ज्ञास्यसीति । मरणेन मृत्युना त्वं प्रीतिं ज्ञास्यसि अग्रेऽवबोधो भविष्यति । इत्यपि न । इद हि असभाव्यम् । तद्व्यतिरेकेणापि प्रीतेर्ज्ञायमानत्वादिति ॥

इति श्रीमत्तपोगणगगनाङ्गणगगनमणिभट्टारसार्वभौमभट्टारश्रीविजयसेनसूरीश्वराणा विजयराज्ये पातशाहश्रीअकब्बरप्रदापितोपाध्यायपदधारकश्रीशत्रुंजयकरमोचनाद्यनेकसुकृतकारकमहोपाध्यायश्रीभानुचन्द्रगणिविरचितायां कादम्बरीनिरन्तरव्याख्यायां प्रथम परिच्छेद

है । 'काम मुझे वशीभूत कर रहा है' यह कहना अपने ही दोष (निर्बलता) को धिक्कारना है । 'कामदेव ने मुझको तुम्हें सौंपा है' यह कहना ऐसा लगेगा कि यह तेरे पास आने का (मेरा) उपाय है । 'तुझको मैंने जबर्दस्ती (अपने मन में) पकड़ रखा है (कैद कर रखा है)' यह कहना एक कुलटा (बन्धकी) स्त्री की धृष्टता है । 'तुझे आना ही होगा' यह कहना अपने सौभाग्य पर गर्व प्रकट करना है । 'मैं स्वय आऊगी' यह कहना स्त्री की चचलता (को प्रकट कर देना) है । 'यह सेवक केवल तेरा ही भक्त है' यह कहना अपनी (भक्ति) की घोषणा करने की तुच्छता है । 'अस्वीकार कर देने के डर से सदेश नहीं भेजती हूँ' यह कहना सोये हुये को जगाना है (जो वह नहीं जानता है उसको वही जतलाना है) 'अनभीष्ट (अनपेक्षित) जो तेरे पीछे (तेरे चले जाने पर) जीता रहना है उसके कारण दुःख से मेरी स्थिति बहुत भीषण हो जायेगी' यह कहना बहुत अधिक प्रेम दर्शाना है । 'मेरे मरने से ही तू मेरी प्रीति जानोगे' यह कहना असम्भव है ।"